

श्रीरामचरितमानस.

विजया टीका

द्वितीय भाग

टीकाकार

मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक

डा० श्रीनाथ मिश्र रामायणी

डा० सहजानन्द त्रिपाठी

प्रकाशक ।

इण्डियन डबलपमेण्ट ट्रस्ट
३१, नेताजी सुभाष रोड
कलकत्ता, ७००००१

प्रकाशन तिथि .

विजयादशमी १९८० ई०

मूल्य : प्रथम भाग से संबद्ध

मुद्रक ।

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस
सीके ३६/२०, हुण्डिराज
वाराणसी, २२१००१

विषयानुक्रमिका

भङ्गलाचरण : शङ्करवन्दना, रघुनन्दन की
मुख्यी की कल्याणप्रदता । रामवन्दना
: संस्कृत : गुरुपद रज से मनमुकुर को,
विमल करके रघुवर : यशवर्णन ।
पृष्ठ १ से ।

रामाभिषेक प्रसङ्ग : उमा के पाँचवें प्रश्न
का उत्तर : ब्याह^१ के बाद से अयोध्या
में सुख-सम्पत्ति की वृद्धि । सबको
रामाभिषेक का अमिलाप । राजसभा ।
मुकुर में बाल की सफेदी देखकर राजा
को रामाभिषेक का अमिलाप । गुरु के
पास जाना । सम्मति पाकर सेवक सचिव
से सलाह । तैयारी । राम सीय को
सगुन, भरत आगमन सूचक । महल में
खबर । उछाह । रामजी को गुरु की
शिखा । अकेले धपने अभिषेक पर राम
का सप्रेम पछतावा । लक्ष्मण का
सम्मान । प्रजा का उछाह । देवताओं का
विघ्नाचरण । मन्यरा का कपट । महा-
रानी कैंकेयी की कुमति । कोप मवन ।
बालसखाओं का राम के पास जाना ।
नगर में रामाभिषेक का अमिलाप ।
कैंकेयी को दाह । कुसङ्ग से नाश : दो.
२३ तक । पृ० ५ से ।

नृपवचन राजरस भङ्ग प्रसङ्ग : महाराज
का कैंकेयी के महल में जाना । वरदान ।
राजा को शोक । कैंकेयी का हठ । कैंकेयी
त्याग । प्रातःकाल । सुमन्त का आगमन ।
सुमन्त का जाकर राम को लिवा लाना ।
राम कैंकेयी सवाद । राजा का मूर्च्छा
त्याग । रामचन्द्र का राजा को समझाने

१. राज तजा सो दूपन कहा ।

का प्रयत्न । माता के पास गमन : दो.
४५.५ तक । पृ० ६२ से ।

प्रजा विरह विपाद प्रसंग : नगर में समा-
चार का फैलना । सबकी विकलता ।
कैंकेयी को गाली । अनेक प्रकार का
अनुमान । प्रजा को दुःसह संताप ।
सखियों का कैंकेयी को समझाने का
प्रयत्न । कौसल्या रामचन्द्र सवाद ।
सीता का आना । सीता राम संवाद ।
माता का आशीर्वाद । प्रस्थान : दो. ६९
तक । पृ० ११२ से ।

राम लक्ष्मण संवाद प्रसङ्ग : लक्ष्मण का
आगमन । विनती । लक्ष्मण की माता से
विदाई । राम का साथ : दो. ७६. १
तक । पृ० १६१ से ।

वनगमन केवट अनुराग प्रसङ्ग : तीनों
मूर्तियों की महाराज से विदाई । वसिष्ठ
के द्वार पर ठहरना । सबको समझाना ।
प्रस्थान । राजा का सुमन्त को भेजना ।
सुमन्त का विनती करके रामजी को रथ
पर चढ़ाना । प्रजा का साथ चलना ।
तमसा तीर निवास । प्रजा को सोये
हुए छोड़कर रामजी का चला जाना ।
शृङ्गवेरपुर पहुँचना । गङ्गा स्नान ।
गुह का आगमन । सिन्धुपा वृक्ष तले
निवास । गुह का विपाद । पृ० १७५ ।
श्रीलक्ष्मण गीता : सुख दुःख के कारण अपने
कर्म । अन्य कोई नहीं । भ्रम फन्द जग
जाल व्यवहार सब मोहमूलक । मोह
निशा में सोना जागना स्वप्न परम
परमार्थ का वर्णन । रामजी परमार्थ

रूप । अवतार का कारण । सिय रघुवीर
चरणरति के लिए उपदेश । जटाधारण
सुमन्त विदाई । रामजी के नाव माँगने
पर केवट का न लाना । पैर धोने के
लिए अनुरोध । पाद प्रक्षालन दो
१०१ तक । पृ० २०५ से ।

सुरसरि उत्तरि प्रयागनिवास प्रसङ्ग गङ्गा
पार जाना । केवट की विदाई । गङ्गा
स्नान । पार्थिव पूजन । सीता द्वारा
गङ्गा की मनौती । विष्टप तर वास ।
प्रयागराज का वर्णन । स्नान । भरद्वाज
के आश्रम में निवास । मार्ग-प्रदर्शन के
लिए भरद्वाज का चार शिष्य देना दो
१०८५ तक । पृ० २३२ से ।

पन्थ वथा प्रसंग यमुना पहुँचने पर मुनि-
शिष्यों की विदाई । यमुना स्नान । तीर-
वासियों का प्रेम । एक ववि तापस का
आगमन । निपादराज की विदाई ।
पथिकों का प्रेम । मार्ग का भाग्य ।
भेद्यद्वारा छाया । पुण्यवृष्टि । ग्रामवासियों
का प्रेम । बट तर विश्राम । सीता और
ग्रामवधुओं का सवाद । ग्रामवासियों
द्वारा विधि की निन्दा । स्नेह से
विकलता । राम सीता लक्ष्मण पथिक
का वर्णन । बट तर निवास । स्नान करके
पुनः प्रस्थान दो १२३४ तक ।
पृ० २४७ से ।

वाल्मीकि मिलन प्रसंग आश्रम वर्णन ।
वाल्मीकि मिलन । अपनी कथा कहकर
रहने के लिए स्थान पूछना । वाल्मीकि
वृत्त स्तुति तथा चौदह प्रकार के भक्तों
के हृदय में निवास करने की प्रार्थना ।
समय सुखदायक स्थान चित्रकूट बतलाना
दो १३२ तक । पृ० २७५ से ।

चित्रकूट निवास प्रसंग गिरिजा के छोटे
प्रश्न के पूर्वार्ध का उत्तर चित्रकूट^१
में निवासयोग्य स्थान का निर्णय ।
विश्वकर्मा के साथ देवताओं का किरात
वेष में पर्णशाला-निर्माण । दिक्पालों का
अपनी विपत्ति सुनाना । मुनियों का
आकर मिलना । किरातों का आकर
मिलना । वन-वर्णन । चित्रकूट की
महिमा । आपस का प्रेम । चित्रकूट
विहार । दो १४१३ तक । पृ०
२९४ से ।

सचिवागमन प्रसंग निपादराज के लौटने
पर सुमन्त से भेंट । चार सेवक साथ
करके उन्हें लौटाना । सुमन्त का शोक ।
तमसातीर चारों सेवकों की विदाई ।
सुमन्त का अँधियारे अवध प्रवेश । नगर
में नारि-नर की व्याकुलता । महाराज से
भेंट । सन्देश सुनकर महाराज की
विकलता दो १५२४ तक । पृ०
३११ से ।

नृप मरण प्रसंग रानियों का विलाप ।
कौसल्या का धैर्य बँधाने का प्रयत्न ।
महाराज का प्रेमोन्माद । अन्य तापस
की कथा । महाराज का सुरधाम गमन ।
विलाप । कैकेयी को गाली । वसिष्ठ द्वारा
शोकावनादन । नृप तन का तेल नाव में
रखना । भरत के यहाँ दूत दो १५७
तक । पृ० ३३३ से ।

भरतागमन प्रसंग भरत का ननिहाल से
प्रस्थान । अवध प्रवेश में असगुन । नगर
में उदासी । कैकेयी से बातचीत । भरत
का शोक । मन्थरा कूबर भङ्ग दो
१६२८ तक । पृ० ३४० से ।

प्रेम वर्णन प्रसंग कौसल्या से भेंट । भरत

का शपथ लेना । कौसल्या की सान्त्वना :
दो १६८ तक । पृ० ३५२ से ।
मरत चरित १५७ दोहो मे ।

नृप क्रिया प्रसंग : वसिष्ठ वामदेव का
उपदेश । 'रानियो को सती होने से
रोकना । दाह-क्रिया । दशरात्र विधान ।
विशुद्ध होने पर दान । वर्णनातीत क्रिया ।
दो. १७० १ तक । पृ० ३६३ से ।

राज्यभिषेक प्रस्ताव सुदिन देखकर वसिष्ठजी
का सभा एकत्र करना । शोच्यो का
वर्णन । कोसलराज अशोच्य । राज्याभिषेक
का गुरु द्वारा प्रस्ताव । सचिव और
माता का अनुमोदन । मरत का उत्तर ।
रामजी के पास चलने की अनुमति
मांगना । सर्वसम्मति । दो. १८४ तक ।
पृ० ३६६ से ।

पुरवासी सहित चित्रकूट प्रस्थान प्रसंग :
चलने की तैयारी । सईतीर निवास ।
निपादराज की युद्ध की तैयारी । भेद
लेने के लिए मरत के पास जाना । मरत
से भेंट । गङ्गा-स्नान । डेरा करना ।
सिसुपा वृक्ष का दर्शन । मरत का शोक ।
निपादराज का समझना । पुरवासियों का
प्रेम । गङ्गा पार करना । मरत का पैदल
प्रयाण । प्रयाग स्नान । भक्ति मांगना ।
मरद्वाज भेंट । मरत की प्रशंसा । मरत
का उत्तर, सत्कार ग्रहण । विदाई ।
रास्ता चलने मे मरत का प्रेम । इन्द्र
को मोह । बृहस्पति का उपदेश । दूसरे
दिन यमुनातीर निवास । ग्रामवासी नर-
नारियों की बातचीत । मरत का प्रेम ।
बोच मे निवास । शैल दर्शन । प्रेम मे
शिथिलता । दिन भर मे दो कोस चलना ।
मार्ग मे निवास दो २२५ २ तक ।
पृ० ४०४ से ।

लक्ष्मण क्रोधप्रसंग . सीताजी का स्वप्न ।

शान्ति विधान । मरतागमन समाचार ।
राम को सङ्कोच । राम को सोच मे
देखकर लक्ष्मण का मरत पर क्रोध ।
आज्ञाशवाणी । रामसीता द्वारा सम्मान
दो २३२.३ तक । पृ० ५०० से ।

रामजी से भेंट : मन्दाकिनीस्नान । सबका
वही ठहरना । दोनों भाइयों का गुह के
साथ आगे बढ़ना । मरत का साव ।
आरण्य-राज-समाज वर्णन । वटवृक्ष
दर्शन । प्रणाम करते हुए चलना । मरत
का प्रेम । आश्रम दर्शन । प्रभु दर्शन ।
दण्डवत् प्रणाम । भाइयों की भेंट । शत्रुघ्न
को सीता के पास छोड़कर गुरुजी के पास
जाना । सबसे भेंट । गिने गिनाये लागो
के साथ आश्रम लौटना । सीताजी की
सबसे भेंट । नृप सुरपुर गमन समाचार ।
विलाप । निरम्बु व्रत । नृप क्रिया । शुद्ध
होने पर दो दिन बाद गुरुजी से वित्त
घर लौटने के लिए । गुरुजी का अनुरोध ।
लोगों का राम वन भ्रमण । कोल किरातो
का सत्कार । सीता की सास-सेवा ।
कैकेयी का पश्चात्ताप । मरत का सोच :
दो २५२ ४ तक । पृ० ५१९ से ।

प्रथम सभा : पुनि रघुपति बहु विधि
समुझाये : प्रकरण . गुरुजी के यहाँ मरत
की बुलाहट । मुनि मरत सवाद । समाज-
सहित रामनिकट आगमन । रामचन्द्र से
उपाय पूछना । रामचन्द्र का गुरु आज्ञा-
पालन ही उपाय बतलाना । गुरु द्वारा
मरत के स्नेह का विचार न रखने का
उपालम्भ । रामचन्द्र का सब वाज्ञा
मरत पर छोड़ देना । मरत द्वारा निज
दुःख निवेदन । गुरुजी का समझाना ।
रामचन्द्र द्वारा सान्त्वना । मरत की
बात मानने की प्रतिज्ञा । देवताओं मे
खलबली । मरत का रामाज्ञापालन का

निश्चय । रामजी का सङ्कोच से चुप रह जाना । जनकदूत आगमन । मुनि दूत सवाद । दूत की विदाई दो २७१ तक । पृ० ५६५ से ।

जनकागमन प्रसङ्ग रामजी को सङ्कोच । इन्द्र को सोच । कँक्रेयी की ग्लानि । प्रजा को मोद । दूसरे दिन पञ्चदेवो पासन । प्रार्थना । जनकागमन सुनकर रामजी का समाजसहित लेने जाना । शैल दर्शन होते ही जनक द्वारा रथ त्याग । सबका मिलन । रामजी का लिवा चलना । दोनों राज समाज की विकलता । मुनिया का समझाना । रामघाट स्नान । सबका निर्जल रह जाना । दूसरे दिन वसिष्ठ शतानन्द और विश्वामित्र का समझाना । जनकजी का दूसरी जगह ठहरना । सत्कार । जनकराज रनिवास का कांसलराज रनिवास से भट । चलते समय सीता को साथ लाना । जनक से भेंट । सीता की विदाई । जनक सुर्नना सवाद दो २८९ तक । पृ० ६०८ से ।

दूसरी सभा रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग गुरुजी से रामजी की प्रार्थना । गुरुजी का जनक के पास जाना । जनक का समाज के सहित भरत के पास जाना । जनक भरत सवाद । सबका रामजी के पास आना । देवताओं की भरत के मत को फेरने के लिए सरस्वती से विनय । सरस्वती का अस्वीकार । देवताओं की माया से भय भ्रम आत्ति और उपचार का प्रादुर्भाव । जनक का राम से आज्ञा माँगना । रामचन्द्रका जनकजी की आज्ञा मानने का शपथ लेना । जनकजी का समाजसहित सङ्कोच । भरतजी द्वारा सरस्वती का स्मरण । भरत का खड़ा हाकर आज्ञा

माँगना । रामजी का हाथ पकडकर निकट बैठाना । भरत की प्रशंसा । प्रजा की द्विविध मनोगति । रामचन्द्र का कथन । भरत को सन्तोष । मुनिथल तीरथ वन दर्शन की आज्ञा । भरत कूप । वन अटन दो ३१२ तक । पृ० ६४७ से ।

तीसरी सभा भरत की विदाई के लिए प्रार्थना । रामचन्द्र का उपदेश । भरत का प्रबाध । पादुका प्रदान । माइयो का मिलन । विदाई । प्रस्थान । राम सीता लक्ष्मण को प्रिय परिजन का वियोग । देवताओं का दुःख निवेदन । राम का भरोसा देना । राम लक्ष्मण सीता का पर्णकुटी में निवास दो ३२१ तक । पृ० ६९६ से ।

पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसंग । सब समाज राम विरह से दुःखी । यमुना पार होना । उस दिन उपवास । गङ्गा पार करके निवास । निपादराज का सत्कार । सई उतरि गोमतीस्नान । चौथे दिन अवध प्रवेश । जनकजी का चार दिन अवध में रहकर सब व्यवस्था करना । लोगों का राम-दर्शन के लिए नेम उपवास दो ३२२ तक । पृ० ७१५ से ।

भरत रहनि प्रसंग सचिव सेवक का अपने अपने कार्य में लग जाना । ब्राह्मणों से आज्ञा देते रहने के लिए भरतजी की प्रार्थना । पुरजन, परिजन प्रजा का समाधान करके स्ववश बसाना । गुरुजी से सनियम रहने के लिए आज्ञा चाहना । राजसिंहासन पर पादुका स्थापन । आज्ञा माँगकर कार्य करना । नन्दिग्राम निवास । भरत की तपस्या । भरतचरित की फलश्रुति । दो ३२६ तक । पृ० ७६७ से ।

३. अरण्यकाण्ड

मङ्गलाचरण : अष्टमूर्ति शङ्कररूप ब्रह्मकुल की वन्दना । सीता लक्ष्मण सयुक्त बटोही राम की वन्दना : संस्कृत : पृ० ७३० से ।

सुरपतिसुत करनी प्रसंग : रामजी के गुणों की भूढ़ता । सीता का पुण्य शृङ्गार । बल परीक्षा के लिए जयन्त का वायस वेप धारण । सीता पर चोच चलाना । ब्रह्मास्त्र प्रयोग । जयन्त का पलायन । नारद का उपदेश । जयन्त की शरणागति । प्रभु का छोह । अति-सुधासरिस चरित : दो. २.१ तक । पृ० ७३२ से ।

प्रभु अत्रि भेंट प्रसंग : मुनियों से विदा । अत्रि के आश्रम में आगमन सत्कार । पूजा स्तुति । स्तुति की फलश्रुति । धनसूया सीता मिलन । दिव्य वसन भूषण उपहार । नारि धर्म उपदेश । दूसरे वन में जाने के लिए अत्रि की अनुमति । अयोध्याकाण्ड के रामचरित की फलश्रुति । विदाई : सो. ६.१ तक । पृ० ७४१ से ।

विराध वध प्रसंग : राम लक्ष्मण के बीच में सीता की शोभा । प्रकृति की अनुकूलता । विराध वध में प्रभु की पण्डिताई । विराध की गति : सो १७ तक । पृ० ७५९ से ।

शरभग देहत्याग प्रसंग : शरभङ्ग के यहाँ आगमन । शरभङ्ग का वधन । शर रचना करके मुनि का बैठना । हृदय में वास के लिए वरदान । योगाग्नि से शरीर त्याग । शरभङ्ग की गति । मही को निश्चिन्त हीन करने की प्रतिज्ञा । सब मुनियों के आश्रमों में जाकर सुख देना : दो ९ तक । पृ० ७६१ से ।

सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसंग : प्रभु का आगमन सुनकर मुनि का अतिशय प्रेम । समाधि । प्रभु का जगाना । मुनि से भेंट । आश्रम में लाकर पूजा । स्तुति । प्रभु की रुचि अनुसार वरदान । मुनि की रुचि अनुसार वरदान । मुनि के साथ प्रभु का आगस्त्याश्रम के लिए प्रस्थान : दो. ५.४ तक । पृ० ७६६ से ।

प्रभुअगस्त्य सत्संग : पंथ में भक्ति-कथन । सुतीक्ष्ण का आकर गुरु को संवाद देना । अगस्त्य जी का दौड़ना । अगस्त्य जी से भेंट । कुशल प्रश्न पूजा । मुनिसमूह में शोभा । मुनिद्वोही वध का मन्त्र पूछना । मुनि की स्तुति । वरदान माँगना : दो. १२ : १३ तक । पृ० ७८१ से ।

दण्डक वन की पावनता : पञ्चवटी की मनोहरता का वर्णन । मुनि के लिए शापहरणपूर्वक दण्डक वन को पवित्र करने की प्रार्थना । वही वास करने की अनुमति । मुनि की आज्ञा पाकर रामजी का दण्डक वन प्रवेश : दो. १२ : १८ । पृ० ७८८ से ।

गीध मैत्री प्रसंग : गीधराज से भेंट । प्रीति की वृद्धि : दो. १३ । पृ० ७८९ से ।

पञ्चवटी निवास मुनि त्रास भञ्जन प्रसंग : गोदावरी के निकट पणं गृह बनाकर वास । मुनियों का वीतत्रास होना । वन वर्णन । प्रकृति के सौन्दर्य की अभिवृद्धि . दो. ७.४ । पृ० ७८९ से ।

लक्ष्मणीपदेश प्रसंग : रामगीता : लक्ष्मण जी के तीन प्रश्न : राम के द्वारा मायानिरूपण ज्ञाननिरूपण परमवैराग्य निरूपण ईश्वरजीव भेद-निरूपण । ज्ञान-दीप का बीज । भक्ति से भगवान् का शोध द्रवीभूत होना । भक्ति की सुकरता । स्वतन्त्रता । ज्ञान विज्ञान

उसके अधीन सत्सङ्ग से अनुपम सुखमूल
भक्ति की प्राप्ति • भक्तिचिन्तामणि बीज
पृ० ७९१ से ।

**भक्तियोग : साधना • विप्र चरण प्रीति तथा
स्वधर्माचरण ।** उससे विषय विराग ।
तब भगवद्धर्म में अनुराग । श्रवणादिक
भक्ति की दृढता । भगवत् लीला में
रति । सन्त चरण में प्रेम । मन क्रम
वचन से भजन । लक्ष्मण को सुख प्राप्ति ।
प्रणाम । विराग, ज्ञान, गुण और नीति
विषयक उपदेशों में समय बिताना
दो १० २ तक । पृ० ८१५ से ।

**सूर्पणखा विरूपकरण प्रसंग • सूर्पणखा
का पञ्चवटी में आगमन ।** दोनों माइयो
पर मोहित होना । प्रेम प्रस्ताव । प्रभु
का उसे लक्ष्मण के पास भेजना । लक्ष्मण
का उसे समझाकर फिर प्रभु के पास
लौटाना । रामजी का फिर उसे लक्ष्मण
के पास भेजना । लक्ष्मण द्वारा तिरस्कार ।
सूर्पणखा का प्रभु के पास आकर भयङ्कर
रूप प्रकट करना । रामजी के इङ्गित
पर लक्ष्मण द्वारा श्रवण नासिका छेदन
११.१ । पृ० ८२९ से ।

**खरदूषणवध प्रसंग : सूर्पणखा द्वारा
खरदूषण को धिक्कार ।** खरदूषण का
ससैन्य प्रस्थान । लक्ष्मण का सीता को
राम की आज्ञा से गिरि कन्दरा में ले
जाना । राम की युद्ध के लिए तैयारी ।
बगमेल आगमन । खरदूषण का दूत
भेजना । रामजी का उत्तर । धावा ।
घनुपटङ्कार । युद्ध में तीन धावा । प्रभु
की पण्डिताई । सबका वध । देवों द्वारा
पुष्पवर्षा । स्तुति । लक्ष्मण का सीता को
लाना । प्रभु का सुर मुनि सुखदायक
चरित दो १४ ४ । पृ० ८३५ से ।

दशानन समाचार प्रसंग • खरदूषण का

शव देखकर सूर्पणखा का रावण के यहाँ
जाना । विलाप करते हुए समा में गिर
पडना । दशानन के पूछने पर निज
दोष गोपन पूर्वक सब वृत्तान्त कहना ।
रावण का सान्त्वना देना । रावण का
रात्रि में विचार । दृढ मन्त्र । एकाकी
रथ पर चढ़कर मारीच के पास जाना
दो. १६.७ । पृ० ८५० से ।

**रामजी की युक्ति : लक्ष्मण का कन्द मूल
फल लेने वन जाना ।** रामजी का
सीताजी से अपना विचार प्रकट करना ।
अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखकर सीताजी का
अग्नि प्रवेश . दो. १७.५ । पृ० ८५७ से ।

दशकन्धर मारीच दत्तकही प्रसंग :
दशकन्धर का मारीच के यहाँ जाना ।
प्रणाम करना । पूजा करके मारीच का
वृत्तान्त पूछना । रावण का कहना तथा
कपटमृग बनकर सीताहरण में सहायक
होने के लिए अनुरोध । मारीच का
समझाना । रावण का क्रोध । मारीच
निश्चय । रावण के साथ चलना ।
मारीच का मनोरथ । राम वन के निकट
मारीच का हेममृग रूप धारण :
दो २०.१ । पृ० ८५९ से ।

**मायासीता हरण प्रसंग : सीता का
मृग देखना ।** रामचन्द्र से मृगछाला के
सीता की प्रार्थना । लक्ष्मण का पहरा ।
रामचन्द्र का मृग वध के लिए प्रस्थान ।
पीछा करना । मृग का कपट । मृग
वध । रामचन्द्र के स्वर से मृग का
लक्ष्मण को पुकारना । मारीच की गति ।
प्रभु का लौटना । आर्त्तगिरा सुनकर
लक्ष्मण को जाने के लिए सीता का
आदेश । लक्ष्मण का समझाना । सीता
का क्रोध । लक्ष्मणजी का प्रस्थान ।
दशानन का यति के वेष में आगमन ।

विषयानुक्रमिका

राजनीति भय प्रीति दिखलाना । सीता का सन्देह । रावण का निजरूप प्रकाश-पूर्वक अपना नाम ख्यापन । सीताहरण । सीता विलाप । जटायु रावण युद्ध । जटायु का पक्षच्छेदन । रावण का पुनः सीता को ले चलना । सीता का हरिनामोच्चारण पूर्वक बन्दरों में पट गिराना । रावण का सीता को अशोकवन में रखना । सीता का रामछवि हृदय धारण पूर्वक नाम रटना : दो २३ तक । पृ० ८६६ से ।

रघुवीरविरहवर्णन प्रसंग : लक्ष्मण को आते देखकर राम की बाह्य चिन्ता । आश्रम पर जाना । विलाप । लक्ष्मण का समझाना । सीता की खोज में लतातरु पाती से पूछते चलना । सीताजी का नखशिख वर्णन दो. २३ १७ । पृ० ८८० से ।

गीधक्रिया प्रसङ्ग : गीध को पडा हुआ देखकर उसके सिर पर हाथ रखना । गीध का सब वृत्तान्त सुनना । राम जटायु सवाद । गीध की गति । गीध वृत्त राम की हरिरूप से स्तुति । अविरल भक्ति माँगकर हरिधाम प्रस्थान । रामचन्द्र द्वारा गीध क्रिया : दो. २६.३ तक । पृ० ८८४ से ।

कवन्ध वध तथा शबरी गति प्रसङ्ग : सीता को खोजते हुए चलना । वन-वर्णन । कवन्ध वध । गन्धर्व रूप कवन्ध द्वारा स्वात्मकथा निवेदन । रामचन्द्र द्वारा ब्राह्मणमहिमा कथन । मागवद्धर्म-उपदेश । स्वकीय गतिप्राप्ति । शबरी के

यहाँ रामजी का जाना । शबरी का सत्कार पूजा स्तुति नवधा भक्ति जिसमें सबका अधिकार है का उपदेश । जनकसुता की सुधि पूछना । शबरी की भविष्यद् बाणी । शबरी का योगान्ति से देह त्याग । मुक्ति दो. ३० तक । पृ० ८९२ से ।

सरोवर तीर गमन प्रसंग : विरही की भाँति विपाद करने चलना । वामसेना के व्याज से वसन्त वर्णन । सरोवर वर्णन । मज्जन । तरु छाया में परम प्रसन्न होकर बैठना दो. ४०.२ तक । पृ० ९०५ से ।

प्रभुनारद सवाद : देव मुनियों का आगमन और स्तुति । नारदजी का आना । नारद का स्वागत । नारद की विनती । राम नाम का सब नामों से अधिक श्रेष्ठ होने का वरदान । विवाह न होने देने का कारण पूछना । रामजी का उत्तर । भक्त शिशु बालक । शानी प्रौढ तनय । अतः भक्त की विशेष रखवारी । मोह की सेना में नारी का अति दारुण दुःखद होना । नारि में छवो ऋतु । नारी निविडान्धकारमयी रात्रि । बुद्धि बल शील सत्य मछलियों के लिए नारी वशी । अवगुणमूल शूल प्रद सब दुःख खानि प्रमदा । अतः निवारण करना । नारदजी का सन्त लक्षण पूछना । प्रभु का उत्तर । नारद का ब्रह्मलोक प्रस्थान । फलश्रुति । ग्रन्थकृता का मन को उपदेश : दो ४० तक । पृ० ९१६ से ।

तुम्हरोहि भरोस महेश हमे तुमही मम जीवन के रखवारे ।
तजि देह सकौ न सकौ तज तोहि तुही विजयानंद प्रान पियारे ॥
मन मे न धरौ कछु हानि गलानि करे हम सोइ जोइ निरधारे ।
यह प्रेम को नेम न टारे टरे हम भक्तन के अरु भक्त हमारे ॥

—विजयानन्द त्रिपाठी



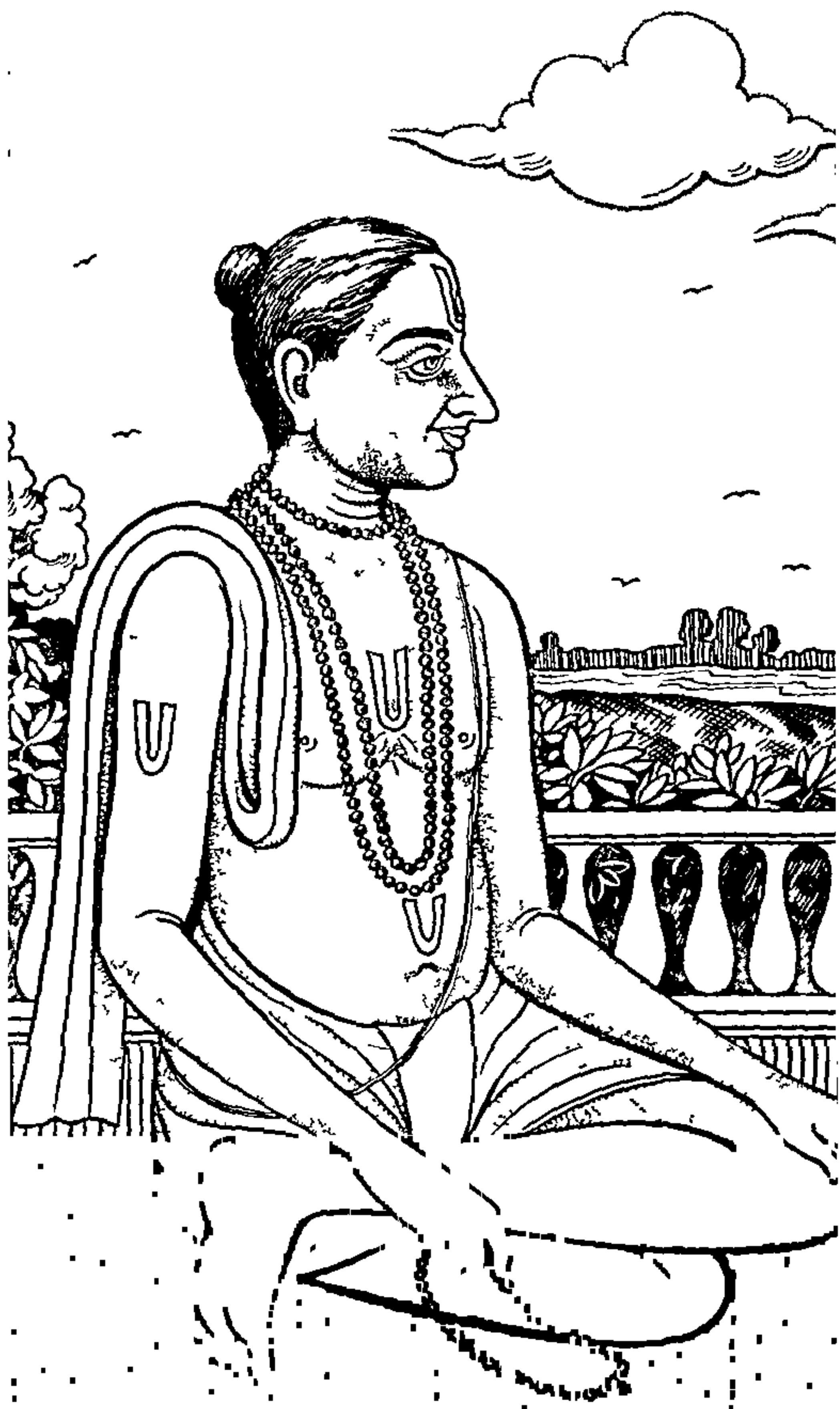
मानसराजहंस प० श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी



मानमराजहम श्रीविजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख गिष्य
डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी

श्रीरामचरितमानस

विजया टीका



श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरुवे नमः

श्रीरामचरितमानस

अयोध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. यस्यांके^१ च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले वालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु मां ॥१॥

अर्थ : जिनकी गोद में पार्वतीजी, मस्तक पर गङ्गाजी, ललाट पर वालचन्द्र, गले में विष और जिनके वक्षस्थल पर सर्पराज विराजमान है । वे यही भूतिविभूषण, देवताओं में श्रेष्ठ, सदा सबके स्वामी, संहारकर्ता, सबमें व्याप्त, चन्द्रमा के समान प्रकाशित श्रीशङ्कर शिवजी मेरी रक्षा करें ।

व्याख्या : पार्वतीजी स्वयं प्रकाशमान हैं । पर शङ्करजी के अङ्क में विशेष रूप से प्रकाशमान हुईं । अतः विभाति कहा । यही क्रिया अन्य कर्त्ताओं के साथ लगेगी । गङ्गाजी भी प्रकाशमान हैं । पर शङ्कर भगवान् के सिर पर विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं । उमा गङ्गा दोनों शिवजी की शक्तियाँ हैं । महिम मुपचद चकोरी होकर उत्कर्ष को प्राप्त हैं । यही बात वालविधु की भी है : यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते । विष भी सुन्दर प्रकाशवाला हो जाता है । अमृत का फल देने लगता है : कालकूट फल दोन्ह अमौके । व्यालराट् भी अधिक उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं । गरुड़ से भी निर्भय हो जाते हैं । आभूषण की भाँति गुणोभित होते हैं । यथा :

१ यह शार्ङ्गविग्रहित छन्द है । इसमें १९ अक्षरों का एक पाद होता है । बारह अक्षरों पर मति होती है । इसमें एक मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, दो सगण और अन्त में एक गुण होता है ।

भुजगभूति भूपन त्रिपुरारी । सोयम् से प्रसिद्धि कही । विभूति का भी महान् उत्कर्ष हो जाता है । वह श्मशान की अमङ्गल अपावन विभूति महामङ्गलमय और पवित्र हो जाती है । यथा भव अग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी । शिवजी देवाधिदेव महादेव हैं । इसलिए सुरवर कहा । ईश्वर हैं । इसलिए सदा सर्वाधिप कहा । अखण्ड ऐश्वर्य द्योतित किया । सहारकर्ता भी ये ही हैं । इसलिए शर्व कहा । ब्रह्मरूप होने से सर्वगत कहा । प्रलयकाल में भूतमात्र इन्हीं में शयन करते हैं । इसीलिए शिव कहा । परम आह्लादकारिणी मूर्ति है । इसलिए शशिनिभ कहा अथवा ज्योतिर्मय होने से शशिनिभ कहा । ऐसे श्रीयुक्त शङ्कर से कवि अपनी रक्षा चाहते हैं । यहाँ श्री का अर्थ उमा है । क्योंकि वही शङ्कर की लक्ष्मी हैं । ओमा उमा । उ शङ्कर को कहते हैं । उनकी लक्ष्मी का नाम उमा है ।

इसी वर्णन द्वारा शिवजी के अखिल रसामृतमूर्ति होने का वर्णन किया । विभाति भूधरसुता से शृङ्गार कहा । देवापगा मस्तके से हास्य कहा । कैसी ही प्रिय स्त्री हो पर उसे कोई सिर पर चढ़ाये नहीं फिरता । भाल बालविधु से अद्भुत रस कहा । चन्द्रमा आकाश में रहते हैं किसी के सिरपर नहीं रहते । गल च गरल से करुण रस कहा । यथा जरत सकल सुरवृद विषम गरल जेहि पान किय । उरसि व्यालराट् से भयानक रस कहा । भूतिविभूषण से बीभत्स रस कहा । श्मशान की विभूति बीभत्स है । सर्वाधिप से वीर रस कहा । क्योंकि वीरभोग्या वसुन्धरा है । शर्व से रौद्र रस और सर्वगत से शान्त रस कहा ।

इसी वर्णन से शिवजी में विरुद्धधर्माश्रयत्व भी दिखलाया । स्थावर विष गल म जगम विष सर्पराट् छाती पर और अमृताशु चन्द्रमा मस्तक पर । इस भाँति विष और अमृत दाना का आश्रय कहा । एक स्त्री गोद में एक सिर पर है और आप भूतिविभूषण है । यह भी सर्वथा विरुद्ध है । जो शर्व सहारक है । वही सर्वाधिप सबका पालक है । ये दोनों धर्म भी अत्यन्त विरुद्ध हैं । इनके आश्रय शङ्कर भगवान् हैं ।

श्लो प्रसन्नता^१ या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले^२ वनवासदुःखत ।

मुखावुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मजुलमङ्गलप्रदा ॥२॥

अर्थ जो राज्याभिषेक से प्रसन्नता को न प्राप्त हुई और वनवास के दुःख से मलिन न हुई वह श्रीरघुनन्दन के मुखकमल की श्री शोभा सदा मेरे लिए सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हो ।

१ यह वदस्थ छन्द है । इसमें १२ अक्षरों का एक पाद होता है । इसमें क्रम से जगण तगण जगण और रगण होते हैं ।

२ सुप लुक मुपा तिडा वा विपर्ययश्चात्र बहुल स्युः । प्राकृत में तिङ् का विपर्यय हो जाता है । अतः मम्लौ न लिखकर मम्ले लिखा यह ग्रन्थ ही प्राकृत में लिखा गया है । यथा प्राकृत कवि परम सयाने । भाषा जिन हरि चरित वखाने ।

व्याख्या मानुष-आनन्द की पराकाष्ठा राज्यप्राप्ति मानी जाती है। लोक में प्रसिद्ध है • हरखे सकल पाइ जनु राजू और दुख की पराकाष्ठा वन में भेजा जाना है। वन के स्मरण से धीरो की धैर्यच्युति होती है। यथा डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। सो जिसे राज्याभिषेक के समाचार से कोई हर्ष नहीं हुआ। यथा जनमे एक सग सग भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। करन वेध उपवीत विवाहू। सग सग सग भयउ उछाहू। विमल वस यह अनुचित एकू। बन्धु विहाइ बडेहिं अभिषेकू। प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन के कुटिलाई। इसी भाँति वनवास के समाचार से विपाद नहीं हुआ। यथा मुगु प्रसन्न चित्त चौगुन चारु। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ। हृदगत भावो की प्रकाशक मुखश्री है। यह सुख समाचार से मिल उठती है। और दुख के समाचार से म्लान हो जाती है। पर रघुनन्दन के मुखकमल की श्री इतने बड़े सुख दुख के समाचार पर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न मलिन हुई। उमका दोनों अवस्थाओं में एकरस रहना आभ्यन्तर आनन्द का सूचक है। यथा मन मुमुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू। उस श्री का ध्यान विघ्न विध्वंसक है। इसलिए कवि कहते हैं कि वह श्री मुझे सदा सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हो। क्योंकि सरकार की मुखाम्बुजश्री से ही सब सश्रीव हैं।

श्लो 'नीलाम्बुजश्यामलकोमलाग सीतासमारोपितवामभागम्।

पाणौ महासायकचारुचाप नमामि राम रघुवशनाथम् ॥३॥

अर्थ नील कमल की भाँति जिसके अङ्ग श्यामरु और कोमल हैं। सीताजी जिमके वाम भाग में सुशोभित हैं। दोनों हाथों में जिमके बड़े प्रभावशाली बाण और सुन्दर धनुष है। उन रघुवशनाथ रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या शृङ्गाररस का वर्ण ही श्याम है। श्याम और कोमल होने से ही श्रीअङ्गों की उपमा नील कमल से दी गई। सीतासमारोपितवामभाग से श्रीसीताजी को अङ्कारूढ कहा। इससे शृङ्गार वर्णन किया। यथा राज भवन सुख विलसत सिय संग राम। विपिन चरयो तजि राज सुविधि बड वाम। महासायकचारुचाप से वीररस कहा। यहाँ महासायक से अभिप्राय चण्डशर से है। यथा लव निमेष परमान जुग वर्ष कल्प सर चड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड। सीतासमारोपितवामभाग से आधेय की आधार से अल्पता वही। माया ब्रह्म के एक देश में रहती है। श्याम वर्ण से प्रभु का इन्द्रियातीत होना द्योतित किया। यथा श्याम वर्ण सुचि प्रकट लखावत दृग त पार रहेया। सीता समारोपितवामभाग से माया का अधिष्ठान होना भी द्योतित किया। महासायकचारुचाप से महाबाल-

१ यह इन्द्रवज्रा छंद है। इसमें ग्यारह अक्षरों का एक पाद होता है। इसमें क्रम से दो तगण, एक जगण और अंत में दो गुरु होते हैं।

काल होना भी रहा । रघु धातु से रघु शब्द बना है । रघु का अर्थ है जीव । अतः रघुवंगनाथ कहकर साक्षात् ब्रह्म रूप कहा ।

अयोध्याकाण्ड

सप्त मोक्षपुरी रूपी सातों काण्डों में अयोध्याकाण्ड मथुरापुरी है । श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्दवन्द जिस भाँति मथुरा गये और समस्त गोपीबाल को विरहावस्था का अनुभव करना पड़ा । इसी भाँति सरकार भी इस काण्ड में श्रीअयोध्याजी से चित्रकूट पधारे और समस्त अयोध्यावासियों को विरहज्वाल से सन्तप्त होना पड़ा । यथा सहि न मके रघुवर विरहागी । चल लोग सब व्याकुल भागी । इसलिए इस काण्ड को मथुरापुरी कहा गया । यथा

वालकाण्ड है^१ अवध, अवध मथुरा मन भावन ।
हरद्वार आरण्य काशिका किष्किन्वा मन ॥
वाची सुन्दर लसत लक उज्जैन सुहावन ।
उत्तर द्वारावती पुरी सातो अति पावन ॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो राम चरित्र सर ।
विजयानद सेवत सुलभ सब सुखकर सब पापहर ॥

अन्त के श्लोकानुसार यह काण्ड पापहर है । सातों काण्डों की संक्षेप में फलश्रुति ग्रन्थ के अन्त में दी गई है । यथा १ पुण्य २ पापहर ३ सदा शिवकर ४ वैराग्यभक्तिप्रद । ५ मायामोहमलापह ६ सुविमल ७ प्रमाम्बुपूर शुभम् । अयोध्या के अन्त में भी कहा है पापपुज कुजर मृगराजू । समन सोव सताप समाजू ।

दो श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि ।

वरनउँ रघुवर विमल जसु, जो दायकु फल चारि ॥

अर्थ श्रीगुरुजी के चरणकमला की धूलि से अपने मनरुपी दर्पणका सुधारकर श्रीरघुवर के विमल यश का वर्णन करता हूँ जो चारा फला को देनेवाला है । रघुवर शब्द से यहाँ रामजी और भरतजी का ग्रहण है । दोनों के चरित्र पृथक् पृथक् १५६ दोहों में वर्णित हैं ।

व्याख्या गुरु पद मजुल रज अजन । नयन अमिय दृग दोष विभजन । तेहि करि विमल त्रिवेक विलोचन । वरनौ रामचरित भव मोचन । लिखने से मालूम होता है कि बालकाण्ड लिखने के आरम्भ में विवररूपी नेत्र को सुधारा । अब मनमुकुर को सुधारते हैं । बालकाण्ड में रामचरित कहना था । इसमें भरत चरित कहना है और भरत महामहिमा सुनु रानी । जानहि राम न मरहि बखानी । उस महामहिमा के वर्णन में जहाँ रुख देखकर काम किया जाता है समझने के

१ बालकाण्ड को अवध कहने का यथेष्ट कारण स्पष्ट है । क्योंकि श्री रामावतार तथा बाललीला अवध में ही हुई ।

लिए मनमुकुर के अत्यन्त शुद्ध करने की आवश्यकता है। बिना शुद्ध हुए उसमें ठीक-ठीक सूक्ष्मभाव प्रतिफलित न होगा। अतः यहाँ मनमुकुर सुधारा जा रहा है। जिस भाँति दर्पण धूलि से सुधारा जाता है, उसी भाँति मनरूपी दर्पण गुरुपदधूलि से सुधारा जाता है। पूर्वकाल में लोहे के दर्पण बनते थे और उसमें मुख का प्रतिबिम्ब उसी भाँति पड़ता था जिस भाँति तलवार में पड़ता है। इसलिए उसे धूलि से बराबर, रगड़ना पड़ता था। दर्पण का उपयोग प्रतिबिम्ब दर्शन में ही होता है। जितना ही मनमुकुर शुद्ध होगा, उतना ही दूसरों के मनोगत भाव ठीक-ठीक उसमें प्रतिफलित होंगे। इस बमल की पुरइल है : जन मन भजु मुकुरुमल हरनी। मुकुर के वर्णन से ही यह काण्ड प्रारम्भ होता है। यथा : राँय सुभाँय मुकुरु कर लीन्हा। अतः कवि ने भी मनमुकुर को सुधारना आवश्यक समझा।

धर्म, ज्ञान, योग और जप चारों फलों की सिद्धि के लिए किये जाते हैं। सो इनका साधन कालकाल में अत्यन्त कठिन है। अतः रघुवर यश ही इस काल में चारों फल (धर्मार्थिकाम और मोक्ष) दे सकता है। यथा : कठिन कालमल कोस धर्म न ज्ञान न जोग जप । परिहरि सगल भरोस रामहि भजहि ते चतुर नर ।

९. रामाभिषेक प्रसङ्ग

जब तं राम व्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बधाए ॥
भुवन चारिदस भूधर भारी । सुकृत मेघ वरपहि सुख बारी ॥१॥

अर्थ • जब से रामजी विवाह करके घर आये, तब से नित्य नये मङ्गल और मोद के बधावे होने लगे। चौदह भुवनरूपी भारी पर्वतो पर पुण्य मेघ सुख के जल को बरसाने लगे।

व्याख्या • यह अर्धाली वालकाण्ड के दाब की है। आए व्याहि रामु घर जब ते। वैसे अनद अवध सब तब तें से लेकर जब ते राम व्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए तक पहिली सोढी सोपान का दाब है। सुरपुर को आनन्द मङ्गल ने छोड़ दिया है। वहाँ की व्यवस्था यह है : सुरपुर नितहि परावन होई। मङ्गल उपस्थित होने से मोद होता है और मोद होने से बधावा बजता है। प्रभु विआह जस भयउ उछाहू। सकहि बन रनि गिरा अहिनाहू। सो वह उछाह वही समाप्त नहीं हो गया। नित्य अवध में हो रहा है।

जा दिन ते हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख सपति छाए। भगवान् के गर्भ में आने से ही सुख सम्पत्ति बरसानेवाले मेघ सब लोको में छा गये थे। पर वर्षा अब हो रही है। मेघ जल बरसाते हैं। पर सुकृतमेघ सुखरूपी जल को बरसाते हैं।

१ इस दाब के अन्तर्गत बारह पत्तियाँ हैं। इससे दिखलाया कि व्याह करके घर आने पर बारह वर्ष बड़े आनन्द से बीते। यथा : राज भवन सुख बेलसत, शिय सग राम।

—वरवै रा

सुकृत मेघ से अवधवासियो का घर्म-मेघ समाधि कहा । सञ्चित समुद्र से जल लेकर बरसाने आये हैं । अतः मेघ से उपमा दी । पर्वत पर सदा पानी बरसा करता है इसलिए चौदहो भुवन की पर्वतो से उपमा दी । जल बहुत गिरा । इससे नदी में बाढ़ आगयी । गङ्गाजी ने समुद्र को भरा । पर उनकी साथी दो और बड़ी नदियाँ हैं यमुना और सरस्वती । यहाँ भी तीन नदी कहेंगे : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति ।

रिधि सिधि संपत्ति नदी सुहाई । उमगि अवध अबुधि कहूँ आई ॥

मणिगन पुर नर नारि सुजाती । सुचि अमोल सुदर सब भाँती ॥

अर्थ ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति रूपी नदियाँ उमगकर अवधरूपी समुद्र की ओर दौड़ी । नगर के स्त्री-पुरुष ही मणिगण हैं । जो सुजाति, पवित्र, अमूल्य और सब भाँति से सुन्दर हैं ।

व्याख्या ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्तिरूपी नदी पहिले से ही अवध समुद्र में गिरती थी । पर अब चौदह भुवनरूपी पर्वतो पर पुण्यमेघ की अधिक वर्षा होने पर उनमें बाढ़ आगयी और वे बड़े वेग से अवधसमुद्र की ओर दौड़ी । अवध में घाटा कोई नहीं था । समुद्र में स्वयं अगाध जल भरा है । उसे जल की कमी नहीं है । पर नदी को दूसरी गति नहीं है । यथा जिमि सरिता सागर में जाही । जद्यपि ताहि कामना नाही ।

समुद्र में तो मणिगण रहते हैं । उसका नाम ही रत्नावर है । सो अवधसमुद्र में पुरनरनारि ही मणिगण हैं । मणि में जाति होती है । पवित्रता होती है । बहुमूल्यता तथा सुन्दरता होती है । सो अवध नर-नारी भी सुजाति, शुचि, अमोल और सब भाँति से सुन्दर हैं । वे देवताओं से भी भल हैं । क्योंकि देवता लोग सदा स्वार्थी होते हैं । यथा आए देव सदा स्वार्थी । मणि यद्यपि जल में है । पर जल का उसमें प्रवेश नहीं । इस भाँति पुरजन सुख सम्पत्ति में डूबे हुए हैं । फिर भी निर्लेप हैं ।

कहि न जाइ कछु नगर विभूती । जनु यतनिअ विरचि करतूती ॥

सब विधि सब पुरलोग' सुखारी । रामचद मुख चदु निहारी ॥३॥

अर्थ नगर का वैभव कुछ कहत नहीं बनता । मानो ब्रह्मदेव की करतूति ही इतनी है । श्रीरामजी के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि से सब पुर लोग सुखी हैं ।

व्याख्या नगर का वैभव कवि से कहत नहीं बनता और देवताओं से देखते नहीं बनता । यथा देखि न सकहि पराई विभूती । दो ही स्थान ऐसे हैं जहाँ की विभूति नहीं कही जा सकती । एक अयोध्या की और दूसरी लङ्का की । यथा : गिरि पर चढि लका तेहि देखी । कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी । अति उत्तम जल-निधि चहुँ पासा । बनककोट कर परम प्रकासा । लङ्का विधि निर्मित दुर्गम अति भारी है और अयोध्या जनु एतनिअ विरचि करतूती है ।

अयोध्या में अर्थ काम इतना है पर उससे लोग सब विधि सुखारी नहीं । रामचन्द्र के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि से सुखारी हैं । दूर से दर्शन करते हैं । इस भाँति चन्द्र दर्शन भी दूर से ही होता है । सीताजी अन्त पुर में हैं । अतः उनके लिए नहीं कहते । लङ्का के लोग भी सुखी हैं । यथा सुखी सकल रजनीचर कोन्हे । पर सब विधि सुखी नहीं । क्योंकि वहाँ देखने के लिए रामचन्द्र मुखचन्द्र नहीं है ।

मुदित मातु सब सखी सहेली । फलित विलोकि मनोरथ वेली ॥

राम रूप गुण शील सुभाऊ । प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥४॥

अर्थ माताएँ और सब सखी सहेली अपनी मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं । रामजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देखकर और सुनकर राजा आनन्दित होते हैं ।

व्याख्या पहिले पुरजन का हाल कहकर अब अन्त पुर की चर्चा करते हैं । वहाँ माताएँ और सखी सहेलियाँ अपना मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं । यहाँ मनोरथ वेलि से सीताजी अभिप्रेत हैं । यथा पुरजन सचिव राज रानी सब सबक सखा सहेली । लैहें लोचन लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ वेली । माता सखी सहेली आदि सीताजी को निकट से देखती हैं । अतः मनोरथ वेली से उपमित किया । अब अन्त में महाराज का हाल कहते हैं ।

राजा चारचक्षु होते हैं । उन्हें अपनी आँखों का भरोसा नहीं होता । क्योंकि उनके सामने ता सत्र भल हो रहते हैं । अतः उन्हें चारा से सच्ची वाता का पता चलता है । यथा चारै पश्यन्ति राजान । अतः रामजी का रूप, गुण, शील और स्वभाव स्वयं देखकर और चारों से सुनकर परम प्रसन्न होते हैं । स्वयं देखकर यथा आयसु मागि करहि पुर काजा । देखि चरित हरखै मन राजा । और सुनकर गुरुजी से कहते हैं कि सेवक सचिव सकल पुरवासी । जे हमरे अरि मित्र उदासी । सबहि राम प्रिय जेहि विधि मोही । प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही । रामजी का रूप, गुण, शील, और स्वभाव सभी लोकोत्तर हैं ।

१ रूप रूप सकहि नहि कहि श्रुति सेखा । सा जानहि सपनेहु जिन दखा ॥

२ शील को रघुवीर सरिस ससारा । सोल सनेह निवाहन हारा ॥

३ गुण जल सीकर महि रज गनि जाही । रघुपति गुन नहि वरनि सिराही ॥

४ स्वभाव अस सुभाउ कहै सुनउँ न दगउँ । केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ ॥

दो सबके उर अभिलापु अस, कहहि मनाइ महेसु ।

आपु अछत जुवराज पदु, रामहि देउ नरेसु ॥१॥

अर्थ सबके हृदय में ऐसा अभिलाष है । महेश को मनाकर कहते हैं कि अपने रहते ही युवराजपद रामजी को राजा दें ।

व्याख्या सबके हृदय में कहने का भाव यह कि पुरजन परिजन के हृदय में मन्त्रियों के हृदय में तथा महारानियों के हृदय में अभिलाषा है । पुरजन के हृदय

मे अभिलाष यथा वनव सिंहासन सीय समेता । वैठहि रामु होइ चित चेता ।
मन्त्रियो के हृदय मे यथा मन्त्री मुदित सुनत प्रिय वानी । अभिमत विरव परेउ
जनु पानी । महारानियो के हृदय मे यथा राम तिलकु जौ साँचेहु काली । देउं
भागु मन भावत आली । रामजी को युवराज पद मिल यही अभिलाषा है । पर
वृद्ध महाराज के गुणो पर भी जनता ऐसी मुग्ध है कि उनका वियोग सह्य नही
है । नियमानुसार राजगद्दी देकर स्वयं वन न जाँय । स्वयं राजा बने रहे । रामजी
को युवराज पद देकर राज्यभार उन्हें दे दें । और आप द्रष्टा रहे ।

एक समय सब सहित समाजा । राजसभा रघुराजु विराजा ॥
नृप सब रहहि कृपा अभिलाषे । लोकप करहि प्रीति रख राखे ॥१॥

अर्थ एक समय समाज के सहित राजसभा में रघुराज दशरथजी विराजमान
हुए । राजा लोग उनकी कृपा की अभिलाषा करते हैं और लोवपाल रख रखते
हुए प्रीति करते हैं ।

व्याख्या सात्त्विक को अपना भरा पूरा समाज देखकर मृत्यु का स्मरण होता
है और तामसिक को परपीडा का उत्साह होता है । दो ही सभा का वर्णन इस
ग्रन्थ में आता है । अयोध्या की सभा तथा लङ्का की सभा का । लङ्का की सभा
यथा

दसमुख बैठ सभा एक वारा । देखि अमित आपन परिवारा ॥
सुत समूह जन परिजन नाती । गनै को पार निसाचर जाती ॥
सेन विलोकि सहज अभिमानी । घोला वचन क्रोध मद सानी ॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा । हमरे वैरी विबुध बरूथा ॥
ते सनमुख नहि करहि लराई । देखि सबल रिपु जाहि पराई ॥
तिन्हवर मरन एक त्रिधि ह ई । कहहुं बुझाई सुनहु अब सोई ॥
द्विज भोजन मख होम सराधा । सबकर जाइ करहु तुम वाधा ॥
छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहि मिलिहहि आइ ।
तब मारिहौ कि छाडिहौ भलीभाँति अपनाइ ॥ इत्यादि ।

यह तो आसुरी सम्पत्तिवाल की सभा है । यहाँ करजारे सुर दिसिप विनीता ।
भृकुटि विलोकत सकल सभोता ।

अयोध्या की सभा देवीसम्पत्तिवाल महाराज दशरथ की सभा है । सभा तो
नित्य होती है । पर एकवार सभा में सब समाज सहित महाराज दशरथ विराजमान
हुए । रामजी के विवाह के बारह वर्ष बाद की बात है । उनके वर्षगांठ की सभा
है । इस सभा में सब राजा कृपा की अभिलाषा करते हुए उपस्थित हैं । लोकपाल
लोग महाराज पर प्रीति करते हैं । फिर भी रख उन्हीं का रखते हैं । क्योंकि राजा
दशरथ इन्द्र के मित्र हैं । यथा ससुर सुरेस सखा रघुराऊ । आगे होइ जेहि सुरपति
लई । अरध सिंहासन आसन देई । यहाँ निम्नकोटि में सब राजाओं की उपस्थिति

वही । और उच्चकोटि में देवों की प्रीति वही । फिर भी चक्रवर्तीजी का ही देवता लोग रख रखते हैं । यह कहकर महाराज दशरथ की साहिबी प्रताप दिखलाया ।

त्रिभुवन तीन काल जग माही । भूरि भाग दशरथ सम नाही ॥

मंगल मूल रामु सुत जामू । जो कछु कहिअ धोर सबु तासू ॥२॥

अर्थ : तीनो भुवन में और तीनो काल में दशरथजी के समान भाग्यवान् कोई नहीं । मङ्गल के मूल रामजी जिसके पुत्र हैं । उसके लिए जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है ।

व्याख्या : त्रिभुवन तीन काल से सम्पूर्ण देश और काल वहा । त्रिभुवन में मर्त्यलोक पाताललोक और स्वर्गलोक तीनो आजाने हैं और तीन काल में भूत भविष्यत् और वर्तमान आजाते हैं । इसीलिए जगमाही कहते हैं - गच्छतीति जगत् । जो परिवर्तनशील है उसे जगत् कहते हैं । अर्थात् जहाँतक परिवर्तन का साम्राज्य है । दशरथजी सा भाग्यशाली कोई नहीं । क्योंकि भाग अभाग तो रामजी के सम्मुख विमुख होने पर निर्भर है ।

पिता के पुण्य की परख तो पुत्र से होती है । पु नाम नरक का है । उससे जो पिता को तारे वही पुत्र है । इसीलिए वसिष्ठजी ने कहा 'भयउ न है नहि अव होनि-हारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा । कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बडाई तागु । राम लखन तुम सनुहन सरिस सुअन सुचि जासु । जनकपुर के दूत ने कहा : तुम्हें अधिक पुण्य बड़ काके । राजन राम सरिस सुत जाके । रामजी मंगलभवन अमंगल हारी हैं । अतः महाराज दशरथ की प्रशंसा करने में सभी असमर्थ हैं ।

राँप सुभायँ मुकुर कर लीन्हा । वदनु विलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥

खवन समीप भये सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥३॥

अर्थ : राजा ने स्वभाव से ही दर्पण हाथ में लिया और मुख देखकर मुकुट को ठीक किया । कान के पास के केश श्वेत हो चले । मानो बुढ़ाई यह उपदेश दे रही है ।

व्याख्या : सबको उर अभिलाष अस कहहि मनाइ महेसु वा साफल्य दिखलाते हैं । मुकुरावलोकन मङ्गल है । महेश की प्रेरणा हम प्रवार होती है । दरबार ठाट-वाट से लगा हुआ है । महागज को इच्छा हुई कि दर्पण में देखकर मुकुट को ठीक कर लें । बिना मुख देखे मुकुट ठीक नहीं किया जा सकता और मुकुट का संभाल राजा के जिम्मे है । इसलिए हाथ में दर्पण लिया और मुकुट को ठीक किया । पगड़ी देनेवाले भी इस बात को समझते हैं कि कुछ देर के बाद पगड़ी ठीक करने की आवश्यकता पड़ ही जाती है । खुले मिर रहनेवालों को इसका अनुभव नहीं है । इसलिए शङ्का उठाते हैं । ससार में सब कुछ क्षण परिणामी है और व्यवहार स्थिरप्राय है । शरीर में परिवर्तन हो रहा है । राजा को पता नहीं । कान के समीप के श्वेत केश के देखने से जाना कि जरा आयी । इसी बात को वक्ता दिखलाते हैं ।

दर्पण हाथ में लिया मुकुट ठीक करने के लिए और ठीक कर भी लिया । पर निगाह पड़ गयी कि कान के समीप के बाल श्वेत हो चले । ध्यान आया कि बुढ़ाई आगयी । और बुढ़ाई मृत्यु की दूतिका है । बालों का श्वेत होना अथवा मृत्यु द्वारा केश का पकड़ा जाना एक बात है । अतः उचित जान पड़ा कि अपने वाद की व्यवस्था पहिले ही करनी चाहिए । इसी बात को आलङ्कारिक भाषा में कवि कहते हैं कि मानो कान में लगकर बुढ़ाई ने उपदेश दिया कि .

नृप जुवराजु राम कहँ देह । जीवन जनम लाहु किन लेह ॥४॥

दो. यह बिचार उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसर पाइ ।

प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहि सुनायेउ जाइ ॥२॥

अर्थ . राजा । युवराज पद रामजी को देकर जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं ले लेते ? ऐसा विचार मनमें लाकर और सुदिन तथा सुअवसर पाकर प्रेम से पुलकित तन और प्रसन्नमन होकर गुरुजी को जाकर सुनाया ।

व्याख्या मानो वृद्धावस्था उपदेश दे रही है कि प्रजा का भार धुरन्धर पुत्र को सौंपो । अब तुम सिंहासन पर बैठकर दर्पण क्या देख रहे हो । मृत्यु सन्निकट है । श्रीरामजी की अवस्था अब सिंहासनारूढ होकर मुकुट धारण करने की है । राजा के जीवन और जन्म का लाभ प्रजा की रक्षा में है । सा धुरन्धर पुत्र को सौंपकर ही प्राप्त हो सकता है । अथवा जन्म का लाभ सिंहासनारूढ पुत्रमुखदर्शन से है । यथा : राम वाम दिसि सोहति रमा रूप गुन खानि । देखि मातु सब हरखी जनम सफल निज जानि । और जीवन का लाभ रामप्रीत्यर्थ त्याग से है । यथा जीवन लाहु लखन भल पावा । सब तजि राम चरन मन लावा ।

सुदिन अर्थात् शुभ मुहूर्त । गुरुजी से कहने के लिए सुदिन चाहिए सो वह दिन भी शुभ था और सुअवसर वही है जब गुरुजी एकाग्र आसीन हो । पुलकि से तन मुदित से मन और गुरुहि सुनायो जाय से वचन द्वारा प्रेम प्रकाश कहा । महाराज सब काम गुरुजी से पूछकर करते हैं । रघुवश में गुरु ही शरण है । महाराज को जब पुत्र की इच्छा हुई गुरुजी के ही पास गये । यथा . एकबार भूपति मन माँही । भै गलानि मोरे सुत नाही । गुरु गृह गये तुरत महिपाला । पुत्र का व्याह करना है तो : तब उठि भूप वमिष्ठ कहँ दीन्हि पत्रिका जाइ । अब पुत्र को राज्य देना है तो प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुराह सुनायेउ जाइ ।

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक । भये रामु सब विधि सब लायक ॥

सेवक सचिव सकल पुरवासी । जे' हमरे अरि मित्र उदासी ॥१॥

अर्थ राजा ने कहा हे मुनिराज । सुनिये । रामजी सब विधि से सब लायक योग्य हो गये । सेवक, मन्त्री, सब प्रजा और जो हमारे शत्रु, मित्र और उदासीन हैं ।

। व्याख्या : भूपाल शब्द के पकार का लोप होकर उसका तद्भव रूप भुपाल बना । भाव यह कि महाराज पृथ्वी के पालन करनेवाले हैं । उन्हें पृथ्वीपालन की चिन्ता है । अतः मुनिनायक के सामने अपना विचारा हुआ प्रस्ताव रखते हैं कि बेटे तो चारों लायक हैं । पर रामजी सब विधि से सब लायक हैं । धुरन्धर हैं । सब राज कार्य सँभाल लेंगे । सब लायक शब्द से सर्वशक्तिमत्ता द्योतित होती है । यथा : पुनि मन वचन कर्म रघुनायक । चरन कमल बंदों सब लायक ।

रामजी की सर्वप्रियता कहते हैं । क्योंकि यही राजा के सब लायक होने का अव्यभिचरित लक्षण है । सेवक सचिव सकल पुरवासी से अपने राज्य भर के लोगों का ग्रहण करते हैं और अरि मित्र उदासी कहकर जीवमात्र का ग्रहण करते हैं । यथा : जीव जन्तु अस को जग मांही । जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नांही ।

सबहि रामु प्रिय जेहि विधि मोही । प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥
विप्र सहित परिवार गोसाईं । करहि छोहु सब रौरिहि नाई ॥२॥

अर्थ : सबको रामजी वैसे ही प्यारे हैं जैसे मुझे प्यारे है । मानो प्रभु का आशीर्वाद शरीरधारी होकर शोभायमान है । सपरिवार ब्राह्मण लोग हे गोस्वामिन् उनपर वैसा ही छोह करते हैं जैसा कि आप करते हैं ।

व्याख्या : राजा को रामजी वैसे ही प्रिय हैं जैसे मछलो को जल प्रिय होता है । यथा : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना । मम जीवन मिति तुमहि अधीना । इसी भाँति सबको प्रिय हैं । यथा : अवधि अंवु प्रिय परिजन मीना । तुम करनाकर धरम धुरीना । अस विचारि सोइ करहु उपाई । सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई । वसिष्ठजी ने आशीर्वाद दिया था : धरहु धीर होइ हहि सुत चारी । त्रिभुवन विदित भगत भय हारी । सो महाराज कहते हैं कि मानो आपका वही आशीर्वाद शरीर धारण करके रामरूप से प्रकट हुआ है ।

अब रामजी की ब्रह्मण्यता कहते हैं । उनकी भक्ति से ब्राह्मण ऐसे प्रसन्न हैं कि आपको भाँति छोह करते हैं । सहित परिवार कहने का भाव यह कि दस वर्ष का ब्राह्मण बालक भी ६० वर्ष के बूढ़े क्षत्रिय से पितृवत् पूज्य है । सो रामजी ब्राह्मणपरिवार पर भक्ति रखते हैं । अतः वे सपरिवार छोह करते हैं । यथा : जो हम निदरहि विप्र वदि सत्य सुनहु भृगुनाथ । तो अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहि माय ।

जे गुर चरन रेनु सिर धरही । ते जनु सकल विभव वस करही ॥
मोहि सम यह अनुभयेउ न दूजें । सब पायेउँ रज पावनि पूजे ॥३॥

अर्थ : जो लोग गुरु चरणों की धूलि को सिर पर धारण करते हैं वे मानो सम्पूर्ण ऐश्वर्य को वश कर लेते हैं । इस बात का अनुभव मेरे ममान किसी दूसरे ने नहीं किया । मुझे तो सब कुछ पवित्र धूलि के पूजन में ही प्राप्त हुआ ।

व्याख्या : गुणों के होने से ही पात्रता आती है और पात्रता आने से

ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। यथा : पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम् । गुरुचरणरेणु को सिर पर धारण करने से सम्पूर्ण गुणगण वशीभूत हो जाते हैं। यथा : कियेँ तिलक गुणगन वस करनी । और सम्पूर्ण गुणगण के वशीभूत होने से सम्पूर्ण ऐश्वर्य की पात्रता हो जाती है और पात्रता होने से ही धनप्राप्ति होती है। यहाँ : जन मन मंजु मुकुर मल हरनी इस पद का साफल्य : श्रीगुरु चरण सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि से दिखलाकर कियेँ तिलकगुणगन वस करनी : इस पद का साफल्य महाराज दशरथ के उदाहरण से कवि दिखला रहे हैं।

महाराज कहते हैं कि इस बात का अनुभव जैसा मुझे हुआ वैसा किसी दूसरे को हुआ ही नहीं। क्योंकि मैंने सिवा गुरु चरण रेणु के सिर पर धारण करने के और किया ही क्या? बहुत दिनों तक जो तीर्थ में जाकर तपस्या करता है उसे आज्ञाकारी धर्मात्मा और बुद्धिमान् पुत्र होता है। मैंने तो केवल श्रीचरणों में अपने अपुत्र होने के कष्ट का निवेदन मात्र कर दिया। तुरन्त आशीर्वाद मिला कि धैर्य धरो। त्रिभुवन विदित भगत भयहारी पुत्र होवेंगे। सो अक्षरशः सत्य हुआ। मुझे तो सब कुछ गुरुचरणों से ही मिला।

अब अभिलाषु एकु मन मोरे । पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे ॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेह । कहेउ नरेस रजायसु देह ॥४॥

अर्थ : अब एक अभिलाषा मेरे मनमें है। वह भी हे नाथ ! आपके अनुग्रह से ही पूरी होगी। स्वाभाविक प्रेम देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। बोले राजन् ! आज्ञा दीजिये।

व्याख्या जितनी अभिलाषाएँ थी सभी श्रीचरणों के अनुग्रह से पूरी हुई। सब कुछ था। केवल पुत्र का घाटा था। सो श्रीचरणों के अनुग्रह से सब लायक पुत्र हुआ। अब एक अभिलाषा शेष है। जिन चरणों से सबकी पूर्ति हुई उन्हीं के अनुग्रह से इसकी भी पूर्ति होगी। उसी को निवेदन करने के लिए आया हूँ।

स्वाभाविकी गुरुभक्ति देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। भक्ति से स्थितप्रज्ञ महात्मा प्रसन्न हो जाते हैं। अतः अत्यन्त आदर से बोले। क्या चाहते हो न कहकर कहते हैं कि राजाज्ञा क्या है? अथवा मुनिजी त्रिकालज्ञ हैं जानते हैं कि इस अभिलाषा की पूर्ति इस समय होनी नहीं है। अतः अनुग्रहवाली बात छोड़कर कहते हैं कि राजन् ! आज्ञा दीजिये।

दो. राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार ।

फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार ॥३॥

अर्थ राजन् ! तुम्हारा नाम और यश सब मनोरथों को देनेवाला है। हे राजाओं में मणि ! तुम्हारे मनकी अभिलाषा तो फल की अनुगामिनी है।

व्याख्या यहाँ अभिलाषु पाठ है। प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में ही उच्चार आता है। अतः यहाँ पठ्ठी मानकर अभिलाष का सम्बन्ध फल के साथ नहीं

हो सकता । अर्थात् यह अर्थ नहीं हो सकता कि मनोभिलाष का फल तुम्हारा अनुगामी है । यह अर्थ होगा कि तुम्हारे मनकी अभिलाषा फल की अनुगामिनी है फल पहिले होता है । अभिलाषा तो उसके पीछे होती है । भाव यह कि सबके प्रिय होने से सबके हृदय पर तो रामजी का राज्य हो ही गया । तदनन्तर आपको अभिलाषा हुई । जिसकी पूर्ति न होनी हो वह अभिलाषा आपको हो ही नहीं सकती ।

राजन् । तुम्हारे नाम और यश के कीर्तन से लोगो के मनोरथ की पूर्ति होती है । तुम्हारा मनोरथ तो पूरा हो ही गया है । यथा दशरथ नाम सुकामतरु फलदा सकल कल्याण । धरति धाम धन धरम सुत सदगुण रूप निधान । जिसका मन ईश्वर में लगा है । उसके मनोरथ होने के पहिले ही फल हुआ रहता है । यथा ईश्वरार्पितबुद्धीना स्फुरन्त्यग्रे मनोरथा । काशी खण्ड ।

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोलेउ राउ रहसि मृदुवानी ॥
नाथ रामु करिअहि जुवराजू । कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ॥१॥

अर्थ : अपने मनमें सब भाँति गुरुजी को प्रसन्न जानकर राजा आनन्दित होकर मृदुवाणी बोले कि हे नाथ, रामजी को युवराज कीजिये । कृपा करके कहिये कि तैयारी की जाय ।

व्याख्या : गुरुजी की अमोघ कृपा देखकर राजा प्रसन्न हो उठे । इतनी कृपा है कि आज मेरे नाम और यश को सब अभिमत दातार बना दिया । वसिष्ठजी की वाणी कभी व्यर्थ हो नहीं सकती । अतः यही अवसर निवेदन करने का है । गुरुजी ने कहा है . रजायसु देह । अतः विधि रूप से ही निवेदन करते हैं कि आप रामजी को युवराज बनाइये । यदि कहा जाय कि युवराज पद देना तो राजा के अधिकार में है । यदि इच्छा है तो दे दो । इस पर कहते हैं कि आप कृपा करके तैयारी करने की आज्ञा दे दीजिये । राजा के मुख से सरस्वती बोल गयी । रामजी को राजतिलक वसिष्ठजी ही करेंगे । इस समय केवल तैयारी ही होगी ।

मोहि अछत यहु होइ उछाह । लहाहि लोग सब लोचन लाहू ॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निवाही । एह लालसा एक मन माही ॥२॥

अर्थ : मेरे रहते ही यह उछाह हो और सब लोग नेत्रों का फल पावें । प्रभु की कृपा से शिवजी ने सब निवाह दिया । अब मन में केवल एक लालसा रह गयी है ।

व्याख्या : राम राज्याभिषेक तो एक दिन होना ही है । पर मेरे रहते यह उछाह हो । यह उछाह भी मैं देख लूँ । लोगो की भी इसकी उत्कट इच्छा है । सबके उर अभिलाषा अस कहाँ मनाइ महेसु । आपु अछत जुवराजपदु रामहि देउ नरेसु । सो ये लोग भी नेत्रवान् होने के सुख का अनुभव करें । जनकपुरवासी तो राम जानकी का विवाह देखकर लोचन लाभ पा चुके । अब अवधवासी राम जानकी

का अभिप्रेक देखकर लोचन लाभ लें । यथा : कनक सिंघासन सीय समेता । वैठहि रामु होइ चित चैता ।

प्रसाद आपका और निर्वहिक शङ्कर है । आपका प्रमाद अमोघ है । शिवजी तदनुसार कार्य कर रहे हैं । इस भाँति मेरी सब कुछ निबह गयी । अब यही एक लालसा मन में रह गयी । अर्थात् इसकी पूर्ति हो जाने पर मैं आप्तकाम हो जाऊँगा । कामना शेष रहने से ही मनुष्य मरना नहीं चाहता और यदि मर भी जाता है तो वही कामना उसे फिर संसार में खींच लाती है । उसके पुनर्जन्म का कारण होती है ।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ । जेहि न होइ पाछें पछिताऊ ॥

सुनि मुनि दशरथ वचन सुहाए । मंगल मोद मूल मन भाए ॥३॥

अर्थ : फिर परवाह नहीं, चाहे शरीर रहे चाहे जाय । जिसमें पीछे से पछतावा न हो । दशरथजी के मङ्गल मोद मूल और सुहाये वचन सुनकर मुनिजी को अच्छे लगे ।

व्याख्या : फिर मैं कृतकृत्य हो जाऊँ । फिर चाहे शरीर रहे चाहे जाय । इसकी चिन्ता न रह जायगी । नहीं तो शरीरावसान के समय पछितावा रहेगा कि अपने सामने मैंने प्रजार्क्षा का भार रामजी को नहीं सौंपा । शरीर अनित्य है । इसका कुछ ठिकाना नहीं । तिसपर मृत्यु की दूतिका जरा ने केश पकड़ रखा है । अतः यह कर्त्तव्य भी पूरा होना ही चाहिए ।

दशरथजी के वचन सुहाये रहे । इसलिए मुनिजी के मन भाये । मङ्गल यथा : नाथ रामु करिअहि जुवराजू । मोद । यथा : मोहि अछत यह होहु उछाहू । दोनों का मूल है श्रीरामजी का अभिप्रेक । वसिष्ठजी स्वयं मानते हैं - सब कहँ सुखद राम अभिप्रेकू । मंगल मोद मूल मग एकू । अतः मनोनुकूल होने से वसिष्ठजी को अच्छे लगे ।

सुनु नृप जासु विमुख पछिताहो । जासु भजन बिनु जरनि न जाहो ॥

भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ॥४॥

अर्थ : मुनिजी बोले : सुनो राजा ! पछिताते तो वे हैं जो उनके विमुख होते हैं । जिसके भजन बिना जो की जलन नहीं जाती, वही स्वामी पुनीत राम तुम्हारे पुत्र हुए हैं । क्योंकि वे पुनीत प्रेम के अनुगामी हैं ।

व्याख्या : जेहि न होइ पाछें पछिताऊ का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि तुम्हें पछितावा कैसे होगा । पछितावा तो उनको होता है जो रामविमुख हैं । यथा : सो परत्र दुख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ । कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ । पछितावा होने से जलन होती है । वह जलन तो बिना रामभजन के जाती नहीं । यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय को जरनि न जाइ । अथवा : सब दुख मिटहि राम पग पेखी । सो राम, पुनीत राम, प्रेमानुगामी राम

तुम्हारे प्रेम से तुम्हारे पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए हैं। तुम्हारे लिए पछितावा की कौन सी बात है? वह राम स्वामी हैं। उनपर किसी का अधिकार नहीं है। तुम अपना कर्त्तव्य करो। चराचर नायक के लिए यौवराज्यपद क्या है? मोच पछितावा को अपने मन से निकालो।

दो. वेगि^१ विलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु ।
सुदिनु सुमगलु तवहि जव, रामु होहि जुवराजु ॥४॥

अर्थ : राजा। जल्दी करो, देर न लगाओ, सब समाज सजाओ। जब रामजी युवराज हो जाय तभी सुदिन और सुमङ्गल है।

व्याख्या : समाज का अर्थ समान है। यथा : अरुघती अरु अग्नि समाज। रथ चढि चले प्रथम मुनिराज। राजा ने कहा था : कहिय कृपा करि करिय समाज। सो मुनिजी कह रहे हैं : साजिअ सबुइ समाजु। परन्तु जल्दी करो। देर न होने पावे। कर्त्तव्य कर्म में वही जल्दी होनी चाहिए। नहीं तो काल उसका रस पी जाता है। यथा : आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मणः। क्षिप्रमेव प्रकर्त्तव्यं कालः पिवति तद्रसः। इसमें सुदिन मत देखो : तदेव लग्न सुदिन तदेव, ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबल देवबल तदेव लक्ष्मीपतेरंघ्रियुग स्मरामि। राम जिस दिन राज्य पर बैठेंगे वही सुदिन हो जायगा। वही सुमङ्गल होगा। वसिष्ठजी मुहूर्त नहीं देते। जानते हैं कि अभी अभिषेकवाला सुदिन दूर है। रामजी के वन से लौटने पर कहेंगे : आज सुधरी सुदिन समुदाई। सब द्विज देहु हरपि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहि सिंघासन।

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए ॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमगल वचन सुनाए ॥१॥

अर्थ : राजा प्रसन्न होकर घर आये। सेवक - कामदार सचिव और सुमन्त्र को बुलवाया। उन लोगों ने जयजीव कहकर अभिवादन किया। राजा ने उन्हें सुमङ्गल वचन सुनाया।

व्याख्या : गुरुजी के पास जिस कार्य के लिए गये थे उसकी सिद्धि हो गयी। गुरुजी ने कह दिया कि जल्दी करो। देर न होने पावे। इसलिए महाराज तुरन्त उठ पड़े और आनन्दित होकर घर आये। गुरुजी को भी साथ लेते आये। सेवकों को और मन्त्रियों को बुलवाया। विभाग विशेष के मन्त्री को सुमन्त्र कहते हैं। रेफ के गिर जाने से उसका तद्भव रूप सुमन्त हुआ। महाराज के यहाँ जो सुमन्त्र पद पर थे वे उनके सखा भी थे और सारथि भी थे। इन पर महाराज की बड़ी आस्था थी। इनको अन्तःपुर में भी रोक नहीं थी। इसलिए इनके नाम का पृथक् निर्देश है। ये भी बुलाये गये। मन्त्रणा के लिए सभा बैठी। सेवक - कारवारी और

१. यहाँ वितृतोक्ति अलङ्कार है।

मन्त्रियो ने जयजीव कहकर राजा का अभिवादन किया। जयजीव का अर्थ है कि आप की जय हो और आप चिरजीवी हो। महाराज ने ऐसा वचन सुनाया कि जिससे ससार वा कल्याण हो। इसलिए उस वचन को सुमङ्गल कहा।

जौ पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरखि हिय रामहि टीका ॥

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत विरव परेउ जनु पानी ॥२॥

अर्थ यदि पञ्चों को यह राय पसन्द हो तो प्रसन्न मन होकर रामजी का राजतिलक करो। प्रिय वाणी सुनकर मन्त्री ऐसे प्रसन्न हुए जैसे मनोरथ के पौधे में पानी पड़ा हो।

व्याख्या महाराज के भीतर रामजी के अभिषेक की उत्कट इच्छा है। फिर भी राजनीति के अनुसार सब निर्णय पञ्चों पर छोड़ते हैं और कहते हैं कि मेरा किया हुआ प्रस्ताव समझकर सङ्कोच से स्वीकार न करना। यदि तुम लोग को यह राय पसन्द हो और हर्षित हृदय से करना चाहते हो तो रामजी को राजतिलक करो। यह महाराज दशरथ की नीतिपटुता है कि पहिले चारों द्वारा यह निश्चय करके कि रामजी प्रजामान को प्रिय है और सब इनका यौवराज्यपद पर अभिषेक चाहते हैं तब जाकर गुरुजो से सम्मति ली। फिर मन्त्रियो से सम्मति ले रहे हैं।

मन्त्री लोग स्वयं यही चाहते थे। परन्तु महाराज दशरथ का शासन निर्दोष था। अतः स्वयं प्रस्ताव करना उचित नहीं समझा था। अतः उन्हें महाराज की यह वाणी अति प्रिय मालूम हुई और उनका मनोरथरूपी पौधा लहलहा उठा। जैसे उसमें पानी पड़ा हो। पानी पड़ने से बड़े-बड़े पेड़ भी प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं। पर पौधों की प्रसन्नता अधिक व्यक्त होती है। इसीलिए महाराज की वाणी की उपमा पानी पड़ने से और मन्त्रियों के अभिमत की उपमा पौधों विरवा से दी।

बिनती सचिव करहि कर जोरी। जिअहु जगतपति वरिस करोरी ॥

जग मगल भल काजु विचारा। वेगिअ नाथ न लाइअ वारा ॥३॥

अर्थ मन्त्री हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि हे जगत्पति। आपकी आयु करोड़ों वर्ष की हो। आपने जगत् का मङ्गल करनेवाला अच्छा कार्य विचारा। सा हे नाथ। शीघ्रता कीजिये। इसमें देर न हो।

व्याख्या राजा के युवराज विषयक प्रस्ताव करने से यह प्रकट होता है कि उन्हें अब अपने जीवन से निराशा है। अथवा नीति के अनुसार चौथेपन में भगवत् भजन के लिए वन जाना चाहते हैं। अतः मन्त्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि आप जगत्पति रहकर करोड़ों वर्ष जीवें। आपका जीवन और शासन दोनों हम लोगों को प्रिय है। आप राजा बने रहे और राज्य भार रामजी को युवराज बनाकर सौंप दें। यह कार्य जगत् के मङ्गल के लिए है। आपने बहुत अच्छा विचार किया है। पर शीघ्र ही इसे कार्य में परिणत कीजिये। क्योंकि श्रेयासि बहु विघ्नानि। ऐसे श्रेष्ठ कार्य में बहुत-से विघ्न खड़े हो जाते हैं।

नृपहि मोडु सुनि सचिव सुभासा । बढ़त वाँड़ जनु लही सुसासा ॥४॥
दो. कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम राज अभिपेक हित, वेगि करहु सोइ सोइ ॥५॥

अर्थ : मन्त्री के सुन्दर वचन सुनकर राजा को आनन्द हुआ । जैसे बढ़ती हुई लता को सुन्दर शाखा मिल जाय । राजा ने कहा कि मुनिराज की जो-जो आज्ञा हो रामजी के राज्याभिषेक के लिए जल्दी-जल्दी वेसा ही करो ।

व्याख्या : लता जब बढ़ती है तब निराधार ऊपर की ओर चलती है । जब उसे आधार नहीं मिलता तो लौट आती है । यदि उसे सुन्दर शाखा मिल जाय तो वह आनन्द से उसमें लिपट जाती है और उसके अधिक ऊपर जाने का मार्ग निर्गल हो जाता है । उसी भाँति मन्त्रियों की सुभासा स्वीकार कर राजा की आनन्द स्वी लता स्वच्छन्द होकर और बढ़ी ।

महाराज ने मन्त्रियों से कहा कि मुझे शीघ्रता के लिए कहते हो तो मेरी आज्ञा हो गयी । अब तुम लोग शीघ्रता करो । यह कर्मकाण्ड का विषय है । इसमें कौन-कौन सी सामग्री अपेक्षित है ? कौन-कौन सी क्रिया अपेक्षित है ? यह सब मुनिराज से जानकर तदनुकूल कार्य सम्पादन करो ।

हरपि मुनीस कहेउ मृदु वानी । आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
औपध मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मगल नाना ॥१॥

अर्थ : हर्षित होकर मुनिजी ने मृदु वाणी से कहा कि सभी सुन्दर तीर्थों का जल मँगाओ । फिर उन्होंने, औपध, मूल, फूल, फल, पान, और अनेक मङ्गल वस्तुओं के नाम गिनाये ।

व्याख्या : मुनिजी को रामजी के अभिषेक के लिए आज्ञा देने में हर्ष है । अथवा राजा की गुरुभक्ति पर हर्ष है । महाराज की आज्ञा पाते ही मन्त्री लोग मुनिराज वसिष्ठजी के पास गये । गुरुजी ने मृदु वाणी से आज्ञा देना आरम्भ किया । तीर्थ अनेक प्रकार के होते हैं । कोई तीर्थ देव सम्बन्धी है यथा : प्रयागादि । कोई तीर्थ अनेक प्रकार के होते हैं । कोई तीर्थ देव सम्बन्धी है यथा : गया आदि । अतः मुनिजी सुतीर्थ का जल लाने को कहते हैं । आसुर तीर्थ के जल का निषेध करते हैं । तीर्थ का जल बहुत दूर से मँगाना है । इसलिए पहिली आज्ञा उसी के लिए हुई ।

मङ्गल कार्य में द्रव्य की तालिका लिखने के समय हृत्दी के पहिले लिखने की चाल है । अतः मुनिजी ने औपधि को ही पहिले गिनाया । राज्याभिषेक के लिए १०८ औपधियों और मूलों की आवश्यकता पड़ती है । अतः उनके नाम मुनिराज ने गिनाये । जिसमें कोई छूट न जाय और जिन-जिन फूल, फल और पत्तों की आवश्यकता पड़ती है उन्हें भी गिनाया । जिसमें अभिषेक सर्वाङ्ग सम्पन्न हो ।

चामर चरम वसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगनित जाती ॥
मणिगन मंगल वस्तु अनेका । जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥२॥

अर्थ : चँवर, चर्म, बहुत प्रकार के रोम, रेशम और सूत के असंख्य जाति के कपडे, मणि : जवाहिरात और अनेक मङ्गल वस्तु जो संसार में राज्याभिषेक के योग्य हैं बतलाये ।

व्याख्या : मङ्गल वस्तु कहते हैं । चँवर जो राजाओं के ऊपर चलता है । चर्म से यहाँ व्याघ्रचर्म मृगचर्म ढाल आदि अभिप्रेत हैं । कपडों की असंख्य जातियाँ हैं । फिर भी उनके तीन विभाग हैं । १ रुई के कपडे को ही साधारणतः कपडा कहते कहते हैं । २ दुशाला कम्बल आदि रोमपट हैं और ३ रेशम के कपडे को पाट पट कहते हैं । इनके भेद को मुनिजी नहीं गिनाते । इन्हें मन्त्री लोग भलीभाँति जानते हैं । अतः केवल अगनित जाती कह दिया । मणिगणों से तो भण्डार भरा है । उन्हें कहीं बाहर से नहीं लाना है । अतः उन्हें पीछे गिना रहे हैं । परिशिष्ट में कहते हैं । और भी जो-जो वस्तुएँ संसार में राज्याभिषेक के योग्य समझी जाती हैं उन्हें ले आओ ।

वेद विहित कहि सकल विधाना । कहेउ रचहु पुर विविध बिताना ॥
सफल रसाल पूगफल केरा । रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ॥३॥

अर्थ : वेद में कहे हुए सब विधानों को बतलाकर कहा कि नगर में बहुत से मण्डप बनाओ । फलों समेत आम सुपारी और केले के पेड़ नगर की गलियों में चारों ओर लगाओ ।

व्याख्या सातों द्वीप सातों समुद्र पहाड़ों के चित्र से वह स्थान चित्रित किया जाता है । जहाँ पर सिंहासन रक्खा जाता है । उसपर व्याघ्रचर्म बिछाया जाता है । स्वर्णकलश तीर्थ के जलों से भरे जाते हैं । ये सब विधान जैसे ब्राह्मणोक्त इन्द्राभिषेक में हैं किये जाँय । दीये जलाये जायँ । बाजे बजें । दर्पणादि मङ्गल वस्तु साजे जाँय । वेदपाठ के लिए ब्राह्मण बुलाये जाँय । इत्यादि वेदविधान हैं । इस भाँति मुनिजी की पहिली आज्ञा वेदविधान के विषय में हुई । दूसरी आज्ञा पुर के साजने के लिए हुई कि पुर में अनेक मण्डप साजे जायँ । तीसरी आज्ञा गलियों में रास्ता में वैसे ही सफल आम सुपारी और केले के पेड़ों के रोपने की हुई । जो देखने में स्वाभाविक हो । पर मणिगण के बने हुए हो । यथा : हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल । नहीं तो सफल आम तथा सुपारी के पेड़ रोपे नहीं जा सकते ।

रचहु मंजु मनि चौकइ चारु । कहहु बनावन वेगि वजारु ॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा । सब विधि करहु भूमिसुर सेवा ॥४॥

अर्थ : मनोहर मणियों के सुन्दर चौके पुरवाओं और बाजारों को जल्दी सजाने के लिए कहो । गणेशजी गुरु और कुलदेव की पूजा करो और सब विधि में ब्राह्मणों की सेवा करो ।

व्याख्या : चौथी आज्ञा हुई कि गजमुक्ताओं के चौके पुरवाओं । पाँचवी आज्ञा हुई कि शीघ्रता से बाजार साजो । समय बहुत कम है और कार्य सब विधानपूर्वक होना चाहिए । अतः मुनिराज की पूयक् आज्ञा हो रही है । छठी आज्ञा हुई कि गणेश जी, गुरु और कुलदेव की पूजा करो । गणेशजी सभी मङ्गल कार्य में प्रथम पूजे जाते हैं । स्वयं आप ही गुरु हैं । पर विधान में होने से गुरु की पूजा कहने में सङ्कोच नहीं करते । इष्टसिद्धि के लिए कुलदेव की पूजा के लिए आज्ञा देते हैं । भूमिसुर प्रत्यक्ष देवता हैं । अतः उनकी सेवा सब विधि से करने को कहते हैं । इनकी पूजा के लिए सातवीं आज्ञा हुई ।

दो. ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग ।
सिर धरि मुनिवर वचन सबु, निज निज काजहि लाग ॥६॥

अर्थ : ध्वजा, पताका, वन्दनवार, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सजाओ । मुनिराज की आज्ञा को सिर पर रखकर सब कोई अपने-अपने काम में लग गये ।

व्याख्या : ध्वजा पताका और तोरण से सदा पुरी सुशोभित रहती है । पर अब ऐसा साजो कि घूष रुक जाय । घोड़े हाथी रथ सवारी निकलने के लिए साजे जाय । यह मुनिजी की आठवी आज्ञा है । महाराज के आठ मन्त्री हैं । धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः । अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित् । आठों के लिए आठ आज्ञा हुई ।

१. धृष्टि को वेदविधान तथा सामग्री इकट्ठा करने के लिए पहिली आज्ञा हुई ।
२. जयन्त को वित्तान रचने की दूसरी आज्ञा हुई ।
३. विजय को सफ़्त रसाल पूगफल केरा को चारों ओर पुर से रोपने की तीसरी आज्ञा हुई ।
४. सुराष्ट्र को गजमणि के चौकों की व्यवस्था के लिए चौथी आज्ञा हुई ।
५. राष्ट्रवर्धन को बाजार सजाने की पाँचवी आज्ञा हुई ।
६. अकोप को देवगुरु पूजन की छठी आज्ञा हुई ।
७. धर्मपाल को सब विधि से भूमिसुर की सेवा करने की सातवी आज्ञा हुई । और :
८. सुमन्त्र को घोड़े हाथी के साजने की आठवी आज्ञा हुई ।

सब मन्त्रियों ने मुनिराज की आज्ञा सिर पर धारण की और अपने अपने कार्य में लग गये ।
जो मुनीस जेहि आयेसु दीन्हा । सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥
विप्र साधु सुर पूजत राजा । करत राम हित मंगल काजा ॥१॥

अर्थ : मुनिराज ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी थी वह काम मानो वह पहिले ही कर चुका था । राजा ब्राह्मण साधु और देवता का पूजन करते हैं और रामजी के लिए मङ्गलकार्य करते हैं ।

व्याख्या कहेउ भूप मुनिराज वर जोइ जोइ आयसु होइ । रामराज अभिषेक हित वेगि वरहु सोइ साइ । सा मन्त्रियो की शीघ्रता दिखलाते हैं । उन्होंने ऐसे लाघव से कार्य किया कि मानो वे कार्य पहिले से ही बने बनाये थे । अर्थात् बड़ी ही शीघ्रता से कार्य का सम्पादन किया ।

पूजा का कार्य महाराज ने स्वयं किया और मङ्गलकाय सम्पादन में भी हाथ बँटाया । पूजन में पहिल नाम विप्र का दिया गया । अर्थात् ब्राह्मण के पूजन पर अधिक ध्यान दिया गया । क्योंकि गुरुजी का आदेश था सब विधि करहु भूमिसुर सेवा । इस पूजन में एक लक्ष ब्राह्मणों को अशन दान देना था । अतः सब व्यवस्था मन्त्रियों ने की । साधुपूजा और देवपूजा भी हुई । राजा स्वभाव से ही गुरु विप्रधेनु सुरसेवी थे । इस समय तो महामङ्गल उपस्थित था । अतः बड़ी पूजा हुई ।

सुनत गम अभिषेक सुहावा । बाज गहागह अवध बधावा ॥
राम सीय तन सगुन जनाए । फरकहि मगल अग सुहाए ॥२॥

अर्थ रामजी के अभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवध में बधाव के बाजा की धूम मच गयी । रामजी के और सीताजी के शरीर में शकुन प्रकट हुए । उनके सुन्दर अङ्ग फड़कने लगे ।

व्याख्या जब सब लोग अपने अपने कार्य सम्पादन में लगे और दौड़ धूप आरम्भ हुई तब नगरवासियों को पता चला कि रामजी का अभिषेक होने जा रहा है । सुनते ही अयोध्या में तमाम बधाइयाँ बजन लगी गहागह शब्द का प्रयोग जायसी ने भी आनन्द के अर्थ में किया है । पुरवासियों को उछा हर्ष हुआ । इस दिन के लिए महेश का मानत थे । यह बधाई महाराज के प्रमत्त करने के लिए नहीं बजी । वरिष्ठ अपने अभिलाष की पूर्ति की खुशी में बजाई जान लगी ।

शुभाशुभ सूचक शकुन भविष्यत् सूचक यन्त्रा की भांति अकस्मात् अनागत घटना की सूचना देते हैं । जिस भांति भूकम्प आने से पहिल ही चुम्बकाकर्षण शिथिल हो जाता है । चुम्बक सूई का आकर्षण नहीं करता । इस भांति शुभाशुभ घटना के हाने के पहिल ही कुछ शास्त्रकथित लक्षण हैं जो अवश्य प्रकट होते हैं । उन्हीं का शकुन कहते हैं । सा सीताजी और रामजी के शरीर में शकुन प्रकट हुए । अर्थात् मङ्गल अङ्ग फड़कने लगे । दक्षिण वाम नहीं लिखते । क्योंकि रामजी के दक्षिण अङ्ग का फड़कना शुभ था और जानकीजी के वाम अङ्ग का फड़कना मङ्गलसूचक था । मुहाए अङ्ग कहने का भाव यह कि नेत्र और बाहु फड़के ।

पुलकि सप्रेम परमपर कहही । भरत आगमनु सूचक अहहा ॥
भाग बहुत दिन अतिअवसेरी । सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥३॥

अर्थ एक दूसरे से पुलकायमान होकर कहते हैं कि ये शकुन भरत के

आगमन की सूचना दे रहे हैं। बहुत दिन हुए अत्यन्त चिन्ता है। शकुन से प्रिय के मिलन का विश्वास होता है।

व्याख्या : रामजानकी का स्वभाव एक है। रुचि एक है। दोनों को भरत प्रिय है। उनके स्मरण आने से पुलक होता है। अतः दम्पति ने यही निश्चय किया कि ये शकुन भरतजी के आने की सूचना दे रहे हैं।

वारण देते हैं कि भरतजी को ननिहाल गये बहुत दिन हुए। इसलिए अधिक चिन्ता है। इस शकुन से यह विश्वास होता है कि प्रिय की प्राप्ति भेंट होगी। शुभ शकुन प्रिय के भेंट का सूचक है। यथा : सगुन विचारि धरी उर धीरा। अव मिलिहहि कृपालु रघुवीरा। तथा सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहि सुभग अग सुनु भ्राता। भरत के मिलन की उत्कण्ठा हृदय में हुई और उमो समय शकुन हुए। शकुन का प्रयोजन ही प्रियमिलन है। पुलकि से तन, सप्रेम से मन और परसपर कहूँ से वचन से भरतजी पर प्रेम कहा। अवसेए शब्द का प्रयोग चिन्ता करने याद आने के अर्थ में मारवाड़ी आज भी करते हैं।

भरत मरिस प्रिय को जग माही। इहइ सगुन फलु दूसर नाही ॥

रामहि बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥४॥

अर्थ : जगत् में भरत के समान कौन प्यारा है। अतः यही शकुन का फल है। दूसरा नहीं। रामजी को दिन रात भाई की चिन्ता है। जैसे दिन रात कछुए को अपने अण्डे की चिन्ता होती है।

व्याख्या : दम्पति की विचारधारा एक है। उन्हें भरत जी के समान ससार में दूसरा कोई प्यारा नहीं है। यथा : जग जप राम राम जप जेही। अतः यह निश्चय किया कि इस शकुन का फल भरत से भेंट होना है। दूसरा नहीं कहने से दूसरे फल की व्यावृत्ति करते हैं। यद्यपि इस समय इस शकुन का होना अभिप्रेक सम्वाद सूचक कहा जा सकता है। परन्तु जिन्हे शकुन हो रहा है उन्हें तो भरत प्रिय हैं। अभिप्रेक प्रिय नहीं। अभिप्रेक का प्रस्ताव तो भरतजी के शीघ्र मिलन का कारण हुआ। अतः जो फल निश्चय किया गया वही ठीक है।

कछुए अण्डे बालू में देते हैं पर रहते हैं जल में। रात में सुनसान होते ही उन्हें सेने के लिए रेती में चले जाते हैं। अतः कछुए जल में विचरते रहते हैं। पर उनकी चित्तवृत्ति अण्डे में ही लगी रहती है। यह गति रामजी की है। ये अवध में हैं और इस समय भरतजी कैकय देश में हैं। पर मनोवृत्ति दिन रात भरतजी में लगी है।

दो. एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवासु।

सोभत लखि विधु बढत जनु, बारिधि बीचि विलासु ॥७॥

अर्थ : इस अवसर पर परम मङ्गल सुनकर रनिवास आनन्दित हो उठा। जिस भाँति चन्द्रमा की बढ़ोतरी से समुद्र में उत्तालतरङ्गों की शोभा होती है।

व्याख्या : रनिवास की उपमा समुद्र से दी गयी। क्योंकि महाराज का रनिवास बहुत बड़ा था। नात सौ रानियाँ थी। यथा : पालागत दुलहिनिन्ह सिखावत मुदित सासु सत साता। यहाँ चन्द्र की बढोतरी रामजी का अभिप्रेक है। समुद्र से ही चन्द्र की उत्पत्ति है। अतः रामजी की उपमा चन्द्र से दी गयी। इनके अभिप्रेक से रनिवास में आनन्द का उद्रेक हुआ। उसकी उपमा बीच विलास से दी गयी। यथा : राकाससि रघुपतिपुरी सिंधु देखि हररान। बढत कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान। यहाँ हरपेउ शब्द में रकार और सकार उलट गये हैं। अतः हरपेउ का रहसेउ हो गया।

प्रथम जाइ जिन्ह वचन सुनाए। भूपन वसन भूरि तिन्ह पाए ॥

प्रेम पुलकि तन मन अनुरागी। मंगल कलस सजन सब लागी ॥१॥

अर्थ : जिन्होंने पहिले जाकर यह शुभ सम्वाद सुनाया उन्होंने बहुत से गहने कपड़े पाये। प्रेम से शरीर में पुलक हो गया। मन में प्रेम छा गया। सब मङ्गल कलश साजने लगी।

व्याख्या : नगर में समाचार फैलने के बाद रनिवास को समाचार मिला। शुभ समाचार देनेवाले को पुरस्कार मिलने की परिपाटी है। क्योंकि शुभ समाचार देनेवाला प्रिय होता है। यथा : जो कहिहँ आये राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। सो तुलसी प्रिय मोहि लागिहँ ज्यों सुभाय सुत चारी। समाचार देनेवाले को रानियो ने भूषण उतार कर दे दिये। कपड़े पीछे से मँगाये गये। इसलिए भूषण पहिले कहा। उसके बाद वसन कहा। पीछे से समाचार देनेवाले को भी पुरस्कार मिला। पर थोड़ा अधिक तो पहिले समाचार देनेवाले ने ही पाया।

शुभ समाचार सुनने से ऐसा आनन्द हुआ कि शरीर पुलक से और मन प्रेम से भर उठा। अतः अन्त पुर के द्वारपर मङ्गलसूचक कलश स्थापन के लिए सब रानियाँ मङ्गलघट साजने लगी। यथा : छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड़ बनाये।

चौकई चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय विविध भाँति अतिरूरी ॥

आनंद मगन राम महतारी। दिये दान बहु विप्र हँकारी ॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी ने सुन्दर चौक पूर डाले। जो मणिमय अनेक प्रकार के और सुन्दर थे। रामजी की माता तो आनन्द में मग्न हो गयी। बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत दान दे डाला।

व्याख्या : सात सौ रानियो का हाल कहकर अब सुमित्राजी का वर्णन करते हैं। इन्हे अधिक आनन्द था और चौका पूरने में भी बड़ी पटु थी। सबने मङ्गल घट साजे। इन्होंने चौका भी पूरा। महारानी है : मणिगणों का चौक पूर रही है। अनेक प्रकार का चौका पूरना जानती है। वे चौके एक से एक सुन्दर हैं।

रामजी की माता कौसल्या देवी के आनन्द का कुछ ठिकाना नहीं । वे तो मग्न हैं । न कलश साजा । न चौका पूरा । सब भूल गयी । बहुत से ब्राह्मणों को बुलाया और उन्होंने बहुत सा दान दिया । ये ब्राह्मणों के सन्तोष को ही परम मङ्गल मानती है ।
यथा : तुम्ह गुरु विप्र साधु सुर सेवो । तस पुनीत कौसल्या देवी ।

पूजी ग्रामदेवि सुर नागा । कहेउ वहोरि देन बलि भागा ॥
जेहि विधि होइ रामु कल्याणु । देहु दया करि सो वरदानु ॥३॥
गावहि मंगल कोकिल वयनी । विधुबदनी मृगसावकनयनी ॥४॥

अर्थ . फिर ग्राम के देवी देवता और नागों डिहवारो की पूजा की और बलि भाग देने के लिए मनीती मानी । जिस विधि से रामजी का कल्याण हो वृषा करके वह वरदान दो । चन्द्रवदनी मृग के बच्चो से अँखवाली कोकिलवयनी मङ्गल गाने लगी ।

व्याख्या . यहाँ गुरुदेव को आज्ञा नहीं भेजनी पड़ी । स्वय अन्त करण का प्रेरणा से पूजन में प्रवृत्त हुई । पहिले पूजन करके ब्राह्मणों को दान दिया । तत्पश्चात् देवी देवताओं का पूजन प्रारम्भ हुआ । ग्रामदेवी और ग्रामदेव का पूजन किया । फिर से पूजन बलिदान के लिए मनीती मानी । यहाँ पर नाग से उन हाथियों का ग्रहण है । जो मिट्टी के बने होते हैं । ग्राम के बाहर रखे जाते हैं और मनोरथ सिद्धि होने पर मङ्गल उपस्थित होने पर उनकी पूजा होती है । वे डिहवार कहलाते हैं । राजा कुलदेव की पूजा कर रहे हैं । महारानी ग्रामदेव और देवियों के पूजन में लगी हैं ।

पूजनोपरान्त रामजी के कल्याण के लिए वरदान मांगती हैं । अभिषेक पर आग्रह नहीं है । जिस भाँति रामजी का कल्याण हो सो करा । चाहे अभिषेक से हो अथवा अन्य विधान से हो । जीव अल्पज्ञ नहीं जान सकता कि वास्तविक कल्याण किस बात में है । यह महारानी कौसल्या का अलौकिक विवेक है । यथा . मातु विवेक अलौकिक तोरे । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे । प्रार्थना करती है कि दया करके वरदान दो । पूजा के बदले में नहीं ।

इधर महारानी पूजन में लगी हैं । उधर अन्त पुर में मङ्गलगान होने लगा । गान करनेवाली सुस्वर हो तभी श्रवणेन्द्रिय की तृप्ति होती है । अतः कोकिलवयनी कहते हैं और यदि वे सुन्दरी हो तो चक्षुरिन्द्रिय के तर्पण से आनन्द और भी बढ़ जाता है इसलिए विधुबदनी मृगसावकनयनी कहा ।

दो. राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर नारि ।

लगे सुमंगल सजन सब, विधि अनुकूल विचारि ॥८॥

अर्थ : रामजी का राज्याभिषेक सुनकर सब नर नारी हर्षित हुए और विधि को अनुकूल समझकर सब सुमङ्गल सजने लगे । सबके हृदय में रामजी के

अभिप्रेक की अभिलाषा थी। अतः अभिलाषा पूर्ति के समय हृदय में हर्ष होना स्वाभाविक है।

व्याख्या : हर्ष होने पर सुमङ्गल साज सजना भी स्वाभाविक है। आनन्द के उद्रेक में कुछ क्रियाएँ भी तद्रूप होनी ही चाहिए। अतः घरों में तोरण पताका लगाना बाजार के साजने में हाथ बँटाना ये काम नर करने लगे। मङ्गलघट सजाना चौक पूरना और मङ्गलगान करना इन कामों में नारियाँ लग गयीं। सबने यही समझा कि विधि अनुकूल है। पर बात ऐसी नहीं थी विधि की वामगति थी।

तब नरनाह वसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए ॥

गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा ॥१॥

अर्थ : तब राजा ने वसिष्ठजी को बुलाया। रामजी के महल में शिक्षा देने के लिए भेजा। गुरुजी का आगमन सुनते ही रामजी ने द्वार पर आकर चरणों में सिर नवाया।

व्याख्या : रामजी का राज्याभिप्रेक सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया। तदनुसार तैयारी भी आरम्भ हो गयी। पर यह समाचार रामजी को भी देना है। अतः यही निश्चय हुआ कि स्वयं गुरुजी जाकर यह समाचार दें और ऐसे अवसर पर जो जो बातें रामजी के लिए करणीय हों उन बातों की शिक्षा दें। गुरुजी पुरोहित भी हैं। अतः पुरोहित्य का काम आ पड़ने पर बुलाये जाते हैं। यथा गुरु वसिष्ठ कहें गयउ हँकारा। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी। सो गुरुजी को बुलाकर राजा ने शिक्षा के लिए रामजी के महल में भेजा।

गुरुजी के आने का समाचार पाते ही रघुनाथजी बाहर निकल आये। तब से वसिष्ठजी द्वार तक आगये। रामजी ने चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुजी का पधारना एक अमाधारण घटना थी। अतः उन्हें आते देखकर सेवकों ने दौड़कर रामजी को समाचार दिया। जिसमें उन्हें अगवानी का सुअवसर मिल सके।

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥

गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी ॥२॥

अर्थ : आदर के साथ अर्घ्य देकर घर लाये। पौडशोपचार से पूजन करके सम्मान किया। तत्पश्चात् सीताजी के सहित पाँच छूये और करकमल जोड़कर बोल।

व्याख्या : पहिली पूजा अर्घ्यदान है। सो द्वार पर ही अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् महल में ले आये। श्रद्धातिशय से पौडशोपचार से पूजन किया। नहीं तो ऐसे अवसर पर पञ्चोपचार से ही पूजन किया जाता है। तुलसी कहत पुकार के मुनो सकल दं कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान।

घर में पूजन हो रहा है। इसलिए पूजन की सभासि के समय सीताजी के सहित वन्दना की। क्योंकि स्त्री के सहित पूजन का विधान है। तत्पश्चात् रामजी दोनों हाथ जोड़कर बोले। भाव यह कि गुरुजा के आगमन पर पहिला कार्य यह है कि उनकी पूजा की जाय। तब दूसरी बात हा।

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगल मूल अमगल दमनू ॥
तदपि उचित जनु वोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती ॥३॥

अर्थ सेवक के घर स्वामी का आगमन तो सब मङ्गल का मूल है और अमङ्गल का नाश करनेवाला है। तथापि उचित नीति यह है कि काम के लिए सेवक को बुला भेजना चाहिए।

व्याख्या रामजी ने कहा कि मैं सेवक हूँ। आप स्वामी हैं। सेवक का तो धर्म ही है कि स्वामी के घर उपस्थित रहे। यदि स्वामी सेवक के घर जाय तो उसका बड़ा भाग्य समझना चाहिए। स्वामी के चरण पडने से ही सेवक का मङ्गल होता है। और उसके अमङ्गल का नाश होता है। अतः आपका पधारना मेरे लिए तो बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु निष्काण तो कोई कार्य होता ही नहीं। अतः जिस कार्य के लिए आप ने आने का कष्ट उठाया उसके लिए मुझे ही बुला भेजना उचित था। नीति भी यही है कि काम पडने पर स्वामी सेवक को बुला भेजे। यदि सेवक को सम्मान देना ही हा तो प्रीति के साथ बुलवा ले। भावार्थ यह कि आपने आने का कष्ट क्यों उठाया। मुझे ही बुलवा भेजते। आपका आना मेरे लिए तो सौभाग्य का विषय है। पर आपको कष्ट हुआ।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेह। भयउ पुनीत आजु यहु गेह ॥
आयसु होइ सो करउ गोसाई। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई ॥४॥

अर्थ प्रभु ने प्रभुता छोड़कर मुझ पर स्नेह किया। आज यह घर पवित्र हुआ। जो आज्ञा हो सो मैं करूँ। सेवक को स्वामी की सेवा का लाभ हो।

व्याख्या इस सामान्य नियम के अतिक्रमण में अनीति की गन्ध नहीं है। केवल अपनी प्रभुता पर ध्यान न देकर सेवक पर स्नेह करना है। व्याह हुए बारह वर्ष हुआ। इस बीच में गुरुजी का घर पर आगमन नहीं हुआ। इसलिए कहते हैं कि आज यह घर पवित्र हुआ।

आज्ञा होने से पहिल ही पूछना सेवकाई के लिए उत्सुकता है। आज्ञा सम न सुसाहिय सेवा। सेवक के लिए स्वामी की सेवा का अवसर मिलना बड़े भाग्य का विषय है। तपस्वी लोग जल्दी किसी से सेवा नहीं लेते। उनके यहाँ स्वयं दासास्तपस्विन प्रचलित है। तपस्वी स्वयं दास हैं। अपना काम स्वयं कर लते हैं। दूसरे से काम नहीं लेते। यदि काम लें तो उसका सौभाग्य है। अतः सेवकाई के लाभ के लिए रामजी की प्रार्थना गुरुचरणों में है।

दो सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुवरहि प्रसस ।

राम कस न तुम्ह कहहु अस, हस वस अवतस ॥९॥

अर्थ स्नेह से सने हुए वचनों को सुनकर मुनिजी ने रामजी की प्रशंसा की कि राम तुम ऐसा क्यों न कहो । तुम सूर्यवंश के शिरोभूषण हो ।

व्याख्या श्रीरामजी के स्नेह सने हुए वचन सुनकर मुनिजी प्रसन्न हो गये और उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि तुम सूर्यकुल के शिरोभूषण हो । अतः जो वचन तुमने कहे । वह तुम्हारे स्वरूप के अनुकूल हैं । सूर्यवंश में स्वभाव से ही गुरुभक्ति देखी जाती है । महाराज दशरथ कहते हैं मोहि सम यह अनुभवउ न दूजें । सब पायउँ रज पावनि पूजें । भरतजी कहेंगे दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउरि जग जाना ।

वरनि राम गुन सीलु सुभाऊ । बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥

भूप सजेउ अभिपेक समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुवराजू ॥१॥

अर्थ रामजी के गुण शील और स्वभाव का वर्णन करके प्रेम से पुलकित होकर मुनिराज ने कहा कि महाराज ने अभिपेक की तैयारी कर ली है और तुम्हें युवराज पद देना चाहते हैं ।

व्याख्या रामजी के गुणों का वर्णन किया कि तुम सब विधि से सब लायक हो । शील स्वभाव का वर्णन किया कि तुम सबको प्राणप्रिय हो । सब विप्रमण्डलो तुम्हारे ऊपर छोड़ करती है । इस कुल में ऐसे ही युवराज की आवश्यकता है । इस भाँति प्रशंसा करके मुख्य समाचार कहने के समय मुनिराज प्रेम से पुलकित हो उठ । कहने लगे राजा अब राज्यभार को वहन करना नहीं चाहते । अतः राज्याभिषेक की सब तैयारी कर ली है और तुम्हें युवराज बनाना चाहते हैं । तुम्हीं चारा भाइयों में ज्येष्ठ हो । ज्येष्ठ गुणों से युक्त हो । अतः राजा का तुम्हारे विषय में ऐसा ही निर्णय उपयुक्त है ।

राम करहु सब सज्जम आजू । जौ विधि कुसल निबाहइ काजू ॥

गुरु सिख देइ राय पहि गयेऊ । राम हृदयँ अस विसमउ भयेऊ ॥२॥

अर्थ रामजी आज तुम सब समय करो । यदि विधाता कुशल पूर्वक सब काम निबाह दे । गुरुजी तो रामजी का शिक्षा देकर चल गये । पर रामजी के हृदय में इस प्रकार से आश्चर्य हुआ ।

व्याख्या राज्याभिषेक के एक दिन पूर्व जिसका अभिषेक होता है । उसे समय से रहने का विधान है । वह ब्रह्मचर्य से रहे शय्या का त्याग करे इत्यादि । गुरुजी ने उन सब समयों के अनुष्ठान का रामजी को उपदेश दिया । आज समय से रहो कहने का तात्पर्य ही यह है कि कल तुम्हारा अभिषेक होनेवाला है । परन्तु विधि की ओर से सकुशल कार्य के सम्पन्न होने में सन्देह है । यह बात भी गुरुजी ने

स्पष्ट कह दी। देवताओं का रहस्य है। अतः महाराज को केवल इङ्गित से जनाया। यथा सुदिनु मुमगलु तर्वाहि जय राम होहि युवराज। पर रामजा से क्या परदा है। अतः स्पष्ट कहते हैं। और भी जो बातें रक्षा सम्बन्धी ऐसे अवसर पर उपयुक्त होती हैं। उनकी भी शिक्षा देकर गुरुजी चले गये। पर रामजी को यह समाचार सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कभी इस बात की ओर ध्यान भी नहीं दिया था कि जेठे होने के कारण राज्य के वे ही अधिकारी हैं। लोकसीमा के उल्लंघन करनेवाली वस्तु से जो चित्त में विकार उत्पन्न होता है उसे विस्मय कहते हैं। यथा विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु। विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।

जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥

वर्णवेध उपवीत विवाहा। सग सग सब भये उछाहा ॥३॥

अर्थ सब भाई एक साथ ही पैदा हुए। एक साथ ही लडकपन से खान सोते खेलते आये। वर्णवेध जनेव और व्याह का उत्सव सब एक ही साथ हुआ।

व्याख्या विस्मय का कारण कहते हैं कि सब भाइयों का जन्म भी साथ ही साथ हुआ। एक के जन्म से दूसरे के जन्म में कुछ घण्टों का हो भेद पड़ा। भोजन भी सबका साथ होता रहा। यथा अनुज सखा संग भोजन करही। सोते भी साथ ही साथ रह। यथा आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही। लडकपन में खेल भी साथ ही साथ होता रहा। यथा जिन्ह बीथिन्ह बिहरैं सब भाई। थकित होहि सब लोग लुगाई। तत्पश्चात् जितने संस्कार और उत्सव हुए। यथा वर्णवेध उपवीत और विवाह सो सब साथ ही साथ हुए। सब कामों में तो भाइयों का साथ रहा। अब क्या अभिप्रेत में उनका साथ न होगा? अभिप्रेत केवल मेरा ही होगा? यही विस्मय है।

विमल वस यह अनुचित एकू। वधु विहाइ बडेहि अभिपेकू ॥

प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन के कुटिलाई ॥४॥

अर्थ इस निर्मल वश में यही एक अनुचित बात है कि भाइयों को छोड़कर बड़े का ही अभिप्रेत होता है। प्रभु का प्रेम के सहित सुन्दर पछतावा भक्त के मन की कुटिलता का हरण करे।

व्याख्या पिताजी की इच्छा है। गुरुजी आकर कह गये और रघुकुल की रीति भी यही है। अतः स्वीकार करने के सिवा उपायान्तर नहीं है। अतः प्रभु प्रेम के साथ पछता रहे हैं। इस ध्यान की श्रोआचार्यपाद फलश्रुति कहते हैं कि इस पछताने से भक्तों के मन की कुटिलता नष्ट हो। स्वार्थान्धता ही सर्व कुटिलताओं का कारण है। अपने इष्टद्वय के स्वार्थ निरपेक्ष विचार में स्थित होने के ध्यान से भक्त के हृदय में भी स्वार्थ निरपेक्ष विचार करने का सामर्थ्य उत्पन्न हो। इसलिए कवि प्रार्थना करते हैं कि हरउ भगत मन के कुटिलाई। इस पछतावे से रामोपासकों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। प्रभु की सरलता का अनुगमन सेवक का धर्म है। प्रभु

के सभी उपासको मे भाई भाई का नाता है । अपना उत्कर्ष होने पर औरों के लिए दुखी न होना भी भक्तों के लिए कुटिलता है । अतः कवि प्रार्थना करते हैं कि प्रभु के इस प्रकार का पछतावा भक्त के मन की कुटिलता हरण करे ।

दो तेहि अवसर आए लखन, मगन प्रेम आनद ।

सनमाने प्रिय वचन कहि, रघुकुल कैरव चद ॥१०॥

अर्थ उसी अवसर पर लक्ष्मणजी प्रेमानन्द में मग्न हुए आये और रघुकुल-रूपी कुमुद के चन्द्रमा रामजी ने उनका सम्मान प्रिय वचन कहकर किया ।

व्याख्या उसी पछताने के अवसर पर प्रेमानन्द में मग्न लक्ष्मणजी आये । आचार्यपाद दो के लिए मग्न शब्द का प्रयोग करते हैं एक लक्ष्मणजी के लिए और दूसरा कौसल्याजी के लिए । यथा आनन्द मगन गम महतारी । भाइयों के साथ अभिप्रेक न होने का रामजी को पछितावा है और उनका अभिप्रेक सुनकर भाई लक्ष्मण को आनन्द है । लक्ष्मणजी की ऐसी दशा देखकर रघुकुलकैरवचन्द ने उनका सम्मान प्रिय वचन द्वारा किया । यथा कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि । कि कर्त्ता भोक्ता ता लक्ष्मण । तुम ही होगे । अभिप्रेक भले हो मेरा हो ले । जिस राज्य के कर्तृत्व भोक्तृत्व की मेरी प्राप्ति पर तुम्हें इतनी प्रसन्नता है । वह कर्तृत्व भाक्तृत्व तुम्हारा ही हो ।

बाजहि बाजन विविध विधाना । पुर प्रमोदु नहि जाइ बखाना ॥

भरत आगमनु सकल मनावहि । आवहु वेगि नयन फलु पावहि ॥१॥

अर्थ अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं । पुर का आनन्द बखाना नहीं जाता । सब भरतजी का आना मना रहे हैं कि जल्द आवें और नेत्रों का फल पावें ।

व्याख्या राम राज अभिप्रेकु सुनि, हिम हरपे नर नारि । लगे सुमगल मजन सब विवि अनुकूल विचारि । यहाँ से प्रसंग छूटा है । उमी का फिर से उठाते हैं कि अनेक प्रकार के बाजें बजने लगे । पहिले यमघण्टवाद्य राज्याभिप्रेकवाद्य आदि अनेक प्रकार के बाजे थे । जिनका नाम शास्त्रों में सुना जाता है । अब उनका चलन नहीं है । इष्टभोगजन्य हर्ष को प्रमोद कहते हैं । सा इस समय पुर में ऐसा प्रमोद है कि वर्णन नहीं किया जा सकता । भरतजी पर सभी प्रजा का प्रेम है । सबकी इच्छा है कि भरतजी इस उत्सव में अवश्य सम्मिलित हो । परन्तु वे कैकय देश में हैं । इतनी जल्दी बुलाये नहीं जा सकते । अतः उनका आने के लिए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि यदि वे आज्ञाय ता उन्हें भी नेत्रों के सफल करने का अवसर मिल जाय ।

हाट बाट घर गली अथाई । कहाहि परसपर लोग लोगाई ॥

कालि लगन भलि केतिक वारा । पूजिहि विधि अभिलापु हमारा ॥२॥

अर्थ बाजार में, घरों में, गलियों में और बैठनों में नर और नारियाँ आपस

सुखारी । रामचंद्र मुखचंद्र निहारी । अतः पुर के लोग उस चंद्र को बढोत्तरी चाहते हैं । राजतिलक उस बढोत्तरी की सीमा है । अतः बधावा उसी बढोत्तरी की द्योतक चांदनी है । वह सबको सुखद हो रही है । पर कुचाली देवताओं को नहीं सोहाती जिस भाँति चांदनी सबको सोहाती है । पर चोर को नहीं सोहाती । यहाँ देवताओं की उपमा चोर से दी गयी है । चोर स्वयं निर्धन है । लोगों के धन को हरण करके स्वयं धनी होना चाहते हैं । इसी भाँति देवता राजतिलक में विघ्न उपस्थित करके सबके आनन्द का अपहरण कर स्वयं आनन्दित होना चाहते हैं । उनके यहाँ आनन्द का अभाव है । उन्हें रावण के भय से न भूख लगती न नीद आती है । यथा • जाके डर सुर असुर डराही । निसि न नीद दिन अन्न न खाही । दुखियो को स्वभाव से ही दूसरो का बधावा नहीं सोहाता । सो अवध के बधावा से देवताओं के नाको दम है । वहाँ नित्य नवमंगल मोद बधावा होता रहता है और इस समय तो • वाज गहागह अवध बधावा । भारी बधावा बज रहा है । यदि चन्द्र हटें तो चाँदनी जाय । यदि रामजी अयोध्या में न रहे तो बधावा बन्द हो ।

अतः विघ्न की रचना की चिन्ता में है । पर बुद्धि काम नहीं देती । अवध में कोई ऐसा नहीं जिसे रामजी का तिलक न सोहाता हो । फिर विघ्न हो तो कैसे हो ? अतः विघ्न के लिए सरस्वती का आवाहन करके अपने कार्य के लिए उनके चरणों पर गिर रहे हैं । पर वे राजी नहीं होती । अतः बार-बार चरणों पर गिरते हैं ।

दो. विपत्ति हमारि विलोकि बडि, मातु करिअ सोइ आजु ।

रामु जाहि वन राजु तजि, होइ सकल मुर काजु ॥११॥

अर्थ हमारी बड़ी भारी विपत्ति को देखकर माता ! आप वही करिये । जिसमें रामजी राज्य छोड़कर वन में जाँय और सब देवताओं का कार्य सिद्ध हो ।

व्याख्या देवता लोग सरस्वतीजी से कहते हैं कि आप हमारी माता हैं । आप अपने बच्चों की भारी विपत्ति को देखिये । १ हम लोग उजड़ गये । यथा वेद विरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयो । २ हम लोगों को भोजन का ठिकाना नहीं । यथा • द्विज भोजन मख होम मराधा । सबके जाइ करहु तुम बाधा । छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहि मिलिहि आइ । ३ दिन रात हम लोग सभित रहते हैं । यथा सुरपुर नितहि परावन होई । ४ इज्जत लूटी जाती है । यथा : देव जच्छ गधर्व नर विघ्नर नाग कुमारि । जीति बरी निज बाहुबल बहु मुन्दर वर नारि । ५ तिम पर हम लोगों को नित्य हाजिरी बजानी पड़ती है । यथा : वर जोरे सुर दिसिप विनीता । भृकुटि विलोकत सकल मभीता । ६ हम लोग बन्दर भालू बनकर वनों में रामजी के आने की बाट जोह रहे हैं । यथा • गिरि तरु नख आयुध धर धीरा । हरि मारग चितवहि मति धीरा । अब इससे बड़ी विपत्ति और क्या होगी । आप माता हैं । अपने बच्चों के लिए माता क्या नहीं करती ? सो आज ऐसा उपाय कीजिये कि रामजी राज्य छोड़कर वन

चले जाय। आज कहने का भाव यह कि कल तो काम ही विगड़ जायगा। जहाँ राज्य पर बैठे तहाँ राजकाज में लग जावेंगे तो हमारा काम पिछड़ जायगा। आपके सब वच्चों का कल्याण रामजी के वन जाने में है।

सुनि सुर विनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज विपिन हिम राती ॥
देखि देव पुनि कहहि निहोरी। मातु तोहि नहि थोरिउ खोरी ॥१॥

अर्थ देवताओं का विनय सुनकर खड़ी होकर पछिताती हैं कि मैं कमल के वन के लिए पाल की रात्रि वन रही हूँ। देखकर देवता लोग फिर निहोरा करके कहते हैं कि माता। तुझे थोड़ा सा भी दोष नहीं है।

व्याख्या देवताओं का विनय सुना। बात गले उतर गयी। पर पछतावा है कि कमल वन की भाँति फूले हुए इस अवध नगर के सहार के लिए मैं पाले की रात कैसे वनूँ। भाव यह कि रामजी के विरुद्ध सुनते ही चली नहीं गयी। खड़े होकर पछिताने लगी कि मुझ बड़ा अपग्रह होगा। दोष लगेगा कि हरा भरा वाग सरस्वती ने उजाड़ दिया।

सरस्वती ब्रह्मलोक से देवताओं के आवाहन से देवलोक में आयी हैं। अभी बैठी भी नहीं। खड़े ही खड़े देवताओं का विनय सुनकर पछता रही हैं। इस प्रसङ्ग में दो का पछतावा कहा रामजी का और सरस्वतीजी का। रामजी के पछतावे से ही सरस्वतीजी तथा वृहस्पतिजी ने उनका रुख लख लिया। यथा तब कछु कीन्ह राम रुख जानी। फिर भी विघ्नाचरण में पछतावा है। आज और कल के बीच में रात्रि है। सरस्वती पछिताती हैं कि मुझे हिमरात्रि वनना पड़ेगा। जिसमें कमलकुल का सहार हो जाय। अतः कहती हैं भइउँ सरोज विपिन हिम राती।

सरस्वतीजी को असामञ्जस्य में देखकर वृहस्पतिजी ने निहोरा करके कहा कि आप इस कार्य में दोष देख रहा है। सो इसमें आपका थोड़ा भी दोष नहीं है।

विसमय हरप रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब रामु प्रभाऊ ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी ॥२॥

अर्थ रामजी तो विस्मय हर्ष से रहित हैं। आप तो उनके प्रभाव को जानती हैं। जीव कर्म के वश सुख दुख भोगा करते हैं। अतः देवताओं के भले के लिए आप अवध जाय।

व्याख्या और लोग रामजी के प्रभाव को नहीं जानते। पर आप तो जानती हैं कि रामजी क्या हैं। परवस जीव स्वयं भगवता। रामजी स्वतन्त्र हैं। उन्हें कर्म शुभाशुभ की बाधा नहीं। सुख दुख रूपी द्वन्द्व की उन तक पहुँच नहीं। दुख सुख तो अभिमानों को होता है। अतः रामजी के लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है। आप जो कुछ करेंगी वह देवताओं के हित के लिए करेंगी। यदि देवहित करने में कुछ जीवा को दुःख हो तो वह नगण्य है। क्योंकि उनके

प्रारब्ध मे जो सुख दुःख है उसकी मात्रा के घटाने बढाने मे कोई समर्थ नहीं है । उतना उन्हे मिलकर ही रहेगा । अतः आपके दोष का तो यहाँ प्रसङ्ग ही नहीं है । आप देवताओ के कल्याण के लिए अवध पधारें यहाँ हर्ष के विरोध मे आने मे विस्मय का अर्थ शोक करना पडेगा ।

बार बार गहि चरन संकोची । चली विचारि विविध 'मति पोची ॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती । देखि न सकहि पराइ विभूती ॥३॥

अर्थ - देवताओ ने बार बार चरण पकडकर सङ्कोच मे डाला । तब वह देवताओ की बुद्धि भली नहीं ऐसा विचार करके चली । इनका निवास तो ऊँचा है । पर करतूति इनकी नीच है । ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते ।

व्याख्या जो जो बातें देवताओ ने कही उनकी असमीचीनता को जानते हुए भी सरस्वती पुत्री के सङ्कोच मे आगयी । और भी स्वार्थ के विचार उसके मन मे आये । जिनका वर्णन आगे किया जायगा । अतः देवताओ के कार्य के लिए चल पडी ।

देवताओ का निवास ऊँचा है । स्वर्ग मे रहते हैं । यह लोक तो भूलोक है । इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है । उसके भी ऊपर स्वर्गलोक है । देवता लोग वहाँ रहते हैं । इसलिए ऊँच निवास कहती है । पर इनकी करणी नीच है । स्वार्थ से भरी होती है । यथा . आये देव सदा स्वारथी । जब रामावतार हो गया तो ईश्वर सत्य सङ्कल्प है । आज नहीं तो कल रावणवध करेंगे ही । कितने चतुर्युगियो से उसके अत्याचार को सह रह है । थोडा और सह लेते । थोडा धैर्य रखते । जो अवतीर्ण जिस कार्य के लिए हुआ है उसको भी तो उस कार्य की चिन्ता है । वह देवताओ को उचित से अधिक कष्ट पाते कभी न देख सकेगा । अवधवासियो के रग मे भग डालने का कोई कारण नहीं है । कवि कहते है कि बात यह है कि अवधराज सुरराज सिहाही । दसरथ धन सुनि धनद लजाही । सो देवता लोग इस विभूति को न देख सके । उनके हृदय मे अवध का आनन्द देखकर डाह पैदा हुआ कि हम तो स्वर्ग मे रहकर इतना दुःख पावें और ये मर्त्यलोक मे रहकर इतना आनन्द लें ।

आगिल काजु विचारि बहोरी । करिहहि चाह कुसल कवि मोरी ॥
हरपि हृदय दसरथ पुर आई । जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई ॥४॥

अर्थ फिर भविष्य के कार्य को विचारा कि कुशल कवि मेरी चाह करेंगे । हृषित हृदय से दशरथपुर मे दुसह दुखदायी ग्रहदशा की भाँति आयी ।

१ राजापुर को प्रति मे विविध पाठ है । ऐसा मानने से पोची विविध मत विचार चली । इस प्रकार अन्वय करना होगा । अर्थात् अपने स्वार्थ का भी विचार किया करिहहि चाह कुशल कवि मोरी अतः पोची कहते हैं ।

व्याख्या इस सरस्वती ने अपने भविष्य के स्वार्थ को विचारा कि रामचरित वर्णन करनेवाले कुशल कवि मेरी चाह करगे। रामचरित वर्णन के लिए मेरा स्मरण वन्दन करेंगे। यथा कपिसेन सग सहारि निसिचर राम सीतहि आनि हैं। त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानि हैं। अत हर्षित हृदय से अवध में आयी। उसका पछतावा नाम मात्र के लिए था। सरस्वती का आना मङ्गलकारक है। सो अवधवासियों के लिए तो इस समय दुखदायी ग्रहदशा साढे साती से भी बढी हुई बनकर आयी।

सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचदु निहारी। अत प्रभु की ग्रहदशा ही सबकी ग्रहदशा है। सो बुध की महादशा म केतु के साथ शुक्र की अन्तर्दशा रूप से आयी। श्रीरामजी का जन्म बृहस्पति की महादशा उनीस वर्ष के लिए चारवर्ष तक वही दशा रही। तत्पश्चात् शनैश्चर की महादशा उनीस वर्ष के लिए आयी। चौबीसवें वर्ष में बुध की महादशा लगी। सत्ताईसवें म शुक्र की अन्तर्दशा आगयी। शुक्र केतु के साथ थे। इसलिए यह दुखदायिनी दशा थी। इसने पदच्युत करके ही माना।

दो नामु मथरा मदमति, चेरी कैकै केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥१२॥

अर्थ राजा कैकय की एक मन्दमति दामी मन्थरा नामी थी। उसी को अयश की पटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को उलटकर चली गई।

व्याख्या यह अवध की नहीं थी। कैकय देश से आयी थी। अयोध्यावासियों पर सरस्वती की कला नहीं चली। यह स्वभाव से मन्दमति था। अत इसपर कला चल गयी। इसकी बुद्धि पलटा खा गयी। सरस्वती को कोई दोष न दे। इसलिए उसे अयश की पेटारी बनाया। वह बेचारी भी यह नहीं चाहती थी। अत उसकी बुद्धि का पलटना कह रहे हैं। वह मन्दमति से तीव्र बुद्धि हो गयी। पर साधुबुद्धि के स्थान पर दुष्ट बुद्धि हो गयी। उसकी बुद्धि पलटकर सरस्वती की अधिष्ठात्री देवी हैं। बुद्धि को फिरा देना इनका काम है। यथा सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मांगेउ नीद मास पट वेरी।

दीख मन्थरा नगर बनावा। मजुल मगल वाज वधावा ॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू ॥१॥

अर्थ मन्थरा ने देखा कि नगर सजा हुआ है और मुन्दर मङ्गल के वधावे बज रहे हैं। लोगो से पूछा कि क्या उत्सव है। रामजी का तिलक सुनकर जी जल उठा।

व्याख्या सुनत राम अभिपेक सुहावा। वाज गहागह अवध वधावा ॥

एहि अवसर मगलु परम सुनि रहसउ रनिवास ।

सोभत लखि विधु बढत जनु बारिधि बीच बिलासु ॥

प्रथम जाइ जिन वचन सुनाए । भूपन वसन भूरि तिन्ह पाए ॥

उसी अवसर का यह प्रसङ्ग है । परन्तु वहाँ उल्लेख करने से दूसरी कथा प्रारम्भ हो जाती । वसिष्ठजी का रामजी को शिक्षा देने तथा देवताओं का सरस्वतीजी से विनय करने और सरस्वती के मन्थरा की बुद्धि पलटने का प्रसङ्ग छूट जाता । अतः वहाँ उल्लेख नहीं किया । कैकेयीजी के महल में पहिले पहल खबर सुनानेवाली का हाल लिखते हैं । बात यह हुई कि अति शीघ्रता के कारण महाराज को जाकर रनिवास में इस शुभ समाचार के प्रकाश करने का अवसर ही नहीं मिला । रनिवास में समाचार पहुँचने के पहिल ही नगर में समाचार फैल गया । सभी महल की दासियों ने इस भाँति लोगो से पूछकर रामजी के तिलक का समाचार पाया था । पर उनको मुनकर हर्ष हुआ । दौड़ी हुई महारानियों के यहाँ शुभ समाचार देने गयी । इसी भाँति मन्थरा ने भी लोगो से नगर का साज समाज और बधावा बजते देखकर पूछा । पर रामजी का अभिप्रेत सुनकर इसे हर्ष न हुआ । इसका जी जल उठा । क्योंकि इसकी बुद्धि को सरस्वतीजी ने फेर दिया था । इसे वह घटना याद आयी जब कि रामजी ने लडकपन में इसकी टाँग पकड़कर खैची थी । इस बात का उल्लेख अग्निपुराण में मिलता है । उसी वर से इसने कैकेयी को उलटा समझाया ।

करे विचारु कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाजु कवन विधि राती ॥

देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गँव तकै लेउँ केहि भाँती ॥२॥

अर्थ वह कुबुद्धि और नीच जाति विचार करने लगी कि किस उपाय से आज रात को ही यह काम विगड़ जाय । जैसे मधुकोप शहद का छत्ता देखकर कुटिल किराती यह मीका देखने लगता है कि इसी रात को यह शहद कैसे ले ले ।

व्याख्या सरस्वती ने बुद्धि फेर दी है । इसलिए कुबुद्धि कहा । राजा कैकेय की चेरी है कैकेयी के डाला के साथ आयी है । इसलिए कुजाति कहा । इस नीच बुद्धि और नीच जाति को अयोध्या का यह आनन्द देखकर जलन पैदा हुई । यह तरकीब सोचने लगी कि इस आनन्द का अपहरण मैं आज ही रात को कैसे कर लूँ । क्योंकि कल तो यह आनन्द रामजी के हाथ लग ही जायगा । रात बीत जाने पर फिर मेरा किया कुछ नहीं हो सकता ।

जिस भाँति मधु का छत्ता देखकर कुटिल किराती के मन में यह बात उठती है कि आज रात को ही इस मधु के छत्ते को किस उपाय से अपहरण कर लूँ । क्योंकि रात के समय मधुमक्षिकाओं को दिखाई नहीं पड़ता । वे विश्राम करती हैं । यही समय मधु लेने का है । सवेरा होते ही मक्षिकाओं को सूझने लगेगा । वे

जाग उठेगी मधुकोष का अपहरण करनेवाले के शरीर में मक्षिकाएँ चिपट जाती हैं और उसका प्राण बचना कठिन व्यापार हो उठता है। अतः वह रात को ही मधुकोष का अपहरण करती है। इस रूपक में अवधवासियों की उपमा मधु मक्षिकाओं से है। उनके आनन्द की उपमा मधुकोष से और मन्यरा की उपमा कुटिल किरातो से दी गयी है। कठिनता यह आपड़ी है कि उजेली रात है। यथा - सोहत जन बिधु बढत लखि वारिधि बीच विलासु। मक्षिकाएँ एकदम निद्रित नहीं हैं। यथा सकल कहहि कब होइहि काली। अतः मौका तजबीज रही है। मन में विधि बैठा रही है कि मैं तो चेरी छोड़कर रानी होने की नहीं हूँ। मेरा सम्पर्क कैकेयी से है। यह यदि मेरे कहने से भरत को राज्य और राम को वनवास माँगे तो राज्य मिलने पर भरत और कैकेयी दोनों वृत्तज्ञ होंगे। मैं उनकी आँख की पुतली बनकर रहूँगी। इस भाँति राज्य पर मेरी ही आज्ञा चलेगी। अब कैकेयी मेरा कहना कैसे माने? इत्यादिक विचार में लगना ही यहाँ गँव ताकना है।

सवेरा होते ही अभिषेकोत्सव प्रारम्भ हो जायगा। फिर कौन किसकी सुनता है। अतः विधि कोई ऐसी होनी चाहिए जिससे रात में ही काम बिगड़ जाय।

भरत मातु पहि गइ विलखानी । का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥
ऊतर देइ न लेइ उसासू । नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥३॥

अर्थ रोना चेहरा बनाकर भरतजी की माता के पास गयी। रानी ने हँसकर पूछा कि तू अनमनी क्यों हो रही है। उत्तर नहीं देती। लम्बी लम्बी साँस लेती है और स्त्रीचरित्र करके आँसू गिराती है।

व्याख्या विचार करके मनमें तरकीब बैठा ली। रोना चेहरा बना लिया। जिसमें रानी कारण पूछें और उसे कहने का अवसर मिले। बिना पूछे कहने से बात न बैठेगी। तब भरत की माता के पास गयी। कहने का भाव यह है कि भरतजी की माता हैं। कम से कम उनकी अनुपस्थिति में पुत्र के हितकी रक्षा के लिए अवश्य तैयार हो जायगी। रानी उसका रोना चेहरा देखकर हँस पड़ी। मन्द बुद्धि से सभी हँसी करते हैं। अतः उपाय ओखा पड़ा। अब बातको गहरो बनाने के लिए रानी के पूछने पर उत्तर नहीं देती। हृदय में शोक न रहने पर भी पूरा शोक का रूपक खड़ा कर देना नारिचरित्र है। सो उसने स्त्रीचरित्र का आश्रयण किया। लम्बी लम्बी श्वास लेने लगी। आँसू गिराने लगी। जिसमें रानी समझ कि कोई गम्भीर समस्या है।

हँसि कह रानि गालु बड तोरे । दीन्हि लखन सिख अस मन मोरे ॥
तबहुं न बोलि चेरि बडि पापिनि । छाडइ स्वास कारि जनु सापिनि ॥४॥

अर्थ रानी ने हँसकर कहा कि तू बड़ी मुहजोर है। मेरे मन में तो यह बात

आती है कि लक्ष्मण ने तुझे डाँटा है। फिर भी नहीं बोलती। बड़ी पापिनी चेरी है। काली सर्पिणी की भाँति श्वास लेने लगी।

व्याख्या : फिर भी बात न जमी। रानी ने यही समझा कि कोई अदनी सी बात है। यह मन्दमति तो है ही। मुँहजोर भी है। लक्ष्मण ने डाँटा फटकारा होगा। रामजी डाँटेंगे ही नहीं। दूसरे की किसकी ताकत है कि मेरी दासी को डाँट सके। पर मन्थरा साधारण पापिनी नहीं है। कपट को हृदय में बिठाना जानती है। अतः महारानी की उत्सुकता बढ़ाने के लिए फिर न बोली। उच्छ्वास और आँसू बहाने से काम चलते न देखकर काली सर्पिणी की फूत्कार की भाँति श्वास लेने लगी। इस मुद्रा ने काम कर दिया। रानी की बुद्धि में क्षोभ हुआ। वह डर गयी कि कोई भारी विपत्ति आयी है इससे यह ऐसा श्वास ले रही है और वह विपत्ति मेरे पर आयी है। इसलिए यह कहने का साहस नहीं कर रही है।

दो. सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु।

लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि, भा कुवरी उर सालु ॥१३॥

अर्थ भयभीत होकर रानी ने कहा कि कहती क्यों नहीं? रामजी, महाराज, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुशल तो हैं। यह सुनकर कुवरी के कलेजे में साल पड़ गयी।

व्याख्या : पति पुत्र से बढ़कर स्त्री के लिए कोई नहीं है। अतः उन पर आँच आना ही स्त्री के लिए सच्ची विपत्ति है। दो बार पूछने पर नहीं बोली। अतः रानी कहती है कि तू बतलाती क्यों नहीं? कुशल पूछने में जो सबसे प्रिय हाता है। उसी का कुशल स्वभाव से ही मनुष्य पहिले पूछता है। सो रानी ने सबसे पहिले रामजी की कुशल पूछी। महाराज की कुशल उसके बाद पूछती है। लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न की कुशल तो उसके भी बाद पूछती है। यह सुनकर कुवरी के कलेजे में मानो साल पड़ गया। जिसके कलेजे में साल पड़ जाता है उससे साँस लेते नहीं बनता है और वह टेढ़ा हो जाता है। उससे सीधे खड़े होते नहीं बनता। कुवरी तो भरत की माँ जानकर आयी थी। पर रानी तो रामजी की माँ की भाँति बोली। उसने पहिले रामजी की कुशल पूछी। भरत की कुशल तो लक्ष्मण के भी बाद पूछती है। यह लक्षण तो काम बनने का नहीं है। मन्थरा कुवरी तो थी ही। यह कलेजे में साल पड़नेवाली वाणी सुनकर और भी टेढ़ी हो गयी।

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करवकेहि कर बलु पाई ॥

रामहि छाडि कुसल केहि आजू। जिन्हहि जनेसु देइ जुवराजू ॥१॥

अर्थ : माई। मुझे कोई क्या सोख देगा? मैं किसके बल पर मुँहजोरी कर सकती हूँ? राम को छोड़कर आज किसकी कुशल है। जिसे राजा युवराज पद दे रहे हैं।

व्याख्या : मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है और मैं किस गिनती में हूँ कि

मुझे कोई सीख देगा । सीख का भय तो उसे रहता है । जो किसी गिनती में हो । भाव यह कि सीख का भय तुम्हें है । मुझे नहीं है । यह दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें का उत्तर है । अब गाल बड़ तोरे का उत्तर देतो है कि जिस बल से मैं मुहजोरी करती रही वही बल आज जाता रहा । मुझे तो तुम्हारा बल था । सो तुम्हारा ही बल नहीं रह गया ।

रामजी की कुशल पहिले पूछी थी । उसपर कहती हैं कि उन्हें छोड़कर आज कुशल किसकी है । भाव यह कि भरत की कुशल नहीं है । क्योंकि राजा तो युवराजपद रामजी को दे रहे हैं स्पष्ट कहने में भय है । इसलिए लक्षणा व्यञ्जना से काम लेती है । जो युवराज हो उसी की कुशल है । महाराज जनेश हैं । जिसे चाहे उसे युवराज बनावें । उन्हें रोवनेवाला कौन है । सो रामको चाहते हैं भरत को नहीं ।

भयेउ कौसिलहि विधि अति दाहिन । देखत गरव रहत उर नाहिन ॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥२॥

अर्थ - विधाता कौसल्या के अत्यन्त अनुकूल हो गये हैं । जिनको देखकर हृदय से अभिमान दूर हो जाता है । आप जाकर सब शोभा देखिये । जिसे देखकर मेरा मन चञ्चल हो उठा है ।

व्याख्या : विधाता तो पहिले से ही कौसल्या के दाहिने हैं । सब सीत : सपत्नियाँ उनकी सेवा करती हैं । अब तो अत्यन्त दाहिने हुए हैं । तुम्हें भी सेवा करनी पड़ेगी । राजमाता कौसल्या होगी । तुम्हारे भाग्य से राजमाता होने का सुख उठा चाहता है । आज कौसल्या के देखने से सपत्नियों को हृदय में सीहाग का गर्व न रह जायगा ।

मेरे मन में क्षोभ नहीं होता । इससे उछल्ले लोग समझते हैं कि यह मल्लिमन्द है । सो आज की शोभा देखकर मेरे मन में क्षोभ हो गया । तुम्हारी चेरी होने से मुझे क्षोभ हुआ कि स्वामिनी का अभिमान टूटा तो मेरा भी टूट गया । यह का अनमनी हसि का उत्तर है ।

पूतु विदेस न सोचु तुम्हारे । जानति हहु वस नाहु हमारे ॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥३॥

अर्थ : बेटा विदेश में है । तुम्हें उसकी चिन्ता नहीं है । समझती हो कि पति मेरे वश में हैं । तुम्हें तो नीद और तोशक तकिया बड़ा प्रिय है । राजा की कपटचतुरता तो तुम्हें सूझती नहीं ।

व्याख्या - आज तुम्हारा बेटा घर होता तो अपने लिए कुछ करता । जिसका बेटा घर में है उसे तो अपने बेटे की चिन्ता है । तुम जानती हो कि महाराज तुम्हारे वश में हैं । पर वे तुम्हारे वश में नहीं हैं । तुम्हें अपने बेटे की चिन्ता होनी चाहिए थी जो परदेश में है । पर हमें चिन्ता है । तुम्हें नहीं है । तुम तो निश्चिन्त

होकर सोना जानती हो । तुम्हे नौद प्रिय है और तोशक तबिया प्रिय है । तुम राजा की प्यारी हो । तुम्हारे बेटे के लिए यह सामान होना चाहता था । पर राजा को प्यारी तो कौसल्या है । तुम पर प्यार तो केवल दिखाने के लिए है । तुम उस कपटचतुराई को लख नहीं सकती ।

सुनि प्रिय वचन मलिन मनु जानी । झुकी^१ रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कवहुँ कहसि घरफोरी । तव धरि जीभ कढावौ तोरी ॥४॥

अर्थ - प्रिय वचन सुनकर और उसे मलिन मन जानकर रानी विगड उठी कि बस अब चुप रह । रे घरफोरी । अब यदि फिर तूने ऐसी बात वही तो पकड़कर तेरी जिह्वा खिचवा लूँगी ।

व्याख्या सारग्राहिणी बुद्धि भगवती कैकेयी की थी । तुरन्त समझ गयी कि यह रामजी के राजतिलक का प्रिय समाचार दे रही है । पर इसका मन मलिन है । अतः ऐसी प्रिय घटना को इस दृष्टि से देख रही है । ईर्ष्या द्वेषयुक्त नीचबुद्धि तथा मनोमालिन्य पर क्रोध किया । ऐसे दुष्ट वचन को सुनना भी नहीं चाहती । अतः आज्ञा देती हैं कि चुप रह । भविष्य के लिए सचेत किये देती हैं कि मेरे वचन कौसल्या के प्रति ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न करनेवाले है । पति के प्रति दुर्भाव उत्पन्न करनेवाले है । इसलिए तू घरफोरी है । घर फाड़नेवाली बातें बोलती है । इस वार मैं क्षमा करती हूँ । फिर यदि तूने ऐसे वचन मुख से निकाले तो घर फोड़नेवाले के लिए यही दण्ड है कि उसकी जीभ खिचवा ली जाय ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग श्रेता माँहि ।

दो काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि ।

तिय बिसेपि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि ॥१४॥

अर्थ : यह जानकर कि काने लँगड़े और कुबड़े कुटिल और कुचाली होते हैं । तिस पर स्त्री और फिर दासी ऐसा कहकर भरत को माँ ने मुसकरा दिया ।

व्याख्या घर फोड़नेवाला वचन कहने का कारण यही है कि कुलक्षण तुझमें मौजूद है । काने लँगड़े और कुबड़े कुटिल और कुचाली होते हैं । यहाँ प्रसङ्ग कुबड़े का है । स्त्री यदि कुबड़ी हुई तो अधिक अवगुण उसमें चमक उठते हैं । तिस पर चेरी में दुष्कुलप्रसूता होने से उनका अत्यन्त उत्कर्ष हो जाता है । चेरी दुष्कुल प्रसूता के अर्थ में आया है । यथा कुलवति निकारहि नारि सती । गृह आनहि चेरि निवेरि गती । तुझमें ये कुलक्षण मौजूद है । अतः तू ऐसी बात बोली । रामजी का अभिप्रेक सुनकर प्रसन्न थी । केवल मन्थरा की अनुचित उक्ति पर क्रोध दिखलाया । बात समाप्त होते ही प्रसन्नता झलक उठी ।

१ झुकी अर्थात् क्रोध किया । यथा लखन सुजान झुकि झारें कीरवान ।

प्रियवादिनि मित्र दोन्हिउं तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥१॥
अर्थ : हे प्रिय - बात कहनेवाली मैंने तुझे सीख दो है । तुझ पर मुझे स्वप्न
मे भी क्रोध नहीं है । सुमङ्गलदायक सुदिन वही है जिस दिन तेरा कहना
सच होगा ।

व्याख्या तूने प्रिय वचन रामजी के तिलक का समाचार सुनाया । तुझे
पुरस्कार देना था । सो मैंने तुझे डाँट बतलायी । तुझे शिक्षा देने के लिए इतना ही
बहुत है । मैं तुझपर अप्रसन्न नहीं हूँ - वह नहर से साथ आयी है । इसलिए उसपर
बड़ा प्रेम है उसे समझा रही हूँ : तूने जो कहा कि : रामहि छाडि कुसल केहि आजू
सा ठीक नहीं । राम के अभिप्रेक से ही सबका कुशल है । अतः उनके अभिप्रेक का
दिन सबके लिए सुमङ्गलदायक सुदिन है । तूने जो समाचार सुनाया वह जिस दिन
सच्चा होगा उसे मैं मङ्गलमय मानूँगी । रामहि छाडि कुसल केहि आजू का उत्तर ।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । येह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौ साचेहुँ काली । देउं मागु मन भावत आली ॥२॥

अर्थ : जेठा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है । यह सूर्यकुल की
सुन्दर रीति है । यदि सचमुच कल ही रामजी को राजतिलक होना है तो
है आली । तू मनचाही बात माँग ले । मैं देतो हूँ ।

व्याख्या . जो तूने महाराज पर आक्षेप किया है जेहि जनेस देइ जुवराजू ।
सो उनका दोष कुछ भी नहीं है । इस कुल की यही रीति है । राम जेठे हैं । इसलिए
उनका राजतिलक हो रहा है । यदि भरत जेठे होते तो उन्ही का होता । राज्य मे
विभाग नहीं होता । वह जेठे भाई को मिलता है । छोटे सेवक हैं । गुजारा के
हमदार हैं । यही सुन्दर रीति है । यदि राज्य मे भाई भाग पावें तो राज्य छिन्न
भिन्न हो जाय । श्रीरामजी के तिलक के लिए मैं कई बार महाराज से कह चुकी हूँ ।
यथा : भामिनि भयउ तोर मन भावा । घर घर नगर अनद बधावा । पर कल ही
तिलक है । यह मैं नहीं जानती । मुझे तो विश्वास कम पड़ता है । क्योंकि मुझे
इसका कुछ भी पता नहीं है । यदि सचमुच कल ही अभिप्रेक है तो तूने पहिले पहल
शुभ समाचार सुनाया है । तू मनचाही हुई बात माँग ले मैं दूँगी । अन्य रानियो
ने पहिले पहल इस शुभ समाचार सुनानेवाले को भूषण वसन दिये । पर कैंकेयो का
स्वभाव महाराज के स्वभाव से मेल खाता है । यह उसी भाँति मनचाहा हुआ
पदार्थ देने को प्रस्तुत हैं जिस भाँति चक्रवर्तीजी देते हैं । यथा : दिये वृक्ष रुचि
रघुकुलनदन ।

कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभाय पिआरी ॥
मो पर करहि सनेहु विसेपी । मैं कर प्रीति परीछा देखी ॥३॥

अर्थ • रामजी को सब माताएँ कौसल्या के समान सहज स्वभाव से ही पियारी हैं। मुझ पर तो विशेष प्रीति करते हैं। मैंने प्रीति की परीक्षा करके देख ली।

व्याख्या : भगवती वैंकेयी कहती हैं कि जो तूने कहा भयउ कौसिलहि विधि अति दाहिन सो तेरी भूल है। रामजी मे विशेषता है। उन्हें सब माताएँ कौसल्या की भाँति प्यारी हैं। अतः सब माताओं को विधि समान रूप से दाहिने हैं। कौसल्या को अति दाहिन नहीं मुझे अति दाहिन है। क्योंकि रामजी को मुझ पर अधिक प्रीति है। मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है। माता बेटों की प्रीति की परीक्षा बड़ी छोटी छाटी बातों में कर लेती है। इस परीक्षा के लिए किसी बड़ी भारी घटना की आवश्यकता नहीं होती।

जौ विधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिध पूत पुतोहू ॥
प्राण ते अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरे ॥४॥

अर्थ • यदि ब्रह्मदेव छोहू करके जन्म दे ता राम जानकी बेटा पतोहू हो। रामजी मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक में तुझे क्षोभ क्यों हैं ?

व्याख्या कुवरी ने जो यह कहा था पूतु विदेस न सोचु तुम्हारें। इसपर कहती है कि क्या राम पर मुझे भरत से कम प्रीति है ? राम का वर्तन ऐसा है कि मैं विधि से मनाती हूँ कि यदि आप छोहू करके जन्म दें तो राम जानकी बेटे पतोहू हो। अर्थात् मैं भरत माण्डवी से अधिक राम जानकी से सन्तुष्ट हूँ। मुझे रामजी प्राण से अधिक प्रिय है। जिस भाँति दशरथजी ने कहा था सब सुत प्रीय प्राण की नाई। राम देत नहि वनै गोसाईं। उसी भाँति भगवती वैंकेयी भी कहती हैं कि रामजी मुझे प्राण से भी अधिक प्यारे हैं। उनके राजतिलक का समय तो उत्साह का है। तुझे क्षोभ क्यों है ? जो अवलोकित मोर मन छोभा का उत्तर है।

दो भरत सपथ तोहि मत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।

हरप समय विसमउ करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥१५॥

अर्थ • तुझे भरत की शपथ कपट के छिपाव को छोड़कर सच कह। हर्ष के समय तू विपाद करती है। इसका कारण मुझे बतला।

व्याख्या भरत पर अत्यन्त प्रेम देखकर मन्थरा को भरत का ही शपथ देती है कि तू सच सच बतला दे। तेरी बातों से मुझे मालूम हो रहा है कि तू कपट से कुछ बातें छिपा रही है। इस हर्ष के समय में तुझे विपाद कहाँ से हो आया ? इसका कारण होना चाहिए। जो कारण तूने दिया उसमें कोई तत्त्व नहीं है। इसलिए सच्ची बात मुझे बतला दे।

एकहि वार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥

फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा ॥१॥

अर्थ : एक ही वार मे सब आशा पूरी हो गयी । अब क्या दूसरी जीभ लेकर कुछ कहेंगी । मेरा अभागा कपाल फोड़ने लायक है । जो भला कहते हुए आपको बुरा लग गया ।

व्याख्या : मन्यरा कहती है कि बात तो मुझे वही कहनी है । जो पहले कह चुकी हूँ और फिर वैसी बात कहने से आप जीभ खिचवा लेंगी । अब तो मैं उसी दशा में वैसी बात कह सकती हूँ जब कि मुझे दूसरी जीभ कहीं से मिल जाय । जिसमें आप के खिचवा लेने पर भी एक जीभ बची रहे । मैं तो यह आशा करके चली थी कि भरत नहीं हैं तो उनकी माँ तो हैं । उन्हें चलकर सब बातें समझाऊँ । सो आप उलटे मुझपर अप्रसन्न हो गयी । अतः सारी आशा पर पानी फिर गया । आप जीभ खिचवाने लगी ।

मेरा कपाल फोड़ने लायक है । जीभ खिचवाने लायक नहीं है । क्योंकि जीभ तो ठीक बात कहती है । उसका अपराध नहीं है । फोड़ने लायक मेरा कपाल है, जिसमें लिखा है कि मैं भले को बात कहूँ तो सुननेवाले को बुरा लगे । मैं भला कहती हूँ और आपको बुरा लग रहा है । तो मेरी किसमत का ही दोष है : इस भाँति अपनी नेकनीयती दिखलाती है ।

कहहि झूठि फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहवि अब ठकुरसोहाती । नाहि त मौन रहव दिनु राती ॥२॥

अर्थ : माता ! जो झूठी बातों को सच्ची बनाकर कहे वे ही तुम्हारे प्यारे हैं और मैं कड़वी हूँ । अब मैं भी ठकुरसोहाती कहा करूँगी । नहीं तो दिन रात मौन रहूँगी ।

व्याख्या : मैं सच्ची कहती हूँ तो घरफोरी समझी जाती हूँ । जो झूठी झूठी बातों को सच्ची बना बनाकर कहती हैं तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाती हैं : राम बहुत अच्छे हैं । सीता बड़ी अच्छी हैं । महाराज तुम्हें ही मानते हैं । इत्यादि बातें कहे वे ही तुम्हें प्रिय हैं । मैं सच्ची बातें कहती हूँ इसलिए मैं अप्रिय हूँ ।

अभी तक तो मैं ठकुरसोहाती नहीं कहती थी । पर अब कहनी पड़ी । यदि खरा कहने का स्वभाव छोड़ते न बनेगा तो दिन रात मौन रहूँगी । अब समझ लिया कि इस दरबार में सच्चे का गुजर नहीं है और ठिकाना मुझे दूसरा है नहीं । अतः सिवा इस भाँति आचरण किये अन्य उपाय नहीं है : कैकेयी के प्रिय : विप्र वधू कुल मान्य जठरी : पर ठकुरसोहाती कहने का दोष लगाती है । जिससे उन लोगो की कही सुनी बातों से रानी का चित्त हटकर उसी की बातों पर विश्वास करें ।

करि कुरूप विधि परवस कीन्हा । बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होव कि रानी ॥३॥

अर्थ : कुरूप बनाकर ब्रह्मा ने मुझे परतन्त्र कर दिया । जो बोया है वही

काटना है । जो दिया है वही मिलना है । कोई भी राजा हो मेरी क्या हानि है । मैं तो चेरी छोड़कर अब क्या रानी होऊँगी ।

व्याख्या काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि का उत्तर देती है कि ब्रह्मा ने कुरूप बना दिया । तभी न गुलामी करती हूँ । भाव यह कि यदि ब्रह्मा रूपवती बनाये होते तो मैं भी रानी हुई होती । दासी क्यों होती ? करे जो कर्म पाव फल सोई । मैंने खोटे कर्म किये हैं । उन्हीं का परिणाम भोग रही हूँ । जो जैसा वोता है उसे वैसा ही फल मिलता है । जो देता है वही पाता है । न जाने कौन पाप किया जो दासी हुई । अब ठकुरसोहती झूठी बातें कहकर अपना परलोक नहीं बिगाड़ूँगी । तिस पर मेरा कोई हानि लाभ नहीं है । चाहे कोई राजा हो । इस समय भी चेरी हूँ । दूसरा राजा होगा तब भी चेरी ही रहूँगी । मेरा कोई स्वार्थ नहीं है । अब कहने का भाव यह कि इस अवस्था में मुझे तो रानी होना नहीं है . भाव यह कि हानि तो उसे है जो रानी से चेरी हुआ चाहती है । यह प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे का उत्तर है ।

जारइ जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥

ता ते कछुक बात अनुसारी । छमिअ देवि बड़ चूक हमारी ॥४॥

अर्थ - मेरा स्वभाव जलाने लायक है । मुझसे तुम्हारा बुरा देखा नहीं जाता । इसी से थोड़ी सी बात चलायी थी । सो मेरी बड़ी भारी चूक को देवी । क्षमा करो ।

व्याख्या जिसका भला चाहा उसे अपना भला पसन्द नहीं है । लोग बुद्धि से काम लेते हैं । मेरा स्वभाव पड़ गया है कि मैं ऐसे अवसर पर बुद्धि से काम नहीं ले सकती । अतः मेरा स्वभाव जलाने लायक है । मुझसे तुम्हारा अनभल देखते नहीं बनता । इसीलिए रोती हूँ, बिलखती हूँ । नहीं तो मेरा क्या बिगड़ता है । जन्म से तुम्हारा भला देखती आयी हूँ । सो स्वभाव पड़ गया भाव यह कि तुम्हारी सखियाँ तुम्हारा अनभल देख सकती हैं । इसलिए तुम्हारी सी बातें बालती हैं ।

जो थोड़ा कहा सा कहा । अब विशेष कहने में भय है । मैं कहने कहाँ पायो । थोड़ी सी बात कहने में तो जीभ निकालो जाने लगी । जो कहा वही चूक हुई । अब क्षमा कर दो । ऐसी चूक फिर न होगी ।

दो. गूढ कपट प्रिय वचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि ।

सुर माया बस वैरिनिहि, सुहृद जानि पतिआनि ॥१६॥

अर्थ : गूढ कपट भरे हुए मोठे वचन सुनकर स्त्रियों की बुद्धि तो होठा पर ही होती है । रानी देवमाया के वश हो रही थी । अतः वैरिन को मित्र मानकर विश्वास कर गयी ।

व्याख्या : गूढ वाणी यथा : कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि

अब होच कि रानी । कपट युक्त वाणी यथा : कछुका वात अनुसारी । छमिअ देवि वड चूक हमारी । प्रिय वाणी यथा . अनभल देखि न जाइ तुम्हारा । ऐसी वाणी सुनकर रानी अपने निश्चय से हट गयी । स्त्रियो की बातें तो बुद्धिमानो की होती हैं । परन्तु धोरा जल्दी सा जाती हैं । महाराज भी कपट चतुर हैं । मोठी बातें करके तुम्हें ठगा करते हैं । इत्यादि बातें विश्वास के योग्य नहीं थी । पर कैकेयी ने धोखा खाया । तिसपर रानी देवमाया से मोहित हो रही थी । राम विमुख करनेवालो वैरिन मन्थरा को हितेच्छु समझकर विश्वास कर गयी । मन्थरा की बुद्धि शारदा ने फेरी और कैकेयी की बुद्धि को ब्रह्मा ने फेरा । यथा विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कोन्ही वावरो । इसलिए रानी को सुरमाया बस बतला रहे हैं ।

सादर पुनि पुनि पूछति ओही । सवरी गान मृगी जनु मोही ॥

तसि मति फिरी अहई जसि भाबी । रहसी चेरि घात जनु फावी ॥१॥

अर्थ . आदर के साथ बार बार उससे पूछती है । मानो शवरी के गाने पर मृगी मोहित हो गयी हो । जैसा होनहार है वैसी ही बुद्धि फिरी हुई है । चेरी . मन्थरा हर्षित हुई । मानो दाँव ठीक बैठ गया ।

व्याख्या . पहिले भी पूछा था परन्तु अनादर से । यथा . का अनमनि हसि कह हँसि रानी । अब आदर के साथ पूछती है । बार बार पूछने का भाव यह कि मन्थरा उत्तर नहीं देती है : छमिअ देवि वड चूक हमारी कहकर चुप हो गयी । रानी ने पूछा : कारन मोहि सुनाउ । पर इस बात का उसने कुछ उत्तर नहीं दिया । अब रानी आदर के सहित बार बार पूछती है । वह फिर भी चुप है । कारण यह कि उसे तो धरफोड़नेवाली बात कहनी है । अति आग्रह से बिना पूछे ही वह देने से फिर बात उखड़ जायगी । इसलिए चुप है । रानी की समझ में यह नहीं आ रहा है कि रामजी के अभियेक में मेरा अनभल क्या है ? इसलिए बार बार पूछती है । मन्थरा ने कह दिया : रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू । पूतु विदेस न सोचु तुम्हारे । फिर भी यह बात मन में ठीक बैठती नहीं । अथवा वचन तो मृदु हैं । पर उसमें कपट छिपा हुआ है ।

शवरी एक जङ्गली जाति है । उस जाति की स्त्री ऐसा गाना जानती है कि सुनकर मृगी मोहित हो जाती है और उसके निकट चली आती है । यहाँ शवरी मन्थरा है । वह : जिमि गवैं तकै लेउँ वेहि भाँती । इस भावना को . कोउ नृप होउ हमहि का हानी कहकर छिपाती है । और अनभल देखि न जाइ तुम्हारा कहकर हितेपिता प्रकट करती है । यही उसका गाना है । इस पर रानी मृगी की भाँति मोहित है । उसके कपट को नहीं समझ रही है । मृगी की भाँति उसके सन्निकट चली आ रही है । उसकी माया में फँसा चाहती है ।

देवता बुद्धि बिगाड़ देते हैं । सो ब्रह्मदेव बुद्धि के अधिष्ठात्री देवता हैं । भवितव्यता के अनुसार उन्होंने रानी की बुद्धि को पलट दिया है । वैरिन को मुहूर्त समझकर विश्वास कर रही है और उसके चुप रहने पर बार बार पूछती है ।

समझती है कि मेरे भय से नहीं बोल रही है। रानी की यह दशा देखकर मन्थरा प्रसन्न हो गयी कि मेरा धात तो बैठ गया। ऐसी ही परिस्थिति को वह उत्पन्न कर देना चाहती थी।

तुम्हें पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाउँ ॥
सजि प्रतीति बहुविधि गढि छोली। अवध साढेसाती तब बोली ॥२॥

अर्थ . तुम तो पूँछती हो। पर मुझे कहते डर लगता है। मेरा नाम तुमने घरफोरी रख छोड़ा है। विश्वास जमाकर और बहुत कुछ गढ़कर और छोलकर तब अयोध्या की साढेसाती दशा मानो बोली।

व्याख्या . भाव यह कि मैं बात वही कहूँगी। उसी का स्पष्टीकरण करूँगी। जो पहिले कहा था। और तुम उस बात को घर का फोड़ना मानती हो। इसी से मैं कहने में डरती हूँ। चरचा छेड़ते ही तो मेरा नाम घरफोरी रख दिया। मैं विस हिम्मत से मनोगत भाव को स्पष्ट करूँ।

पहिले उसने कैकेयी के मन में अपना विश्वास जमाया और तब बहुत प्रकार से गढ़ा और छोला। अपनी चित्तवृत्ति के अनुकूल रानी की मनोवृत्ति को बनाना गढ़ना है और उदार भावनाओं को उनके मन से दूर करना ही छोलना है। इन कार्यों को भली भाँति ममाप्त करके तब वह मुख्य विषय पर आयी। कवि उसको उपमा अयोध्या की साढेसाती शनैश्चरी दशा से देते हैं। यह दशा दुःसह दुःखदायिनी होती है। यथा समय साढेसाती सरिम, नृपहिं प्रजहिं प्रतिकूल। रा प्र। पहिले सरस्वती को 'हरखि हृदय कोसल पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई कहा था। अब मन्दमति मन्थरा के बोलने की उपमा अवध की साढेसाती दशा के बोलने से दे रहे हैं। मन्थरा को त्रिभङ्गी मूर्ति है और साढेसाती भी तीन अढैया की होती है।

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि वानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहि पिरीते ॥३॥

अर्थ रानी। तुमने पहिले कहा था कि सीता और राम तुम्हें प्रिय हैं और तुम राम को प्रिय हो। यह बात सच्ची है। परन्तु पहिले यह बात थी। अब वे दिन बदल गये। समय के पलटा खाने से अपने प्यारे भी शत्रु हो जाते हैं।

व्याख्या . रानी की बड़ी आस्था है कि सीता और राम मुझे प्यारे हैं और मैं उन्हें प्रिय हूँ। मैंने परीक्षा करके देख लिया है। दूसरे के कहने से मैं इसके विपरीत नहीं मान सकती। इसलिए मन्थरा उस बात को अङ्गीकार करती है कि यह बात ठीक है। परन्तु यह तो भूतकाल की बात है। तब तुम्हारा समय जमाना था। अब तो तुम्हारे वे दिन नहीं रह गये। तुम्हारी तो जड़ उखड़ा चाहती है। शासनाधिकार महाराज के हाथ से निकलकर राम के हाथ में जाना चाहती है। जिस राम को प्राणों से प्रिय मान रही हो वे ही तुम्हारे शत्रु हो जायेंगे। जब तुम्हारा समय

था तब तुम्हारे प्रेमपात्र बनने में ही कुशल था । अतः वे प्रिय बने हुए थे । पर अब तो उनकी आज्ञा चरणी । महाराज की न चल्गी । तब वे तुम्हारी परवाह क्या करने लगे । तुम्हें अपनी आज्ञा में हस्तक्षेप करते देखकर तुम्हारे शत्रु हो जावगे । राम पर ही यह बात नहीं है । समय के पलटने पर अपने प्रिय ही शत्रु हो जाते हैं । यही ससार का नियम है । जबतक महाराज के हाथ में शासन है तबतक तुम्हारा समय है । महाराज के हाथ से शासनाधिकार के निकलते ही तुम्हारा समय पलटा खा जायगा ।

भानु कमल कुल पोषण हारा । विनु जर जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाय वर बारी ॥४॥

अर्थ सूर्य कमलकुल को पोषण करनेवाला है । पर बिना जड़ का हो जाने से उसी को जलाकर छार कर देता है । तुम्हारी जड़ को तुम्हारी सौत उखाड़ना चाहती है । उसे उपाय के श्रद्धा बाँड लगाकर रूँधो ।

व्याख्या जड़ बनी रहने से ही सूर्य कमलकुल के पोषक है । जड़ उखड़ने पर वही शोषक हो जाते हैं । इसी भाँति जबतक तुम्हारी जड़ बनी हुई है महाराज का शासन चल रहा है तबतक बराबर रामजी तुम्हारा प्रिय आचरण करते रहेंगे । जिस दिन महाराज का शासनकाल समाप्त हुआ तुम्हारी जड़ उखड़ जायगी । उसी दिन से वही रामजी शापक हो जावेंगे । रामजी भी सूर्यकुल के हैं । क्या अपने कुल की परम्परा छोड़ देंगे ?

रामजी का युवराज होना और तुम्हारा जड़ उखड़ना एक बात है । अपने बेटे के हाथ शासनाधिकार दिलाकर तुम्हारी सौत कौसत्या तुम्हारी जड़ उखाड़ा चाहती है । अतः अपनी जड़ की रक्षा करो । उसे उपाय की बाँड लगाकर रूँधो । ऐसा उपाय करो कि तुम्हारी जड़ तब सौत की पहुँच न हो । अब विचारणीय यह है कि कैसा उपाय किया जाय कि तुम्हारा अधिकार अभ्युन्नत बना रहे और तुम्हारी सौत का प्रयत्न निष्फल हो ।

दो तुम्हहि न सोचु सोहाग बल, निज वस जानहु राउ ।

मन मलीन मुहु मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ ॥१७॥

अर्थ तुम्हें सोहाग के बल से सोच नहीं है । तुम जानती हो कि राजा मेरे वश में हैं । पर राजा मुँह के मीठे और मन के मालिन हैं और आपका स्वभाव सरल है ।

व्याख्या तुम धोखे में हो । तुम्हारे मन में सोहाग का बल है । इसीसे तुम्हें चिन्ता नहीं है । सोहाग पति के प्रिय होने को कहते हैं । तुम जानती हो कि महाराज मेरे वश में हैं । पर राजा किसी के मित्र नहीं होते । राजा मित्र केत दृष्ट श्रुत वा । वे तुम्हारे वश में नहीं हैं । पर जिस सोहागबल नहीं है उस चिन्ता है । यदि कहा

कि महाराज का व्यवहार इतना मधुर है। उसपर कहती हैं कि महाराज मिठबोल्ले हैं। मीठीमीठी बातें करते हैं। पर मन उनका मलिन है। आप नहीं लख सकती। क्योंकि आपका स्वभाव सरल है। आपमें गम्भीरता नहीं है। पहिला काम मन्थरा ने यह किया कि राजा पर से कैनेयो की आस्था के हटाने का प्रयत्न किया। क्योंकि यदि ऐसा न हुआ तो उसके सारे प्रयत्न ही विफल हो जावेंगे। सरल स्वभाव कह कर रानी की प्रशंसा करती है जिसमें विश्वास कर जाय। नहीं तो राजा का मलिन मन नहीं मानेगी।

चतुर गंभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठये भरतु भूप ननिआरे। राम मातु मत जानव रौरें ॥१॥

अर्थ रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। मौका पाकर अपनी बात सँवार ली। राजा ने जो भरत का ननिहाल भेज दिया है उसे आप जान रखिये कि रामजी की माता की सलाह से भेजा है।

व्याख्या रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। उनकी बातों का मर्म मिलना कठिन है। वे राम की महतारी हैं। जब उन्होंने देखा कि महाराज की इच्छा है कि राज्यभार किसी पुत्र को सौंप दे तो उन्होंने अपना काम सँवार लिया। रामजी के राजतिलक की तैयारी होने लगी। तुम तो सरल हो। न तुम्हारे में चतुराई है न गम्भीरता है। तुम्हें अपने बेटे की चिन्ता नहीं है। आज भरत होते तो यह कुछ भी क्या होने पाता। इस बात को महाराज समझते हैं। इसलिए भरत को ननिहाल भेज दिया। यह रामजी की माता का मन्त्र है कि भरत को ननिहाल भेज दो। तब रामजी के तिलक में कोई कण्टक न रह जायेगा।

सेवाहि सकल सवति मोहि नीके। गरवित भरत मातुवल पी के ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहि होइ जनाई ॥२॥

अर्थ सब सौत तो मेरी भलीभाँति सेवा करती है। पर भरत की माता पति के बल से अभिमान करती है। इस बात का तुम्हारी ओर से कौसल्या को बड़ा दुःख है। पर कपट में चतुर हैं। इसलिए प्रकट नहीं होने देती।

व्याख्या पट्टाभिषिक्ता महिषी होने के कारण सब सौते कौसल्याजी की सेवा टहल करती हैं। एक तुम हाजिरी नहीं बजाती। तुम्हें पति की प्यारी होने का बल है। इसलिए तुम उन्हें नहीं गिनती। इस बात का कौसल्या को साल है जिसे साल पड़ जाती है उसे ऐसा वष्ट होता है कि श्वास नहीं लिया जाता। यदि कहो कि उनका व्यवहार तो बड़े प्रेम का है। इसपर कहती हैं कि कौसल्या कपट में चतुर है। तुम्हारे समान सीधी देवकूफ नहीं हैं। अपने साल को प्रकट नहीं होने देती। अतः उनको तुमसे बुरा मानने के लिए यथेष्ट कारण है। उनका बेटा राजा हो तब यह साल मिटे।

राजहि तुम्ह पर प्रेमु विसेखी । सवति सुभाउ सकइ नहि देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ॥३॥

अर्थ : राजा का तुम पर अधिक प्रेम है । सौत का स्वभाव है । इसे वे देख नहीं सकती । अतः प्रपञ्च रचकर राजा को अपने हाथ में कर लिया और रामजी के तिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया ।

व्याख्या : राजा का प्रेम तो सब पर है । केवल तुम्हारे पर ही नहीं है । हाँ तुम्हारे ऊपर अधिक प्रेम है । वह प्रेमाधिक्य सौत से देखा नहीं जाता । यह स्त्रीजाति का स्वभाव है । कौसल्या को मैं दोष नहीं देती । कौसल्या स्त्री चरित्र में पण्डित है । राजा उनके हाथ में नहीं थे । पर माया रचकर राजा को हाथ में कर लिया । अतः रामजी के राजतिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया । तुम्हें पता भी नहीं ।

यहु कुल उचित राम कहुं टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डर मोही । देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥४॥

अर्थ : इस कुल में रामजी को टीका होना उचित है । सबको अच्छा लग रहा है और मेरे लिए तो बहुत अच्छा है । अगली बात समझकर मुझे डर हो रहा है । पर देव वह फल लौटकर उन्हीं को दे ।

व्याख्या : यदि कहो कि यह सब बात सही । पर जो हो रहा है वह तो उचित ही हो रहा है । जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सोहाई । और सबको प्रिय हैं । इसपर कहती है कि मुझे तो बहुत ही अच्छा है : जिनमें यह न समझें कि रामतिलक से इसे दुख है । तुम्हारा जिसपर प्रेम है । उसी को राजतिलक मिल रहा है । इसलिए मेरे सर्वथा अनुकूल है । पर भविष्य देखकर मुझे डर हो रहा है । टीका होने के बाद तुम्हारी क्या दशा होगी । उसे मैं सोचती हूँ । भगवान् करे कि यह दशा उसी की हो जिसने यह माया रची है : ऐसा कहकर कैकेयी को उसके ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आने का डर दिखा रही है ।

दो. रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।

कहिसि कथा सतु सवति कै, जेहि विधि बाढ बिरोधु ॥१८॥

अर्थ : करोड़ों कुटिलताओं को रचकर और पच्चीवारी करके कपट का ज्ञान कराया और सौ सौतों की कथा कही । जिन भाँति विरोध बढ़े ।

व्याख्या : बहुत सी नयी झूठी झूठी कुटिलता की बातें गढ़ी । कुछ सच्ची बातों में झूठ की पच्चीकारी की । उस कपट से अपरिचित रानी को कपट कराया । यथा -

कहा उचित लै कीजिये जौ अपनो संहार ।

बढत नहाए गगहू ज्वर को वेग अपार ॥१॥

परमारथ मुखन कहत हिय स्वारथ भरिपूर ।
 ऐसे के मुह दीजिये भरिभरि मूठी धूर ॥२॥
 चहत राज निजपूत हित कहत ताहि कुल धर्म ।
 किमि समुझै तुमसे सुहृद कुटिल सौत को मर्म ॥३॥
 पति करते निज सौत को जो होवै अपवार ।
 तो याते बढि आन नहि आनंद एहि ससार ॥४॥
 कौशल्या सोई चहत करन आज खिलवार ।
 नृपके करते ही तुम्हे वोरन को मझधार ॥५॥
 कपट चाल कोटिन चलत लखिन सकहु तुम एक ।
 निज आखिन्ह तिनको लखो अजहूँ सकहु तुम छेक ॥६॥
 मुख मीठी केतिक कहै, करें वहिन सी प्रीति ।
 कठिन वैर हिय म धरै, सदा सौत को रोति ॥७॥
 स्वार्थमुसृज्य यो दम्भी सत्य ब्रूते सुमन्दधी ।
 स स्वार्थाद् भ्रश्यते नून युधिष्ठिर इवापर ॥

जो दम्भी मतिमन्द स्वार्थ छोडकर सच बोलता है वह निश्चय स्वार्थ से हाथ धोता है । प त । तन सौ^१ सौता की कथा ऐसी विधि से कही जिसमे विरोध बढे । कोटि शब्द का अर्थ प्रवार भी होता है । अत यह अर्थ भी किया जा सकता है कि अनेक प्रकार के कुटिलपन की बातें गढी । ऐसा अर्थ करने से कोटिक शब्द मे अर्थवाद न मानना पडेगा ।

भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥
 का पूँछहु तुम्ह अवहु न जाना । निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥१॥

अर्थ होनहार के वश होने से मन मे विश्वास हो गया । रानी शपथ दिलाकर फिर पूछने लगी । मन्थरा ने कहा क्या पूछती हो । तुमने अब भी नही समझा । अपना हित अनहित तो पशु भी पहचानते हैं ।

व्याख्या बात मन मे बैठने लायक नही थी । महाराज दशरथ को मलिन मन और रानी कौशल्या को कपट चतुर कौन मानेगा ? पर होनहार बुरा था । रानी के मन मे विश्वास हो गया । वह फिर शपथ देकर पूछने लगी कि वह आगिल काज गीन है । जिसे समझकर तुझे डर लग रहा है । मन्थरा बाली कि ऐसी बात पूछी जाती है जो समझ मे न आती हो । यह बात तो अत्यन्त स्पष्ट है । अपना हित कौन है और अनहित कौन है । इतनी बात तो पशु भी प्रमाण द्वारा जान लेता

१ राजा चित्रवन्धु को एक रानी से एक लडका हुआ । सौ रानियो मे से और किसी को नही हुआ । सो शप रानियो ने सौतिया डाह के कारण उस लडके को विष देकर मार डाला । क्योकि समय पाकर वही राजा होता और उसी की माँ राजमाता होती । मन्थरा सौतिया डाह का पुराण स सिद्ध कर रही है ।

है। हाथ में हरी घास लिये हुए पुचकारते हुए सज्जन को ओर पशु दौड़े आते हैं और दण्ड हाथ में लिये डाँटते हुए क्रोधी को देखकर भाग खड़े होते हैं। प्रमाण से ही बात जानी जाती है। यहाँ स्पष्ट बात है कि यदि उन लोगों को हृदय में कपट नहीं है और रामजी के तिलक से आपके अनिष्ट की भावना नहीं है। तो आप से अभिप्रेत की बात छिपायी क्यों गयी। छोटी छोटी बात महाराज आप से कह दिया करते हैं और इतनी बड़ी बात जिसमें राज्य शासन में उलट फेर हो उसे आपसे नहीं कहा।

भयेउ पाख दिन सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥

खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे । सत्य कहे नहि दोषु हमारे ॥२॥

अर्थ : पन्द्रह दिन समाज सजते ही गया और तुमने आज समाचार मुझसे पाया। तुम्हारे राज्य में खाती हूँ और पहनती हूँ। सत्य कहने से मुझे दोष नहीं है।

व्याख्या : समाज सजने में इतनी तत्परता से काम लिया गया है कि देखने से यही मालूम होता है कि इतनी तैयारी के करने में पन्द्रह दिन लगे होंगे। अतः मन्थरा को कहने का मौका मिल गया कि पन्द्रह दिन से तैयारी हो रही है और तुम्हें पता नहीं है। महाराज ने तुमसे चरचा तक नहीं की। उचित तो यह था कि मैं तुमसे सुनती कि रामजी को तिलक होनेवाला है। सो तुम चौदह दिन की तैयारी के बाद मुझसे रामजी के तिलक का समाचार आज सुन रही हो मन्थरा वस्तु स्थिति पर पर्दा डाल रही है। आज ही प्रस्ताव हुआ है। आज ही तैयारी हुई है। इस बात का परिज्ञान होने से महाराज दशरथ और रानी कौसल्या निर्दोष सिद्ध हो जावेगी। इसलिए उसने पन्द्रह दिन से तैयारी होने की बात गढ़ ली।

अब कहती है कि तुमसे जो किसी ने चरचा नहीं की इसका कारण है। राज्य की गुप्त बात के प्रकाश करने में दोष है। किसी को क्या पड़ी है कि इस बात की तुमसे चरचा करके महाराज तथा रानी कौसल्या का कोपभाजन बने। पर मैं तो तुम्हारे राज में खाती पहनती हूँ। मैं दूसरे को क्या जानूँ। अतः मुझे सच्ची बात कह देने में दोष नहीं है।

जौ असत्य कछु कहव बनाई । तौ विधि देइहि हमहि सजाई ॥

रामहि तिलकु कालि जौ भयेऊ । तुम्ह कहूँ विपति बीजु विधि वयऊ ॥३॥

अर्थ : जो मैं कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे विधाता दण्ड देंगे। यदि कल रामजी को तिलक हुआ तो तुम्हारे लिए ब्रह्मा ने विपत्ति का बीज बो दिया।

व्याख्या : पन्द्रह दिन से समाज सजने की बात बिल्कुल झूठ है और उसी पर इसके : मन्थरा का सब मायाजाल की रचना खड़ी है। अतः उसे शपथ लेकर दण्ड कर रही है। कहती है कि मुझे परलोक के कां भय है। यदि मैं आपसे कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे परमात्मा के यहाँ से दण्ड मिलेगा। अतः मैं सत्य कहती हूँ और लोग राजा का साथे पीते हैं वे कभी सच : सत्य न कहेंगे।

मन्थरा ने पहले से ही मन में वह विधि ठीक कर रखी है। जिससे रात में ही बात बिगड़ जाये। अतः कहती है कि कल जो किसी भी भाँति रामजी को राजतिलक हो गया तो यह समझो कि ब्रह्मा ने तुम्हारे लिए विपत्ति का बीज बो दिया। ब्रह्मा का बोया बीज कभी निष्फल नहीं जा सकता। बीज जिस समय बोया जाता है उस समय तो वह मिट्टी से ढक जाता है पर काल पाकर वह फल देता है। इसी भाँति राजतिलक के समय तुम्हें विपत्ति का पता न लगेगा। फल तो उसके बाद होगा।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाखी । भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौ सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥४॥

अर्थ : मैं रेखा खींचकर बलपूर्वक कहती हूँ कि सुन्दरि ! तुम दूध की मक्खी हो गयी। यदि बेटे के साथ सेवकाई करोगी तो घर में रहने पाओगी। नहीं तो दूसरा उपाय घर रहने का न रह जायगा।

व्याख्या - अपने कथन की सचाई के प्रभाव के लिए रेखा खींची जाती है। यथा - पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहि यहु साँची । और फल के निश्चय के लिए बल का कथन किया जाता है। यथा - चला प्रभजन सुत बलु भाखी । सो मन्थरा रेखा खींचकर और बल कथन पूर्वक कहती है कि तुम दूध की मक्खी हुआ चाहती हो। राजकाज में हस्तक्षेप करने का तुम्हारा स्वभाव है। महाराज के शासनकाल में तो तुम्हारा हस्तक्षेप चल जाता है। पर राम के राज सुखरूपी दूध में जहाँ तुमने छेड़छाड़ की तहाँ मक्खी की भाँति निकालकर बाहर फेंक दी जाओगी। तुम्हारी बात नहीं मानी जायगी। रानी होकर दामी की भाँति बेटे के सहित सेवा करनी होगी। न करोगी तो घर में रहने न पाओगी।

दो कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हाहि कौसिलाँ देव ।

भरतु वदि गृह मेइहहि, लखनु रामु के नेव' ॥१९॥

अर्थ : कद्रू ने विनता को दुःख दिया। तुम्हें कौसल्या देंगी। भक्त वन्दीगृह में रखे जावेंगे और लक्ष्मण तो रामजी के हिस्से हैं।

व्याख्या - कद्रू - नाग की माता और विनता गरुड की माता ये दोनों सीत थीं। विनता ने कहा कि सूर्य के घोड़े की पूँछ श्वेत होती है। कद्रू ने कहा कि बाजा लगाओ। निश्चय पूँछ काली होती है। बाजी लगी कि जो हारे वह दासी होकर रहे। कद्रू ने अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि जाकर सूर्य के घोड़े की पूँछ में लिपट जायें। वही हुआ। पूँछ काली दिखाई पड़ी। विनता को कद्रू की दासी बनकर बहुत दिन रहना पड़ा। जब गरुड को देखकर सर्प भागे तब वे दास्य में विनिर्मुक्त हुईं।

१. नेम का तद्रव रूप नेव है। प्राकृत के नियमानुसार 'म' का 'व' हो जाता है। नेम का अर्थ भाग : हिस्ता है। मोनुतासिको बोधा।

इतना बड़ा दुख विनता को कद्र ने केवल सौत होने के कारण से दिया । तुम्हें भी कौसल्या दासी बनाकर रखेगी । भरत बन्दीगृह में बन्द होंगे । राजविद्रोह का सन्देह उनपर किया जायगा । लक्ष्मण तो राम के अग हिस्से में ही ठहरे । यही होना है । इसी बात को मैं डरती हूँ । मोनुनामिको बोवा ।

कैकय सुता सुनत कटु बानी । कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी । कुवरी दसन जीभ तब चाँपी ॥१॥

अर्थ • राजा कैकय की बेटी कड़ुई बाणी सुनकर कुछ कह न सकी । डरकर सूख गयी । शरीर में पसीना आगया । बेल की भाँति काँपने लगी । तब कुवरी ने दाँतो तले जीभ दबायी ।

व्याख्या रानी कैकेयी राजा की बेटी है । भरतजी का कारागार में बन्द होना सुनकर सहम गयी । हार्दिक आतङ्क का सद्य फल होता है । भय से सूख सी गयी । कहि न सकइ कछु से वचन की दशा कही । सहमि सुखानी से मन की दशा कही । तन पसेउ कदली जिमि काँपी से तन की दशा कही । कैकेयी को काँपते देखकर समझी कि मूर्च्छित हुआ चाहती है । तब उसने दाँत तले जीभ दबायी । इस मुद्रा से निषेध करती है कि क्या कर रही हो ? इससे तो सब बात बिगड़ जायगी । मन्थरा डरी कि यदि कही यह मूर्च्छित हुई तो सब भेद खुल जायगा और फिर तो मैं नहीं बच सकती ।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी । धीरजु धरेहु प्रबोधिसि रानी ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली । बकिहि सराहइ मानि मराली ॥२॥

अर्थ भाँति भाँति की कपट कहानियाँ कहकर उसने रानी को समझाया कि धीरज धरो । भाग्य ने पलटा खाया । कुचाल अच्छा लगा । बगली का हसिनी मानकर सराहने लगी ।

व्याख्या : मन्थरा जानती है कि रानी कैकेयी कपट करने पर शीघ्र राजी न होगी । काने खोरे कुपरे कुटिल कुचाली जानि कहकर पहिले ही इसने मुझ पर कुटिल कुचाली होने की आशङ्का की थी । कुटिल कुचाल को यह बुरा समझती है । पर इसे इसी रास्ते पर उतारना है । अतः समझाती है कि उपाय^१ से सब सधेगा । अभी उपाय नहीं कहा । एक एक भूमिका ठीक करके एक एक बात कहती है । कपट करने पर राजी हो तो उपाय बहें । नहीं तो मैं फाँसी पड जाऊँगी । जब यही जाभ खिचवाती थी तो दूसरे कौन सी दुर्दशा करेंगे क्या ठिकाना ? अतः धीरज

१ यथा विपति माँझ धीरज धरें, दृढ हूँ करें उपाय ।

पुम्पारथ ताको निरखि, देवहु जाय डगाय ॥१॥

उलटि परै परपञ्च सब, विगरी हूँ बनि जाय ।

धीरज धरि उर सजग हूँ, जो कोउ करें उपाय ॥२॥

देती है। यहाँ पुराण का उदाहरण नहीं मिला तो वहानियाँ कहने लगी जिनमें कपट से काम सधा हो। ये कहानियाँ यदि इसके गले उतर जायें तो पता चल जायगा कि अब यह कपट करने पर राजी हो गयी। अतः कपट की अनेकानेक कहानियाँ सुनायी।

कैकेयी भी कहानी सुनकर बकी को मराली मान गयी। ऐसी निष्कपट को कपट अच्छा लगा। भाग्य फिर गया। कपट से चिढ़नेवाली कपट पर रीझने लगी। बड़े ध्यान से कहानी सुनने लगी। जब कपट अच्छा लगने लगे तो समझना चाहिए कि भाग्य फिरा है। कुबरी अति खल थी। सो उसे क्षीर नीर की विवेक बरनेवाली हसी मान लिया। लगी कुबरी की प्रशंसा करने।

सुनु मथरा बात फुरि तोरी। दहिन आँखि नित फरकइ मोरी ॥
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने ॥३॥

अर्थ मन्थरा सुन। तेरी बात सच है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़क रही है। प्रतिदिन रात को मैं बुरे बुरे सपने देखती हूँ और अपनी बेवकूफी से तुझे नहीं बतलाती।

व्याख्या स्त्री का दाहिना अङ्ग फड़कना अपशकुन है। सो उसके फल को कुबरी की मन्त्रणा के अनुकूल समझने लगी। राम जानकी ने अपने सगुन का ठीक अर्थ लगाया। यह अपने अपशकुन को ठीक नहीं पढ़ सकी। कहने लगी कि मन्थरा। तेरी बात ठीक है मेरी नहीं। सन्नमुच राम के तिलक से मुझ पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा।

होनहार खराब होने ही से मैं बुरे सपने देखती थी। तुझसे कहे होती तो तू तभी से कोई न कोई उपाय सोचती। मेरी मूर्खता कि मैंने तुझसे नहीं कहा। तू मेरी ऐसा हित चाहनेवाली बुद्धिमती है मुझे तुझसे कहना चाहिए था। सो दूसरो से कहा तुझसे नहीं। बुरे सपने का फल अनिष्ट समाचार श्रवण है। यथा लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।

काह कहौ सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ ॥४॥

दो अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।

केहि अघ एकहि बार मोहि, दैअँ दुसह दुखु दीन्ह ॥२०॥

जरी शील शुभ गति सुजस, जो बिगरे निज काज।

राज मँमारेहि पै वने, कीरति सुकृत समाज ॥२॥

कियो घोर सग्राम मधु कैटभ जीति न जाय।

रिपुवध मान्यौ धर्म हरि, शील सकाच विहाय ॥४॥

अगणित लागन की बनी, बिगरी किये उपाय।

यातें करहु उपाय तुम, सब विधि हृदय दृढाय ॥५॥

अर्थ क्या कहूँ सखी । मेरा स्वभाव सीधा है । हित अनहित कुछ समझ में नहीं आता । अपने चलते तो आज तक मैंने किसी का बुरा नहीं किया । नहीं जानती कि किस पाप से दैव ने एक वारगी मुझे दुःसह दुःख दिया ।

व्याख्या जो जो बात मन्थरा ने कही हैं । वे सब गले उतर गयीं । उसे अब सखी का पद मिला । उसने कहा था राजर सरल सुभाउ । हित अनहित पछी पसु जाना । उसे ठीक समझते हुए अपने को सूधी मान लिया । यह भी मान गयी कि मैं हित अनहित नहीं पहिचानती । चैरी के बहने से संसार दूसरा दिखाई पड़ने लगा । जो मित्र थे वे शत्रु दिखाई देने लगे और परम शत्रु चैरी हितचिन्तक मालूम होने लगी ।

रानी कहती है कि मुझे शत्रु मित्र की पहिचान नहीं थी । यह बात ठीक है । पर जहाँ तक मेरा बस चला मैंने किसी का बुरा नहीं किया । और अपकार करना ही बड़ा भारी पाप है । तब किस पाप से मैं दासी हो रही हूँ और बेटा बन्दी हो रहा है । मैंने सौत भाव नहीं रक्खा । निर्दाप को दण्ड मिल रहा है । पहिले से कभी कुछ दण्ड मिला होता तो सहने की शक्ति भी होती । एक वारगी इतना बड़ा दण्ड तो सर्वथा असह्य है ।

नैहर जनमु भरव बरु जाई । जिअत न करवि सवति सेवकाई ॥
अरि बस देउ जिआवत जाही । मरनु नीक तेहि जीवन चाहौ ॥१॥

अर्थ . नैहर मैंके में जाकर बल्कि जिन्दगी बिता दूँगी । परन्तु जीते जी सौत की गुलामी न करूँगी । जिसे दैव शत्रु के वश में रखकर जिलाता है उसके जीने से मरना अच्छा ।

व्याख्या नैहर में अपना कोई हक नहीं होता । इसलिए नैहर में जीवन यापन करने को स्त्रियाँ बड़े हेय दृष्टि से देखती हैं । रानी कहती है कि मुझे मैंके जाकर जीवन यापन करना स्वीकार है । पर सौत की दासी बनकर यहाँ मैं नहीं रह सकती । मन्थरा ने समझा दिया है कि जो सुत सहित करहु सेवकाई । तो घर रहहु न आन उपाई । इसी पर रानी कह रही है कि मैं घर न रहूँगी । नैहर चली जाऊँगी और वही जीवन का शेष काल व्यतीत कर दूँगी ।

सौत शत्रु होता है । तुम्हारा कहना ठीक है । शत्रु के वश में रहकर कौन जीना चाहेगा । पर दैव पर किसी का चारा नहीं है । यदि दैववश किसी को जीना पड़े तो उससे मरना अच्छा । परवश होकर जीना अच्छा नहीं । पदे पदे अपमान सहना पड़ता है । फिर शत्रु के वश में रहकर जीना कौन चाहेगा ?

दीन वचन कह बहुविधि रानी । सुनि कुवरी तिय माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना । मुखु सोहागु तुम्ह कहूँ दिन दूना ॥२॥

अर्थ : बहुत प्रकार से रानी दीन वचन कहने लगी । सुनकर कुवरी ने

त्रियाचरित्र फैलाया । वोली जो को छोटा करवें ऐसा क्या कह रही हो । तुम्हे सुख सोहाग नित्य दूना है ।

व्याख्या : रानी होकर दीन वचन कह रही है । पति का भरोसा टूट गया । पुत्र का कुशल नहीं दिखायी पड़ रहा है । रानी अपार चिन्ता में पड़ी है कि क्या करूँ । कहाँ जाऊँ । मेरा कोई नहीं है । सब लोग कौशल्या की ओर मिले हुए हैं । एक मन्थरा ही मेरी शुभचिन्तक है । उस विचारी का किया क्या होगा ? मन्थरा ने समझ लिया कि अब यह दीन हो गयी । अब यह सब कुछ करेगी । पहिले उसने रानी को अथाह में डाल दिया । अब सहारा देने के लिए त्रियाचरित्र फैलाया । कहने लगी कि ऐसी बातें न करो । अपने जो को छोटा क्यों करती हो ? तुम्हारा सुख और सोहाग नित्य दूना होता जायगा । अभी तो तुम्हारे पति राजा हैं । जब पुत्र युवराज होगा तब सुख सोहाग दूना हो जायगा ।

अथाह में पड़ा हुआ जीव तिनके का सहारा पकड़ता है और उसे छोड़ना नहीं चाहता । इसलिए अब वह रानी को सहारा पकड़ा रही है । नैहर जनम भरव वरु जाई का उत्तर देती है अस कस कहहु मानि मन ऊना । और जिअत न करवि सवति सेवकाई का उत्तर सुखु सोहाग तुम कहूँ दिन दूना कहकर देती है ।

जेहि राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका ॥
जबते कुमत सुना मै स्वामिनि । भूख न बासर नीद न जामिनि ॥३॥

अर्थ जिसने आपका बुरा ताका है । उसी को यह पका हुआ फल मिलेगा । जब से मैंने हे स्वामिनि । यह कुबुद्धि सुनी तब से मुझे न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है ।

व्याख्या अब अरि वस दैउ जिआवहि जाही का उत्तर देती है कि तुम्हारे अनभल ताकनेवाल की ही उसके कर्मफल रूप में यह दशा होगी । उसकी पैंच उलटी पड़ जायगी । मैं उस उद्याग में लगी हूँ । मुझे बड़ी चिन्ता है । जब से मैंने ये सब बातें सुनी तब से मारे चिन्ता के न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है । ऐसा कहकर फिर उसी भावना को दृढ़ कर रही है पन्द्रह दिन तो समाज सजते हुआ । अयोध्या भर में यह बात प्रख्यात है । कई दिन तो मुझे सुने हुआ । तुमसे बात छिपायी गयी । पर मेरे कान में भनक पड़ गयी तभी से मैं सचेष्ट हूँ । लाचार होकर आज कहना ही पड़ा ।

पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहि यहु साँची ॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ । हइ तुम्हरी सेवा वस राऊ ॥४॥

अर्थ मैंने गुनी सजानियों से पूछा तो उन्होंने रेखा खींच दी कि भरत राजा होगे । यह बात निश्चय है । हे भामिनि । यदि तुम करो तो मैं उपाय बतलाऊँ । राजा तुम्हारी सेवा के वश में है ।

व्याख्या मैंने सुनकर यद्यपि उसी समय तुमसे नहीं कहा। पर हाथ पर हाथ रखकर नहीं रही। गुनी सजानिया क यहाँ गयी। उन्होंने विचार किया। तुम्हारा होनहार भला है। उन्होंने रेखा खींचकर कहा कि भरत राजा होंगे। यह बात सत्य है। अब उद्योग मात्र की दरी है। भरत के युवराज होने की ओर कैकेयी का ध्यान भी नहीं था। जब मन्थरा ने देग लिया कि अब कैकेयी को भरत का युवराज होना इष्ट है। तब कहती है तुम मेरी बात सुन लोगी पर करागी नहीं। मुझसे व्यथ गया पूछती हो? यदि मैंने कह भी दिया और तुमने न किया तो मेरी कुशल नहीं है। अतः वचन दो तो कहूँ। कारण यह कि मेरा वचन तुम्हारे सेवाधर्म क प्रतिकूल पड़ेगा। तुम सेवाधर्म म स्थित हो। पर राजा तुम्हारी सेवा के वश म हैं। तुम्हारे ही किये सब होगा।

दो परउं कूप तुअ वचन पर, सकौ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड, कस न करव हित लागि ॥२१॥

अथ मैं तर कहने पर कूँ म कूद सकती हूँ। पति पुत्र का त्याग कर सकती हूँ। तू मेरा बड़ा भारी दुख देखकर वह रही है। मैं कल्याण क लिए क्यों न करूँगी?

व्याख्या भाव यह कि तुम्हारे कहने पर मैं लोक परलोक किसी का विचार न करूँगी। कूप म कूदने से परलाक का नाश कहा। पूत पति त्याग से इस लाक का नाश कहा। जो विपत्ति मर पर आया चाहती है उसके सामने लोक परलोक कुछ नहीं है। प्राण भी कुछ नहीं है। तू मेरी परमहित है। तेरा कहा अवश्य करूँगी रानी कैकेयी ने मन्थरा को वचन दे दिया। महाराज दशरथ की योग्या है। कभी वचन न छोड़ेगी।

कुबरी करि कबुली कैकई। कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तिन वलिपसु जैसे ॥१॥

अथ कुबरी ने कैकेयी से कबूल कराके कपटरूपी छुरी को हृदयरूपी पत्थर पर पिसकर शान दिया। रानी अपने पास आये हुए दुख को इस भाँति नहीं लख रही है। जैसे वलिदान का पशु हरी घास चरता है।

व्याख्या कुबरी को बड़ा भारी डर था कि मेरे कहने पर यदि यह नट गयी तो मेरी दुदशा का अन्त नहीं है। अतः उसने पहिल ही कैकेयी से कबूल करा लिया कि तरे कहने पर कूँ मे कूद पड़ूँगी। पति पुत्र को भी छोड़ दूँगी। तब कपट की छुरी को अपने पत्थर जैसे कलजे पर रगड़कर शान दिया। अर्थात् उसकी धार तीखा बनायी। जिसम सूत्र काट कर सके। क्योंकि अब बार किया हो चाहती है। यदि पत्थर सा कलजा न हो तो कपट की छुरी ठीक काट नहीं करती अपने ऊपर विश्वास करनेवा पर नहीं चल सकती।

उसने रानी को बलिदान का पशु बनाया । बलिदान के पशु के आगे हरी हरी घास रख देते हैं । वह प्रसन्न होकर चरता है । उसे पता नहीं कि उस पर प्राणघातक चोट होनेवाली है । वह घास रखनेवाले को हितैषी समझता है । उसके चोट करने की तैयारी छूरी के पत्थर पर रगड़कर शान देने को नहीं देखता । इसी भाँति रानी कुवरी की दी हुई आशा पर भूली हुई है कि मेरा सुख सोहाग अब दूना हुआ चाहता है । यह नहीं समझती है कि कुवरी अपने स्वार्थ के लिए उसका सर्वनाश किया चाहती है । रानी के न लखने के लिए उसने आड खड़ा कर दिया है कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाडि अब होब कि रानी । रानी समझती है कि वस्तुतः इसे लाभ हानि नहीं है । यह मेरे हित के लिए सब कर रही है । उसके सूक्ष्म स्वार्थ पर रानी की दृष्टि नहीं जा रही है ।

सुनत बात मृदु अत कठोरी । देति मनहुं मधु माहुर घोरी ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाही । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाही ॥२॥

अर्थ बात तो मुलायम कहती है पर परिणाम उसका कठोर है । जैसे शहद में विष घोलकर दे रही हो । चेरि बोली कि तुम्हें याद हो या न हो तुमने मुझसे एक कथा कही थी ।

व्याख्या अब दूसरी उपमा देते हैं । पहिली से काम नहीं चलता । छूरी के आघात से तो उसी समय घोर वेदना होती है । परन्तु कुवरी का आघात तो वैसा नहीं है । वह तो अच्छा मालूम होता है । अतः कहते हैं वह शहद में विष मिलाकर दे रही है । जो तत्काल तो मीठा मालूम होता है पर परिणाम में प्राण घातक है । देखने में तो यह मालूम हो रहा है कि इससे सुख सोहाग दूना होगा । पर वस्तुतः इसी से दोनों जायगा । पति और पुत्र दोनों का त्याग होगा और आप भी कुँए में गिरेगी । यथा अवनि जमहि जाचति कैनेई । सहि न बीच बिधि माच न देई । कपट की छूरी खून नहीं बहाती । वह मधुमिश्रित माहुर की भाँति परिणाम में प्राणघातक होती है ।

चेरी कहती है कि तुम्हाग भूलना स्वभाव है । तुम्हें भले ही स्मरण न हो । पर मुझे याद है । तुमने मुझे एक बात सुनायी थी । दण्डकारण्य में वैजयन्त नगर के राजा तिमिध्वज जहाँ रहते थे वहाँ शम्भरासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था । उस युद्ध में महाराज के साथ तुम भी गयी थी । वहाँ तुमने महाराज के मूर्च्छित होने पर रथ की रक्षा करके महाराज के प्राण बचाये थे ।

दुइ वरदान भूप सन थाती । मागहु आजु जुआवहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहि वनवासू । देहु लेहु सब मवति हुलासू ॥३॥

अर्थ तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर रखे हुए हैं । आज उन्हीं को माँगकर छाती ठण्डी करो । बेटे का राज्य और राम का वनवास दा और सौत के सब आनन्द को तुम ले लो ।

व्याख्या उस समय रथ की रक्षा और अपनी रक्षा के पलटे में राजा ने तुमसे दो वरदान माँगने के लिए कहा। पर तुमने उस समय नहीं माँगा। उसे थाती के रूप में राजा के पास ही छोड़ दिया। कहा कि जिस समय मुझे आवश्यकता होगी माँग लूँगी। वह थाती तुम्हारी राजा के पास रखी हुई है। तुम्हें कुछ करना नहीं है। अपनी थाती माँगनी है। आज उसी को माँगकर अपनी छाती ठण्डी करा। एक वरदान में बेटे के लिए राज्य माँगो। दूसरे में राम के लिए वनवास माँगो। वस जिस आनन्द को तुम्हारी सौत चाहती है वह तुम्हारा हो जाय और तुम्हारी सौत सदा के लिए निरानन्द हो जाय। राम को बन्दी करने में सम्पूर्ण प्रजा बिगड़ जायगी और उनके यहाँ रहने से भरत का राज्य सुस्थिर न होगा। राम धर्मात्मा होने पर भी राज्य के लिए लड़ सकते हैं। यथा—क्षत्रियाणामय धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्। वधश्च धमयुद्धन स्वराज्यपरिपन्थिनाम्। वि पु। क्षत्रिया का धर्म है कि प्रजा का पालन करें और धमयुद्ध से अपना राज्य छीनना चाहनेवाला का वध कर। इसलिए उनका वनवास माँगा। जो करना हो आज कर लो। बल कुछ न कर सकोगी।

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहि वचन न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीत। वचनु मोर प्रिय मानहु जो तैं ॥४॥

अर्थ राजा जब राम की शपथ कर ले तब वरदान माँगना। जिससे वचन टल न सके। आज की रात बीत जाने से काम बिगड़ जायगा। मेरी बातों को हृदय से प्रिय समझना।

व्याख्या पहिल यह उपाय होना चाहिए कि देने का निश्चय कराने के लिए राजा रामजी की शपथ लें। तब माँगना। फिर राजा बात में न हटेंगे और न मन्त्री हटा सकेंगे। नहीं तो तुम्हारे माँगने और राजा के देने को गिनती गुरुजी और मन्त्री नम में कर लेंगे। आज रात का काम बना ता बना। सबेरा हाते ही फिर कौन किसकी सुनता है। मेरी बातों को भीतर से प्रिय मानना। बड़े बड़े प्रलोभन और बड़ा बड़ा भय दिखाया जावेगा। पर मेरी बातों को ही प्रिय समझना। उन प्रलोभना में न आना। होइ अकाज कौन बिधि राती बी जो उस चिन्ता थी सा बिधि उसन बैठा दी।

दो बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहसि कोपगृह जाहु।

काजु सँवारेहु सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु ॥२२॥

अर्थ उस पापिनी ने बड़ा कुघात विश्वासवात बरके कहा कि अब कापभवन में चलो जाओ। सब काम को सावधान होकर सँवारना। एकाएक किसी बात पर विश्वास न करना।

व्याख्या जा कपट की छूरी उसने पत्थर से हृदय पर तीखी की थी उससे चार बग दिया। कपट की छूरी तो बार है इसलिए मधुमादुर सा मीठा गगा।

जिस ताक मे वह थी सो पूरा हुआ । अब रानी को कोपगृह^१ जाने को सलाह दे रही है । जिसमे राजा को शीघ्र ही पता लग जाय और तुरन्त मनाने के लिए आवें और बात फूटे नहीं । नहीं तो राजा किस महल मे जायेंगे इसका क्या ठीक है । फिर सावधान किय देती है कि बड़ी होशियागी से काम लना । विश्वास मे ही पडकर बड़े बड़े मारे गये हैं । महाराज का भी विश्वास न करना । डरती है कि राजा का इसका जहाँ सामना पडा कि इसने विश्वास किया । अतः न विश्वास करने के लिए सहजती है । रानी का उसके ऊपर इतना बड़ा विश्वास है और यह उन्ही के साथ घात करती है । अतः विश्वासघातिनी है । इसलिए कवि ने पापिनी कहा ।

कुबरिहि रानि प्राण प्रिय जानी । बार बार बडि बुद्धि बखानी ॥

तोहि सम हितु न मोर ससारा । बहे जात कइ भइसि अधारा ॥१॥

अर्थ कुमारी का रानी ने प्राणप्रिय जानकर बार बार उसकी बुद्धि को बड़ी प्रशंसा की । कहा कि ससार मे तुझसा मेरा कोई हित नहीं है । बहे जाते हुए के लिए तू आधार हा गयी ।

व्याख्या अब कुमारी रानी को प्राणप्रिय हो गयी । रानी उसकी बुद्धि पर लट्टू है । बार बार उसी अतीव बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करती है । सब लोग नाटक इसे मतिमन्द कहते ह । ऐसी पैनी बुद्धि ता किसी का नहीं है । उससे कहती हैं कि पति पूत कोई तेरे सा मेरा हित नहीं है । मैं तो प्रवाह मे बही जाती थी । जैसा लोग कहते और समझाते थे वैसा ही मैं भी समझती थी । राम का तिलक सुनकर मैं तो तुझ मनभावता वस्तु देने को प्रस्तुत थी । पर तूने उसका लालच नहीं की । मुझ कहती हुई को तू ही आधार मिली । अब तुझे पावर प्रवाह का विरोध करके बच सकती हूँ ।

जौं बिबि पुरव मनोरथु काली । करौ तोहि चपलतरि आली ॥

बहु बिधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन^१ गवनी कँकेई ॥२॥

अर्थ यदि ब्रह्मा मेरा मनोरथ पूरा कर दे तो बल तुझ आँख की पुनली बनाऊँगी । बहुत प्रकार से चेरा को आदर देकर कैवयी कोपभवन मे गयी ।

व्याख्या जा कुछ होना है आज रात को होगा । यदि मेरा मनोरथ पूरा हुआ महाराज ने वरोहर की भाँति रखे हुए वरदानो को मुझ दिया । भरत युवराज हुए

१ राजाआ के यहाँ कोपगृह होता था । क्रोध आने पर उस गृह मे चले जाने का विधान था । जिसके हाथो मे बड़ा अधिकार होता है उसके क्रुद्ध होने से बड़ अनय की सम्भावना होती है । उसके एकांत मे रहने मे ही कुशल है । वहाँ उसे अपने चित्त के समाधान करने का अवसर मिलता है और वे ही लोग उसके पास जान का साहस करते हैं जा उस क्रोध का परिमाजन कर सकें ।

और राम वन गये तो तुझे आँख की पुतली बनाऊँगी। तेरे ही द्वारा देखूँगी। वस्तुतस्तु राज की वागडोर तेरे हाथ में रहेगी : जैसा मन्थरा ने सोचा था वैसा ही हुआ। अब मधु मिलने की आशा टूट हुई। देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। चेरी को बहुत प्रकार से आदर दिया। अर्थात् आज से तू मेरी सखी है। मन्त्री है। ऐसा कहकर जिन वस्त्र आभरण के धारण करने का दासियों को अधिकार नहीं है। जिन वस्त्र भूषणों को सरदार या मन्त्री की स्त्रियाँ धारण कर सकती हैं। वे वस्त्र आभूषण मन्थरा को देकर उसे मन्त्री पद देकर तब कैकेयी कोपभवन गयी।

विपत्ति बीजु वरपा रितु चेरी। भुँइ भइ कुमति कैकई केरी ॥
पाइ कपट जलु अकुर जामा। वरदोउ दल दुख फल परिनामा ॥३॥
अर्थ : विपत्ति बीज हुई। चेरी वर्षाकृत हुई। कैकेयी की कुमति पृथ्वी हुई। कपट का जल पाकर अँसुआ निकला। दोनों वर पत्ते हुए और परिणाम में दुःख यही फल हुआ।

व्याख्या : तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। वही भावी विपत्ति बीज हुई। जिस भाँति बीज पृथ्वी के भीतर पड़ा रहता है। उसे कोई नहीं जानता। जब वर्षाकृत में पानी बरसता है तब बीजों के अँसुये निकलते हैं। उसी भाँति इस भावी विपत्ति का किसी को पता नहीं था। यथा : मिलेहि माँझ बिधि बात विगारी। जहँ तँह देहि कैकईहि गारी। जब चेरी ने वर्षाकृत होकर कपट जल बरसाया तो वह बीज कैकेयी की कुमति रूपी भूमि में अङ्कुरित हुआ। अङ्कुरित होने पर दो पत्ते पहिले व्यक्त होते हैं। यहाँ दोनों वरदान ही दोनों पत्ते हैं। यही विपत्ति का वृक्ष दुःख रूपी फल का देनेवाला है।

कोप समाजु साजि सब सोई। राजु करत निज कुमति विगोई ॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यहु कुचालि कछु जान न कोई ॥४॥
अर्थ : कोप का सब समाज सजकर सोई। राज्य करते हुए अपनी कुबुद्धि से मारी पड़ी। राजमहल और नगर में धूम मची हुई है। इस कुचाल का किसी को पता नहीं।

व्याख्या : जिस भाँति हर्ष का साज समाज होता है। उसी भाँति कोप का भी साज समाज होता है। राजाओं में दोनों के व्यक्त करने का अधिक साधन होता है। उनके व्यक्त करने में ही बहुत कुछ वेग कम हो जाता है। कोप और हर्ष दोनों मनोविकार हैं। अतः मन के स्वास्थ्यलाभ के लिए उनके पृथक् पृथक् साज-समाज होने ही चाहिए। कोप के साज समाज का वर्णन महाराज के आने पर कवि करेंगे। इसलिए यहाँ नहीं करते। इस समय कोप का साज समाज करके कोपभवन में जाने का स्पष्ट अर्थ यह है कि मैं इस अभिषेकोत्सव से अप्रसन्न हूँ और इससे कोई सम्बन्ध नहीं रगना चाहती! कवि कहते हैं कि कुबुद्धि का प्रभाव देखो। कैकेयी

राज्य करती थी । दुख का कोई कारण न था । सो उसकी कुबुद्धि हो उसे कष्ट में डाल रही है ।

राजकुल का तद्बुरूप राउर है । अन्त पुर के लिए इसका प्रयोग होता है । भाव यह कि अन्त पुर में और उसके बाहर सम्पूर्ण नगर में इस समय राजतिलक की धूम मची हुई है । इस समय इतना बड़ा कुचक्र चल रहा है । इस बात का किसी को पता नहीं है । कैकेयी महारानी का कोपभवन में प्रवेश साधारण बात नहीं थी । इस समय कोपभवन में प्रवेश करना इस बात को घोषणा करना है कि मैं इस राजतिलक से अत्यन्त रुष्ट हूँ ।

दो प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहि सुमंगलचार ।

एक प्रविसहि एक निर्गमहि, भोर भूप दरवार ॥२३॥

अर्थ • आनन्द में विभोर होकर नगर के नर नारी सुन्दर मङ्गलचार सज रहे हैं और राजद्वार पर बड़ी भीड़भाड़ है । कोई बाहर निकल रहा है और कोई भीतर जा रहा है ।

व्याख्या • राम राज अभिषेकु सुनि हिय हरषे नर नारि । लगे सुमंगल सजन सब विधि अनुकूल विचारि । इस दोहा से जिस प्रकरण का उपक्रम किया था उसी का उपसहार दिखला रहे हैं । यहाँ यह भी दिखला दिया कि विधि को अनुकूलता नहीं है । विपत्ति के बीज में अङ्कुर निकल पड़ा । दरवार शब्द का प्रयोग ग्रन्थकार ने द्वार के अर्थ में किया है । यथा गयउ सभा दरवार तब सुमिरि रामपद कज । सिध ठवनि इत उत चितव धीर वीर बल पुज । तुरित निसाचर एक पठावा । समाचार रावनहि जनावा । सो राजद्वार पर भीड़ है । कैकेयी के कुचाल का पता नगरवासियों को तो है ही नहीं । स्वयं महाराज भी कुछ नहीं जानते ।

बाल सखा सुनि हिय हरषाही । मिलि दस पाँच राम पहि जाही ॥

प्रभु आदरहि प्रेमु पहिचानी । पूँछहि कुसल खेम मृदु बानी ॥१॥

अर्थ • बचपन के साथी यह समाचार पाकर हृदय में हर्षित होते हैं । दस पाँच मिलकर रामजी के यहाँ जाते हैं । प्रेम को पहिचान करके प्रभु आदर करते हैं और मृदुबानी से उनका कुशलक्षेम पूछते हैं ।

व्याख्या : बचपन की मैत्री बड़ी दृढ़ होती है । भोजन करत बोल जब राजा । नहि आवत तजि बाल समाजा । वही बालसमाज अब बड़ा हुआ है । मृगया आदि खेल के समय अब भी उनकी बराबर बुलाहट होती है । यथा : बधु सखा संग लेहि बोलाई । चन मृगया नित खेलहि जाई । वे सब भी आपस में सखा हैं । अतः समाचार पाकर बड़े प्रसन्न होते हैं । हमारा सखा राजा होगा । सो दस पाँच इकट्ठे होकर बधाई देने के लिए रामजी के पास जाते हैं । सखा का सम्बन्ध तो था ही अब राजा प्रजा का सम्बन्ध भी हुआ चाहता है ।

प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की । इसलिए कहते हैं कि प्रीति पहिचान कर प्रभु आदर दे रहे हैं । अर्थात् जिसकी जितनी प्रीति है उतना ही उसको आदर दिया जा रहा है । सखा की भाँति ही आदर है । प्रभुता पर कुछ ध्यान नहीं है । वक्ता, वाणी और वाच्य तीनों ही अच्छे हैं । वक्ता स्वयं प्रभु, वाणी मृदु और वाच्य कुशलक्षेम । खेल का समय बीते बहुत दिन हुए । अब भेंट कुछ दिनों पर होती है । इसलिए कुशलक्षेम पूछा ।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई । करत परसपर राम बड़ाई ॥
को रघुवीर सरिस संसारा । सीलु सनेहु निवाहनिहारा ॥२॥

अर्थ : प्रिय की आज्ञा पाकर घर लौटते हैं । आपस में बड़ाई करते जाते हैं कि रघुवीर के समान शील और स्नेह का निवाहनेवाला संसार में कौन है ?

व्याख्या : बहुत देर तक नहीं ठहरते । क्योंकि इन्हे बहुतों से मिलना है । कार्यभार अधिक है । फिर भी आज्ञा माँगकर और मिलने पर लौटते हैं । रामजी प्रिय हैं । उनके आज्ञा देने में प्रेम झलकता है । सम्मान की प्राप्ति से प्रसन्न हैं । रास्ते में प्रशंसा करते हुए लौटते हैं । यही सच्ची प्रशंसा है । सखा है : मुख पर प्रशंसा नहीं करते । शील के निर्वाह का पता सम्मान से लगा और स्नेह का कुशलक्षेम पूछने से । राजा मित्र केन दृष्ट श्रुतं वा । परिस्थिति के परिवर्तन में शील स्नेह का निर्वाह कठिन है । राजा द्रुपद ने अपने बालमखा द्रोणाचार्य का अनादर किया । अतः कहते हैं . शील स्नेह के निर्वाह करनेवाले रघुवीर ही हैं ।

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमही । तहँ तहँ ईसु देउ यह हमही ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू । होउ नात यहु ओर निबाहू ॥३॥

अर्थ : कर्म के बश जिस जिस योनि में हम भ्रमते फिरें वहाँ वहाँ ईश्वर हमें यह दे कि हम सेवक हो और सीतानाथ स्वामी हो । इस ओर नाता का निर्वाह हो ।

व्याख्या : रामजी के सखा हैं । बड़े उच्चकोटि के उपासक हैं । मोक्ष नहीं चाहते । अशुभ कर्म के फल से छुटकारा नहीं चाहते । बालि की भाँति इतना ही चाहते हैं जेहि जोनि जन्मौ कर्मवस, तहँ राम पद अनुरागऊँ । सेवक स्वामी के नाता का निर्वाह होता चला जाय । प्रत्येक जन्म में सखा हो । इस नाते पर आग्रह नहीं है । आग्रह सेवकसेव्यभाव के बने रहने पर है ।

अस अभिलापु नगर सब काहू । कैकयसुता हृदय अति दाहू ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मते चतुराई ॥४॥

अर्थ : नगर में सभी को ऐसा ही अभिलाप है । पर राजा कैकय की बेटी के हृदय में बड़ी भारी जलन है । बुरी मगत पाकर कौन नहीं विगड़ता । नीच की राय होने से चतुराई नहीं रह जाती ।

व्याख्या सम्पूर्ण अयोध्यावासियों को श्रीरामजी के प्रति ऐसा अनुराग है कि भावी जन्म में भी सेवकसेव्यभाव बने रहने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। परन्तु कैकय देश में उत्पन्न यहाँ दो हैं। एक कैकय की चेरी और दूसरी कैकय की पेटी। सो चेरी का दाह वह आय है। यथा राम तिलकु सुनि भा उर दाहू। अब कैकय की पेटी के हृदय का अति दाह कहते हैं। इन दोनों व्यक्तियों की भावना अयोध्यावासियों से मेल नहीं खाती। अतः कवि इनका परिचय कैकय दश से सम्बन्ध दिखलाकर दत्त है।

जिसके अभिप्रेत से सम्पूर्ण राष्ट्र को आनन्द हो उसके राजतिलक से दाह होना तो अत्यन्त पतन का चिह्न है। फिर जिसका जन्म राजघर में हो और व्याह राजघर में हुआ हो उसका ऐसा सङ्कीर्ण हृदय कैसे हुआ? इस पर कवि कहते हैं कि कुसङ्गति से वचना चाहिए। कुसङ्गति के कारण कैकेयी का ऐसा पतन हुआ। वह कपट पेढारी की सगति में पड़ गयी। अतः उसकी उदार बुद्धि का नाश हुआ। या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी जिससे दोनों लोक सुखरे वही चतुरता चतुराई है। नीच का साथ हो जाने से निश्चय चतुराई का नाश होता है। परलोक से ध्यान हटे बिना नहीं रहता।

१० नृपवचन राजरसभङ्ग

दो साँझ समय सानद नृपु, गयेउ कैकई गेह।

गवनु निष्ठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥२४॥

अथ सन्ध्या के समय आनन्द से राजा कैकेयी के महल में गये। मानो स्नेह शरीर धारण करके निष्ठुरता के पास गया।

व्याख्या महाराज को रानी कैकेयी अत्यन्त प्रिय है। अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं तो उस आनन्द की अभिवृद्धि के लिए कैकेयी के महल में जाते हैं। आज महाराज बड़े आनन्दित हैं। स्वयं शुभ समाचार सुनाने के लिए कैकेयी के महल में जा रहे हैं। इस आशा से कि इसको भरत से अधिक रामजी प्रिय है। वह अत्यन्त ही प्रसन्न होगी। पर बात उल्टी पड़ी। जिसे स्नेहमय समझते थे वह शरीरधारी निष्ठुरता मालूम पड़ी। किसी प्रकार से द्रवीभूत होनेवाली नहीं।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड परइ न पाऊ ॥

मुरपति बसइ बाहुँवल जाके। नरपति सकल रहहि रुख ताके ॥१॥

अर्थ कोपभवन सुनकर राजा सङ्कुचित हो गये। डर के कारण उनका पर आगे की ओर नहीं पड़ता है। इन्द्र जिसके बाहुवल से बसते हैं और सब राजा लाग रुख देखते रहते हैं।

व्याख्या महाराज के आने पर रानी स्वागत के लिए आगे आती थी। सो न आयी। महाराज ने जय पूछा कि तुम्हारी स्वामिनी वहाँ हैं? दासियों ने

वहा कोपभवन मे हैं । सुनते ही महाराज सङ्कुचित हो गये कि इस समय कोपभवन जाने का अर्थ बड़ा बेढङ्गा लगेगा । लोग समझेंगे कि राजा के घर मे फूट है । वैकेयी रामजी का अभिप्रेक नही चाहती । स्त्रीजित् की दशा कहते हैं कि महाराज कोपभवन मे मनाने जाना चाहते हैं । पर डर से आगे पैर नही उठ रहा है । ससार मे महाराज के बल और शौर्य की प्रशंसा है । इन्द्र के ऊपर आपत्ति आने पर महाराज दशरथ सहाय होते हैं । इसलिए कहते हैं कि देवताओं के राजा उनके भुजबल के आश्रित होकर बसते हैं और मनुष्यों के राजा तो रुख देखा करते हैं कि आज्ञा होने के पहिले ही महाराज के चाहे हुए कार्य का सम्पादन कर दें । यथा : नृप सब रहहि वृषा अभिलाषे । लोकप करहि प्रीति रख राखे ।

सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥

शूल कुलिस असि अंगवनिहारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥२॥

अर्थ : वह स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये । देखो काम के प्रताप की महिमा । शूल, वज्र और खड्ग के जो सहनेवाले हैं उन्हें कामदेव ने फूल के बाणों से मारा ।

व्याख्या : ऐसे शूरवीर स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये । इसमे स्त्री की कोई करामात नही है । यह तो काम के प्रताप की महिमा है । काम को स्त्री का बल रहता है । यथा - काम के केवल नारि । सो स्त्री का सामना भी न पड़ा । स्त्री के क्रोध का समाचार सुनकर सूख गये । प्रतापी स्वयं सब कार्य अपने हाथ से सम्पादन नही करता । उसके नाम से कार्य होता है । यहाँ न स्त्री को उपस्थिति है न काम की उपस्थिति है । केवल स्त्री के क्रोध के नाम से इतने बड़े वीर सूखे जा रहे हैं । यह काम के प्रताप की महिमा है ।

शूल छेदन करता है । असि भेदन करता है । वज्र चूर चूर कर देता है या झुलस देता है । सो इन अस्त्रों को महाराज दशरथ ढाल पर नही रोकते थे । छाती पर लते थे । वे ही आज कामदेव के फूल का बाण सहने मे असमर्थ हो रहे हैं । अथवा घोर सग्राम मे अनेक शस्त्रों के प्रहार से तो महाराज बचे पर काम के सुमन शर से नही बचेंगे । इसलिए सुमन सर मारे कहा ।

सभय नरसु प्रिया पहि गयेऊ । देखि दसा दुखु दारुन भयऊ ॥

भूमि सयन पटु मोट पुराना । दिये डारि तन भूषन नाना ॥३॥

अर्थ : डगते हुए राजा प्रिया के पास गये । उसकी दशा देखकर दारुण दुःख हुआ । जमीन पर सोयो हुई है । मोटा बपडा पहन रखता है और शरीर के नाना प्रकार के गहनों को फेंक दिया है ।

व्याख्या : यद्यपि नरेश है और प्रिया के पास जा रहे हैं । फिर भी डर रहे हैं । पहिले कह आये हैं कि डर से आगे पैर नही पड़ता । परन्तु बिना मनाये भी तो काम नही चलता । इस समय साहस किसका है कि महारानी तक जाय । स्वयं महाराज भयभीत हो रहे हैं । फिर भी डरते डरते गये । प्रिया की दशा देखकर तो

दारुण दुःख हुआ । भाव यह कि कोपभवन सुनने से ही दुःख हुआ था । अब जो कोप के साज में जब प्रिया को देखा तो महाराज को असह्य दुःख हुआ ।

। अब कोप का समाज साज कहते हैं कि रानी पृथ्वी पर पड़ी हैं । मोटे पुगने कपड़े पहने हुए हैं । शरीर पर के आभूषणों को उतारकर फेंक दिया है । भाव, यह कि मैं अनाथा हूँ । दासी हूँ । मुझे अब सुख के साज से क्या मतलब ? जो तुम काल पाकर हमें बनाना चाहते हो वह मुझे आज ही स्वीकार है ।

कुमतिहि कसि कुवेपता फावी । अनअहिवातु सूच जनु भावी ॥

जाइ निकट नृपु कह मृदु वानी । प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥४॥

अर्थ : इस कुबुद्धि को कुवेप धारण करना कैसे फब रहा है । मानो भावी विधवापन को सूचित कर रही है । निकट जाकर राजा कोमल बात बोले कि हे प्राणप्रिये ! तुम क्यों रुठ गयी हो ?

व्याख्या : कवि कहते हैं कि भवितव्य के अनुसार रुचि हो जाती है । कुबुद्धि कैकेयी को आज यह कुरूपता अच्छी लग रही है । सब सुख साज समाज सुलभ है । उसे छोड़कर इसने विधवा का सा स्वरूप बना रखा है । मानो भवितव्य वैधव्य की सूचना दे रहा है ।

राजा निकट चले गये । प्रसन्न करने के लिए मृदुवाणी से प्रिये ! कहकर सम्बोधन किया और रुठने का कारण पूछा । भाव यह कि मुझे नहीं मालूम कि तू किसलिए रुठी हुई है । यदि मालूम होता तो तुम्हारा अभीष्ट पूरा करके तब आते । इसलिए अपने रुठने का कारण बतलाओ । मेरे जान में कोई ऐसी बात नहीं हुई है जो तुम्हें अप्रिय हो । यदि अनजान में कुछ हुआ हो तो मालूम होने पर तुरन्त दुरुस्त किया जा सकता है । किसी को भी तुम्हारे रुठने का कारण नहीं मालूम । अतः तुम्हारे बतलाने से ही काम चल सकता है ।

छं. 'केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई ।

मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई ॥

दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई ।

तुलसी नृपति भवतव्यता बस काम कौतुक लेखई ॥

अर्थ : रानी किसलिए रुठी हो ? हाथ छूने से पति को रोक रही है । मानो क्रोध से भरी सर्प की स्त्री भयानक रीति से देख रही है । दोनों बासनाएँ दो जीभ हैं और बर दाँत हैं । दंशन के लिए मर्म स्थान देख रही है । तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा होनहार के वश इसे काम कौतुक मान रहे हैं ।

महाराज कह रहे हैं कि रानी तुम्हारे रुठने का कारण क्या है ? उत्तर न पाकर पाणिस्पर्श करना चाहते हैं । परन्तु वह हाथ छूने नहीं देती और क्रोधभरी

क्रूर दृष्टि में राजा की ओर ऐसी देख रही है। मानो वह उनकी स्त्री ही नहीं है। साँप की स्त्री है। भाव यह कि मुझे न छुओ। तुम्हारा मन मलिन है। झूठा प्रेम दिखाकर ठगने आये हो। मुझ सरलहृदया के साथ तुम्हारा ऐसा वषट व्यवहार कि तुम मुझे कौसल्या की दासी और मेरे बेटे को राम का बन्दो बनाना चाहते हो मन्थरा की दी हुई दृष्टि से देख रही है। यथा : मन मलीन मुहु मोठ नृपु राउर सरल सुभाउ। सर्पिणी को दो जीभ होती हैं। इसकी दो वासनाएँ दोनों जीभ हैं। १. भरत को राज्य २. रामजी को वनवास। और दशन करनेवाले दो दाँत होते हैं। यहाँ जो दो वरदान माँगनेवाली है वे ही दोनों दाँत हैं। सर्पिणी यदि मर्मस्थान में दशन कर ले तो काटा हुआ जी नहीं सकता। अतः रानी रूपी सर्पिणी मर्मस्थान देख रही है कि मर्मस्थान हाथ लगे तो दशन करूँ। यहाँ मर्मस्थान राजा द्वारा रामजी का शपथ ग्रहण है। यथा : भूपति राम शपथ जब करई। तब मागेउ जेहि वचन न टरई।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि राजा भवितव्यता के वश में हैं। अत्यन्त स्पष्ट बात को नहीं लख रहे हैं। यह मान नहीं है। मान में ऐसी क्रूरदृष्टि नहीं होती। रामजी के अभिषेक के समय कोपभवन प्रवेश का सिवा इसके दूसरा अर्थ ही नहीं होता कि रानी को रामजी के राजतिलक से अप्रसन्नता है। पर राजा भवितव्यता के वश होने से यह सब कुछ लख नहीं रहे हैं। इसे रानी की मानप्रियता समझ रहे हैं। यथा : तुम्हहि कोहाव परम प्रिय अहई। इतना बड़ा उलट फेर काम का खेल है जिसने इतने बड़े चतुर राजा को अन्धा बना दिया : कामान्धो नैव पश्यति। यह नहीं देख रहे हैं कि सर्पिणी का लक्ष्य उन्हीं पर है। उन्हीं को सरोप विषम दृष्टि से देख रही है। यहाँ प्रेम का गन्ध भी नहीं है।

सो. बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकवचनि।

कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥२५॥

अर्थ : बार बार महाराज कहते हैं कि हे सुमुखि ! हे सुलोचनि ! हे पिकवचनि ! हे गजगामिनि ! अपने क्रोध का कारण तो कहो।

व्याख्या : राजा मितभापी होते हैं। उनके वचन का बड़ा मूल्य होता है। उनकी एकवार की दी हुई आज्ञा हटायी नहीं जा सकती। सो राजा एकवार के निवारण करने पर फिर स्पर्श का साहम नहीं कर रहे हैं। अपने प्रश्न का उत्तर न पाने पर भी बार बार वही पूछते जा रहे हैं : प्रान प्रिया केहि हेतु रिमानी ? केहि हेतु रानि रिसानि ? कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर, रानी को प्रसन्न करने के लिए कभी सुमुखि कहते हैं। कभी सुलोचनि कहते हैं। कभी पिकवचनि और कभी गजगामिनि सम्बोधन करके उसकी स्तुति करते हैं। सर्पिणी की भाँति फटाटोप करनेवाली को सुमुखि कहते हैं। विषम दृष्टि से क्रुद्ध होकर देखनेवाली को सुलोचनि कहते हैं। फूटकार की भाँति हुंकार करके करस्पर्श को रोकनेवाली को पिकवचनि कहते हैं और सर्पिणी की भाँति पलटा गायी हुई को गजगामिनि कह रहे हैं : बात

यही ठीक है कि सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं है। मनकी कल्पना मात्र है। रानी की ये सब कुचेष्टाएँ महाराज को प्रणय कोप मालूम हो रही हैं।

अनहित तोर प्रिया केई कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥

कहु केहि रकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू ॥१॥

अर्थ प्रिये ! किसने तेरा अहित किया ? किसे दो सिर हैं ? किसे यम लेना चाहते हैं ? वतलाओ किस दरिद्र को राजा कर दूँ या किस राजा को उसके देश से निवाल बाहर करूँ।

व्याख्या जब बार बार पूछने पर भी क्रोध का कारण नहीं बतलाया तब राजा ने समझा कि मेरे ऊपर क्रुद्ध नहीं है। मालूम होता है किसी दूसरे ने इसका कुछ बिगाड़ा है। अतः पूछते हैं कि तेरा अनहित किसने किया ? राजा के अहित करने का किसी को साहस नहीं होता। तू तो मेरी प्रिया है। तेरा अहित करने का किसे साहस हुआ ? उसे दण्ड देनेवाला मैं हूँ। दण्ड दो प्रकार का होता है, १ शारीरिक और २ आर्थिक। सो यदि तुझे अपराधी को शारीरिक दण्ड दिलाना हा तो वतला मैं उसका शिरच्छेदन कर दूँ। एक सिरवाला तो तेरा अपराध करके नहीं जी सकता। यदि किसी का दो सिर हो तो भले ही बच जाय। एक सिर उसका तो मैं काट ही लूँगा। यदि किसी को आर्थिक दण्ड दिलाना हो तो वह यदि राजा भी हो तो मैं उसका दश निकाला कर सकता हूँ। यदि किसी को कुछ देना चाहती हो तो मैं उसे राजा बना सकता हूँ।

सकौ तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नर नारी ॥

जानसि मोर सुभाउ बरोरु । मनु तव आनन चद चकोरु ॥२॥

अर्थ तेरा शत्रु यदि दैवता भी हो तो उसे मार सकता हूँ। बेचारे नर नारी क्या है ? वे तो कीड़े मकोड़े हैं। हे सुन्दर ऊखवाली ! तू तो मेरा स्वभाव जानती है कि मेरा मन तेरे मुखचन्द का चकोर है।

व्याख्या मैं अमरो दैवताओं का सहायक हूँ। पर यदि वे तुझसे शत्रुता करें तो उन्हें भी मैं मार सकता हूँ। तेरा अनहित तो किसी मनुष्य ने ही किया होगा। वे क्या हैं ? कीड़े मकोड़े हैं। उनके मारने में क्या रक्खा है ? भाव यह है कि जो मनोरथ हो उसे पूर्ण करने के लिए महाराज तैयार है। इतना बड़ा यशस्वी न्यायकारी राजा आज स्त्री का क्रीडामृग हो रहा है। स्त्री की प्रसन्नता व लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत है।

कहते हैं कि इतने क्रोध की क्या आवश्यकता है ? मैं तो तेरे वश में हूँ। जो तू कहे वह मैं करने को तैयार हूँ। तू मेरे स्वभाव से परिचित है कि मेरा मन तेरा मुख देखा करता है जैसे चकोर चन्द्र को देखता है। यहाँ मुखचन्द्र का घाटा नहीं है। पर मेरा मन तो तेरे ही मुखचन्द्र का चकोर है।

प्रिया प्रान सुत सरवसु मोरें । परिजन प्रजा मकल वस तोरे ॥

जौ कछु कहउँ कपटु करि तोही । भामिनि राम सपथ सत मोही ॥३॥

अर्थ • प्रिये ! मेरे प्राण मेरे बेटे मेरा सर्वस्व मेरे कुटुम्बो मेरी प्रजा सब तेरे ही वश में हैं । यदि मैं कुछ कपट करके तुझसे कहता होऊँ तो हे भामिनि ! मुझे रामजी की सौ शपथ है ।

व्याख्या • मैं और मेरा जो कुछ है वह सब तेरे अधीन है । इसी भाव को दृष्टि में रखकर कहा गया है • अमित दानि भर्ता वैदेही । मित ददाति च पिता मितं भ्राता मित सुत । अमितस्य च दातार भर्तार का नु सेवयेत् । मनु । अधम सो नारि जो सेव न तेही । महाराज के इतना कहने पर भी जब न पसीजी तब उन्होंने समझ लिया कि यह मेरे कहने पर विश्वास नहीं कर रही है और मेरी बातों में इसे कपट का मन्देह हो रहा है । तब उसके विश्वास दिलाने के लिए महाराज ने रामजी की शपथ ली ।

विहसि माँगु मनभावति वाता । भूपन सजहि मनोहर गाता ॥

घरो कुघरी समुझि जिय देखू । वेगि प्रिया परिहरहि कुवेखू ॥४॥

अर्थ • मनचाही हुई बात हँसकर माँग लो और मनोहर शरीर पर आभूषण धारण कर लो । समय कुसमय को मनमें ख्याल करके देखो और हे प्रिये ! इस कुवेप का शोध ही त्याग करो ।

व्याख्या • महाराज कहते हैं कि लो ! अब हँस दो और जो जो चाहता हो उसे माँग लो । तुम्हारे अङ्ग मनोहर हैं । ये आभूषण के योग्य हैं । इनमें आभूषण माज लो । क्रोध का साज समाज एक न रहे । वहाँ वैसा मङ्गल का समय उपस्थित है वहाँ तुमने यह अमङ्गल वेप धारण कर रखा है । जो सुनेगा वह क्या कहेगा ? यह समय मङ्गलाचार का है । अतः कुवेप के परित्याग में देर न करो । जो तुम चाहोगी उसका मिलना ध्रुव है । पर माँगना पीछे और कुवेप परित्याग करो पहिले ।

दो यह सुनि मन गुनि सपथ बडि, विहँसि उठी मतिमंद ।

भूपन सजति विलोकि मृगु, मनहु किरातिनि फंद ॥२६॥

अर्थ : यह सुनकर और बड़ी शपथ मन में गुनकर मतिमन्द हँस पड़ी और आभूषण मजने लगी । जैसे कि मृग को देखकर किरातिनी अपने पन्दे को सँवारने लगती है ।

व्याख्या • रामजी के सौ शपथों को सुनकर और मन्यरा की बात : भूपति राम सपथ जब करई । तब माँगो जेहि वचन न टरई । मनमें गुनकर वह मतिमन्द बँकेयी हँस पड़ी । महाराज कहते हैं : विहँसि माँगु बँकेयी हँस पड़ा । महाराज कहते हैं • भूपन सजति मनोहर गाता । बँकेयी भूपन मजने लगी । परन्तु वस्तुतः

महाराज के कहने पर नहीं हँसती है। उनके शपथ लेने पर प्रसन्न होकर हँस रही है और महाराज को अपने फन्दे में फँसाने के लिए आभूषण मज रही है। अतः ग्रन्थकार उसकी उपमा किरातिनी के फन्दा सजने से दे रहे हैं। जिससे वह मम्ममुखस्थ भृगु को फँसाती है।

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी । प्रेम पुलकि मृदु मजुल वानी ॥

भामिनि भयउ तोर मनभावा । घर घर नगर अनद बधावा ॥१॥

अर्थ फिर राजाजी उसे हितचिन्तक जानकर प्रेम से प्रफुल्लित होकर कोमल और सुन्दर वाणी बोले हे भामिनि। तेरी ही जी चाही बात हुई। नगर में घर घर आनन्द का बधावा बज रहा है।

व्याख्या महाराज कैकेयी के भूषण सजने के अवसर पर उसे अधिक प्रसन्न करने के लिए शुभ समाचार सुना रहे हैं। उसे अब भी सुहृद समझते हैं। विचारते हैं कि मैंने हँसने को कहा तो हँस पड़ी। गहना साजने को कहा तो साजने लगी। अतः इसे अधिक प्रसन्न करने के लिए यह प्रिय समाचार इसी समय सुनाना चाहिए। सो सुनाने की इच्छामात्र से महाराज को आनन्द हो रहा है। मनम प्रेम है। तन में पुलक है। वाणी में मृदुता और मञ्जुलता है।

महाराज कहने लगे कि हे भामिनी। तू जो चाहती थी वही हो रहा है। बात यह है कि पहिले कैकेयी चाहती थी कि रामजी को राजतिलक हो। समाचार पाते ही मन्थरा को ईप्सित पुरस्कार देने को तैयार हो गयी थी। यथा रामतिलक जो सो चेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली। बात तो बिगड़ी है मन्थरा के बहकाने पर। पूर्वधारणा के अनुसार महाराज कह रहे हैं कि नगर में घर घर बधावा बज रहा है और जिसका मनभावा हो रहा है उसका यह हाल।

रामहि देउँ कालि जुवराजू । सजहि सुलोचनि मगल साजू ॥

दलकि उठैउ सुनि हृदय कठोरु । जनु छुड़ गयउ पाक वरतोरु ॥२॥

अर्थ कल रामजी को युवराजपद दूँगा। हे सुलोचनि। तुम मङ्गलसाज साजो। सुनते ही तो उसका कठोर हृदय दलक उठा। जैसे बालतोड़ फोड़ा छू गया है।

व्याख्या : अब शुभ समाचार सुनात है कि कल रामजी को युवराजपद दूँगा। अतः गहना सजने के बाद मङ्गल भी साजो। नगर में तमाम मङ्गलसाज सजा जा रहा है और तुम्हारे यहाँ कुछ भी नहीं है। उलटे कोपभवन में कोप का साज समाज बनाये पड़ी हो।

यद्यपि कैकेयी का हृदय कठोर हो गया था। फिर भी महाराज के मुख से इस वचन के सुनने पर उसके हृदय पर ऐसा आघात बैठा कि वह दलक उठा। बाल के टूटने से जो फोड़ा हो जाता है। उसके छूने से ऐसी पीड़ा होती है कि मनुष्य काँप उठता है। उसी भाँति कैकेयी का कलेंजा बाँप उठा। जहाँ व्यथा थी वही स्थान अकस्मात् स्पष्ट हो गया।

अयोध्याकाण्ड - द्वितीय सोपान

ऐसिउ पीर विहँसि तेहि गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखी न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरु पढ़ाई ॥३॥

अर्थ : ऐसी पीड़ा को भी वह हँसकर छिपा ले गयी। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती। राजा कपट चतुराई को नहीं लख रहे हैं। क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की मणिगुरु कूबरी की पढ़ाई हुई है।

व्याख्या : हुई तो उसे बड़ी भारी पीड़ा और सुख तथा दुःख दोनों चेहरे पर दर्पण के प्रतिविम्ब की भाँति झलक उठने हैं। उस दुःख की झलक को कही महाराज न लख लें। इसलिए वह हँसकर उसे छिपा ले गयी। जैसे चोर नारी प्रत्यक्ष नहीं रोती। चोर नारी व्यभिचारिणी स्त्री को कहते हैं। आज भी राजा की रखेली को चोर महल कहा जाता है। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पति को चोरी से पर पुरुष के साथ प्रेम करती है। उसका अनिष्ट सुनकर मनसे तो रो देती है। बाहर से प्रीति छिपाने के लिए हँसती है। इसी भाँति रानी भी हँसकर अपनी पीड़ी को छिपा ले गयी। यही महाराज के साथ विश्वासघात का उपक्रम है।

इस कपट चतुराई को महाराज नहीं लख रहे हैं। समझते हैं कि रामराज का समाचार सुनकर रानी आनन्द से हँस रही है। इतनी पण्डिताई कपट विद्या में रानी को कहाँ से आगयी? इसके उत्तर में ग्रन्थकार कहते हैं कि करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि कूबरी ने पढ़ाकर पक्का कर रखा है। यथा . कहि कहि कोटिक वपट कहानी । धीरजु धरहु प्रबोधेसि रानी । तथा : काजु सँवारेउँ सजगसबु सहसा जनि पतिआहु ।

यद्यपि नीति निपुण नरनाह । नारि चरित जलनिधि अवगाह ॥
कपट सनेह बढ़ाई बहोरी । बोली विहँसि नयन मुहु मोरी ॥४॥

अर्थ : यद्यपि राजा नीति में निपुण है। पर स्त्री चरित्र भी अथाह समुद्र है। फिर वह कपट का प्रेम बढ़ाकर आँख और मुख को मोड़कर हँसती हुई बोली ।

व्याख्या : नीतिनिपुण सब चरित्रों का थाह लगा तो लेते हैं। पर त्रियाचरित्र उनके लिए भी अथाह समुद्र है। गुरु का पक्का चेला चोट नहीं खाता। मन्थरा कोटि कुटिलमनि गुरु है। उसकी कपट चतुराई को रानी नहीं लख सकी और रानी की कपट चतुराई को महाराज लखने में असमर्थ हैं। रानी का हृदय ऐसा दारुण हो गया है कि भीतर से पुत्र पति को त्यागने के लिए प्रमत्त है। यथा : परउँ कूप तुअ वचन पर सकौं पूत पति त्यागि । और बाह्य से नयन मुख मोड़कर मनेह दिमाती हुई हँसकर बोली - यह विलविधित हाव है।

दो. माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु ।
देन कहहु वरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

अर्थ हे प्रिय ! माँग माँग तो कहते हो पर कभी देना लेना कही कुछ भी नहीं । दो वरदान देने को कहा था । उनके मिलने में भी सन्देह है ।

व्याख्या . महाराज ने बार बार प्रिये कहकर सम्बोधन किया था । अतः रानी भी प्रिय कहकर सम्बोधन करती है और उपालम्भ करती हुई कहती है कि आप माँग माँग तो कह देते हैं पर उस वचन को कार्य में परिणत नहीं करते । प्रमाण देती है कि पहिले भी इसी भाँति माँगु माँगु कहा था । परन्तु दिया क्या ? अब नया वरदान क्या दोगे ? जो दो वरदान देने के लिए कहा था वही दे दो तो मैंने बहुत पाया । मुझे तो सन्देह है कि उन्हीं दो को न दे सकोगे । सन्देह प्रकाश करने में तात्पर्य यह कि महाराज उस सन्देह को दूर करने के लिए सत्य की सराहना करें । देहु न लेहु कहने का भाव यह कि ईप्सित देते भी नहीं और नहीं कहकर अपयश लेते भी नहीं । यथा देहु कि लेहु अयशकरि नाही ।

जानेउ मरमु राउ हँसि कहई । तुमहि कोहाव परम प्रिय अहई ॥

थाती राखि न माँगिहु काऊ । विसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥१॥

अर्थ . राजा ने हँसकर कहा कि मैं मर्म जान गया । तुम्हें रुठना परम प्रिय है । तुमने धरोहर रखकर कभी नहीं माँगा । मेरा विस्मरणशील स्वभाव है । मैं भूल गया ।

व्याख्या महाराज ने तुरन्त समझ लिया कि असुर सग्राम में दिये हुए दोनों वरदानों के विषय में कह रही है । सो तो इनका रक्खा ही है । इनके माँगने की देर है । इन्होंने ही उस समय नहीं माँगा । कहा कि जब आवश्यकता होगी माँग लूँगी । सो वरदान में देर होना अप्रसन्नता का कारण नहीं हो सकता । इनका मान करने का स्वभाव है । सो वरदान न देने का बहाना ढूँढकर मान किये हुए है । अतः कहने है कि मुझे मर्म मालूम हो गया । तुम्हें रुठना बड़ा प्रिय है । उसी के लिए बहाना ढूँढ रक्खा है । तुम्हारी थाती रक्खो हुई है । नहीं माँगा इसमें दोष तुम्हारा है । यदि कहो कि धरोहर रखनेवाला यदि भूल भी जाय तो सच्चे महाजन को उचित है कि उसे याद दिलावे कि अपना धरोहर ले जाओ । इस पर महाराज कहते हैं कि मेरा विस्मरणशील स्वभाव है । मुझे भूल गया था कि तुम्हारा धरोहर रक्खा हुआ है । उसे बिना माँगे भी दे देना चाहिए ।

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहु । दुइ कै चारि माँगि मकु लेहु ॥

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रात जाहु बरु वचनु न जाई ॥२॥

अर्थ मुझे झूठमूठ दोष न दो । दो के बदले चार क्यों नहीं माँग लेती । सदा से रघुकुल की यह रीति चली आयी है कि प्राण चाहे चले जायँ । पर वचन न जाने पावे ।

व्याख्या कुछ भी ससर्ग रहने से झूठा दोष लग जाता है । परन्तु यहाँ तो मेरा दोष से कोई ससर्ग ही नहीं है । धरोहर में व्याज नहीं लगता । सो मैं व्याज

सहित देने को प्रस्तुत हूँ। व्याज की पराकाष्ठा मूल को द्विगुणित कर देना है। सो तुम मुझसे दो के स्थान में चार वरदान माँग लो। कैकेयी ने कहा था देन कहेहु वरदान दुइ तेउ पावत सदेहु। उसी का उत्तर देते हुए महाराज कहते हैं कि मेरे कुल की रीति है कि प्राण छोड़ देते हैं वचन नहीं छोड़ते। मैं उस कुल का अग्रणी होकर वचन कैसे छोड़ूँगा? मैं अपना वचन छोड़ नहीं सकता।

नहि असत्य सम पातक पुजा। गिरि सम होहि कि कोटिक गुजा ॥

सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। वेद पुरान विदित मुनु गाए ॥३॥

अर्थ पातकों के समूह इकट्ठे होकर भी झूठ के बराबर नहीं हो सकते। क्या करोड़ों घुघुची पर्वत के समान हो सकती हैं? जितने सुन्दर सुकृत हैं वे सब सत्यमूलक हैं। ऐसा ही वेद पुराण कहते हैं और मनु जी भी गान करते हैं।

व्याख्या और जितने पाप हैं वे सत्य के सामने वैसे ही हैं जैसे पहाड़ के सामने घुघुची। अर्थात् सब पापों में अति विशाल असत्य है। इसीलिए सबसे नीचे का नरक अवीची है। जिसमें झूठे डाले जाते हैं। भाव यह कि ऐसी कुलरीति होने का यथेष्ट कारण है। प्राण देना मेरे पूर्व पुरुषों को स्वीकार था पर इनका बड़ा पाप करना स्वीकार न था।

और भी एक बात है। जितने पुण्य हैं वे सत्य के आधार पर ही बड़े हैं। सत्य के नष्ट होते ही पूर्व के सब पुण्य धराशायी हो जाते हैं। क्योंकि क्रिया के फल को आश्रय सत्य से ही मिलता है। यथा सत्यप्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम् तथा समूल एव परिशुष्यति योजनृत वदति। अज्ञातार्थज्ञापक होने से पाप पुण्य के निर्णायक वेद पुराण ही हैं। उनमें भी मनुस्मृति का पद बहुत ऊँचा है यन्मनुरवदत्तद्भेषजम्। मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते। वद कहता है कि जो मनु कहते हैं वही औपध है। जो मनु के कहने के विपरीत है वह स्मृति मान्य नहीं है। अतः वचन को असत्य करके अपने पूर्वकृत पुण्यों का नाश और अवीची नरक को कौन स्वीकार करेगा?

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनह अवधि रघुराई ॥

वात दढाइ कुमति हंसि बोली। कुमत्त कुविहग कुलह जनु खोली ॥४॥

अर्थ इस पर श्री रामजी की शपथ मुझसे हो पड़ी। रघुराई रामजी पुण्य और स्नेह की सीमा हैं। वात को पकड़ी करके कुमति हँसकर बोली। मानो दुष्ट आशय रूपा बाज का टोप खोल दिया।

व्याख्या रामजी सुकृत को अवधि हैं। यथा सब कोउ कहै राम मुटि साधू। रामजी स्नेह की अवधि हैं। यथा राम दत्त नहि बने गोमाई। भाव यह कि दोही का शपथ लिया जाता है। पुण्यात्मा का या अपने स्नेही का। माँ रामजी दोनों ही सीमा हैं। सो मैंने रामजी की शपथ ल ली। अत्र तो नहीं कहने के लिए अवसर ही नहीं रह गया।

महाराज के इतना बहने पर यह बात इतनी दृढ़ हो गयी कि नर्म कहकर किसी भीति उड़ायी नहीं जा सकती। महाराज ने कहा था विहसि माँगु मन भावति वाता। सो हँसरर बोली। वाज के आँसु पर पट्टी बाँधकर रखा जाता है जिसे टोप कहते हैं कि कहीं बैँकेयी के दुष्ट आशय की उपमा वाज से दी है। उसे वह कपट चतुराई रूपी टोप से छिपाये रही। अवसर पाकर टोप खोल दिया। अर्थात् हँसरर बोली। भाव यह कि आशय ही व्यक्त होकर वचन में परिणत हो जाता है।

दो भूप मनोरथ सुभग वनु, सुख सुविहग समाजु ।

भिल्लिनि जिमि छाडन चाहति, वचन भयकर वाजु ॥२८॥

अर्थ राजा का मनोरथ सुन्दर वन है और सुरा ही सुन्दर चिड़ियों का समाज है। भीलनी मानो वचन रूपी भयङ्कर वाज को छोड़ना चाहती है।

व्याख्या साँझ समय सानद नृपु गयउ बैँकेयी गेट। उसी आनन्द को यहाँ सुख कहा गया है। अर्थात् रामजी को राज्य देने का आनन्द। इस आनन्द के अन्तर्गत बहुत प्रकार के सुख हैं इसीलिए सुख सुविहग समाज कहा। एक ही वचन के दो वरदान दो विभाग मात्र हैं। मानो वचनरूपी वाज के दोनो वरदान दो पञ्ज हैं। भयङ्कर वाज है एक एक पञ्ज में एक एक पक्षी के पकड़ने की ताकत रखता है। यहाँ बैँकेयी की उपमा भिल्लिनी से दी। क्योंकि भिल्लिनी चिड़ियों के शिकार के लिए वाज जिलाती है और चिड़िया का समाज देखकर उसे छोड़ देती है। उम वाज द्वारा विहङ्ग समाज का सहार हो जाता है। यहाँ राजा के मनोरथ रूपी वन में सुखरूपी चिड़िया का समाज विहार करता था। सो बैँकेयीरूपी भिल्लिनी के वचनरूपी वाज के चपेट में महाराज का मनोरथ वन सुख से शून्य हो जायगा।

सुनहुँ प्राणप्रिय भावत जी का। देहु एक वर भरतहि टीका ॥

मागौ दूसर वर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥१॥

अर्थ हे प्राणप्रिय ! मनोवाञ्छित सुनो। एक वर यह कि भरत को राजतिलक दो। दूसरा वरदान हाथ जोड़कर माँगती हूँ। हे नाथ मेरे मनोरथ को पूरा करो।

व्याख्या प्राणप्रिय को छोड़कर जी का चाहा हुआ कौन पूरा कर सकता है। अतः बैँकेयी प्राणप्रिय सम्बोधन दे रही है। वाज के पहिल पञ्जे की चोट है देहु एक वर भरतहि टीका। राजा चुप है। आकार से कुछ लक्षित नहीं होता। अतः उसे स्वीकृत मान लिया।

पहिल वर के मिलने में बैँकेयी को भी विशेष शङ्का नहीं थी। समझती थी कि यह वरदान मिल जायगा। दूसरे वर के मिलने में बड़ा सन्देह है। दूसरे वर को पहिल की भाँति नहीं कह सकी। कहने में सितपिटाती है। क्योंकि स्वयं

रामजी के तिलक की इच्छा प्रकट कर चुकी है। यथा भामिनि भयउ तोर मन भावा । हाथ जोड रही है बोलने में चूक हो रही है। मनोरथ शब्द का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग कर रही है। कहती है कि आप नाथ हैं। आपके बिना मनोरथ कौन पूरा करेगा। अब बाज पहिले पञ्जे के शिकार को संभालकर दूसरे पञ्जे से चोट किया चाहता है।

तापस वेप विसेपि उदासी । चौदह वरिस रामु वनवासी ॥

सुनि मृदु वचन भूप हियसोकू । ससिकर छुअत विचल जिमि कोकू ॥२॥

। अर्थ - तपस्वी का वेप धारण करके और विशेष रूप से उदामीन होकर चौदह वर्ष के लिए रामजी वनवासी हो। कोमल वचन को सुनकर राजा के हृदय में शोक हुआ। जैसे चन्द्र के किरण के स्पर्श से चक्का विकल हो जाता है।

व्याख्या पहिले चोट - वर का प्रभाव यह हुआ कि हृदय में शोक हुआ। बाहर कुछ नहीं। मनोरथभङ्ग से दाह हुआ। यथा सीतल सित दाहक मइ कैसे। चकइहि सरद चदनिसि जैसे। दूसरे पञ्जे की चोट। यह वरदान ऐसा मांगा जिससे अपनी निगाह से और दूसरी की निगाह से राजभाव जाता रहे। अतः तापस वेप में रामजी का रहना मांगती है। राज के मामलों से सम्बन्ध न रखें। मुनिव्रत वेप अहार से मनोवृत्ति बदल जाय। इसलिए उदासीन रहना मांगती है। वैकेयी के समझ में उससे चौदह दिन बात छिपायी गयी। पन्द्रहवें दिन मन्यरा से पता चला। यथा : भयउ पाख दिनु सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन बाजू । अतः एक एक दिन बात छिपाने के बदले में एक एक वर्ष का वनवास मांगती है। फिर भी वैकेयी के हृदय में छिपा प्रेम है। नहीं तो मन्यरा ने सदा के लिए वनवास कहा था। यथा - सुतहि राजु रामहि वनवामू । अथवा १४ वर्ष का समय भरत को अपने शासन को दृढ़ मूलक बना लेने के लिए यथेष्ट समझकर १४ वर्ष का वनवास मांगा। अथवा बुध की महादशा में तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। चौदह बाकी थे। इसलिए रानी के मन में चौदह वर्ष के लिए वनवास मांगने का सङ्कल्प उठा। मृदु वचन यथा : सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का।

गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा । जनु सचान वन झपटेउ लावा ॥

वियरन भयउ निपट नरपालू । दामिनि हुनउ मनसु तरु तालू ॥३॥

अर्थ - सहम गये। कुछ कहते न बना। मानो वन में लवा के ऊपर बाज झपट पड़ा। राजा एक बारगी बेरग हो गये : रग फक हो गया। मानो ताड़ के पेट पर बिजली गिरी हो।

व्याख्या - दूसरी चोट से तो ऐसे सहमे कि कुछ कहते न बना। बोलना चाहा पर बोल न सके। पहिले में केवल मन की दशा दिखलायी। जब मन की दशा अधिक बिगड़ती है तब वाणी और शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यहाँ वाणी की दशा यही। अब बाज झपट का पता लगा। पहिले तब तो मातृप्रेम ही समझने

थे । परन्तु इस दूसरे वरदान के समय तो ऐसी गति हुई जैसे बाज वन में लवा पर झपटता है । बाज के झपटने पर लवा ची भी नहीं कर सकता । इस भाँति वाणी की दशा कहते हैं ।

तालतरु तृणराज है । दूसरे पेड़ पर बिजली गिरने से काई शाखा विशेष टूट जाती है । पर तृणराज तो एकदम झुलस जाते हैं । उनके डाल पत्ते सिरपर होते हैं वे एकदम नीचे आ पड़ते हैं ।

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥४॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई । दीन्हिसि अचल विपति कै नेई ॥५॥

अर्थ माथे पर हाथ रखकर और दोनो आँखें बन्द करके इस भाँति सोचने लगे जैसे स्वयं सोच शरीर धारण किये हो । मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल उठा था । फल लगते ही हथिनी ने उस जड़ से उखाड़ फका । कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ दिया और विपत्ति की अटल नींव डाल दी ।

व्याख्या ऊपर की तीन अर्धालियों में क्रमशः मन वचन और तन की दशा कही । आघात पड़ते ही जो विकलता होती है उसे कहकर उसके बाद की दशा कहते हैं । दोना हाथों पर इस भाँति माथा रखना जिसमें आँखें मुद जायँ शोक की मुद्रा है । जिसे अपने सोच का आरपार नहीं दिखाई पड़ता वह स्वभाव से इसी मुद्रा में हो जाता है । कवि उपमा देते हैं मानो सोच ही शरीर धारण करके सोच रहा है । भाव यह कि चक्रवर्तीजी को इस समय बाह्यज्ञान कुछ भी नहीं है । वे शोकमय हो रहे हैं ।

कल्पवृक्ष के पृथ्वी पर आने से सभी अपना भाग्य मानते हैं और सब उसकी वढोत्तरी चाहते हैं । क्योंकि सब जानते हैं कि यह सबकी कामना को पूर्ण करने वाला है । अतः बड़े यत्न से कल्पतरु की सेवा हाती है । हथिनी में बल बड़ा है । पर वह मूखा है । कल्पवृक्ष के गुणों से अपरिचित है । उसने आकर अपने बल मद से कल्पवृक्ष को ही उखाड़ फका । उखाड़ा हुआ वृक्ष फिर नहीं लगता ।

यहाँ चक्रवर्तीजी के मनोरथरूप रामजी स्वयं कल्पवृक्ष हैं । उनका सब लायक होना फूलना है । यथा वहड भुआलु सुनिअ मुनिनायक । भये रामु सब विधि सब लायक । और उनका अभिप्रेत होना फलना है । यथा नाथ रामु करिअहि जुवराजू । वहिअ कृपा करि करिअ समाजू । सो सब समाज हो रहा था । वरदान के बल से दर्पित कैकेयी हथिनो हुई । और किसी में कल्पवृक्ष के उखाड़ने की सामर्थ्य नहीं । इस मूर्खाने रामजी के दिव्य गुणों को न जाना । उन्हें अयोध्या के बाहर उखाड़ फका । सबके हाथ से कल्पवृक्ष जाता रहा ।

इतने दिन चक्रवर्तीजी को राज्य करते हुए किसी शत्रु का उजाड़ा अवध न उजड़ सका । कैकेयी ने उजाड़ दिया । भाव यह कि प्रजा रामजी में इतनी अनुरक्त

है कि रामजी के छोड़ते ही कोई अयोध्या में रहना न चाहेगा। यथा : जहाँ रामु तहाँ सबुइ समाजू। बिनु रघुवीर अवध नहि काजू। चले साथ अस मनु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन विहाई। तथा मोहि लगि यहु कुटाटु तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारहूँ बाटा। मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। वसै अवध नहि आन उपाएँ। सो इसने अचल विपत्ति की नीव दे दी। रामजी को राज्य कहकर वन दिया जायगा। सो चौदह वर्ष के लिए। इतने दिनों में तो अवध का पता भी न रह जायगा और चौदह वर्ष बीतने पर भी रामजी क्यों लौटेंगे। अतः इसने विपत्ति की अचल नीव डाल दी। अब मकान का बनना किसी के रोके नहीं सकेगा। भाव यह कि चक्रवर्तीजी ने मन से वन दे दिया।

दो. कवनेँ अवसर का भयउ, गयउँ नारि विस्वास।

जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास ॥२९॥

अर्थ . अब किस मौके पर क्या होगा ? मैं तो स्त्री के विश्वास में मारा गया। जैसे योगसिद्धि के फल के समय अविद्या सन्यासी का नाश कर देती है।

व्याख्या : कह्यो राज वन दियो नारि वस गरि गलानि गये राउ। अतः कहते हैं कि वहाँ तो मैं राज देने चला और वहाँ वन दे रहा हूँ। ऐसा होने का कारण कहते हैं कि राजनीति में मैं चूक गया। विश्वासो नैव कर्त्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च। मैंने क्यों स्त्री का विश्वास किया ? इसी चूक से मेरा सर्वनाश उपस्थित है। साँझ समय सानद नृपु गयउ कैकयी गेह। महाराज कैकेयी को आनन्द का समाचार सुनाने गये। उन्हें विश्वास था कि कैकेयी सुनकर परम प्रसन्न होगी। क्योंकि सदा कहा करती है कि भरत से भी मुझे रामजी प्यारे हैं। यथा : भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना। जब कैकेयी को सूठी हुई पाया तब उसे प्रसन्न करने के लिए रामजी के तिलक का निश्चय सुनाते हैं : रामहि देखै कालि पुवराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू। इसपर कैकेयी भी बाहर से हँस पड़ी। इस भाँति चक्रवर्तीजी के विश्वास को और भी दृढ़ कर दिया कि कैकेयी को रामजी का अभिप्रेत पहिले की भाँति परम इष्ट है।

उदाहरण देते हैं कि जैसे योगसिद्धि के फल के समय, अर्थात् जड चेतन की ग्रन्थि विमोक के समय अविद्या बल छल करके ज्ञान दीप को बुझा देती है। यथा : छोरत ग्रन्थि जानि खग राया। विघ्न अनेक कर तव माया। बल बल छल करि जाइ समीपा। अचल वात बुझावहि दीपा। ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि विबल भइ विषय बतासा। विषय समीर बुद्धि वृत्त भोरी। एहि विधि दीप को बार बहोरी। तब फिर जीव विविध विधि पावै ससृति बलेस। हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ विहँगेस।

सो जिस भाँति उक्त सन्यासी का नाश अविद्या ने किया उसी भाँति मेरा सर्वनाश स्त्री द्वारा हुआ।

एहि विधि राउ मनहि मन झाँखा । देखि कुभाँति कुमति मनु माखा ॥
भरतु कि राउर पूत न होही । आनहु मोल वेसाहि कि मोही ॥१॥

अर्थ इस भाँति राजा मन ही मन झीख रहे थे । देखकर कुबुद्धि कैकेयी के मन में बुरी तरह से क्रोध हुआ । बोली क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं । मुझे क्या मोल खरीद लाये हो ?

व्याख्या—इस विधि से अर्थात् आँख मूँदे माथे पर हाथ रखे राजा अपने मनोरथ के नाश और अयोध्या के उजड़ने का सोच कर रहे थे । कवि कहते हैं कि कैकेयी की सुमति चली गयी । अब वह कुमति के अधीन है । उसने देखा कि राजा का ढङ्ग तो अच्छा नहीं है । राजा की यह अवस्था देखकर सुमति को दया आती । पर कुमति के मनमें क्रोध उमड़ा ।

उसने कहा कि क्या भरत आपके बेटे नहीं हैं ? भाव यह कि जैसे राम बेटे हैं वैसे ही भरत हैं । भरत को राज्य माँगने से आपको दुःख क्यों है ? मैं भी तो रानी हूँ । दासों की भाँति मुझे मोल खरीद वरके नहीं लाये हा । भाव यह कि राजा का बेटा राजा नहीं होता रानी का बेटा राजा होता है । दासों से भी राजाओं को सन्तति होती है पर वे पुत्र नहीं माने जाते । क्योंकि उनको जल पिण्ड का अधिकार नहीं होता । भरत के पिता आप राजा हैं और मैं भी पाणिगृहीता भार्या रानी हूँ । हम दोनों का बेटा भरत कैसे राज्य का अधिकारी नहीं है ? उसके लिए यदि मैंने राज्य माँगा तो आप को इतना दुःख क्या है ?

जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारे । काहे न बोलहु वचनु सँभारे ॥
देहु उतरु अनुकरहु^१ कि नाही । मत्यसध तुम्ह रघुकुल माही ॥२॥

अथ जो सुनने से तुम्हें बाण सा लगा ता तुम पहिल ही सोच समझकर क्यों नहीं बोले ? जवाब दो । इनकार कर जाओ कि 'नहीं । तुम रघुकुल में सत्यप्रतिज्ञ हो ।

व्याख्या कैकेयी कहती है कि मेरे वरदान के वचन तुम्हें बाण से लगे । यथा विवरन भयउ निपट महिपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरुतालू । परन्तु इस भाँति दुःख होने का कारण तो कोई है नहीं । तुमने कहा था—कहु केहि रक्खि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू । सा मैंने ता किसी रङ्ग को नरेश बनने के लिए भी नहीं कहा । मैं तो एक राजकुमार को नरेश बनाने को कहती हूँ और न मैंने किसी नरेश को देश निकालने के लिए कहा । मैं तो बवल दूसर राजकुमार के लिए १४ वर्ष का वनवास माँगती हूँ । तुम्हारे कहने से बहुत कम मैंने माँगा है । मैंने माँगने में सँभाल रक्खा । तुमने सँभालकर वचन क्यों न कहा । इस भाँति कैकेयी महाराज की नीतिज्ञता पर आक्षेप करती है ।

१ इनकार को ही ग्राम्यजन अनुकार कहते हैं ।

राजा को चुप देखकर फिर कहती है कि चुप न रहो । एक बात कह दो । इनकार ही कर जाओ कि नहीं दूँगा । रघुकुल की रीति है कि प्राण जाय तो जाय वचन न जाय और तुम तो उम कुल में सत्यसन्ध हो । ससार देख ल कि कितने बड़े सत्यसन्ध हो स्त्रियाँ पति के स्वभाव को खूब जानती हैं । कैकेयी भी जानती है कि महाराज अपयश को डरते हैं । 'नहीं कभी न कहेंगे ।

देन कहेहु अब जनि वरु देहु । तजहु सत्य जग अपजसु लेहु ॥
सत्य सराहि^१ कहेहु वरु देना । जानेहु लेइहि माँगि चवेना ॥३॥

अथ वर देने को कहा था । अब मत दो । सत्य को त्याग दो और ससार में अपयश लो । सत्य की सराहना करके वर देने को कहा तो क्या समझा था कि यह चवेना माँग लगी ।

व्याख्या भाव यह कि पहिल तो कहा झूठेहुँ हमहि दोसु जनि दूहु । दुइ के चारि माँगि मकु लूहु । रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण जाहुँ वरु वचन न जाई । इस दृढ़ता से वर देने को कहा । अब अपनी बात से हट जाओ मत दा । देना तो तुम्हारे हाथ में है । पर समझ लो कि सत्य को त्याग रहे हो और अपनी अपकीर्ति को अपना रहे हो ।

यदि कहा कि मैं नहीं समझता था कि यह भरत को राज्य और रामजी को वनवास मागेगी । मुझ धोखा हुआ । इसपर कहती है कि धोखे की बात नहीं । तुम कठिन से कठिन वर देने का जान बूझकर तैयार थे । प्राण जाहुँ वरु वचन न जाइ । नहीं असत्य सम पातक पुजा । सत्यमूल सब सुकृत सुहाए । इत्यादि वचनों को वर दते समय तुमने उच्चारण किया है । वरदान के समय सत्य की प्रशंसा का तात्पर्य ही यहो है कि जो चाहो सो माँगो, मैं घोर से घोर संकट सहूँगा पर बात से न हटूँगा । तुम राजा हो । समय सकते हो कि वरदान में चवेना ऐसी सुलभ वस्तु नहीं माँगी जाती ।

शिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा । तनु धनु तजेउ वचन पनु राखा ॥
अतिकटु वचन कहति कैकेई । मानहुँ^२ लोन जरे पर देई ॥४॥

अथ शिवि दधीचि और राजा बलि ने जो कुछ कहा था शरीर और धन का त्याग करके भी वचन और प्रण को रक्खा । कैकेयी अत्यन्त बड़ुए वचन कह रही है मानो जग पर नमक छिन्क रही है ।

व्याख्या शिवि दधीचि और बलि सत्यसन्ध थे । शिवि ने अपने शरीर का मांस काटकर ववूतर के बराबर तौल दिया । ववूतर भारी हो गया । राजा शिवि मांस काट काटकर तुला पर चढ़ाते गये । अन्त में जब सिर चढ़ाने लगे तब इन्द्र

१ यह छेकोक्ति अलङ्कार है ।

२ पञ्चसिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा ।

और अग्नि ने प्रकट होकर उनकी सत्यप्रतिज्ञा की प्रशंसा की और उनके शरीर को ठीक कर दिया। राजा की शरणागतवत्सलता की परीक्षा के लिए इन्द्र बाज और अग्नि कवूतर बने थे। कवूतर भागता हुआ राजा शिवि की गोद में जा छिपा। बाज ने आकर कहा कि यह मेरा भक्ष्य है। इसे दे दीजिये। राजा ने कहा इसके बदले में जो माँगो दूँगा। बाज ने कहा अपने शरीर का मांस इसके बराबर तेल दो। शिवि कह सक्ते थे कि मुझे धोखा हुआ मैं नहीं समझता था कि तुम मेरे शरीर का मांस माँगोगे। परन्तु उन्होंने ऐसा न कहा। काटकर अपना मांस तेलने लगे। वे चबैना देनेवाले सत्यसन्ध नहीं थे।

दधोचि ऋषि देवताओं का घरोहर अस्त्र शस्त्र रखे हुए थे। राक्षसों से हैरान होकर वे उनको पान कर गये। जब देवता माँगने आये तो उन्होंने कहा कि वे तो जठरानल में पड़कर मेरी अस्थि में लीन हो गये हैं। मेरी हड्डी ले जाकर अपने अस्त्र शस्त्र बना लो। सो दधोचि जी इस भाँति रखी हुई धाती को लौटानेवाले सत्यसन्ध थे। चबैनावाले नहीं थे।

राजा बलि से वामन ने तीन हाथ पृथ्वी माँगी। दान पाने पर वामन ने अपना विराट् रूप कर लिया और उसके त्रैलोक्य का राज्य तथा उसकी शरीर भी नाप ली। राजा बलि ने यह न कहा कि मुझे धोखा हुआ मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी बड़ी शरीर बना लोगे। क्योंकि वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नहीं थे।

इस भाँति शिवि दधोचि ने तन दिया। बलि ने तन धन दानो दिया। पर न शिवि अपने प्राण से हटे और न दधोचि और न बलि अपने वचन से हटे। तीनों के साथ कपट हुआ। पर वे धर्म से न हटे। वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नहीं थे। तुम्हें न तन देना है न धन देना है। मुपत में सत्यसन्ध कहलाना है। इन कटु वचनों से महाराज को अति पीड़ा हो रही है। जैसे जले पर कोई नमक छिड़के और वह मनुष्य छटपटा उठे।

दो धरम धुरधर धीर धरि, नयन उघारे राय।

सिर धुनि लीन्ह उसास असि, मारेसि मोहि कुठाय ॥३०॥

अर्थ धर्म की धूरि धारण करनेवाले महाराज ने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर लम्बी श्वास ली कि इसने बुरी जगह मुझे तलवार मारी।

व्याख्या महाराज के हृदय में शोक था। सो धैर्य धारण किया। माथे हाथ रखकर आँख मीचे हुए थे। सो आँख खोली। जल पर नमक छिड़कने के कारण सिर पीटा, अतिपीड़ा से लम्बी श्वास लेकर मन में कहा कि इमने मेरे मर्म पर तलवार मारी। इस चोट से मैं बच नहीं सकता। कहने के लिए इसकी चोट राम पर है। वस्तुतस्तु यह मेरे प्राण पर आघात हुआ।

बैकेयी ने कहा कि अपने को सँभालकर कुछ बोलो तो। हाँ या ना कुछ उत्तर तो दो और राजा की विवलता पर अनेक आक्षेप किया। तब राजा ने अपने

अयोध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

को सँभाला। धैर्य धारण करके आँख खोली। पर सामने का दृश्य देखकर सिर पीटने लगे। कैकेयी को ऐसा क्रोध में भरा पाया कि उससे दया या स्नेह की कोई आशा ही नहीं रह गयी। जब मनुष्य से कुछ करते नहीं बनता तभी वह सिर पीटता है। लम्बी साँस लेता है। राजा सत्य के अनुरोध से ना कर नहीं सकते और रामजी प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उन्हें आँख से ओट करना और प्राण छोड़ना एक बात है। अतः हाँ करना भी अमम्भव है। अब यदि कैकेयी ही दया करे तो कोई रास्ता निकल सकता है। सो कैकेयी : आगे दीख जरत रिस भारी। मनहु रोप तरवारि उधारी हो रही है। अतः सिर पीटते हैं और लम्बी साँस लेते हैं। सोचते हैं कि इसके क्रोध रूपी खड्ग का आघात रामजी पर नहीं है मुझपर है। राम पुनीत विषय रस रुखे हैं : देवताओं ने भी कहा था कि विस्मय हर्ष रहित रघुराज। अतः रामजी की भी कोई विशेष हानि नहीं है। इसमें मरण हमारा है जो रामजी के बिना जी नहीं सकते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मैंने ही रामजी से कहलाया था कि बल तुम्हारा अभिप्रेक होगा और जब कल का दिन आवे तब मैं ही कहूँ कि मैं तुम्हें बनवास देता हूँ। यह तो प्राण रहते नहीं हो सकता। यथा : कह्यो राज वन दियो नारि वस गरि गलानि गयो राउ। अतः यह तलवार की चोट ऐसे मर्म पर की गयी है कि इसका परिणाम मृत्यु ही है। इसका कोई उपचार नहीं हो सकता। इसलिए कहते हैं कि यह तलवार मुझ पर चली है और इसने सद्यः प्राणहर मर्म को काट दिया।

आगे दीखि जरत रिस भारी। मनहु रोप तरवारि उधारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूवरी सान वनाई ॥१॥

अर्थ : सामने क्रोध से जलती हुई : कैकेयी को देखा मानों खिंची हुई क्रोध की तलवार है। कुबुद्धि मूठ है। निष्ठुरता धार है। जिसपर : कुवरी ने शान दे रक्खा है।

व्याख्या : आँख खोलते ही महाराज की दृष्टि कैकेयी पर पड़ी। देखते हैं कि वह अपने वश में नहीं है। क्रोध के हाथ की शस्त्र हो गयी है। पहिले कोप में तलवार थी। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई। अब कोप के बाहर निकल आयी है। चोट कर रही है।

उस तलवार की मूठ कुबुद्धि है। उसे मजबूती से पकड़े हुए है और निष्ठुरता ही धार है। उसे शान रखकर कूवरी ने खूब तीखी कर रक्खी है। यथा : काजु सँवारेउ सजग सवु सहसा जनि पतिआहु।

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥
बोले राउ कठिन करि छाती। दानी सविनय तासु सोहाती ॥२॥
अर्थ : चक्रवर्तीजी ने लखा कि कराल कठोर है। क्या सचमुच मेरा प्राण लेगी। राजा छाती कड़ी करके विनयपुक्त बाणी जो उसे अच्छी लगे बोले।

व्याख्या राजा हैं। स्वरूप देखते ही लख लिया कि यह तलवार . कैकेयी तो भयानक बठोर है। कुठाँव तलवार लगाने पर भी राजा समझते थे कि यह मेरा प्राण न लेगी। इतनी कठोर नहीं हो सकती कि पति के प्राण की परवाह न करे। पर अब उसकी कराल कठोरता देखकर यह भी सम्भव मालूम होने लगा।

राजा ऐसे सहमे हुए थे कि उनके मुख से शब्द नहीं निकलते थे। यथा . गयेउ सहमि नहि कछु कहि आवा। मो आवश्यकता देखकर उन्होंने छाती कडी की और बोले। क्रोधो से विनय करने और उसे अच्छी लगनेवाली वाणी बोलने से ही काम निकलता है। क्रोधो के ऊपर क्रोध करने से बात और बिगड़ती है। अतः राजा विनययुक्त प्रिय लगनेवाली वाणी बोले।

प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती ॥

मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि सकरु साखी ॥३॥

अर्थ हे प्रिये ! हे भीर ! विश्वास और प्रीति का हनन करके ऐसी बुरी तरह से वचन क्या बोलती हो। मेरे तो भरत और राम दोनों आँखें हैं। शङ्कर को साक्षी देकर सत्य कहता हूँ।

व्याख्या तू मेरी प्रिया है। तेरे मुख से प्रीति और प्रतीतियुक्त वचन ही शोभा देते हैं। सो तू ऐसे वचन क्या बोल रही है जिससे प्रीति और प्रतीति का हनन हो। प्रीति का हनन यथा सत्य सराहि कहहु बर देना। जानहु लइहि माँगि चबेना। प्रतीति का हनन यथा देहु उत्तर अनुकरहु कि नाही। सत्यसध तुम्ह रघुकुल माही। यह विनययुक्त वचन है।

कैकेयी ने कहा था भरतु कि राउर पूत न होही। आनेउ मोल बिसाहि बि मोही। उसी का उत्तर देते हुए कहते हैं कि भरत और राम ये ही दोनों मेरी आँखें हैं। भरत पहिले राम पीछे। जो मनकी बात जाने उसी को साक्षी दिया जाता है। चक्रवर्तीजी शङ्कर को साक्षी देकर कह रहे हैं। जिसमें इस वचन के सत्य होने में कैकेयी को सन्देह न हो।

अवसि दूतु मै पठइब प्राता। ऐहहि बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥

सुदिनु सोधि सबु साज सजाई। देउँ भरत कहूँ राजु वजाई ॥४॥

अर्थ मैं सबेरा होते ही दूत भेजूँगा। समाचार सुनते ही दोनों भाई शीघ्र आवेंगे। तब सुदिन दिखाकर और सब साज सजकर भरत को डका देकर राज दूँगा।

व्याख्या सबेरा होते ही पहिला काम यह होगा कि भरत को बुलाने दूत भेजे जायेंगे। दूत के पहुँचने की देर है भरत शत्रुघ्न के आने में देर न लगेगी। भाव यह कि टालमटोल की बात नहीं है। जितनी शीघ्रता सम्भव है की जायगी। रामजी के अभिप्रेत की तो अब कोई बात नहीं है।

मुझे भरत को राज्य देने में उतना ही उत्साह है जितना रामजी को

देने में था। अतः अच्छा मुहूर्त दिखवाकर धूमधाम के साथ डका की चोट देकर भरत को राज्य दूँगा। यह देहु उत्तर अनुवरहु कि नाही वा उत्तर है। यह तामु सोहाती वाणी है।

दो लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति ।

मै बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउ नृपनीति ॥३१॥

अर्थ रामजी को राज्य का लोभ नहीं है और भरत से बहुत प्रेम करते हैं। मैं ही छोटे बड़े के विचार से राजनीति का बतवि करता था।

व्याख्या रामजी को चौदह वर्ष वनवास देने का कारण यही हो सकता है कि वे भरत के अभिप्रेक में बाधक होंगे अथवा शासन में विघ्न उपस्थित करेंगे। परन्तु ऐसा तो वही कर सकता है जिसे राज्य का लोभ हो या जिसे तिलक दिया जाता हो उससे विरोध हो। रामजी को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनकी बड़ी प्रीति है। अतः उनसे कोई भय नहीं है। उन्हें तो मैं राजनीति का ख्याल करके राज देता था। राज्य का विभाजन नीति सम्मत नहीं है। नीतिशास्त्र की आज्ञा बड़े को ही राज्य देने की है अतः मैंने रामजी को राज्य देना चाहा था। कोई दूसरा कारण इसमें नहीं है।

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ ॥

मै सबु कीन्ह तोहि विनु पूछे । तेहि तैं परेउ मनोरथ छूछे ॥१॥

अर्थ मैं राम की सौ शपथ खाकर वस्तुस्थिति कहता हूँ कि रामजी की माता ने कभी कुछ नहीं कहा। मैंने सब विना तुझसे पूछे किया। इससे मनोरथ खाली गया।

व्याख्या . मान लिया जाय कि रामजी को राज्य का लोभ नहीं है। तो कौसल्या की प्रेरणा से तो सब हो रहा है। इसपर चक्रवर्तीजी कहते हैं कि राम की माता ने कभी कुछ इस विषय में नहीं कहा और विश्वास दिलाने के लिए रामजी की शपथ ले रहे हैं।

चक्रवर्तीजी कहते हैं कि इसमें यदि कोई अपराध है तो मेरा है। मुझे उचित था कि इतना बड़ा कार्य करने के पहिले तुमसे सम्मति ले लेता। सो मैंने नहीं किया। उसका फल मिल गया। आज तक मेरा कोई मनोरथ विफल नहीं गया था। सो आज हुआ। अब रामजी का अभिप्रेक नहीं होगा।

रिस परिहरु अब भगल साजू । कछु दिन गए भरत जुवराजू ॥

एकहि बात मोहि दुख लागी । वर दूसर असमजस माँगी ॥२॥

अर्थ अब क्रोध छोड़कर मङ्गल साज सजाया। कुछ दिन के बाद भरत युवराज होंगे। एक ही बात में मुझे दुख हुआ। यह दूसरा वर तुमने बेतुका माँगा है।

व्याख्या : कैकेयी क्रोध से भरी हुई है। इसलिए कहते हैं कि क्रोध को छोड़ दो। क्रोध करने से विवेक नहीं रह जाता। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ। भूषण तो सज लिया है। अब मङ्गल भी साजो। बल तो नहीं हो सकता। भरत के आने पर उन्हें युवराज पद दूँगा। अतः पहिला वरदान मैं सुशी से देता हूँ।

दुख तो मुझे दूसरे वरदान के देने में है। क्योंकि उसका तुक : मामञ्जस्य किसी भाँति नहीं बैठता। पहिले का तुक तो बैठ जाता है। भरत तुम्हारे और सुपुत्र हैं। उनके लिए तुम राज्य माँगती हो ठीक है। मुझे भी प्रिय है। परन्तु दूसरे वरदान से तुम्हें कोई लाभ नहीं और मेरी पीड़ा का कोई अन्त नहीं। अतः यह वरदान बेतुका है।

अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा । रिसि परिहास कि साँचिहु साँचा ॥
कहु तजि रोपु राम अपराधू । सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ॥३॥

अर्थ : उस आँच से अब भी हृदय जल रहा है। यह क्रोध है। हँसी है कि सचमुच सच्चा है। क्रोध छोड़कर राम का अपराध बताओ। सारी जनता कहती है कि रामजी अत्यन्त भले हैं।

व्याख्या : कैकेयी ने कहा था जो सुनि सह अस लाग तुम्हारे। इस पर चक्रवर्तीजी कहते हैं कि शर की भाँति नहीं वज्र की भाँति लगा। यथा : दामिनि हनउ मनहु तर तालू। बिजली से तलवार सी चोट नहीं होती। उससे आग लग जाती है। सो इस दूसरे वर से मेरे शरीर में आग लग गयी। अब भी उसकी आँच से हृदय जल रहा है। मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि जो तुम कह रही हो वही तुम्हारा अभिप्रेत है। ऐसी बात तो क्रोध के वेग में कही जाती है। उसकी सचाई क्रोध के वेग मात्र में ही रहती है या परिहास में कही जाती है। जिसकी सचाई परिहास मात्र में सीमित रहती है।

यदि यह बात सचमुच सच्ची है तो अवश्य रामजी से कोई ऐसा अपराध बन पड़ा है जिसका दण्ड तुम उन्हें इस भाँति दिया चाहती हो। तो उसे मैं भी सुन लूँ। जिसमें वरदान देने में मुझे सन्तोष हो कि जो मैं कर रहा हूँ सो ठीक कर रहा हूँ। सम्भव है कि बात समझने में कुछ चूक हो रही हो। क्योंकि सारी जनता राम की साधुता की प्रशंसा करती है। ऐसे साधु से इतना बड़ा अपराध नहीं हो सकता। जिसके लिए यह दण्ड दिया जाय और बड़े अपराध पर ही ऐसा क्रोध होता है कि अपराध बिना प्रकट किये दण्ड देना ही उचित मालूम पड़ता है। अतः क्रोध का परित्याग करके पहिले अपराध बतालाओ।

तुहँ सराहसि करसि सनेह । अब सुनि मोहि भयउ सदेह ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥४॥

अर्थ : तू भी सराहना करती थी। प्रेम करती थी। अब सुनकर मुझे सन्देह

हुआ है। जिसका स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पड़ता है। वह माता के प्रतिकूल आचरण कैसे करेगा ?

व्याख्या : रामजी को सराहना जैसा ससार करता है जैसा प्रेम करता है वैसा ही तू करती थी और आज तू उन्हें वन दे रही है। अतः वन देना सुनकर मुझे सन्देह हुआ कि बात क्या है कि एकाएक तेरे भाव में इतना बड़ा परिवर्तन हुआ। अवश्य रामजी से कोई बड़ा अपराध बन पड़ा।

पर यह भी नहीं हो सकता। रामजी का स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पड़ता है। यथा : वैरिहु राम बडाई करही। ऐसे राम माँ के प्रतिकूल आचरण करें यह हो नहीं सकता। कही समझने में भूल हो रही है।

दो. प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु विचारि विवेकु।

जेहि देखौ अव नयन भरि, भरत राज अभिपंकु ॥३२॥

अर्थ : प्रिये ! हँसो या रिस : इनमें से जो हो . छोड़ दो और विवेक विचार कर माँगो। जिसमें अब मैं भरत का राज्याभिषेक तो देख लूँ।

व्याख्या : हास्य या क्रोध में अतथ्य भी कहा जाता है। पर उसे कार्य में परिणत नहीं किया जाता। वर माँग लेने पर तो उसे कार्य में परिणत किया जायगा। अतः वर माँगने के समय स्वस्थ चित्त होकर माँगना चाहिए। अतः तुम भी विवेक पूर्वक विचार करके वर माँगो। पहिला वर मैंने दे दिया। अतः राम का अभिषेक नहीं देख सकूँगा। यदि दूसरा वर भी तूने वही रहने दिया तो भरत का अभिषेक तो होगा पर मैं न देख सकूँगा। जब से भरत आवें और शुभ मुहूर्त आवे उसके पहिले ही मेरा शरीर छूट जायगा। अतः ऐसा वर माँगो कि भरत के अभिषेकोत्सव को आँख भर देख लूँ।

जिअइ मीन वरु बारि बिहीना। मनि विनु फनिकु जिअइ दुख दीना ॥

कहउँ सुभाउ न छलु मन माही। जीवन मोर राम विनु नाही ॥१॥

अर्थ : चाहे मछली बिना जल के जीती रहे। बिना मणि के सर्प चाहे दुःख से दीन होकर जीये। मैं स्वभाव कहता हूँ मेरे मन में छल नहीं है कि मैं बिना राम के जी नहीं सकता।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी समझ रहे हैं कि इसे रामजी से द्वेष हो गया है। पर मेरे ऊपर तो ममता होगी ही। अतः कहते हैं कि मैं राम के बिना जी नहीं सकता। इस बात का स्याल करके रामजी का वनवास मत माँगो। यह मत ममता कि अपने मरने का डर दिखाकर मैं तुम्हें दूसरे वरदान से विरत कर रहा हूँ। अतः मेरे मन में छल है। मैं वस्तुस्थिति कहता हूँ। जिस भाँति मछली बिना जल के जी नहीं सकती। मणि के बिना सर्प छटपटाकर प्राण दे देता है। उसी भाँति बिना राम के मैं जी नहीं सकता : पूर्वजन्म में जो वरदान माँगा था : मनि विनु फनि जिमि जल विनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। वही स्थिति इस जन्म में हो गयी है।

विश्वामित्र ने साथ जब रामजी गये थे तब महाराज की स्थिति मणि विनु फणि की सो हो गयी थी। यथा मुत हिय लाइ दुसह दुख भेटे। मृतक शरीर प्राण जनु भेटे। अब जल विनु मोनवाली स्थिति हो रही है। सच्चा स्नेह जल के साथ मोन का ही है। यथा मकर उरग दादुर बमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी केवल मोन को है साचिलो सनेह। जो जिसके बिना प्राण धारण न कर सके वही स्नेह सच्चा है।

समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना। जीवनु राम दरस आधीना ॥

सुनि मृदु वचन कुमति अति जरई। मनहु अनल आहुति घृत परई ॥२॥

अर्थ हे प्रवीण प्रिये। तू समझ कर देख कि मेरा जीवन रामजी के दर्शन के अधीन है। कामल वचनो को सुनकर कुबुद्धि कैकेयी और भी जल उठी। मानो आग में घी की आहुति पड़ रही हो।

व्याख्या तू मेरी प्रियाआ मे प्रवीण है। तू विचार कर देख कि क्या मेरा प्रेम राम के प्रति इस प्रकार का है कि मैं उन्हें बिना देखे जी सकूँगा सभी जानते हैं कि महाराज बिना राम के नहीं जी सकते। यथा नृप कि जिअव विनु राम। महाराज ने पूर्व जन्म में जैसा वरदान माँगा था वैसी ही दशा का अनुभव कर रहे हैं।

ये अत्यन्त कोमल वचन थे। सुमति के द्रवीभूत करने के लिए यथेष्ट थे। पर कैकेयी भी तो कुमति का स्वरूप हो गयी थी। वह एक एक बात पर इस भाँति भभक उठती थी जैसे घी की आहुति से आग भभकती है। कोमल वचन क्रोधाग्नि में घी की आहुति का काम कर रहे हैं। वह सोचती है कि

१ स्वयं जो प्रीति प्रतीत की हानि की उसे नहीं विचारते और मुझे विचारने को कहते हैं।

२ अपनी इस करणी को नृपनीति बतलाते हैं।

३ कौसल्या को निर्दोष सिद्ध करने के लिए सब दोष अपने ऊपर ल रहे हैं।

४ राम पर इतना प्रेम है और भरत विदेश में है। इसकी चिन्ता ही नहीं है। यह जो कुछ कह रहे हैं वह सब राम को घर रखने का उपाय है। मैं अपने सरल स्वभाव से बहुत ठगी गयी। कुबरी ने ठीक कहा था मन मलीन मुहु मोठ नृपु।

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउगि माया ॥

देहु कि लेहु अजसु करि नाही। मोहि न बहुत प्रपच सोहाही ॥३॥

अर्थ चाहे करोड़ो उपाय करो पर यहाँ आप की माया नहीं चलगी। या तो दो या नहीं कहकर अपयश लो। मुझे बहुत प्रपञ्च अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या रानी कुबरी की एक एक बात को गाँठ बाँधे। है उसने कहा था काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। सो सब वह अपने समझ में राजा

पर विश्वास न करके सजग होकर अपना काम सँवार रही है। कहती है कि अभी तो तुमने दो ही उपाय किया। एक तो राम के वनवास को वरदान से हटाकर जाँच प्रडताल का विषय बनाकर राजा की भाँति निर्णय करना चाहते हो। दूसरे वैधव्य का डर दिखाकर मुझे अपने निश्चय से हटाना चाहते हो। सो होने का नहीं। करोड़ उपाय से भी मैं अपने निश्चय से नहीं हट सकती। तुम अपनी माया के बोल से सत्यवादी बने हो। सब जगह तुम्हारी माया चल गयी पर यहाँ वह माया काम नहीं करेगी।

महाराज बाणो सविनय तासु सोहातो बोले थे। उसे वह प्रपञ्च बतला रही है। कहती है कि यह सब प्रपञ्च है। तुम्हें प्रपञ्च अच्छा लगता है। मुझे नहीं अच्छा लगता : भाव यह कि महाराज ने कहा था कि कहीं सुभाउ न छल मनमाही। रानी ठीक उसके विपरीत समझ रही है कि यह सब छल है। मैंने पहिले ही कहा था कि माँगु माँगु पै कहहु पिय कवहुँ न देहु न लेहु। सो इस बार तो देना पड़ेगा। या दो या स्पष्ट नहीं कहकर अपयश लो।

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥४॥

अर्थ : राम साधु हैं और तुम सयाने साधु हो और सबने पहचान लिया है कि राम की माता भली हैं। कौसल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है वैसा ही फल उन्हें ऐसा दूँगी कि शाका चल जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी का रामजी के विषय में यह कहना : लोभ न रामहि राजकर और अपने प्रति यह कहना : कहूँ सुभाउ न छल मनमाही तथा कौसल्याजी के लिए यह कहना कि राम मातु बहुत बहेउ न काऊ कैकेयी को बहुत ही बुरा लगा। वह व्यङ्ग्य लिये हुए कहती है कि राम को राज का लोभ नहीं है। राम साधु हैं और तुम उनके पिता हो। इसलिए सयाने साधु हो। अपना काम साधना खूब जानते हो और राम की माता भली हैं। वे कुछ कहती सुनती नहीं। यह सब बातें किसी से छिपी नहीं हैं। इस पड्यन्त्र का पता सबको है। डर से भले ही कोई कुछ न बहे। मेरी मिथार्ई का फायदा उठाकर सब मेरा नाश चाहते हैं। इस पड्यन्त्र की मूल कौसल्या हैं। अतः उन्हें ऐसा फल दूँगी कि उसका शाना चल जाय। लोगो को यह घटना ऐसी चित्त पर खिच जाय कि उस समय से दूसरी घटनाओं का समय लोग निश्चय करने लगें। यथा : अमुक घटना राम वनवास के दो वर्ष बाद हुई या इतने दिन पहिले हुई इत्यादि।

दो. होत प्रातु मुनिवेष धरि, जो न रामु वन जाहि।

मोर मरनु राउर अजमु, नृप समुझिअ मन माही ॥३३॥

अर्थ : सवेरा होते ही मुनिवेष धारण करके यदि राम वन न जायेंगे तो राजन्। मैं प्राण दे दूँगी और आप का अयश होगा। इस बात को मन में विचारिये।

व्याख्या सवेरे आप दूत भेजेगे । भरत आवेगे । सुदिन देखा जायगा । तब भरत को गद्दी होगी । यह तो दूर की बात है । सबेरा होते ही पहिले राम को वन भेजिये । दूत को पीछे भेजियेगा । वे मुनि का वेष धारण करके जायें । ससार देख ले कि कपट से राज्य चाहनेवालों की ऐसी गति होती है । कौसल्या देख लें कि जिस पुत्र को उन्होंने राज वेष में देखना चाहा था वह तपस्वी वेष में वनवास के लिए जा रहा है । आप कहते हैं कि राम वन जायेंगे तो मैं मर जाऊँगा । मैं कह रही हूँ कि राम वन न जायेंगे तो मैं प्राण दे दूँगी और आपकी मरने से कहीं अधिक दुर्गति होगी । यथा सभावित कहूँ अपजसु लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू । राजा हो मन में विचार करो । मुझ कहते हो समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीणा । आप स्वयं विचार क्यों नहीं करत । महाराज प्रिया प्रवीणा कहत हैं । कैकेयी प्राणपति अब नहीं कहती नृप कहती हैं ।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढी । मानहु रोष तरगिनि बाढी ॥

पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर कुटिल उठकर खड़ी हो गयी । मानो क्रोध की नदी में बाढ़ आगयी हो । वह पाप के पहाड़ से निकली है । क्रोध जल से भरी हुई है । देखते नहीं बनता ।

व्याख्या कुटिल है । समझती है कि बातचीत बढ़ाने से अपनी जगह से हटना पड़ेगा । अतः बात खतम करती है । क्रोध के वेग से खड़ी हो गयी । मानो नदी में बाढ़ आगयी । पहिले कहा था मानहु रोष तरवारि उघारी । अब क्रोध का वेग उमड़ चला । इससे कहते हैं तरगिनि बाढी । क्रोध में मुख की आकृति विकृत हो जाती है । अतः ऐसी भयानक मालूम होती है कि देखते नहीं बनता ।

चित्तनदी उभयतोवाहिनी कल्याणवहा पापवहा च । चित्त नदी दोनों ओर बहती है कल्याणवहा और पापवहा । यथा त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी । राम सरूप सिधु समुहानी । पापवहा यथा मानहु रोष तरगिनि बाढी ।

नदी पहाड़ से प्रकट होती है । सो पुण्यपहाड़ से कल्याणवहा उद्गम स्थान है और पाप पहाड़ पापवहा का उद्गम स्थान है । नदी में जल भरा रहता है । इस पापवहा नदी में क्रोधरूपी जल भरा है ।

दोउ वर कूल कठिन हठ धारा । भँवर कूवरी वचन प्रचारा ॥

ढाहत भूपरूप तरु मूला । चली विपत्ति वारिधि अनुकूला ॥२॥

अर्थ दोनों वर किनारे हैं । कठिन हठ धारा है । कूवरी के वचन का प्रचार भँवर है । राजारूपी वृक्ष के मूल को ढहाती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर चली ।

व्याख्या नदी सदा दो किनारों के बीच से बहती है। सो इस पापवहा नदी के दोनों बर भरत को राज्य और राम को वनवास दोनों किनारे हैं और हठधार दोनों कूलों का अवगाहन करता चलता है। उस हठधार में जहाँ तहाँ कूबरी के वचन का चमत्कार दिखाई पड़ता है। वही मानो इस नदी का भँवर है। कूबरी कुटिल उसकी उक्ति कुटिल। अतः उसके वचन का प्रभाव जो हठ की धारा में दृष्टिगोचर होता है उसकी उपमा भँवर से दी गयी।

जब नदी बढती है तो किनारे पर के पेड़ की जड़ को धो देती है और पेड़ जा पड़ता है। यह पापवहा नदी राजा रूपी पेड़ के जड़ को गिराती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर को उन्मुख हुई। नदी को समुद्र छोड़कर दूसरी गति नहीं। इसी भाँति पापवहा नदी को भी विपत्ति के समुद्र को छोड़कर अन्यगति नहीं है। अर्थात् अब यह क्रोधतरंगिणी विपत्ति के समुद्र में बिना पहुँचे कहीं रुक नहीं सकती।

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाँची ॥

गहि पद विनय कीन्ह वैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥३॥

अर्थ राजा ने लखा कि बात तो सचमुच सच्ची है। स्त्री के व्याज से मोत सिरपर नाच रही है। तब राजा ने कैकेयी के चरण पकड़ लिये और बिठलाया कहा कि सूर्यकुल के लिए तू कुल्हाड़ी मत बन।

व्याख्या चक्रवर्तीजी ने लखा कि मृत्यु तो आगयी। रानी निमित्त मात्र है। क्योंकि राम को वन माँगना रिमि परिहास में सत्य नहीं है। सचमुच सत्य है। अब जो यह यहाँ से चली जाती है तो बात खतम हो जाती है। यदि ठहरे तो और भी प्रयत्न किया जाय और यह अब आज्ञा देने से नहीं रूकेगा। अतः चरण पकड़ लिया। विनय किया कि बैठ जाओ। रानी इतने क्रोध में भी पति के इस भाँति विनय की अवहेलना न कर सकी। बैठ गयी। तब कहा कि सूर्यकुलरूपी वन के विध्वंस के लिए तू कुल्हाड़ी बनने का अपयश अपने ऊपर मत ले। रामचन्द्र के वन जाने से सूर्यकुल नष्ट हो जायगा। इस भाँति दूसरे वन में सद्बोच करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

माँगु माथ अवही देउँ तोही। राम विरह जनि मारसि मोही ॥

रासु राम कहँ जेहि तेहि भाँति। नाहित जरिहि जनम भरि छाती ॥४॥

अर्थ : सिर माँग में अभी उतारकर देता हूँ। पर रामजी के विरह में मुझे मत मार। रामजी को जिस किसी भाँति रख ले। नहीं तो जन्म भर छाती जलेगी।

व्याख्या चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मुझे मरने का भय नहीं है। जो तू कहती है। सिवि दधीचि बलि जो कुछ माखा। तन धन तजेउ वचन पन राखा। सो मैं भी कहता हूँ कि तू सिर माँग। दख मैं उतारकर देता हूँ कि नहीं। पर राम के विरह में धुल धुलकर मैं मरना नहीं चाहता। यहाँ राम के वन का प्रश्न नहीं है। मेरे मरने जीने का प्रश्न है। अतः राम को वन न जाने दे। मेरे सामने तापम वेप

विशेष उदासी रूप में ही सहो रहने दे । मुझसे अलग न होने दे । यदि न मानेगी तो तुझे भी जन्म भर पछताना पड़ेगा ।

दो देखी व्याधि असाधि नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ ।

कहत परम आरत वचन, राम राम रघुनाथ ॥३४॥

अर्थ राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है । तब परम आरत वचन राम राम रघुनाथ कहते हुए सिर पीट पीटकर पृथ्वी पर गिर पड़े ।

व्याख्या - पहिले लखा था कि स्त्री के बहाने मौत आगयी और लोगो को रोग के बहाने मौत आती है । सम्भव है कि स्त्री रूपी रोग कष्टसाध्य हो । अतः उसके उपशम का उपाय किया । चरण पकड़कर बैठाया । ऊँचा नीचा समझाया । पर वह टस से मस नहीं हुई । सिर देने पर तैयार हुए । राजा शिवि के सिर देने पर तैयार होने पर बाज मान गया । पर यह नहीं मानती । तब राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है । यह घुला घुलाकर ही प्राण लेगा । अतः अपने परम प्रिय को स्मरण करते हुए सिर पीटकर पृथ्वी पर गिर गये । अब चिकित्सा का प्रयत्न करेंगे । परेउ धरनि से शरीर की गति कही । धुनि माथ से मन की गति कही । कहत परम आरत वचन से वाणी की गति कही ।

व्याकुल राउ सिथिल सब गाता । करिनि कल्पतरु मनहु निपाता ॥

कठु सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीनु दीनु विनु पानी ॥१॥

अर्थ राजा व्याकुल है । अङ्ग सब ढोले पड़ गये । मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को जड़ से उखाड़ डाला । कण्ठ सूखने लगा । मुख से शब्द नहीं निकलते । जैसे पहिना मछली बिना जल के दीन हो जाय ।

व्याख्या हथिनी क्या जाने कि कल्पवृक्ष में क्या गुण है । उसने उसे उखाड़ कर फेंक दिया । उसे यह भी ग्याल नहीं है कि इसके उखाड़ने से ससार की कितनी बड़ी हानि हुई । उखाड़ने पर कल्पवृक्ष की क्या दशा है । इस पर उसे पश्चात्ताप भी नहीं । राजा का मनोरथ कल्पवृक्ष था । यथा मोर मनोरथ सुरतरु फूला । राजा उसकी जड़ थे । यथा ढाहत भूप रूप तरु मूला । सो वैकेयी रूपी हथिनी ने मनोरथ के सहित राजा को समूल वृक्ष की भाँति उखाड़ फेंका । अब चक्रवर्तीजी की दशा उखड़े हुए वृक्ष की सी हो गयी ।

अब राम राम रघुनाथ नहीं कहते हैं । क्योंकि गला सूख गया । शब्द ही नहीं निकलता । जल विनु मीन की दशा हो गयी । मणि विनु फणि की दशा तो पहिले थी । अब तो चक्रवर्तीजी बिना जल के पहिना मछली की भाँति छटपटा रहे हैं ।

पुनि कह कठु कठोरु कैकेई । मनहुं घाय महुं माहुरु देई ॥

जौ अतहु अस करतवु रहेऊ । माँगु माँगु तुम्ह केहि वल कहेऊ ॥२॥

अर्थ : फिर कैकेयी ने कठोर कटु कहा मानो घाव में विष दे रही है । यदि अन्त में तुम्हें यही करना रहा तो माँग माँग किस वृत्ते पर तुमने कहा ?

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : असि मारेसि मोहि कुठाँव । अब उसी तलवार के घाव में विष दे रही है । रक्त से विष का सम्बन्ध हो जाने से विष तुरन्त प्राण लेता है । खाने से तो पाक होने पर मारक होता है । अतः कैकेयी की कठोर कटु उक्ति की उपमा घाव में विष देने से दे रहे हैं । उसे राजा की इस दीन दशा पर दया नहीं आयी । बल्कि उसका क्रोध और बढ़ा कि सीत के लड़के पर इतना प्रेम है । मेरे लड़के की चिन्ता इन्हे नहीं है । अतः कहने लगी कि यदि अन्त में तुम्हें पैर पकड़कर विनती ही करनी रही तो माँग माँग किस वृत्ते पर कहा । तब तो ऐसा बोलते रहे जैसे आकाशवाणी हो : माँगु माँगु तब मैं नभ वाणी । अब पैर पकड़ते विनती करते हो ।

दुइ कि होहि एक समय भुआला । हँसव ठाढ़ फुलाउव गाला ॥
दानि कहाउव अरु कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रौताई ॥३॥

अर्थ : राजन् । क्या ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना दोनों बातें एक ही समय में हो सकती हैं ? दानी कहलाना चाहते हो और कृपणता भी करते हो । राजापन में कहीं कुशल क्षेम हो सकता है ।

व्याख्या : शोक और हर्ष प्रसन्नता और अप्रसन्नता यह दोनों भाव एक दूसरे के अत्यन्त विरुद्ध हैं । हर्ष में आदमी हँसता है और शोक में रोता है । प्रसन्नता से अट्टहास करता है और अप्रसन्न होकर गाल फुलाता है । यह दानो बातें युगपत् हो नहीं सकती । कहाँ यह कहना : कहु केहि रकहि करउँ नरेसू । बहु केहि नृपहि निकासउँ देसू । कहाँ यह कहना कि राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँति । यही ठठाकर हँसने के साथ गाल फुलाना है ।

सकुच विहाइ माँगु नृप मोही । मोरे नहि अदेय कछु तोही । ऐसी वाणी दानो के मुख से शोभा देती है और माँग कहकर माँगने पर सङ्कोच करने को वहना कृपिण का काम है । कृपणता करनेवाले को दानो कहलाने का इच्छा नहीं होनी चाहिए । राजापन में क्षेम कुशल कहाँ ? कुशल क्षेम तो वनियापन में होता है ।

छाड़हु वचनु कि धीरजु धरहू । जनि अवला जिमि करना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्यसंध कहँ तृन सम वरनी ॥४॥

अर्थ : या वचन छोड़ो या धीरज धरो । औरतो की तरह रोओ मत । शरीर, स्त्री, बेटे, धन, घर, जमीन ये सब सत्यसन्ध के लिए तिनके के बराबर कहे जाते हैं ।

व्याख्या : रानी कैकेयी उपर्युक्त कठोर वचन कहकर अब बहुतबठोर कहती है कि वचन छोड़ दो । इसमें कौन बात है । यदि बात का पास है तो धैर्य धरो । मर्द की तरह काम करो । रो गाकर काम निकालना तो स्त्रियों का काम है । सत्यसन्ध होना दिल्लगी नहीं है । सत्यसन्ध के लिए शरीर क्या है ? स्त्री क्या है ?

बेटे क्या हैं ? घर क्या चोज है ? और धन धरणी क्या है ? तुम्हें तो सबका सोच है । तन का सोच यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना । जीवनु राम दरस आधीना ।

तिय का सोच यथा : राम मातु कछु कहेउ न काऊ ।

तनय का सोच यथा : राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती ।

धाम, धन, धरनी का सोच यथा : अवध उजार कीन्हि कैकेयी ।

दो. मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोषु न तोर ।

लागेउ तोहि पिशाच जिमि, कालु कहावत मोर ॥३५॥

अर्थ : मर्म वचन सुनकर राजा ने कहा कि तेरा दोष कही कुछ भी नहीं है । मेरी मृत्यु तुझे पिशाच की भाँति लगी हुई है । वही यह सब कहला रही है ।

व्याख्या : महाराज कैकेयी के स्वभाव से भली भाँति परिचित हैं । यह ऐसी थी नहीं । यह ऐसा कह सकती नहीं । ये सब बातें यह अपने होश में नहीं कह रही है । मेरी मृत्यु इसे पिशाच की भाँति लग गयी है । वही इससे ये बातें कहला रही है । पिशाच लगने पर वह मनुष्य होश में नहीं रहता । उसके मुख से पिशाच बोलता है । कैकेयी ने सदा महाराज को सेवा वश कर रक्खा था । ये अरुन्तुद बातें उसके स्वरूप के सर्वथा प्रतिकूल थी ।

चहत न भरत भूप^१ तहि भोरे । विधि वस कुमति वसी जिय तोरे ॥

सो सवु मोर पाप परिनामू । भयउ कुठाहर जेहि विधि वामू ॥१॥

अर्थ : भरत भूलकर भी राजा होना नहीं चाहते । विधिवश तेरे हृदय में कुमति वस गयी है सो सब मेरे पाप का फल है जो वेमौके ब्रह्मा बाये हो गये ।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं - कछुक दोष नहि तोर । उसी को स्पष्ट करते हैं कि जिस भरत के लिए तू सब कर रही है वे भूलकर भी राज्य नहीं चाहते । होनहार बुरा है इसलिए तेरे हृदय में कुबुद्धि आ वसी है । क्योंकि पहिले तेरा बुद्धि ऐसी नहीं थी । तेरी ऐसी बुद्धि के एकाएक ऐसा हो जाने का कारण मेरा पाप है । ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कर्म के फल देनेवाले हैं । उसी पाप का फल देने के लिए कुअवसर में बायें हो गये । यही बात रामजी को राज देने के लिए कहलाने के पहिल हुई होती तो दूसरी बात थी : कहेउ राज बन दियो नारि वस गरि गलानि गये राउ । इतना समय नहीं है कि भरत को बुलवा सकूँ । अतः यह मेरे पाप के कारण हो रहा है । तेरा दोष नहीं है । ब्रह्मदेव के बाये होने से मृत्यु होती है । सो यदि रणाङ्गन में वीरगति हो तो वह ब्रह्मदेव का सुठाहर में बाये होना कहा जायगा । प्रियतम के विरह में प्राण त्याग और संसार में स्त्रैण होने की अपकीर्ति का होना ब्रह्मदेव का कुठाहर में बाये होना है ।

१. भूपतित्व शब्द में प्रकृतिप्रत्ययसन्धिलोपविकारागमाश्च वर्णानाम् से ति का लोप हुआ और सर्वत्र लवगाम् इस सूत्र में 'वकार' का लोप होकर 'भूपत' रूप हो गया ।

सुवस वसिहि फिर अवध सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई ॥
करिहहि भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुं पुर रामु बड़ाई ॥२॥

अर्थ : सुन्दर अयोध्या फिर स्वच्छन्द होकर वसेगी । सब गुणों के धाम रामजी की प्रभुता होगी । सब भाई सेवकाई करेंगे । तीनों लोक में रामजी की प्रशंसा होगी ।

व्याख्या : अब चक्रवर्तीजी भविष्य कहते हैं । जो तू चाहती है वह तो होना नहीं है । होगा यह कि मैं तो रहूँगा नहीं । अयोध्या रामके वन जाने से एक बार अवश्य उजड़ जायगी । परन्तु फिर स्वच्छन्द होकर वसेगी । राम सबगुणधाम हैं । वे ही राजा होंगे और भाई लोग उनकी सेवा करेंगे । रामजी का यश इतना बढ़ेगा कि तीनों लोक में फैल जायगा । क्योंकि सब विधि सब लायक हैं ।

तोर कलंकु मोर पछिताऊ । मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट वैठु मुहु गोई ॥३॥

अर्थ : तेरा कलङ्क और मेरा पश्चात्ताप मरने पर भी नहीं मिटेगा और सदा बना रहेगा । अब जो तुझे अच्छा लगे सो कर । मेरी आँख के ओट होकर मुँह छिपाकर बैठ ।

व्याख्या : तेरे कलङ्क और मेरे पश्चात्ताप का शाका अलवत्ता चलेगा । समार वहेगा कि कैकेयी ने इतना बड़ा अनर्थ कर डाला और राजा उसी पश्चात्ताप में मर गये । हम लोगों के मरने पर भी लोग स्मरण रखेंगे । यह इतिहास हो जायगा और यावच्चन्द्रदिवाकरी लोग इसे न भूलेंगे । यही होना है अब जो तेरे जो मैं आवे सो कर । मैं नहीं रोकता । जाना हो तो जा । रहना हो तो रह । पर मेरे सामने से हट जा । तू किसी के मामले में मुँह दिखाने लायक नहीं रह गयी । अतः मुँह छिपाकर कहीं बैठ । जो महाराज कहते थे : मन तव आनन चद चकोरु । वही आज उसका मुँह देखना नहीं चाहते हैं ।

जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कलु कहसि बहोरी ॥
फिर पछितैहसि अत अभागी । मारसि गाइ नहारु लागी ॥४॥

अर्थ : हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना । अरे अभागी ! अन्त में फिर तू पछतायेगी । तू त्राँत के लिए गोवध कर रही है ।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मेरा अन्तकाल समीकट है । अतः जब तक जीता हूँ तब तक फिर कुछ न कहना । दण्ड देने का अवसर नहीं है । अतः हाथ जोड़ते हैं । तेरी दाणी अब मेरे कर्णगोचर न हो । तेरे शब्द भी सुनना नहीं चाहता ।

नहारु कहते हैं त्राँत को । पुमे नहारु च सिरा धमन्यथ रसागसा : अभिधान-
पदीपिवायाम् श्लोक २७९ । त्राँत राग बजाने के काम आता है । यथा : बाज

सुराग कि गाँडर ताती । वृढो गाय या भैंस के ताँत से ही अच्छा राग बजता है । अतः अच्छा राग बजाने के लिए जिसने परमपूज्य गोमाता का वध किया वह अभागा गोहत्या लगने पर पीछे पछताता है । कैकेयी की भी यही दशा है । भरत राजा होना नहीं चाहते । पर यह राजमाता कहलाने का अभिमानिक सुख चाहती है । इस मनोविनोद के लिए परमपूज्य पति का वध कर रही है । इसीलिए चक्रवर्तीजी उसे अभागिनी कहते हैं । जो अल्प के लिए बड़ा भारी दुःख और अपयश मोल ले रही है ।

दो परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदानु ।

कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु ॥३६॥

अर्थ राजा करोडो भाँति से कहकर कि बात क्यो समाप्त करती है । गिर पड़े । पर कपट करने में चतुर कैकेयी कुछ बोलती ही नहीं । मानो मसान जगा रही है ।

व्याख्या राजा घर का मामला निपटाना चाहते हैं । इसलिए कारण पूछते हैं । कैकेयी विचार करने कराने के लिए तैयार नहीं हैं । वह राजा से हाँ या नहीं बराना चाहती है । कपट सयानी है । समझती है कि यहाँ पर कुछ भी कहने से मुझे अन्त में अपने निश्चय से हटना ही पड़ेगा । अतः ऐसी चुप्पी साधे हुए है । जैसे मसान जगाने वाले मौन साधकर बैठते हैं । उनके सामने चाहे जैसा दृश्य उपस्थित हो उसके ओर ध्यान न देकर धैर्य धारण किये हुए मौन होकर अपने साध्यपर ही दृष्टि लगाये रहते हैं ।

यद्यपि निदान आदि कारण के अर्थ में आता है । पर इस ग्रन्थ में समाप्ति के अर्थ में भी आता है । यथा देहि अग्नि तन करहुँ निदानू । कार्य का कारण दशा को प्राप्त होना ही उसकी समाप्ति है ।

राम राम रट विकल भुआलू । जनु विनु पख बिहग बहालू ॥

हृदय मनाव भोरु जनि होई । रामहि जाइ कहइ जनि कोई ॥१॥

अर्थ राम राम रटते हुए राजा विकल हैं । जैसे बिना पख के पक्षी विकल हा । मन में मनाते हैं कि सवेरा न हो । रामजी से जाकर कोई कह न दे ।

व्याख्या चक्रवर्तीजी को राम राम की रट लगी है । उन्हें अत्यन्त व्याकुलता में सिवा रामजी के कुछ सूझता नहीं है । उन्हें बड़ी बेचैनी है जैसी पक्षहीन पक्षी को होती है । पक्षी का तो सर्वस्व पक्ष ही है । उसके न होने से वह नितान्त असमर्थ दीन हीन हो जाता है । उसे चारों ओर मृत्यु ही दिखाई पड़ती है । कुछ करते नहीं बनता । अत्यन्त विकल होकर चे चे किया करता है । यही गति राजा की हो रही है । अत्यन्त विकल है । राम राम की रट लगाये हैं ।

अति अनिष्ट भावी को सन्निकट देखकर उपायहीन आर्तपुरुष असम्भव के लिए प्रार्थना करता है । मन ही मन मनाते हैं कि सवेरा न हो । क्योंकि सवेरा

होते ही यह बात छिपी नहीं रह सकती । अयोध्या भर में फैल जायगी । कोई जाकर रामजी से भी कह देगा । वे उत्तम पुत्र हैं । मेरे बिना कहे ही वन चले जायेंगे ।

उदय करहु जनि रवि रघुकूल गुरु । अवध विलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति कैकई कठिनाई । उभय अवधि विधि रची बनाई ॥२॥

अर्थ : हे रघुकूल गुरु ! सूर्य को उदय न करो । अयोध्या को देखकर कलेजे में शूल होगा । राजा की प्रीति और कैकेयी की कठिनता दोनों ब्रह्मा ने ऐसी रचकर बनायी कि हृद हो गया ।

व्याख्या : ईश्वर की नियति तो रुक नहीं सकती । वह तो होकर ही रहेगी । सवेरा तो होगा ही । सूर्य का उदय होना कौन रोक सकता है । इस पर गुरुभक्त राजा को कुलगुरु याद आये । यही विधि गति सदा से छेकते आये हैं । यथा : सो गोसाईं जेहि विधि गति छेकी । अतः उनसे प्रार्थना करते हैं : गुरुब्रह्मा गुरुविष्णु गुरुदेवो महेश्वरः । गुरुः साक्षात्पर ब्रह्मतस्मै श्रीगुरवे नमः । आप सूर्य उदय न करें । क्योंकि सजी हुई अयोध्या देखकर हृदय में शूल उठेगा । कोई रघुकूलगुरु को रवि का विशेषण मानते हैं । पर यदि ऐसी बात होती तो उदित होउ जनि पाठ होता उदय करहु जनि न होता ।

कवि कहते हैं कि राजा की सी प्रीति भी कही नहीं देखी गयी और न कैकेयी की सी कठिनाई कही देखी गयी । मालूम होता है कि इन्हें स्वयं ब्रह्मदेव ने रचकर बनाया कि ये दोनों ससार में बेजोड़ हों । नहीं तो ऐसी प्रीति के सामने कठिनाई ठहर नहीं सकती । हृदय द्रवीभूत हुए बिना रह नहीं सकता । पर कैकेयी का हृदय न पसीजा ।

विलपत नृपहि भयउ भिनुसारा । वीणा वेनु संख धुनि द्वारा ॥
पढाहि भाट गुन गावहि गायक । सुनत नृपहि जनु लागहि सायक ॥३॥

अर्थ : राजा को विलाप करते करते सवेरा हो गया । द्वार पर वीणा, वंशी और शङ्ख की ध्वनि हुई । भाट विरद बोलने लगे । गवैया गुणगान करने लगे । सुन सुनकर राजा के हृदय में मानो वाण लग रहे हैं ।

व्याख्या : इसी भाँति विलाप करते रात बीत चली । समय की गति रुकती नहीं । सवेरा हो ही गया । राजाओं के जगाने के लिए पहिले वीणा बजायी जाती है । तब उससे अधिक स्वरवाली वंशी बजायी जाती है । अन्त में शङ्खध्वनि होती है । जिससे निश्चय नींद टूट जाती है । उसके बाद स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए बन्दी विरद बोलते हैं । राजोचित गुणों की याद दिलाने के लिए गायक गुणगान करते हैं । यह सब राजाओं के यहाँ के प्रातःकाल के कृत्य हैं । ये सब इसलिए किये जाते हैं जिसमें महाराज सुखपूर्वक जागें और नित्यवृत्त्य में लग जायें ।

परन्तु आज तो इनसे उलटा काम हो रहा है। जे हित रहे करें सोइ पीरा वाला हाल हो रहा है। ये एक एक सुख के माधन शराघात की भाँति पीड़ा दे रहे हैं। वीणा वेणु शङ्ख ने पुकारकर कह दिया कि सवेरा हो गया। बन्दी बोले कि सत्यमन्ध महाराज की जय हो। गवैया ने गुण गाये कि महाराज के यश से दिगन्त व्याप्त हो रहा है। आज ये सब बातें परिस्थिति के प्रतिकूल पड़ रही हैं। इसीलिए शराघात का काम कर रही है।

मगल सकल सोहाहि न कैसे। सहगामिनिहि विभूषन जैसे ॥
तेहि निसि नीद परी नहि काहू। राम दरस लालसा उछाहू ॥४॥

अर्थ ये सब मङ्गल कैसे अच्छे नहीं लग रहे हैं जैसे सती होनेवाली स्त्री के गहने। उस रात को किसी को नीद नहीं पड़ी। सबको रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह था।

व्याख्या जिसे पति की वियोगाग्नि ऐसी बढी हुई है कि लौकिकाग्नि शीतल मालूम होती है उसे भूषण का आभिमानी सुख कैसे हो सकता है? इसी भाँति महाराज को ये मङ्गल अच्छे नहीं लग रहे हैं। अथवा जैसे सती के आभूषण से शृङ्गाररस की भावना नहीं होती प्रत्युत सती अपने शरीर को अग्नि के अर्पण करेगी ऐसी भावना जाग्रत होती है। वह अपने पति का अनुगमन करेगी यह सोचकर निर्वेद उत्पन्न होता है। इसी भाँति सब मङ्गल सती का गहना हो गया। क्योंकि अयोध्या अपने पति का अनुगमन करेगी। यथा अवध तहाँ जहाँ राम निवासू। तहाँइ दिवसु जहाँ भानु प्रकासू।

सोया तो उस रात को कोई नहीं। महाराज विषाद के कारण नहीं सोये। कैकेयी क्रोध के मारे नहीं सोयी और लोग रामजी के दर्शन की लालसा तथा उत्साह के कारण नहीं सोये।

दो द्वार भीर सेवक सचिव, कहहि उदित रवि देखि।

जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेखि ॥३७॥

अर्थ द्वार पर सेवक और मन्त्रियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते हैं कि जगत्पति अब भी नहीं जागे। ऐसा कौन विशेष कारण पड़ गया।

व्याख्या आज अभिषेक का दिन है। राज्यभर के कामदार तथा मन्त्री कैकेयी के महल द्वार पर एकत्रित हो गये। क्योंकि महाराज उसी महल में हैं। सूर्यादय के बहुत पहिल से लाग जुट गये। आज महाराज भी जल्द उठेंगे। क्या जाने किसको कब कौन सी आज्ञा हा। अत सभी उपस्थित हैं। पर सूर्य निकल आये। महाराज नहीं उठ। शरध्वनि ने भी काम नहीं किया। अत सबको न उठने का विशेष कारण जानने की उत्पत्ता हुई।

पछिलें पहर भूपु नित जागा । आजु हमहि बड अचरजु लागा ॥

जाहु सुमत्र जगावहु जाई । कीजिअ काजु रजायसु पाई ॥१॥

अर्थ पिछले पहर महाराज सदा जग जाते हैं । हमलोगो को बडा आश्चर्य हो रहा है । सुमन्त्रजी आप जाकर जगाइये और राजाज्ञा प्राप्त करके काम कीजिये ।

व्याख्या दिन कार्य करने के लिए और रात्रि विश्राम के लिए है । पर रात्रि का नाम ही त्रियामा है । तीन पहर तक की रात मे गिनती है । बाद उसके दिन माना जाता है । सो एक पहर रात रहते ही महाराज नित्य जाग जाते थे । आज अभिषेक का दिन है । आज तो और भी सवेरे जगना चाहता था । महाराज नियम के बडे पक्के हैं । उनके नियम मे भङ्ग होना आश्चर्य है और विशेषत आज के दिन ऐसा होना तो और भी आश्चर्य की बात है ।

क्या माजरा है । बात समझ मे नही आती । कोई दासी बाहर नही आ रही है । जिससे कुछ कहलाया जाय और कोई भीतर जा नही सकता । केवल सुमन्त्रजी को कही रोक नही है । ये मन्त्री होने के साथ ही साथ सारथि और सखा भी हैं । अतः सब लोग सुमन्त्रजी से कहते हैं कि अब बिना राजा के जगाये काम नही चलता । जगाने के अन्य उपाय सब हो चुके । वीणा बजी । वशी बजी । शङ्ख बजा । बन्दियो ने विरुदावली कही । गायको ने गान किया । सूर्यनारायण भी उदय हो गये । अब तो यही शेष है कि आप राजमहल मे जाकर स्वयं महाराज को जगावें । यदि भगवान् न करें महाराज अस्वस्थ हो तो काम तो नही रुकना चाहिए । आप राजाज्ञा पाकर काम करिये ।

गये सुमनु तव 'राउर माही । देखि भयावन जात डेराही ॥

धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा । मानहु बिपति विषाद वसेरा ॥२॥

अर्थ तब सुमन्त्र जी महल मे गये । सो ऐसा भयानक दिखाई पडा कि जाने म डर लगने लगा । मानो वह स्थान खाने दौडता है । देखते नही बनता । जैसे विपत्ति और विषाद का डेरा पडा हुआ है ।

व्याख्या सबकी आज्ञा शिरोधार्य करके सुमन्त्रजी राजमहल मे गये । कहां तमाम नगर म उछाह और चहल पहल और कहां यहाँ का सघनाटा उदासी देखकर सुमन्त्रजी को आगे बढ़ने मे भय का सञ्चार होने लगा । परिस्थिति की विषमता का ऐसा प्रभाव पडा कि सुमन्त्रजी को मालूम होने लगा कि वह स्थान खाने दौड रहा है । देखते नही बनता । मानो राजलक्ष्मी ने इसे त्याग दिया और विपत्ति विषाद ने डेरा जमा लिया ।

पूछे कोउ न ऊतरु देई । गये जेहि भवन भूप कैंकेई ॥

कहि जयजीव बैठ सिर नाई । देखि भूप गति गयउ सुखाई ॥३॥

१ राजकुल शब्द के ज और व के लोप से राउर शब्द सिद्ध होता है ।

अर्थ पूछने पर कोई उत्तर नहीं देता । तब उम घर में गये जहाँ महागज और कैकेयी थी । जय जीव कहकर माथा नवाया और बैठे । राजा की दशा देखकर सूख गये ।

व्याख्या सीधे शयनगृह में गये तो वहाँ कोई नहीं । दासियों से पूछते हैं क्या बात है ? महाराज कहाँ है ? कोई कुछ बोलता ही नहीं । मानो सब गुँगे बहरे हैं । सब अत्यन्त भयभीत हैं कुछ भी बतलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लने का साहस नहीं कर रहे हैं । तब राजा को खोजते खोजते कोषभवन में गये । जयजीव कहकर अभिवादन किया । सुमन्त्र महाराज के अभिघ्नहृदय सखा हैं । अत्यन्त प्रम करते हैं । महाराज की दशा देखकर सूख गये । अब दशा कहते हैं ।

सोच बिकल विवरन महि परेऊ । मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ॥
सचिउ समीत सकै नहि पूछी । बोली असुभ भरी सुभ छूछी ॥४॥

अर्थ शोक से विकल है । रग बेरग है । पृथ्वी पर पड़े हुए है । जैसे कमल की जड़ उखड़ गयी हो । मन्त्री डर के मारे कुछ पूछ नहीं सकते । तब अशुभ से भरी हुई शुभ से रोती कैकेयी बोली ।

व्याख्या महाराज शोक से विकल हैं । यथा सुनि मृदु वचन भूप हिय सोकू । ससिकर छुअत विकल जिमि कोकू । विवर्ण हो रहे हैं । यथा विवरन भयउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू जैसे कमल की जड़ उखड़ गयी हो और वह सूर्योदय पर भी अप्राण और विवर्ण हो गया हो । उसके जीवित रहने की आशा न हो ।

राजा की दशा देखकर मन्त्री सूख गये । यह पहिल ही कहा जा चुका है । अब पूछते भी डर लग रहा है । क्योंकि मन्त्री के आने पर भी महाराज कुछ कह नहीं रहे हैं । न जाने कैसे असामञ्जस्य में पड़े हुए हैं । फिर पूछें कैसे ? सुमन्त्र का आशय समझकर कैकेयी बोली । उसी का विशेषण देते हैं असुभ भरी सुभ छूछी । भाव यह कि पहिल यह मङ्गलघट की भाँति शुभ से भरी थी । सो शुभ सब निकल गया है । उसके स्थान पर अशुभ भर गया है । उसे अब रामजी से आशा है कि वे जब यह बात सुनेंगे तो अवश्य वत चल जायेंगे और किसी की न सुनेंगे । अतः चाहती हैं कि रामजी किसी भाँति शीघ्र आजायें तो उन्हीं के सामने बात खुल । पहिल खुल जाने से अनेक प्रकार की बाधाओं का भय है । अतः ऐसी बात बनावेंगी जिसमें अपना कार्य सिद्ध हो ।

दो परी न राजहि नीद निसि, हेतु जान जगदीसु ।

रामु रामु रटि भोरु किय, कहइ न मरमु महीसु ॥५॥

अर्थ रात राजा का नीद नहीं आयी । भगवान् जाने क्या कारण है । राम राम रटते रटते इन्होंने सबेरा किया है । अपना मर्म राजा बतलाते नहीं ।

व्याख्या . बूँबेयी बोली कि आज राजा को रात में नींद नहीं आयी । मैं तो इतना ही जानती हूँ । नींद न आने का कारण होना चाहिए । कोई रोग तो है नहीं । कोई चिन्ता होगी । पूछने पर कारण नहीं बतलाते । मैं इतना और कह सकती हूँ कि रातभर राम राम की रट लगाये रहे । इससे अनुमित होता है कि ये उस मर्म को राम से ही कहेंगे । जब तुमसे भी नहीं कहते और मुझसे भी नहीं कहते तो निश्चय यह अपनी पीड़ा राम से ही कहेंगे ।

आनहु रामहि वेगि बोलाई । समाचार तव पूँछहु आई ॥
चलेउ सुमन्नु राय रुख जानी । लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥१॥

अर्थ . शीघ्र रामजी को बुला लाओ तब आकर समाचार पूछना । महाराज का रुख पाकर सुमन्त्र चले । लखा कि रानी ने कुछ कुचाल किया ।

व्याख्या अतः रामजी को बुलाने में शीघ्रता करो । जितनी देर होगी उतनी ही पीड़ा अधिक होगी । रामजी का साथ लेकर लौटने पर समाचार पूछना । उसी समय राजा की जो कुछ कहना है कहेंगे ।

। रानी की बातें सुनी पर केवल उनकी आज्ञा पर मन्त्री काम नहीं करना चाहता । राजा का रुख देख रहा है । मालूम हुआ कि महाराज की भी यही रुचि है । जो पहिले यह मानते थे कि सबेरा न हो । कोई रामजी से ये बातें न कह दे । वे ही राजा अब रामजी का आना उचित समझ रहे हैं । जिसमें रामजी उनकी दशा देख लें और समझें कि जो आज्ञा हो रही है उसे देने में चक्रवर्तीजी को कितनी पीड़ा है । नितान्त बेवसी की हालत में उन्हें ऐसा कहना पड़ रहा है । सम्भव है कि इस भाँति कहलाई हुई बात के मानने में रामजी अपने को बाध्य न समझेंगे । अतः सुमन्त्रजी चले । पर इतना तो लम्ब ही लिया कि रानी ने कोई कुचाल किया है जिसका प्रभाव रामजी पर बहुत बुरा पड़नेवाला है । नहीं तो कोपभवन में आज क्यों है ? रानी कोपभवन में गयी और महाराज उसे मनाने गये । यही बात मालूम होती है ।

सोच विक्ल भग परइ न पाऊ । रामहि बोलि कहिहि का राऊ ॥
उर धरि धीरजु गयउ दुआरे । पूँछहि सकल देखि मनु मारें ॥२॥

अर्थ . मन्त्री . शोक से विक्ल हो गये । उनका कदम आगे नहीं बढ़ रहा है । विचारते हैं रामजी को बुलाकर राजा क्या कहना चाहते हैं ।

व्याख्या सुमन्त्रजी का भी प्रेम रामजी पर राजा सा ही है । उधर राजा सोच विक्ल विवरन महि परेऊ और इधर मन्त्री सोच विक्ल महि परइ न पाऊ कदम आगे बढ़ता ही नहीं । राजाज्ञा के कारण चलना ही पड़ा । मन में सोचते हैं कि वह कौन सी अनिष्ट बात है जिसे रामजी के आने पर राजा कहेंगे । बात अत्यन्त अनिष्ट न होती तो महाराज इतने विक्ल न होते । महल व बाहर आने के पहिले

सुमन्त्रजी ने प्रयत्नपूर्वक धैर्य धारण किया । फिर भी उदासी नहीं गयी । लोग पूछने लगे कि क्या बात है ?

समाधानु करि सो सब ही का । गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥

राम सुमन्त्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥३॥

अर्थ उन्होंने सबका समाधान किया और जहाँ सूर्यकुल के टीका थे वहाँ गये । रामजी ने सुमन्त्र को आते देखा तो उनका आदर किया और पिता के समान माना ।

व्याख्या सुमन्त्रजी ने सबका समाधान किया कि महाराज को रात में नीद नहीं आयी । इससे देर हुई । अब रामजी का बुलाया है । लोगों का समाधान हो गया । क्योंकि तेहि निसि नीद परी नहि काहू । किसो को भी रात नीद नहीं लगी । राजा को तो न लगना ही प्राप्त था । रामजी को बुलाना भी ठीक ही है । तत्पश्चात् रामजी के पास गये ।

निरखि वदनु कहि भूप रजाई । रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई ॥

रामु कुभाँति सचिव संग जाही । देखि लोग जहँ तहँ विलखाही ॥४॥

अर्थ मुख देखकर राजा की आज्ञा कह सुनायी और रघुकुलदीप को साथ लिवा चल । रामजी जिस रीति से मन्त्रीजी के साथ जा रहे हैं वह समयोचित नहीं है । यह देखकर लोग जहाँ के तहाँ विषाद करने लगे ।

व्याख्या रामजी पर मन्त्री का बड़ा प्रेम है । अतः पहिल प्रियदर्शन रामजी का मुख देखा तब कहा कि महाराज आपको शीघ्र ही देखा चाहते हैं । सुमन्त्रजी को रामजी के दर्शन की इच्छा थी । इसलिए रामजी को दिनकरकुलटीका कहा । अब साथ लेकर चलते हैं । इसलिए रघुकुलदीपक कह रहे हैं । जहाँ दीप जाता है वही प्रकाश करता चलता है और जहाँ से हट जाता है वहाँ अन्धेरा हो जाता है । रामजी तुरन्त चल पड़े ।

आज राज्याभिषेक का दिन है । बड़े ठाटबाट से सवारी निकलनी चाहती थी । सो रामजी इस भाँति मन्त्री के साथ क्यों जा रहे हैं । अतः अभिषेक में निश्चय बाधा पड़ी । यह समझकर जो देखता है हताश हो जाता है । अतः जहाँ तहाँ विलखाही कहते हैं ।

दो जाइ दीख रघुवसमनि, नरपति निपट कुसाजु ।

सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहुँ वृद्ध गजराजु ॥३९॥

अर्थ जाकर रघुवसमनि ने राजा की अत्यन्त गिरी हुई स्थिति देखी । जैसे बूढ़ा गजराज सिंहनी को देखकर सहम कर भयभीत होकर गिर गया हो ।

व्याख्या वहाँ जाकर रामजी ने देखा कि हृदय में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया । अति सौम्य सुशीला रानी कैकेयी आज सिंहनी की भाँति घात लगाये बैठी

है और शूलकुलिश अमि अगवन्तिहारे चक्रवर्तीजी बूढ़े गजराज की भाँति भयभीत से पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। यहाँ पर चक्रवर्तीजी की उपमा बूढ़े गजराज से और कैकेयी की उपमा सिंहिनी से देकर कवि ने सारा दृश्य ही आँख के सामने खींच दिया। बूढ़े गजराज सब प्रकार से अममर्थ सिंहिनी से वचने का कोई उपाय नहीं देख रहा है और सिंहिनी क्रोध में भरी हुई उसका प्राण लेने पर तुली हुई है। उसमें तनिक भी दया का लेश नहीं है।

सूखहि अधर जरइ सब अगू । मनहु दीन मनि हीन भुअगू ॥
सरूप समीप दीख कैकेई । मानहु मीचु घरी गनि लेई ॥१॥

अर्थ होठ सूख रहा है। सब अग जल रहे हैं। मानो बिना मणि के सर्प दीन हो रहा है। क्रोध से भरी हुई कैकेयी पास में ही दिखाई पड़ी। मानो साक्षात् मृत्यु बैठी हुई घड़ी गिन रही है।

व्याख्या चक्रवर्तीजी की मानसिक दशा कहकर अब शारीरिक दशा कहते हैं कि शोकाग्नि से सारा शरीर जल रहा है। होठ सूख रहे हैं। जैसे मणिधर सर्प की मणि छिन गयी हो। रामजी ही यहाँ मणि स्थानीय हैं। इसीलिए पूर्व के दोहे में कवि भी उन्हें मणि कहते हैं। यथा जाइ दीख रघुवसमनि। सिंहिनी कहकर कैकेयी को मृत्यु रूप पहिले ही कह आये हैं। पर अब सीधे सीधे मृत्यु से उपमित कर रहे हैं। क्योंकि वह पास बैठी है मारती नहीं है। मृत्यु मरण शील को तबतक नहीं मारती जबतक कि उसका समय नहीं आ जाता। मा यहाँ समय सन्निकट है। अतः मृत्यु आ पहुँची है। अब वह केवल उस समय की प्रतीक्षा कर रही है। अतः उसके लिए घड़ी का गिनना कहा।

करुणामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ विचारी । पूँछी मधुर वचन महतारी ॥२॥

अर्थ • रामजी का स्वभाव करुणामय और मृदु है। पहिले पहल दुःख देख रहे हैं। उन्होंने दुःख • कान से भी नहीं सुना था। फिर समय का विचार करके धैर्य धारण किया और माँ से पूछा।

व्याख्या • रामजी ने पिता की दशा देखी कि बलुवाया तो पर कुछ कह नहीं सकते। ऐसे दुःखी हैं। रामजी का स्वभाव करुणामय है। बड़ा कोमल है। इनका स्वभाव देखकर ही चक्रवर्तीजी ने ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि रामजी के कान तक किसी का दुःख पहुँचने न पावे। अतः सबके दुःख का प्रतीकार पहिले ही कर दिया जाता था। उनके कान तक पहुँचने नहीं पाता था। अतः दुःख उन्होंने कभी सुना न था। देखने की कौन चलावे। सो आज पहिले पहल दुःख को देगा। अतः धैर्य छूटना स्वाभाविक था। परन्तु रामजी ने विचार से काम लिया। धैर्य धारण करने मोटी वाणी में माँ से पूछा।

मोहि कहु मातु तात दुस कारनु । करिअ जतनु जेहि होइ निवारनु ॥

सुनहु राम सबु कारनु एह । राजहि तुम्ह पर बहुतु मनेहु ॥३॥

अर्थ . रामजी बोले माँ ! मुझसे पिता के दुःख का कारण बतला । उसके निवारण का यत्न किया जाय । कैरेयी बोली रामजी सुनो सब कारण तो यह है कि राजा का तुम्हारे ऊपर बड़ा प्रेम है ।

व्याख्या पिताजी से ऐसी अवस्था में कुछ पूछना व्यर्थ समझकर माँ से पूछा कि माँ ! पिताजी को बड़ा दुःख है । कई शारीरिक व्याधि तो है नहीं । मानसिक व्यथा है । उसका कारण तू जानती है और किसी से नहीं कहती तो मुझसे कह । जिसमें उसके हटाने का यत्न किया जाय ।

रामजी की बात सुनकर रानी बोली कि इस दुःख का मूल कारण राजा का तुम्हारे ऊपर अत्यधिक स्नेह है । स्नेह सभी पुत्रों पर है । पर तुम्हारे ऊपर अति अधिक है । भाव यह कि वैसा स्नेह मुझे नहीं है । राजा का यह स्नेह ही इनके दुःख का कारण हुआ है नहीं तो यह दुःख आता ही नहीं । सब पुत्रों पर यदि समान स्नेह होता और तदनुकूल कार्य करते तो मैं अगन्तुष्ट न होती यहाँ पर सूक्ष्मरूप से अपने वरदान माँगने का कारण कहा ।

देन कहेन्हि मोहि दुइ वरदाना । माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥

सो सुनि भयउ भूप उर सोचू । छाडि न सकहिं तुम्हार संकोचू ॥४॥

अर्थ . मुझे दो वरदान देने को कहा था । सो मुझे जो अच्छा लगा माँगा । उसे सुनकर महाराज के मनमें सोच हुआ है । तुम्हारा सङ्कोच इनसे छोड़ा नहीं जाता ।

व्याख्या इनका इस प्रकार का पुत्रों के साथ विषम व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा । मुझसे पूर्वकाल में इन्होंने दो वरदान देने को कहा था । जन्ही को मैंने अवसर उपस्थित होने पर माँगा । वरदान का अर्थ यह है कि जो मनोवाञ्छित हा वह माँगे । मुझे जो अच्छा लगा वह मैंने माँगा । पर राजा को उससे बड़ा शोक हुआ । क्योंकि उसके देने में तुम्हारा सङ्कोच छोड़ना पड़ेगा और इनका किया यह होता नहीं है ।

दो सुत सनेहु इत वचनु उत, सकट परेउ नरेसु ।

सकहु त आयसु धरहु सिर, मेठहु कठिन कलेसु ॥५॥

अर्थ . इधर बेटे का स्नेह उधर वचन का पाश । इसी सकट में राजा पड़े हैं । यदि तुमसे हो सके तो आज्ञा शिरोधार्य करके कठिन क्लेश को काटो ।

व्याख्या—जो वरदान मैंने माँगा है वह तुम्हारे प्रतिकूल है । उसके देने में तुमसे प्रेम तोड़ना पड़ेगा । न देने से प्रतिज्ञाभङ्ग हाती है । तुमसे प्रेम किसी हालत में राजा तोड़ना नहीं चाहते । पर प्रतिज्ञाभङ्ग को भी डरते हैं । इसी सङ्कट में ये

पड़े हुए हैं। अब तुम्हारा काम है। यदि तুম स्वयं प्रसन्नता पूर्वक उस आदेश को शिरोधार्य कर लो तो सब सकट कटा ही बटाया है।

निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥

जीभ कमान वचन सर नाना। मनहु महिपु मृदु लच्छ समाना ॥१॥

अर्थ : वेधडक बैठी हुई बातें कह रही है। सुनकर कठोरता अत्यन्त आकुल हो उठी। उसकी जिह्वा ही धनुष है और अनेक प्रकार के वचन ही बाण हैं और चक्रवर्तीजी कोमल निशाना हो रहे हैं।

व्याख्या : रानी होकर पति के लिए कठोर वचन कहने में मन्नो और पुत्र के सामने सङ्कुचित होना चाहिए। सो यह वेधडक बोलती चली जा रही है। चक्रवर्तीजी प्रार्थना कर चुके हैं। हाथ जाड चुके हैं कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना। तू मेरे सामने से हट जा। पर इसका उसे कुछ ख्याल नहीं है। समझती है कि मेरे चुप रहने से या हट जाने से सम्भव है कि ये लोग आपस में बात करके कोई रास्ता ढूँढ निकालें। सो मैं न होने दूँगी। उसकी कठिनता देखकर स्वयं कठिनता अत्यन्त व्याकुल हो उठी। राजा के लिए कहना ही क्या है।

इस समय उसके मुख से वचन निकलते हैं वे मानो धनुष से छूटे हुए बाण हैं और सबका लक्ष्य एक मात्र चक्रवर्तीजी हैं। एक एक बाण उन्हें छेदे डालते हैं। उनमें इन आघातों के निष्फल करने योग्य कठिनता नहीं है। इसी से उनकी उपमा मृदु लक्ष्य से दी गयी।

जनु कठोरपनु धरे सरीरु। मित्ति धनुषविद्या वर वीरु ॥

सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धरि निठुराई ॥२॥

अर्थ . मानो वीरवर कठोरपन शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है। सब प्रसङ्ग रामजी को सुनावर इस भाँति बैठी मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हुए है।

व्याख्या : बड़े वीरो का काम ही युद्ध करना है। अतः धनुषविद्या उनके बड़े काम की चीज है। वे हाथ बैठाने लिए बार बार लक्ष्य वेध करते हैं। उनका प्रयोजन ही वेध करना है। लक्ष्य के छिन्न भिन्न होने की उन्हें परवाह नहीं। अतः चक्रवर्तीजी को उन आघातों से कितनी पीडा पहुँच रही है इसका उसे कुछ ख्याल नहीं है। उसका काम चोट पहुँचाना हो गया है। कोई बार खाली न जाना चाहिए। इधर चक्रवर्तीजी का चित्त इतना कोमल है कि प्रत्येक वाक्यबाण गहरी चोट बर रहे हैं।

ऐसी निष्ठुर है कि अपने वरदान मिलने का प्रसङ्ग उसे याती की भाँति महाराज के पास ही रहने देना तथा राज्याभिषेक का प्रसङ्ग आने पर भर्त को राज्य तथा राम का वनवास माँगना राजा की भरत के राज्यविषयक स्वीकृति

रामजी के वनवास में ही अमामञ्जस्य और अपना उसी पर हठ फलतः चक्रवर्तीजी की विकलता यह सब रामजी को सुना गयी। और तब चुपकी बैठी। भाव यह कि कहो अब क्या कहते हो। पिता के दुःख का कारण तो सुन लिया। अब निवारण करो। अतः कवि कहते हैं कि मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये बैठी है।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनन्द निधानू ॥
बोले वचन विगत सब दूषण। मृदु मंजुल जनु वाग विभूषण ॥३॥

अर्थ : सूर्यकुल के सूर्य रामजी सहज आनन्द के निधान हैं। वे मन ही मन मुसकरा रहे हैं। सब दोषों से रहित कोमल और सुन्दर ऐसा वचन बोले मानो वह वाणी का भूषण है।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के सूर्य हैं। इनके सामने अन्धकार आ नहीं सकता तथा स्वभाव से ही आनन्द के निधान हैं। दुःख की छाया भी इन पर नहीं पड़ सकती। महाराज इनके ऊपर दुःख आया चाहता है इस भावना से दुःखी हैं। यहाँ दुःख का सम्पर्क ही नहीं। वन जाने में अधिक प्रसन्नता है। अतः मन ही मन मुसकराते हैं। प्रकट मुसकराने से माता को कष्ट होगा।

ऐसे दोषयुक्त कठार अनुचित वचन के उत्तर में पवित्र कोमल और वाणी के भूषणरूप वचन बोले। सुनत सीतापति सील सुभाउ। मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।

सुनु जननी सोइ सुत बडभागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल ससारा ॥४॥

अर्थ : हे माता। वही बेटा बड़ा भाग्यवान् है जिसे पिता माता के वचन में प्रेम हो। मैं। पिता माता को तुष्ट करनेवाला पुत्र सारे ससार में दुर्लभ है।

व्याख्या : ऐसी कटुवादिनी विमाता को जननी कहकर सम्बोधन करते हैं। उसने कहा था : सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु। इसपर कहते हैं कि आज्ञा के शिरोधार्य करने या न करने का तो यहाँ प्रश्न ही नहीं है। यह तो मेरे लिए बडभागी होने का अवसर है। पुत्र का बडभागी होना तो पुत्रत्व के साफल्य में है। धन विद्यादि साधनों में नहीं। अतः जिस पुत्र को पिता के वचन में अनुराग हो वही बडभागी है।

माता पिता तो दिन रात पुत्र की तुष्टि के प्रयत्न में ही रहते हैं। पर पुत्र ऐसा हो जो पिता माता को सन्तुष्ट रखे। यह बात संसार में दुर्लभ है। भाव यह कि मैं उन दुर्लभ पुत्रों में हूँ। मुझे पिता माता के वचन में अनुराग है। मैं उसके पालन में अति दुष्कर कर्म भी कर सकता हूँ। यहाँ तो ऐसा आदेश हो रहा है जिसमें सुख ही सुख है।

दो 'मुनिगन मिलनु बिसेपि वन, सबहि भाँति हित मोर ।

तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥४१॥

अर्थ : वनमे विशेष करके मुनियो से समागम होगा । जिससे सब भाँति मेरा हित है । उसपर पिता की आज्ञा और माँ । तेरी सम्मति ।

व्याख्या : सब कल्याण का मूल सत्सङ्ग है । सो जैसा वन मे होगा वैसा यहाँ नही होता । क्योंकि मुनि लोग अधिकतर वही रहते हैं । पिता की आज्ञा और माँ की सम्मति से उसका महत्त्व और अधिक हो गया ।

सुनु जननी सोइ सुत बडभागी इत्यादि वचन की कोमलता है । मुनिगन मिलनु बिसेखि वन सबहि भाँति हित मोर । इत्यादि मे मञ्जुलता अधिक है । वाग्विभूषणता आगे की अर्धाली मे झलकेगी । अथवा सर्वत्र तीनो गुण हैं ।

भरतु प्राणप्रिय पावहि राजू । विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू ॥

जौ न जाउँ वन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ समाजा ॥१॥

अर्थ : भरत मेरे प्राणप्रिय है । वे राज्य पावे । मुझे तो आज विधाता सब प्रकार से अनुकूल है । यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन न जाऊँ तो मूढो के समाज मे प्रथम गणना मेरी ही है ।

व्याख्या इतना ही नही प्राणप्रिय भरत को राज्य मिल रहा है । अपने प्रिय के लिए ही लोग राज्य भोग और सुख की कामना करते हैं । यथा : येषामर्थे काक्षितं नो राज्य भोगा सुखानि च । अतः मेरी कामना भी पूरी हो रही है । आज विधाता मुझपर सर्वथा अनुकूल हैं । सत्सङ्ग की प्राप्ति धर्म की प्राप्ति सुख की प्राप्ति अनायासेन हो रही है ।

कोई भी बुद्धिमान् अपने हित पर दृष्टि रखता हुआ इससे मुँह नही मोड़ सकता । विधि के सम्मुख होने पर उससे लाभ न उठाना मूढ का काम है और सब विधि सम्मुख होने पर लाभ न उठानेवाला मूढों का सरदार है । मैं ऐसा अवसर चूक नही सकता ।

सेवहि अरँडु कलपतरु त्यागी । परिहरि अमृत लेहि विपु माँगी ॥

तेउ न पाइ अस समउ चुकाही । देखु विचारि मातु मन माही ॥२॥

अर्थ जो कल्पवृक्ष का त्याग करके रेड • एरण्ड की सेवा करते हैं । अमृत का परित्याग करके याचना पूर्वक विष ग्रहण करते हैं वे भी ऐसा अवसर न चूकेगे । माँ तू मनमे विचार करके देख ले ।

व्याख्या : अब मूढ की परिभाषा कहते हैं । जिसे सेव्यासेव्य ग्राह्याग्राह्य का विचार न हो वही मूढ है । कल्पवृक्ष सेवन करने योग्य है जो सब कामनाओ को

पूरा करता है। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। जहाँ कोई पेड़ नहीं होता। वहाँ एरण्ड की पूछ होती है। अतः वत्पतरु का त्याग करके एरण्ड की सेवा करने-वाला महामूर्ख है। प्राणदा अमृत का त्याग करके प्राणहर विष की याचना करनेवाला महाअज्ञानी है। पिता का आज्ञापालन कर्त्तव्य है और राज्यपालन एरण्ड है एवं सत्सङ्ग अमृत है। विषयोपभोग विष है। अतः मूढ़ भी कर्त्तव्य और अमृत ग्रहण के अवसर को नहीं चूकेगा। मैं कैसे चूक सकता हूँ। राज्यपालन का एरण्ड होना तथा विषयोपभोग का विष होना मनमें विचार करने से सिद्ध होता है। अतः माता को मनमें विचार करने के लिए कह रहे हैं।

अब एकु दुखु मोहि विसेखी। निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुखु भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥३॥

अर्थ माँ! मुझे एक विशेष दुःख है कि मैं महाराज को अत्यन्त बिकल देख रहा हूँ। बात थोड़ी और पिताजी का दुःख बड़ा। इससे माँ मुझे विश्वास नहीं हो रहा है।

व्याख्या सरकार माता से कहते हैं कि जो जो तुम कह गयी वे सब तो सुख की बातें हैं। दुःखी होने के लिए वहाँ स्थान ही नहीं है। विशेष दुःख तो यह देखकर हो रहा है कि महाराज इतने बिकल क्यों हैं। इतने बड़े लाभ के लिए मैं बन जा रहा हूँ। यह कोई बड़े दुःख की बात नहीं है। इसके लिए इतनी बड़ी बिकलता इतनी छटपटाहट इतना शोक तो समझ में नहीं आता। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि जो तुम कह रही हो वही कारण है।

राउ धीरु गुन उदधि अगाधू। भा मोहि ते कछु बड अपराधू ॥
जाते मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥४॥

अर्थ महाराज धीर हैं। गुणा के अथाह समुद्र हैं। मुझसे कोई बड़ा अपराध बन पड़ा है। जिससे महाराज मुझसे नहीं बोल रहे हैं। तुम्हें मेरी शपथ मुझसे साफ साफ बतला दो।

व्याख्या महाराज धीर हैं। थोड़ी सी बात में विचलित हो नहीं सकते। गुणों के अथाह समुद्र हैं। जो बातें तुमने कही उनके गुणों को भली भाँति जानते हैं। समुद्र में क्षाभ होने का कोई बड़ा कारण होना चाहिए। मैंने जान बूझकर कोई अपराध नहीं किया है। पर अनजान में भी बड़ा अपराध हो जाना सम्भव है। मालूम होता है कि मुझसे ऐसा ही कोई अपराध बन पड़ा है। जिससे महाराज मुझसे बोल नहीं रहे हैं। पर तुमसे तो कहा होगा। तुम क्यों छिपा रही हो। तुम्हें मेरी शपथ सच सच बतला दो। मैं सदा से तुम्हें प्यारा हूँ। अतः अपनी शपथ दे रहा हूँ।

दो सहज सरल रघुवर वचन, कुमति कुटिल करि जान।

चलइ जोक जल वक्रगति, जद्यपि मलिलु समान ॥४२॥

अर्थ : रघुवर के स्वभाव से ही सरल वचन को उस दुर्वृद्धि ने टेढ़ा ही समझा जैसे पानी के समान होने पर भी जोक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है ।

व्याख्या . रामजी ने तो स्वभाव से ही सीधी सीधी बातें कही पर कैकेयी की वृद्धि उलटी हुई है । उसे उसमें कुटिलता की गन्ध मालूम हुई । उसने समझा कि यह भी वही बात कह रहे हैं जो महाराज कहते थे । यह भी अपने को निर्दोष मिद्ध करने के लिए मुझसे कारण पूछते हैं । अपराध की चरचा चलाकर अपना निरपराध होना हमारी निष्ठुरता और अपना प्रेम चोतित करते हैं । विधि सब विधि मोहि सम्मुख आजू कहकर यह दिखला रहे हैं कि तुमने तो अपने समझ में दण्ड दिया । पर उससे मुझे कष्ट नहीं है ।

रहसी रानि राम रुख पाई । बोली कपट सनेहु जनाई ॥
शपथ तुम्हार भरत के आना । हेतु न दूसर में कछु जाना ॥१॥

अर्थ . रामजी का रुख पाकर रानी प्रसन्न हो गयी और कपट प्रेम जनाती हुई बोली । तुम्हारी शपथ तथा भरत की शपथ में दूसरा कारण नहीं जानती ।

व्याख्या . वचन को कुटिल मानती हुई भी यह जानकर प्रसन्न हो गयी कि रामजी का रुख बन जाने का है । रामजी की ओर से सब कथा सुनने पर भी कोई बात ऐसी नहीं कही गयी जिससे प्रेम को कमी अनुमित हो । अतः कैकेयी कपट पूर्वक अपना प्रेम जनाती है । रामजी ने मोर शपथ कहकर यह जनाया कि मैं तुझे प्यारा हूँ । तो कैकेयी भी शपथ लेते समय भरत के पहिले रामजी के नाम का उल्लेख करके भरत न मोहि प्रिय राम समाना इस भाव का परिचय दे रही है । कहती है कि मैं तो यही जानती हूँ जो तुमसे कहा है । इसके अतिरिक्त यदि कोई बात हो तो मुझे पता नहीं है ।

तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता । जननी जनक बधु सुखदाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू । तुम्ह पितु मातु वचन रत अहहू ॥२॥

अर्थ . बेटा । तुम अपराध के योग्य नहीं हो । तुम तो माँ बाप और भाई को सुख देनेवाले हो । रामजी । जो तुम कहते हो सो सत्य है । तुम माता पिता के वचन में अनुरक्त हो ।

व्याख्या . पर इससे अतिरिक्त दूसरी बात मा मोहि ते कछु बड अपराधू सम्भव नहीं है । क्योंकि तुम में अपराध करने का माहा योग्यता नहीं है । अपराध तो उससे होता है जिसमें दुःख देने की प्रवृत्ति होती है और तुम तो माँ बाप और भाई को सुख देनेवाले हो । अतः तुम्हारे अपराध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

तुमने जो कहा कि बन जाने में लाभ ही लाभ है । सो भी सत्य है और तुम माता पिता के तुष्ट करनेवाले हो यह भी सत्य है और तुम पितु मातु वचन अनुरागी भी हो । इस भाँति बन जाने के लिए प्रोत्साहन देते हुए कहती है ।

पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्है । उचित न तासु निरादर कीन्है ॥३॥

अर्थ मैं बलि जाउँ यहो बात अपने पिता को समझाकर कहो । जिसमे चौथेपन मे अपयश न हो । जिस पुण्य ने उन्हें तुम्हारे ऐसा पुत्र दिया उसका अनादर करना उचित नहीं ।

व्याख्या अब यह सब बातें अपने पिता को समझाओ कि वन मे जाने से लाभ ही लाभ है । मैं तो इसे बड़ भाग्य की बात मानता हूँ । जिसमे इनका शोक दूर हो । ये नहीं मानते । मरती समय बुढ़ाई मे अपयश लेने को तैयार है । वन तुम्हें जाना है । इसलिए तुम्हारे ही समझाये समझोगे ।

बड़े पुण्य से भगवान् ने तुम्हारे ऐसा वेटा दिया है । उसी पुण्य का शरण ग्रहण करना चाहिए । पुण्य का सञ्चय करना चाहिए । सो अपनी बात छोड़कर इस अवस्था मे उस पुण्य का निरादर कर रहे है ।

लागहि कुमुख वचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातु वचन सब भाए । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥४॥

अर्थ बुरे मुँह से भले वचन ऐसे लगते है जैसे मगध देश मे गयादिक तीर्थ है । रामजी को माता के वचन सब अच्छे लगे । जैसे गङ्गा मे जाने से पानी अच्छा हो जाता है ।

व्याख्या रामजी के विमुख होने से कैकेयी का मुख कुमुख है । उसने चार वचन बहुत उत्तम कहे १ तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता । २ राम सत्य सबु जो कछु कहहू । ३ पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई और ४ तुम सम सुअन सुकृत जेहि दीन्है । पर इतने से उसका कुमुखत्व गया नहीं । जैसे मगध मे चार तीर्थों के रहते हुए भी उसकी अशुद्धि नहीं गयी । जैसे ऊपर की चार बातें कैकेयीजी की पवित्र है । वैसे ही चार स्थल मगध मे भी पवित्र है । यथा मगधेषु गया पुण्या पुण्य राजगृह वनम् । च्यवनस्याश्रम पुण्यो नदी पुण्या पुन पुन । पाद्म । श्रीगोस्वामीजी कहते हैं वसि कुसग चह सुजनता ताकी आस निरास । तीरथहू को नाम भो गया मगध के पास । गया तीर्थ होने पर भी आसुर तीर्थ है । इसलिए उसको शोभा नहीं ।

सरकार समझते है माता प्रेम करती है । प्रशंसा करती है । माता के भावोपहत वचन सरकार का पाकर भावपूर्ण हा गय । जैसे गन्दा पानी भी गङ्गा मे मिलकर पवित्र हो जाता है । करमनास जल सुरसरि परई । तेहि को कहो सीस नहि धरई ।

दो गइ मुरुछा रामहि सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह ।

सचिव राम आगमन् कहि, विनय समय सम कीन्ह ॥४३॥

अर्थ मूच्छा जाती रही । तब रामजी को स्मरण करके गजा ने करवट बदला । मन्त्री ने रामजी का आगमन कहकर समयानुकूल विनती की ।

व्याख्या अभी आँख बन्द है । महाराज मूर्च्छित थे । उन्हें रामजी का आना मालूम नहीं । जब कैकेयी को हट जाने को कहा था और वह नहीं हटी तो स्वयं महाराज ने मुँह फेर लिया । सुमन्त्रजी रामजी को बुलाने गये । उसी समय मूच्छा हुई । अब चेत हुआ है तब करवट बदली । जब मन्त्री ने देखा कि महाराज होश में आये तब विनय किया । बड़ा नाजुक समय है । महामन्त्री भी उतना ही बोलता है जितने बिना काम न चले । अर्थात् महाराज ! धैर्य धरें आँख खोलें । देखिये रामजी आगये इत्यादि

अवनिप अकनि रामु पगु धारे । धरि धीरजु तव नयन उधारे ॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप रामु निहारे ॥१॥

अर्थ चक्रवर्तीजी ने यह सुनकर कि रामजी पधारे हैं धैर्य धरकर आँख खोली । मन्त्री ने सँभाल कर महाराज को बिठाया । उन्होंने रामजी को चरणा पर गिरते देखा ।

व्याख्या आवर्ण्य शब्द का प्राकृत रूप अकनि है । महाराज की हालत बड़ी नाजुक है । शरीर व्याकुलता से इतना शिथिल हो गया है कि आँख नहीं खुलती । जब मन्त्री की वाणी सुनी कि रामजी पधारे हैं तब आँख खोली । आँख खोलने में धैर्य धारण करना पड़ा ।

आँख तो खुली पर उठकर बैठ न सके । मन्त्री ने देखा कि अब यह बैठना चाहते हैं । पर उठ नहीं सकते । तब उसने सँभालकर बिठाया कि कहीं गिर न जायँ । उसी समय रामजी चरणों में गिरे । राजा ने देखा ।

लिये सनेह विकल उर लाई । गइ मनि मनहु फनिक फिरि पाई ॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू । चला बिलोचन वारि प्रवाहू ॥२॥

अर्थ स्नेह से विकल होकर हृदय से लगा लिया । जैसे खोई हुई मणि को सर्प ने फिर से पा लिया हो । नरेश रामजी को देखते रह गये । आँखों से अश्रुधारा वह चली ।

व्याख्या चक्रवर्तीजी को सन्देह था कि पता लगते ही रामजी कहीं उधर के उधर ही बन न चल जायँ । अतः उस सर्प की उपमा देते हैं जिसकी गयी हुई मणि फिर से मिली हो । अर्थात् मणि के लिए बड़ी उत्सुकता थी । मिलने पर बड़ा सन्तोष हुआ ।

मन स वन दे चुके हैं । अतः रामहीन अवध का दृश्य सामने है । रामजी के देखने से मानो शरीर में प्राण का सञ्चार हो रहा है । पर साथ ही साथ यह भी ध्यान है कि थोड़े ही काल में रामजी का दर्शन दुर्लभ हो जायगा । सो प्रेम

उमड आया । आँखों से आँसू की धारा वह चली । प्रवाह ख़ता नहीं । न जाने इतना जल कहाँ से आगया ।

सोक बिबस कछु कहइ न पारा । हृदय लगावत वारहि वारा ॥

विधिहि मनाव राउ मन माही । जेहि रघुनाथु न वानन जाही ॥३॥

अर्थ शोक के विवश हैं । कुछ कह नहीं सके । बार बार हृदय में लगा रहे हैं । मन ही मन विधाता से मना रह है कि रामजी वन न जायँ ।

व्याख्या रामहि चितै रहे से कर्मणा शोक बिबस से मनसा तथा कछु कहै न पारा से वाचा शोक कहा । गयी हुई मणि मिली । कही फिर न चली जाय । अतः वियोग के भय से बार बार हृदय में लगाते हैं । पर तृप्ति नहीं होती ।

मन ही मन विधाता से मनाते हैं कि रामजी वन न जायँ । भाव यह कि मैं तो कहूँ कि तुम वन जाओ । पर रामजी मेरे कहने पर भी न जायँ । विधिहि मनाव कहने का कारण यह कि कोई ऐसी विधि बैठा दे कि मरी बात भी न जा सके और रामजी भी वन न जायँ ।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । विनती सुनहु सदासिव मोरी ॥

आसुतोष तुम्ह अवठर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ॥४॥

अर्थ फिर महादेवजी का निहोरा करके कहते हैं कि हे सदाशिव मरी विनती सुनो । तुम शीघ्र प्रसन्न होनेवाला हो और बेहिसाब देनेवाला हो । मैं दीन हूँ । ऐसा जानकर मेरी आर्तिहरण करो ।

व्याख्या चक्रवर्तीजी फिर विचारते हैं कि ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कर्म के फल देनेवाला हैं । साधन निरपेक्ष ईप्सित फल देनेवाला तो महादेव ही हैं और शीघ्र ही प्रसन्न भी होते हैं । यथा औठरदानि द्रवत पुनि थारे । सकत न देखि दीन करजोरे । अतः आराधन के फल पर जोर न देकर निहारा करते हैं कि मुझ दीन जानकर मेरी विनती सुनो और मेरी आर्ति हरण करो ।

दो तुम्ह प्रेरक सबके हृदय, सो मति रामहि देहु ।

वचनु मोर तजि रहहि घर, परिहरि सीलु सनेहु ॥४४॥

अर्थ तुम सबके हृदय के प्रेरक हो । ऐसी बुद्धि रामजी को दो कि मेरे वचन को हटाकर शील सनेह को छोड़कर घर रह जायँ ।

व्याख्या ईश्वर सबभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भामयन् सबभूतानि यन्त्रारूढानि मायया । ईश्वर सत्र प्राणियो के हृदय में बठा हुआ सत्रवो कठपुतली की तरह नचाया करता है । अतः उस महादेव से चक्रवर्तीजी प्रार्थना करते हैं कि तुम सबके हृदय के प्रेरक हो । तुम्हारी प्रेरणा से ही रामजी ऐसे आज्ञाकारी हैं । शील सनेह के समुद्र हैं । यह तुम्हारी बड़ी कृपा है । पर आज ये गुण तो मर प्राणग्राहक हो रहे हैं । मेरा सबनाश उपस्थित है । सा रामजी की बुद्धि फेरने में

तुम्ही समर्थ हो। उाही बुद्धि फेर दा कि मैं -तो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी शील सनेह तोडकर कहे कि पहिले अपराध तो वत्तलाओ तो पीछे वन जाने को कहो। गुरोरप्यवलितस्य कार्याकार्यमजानत। उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते। रामजी धर्मशास्त्र लेकर उठ कि विषयलिप्त गुरु जिसे कार्याकार्य का ज्ञान न हो, सन्मार्गगामी न हो, उसका परित्याग करना चाहिए। अब यदि कहे कि तुम्हारा अशुभ कर्म उदय हुआ है, उसकी क्या गति होगी। तो कहते हैं

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौ वरु सुरपुर जाऊ ॥

सब दुख दुसह सहावउ मोही। लोचन ओट रामु जनि होही ॥१॥

अर्थ ससार मे अपकीर्ति हो, कीर्ति का नाश हो, बल्कि स्वर्ग जाय मुझ नरक ही हो। मुझे सब दु सह दु ख सहाओ पर राम आँख के ओट न हो।

व्याख्या यदि मैं रामजी को वन नहीं देता तो कैकेयी प्राण दे देगी। उसने कह दिया है होत प्रात मुनिवेषधरि जौ न राम वन जाहि। मोर मरन राउर अजस नृप समुझिअ मनमाहि। तो भल ही कैकेयी प्राण दे दें, मेरी अपकीर्ति हो जाय। बड़े परिश्रम और सावधानी से कमाये हुए सुयश का नाश हो जाय। लोग कहे कि राजा भ्रष्टप्रतिज्ञ हैं। इसकी करणी से ऊबकर रानी ने प्राण दिया और अपकीर्ति से स्वर्ग में प्रवेश नहीं होता केवल दूर्वा पीसकर पीनेवाले मुनि पर लोगो को भ्रम हो गया कि यह ताडी पीते हैं। इस अपकीर्ति से उनका स्वर्ग में प्रवेश न हुआ। सो मुझ भी न हो। भ्रष्टप्रतिज्ञ होने के पाप से भल ही नरन भोगना पडे। इसके अतिरिक्त और जो दु सह दु ख हैं। उन्हें भी उस अशुभ कर्म के फल रूप से मुझे महना पडे। मुझे स्वीकार है। पर रामजी मेरी आँखो के ओट न हो। इस सुख से मैं वञ्चित न होऊँ।

अस मन गुनई राउ नहि वोला। पीपर पात सरिस मनु डोला ॥

रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी ॥२॥

अर्थ मनमे ऐसा विचारते हुए चक्रवर्तीजी कुछ बोले नहीं। परन्तु पीपर के पत्ते की भाँति मन डाल उठा। रामजी ने समझ लिया कि पिताजी प्रेम के वश मे पड गये हैं और माँ फिर कुछ वालना चाहती है। ऐसा अनुमान किया।

व्याख्या रामजी को बुलवाया है। वे आये हुए हैं। उनसे कुछ कहना चाहिए। पर चक्रवर्तीजी कुछ बोल नहीं। क्योंकि उपर्युक्त बातें सोच रहे थे। उनका मन ऐसा अस्थिर हो गया जैसे पीपर का पत्ता होता है। पीपर का नाम ही चलदल है। उसके पत्ते सदा चलायमान रहते हैं। कभी ठहरते ही नहीं। यही दशा राजा के मन की हो रही है। उन्हें उस बात पर भी स्थिरता नहीं जो अभी गुन रहे थे उसपर भी स्थिर हो जाते तो कुछ विगडा नहीं था। पर हैं धर्मधुरन्धर उनमे धर्म भी छोडते नहीं बनता।

रामजी ने देखा कि पिताजी प्रेम के वश हो गये हैं। इसलिए बोलने मे

असमर्थ हैं और इधर कैकेयी समझे बैठी है कि ये वन न देंगे । इसलिए मुझे समझाने को कह रही है । इनके चुप रहने को वह सह न सकेगी । फिर कुछ बोला ही चाहती है । अनुमान किया कि इसने कह कहकर कष्ट बढ़ाया है । पिताजी का मुझपर इतना प्रेम इसे असह्य हो रहा है ।

देस काल अवसर अनुसारी । बोले वचन विनीत विचारी ॥

तात कहौ कछु करौ ढिठाई । अनुचितु छमव जानि लरिकाई ॥३॥

अर्थ : देशकाल और अवसर के अनुसार विनीत वचन विचार कर बोले । हे तात ! मैं कुछ कहता हूँ ढिठाई करता हूँ । मेरे इस अनौचित्य को लडकपन समझकर क्षमा कीजिये ।

व्याख्या • यद्यपि पुत्र का धर्म पिता की आज्ञा मानना है उसे शिक्षा देना नहीं है । इसलिए विचारकर विनीत वचन देशकाल और अवसर के अनुकूल बोले । वहाँ पिता पुत्र का सम्मिलन हो रहा है । दूसरा कौन बोले । अतः रामजी का ही बोलना देश के अनुकूल था । वन जाने का समय भी माता ने सबेरे ही निश्चय किया है । अतः जो कुछ कहना सुनना हो उसका यही समय है । अतः रामजी का कहना काल के भी अनुकूल था । यही अवसर माता के आज्ञापालन का है । यथा : पितरहि बुझाइ कहसु बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई । अतः रामजी का कहना अवसर अनुकूल था ।

बिना पूछे कहता हूँ यह मेरी ढिठाई है । बिना कहे रहा नहीं जाता यह लडकपन है । ढिठाई और लडकपन दोनों अनुचित हैं । पर आप पिता हैं । आप बच्चों का अनौचित्य क्षमा करते आये हैं सो इस बार भी क्षमा करेंगे ।

अति लघु बात लागि दुखु पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥

देखि गोसाईहि पूँछिउँ माता । पुनि प्रसगु भए शीतल गाता ॥४॥

अर्थ • अत्यन्त छोटी सी बात के लिए आपको बड़ा दुःख हुआ । मुझे इस बात का समाचार पहिले किसी ने नहीं दिया । आपको देखकर मैंने माँ से पूछा । सब प्रसङ्ग सुनकर शरीर शीतल हो गया ।

व्याख्या • माता ने कहा छाड़ि न सकहि तुम्हार सकोचू । सो दुख सङ्कोच का था कि मैं रामजी से कैसे कहूँ कि तुम वन जाओ । यथा कह्यो राज वन दियो नारियस गरि गलानि गये राउ । सो यदि मुझे पहले समाचार मिल गया होता तो सङ्कोच की बात ही न थी मैं उधर से उधर ही वन चला जाता । यहाँ आने पर आपकी विव्रलता देखकर माता से पूछा । उसने सब प्रसङ्ग मुझसे कह सुनाया सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । आपकी दशा देखकर शरीर सन्तप्त हो उठा था । सो शीतल हो गया । क्योंकि यह दोनों बात मुझे मुहमाँगी मिल गयी । मेरा मन नवगजेन्द्र की भाँति वन में ही आनन्द मानता है । राज्य उसे बन्धन मालूम होता है । भरत प्राणप्रिय हैं उन्हें राज्य मिलना ही मुझे इष्ट है । अपने प्रिय के लिए

ही लोग राज्य भोग और सुख चाहते हैं। सो प्राणप्रिय को मिला। इससे अधिक मङ्गल क्या होगा ?

दो. मङ्गल समय स्नेह वस, सोचु परिहरिअ तात ।

आयसु देइअ हरपि हिय, कहि पुलके प्रभु गात ॥४५॥

अर्थ : मङ्गल के समय स्नेहवश जो सोच करते हैं उसे छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये। ऐसा कहते हुए प्रभु का शरीर पुलकित हो गया।

व्याख्या : वन के लिए प्रस्थान मेरे लिए मङ्गल है। सोच के लिए इसमें कोई स्थान ही नहीं है। बन्धन से छूटना और सब कल्याणों का मूल मुनिजन समागम से बढ़कर मङ्गल क्या हो सकता है। सो उपस्थित है। क्या सन्तसमागम से किसी का आज तक अकल्याण हुआ है। तब सोच किस बात का ? मेरे स्नेह के कारण आप सोच रहे हैं : लोचन ओट रामु जनि होही। इस सोच को छोड़िये और मेरे कल्याण की ओर दृष्टि देकर प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये। यह कहते हुए पुलक होने का कारण आनन्दातिरेक है। पिता के आज्ञा पालन से जन्म का साफल्य समझकर सरकार को अति हर्ष है।

धन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥

चारि पदारथ करतल ताकें । प्रिय पितु मातु प्राण सम जाकें ॥१॥

अर्थ : संसार में उसी का जन्म धन्य है। जिसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। उसके चारों पदार्थ हस्तगत हैं। जिसे माता पिता प्राण के समान प्यारे हों।

व्याख्या : पिता धर्मः पिता कर्म पितैव परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः। पिता ही धर्म है पिता ही कर्म है। पिता ही परमगति है। पिता के प्रसन्न होने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः गोस्वामीजी कहते हैं कि सबसे बड़ी सेवा पुत्र की यह है कि उसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। कौसल्याजी कहती हैं : तात पितहि तुम्ह प्राण पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।

जिमका चरित ऐसा हो और जिसे माता पिता प्राण से प्यारे हो। उसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिए किसी साधन की अपेक्षा नहीं है। ये सब उसे आप से आप प्राप्त हो जाते हैं : रामजी के चरित्र से यह शिक्षा संसार को मिलती है।

आयसु पालि जनम फलु पाई । ऐहउं वेगहि होउ रजाई ॥

बिदा मातु सन आवौ मांगी । चलिहो वनहि बहुरि पग लागी ॥२॥

अर्थ : आज्ञा पालन करके जन्म का फल पाकर के शीघ्र ही लौटूंगा। अब आज्ञा हो। माता से विदा मांग आऊँ। तब फिर चरणों में प्रणाम करके वन जाऊँगा।

व्याख्या भायमु देइय हरति हिय कहि पुलने प्रभुगात से प्रसंग छोडा था । अब फिर वही से उठाते हैं । रामजी कहते हैं कि आप की आज्ञा के पालन में ही मेरे जन्म का माफल्य है । मैं अपना जन्म सफल करने जाता हूँ । चौदह वर्ष के बाद लौटने में एक मिनट की देर न लगाऊँगा । यह कोई न समझे कि नाराज होकर न लौटेंगे । या मनाने के लिए किसी को जाना पड़ेगा । मैं स्वयं लौट आऊँगा । बात तय हो गयी । अब आज्ञा हो । मौन स्वीकारलक्षणम् मानकर कहते हैं कि जाने के पहिल माताजी से विदा माँगना भी परमावश्यक है । उनसे आज्ञा न माँगूंगा । विदा माँगूंगा और चलने से पहिल फिर चरणों की वन्दना के लिए आऊँगा ।

सरकार समझ रहे हैं कि मा से छुट्टी पाना सहज बात नहीं है और जब तक उनसे छुट्टी न मिल जाय तब तक विदाई का प्रणाम पिताजी से कैसे करें ।

११ प्रजा विरह विषाद प्रसङ्ग

अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा । भूप सोक बस उतरु न दीन्हा ॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी । छुअत चढी जनु सब तन वीछी ॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर रामजी तब चल गये । राजा ने शोक व वश होकर उत्तर न दिया । नगर में यही तीखी बात व्याप्त हो गयी । जैसे छू जाने से सम्पूर्ण शरीर में वीछी व्याप्त हो जाती है ।

व्याख्या रामजी इस वान पर नहीं अडे कि पिताजी मुख से कह दें कि तुम वन जाओ । तब मैं जाऊँगा । उन्होंने पिता की विकलता देखकर समझ लिया कि ये वन दे चुके । मुख से कहने में इन्हें कष्ट होगा । अतः वहाँ से माता के पास चल पडे ।

अभी तक यह बात नगर में फैली ही नहीं थी । पर अब रुक न सकी । तीखी बात होने के कारण सारे नगर में फैलते देर न लगी । जैसे वीछी छू जाने से सारे शरीर में व्याप्त हो जाती है । वीछी नाम का वृक्ष उत्तराखण्ड में होता है । उसके छू जाते ही सारे शरीर में तीव्र वेदना के व्याप्त होते देर नहीं लगती । वीछू यदि डङ्क मारे तो भी ऐसा ही होता है । पर उसके छू जाने से कुछ नहीं होता ।

सुनि भये विकल सकल नरनारी । वेलि बिटप जिमि देखि दवारी ॥
जो जहं सुनइ धुनइ सिरु सोई । बड विपादु नहि धीरजु होई ॥४॥

अर्थ सुनकर सब नरनारी विकल हो गये । जैसे दावाग्नि देखकर वृक्ष और लता विकल हो जाते हैं । जो जहाँ सुनता है सिर पीटने लगता है । विपाद बड़ा भारी है । धैर्य होता ही नहीं ।

व्याख्या भगवान् मनु कहत है कि पेड अन्त सज होते हैं । उनमें भीतर ज्ञान होता है । महाभारत में युक्तिप्रदशनपूर्वक कहा गया है तस्मात् पश्यन्ति

पादपा । तस्मात् शृण्वन्ति पादपा । पेड देखते हैं । पेड सुनते है । वन मे आग लगी हुई देखकर लता और वृक्ष विकल हो जाते है । उसी भाँति रामजी का वनवास सुनकर नरनारी विकल हो उठे । समाचार के फैलने की शीघ्रता मे बीछी की उपमा दी । पर बीछी मे शारीरिक वेदना प्रधान है । यहाँ तो सबको रामजी को वनवास होगा यह सुनकर मानसिक वेदना हुई । दावानल देखकर हम भी जलेंगे । इस भय से बेलि विटप को मानसिक वेदना होती है । अतः यह दूसरी उपमा देनी पड़ी ।

अब उस मानसिक वेदना का शरीर पर प्रभाव दिखलाते हैं कि जब बड़ा विपाद होता है . धैर्य नही बँधता तो आदमी अपना सिर पीटने लगता है । यहाँ अयोध्या मे सबकी यही दशा है । जो सुनता है सो रामविरहाग्नि से व्याकुल होकर सिर पीटने लगता है ।

दो मुख सुखाहि लोचन स्रवहि, सोकु न हृदय समाइ ।

मनहुँ करुन रस कटकरि, उतरी अवध बजाइ ॥४६॥

अर्थ मुख सूखता है । आँख से आँसू बहता है । शोक हृदय मे समाता नही । मानो करुणा रस की फौज डड्डा बजाकर अयोध्या मे उतर पड़ी है ।

व्याख्या . जब शोकाग्नि हृदय मे जलती है तब मुख सूखता है । आँख से आँसुओं की धारा वह निकलती है । असह्य शोक मे ऐसा होता है । अयोध्या मे नरनारियों की यही दशा है । मालूम होता है कि ये करुणा रस की सेना के योद्धा लोग हैं । सम्पूर्ण अयोध्या मे फैले हुए अपना पराक्रम दिखलाकर कब्जा कर रहे हैं ।

मिलेहि माँझ विधि बात विगारी । जहँ तहँ देहि कैकइहि गारी ॥

एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥१॥

अर्थ मेल के बीच मे ही ब्रह्मा ने बात विगाड दी । जहाँ तहाँ कैकेयी को गालियाँ दे रहे हैं । इस पापिनी को समझ क्या पडा । जो घर को छाकर उसके ऊपर आग रख दिया ।

व्याख्या इस राजकुल मे ऐसा मेल था कि बात विगडनेवाली थी ही नही । यह ब्रह्मा की ही करामात है कि जहाँ कभी फूट न हुई वहाँ एकाएक बात विगड गयी । फिर भी निमित्त कैकेयी हुई है । अतः जहाँ तहाँ लोग नि शङ्क होकर कैकेयी को गालियाँ देते हैं ।

कहते हैं कि यह पापिनी है । इसे इस काम मे कौन सा लाभ दिखाई पडा । यह तो घर की छानेवाली थी । पुनि अस कबहुँ कहसि घरफारी । तब धरि जोभ बढ़ावौ तारी । कबहुँ न कियउ मवति आरेसू । आदि से लेकर आजतक इसने घर को छाया । कुटुम्ब मे विरोध नही होने दिया । जब सब ठीक हो गया तो छाये हुए घर पर रामविरह रूपी अग्नि रख दी । यथा सहि न मवे रघुवर विरहागी । चले लोग सर व्याकुल भागी ।

वारिधि अनुकूल। काल की भाँति यथा : लागेउ तोहि पिसाच जिमि काल
कहावत मोर। इसीलिए साध्वी स्त्री स्वातन्त्र्य को अपना अभिग्रह मानती है।
स्थूलदर्शी इस बात को नहीं देख सकते। कवि सूक्ष्मदर्शी होते हैं। इसलिए लोग
कवियों का प्रमाण देकर बोल रहे हैं।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहि भलु भूप न कीन्हा। वरु विचारि नहि कुमतिहि दीन्हा ॥१॥

अर्थ : क्या सुनाकर ब्रह्मा ने क्या सुनाया। क्या दिखलाकर अब क्या
दिखलाना चाहते हैं। एक कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया जो इस कुबुद्धि
को विचार करके वर नहीं दिया।

व्याख्या : यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मदेव के सकल्प से ही उत्पन्न हुआ है और चल रहा
है। अतः जो कुछ इसमें होता है सबके मूल में ब्रह्मदेव का सङ्कल्प है। अतः वे ही
मुरय कर्ता हैं। जो कल्याण सुना गया अर्थात् रामजी का अभिप्रेत : वह भी
विधाता के ही कारण से सुना गया और अब जो रामजी का वनवास सुन रहे हैं
वह भी उन्हीं की करतूत है। दिखलाया तो यह कि बाज गहागह अवध बधावा और
अब उसी अवध में आतनाद देखने की वारी आ रही है।

छ. प्रकार के विचार के लोग अवध में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वे लोग आपस
में अपना अपना विचार प्रकट कर रहे हैं। १ अर्थशास्त्री बोले कि राजा ने अच्छा
नहीं किया। सुबुद्धि कुबुद्धि का विचार करके वर देना चाहिए। देखो कुबुद्धि ने कैसा
बुरा वर माँगा।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गाजनु ॥
एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहि दोषु नहि देहि सयाने ॥२॥

अर्थ : जो हठ पूर्वक सम्पूर्ण दुःख के पात्र हो गये। स्त्री के वश में हो जाने
से मानो राजा के सब ज्ञान और गुण ही चले गये। एक सयाने धर्म की मर्यादा के
जाननेवाले राजा को दोष नहीं देते थे।

व्याख्या : राजा को दुःखी होने की कोई बात नहीं थी। अब इस कारण से
व्यर्थ दुःख के भाजन बन रहे हैं। उन्हें अपने वचन पर हठ न करना चाहिए। ऐसा
विवेकी और गुणी राजा : धर्म धुरधर नृपरिपि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारंग
पानी : सो स्त्री के वश में पड़ा हुआ मानो अपने सब ज्ञान और गुणों को खो बैठा
है। यह इससे कहते नहीं बन रहा है कि मैं राजा हूँ। अन्याय नहीं कर सकता।
किस अपराध से राम को वन दें।

२. धर्म की मर्यादा के जाननेवाले धर्मशास्त्री सयाने लोग कहते हैं कि इसमें
राजा का कोई दोष नहीं है। संग्राम में सहायता के समय उन्होंने दो वर माँगने को
कहा था। वे ही वर याती की भाँति राजा के पास पड़े थे। आज इस दुष्ट ने उन्हीं

प्यारो से काम लिया । ये नर्म मे मांगे हुए वर नहीं हैं जिससे राजा को दोषी कहा जा सके ।

सिवि दधीचि हरिचंद कहानी । एक एक सन कहहि बखानी ॥

एक भरत कर समत कहही । एक उदास भाय सुनि रहही ॥३॥

अर्थ : शिवि दधीचि और हरिचन्द्र की कहानी एक एक से बखान कर कहते हैं । कोई भरत की सम्मति कहते हैं और कोई उदासीन होकर रह जाते हैं ।

व्याख्या : उन धर्मशास्त्रियों का कहना है कि धर्म के निर्वाह में तो दुःख होता ही है । यहाँ तो दुःख की जितनी ही तोब्रातितीव्र मात्रा हो उतना ही धर्म का उत्कर्ष है । राजा शिवि शरणागत कपोत के लिए अपना मास काटकर तौलते गये और वह कपोत भारी होता ही गया पर राजा अपना मास काटने से विरत नहीं हुए । दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दे डाली । हरिचन्द्र ने अपना राज्य दिया । स्त्री बच्चे को बेंच दिया । स्वयं डोम के हाथ विक गये । पर अपने धर्म से न हटे । यही महाराज के धर्म की परीक्षा का समय है । इसमें उनका दोष क्या है ?

३ तीसरे प्रकार के कुछ लोग कूटनीतिज्ञ ऐसे हैं कि इसमें भरत की चाल देखते हैं कि माँ को सिखा पढाकर आप ननिहाल बैठे हुए हैं । चौथे ज्ञानी महात्मा हैं जो उदासीन हैं कुछ भी नहीं कहते ।

कान मूँदि कर रद गहि जीहा । एक कहहि यह बात अलीहा ॥

मुकृत जाहि अस कहत तुम्हारे । रामु भरत कहै प्रानपियारे ॥४॥

अर्थ : कान मूँदकर और जीभ को दाँत से दाबकर कोई कहते हैं कि यह बात झूठ है । तुम्हारे ऐसा कहने से पुण्य का क्षय होगा । राम तो भरत को प्राण से प्यारे हैं ।

व्याख्या : पाँचवे प्रकार के लोग भगवद् भक्त हैं । ये ऐसी बात सुनना नहीं चाहते । इसलिए कान मूँद लेते हैं और दूसरे को भी ऐसी बात बहने से निषेध करते हैं । इसलिए दाँत तले जीभ दबाते हैं और कहते हैं कि यह बात निर्मूल है । निर्दोष पर दोषारोपण करने से पुण्य का क्षय होता है । सो क्यों व्यर्थ अपने पुण्य का क्षय करते हो । ससार राज्य सुख तो अपने प्यारों के लिए ही चाहता है और भरत को राम प्राण से प्यारे हैं । उनके अभिप्रेत में भरत बाधक क्यों होंगे ?

दो. चंदु चवइ वरु अनल कन, सुधा होइ विष तूल ।

सपनेहुँ कबहुँ न करहि किछु, भरतु राम प्रतिकूल ॥४८॥

अर्थ : चाहे चाँद में से आग के कण गिरें चाहे अमृत विष हो जाय पर सपने में भी भरत राम के प्रतिकूल कुछ भी नहीं कर सकते ।

व्याख्या : चन्द्रमा हिमकर है । हिमकण का स्राव करते हैं । वे चाहे अग्निकण का स्राव करने लगें । उनके स्वरूप में इतना बड़ा वैषम्य उपस्थित हो जाय और

अमृत विष तुल्य हो उमका स्वभाव ही पलट जाय, पर भरत के स्वरूप और स्वभाव मे अन्तर नहीं पड सकता । यथा भरत सुभाउ सुसीतलताई । सदा एकरम वरनि न जाई । सो भरतजी रामजी ने प्रतिकूल सपने म भी नहीं हो सकते जाग्रत की कौन चलावे ।

एक विधातहि दूपनु देही । सुधा देखाइ दीन्ह विपु जेही ॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू । दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥१॥

अर्थ कोई ब्रह्मा को दोष देते हैं जिसने अमृत दिखलाकर विष दिया । नगर मे खलबली मच गयी । सबको सोच हो गया । हृदय म नहीं सहने योग्य दाह पैदा हो गया । उछाहू जाता रहा ।

व्याख्या यह छठा प्रकार कमवाण्डियो का है । यह सीधे सीधे विधाता को दोष देते हैं । दिखाकर न देना दोष है और अमृत दिखाकर विष देना तो बड़ा ही कराल कर्म है । यथा सुनिअ सुधा देखिअ गरल सब करतूति कराल । रामराज्या भिषेकात्सवरूपी अमृत विधाता ने दिखलाया । दिखलाकर न देते । रामजी का अभिषेक न होता यही बहुत था । उनको वनवास रूपी विष दिया जा रहा है ।

विष दिये जाने पर जो खलबली मचती है वह मची । सबको सोच है कि इस विष से रक्षा कठिन है । विष काम भी करने लगा । हृदय म जलन उत्पन्न हो गयी । सबके हृदय म उत्साह था । यथा सुनत राम अभिषेक सोहावा । बाज गहागह अवध वधावा । सो उछाहू मिट गया ।

विप्रबधू कुलमान्य जठेरी । जे प्रिय परम कैकेयी केरी ॥
लगी देन सिख सीलु सराही । वचन वानसम लागहि ताही ॥२॥

अर्थ ब्राह्मणों की स्त्रियाँ कुल की मान्य बड़ी बूढ़ी जो कैकेयी को परमप्रिय थी उसके शील की प्रशंसा करती हुई समझाने लगी । पर वे वचन उस बाण जैसे लगते थे ।

व्याख्या ब्राह्मणों की स्त्रियाँ जिन्हे अति पूज्य दृष्टि से रानी कैकेयी सदा देखती थी कुल की मान्य ननद फूफी आदि जठेरी जैठानी चचियासास आदि जा कैकेयी का परमप्रिय थी जब उन लागा ने यह समाचार सुना तो अपना जोर समझकर कैकेयी के पास पहुँची और उसक शील की स्तुति करके समझाने लगी । पर समझना तो दूर रहा उनक वचन उस बाण क समान लगने लगे । उसने समझा कि ये ठकुरसोहाती करनेवाली आगयी । य सब शत्रु की ओर मिली हुई है । मेरे शील की सराहना इसलिए हो रही है कि मैं इनकी वाता म आकर अपने ध्येय स हट जाऊँ । ये एक बात भी मेरे हित की नहीं कह रही हैं । जिसमे कौसल्या का भला हो वही कह रही हैं । अतः वे वचन उस बाण से लगते थे ।

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना । सदा कहहु येहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहज स्नेह । केहि अपराध आजु वनु देह ॥३॥

अर्थ : राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं सदा यह कहती आयी हो और ससार इस बात को जानता है । रामजी पर तुम स्वाभाविक स्नेह करती हो तो आज किस अपराध पर वन दे रही हो ।

व्याख्या : अब ममज्ञाने का प्रकार कहते हैं । वे सब कहने लगी कि तुम तो सदा कहती रही कि राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं । तुम्हारा बलवि भी राम के साथ वैसा ही था । इसलिए मंसार में यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि महारानी केकेयी बेटे से अधिक रामजी को मानती हैं । सो क्या वह कहना और वह वर्तवि मिय्या था ? तुम्हारा स्नेह रामजी पर बनावटी था । यह तो हम लोग मान नहीं सकती । सो स्वाभाविक स्नेह में हठात् इतना बड़ा परिवर्तन क्यों ? बिना कारण कार्य नहीं होता । अपराध से ही स्नेह में कमी आती है । इतने दिनों तक तो मंत्र ठोक चला । आज जो वन दे रही हो सो किस अपराध पर ? हम लोग भी सुनें कि राम ने यह अपराध किया है । जगत् भी जाने नहीं तो निरपराध को दण्ड देने का दोषी मंसार तुम्हें समझेगा ।

कवहु न कियहु सवतिआ रेसू । प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
कौमल्याँ अब काह बिगारा । तुम्ह जेहि लागि वज्र पुर पारा ॥४॥

अर्थ : तुमने कभी सौतियाडाह नहीं की । तुम्हारी प्रीति और विश्वास को सारा देश जानता है । कौमल्या ने अब क्या बिगाडा जिसके लिए तुम सारे नगर पर वज्र दहा रही हो ।

व्याख्या : कुछ उत्तर न मिलने पर उन लोगों ने सोचा कि रामजी से कोई अपराध नहीं हुआ । सौत का स्वभाव है दूमरी के पुत्र की बढोतगी नहीं देख सकते । पर यहाँ तो यह बात कभी नहीं थी । अतः कहती है कि तुमने तो आज तक सौतियाडाह नहीं किया । तुम्हारे में और कौमल्या से जैसी प्रीति प्रतीति है वैसी मौनों में कही देखी नहीं जाती । यह बात ससार जानता है । रामजी को युवराजपद महाराज देते थे । उसमें कौमल्या का क्या दोष है ? सो तो अब होगा नहीं । अब तो भरत युवराज होंगे । बात समाप्त हो गयी । अब जो राम को वन भेज रही हो यह तो कौमल्या को दण्ड देना है । तुम्हारे विवाह में कौमल्या बाधक नहीं हुई । हवि विभाग में बाधक नहीं हुई । तुम्हारे बढ़ते हुए अधिकार में बाधक नहीं हुई । जत्र विगाड करने का समय था तब विगाड नहीं किया । अब कौमल्या ने क्या बिगाडा जो कहती हो : जम कौमिलाँ मोर मन् तावा । तम फलु तिनहि देउँ वरि सावा । तुम तो चली हो कौमल्या को दण्ड देने सो वह दण्ड कौमल्या पर ही भीगित न रहकर सम्पूर्ण प्रजामण्डल पर गिरेगा । सम्पूर्ण प्रजा पर दण्ड क्यों गिरा रही हो ?

दो सीय कि पिय संगु परिहरिहि, लखनु कि रहिहहि धाम ।

राजु कि भूँजव भरत पुर, नृपु कि जिअहि विनु राम ॥४९॥

अर्थ सीता क्या पति का सग परित्याग करेगी ? लक्ष्मण क्या घर रहेगे ? भरत क्या पुर का राज्य भोगेंगे ? राजा क्या बिना राम के जीवेंगे ?

व्याख्या सीता कुलवधू है वह निश्चय रामजी के साथ वन चली जायगी । क्या यह भी तुम्हे स्वीकार है ? लक्ष्मण का भी इतना प्रेम है कि वे भी घर नहीं रहेगे । क्या यह भी तुम्हे इष्ट है ? वह सकती हो कि भरत तो राजा होंगे । भरत के राज्य के लिए मैं सब करती हूँ । पर प्रश्न तो यह है कि क्या ऐसी अवस्था में भरत राज्य स्वीकार करेंगे ? हम कहती है कि कभी नहीं करेंगे । रामजी रहते तो कदाचित् भरत स्वीकार भी करते । अतः राम को वन भेजकर तुम अपने मुख्य इष्ट का नाश कर रही हो और सबसे बड़ा अनिष्ट तुम्हारे लिए यह होगा कि महाराज बिना राम के न जीवेंगे । इतना बड़ा अनर्थ तुम्हारे हाथ से हुआ चाहता है ।

अस विचारि उर छाडहु कोहू । शोक कलक कोठि जनि होहू ॥

भरतहि अवसि देहु जुवराजू । कानन काह राम कर काजू ॥१॥

अर्थ ऐसा विचारकर क्रोध छोड़ दो । शोक और कलक की कोठी न बनो । भरत को अवश्य युवराज पद दो । पर राम का वन में क्या काम है ?

व्याख्या तुम्हारे क्रोध के भयानक दुष्परिणाम होंगे । भरत के राज देने में अर्थ कारण है । पर राम के वन देने में तो क्रोध कारण है । उसके वश होकर शोक और कलङ्क की निधान अपने को क्यों बनाती हो । राम के वन देने से तुम्हे असाधारण कलङ्क लगेगा और जब इस भाँति मिल हुए राज्य को भरत अस्वीकार कर देंगे महाराज बिना राम के प्राण त्याग करगे तब तुम शोक की कोठी होओगी ।

राम को वन भेजकर अव्यापारेपु व्यापार क्यों करती हो ?

नाहिन रामु राज के भूखे । धरम धुरीन विषय रस रूखे ॥

गुरु गृह वसहु रामु तजि गेहू । नृप सन अस वरु दूसर लेहू ॥२॥

अर्थ रामजी राज के भूखे नहीं हैं । वे धर्म के धुरा के बहन करनेवाले हैं । विषय रस से रूखे हैं । रामजी घर छोड़कर गुरुजी के घर रहे । तुम राजा से यह दूसरा वर लो ।

व्याख्या यदि कहो कि भरत वे राज्य में रामजी बाधक होंगे तो रामजी को सब जानते हैं । उन्हें राज की भूख नहीं है । राज्य की चाह उसे होती है जिसे विषय लिप्सा होती है जो राज धर्म के गौरव को नहीं जानता । रामजी तो सदा विषय रस से रूखे हैं वे धर्मधुरीण हैं । जानते हैं कि राजधर्म का निर्वाह कठिन है । उन्हें राज्य की भूख हो नहीं सकती ।

पर तुम्हे भूख है । तुम्हारे मन में शका हो सकती है । तो राजा से दूसरा

वर मांग लो कि राम घर मे न रहे । वे जाकर गुरुजी के घर रहे । गुरुजी की दृष्टि दिन रात उन पर रहेगी । फिर उनसे कोई भय का कारण न रह जायगा । लोग भी समझेंगे कि केवल भय से रानी ने रामजी को इस दृश्य से पृथक् कर रक्खा है । भरत के राज्य स्वीकार मे भा अधिक कठिनता न होगी । महाराज के प्राण भी बच जायेंगे ।

जौ नहि लगिहहु कहे हमारे । नहि लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ॥
जौ परिहास कीन्हि कछु होई । तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥३॥

अर्थ यदि तुम हम लोगो का कहना न मानोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ न लगेगा । यदि तुमने हँसी की हो तो उसे प्रकट करके कह दो ।

व्याख्या रुख देखकर सखी कहती है कि यदि तुमने हमारा कहना न माना अपनी बात पर ही अड़ी रह गयी कि रामजी वन जायँ तो तुम्हारे हाथ सिवा शोक कलङ्क के और कुछ न लगेगा । कभी भरत राज्य स्वीकार नहीं करेंगे । राजमाता का स्वप्न झूठा हो जायगा । सखी है बात सुधारने के लिए अवसर देती है कि यदि तुमने सचमुच हँसी की हो क्योंकि हँसी मे ही ऐसी निष्कारण बात बही जाती है तो बात अब हँसी की सीमा को उल्लंघन कर रहो है । स्पष्ट कह दो कि यह तो हमने हँसी की थी ।

राम सरिस सुत कानन जोगू । काह कहिहि सुनि तुम्हे कहूँ लोगू ॥
उठहु वेगि सोइ करहु उपाई । जेहि विधि सोकु कलकु नसाई ॥४॥

अर्थ क्या राम ऐसा बेटा वन के योग्य है । लोग सुनकर तुम्हे क्या कहेंगे । उठो जल्दी से वही उपाय करो जिस विधि से शोक कलङ्क नष्ट हो ।

व्याख्या बेटा वन मे भेजने की वस्तु नहीं है । छोटे बेटे को भी कोई वनवास नहीं देता । फिर रामजी ऐसा बेटा वनवास के योग्य कैसे है ? भला, जो सुनेगा वह तुम्हे क्या कहेगा ?

जब सखियो ने देखा कि यह टस से मस नहीं होती तब कहती है वैठी क्या हो । उठो, बैठने से काम नहीं चलेगा । अब तुम्हे विगड़ी बात के बनाने मे परिश्रम करना पड़ेगा । शोक और कलक तुम पर आ पडा । तुम बड़े दुःख मे पड गयी । तुम्हे सूझता नहीं है ।

छ जेहि भाँति सोकु कलकु जाइ, उपाय करि कुल पालही ।
हठि फेरु रामहि जात वन, जनि बात दूसरि चालही ॥
जिमि भानु विनु दिनु प्रान विनु तनु चदु विनु जिमि जामिनी ।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु विनु समुझि धौ जिय भामिनी ॥

अर्थ जिस भाँति शोक और कलङ्क मिटे वैसा उपाय करके कुल की रक्षा

कर लो । राम को वन जाने से हठ करके लौटाओ । दूसरी बात मुख से न निकालो । जैसे बिना सूर्य का दिन बिना चाँद की रात बिना प्राण का देह तुलसीदास के प्रभु के बिना अवध भी वैसा ही है । हे भामिनि मन म विचारो ।

व्याख्या सखी कहती है कि हम जा कहती है उतना ही नहीं । जिस उपाय से शोक बलङ्क मिटे साईं उपाय करो । कुल का नाश होना चाहता है उसे बचा लो । कदाचित् राम न फिरे तो उन्हें हठ करके लौटाओ । रामजी चल पड़े । उनका लौटना सरल नहीं है । चली जाओ कौसल्या के महल में दोनों माताएँ मिलकर रामजी को जाने से रोकें ।

अवधपुरी सोहावनी मङ्गलमय और पावनी है । सो भयावनी अमङ्गलमय और अपावनी हो जायगी । जैसे चाँद बिना रात भयावनी, सूर्य बिना दिन अपावन, प्राण बिना तन अमङ्गलमय, वही दशा अवध की बिना राम के हो जायगी । भली भाँति मन में समझ लो ।

सो सखिन्ह सिखावनु दोन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित ।

तेहि कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥५०॥

अर्थ सखियों ने ऐसी सीख दी जा सुनने में मधुर और परिणाम में हित हो । पर उसने एक न सुना । उसे कुटिल कूबरी ने मिखा पढाकर पक्का कर रक्खा था ।

व्याख्या • कठोर शब्दों में कहे गये हित शब्द का भी आदर किया जाता है । सखियों ने तो बहुत मधुर शब्दों में कहा । नहीं सुनने का कोई कारण नहीं था । पर कैकेयी ने एक न सुना । क्योंकि उसे कुटिल कूबरी ने समझा रक्खा था कहहि झूठ फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुमहि । कैकेयी ने समझ लिया कि आगयी प्रिय बनाकर झूठी बातें कहनेवाली । उसने कहा था काज सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु । सो कैकेयी अपने समझ में सजग होकर काम सँवार रही थी । उन्हें अब सखियों पर विश्वास नहीं रह गया ।

उतरु न देइ दुसह रिसि रुखी । मृगिन्ह चितव जनु बाधिनि भूखी ॥

व्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी । चली कहत मतिमद अभागी ॥१॥

अर्थ • दुसह क्रोध से रुखी हो गयी है । जवाब नहीं देती और इस भाँति दग्न रही है मानो भूखी बाधिन मृगी को देखती हो । असाध्य रोग जानकर उन्होंने उसे छाड़ दिया और मतिमन्द अभागी कहती हुई चली गयी ।

व्याख्या • है तो सदा की शीलवती । पर इस समय उसे इतना क्रोध है कि बेकाबू हो रही है । शील का वही नाम नहीं है । अति रुक्ष व्यवहार करती है । यह भी नहीं कि उनकी ओर देगती न हो । निर्निमेष नेत्र से देव रही है । पर चितवन में क्रोध भरा हुआ है । ऐसा मातूम पड़ रहा है कि किस समय टूट

व्याधिग्रस्त पुरुष लम्बी सासैं लेता है । यही गति प्रजा की हो रही है । वह कहती है कि राम के बिना जीवन की क्या आशा है । भाव यह कि इस विषमज्वर की दवा केवल राम है ।

सब विधि सब पुरलोग सुखारी । रामचद मुखचद निहारी । अत रामजी का वियोग सब वियोगो से अधिक है । जैसे जलचर के लिए जल का वियोग तो सीधे सीधे प्राण का ही वियोग है । पानी सूखने लगा तब सम्पूर्ण जलचरो का व्याकुल हो उठना स्वभावसिद्ध है । जिस भाँति जलचर के लिए पानी है उसी भाँति प्रजा के लिए रामजी है । उनका वियोग जितना निकट आता जाता है । उसनी ही प्रजा की व्याकुलता बढ़ रही है ।

अति विपाद बस लोग लोगार्ई । गये मातु पहि रामु गोसाई ॥

मुख प्रसन्नु चित चौगुन चाऊ । मिटा सोचु जनि राखइ राऊ ॥४॥

अर्थ • स्त्री पुरुष तो सब विपादवश हैं और रामजी माँ के पास गये । मुख प्रसन्न है । चित्त में चौगुना आनन्द है । राजा रोक न लें यह सोच भी मिट गया ।

व्याख्या • जिसके वनगमन के समाचार से स्त्री पुरुष इस भाँति विपाद वश हो रहे हैं । उन्हें वनगमन में लाभ ही लाभ दिखाई दे रहा है । चार लाभ गिनाये हैं १ मुनिगन मिलनु विसेषवन सर्वाहि भाँति हित मोर २ तेहिमहँ पितु आयसु ३ बहुरि समत जननी तोर और ४ भरत प्रान प्रिय पावहि राजू । इसलिए चित्त में चौगुना आनन्द है । आनन्द मन में होने से मुखपर प्रसन्नता के चिह्न आ ही जाते हैं । माता के कहने पर यह सोच रहा कि कहीं महाराज रख न ले । पर अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा । भूप सोक बस उत्तर न दोन्हा । राजा के शोकवश होकर उत्तर न देने का अर्थ ही यही है कि राजा ने मन से बन दे दिया । अत महाराज के रोक लेने का जो सोच रहा वह भी जाता रहा ।

दो नव गयंदु रघुवीर मनु, राजु अलान समान ।

छूट जानि बन गवनु सुनि, उर अनदु अधिकान ॥५॥

अर्थ • रामजी का मन नये गजराज के समान है । राज्य बन्धन के समान है । छूटा हुआ जानकर वनगमन सुनने से हृदय में आनन्द अधिक हो उठा ।

व्याख्या • बूढ़ा गजेन्द्र छूटने पर भी बन नहीं जाता । घूम फिरकर हाथीखाने में ही आ जाता है । वह स्वातन्त्र्य के सुख को भूले हुए है । पर नये गजेन्द्र को स्वातन्त्र्य का सुख याद है । उसे मलीदा अच्छा नहीं लगता । वह बन्धन से लाचार होकर स्वातन्त्र्य सुख से वञ्चित है । इसी भाँति रामजी का मन है । वह नवगजेन्द्र की भाँति स्वच्छन्द विचरना चाहता है । राज्य उसे बन्धन मालूम हो रहा है । उससे वह सुखी नहीं है । यद्यपि नवगजेन्द्र बँधने पर भी मस्त ही रहता है । पर यदि बन्धन छूट जाय तो और भी आनन्दित हो उठता है । उसी भाँति आत्माराम पूर्ण

काम राम सहज आनन्द निधान हैं । पर गमन सुनने से उनका आनन्द बढ गया कि चलो इस राज बन्धन से छुट्टी मिली ।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातु पद नायउ माथा ॥

दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे । भूपन वसन निछावरि कीन्हे ॥१॥

अर्थ : रघुकुलतिलक रामजी ने दोनो हाथ जोडे हुए प्रसन्न होकर माँ के चरणो में सिर नवाया । माँ ने आशीर्वाद दिया । हृदय से लगा लिया और गहना कपडा निछावर किया ।

व्याख्या - सरकार स्वयं ही रघुकुल के तिलक रूप है । इन्हे तिलक की आवश्यकता नहीं । वनगमन के निश्चय से बडे प्रसन्न हैं । उसी प्रसन्नता में दोनो हाथ जोडकर माँ के चरणो में प्रणाम किया । माँ ने समझा कि तिलक होने जा रहा है । अतः प्रसन्न हैं । आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए प्रणाम करने आये हैं । माता परम प्रसन्न हो उठी । प्रेम उमड आया । आशीर्वाद देती है । रामजी अतिप्रिय हैं इससे हृदय से लगाती हैं । अभिषिक्त होने जा रहे हैं इसलिए गहना कपडा निछावर करती हैं ।

वार वार मुख चुवति माता । नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥

गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए । स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ॥२॥

अर्थ माँ वार वार मुख चूम रही है । आँखो में प्रेमाश्रु भरा हुआ है और शरीर में पुलक हो रहा है । गोद में बिठाकर हृदय से लगाया । सुन्दर स्तनो से प्रेमरस बहने लगा ।

व्याख्या नृप रानी परिजन मुकुट मधुकर बारि विहग । राजा और रानी का पुण्य भ्रमर है उसे रामजी के मुख कमल के रसास्वादन का अधिकार है । यद्यपि रामजी की उम्र इस समय सत्ताइस वर्ष की है । फिर भी माता का प्रेम वैसा ही है जैसे छोटे बच्चो पर होता है । वह वार वार मुख चूमती है । सात्त्विक भाव का उदय हुआ है । आँखो में आँसू भरे हुए हैं और देह में पुलकावली छापी हुई है । गोद में रामजी को बिठाती हैं और फिर से हृदय लगा रही हैं । सुन्दर स्तनो से प्रेम के मारे दूध बह चला । वात्सल्य भाव के अधिक बढ जाने से असमय में भी माता के स्तनो में दूध आ जाता है । इसीलिए गोस्वामीजी ने उसे प्रेमरस कहा ।

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई । रकु धनद पदवी जनु पाई ॥

सादर सुदर वदनु निहारी । बोली मधुर वचन महतारी ॥३॥

अर्थ : प्रेम और आनन्द का कुछ वर्णन नहीं हो सकता । मानो किसी दरिद्र को कुवेर की पदवी प्राप्त हो गयी हो । आदर के साथ सुन्दर मुख का अवलोकन करके माँ ने मीठे वचन कहे ।

व्याख्या दृष्टजन्य भोग को प्रमोद कहते हैं । उस समय जैसा प्रेम और प्रमोद

माँ को हुआ उसका क्या वर्णन किया जाय । मानो दरिद्र को कुबेर का पद मिल गया । धनविहीन को ही दरिद्र कहते हैं । उसे धन मिलना दुर्लभ है । ऐसे को कुबेर का पद यदि मिल जाय अर्थात् नवो निधियाँ उसे प्राप्त हो जायँ जिसे वह जितना चाहे उसे उतना धन दे सके तो उस समय उसे जो आनन्द होता है वह वर्णनातीत है । यही दशा कौसल्या माता की हुई । इन्हे सब कुछ रहते हुए भी पुत्र नहीं था । पुत्र मुख दर्शन दुर्लभ था । सो इन्हे राम सा पुत्र मिला । अब रामजी का राज्याभिषेक होने जा रहा है । यह प्रसन्नता रत्न के धनदपद प्राप्ति के समान है ।

कहहु तात जननी बलिहारी । कबहि लगन मुद मगलकारी ॥
सुकृत सील सुख सीव सुहाई । जनम लाभ कइ अवधि अघाई ॥४॥

अर्थ बेटा । माता बलैया लती है । कहो कब वह आनन्द और मगल करने वाला लगन है जो कि पुण्यशील के सुख की सीमा है और जन्म क लाभ की पूरा अवधि है ।

व्याख्या शुभकार्य शुभ लगन में ही होते हैं । यहाँ लगन का किसी को पता ही नहीं । लोग एक दूसरे से पूछते हैं कबहि लगन मुद मगलकारी । यहाँ तक कि माता कौसल्या को भी पता नहीं । वे राम जी से पूछती हैं कि वह मुद मगलकारी लगन क्या है ? बात यह हुई कि गुरुजी ने लगन बताया नहीं कह दिया कि जब राम युवराज हो तभी शुभ लगन है । वह लगन इतनी प्रिय है कि माता उसे सुकृत सील के सुख की सीमा कहती है । जिस लगन में रामजा का तिलक हो माता के लिए वही लगन सुकृत सील के पुण्य की सीमा है और वही जन्मलाभ की पूरी अवधि है । यथा राम बाम दिसि सोहति रमारूप गुन भानि । देखि मातु सय हरखो जन्म सुफल निज जानि ।

दो जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत एहि भाँति ।

जिमि चातक चातकि तृपित, वृष्टि सरद रितु स्वाति ॥५२॥

अर्थ जिसे सभी स्त्री पुरुष अतिआर्त होकर इस तरह चाहते हैं जैसे प्यासे चातर और चातकी शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा को चाहते हैं ।

व्याख्या जैसे महाराज को सब नगर का वृत्तान्त दूता द्वारा मालूम रहता है उसी भाँति महारानी कौसल्या का भा दूतियों द्वारा सब नगर का वृत्तान्त मालूम है । वे जानती हैं कि प्रजावग भी रामजी के तिलक के लिए आत है । अतः कहती है कि तुम्हारा तिलक मेरे लिए तो जन्मलाभ की अवधि है ही पर सारा प्रजा नरनारी सब पपीहा का तरह शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा का बाट जोह रहे हैं । स्वाती के बूँद के लिए ही पपीहा तृण्यता है । बाग़्द महीने से उसी के लिए रट लगाये रहता है । यहाँ ता बारह वर्ष से प्रजा उसी लगन की प्रतीक्षा कर रही है जिसमें तिलक होनेवाला है ।

तात जाऊँ बलि वेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
पितु समीप तब जायेहु भैया । भइ वड़ि वार जाइ बलि मैया ॥१॥

अर्थ : बेटा । मैं बलैया लेती हूँ । जल्दी से नहा डालो । जो मनमे भावे सो मिठाई थोड़ी सी खालो तब पिता के पास जाना । बहुत देर हो गयी है । माँ बलैया लेती है ।

व्याख्या : तुम्हे अभिप्रेक के लिए जाना है । कल से सयम मे हो इसलिए जल्दी से नहाकर कुछ मीठा खालो । अभिप्रेक मे बहुत देर लगेगी कब तक भूखे रहोगे । यदि सयम मे हो तो अन्न न खाओ । मीठा खाने मे तो कोई दोष नही है । अतः कलेवा करने के बाद पिता के पास जाना । दिन चढ आया । अभीतक तुमने कुछ खाया नही । इतना कहने पर भी अभिरुचि न देखकर कहती है कि मैं बलैया जाती हूँ । कुछ खा लो ।

मातु वचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुरतरु के फूला ॥
सुख मकरन्द भरे श्रियमूला । निरखि राम मनु भँवरु न भूला ॥२॥

अर्थ : माता के अति अनुकूल वचन सुन करके जो कि स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल की भाँति सुगन्धी मकरन्द से भरे हुए और शोभा के मूल थे, रामजी का मन जो कि भ्रमर सा है देखते हुए भी नही भूला ।

व्याख्या . भौरा पुष्परस . मकरन्द का रसिक है । वह उसके सुगन्ध से आवृष्ट होकर उसके पास पहुँच जाता है और रस लेने मे मुग्ध हो जाता है । ऐसा ही रामजी का मन है । यह प्रेम का बड़ा रसिक है । जहाँ प्रेम देखता है वहाँ रस के आस्वादन के लिए पहुँच जाता है । यथा . मुनि मानस पक्कज भृग भजे और उम रसास्वादन मे अपने को भूल जाता है । पर यहाँ तो माता के वचन ऐसे अनुकूल थे मानो वे स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल हैं । सुखरूपी मकरन्द से भरे हुए हैं और शोभा के मूल हैं । उसे देखते हुए भी वही मकरन्द रसिक रामजी का मन आज अपने को भूलता नही है । उसे कर्तव्य विस्मृति नही हो रही है ।

भावार्थ यह प्रभु भाव ग्राहक अति वृपाल सुप्रेम ते सुख मानही और माता का वचन दिव्य प्रेम से भरा हुआ है । उम प्रेम को देखते हुए भी आज उस ओर आवृष्ट नही हो रहे हैं । किसी भाँति कर्तव्य पथ से विचलित नही होना चाहते ।

धरम धुरीन धरम गति जानी । कहुउ मातु सन अति मृदु वानी ॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर वड़ काजू ॥३॥

अर्थ : धर्मधुरन्धर रामजीने धर्म की गति को जानकर माता से अति कोमल वाणी मे कहा कि पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है और वहाँ सभी तरह से मेरी बड़ी आवश्यकता है ।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर हैं । धर्म का चक्र इन्ही के आधार पर फिरता

है । जानते हैं कि धर्मस्य सूक्ष्मा गति । पिता की आज्ञा मानना सब धर्मों में श्रेष्ठ है । परन्तु मैं इस प्रकार के प्रेम के शब्द बोल रही हूँ । इसके उत्तर में वज्राघात जैसी बात कैसे कहूँ । अतः उसी बात को जितने कोमल शब्दों में कहा जा सकता था उतने कोमल शब्दों में कहा ।

पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया । वन की व्यवस्था बहुत बिगड़ी हुई है । वहाँ प्रिना मेरे गये काम बन नहीं सकता । इस भाँति पिता के सत्य की तथा सद्भावना की रक्षा की । यही कथन का पाण्डित्य है कि जो कुछ सरकार ने कहा वह सत्य, प्रिय और हित था ।

आयसु देहि मुदित मन माता । जेहि मुद मगल कानन जाता ॥
जनि सनेह वस डरपसि भोरे । आनंदु अव अनुग्रह तोरे ॥४॥

अर्थ मैं तू प्रसन्न मन से आज्ञा दे जिससे वन जाते हुए मुझे आनन्द मङ्गल हो । प्रेमवश होकर भूलकर भी मत भयभीत हो । क्योंकि तेरे अनुग्रह से ही सब आनन्द होगा ।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि पिताजी की आज्ञा हो चुकी पर प्रसन्न मन से नहीं हुई । अतः तू प्रसन्न होकर आज्ञा दे । यदि पिताजी की भाँति तू भी दुःखी होकर आज्ञा देगी तो मुझे वन यात्रा में आनन्दमङ्गल कैसे होगा ?

वन के दुःख को दृष्टि में रखकर भय से तू आज्ञा देने में विपण्न मत हो । क्योंकि आनन्द का निवास तो माता के अनुग्रह में है । तेरा अनुग्रह यदि बना रहा तो रन में वन में मेरे लिए सर्वत्र ही आनन्द है ।

दो वरप चारि दस विपिन वसि, करि पितु वचन प्रमान ।

आइ पाय पुनि देखिहौ, मन जनि करसि मलान ॥५३॥

अर्थ चौदह वर्ष वन में रहकर और पिता के वचन को प्रमाण करके लौटकर फिर चरणों का दर्शन करूँगा । तू मन को मलिन मत कर ।

व्याख्या अब वनवास की अवधि कहते हैं । चौदह वर्ष सुनने में बड़ा कठोर प्रतीत होगा । अतः उसे खण्ड करके कहते हैं । उसमें चार पहिले कहकर पीछे दश कहते हैं । पिता का वचन अप्रमाण न हो इसलिए वन में बसेंगे । कुछ राज्य न मिलने से नाराज होकर नहीं । वस अवधि पूरी होते ही लौटकर चरणों का दर्शन करूँगा । माता के मुखपर म्लानता की रेखा देखकर कहते हैं तू मन को म्लान मत कर ।

वचन विनीत मधुर रघुवर के । सर सम लगे मातु उर करके ॥

सहमि सूखि सुनि सीतलि वानी । जिमि जवास परे पावस पानी ॥१॥

अर्थ रघुवर के विनययुक्त और मीठे वचन मैं को वाण जैसे लगे । कलेजा

वेध दिया । शीतल वाणी मुनकर सहमकर सूख गयी । जैसे जवासे पर बरसात का पानी पड़ा हो ।

व्याख्या : इतने मधुर शब्दों में और विनीत भाव से कही हुई बात : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू 'वरष चारिदस विपिन वसि । माँ है : उसे वाण से लगे । कलेजा बिध गया । जिसे वाण लगता है वह पृथ्वी पर गिर जाता है । माँ गिरी तो नहीं पर सहमकर सूख गयी । इसलिए कवि ने दूसरी उपमा दी । पावस का पानी बड़ा शीतल होता है । संसार का हरा भरा कर देता है । पर उसी शीतल जल से जवासा झुलस जाता है । उसके पत्ते गिर जाते हैं । वह बिल्कुल सूख जाता है । इसी भाँति कोसल्याम्बा भी रामजी की शीतल वाणी से सूख गयी : यहाँ विपमालङ्कार है ।

कहि न जाइ कछु हृदय विपादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥

नयन सजल तन थर थर काँपी । माँजहि खाइ मीन जनु माँपी ॥२॥

अर्थ : हृदय में ऐसा विपाद हुआ जो कहा नहीं जा सकता । जैसे मृगी को सिंहनाद सुनने पर होता है । आँखों में जल भर आया । शरीर थर थर काँपने लगा । जैसे माँजा खाकर मछली विकल हो ।

व्याख्या : माता का धैर्य एकदम छूट गया । जैसे सिंह का गर्जन सुनकर मृगी का धैर्य छूट जाता है । वह चौकड़ी भूल जाती है । हृदय में जो विपाद हुआ उसे कहा नहीं जा सकता । आँखों में जल आगया और थर थर काँपने लगी और ऐसी विकल हुई जैसे मछली ने माँजा खा लिया हो । पहिले पानी बरसने से जो गाज नदी में उत्पन्न होता है उसे खाकर मछली बड़ी विकल हो जाती है । इन तीन अर्धालियों से मनसा वाचा कर्मणा विपाद कहा ।

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी । गदगद वचन कहति महतारी ॥

तात पितहि तुम्ह प्राणपिआरे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥३॥

अर्थ : धैर्य धरके बेटे का मुख देखकर गदगद वाणी से माता कहने लगी : बेटा ! तुम तो पिता को प्राण के समान प्यारे थे । वे नित्य तुम्हारे चरित्रों को देखकर प्रसन्न होते थे ।

व्याख्या : थोड़ी देरतक यह विकलता रही । फिर माता ने धैर्य धारण किया और पुत्र का मुख देखा । माता ऐसी स्नेहमयी है कि पुत्र का मुख देखकर तब कुछ कहती है । आते ही ; सादर सुंदरबदनु निहारी । बोलों मधुर वचन महतारी । अब फिर बोलना है तो फिर पुत्र मुखावलोकन करती है । पर इस बार मुख की सुन्दरता देखने का भाव नहीं है । इस बार देखती है कि इन पर पिता की आज्ञा का क्या प्रभाव पड़ा ? इसलिए सादर नहीं कहते । गला रँधा हुआ है फिर भी बोली ।

यात क्या है ? घर से वह बेटा निकाला जाता है जो अप्रिय हो । महादुश्चरित्र

है । जानते है कि धर्मस्य सूक्ष्मा गति । पिता की आज्ञा मानना सब धर्मों में श्रेष्ठ है । परन्तु मैं इस प्रकार के प्रेम के शब्द बाल रही है । इसके उत्तर में वज्राघात जैसी बात कैसे कहूँ । अतः उसी बात को जितने कोमल शब्दों में कहा जा सकता था उतने कोमल शब्दों में कहा ।

पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया । वन की व्यवस्था बहुत बिगड़ी हुई है । वहाँ बिना मेरे गये काम बन नहीं सकता । इस भाँति पिता के सत्य की तथा सद्भावना की रक्षा की । यही कथन का पाण्डित्य है कि जो कुछ सरकार ने कहा वह सत्य, प्रिय और हित था ।

आयसु देहि मुदित मन माता । जेहि मुद मगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे । आनदु अब अनुग्रह तोरे ॥४॥

अर्थ मैं तू प्रसन्न मन से आज्ञा दे जिससे वन जाते हुए मुझे आनन्द मङ्गल हो । प्रेमवश होकर भूलकर भी मत भयभीत हो । क्योंकि तेरे अनुग्रह से ही सब आनन्द होगा ।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि पिताजी की आज्ञा हो चुकी पर प्रसन्न मन से नहीं हुई । अतः तू प्रसन्न होकर आज्ञा दे । यदि पिताजी की भाँति तू भी दुखी होकर आज्ञा देगी तो मुझे वन यात्रा में आनन्दमङ्गल कैसे होगा ?

वन के दुख को दृष्टि में रखकर भय से तू आज्ञा देने में विषण्ण मत हो । क्योंकि आनन्द का निवास तो माता के अनुग्रह में हैं । तेरा अनुग्रह यदि बना रहा तो रन में वन में मेरे लिए सर्वत्र ही आनन्द है ।

दो वरप चारि दस विपिन वसि, करि पितु वचन प्रमान ।

आइ पाय पुनि देखिहौ, मन जनि करसि मलान ॥५३॥

अर्थ चौदह वर्ष वन में रहकर और पिता के वचन को प्रमाण करके लौटकर फिर चरणों का दर्शन करूँगा । तू मन को मलिन मत कर ।

व्याख्या अत्र वनवास की अवधि कहते हैं । चौदह वर्ष सुनने में बड़ा बठोर प्रतीत होगा । अतः उसे स्पष्ट करके कहते हैं । उसमें चार पहिले कहकर पीछे दस कहते हैं । पिता का वचन अप्रमाण न हो इसलिए वन में बसेंगे । कुछ राज्य न मिलने से नाराज होकर नहीं । बस अवधि पूरी होते ही लौटकर चरणों का दर्शन करूँगा । माता के मुखपर म्लानता की रेखा देखकर कहते हैं तू मन को म्लान मत कर ।

वचन विनीत मधुर रघुवर के । सर सम लगे मातु उर करके ॥

सहमि सूखि मुनि सीतलि बानी । जिमि जवाम परे पावस पानी ॥१॥

अर्थ रघुवर के विनययुक्त और मीठे वचन मैं को चाण जैसे लगे । वल्ज्वा

वेध दिया । शीतल वाणी मुनकर सहमकर सूख गयो । जैसे जवासे पर बरसात का पानी पड़ा हो ।

व्याख्या : इतने मधुर शब्दों में और विनीत भाव से कही हुई बात : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू • वरप चारिदस विपिन बसि । माँ है : उसे वाण से लगे । कलेजा बिध गया । जिसे वाण लगता है वह पृथ्वी पर गिर जाता है । माँ गिरी तो नहीं पर सहमकर सूख गयी । इसलिए कवि ने दूसरी उपमा दी । पावस का पानी बड़ा शीतल होता है । ससार का हरा भरा कर देता है । पर उसी शीतल जल से जवासा झुलस जाता है । उसके पत्ते गिर जाते हैं । वह बिल्कुल सूख जाता है । इसी भाँति कौसल्याम्बा भी रामजी को शीतल वाणी से सूख गयी : यहाँ विपमालङ्कार है ।

कहि न जाइ कछु हृदय विषादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥

नयन सजल तन थर थर काँपी । माँजहि खाइ मीन जनु माँपी ॥२॥

अर्थ : हृदय में ऐसा विषाद हुआ जो कहा नहीं जा सकता । जैसे मृगी को सिंहनाद सुनने पर होता है । आँखों में जल भर आया । शरीर थर थर काँपने लगा । जैसे माँजा खाकर मछली विकल हो ।

व्याख्या : माता का धैर्य एकदम छूट गया । जैसे सिंह का गर्जन सुनकर मृगी का धैर्य छूट जाता है । वह चौकड़ी भूल जाती है । हृदय में जो विषाद हुआ उसे कहा नहीं जा सकता । आँखों में जल आगया और थर थर काँपने लगी और ऐसी विकल हुई जैसे मछली ने माँजा खा लिया हो । पहिले पानी बरसने से जो गाज नदी में उत्पन्न होता है उसे खाकर मछली बड़ी विकल हो जाती है । इन तीन अर्थालियों से मनसा वाचा कर्मणा विषाद कहा ।

धरि धीरजु सुत वदनु निहारी । गदगद वचन कहति महतारी ॥

तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥३॥

अर्थ : धैर्य घरके बेटे का मुख देखकर गदगद वाणी से माता कहने लगी : बेटा । तुम तो पिता को प्राण के समान प्यारे थे । वे नित्य तुम्हारे चरित्रों को देखकर प्रसन्न होते थे ।

व्याख्या : थोड़ी देरतक यह विकलता रही । फिर माता ने धैर्य धारण किया और पुत्र का मुख देखा । माता ऐसी स्नेहमयी है कि पुत्र का मुख देखकर तब कुछ कहती है । आते ही, सादर सुदग्दनु निहारी । वाला मधुर वचन महतारी । अब फिर बोलना है तो फिर पुत्र मुखावलोकन करता है । पर इस बार मुख की सुन्दरता देखने का भाव नहीं है । इस बार देखती है कि इन पर पिता की आज्ञा का क्या प्रभाव पड़ा ? इसलिए सादर नहीं कहते । गला रेंधा हुआ है फिर भी बोली ।

बात क्या है ? घर से वह बेटा निकाला जाता है जो अप्रिय हो । महादुश्चरित्र

हो । तुम तो पिता को प्राण समान प्यारे हो । यथा • सब सुत प्रिय मोहि प्राण कि नाई । राम देत नहि बने गोसाई । और तुम्हारे चरित्र देख देखकर वे सदा प्रसन्न होते थे । यथा : आयसु माँगि करहि पुर काजा । देखि चरित हरखै मन राजा । अत महान् आश्चर्य है । हुआ क्या ?

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा । कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहि निदानू । को दिनकर कुल भयउ कृसानू ॥४॥

अर्थ • राज्य देने के लिए शुभ दिन निश्चय किया । बन जाने को किस अपराध पर कहा ? बेटा । मुझे इसका आदि कारण बतलाओ । सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ?

व्याख्या तुम्हारे ऊपर बल तक इतने प्रसन्न थे कि तुम्हें राज्य देने के लिए शुभ दिन ठीक किया था । रातभर में ही क्या हो गया कि आज बन जाने को कह रहे हैं । यह तो तभी सम्भव है जब तुमसे कोई भारी अपराध हुआ हो । छोटे अपराध में भी इतना बड़ा दण्ड नहीं दिया जाता । अत बतलाओ कि वह कौन सा अपराध तुमसे हुआ ? पूछने को तो पूछा पर वह जानती है । पक्का विश्वास है कि रामजी से अपराध हो नहीं सकता । अत यह प्रश्न करती है कि सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ? भाव यह कि महाराज अपना बस चलते तुम्हें बन दे नहीं सकते । कोई ऐसा ही असामञ्जस्य आ पडा है जिसमें उन्हें ऐसा करना पडा । जिसके कारण ऐसा करना पडा वह सूर्यवंश के लिए आग हो गया । इस आघात से वंश का वंश नष्ट हो जायगा । माँ कौसल्या उसका नाम जानना चाहती हैं ।

दो निरखि राम रुख सचिव सुत, कारनु कहेउ बुझाइ ।

सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहि जाइ ॥५४॥

अर्थ • रामजी का रुख देखकर मन्त्रीपुत्र ने सब कारण समझाकर वह दिया । प्रसंग सुनकर कौसल्याजी गुँगे की भाँति चुप रह गयी । उनकी दशा वर्णन नहीं की जा सकती ।

व्याख्या माँ की करतूत रामजी अपने मुख से नहीं कहना चाहते । मन्त्री के पुत्र साथ थे । उन्होंने रामजी का रुख पाकर आद्योपान्त सब कारण समझाकर वह दिया :

देवामुर सग्राम म महाराज के सग ।
गई कैवेयी रानिहू जहाँ मच्यो रन रग ॥१॥
रिपु के प्रवल प्रहार ते मूर्छि परयो जब राय ।
तब रथ हाक्यो कैवेयी नृप को लिये बँचाय ॥२॥
ह्वै प्रसन्न माँगन कह्यो महाराज वर दोय ।
कह्यो कैवेयी माँगिही जब मोहि अवसर होय ॥३॥

आज राति को कैकेयी मांग्यो सो वरदान ।
भरत राज अरु राम वन चौदह वरिस प्रमान ॥४॥
धर्मपाश से बँध्यो नृप नाहि कह सकत नाहि ।
कहा कहौ भूपति विपति समुझहि इतनहि माँहि ॥५॥

यह सब सुनकर माँ कौसल्याजी ठक रह गयी । बोलने के लिए शब्द न मिले । जैसा गूँगा कहना चाहता हो पर कह नहीं सकता । आश्चर्य, असामञ्जस्य, शोक, धर्म सङ्कटादि अनेक भावों का जमघट हृदय में उदय हो गया । अतः काँव कहते हैं दसा बरनि नहि जाय ।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू । दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू । बिधि गति बाम सदा सब काहू ॥१॥

अर्थ : न रख सकती है न जाने को कह सकती है । क्योंकि दोनों तरह से हृदय में दारुण दाह है । चन्द्रमा लिखने चले और राहु लिख बैठे । ब्रह्मा की गति सदा सब के लिए टेढ़ी है ।

व्याख्या महारानी कौसल्या माता होने के कारण रख सकती है । पितु-दंशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते । पिता से माता दसगुना बड़ी है । वह यदि आज्ञा दे कि तुम घर रहो वन न जाओ तो धर्मधुरन्धर रामचन्द्र को मानना ही पड़ेगा । पर महारानी कौसल्या ऐसा नहीं कर सकती । पति के धर्म की रक्षा करना ही पत्नी का कर्त्तव्य है । अतः सामर्थ्य रहते भी रामजी को रख नहीं सकती और जाने को भी नहीं कह सकती । पुत्र के वियोग से जो दाह होगा वह सर्वथा असह्य है । धर्म त्याग में भी वैसा ही दाह है और दो ही रास्ते हैं । या जाने को बहे या घर रखवें । कुछ सूझता नहीं कि क्या करें । अतः मूक-गूँगे की भाँति चुप रह गयी ।

नवग्रह पूजा में राहु की मूर्ति सूर्यकार बनाते हैं और चन्द्रमा की मूर्ति द्वितीया के चन्द्र के आकार को बनाते हैं । कोई चन्द्रमा बनाने चला स्याही अधिक टपक पड़ी तो द्वितीया के चन्द्र का पेटा भर गया । सूर्यकार हो गया एवम् राहु लिख गया । वही दशा यहाँ हुई । देने चले राज्य सो बीच में कैकेयी का वरदान टपक पड़ा राज्य का वन बन गया । ठीक उलटा हो गया । राहु चन्द्र का ग्रास करता है । सो वनगमनरूपी राहु ने अभिषेकरूपी चन्द्र का ग्रास कर लिया ।

धरम सनेह उभय मति घेरी । भइ गति साँप छुछुदरि केरी ॥
राखौ सुतहि करौ अनुरोधू । धरमु जाइ अरु बधु विरोधू ॥२॥

अर्थ : धर्म और स्नेह दोनों ने बुद्धि को घेर लिया । साँप छछूंदर की सी गति हो गयी । यदि अनुरोध करके बेटे का रोक लूँ तो धर्म भी जाता है और बन्धु विरोध भी खड़ा होता है ।

व्याख्या : न तो धर्म छोड़ते वनता है और न स्नेह ही छोड़ते वनता है ।

सो यहाँ कौसल्याजी की माँप छछूँदर भी गति हो गयो । भूखे साँप ने छछूँदर पकड़ा और उसे निगलने लगा । तब उसे छछूँदर की उत्पट दुर्गन्ध का बोध हुआ । केवड़े के वन में रहनेवाले मर्प को छछूँदर की दुर्गन्धि असह्य हो गयी । वह उसे उगलना चाहता है । पर इधर भूख भी जोरो से लगी हुई है । इसलिए उगला भी नहीं जाता । इसी भाँति महारानी से न तो धर्म छाड़ते बनता है और न ग्रहण करने में ही समर्थ हो रही है ।

कहौ जान वन तौ बडि हानी । सकट सोच विवस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी । रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥३॥

अर्थ यदि वन जाने को कहती हूँ तो भी बड़ी हानि है । इस भाँति सकट और सोच के विवश महारानीजी हो गयी । फिर सयानी स्त्री धर्म को समझकर तथा राम और भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर ।

व्याख्या वन जाने की आज्ञा देने में भी बड़ी हानि दिखाई पड़ रही है । महाराज का अगाध प्रेम रामजी पर है । उनके वन जाने में स्वयं महाराज के प्राण सकट में पड़ जायेंगे । एक ओर धर्म सकट दूसरी ओर पुत्र का सोच और सौभाग्य का सोच ।

परन्तु महारानी कौसल्या सयानी हैं । पलड़ा धर्म की ही ओर झुका है । उन्होंने स्त्री धर्म का स्मरण किया । मेरे लिए राम और भरत बराबर हैं । क्योंकि एक स्त्री के पुत्रवती होने से शेष सब सपत्नियाँ पुत्रवती हो जाती हैं ।

सरल सुभाउ राम महतारी । बोली वचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हहु नीका । पितु आयसु सब धरम क टीका ॥४॥

अर्थ रामजी की माँ हैं । स्वभाव सरल है । भारी धीर धारण करके बोली । बेटा । मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ । तुमने अच्छा किया । पिता की आज्ञा सब धर्मों की टीका है ।

व्याख्या रामजी सरल स्वभाव के हैं । यथा सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ । उनकी माँ का भी स्वभाव वैसा ही सरल है । पहिले धरि धीरजु सुत बदन निहारी । गदगद वचन कहति महतारी । इस बार वन जाने की आज्ञा देनी है । अतः भारी धैर्य धारण किया । न तो बेटे का मुख देखा और न कण्ठ ही गदगद हुआ और बोली ।

यह पिता की आज्ञा मानने लायक नहीं थी । तुम कह सकते थे कि आपने मुझको भी राज्य देने का वचन दिया है । सो न करके आज्ञा मान ली । यह अच्छा किया । पिता की आज्ञा धर्मों की टीका है । तुमने राज्य का टीका छोड़कर धर्म का टीका स्वीकार किया । जीविते वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात् । गयाया पिण्डदानैश्च त्रिभि पुनस्य पुत्रता ।

दो. राजु देन कहि' दीन्ह वनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह विनु भरतहि भूपतहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥५५॥

अर्थ : राज्य देने को कहकर वन दे दिया इसका तो मुझे दुख का लेश नहीं है । तुम्हारे बिना भरत को महाराज को और प्रजा को प्रचण्ड बलेश होगा ।

व्याख्या : राज्य देने को कहकर वन जाने को कहना वन जाने के दुख को तीव्रतम करना है । सो कैकेयी के कारण से कर रहे हैं । इस बात का दुख मुझे होना चाहिए । पर मुझे इस दुख का लेश भी नहीं है । क्योंकि मुझे सौतियाडाह नहीं है । मुझे दुख इस बात का है कि तुम्हारा वियोग भरत का महाराज को तथा प्रजावर्ग को असह्य होगा । मुझे इनका दुख स्मरण करके अपना दुख कुछ जँचता नहीं ।

क्या हृदय है । कैसा प्रचण्ड त्याग है । माता का सन्देह भरत पर जाता ही नहीं । वे भरत को ठीक जानती हैं । इसीलिए पहिले उन्हीं का नाम लेता है ।

जौ केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि वडि माता ॥
जौ पितु मातु कहेउ वन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥१॥

अर्थ : बेटा । यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो तो माता को बड़ी जानकर मत जाओ । यदि माता पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन सौ अयोध्या के समान है ।

व्याख्या : यहाँ तो धर्मशास्त्र से निर्णय हो रहा है । पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते । मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा ॥ धर्मशास्त्र माता का गौरव पिता से दशगुण अधिक बतलाता है । पर विमाता तो माता से भी दशगुण अधिक मान्य है । अतः कौमल्याम्बा कहती हैं कि यदि केवल पिता ने ही वन जाने की आज्ञा दी है तो मैं गेकती हूँ वन मत जाओ और यदि माता पिता दोनों ने कह दिया हो तो धर्म का पलरा भारी वन जाने की ओर हो जाता है । धर्मों रक्षति रक्षितः । धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा । वन सौ अयोध्या के समान सुखदायी हो जायगा । यथा : राम लखन सीता सहित सोहत परन निवेत । जिमि वासव वस अमर पुर सची जयत समेत ।

पितु वनदेव मातु वनदेवी । खग मृग चरन सरोरुह सेवी ॥
अंतहं उचित नृपहि वनवासू । वय विलोकि हिय होइ हरामू ॥२॥

अर्थ : वन देव पिता हैं और वनदेवी माता हैं और पशु पक्षी चरण कमल के सेवक हैं । अन्त में भी तो राजा को वनवास ही उचित है । अवस्था देखकर जी दहलता है ।

१. आशेष : तृतीय अलङ्कार ।

व्याख्या धर्म पालन के प्रभाव से वन की अधिष्ठात्री देवी और देव माता पिता के समान तुम्हारी रक्षा करेंगे । कोई भय तुम्हारे ऊपर न आने पावेगा । वन के पशु पक्षी भी तुम्हारे चरणों की सेवा करेंगे ।

राजाओं के लिए वनवास कोई दुष्कर बात नहीं है । अन्त में तो राजाओं के लिए वनवास विहित ही है । यथा चौथेपन जाइहि नृप कानन । परन्तु तुम्हारी अवस्था वन जाने की नहीं है । शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैपिणाम् । वार्धक्ये मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम् । इस कुल का नियम है कि वचपन में विद्या पढ़ने हैं । यौवन में विषय का सेवन करते हैं । वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति ग्रहण करते हैं और अन्त में योग से शरीर छोड़ते हैं । सो तुम्हारी उम्र देखकर कि यही खेलने खाने का समय है जो दहलता है । यथा कैकयनदनि मदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह । जेहि रघुनदन जानविहि सुख अवसर दुख दीन्ह ।

बडभागी बन अवध अभागी । जो रघुवस तिलकु तुम्ह त्यागी ॥
जो सुत कही सग मोहि लेहू । तुम्हारे हृदय होइ सदेहू ॥३॥

अर्थ : बडभागी वन है । अवध अभागी है । हे रघुवशतिलक । जिसे तुम त्याग रहे हो यदि मैं कहूँ कि मुझे साथ ले लो तो बेटा । तुम्हारे मन में सन्देह होगा ।

व्याख्या जब से तुम्हारा जन्म हुआ तब से अवध बडभागी हुआ । जा दिन तैं हरि गर्भहि आए । सकल लोक सुख सपति छापे । अवधराजु सुरराज सिहाई इत्यादि अब तुम इसका परित्याग कर रहे हो । यदि तुम न त्यागना चाहो तो तुम्हें कौन हटा सकता है । तुम्हारे त्यागने से यह अभागी हो जायगा । यथा लागति अवध भयावनि भारी । मानहु कालराति अंधियारी । बडभाग और अभाग तो तुम्हारे ग्रहण और त्यागने में है ।

इस दुःसह दाह मिटने का एक रास्ता और भी है और वह यह है कि मैं तुम्हारे साथ चलूँ । पर यह मैं कह भी नहीं सकती । मैं तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ । तुम्हें तुरन्त सन्देह होगा कि इनके मन में सर्वाति आरेसु है तभी न इनको भरत का राज्य नहीं रुचा सग चलने को कहती है ।

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के । प्राण प्राण के जीवन जो के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु वन जाऊँ । मैं सुनि वचन बैठि पछताऊँ ॥४॥

अर्थ हे पुत्र । तुम सभी को परम प्रिय हो । प्राण के प्राण हो । जीवन का जीवन हो । सो तुम कहते हो कि माँ । मैं वन जाऊँ और मैं तुम्हारा वचन सुनकर बैठकर पछताऊँ ।

व्याख्या तुम मेरे पुत्र हो । तुम पर मेरा प्यार होना स्वाभाविक है । पर तुम तो प्राणी मात्र को परम प्रिय हो । यथा अस को जीव जतु जग माही । जेहि रघुनाथ प्राण प्रिय नाही । तथा प्राण प्राण के जीव के जीव सुख के सुख राम । श्रोत्रस्य

श्रोत्र मनसो मनो यद् वाचो ह वाच स हि प्राणस्य प्राण । यह कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है ।

सो तुमने कहा कि माँ मैं वन जाऊँ और सुनकर माँ जीती रह गयी । इससे सिद्ध है कि मेरा स्नेह झूठा है । मेरा पछताना व्यर्थ है । तुम्हारे विरह में मैं नहीं मरूँगी ।

दो. एह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेहु बड़ाइ ।
मानि मातु कर नात वलि, सुरति विसरि जनि जाइ ॥५६॥

अर्थ : यह सोचकर और झूठे स्नेह को बढाकर मैं हठ नहीं करती । मैं वलैया लेती हूँ । तुम माता का नाता मानकर मुझे भूल न जाना ।

व्याख्या : मैंने विचार लिया कि जब वनगमन सुनकर मैं नहीं मरी तो मैं नहीं मरूँगी । मेरा स्नेह झूठा है । उस झूठे स्नेह को बढाकर साथ जाने का हठ मैं क्यों करूँ । स्नेह झूठा सही पर माता का नाता सच्चा है । उस पर तुम ख्याल रखना । मैं माता होने योग्य नहीं फिर भी नाता समझकर मुझे भूल न जाना ।

देव पितर सब तुमहि गोसाईं । राखहुँ पलक नयन की नाई ॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुणाकर धरमधुरीना ॥१॥

अर्थ : सब देवता पितृगण तथा ईश्वर तुम्हारी रक्षा पलक नयन की भाँति करे । वनवास की अवधि जल है । प्रिय कुटुम्बी लोग मछली हैं । और तुम करुणाकर धर्मधुरन्धर हो ।

व्याख्या : गोसाईं शब्द ईश्वर . विष्णु भगवान् का वाचक है । यथा : समरथ के नहिं दोष गोसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाई । आज भी बोलते हैं कि गोसइयाँ की जैसी मर्जी । माँ आशीर्वाद देती है । देवगण पितृगण अदृश्य रूप से सबकी रक्षा करते हैं । अतः उनकी पूजा ससार में प्रचलित है । यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः । और विष्णु भगवान् जगत् के पालक हैं । अतः सबसे माँ प्रार्थना करती है कि जैसे पलक नयनो की रक्षा करती है उसी भाँति आप लोग रामचन्द्र की रक्षा करना ।

ऐसा आशीर्वाद देकर तब रामजी से कहती है कि तुम्हारे वनवास की अवधि ही इस समय जल का काम करेगी । उसी के भरोसे मछली की भाँति प्रिय परिजन यथाकथञ्चित् प्राण धारण करेंगे । ज्यों ज्यों अवधि बीतती जायगी त्यों त्यों तुमसे मिलने के लिए इनकी आकुलता बढेगी । जल के समाप्त होते ही सब मछलियाँ प्राण त्याग करेंगी । अतः विषम समस्या उपस्थित है । अवधि के भीतर तुम आ नहीं सकते । यद्यपि तुम धर्मधुरीण हो । अवधि के भीतर आने के लिए तुमसे आशा रखना व्यर्थ है तथापि करुणाकर हो । अतः

अस विचारि सोइ करहु उपाई । सवहि जियत जेहि भेटहु आई ॥
जाहु सुखेन वनहि वलि जाऊँ । करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥२॥

अर्थ : ऐसा विचार करके वही उपाय करना जिसमें जीते जी तुम आकर मिल सको । मैं बलैया लेती हूँ । तुम प्रिय कुटुम्बियों और गाँव को अनाथ करके सुख से वन जाओ ।

व्याख्या : ऐसा उपाय करना जिसमें तुम्हारे आने तक सब जीते रहे : अतः सरकार ने वैसा ही उपाय किया । अवधि बीतने के एकदिन पहले ही अपने आगमन का समाचार हनुमानजी द्वारा अवध भेज दिया ।

यहाँ तक मैं अपने को रोके रही । अब हृदय का उद्गार नहीं रुक सका । अतः आक्षेप के साथ आज्ञा दे रही हूँ । तुम प्रसन्न मन से मेरे पास आये और मुझसे मुदित मन होकर आज्ञा देने को कहा तो मैं आज्ञा दे रही हूँ । प्रिय परिजन और गाँव को अनाथ करके तुम सुख से वन जाओ । भाव यह कि तुम्हारे जाने से प्रिय परिजन और राज्य सब अनाथ हो जायगा । कौन तुम्हारा विरह उतने दिनों तक सह सकेगा कौन नहीं सह सकेगा । ऐसे विषम सकटावस्था में मैं मुदित मन से आज्ञा कैसे दे सकती हूँ । पर तुम कहते हो उसे टाल भी नहीं सकती । अतः कहे देती हूँ कि सुख पूर्वक वन जाओ ।

सब कर आजु सुकृत फल बीता । भयउ करालु काल विपरीता ॥

बहु विधि विलपि चरन लपटानी । परम अभागिनि आपुहि जानी ॥३॥

अर्थ : आज सबके पुण्यो का फल बीत गया । कराल काल विपरीत हो गया । बहुत भीति विलाप करके चरणों में लिपट गयी । अपने को परम अभागिन माना ।

व्याख्या : सरकार का दर्शन सब सुकृतों का फल है । यथा - सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसन पावा । सो दर्शन सबको दुर्लभ हुआ चाहता है । अतः कहती है कि सबके पुण्यो का फल आज समाप्त हो गया । सब विधि सब पुर लोग सुवारी । रामचंद मुख चट्ट निहारी । सो सभी का सुख छिन गया । जो काल सबके अनुकूल था आज वह कराल होकर विपरीत हो गया । किसी का सामर्थ्य नहीं है कि उसका अतिक्रमण कर सके । यथा अडकटाह अमित लयकारी । काल सदा दुरतिक्रम भारी ।

बहुत प्रकार से विलाप किया और अति आर्त होकर अपने को परम अभागिन मानकर चरणों में लिपट गयी । स्त्रियों को दो ही परम प्रिय हैं पति और पुत्र । सो पुत्र का वियोग तो हो ही रहा है और फलस्वरूप पति का भी प्राण संकट है । अतः परम भाग्यवती होने पर भी ससार का चक्र ऐसा है कि उन्होंने अपने को परम अभागिन माना और पुत्र के चरणों में लिपट गयी । मानो क्रिया से दिखला रही है कि मैं तुम्हें छोड़ना नहीं चाहती ।

दारुन दुसहु दाह उर व्यापा । वरनि न जाहि विलाप कलापा ॥

राम उठाट मात उर लाई । कहि मद् वचन वहरि समझाई ॥४॥

अर्थ वठिन दु सह दाह हृदय मे व्याप गया । विलाप के विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता । रामजी ने उठाकर माँ को हृदय से लगा लिया और कोमल वचनो से फिर समझाया ।

व्याख्या पहिले कहा था दुह भाँति उर दारुन दाह । सो एक रास्ते पर आ जाना पडा । जाने के लिए कह दिया । अब वियोग तथा उसके परिणाम पर ध्यान गया तो दारुण दु सह दाह हृदय मे व्याप गया । ऐसे समय मे माँ जा विलाप कर रही हैं उसे विस्तार से कौन कह सकता है ।

माँ व्याकुलता से पृथ्वी पर गिर गयी थी । सो रामजी ने उठाकर सान्त्वना देते हुए मृदुवचन कहकर फिर समझाने लगे । यथा

अँब राउ अति ही दुखित तिनको करिय सँभार ।
सब सनाथ नर नाथ ते तिनही पर सब भार ॥
धरि धीरज सकट सहहु सत्य न नृप को जाय ।
अवसि प्रथम दिन आइहो चौदह वर्ष विताय ॥
मेरो तो जीवन सफल बनहि गये ते होय ।
मेरे हित तो भूलि कर सोच करै जनि कोय ॥
तेरे मन काँचा किये मेरो धम नसाय ।
धर्म सार ससार यह समुझि दसु जिय माय ॥
पिता धर्म मम धर्म अरु अपनो धर्म विचारि ।
आयसु दीजै हरखि हिय एहि बुलके अनुहारि ॥

दो समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।

जाइ सासु पद कमल जुग, बदि बैठि सिरु नाइ ॥५७॥

अर्थ उस समय यह समाचार पाकर सीताजी व्याकुल हो उठी । जाकर सास के दोना चरणो की वन्दना करके सिर नीचा किये हुए बैठ गयी ।

व्याख्या सीताजी को पता लगा कि पिता ने सरवार को चौदह वर्ष के लिए वन दिया है । सो माता से विदा लने आये है । सुनते ही आकुल होकर उठ खड़ी हुई कि कहीं उधर से उधर ही वन न चल जायँ और वहा चली गयी जहाँ कौसल्याजी को रामजी समझा रहे थे । वहाँ चल जाने का अर्थ ही यही है कि मैं भी साथ जाऊँगी । साथ ही मैं भी विदा ल लँ । अतः सास की वन्दना करके सिर झुकाकर बैठी । सिर झुकाकर बैठना यहा चिन्ता सूचक है ।

दीन्हि असीस सासु मृदु वानी । अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥

बैठि नमित मुख सोचति सीता । रूप रासि पति प्रेमु पुनीता ॥१॥

अर्थ सास ने कोमल वाणी में आशीर्वाद दिया । अत्यन्त सुकुमारी देखकर आकुल हो उठी । रूप की राशि और पति के प्रेम से पवित्र सीताजी बैठी हुई सिर झुकाये सोच रही हैं ।

व्याख्या सासु पद कमल जुग बदि बैठ गिर नाड । अत मृदुवाणी से सास ने आशीर्वाद दिया । स्त्रियो म चिरजीवनी होने के आशीर्वाद की प्रथा ही नहीं है । सौभाग्य का ही आशीर्वाद दिया जाता है । सास ने तुरन्त समझ लिया कि इस समय यहाँ चल आने का अर्थ ही यही है कि साथ जाने का तैयार है । सुकुमार तो रामजी भी हैं । पर यह तो अत्यन्त सुकुमारी है । इसका निवाह वन म कैस हागा ? अपने धर्म पर खड़ी है । अत क्या कहकर रोकें ? ऐसा सोचकर सास व्याकुल हो उठी ।

इधर सीताजी रूपराशि हैं परम विराधिनी सूपणखा कहेगी रूप राशि त्रिधि नारि सवारी । गति मतकोटि तासु बलिहारी । कदापि वन के योग्य नहीं । परन्तु पतिप्रम से पुनीत है । स्त्रियो को पवित्र करनेवाला पतिप्रेम ही है । यथा एकड धर्म एक व्रत नेमा । काय बचन मन पति पद प्रमा । यह पति का साथ छोड़ेगी नहीं । सोच से सिर झुकाये सोच रही है । चित्त सशय म पडा हुआ है ।

चलनु चहत वन जीवननाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना । विधि करतबु कछु जाइन जाना ॥२॥

अथ प्राणनाथ वन को जाना चाहते हैं । देखें किस पुण्यात्मा से इनका साथ होगा । शरीर और प्राण दोनों से साथ होगा कि केवल प्राण से ही हागा । विधाता को क्या करना है यह समय म नहीं आता ।

व्याख्या जीवननाथ शब्द के प्रयोग से वियोग का असह्य होना द्योतित किया । सो प्राणनाथ वन जाना चाहते हैं । इनका साथ होना सुकृत का फल है । यथा नाहि त हम कह सुनहु सखि इन्हकर दरसन दूरि । यह सघट तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि । सो प्राण म पाप का वेध नहीं होता । अत इसके सुकृती होने म तो सन्देह नहीं है । पर शरीर साथ म जायगा कि नहीं इसी मे सशय है । विधाता ही कर्म शुभाशुभ के फल देनेवाला है । अत भोगायतन शरीर उनके अधीन है और वे क्या करेंगे यह कौन कह सकता है ।

चारु चरन^१ नख लेखत धरनी । नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी ।
मनहुं प्रम वस विनती करही । हमहि सीयपद जनि परिहरही ॥३॥

अथ सुन्दर चरण व नख स पृथ्वी पर लिख रही हैं । नूपुर को कवियो ने मधुर मुखर मीठा बक्वादी कहकर वर्णन किया है । मानो प्रमवश विनती कर रह हैं कि हम सीताजी के चरण त्याग न करे ।

व्याख्या सीताजी के सोचने के समय की शोभा रहते है । स्त्रियो का स्वभाव है कि सोचने के समय पादाङ्गुष्ठ नख से पृथ्वी पर रेखा बनाने लगती है । यथा महि नख लिखत लगी सत्र साचन उमी क अनुमार सीताजी भी सुन्दर

चरण नख से पृथ्वी पर लिख रही हैं। नववधू हैं। नूपुर धारण किये हुए हैं। चरण के हिलाने से नूपुर से कुछ शब्द भी हो रहा है। इसलिए कवि उसे मधुर मुखर कह रहे हैं। नही तो चलने के समय तो उसमे से ध्वनि होती ही है। यथा :
क्कन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि ।

उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए कवि कहते हैं कि मानो वे नूपुर पैर मे लग लगकर विनती कर रहे हैं कि हम लोगो का इन चरणो से विछोह न हो। भगवती वन जाने को प्रस्तुत हैं। उस समय नूपुर परित्याग की भी सम्भावना है। अतः पहिले से ही विनती करते हैं कि हमे भी अपने साथ ले चलना। भाव यह कि सीताजी को कौन कहे उनके नूपुर भी वन जाने को प्रस्तुत हैं।

मंजु बिलोचन मोचति वारी। बोली देखि राम महतारी ॥

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पियारी ॥४॥

अर्थ • सुन्दर नेत्रो से आँसू बहाते हुए देखकर रामजी की माता बोली : बेटी। सुनो सीता अत्यन्त सुकुमारी हैं और सास ससुर तथा परिजनो की प्यारी हैं।

व्याख्या : उस समय आँसू बहाने का अर्थ यही है कि मुझसे साथ जाने को आज्ञा माँग रही हैं। मैं नारीधर्म को जानती हुई इसे जाने से रोक नहीं सकती : ये पति है, ये अपने अधिकार से इसे रोक सकते हैं। अतः सीताजी से कुछ न कहकर रामजी से कहती है कि सीता अत्यन्त सुकुमारी है। कथमपि वन जाने योग्य नहीं है। सास ससुर परिजन की प्यारी है। तुम्हारा वियोग तो सबको ही होगा। इसके चले जाने से सबका दुःख अत्यन्त बढ़ जायगा।

दो. पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।

पति रविकुल कैरव विपिन, विधु गुन रूप निधानु ॥५८॥

अर्थ • इसके पिता जनक राजाओ मे मणि है। ससुर सूर्यकुल के सूर्य है और पति सूर्यकुलरूपी कुमुद वन के लिए रूप निधान चन्द्र है।

व्याख्या . ऐसे घर की बेटी ऐसे घर आयी और ऐसा गुणवान् पति पाया। यह क्या जाने कि कष्ट सहन किसे कहते हैं। यह तो कथमपि वन जाने योग्य नहीं है। दूसरी बात यह कि इसके वन जाने से लोग क्या कहेंगे ? महाराज जनक की बेटी पैदल वन चली जा रही है। महाराज दशरथ की पुत्रवधू की यह दुर्दशा। रामचन्द्र की धर्मपत्नी होकर इस भाँति कष्ट उठा रही है एव इसके वनगमन मे तीनों का दुर्यश है।

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई ॥

नयन पुतरि करि प्रीति बढाई। राखेउ प्रान जानकिहि लाई ॥१॥

अर्थ . मैंने प्रिय पुत्रवधू पायी जो कि रूप की राशि है और सुन्दर गुण

शीलवाली है । आँखों की पुतली बनाकर प्रेम बढ़ाया और अपने प्राणों को जानकी में लगाकर रक्खा ।

व्याख्या : सदा चिन्ता रही कि मेरा पुत्र ऐसा है इसके समानशीला वधू कहाँ मिलेगी । सो मिल गयी । पुत्रवधूचित सभी बातें इसमें हैं । रूप को तो राशि ही है और इसमें सुन्दर गुण और शील है । अतः मुझे प्रिय है । आँख की पुतली की भाँति इससे प्रीति बढ़ायी । महाराज की भी ऐसी ही आज्ञा थी । यथा : बधू लरिकिनी पर घर आई । राखेहु पलक नयन की नाई । सो मैंने इसमें प्राण लगाकर रक्खा है ।

कल्पवेलि जिमि बहुविधि लाली । सीचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥

फूलत फलत भयउ विधि वामा । जानि न जाइ काह परिनामा ॥२॥

अर्थ : कल्पलता की भाँति इसका बहुत भाँति से दुलार किया है और स्नेह के जल से सींचकर इसका पालन किया है । फूलते फलत समय विधाता वार्यें हो गये । क्या परिणाम होगा जाना नहीं जाता ।

व्याख्या : माँ कौसल्याजी कहती हैं कि मैंने इसे : सीताजी को कल्पवेलि माना कि इससे मेरे सब मनोरथ सिद्ध होंगे । वंशवृद्धि होगी । पुत्र पौत्र होंगे । दूसरे स्थान से लाकर यहाँ लगायी गयी है । अतः सब भाँति से रक्षा करके स्नेह रूपी जल से बराबर सींचती रही कि कहीं सूख न जाय । इस भाँति मैंने इसका पालन किया । जब अयोध्या में आयी बिल्कुल बाल्यावस्था थी । बच्चे प्रेम से ही पालन करने से जीते हैं । सो मैंने उसमें त्रुटि नहीं आने दी । अब बड़ी हुई । फूलने फलने का समय आया । बाल बच्चे की आशा हुई तो विधाता वार्यें हो गये । वनवास का प्रकरण आपड़ा । क्या परिणाम होगा नहीं जाना जाता । यह यह मरेगी कि जीयेगी कौन कह सकता है ।

पलंग पीठ तजि गोद हिडोरा । सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥

जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ । दीप बाति नहि टारन कहऊँ ॥३॥

अर्थ : पलङ्ग पीड़ा गोद और हिडोला छोड़कर सीता ने कठिन पृथ्वी पर कभी पाँव रक्खा नहीं । इसे सञ्जीवनी वूटी की भाँति सावधानी से रक्षा करती चली आयी । दीये की बत्ती को उसकाने : बढ़ाने के लिए कभी नहीं कहा ।

व्याख्या : सोते समय पलङ्ग पर भोजन के समय पीढ़े पर चलने के समय गोद में मन बहलाने के लिए पालना पर रहती थी । इसने कठोर भूमि पर आज तक पाँव न रक्खा । सञ्जीवनी वूटी की भाँति अत्यन्त दुर्लभ समझकर बड़ी सावधानी से इसका लालन पालन किया । अथवा वूटी की भाँति जिसमें प्राण बसता हो दिन रात चौकसी के साथ रक्षा की । रामजी की रक्षा महाराज जीवनतरु की भाँति करते थे और सीताजी की रक्षा कौसल्याजी जीवन मूलिका की भाँति करती थी । हलके से हलका काम इससे कभी नहीं लिया । दीये की बत्ती को आगे खिसकाने

के लिए भी कभी आना नहीं दी। अर्थात् दासी आदि की अनुपस्थिति में हलक से हलका काम में काम लेती थी। पर सीताजी को किसी काम के लिए कभी नहीं कहा।

सोइ सिय चलन चाहति वन माया । आयसु काह होइ रघुनाथा ॥

चद किरिन रस रसिक चकोरी । रवि रुख नयन सकै किमि जोरी ॥४॥

अर्थ वही सीता अब साथ में वन जाना चाहती है। हे रघुनाथ ! इसके लिए क्या हुकुम देते हो। चन्द्रमा के विरणों के रस की रसिक चकोरी क्या कभी सूर्य की ओर आँख उठाकर देखने में समर्थ हो सकती है।

व्याख्या ऐसी लाड प्यार से पाली हुई सीता तुम्हारे साथ वन जाने को प्रस्तुत है। अपने धर्म पर खड़ी है। सम्भव असम्भव कुछ नहीं देख रही है। एक तो वन जाने में जो कष्ट होता है उसके सहने में यह सर्वदा अनुपपुक्त है। तिसपर तुम्हारे साथ जाने में तुम्हारी सेवा भी इसे करनी पड़ेगी। दास दासी होते तो फिर भी दूसरी बात थी। तुम रघुकुल के नाथ हो। बात समझ लो। अवसर ऐसा है कि मैं कुछ नहीं कह सकती। तुम्हारी आज्ञा मानना इसका परम धर्म है। अतः तुम इसे उचित आज्ञा प्रदान करो। परन्तु यह ध्यान में रखकर आज्ञा देना कि चकोरी सदा चन्द्रकिरण रसामृत का नेत्रों द्वारा पान किया करती है। उसमें इतना सामर्थ्य ही वहाँ कि सूर्य की ओर निर्निमेष नेत्र से देख भी सके भाव यह कि सीता आँख से वन को देख न सकेगी।

दो करि केहरि निसिचर चरहि, दुष्ट जंतु वन भूरि ।

विष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि ॥५९॥

अर्थ वन में बहुत से हाथी सिंह राक्षस आदि दुष्ट जन्तु घूमा करते हैं। घेरा। सुन्दर सजीवनी बूटी की शाखा क्या विषवाटिका में हो सकती है ?

व्याख्या करि केहरि निसिचर ये सब हिंसक और दुष्ट जन्तु निष्कारण हिंसक अर्थात् छोटे से बड़े जीव सब सबके सब दुखदायी हैं। इसलिए वन को विषवाटिका कहा। सीता सदा सुख में पली हुई सुन्दर सजीवनी बूटी है। इसे विषवाटिका में आरोपण करने से ही यह सुख जायगी। अतः इसे वन ले जाने में किसी भी शोभा नहीं है।

वन हित कोल किरात किसोरी । रची विरचि विषय सुख भोरी ॥

पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलसु न कानन काऊ ॥१॥

अर्थ ब्रह्मदेव ने वन के लिए कोल किरात की लड़कियों को बनाया है। वे विषय सुख जानती ही नहीं। पत्थर के कीड़े के समान उनका स्वभाव होता है। उन्हें वन में कोई कष्ट नहीं।

व्याख्या यदि कहिय कि वन में काल किरात की बेटियाँ तथा तपस्वी की

स्त्रियाँ रहती हैं वैसे ही यह भी रहेगी सो यह बात भी ठीक नहीं। कोल और किरात की वेटियों को ब्रह्मा ने वन में रहने के लिए ही पैदा किया है। वे वन में पैदा हुई हैं। वन की कठिनाइयाँ उन्हें सात्म्य हो गयी हैं। उत्तम शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से उनका परिचय ही नहीं है। वे पत्थर के कीड़े की भाँति हो गयी हैं। पत्थर का कीटा पत्थर में रहता है। पत्थर में ही उन्हें जीवनोपयोगी सामग्री मिल जाती है। उस सामग्री से वे ही काम चला सकते हैं। दूसरा कोई चाहने पर भी नहीं चला सकता। इसी भाँति कोल किरात की वेटियों का वन में कोई वृष्ट ही नहीं है।

कै तापस तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ॥
सिय वन वसिहि तात केहि भाँती । चित्र लिखित कपि देखि डेराती ॥२॥

अर्थ या तपस्वी की स्त्रियाँ वन के योग्य हैं। जिन्होंने तप के लिए सब भोग छोड़ दिया है। हे वेटा ! सीता वन में कैसे रहेगी ? यह तो चित्र में लिखे हुए बन्दर का देखकर डर जाती है।

व्याख्या यदि कहिये कि वन में तपस्वी की स्त्रियाँ तो रहती हैं उनके लिए यह बात नहीं कही जा सकती। वे पूर्व आश्रम में सब सुखों से परिचित हैं। तपस्वी लोग प्रायः स्त्री के सहित वन में वसते हैं। पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य वने गच्छेत् सहैव वा। शास्त्र की आज्ञा है कि भार्या का पुत्रो में छोड़ दे या साथ वन ले जाय।

बात ठीक है। पर उन्होंने तो स्वेच्छापूर्वक पुत्रोत्पादन के बाद दूसरा आश्रम ग्रहण किया है। वे तप के लिए सब भोगों का त्याग किये हुए हैं। यथा विसरी देह तपहि मन लागा। यहाँ तो पिता का वचन पालन के लिए वनगमन हो रहा है। दूसरे आश्रम ग्रहण का कोई प्रश्न ही नहीं है। सीता का उन तपस्विनियों से कोई समता नहीं है। यह तो चित्र में विकटरूप देखकर डर जाती है। करि केहरि निशिचर को प्रत्यक्ष देखने से तो यह प्राण छोड़ देगी। यह वन में कैसे रहेगी ?

सुरसर सुभग वनज वन चारी । डावर जोगु कि हसकुमारी ॥
अस विचारि जस आयसु होई । मै सिख देउं जानकिहि सोई ॥३॥

अर्थ मानससरोवर के सुन्दर कमल वन में विचरनेवाली हस की बेटी क्या गडही के योग्य है ? ऐसा विचार करके जो आदेश दो मैं तदनुसार जानकीजी को शिक्षा दूँ।

व्याख्या जहाँ तहाँ काक उलूक वक मानस सकृत् मराल। जिस भाँति ब्रह्मदेव के कोल किरात किशोरी को वन के लिए बनाया है उसी भाँति हस कुमारी को मानस सर के लिए बनाया। उसके कमल वन में विहार करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह डावर गडही के योग्य नहीं। उसके योग्य तो काक उलूक वक हैं। सीता राजा जनक की बेटी हसकुमारी राजभोग पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार

है। वह वन के योग्य नहीं है। ऐसा विचार करके तुम जो आदेश दो क्योंकि धर्मपत्नी पर पूरा अधिकार पति का ही होता है। तदनुसार मैं जानकी को शिक्षा दूँ।

जौ सिय भवन रहइ कह अंवा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥

सुनि रघुवीर मातु प्रिय वानी । सील सनेह सुधा जनु सानी ॥४॥

अर्थ : माँ ने कहा कि यदि सीता घर रह जाय तो मुझे बहुत अवलंब रहेगा। रामजी ने माता की शील और प्रेमामृत से सनी प्रिय वाणी सुनकर।

व्याख्या : सीताजी के वनवास में जो दोष थे उन्हें दिखलाकर अब उनके घर रहने के गुणों को दिखलाती है। कहती हैं कि यदि सीता घर रह जाय : भाव यह कि इसके रहने का रास्ता तो नहीं मालूम हो रहा है पर यदि रह जाय तो तुम्हारे जाने पर मैं निरावलम्ब न हो जाऊँगी। पति घर हैं ही पुत्रवधू भी है केवल पुत्र बाहर है। यही अवलम्बन की बहुतायत है।

रामजी ने माँ की प्रिय वाणी सुनी। शील और स्नेहयुक्त वाणी ही प्रिय होती है। सो माँ की वाणी में शील और स्नेह दोनों का बहुत उत्कर्ष है। अतः अमृत से उपमा दी। शील यथा—आयसु काह होइ रघुनाथा ‘‘ ‘‘अस विचारि अस आयसु होई। स्नेह यथा : मो कहँ होइ बहुत अवलंबा।

दो. कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोषु ।

लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि विपिन गुन दोषु ॥६०॥

अर्थ . विवेकमय और प्रिय वचन कहकर माता का परितोष किया और जानकीजी को वन के गुण और दोषों को प्रकट करके समझाने लगे।

व्याख्या : सरकार ने कहा कि इनके जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपका कहना ठीक है। मेरे न रहने की अवस्था में आपकी सेवा का भार फिर किसपर रहेगा ? मुझे मुनिव्रत वेप आहार की आज्ञा है। इसमें स्त्री का साथ ठीक भी नहीं। माँ से इतना कहकर सरकार जानकीजी को वन में जाने के दोषों और न जाने के गुणों को समझाकर कहने लगे। माँ के कहने के समय ही सरकार का रुख साथ न ले जाने का था। पर अब तो स्पष्ट शब्दों में कहना प्रारम्भ किया।

मातु समीप कहत सकुचाही । बोले समउ समुझि मन माही ॥

राजकुमारि सिखावनु सुनहू । आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥१॥

अर्थ : माँ के सामने बोलने में सङ्कोच करते हैं। पर मनमें समय को समझकर बोले। हे राजकुमारी ! शिक्षा सुनो और अपने मनमें कुछ और बात न समझो।

व्याख्या : बारह वर्ष ब्याह हुए हुआ। पर सरकार ऐसे सङ्कोची हैं कि माँ के सामने अभी तक कभी सीताजी से नहीं बोले। आज ऐसा समय आ गया कि बिना बोले काम नहीं चलता। माँ चाहती है कि रामजी स्वयं सीताजी को समझावें।

अतः राजकुमारी वहकर सम्बोधन करके कहते हैं। भाव यह कि तुम राजकुमारी हो। सुशिक्षिता हो। हठ न करोगी। मैं जो बातें तुमसे कहूँगा उसका यह अर्थ न लगाना कि मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम में कोई कमी है : प्रिया शब्द से सम्बोधन न करके रखे शब्द राजकुमारी से सम्बोधन करता हूँ। इसे प्रेम में झुटि आने का लक्षण न समझना। मैं सिखावन देता हूँ तुम्हारी भलाई के लिए।

आपन मोर नीक जौ चहूँ। वचनु हमार भानि गृह रहूँ ॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई ॥२॥

अर्थ : अपना और मेरा यदि भला चाहती हो तो मेरा वचन मानकर घर रहो। मेरा आदेश सास के सेवकाई के लिए है। हे भामिनी। घर में रहने से ही सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : तुम्हारा धर्म विपत्ति में साथ न छोड़ने का है। सो तुम उसके लिए प्रस्तुत हो। तुम्हारी ओर से कोई झुटि नहीं है। परन्तु साथ चलने में न तुम्हारा कल्याण है और न मेरा। अतः हम दोनों की भलाई के लिए मेरा वचन मानकर घर रहो। जिस भाँति मैं पिता का वचन मानकर वन जाता हूँ उसी भाँति तुम मेरा वचन मानकर घर रहो। यदि कहो कि घर रहने से आपकी सेवा से वञ्चित हो जाऊँगी तो : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। मेरी आज्ञा मानो यही बड़ी भारी सेवा है। सो मैं सास की सेवा के लिए तुम्हें आज्ञा देता हूँ। हे भामिनी। घर रहकर ही तुम हमारी सेवा करती रहोगी। मैं तुम्हारी ओर से निश्चिन्त रहूँगा। अतः घर रहने में ही सब प्रकार की भलाई है। वन में जाने से सब विधि से भलाई नहीं है।

एहि ते अधिकु धरमु नहि दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम विकल मति भोरी ॥३॥

अर्थ : आदर के साथ सास ससुर के चरणों की पूजा से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। जब जब माता मेरी याद करेगी तब तब प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी।

व्याख्या : नारिधर्म पतिदेव न दूजा यह ठीक है। पर सास ससुर तो पति के मान्य हैं। धर्म की दृष्टि से भी। श्रद्धा के साथ सास ससुर के चरणों की पूजा ही परम धर्म है। तुम्हें शिक्षा भी मिली है : सास ससुर गुरु पूजा करेहूँ। पति रख लखि आयसु अनुसरहूँ। अतः मेरा आदेश मानो।

और दूसरी भी बात है कि जब जब माँ को मेरी सुध आवेगी और वह प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी तब इसे संभालनेवाला कौन है? दास दासी हैं। मान लिया कि वे सेवा करेंगी और विकलता के समय समझावेगी भी पर उनके समझाने का प्रभाव क्या पड़ेगा ?

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समझायेहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥४॥

अर्थ : हे सुन्दरी ! तब तब तुम पुराणों की कथा कहकर मृदु वाणी से समझाना । मैं सौ शपथ लेकर कहता हूँ : हे सुमुखि ! मैं माता के लिए तुम्हें घर रखता हूँ ।

व्याख्या : तुमने इतिहास पुराण सुना है । तुम उन सब आख्यानों को जानती हो जिनमें सङ्कट के समय बड़े लोगो ने धैर्य धारण करके उससे विमुक्ति पायी है । उन कथाओं के सुनने से शोक का वेग रुक जाता है । ढाढस बँधता है । माता की विकलता के समय तुम उन कथाओं को कोमल वाणी से कहकर माँ को समझाना । हे सुन्दरी ! तुम्हारे धैर्य का : तुम्हारे व्यक्तित्व का माँ पर प्रभाव पड़ेगा ।

मैं स्वभाव कहता हूँ तुम्हारे आश्वासन के लिए ही नहीं कहता हूँ । मैं तुम्हें स्वयं साथ चलने के लिए कहता अथवा साथ ले जाता । पर मैं सौ शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हें घर पर छोड़ने का कारण एकमात्र माँ है । इन्हें मैं किसके भरोसे छोड़ूँ ?

दो. गुरु श्रुति संमत धर्म फल, पाइअ बिनहि कलेस ।

हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस ॥६१॥

अर्थ : गुरु सम्मत और वेद सम्मत धर्म का फल बिना आयास के तुम्हें मिलेगा । हठ के बश होकर गालव और राजा नहुष ने सब सङ्कट सहा ।

व्याख्या वेद सम्मत होने पर भी शिष्टानुगृहीत होने की आवश्यकता है । अतः सरकार कहते हैं कि गुरुश्रुति सम्मत जो धर्म है उसका फल तुम्हें अनायास प्राप्त हो रहा है । सास ससुर की सेवा करना कुलवधू का धर्म है और पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् । सो मैं भी आदेश दे रहा हूँ । अब इससे बढ़कर धर्म क्या होगा । सो वह फल तुम्हें घर बैठे मिल रहा है । उसे ग्रहण न करके यदि तुम हठ करोगी तो हठ का फल तो सङ्कट है । विश्वामित्रजी का शिष्य गालव था । गुरुजी उससे गुरुदक्षिणा नहीं लेना चाहते थे पर उसने हठ किया । तब गुरुजी ने ८०० श्यामवर्ण घोड़े माँगे । उनके लिए उसे राजाओं के यहाँ दौड़ना पड़ा और अनेक प्रकार का सङ्कट उठाना पड़ा । गुरुजी ने तो वैसे ही गुरुदक्षिणा के ऋण से विनिर्मुक्त कर दिया था । पर गालव ने हठ करके सङ्कट मोल लिया ।

इसी भाँति नहुष राजा अपने तेज से इन्द्र हो गये । सम्पूर्ण इन्द्रलोक पर उनका अधिकार हो गया । उन्होंने उस अधिकार का दुरुपयोग इन्द्राणी पर भी करना चाहा । हठ पकड़ लिया । यहाँ तक कि चढ़ेउ भूमिसुर यान । फल यह हुआ कि अगस्त्यजी के शाप से पृथ्वी पर आकर अजगर हो गये । फलतः हठ का फल सङ्कट झेलना है । अतः तुम हठ न करो । धर्मफल तुम्हें अनायास प्राप्त है ।

मै पुनि करि प्रवान पितु बानी । वेगि फिरव सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहि लागिहि वारा । सुदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥१॥

अर्थ और मैं पिता के वचन को प्रमाण करके हे सुमुखि सयानी । शीघ्र ही लौट आऊँगा । दिन जाते देर न लगेगी । हे सुन्दरी । मेरी शिक्षा सुनो ।

व्याख्या यह नहीं कहते कि मैं तुम्हें साथ नहीं ले जाऊँगा या ले जा नहीं सकता । जो अपने धर्म पर खड़ा है उसे बलपूर्वक कैसे रोकें । समझाने बुझाने से वही मान जाय ता ठीक है । अतः सरकार कहते हैं कि मैं अपनी इच्छा से वन विहार करने नहीं जा रहा हूँ । जिसमें यह शङ्का हो कि सम्भव है मन लग जाने से लौटने में देर हो । तो मैं केवल पिता की वाणी को प्रमाण करने जा रहा हूँ । न जाऊँ तो पिता का वचन अप्रमाण हुआ जाता है । जहाँ चौदह वर्ष बीते कि मैं घर आया । सुमुखि सुन्दरी सम्बाधन देकर अपनी आसक्ति प्रकट करते हैं । सयानी सम्बोधन से अपना हृद्गत भाव प्रकट करते हैं कि तुम मेरी प्रेम को जानती हो । मुझे स्वयं तुमसे मिलने की उत्कण्ठा रहेगी । मैं देर क्या लगाऊँगा ?

जौ हठ करहु प्रेमवस वामा । तौ तुम्ह दुखु पाउव परिनामा ॥
काननु कठिन भयकर भारो । घोर घामु हिम बारि बयारी ॥२॥

अर्थ हे शांभने । यदि तुम प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम में तुम्हें दुःख होगा । वन भारी कठिन और भयङ्कर है । घोर घाम, पाला, जल और हवा है ।

व्याख्या तुम्हारा वन में निर्वाह होना दुस्तर है । तुम सुन्दर स्वभाववाली हो । हठीली नहीं हो । पर यदि प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम में दुःख पाओगी । सरकार के इस कथन में सीताहर्षण और सीता परित्याग का संकेत है । अब वन के दुःखों का वर्णन करते हैं । पहिले यह कि वन में कहीं मृदुता का नाम नहीं । उसके देखने से बड़ा भय उत्पन्न होता है । उसमें रहना ता दूर की बात है । जाड़ा गरमी बरसात तीनों काल में महा दुःख है । गरमी के दिना में असह्य घाम । जाड़ा के दिनो में असह्य पाला । बरसात में पानी और हवा असह्य होती है । अथवा वन की हवा और पानी भी अनुकूल नहीं पड़ता है । वन में शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध सभी भयानक हैं । कानन कठिन भयकर भारी से रूप की भयानकता कहा । घोर घामु हिम बारि बयारी से स्पर्श की भयानकता कहते हैं ।

कुस कटक मग काँकर नाना । चलव पयादेहि त्रिनु पद नाना ॥
चरन कमल मृदु मजु तुम्हार । मारग अगम भूमिधर मारे ॥३॥

अर्थ रास्ते में कुशा काँटे और अनेक प्रकार के कटु भरे पड़े हैं । पैदल चलना जूता भी नहीं । तुम्हारे चरण कमल कोमल और सुन्दर हैं । रास्ता दुर्गम और भारी भारी पहाड़ ।

व्याख्या दूसरे यह कि रास्ते में कुश उगे रहते हैं । जो बड़े तीखे होते हैं ।

कटि और कङ्कड़ ऐसे होते हैं कि जूते की दुर्गति हो जाती है। हमलोगों को मुनिव्रत पालन करना है। अतः पैदल चलना होगा। जूता भी नहीं पहन सकते। तुम्हारे चरण कमल से कोमल और सुन्दर हैं। ये दुर्गम मार्ग और बड़े बड़े पहाड़ों का सामना नहीं कर सकते।

कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहि निहारे ॥

भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहि नाद सुनि धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ - कन्दरा, खोह, नदी, नद और नाले सभी दुर्गम और अथाह होते हैं। जिन्हें देखते नहीं बनता। बाघ, भालू, भेड़िया और हाथी ऐसा चिन्घाड़ करते हैं कि सुनकर धैर्य छूट जाता है।

व्याख्या : उन बड़े बड़े पहाड़ों में ऐसी ऐसी कन्दरा और ऐसे ऐसे खोह हैं। कितने भयानक नाले रास्ते में पड़ते हैं। बहुत से नाले मिळकर एकनद हो जाता है और बहुत से नद मिलकर नदियाँ बन जाती हैं। ये सबके सब दुर्गम हैं। अथाह हैं। ऐसे भयानक हैं कि देखते नहीं बनता। तीसरे यह कि उन वनों में हिंस्र जन्तु बाघ, भालू, भेड़िया, सिंह और हाथी रहते हैं जिनका चिन्घाड़ सुनकर धैर्य छूट जाता है। इससे शब्द की भयानकता कहा।

दो. भूमि सयन बलकल वसन, असनु कद फल मूल।

ते कि सदा सब दिन मिलहि, सबुइ समय अनुकूल ॥६२॥

अर्थ - पृथ्वी पर सोना, पेड़ की छाल पहनना, कन्द फल मूल खाना वह भी सदा नहीं मिलता। सभी अपने अपने समय पर मिलते हैं।

व्याख्या - तुमने कठोर पृथ्वी पर पैर नहीं रक्खा। सदा पलग पीठ, गोद और पालने पर रही। वन में पृथ्वी पर सोना पड़ेगा। पेड़ों की छाल को कपड़ा की भाँति पहनना होगा। खाने के लिए केवल कन्द, फल और मूल मिलेंगे। वे भी सदा प्राप्य नहीं। सबके लिए ऋतु नियत है। स्थान नियत है। कोई किसी ऋतु में होता है और कोई किसी ऋतु में होता है। कोई कहीं पाया जाता है और कोई कहीं पाया जाता है। जीवनोपयोगी वस्तु भी दुर्लभ हैं। यहाँ रस और गन्ध के विषय में कहा।

नर अहार रजनीचर चरही। कपट वेप विधि कोटिक करही ॥

लागइ अति पहार कर पानी। विपिन विपति नहि जाइ बखानी ॥१॥

अर्थ : मनुष्यों को खानेवाले राक्षस वहाँ घूमा करते हैं। करोड़ों प्रकार के कपट वेप धारण किया करते हैं। पहाड़ी पानी बड़ा विकार करता है। वन की विपत्ति का वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : चौथे यह कि राक्षसों के मनुष्य ही आहार हैं। मनुष्य ही खाकर वे जाते हैं : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। वे आहार के खोज में घूमा करते हैं। कपट से अनेक वेप बनाया करते हैं। जिसमें कोई उन्हें जान न ले। कहीं भग

वन जाते हैं । कहीं यति वन जाते हैं । इत्यादि । पहाड का पानी बड़ा विकार करता है । उसे पीकर लोग घर आने पर भी बीमार पड़ते हैं । मरणासन्न हो जाते हैं । वन में एक विपत्ति नहीं है । वन की विपत्तियों का पारावार नहीं ।

काल कराल विहंग वन घोरा । निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥

डरपहिं धीर गहन सुधि आए । मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाए ॥२॥

अर्थ : वन में कराल सर्प होते हैं । भयावने पक्षी होते हैं । राक्षस लोग स्त्री और पुरुष को चुरा ले जाते हैं । धीर पुरुष भी वन की याद आने से डर उठते हैं । हे मृगलोचनि । तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो ।

व्याख्या : सुरक्षित स्थान में भी खतरा रहता है । वहाँ कराल सर्प होते हैं । जिनके काटने से कोई बच नहीं सकता । वहाँ के पक्षी भी घोर हैं । मनुष्य को तो अपना आहार समझते हैं । यथा : मोहि अहार दीन्ह जगदीसा । सुन्दर पुरुष पर राक्षसी आसक्त हो जाती हैं । सुन्दरी स्त्री पर राक्षस आसक्त हो जाते हैं । तब उन्हें खाते नहीं चुरा ले जाते हैं । जो खा जाने से बुरा है ।

जिनकी धीरो में गिनती है और कभी वन में रहने का अवसर मिल चुका है वे वन की याद आ जाने से सिहर उठते हैं । हे मृगलोचनि । तुम तो स्वभाव से भीरु हो । मैं कहती हूँ चित्र लिखित कवि देखि डराती । तुम वन में कैसे बसोगी ? वन में मृग बसते हैं । मृगलोचनी नहीं बसती ।

हस गवनि तुम नहि वन जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥३॥

अर्थ हे हसगामिनि तुम वन योग्य नहीं हो । सुन करके लोग मुझे अपयश देंगे । मानससरोवर के अमृत सदृश जल में पली हुई हसिनी क्या धार समुद्र में जी सकती है ?

व्याख्या . पाँचवें यह कि तुममें वन की योग्यता नहीं है । जिसमें जिस बात की योग्यता न हो उसमें उस वस्तु का विनियोग नीति विरुद्ध है । तुम्हारा हस की भाँति मन्द गति है । वन में तीव्र गतिवाली कोल किरात विशोरियों का निर्वाह होता है । जो दौड़धूप कर सकें । तुम तो जाना चाहती हो पर साथ ले जाने में मेरा कितना भारी अपयश है । लोग कहेंगे कि भले ही सीता साथ जाने के लिए हठ करती रही हो पर रामचन्द्र कैसे थे जो ऐसी सुकुमारी को साथ वन ले गये । तुम वन में जी नहीं सकती । जैसे मानसरोवर के अमृत सदृश जल से पली हुई हसिनी लवण समुद्र में नहीं जी सकती ।

नव रसाल वन विहरन सीला । सोह कि कोकिल विपिन करीला ॥

रहहु भवन अस हृदय विचारी । चंद्र वदनि दुखु काननु भारी ॥४॥

अर्थ . नयी अमराई में विहार करनेवाली कोकिल की शोभा क्या करील के

वन में हो सकती है। ऐसा मनमें विचार करके घर रहो। हे चन्द्रवदनि। वन में बड़ा दुःख है।

व्याख्या : तुम्हारा वन जाना एक अशोभन कार्य है। कोकिल की शोभा नये आम के वन में विहार करने में है। आम्रवन में स्पर्श रूप रस गन्ध की बहुतायत तो स्वभाव से ही है। नवतरु किमल्य में मृदु स्पर्श और सुन्दर रूप वीर में सुन्दर गन्ध फल में सुन्दर रस रहता है। केवल मनोहर शब्द का धाटा रहता है। उसे पूरा करके कोकिल आम्रवन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बना देती है। अतः वहाँ उसकी शोभा है। करील में न तो पत्ते हैं, न सरस फल है, न सुगन्ध है। उसमें कोकिल जाती ही नहीं। करील के वन में यदि कोकिल जाय तो उसकी शोभा नहीं।

आपन मोर नीक जो चहूँ। वचन हमार मानि गृह रहूँ से उपक्रम करके रहूँ भवन अस हृदय विचारी से उपसहार कर रहे हैं। साराश इतना ही है कि वन में भारी दुःख है जो तुम झेल नहीं सकती।

दो. सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि ।

सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि ॥६३॥

अर्थ . स्वाभाविक हितचिन्तक गुरु और स्वामी की शिक्षा जो शिरोधार्य नहीं करता। वह मन में पेट भर पछताता है। उसके हित को अवश्य हानि होती है।

व्याख्या स्वाभाविक हित चिन्तक माता पिता आदि गुरुजन ससुर सास आदि और स्वामी इनके वचन को अवश्य शिरोधार्य करना चाहिए। इसी में कल्याण है। नहीं तो निश्चय ऐसा अकल्याण होता है कि नहीं माननेवाला मन में पेट भर पछताता है चाहे मुख से न कहे। स्त्री का तो पति सहज सुहृद भी है। यथा : मित ददाति च पिता मित भ्राता मित सुतः। अमितस्य च दातार भर्तार वानुसेवयेत्। अमितदानि भर्ता वैदेहीगुरु भी हैं। यथा : पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् और स्वामी तो हैं ही। अतः उनके वचन को तो अवश्य ही शिरोधार्य करना चाहिए। नहीं मानने से अवश्य हित की हानि होती है और मुख से चाहे न कहे पर मन में उसे पेट भर पछताना पड़ता है। भाव यह कि यदि मेरा वचन न मानोगी तो निश्चय हित हानि होगी और तुम पेट भर पछताओगी।

सुनि मृदु वचन मनोहर प्रिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥

सीतल^१ सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जंसे ॥१॥

अर्थ : प्रिय के मनहरण करनेवाले कोमल वचन सुनकर सीताजी के सुन्दर नेत्र जल से भर आये। सीतल मिथा ऐसी दाहक हुई जैसे चकइ की शरद चन्द्रमा-वाली रात दाहक होती है।

व्याख्या : एक तो प्रिय के वचन सुनकर सीताजी के नेत्र जल से भर आये।

ऐसे कोमल और मनोहर थे कि मन उसी के गहण में तन्मय हो गया था। आँसू गिरना बन्द हो गया था। सो कथन समाप्त होते ही सीताजी के सुन्दर नेत्रों में फिर जल भर गया।

बड़ी शीतल शिक्षा थी पर सीताजी को वह दाहक हो गयी। जैसे शरद् चन्द्रमावाली रात स्वभाव से ही शीतल और सुखद है। पर चकई को तो वह अधिक दाह उत्पन्न करती है। पति वियोग के कारण चकई के लिए सभी रात्रि दाहक है। पर शरद् चन्द्र से युक्त रात्रि अधिक दाहक होती है। भाव यह कि कौसल्याजी के वचन भी दाहक थे। पर रामचन्द्र के मुख से उसी आशयवाले वचन अधिक दाहक हो उठे। रामजी ने वही भाव शब्दान्तर में कहे जो भाव कौसल्याजी ने व्यक्त किया था। पर प्रियतम के मुख से सुनने से वे अधिक वियोग-जन्यदाह के उत्पन्न करनेवाले हुए।

उतरु न आव विकल वंदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥

वरवस रोकि विलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी ॥२॥

अर्थ . वंदेही विकल है उत्तर देते नहीं बनता। पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोड़ना चाहते हैं। पृथ्वी की बेटी सीताजी ने धैर्य धारण किया और बलपूर्वक नेत्र के जल को रोका।

व्याख्या जो रामजी कह गये उसका उत्तर है। पर मन में जो यह भावना उठी कि ऐसे पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोड़ना चाहते हैं तो वंदेही विकल हो गयी। उत्तर मुख से निकलता ही नहीं। शुचि कहने का भाव यह कि सरकार विषय रस रूखे हैं। यथा राम पुनीत विषय रस रूखे फिर भी स्नेही हैं। यथा तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन सदा रहत तोहि पाही। जानु प्रीति रस एतनहि माही भाव यह कि अलौकिक प्रेमी होने पर भी मुझे छोड़ना चाहते हैं।

इस दाह से धैर्य छूट चला था। पर ये तो सर्वसहा पृथ्वी की बेटी हैं। माँ के सब गुण विद्यमान हैं। धैर्य धारण किया और नेत्र के जल को बल पूर्वक रोका।

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमवि देवि बडि अविनय मोरी ॥

दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि विधि मोर परम हित होई ॥३॥

मै पुनि समुझि दीखि मन माही। पिय वियोग सम दुखु जग नाही ॥४॥

अर्थ सास के पाँव पडकर और हाथ जोड़कर बोली कि हे देवि। मेरी बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा करना। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी जिससे मेरा परम कल्याण हो। मैंने भी उसे समझकर मन में देख लिया कि पति के वियोग से बढ़कर कोई दुःख ससार में नहीं है।

व्याख्या पहिले सास से ही प्रार्थना करना है। क्योंकि मरतार ने कह दिया सुमुखि मातु तित राखहुँ तोही और माता का बहुत बल उपर पर है

कि सीता वन के दुखो को न सह सकेगी और उन्ही के प्रेरणा में सरकार ने वैसी ही शिक्षा दी। जब सीताजी आयी थी तब वन्दना बरके बैठी। अब कुछ कहना है अतः फिर वन्दना करती है। भगवती ने आज तक सास की बातों का कभी उत्तर नहीं दिया। आज बिना दिये स्वीकृति ममझी जायगी। अतः उत्तर देना पडा। इसे सीताजी बड़ी भारी टिठाई मानती है। अतः उसके लिए पहिले ही क्षमा प्रार्थी होती है।

आरम्भ से ही आर्यपुत्र न कहकर सङ्काच छोडकर प्राणपति कहा। इसका अर्थ ही यही है कि इनके बिना मैं जी नहीं सकती प्राणपति को शिक्षा में कोई दोष नहीं है और वह शिक्षा मेरे बहुत भल के लिए है। मैंने उसे दत्तचित्त होकर सुना। समुझि कहकर उसका मनन करना कहती है और दीख मन माही से निदिध्यासन कहती है। अर्थात् ऊँचा नीचा अच्छी भाँति विचार लिया। सो यह निश्चय हुआ कि प्रिय वियोग के समान दुःख दूसरा जगत में है नहीं अधिक कहाँ से हागा। सास से सीताजी ने इतना ही कहना यथेष्ट समझा। क्योंकि स्त्री है। स्त्रीहृदय का जानती है। स्त्रीधर्म को जानती है। इनके लिए इतना ही अल है। अतः यह सहज सुहृद गुरुस्वामि सिख जा न वरें हित मानि आदि का उत्तर है।

दो प्राणनाथ करुणायतन, सुंदर सुखद सुजान।

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान ॥६४॥

अर्थ हे प्राणनाथ, करुणायतन, सुन्दर, सुखद, सुजान, हे रघुकुल कुमुद चन्द्र। तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक के तुल्य है।

व्याख्या अत्र सरकार से कहती है। प्राणनाथ सम्बोधन से वियोग में प्राण त्याग कहा। करुणायतन कहकर करुणा की प्रार्थी है। सुन्दर कहकर द्यातित किया कि मैं नित्य दर्शन चाहती हूँ। सुखद कहकर वियोग दुःख न देने की प्रार्थना करती है। सुजान कहकर मनोगत का जानकार होना कहती है। रघुकुल कुमुद विधु कहकर अपना सहज प्रेम कह रही है। इतनी बात केवल सम्प्राधन में ही कह गयी। अत्र कहती है कि तुम्हारे बिना मेरे लिए स्वर्ग भी नरक है। स्वर्ग में लोकात्तर सुख मिलता है और नरक में लोकात्तर दुःख मिलता है। भाव यह कि प्रियतम के बिना सुख सत्र दुःख रूप है। यथा ज हित रहे करदैं ते पीरा। यह रहहु भवन अस हृदय प्रिचारी। चंद वदनि दुःख कानन भारी का उत्तर है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥

सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुशील सुखदाई ॥१॥

अर्थ माता, पिता, बहन, प्रिय भाई, प्रिय परिवार, सुहृद समूह, सास, ससुर, गुरु स्वजन, सहायक और सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र।

व्याख्या १ पहिला परिचय माना से २ फिर पिता से फिर ३ बहन और ४ प्रिय भाई से। यत्ता परम जात्मीय ठहरे। तत्पश्चात् ५ प्रिय परिवार

चाचा बाबा इत्यादि और ६ सुहृद्वर्ग । ये छ मैके के आत्मीय हैं । इस भाँति १ साम २ स्वसुर ३ गुरु ४ स्वजन ५ सहायक और ६ सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र ये छ आत्मीय सुसराल के । सब मिलाकर बारह हुए । इन्हीं पर स्त्रियों की प्रीति होती है ।

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय विनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ॥

तनु धनु धामु धरनि पुर राजू । पति विहीन सबु सोक समाजू ॥२॥

अर्थ हे नाथ जहाँ तक स्नेह और नाता है पति के बिना स्त्री को सब सूर्य की भाँति तापप्रद हैं ।

व्याख्या इन बारहों के भीतर ही सब स्नेह और सम्बन्ध का अन्तर्भाव है । इसीलिए स्नेही और सम्बन्धी न कहकर स्नेह और सम्बन्ध कहा । ये सब सुखदायी हैं । पर तभी तक जब तक कि स्त्री को पति का साथ है । पति का विछोह होने पर ये बारहों द्वादशादित्य की भाँति तापक हो जाते हैं । एक आदित्य का ताप सहन नहीं होता बारह आदित्य का ताप कौन सह सकता है । यह नव रसाल बन बिरहन सीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला का उत्तर है ।

चेतन की व्यवस्था कहकर अब जड़ वस्तुओं में जिनपर प्रेम होता है उन्हें गिनाती है । १ शरीर २ धन ३ धाम ४ धरणी ५ पुर और ६ राज्य यह सुख का समाज है । पर तभी तक जब तक पति का साथ है । पति के विछोह में ये शोक के समाज है । इस बात को पतिव्रता स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं । सामान्य स्त्री भी इसे नहीं समझ सकती । तब पुरुषों से समझने की कौन आशा है । अतः इन बातों को कौसल्या जी से कहकर सरकार से कहती हैं यह मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली का उत्तर है ।

भोग रोग सम भूषन भारू । जम जातना सरिस ससारू ॥

प्राणनाथ तुम्ह बिनु जग माही । मो कहूँ सुखद कतहु कछु नाही ॥३॥

अर्थ भोग रोग के समान हो जाता है । मरने दोष मालूम होते हैं और ससार तो यमयातनामय हो जाता है । हे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना इस ससार में मुझे तो सुखद कहीं कुछ भी नहीं है ।

व्याख्या भोग की सामग्री रोग की भाँति दुःखदायी होती है । भूषण धारण करने योग्य प्रिय वस्तु है । वह दोषा हो जाता है । ससार में जो व्यवहार चलता है यमयातना की भाँति महाकष्टप्रद प्रतीत होता है । यह हस गवनि तुम नहि बन जोगू का उत्तर है । इस भाँति भगवतीजी ने पतिव्रता स्वभाव का वर्णन किया ऐसी स्त्री जो पति के साथ सती होती है उन्हें सती हो जाने में ही सुख है । व सती हो जाने से इन महादुःखों से त्राण पा जाती है । जो इन गुणों से अपरिचित हैं उन्हें सती होना घोर नृशंस क्रिया प्रतीत होती है । अन्त में भगवती कहती है कि जो आपने कहा रहहु भवन अस हृदय विचारो । चद वदनि दुख कानन भारी । सो

पुरुष होने के नाते स्त्री स्वभाव से अपरिचित होने के कारण कहा । हे प्राणनाथ । तुम्हारे बिना संसार में कहीं कुछ भी सुखद नहीं है ।

जिअ विनु देह नदी विनु वारी । तैसिअ नाथ पुरुष विनु नारी ॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद विमल विधु वदनु निहारें ॥४॥

अर्थ : जैसे जीव के बिना देह बिना जल की नदी वैसे ही हे नाथ । पुरुष के बिना स्त्री हो जाती है । हे नाथ । तुम्हारे साथ मुझे सब सुख निर्मल शरत् चन्द्र के समान आपके मुख दर्शन में है ।

व्याख्या : जैसे जीव के बिना देह अमङ्गल रूप अपवित्र और व्यर्थ हो जाता है : जिस भाँति जल के बिना नदी भयानक और कष्टप्रद हो जाती है वही दशा स्त्री की हो जाती है । तो क्या मैं इस संसार में अमङ्गल रूप अपवित्र व्यर्थ भयानक और कष्टप्रद होकर रहूँ ? जो सरकार ने कहा : मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली । सो मेरे लिए घर ही लवण पयोधि है । मैं यहाँ नहीं जीऊँगी । सरकार के मुखचन्द्र के दर्शन में ही मुझे सब सुख है ।

दो. खग मृग परिजन नगर वनु, वलकल विमल दुकूल ।

नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल ॥६५॥

अर्थ : नाथ के साथ पशु पक्षी कुटुम्बी वन नगर और पेड़ों की छाल निर्मल वस्त्र तथा पत्तों की कुटिया स्वर्ग की भाँति सुखमूल हो जायगी ।

व्याख्या : नाथ का साथ रहने से वन्यजन्तु मेरे कुटुम्बी हो जायेंगे । वन ही नगर की भाँति सुखद होगा । पेड़ों की छाल ही निर्मल वस्त्र का काम देंगे और पत्तों की कुटी में स्वर्ग का सुख होगा । प्रिय का साथ होने से सब दुःखद पदार्थ सुखद हो जाते हैं । जङ्गल में ही मङ्गल होगा । कोई दुःखद न होगा यह विपिन विपत्ति नहीं जाइ बखानी का उत्तर है ।

वनदेवी वनदेव उदारा । करिहहि सासु ससुर सम सारा ॥

कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ॥१॥

अर्थ : उदार वनदेव और वनदेवी सास ससुर की भाँति रक्षा करेंगे । सरकार के साथ कुशा और कोमल पत्तों का बिछौना सुन्दर कामदेव का तोशक हो जायगा ।

व्याख्या . माता ने आशीर्वाद दिया है : पितु वनदेव मातु वनदेवी । अतः कहती है कि वनदेव और वनदेवी उदार हैं । बिना पूजा पाये वन्य जीवों की रक्षा करते हैं । सो वनदेवी मेरी सास की भाँति रक्षा करेंगी और वनदेव ससुर की भाँति रक्षा करेंगे । यह : नर अहार रजनीचर करही । कपट वेप बिधि कोटिक चरही : का उत्तर है ।

सरकार ने कहा था कि भूमि पर सोना होगा । इस पर कहती है कि भूमि

पर वयो सोऊँगी कुश विशलय वा विछोना बनाया जायगा और प्रभु के साथ सुन्दर कामदेव के तोशक की भाँति सुखद होगा ।

कद मूल फल अमिअ अहारु । अवध सौध सत सरिस पहारु ॥

छिनु छिनु प्रभु पद कमल विलोकी । रहिहौ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥२॥

अर्थ कन्दमूल फल का आहार अमृत के आहार सा हागा । पहाड अवध के सौ महलो की भाँति हो जावेंगे । क्षण क्षण सरकार के चरण कमल का दर्शन करके ऐसी प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन मे चकई प्रसन्न रहती है ।

व्याख्या सरकार ने कहा असन कन्द फल मूल । सो कन्द फल और मूल का भोजन सरकार के साथ होने से अमृत के भोजन की भाँति स्वादिष्ट होंगे और जिन पहाडो के लिए सरकार ने कहा है मारग अगम भूमिधर भारे । कदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहि निहारे इत्यादि सो वे भूमिधर पहाड अयोध्या के सौ महल के समान सुखदायक होंगे ।

सरकार ने कहा कदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहि निहारे । सो कन्दर खोह नदी नद नारे मे सरकार आगे आगे रहेग । मैं तो सरकार के चरणो को बराबर दर्शन करती हुई प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन को चकई रहती है ।

वन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय विपाद परिताप घनेरे ॥

प्रभु वियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहि न कृपानिधाना ॥३॥

अर्थ सरकार ने वन के बहुत से दुख भय विपाद और परिताप का वर्णन किया । पर वे सब मिलकर प्रभु के वियोग के लवलश के समान नहीं हैं ।

व्याख्या सरकार ने वन के बहुत दुखो का वर्णन किया । उसमें भय का वर्णन किया । यथा कानन कठिन भयङ्कर भारी । विपाद का वर्णन किया । यथा घोरघाम हिम बारि बयारी । परिताप का वर्णन किया । यथा कुस कटक मग काँकर नाना । चलत्र पयादेहि बिनु पद नाना । चरन कमल मृदु मजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे । सो इन सब भय विपाद और परिताप को इकट्ठा किया जाय तो भी सरकार के वियोग के लवलश के समान सब मिलकर भी नहीं हागे ।

अस जिय जानि सुजान शिरोमनि । लेइअ सग मोहि छाँडिअ जनि ॥

विनती बहुत करौ का स्वामी । करुनामय उर अतरजामी ॥४॥

अर्थ हे सुजान शिरोमणि । ऐसा जानवर मुझे साथ ले लीजिये । छोड़ न दीजिये । हे स्वामिन् । मैं बहुत विनती क्या करूँ । आप करुनामय हैं और अन्तर्यामी हैं ।

व्याख्या सरकार ने कहा जौ हठ करहु प्रम वस बामा । ती तुम्ह दुखु पाउव परिनामा । इसपर कहती हैं कि मैं हठ नहीं करती हूँ । वस्तुस्थिति कहती हूँ । आप सुजान शिरोमणि हैं । यथा यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जान शिरोमणि

कोमल राऊ । जो निष्करुण हो हृदय की बात न जानता हो उससे अधिक विनती की जाती है । सरकार तो करुणामय है । अन्तर्यामी है । आप से अधिक विनती क्या करें ।

दो. राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान ।

दीनबन्धु सुदर सुखद, सील सनेह निधान ॥६६॥

अर्थ : यदि आप समझे कि अवधि चौदह वर्ष तक मेरे प्राण रह सकेंगे तो अवध में मुझे रखिये । आप दीनबन्धु हैं । सुन्दर है और शील तथा स्नेह के निधान हैं ।

व्याख्या : सरकार ने कहा • दिवस जात नहि लागिहि बारा । सुन्दर सिखवन सुनहु हमारा । सो मैं शिक्षा शिरोधार्य करने को प्रस्तुत हूँ । पर प्राण मेरे वश में नहीं है । ये नहीं रहेंगे । यदि आप समझते हो कि ये चौदह वर्ष बिना आपके रह सकेंगे तो मुझे अवध में ही रहने दीजिये । दीनबन्धु सम्बोधन से अपनी दीनता कहा । सुन्दर कहकर अपनी आसक्ति कही और शील सनेह निधान वहकर साथ ले जाने के लिए प्रार्थना की । रहत न जानि अहि : पाठ मानने से अर्थ होगा कि मैं नहीं जी सकूंगी ।

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥

सर्वहि भाँति पिय सेवा करिहौ । मारग जनित सकल श्रम हरिहौ ॥१॥

अर्थ : मुझे रास्ता चलने में थकावट नहीं मालूम होगी । क्योंकि क्षण क्षण चरण कमलो का दर्शन होता रहेगा : सभी तरह से मैं प्रिय की सेवा करूँगी और रास्ते की थकावट दूर करूँगी ।

व्याख्या : ऊपर के दोहों में पाँच सम्बोधन दिया है १ दीनबन्धु २ सुन्दर ३ सुखद ४. शील निधान और ५ स्नेह निधान । अतः दीनबन्धु से अपनी दीनता कहती हूँ । सरकार ने कहा था : चलब पयादेहि बिनु पद नाना । इसका उत्तर भी साथ ही साथ है । कहती हूँ कि मुझे तो रास्ते चलते थकावट होगी नहीं । क्योंकि सरकार के प्रत्येक पादप्रक्षेप को मुझे ध्यान से देखना पड़ेगा । यथा : प्रभु पद रेख बीचविच सीता । धरति चरन मग चलति सभीता । इस भाँति क्षण क्षण चरण कमल का दर्शन करती चलूँगी । उसी आनन्द में मुझे पथश्रम का भान ही न होगा ।

इतना ही नहीं सरकार के साथ कोई सेवक न होगा तो सेवा कौन करेगा । यहाँ तो सेवा का पूरा सौभाग्य प्राप्त नहीं था । अवसर ही नहीं मिलता था । प्रिय की सेवा करने में सुख मिलता है सो सब सेवा मैं करूँगी । एहि ते अधिक धरम नहि दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा : वा उत्तर दे रही है कि आपकी सेवा का अधिक सुअवसर प्राप्त होगा । एकइ धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पतिपद प्रेमा । भाव यह कि मैं बोझ होकर साथ नहीं रहूँगी । मैं तो थकूँगी ही नहीं और सरकार के थकावट को दूर करूँगी । यह नीताजी आर्त होकर कह रही हैं । नहीं तो : घर

ते निकरी रघुवीर वधू, धरि धीर धरी मग मे पग द्वै । झलकी भली भाल कनो जल की, रद सूख गये अधराधर द्वै । इत्यादि ।

पाय पखारि वंठि तरु छाही । करिहउं वाउ मुदित मन माही ॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्राणपति पेखे ॥२॥

अर्थ : पैर धोकर पेड़ की छाया में बैठकर प्रसन्न मन से हवा कर्छंगी । पसीने की बूंदों के सहित स्याम शरीर के दर्शन से : प्राणनाथ के अवलोकन में दुख के लिए समय कहाँ है ।

व्याख्या : मैं जानती हूँ कि थकावट कैसे दूर की जाती है । जब आप थककर विश्राम के लिए पेड़ तले बैठेंगे तो मैं आपका पाँव धोकर प्रसन्न मन से हवा कर्छंगी । आपकी थकावट दूर होगी ।

श्यामसुन्दर राम से अपनी आसक्ति कहती है कि जब थकावट में आपके शरीर की शोभा पसीने के बूंदों से और भी बढ़ जाती है सो उसके देखने में ही मन लग जायगा । दुःख के लिए अवसर कहाँ है ? भाव यह कि अनवरत मन के आप में लगे रहने से दुःख का भान हो नहीं सकता । सो दिन तो इस भाँति आनन्द से कटेगा ।

सम सहि तृन तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति वयारि न मोही ॥३॥

अर्थ : समतल भूमि पर तृण और तरुपल्लव बिछाकर यह दासी रात भर पैर दावेगी । बार बार इस कोमल मूर्ति को देखकर मुझे गरम हवा न लगेगी ।

व्याख्या : अब रात की व्यवस्था कहती हैं कि भूमि शयन क्यों होगा ? मैं समतल भूमि देखकर उस पर तृण और पेड़ के कोमल पल्लव की शय्या बिछाऊँगी । मैं तो दासी हूँ । चरण सेवा मेरा धर्म है । सरकार थके रहेंगे । मैं रात भर चरण सेवा करूँगी । सरकार सुखद है । सेवा में भी सुख मिलता है । सरकार के नवनील नीरद सुन्दर मूर्ति का दर्शन करती रहूँगी । मुझे गरम हवा क्यों लगेगी । घोर घाम हिम वारि वयारी : का उत्तर ।

को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा । सिध वधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मै मुकुमारि नाथ वन जोगू । तुम्हहि उचित तप मो कहूँ भोगू ॥४॥

अर्थ : सरकार के साथ मुझे आँख उठाकर देखनेवाला कौन है ? सिंह को वधू को खरहा : खरगोश और सियार के देखने की सामर्थ्य कहाँ ? मैं मुकुमारी हूँ और सरकार वन के योग्य है । आपको तप उचित है और मुझे भोग उचित है ।

व्याख्या : निसिचर निकर नारि नर चोरा : का उत्तर : सिंहवधू में ही ऐसी सामर्थ्य है कि शशक सिआर उसकी ओर आँख नहीं उठा सकते कि पुनः जब

वह सिंह के साथ हो । सरकार सिंह हैं । राक्षसादि आपके सामने शशक सिआर हैं । उनसे मुझे कौन डर है ?

सरकार शील सनेह निधान है । ऐसी बातें कैसे कहते हैं कि मैं वन में तप करूँगा और तुम घर में राजभोग भोगो । व्याह में प्रतिज्ञा कराया गया है कि धर्म अर्थ और काम में इसके साथ वरतना । तो क्या तप में मेरा साथ न होगा । यदि मैं सुकुमारी हूँ तो आप तो और भी अधिक सुकुमार हैं । यथा • व्यचरदनुवन पद्मपद्म्या प्रियाया । पाणिस्पर्शाश्रमाभ्याम् । यदि मैं वन के योग्य नहीं हूँ तो आप और भी अधिक नहीं हैं । वनवास की कौन कहे केवल पति के प्रवास में स्त्री को तप विहित है । सो मुझ सरकार कन्दमूल अशन को डरा रहे हैं ।

दो ऐसेउ^१ वचन कठोर सुनि, जौ न हृदउ विलगान ।

तौ प्रभु विषय वियोग दुखु, सहिहहि पाँवर प्रान ॥६७॥

अर्थ ऐसा कठोर वचन सुनकर भी यदि कलेजा न फटा तो यह नीच प्राण सरकार के विरह के दुख को भी सह लेगा ।

व्याख्या हौं रही भवन भाग लौलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु । तुलसीदास ऐसे विरह वचन सुनि कठिन हियो विहरचौ न आजु । पिय निठुर वचन कहे कारन कवन । जगदम्बा कहती हैं हसगवनि तुम नहि वन जोगू । यह वचन निष्ठुर है । हृदय विदारक है । आत्मा हि दारा सर्वपा दारसग्रहवर्तिनाम् । सो मुझ आप अपने से अलग समझ रहे हैं । अतः यह वचन निष्ठुर है । मुझे सुख भोगने के लिए घर छोड़ रहे हैं । अतः हृदयविदारक हैं । इस वचन से हृदय फट जाना चाहता था । सो नहीं फटा । ऐसा कठिन है । इससे तो यही अनुमान होता है कि यह नीच प्राण सरकार के वियोग का विषम दुख भी सह लेगा यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत ध्वनि है ।

अस कहि सीय विकल भइ भारी । वचन वियोग न सकी संभारी ॥

देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहि राखिहि प्राना ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर सीताजी अत्यन्त विकल हो गयी । वियोग के वचन को संभाल न सकी । दशा देखकर रामजी ने मन में समझ लिया कि हठ पूर्वक छोड़ जाने में यह प्राण छोड़ देगी ।

व्याख्या समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ से उपक्रम करके अस कहि सीय विकल भइ भारी से उपसहार करते हैं । वियोग तो दूर की बात है वियोग वचन के ही सुनने में असमर्थ हो गयी । भारी विकल हो गयी । अर्थात् मूर्च्छित हुई । यथा तुलसीदास प्रभु विरह वचन सुनि सहि न सकी मुष्टित भइ भामिनि । गो ।

उनकी यह दशा देखकर रामजी ने मन में समझ लिया कि ऐसी अवस्था में इन्हे घर रहने के लिए जोर देना हठ करना है। हठ इनका नहीं है। हठ मेरी ओर से हो रहा है। क्योंकि घर रखने से तो यह प्राण छोड़ देगी।

कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा । परिहरि सोचु चलहु वन साथ्या ॥
नहि विषाद कर अवसर आजू । वेगि करहु वन गवन समाजू ॥२॥

अर्थ : कृपालु सूर्यकुल के नाथ ने कहा कि सोच न करो। साथ में वन चलो। आज विषाद का अवसर नहीं है। जल्दी वन चलने की तैयारी करो।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के नाथ है। सूर्यकुल की रक्षा अपना कर्तव्य समझते हैं। सीताजी की दशा देखकर भगवती भास्वती अनुकम्पादेवी का उदय हुआ। क्योंकि सरकार स्वभाव से ही कृपालु है। कहने लगे कि अब सोच न करो। साथ में तुम भी वन चलो। आज ब्रह्मदेव सब प्रकार से मुझ पर अनुकूल हैं। अतः आज आनन्द के अवसर पर विषाद न करो। उठो! अब वन चलने की तैयारी करो।

कहि प्रिय वचन प्रिया समुझाई । लगे मातु पद आसिप पाई ॥
वेगि प्रजा दुख मेटव आई । जननी निष्ठुर विसरि जनि जाई ॥४॥

अर्थ : प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाकर माता को प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। माता बोली : जल्द आकर प्रजा का दुख मिटाना और अपनी निष्ठुर माता को भूल न जाना।

व्याख्या : सरकार ने प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाया। यथा :

सहि न सकिहि वन दुख समुझि रह्यौ प्रीति उर गोय ।

नतर तिहारे सगते वन नदनवन होय ॥

दोऊ कुल अनुरूप यह शुभ सकल्प तुम्हार ।

दम्पति सम्पति मे यथा तथा धर्म सहचार ॥

वेगि चलहु वनि धन रतन विप्रन्ह देहु बुलाय ।

आभूषन गुरु तिय चरन अरपित करहु सुभाय ॥

कठोर वचन से जो हृदय पर चोट हुआ था उसी के मिटाने के लिए प्रिय वचन कहकर सीताजी को समझाया। तत्पश्चात् विदा होने के लिए माता के चरणों में प्रणाम किया और माता ने आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद विदाई का है।

ऐसी दशा में भी माता को प्रजा की चिन्ता है। अतः कहती है कि तुम्हारे बिना प्रजावर्ग बड़ा दुखी होगा। यथा : राम दरस लागि लोग सब करत नेम उपवास । परिहरिभूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस । सो लौटने में जल्दी करना । चंदन वर्ष वियोग का दुख झेलना कठिन काम है। मैं निष्ठुर हूँ। भूल जाने लायक हूँ। पर माता का नाता स्मरण करके तुम भूल न जाना।

फिरिहि दसा विधि बहुरि कि मोरी । देखिहो नयन मनोहर जोरी ॥

सुदिन सुघरी तात कव होइहि । जननी जिअत वदन विधु जोइहि ॥४॥

अर्थ हे विधाता ! क्या मेरी दशा भी फिर फिरेगी । मैं इस मनोहर जोरी को आँख से देखूँगी वह शुभ दिन और शुभ घड़ी वेटा । कब आयेगी जब कि माता तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा जीते जी फिर देखेगी ।

व्याख्या : कैसी ग्रहदशा मेरे ऊपर आयी हुई है । क्या मेरे दिन फिर लौटेंगे । यह मनोहर जोड़ी आँख के ओझल चौदह वर्ष के लिए हुआ चाहती है । क्या मैं उस शुभ दिन और उस शुभ घड़ी तक जीती रहूँगी जब कि यह जोड़ी वन से लौटेगी और फिर मैं तुम्हारे मुखचन्द्र का दर्शन पाऊँगी । उस दिन के सुख को याद करके माता कहती है ।

दो बहुरि वच्छ कहि लालु कहि, रघुपति रघुवर तात ।

कवहि बोलाइ लगाइ हियँ, हरखि निरखिहुँ गात ॥६८॥

अर्थ . फिर कब वत्स कहकर, लाल कहकर, रघुपति, रघुवर और तात कहकर बुलाऊँगी और हृदय से लगाकर हर्षित होकर तुम्हें देखूँगी ।

व्याख्या . कौसल्याम्बा इन्हीं पाँच प्यार के शब्दों से रामजी को पुकारती थी । कभी वत्स, कभी लाल, कभी रघुपति, कभी रघुवर और कभी तात करके सम्बोधन करती थी । वह कहती है कि चौदह वर्ष ऐसा सम्बोधन के लिए अवसर न मिलेगा । किसे ऐसा सम्बोधन करके मैं बुलाऊँगी और हृदय में लगाकर हर्षित होकर शरीर की सुन्दरता देखूँगी । अतः मेरे सुख के दिन गये । अब देखें कब वे सुख के दिन लौटते हैं । मैं आशा लगाये उसी दिन की बाट जोहती रहूँगी ।

लखि सनेह कातरि महतारी । बचनु न आव बिकल भई भारी ॥

राम प्रबोधु कीन्ह विधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ . रामजी ने माता को स्नेह से ऐसा विह्वल देखकर कि मुख से वचन नहीं निबल रहा है और अत्यन्त विकल है नाना प्रकार से समझाया । उस समय का स्नेह वर्णन करते नहीं बनता ।

व्याख्या . कौमल्याजी बड़ी धैर्यवाली हैं । परन्तु माँ हैं । पुत्रवधू के विरह से अवलम्बनहीन सी होकर अत्यन्त विवल हो गयी हैं । सनेह कातरि : से मन की दशा कहा । बचनु न आव : से वाणी की दशा कहा । बिकल भई भारी : से तन की दशा कहा । रामजी ने देखा कि माँ अत्यन्त विवल है । साथ ले जाना धर्म नहीं है । महाराज का त्याग अनुचित है । अतः अनेक प्रकार से समझाया । यथा .

कवित्त

देमिवे मे दुग्न जो अपाग दिसरात मात, विये ते विचार तामे बछुह न सार है ।
जाते होत मिलन बिछोह पुनि नाने होत, योग औ वियोग को ही रूप ससार है ॥

याते सुख दुख को समान मानि धीर धरो, वर्ष दस चार बीतने मे नहि वार है ।
तेरे ही असीस लौटि वन ते नवैहों सीस, ईश की कृपा से पामे ढरत सुधार हैं ॥

कवि कहते हैं कि उस समय जैसा प्रेम उमड़ा उसका बखान नहीं किया जा सकता ।

तब जानकी सासु पग लागी । सुनिअ माय मै परम अभागी ॥
सेवा समय दैअं वनु दीन्हा । मोर मनोरथु सफल न कीन्हा ॥२॥

अर्थ तब जानकी सास के पाँव पड़ी और कहने लगी कि माँ सुनो । परम अभागिन तो मैं हूँ । मेरा सेवा करने का समय था । सो देव ने वन दे दिया । मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया ।

व्याख्या विदा होने के लिए पहिले रामजी पाँव पड़े । यथा लगे मातुपद आसिस पाई । इसके बाद जानकीजी के प्रणाम करने की वारी थी । पर माता ऐसी विरल हो गयी कि रामजी को बहुत भाँति समझाना पड़ा । जब कुछ शान्ति हुई तब जानकी पाँव पड़ी और बोली कि माँ परम अभागिनी तो मैं हूँ । आप अपने को अभागिनी क्यों मानती हैं । आपने तो अपना कर्तव्य भलीभाँति निवाहा । मुझे पालपोसकर बड़ी किया । अब मैं इतनी बड़ी हुई कि आपकी सेवा कर सकूँ । सो देव दुर्विपाक से मैं सेवा से वञ्चित हो रहा हूँ । मेरा इतना पुण्य नहीं कि आपकी सेवा कर सकूँ । मेरा मनोरथ मेरे मन में ही रह गया । अतः अभाग मेरा है । सेवा का छोना जाना बड़ा भारी अभाग्य है । सो मुझसे आपकी सेवा छिन गयी । आपको छोड़कर वन जाना पड़ा ।

तजब छोभु जनि छाँडिअ छोह । करमु कठिन कछु दोसु न मोह ॥
सुनि सिय वचन सासु अकुलानी । दसा कवनि विधि कहौ बखानी ॥३॥

अर्थ आप दुःख को छोड़ देना पर छोह न छोड़ना । कर्म बलवान् है । मेरा भी कोई दोष नहीं है । सीताजी का वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयी । उस दशा का वर्णन कैसे करें ।

व्याख्या मन की अस्थिरता को क्षोभ कहते हैं । सीताजी कहती हैं कि मेरे जाने से जो आपको क्षोभ हो रहा है सिय वन वसर तात केहि भाँती । सो क्षोभ को आप छोड़ दीजियेगा । यह क्षोभ आपको कष्ट देगा । पर छोह बनाये रखियेगा । क्योंकि आपके छाह से ही हमारा कल्याण है । मैं जो इस समय आपको छोड़ रही हूँ सो दैववश होकर छोड़ रही हूँ । इच्छा पूर्वक नहीं छोड़ रही हूँ । ऐसा ही कर्म फलोन्मुख हुआ है जिससे आपको छोड़ना पड़ रहा है ।

सीताजी के प्रेम और विवेकमय वचन सुनकर इनके गुणों को स्मरण करके फिर चित्त अशान्त हो उठा । व्याकुल हो गयी । उनकी दशा कहने की कोई विधि ही नहीं बैठती । तजब छोभ जनि छाँडिअ छोह । इस वाक्य में जो भाव भरे हुए है

उन्होंने कौसल्याजी के हृदय में सीताजी की कीमत् और बढ़ा दी । अतः रामजी के समझाने से जो विवर्लता कुछ कम हुई थी वह और बढ़ गयी ।

वारहि वार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा । जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥४॥

अर्थ : बार बार कौसल्याजी ने सीताजी को हृदय से लगाया । धैर्य धारण करके शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गङ्गा और यमुना में जल धारा है तब तक तुम्हारा सोहाग बना रहे ।

व्याख्या : सीता जी को हृदय से लगा लिया । एक बार के लगाने से सन्तोष नहीं होता । अतः बार बार हृदय से लगाती है । फिर धैर्य धारण करके वन में किस प्रकार से रहना चाहिए इस बात की शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया ।

स्त्रियो के लिए सोहाग से बढ़कर और कुछ नहीं है । उसके अचल होने का आशीर्वाद सास दे रही है । पर संसार में अचल कुछ भी नहीं सभी ओर से चलाचली है । यहाँ नित्यता प्रवाह रूपेण ही सम्भव है । अतः गङ्गा और यमुना की उपमा दी । अन्तिम कलियुग में गङ्गा का लोप कहा जाता है । अतः यमुना को भी साथ में कहा । अथवा सोहाग के बने रहने में दोनों का बना रहना आवश्यक है । गङ्गा यमुना दोनों मिलकर बहनेवाली नदियों की उपमा दी ।

दो सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार ।

चली नाइ पद पदुम सिरु, अति हित वारहि वार ॥६९॥

अर्थ : सीताजी को सास ने अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया और शिक्षा दी । सीताजी अत्यन्त प्रेम से बार बार चरणों में सिर झुकाकर चली ।

व्याख्या : पहिले कहा था 'मैं सिख देऊँ जानकिहि सोई' । सो इस समय वनवास के विषय में शिक्षा दी और सौभाग्यवती भव, पुत्रवती भव आदि अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया । अब सीताजी विदा होती हैं । अत्यन्त प्रेम से बार बार चरण कमलों में प्रणाम करती हैं । सास ने अत्यन्त प्रेम से बार बार हृदय से लगाया । वधू फिर भी अत्यन्त प्रेम से बार बार चरण कमलों में नत होती है ।

१२. राम लक्ष्मण संवाद

समाचार जब लछिमन पाये । व्याकुल विलख वदन उठि धाये ॥

कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥१॥

अर्थ : जब लक्ष्मणजी ने समाचार पाया व्याकुल होकर म्लान मुख किये हुए उठकर दौड़ पड़े । उनके शरीर में कम्प था । आँखों में आँसू भरा था । प्रेमाधिक्य से अधीर होकर चरण पकड़ लिया ।

व्याख्या : समाचार ही ऐसा था कि जो सुनता था विवर्ल हो जाता था ।

यथा : जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई । बड विपाद नहिं धीरज होई । कौसल्याजी के लिए कहा गया : सहमि सूखि सुनि सौतल बानी । जिमि जवास परे पावस पानी । कहि न जाइ कछु हृदय विपाद । मनहु मृगो सुनि केहरि नाद । नयन सजल तन थर थर काँपी । माजहि खाइ मीन जनु मापी । सीताजी • समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ । यहाँ तो • वारहिं ते निजहित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी । अतः लक्ष्मणजी को समाचार सुनते ही ऐसी व्याकुलता बढी कि विपाद की रेखा मुख पर स्पष्ट दिखलायी पड़ी और दौड पडे । घर मे न किसी से कुछ कहा न सुना । मानो किसी से कोई सम्बन्ध ही नही है । अति उत्सुकता साथ जाने की है । कौसल्याजी के महल के बाहर आते हो आते रामजी के चरणो को व्याकुल होकर जा पकडा । प्रेमाधिक्य के कारण धैर्य छूटा जा रहा है । शरीर मे काँप है । पुलक है । आँखो मे आँसू भरा है ।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढे । मीनु दीनु जनु जल तें काढे ॥
सोचु हृदय विधि का होनिहारा । सबु सुख सुकृतु सिरान हमारा ॥२॥

अर्थ : कुछ भी बोल न सके । खडे खडे देखने लगे । जैसे जल से निकाली हुई मछली दीन हो जाय । मनमे सोच रहे है कि हे विधाता । क्या होनेवाला है । मेरा तो सब सुख और पुण्य समाप्त हो गया ।

व्याख्या . कौसल्याजी की भाँति इनके मुख से भी बोली नही निकल रही है । इनके जाकर चरण पकड़ लेने से सग़्कार खडे हो गये । अब लक्ष्मणजी को जो कुछ कहना है उसके लिए निवेदन करने का अवसर है । पर इनकी दशा जल से बाहर निकाली हुई मछली की सी हो रही है । अनिमेप नयन से खडे खडे देख रहे हैं । मछली को पलक होती नही । बोल सकती नही । जल के बिना दीन हो जाती है और उस दीनता के व्यक्त करने का भी कोई साधन नही । होनहार क्या है । कुछ सूझ नही पडता । बस इतनी बात समझ मे आ रही है कि मेरा सब पुण्य समाप्त हो गया । सुख समाप्त होने पर भी यदि पुण्य शेष रहे तो काल पाकर फिर सुख हो सकता है और यदि पुण्य भी समाप्त हो जाय तो फिर मुख की आशा ही नही । यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद त्रिमल विधु वदन निहारे ।

मो कहँ काह कहव रघुनाथा । रखिहहि भवन कि लेहहि साथा ॥
राम विलोकि बधु कर जोरे । देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥३॥

अर्थ मुझे रघुनाथजी क्या कहेंगे ? घर मे रखेंगे कि साथ लेंगे । रामजी ने भाई को हाथ जाडे हुए देह घर सबकी उपेक्षा तृण के समान किये हुए देखा ।

व्याख्या : रघुकुल के नाथ है । जो इनकी आज्ञा होगी सो हुंटाया नही जा सकता । करना ही पडेगा । सीताजी को साथ ल लिया । देखे मेरे लिए क्या आज्ञा होती है । यद्यपि वे अर्धाङ्गिनी हैं । पर मेने भी वचन से साथ नही छोडा है । परिस्थिति ऐसी है कि मुझे घर रहने के लिए छोड़ भी सकने हैं और सेवा के लिए

साथ भी ले सकते हैं। सीताजी के साथ होने से मेरी बड़ी आवश्यकता है। अतः लक्ष्मणजी संशय में पड़े हुए हैं।

इधर रामजी ने लक्ष्मण को देखा कि हाथ जोड़े खड़े हैं। कुछ कहते नहीं। इतना कहने से सब कुछ कह दिया। लक्ष्मण के देखने से मालूम होता है कि घर की उपेक्षा तृण की भाँति किये हुए तो ये आ ही रहे हैं देह की भी इन्हे अपेक्षा नहीं है। स्वयं चक्रवर्तीजी की भाँति बिना जल के मछली की सी दशा हो रही है।

बोले बचनु राम नयनागर। शील स्नेह सरल सुख सागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥४॥

अर्थ : नीति में निपुण शील स्नेह सरलता और सुख के सागर कहने लगे कि हे तात ! प्रेम के वश होकर धैर्य न छोड़ो। हृदय में समझो कि इसका परिणाम उत्साहमय है।

व्याख्या : सरकार नीति में निपुण हैं। ऐसे समय में लक्ष्मणजी को अयोध्या से हटाना नहीं चाहते। शील और स्नेह के कारण घर रहने की आज्ञा देते भी नहीं बनता। सरल हैं। जो बात मनमें है वही कहेंगे और सुख के सागर है। उनके मनमें कोई विकार नहीं है। इस समय भी सुखी हैं। सागर चार है। इसलिए शील स्नेह सरलता और सुख चारों का समुद्र कहा।

सरकार ने कहा कि मनुष्य को सात्त्विक सुख के लिए यत्नशील होना चाहिए। जो आरम्भ में विष की भाँति प्रतीत होता है और परिणाम में अमृत सा मधुर है वही सात्त्विक सुख है। मेरे वन जाने का परिणाम बड़ा उत्साहमय होगा। बहुत बड़े यश की प्राप्ति होगी। अतः प्रेम के वश धैर्य त्याग न करो। धैर्य छोड़ने की कोई बात नहीं है।

दो. मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहि सुभायँ।

लहेउ लाभु तिन्ह जनमकर, नतरु जनमु जग जायँ ॥७०॥

अर्थ : जो स्वभाव से ही माता पिता गुरु और स्वामी की शिक्षा शिरोधार्य करते हैं उनका ही जन्म सुफल है। नहीं तो जगत् में जन्म ही व्यर्थ है।

व्याख्या : जो शिक्षा भगवती को दी थी वही लक्ष्मणजी को दे रहे हैं। यथा : सहज सुहृद् गुरु स्वामि सिख जो न करै हित मानि। सो पछिताइ अघाइ उर अबस होइ हित हानि। भेद इतना ही है कि सीताजी का साथ चलना धर्मतः प्राप्त है लक्ष्मणजी का वैसा नहीं है। सरकार अपने लिए कहते हैं कि मैं तो अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। अतः यहाँ दुःख की कोई चर्चा नहीं है। तुम भी माता पिता की सेवा करके जन्म सफल करो। तुम्हारा धर्म माता पिता की सेवा है। मेरे साथ चलना तुम्हारा धर्म नहीं है। यदि माता पिता की आज्ञा न माने तो मेरा जन्म होना ही निष्फल हो जायगा। तुम्हें आज्ञा है नहीं। तुम माता पिता की सेवा छोड़कर जन्म को व्यर्थ क्यों करते हो।

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई । करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥

भवन भरतु रिपुसूदनु नाही । राज वृद्ध मम दुख मन माही ॥१॥

अर्थ हे भाई । ऐसा मन मे समझकर मेरी शिक्षा सुनो । माता पिता के चरणों की सेवा करो । भरत शत्रुघ्न नहीं हैं । महाराज वृद्ध हुए । तिस पर उनके मन मे मेरा दुःख है ।

व्याख्या तुम भाई हो । स्त्री की दूसरी बात है । उसका धर्म मेरी सेवा है । उसने मेरी शिक्षा यदि नहीं सुनी चलने के लिए हठ किया तो उसके धर्मानुकूल था । तुम्हारा धर्म तो माता पिता की सेवा है । उनके सामने भाई की क्या गिनती है । तुम उनकी सेवा करो । यदि भरत शत्रुघ्न घर होते तो भी एक बात थी कि वे माता पिता की सेवा कर लेंगे और राज्य भी संभाल लेंगे । सो वे भी घर नहीं है । यदि कहो कि महाराज तो हई हैं उन्हें सेवको का क्या घाटा है ? तो यह बात भी नहीं । महाराज वृद्ध हुए । अब उनका किया कुछ हो नहीं सकता । तिस पर मेरे लिए वे दुःखी हैं । उनसे कुछ करने धरने की आशा नहीं की जा सकती । इस दुःख की अवस्था में सेवको से उनको सान्त्वना नहीं हो सकती । तुम्हारे पास रहने से ही उन्हें ढाँढस बँध सकता है ।

मै वन जाउँ तुम्हहि लेइ साथी । होइ सबहि विधि अवध अनाथी ॥

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारु । सब कहूँ परइ दुसह दुख भारु ॥२॥

अर्थ यदि मैं तुम्हें साथ लेकर वन चला जाऊँ तो सब प्रकार से अवध अनाथ हो जायगा । गुरु पिता माता और कुटुम्ब सभी पर न सहने योग्य दुःख का बोझा आ पड़ेगा ।

व्याख्या सीताजी के साथ ल जाने से अवध अनाथ न होगा । इस समय मेरे ही जाने से अवध के लोग अपने को अनाथ समझेंगे । यदि तुम साथ चले तब तो अवधनाथ के रहते भी प्रजा अपने का सब विधि से अनाथ समझेंगी । तुम्हारे रहने से सबको ढाँढस बँधा रहेगा कि कम से कम लक्ष्मण तो हैं । सब संभालेंगे । गुरु पिता और माता राज्यरक्षक और प्रजा तथा परिवार रक्ष्य हैं । सो सब पर नहीं सहने योग्य दुःख का बोझा आ पड़ेगा । मैं तुम्हें दुःख का बोझा संभालने के लिए यहाँ छोड़ता हूँ । जिसम इन लोगों को जिनके ऊपर दुःख का आना किसी प्रकार इष्ट नहीं है असह्य दुःख न आ पड़े ।

रहहु करहु सब कर परितोष । नतरु तात होइहि बड दोष ॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥३॥

अर्थ तुम घर रहो । सबका परितोष करो । नहीं तो भाई तुम्हें बड़ा दोष लगेगा । जिसके राज्य मे प्रिय प्रजा दुःखी हाती है वह राजा निश्चय नरक का पात्र हो जाता है ।

व्याख्या : इसलिए तुम्हारा साथ चलना किसी प्रकार से उचित नहीं है। तुम घर रहो और सबका परितोष करो। यदि तुमने ऐसा न किया तो बड़ा भारी दोष होगा। सबके दुःख के कम करने का सामर्थ्य रहते हुए भी जो दूर नहीं करता केवल मोह के वश यथेच्छाचरण करता है वह निश्चय दोषी है। हे भाई ! तुम व्यर्थ दोषी क्यों बनते हो ? दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि जो नरक से पिता की रक्षा करे वही पुत्र है। जो ऐसा नहीं करता वह पुत्र कैसा ? अरक्षित होकर प्रजा के दुःखी होने का पाप महाराज पर पड़ेगा। क्योंकि राजा वे ही है। उनका परलोक यदि हम लोगो के रहते बिगड़ा तो हम लोगों का पुत्र होना ही व्यर्थ हो जायगा। रञ्जनात् राजा। राजा शब्द का अर्थ ही यह है कि प्रजा को सुख देने-वाला। सो हम लोगो के रहते महाराज की गणना शोचनीयों में नहीं होने पावे। यथा : सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।

रहहु तात असि नीति विचारी। सुनत लखनु भये व्याकुल भारी ॥
सिअरे वचन सूखि गये कैसें। परसतु तुहिन तामरसु जैसे ॥४॥

अर्थ : ऐसी नीति विचार करके तुम घर पर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी भारी व्याकुल हुए। शीतल वाणी से ऐसे सूख गये जैसे पाला के छू जाने से कमल सूख जाता है।

व्याख्या : हे भाई ! नीति का विरोध नहीं करना चाहिए। नीति विरोध सोहाय न मोही। अतः न चाहते हुए भी नीति का विचार करके घर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। पहिले ही : व्याकुल बिलखि वदन उठि धाये। अब तो भारी व्याकुल हुए। सरकार के शीतल वचन सुनकर वे तो सूख गये कि वही बात तो हुई जिसे मैं डरता था। श्रीगोस्वामीजी उपमा देते हैं कि जैसे शीतल पाला के स्पर्श से कमल सूख जाता है। भाव यह कि लक्ष्मणजी भी चक्रवर्तीजी की भाँति विवर्ण हो गये।

दो. उत्तर न आवत प्रेम वस, गहे चरन अकुलाइ।

नाथ दासु मई स्वामि तुम्ह, तजहु त काह वसाइ ॥७१॥

अर्थ : उत्तर रहते हुए भी प्रेम के वश हो जाने से देते नहीं बनता। आकुल होकर चरण पकड़ लिया : कहने लगे कि : नाथ ! मैं दास हूँ। आप स्वामी हैं। यदि त्याग दें तो मेरा वश क्या है।

व्याख्या : जितनी बातें सरकार ने कही लक्ष्मणजी के पास सबके उत्तर हैं। पर लक्ष्मणजी प्रेम के पराधीन हो गये हैं। देना चाहने पर भी देने में असमर्थ हैं। पहिले : गहे चरन अति प्रेम अधीरा। अब : गहे चरन अकुलाइ। विरह निश्चित मालूम होता है। अतः व्याकुल हैं। चुप रह जाने से स्वीकृति द्योतित होती है। अतः दो शब्दों में जो कुछ कहना था सब कह दिया। आप स्वामी हैं। मैं दास हूँ। यदि त्याग करें तो क्या वस है। भाव यह कि आप बारबार भाई कहते हैं और

भाई को जैसी शिक्षा देनी चाहिए वैसी शिक्षा देते हैं। पर मैं तो दास हूँ। वारहि ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी। आप स्वामी है। स्वामी को दास के परित्याग का अधिकार है। यदि आप त्याग करते हैं तो मेरा कौन जोर है। ये सब कही हुई बातें मेरे चलने में बाधक नहीं हैं। आपकी आज्ञा बाधक है।

जिस भाँति ज्ञान और उपासना : भक्ति की समस्या पर उत्तरकाण्ड में विचार है उसी भाँति कर्म और भक्ति की समस्या पर यहाँ प्रकाश डाला गया है।

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराई ॥
नर वर धीर धरम धुरधारी। निगम नीति कहूँ ते अधिकारी ॥१॥

अर्थ : गोसाईं ने तो मुझे अच्छी शिक्षा दी। पर अपनी कायरता से मुझे अगम जान पड़ती है। जो धीर धर्म की धुरा के धारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष हैं वे ही वैदिक नीति के अधिकारी हैं।

व्याख्या : अब लक्ष्मणजी प्रत्येक बातों के विषय में कुछ कहेंगे। क्योंकि वे सब उन्हें स्वीकार नहीं हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं कि सरकार की शिक्षा बड़ी पवित्र बड़े उदार भाव की तथा सुगम है। पर मैं उसका अधिकारी नहीं। मुझसे ऐसा हो नहीं सकता। परिणाम में उछाह होगा। इस भरोसे मुझसे यह दुःख नहीं सहा जायगा। मुझमें साहस की बड़ी कमी है। मैं कायर हूँ। यह विनय : तात प्रेम बस जानि कदराहूँ के उत्तर में है।

इसके बाद : मातु गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहि सुभाय इत्यादि के उत्तर में कहते हैं कि सरकार ने वैदिकी नीति का वर्णन किया जिससे जन्म सफल होता है। मैं उसका भी अधिकारी नहीं। धीर पुरुष जो धर्म की धुरा के धारण में समर्थ हैं वे ही वैदिकी नीति के अधिकारी हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मदरु मेरु कि लेहि मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥२॥

अर्थ : मैं तो बच्चा हूँ। सरकार के प्रेम से पला हूँ। क्या हंस मन्दर मेरु उठा सकता है। मैं गुरु पिता माता किसी को नहीं जानता। मैं स्वभाव कहता हूँ नाथ विश्वास करें।

व्याख्या : सरकार जानते हैं कि मैं भी शिशु ही हूँ। ससार के प्रपञ्च से अपरिचित हूँ। सरकार ने कहा भी है : सूध दूध मुख करिय न कोहू। कमल के पत्ते पर बैठनेवाले हंस में इतना सामर्थ्य कहाँ कि मन्दर मेरु को उठा सके। मुझे तो सरकार ने स्नेह से पाला है। कभी कोई बोझा मेरे ऊपर आने ही नहीं दिया। मैं मेरु मन्दर सदृश गुरु भारवाले निगम धर्म को कैसे उठा सकता हूँ? यह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मैं अवध को सनाथ नहीं कर सकता।

अब गुरु पितु मातु प्रजा परिवार । सब कहँ परइ दुसह दुख भारू आदि
का उत्तर देते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि मैं गुरु पिता माता किसी को नहीं
जानता । मैं अपने हृदय का भाव कहता हूँ । सरकार विश्वास करें । भाव यह कि
सबकी ममता का तागा इकट्ठा करके लक्ष्मणजी डोरी बरकर सरकार के चरणों में
दृढ़ता के साथ बाँध चुके हैं । अतः कहते हैं

जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबधु उर अतरजामी ॥३॥

अर्थ जगत् में जितने नेह और नाते हैं और स्वयं वेद ने जिस प्रीति और
प्रतीति का गान किया है । हे स्वामी दीनबन्धु, उर प्रेरक । मेरे तो सब कुछ
आप ही हैं ।

व्याख्या त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव । त्वमेव
विद्या द्रविण त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव । यह भाव मुझे स्वभावसिद्ध है । अतः मेरे
सर्वस्व आप ही हैं । मैं बिना आपके दीन हूँ । आप दीनबन्धु हैं । अपना साथ न
छोड़ाइये । आप स्वामी हैं । नाथ हैं । मुझे अनाथ न कीजिये । आप अन्तर्यामी हैं ।
बिना आपकी प्रेरणा मेरी बुद्धि ऐसी हुई कैसे ?

धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम वचन चरन रत होई । कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥४॥

अर्थ धर्म नीति उसे उपदेश करना चाहिए । जिसे कीर्ति ऐश्वर्य और
सद्गति प्रिय हो । मनसा वाचा कर्मणा जो चरण में रत हो हे कृपासिन्धु । क्या
उसे छोड़ा जाता है ?

व्याख्या रहहु करहु सबकर परितोपू । नतर तात होइहि बड दोष इत्यादि
का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे न कीर्ति चाहिए न ऐश्वर्य चाहिए और न
शुभगति चाहिए । जिन्हे इन सब वस्तुओं की अपेक्षा हो उन्हें धर्म नीति का
उपदेश उचित है । यहाँ तो सो सब करम धरम जरि जाऊ । जहाँ न रामपद पकज
भाऊ । जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू । जहाँ नहि राम प्रेम परधानू सिद्धान्त है । मैं
तो मनसा वाचा कर्मणा सरकार का दास हूँ । मेरे छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं
उठाना चाहिए ।

दो करुनासिंधु सुबधु के, सुनि मृदु वचन विनीत ।

समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह समीत ॥७२॥

अर्थ . करुणासिन्धु रामजी ने सुबन्धु के कोमल और विनीत वचन सुनकर
स्नेह से डरा हुआ जानकर हृदय में लगाकर समझाया ।

व्याख्या रहहु तात अमि नीति विचारो । सुनत लखनु भये व्याकुल भारो ।
लक्ष्मणजी की व्याकुलता देखकर करुणासिन्धु प्रभु ने जाना कि यह सुबन्धु है ।

स्नेह से समीत हो गया । अतः व्याकुलता मिटाने के लिए बलेजे से लगा लिया और रामझाया । यथा :

सवैया : तुम्हरोइ भरोस हमेस हमें तुमही मम जीवन को रखवारे ।
तजि देह सकों न सको तजि तोहि तुही विजयानंद प्राण पियारे ॥
मन मे न धरो कछु हानि गलानि करें हम सोइ जोई निरधारे ।
यह प्रेम को नेम न टारे टरे हम भक्तन के अरु भक्त हमारे ॥
पाँस पसेरन को प्रिय ज्यौ फनि को मनिज्यौ करिको कर जैसे ।
तू प्रिय मोहि तथा विजयानंद आनत क्यों उर ख्याल अनीसे ॥
देखि दुखी परिवार कछी सो यथा रुचि तात करो तुम तैसे ।
वाम तजौ धन धाम तजौ वरु प्राण तजौ मैं तजौ तोहि कैसे ॥

माँगहुँ विदा मातु सन जाई । आवहु वेगि चलहु वन भाई ॥
मुदित भये सुनि रघुवर वानी । भयउ लाभ बढ गइ बड़ि हानी ॥१॥

अर्थ : हे भाई ! माताजी से विदा माँगो । जल्दी आओ और वन चलो । रामजी की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये । बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि दूर हुई ।

व्याख्या : रामजी के पास : मन क्रम वचन चरन रति होई । कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई का उत्तर नहीं था । अतः कहा कि मेरी ओर से अब रोक नहीं है । यदि माता आज्ञा दे दे । माता की आज्ञा सर्वोपरि है । वेद ने पहिले मातृदेवो भव कहा । पितृदेवो भव पीछे कहा । यति पिता से भी बन्ध है पर उसे भी माता की वन्दना का विधान है । पर सुमित्रा माता आज्ञा दे देगी । तुम जाओ उनसे आज्ञा माँगो और वन चलने के लिए जल्दी करो । सरकार को वन जाने की बड़ी जल्दी है । माता ने कहा है होत प्रातु मुनि वेप धरि जी न राम वन जाहि इत्यादि । अतः सीताजी से भी कहा . वेगि कन्हु वन गवन समाजू ।

वन गमन का समाचार सुनकर व्याकुल हो गये थे । सो सरकार की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये । क्योंकि बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि गयी । सरकार की सेवा : भक्ति ही लाभ की पराकाष्ठा है और सेवा न करना ही बड़ी भारी हानि है । यथा : लाभ कि कछु हरि भगति समाना । जेहि गावहि श्रुति संत पुराना । हानि कि कछु एहि सम जग भाई । भजिअ न रागहि नर तनु पाई । अतः लक्ष्मण जी प्रसन्न हो उठे ।

हरपित हृदय मातु पहि आए । मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाए ॥
जाइ जननि पग नायेउ माथा । मनु रघुनंदनु जानकि साथ ॥२॥

अर्थ : प्रसन्न मन से माता के पास आये । मानो अन्धे को फिर से आँख मिल गयी । जाकर माता के चरणों में सिर नवाया । परन्तु मन तो रामजानकी के साथ था ।

व्याख्या जन्मान्ध को अन्धेपन का दुख नहीं होता जन्मान्ध को यदि आँख मिल जाय तो वह बड़ी विपत्ति में पड़ता है। इतना बड़ा ससार उसके सामने आ जाता है। उसके समझ में नहीं आता कि यह क्या है? कई महीने की शिक्षा के बाद उसे बन्द दरवाजा और खुले दरवाजा का भेद मालूम होता है। रंग पहिचानने में महीनों लग जाते हैं। उसे आँख मिलने से आनन्द नहीं होता। आनन्द तो उसको होता है जो बीच में अन्धा हो जाता है और फिर आँख हो जाती है। लक्ष्मणजी को राम जानकी दोनों आँखों की भाँति थे। उनके विरह में अन्धे से हो गये थे। सूझ नहीं पड़ता था कि क्या होनेवाला है। जब सरकार ने साथ वन चलने को कहा तो मानो गयी हुई आँखें फिर मिल गयी। ऐसी प्रसन्नता हुई। उसी खुशी से माँ के पास आये।

जाकर माँ को प्रणाम किया। पर मन उड़ा हुआ था। वह तो राम जानकी के साथ था। मन दूसरी जगह है। प्रणाम दूसरी जगह हो रहा है। रसम की तामीली मात्र हो रही है।

पूछे मातु मलिन मनु देखी। लपन कही सब कथा विसेखी ॥
गई सहमि सुनि वचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा ॥३॥

अर्थ मलिन मन देखकर माता ने पूछा। तब लक्ष्मणजी ने सब विशेष कथा कह सुनायी। कठोर वचन सुनकर। माँ सहम गयी। जैसे चारों ओर वन में आग लगी हुई देखकर मृगी घबड़ा जाय।

व्याख्या चित्त के मल से ही मन मलिन होता है ऐसी बात नहीं है। चित्त के विशेष से भी मन मलिन होता है। जैसे चञ्चल जल प्रतिबिम्ब के स्पष्ट ग्रहण में असमर्थ होता है। यद्यपि लक्ष्मणजी प्रसन्न थे। पर माँ है उसने आभ्यन्तर चञ्चलता को देखा। जिसका कारण सरकार का वन जाना था। तब माता ने पूछा कि क्या बात है? रामजी के अभिप्रेत की बात तो माँ जानती ही थी। रात में कैकेयी के वरदान माँगनेवाली ही क्या विशेष थी। उसे लक्ष्मण ने कह सुनाया।

उस कठोर वचन को सुनकर एक बार तो माता सुमित्रा की वही दशा हो गयी जो महाराज की हुई थी। यथा गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा। जिमि सचान वन झपटेउ लावा। माता सहम गयी। कुछ कहते सुनते न बना। उसे चारों ओर आग ही आग दिखायी पड़ी। १ पति वियोग २ पुत्र वियोग ३ राम सीता वियोग और ४ राज्य नाश। उसकी वही दशा हुई जो चारों ओर वन में आग देखकर मृगी की हो जाती है। विधि कैकयी किरातनि कीन्ही। जिन दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करव अकाजू ॥
मागत विदा सभय सकुचाही। जाइ सग विधि कहिहि कि नाही ॥४॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने लखा कि आज अनर्थ हुआ। यह प्रेम के वश होकर काम

विगाडेगी। विदा माँगने में भय के साथ सङ्कोच होता था कि हे विधाता ! साथ जाने को कहेगी या नहीं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को साथ जाना है। इसलिए विदा माँगने आये हैं। पर माता की अवस्था देखकर विदा माँगने में सङ्कोच हो रहा है। कैसे विदा माँगें ? इसकी दशा तो बहुत खराब हो गयी। विदा माँगने में डर भी लगता है कि वही नहीं न कह बैठें। फिर रामजी साथ न ले जायेंगे। विश्वामित्र यज्ञ रक्षा में जब मैं सरकार के साथ गया तब इसने नहीं रोका था। आज की बात कुछ दूसरी दिखायी पड़ती है। यह प्रेम के वश मुझे रोकना चाहती है और इसने यदि रोका तो अनर्थ हो गया। मेरा तो सब सुख सुकृत ही समाप्त हो जायगा।

दो. समुझि सुमित्रा राम सिय, रूपु सुसीलु सुभाउ ।

नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु, पापिनि दीन्हि कुदाउ ॥७३॥

अर्थ सुमित्राजी ने राम जानकी के रूप शील और स्वभाव को स्मरण करके और चक्रवर्तीजी के प्रेम को लख करके गिर पीटने लगी कि पापिनी ने भारी दगा दिया।

व्याख्या : सुमित्राजी ने राम जानकी के वनवास को सुनकर उनके रूप शील और स्वभाव का स्मरण किया कि ऐसे बेटे का वन भेजना क्या सामान्य बात है। फिर चक्रवर्तीजी के प्रेम पर दृष्टि डाला तो यही मालूम हुआ कि महाराज तो प्राण ही छोड़ देंगे। अतः अति व्याकुलता में सिर पीटने लगी। बोल उठी कि कैकेयी पापिनी है। इसके हृदय में बड़ा कपट था और सदा उसे छिपाये रही। मुँह से भरत न मोहि प्रिय राम समाना कहती थी। सदा सबसे प्रेम से मिलती थी। यथा : कबहुँ न कियेउ सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू। इसीसे महाराज ने धोखा खाया। यथा : सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ।

धीरजु धरेउ कुअवसरु जानी। सहस सुहृद बोली मृदुबानी ॥

तात तुम्हारि मातु वंदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥१॥

अर्थ : कुअवसर जानकर धैर्य धारण किया। सुमित्राजी स्वभाव से ही सुहृद थी। अतः मोठे वचन कहे। हे तात ! तुम्हारी तो माता जानकी है और सब भाँति स्नेह करनेवाले रामजी पिता हैं।

व्याख्या : आपत काल परिलिये चारी। धीरज धर्म मित्र अरु नारी। सो सुमित्राजी ने धैर्य धारण किया। सच्ची भलाई लक्ष्मणजी की देखी। लडका रामजी की सेवा से वञ्चित हो जायगा ऐसा समझकर मोठे शब्दों में बोली। स्वभाव से सुहृद थी। अतः रामजी के सम्मुख होते देखकर सहायक हुईं जरउ सो सपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ।

लक्ष्मणजी विदा माँगने से समीत और सङ्कुचित हो रहे हैं। इस बात को लख लिया। अतः उनके बिना कुछ वहे ही कहती हैं कि तुम्हारी माता तो जानकी

और पिता रामजी हैं। तुमने सदा हो ऐसी भावना की है और वे भी तुम्हें प्राण समान प्यारा मानते हैं। यथा : पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुवीरहि प्रान पियारे। तुम मुझसे आज्ञा माँगने क्यों आये ? उन्हीं से आज्ञा माँग लेना था।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥

जौ पै, सीय राम वन जाही। अवध तुम्हार काजु कछु नाहो ॥२॥

अर्थ : जहाँ राम रहे वही अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। यदि राम जानकी वन जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कोई काम नहीं है।

व्याख्या : कहती है कि जिस भाँति राम जानकी पिता माता हैं उसी प्रकार जहाँ वे रहे वही अयोध्या है। यदि वे वन में रहे तो वन ही अयोध्या है। बिना राम के अयोध्या कैसी। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अधियारी। उपमा देती हैं कि जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। प्रकाश तो चन्द्र से भी होता है। अग्नि से भी होता है। पर दिन नहीं हो जाता। यथा : राका समि पौड़श उवहि तारागन समुदाइ। सरल गिरिन्ह दव लाइये विनु रवि रात न जाइ। दिन तो सूर्य के प्रकाश से ही होता है। भाव यह कि रामजी के चले जाने से अवध का आनन्द चला जायगा और उनके बसने से जङ्गल में मङ्गल होगा। यथा : राम वास वन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा इत्यादि।

यदि सीता राम वन जाते हैं तो तुम यहाँ रहकर क्या करोगे। अवध उजाड़ हो जायगा। तुम्हारे बसाये नहीं बसेगा। माँ जानती हैं कि बिना राम जानकी के यह जी नहीं सकता। लक्ष्मणजी के रख लेने पर वटुता बढ़ जाने की आशङ्का थी। अतः कहते हैं कि अवध तुम्हार काज कछु नाही। तुम्हारे रामजी के साथ रहने में ही कुशल है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाई ॥

रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबही के ॥३॥

अर्थ : गुरु पिता माता बन्धु देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। राम तो प्राण से भी प्यारे हैं। प्राण के प्राण हैं और सबके स्वार्थ रहित सखा हैं।

व्याख्या : शरीर में पाँच प्राण हैं। प्राण अपने व्यान समान और उदान उसी भाँति पाँच बहिश्चर प्राण हैं : गुरु पिता माता भाई और स्वामी। अतः इनकी सेवा भी प्राण की भाँति ही करनी चाहिए। परन्तु रामजी तो प्राण के भी प्राण हैं। अतः प्राण से भी प्यारे हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं। ईश्वर का जीव से स्वार्थ रहित सख्य है। द्वामुपर्णा सयुजा सखाया इत्यादि श्रुति प्रमाण है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेह। अतः इन बहिश्चर प्राणों की उपेक्षा करके भी राम जानकी की सेवा करनी चाहिए।

माता लक्ष्मणजी के सब प्रकार के भय और सङ्कोच का निराकरण करती

हैं। राम जानकी को माता पिता बतलाकर उनके निवास को अयोध्या बतलाकर भय दूर करती है और गुरु पिता माता भाई और देवता यद्यपि ये पाँचो बहिश्चर प्राण की भाँति हैं। पर इन्हे भी प्राण के प्राण स्वामी राम के लिए छोड़ा जा सकता है। यह कहकर सङ्कोच को दूर करती हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहि राम के नाते ॥
अस जिय जानि सग वन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ जहाँ तक पूज्य और परम प्रिय है सबको राम के नाते से मानना चाहिए। ऐसा मनमें समझकर उनके सग वन जाओ और बेटा। ससार में जीने का लाभ उठाओ।

व्याख्या यदि राम से नाता है तभी पूज्य पूज्य हैं और प्रिय प्रिय हैं। यदि राम से नाता नहीं तो वे पूज्य भी नहीं प्रिय भी नहीं। उनका त्याग ही हितकर है। यथा जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही। ऐसा मनमें निश्चय करके निश्चिन्त होकर वन में जाओ और अपने जीवन को सफल बनाओ। यथा जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मनु लावा।

दो भूरि भाग भाजनु भयेउ, मोहि समेत बलि जाउँ।

जौ तुम्हारे मनु छाँडि छलु, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७४॥

अर्थ यदि तुम्हारे मन ने छल छोड़कर रामजी के चरणों का आश्रय किया तो मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुम तो हुए ही तुम्हारे साथ मैं भी बड़ी भाग्यवती हो गयी।

व्याख्या जब तक राज्य की आशा थी तब तक रामजी के सेवन में स्वार्थ की भी सम्भावना थी। अब तो राज्य की कोई आशा नहीं। उलटा वन जाना पडा। इसी समय की सेवा सच्ची सेवा है। जिसमें स्वार्थ की गन्ध नहीं है ऐसे समय में रामचरणा का आश्रय करना अहोभाग्य है। सो तुम महाभाग्यवान् हुए और मुझे भी महाभाग्यवती बनाया। आज तुम्हारे होने से मैं भी परम भाग्यवती हुई।

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥
नतरु वाँझ भलि वादि बिआनी। राम विमुख सुत ते हित जानी ॥१॥

अर्थ वही युवती पुत्रवाली होती है जिसका बेटा रघुपति का भक्त हो। नहीं तो बन्ध्या भली। राम विरोधी बेटे से भलाई समझकर उसने व्यर्थ पुत्र उत्पन्न किया।

व्याख्या पुत्रवती कहने का भाव यह कि अल्पवयस्का या वृद्धा में प्रसव की योग्यता नहीं। युवती ही पुत्र उत्पन्न करती हैं और उनसे भलाई की आशा रखती हैं। ऐसी युवतियों से समार भरा पडा है। फिर भी वे सब पुत्रवती नहीं हैं। पुनाम नरक का है। उससे जो माँ बाप की रक्षा करे वही पुत्र है। अतः पुत्रवाली युवतियाँ वे

ही हैं जिनके बेटे रामभक्त हैं । जो रामभक्त नहीं हैं तिनके घर सूवर स्वान भले जड़ता बसते न बहें बछु वैं । तुलसी जेहि राम ते नेह नहीं सो सही पसु पूछ विपान न है । जननी भरिभार मुई दस मास भई विन बाँझ गई विन च्वै । जरि जाउ सो जीवन जानकी नाथ जियै जग मे तुम्हरो विनु ह्वै ।

यद्यपि माता नहीं जानती कि पुत्र कैसा होगा और न उसके जानने का पुत्र जनन मे कोई उपयोग है । तथापि माता को बेटे से बहुत कुछ आशा होती है । सो अपने जनने को वह व्यर्थ नहीं मानती । पर वस्तुतः उसने पशु उत्पन्न किया । इसलिए कवि त्रियानी शब्द का प्रयोग करते हैं । वह उसका मनुष्य सा रूप देखकर भूली हुई है । पर सब मनुष्याकारवालो मे मनुष्यता नहीं होती । आहार निद्रा भय मैयुन म मनुष्यता नहीं है । क्योंकि यह तो पशु मे भी होता है । मनुष्यता तो धर्म मे है और धर्म का साफल्य भगवद् भजन मे है, अतः धर्महीन मनुष्य पशु के समान है । इस भाँति माता सुमित्रा लक्ष्मणजी को भगवद्भक्त देखकर अपने को पुत्रवती मान रही है । इसीलिए कहा भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत बलिजाउँ इत्यादि ।

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाही । दूसर हेतु तात कछु नाही ॥
सकल सुकृत कर बड फलु एह । राम सीय पद सहज सनेह ॥२॥

अर्थ . बेटा ! तुम्हारे ही भाग्य से रामजी बन जा रहे हैं । दूसरा कोई कारण नहीं है । राम जानकी के चरणो मे स्नेह होना सब पुण्यो का बड़ा फल यही है ।

व्याख्या यशोधन के कुटुम्ब मे यश से ही भाग्य का निर्णय होता है । रामजी का साथ देने से यश तुम्हारे हाथ लगेगा और सेवा का ऐसा सुअवसर भी तुम्हें कभी न मिलता । अतः रामजी के बन जाने मे प्रधान कारण तुम्हारा है । दूसरे कारण गौण है । नहीं तो कैकेयी के मनोरथ की पूर्ति तो भरत के राज्य मिलने से ही हो जाती । जो रामजी को भी इष्ट ही था । भरत के राज्य से राम वनवास का कौन सम्बन्ध ? अतः तुम्हारा भाग्य ही कारण है ।

लौकिक सुख स्वर्ग और मोक्ष सुकृत के ही फल हैं जिसमे पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर बडे हैं । पर सब सुकृतो का बड़ा फल तो रामजानकी के चरणो मे स्वाभाविक स्नेह है । यथा जहाँ लगि साधन वेद बखानो । सबकर फल हरि भगति भवानी । आगे भरत जी भी कहेंगे अहह धन्य लछिमन बडभागी । राम पदारविन्द अनुरागी । माता को रामजी के स्वरूप का यथार्थ बोध है । अतः सेवा धर्म की दृढता के लिए उपदेश दे रही है ।

रागु रोपु इरिपा मदु मोह । जनि सपनेहुँ इन्हके बस होह ॥
सकल प्रकार विकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥३॥

अर्थ राग द्वेष ईर्ष्या मर्द और मोह के वश मे सपने मे भी न होना । सब प्रकार के विकारो का त्याग करके मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना ।

व्याख्या : रागद्वेष दि छवो रिपु हैं । इनके वश में पड़ने से उसी भाँति कल्याण की हानि होती है जिस भाँति शत्रु के वश में पड़ जानेवाले की होती है । अथवा ये पाँच भक्ति के बाधक हैं इनसे बहुत बचना । गृह के प्रति राग, कैकेयी के प्रति रोष, भरत के प्रति ईर्ष्या, अपने गुणों के प्रति मद और रामजी के प्रति मोह को हृदय में स्थान न देना अर्थात् स्वप्न में भी इनके वश न होना ।

मन में विकारों को स्थान देने से रामभक्ति के लिए स्थान नहीं रह जाता । ये ही सब सेवा धर्म में छल हैं और भानु पीठ सेइअ उर आगी । स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी । अतः मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना ।

तुम्ह कहूँ वन सब भाँति सुपासू । संग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहि न रामु वन लहहि कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥४॥

अर्थ : तुमको तो वन में सब प्रकार का सुभीता है । जिसके साथ सीता और राम माँ बाप हैं । जैसे रामजी को वन में क्लेश न हो वैसे ही करना । बेटा ! मेरा यही उपदेश है ।

व्याख्या : तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ कहना नहीं है । तुम्हारे माता पिता राम जानकी तुम्हारे साथ जा रहे हैं । वे स्वयं तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ उठा न रखेंगे । यथा : जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे । पलक बिलोचन गोलक जैसे । अतः तुम अपनी चिन्ता न करना और न अपने कष्ट को कष्ट गिनना । तुम यह ध्यान रखना कि रामजी को वन में कष्ट न हो । मेरा इतना ही उपदेश है ।

छं. उपदेसु येहु जेहि तात तुम्हरेँ रामु सिय सुखु पावही ।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति वन बिसरावही ॥
तुलसी प्रभुहि मिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिप दई ।
रति होउ अविरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

अर्थ : बेटा ! यही उपदेश है कि तुम्हारे रामजानकी ऐसा सुख पावें कि उन्हें पिता माता प्रिय परिवार और नगर का सुख भूल जाय । तुलसीदासजी कहते हैं कि बेटे को शिक्षा दी । पश्चात् आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि तुम्हें रामजी के चरणों में दिनदिन अविरल और निर्मल प्रीति हो ।

व्याख्या भक्ति के तीन दर्जे हैं : १ तस्यैवाहम् २ ममैवासी और ३ स एवाहम् इति त्रिधा । प्रारम्भ में भक्त तदीय होते हैं । उनकी भावना होती है कि मैं सरकार का हूँ । दृढ़ता अधिक हाने से वही भावना ममैवासी के रूप में बदल जाती है तब भक्त की भावना हो जाती है कि सरकार हमारे हैं । स एवाहम् के सन्निकट में भक्तिवाल नहीं जाते । माता जानती है कि लक्ष्मणजी की ममैवासी भावना है । इसलिए कहती है : तुम्हारे रामसिय । माता उपदेश देती है कि ऐसी सेवा करना कि जिसमें रामजानकी को पिता माता प्रिय परिवार और नगर का

सुख याद न पड़े । ऐसा उपदेश देकर आज्ञा दी कि तुम भी साथ में वन जाओ । तत्पश्चात् प्रेमाभक्ति प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया ।

• दो. मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदय ।

बागुर विपम तोराइ, मनहु भाग मृगु भाग वस ॥७५॥

अर्थ : माता के चरण में मिर नवाकर डरते हुए निकल भागे । जैसे कठिन जाल को तोड़कर भाग्यवश मृगा भाग जाय ।

व्याख्या : जब माता ने प्रसन्नता से वन में बरताव करने का उपदेश, जाने की आज्ञा, भक्ति का आशीर्वाद दिया तब शङ्कित हृदय से निकल भागने का अर्थ क्या ? उत्तर यही है कि समाचार पाकर कहीं भगवती उर्मिला न आजायें और सोताजी की भाँति वन जाने के लिए मचल न पड़ें । अतः भगवती उर्मिला के आ जाने की शङ्का से शङ्कित हैं । इसीलिए कठिन जाल में फँसे हुए मृग का दैवात् जाल तोड़कर निकल भागने से उपमा दिया । कठिन जाल माँ नहीं होती स्त्री होती है और इसीलिए सरकार ने अकेले लक्ष्मणजी को भेजा । आप विदा होने के साथ नहीं गये । पर भगवती उर्मिला चुप रह गयी । उनके चुप रह जाने में जितने भाव निकलते हैं कुछ भी कह देने से वह बात नहीं आती । यदि लक्ष्मणजी को वनवास मिला होता तो भगवती उर्मिला किसी के रोके न रुकती । पर वन तो मिला रामजी को । लक्ष्मणजी तो अपनी इच्छा से सेवा के लिए साथ जा रहे हैं । अतः उनके सेवा धर्म में विघ्नाचरण नहीं किया ।

१३. वनगमन : केवट अनुराग प्रसङ्ग

गये लखनु जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥

बंदि राम सिय चरन सुहाए । चले सग नृप मंदिर आए ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मणजी वहाँ गये जहाँ जानकीनाथ थे । प्रिय साथ पाकर प्रसन्न मन हुए । रामजानकी के सुन्दर चरणों की वन्दना करके साथ चल पड़े और महाराज के महल में आये ।

व्याख्या : सरकार जानकीजी के साथ धीरे धीरे चले जा रहे हैं । जहाँ से लक्ष्मणजी को माता के पास भेजा था वहाँ से आगे बढ़ गये हैं । अतः कवि लिखते हैं कि जहाँ जानकीनाथ थे वहाँ गये । साथ मिल गया । प्रिय का साथ ही सब आनन्दो में अधिक है । माता के और स्त्री के छोड़ने में दुःख का लेश भी नहीं है । प्रिय के साथ हा जाने की प्रसन्नता है ।

जाकर रामजानकी के सुन्दर चरणों की वन्दना की और साथ हो लिये । इतना ही इस सूचना के लिए पर्याप्त था कि आज्ञा मिल गयी । यहाँ नृपमन्दिर से अभिप्राय उस महल से है जिसमें महाराज उस समय विद्यमान थे । अर्थात् महारानी कैकेयी के महल में, नहीं तो सभी रानिया के महल नृपमन्दिर है ।

कहहि परसपर पुर नर नारी । भलि बनाइ विधि वात विगारी ॥
तन कृस मन दुखु वदन मलीने । विकल मनहुं माखी मधु छीने ॥२॥

अर्थ • पुर नरनारी आपस में कहते हैं कि विधाता ने वात अच्छी बनाकर विगाड दी । उनके शरीर कृश हो गये । मन में दुःख है । चेहरा उदास है । ऐसे विकल हैं जैसे शहद के छिन जाने से मक्खियाँ विकल हो जाती हैं ।

व्याख्या जिस प्रसङ्ग को अति विपाद बस लोग लोगार्इ कहकर छोड़ा था उसी को उठाते हैं । जब महाराज के महल से कौसल्याजी के महल की ओर चले थे उस समय प्रजावर्ग का विपाद कहा था । अब कौसल्याजी के महल से जानकी और लक्ष्मणजी के साथ कैकेयी के महल में जा रहे हैं । उस समय के प्रजावर्ग के विपाद का वर्णन करते हैं । तीनों मूर्तियों को साथ देखकर नर नारी आपस में कहते हैं कि विधाता ने वैसी अच्छी वात बना रखी थी कि वैसी बात कही देखने में नहीं आती । सो जैसी अच्छी वात बनी थी वैसी ही बिगड गयी । यह भी विधाता ने ही बिगाडा । एक को वन दिया गया । सो तीन चले ।

विपाद अतिमात्रा में है । उसका प्रभाव शरीर पर ऐसा पडा कि घण्टों और मिनटों में शरीर दुबले पड गये । कारण कहते हैं कि सबके मन में दुःख है । सबका चेहरा उदास है । सब ऐसे विकल हैं जैसे किराती ने मधु के छत्ते में से मधु निकाल लिया हो और मधु की मक्खियों ने देख न पाया हो कि किसने मधु छीन लिया । पहिले ही कह आये हैं देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गँव तकड़ लेउँ केहि भाँती । सो उसने ले ही लिया । रामराज्याभिषेक रूपी मधु छिन गया । अब प्रजावर्ग मधुमक्खियों की भाँति विकल होकर इधर उधर भनभना रहा है ।

कर मीजहि सिर धुनि पछिताहो । जनु बिनु पख बिहग अकुलाही ॥
भइ बडि भीर भूप दरवारा । वरनि न जाइ विपादु अपारा ॥३॥

अर्थ हाथ मीजते हैं । सिर पीटकर पछताते हैं । जैसे बिना पख का पक्षी व्याकुल होता है । राजा के द्वार पर बड़ी भीड हुई । अपार विपाद का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

व्याख्या सामान्य लोगों का हाल कहकर अब बड़े बड़ों का हाल कहते हैं । छोटी की उपमा मक्खी से दी । अब बड़ों की उपमा पक्षियों से देते हैं । ये हाथ मीजते हैं । सामर्थ्य रहते हुए कुछ कर नहीं सकते । शोकावेग में सिर पीटते हैं । बड़ा भारी अनिष्ट हुआ इसलिए पछताते हैं । बिना पख के पक्षी की भाँति अगतिक होकर आकुल हो रहे हैं कि अब जीवन यापन कैसे होगा ?

दरवार शब्द का प्रयोग मानस में राजद्वार के अर्थ में देखा जाता है । यथा करि मज्जन सरयू जल गये भूप दरवार । तथा गयउ सभा दरवार तब सुमिरि रामपद वज इत्यादि । सब लोगों का महल के भीतर प्रवेश नहीं है । अतः राजद्वार

पर सब लोग इकट्ठे हो गये । बड़ी भीड़ हुई । विपाद का पारावार नहीं है । विपाद के उत्कटता का वर्णन नहीं हो सकता । सब हाय हाय कर रहे हैं ।

सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय वचन रामु पगु धारे ॥

सिय समेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥४॥

अर्थ मन्त्री ने रामजी आये हुए हैं ऐसा प्रिय वचन कहकर उठाकर राजा को बिठाया । सीताजी के सहित दोनों बेटों को देखकर महाराज को भारी व्याकुलता हुई ।

व्याख्या • महाराज को अचेत देखकर मन्त्री क्षणभर के लिए हटता नहीं । शोक से अशौच लग जाता है नित्यकृत्य का अधिकार नहीं रह जाता । राजा का यह हाल है व्याकुल राउ सिथिल सब गाता । करिनि कल्पतरु मनहु निपाता । आप से उठने में भी असमर्थ है । कहाँ क्या हो रहा है इसका ज्ञान नहीं । मन्त्री सोचता है कि ये लोग विदा होने आये हैं । इन्हे बिठाना चाहिए । जो कहना हो कहे । इसलिए महाराज को उठाकर बिठलाता है । होश में लाने के लिए रामजी पधारें हैं ऐसा प्रिय वचन सुनाता है । क्योंकि यदि इस समय भी महाराज न बोले तो ये लोग प्रणाम करके चले जायेंगे ।

इस प्रिय वचन को सुनकर महाराज ने आँख खोल दिया तो देखा बेटे वन जाने को प्रस्तुत हैं और सीताजी भी साथ में हैं । यह देखकर तो महाराज की व्याकुलता बहुत बढ़ गयी । दोनों बेटे प्राण के समान हैं । यथा मेरे प्राण नाथ सुत दोउ । सो दोनों चले और महाराज जनक ने यह कहकर जानकी को सुपुर्द किया है ये दारिका परिचारिका वरि पालवी करना नई । सो मैं यही करुणा किया कि वन भेज रहा हूँ ।

दो सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ ।

बारहि बार सनेह वस, राउ लेइ उर लाइ ॥७६॥

अर्थ सीताजी के सहित दोनों बेटों को देखकर महाराज आकुल हो रहे हैं । और प्रेम के वश होकर बार बार छाती से लगा लेते हैं ।

व्याख्या सीताजी पर महाराज का पुत्रों से कम प्रेम नहीं है । मन्त्री से महाराज कहेंगे एहि विधि करेउ उपाय कदवा । फिरइ त होइ प्राण अवलवा । सीताजी पर बेटा से भी अधिक प्रेम कहने में अत्युक्ति नहीं है । दोनों भाइयों के वन चले जाने पर भी सीताजी के रह जाने से महाराज जो सक्त थे । सो ये भी चली । अत बार बार इन तीनों मूर्तियों को महाराज देखते हैं और प्रेमवश होकर बार बार कलेजे से लगाते हैं ।

सकइ न बोलि बिकल नरनाह । सोक जनित उर दारुन दाह ॥

नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुवीर विदा तब माँगा ॥१॥

अर्थ : महाराज शोक से विवल थे । कुछ बोल नहीं सकते थे । शोक से उत्पन्न भयानक दाह हृदय में हो रहा था । अत्यन्त प्रेम से चरणों में मिर नवाकर रामजी ने उठकर विदा माँगी ।

व्याख्या राम जानकी और लक्ष्मण को बार बार हृदय से लगा रहे हैं । कहना भी चाहते हैं पर मुख से शब्द नहीं निकलते । क्योंकि शोक से कलेजा जल रहा था । दाह होने पर मनुष्य कराहता है पर दारुण दाह में कराहते भी नहीं बनता । पहिले जब रामजी ने कहा था : विदा मातु सन आवहुँ माँगी । चलिहों बनहि बहुरि पग लागी । तब भी शोक वश होने से महाराज बोल न सके । अब माता से विदा लेकर चलते समय केवल प्रणाम करने आये हैं । फिर भी महाराज बोलने में अममर्थ हैं ।

रामजी रघुकुल में वीर हैं । उत्साहवर्धनो वीर । पिता का अत्यन्त प्रेम देखकर समझ लिया कि यहाँ ठहरना वियोग के समय की यातना को और बढ़ाना ही है । अतः अत्यन्त प्रेम से चरणों को प्रणाम किया और उठ खड़े हुए और तब विदा माँगी ।

पितु अमीस आयसु मोहि दीजै । हरप समय विसमउ कत कीजै ॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू । जसु जग जाई होइ अपवादू ॥२॥

अर्थ पिताजी । मुझे आशीर्वाद दीजिये और आज्ञा दीजिये । यह तो हर्ष का समय है । इसमें शोक क्यों करते हैं । हे तात । प्रिय के प्रेमवश प्रमाद करने से मसार में यश नष्ट हो जायगा और दुर्यश होगा ।

व्याख्या भाव यह कि अब मैं चल रहा हूँ । मुझे आशीर्वाद दीजिये । आप पिता हैं । मेरे देवता हैं । आपके आशीर्वाद से सब मङ्गल होगा और कह दीजिये कि जाओ इतना आपके कह देने से मुझे कोई विघ्नबाधा न करेगा । यथा गुरु पितु मातु स्वामि सिखपाले । चलेहुँ कुमग पग परहि न खालें । मैं अपना जन्म सफल करने जा रहा हूँ । अतः हर्ष का समय है । इसमें विपाद को स्थान नहीं देना चाहिए । मुझे कष्ट होगा यह सोचकर ही आप शोक करते हैं । सो मुझे हर्ष है । क्योंकि मेरा जन्म सफल होने जा रहा है ।

श्रीरामजी ने देखा कि वचन देने पर उसे कार्य में परिणत होते देखकर इस भाँति शोक करना प्रमाद है । अतः पिता से कहा कि जो शोक मनाया जा रहा है इसमें कोई तत्त्व नहीं है । यह केवल प्रिय प्रेम प्रमाद है । इससे लाभ कुछ नहीं और हानि बड़ी भारी । क्योंकि मसार में जो आपका यश फैला हुआ है वह नष्ट हो जायगा और अयश होगा । सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ । बँठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥
सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहो । रामु चराचर नायकु अहही ॥३॥

अर्थ : सुनकर प्रेमवश भक्तवर्तीजी उठ खड़े हुए और रामजी को बाँह

पकड़कर बैठाया और कहा कि हे तात ! तुमको मुनि कहते हैं कि राम चर अचर सबके मालिक हैं ।

व्याख्या : यह तो जाया ही चाहते हैं यह समझकर चक्रवर्तीजो आवेश में आकर उठ खड़े हुए । रामजी की बांह पकड़ ली कि मैं जाने न दूँगा और बिठलाया कि अभी कुछ बातें करना है । मेरा प्रश्न है उसका उत्तर दे लो तो जाओ । तुम मेरे शोक को प्रिय प्रेम प्रमाद कहते हो । मैं पूछता हूँ कि प्रमाद किसका है । हमारा या तुम्हारा ? यद्यपि मेरे मन में बात नहीं बैठती पर मुनि की गिरा असत्य नहीं हो सकती । वे कहते हैं कि राम चराचर के नायक हैं ।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदयँ विचारी ॥

करै जो करमु पाव फलु सोई । निगम नीति असि कह सबु कोई ॥४॥

अर्थ : शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देते हैं और जो कर्म करता है वही फल पता है । यही निगम की नीति है और सब लोग भी ऐसी ही कहते हैं ।

व्याख्या : दण्ड और अनुग्रह का नियम अनादि काल से प्रवर्तित है । शुभकर्म का शुभफल और अशुभकर्म का अशुभफल होता है । यथा : तुलसी यह तनु खेत है मन बच करम किसान । पाप पुन्य द्वै बीज है बवै सो लवै निदान । ईश्वर फल दाता है । वह शुभाशुभ कर्म का फल मात्रा प्रकार तथा काल का विचार करके देता है ।

जो कर्म करता है उसका फल उसी को मिलता है । यही निगम की नीति है और सब लोग भी यही कहते हैं । इसमें मतभेद नहीं । अतः यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है ।

दो. और करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु ।

अति विचित्र भगवंत गति, को जग जानइ जोगु ॥७७॥

अर्थ : अपराध कोई और ही करे और फल भोग किसी दूसरे को मिले । यह अति विचित्र गति भगवान् की है । इसे ससार में कौन जान सकता है ?

व्याख्या : अपराध और फल भोग में वैपम्य होना विचित्रता है । दूसरे का दण्ड दूसरे को मिलना अति विचित्रता है । अवश्य सामञ्जस्य होगा । पर संसारी के समझ में नहीं आता । उसे ईश्वर का ही प्रमाद मालूम होता है ।

अपराधिनी कैकेयी तुम से निरपराध को वन भेज रही है । कहू तजि रोष राम अपराधू पूछने पर उसके पास देने के लिए कोई उत्तर नहीं है । अन्त में उसे भी यही कहना पड़ा : तुम अपराध जोग नहीं ताता । माँग्यौ जो कछु मोहि सोहाना और मुझसे विश्वासघात किया : तूहूँ सराहसि करसि सनेह । पहिले स्नेह करती थी सराहना करती थी । जब मैंने कहा : भामिनि भयउ तोर मन भावा तो कैकेयी ने हँसकर और गहने पहनकर मुझे धोखा दिया । मेरे साथ विश्वासघात हुआ । मेरा

यथा दोष है ? मुझे दण्ड क्यों मिल रहा है ? यदि ईश्वर हो तो मुझ तुम्हारा प्रमाद माफ़ हो रहा है । उत्तर न पाने पर कहते हैं कि भगवान् की गति जानी नहीं जाती । अत्यन्त विचित्र है अभी तक चक्रवर्तीजी को तापम अन्ध शाप का स्मरण नहीं आ रहा है ।

राय राम राखन हित लागी । बहुत उपाय किये छलु त्यागी ॥

लखी राम रख रहत न जाने । धरम धुरधर धीर सयाने ॥१॥

अर्थ राजा ने रामजी के रखने के लिए छल छोड़कर बहुत उपाय किये । रामजी का रख लख लिया । समझ लिया कि ये नहीं रहेगे ।

व्याख्या महाराज ने जो उपाय रामजी के रखने के लिए सोचा या किया उनमें छल था । वे चाहते थे कि मैं रामजी को रहने के लिए न कहूँ रामजी स्वयं जाने के लिए तैयार न हों । यथा तुम प्रेरक सबके हृदय से मति रामहि देहु । वचन मोर तजि रहहि गृह परिहरि सील सनेहु । अथवा उदय करहु जनि रवि रविबुलगुरु इत्यादि । परन्तु जब देख लिया कि ऐसे उपायों से काम न चलगा तब छल रहित उपाय करने लगे कि मैंने चाहे कैवेयी से जो कहा हो पर तुम्हें तो मैंने वन जाने की आज्ञा नहीं दी । आज्ञा वही मान्य है जो इच्छापूर्वक दी जाय । मेरी इच्छा नहीं है कि तुम वन जाओ इत्यादि ।

रामजी चुप हैं । उत्तर नहीं देते । पहिल ही एक बात ऐसी कह दी कि उसके सामने कोई बात अडती नहीं । उन्होंने कहा था कि यह सब प्रिय प्रेम प्रमाद है इनमें वास्तविकता नहीं । यदि वास्तविकता होती तो महाराज इतने विकल न होते । विकलता कह रही है कि राजा ने वन दे दिया । अयोध्या में रख देखकर काम होता है । ससार का नियम है कि प्रधान का रख सभी देखते हैं । रामजी की प्रधानता इसी से सिद्ध है कि स्वयं चक्रवर्तीजी रख देखते हैं और को कौन कहे स्वयं गुरुजी सबको रामजी के रख रखने का उपदेश देते हैं । यथा राखे राम रजाइ रख हम सबकर हित होइ इत्यादि । महाराज यह भी जानते हैं कि रामजी धर्मधुरन्धर हैं । ये धर्म से न हटेंगे । सयाने धीर हैं । धर्म के मर्म को समझते हैं ।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥

कहि वन के दुखु दुसह सुनाये । सासु ससुर पितु सुख समुझाये ॥२॥

अर्थ तब महाराज ने सीताजी का हृदय से लगा लिया और अत्यन्त प्रेम से बहुत प्रकार से शिक्षा दी । वन के न सहने योग्य दुखों को कह मुनाया । सास ससुर और पिता के सुखों को समझाया ।

व्याख्या चक्रवर्तीजी का प्रेम मोताजी पर ठीक बेटी की भाँति है । गोद में लेकर समझा रहे हैं । यथा

दो सामु ससुर जोगवत रहत तथा यथा पितु मात ।

बेटी तू नहि सहि सकिहि विवट विपिन उत्पात ॥१॥

सोई कारज कीजिये जामे होइ निवाह ।
 नहि पिपीलिका को उचित लेन सिंधु की थाह ॥२॥
 कानन कानन ते सुन्यो कानन बड़ी वलाय ।
 जहँ वसिवे को को कहै आँखि देखि नहि जाय ॥३॥
 हिसक जीवन ते भरो कुशकण्टक भरिपूरि ।
 ठाम नही विश्राम को विपिन विपत्ति अति भूरि ॥४॥
 कटुकपाय फल असन वन, वमन छाल अरु पात ।
 विना श्रान अति, विषम हिमि आतप वर्षा वात ॥४॥
 सब सुपास गृहवास रुख लखत रहत रनिवास ।
 सखी करत मनुहारि मुख जोहँत दासी दास ॥५॥
 सब सुख अवध विदेहपुर रहहु जहाँ मनमान ।
 सोख मानि मम पुत्रि जनि कानन करहु पयान ॥७॥

सिय मनु राम चरन अनुरागा । घर न सुगमु वनु विषमु न लागा ॥
 औरउ सबहि सीय समुझाई । कहि कहि विपिन विपत्ति अधिकाई ॥३॥

अर्थ : सीताजी का मन रामजी के चरणों में अनुरक्त था । उनको घर रहने में सुभीता और वन में असुभीता नहीं मालूम पड़ा और सबों ने भी वन की विपत्तियों को बड़ा बड़ाकर वर्णन करते हुए समझाया ।

व्याख्या : रामचरन पकज रति जिनही । विषय भोग बस करहि कि तिनही ।
 रमा विलास राम अनुरागी । तजत वमन जिमि नर बड़भागी । फिर जगदम्बा को घर सुगम और वन विषम कैसे मालूम हो ? सभी लोग एक मुख से वन के दुख को बड़ा बड़ाकर समझाने लगे । ऐसी नीति है कि कार्यसिद्धि के लिए रोचक भयानक बातें कही जाती हैं । यथा :

छप्पय : वन निर्जंत जन जनत चलत सन सन समीर खर ।
 भूमि तपत ज्यों भाड अग्नि वरसत दिनकर कर ॥
 जहँ तहँ बीछी व्याल फिरत गज भालु बाघ हरि ।
 दिनहि भूत वेताल नचत विकराल रूप धरि ॥
 जीवजतु जरि जरि मरें जब दावानल लगि परै ।
 याते तू वन जान को ध्यान बधू जनि उर धरै ॥

लक्ष्मणजी को कोई नहीं समझाता क्योंकि वे तो रामजी के आटे : हिस्से पड़े हुए हैं । यथा : लखन राम के नेव । दूसरी बात यह भी है कि यदि रामजी वन जायें तो लक्ष्मणजी का साथ जाना सबको प्रिय है । ये वीर हैं । रामजी के साथ सब कष्ट सह लेंगे और रामजी भी अकेले न रहेंगे भाई का साथ रहेगा ।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी । सहित सनेह कहहि मृदु बानी ॥
 तुम्ह कहं तो न दीन्ह वनवासू । करहु जो कहहि ससुर गुर सासू ॥४॥

अर्थ : मन्त्री और गुरु की सयानी स्त्रियाँ स्नेह से साथ कोमल वाणी में कहने लगी कि तुमको तो वनवास नहीं दिया। इसलिए जैसा ससुर गुरु और सास कहे वैसा करो।

व्याख्या : भारी उत्पात सुनकर इस समय जो स्त्रियाँ महलों में आती जाती हैं वे सभी आगयी हैं। मर्दों के समझाने का प्रभाव सीताजी पर पड़ते न देखकर मन्त्री की स्त्रियाँ और गुरुजनो की स्त्रियाँ सीताजी को समझाने लगी। स्नेह के साथ मृदु वाणी से समझाने का बड़ा प्रभाव पड़ता है। कि पुन ये तो बड़ी बूढ़ी है। स्त्री धर्म और स्त्री हृदय की जाननेवाली है। रामजी जो इस समय सुख दुःख को न गिनकर वन जाने को प्रस्तुत हैं तो उनके लिए कारण है। उन्हें वनवास मिला है। तुमको तो वनवास नहीं दिया है। तो जिसका वचन मानकर रामजी वन जाते हैं उसका वचन तुम भी शिरोधार्य करके घर रहो। पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् यह ठीक है। पर ससुर गुरु और सास तो गुरुणा गुरु है। वे जो वहे सो तुम्हे कर्तव्य है।

दो. सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि ।

सरद चद चदिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥७८॥

अर्थ : शीतल हित मधुर और कोमल शिक्षा सीताजी ने सुनी। पर उन्हें अच्छी न लगी। जैसे शरच्चन्द्र की चाँदनी के लगने से चकई व्याकुल हो जातो है।

व्याख्या : चाँदनी रात सबको प्रिय होती है पर चकई को नहीं। क्योंकि उसमें पति का विछोह होता है। शरद की चाँदनी रात और भी दाहक होती है। सो सरकार ने जो शिक्षा दी वह शरदचन्द्र निशि की भाँति दाहक हुई। यथा : शीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकईहि सरदचन्द्र निसि जैसे। पर सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा तो शरदचन्द्र चाँदनी की भाँति अति अधिक दाहक हुई। भगवती व्याकुल हो उठी। शिक्षा का गुणाधिक्य दाहाधिक्य का कारण हो गया है। सरकार को शिक्षा शीतल थी। इसलिए उसे शरदचन्द्र निशि कहा। सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा शीतल हित मृदु मधुर थी। इसलिए शरदचन्द्र की चाँदनी से उपमित कर रहे हैं। स्नेह के सहित शिक्षा दे रहो हैं। अतः शीतल है। तुम कहें तो न दीन्ह वनवास। यह हित की बात है। करउ जो कहहि ससुर गुरु सासू। यह मधुर शिक्षा है और मृदुवाणी में कहतो हैं। यह मृदुता है। शरदचन्द्र चाँदनी में शीतलता लाभ मधुरता और मृदुता होती है। अतः इससे शिक्षा का उपमित किया।

सीय सकुच वस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥

मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : सीताजी सङ्कोचवश उत्तर नहीं देती हैं। यह सुनकर कैकेयी तमक उठी। मुनियों का वसन भूषण और वस्त्रन लाकर आगे रखवा और मीठी वाणी बोली।

व्याख्या - जिस इन्द्रिय से जिस विषय का ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। इसी से उत्तर न देने का मुनना कहते हैं। उत्तर प्रत्येक बातों का है। पर कुलवधू सीताजी इतने बड़े जनसमाज में सद्कोच से उत्तर नहीं देती। कैकेयी से यह सहन न हुआ। वह समझती है कि सीता भी यदि साथ चली जावे तो सम्भव है कि ये वन से न लौटें। ये मग्न इनका प्रयत्न इसलिए कर रही हैं जिनमें रामजी अवश्य वन से लौटें। ये मग्न हमारी शयु हैं। अतः क्रोध के वेग में आकर उठ खड़ी हुईं।

राजदरबार है। मुनियों की विदाई के लिए मुनि पट भूषण भाजन आदि सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहती हैं। अतः मुनि पट भूषण और भाजन उठा लायी। जिसमें वहाँ से ही वेप बदलकर वन में जायें। जो लोग आज छत्रचामर के साथ चलते देखने के लिए उत्सुक थे वे अपने प्रिय का मुनि वेप में जाते देख लें और बात भी थी कि मुनि पट भूषण सामने रखने ही रामजी धारण कर लेंगे। तब समझाना बुझाना भी वन्द हो जायगा और व्यर्थ जो देर हो रही है वह न होगी। उन पट भूषण भाजनों को रामजी के सामने ला रक्खा और बोली।

नृपहि प्राण प्रिय तुम रघुवीर । शील मनेह न छाँडिहि भीरा ॥

सुकृत सुजसु परलोकु नसाऊ । तुम्हहि जान वन कहिहि न काऊ ॥२॥

अर्थ - रघुवीर ! तुम महाराज को प्राणप्रिय हो। सो यह भीड़ शील मनेह न छोड़ेगी। चाहे पुण्य सुयश और पर परलोक भले ही नष्ट हो जाय पर तुम्हें वन जाने को कोई न कहेगा।

व्याख्या : रानी कैकेयी कहती है कि तुम रघुवल के वीर हो। साहस का कार्य करने में समर्थ हो। यहाँ इतना साहस किसी का नहीं है कि तुम्हें वन जाने को कहे। महाराज को तुम प्राणप्रिय हो। वे अपने मुँह से कहेगे नहीं और यह जो लोगो की भीड़ लगी हुई है यथा भइ बडि भीर भूप दरवारा उनमें किसका साहस है कि राजा के प्राणप्रिय को वन जाने की सम्मति दे। इन लोगो को इस बात से क्या मतलब कि महाराज का सुकृत सुयश और परलोक नष्ट हो रहा है। ये राजा की प्रसन्नता के लिए शील और स्नेह जनाते ही रहेंगे।

अस विचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥

भूपहि वचन दान सम लागे । करहि न प्राण पयान अभागे ॥३॥

अर्थ - ऐसा विचार करके जो तुम्हें अच्छा लगे सो करो। रामजी ने माता की शिक्षा सुनकर सुख पाया। राजा का ये वचन वाण के समान लगे। कहने लगे कि अभागे प्राण निकलते भी नहीं।

व्याख्या - कैकेयी कहती है कि अब बात तुम्हारे ऊपर है। चाहे इन वसन भूषण भाजनों को धारण करो और वन जाओ चाहे न जाओ। इस व्यर्थ के प्रयत्न में कुछ रक्खा नहीं है। माँ की शिक्षा सुनकर रामजी को तो सुख हुआ। बड़े शील

सङ्कोच में पड़े हुए थे । उसको तोड़ना न पड़ा । माँ ने रास्ता साफ कर दिया । परन्तु ये वचन जिसमें महाराज पर भी आक्षेप था, हितचिन्तको पर भी आक्षेप था, सीताजी के रोकने के प्रयत्न का मूलच्छेदन करनेवाला था महाराज को बाण की भाँति लगे । वे कह चुके थे : जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहेसि बहोरी । जानते थे कि जो बात इसके मुख से निकलेगी वह मर्म को काटने-वाली ही होगी । पर कैकेयी ने न माना । बाण की भाँति चोट करनेवाली बाणी फिर बोली : जीभ कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिष मृदु लच्छ समाना । जनु कठोरपन धरे सरीरु । सिखइ धनुष विद्या बड वीरु । महाराज इस चोट को न सह सके । अभागे प्राण जाते भी नहीं ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गये ।

लोग विकल मुरिछित नरनाह । काह करिअ कछु सूझ न काह ॥
रामु तुरत मुनि वेपु बनाई । चले जनक जननी सिरु नाई ॥४॥

अर्थ : लोग विकल हो उठे । राजा मूर्च्छित हो गये । किसी को नहीं सूझता कि क्या करें । इधर रामजी ने तुरन्त मुनि वेप बनाया और पिता माता को सिर नवाकर चले ।

व्याख्या : मुनि पट भूषण भाजन को रामजी के सामने ला रखने से कुछ कहने सुनने का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया । अब तो यही शेष है कि रामजी उसे धारण करें और वन चले जायँ । अतः सब लोग विकल हो उठे । महाराज को मूर्च्छा हो गयी । रामजी ने इस अवसर से लाभ उठाया । जानते थे कि मुनिवेप में देखकर महाराज तत्काल प्राणत्याग करेंगे । अतः इन्होंने मुनिवेप धारण में जल्दी की जिसमें महाराज की मूर्च्छितावस्था में ही बाहर निकल जायँ और महाराज दशरथ तथा रानी कैकेयी को सिर नवाकर चल पड़े ।

दो. सजि वन साजु समाजु सब, वनिता वंधु समेत ।

वंदि विप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥७९॥

अर्थ : वन का साज समाज सजकर स्त्री और भाई के सहित ब्राह्मण और गुरु की वन्दना करके तथा सबको अचेत करके चले ।

व्याख्या : मुनि पट भूषण का धारण करना साज सजना है । भाई और स्त्री को साथ लेना और उन्हें भी मुनि पट भूषणयुक्त करना समाज सजना है । सो साज समाज ठीक करके सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ चले । मुनि पट भूषण भाजन के सामने रख देने से महाराज मूर्च्छित हो गये और उनके धारण करने पर सब अचेत हो गये । चलने के पहिले सरकार ने अभेद्य कवच धारण कर लिया अर्थात् ब्राह्मण और गुरु को प्रणाम कर लिया । यथा : कवच अभेद्य विप्र गुरु पूजा ।

निकसि वसिष्ठ द्वार भये ठाढे । देखे लोग बिरह दव दाढे ॥

कहि प्रिय बचन सकल समुझाए । विप्र वृंद रघुवीर बुलाए ॥१॥

अर्थ : निकलकर वसिष्ठजी के दरवाजे पर खड़े हुए । देखा कि सब लोग विरह के दावानल से झुलसे हुए हैं । प्रिय वचन कहकर सबको समझाया । फिर रघुवीर ने ब्राह्मणों को बुलाया ।

व्याख्या : अबसि फिरब गुरु आयसु मानो । अब सरकार को लौटानेवाला केवल गुरु का आदेश ही है । ऐसा न हो कि कुछ दूर जाने के बाद गुरु की आज्ञा लेकर कोई पहुँचे कि लौट चलो । अतः गुरुजी के घर से ही प्रस्थान उचित है । दूसरे गुरु या ब्राह्मण के घर से ही प्रस्थान शास्त्र सम्मत है । अतः गुरुजी के द्वार पर खड़े हो गये । सब लोग साथ साथ चल रहे हैं । उनकी दशा देखा कि विरह के दावानल से मानो झुलसे हुए हैं । विधि कैकेयी किरातिनि कोन्ही । जेहि दब दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही । सरकार ने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया यथा :

दोहा : हितकारी भारी सबै सब विधिते तुम मोर ।

समय देखि धीरज धरहु करहु न निज मन थोर ॥

वेगि लौटिहै अवध हम केवल अवधि बिताय ।

जाते नृप धीरज धरै सब मिलि करहु उपाय ॥

भरत सुजान सुशील शुचि मोहि प्रिय प्रान समान ।

धर्म शील पालिहि प्रजहि सब गुन भवन अमान ॥

इस भाँति सबको समझाने के बाद रघुवीर ने ब्राह्मण समाज को बुलाया । सरकार धर्मवीर हैं, दानवीर हैं, दयावीर हैं : यहाँ उन्हीं गुणों से अधिक काम लिया गया है । अतः श्री गोस्वामीजी उनके लिए बार बार रघुवीर शब्द का प्रयोग करते हैं ।

गुरु सन कहि वरपासन दीन्हे । आदर दान विनय वस कीन्हे ॥

जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥२॥

अर्थ : गुरुजी से कहकर वर्ष भर के लिए भोजन दिया और उन्हें आदर दान और विनय से वश कर लिया । तत्पश्चात् मंगनों को दान और सम्मान से सन्तुष्ट किया और मित्रों को पवित्र प्रेम से परितोष किया ।

व्याख्या : एक वर्ष से अधिक अन्न रखने की आज्ञा ब्राह्मणों को शास्त्रतः नहीं है । अतः विप्रवृन्द को वर्षासन दिया । सरकार नित्य अन्न दान करते हैं । वन में दान के लिए अन्न नहीं मिलेगा । अतः प्रभूतान्न दान आज किया जा रहा है । अब अपने महल में न जायेंगे । अतः गुरुजी से कहा कि इन लोगों को अन्न दे दिया जाय । ब्राह्मणों के वश करने की विधि कहते हैं कि ये आदर दान और विनय से वश होते हैं । इन्हें वश करने की दूसरी विधि नहीं है । ब्राह्मणों के वश करने में इनसे अतिरिक्त दूसरी विधि के प्रयोग से राजा भानुप्रताप मारे पड़े ।

याचक को दान देनेवाले तो अनेक हैं । पर उनका सम्मान करनेवाला कौन है ? और सम्मान ही सबसे बड़ा दान है । यथा : तुलसी कहत पुकारि कै सुनहु सकल

दैं कान । भूमिदान गजदान ते बडो दान सम्मान । सो मङ्गकार याचको को भी सम्मान पूर्वक दान दे रहे हैं । जो सरकार के मित्र हैं उन्हें किस बात की कमी है । वे तो केवल प्रेम के भूखे हैं । उन्हें पवित्र प्रेम से परितुष्ट किया अर्थात् अत्यन्तप्रेम से मिले ।

दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरुहि सौपि बोले कर जोरी ॥
सब के सार सभार गोसाई । करवि जनक जननी की नाई ॥३॥

अर्थ : फिर दासी दासों को बुलाया । उन्हें गुरुजी को सुपुर्द करके हाथ जोड़कर बोले कि हे गोसाईं ! इनकी देखभाल माँ बाप की भाँति कीजियेगा ।

व्याख्या . सरकार को दास बड़े प्रिय हैं । यथा . तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निजदासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा । अतः उन्हें गुरुजी को सौंपते हैं और हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि इनकी देखभाल माँ बाप की भाँति कीजियेगा । भाव यह कि बाप माँ बच्चों के सब अपराध सहन करते हैं । मैंने भी इनके अपराधों को बाप माँ की भाँति सहन किया है और प्रतिपालन किया है । उसी भाँति आप भी इनके अपराधों को क्षमा करके इनका पालन करियेगा । इससे यह पता चलता है कि सरकार ने अपनी निजी सम्पत्ति को गुरुजी के सुपुर्द किया ।

वारहि वार जोरि जुग पानी । कहत रामु सब सन मृदु बानी ॥
सोइ सब भाँति मोरि हितकारी । जेहि ते रहइ भुआल सुखारी ॥४॥

अर्थ : बार बार हाथ जोड़कर रामजी सबसे कोमल वाणी से कहते हैं कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहे ।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि आपलोग सभी मेरे हितकारी हैं । पर सब प्रकार से मेरा हितकारी वही है जो महाराज को सुख सम्पादन में वृत्तकार्य हो । भाव यह कि रामजी महाराज को प्रजावर्ग के सुपुर्द कर रहे हैं । अतः सबसे यही विनय हाथ जोड़कर बार बार कह रहे हैं ।

दो. मातु सकल मोरे विरह, जेहि न होहि दुख दीन ।

सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब, पुरजन परम प्रवीन ॥८०॥

अर्थ : मेरी सब माताएँ मेरे विरह से जिसमें दुःख से दीन न हो हे परम प्रवीण पुरजन । वही उपाय आप लोग करियेगा ।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि हे पुरजन ! आप लोग परम प्रवीण हैं । मेरे विरह में माताएँ सब दुःखी हैं । वे लोग जब सुनेंगी कि प्रजा रामजी के विरह से अत्यन्त दुःखी हैं तो उनके दुःख का पारावार न रहेगा । वे दुःख से दीन हो जायेंगी । अतः आप लोग मेरे चले जाने पर शोक न मनाइयेगा । यथा : वीसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजा सुख होहि सुखारी । आप लाग आपस में मिलकर सुख से रहने की चेष्टा कीजियेगा ।

रामजी पिता माता को प्रजावर्ग के सुपुदं कर रहे हैं। उन्हें भय है कि उनके चले जाने पर प्रजा महाराज की निन्दा करेगी। विरोध करेगी। भरत के राज्य का स्वागत नहीं करेगी। इससे माता पिता का कष्ट अधिक बढ़ जायगा। अतः उनको सुख पहुँचाने का भार रामजी प्रजा पर ही छोड़ रहे हैं।

एहि विधि राम सर्वाहि समुझावा । गुरु पद पदुम हरपि सिरु नावा ॥
गणपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ॥१॥

अर्थ . इस प्रकार रामजी ने सबको समझाया। गुरुजो के चरणकमल में हर्षित होकर सिर नवाया और गणेश गौरी और महेश को मनाकर आशीर्वाद पाकर रघुराज चल पड़े।

व्याख्या : कहि प्रिय वचन सकल समुझाये से उपक्रम करके विप्रमण्डली याचकगण, दासी, दास, प्रजावर्ग से यथोचित मिलना कहा। अब एहि विधि राम सर्वाहि समुझाये कहकर इस प्रसङ्ग का उपसहार करते हैं। अब गुरुजी को प्रणाम करके प्रस्थान करना कहते हैं। प्रस्थान के समय हर्ष का होना मङ्गल सूचक है। छूट जानि वन गमन सुनि उर अनद अधिकान कहा था। सुनने से हर्ष हुआ था। अब तो वस्तुतः छुट्टी हो गयी। अतः सरकार हर्षित हैं। गणपति गौरी गिरीश प्रत्यक्ष नहीं हैं। अतः उनकी मानसवन्दना कहते हैं। स्वयं स्त्री और अनुज के साथ यात्रा कर रहे हैं। अतः अपने इष्टदेव की वन्दना भी स्त्री पुत्र के साथ ही करते हैं। गणपति गौरी गिरीश का ध्यान परिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान है। शिवजी निर्गुण ब्रह्म हैं। उनकी गोद में मूलशक्ति गौरी हैं और उनके गोद में सगुण ब्रह्म गजानन हैं। गुरुजी ने प्रत्यक्ष आशीर्वाद दिया और गणपति गौरी गिरीश ने अन्तर्हित होकर आशीर्वाद दिया।

रामु चलत अति भयेउ विपादू । सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
कुसगुन लक अवध अति सोकू । हरप विपाद विवस सुरलोकू ॥२॥

अर्थ . रामजी के चलने के समय बड़ा विपाद हुआ। नगर का आर्तनाद सुना नहीं जाता था। लङ्का में अपशकुन होने लगे। अयोध्या में अति शोक छा गया। देवता लोग हर्ष और विपाद के वश हो गये।

व्याख्या लोगो को अति विपाद तो उसी समय हुआ जब रामजी माता से विदा माँगने चले। यथा अति विपाद बस लोग लोगार्ह। गये मातु पहुँ राम गोसाँई। पर रामजी को वन जाते देखकर वह विपाद असह्य हो गया। लोग फूटकर रोने लगे। नगर भर में ऐमा आर्तनाद होने लगा कि सुनते नहीं बनता था। सुननेवाले का कलेजा फटने लगता था।

सरकार की यह यात्रा वस्तुतः लङ्काविजय यात्रा का पूर्व रूप था। अतः लङ्का में अपशकुन हुए। अयोध्या में अति शोक छा गया। कवि ने यहाँ यात्रा की दोनों सीमाओं की व्यवस्था कही। अभिषेक में दिग्नाचरण करनेवाले देवताओं

को तो प्रसन्नता होनी चाहती थी । पर इस आर्तनाद से उनके हृर्ष में भी शोक का अनुवेध हो गया ।

गई मुरुछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥

रामु चले वन प्राण न जाही । केहि सुख लागि रहत तन माही ॥३॥

अर्थ : तब मूर्च्छा गयी । राजा जगे । सुमन्त्र को बुलाकर कहने लगे कि राम तो वन को चले पर प्राण नहीं जा रहे हैं । किस सुख के लिए अब शरीर में टिके हुए हैं ।

व्याख्या . पुर में आर्तनाद जब होने लगा तब महाराज की मूर्च्छा गयी । जागकर सुमन्त्र को बुलाया । महाराज की बड़ी आस्था सुमन्त्र पर है । भूपति कहने का भाव यह कि प्रजा का आर्तनाद सुनकर जाग उठे । सुमन्त्र भी कहीं अचेत पड़े थे । बुलाने पर आये । राजा जब मूर्च्छा से जगे तो रामजी को नहीं पाया । नगर के आर्तनाद से जान लिया कि रामजी जा रहे हैं । सुमन्त्र से कहने लगे कि प्राणप्यारे राम तो जा रहे हैं । पर प्राण उनका साथ नहीं दे रहा है । एक ही तो अभिलाषा मेरे मन में थी वह बुरी तरह से भङ्ग हो गयी । अब किस सुख की आशा से प्राण शरीर में टिके हुए हैं ।

एहि तैं कवन ब्यथा बलवाना । जो दुखु पाइ तजहि तनु प्राना ॥

पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू । लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥४॥

अर्थ . इससे कौन सी पीड़ा बलवती है । जिस दुख के पाने से प्राण शरीर को छोड़ता है । फिर धैर्य धरकर राजा कहते हैं कि हे सखे ! तुम रथ लेकर साथ जाओ ।

व्याख्या . महाराज को शिरोच्छेदन से अधिक पीड़ा राम विरह में है । यथा : माँगु माथ अवही देखें तोही । रामविरह जनि मारेसि मोही । अत मन्त्री से पूछते हैं कि क्या इस पीड़ा से भी अधिक कोई दुख है जिसे पाकर प्राण शरीर छोड़ता है ? मन्त्री से कोई उत्तर न पाकर धैर्य धारण करके राजा ने कहा कि मित्र ! तुम रथ लेकर साथ जाओ । भाव यह कि तुम्हारा जाना मेरे जाने के बराबर है । रामजी के हृदय में तुम्हारा बड़ा आदर है । यथा राम सुमन्त्रहि आवत देखा । आदर कीन्ह पिता सम लेखा । अत. तुम स्वयं रथ लेकर रामजी के साथ जाओ ।

दो. सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि ।

रथ चढाइ देखराइ वनु, फिरेउ गये दिन चारि ॥८१॥

अर्थ : दोनों कुमार अति सुकुमार हैं और जनकसुता सुकुमारी हैं । सो रथ चढ़ाकर वन दिखलाकर चार दिनों में लौट आना ।

व्याख्या . श्रीमद्भागवत में जनकनन्दिनी से अधिक सुकुमार सरकार को माना है । यथा . प्रियायाः पाणिस्पर्शक्षिमाभ्याम् मृदितगन्धजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।

इसलिए दोनों राजकुमारों को सुठि सुकुमार और जनकसुता को केवल सुकुमारी कहते हैं। भाव यह कि ये लोग पैदल चलने में समर्थ नहीं। इन्हे रथ पर चढ़ाकर वन के साथ इनका चक्षुःसंयोग मात्र करा दो और चार दिन में लौटा लाओ। कह देना कि वनवास की अवधि में महाराज ने सङ्कोच करके केवल चार दिन का कर दिया। अतः अब घर लौट चलो।

जौ नहि फिरहि धीर दोउ भाई । सत्यसंध दृढ़ व्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह विनय करेहु करजोरी । फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी ॥१॥

अर्थ : यदि दोनो भाई न फिरें क्योंकि धीर हैं, सत्यसन्ध है, दृढ़व्रत हैं, रघुराई हैं तो तुम हाथ जोड़कर विनय करना कहना कि प्रभो ! मिथिलेश की बेटी को लौटा दीजिये।

व्याख्या : चार कारण न फिरने के हैं। रघुराई है : रघुकुल की प्रतिष्ठा बिगड़ने न देंगे। धीर है : सङ्कट से मुँह न मोड़ेंगे। सत्यसन्ध हैं : कैकेयी से वचनबद्ध भी हो चुके हैं। मुनिव्रत ग्रहण कर लिया है। दृढ़व्रत होने के कारण उसे न छोड़ेंगे।

महाराज मिथिलेशकिशोरी के लिए अतिआर्त है। सुमन्त्र से कहते हैं कि पहिला प्रयत्न तो सबके लौटाने के लिए करना। असफल होने पर तुम हाथ जोड़कर विनय करना। तुम्हारी विनय रामचन्द्र न टालेंगे। कहना कि प्रभो आप समर्थ हैं। आप जानकी को लौटा सकते हैं। आपकी आज्ञा पतिदेवता सुतीयमणि कभी नहीं टालेंगी। मैंने जानकी को तो समझाया। पर रामचन्द्र को जानकी के लिए आज्ञा देने की बात कहने का अवसर न मिला।

जब सिय कानन देखि डेराई । कहेउ मोर सिख अवसरु पाई ॥
सासु ससुर अस, कहेउ सँदेसू । पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू ॥२॥

अर्थ : जब सीता वन देखकर डरे तो अवसर पाकर मेरी शिक्षा कहना कि सास ससुर ने ऐसा कहा है कि बेटी ! लौट चलो वन में बड़ा क्लेश है।

व्याख्या : अब रह गयी यह बात कि यदि वह किसी का कहना पातिव्रतधर्म को अग्रसर करके न माने तब तुम अवसर देखना। अवसर पर की कही हुई बात प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। सीता नहीं जानती कि वन कैसा है। वह उसे एक बड़े वगीचे के रूप में समझती है। वह स्वभाव से बड़ी भोरु है। चित्र में लिखे हुए बन्दर को देखकर डरती है। वन देखकर अवश्य डरेगी। वही अवसर मेरी शिक्षा के कहने का है। साथ ही साथ कौसल्या की ओर से भी कहना। क्योंकि ससुर से अधिक सास का प्रभाव वधू पर होता है। उससे दोनों की ओर से कहना कि बेटी ! फिर चलो अभी तो तुमने वन में प्रवेश किया है। वन में बड़ा कष्ट मिलता है। उत्तरोत्तर कष्ट बढ़ता ही जायगा। तुम सहन के योग्य नहीं हो।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी । रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ॥
एहि विधि करेहु उपाय कदंबा । फिरइ त होइ प्रान अवलंबा ॥३॥

अर्थ चाहे बाप के घर चाहे ससुराल जहाँ तुम्हारी रुचि हो वहाँ रहना । इस भाँति बहुत से उपाय करना । यदि लौट आवे तो प्राण को 'सहारा मिल जाय ।

व्याख्या कुलवधू माता पिता और श्वसुर सास की सम्मति से कभी पितृगृह में रहती है और कभी पतिगृह में रहती है । महाराज ने कहलाया कि तुम्हारी जबतक रुचि हो तबतक अयोध्या में रहना । जबतक रुचि हो तबतक जनकपुर रहना । मेरा यह आग्रह नहीं है कि तुम वन से लौटकर अयोध्या में ही रहो । जहाँ रहने से जितने दिनों तक जी बहले तबतक अपनी रुचि के अनुसार रहना ।

इस प्रकार से प्रलोभन देना और जो जो उपाय तुम्हें उपयुक्त प्रतीत हो सो सब करना । यदि सीता किसी प्रकार से लौट आवे तो मेरे प्राण को अवलम्ब मिल जाय । भाव यह कि महाराज को सीताजी भी उतनी ही प्रिय हैं जितने कि रामजी हैं । श्रुति कहती है कि स्त्री पुरुष का आधा शरीर है । अतः सीताजी के रहने से मानो आधे शरीर से वे ही विद्यमान हैं । अतः प्राणवियोग न होगा । कष्ट चाहे जितना हा ।

नाहि त मोर मरनु परिनाभा । कछु न बसाइ भये विधि वामा ॥

अस कहि मुरुछि परा महि राऊ । राम लखनु सिय आनि देखाऊ ॥४॥

अर्थ नहीं तो इसका परिणाम मेरी मृत्यु ही है । विधाता के बायें होने से कोई वश नहीं चलता । ऐसा कहके राजा मूर्च्छा खाकर गिर गये कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखला दो ।

व्याख्या सीता के लौट आने की आशा से ही मैं जी रहा हूँ । राम लक्ष्मण के लौटने की आशा तो बहुत कम है । यदि सीता भी नहीं लौटी तो इसका परिणाम यह होगा कि मैं मर जाऊँगा । विधाता बायें होने पर कोई वश नहीं चलता । कहते कहते महाराज अधीर हो गये । बाल कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखा दो और मूर्च्छित होकर गिर गये । पहिले भी मूर्च्छित थे और इतनी बात कहके फिर मूर्च्छित हो गये । महाराज की हालत ऐसी नाजुक हो रही है ।

दो पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथु अति वेग बनाइ ।

गयउ जहाँ बाहेर नगर, सीय सहित दोउ भाइ ॥८२॥

अर्थ राजाज्ञा पाकर सिर नवाया और अत्यन्त त्वरा के साथ रथ जोतकर नगर के बाहर जहाँ सीता के सहित दोनों भाई थे वही गये ।

व्याख्या सुमन्त्र ने महाराज की मूर्च्छा की ओर ध्यान नहीं दिया । ध्यान देनेवाले बहुत लोग थे । रामजी के पास जल्दी पहुँचने की आवश्यकता थी । महाराज को सिर नवाया और फुरती से रथ जोतकर चल । तबतक रामजी नगर के बाहर

— — —
१ पूर्व जन्म में युगल मूर्ति वरद होकर प्रकट हुई थी । अतः एक के रह जाने से प्राण को सहारा मिलने की बात कह रहे हैं ।

पहुँच चुके थे । रामजी का एक पग पैदल चलना सुमन्त्रजी को असह्य था । राजाज्ञा मात्र की देर थी ।

तब सुमन्त्र नृप वचन सुनाए । करि विनती रथ रामु चढाए ॥

चढि रथ सीय सहित दोउ भाई । चले हृदय अवधहि सिरु नाई ॥१॥

अर्थ : तब सुमन्त्र ने राजा का वचन सुनाया और प्रार्थना करके रामजी को रथपर चढाया । सीताजी के सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर अवध को प्रणाम करके चले ।

व्याख्या : सुमन्त्र ने रथपर से ही कहा कि महाराज ने आपके लिए रथ भेजा है और कहा है कि आप लोग रथ पर चढ़कर जायँ पैदल न जायँ और अपनी ओर से भी प्रार्थना की । सरकार रथ पर चलना उचित नहीं समझते थे । सुमन्त्रजी ने विनती की कि आवश्यकता पड़ने पर मुनिजी रथ पर चढते ही है । मुनिव्रत मे रथ पर चढना निषिद्ध नहीं है । यथा : तेहि रथ रुचिर वसिष्ठ कहँ हरखि चढ़ाइ नरेस ।

तब दोनों भाई सीताजी के सहित रथ पर सवार हुए और चले । अवध को प्रणाम किया । यहाँ अवध से अयोध्या नगर अभिप्रेत है अयोध्या प्रान्त नहीं । कर्मणा और वाचा प्रणाम करने से कही लोगो की यह धारणा न हो कि अब ये अयोध्या न लौटेंगे । अतः मनसे ही प्रणाम किया । नगर के बाहर पहुँचने पर रथ आया । अतः नगर को प्रणाम करते हैं । अयोध्या मोक्षपुरी है । जन्मभूमि है । महाप्रभावा है । अतः प्रणाम किया ।

चलत रामु लखि अवध अनाथा । विकल लोग सब लागे साथ ॥

कृपासिन्धु बहुविधि समुझावहि । फिरहि प्रेम बस पुनि फिरि आवहि ॥२॥

अर्थ : राम को चलते अवध को अनाथ देखकर लोग विकल होकर साथ लग गये । कृपासिन्धु रामजी बहुत समझाते हैं । लोग फिर भी जाते हैं पर प्रेमवश फिर लौट आते हैं ।

व्याख्या : रामजी को इस प्रकार जाते देखकर लोगो ने विचारा कि अवध तो अनाथ हो गया । यथा : मैं बन जाउँ तुमहि लै साथ । होइ सबहि विधि अवध अनाथा । अतः लोग विकल होकर अनाथ नाथ के साथ लगे : अयोध्या खाली पड़ जाती है । लोग सरकार के साथ वनवास के लिए चले ।

सरकार कृपासिन्धु हैं । लोगो के कष्ट का ध्यान करके उन्हें लौटने के लिए अनेक प्रकार से समझाते हैं । यथा :

सर्वेया : जिन पाल्यो सदा प्रिय प्रान समान प्रजातिनको तजिबो नहि नीको ।

यदि सग चली हमरे नृपको तो परे अति उज्ज्वलहु जस फीको ॥

नहि धर्मन अर्थ न काम सधै सवही विधिते अममजस जी को ।

॥ विगती मन मानि फिरो घर को सवही प्रतिपालहु धर्म गृही को ॥

लागति अवध भयावनि भारी । मानहु कालराति अंधियारी ॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी । डरपहि एकहि एक निहारी ॥३॥

अर्थ अयोध्या भारी भयावनी सी मालूम पड़ती है । मानो अंधेरी कालरात्रि है । पुर के नर नारी मानो हिसक जन्तु हैं । एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं ।

व्याख्या : सरकार के समझाने से लोग समझ तो जाते हैं और नगर में लौट भी आते हैं । पर अयोध्या जो सदैव सोहावनी तथा मङ्गलमय थी यथा यद्यपि अवध सदैव सोहावनि । रामपुरी मङ्गलमय पावनि । सो आज भारी भयावनी मालूम पड़ती है । मानो वह कालरात्रि है । कालरात्रि स्वभाव से ही भयवानी है । तिसपर अंधेरी यदि हो तो भारी भयावनी हो जाती है । इसी भाँति अयोध्या कालरात्रि सी हो गयी और मानो घोर जन्तुओं से व्याप्त होने से और भारी भयावनी हो गयी ।

जो वहाँ के वासी थे वे नररत्न थे । यथा मनिगन पुर नरनारि सु जाती । सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती । सो आज व्याघ्र सिंहादि हिसक जन्तुओं के समान हो गये । जो एक दूसरे को देखकर डरा करते हैं । व्याघ्र सिंहादि हिसक जन्तुओं में कभी मेल होता नहीं । ये गोल बाँधकर रहते नहीं देखे जाते । अतः एक दूसरे से डरा करते हैं । यही गति अवध निवासियों की हो रही है एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं ।

घर मसान परिजन जनु भूता । सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
वागन्ह विटप वेलि कुम्हिलाही । सरित सरोवर देखि न जाही ॥४॥

अर्थ घर मानो श्मशान है । कुटुम्बी लोग मानो भूत हैं और बेटे हित तथा मित्र मानो यमदूत हैं । बगीचों में पेड़ और लता कुँभिला रही हैं । नदी और तालाब देखते नहीं बनते ।

व्याख्या प्राणों के प्राण जीवों के जीव सुख के सुख राम के न होने से आज अयोध्या की यह दशा है कि लोगों को अपने अपने घर श्मशान की भाँति भयानक और अपवित्र मालूम हो रहे हैं । कुटुम्बी लोग पर भूत की भावना हो रही है । बेटे सम्बन्धी और मित्र तो मानो साक्षान् प्राणहारक यमदूत से दिखायी पड़ते हैं । यह दशा चेतन प्राणियों की हा रही है । घर की यह दशा देखकर जो बहलाने के लिए बाग में जाते हैं तो वहाँ नित्य सींचे जानेवाले वृक्ष और लताओं को कुम्हिलाया हुआ देखते हैं । पहिले नदी और तालाब देखते ही बनते थे । सो आज देखते नहीं बनते । भाव यह कि सरकार के चले जाने से नगर की प्रकृति में भयानक परिवर्तन हो गया ।

दो हय गय कोटिन्ह केलिमृग, पुरपसु चातक मोर ।

पिक रयाग सुक सारिका, सारस हस चकोर ॥८३॥

अर्थ • हाथी घोड़े जिनकी सख्या करोडों की है और खेल के लिए जिलाये हुए पशु तथा ग्राम्य पशु, चातक, मोर, कोयल, चकवे, तोता, मैना, सारस, हंस और चकोर ।

व्याख्या : महाराज की सेना में करोडों हाथी घोड़े हैं तथा नागरिकों के यहां भी हाथी घोड़े हैं । वेलिमृग अजायबखाने तथा घनियों के बाग में जिलाये हुए हैं । ग्राम्य पशु गाय, भैंस, कुत्ता आदि चातक, मोर, कुहू कुहू ध्वनि करनेवाली कोकिलाएँ जल के सन्निकट रहनेवाले चकवा चरई तथा मनुष्य की बोली के अनुकरण करनेवाले तोता मैना मकान के ऊपर शोभा देनेवाले सारस और हंस तथा चन्द्र के प्रेमी चकोर इन सबों में कोई भी स्थिर रहनेवाले नहीं हैं ।

राम वियोग विकल सब ठाढ़े । जहाँ तहाँ मनहु चित्र लिखि काढ़े ॥

नगर सफल वन गहवर भारी । खग मृग विपुल सकल नरनारी ॥१॥

अर्थ रामजी के वियोग से विकल सब जहाँ के तहाँ खड़े हैं । मानो चित्र में लिखे हुए हैं । नगर मानो फलवाला घना वन है और सब नर नारी मानो बहुत से पशु पक्षी हैं ।

व्याख्या • ये पशुपक्षी भी रामजी के वियोग से विकल होकर जो जहाँ थे वही खड़े हैं । कोई हिलते डोलते या बोलते नहीं । मालूम होता है कि ये सजीव नहीं हैं चित्र में खींचे हुए हैं । ऐसा भयानक सन्नाटा छाया हुआ है । नगर में चहल पहल सब कुछ रामजी के कारण था । जहाँ राम नहीं वहाँ आराम कहाँ ?

॥ नगर को सफल वन कहा । क्योंकि फल रहित वन में पशु पक्षी नहीं रहते । सफल वन पशु पक्षी से भरा रहता है । पशु वृक्ष के नीचे रहते हैं और पक्षी ऊपर रहते हैं । नगर में भी अनेक भूमिका मरातिव के मकान हैं । सब में लोग रहते हैं । इसलिए पशुपक्षी से उपमित किया ।

विधि कैकेई किरातिनि कीन्ही । जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही ॥

सहि न सके रघुवर विरहागी । चले लोग सब व्याकुल भागी ॥२॥

अर्थ • विधाता ने कैकेयी को किराती बना दी । जिसने दुसह दावानल : वन की आग दसो दिशा में लगा दी । लोग रामजी की विरहाग्नि न सह सके । सो व्याकुल होकर भाग खड़े हुए ।

व्याख्या • आज भी किराती अपने वच्चों को रोग विनिर्मुक्त करने के लिए वन में आग लगा देती है । उनकी ऐसी धारणा है कि ऐसा करने से लडके का लाभ होगा । कैकेयी ऐसी भली और समझदार रानी को किराती सा बना देना विधाता की ही करामात थी । ये ही चलते फिरते हंस को काग बना सकते हैं । यथा विचरत हंस काग किय जेही । पहिले कैकेयी को लगायी हुई आग चारों ओर थी । यथा • मृगी देखि दव जनु चहुँओरा । अब वही आग दसो दिशा में फैल गयी । वन में दसो दिशा में आग देखकर जैसे पशु पक्षी अपना अपना बसेरा

छोडकर भाग चलते हैं इसी भाँति विरहाग्नि से सारे नगर को भस्मीभूत होते देखकर सब निवासी भाग खड़े हुए। प्रयत्न किया कि इस विरहाग्नि को सह ले जायें। पर सहने में असमर्थ हो गये।

सबहिं विचार कीन्ह मन माही। राम लखनु सिय विनु सुख नाही ॥

जहाँ राम तहँ सबुइ समाजू। विनु रघुवीर अवध नहिं काजू ॥३॥

अर्थ : सबने मन में विचार किया कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख नहीं। जहाँ राम होंगे वही सब समाज रहेगा। बिना रघुवीर के अयोध्या में कोई काम नहीं है।

व्याख्या . मेल किसी से नहीं है। यथा : डरपहिं एकहिं एक निहारी। अतः इकट्ठे होकर सम्मति नहीं कर सकते। पर सबके मन में एक ही विचार उदय हुआ कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख हो नहीं सकता। सब लोगो ने नगर का घर का और अपना हाल देख लिया। अतः इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि सब सुख तो सीता राम लक्ष्मण के रहने ही में था। सब सामग्री तो ज्यों की त्यों मौजूद है। पर दुःख ने डेरा जमा लिया और बिना सुख के कोई जी नहीं सकता।

अतः जहाँ रामजी रहेंगे वही सब समाज भी रहेगा। बिना रामजी के अयोध्या में रहने का कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ रहकर भी हम किसी को सुख नहीं दे सकेंगे। क्योंकि स्वयं दुःख से विकल रहेंगे।

चले साथ अस मनु दृढाई। सुर दुर्लभ सुखु सदन बिहाई ॥

राम चरन पकज प्रिय जिन्हही। विषय भोग बस करहिं कि तिन्हही ॥४॥

अर्थ : ऐसा मन्त्र दृढ़ करके सुर दुर्लभ सुखवाले घरों को छोड़कर : रामजी के साथ चले। रामजी के चरण कमल जिन्हें प्रिय है उन्हें क्या विषयभोग वश कर सकता है ?

व्याख्या . घर जल्दी किसी से नहीं छूटता। अत्यन्त दुःख मिलने से ही आदमी घर को छोड़ता है। अयोध्या में तो सबको सुरदुर्लभ सुख प्राप्त है। पर उन्हें वे सुख ही बिना रामजी के महादुःखमय प्रतीत होते हैं। अतः सबने अपने मन में यही ठान ली कि रामजी के साथ ही वन चलना चाहिए। बात यह है कि जिन्हें रामजी के चरण में रति है उन्हें विषयभोग वश कर नहीं सकते। उन्हें स्वतः वशीकार सज्ञा वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। सारे ससार पर विषय भोग का अधिकार है केवल रामभक्त पर नहीं है।

दो. बालक वृद्ध विहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।

तमसा तीर निवासु किय, प्रथम दिवसु रघुनाथ ॥८४॥

अर्थ : बाल वृद्ध को घर छोड़कर सब लोग साथ हो गये। पहिले दिन रामजी का निवास तमसा के किनारे हुआ।

व्याख्या : बालक वृद्ध को कोई साथ नहीं लेता है । क्योंकि उनके साथ लेने से रामजी का साथ ही न हो सकेगा । कितना भी धीरे रथ चले पर बालक वृद्ध तो उस तक नहीं पहुँच सकते । अयोध्या से चलकर पहिले दिन सरकार तमसा के किनारे ठहरे । अर्थात् चैत्र सुदी १० दसमी पुष्प नक्षत्र में सरकार ने वनयात्रा की । इसी दिन राज्याभिषेक होनेवाला था ।

रघुपति प्रजा प्रेमवस देखी । सद्य हृदय दुखु भयउ विसेखी ॥
करुणामय रघुनाथ गोसाईं । वेगि पाइअहि पीर पराई ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रजा को प्रेमवश देखा । हृदय में दया है इसलिए विशेष दुःख हुआ । रघुनाथ गोसाईं करुणामय है । पराये दुःख को शीघ्र ही प्राप्त करते हैं ।

व्याख्या : रामजी ने देखा कि प्रजा प्रेम के वश है । मुझे छोड़ना नहीं चाहती । बड़े बूढ़े छोटे बच्चे सुख सम्पत्ति को छोड़कर मेरे साथ रहना चाहते हैं । ऐसी अवस्था में दुःख होना स्वाभाविक है । पर सरकार के दयाद्वं हृदय में विशेष दुःख हुआ । सरकार पानी पीकर रह गये । प्रजावर्ग ने भी उन्हीं का अनुसरण किया । रघुकुल के नाथ हैं । हृषीकेश हैं । पराये दुःख से शीघ्र ही द्रवीभूत हो जाते हैं । रघुनाथ हैं । अतः प्रजा को दुःखी नहीं देख सकते । इन्द्रियों के स्वामी हैं । अतः पराये दुःख की अनुभूति में इन्हे देर नहीं लगती ।

कहि सप्रेम मृदु वचन सुहाए । बहुविधि राम लोग समुझाए ॥
किए धरम उपदेश घनेरे । लोग प्रेम वस फिरहि न फेरें ॥२॥

अर्थ : प्रेम के साथ सुन्दर कोमल वचन कहकर बहुत विधान से रामजी ने लोगों को समझाया । बहुत सा धर्मोपदेश किया । परन्तु लोग प्रेम के वश थे । फेरने से फिरते नहीं थे ।

व्याख्या : प्रेममय सुन्दर कोमल वचन द्वारा रामजी ने समझाया । धर्मोपदेश किया । यथा :

तुम सुजान जनि धर्म को मेटी मिलि मर्याद ।
बाल वृद्ध ह्वै हैं करत घर में अधिक विपाद ॥
धर्म पिता माता धरम धर्म साईं सुत भाय ।
जाते निवहै धर्म सोइ सब मिलि करहु उपाय ॥
होइ अवमि वन गवन ते गृही धर्म को लोप ।
जो तजि मै वन जात पुनि होइ तासु आरोप ॥
राउ निगादर उचित नहि घरहु प्रीति उर गोय ।
हमहु प्रजा तुमहु प्रजा करहु जो आयसु होय ॥
कष्टत तुम सबको निरखि मोहि कष्ट अति हाय ।
तजि विचार वन गवन को भवन जाहु सब कोय ॥

परन्तु लोग प्रेम के वश थे । प्रभु के फेरने पर भी नहीं फिरे ।

सीलु सनेहु छाँडि नहि जाई । असमजस वस भे रघुराई ॥
लोग सोग श्रम वस गए सोई । कछुरु देवमाया मति मोई^१ ॥३॥

अर्थ : शील सनेह छोड़ते नहीं बनता । रामजी बड़े असमझस दुविधा में पड़ गये । लोग शोक और परिश्रम के वश होकर सो गये । देवताओं की माया से भी कुछ मोहित हुए ।

व्याख्या को रघुवीर सरिस ससारा । सील सनेह निवाहनि हारा । रामजी का स्वभाव है कि शील और स्नेह का निर्वाह करते हैं । इन लोगों के साथ चलने का अर्थ ही यही है कि घर लौटो । नहीं तो जहाँ तुम वसोगे वही हम लोग भी वसेंगे । इन सबका साथ ले जाना सम्भव नहीं और साथ ये छोड़ते नहीं । बिना शील स्नेह तोड़े साथ ये छोड़ नहीं सकते । अतः रामजी असमझस में पड़ गये ।

इधर लोग सवेरे से ही शोक कर रहे हैं । यथा • जो जहाँ सुनें धुनें सिर सोई । बड़ त्रिपाद नहि धीरज होई । तिम पर रथ के साथ साथ आये है । इसलिए थके हुए थे । सब के सब सो गये । उनको नींद की देखवारी को देवताओं की माया ने बढ़ा दिया । क्योंकि इन लोगों का साथ रहना रामजी के वन जाने में विघ्नरूप था ।

जवाहि जाम जुग जामिनि बीती । राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोजु भारि रथु हाँकहुँ ताता । आन उपाय वनिहि नहि वाता ॥४॥

अर्थ जब दो पहर रात्रि बीत गयी तब रामजी ने मन्त्री से प्रेमपूर्वक कहा कि हे तात । इस भाँति रथ चलाओ कि पता न चले । दूसरे उपाय से बात नहीं बनेगी ।

व्याख्या रामजी असमझस में थे । सोये नहीं । जब आधी रात बीती देखा कि तमाम सोता पड़ा हुआ है । कोई सगबगाता तक नहीं । तब प्रीति के साथ सुमन्त्र से कहा । सुमन्त्रजी पिता के सखा हैं । अतः उन्हें आज्ञा नहीं देते । प्रीति के साथ कहते हैं कि इस समय यदि इस भाँति रथ आप हाँके कि लोक देखने पर किसी को पता न चल कि रथ किधर गया । तभी हमारा साथ इन लोगों से छूट सकता है । दूसरा उपाय कोई है नहीं । यह सारथि का पाण्डित्य है कि रथ को घुमाकर मार्ग में पहिले की पड़ी हुई लीका से रथ की लोक को ऐसा मिला द कि ढूँढ़नेवाला यह निश्चय न कर सके कि रथ ने किस लोक का अनुसरण किया है ।

दो राम लखनु सिय जान चढि, सभु चरन सिरु नाइ ।

सचिव चलायेउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥८५॥

१. यहाँ हकार का लोप होकर मोही का मोई रूप हो गया । यथा प्रकृतिप्रत्यय-संघिलोपविकारागमाश्च वर्णानाम् ।

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता ने रथ पर चढ़कर शिवजी के चरणों में सिर नवाया और मन्त्री ने इधर उधर के पता को छिपाकर तुरन्त रथ चला दिया ।

व्याख्या : यह पता किसी को न था कि रामजी किस वन में और किस रास्ते से जावेंगे । सब लोग साथ हो गये थे कि चाहे जहाँ जायें हम लोग साथ न छोड़ेंगे । जहाँ जाना था सो सुमन्त्रजी से कह दिया । वे उधर रथ ले गये । पर पहिले रथ को इधर उधर ऐसा घुमाया कि पता न चल सके कि रथ किधर गया । चोरी से जा रहे हैं । इसलिए तस्कराणां पति को नमस्कार करके चले ।

जागे सकल लोग भये भोरु । गे रघुनाथ भयेउ अतिसोरु ॥

रथ कर खोज कतहुँ नहि पावहि । राम राम कहि चहुँ दिसि धावहि ॥१॥

अर्थ : सबेरा होने पर लोग जागे । बड़ा शोर मचा कि रामजी तो चले गये । रथ का पता कहीं से नहीं चलता है । लोग राम राम कहकर चारों ओर दौड़ते हैं ।

व्याख्या : थके मँदि देव माया से मोहित लोग ऐसे सोये कि सबेरा होने पर ही जागे । देखा न तो रामजी हैं और न रथ है । जैसे रात को किसी का सर्वस्व चोरी हो जाय और जागने पर वह हाय हाय करे । वही गति अवधवासियों की हुई । बड़ा शोर मचा कि रामजी चले गये । किधर गये ! कहाँ गये ! किसी को मालूम नहीं । रथ का पता चले कि किधर से गया तो लीक का अनुसरण करके गन्तव्यस्थान तक पहुँचने का प्रयत्न किया जा सकता है । पर रथ का कुछ पता नहीं लगता कि किधर से गया । अतः लोग विकल हैं । उनके मुँह से कोई बात नहीं निकल रही है । केवल राम राम कहते हुए चारों ओर रथ के खोज में दौड़ रहे हैं ।

मनहुँ वारिनिधि बूड़ जहाजू । भयउ विकलबड़ वनिक समाजू ॥

एकहि एक देहि उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ॥२॥

अर्थ : मानों समुद्र में जहाज डूबता हो और व्यापारी का समाज अति विकल हो उठे । एक दूसरे को उपदेश दे रहे हैं कि रामजी ने क्लेश जानकर हमें छोड़ दिया ।

व्याख्या : लोगों की विकलता जहाज के डूबने के समय वणिक् समाज की विकलता के समान हुई । यहाँ राम वियोग को अपार समुद्र से उपमित किया है । यथा : राम वियोग पयोधि अपारु । करन धार तुम अवध जहाजू इत्यादि । अवध जहाज पर तो सभी सवार हैं पर विकलता साथ जानेवाले वणिक् समाज को अधिक है । क्योंकि उन्हें प्राणों से अधिक प्रिय उनके सर्वस्व राम हैं । उन्हें वे गले बाँधे हुए हैं साथ नहीं छोड़ते । प्राण जाने की उतनी चिन्ता नहीं जितनी चिन्ता प्राणघन के वियोग से है । रामजी ने हमारा परित्याग किया इस बात की बड़ी विकलता है ।

अतः एक दूसरे को समझाते हैं कि रामजी ने हम लोगों को अप्रिय जानकर परित्याग नहीं किया है । हम लोग उनको प्रिय हैं । हमें क्लेश न हो इसलिए हम लोगों को छोड़कर चले गये ।

निंदाहि आपु सराहहि मीना । धिग जीवनु रघुवीर बिहीना ॥
जौ पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा । तौ कस मरनु न भागे दीन्हा ॥३॥

अर्थ : अपनी निन्दा करते हैं और मछली को सराहना करते हैं । कहते हैं रघुवीर के बिना जीने को धिक्कार है । विधाता ने यदि प्रिय का वियोग किया तो माँगो मौत क्यों नहीं दिया ।

व्याख्या . अपने प्रेम को कच्चा पाकर अपनी निन्दा करते हैं । प्रशंसा मछली को करते हैं । क्योंकि उसका प्रेम सच्चा है । प्रिय पानी के वियोग से प्राण दे देती है यथा : तुलसी केवल मीन को है साँचिलो सनेह । रघुवीर बिहीन जीवन अधम वा जीवन है । अतः हमारे जीवन को धिक्कार है ।

विधाता का नाम विधि है । उन्हें अविधि कार्य न करना चाहिए । उचित तो यह था कि वे प्रिय का वियोग ही न देते । यदि दिया तो माँगने पर मौत भी देना था । पहिले तो अपनी निन्दा की । अब विधि की निन्दा करते हैं ।

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा । आए अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना । अवधि आस सब राखहि प्राना ॥४॥

अर्थ . इस प्रकार रोते कल्पते परिताप से भरे हुए अयोध्या आये । विषम-वियोग का वर्णन नहीं किया जा सकता । अवधि की आशा से सब प्राण धारण कर रहे हैं ।

व्याख्या . जब रथ का खोज न मिला तो लाचार होकर रोते कल्पते घर लौटे । पर लौटने में महा दुःख उसी भूत यमदूत से व्याप्त श्मशान में ही रहना पड़ा । राम वियोग की अग्नि के ताप से सब परितप्त हैं । ऐसा दारुण वियोग व्यथा है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता जा वर्णन किया गया । वह बहुत ही अल्प है । अब चौदह वर्ष के बाद तो भेट होगी । इसी आशा पर सब जी रहे हैं । यदि यह आशा न होती तो निश्चय सब मर जाते । वीसव्याम्बा ने ठीक कहा था : अवधि अम्यु प्रिय परिजन मीना । तुम बरनाकर धर्म धुरीना । अस बिचारि सोइ करहु उपाई । सबहि जियत जेहि भेटहु आई ।

दो. राम दरस हित नेम व्रत, लगे करन नर नारि ।

मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि ॥८६॥

अर्थ . रामजी के दर्शन के लिए सब नर नारी नियम व्रत करने लगे । मानो ये कोक कोकी और कमल हैं बिना सूर्य के दीन हो रहे हैं ।

व्याख्या . ये सब पूर्वजन्म के तपस्वी हैं । अपने स्वरूप पर आगये । नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए करने लगे । यथा : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग । करत रामहिन नेमव्रत परिहरि भूपन भोग । जिस भाँति सूर्यनारायण के चार भक्त हैं १ कमल २ कोक ३ मधुकर् और ४ खगनाना उसी

भाति : राम भगत जग चारि प्रकारा । १. ज्ञानी २ जिज्ञासु ३. अर्थार्थी और ४. आर्त ।
सो अयोध्या में अर्थार्थी और आर्त नहीं हैं । केवल ज्ञानी और जिज्ञासु हैं । ज्ञानी की
उपमा कमल से और जिज्ञासु की उपमा कोक कोकी से दी गयी । ये रामजी के बिना
वैसे ही दीन हो रहे हैं जैसे सूर्य के बिना कमल और कोक कोकी दीन रहते हैं ।

सीता सचिव सहित दोउ भाई । सृंगवेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी । कीन्ह दंडवत हरषु विसेखी ॥१॥

अर्थ : सीता और मन्त्री के सहित दोनों भाई जाकर शृङ्गवेरपुर पहुँच गये ।
देवनदी गङ्गाजी को देखकर रामजी ने रथ त्याग किया और विशेष हर्ष के साथ
दण्डवत् किया ।

व्याख्या : राम लखन सिय जान चढि संभु चरन सिर नाइ । सचिव चलाएउ
तुरत रथ इत उत खोज दुराइ : से प्रसङ्ग छोड़ा था । बीच में पुरवासियों की कथा
कहने लगे । अब फिर वही से कथा उठाते हैं कि चारों मूर्ति शृङ्गवेरपुर जाकर
पहुँच गये । शृङ्ग है शरीर में जिसके उसे शृङ्गवेर कहते हैं अर्थात् शृङ्गीमृषि ।
उनका पुर शृङ्गवेरपुर । अथवा शृङ्गवेर अदरक को कहते हैं । सम्भव है कि वहाँ
अदरक अधिक होता रहा हो इससे शृङ्गवेरपुर कहलाया हो । आजकल उसे
सिंगरौर कहते हैं । यथा : सो जामिनि सिंगारौर गँवाई ।

अब तीर्थ स्नान की विधि कहते हैं । गङ्गाजी के दर्शन से रामजी को विशेष
हर्ष हुआ । क्योंकि गङ्गा जी के दर्शन मात्र से मुक्ति सुनी गयी है । यथा : गङ्गे ते
दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानज फलम् । गङ्गाजी के दर्शन होते ही रथ से उतर पड़े ।
यह तीर्थ का आदर है और दण्डवत् प्रणाम किया । क्योंकि गङ्गाजी सर्वतीर्थ-
मयी हैं ।

लखन सचिव सिय किये प्रनामा । सबहि सहित सुख पाएउ रामा ॥
गंग सकल मुद मंगल मूला । सब सुख करनि हरनि सब शूला ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने प्रणाम किया और सबके साथ रामजी
ने सुख पाया । गङ्गा जी सभी मुद मङ्गल की मूल हैं । सब सुख करनेवाली और
सब शूलों को हरनेवाली हैं ।

व्याख्या : जिस समय रामजी ने दण्डवत् किया लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी
ने उसी समय प्रणाम किया । बड़े के दण्डवत् करने के समय सब लोग दण्डवत् न करे ।
केवल भक्तियुक्त प्रणाम कर दें यही विधि है । तीर्थ की प्राप्ति होने पर आनन्द होना
चाहिए कि मुझे तीर्थ प्राप्ति हुई मेरा बड़ा भाग्य है । अतः कहते हैं सबके साथ
रामजी को सुख हुआ ।

सब अमङ्गलों का मूल सब दुःखों का करनेवाला सब शूलों की उत्पत्ति का
कारण पाप है और गङ्गा के समान पापनाशक कोई तीर्थ नहीं है । शास्त्र कहता है :
प्रायश्चित्तं तु तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते । अतः गङ्गा जी को मुदमङ्गलमूल

निराकार ब्रह्म अथवा ब्रह्मद्रवा कहा । यथा ब्रह्मद्रवेति विरयाता पापानि हर जाह्नवि ।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसगा । राम बिलोकहि गग तरगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । विबुध नदी महिमा अधिकाई ॥३॥

अर्थ करोड़ों कथा प्रसङ्ग कहकर रामजी गङ्गा का तरङ्ग देखते हैं । मन्त्री अनुज और प्रिया को देवनदी की महामहिमा कह सुनाया ।

व्याख्या शत सहस्र लक्ष कोटि आदि शब्द बहुवचन वाची हैं । इनका अर्थ बहुत है । दर्शन प्रणाम विश्राम के बाद माहात्म्य कथन श्रवण भी होना चाहिए । इसलिए रामजी अनेक कथा प्रसङ्ग कहते जाते हैं और गङ्गाजी के तरङ्गों के दर्शन का आनन्द भी ले रहे हैं । इस नाँति देवनदी का महामहिमा कथन रामजी ने किया । भाव यह कि गङ्गा माहात्म्य के वक्ता स्वयं रामजी हुए और श्रोता सीताजी लक्ष्मण जी और सुमन्त्रजी हुए ।

मज्जनु कीन्ह पथ श्रम गयऊ । सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू । तेहि श्रमु यह लौकिक व्यवहारू ॥४॥

अर्थ स्नान किया । रास्ते की थकावट दूर हुई । पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया । जिसके स्मरण करने से श्रम का बोझ दूर हो जाता है उसे श्रम होना लौकिक व्यवहार है ।

व्याख्या अदृष्टसुख कहकर अब दृष्टसुख कहते हैं । मज्जन पान से पाप हरण तो होता है यथा मज्जन पान पाप हर एका । लौकिक सुख भी होता है । मज्जन से रास्ते की थकावट दूर हो जाता है और जल पीने से मन प्रसन्न हो जाता है । ऐसा जल जगतीतल में दूसरा है नहीं । अतः रामजी के मज्जन पान पर भी वही फल कहा गया ।

प्रश्न उठता है कि क्या रामजी में ससारिया की भाँति श्रम का ससर्ग माना जायगा । इस पर कहते हैं कि सबसे भारी श्रम तो भवश्रम है । सा तो सरकार के स्मरण से मिट जाता है । जैसे भवश्रम सोपक तोपक तोपा । उस प्रभु का श्रम के साथ ससर्ग कहना लौकिक व्यवहार है ।

दो सुद्ध सच्चिदानन्दमय, कद भानुकुल केतु ।

चरित करत नर अनुहरत, ममृति सागर सेतु ॥८७॥

अर्थ सूर्यकुल के पताका रामचन्द्र शुद्ध सच्चिदानन्द मय हैं । मनुष्य के अनुरूप चरित्र करत हैं जो मसार सागर के लिए पुल हैं ।

व्याख्या शुद्ध सच्चिदानन्दमय वन्द से म्वरूप कहा । भानुकुल केतु से अवतार कहा चरित करत नर अनुहरत से लीला कहा । ममृति सागर सेतु से लोकोपकार कहा । अथवा शुद्ध सच्चिदानन्दमय वन्द से चिन्मय महाविष्णु कहा ।

भानुकुल केतु कहकर रघुकुल में दशरथ के यहाँ जन्म होना जनाया । चरित करत नर अनुहरत कहने से राजते यो महीस्थितः का भाव दर्शाया और ससृति सागर सेतु से स्वस्वरूप प्रदातृत्व गुण का वर्णन किया । यथा : चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ । रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः । रामतापनीये ।

यह सुधि गुह निपाद जब पाई । मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हियँ हरपु अपारा ॥१॥

अर्थ : यह खबर जब गुहनामी निपाद को लगी बड़ा प्रसन्न होकर प्रिय बन्धुओं को बुलवाया । वहाँगी भर कर फल मूल भेंट के लिए और अपार आनन्द के साथ मिलने चला ।

व्याख्या : गुहनाम भगवान् स्वामि कार्तिकेय का है । यथा : सेनानीरग्नि-भूर्गहः । उस निपाद का भी यही नाम था । यह निपादों का अधिपति था । शृङ्गवेर पुर में रहता था । इसे जब खबर लगी कि सस्त्रीक सानुज रामजी मन्त्री के साथ पधारे हैं तो बड़ा प्रसन्न हुआ । भेंट के लिए फल मूल से वहाँगी भर ली । अपने प्रिय भाई बन्धुओं को साथ ले लिया और मिलने चला । रामजी के आने का तो अर्थ ही यह है कि लक्ष्मण जी साथ हैं । पर भगवती सीताजी साथ हैं । यह सुनकर उसे अपार आनन्द हुआ कि युगलमूर्ति का दर्शन करूँगा । मालूम होता है कि गङ्गा स्नान के लिए आये हैं ।

करि दंडवत् भेंट धरि आगे । प्रभुहि विलोकित अति अनुरागे ॥
सहज सनेह विवस रघुराई । पूँछी कुशल निकट बैठाई ॥२॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेम से सरकार का दर्शन करने लगा । रामजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश उसे निकट बिठलाया और कुशल पूछी ।

व्याख्या : राजा दण्डधर गुरु हैं । इसलिए दण्डवत् प्रणाम किया । रिक्तपाणि होकर : खाली हाथ राजदर्शन का निषेध है । इसलिए भेंट सामने रखवा । जगदम्बा के दर्शन का अधिकार नहीं है । इसलिए प्रेम से टकटकी बाँधे सरकार का दर्शन कर रहा है ।

हाथ बाँधे दूर खड़ा है । उसे सरकार के प्रति स्वाभाविक प्रेम है । किसी कारण से नहीं और सरकार सहज प्रेम के वश में रहनेवाले हैं । अतः उसे बुलाकर अपने निकट बिठलाया और कुशल पूछा । कुशल पूछने का अर्थ ही यह है कि पूछने-वाला कुशल चाहता है । जो अप्रसन्न होता है वह कुशल नहीं पूछता । यथा : दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि विलोकि जरे सब गाता । निकट बैठना और कुशल पूछना आदर देना है : सम्मान करना है । हेमदान गजदान से बड़ो दान सम्मान ।

निराकार ब्रह्म अथवा ब्रह्मद्रवा कहा । यथा : ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापानि हर जाह्नवि ।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसगा । राम बिलोकहि गंग तरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । विबुध नदी महिमा अधिकाई ॥३॥

अर्थ • करोडों कथा प्रमङ्ग कहकर रामजी गङ्गा का तरङ्ग देखते हैं । मन्त्री अनुज और प्रिया को देवनदी की महामहिमा कह सुनाया ।

व्याख्या • शत सहस्र लक्ष कोटि आदि शब्द बहुवचन वाची हैं । इनका अर्थ बहुत है । दर्शन प्रणाम विश्राम के बाद माहात्म्य कथन श्रवण भी होना चाहिए । इसलिए रामजी अनेक कथा प्रमङ्ग कहते जाते हैं और गङ्गाजी के तरङ्गों के दर्शन का आनन्द भी ले रहे हैं । इस भाँति देवनदी का महामहिमा कथन रामजी ने किया । भाव यह कि गङ्गा माहात्म्य के वक्ता स्वयं रामजी हुए और श्रोता सीताजी लक्ष्मण जी और सुमन्त्रजी हुए ।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ । सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू । तेहि श्रमु यह लौकिक व्यवहारू ॥४॥

अर्थ स्नान किया । रास्ते की थकावट दूर हुई । पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया । जिसके स्मरण करने से श्रम का बोझ दूर हो जाता है उसे श्रम होना लौकिक व्यवहार है ।

व्याख्या . अदृष्टसुख कहकर अब दृष्टसुख कहते हैं । मज्जन पान से पाप हरण तो होता है यथा • मज्जन पान पाप हर एका । लौकिक सुख भी होता है । मज्जन से रास्ते की थकावट दूर हो जाती है और जल पीने से मन प्रसन्न हो जाता है । ऐसा जल जगतीतल में दूसरा है नहीं । अतः रामजी के मज्जन पान पर भी वही फल कहा गया ।

प्रश्न उठता है कि क्या रामजी में ससारियों की भाँति श्रम का ससर्ग माना जायगा । इस पर कहते हैं कि सबसे भारी श्रम तो भवश्रम है । सो तो सरकार के स्मरण से मिट जाता है । जैसे भवश्रम सोपक तोपक तोपा । उस प्रभु का श्रम के साथ ससर्ग कहना लौकिक व्यवहार है ।

दो. सुद्ध सच्चिदानन्दमय, कद भानुकुल केतु ।

चरित करत नर अनुहरत, ससृति सागर सेतु ॥८७॥

अर्थ • सूर्यकुल के पताका रामचन्द्र शुद्ध सच्चिदानन्द मेघ हैं । मनुष्य के अनुरूप चरित्र करते हैं जो मसार सागर के लिए पुल हैं ।

व्याख्या सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से स्वरूप कहा । भानुकुल केतु से अवतार कहा चरित करत नर अनुहरत से लीला कहा । ससृति सागर सेतु से लोकोपकार कहा । अथवा सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से चिन्मय महाविष्णु कहा ।

भानुकुल केतु कहकर रघुकुल में दशरथ के यहाँ जन्म होना जनाया । चरित करत नर अनुहरत कहने से राजते यो महीस्थितः का भाव दर्शाया और संसृति सागर सेतु से स्वस्वरूप प्रदातृत्व गुण का वर्णन किया । यथा : चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरी । रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः । रामतापनीये ।

यह सुधि गुह निपाद जब पाई । मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हियँ हरपु अपारा ॥१॥

अर्थ : यह खबर जब गुहनामी निपाद को लगी बड़ा प्रसन्न होकर प्रिय बन्धुओं को बुलवाया । वहँगी भर कर फल मूल भेंट के लिए और अपार आनन्द के साथ मिलने चला ।

व्याख्या : गुहनाम भगवान् स्वामि कार्तिकेय का है । यथा . सेनानीरग्न-भूर्गुहः । उस निपाद का भी यही नाम था । यह निपादों का अधिपति था । शृङ्गवेर पुर में रहता था । इसे जब खबर लगी कि सस्त्रीक सानुज रामजी मन्त्री के साथ पधारे हैं तो बड़ा प्रसन्न हुआ । भेंट के लिए फल मूल से वहँगी भर ली । अपने प्रिय भाई बन्धुओं को साथ ले लिया और मिलने चला । रामजी के आने का तो अर्थ ही यह है कि लक्ष्मण जी साथ हैं । पर भगवती सीताजी साथ है । यह सुनकर उसे अपार आनन्द हुआ कि युगलमूर्ति का दर्शन करूँगा । मालूम होता है कि गङ्गा स्नान के लिए आये हैं ।

करि दंडवत भेंट धरि आगे । प्रभुहि विलोकत अति अनुरागे ॥
सहज सनेह विवस रघुराई । पूँछी कुशल निकट बैठाई ॥२॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेम से सरकार का दर्शन करने लगा । रामजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश उसे निकट बिठलाया और कुशल पूछी ।

व्याख्या : राजा दण्डधर गुरु है । इसलिए दण्डवत् प्रणाम किया । रिक्तपाणि होकर : खाली हाथ राजदर्शन का निषेध है । इसलिए भेंट सामने रखवा । जगदम्बा के दर्शन का अधिकार नहीं है । इसलिए प्रेम से टकटकी बाँधे सरकार का दर्शन कर रहा है ।

हाथ बाँधे दूर खड़ा है । उसे सरकार के प्रति स्वाभाविक प्रेम है । किसी कारण से नहीं और सरकार सहज प्रेम के वश में रहनेवाले हैं । अतः उसे बुलाकर अपने निकट बिठलाया और कुशल पूछा । कुशल पूछने का अर्थ ही यह है कि पूछने-वाला कुशल चाहता है । जो अप्रसन्न होता है वह कुशल नहीं पूछता । यथा : दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि विलोकि जरे सब गाता । निकट बैठना और कुशल पूछना आदर देना है : सम्मान करना है । हेमदान गजदान से बड़ी दान सम्मान ।

नाथ कुसल पद पकज देखें । भयेउँ भागभाजनु जन लेखे ॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा । मै जनु नीच सहित परिवारा ॥३॥

अर्थ : हे नाथ । आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है । मेरी तो गिनती भाग्यवानों में हो गयी । हे देव । धरणी धन धाम सब आपका है । मैं तो परिवार के सहित नीच सेवक हूँ ।

व्याख्या . सेवक सदन स्वामि आगमन । मंगल मूल अमंगल दमन । सरकार के चरण आने से सब कुशल है । जगदम्बा भी साथ है । अत कहता है कि आज मेरी गणना भाग्यावानों में हो गयी । यहाँ इस तरह रहना ठीक नहीं है । मेरा तो सब कुछ सरकार का ही है । धरणी आपकी, धन आपका, घर आपका, मैं तो नीच सेवक परिवार के सहित हूँ । अतएव उनका परिवार सहित उपभोग करता हूँ । जब घर मौजूद है तब जगदम्बा सहित यहाँ ठहरना ठीक नहीं । यद्यपि वह जगदम्बा का नाम नहीं लेता है । पर उसके बरताव से यह झलक आती है ।

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ । थापिय जनु सब लोग सिहाऊ ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयेसु आना ॥४॥

अर्थ कृपा करिये । पुर में पधारिये । मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाइये । सब लोग मेरे भाग्य की प्रशंसा करें । रामजी बोले सुजान सखा । तुमने ठीक कहा । पर पिताजी ने मुझे दूसरे प्रकार की आज्ञा दी है ।

व्याख्या पुर में न उतर कर गङ्गातीर में उतरे सो ठीक हो किया । पर अब तो स्नानादिक सब धर्मकृत्य हो चुके । अब मुझ पर कृपा कीजिये । पुर में पधारिये । पुर में पधारने से मेरी प्रतिष्ठा है । मैं प्रतिष्ठा की हुई मूर्ति की भाँति पूज्य हो जाऊँगा । लोग मेरे भाग्य की सराहना करेंगे ।

श्रीरामजी ने उसे सखा सुजान कहकर सम्बोधन किया और कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है । सस्त्रीक होने से मेरा पुर में उतरना उचित है । पर जैसा तुमने सुना होगा कि मेरा अभिप्रेत होनेवाला था सो नहीं हुआ । पिताजी की दूसरे प्रकार की आज्ञा हुई ।

दो वरष चारि दस वासु बन, मुनि व्रत वेषु अहार ।

ग्राम वासु नहि उचित सुनि, गुहहि भयउ दुख भार ॥८८॥

अर्थ चौदह वर्ष वनवास करने की और मुनिव्रत वेष और आहार की आज्ञा हुई है । अतः ग्रामवास मुझे उचित नहीं है । यह सुनकर गुह को बड़ा भारी दुःख हुआ ।

व्याख्या अभी वनवास का प्रारम्भ ही है । इसलिए चारिदस कहते हैं । रामजी ने कहा कि चौदह वर्ष के लिए मुझे वनवास की आज्ञा है और तबतक के लिए मुनियों का व्रत पालन करने मुनियों का सा वेष धारण करने और मुनियों का

सा आहार करने की आज्ञा है। इसलिए अयोध्या छोड़कर वन जा रहा हूँ। ग्रामवास मुझे उचित नहीं है। नहीं तो मैं अवश्य तुम्हारे पुर में जाकर तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार करता। मैं जबतक यहाँ ठहरूँगा पुर के बाहर ही रहूँगा।

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहि सप्रेम ग्राम नर नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन वालक ऐसे ॥१॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीताजी का रूप देखकर गाँव के नर और नारियाँ कहती हैं कि सखि ! वे^१ पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालक को वन में भेज दिया।

व्याख्या : गाँव में समाचार फैलते क्या देर लगती है। बन्धुओं के महित निपादराज को चलते देखकर गाँव के लोग जुट गये : देव देवि तब बालक दीऊ। अब न आँखि तर आवै कोऊ। तथा जग अस जुवति कहीं कमनोया। ऐसा उन्मादकारक रूप देखकर ग्राम नर नारियों के हृदय में बड़ा प्रेम उमगा। आपस में कहने लगे कि जिसके रूप को देखकर हम लोगो को इतना प्रेम हो रहा है उनके माता पिता का कैसा हृदय है कि उन्होंने ऐसे बालक को वन भेज दिया। वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का समय नहीं आया है इसलिए बालक कहते हैं।

एक कहहि भल भूपति कीन्हा। लोचन लाहु हमहि विधि दोन्हा ॥
तब निपादपति उर अनुमाना। तरु सिसुपा मनोहर जाना ॥२॥

अर्थ : कोई कहता है कि राजा ने अच्छा ही किया। विधाता ने हमको भी लोचन लाभ दे दिया। तब निपादपति ने मन में अनुमान किया तो अशोक का पेड़ मनोहर जँचा।

व्याख्या आँख होने का यथार्थ लाभ तो यही है कि सरकार के सुन्दर मुखकमल का दर्शन हो। यथा . करहु सुफल सबके नयन सुदर वदन देखाये। अतः किसी एव ने कहा कि भाई। राजा ने अच्छा किया जो इनको वन भेजा। विधाता ने ऐसा अवसर प्रदान कर दिया कि हमारे नयन भी इनके दर्शन से सफल हो गये।

इधर निपादपति ने मन में अनुमान किया कि ये मनोहर स्थान के रहनेवाले हैं। अतः इन्हे ठहरने के लिए भी मनोहर स्थान चाहिए। अमुक स्थान में अमुक त्रुटि है। ध्यान में अशोक का वृक्ष आया। मन में ठीक ठहराया कि यही मनोहर है। यहाँ सभी सुभीता है।

ले रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँनि सुहावा ॥
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुवर सव्या करन मिधाये ॥३॥

अर्थ : रामजी को ले जाकर उस स्थान का दिखलाया। रामजी ने कहा कि

१ यहाँ असङ्गति द्वितीय अलङ्कार है।

यह सब भाँति सुन्दर है । पुर के लोग जोहार करके घर आये और रामजी सन्ध्या करने गये ।

व्याख्या : स्वयं तो प्रसन्न कर लिया पर सरकार को प्रसन्न हो तब ठीक । इसलिए सरकार को ले जाकर वह स्थान दिखलाया । सरकार को भी प्रसन्न आगया । कहने लगे कि यह तो सब प्रकार से सुन्दर है । अर्थात् सभी प्रकार का सुभीता भी है ।

जिस भाँति आजकल एक हाथ से वन्दना करते हैं अर्थात् सलाम करते हैं । उसी भाँति दोनों हाथ से वन्दना को जोहार कहते हैं । एक हाथ से वन्दना करने का बहुत बड़ा निषेध धर्मशास्त्र में है । सरकार के साथ पुरजन भी उस स्थान पर गये । प्रसन्न आने पर सरकार के वही ठहरने का निश्चय हुआ । तब पुरजन जोहार करके अपने अपने घर आये । तब तक सन्ध्या का समय हो गया । सरकार सन्ध्या के लिए गङ्गातट गये । अहरह सन्ध्यामुपासीत । वेद की आज्ञा है कि प्रति दिन सन्ध्या करनी चाहिए । प्रातः सन्ध्या और सायं सन्ध्या दोनों ही के लिए विधि है । सरकार सायं सन्ध्या करने गये रामोपासक को सन्ध्या का परित्याग नहीं करना चाहिए ।

गुह सवारि साँथरी डसाई । कुस किसलयमय मृदुल सुहाई ॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी । दोना भरि भरि राखेसि पानी ॥४॥

अर्थ . गुह ने कुश और कोमल पत्तों की मुलायम और सुन्दर साथरी सँवार कर बिछाया और पवित्र फल और मूल जो उसके जाने हुए थे कि मीठे और कोमल होते हैं उन्हें लाकर तथा पानी को भी दोनों में भरकर रक्खा ।

व्याख्या : गुहराज दरबार से सम्बन्ध रखता है । उसे मालूम है कि कौन कौन से फल पवित्र हैं । उनमें जो मधुर और मृदु होते हैं उन्हें दोनों में भरकर रक्खा और पानी भी दोनों में भर भरकर रक्खा । जङ्गली लोग आज भी ऐसा दोना बनाते हैं जिसमें पानी रक्खा जा सकता है : जनश्रुति है कि उसी दिन से मल्लाहों का छुआ हुआ जल ग्राह्य हो गया । क्योंकि रामजी ने उसे ग्रहण कर लिया ।

दो सिय सुमन्त्र भ्राता सहित, कद मूल फल खाइ ।

शयन कीन्ह रघुवंसमनि, पाय पलोटत भाइ ॥८९॥

अर्थ . सीताजी सुमन्त्र और भाई सहित कन्द मूल फल खाकर रघुवंशमणि रामजी ने शयन किया और भाई पैर दबाने लगे ।

व्याख्या आज दूसरे दिन रात के समय सरकार ने सीताजी सुमन्त्र और लक्ष्मणजी के साथ गुह के लाये हुए फल और मूल का भोजन किया । तत्पश्चात् उसी साथरी पर सोये जिसे गुह ने बिछाकर रक्खा था । लक्ष्मणजी चरणसेवा में लग गये ।

उठे लखन प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि वान सरासन । जागन लगे बैठि वीरासन ॥१॥

अर्थ : सरकार को सोते हुए जानकर लक्ष्मणजी उठे । मृदु वाणी से मन्त्री को सोने के लिए कहा । कुछ दूर पर धनुष वाण साजकर वीरासन से जागने लगे ।

व्याख्या : सरकार को थकावट से नींद जल्द आगयी । निद्रित जानकर उठ गये । उस समय भी पैर दाबने से निद्राभङ्ग का भय था । तब लक्ष्मणजी ने मृदु वाणी से मन्त्री से कहा कि अब आप भी सोइये मैं जागूँगा । आपके जगने की आवश्यकता नहीं है । बिना मन्त्री के सोये और लक्ष्मणजी के हटे जगदम्बा न सोयेंगी ।

तब लक्ष्मणजी वहाँ से कुछ दूर जाकर जहाँ से सरकार को देखते भी रहे और विस्पष्ट दिखायी भी न पड़े वाण को ठीक किया । उसमे लगे हुए पर को ठीक किया । धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया और वीरासन लगाकर जागने लगे । वीरासन लगाने पर निद्रा नहीं आती : आज से जागना प्रारम्भ हुआ और जबतक सरकार वन मे है रात्रि को जागकर सरकार की रखवारी करते रहेंगे । यथा : तेहि पाछे लछिमन वीरासन कटि निपंग कर वान सरासन ।

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती । ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहि बैठेउ जाई । कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥२॥

अर्थ : गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर स्थान स्थान पर अतिप्रीति के कारण नियुक्त कर दिया और स्वयं कमर मे तरकस और हाथो मे वाण और चढ़ा हुआ धनुष लेकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा ।

व्याख्या : प्रेमी का हृदय पापशङ्की होता है । इसलिए निषादराज ने विश्वासपात्र पहरेदारों को जो शत्रु से मिल न जायें । मौके मौके पर नियुक्त कर दिया । जिसके कारण वनवास हुआ है उसी के कारण वन मे भी चोट हो सकती है । अथवा राजाओं के अनेक गुप्त शत्रु मित्र होते हैं जिनसे सदा सावधान रहना चाहिए ।

लक्ष्मणजी को सोने के लिए नहीं कहता स्वयं सुसज्जित होकर उनके पास जा बैठता है । इतनी बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहता । केवल लक्ष्मणजी का सहायक बनता है । लक्ष्मणजी अकेले जागेंगे साथ रहने से बातचीत होती रहेगी । रात कट जायगी ।

श्री लक्ष्मण गीता

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भएउ प्रेम वस हृदय विषादू ॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई । बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥३॥

अर्थ : प्रभु को सोते हुए देखकर प्रेम के वश निपाद के हृदय में विपाद हुआ । शरीर पुलकित हो उठा । नेत्रों से जल बहाने लगा । और प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा ।

व्याख्या : जब निपादराज लक्ष्मणजी के पास बैठे तो सरकार को निहारने का अवसर मिला । यह शयन की झाँकी है : नींदहु बदन सोह सुठि लोना । मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना । सरकार के शयनागार की शोभा देखे हुए है । अतः शिशिपा वृक्ष के नीचे सोये हुए देवकर प्रेमवश उसके हृदय में विपाद हुआ ।

विपाद से सात्त्विक भाव हुआ । शरीर के रोगटे खड़े हो गये । आँसू बहने लगे प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा । विपाद से मन की दशा कही । तन पुलकित लोचन जल बहई से तन की दशा कही और बचन सप्रेम लखन सन कहई से बचन की दशा कही ।

भूपति भवन सुभाय सुहावा । सुरपति सदन न पटतर पावा ॥

मनिमय रचित चारु चौवारे । जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ॥४॥

अर्थ : राजमहल स्वभाव से ही ऐसा सुन्दर है कि इन्द्रासन से उसकी उपमा नहीं हो सकती । मणियों से रचे हुए चौवारे ऐसे मनोहर हैं मानो कामदेव ने उन्हें अपने हाथों सँवारा हो ।

व्याख्या : महाराज के महल में सजावट की आवश्यकता नहीं । वे स्वभाव से ही परमसुन्दर बने हुए हैं । उममें चार द्वारवाले घर ऊपर के बँगले मणिगण से रचे हुए ऐसे मनोहर हैं कि मालूम होता है कि स्वयं कामदेव ने ही इनकी रचना की है । लका और अयोध्या का जोड़ है । उधर : तेहि मय दानव बहुरि सँवारा । कनक रचित मनि भवन अपारा और इधर मनिमय रचित चारु चौवारे । जनु रति पति निज हाथ सँवारे ।

दो. सुचि सुविचित्र सुभोगमय, सुमन सुगंध सुवास ।

पलंग मंजु मनि दीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास ॥९०॥

अर्थ : वे पवित्र बड़े विचित्र सुन्दर भोगों से पूर्ण फूलों के सुगन्ध से सुवासित रहते हैं । वहाँ सुन्दर पलङ्ग हैं । मणि के दीप हैं । सब प्रकार से सभी सुभीते हैं ।

व्याख्या सोने से ही मनुष्य अपवित्र हो जाता है । उठने पर स्नानादि का विधान है । सो वहाँ का शयनागार पवित्र है । पवित्रता होने पर भी सुन्दरता की कमी नहीं । अति विचित्र है । सब भोग की सामग्रियों से पूर्ण रहता है । सब प्रकार के पदार्थ स्रक् चन्दन वीणा आदि से सुसज्जित रहता है । फूलों के सुगन्ध से सुवासित रहता है । तीव्र गन्धवाले सुगन्ध की भी वहाँ गति नहीं है । सोने के लिए सुन्दर पलङ्ग ठण्ठी रोशनी के लिए मणिदीप कामशास्त्रानुमोदित सभी सामग्री और सभी प्रकार की जहाँ सुविधाएँ हैं ।

विविध वसन उपधान तुराई । छीर फेन मृदु वसन सुहाई ॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करही । निज छवि रति मनोज मद हरहीं ॥१॥

अर्थ : दूध के फेन की भाँति मुलायम सुन्दर अनेक प्रकार के कपड़े तकिये और गद्दियाँ थी । वहाँ राम जानकी सदा सोते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे ।

व्याख्या : प्रत्येक ऋतु के उपयोगी वस्त्र तथा तकिये और तोशकें वे भी अनेक प्रकार की । मृदुता की पराकाष्ठा है । वे दूध के फेन के समान उज्ज्वल और कोमल हैं । ये सिय राम जिनके लिए चक्रवर्तीजी ने सारे उपभोग एकत्रित कर रखे थे । ऐसे भोगमय महल के सोनेवाले हैं । भोग्य की सुन्दरता कहकर भोक्ता की सुन्दरता कहते हैं कि उनकी छवि देखकर रति और कामदेव का गर्व छूट जाता था ।

ते सिय रामु साँथरी सोये । श्रमित वसन विनु जाहि न जोये ॥
मातु पिता परिजन पुरवासी । सखा सुशील दास अरु दासी ॥२॥

अर्थ : वे सियराम साथरी पर सोये हुए हैं । थके हुए हैं । बिना कपड़े के देखते नहीं बनता । माता पिता कुटुम्बी पुरवासी सखा सुशील दासी और दास ।

व्याख्या : ऐसे परम सुन्दर तथा सुरदुर्लभोपभोग में पले हुए सियराम साथरी पर सोये हुए हैं । प्रश्न उठता है कि ऐसे सुखों में पले हुए को ऐसी साथरी पर नीद कैसे आयी ? इस पर कहना है कि थके हुए हैं । यथा : श्रमित भूप निद्रा अति आई । एक चादर शरीर ढकने के लिए नहीं है । कहाँ : रति मनोज छवि हरही और कहाँ : जाहि न जोये ।

माता पिता सब प्रकार का सार सँभार करनेवाले यथा : सब कर सार सँभार गोसाईं । करव जनक जननी की नाईं । परिजन पुरवासी सब प्रेम करनेवाले यथा : पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं । सब सुचि सरस सनेह सगाईं । सेवक सेव्यभाव रखनेवाले सखा यथा : सेवक हम स्वामी सिय नाहू । होउ नात एहिओर निबाहू और अनन्य गतिक दास और दासी ।

जोगवहि जिन्हहि प्राण की नाईं । महि सोवत तेइ रामु गोसाईं ॥
पिता जनक जग विदित प्रभाऊ । ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥३॥

अर्थ : जिसकी प्राण की भाँति रक्षा करते थे । वे राम गोसाईं पृथ्वी पर सो रहे हैं । जिसके जनक जैसे पिता हैं जिनका प्रभाव जगत में विदित है । जिसके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथ हैं ।

व्याख्या : ऐसे माता पिता ऐसे परिजन पुरवासी ऐसे सखा ऐसे दास दासी जिनकी रात दिन चारों ओर से प्राण की भाँति रक्षा करते थे वे भगवान् रामचन्द्र पृथ्वी पर सो रहे हैं । इससे अधिक अनर्थ क्या होगा ?

स्त्री के भाग्य का निर्णय पिता ससुर और पति के योग्य मिलने पर । निर्भर

है । सो जिनके पिता महाराज जनक : कौन है जो उनके प्रभाव को न जानता हो ।
जिनके ससुर महाराज दशरथ : आगे होइ जेहि सुरपति लेई । अरध सिंहासन
आसन देई । स्वयं देवराज इन्द्र के मित्र ।

रामचंद्र पति सो वैदेही । सोवति महि विधि वाम न केही ॥
सिय रघुवीर कि कानन जोगू । करमु प्रधान सत्य कह लोगू ॥४॥

अर्थ : जिसके रामचन्द्र से पति हों वह वैदेही पृथ्वी पर सो रही है ।
विधाता किसके विपरीत नहीं हो जाते । राम जानकी क्या वन के योग्य हैं । लोग
ठीक कहते हैं कि कर्म ही प्रधान है ।

व्याख्या : जो बड़ होत सो राम बड़ाई । वे रामचन्द्र जिसके पति हों । भाव
यह कि जिसको पिता ससुर और पति लोकोत्तर मिले वह भगवती सीता पृथ्वी
पर सोवे । इनके भूमि पर सोने का कोई कारण ही नहीं । सिवा विधाता की करनी
के और क्या कहा जा सकता है ? विधि करतव्य पर कछु न बसाई ।

वनहित कोल किरात किसोरी । रची विरंचि विषय सुख भोरी । कै तापस
तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू । कोल किरात विषय सुख जानते
ही नहीं वे कानन योग्य है । तपस्वी लोग विषय सुख से अपरिचित नहीं हैं । पर
तपस्या के लिए उसे छोड़ रखता है । वे भी कानन योग्य है । पर ऐसे सुख में
पले हुए नवीन अवस्थावाले राम जानकी क्या वन के योग्य है । वे आँखों में
रखने योग्य है । यथा : ये रखिअहि सखि आँखिन्ह माही । सो इन्हें वनवास मिल गया ।
अतः कर्म ही प्रधान है । निपाद शास्त्र नहीं पढ़े हैं । अतः कहता है : सत्य कह
लोगू । यहाँ निपादराज को मोह हुआ । उसने नहीं समझा कि प्रभु के जन्म कर्म
दिव्य हैं । वे ईश्वर हैं । अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं और ऐसी लीला
करते हैं जिसे सुनने समझनेवालों को परमपद की प्राप्ति होती है । जिस भाँति
जीव कर्मवश दुःख सुख के भागो रहते हैं । उसी भाँति रघुनाथजी को समझकर
उसे मोह हुआ । विपाद होने पर ही अर्जुन को गीता का उपदेश हुआ । उसी भाँति
निपादराज को मोह होने पर साक्षात् भगवान् रामानुज गीता का उपदेश करते हैं ।

दो. कैकय नंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपनु कीन्ह ।

जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥९१॥

अर्थ : मन्दमति कैकय की बेटो ने घोर कुटिलपन किया । जिसने राम जानकी
को सुख के अवसर में दुःख दिया ।

व्याख्या : कैकयनन्दिनी तो रघुकुल कमल चन्दनी हैं । राजा कैकय भल्ले ही
नात्तो का राज्य सुनकर प्रसन्न हो पर रघुकुल का तो इसने नाश कर दिया ।
मन्दमति है । अवसर चूक गयी । सदा राम को प्राण के समान मानती रही । जब
राम के अभियेक का समय आया तब इसे उसी भाँति अनुमोदन करने में आगे
होना था । सो इसने वनवास मांगा । राम जानकी को जो जगत् के हित है

दुःख दिया । यह उसका कुटिलपन है और सुख के अवसर पर दुःख दिया । यह कठिन कुटिलपन है ।

भइ दिनकर कुल विटप कुठारी । कुमति कीन्ह सबु विस्व दुखारी ॥

भयउ विपाद निपादहि भारी । राम सीय महि सयन निहारी ॥१॥

अर्थ : यह सूर्यकुलरूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी रूप बन गयी । इस कुबुद्धि ने सारे विश्व को दुःखी कर दिया । राम सीय का पृथ्वी पर सोना देखकर निपाद को भारी विपाद हुआ ।

व्याख्या : महाराज ने कहा था : जनि दिनकर कुल होसि कुठारी । आज वही बात निपादराज कह रहे हैं । कुल्हाड़ी लोहे की होती है । पर उसका बेंट काठ का ही होता है । बेंट से सम्बद्ध होकर ही वह वृक्ष काटने में समर्थ होती है । इसी भाँति कैकेयी कैकय देश की है । पर रघुवंश से सम्बद्ध होने के कारण आज वह दिनकर कुलरूपी विटप के काटने में समर्थ हो रही है । कुमति है : जहाँ कुमति तहाँ विपति निदाना । सो इस कुमति ने तो सारे विश्व को दुःखी कर दिया । यथा : राम गवन बन अनरथ मूला । जो सुनि सकल विश्व भइ सूला । इस भाँति निपादराज भगवती कैकेयी का दो अपराध बतलाते हैं । १. राम जानकी को सुख अवसर में दुःख देना और २. सम्पूर्ण विश्व को दुःखी करना ।

राम जानकी का महोशयन देखकर सभी देखनेवाले को विपाद हुआ । पर निपाद को भारी विपाद हुआ : संसार से विपण्णा होने पर ही ज्ञानोपदेश की पात्रता होती है । अतः इसे लक्ष्मणजी उपदेश करेंगे । इस उपदेश को महात्माओं ने लक्ष्मणगीता के नाम से अभिहित किया ।

बोले लखनु मधुर मृदुबानी । ग्यान विराग भगति रस सानी ॥

काहु न कोउ सुखदुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥२॥

अर्थ—ज्ञान विराग भक्ति रससानी मधुर मृदुवाणी लक्ष्मणजी बोले । कोई भी किसी को सुख दुःख का देनेवाला नहीं है । हे भाई ! यह सब अपने किये हुए कर्म के भोग का फल है ।

व्याख्या : भगवती कैकेयी पर निपादराज ने जो दोषारोपण किया है उसका निराकरण करना है तथा निपादराज ऐसे हितचिन्तक का मोहापनयन करना है अतः शिक्षा ग्रहण के लिए प्रार्थना न करने पर भी लक्ष्मणजी की प्रवृत्ति उसको उपदेश देने की ओर हुई । निपादराज की उक्ति : कैकयनदिनि मंद मति कठिन कुटिलपन कीन्ह । जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह । तथा : कुमति कीन्ह सब विश्व दुखारी का खण्डन करना है । अतः मधुर मृदुवाणी बोले जिससे उसे अरुन्तुद प्रतीत न हो और उसके मोह को दूर करना है । इसलिए ज्ञान विराग भक्ति रससानी वाणी बोले ।

बुद्धि कीन्ह सत्र विश्व दुखारी का उत्तर देते हैं। निपादराज ने पहिले कहा था कर्म प्रधान सत्य वह लोग और फिर कैकेयीजी को दोष देने लग गया कि उन्होंने रघुनन्दन जानकी को सुख के अवसर पर दुःख दिया। ये दोनों बातें एक दूसरे के विरुद्ध हैं। मोह होने पर लोग इसी प्रकार से सोचा करते हैं। स्थिर नहीं कर सकते कि वस्तुस्थिति क्या है? इस पर लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो तुम भगवती कैकेयी को दुःखदाता समझ रहे हो यह तुम्हारी भूल है। जीव तो कर्मवश दुःख सुख का भागी होता है। जैसा कर्म करता है वही उसका फल भोगता है। यही वेद की नीति है और सभी इसे मानते हैं। कर्म जड़ है स्वयं फल नहीं दे सकता। ईश्वर फलदाता है। वह शुभकर्म का शुभफल और अशुभ कर्म का अशुभ फल हृदय में विचार कर देता है। अतः कहा है सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। कोई सुख दुःख का देनेवाला नहीं। दूसरा कोई देता है यह कुबुद्धि है। कर्म किया कैकेयी ने और दुःख पाया विश्व ने यह मानना अपसिद्धान्त है। विश्व के अशुभ कर्म के बिना उदय हुए विश्व को दुःख नहीं मिल सकता।

योग वियोग भोग भल मदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फदा ॥

जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। सपति विपति करम अरु कालू ॥३॥

अर्थ मिलना और विछुडना बुरे और भले भोग शत्रु मित्र और मध्यस्थ ये भ्रम के फन्दे हैं। जन्म मरण जहाँ तक ससार का जाल है सम्पत्ति विपत्ति कर्म और काल।

व्याख्या श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं कि दुःख सुख का होना भी व्यावहारिक सत्य है पारमार्थिक सत्य नहीं है। क्योंकि विषय और इन्द्रिय का संयोग ही शीत उष्ण सुख दुःख के देनेवाले है। ये उत्पत्ति विनाशशील एव अनित्य हैं। यथा मात्रा स्पर्शस्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदा। आगमापायिनोऽनित्यास्तास्तितिक्षस्व भारत गीतायाम्। असङ्ग आत्मा को योग वियोग कहाँ? और जब योग वियोग नहीं तब दुःख का संयोग कैसा और उत्तके देनेवाल हित अनहित मध्यस्थ कहाँ से आगये। इसीलिए कहा है शत्रु मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हे वरिआई। त्यागव गहव उपेक्षणीय अहि हाटक तून की नाई। अतः योग वियोग भल मन्द भोग और शत्रु मित्र मध्यस्थ भाव ही भ्रम है। इसी से लोग बंधे हैं। आगे चलकर उस जाल का भी निरूपण करेंगे। जिसमें ये सात प्रकार के फन्दे लगे हुए हैं।

वह जाल जिसके फन्दे में सभी ससारी जीव फँसे हैं यही जगत् है। वह जन्म से लेकर मरण तक फैला हुआ है। पुनरपि जनन पुनरपि मरण पुनरपि जनीजठरे शयनम्। इसी जाल में फँसा हुआ जीव जन्म मरण का अनुभव सदा किया करता है। इसमें परमार्थ कुछ भी नहीं। सत्र व्यावहारिक है। सम्पत्ति विपत्ति भी वास्तविक नहीं। सबके सब क्षणिक हैं।

धरनि धामु धनु पुर परिवारु । मरगु नरकु जँह लगि व्यवहारु ॥
देखिय सुनिय गुनिय मनमाही । मोह मल परमारथ नाही ॥४॥

अर्थ धरती, गृह, धन, पुर, परिवार, स्वर्ग, नरक आदि जहाँ तक व्यवहार है देखिये सुनिये मनमें विचार कीजिये तो सबका कारण मोह है । ये कोई परमार्थ नहीं है ।

व्याख्या उनके कारण कर्म और काल की भी व्यावहारिक सत्ता है । निष्क्रिय आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं । अतः ममता के आस्पद धरणी धाम पुर परिवार यहाँ तक कि स्वर्ग और नरक सब क्षयिष्णु हैं । इनमें भी कोई टिकाऊ नहीं । अतः सब असत्य है । सत्य तो वही है जिसमें देशत कालत वस्तुत व्यभिचार न हो ।

आँखों देखते हैं कि इस जगत् में कहीं किसी पदार्थ में क्षणमात्र के लिए स्थिरता नहीं है । परिवर्तन ही जगत् का स्वरूप है । कहाँ गये पिता पितामह जिनके गोद में स्वर्गीय आनन्द के भोग का अनुभव होता था । कहाँ गये वे मित्र जिनके साथ में दुःख भूल जाते थे । कहाँ गये वे महाप्रतापी सम्राट् जिनके विषय में सुना जाता है कि अपने धनुष की कोटि से पर्वतों को हटा हटाकर पृथ्वी के जोतने बोलने योग्य बनाया । नगर ग्राम बसाकर मनुष्य को समाज बाँधकर रहना सिखाया । मन में विचारते हैं तो कहीं कोई सत्य हाथ नहीं आता । किसी वस्तु में सुख दुःख स्थायी नहीं है । जो वस्तु गरमी में दुःखद है वही जाड़े में सुखद हो जाती है । जो वस्तु एक देश में जैसा प्रभाव दिखाती है दूसरे देश में उसका दूसरा प्रभाव हो जाता है । स्वतः न कोई वस्तु सुखद है न दुःखद है न किसी में स्थिरता है । अतः कुछ भी पारमार्थिक सत्य नहीं है । अपना अज्ञान ही इन सबका मूल है । आत्म-स्वरूप के ज्ञान से इनका अभाव प्रत्यक्ष भासता है ।

दो सपने होइ भिखारि नृपु, रक नाकपति होइ ।

जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपच जिय जोइ ॥९२॥

अर्थ सपने में राजा भिखारी हो जाता है और दरिद्र इन्द्र हो जाता है । जागने पर न कुछ हानि है न लाभ है । इसी प्रकार से इस ससार को भी जो से जानो ।

व्याख्या सपना प्रातिभासित सत्य है । उस काल में वह सत्य ही प्रतीत होता है । किसी को यह प्रतीति नहीं होती कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ । जो देख रहा हूँ वह मिथ्या है । सभी उस समय उसको सत्य मानते हैं । सिंहासन पर सोया हुआ राजा सपने में अपने को अति दीन दरिद्रावस्था में पाता है । उसे उस समय अपना राजा हाना नहीं भासता । सिंहासन में ही लेटा हुआ उसे अपनी दीनता दरिद्रता ही सच्ची मालूम पड़ती है । इसी भाँति महादरिद्र सपने में देखता है कि इन्द्र हा गया । सब देवता ऋद्धि सिद्धि हाथ बाँधे खड़े हैं । उस समय भी वह दरिद्र ही है ।

पर निद्रादोष के हटते ही वह भ्रम जाता रहता है। उससे न गजा की कोई हानि हुई और न उम दरिद्र का कोई लाभ हुआ।

लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह प्रपञ्च व्यावहारिक सत्य भी सपना ही है। भेद इतना ही है कि यह सपना अधिक स्थायी है। वह सपना निद्रादोष से था। यह सपना मायादोष से है। जिस भाँति निद्रादोष की निवृत्ति से वह सपना नहीं रह जाता।

अस विचारि नहि कीजिअ रोसू। काहुहि वादि न देइअ दोसू ॥

मोह निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥१॥

अर्थ ऐसा विचारकर न क्रोध करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। सब मोह रात्रि में सोनेवाला है। अनेक प्रकार के सपने देख रहे हैं।

व्याख्या जगत् को भी सपना रूप जानो। यथा उमा कहीं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना। विचार तो करो सपने में का शत्रु मित्र सपने में का हानि लाभ तो अपने स्वरूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। सपने में तो कोई दूसरा रहता नहीं। आप ही अपना शत्रु बन जाता है और आप ही अपना मित्र बन जाता है फिर दोष किसे दें? सपने में जिसे शत्रु रूप देखा था क्योंकि उसने हानि की थी। जागने पर तो कोई उसे न शत्रु मानता है और न उस हानि को हानि समझता है। जानता है कि वह मिथ्या प्रपञ्च था। अतः न तो रोष करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। भगवती केकेयी को दोष देना सर्वथा असङ्गत है।

जिस भाँति सूर्य के न होने से रात होती है उसी भाँति ज्ञानसूर्य के अभाव से मोहरात्रि हाती है। जिस भाँति रात को सब सोते हैं और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं उसी भाँति मोहरात्रि में सब सो रहे हैं और जागृतरूप अनेक प्रकार के स्वप्न देख रहे हैं। रात्रि के स्वप्न में जिस भाँति जाग्रत् का भान होता है। सभी स्वप्न देखनेवाले अपने को जागता हुआ ही मानते हैं। उसी भाँति मोहरात्रि में सोनेवालों का यह जागना भी स्वप्न ही है। यह जागना सच्चा जागना नहीं है। क्योंकि मोहनशा के दूर होने पर इसका बाध देखा जाता है।

एहि जग जामिनि जागहि जोगी। परमारथी प्रपच वियोगी ॥

जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा ॥२॥

अर्थ इस जगत् रूपी रात्रि में जोगी जागते हैं जो परमार्थी हैं और ससार से जिसका विछोह है। इसमें जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब सभी विषय विलास से उसे वैराग्य हा।

व्याख्या यही ससाररूपी रात्रि है। इसमें सपना देखनेवाले अपने को मिथ्या हो जागता हुआ मानते हैं। इसमें सच्चे जागनेवाले जोगी हैं। क्योंकि वे ही पारमार्थिक सत्य का साक्षात्कार करते हैं। इस स्वप्नरूपी प्रपञ्च का उनके लिए

सर्वथा बाध हो जाता है। वे व्यावहारिक सत्य को उसी भाँति मिथ्या अनुभव करते हैं जिस भाँति प्रातिभासिक सत्य उन्हें मिथ्या मालूम होता है। यथा जेहि निसि सकल जीव सूतैं तव कृपापात्र जन जागैं। भाव यह कि जिस ओर योगी लोग जाग रहे हैं उस ओर ससारी लोग सोये हुए हैं और जिस ओर ससारी लोग जाग रहे हैं उस ओर योगी लोग सो रहे हैं। जैसे जिस समय उल्लू को दिखायी पड़ता है उस समय कौवा को नहीं सूझता और जिस समय कौवा को सूझता है उस समय उल्लू को नहीं सूझता। यही मति ससारी लोगो और योगियो की है।

अब सच्चे जागे हुए का लक्षण कहते हैं। जब तक चित्त में विषय विलास का राग है तबतक मोह निद्रा बनी हुई है। जब सब विषय विलास से विराग हो तब जानिये कि जीव जाग गया। अतः रामानुरागी ही सच्चे जागनेवाले हैं। यथा रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड भागी। भगवान् भी यही कहते हैं कि सभी योगियो में वे ही उत्तम हैं। जो मेरा भजन करते हैं। यथा योगिनामपि सर्वेषा मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। गीतायाम्।

होइ विवेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥

सखा परम परमार्थ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू ॥३॥

अर्थ विवेक होता है मोह भ्रम भाग जाता है। तब रघुनाथ के चरणों में अनुराग होता है। हे सखा! परम परमार्थ यही है कि मनसा वाचा कर्मणा रामपद में अनुराग हो।

व्याख्या जब तक विषय विलास में विराग नहीं होता तब तक विवेक नहीं होता। केवल शास्त्रीय ज्ञान से पूरा काम नहीं चलता। विवेकज ज्ञान से ही मोह का नाश होता है। पहिले अज्ञान होता है तब विपरीत ज्ञान होता है। विपरीत ज्ञान ही भ्रम है। विवेकज ज्ञान से भ्रम और उसके मूल मोह का नाश होता है। भ्रम और मोह के रहते रघुनाथजी के चरण में अनुराग नहीं होता। भगवान् गीता में कहते हैं कि पापी मोह में फँसे हुए जिनका ज्ञान माया से अपहरण हो गया है ऐसे अधम पुरुष मेरे शरण नहीं आते। अतः मनसा वाचा कर्मणा रामजी के चरणों में प्रेम होना ही परम पुरुषार्थ है। क्योंकि मोक्ष सुख भी बिना हरिभक्ति के ठहर नहीं सकता और सगुणोपासक तो मोक्ष चाहते ही नहीं। यथा साधन सिद्धि रामपद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।

राम ब्रह्म परमार्थ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा ॥

सकल विकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहि वेदा ॥४॥

अर्थ राम ब्रह्म परमार्थ रूप हैं। अव्यक्त, अलक्ष्य, अनादि और अनूप हैं। सब विकारों से रहित और भेद रहित हैं। उन्हें न इति न इति कहकर वेद निरूपण करते हैं।

व्याख्या : कुमति कीन्ह सब विश्व दुखारी का उत्तर दकर . जेहि रघुनदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह का उत्तर रामजी के स्वरूप का निरूपण करके देते हैं । रामजी जीव नहीं हैं । वे ब्रह्म हैं । देशतः कालतः और वस्तुतः अपरिच्छिन्न हैं । इसलिए वे ही परमार्थ सत्य हैं । अरूप होने से अव्यक्त हैं । मन और वाणी से परे होने से अलख हैं । अथवा स्थूल दृष्टि से नहीं देखे जा सकने से अलख कहा । सबके आदि होने से अनादि कहा । अद्वितीय होने से अनूप कहा । यथा जग सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप शिरोमने । चिदानन्द मय होने से विकार रहित कहा । यथा • चिदानन्दमय देह तुम्हारी । बिगत विकार जान अधिकारी । सर्वगत होने से भेदरहित कहा । इदमित्य रूप से नहीं कहे जा सकने के कारण वेद नेति नेति कहकर निरूपण करते हैं । अथवा वेद नेति नेति कहकर अर्थात् यह भी नहीं यह भी नहीं अथवा स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं कहकर सब प्रकार के विशेषों का निषेध करते हैं । ऐसे प्रभु जिस भक्ति के अनुरोध से देह धारण करते हैं वह भक्ति महा प्रभावा है ।

दो. भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल ।

करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहि जग जाल ॥९३॥

अर्थ : वे कृपालु हैं । भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ, देवता के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीला करते हैं । उसके सुनने से जग जाल मिट जाता है ।

व्याख्या : अगुन अखड अनंत अनादी । जेहि चितहि परमारथवादी । नेति नेति जेहि वेद निरूपा । निजानन्द निरूपाधि अनूपा । सभु बिरंचि बिस्तु भगवाना । उपजहि जासु अस ते नाना । ऐसउ प्रभु सेवक वस अहई । भगत हेतु लीला तनु गहई । यद्यपि प्रभु जगत् से विलक्षण हैं । पर जगत पर कृपा करके भक्त, भूमि ब्राह्मण, गौ और देवताओं के लिए अर्थात् साधु के दुःख निवारण के लिए वही रामजी मनुष्यरूप धारण करके लीला कर रहे हैं । जेहि कहत गावत सुनत समुझत परमपद नर पावई । उस चरित के सुनने से जग जाल मिट जाता है । अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से रहित हो जाता है । यह चरित की अद्भुत महिमा है ।

सखा समुझि अस परिहरि मोह । सिय रघुवीर चरन रत होह ॥

कहत राम गुन भा भिनुसारा । जागे जग मगल सुखदारा ॥१॥

अर्थ : हे सखा ! ऐसा समझकर मोह को छोड़ो और सिय रघुवीर के चरणों में प्रेम करो । इस भाँति रामजी के गुणों को कहते कहते सबेरा हो गया और सुखरूप स्त्रीवाले जगमङ्गल रामजी जागे ।

व्याख्या : उपसहार करते हुए लक्ष्मणजी ने कहा कि हे सखा ! रामजी ब्रह्म हैं । जगत् के मङ्गल के लिए अवतीर्ण होकर नर चरित कर रहे हैं । ऐसा समझकर मोह को छोड़ दो । जाग जाओ । इनको प्राकृत नर समझकर विपाद न करो । इनके स्वरूप को न पहचानकर इन्हें मनुष्य मानना ही मोह है । परमार्थ

रूप ब्रह्म ही सिय रघुवीर रूप से दो मूर्ति धारण किये हुए हैं। अतः इनके चरणों में भक्ति करो। तुम्हें विषयो में राग है इससे इन्हें दुःखी समझ रहे हो।

इस प्रकार से रामगुण कहते कहते रात बीत गयी। समय का कुछ भान ही न रहा। एहि विधि कहत रामगुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा। सोने से जगत् को विश्राम मिलता है। यहाँ जागने से अनिर्वाच्य विश्राम मिला है। सवेरा होते ही सुषरूप दारा हैं जिसकी अर्थात् साक्षात् आह्लादिनी शक्तिरूपा जिनकी स्त्री सीताजी हैं वे जगत् के मङ्गल करनेवाले रामजी जागे।

सकल शौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छोर मँगावा ॥

अनुज सहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत्र नयन जल छाये ॥२॥

अर्थ : पवित्र और सुजान रामजी ने पहिले सब शौचविधि की फिर स्नान किया। तत्पश्चात् बटवृक्ष का दूध मँगाया। भाई के सहित जटा बनाया। जिसे देखकर सुमन्त्रजी की आँखों में आँसू आगये।

व्याख्या : शौच दो प्रकार का होता है। ध्यानादि मानसिक शौच है और शरीर की शुद्धि शारीरिक शौच है। रामजी स्वभाव से ही पवित्र हैं। फिर भी शास्त्रानुमोदित रीति से दोनों प्रकार का शौच करके स्नान किया। जब से घर से चले हैं तभी से मुनिव्रत और आहार चल रहा है। बल्कल धारण कर ही लिया है। अब मुनिवेष की पूर्ति के लिए जटा बनाना शेष है। सुमन्त्रजी किसलिए साथ आये हैं इस बात को समझ रहे हैं। अतः अपना अभिप्राय उनको सुस्पष्ट कर देने के लिए तुरन्त बटवीर मँगाया और दोनों भाइयों ने जटा बना ली। देखते ही सुमन्त्र समझ गये कि ये दोनों भाई लौटनेवाले नहीं हैं। बड़े सुजान हैं। जटा बनाकर ही जो कहना था वह दिया। अतः इस भाँति निराश होने से सुमन्त्रजी के नेत्रों में जल आगया। दूसरी बात यह कि सुमन्त्रजी पुनः की भाँति स्नेह करते हैं। इनको जटा धारण किये हुए देखकर प्रेम उमड़ पड़ा। अतः आँखों में आँसू आगये।

हृदयं दाह अति वदन मलीना। कह कर जोरि वचन अति दीना ॥

नाथ कहेउ अस कोसलनाथ। ले रथु जाहु राम के साथ ॥३॥

अर्थ : कलेजे में अत्यन्त दाह उत्पन्न हो गया। मुख मलिन हो गया। हाथ जोड़कर दीन वचन बोले कि हे नाथ ! कोसलनाथ ने कहा कि तुम रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

व्याख्या : सुमन्त्रजी के हृदय में दाह तो पहिले ही से था जटा धारण किये हुए देखकर वह दाह बहुत बढ़ गया। अतः उसका प्रभाव मुख पर पड़ा। मुख मलिन हो गया। समझा कि यही समय निवेदन का है। अतः हाथ जोड़कर अति दीन वचन बोले। हृदय दाह अति से मन की दशा बहा। वदन मलीना से तन की दशा बहा। वचन अति दीना कहकर वचन की दशा बह रहे हैं।

सुमन्त्रजी ने कहा कि आप भी मेरे नाथ हैं। पर कोसलनाथ सबसे बड़े हैं। उनको आज्ञा आप को भी शिरोधार्य है। वे नहीं चाहते कि आप पैदल चलें। इसीलिए रथ लेकर मुझे भेजा। आपके लिए मुनि व्रत बेप आहार की जो आज्ञा थी वह जटा बना लेने से पूरी हो गयी। अब आगे क्या करना चाहिए उसके लिए भा आज्ञा हुई है।

वन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि वेगि दोउ भाई ॥
लखनु राम सिय आनेहु फेरी। संसय सकल संकोच निवेरी ॥४॥

अर्थ : वन दिखाकर गङ्गा स्नान कराकर दोनों भाइयों को जल्दी लौटा लाना। सब संशय और सङ्कोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता को लौटा लाना।

व्याख्या : सो आपने वन भी देख लिया। गङ्गा के उस पार वन है और गङ्गा स्नान भी कर लिया। रथ साथ है। लौट चलिये यही आज्ञा है। वन से आपका चक्षुः संयोग हो गया। यह संशय न कीजिये कि पिता की आज्ञा तो चौदह वर्ष के लिए थी। अब दूसरी आज्ञा चार दिन के लिए हुई तो इनमें से मैं किसे मानूँ। सो चौदह वर्ष की अवधि को ही सङ्कुचित करके चार दिन किया गया है। मैं मन्त्री हूँ। महाराज के प्रतिनिधि के नाते कह रहा हूँ। यह भी संशय न कीजिये कि आज तो लौट चलें। कल फिर कैकेयी की सम्मति से न जाने कैसी आज्ञा हो। सो कुछ न होगा। अब कैकेयी का कुछ सुना न जायगा। यह सङ्कोच भी न कीजिये कि जब वन के लिए चल पड़े तो लौटें क्या? मैं स्वयं महाराज की आज्ञा से रथ लेकर लौटाने के लिए आया हूँ। इसमें आपके लिए सङ्कोच की कोई बात नहीं है।

दो. नृप अस कहेउ गोसाईं जस, कहइ करौ बलि सोइ।

करि विनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ : महाराज ने ऐसा कहा है। हे नाथ! मैं बलैया लेता हूँ। अब जैसी आपकी मर्जी हो वैसा करूँ। इस प्रकार से प्रार्थना करके पैर पर गिर पड़े और बालक की भाँति रो दिया।

व्याख्या : सुमन्त्रजी कहते हैं कि महाराज की तो ऐसी आज्ञा हुई है। पर: राम रजाइ भेट मन माही। देखा सुना कतहुँ कउ नाही। अत मैं बलि जाऊँ। अब आप जो कहें सो मैं करूँ। ऐसा कहकर सुमन्त्रजी पैर पर गिर पड़े वे समझते थे कि दूसरी आज्ञा को प्रियप्रेमप्रमाद समझकर स्वीकार नहीं करेंगे। अतः उसके स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से विनती की और वच्चो की भाँति फूट फूट कर रोने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जाते अवध अनाथ न होई ॥

मन्निहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम सब सोधा ॥१॥

अर्थ : हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो । मन्त्री को रामजी ने उठाकर समझाया कि आप तो धर्म के सब सिद्धान्त समझे वृद्ध हैं ।

व्याख्या : मन्त्री के विनय का सार इतना ही था कि यद्यपि कोई नियम ऐसा नहीं है जिससे कि आप लौट चलने को विवश हो । पर कृपाभिक्षा दीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो । आपके बिना अयोध्यानाथ के रहते हुए भी अयोध्या अनाथ हो जायगी । ऐसी विनती पैर पर पड़े हुए सुमन्त्रजी कर रहे हैं ।

सुमन्त्रजी पैर पर गिरे थे इसलिए रामजी ने उठाया । बच्चों की भाँति रो रहे थे इसलिए समझाया कि धर्मशास्त्र आपका भली भाँति जाना हुआ है । आप पिताजी को भी उपदेश देनेवाले हैं । आप ऐसा कैसे कहते हैं । धर्म के लिए कष्ट सहना ही तो धर्म पालन है । जो कष्ट को डरेगा वह धर्माचरण क्या करेगा ? अतः कष्ट के लिए धर्म नहीं छोड़ा जा सकता ।

शिवि दधीचि हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥

रन्तिदेव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि सकट नाना ॥२॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों कष्ट सहे । रन्तिदेव और सुजान बलि राजा ने नाना सकट सहकर भी धर्म को नहीं छोड़ा ।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र महाजनो का उदाहरण देते हैं कि राजा शिवि अपने शरीर का माँस अपने हाथ से काट काटकर कपोत के साथ तौलते गये । शरणागत होने पर भी कपोत ने कष्ट किया । वह भारी होता गया । राजा अपने वात्स से न हटा । सारा शरीर काट डाला । दधीच ऋषिने देवताओं की याचना करने पर अपनी शरीर की हड्डी दे दी । राजा हरिश्चन्द्रने राज्य दिया । स्वयं चाण्डाल के हाथ विके । इन महाजनो ने धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे और महाजन जिस रास्ते से गये हो वही रास्ता है । रन्तिदेव ने अपना सर्वस्व दान कर दिया । बाल बच्चों के साथ अड़तालास दिन बिना अन्न के रह गये । अन्न मिलते ही अतिथि लोग पहुँच गये । महाराज रन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक सब अन्न उनको खिला दिया । अपने लिए पानी भी न रक्खा । राजा बलि दान देने में ठगे गये । तीन पग के व्याज से तीनों लोक उनसे ले लिया गया । उस महात्मा ने यह भी नहीं कहा कि जिस रूप से दान लिया था उसी रूप से पृथ्वी नापो । अन्त में उन्हें नागपाश से बाँधा गया । पाताल भेज दिये गये पर धर्म नहीं छोड़ा । इन महाजनो ने रास्ता दिखला दिया कि कष्ट के समय में धर्मपालन ही सच्चा धर्मपालन है । कष्ट ही धर्मपरीक्षा का समय है । बड़े धर्मात्माओं को बड़ा कष्ट उनकी धर्मपरीक्षा के लिए आता है । अतः परीक्षा काल में दृढ़ता की आवश्यकता है ।

धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥

में सोइ धरमु सुलभ करि पावा । तजे तिहँ पुर अपजसु छावा ॥३॥

सुमन्त्रजी ने कहा कि आप भी मेरे नाथ हैं। पर कोसलनाथ सबसे बड़े उनकी आज्ञा आप को भी शिरोधार्य है। वे नहीं चाहते कि आप पैदल चलें इसीलिए रथ लेकर मुझे भेजा। आपके लिए मुनि व्रत वेप आहार की जो आशीर्वाद थी वह जटा बना लेने से पूरी हो गयी। अब आगे क्या करना चाहिए उस लिए भा आज्ञा हुई है।

वन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु राम सिय आनेहु फेरी। ससय सकल संकोच निवेरी ॥४॥

अर्थ - वन दिखाकर गङ्गा स्नान कराकर दोनों भाइयों को जल्दी लौटाना। सब शय और सङ्कोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता लौटा लाना।

व्याख्या - सो आपने वन भी देख लिया। गङ्गा के उस पार वन है और गङ्गा स्नान भी कर लिया। रथ साथ है। लौट चलिये यही आज्ञा है। वन आपका चक्षु सयोग हो गया। यह सशय न कीजिये कि पिता की आज्ञा तो चौदह वर्ष के लिए थी। अब दूसरी आज्ञा चार दिन के लिए हुई तो इनमें से मैं कि मानूँ। सो चौदह वर्ष की अवधि को ही सङ्कुचित करके चार दिन किया गया है मैं मन्त्री हूँ। महाराज के प्रतिनिधि के नाते कह रहा हूँ। यह भी सशय न कीजिये कि आज तो लौट चलें। कल फिर कैकेयी की सम्मति से न जाने कैसी आज्ञा हो। स कुछ न होगा। अब कैकेयी का कुछ सुना न जायगा। यह सङ्कोच भी न कीजिये कि जब वन के लिए चल पड़े तो लौटे क्या? मैं स्वयं महाराज की आज्ञा से रथ लेकर लौटाने के लिए आया हूँ। इसमें आपके लिए सङ्कोच की कोई बात नहीं है।

दो. नृप अस कहेउ गोसाईं जस, कहइ करौ बलि सोइ।

करि विनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ - महाराज ने ऐसा कहा है। हे नाथ! मैं बलैया लेता हूँ। अब जैसे आपकी मर्जी हो वैसा करूँ। इस प्रकार से प्रार्थना करके पैर पर गिर पड़े और बालक की भाँति रो दिया।

व्याख्या - सुमन्त्रजी कहते हैं कि महाराज की तो ऐसी आज्ञा हुई है। पर राम रजाइ भट मन माही। देखा सुना कतहुँ कउ नाही। अत मैं बलि जाऊँ अब आप जो कहें सो मैं करूँ। ऐसा कहकर सुमन्त्रजी पैर पर गिर पड़े वे समझते थे कि दूसरी आज्ञा को प्रियप्रमप्रमाद समझकर स्वीकार नहीं करेंगे। अतः उसके स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से विनती की और बच्चों की भाँति फूट फूट कर राने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जाते अवध अनाथ न होई ॥

मन्निहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम सब सोधा ॥९५॥

अर्थ : हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो । मन्त्री को रामजी ने उठाकर समझाया कि आप तो धर्म के सब सिद्धान्त समझे वृक्ष हैं ।

व्याख्या : मन्त्री के विनय का सार इतना ही था कि यद्यपि कोई नियम ऐसा नहीं है जिससे कि आप लौट चलने को विवश हो । पर कृपाभिक्षा दीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो । आपके विना अयोध्यानाथ के रहते हुए भी अयोध्या अनाथ हो जायगी । ऐसी विनती पैर पर पड़े हुए सुमन्त्रजी कर रहे हैं ।

सुमन्त्रजी पैर पर गिरे थे इसलिए रामजी ने उठाया । बच्चो की भाँति रो रहे थे इसलिए समझाया कि धर्मशास्त्र आपका भली भाँति जाना हुआ है । आप पिताजी को भी उपदेश देनेवाले हैं । आप ऐसा कैसे कहते हैं । धर्म के लिए कष्ट सहना ही तो धर्म पालन है । जो कष्ट को डरेगा वह धर्माचरण क्या करेगा ? अतः कष्ट के लिए धर्म नहीं छोड़ा जा सकता ।

शिवि दधीचि हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥

रन्तिदेव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि सकट नाना ॥२॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों कष्ट सहे । रन्तिदेव और सुजान बलि राजा ने नाना सकट सहकर भी धर्म को नहीं छोड़ा ।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र महाजनो का उदाहरण देते हैं कि राजा शिवि अपने शरीर का माँस अपने हाथ से काट काटकर कपोत के साथ तौलते गये । शरणागत होने पर भी कपोत ने कष्ट किया । वह भारी होता गया । राजा अपने बात से न हटा । सारा शरीर काट डाला । दधीच ऋषिने देवताओं की याचना करने पर अपनी शरीर की हड्डी दे दी । राजा हरिश्चन्द्रने राज्य दिया । स्वयं चाण्डाल के हाथ बिके । इन महाजनो ने धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे और महाजन जिस रास्ते से गये हो वही रास्ता है । रन्तिदेव ने अपना सर्वस्व दान कर दिया । बाल बच्चो के साथ अडतालास दिन बिना अन्न के रह गये । अन्न मिलते ही अतिथि लोग पहुँच गये । महाराज रन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक सब अन्न उनको खिला दिया । अपने लिए पानी भी न रक्खा । राजा बलि दान देने में लगे गये । तीन पग के व्याज से तीनो लोक उनसे ले लिया गया । उस महात्मा ने यह भी नहीं कहा कि जिस रूप से दान लिया था उसी रूप से पृथ्वी नापो । अन्त में उन्हें नागपाश से बाँधा गया । पाताल भेज दिये गये पर धर्म नहीं छोड़ा । इन महाजनो ने रास्ता दिखला दिया कि कष्ट के समय में धर्मपालन ही सच्चा धर्मपालन है । कष्ट ही धर्मपरीक्षा का समय है । बड़े धर्मात्माओं को बड़ा कष्ट उनकी धर्मपरीक्षा के लिए आता है । अतः परीक्षा काल में दृढता की आवश्यकता है ।

धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बत्वाना ॥

मे सोइ धरमु सुलभ करि पावा । तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥३॥

अर्थ शास्त्रो वेदो और पुराणो मे कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है । मैने उसी धर्म को सुलभ करके पाया है । छोडने से तीनों लोक मे अपकीर्ति होगी ।

व्याख्या वेद कहता है । सत्य वद धर्मशास्त्र कहता है सत्यान्नास्ति परो धर्म । इतिहास पुराण कहते हैं धर्मो जयति नाधर्म सत्य जयति नानृतम् । न स धर्मो यत्र न सत्यमस्ति । अतः सत्य सब धर्मों से बड़ा होने मे सत्र शास्त्रो का ऐकमत्य है । वही सत्य मुझे सुलभ रीति से प्राप्त हुआ है । मुझे धर्मपरीक्षा मे उत्तीर्ण होने मे बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड रहा है । केवल चौदह वर्ष वनवास करने से ही मे धर्मपरीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाऊँगा । यदि इस समय मैने कच्चाई की तो बड़ा भारी अपयश होगा कि रामचन्द्र धर्म के लिए चौदह वर्ष वन जाने को भी तैयार न हुए ।

सभावित कहु अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥

तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिये उतरु फिर पातकु लहऊँ ॥४॥

अर्थ प्रतिष्ठित पुरुष को अपयश होने से करोडो मरण के समान घोर दाह होता है । हे तात ! आपसे बहुत क्या कहे उलटकर जवाब देने से पाप होगा ।

व्याख्या वन जाने से धर्म का लाभ है और न जाने से प्रत्यवाय है । सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते । प्रतिष्ठित पुरुष की अकीर्ति मरणदाह से कही अधिक दाहक हाती है । भाव यह कि आप लोग मुझे दु खी मानकर इतने दु खी हैं । पर मेरा भला इस समय वन जाने मे ही है । वन न जाने मे मरणान्त वेदना हागी । अतः मेरे ऊपर दया करके मेरे लिए दु खी न होइये ।

आप स्वय बडे जानकार है । स्वय इन बातों को खूब समझते है । आप पूज्य हैं । आपकी बात काटकर उत्तर देने से पाप होता है । अत अधिक कहना सुनना व्यर्थ है ।

दो पितु पद गहि कहि कोटि नति, विनय करब कर जोरि ।

चिंता कवनहुँ बात कै, तात करिअ जनि मोरि ॥९५॥

अर्थ पिताजी का चरण पकडकर करोडो नमस्कार करके मेरी ओर से हाथ जोडकर विनय कीजियेगा कि आप मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न करे ।

व्याख्या सुमन्त्रजी ने कहा था नृप अस कहेउ गोसाईं जस कहउँ करउँ बलि सोइ । इसी के उत्तर मे कहते है कि आप जाकर मेरी ओर से चरण पकडकर पिताजी से करोडा प्रणाम कहियेगा और हाथ जाडकर विनती कीजियेगा कि मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न कर । धर्म के लिए इस थोडे से कष्ट को मे सुख के साथ सहन करूँगा और धर्मो रक्षति रक्षित रक्षा किया हुआ धर्म आचरण करनेवाला की रक्षा करता है ।

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे । विनती करौ तात करजोरे ॥

सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारे । दुखु न पाव पितु सोच हमारे ॥१॥

अर्थ आप पिता के समान मेरे अत्यन्त हित हैं । हे तात । हाथ जोड़कर विनती करता हूँ । सब विधि से आपका वही वर्तव्य है जिसमे हमारे सोच से पिताजी को दुख न हो ।

व्याख्या रामजी सुमन्त्रजी से कहते हैं कि आप पिताजी के सखा हैं । पिता के समान ही मेरा कल्याण चाहनेवाले हैं । अब आपसे मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ । मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है कि पिताजी को मेरे लिए बड़ा शोक होगा । मेरी विनती पर भी सम्भव है कि न मिटे । अब यहाँ आपका सब प्रकार से यह वर्तव्य होना चाहिए कि पिताजी मेरे शोक से दुखी न हो । क्योंकि आप मन्त्री हैं । सखा हैं । परम विश्वासपात्र हैं । आपकी सम्मति का पिताजी आदर करते हैं । आपके समझाने बुझाने का प्रभाव पड़ेगा ।

सुनि रघुनाथ सचिव सवादू । भयेउ सपरिजन विकल निषादू ॥

पुनि कछु लखन कही कटु वानी । प्रभु बरजे बड अनुचित जानी ॥२॥

अर्थ रामजी और मन्त्री का सम्वाद सुनकर कुटुम्बियों के सहित निषाद विकल हो गया । फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वी बात कही । प्रभु ने बड़ा अनुचित जानकर मना कर दिया ।

व्याख्या निषादराज कुटुम्ब के सहित रामजी के चरणों के प्रेमी हैं । रामजी और मन्त्री का सवाद ऐसा करुणापूर्ण हुआ कि सबके सब विषाद से विकल हो गये । उनके मन में निश्चय हो गया कि रामजी नहीं लौटेंगे । लक्ष्मणजी ने जो कहा उसे कवि ने दोहराना पसन्द नहीं किया । जिस बात के लिखने से कोई लाभ नहीं कोई उपदेश नहीं उसे न लिखना ही उचित है । इतना ही कहना यथेष्ट है कि प्रभु ने उसे बड़ा अनुचित समझा और लक्ष्मणजी को अधिक कहने से रोक दिया । निःसन्देह वह पिताजी के प्रति अनादर सूचक बात थी । जैसा कि लोग ऐसे अवसर पर क्रोध से बाल देते हैं । सरकार ने रोक दिया कि क्या कहते हो ।

सकुचि राम निज सपथ देवाई । लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥

वह सुमन्तु पुनि भूप सँदेसू । सहि न सकिहि सिय विपिन कलेसू ॥३॥

अर्थ रामजी सङ्कुचित हो गये । अपनी शपथ दिलायी कि लक्ष्मण का सन्देश जाकर मत कहियेगा । तब सुमन्त्र ने महाराज का सन्देश कहा कि सीताजी वन का कष्ट सह न सकेगी ।

व्याख्या लक्ष्मणजी के कटु कहने पर रामजी सङ्कुचित हो गये । क्योंकि दोनों भाइयों का हृदय इतना अभिन्न समझा जाता है कि लक्ष्मणजी की उक्ति को रामजी के आन्तरिक भाव के रूप में ग्रहण किया जा सकता है । यहाँ पर यह बात

भी खुल गयी कि लक्ष्मणजी ने जो कटु कहा था वह सन्देश रूप में था। अतः रामजी ने सुमन्त्रजी को अपना शपथ दिलाया कि पिताजी से लक्ष्मण का सन्देश न कहे। केवल मेरा सन्देश कहे।

सबके लौट जानेवाली आज्ञा के अस्वीकार करने पर सुमन्त्रजी ने राजा का सन्देश सुनाया कि तुम लोग पुरुष हो, वीर हो वन के क्लेश को सह जाओगे। पर सीताजी तो न सह सकेंगी। महाराज ने सुमन्त्र से कहा था : जो नहीं फिर धीर दोउ भाई। सत्यसध दृढव्रत रघुराई। तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस विसोरी। उसी आज्ञा का पालन सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

जेहि विधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुवरहि तुम्हहि करनीया ॥

नतरु निपट अवलंघ विहीना। मै न जिअव जिमि जल विनु मीना ॥४॥

अर्थ : जिस भाँति सीताजी अवध में फिर आवै वही तुम्हें और रामजी को कहना चाहिए। नहीं तो एकदम निराधार हो जाने से मैं बिना जल की मछली की भाँति नहीं जीऊँगा।

व्याख्या : महाराज का सन्देश कहते हुए सुमन्त्रजी कहते हैं कि सीता किस विधि से अवध लौट चलेगी इसका निश्चय महाराज ने मेरे और आपके ऊपर छोड़ दिया है और स्वयं कह दिया है कि सीता वन के क्लेश को न सह सकेगी केवल इतनी ही बात नहीं है। वह यदि नहीं लौटी तो मैं जी नहीं सकता। मैं बिना पानी की मछली की भाँति निरालम्ब हो जाऊँगा। गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। रामजी जल हैं। सीताजी लहर है। सो मछली यदि जल में न भी हो पर जल के लहर से सम्पर्क बना रहे तो भी मछली जी सकती है। यदि वह भी न रहे तो मरण ही परिणाम है।

दो. मइके ससुरें सकल सुख, जवहि जहाँ मनु मान।

तहँ तव रहिहि सुखेन सिय, जव लगि विपति विहान ॥९६॥

अर्थ : पितृगृह में और ससुराल में सभी सुख है। जहाँ जी चाहे वहाँ सीता जब तक विपत्ति की रात न बीते सुख से रहे।

व्याख्या : रामजी का वन गमन सूर्यास्त है। उनका विरह रात्रि है। सो जब तक यह रात्रि न बीते रामजी लौट न आवे तब तक सीता का जहाँ जी चाहे रहे। मेरे और ससुराल में सभी सुख है। कोई घाटा नहीं। जब तक जी चाहे अवध में रहे जी बहलाने के लिए जनकपुर में भी रहे, मेरा कोई अनुरोध नहीं है। पर वन में न रहे।

विनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न मो कहि जाती ॥

पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि विधाना ॥१॥

अर्थ : महाराज ने जिस भाँति विनती की है वह आर्ति और विनय कहते

नहीं वनता । पिता का सन्देश सुनकर कृपानिधान रामजी ने सीताजी को करोड़ों तरह से सोख दी ।

व्याख्या : महाराज ने सीताजी के लौटाने के लिए विनती की । क्योंकि विपत्ति के समय पति से स्त्री को हटाने का कोई हक किसी को नहीं । विपत्ति के समय स्त्री की परीक्षा है । आपत काल परिखअहि चारी । धीरज धरमु मित्र अरु नारी । महाराज अपने को सापराध मान रहे हैं और स्नेहाधिक्य से आर्त हो रहे हैं । इसलिए विनती करते हैं कि तुम्हारा अनुरोध सीता को मानना ही पड़ेगा ।

सरकार एक तो कृपानिधान हैं । आर्त पर कृपा करने का स्वभाव है । तिस पर पिता का सन्देश आर्ति और प्रीति से युक्त सुनकर सीताजी को कोटि प्रकार की शिक्षा दी । माता के कहने पर अनेक विधान से शिक्षा दी थी । अब कोटि विधान से देते हैं । ध्यान देने की बात है कि इतना होने पर भी शिक्षा ही देते हैं । आज्ञा नहीं देते कि तुम चली जाओ । क्योंकि जो अपने धर्म पर अग्रसर है उसे क्रिया की दुष्करता दिखलाकर सावधान किया जा सकता है । हठात् रोका नहीं जा सकता । दूसरे यह कि बोल चुके हैं : परिहरि सोच चलहु वन साथी और राम दो बार नहीं बोलते : रामो द्विर्नाभिभाषते ।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू । फिरहु त सब कर मिटै खँभारू ॥

सुनि पति वचन कहति वैदेही । सुनहु प्राणपति परम सनेही ॥२॥

अर्थ : तुम लौट जाओ तो सास, ससुर, गुरु, प्रिय और परिवार सबका दुःख मिट जाय । पति का वचन सुनकर वैदेही बोली कि हे प्राणपति ! हे परम सनेही सुनो ।

व्याख्या : रामजी के कोटि भाँति समझाने का निर्गलितार्थ यह कि जब तुम्हारे लौट जाने से सास, ससुर, गुरु, प्रिय, परिवार का दुःख मिटता है तब तुम अपने ऊपर दुःख को अङ्गीकार करके लौट जाओ । इन गुरुजनो का जिस कार्य से सन्तोष होता हो उससे बड़ा धर्म कौन है ? रह गयो मेरी बात तो मेरी इस विषय में पूरी सम्मति है । मैं कह रहा हूँ और मेरे भी गुरुजन सास ससुर गुरु भी कह रहे हैं । वही करना पथ्य है । जिस धर्म की प्राप्ति मैं वन जाकर करना चाहता हूँ उसी धर्म की प्राप्ति अनायासेन घर लौटने से तुम्हें होगी इत्यादि ।

पति का वचन पतिव्रता के लिए परम श्रद्धेय है । उसे सुनकर वैदेही ने कहा कि आप प्राणपति हैं । परम सनेही हैं । आप न सुनेंगे तो मेरी कौन सुनेगा ।

प्रभु करुणामय परम विवेकी । तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी ॥

प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई । कहँ चंद्रिका चहु तजि जाई ॥३॥

अर्थ : प्रभु तो करुणामय हैं । परम विवेकी हैं । कहिये तो शरीर को छोड़कर क्या छाँह रोके रुक सकती है ? सूर्य को छोड़कर प्रभा कहाँ जाय और चाँद को छोड़कर चाँदनी को कहाँ ठिगाना है ?

व्याख्या सरकार प्रभु है। समर्थ है। सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु करुणामय हैं। यथा करुणामय रघुनाथ गासाई। वेगि पाइहें पीर पराई। मेरी पीड़ा का भी ध्यान करिय और आप परम विवेकी हैं। विचार करके देखिये। सरकार शरीर है तो मैं छाया स्थानीया हूँ। सरकार सूर्य है तो मैं प्रभा हूँ। सरकार चन्द्र हैं तो मैं चन्द्रिका हूँ। क्या छाया को सामर्थ्य है कि वह शरीर को छोड़कर पृथक् स्थिति अपनी रख सके। क्या प्रभा सूर्य को और चन्द्रिका चन्द्र को छोड़कर कही जा सकती है। यहाँ समझाने का कोई उपयोग नहीं है। मैं समझती सब हूँ पर पृथक् रहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि समझाने से छाया शरीर को छोड़कर पृथक् रह सके। प्रभा सूर्य को छोड़कर अलग हो सके। चन्द्रिका को चन्द्र के सिवा कोई दूसरा ठिकाना हो तो मुझपर भी समझाने का प्रभाव पड़ सकता है। जिसे छाया को प्रभा को या चन्द्रिका को रोकना हो। वह शरीर को रोके। सूर्य को रोके। चन्द्र का रोके। छाया प्रभा और चन्द्रिका रुकी ही रुकायी है। शरीर का वन भेजे और छाया को घर लौटाने के लिए कहे यह कौन सा विवेक है।

पतिहि प्रेममय विनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई ॥

तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतर देउँ फिर अनुचित भारी ॥४॥

अर्थ पति को प्रेममय विनती सुनाकर मन्त्री से सुन्दर वाणी बोली। आप पिता तथा ससुर के सदृश हित करनेवाले हो। मैं उलटकर उत्तर देती हूँ। यह भारी अनुचित है।

व्याख्या पति से जा विनय किया वह प्रेममय था। प्रेम विश्लेष को नहीं सहन कर सकता। यद्यपि सुमन्त्र ने सीताजी से कुछ नहीं कहा था। जो कुछ उन्होंने कहा सो रामजी से कहा और रामजी ने सीताजी को समझाया। पर सीताजी उत्तर के रूप में प्रेममय विनय करके सुमन्त्रजी को उत्तर देने लगी। जिसमें रामजी को यह कहना न पड़े कि देखिये यह नहीं मानती।

सुमन्त्र से सीताजी ने कहा कि मैं आपको पिता के समान मानती हूँ। पतिदेव भी आपको पिता के समान मानते हैं। अतः मैं आपको पिता और ससुर दोनो के समान हितकारी मानती हूँ। जिसके लिए पतिदेव ने कहा दिये उतर फिर पातकु लहकँ। उस मेरा उत्तर देना तो भारी अनुचित है।

दो आरति बस सनमुख भइउँ, बिलग न मानव तात।

आरजसुत पद कमल विनु, बादि जहाँ लगि नात ॥९७॥

अर्थ मैं आर्ति के वश होकर सम्मुख हुई हूँ। इससे आप अप्रसन्न न हूजियेगा। आयपुत्र के चरण कमलो के बिना जहाँ तक नाते हैं सब व्यर्थ हैं।

व्याख्या मैं आत हो रही हूँ। अतः आपके सम्मुख हूँ। अर्थात् उत्तर दे रही हूँ। आपके अपमन्न होने के लिए यथेष्ट कारण है। उत्तर भी भेद उत्पन्न

करनेवाला होगा । फिर भी आपसे प्रार्थना है कि आप अप्रसन्न न हो आरत कहहि विचारि न काऊ । सूझ गुआरिहि आपन दाऊ । तथा अति आरत अतिस्वारथी अति दीन दुखारी । इनको विलगु न मानिये बोलहि न विचारी । मेरा उत्तर यही है : सब मानिये राम के नाते । आर्यपुत्र के चरण कमल बिना सब नाते व्यर्थ हैं । आगे की चौपाइयो में इसी बात को स्पष्ट किया है ।

पितु वैभव विलासु मैं डीठा । नृप मनि मुकुट मिलिति पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरे । पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥१॥

अर्थ : पिताजी के ऐश्वर्य का विलास मेरा देखा हुआ है । जिनके चरण पीठ को राजाओं के मणिमुकुट स्पर्श करते हैं । मेरा पितृगृह मायका ऐसा सुखनिधान है । पर पति के बिना मुझे भूलकर भी अच्छा नहीं लगता ।

व्याख्या : जहाँ लगि नात को स्पष्ट करते हुए पहिले पिता के ही विषय में कहती है कि पिताजी के चरणों पर राजा लोग भक्तक नहीं रख सकते । दूर से ही प्रणाम करते हैं । केवल उनके मणि मुकुट का ही स्पर्श उनके चरणपीठों से होता है । ऐसा सुखद मेरा पितृगृह है । पर वह भी तभी सुखद है जब तक कि सरकार साथ रहे । उनके बिना वह पितृगृह भी मुझे पसन्द नहीं । कहा गया था : मइके ससुर सकल सुख जबहि जहाँ मन मान । तब तहाँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि विपति विहान । सो मइके के विषय में तो कह चुकी । अब ससुराल के विषय में सुनिये ।

ससुरु चक्रवड कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई । अरध सिंघासन आसन देई ॥२॥

अर्थ . ससुर तो कोमलपति चक्रवर्ती हैं । चौदहो भुवन में उनका प्रभाव प्रकट है । जिसे स्वयं देवराज आगे आकर स्वागत करते हैं और आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं ।

व्याख्या : अब कहती हैं कि ससुर का प्रभाव उनसे भी बढ़कर है । कोसल के राजा होते हुए भी चक्रवर्ती हैं । यथा : नृप सब रहिहि कृपा अभिलाखे । उनका प्रभाव चौदह भुवन में प्रकट है । भुवन चारि दस भूधर भारी । सुवृत्त मेघ बरखहि सुख दारी । रिधि मिधि सपति नदी सोहाई । उमगि अवध अवधि कहें घाई ।

जब कभी अपने सखा इन्द्र से मिलने जाते हैं तो देवराज स्वयं स्वागत के लिए आगे से आकर लिवा जाते हैं और अपने साथ सिंहासन पर बिठाते हैं यथा : लोकप करहि प्रीति मचि राखे ।

ससुरु एतादस अवध निवासू । प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदमु पगगा । मोहि केउ सपनेहुँ मुखद न लागा ॥३॥

व्याख्या सरकार प्रभु है। समर्थ हैं। सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु करणा मय है। यथा करणामय रघुनाथ गोमाई। वेगि पाइहें पीर पराई। मेरी पीडा का भी ध्यान करिये और आप परम विवेकी हैं। विचार करके देखिये। सरकार शरीर है तो मैं छाया स्थानीया हूँ। सरकार सूर्य है तो मैं प्रभा हूँ। सरकार चन्द्र हैं तो मैं चन्द्रिका हूँ। क्या छाया को सामर्थ्य है कि वह शरीर को छोड़कर पृथक् स्थिति अपनी रख सके। क्या प्रभा सूर्य का और चन्द्रिका चन्द्र को छोड़कर कही जा सकती है। यहाँ समझाने का कोई उपयोग नहीं है। मैं समझती सब हूँ पर पृथक् रहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि समझाने से छाया शरीर को छोड़कर पृथक् रह सके। प्रभा सूर्य को छोड़कर अलग हो सके। चन्द्रिका को चन्द्र के सिवा कोई दूसरा ठिकाना हो तो मुझपर भी समझाने का प्रभाव पड सकता है। जिसे छाया को प्रभा को या चन्द्रिका को रोकना हो। वह शरीर को रोके। सूर्य को रोके। चन्द्र को रोके। छाया प्रभा और चन्द्रिका रुकी ही रुकायी है। शरीर को वन भेजे और छाया को घर लौटाने के लिए कहे यह कौन सा विवेक है।

पतिहि प्रेममय विनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई ॥

तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतर देउं फिर अनुचित भारी ॥४॥

अर्थ पति को प्रेममय विनती सुनाकर मन्त्री से सुन्दर वाणी बोली। आप पिता तथा ससुर के सदृश हित करनेवाला हो। मैं उलटकर उत्तर देती हूँ। यह भारी अनुचित है।

व्याख्या पति से जा विनय किया वह प्रेममय था। प्रेम विश्लेष को नहीं सहन कर सकता। यद्यपि सुमन्त्र ने सीताजी से कुछ नहीं कहा था। जो कुछ उन्होंने कहा सो रामजी से कहा और रामजी ने सीताजी को समझाया। पर सीताजी उत्तर के रूप में प्रेममय विनय करके सुमन्त्रजी को उत्तर देने लगी। जिसमें रामजी को यह कहना न पडे कि देखिये यह नहीं मानती।

सुमन्त्र से सीताजी ने कहा कि मैं आपको पिता के समान मानती हूँ। पतिदेव भी आपको पिता के समान मानते हैं। अतः मैं आपको पिता और ससुर दोनों के समान हितकारी मानती हूँ। जिसके लिए पतिदेव ने कहा दिये उतर फिर पातकु लहकें। उस मेरा उत्तर देना तो भारी अनुचित है।

दो आरति बस सनमुख भइउं, बिलग न मानव तात।

आरजसुत पद कमल विनु, बादि जहाँ लगि नात ॥९७॥

अर्थ मैं आर्ति के वश होकर सम्मुख हुई हूँ। इससे आप अप्रसन्न न हूजियेगा। आयपुत्र के चरण कमलों के बिना जहाँ तक नाते हैं सब व्यर्थ है।

व्याख्या मैं आत हो रही हूँ। अतः आपके सम्मुख हूँ। अर्थात् उत्तर दे रही हूँ। आपके अपमान होने के लिए यथेष्ट कारण है। उत्तर भी भेद उत्पन्न

करनेवाला होगा । फिर भी आपसे प्रार्थना है कि आप अप्रसन्न न हो आरत कहहि विचारि न काऊ । सूझ गुआरिहि आपन दाऊ । तथा • अति आरत अतिस्वारथी अति दीन दुखारी । इनको विलगु न मानिये बोलहि न विचारो । मेरा उत्तर यही है : मव मानिये राम के नाते । आर्यपुत्र के चरण कमल बिना सब नाते व्यर्थ हैं । आगे की चौपाइयो में इसी बात को स्पष्ट किया है ।

पितु वैभव विलासु मै डीठा । नृप मनि मुकुट मिलिति पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरे । पिय विहीन मन भाव न भोरें ॥१॥

अर्थ : पिताजी के ऐश्वर्य का विलास मेरा देखा हुआ है । जिनके चरण पीठ को राजाओं के मणिमुकुट स्पर्श करते हैं । मेरा पितृगृह • मायका ऐसा सुखनिधान है । पर पति के बिना मुझे भूलकर भी अच्छा नहीं लगता ।

व्याख्या • जहाँ लगि नात को स्पष्ट करते हुए पहिले पिता के ही विषय में कहती हैं कि पिताजी के चरणों पर राजा लोग मस्तक नहीं रख सकते । दूर से ही प्रणाम करते हैं । केवल उनके मणि मुकुट का ही स्पर्श उनके चरणपीठों से होता है । ऐसा सुखद मेरा पितृगृह है । पर वह भी तभी सुखद है जब तक कि सरकार साथ रहे । उनके बिना वह पितृगृह भी मुझे पसन्द नहीं । कहा गया था : मइके ससुर सकल सुख जबहि जहाँ मन मान । तब तहँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि विपति विहान । सो मइके के विषय में तो कह चुकी । अब ससुराल के विषय में सुनिये ।

ससुरु चक्रवइ कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई । अरध सिंघासन आसन देई ॥२॥

अर्थ • ससुर तो कोमलपति चक्रवर्ती हैं । चौदहो भुवन में उनका प्रभाव प्रकट है । जिसे स्वयं देवराज आगे आकर स्वागत करते हैं और आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं ।

व्याख्या • अब कहती हैं कि ससुर का प्रभाव उनसे भी बढ़कर है । कोसल के राजा होते हुए भी चक्रवर्ती हैं । यथा : नृप सब रहहि कृपा अभिलाखे । उनका प्रभाव चौदह भुवन में प्रगट है । भुवन चारि दस भूवर भारी । मुवृत्त मेघ बरखहि मुख वारी । रिधि मिधि सपति नदी सीहाई । उमगि अवध अवधि बहें धाई ।

जब कभी अपने सखा इन्द्र से मिलने जाते हैं तो देवराज स्वयं स्वागत के लिए आगे से आकर लिवा जाते हैं और अपने साथ सिंहासन पर बिठाते हैं यथा : लोकप करहि प्रीति रुचि रामे ।

ससुरु एतादस अवध निवासू । प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदमु पगगा । मोहि नेउ मगनेहुं सुखद न लागा ॥३॥

अर्थ : ऐसे समुर और अयोध्या का निवास प्रेम करनेवाले कुटुम्बी और माता के समान सास । पर रघुपति के चरण कमल की धूलि के बिना मुझे सपने में भी कोई सुखद नहीं मालूम हुआ ।

व्याख्या : समुर इन्द्र के तुल्य । अवधराज सुरराज से अधिक यथा : अवधराज सुरराज सिहाई । दसरथ धन सुनि धनद लजाई । परिवार के लोग सब प्रेम करनेवाले । सास तो माता के ऐसी यथा : कल्प बेलि जिसि बहुविधि लाली । सीचि सनेह सुधा प्रतिपाली । अतः मन न लगने का कोई कारण नहीं । पर मुझे बिना रघुपति पद पंकज पराग के कोई सुखद सपने में भी नहीं मालूम हुआ । यथा : राम चरन पंकज प्रिय जिनही । विषय भोग बस करहि कि तिनही ।

अगम पंथ वनभूमि पहारा । करि केहरि सर सरित अपारा ॥
कोल किरात कुरंग विहंगा । मोहि सब सुखद प्राणपति संग ॥४॥

अर्थ : दुर्गम रास्ते, वन, भूमि, पहाड़, हाथी, सिंह, ताल और अपार नदियाँ, कोल, किरात, हिरने और चिड़ियाएँ मुझे सभी प्राणपति के साथ होने से सुखद हैं ।

व्याख्या : मइके समुरे सकल सुख का उत्तर देकर अब . सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू का उत्तर दे रही हैं । वन में जो दुःखद वस्तुएँ हैं जिनका वर्णन करके लोगो ने सीताजी को वन जाने के लिए समझाया था और जिसका उत्तर सङ्कोचवश सीताजी उस जन समुदाय में न दे सकी । यथा : सोय सकुच बस उतरु न देई । इस समय उन सबों का नाम गिनाकर उत्तर दे रही हैं । वन का रास्ता दुःखद है । वन की भूमि वन के पहाड़ दुःखद है । वन में हाथी सिंहादि हिंस्र जन्तु भरे हैं । वन के ताल वन की नदियाँ वन के रहनेवाले कोल किरात अन्य पशु पक्षी दुःखद है । पर प्राणपति के साथ होने से मेरे लिए वे सब सुखद है ।

दो. सास समुर सन मोर हँति, विनय करवि परि पायँ ।

मोर सोचु जनि करिअ कछु, मै बन सुखी सुभायँ ॥९८॥

अर्थ : सास समुर के पाँव पड़कर मेरी ओर से विनय कीजियेगा कि मेरा कुछ भी सोच न करे । मैं स्वभाव से ही वन में सुखी हूँ ।

व्याख्या : सास समुर अस कहेउ सँदेसू । पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू । इस बात का उत्तर देते हुए कहती हैं कि मैं वन छोड़कर घर जा नहीं सकती । अतः आप मेरी ओर से उनके पाँव पड़कर विनय कर दोजियेगा कि मेरे लिए तो कुछ भी सोच न करें । मैं स्वभाव से ही वन में सुखी हूँ । अर्थात् मुझे स्वभाव से ही वन प्रिय है । महल प्रिय नहीं है । रमा बिलासु राम अनुरागी । तजत वमन जिमि जन बड़ भागी ।

प्राणनाथ प्रिय देवर साथ ॥ वीर धुरीन धरे धनु भाथा ॥

नहिं मग श्रमु भ्रमु दुखु मन मोरे । मोहिलगि सोच करिअ जनि भोरे ॥९९॥

अर्थ मेरे साथ मे प्राणनाथ है । प्रिय देवर है । जो कि वीरा मे धुरीण हैं और धनु तरकस धारण किये हुए हैं । मुझे रास्ते चलने क थकावट का भ्रम भी मेरे मन मे नहीं है । मेरे लिए तो भूल करके भी सोच न कीजियेगा ।

व्याख्या सोच तो अनाथ का किया जाता है । मैं तो सनाथा हूँ । मेरे प्राणनाथ मेरे साथ हैं । मेरे प्रिय देवर भी साथ हैं । दोनो महापुरुष वीरो म धुरन्धर हैं । तिस पर उनके पास धनुष और तरकस है । कोई विघ्न बाधा मेरे सन्निकट आ नहीं सकती । मेरे मन म वन चलने का उत्साह है । मुझ पैदल चलने म थकावट नहीं होगी । मुझे थकावट के दुख का भ्रम भी नहीं है । अतः मेरे लिए तो भूल करके सोच न कीजियेगा । लोगो को भ्रम है कि मुझे दुख होगा । कहते थे वन देखकर डर जाओगी । सो मुझे वन देखकर बड़ा आनन्द हुआ । कन्द मूल फल भी मैंने खाया । पतिदेव को जटा धारण किये भी देखा । पर मुझे दुख न हुआ । अब तो मुझे दुख का भ्रम भी नहीं है ।

सुनि सुमन्तु सिय सीतल वानी । भयेउ विकल जनु फनि मनि हानी ॥
नयन सूझ नहि सुनइ न काना । कहिन सकै कछु अति अकुलाना ॥२॥

अर्थ सुमन्त्र सीताजी की सीतल वाणी सुनकर ऐसे विकल हो गये जैसे मणि के चल जाने से सर्प विकल होता है । आँख से न सूझता है । न कान से सुनायी पडता है । अत्यन्त आकुल हो गये । कुछ कह नहीं सकते ।

व्याख्या सीताजी की वाणी तो सीतल थी पर उसम बड़ो दृढता थी । सुमन्त्रजी ने समझ लिया कि ये नहीं लौटेगी । जो मैंके और ससुराल के इतने बड़े ऐश्वर्य सुख को दुखरूप देख रही है । जिस पतिदेवता शिरोमणि पति के साथ होने पर सम्पूर्ण दुखो को सुख स्वरूप देख रही है । वह पति को वन मे छोडकर घर लौट सकती नहीं । अतः यह अन्तिम आशा भी निराशा मे परिणत हो गयी । अतः उनकी दशा उस सर्प सी हो गयी जिसकी मणि छिन गयी हो । वधुओ की रक्षा बड़े प्यार के साथ महाराज के महल मे की जाती थी । यथा सुदरि बधुन्ह सासु लइसोई । फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई ।

इन्द्रियाँ भारी विकल हो गयी । अपने अपने विषयो के ग्रहण मे असमर्थ हो गयी । न आँख से दिखायी पडता है । न कान से सुनायी पडता है । न मुख से शब्द निकलते हैं ।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भांती । तदपि होत नहि सीतलि छाती ॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे । उचित उत्तरु रघुनदन दीन्हे ॥३॥

अर्थ रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया । फिर भी छाती ठण्डी नहीं होती । साथ चलने के लिए अनेक यत्न किया पर रामजी ने उचित उत्तर दिया ।

व्याख्या सुमन्त्रजी की व्याकुलता देखकर रामजी समझाने लगे । यथा

कवित्त तात के प्रधान गुण ज्ञान के निधान
 धर्मनीति मे प्रमान आप सरिस जनैया कौन ।
 काको मुख ताको एहि सकट विकट माहि
 धरि उर धीर लाजपति को सँभारो जौन ॥
 पितहि बुझाइ समुझाइ सब मातुन को
 कीजिये रजाय वेगि भरत बुलावो भौन ।
 सुकृत न जाय जग जस सरसाय ताप
 तिमिर नसाय आप करिय उपाय तौन ॥

इस भाँति बहुत समझाया पर सुमन्त्र के हृदय का दाह नहीं जाता । वह साथ चलने को उद्यत हो गये कि यदि आप लोग कोई नहीं लौटते, तो मुझे भी साथ ले चलिये । मैं अकेला लौटकर अयोध्या में क्या मुख दिखलाऊँगा । पर रामजी ने उचित उत्तर दिया । हम चारो भाइयो में से कोई भी इस समय अयोध्या में नहीं है । महाराज की यह दशा है । आप मंत्री है । ऐसे समय में महाराज को छोड़कर वन जाना आपका धर्म नहीं है ।

मेटि जाइ नहि राम रजाई । कठिन करम गति कछु न बसाई ॥
 राम लखन सिय पद सिरु नाई । फिरेउ वनिकु जिमि मूरु गँवाई ॥४॥

अर्थ रामजी की आज्ञा मिटायी नहीं जा सकती । कर्म की गति कठिन है । उस पर कोई वश नहीं चलता । राम लक्ष्मण तथा सीताजी के चरणों में सिर नवाकर लौटे । जैसे मूल पूँजी खोकर व्यापारी लौटता है ।

व्याख्या राम रजाइ सीस सबही के । उत्पति थिति लय विपहु अमीके । राम रजाइ मेटि मन माँही । देखा सुना कतहुँ कोउ नाँही । अत रामजी की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती । नहीं तो सुमन्त्र किसी भाँति न लौटते । उनके लिए बिना राम के लौटना मरण से बढ़कर कष्टप्रद था । लौटकर महाराज से सन्देशा कहने के बाद फिर सुमन्त्रजी ने मुँह न दिखाया । महाराज का स्वर्गवास हुआ । क्रिया हुई । भरत सभा हुई । भरतजी चित्रकूट गये, लौटे पर सुमन्त्रजी का पता नहीं । रामजी व वन से लौटने पर ही सुमन्त्रजी घर के बाहर निकले । ऐसी चिरस्थायिनी पीडा सुमन्त्रजी को लौटने में थी । परन्तु कर्मगति कठिन है । उस पीडा को सहना ही पडा । कोई वश न चला ।

राम लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में सिर नवाकर इस भाँति चल जैसे कोई व्यापारी व्यापार के लिए गया हो । उसके मन में बड़ी आशा थी कि बहुत लाभ होगा । घरवाले आशा लगाये बैठे थे कि खूब मुनाफा करके घर आवेंगे । पर देव दुर्विपाक से कोई ऐसी घटना हुई कि मुनाफा को कौन कहे मूलधन भी नष्ट हो गया । जिस तरह से दुखी होकर वह व्यापारी घर लौटता है उसी भाँति सुमन्त्रजी भी लौट चले ।

सुमन्त्रजी रथ लेकर चले थे कि मैं राम लक्ष्मण जानकी को लौटा लाऊंगा और बड़ा भारी यश भी हाथ लगेगा कि राम लक्ष्मण जानकी किसी के भी समझाने पर भी घर न रहे उन्हें सुमन्त्रजी लौटा लाये। यहाँ मूलधन राम लक्ष्मण जानकी और मुनाफा लौटा लाने का यश था। सो रामजी के न लौटने पर बात ही दूसरी हो गयी। अब तो सुमन्त्रजी सीधे सीधे रामजी को वन पहुँचाने-वाले हो गये। अतः मूल भी हाथ से गया और दुर्यश के भागी हुए। सारी अयोध्या कहेगी कि इसी ने हम लोगो के सो जाने पर चोरी से रामजी को वन पहुँचाया।

दो. रथु हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहि।

देखि निषाद विषादबस, धुनहि सीस पछिताहि ॥९९॥

अर्थ : रथ हाँका तो घोड़े रामजी की ओर देखकर हिहिनाते हैं। यह देखकर निषाद लोग सिर धुन धुनकर पछताने लगे।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने रथ हाँका अयोध्या जाने के लिए। पर घोड़ों को रामजी का वियोग सह्य नहीं। राम रहित होकर वे जाना नहीं चाहते। रामजी को देखकर हिनहिनाते हैं। यही इनका करुण क्रन्दन है। इनको रामजी का बड़ा विरह हुआ। गीतावली में कौसल्याजी के मुख से इसका विस्तार से वर्णन है। सचिव और रामजी का सवाद सुनकर निषाद परिजन के सहित विषाद से विकल हो गये थे। घोड़ों का हाल देखकर तो वे सिर पीट पीटकर पछताने लगे।

जासु बियोग विकल पशु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहहि कैसे ॥

वरबस राम सुमन्त्रु पठाये। सुरसरि तीर आपु तव आये ॥१॥

अर्थ : जिसके वियोग से पशु इतने विकल हैं उसके प्रजा माता पिता कैसे जीयेंगे? रामजी ने सुमन्त्र को जबरदस्ती लौटाया और तब स्वयं गंगाजी के किनारे गये।

व्याख्या : पशु आसन्नचेतन होते हैं। उन्हें कलः अनागत का ज्ञान नहीं होता। वे भी जब रामजी के वियोग से इतने विकल हैं तो जो बुद्धिजीवी अति निवृत्त सम्प्रन्धवाले हैं यथा : प्रजा माता और पिता वे कैसे जीयेंगे? यही सोचकर निषादगण सिर धुनकर पछता रहे हैं।

प्रश्न यह उठता है कि फिर सुमन्त्र कैसे गये? इसपर कहते हैं कि राजी खुशी से नहीं गये रामजी ने जबरदस्ती उन्हें भेजा। वे रामजी की आज्ञा टार न सके। सुमन्त्र के रवाना होने के बाद रामजा गंगा के किनारे गये। स्नान के समय देग लिया था कि नाव घाट पर रहती है। इसलिए निषादराज को उसका व्यवस्था के लिए नहीं कहा। सुमन्त्र वे रहते गङ्गा तीर नहीं गये। जिसमें उन्हें साथ चलने का अवसर न मिले।

मांगी नाव न केवट आना । कहइ तुम्हार मरमु मै जाना ॥
चरण कमल रज कहँ सबु कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥२॥

अर्थ नाव मांगी तो केवट नहीं लाया । कहने लगा कि तुम्हारा मर्म मेरा जाना हुआ है । सभी लोग कहते हैं कि चरण कमल की धूलि मनुष्य बना देनेवाली कोई जडो है ।

व्याख्या वहाँ जाकर देखा कि नाव किनारे पर नहीं । केवट उसे कुछ दूर छलका ले गया है । तब सरकार ने कहा कि नाव ले आओ । केवट कहता है कि यदि मैं आपका मर्म न जानता होता तो नाव को घाट पर ही रहने देता । मैं तो मर्म जानता हूँ । मैं नाव को कैसे ले आऊँ । यह बात तो किसी से छिपी नहीं है कि आपके चरणों की रज मनुष्य बनानेवाली जडो है । केवट ने देखा कि सुमन्त्र की विदाई से सरकार कुछ खिन्न से हो गये हैं । अतः उनके हँसाने का उपाय कर रहा है । शृङ्गवेरपुर शृङ्गीश्वर का आश्रम है । उन्हीं से भगवती शान्ता व्याही हैं । उसी नाते से वहाँ के मुनिपुत्रों ने सरकार से हँसी की थी । यथा

विधि के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे ।

गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा मैं सुनि मुनिवृन्द सुखारे ।

ह्वै है शिला सब चद्रमुखी परसे पद मजुल कजु तुम्हारे ।

कीन्ही कृपा रघुनायक जू करुना करके इतको पग धारे ।

यहाँ के बच्चे बच्चे इस बात को जानते हैं । केवट उसी नाते को काम में लाना चाहता है ।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन ते न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ' मुनि घरनी होई जाई । वाट परै मोरि नाव उडाई ॥३॥

अर्थ छूते ही शिला मुनि की स्त्री हो गयी । पत्थर से काठ कठिन नहीं होता । नाव भी मुनि की स्त्री हो जायगी । रास्ते में पडने से मेरी नाव ही उड़ जायगी ।

व्याख्या परसि जासु पदपकज धूरो । तरी अहल्या कृत अघ भूरी । जब शिला रज के स्पर्श मात्र से सुन्दर स्त्री हो गयी यथा गौतम गये गृह गौनी सो लवाइके । तो इस काठ की नाव को मुनि की स्त्री हो जाने में क्या देर लगेगी । पत्थर से तो काठ कोमल होता है । यथा पाहन ते वन वाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा है यह प्रसङ्ग कवित्त रामायण में देखने लायक है । यह नाव भी किसी मुनि की स्त्री हो जायगी । यह भी नहीं कि मेरी हो कर रहे । रास्ते में पडने से मेरी नाव उड़ जायगी । इसी भय से तो मैं किनारे से दूर हटा लाया हूँ ।

एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारु । नहि जानउँ कछु और कवारु ॥
जौ प्रभु पार अवसि गा चहूँ । मोहि पद पदुम पखारन कहूँ ॥४॥

अर्थ • इसी से मैं सब परिवार का प्रतिपालन करता हूँ । दूसरा कोई काम घन्घा मैं जानता नहीं । अवश्य ही यदि पार जाना चाहते हैं तो मुझे चरण कमल के धोने की आज्ञा दीजिये ।

व्याख्या : पात भरो सहरो सकल सुत वारे वारे
केवट की जाति कछु वेद ना पढाइहौ ।
सब परिवार मेरो यहि लागि राजा जू
दीन वित्त होन कैसे दूसरी गढाइहौ ।
गोतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी
प्रभु सो निपाद ह्वै के बाद ना बढाइहौ ।
तुलसी के ईश राम रावरे सो सांची कहौ
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढाइहौ ।

मैं तो यही जानता हूँ कि सरकार को पार जाना नहीं है । किसी मुनि को सुन्दर स्त्री भेंट करना है । इस मर्म को मैं समझ रहा हूँ । यदि कहिये कि नहीं मुझे पार जाना आवश्यक है तो आज्ञा दीजिये मैं पैर धो लूँ जिसमें कोई रज का लेश न रह जाय ।

छ. पद कमल धोइ चढाइ नाव न नाथ उतारिहौ चहो ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहो ॥
वरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहो ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहो ॥

अर्थ • चरण कमल धोकर नाव पर चढाकर हे नाथ । मैं उतराई नहीं चाहता । मुझे आपकी शपथ दशरथ की सौगन्ध में सच्ची कहता हूँ । चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें । पर जब तक पैर न धो लूँगा तब तक हे कृपालु तुलसीदास के नाथ । मैं पार न उतारूँगा ।

व्याख्या . सरकारी आज्ञा पालन में मुझे रत्ती भर आगा पीछा नहीं है । चरणों को धोकर नाव की रक्षा चाहता हूँ । फिर आपको नाव पर चढाऊँगा । नहीं तो फिर चरणों में रज लग जायगा । सरकार के चढ जाने पर पार उतारने का तो कोई प्रश्न ही नहीं । मैं उतराई भी नहीं लूँगा । उतराई ली जाती है बटोहियों से । सरकार तो नाथ हैं । नाथ से उतराई कैसी ? यदि कहिये कि नहीं तू वार्ते बनाता है तो इस पर कहता है कि मैं सच्ची बात कहता हूँ । सरकार नाथ हैं । सो आपकी शपथ लेता हूँ । महाराज दशरथ जगतीपति हैं उनकी शपथ लेता हूँ । पार उतारने में मुझे कोई उज्र नहीं है ।

लखन वान धनु धरे बनाई । लक्ष्मणजी पार जाने की तैयारी करते हैं । धनुष बाण भी सुधार रहे हैं । तो उन्हें भी हँसाने के लिए उन पर मारने की धमकी का

आरोप करता है । कहता है कि चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें पर बिना पैर धोये तो मैं पार उतारता नहीं ।

दो सुनि केवट के वचन, प्रेम लपेटे अटपटे ।

विहँसे करुना अयन, चितइ जानकी लखन तन ॥१००॥

अर्थ . केवट के प्रेम लपेटे अटपटे वचन सुनकर करुणाअयन रामजी जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर जोर से हँस पड़े ।

व्याख्या अटपटी बात अटपटी चेष्टा हास्यरस का उद्बोधक है । कि पुन यदि प्रेम से पगी हुई हो । सो इसका मुख्य तात्पर्य तो पैर धोने में है । उसके लिए इतने बखेडेबाजी की बात पर सरकार हँस पड़े । हास्यरस का आनन्द प्रेमिया क साथ ही लिया जा सकता है अकेल नहीं । अतः उस रसोपभोग में सम्मिलित करने के लिए लक्ष्मण और सीताजी की ओर देखा । प्रसङ्ग प्राप्त अर्थ तो यही है हास्य रस के विभाव की पुष्टि के लिए सखा और सखी की ओर देखना आवश्यक था । नहीं तो अकेले तो पागल हँसा करते हैं । जानकी लक्ष्मण की ओर देखने का और भी अर्थ लगाया जा सकता है । जानकीजी के हृदय में यही भाव उठा था । यथा गौतम तिय गति सुमिरि करि नहि परसत पद पानि । मन विहसे रघुवसमनि प्रीति अलौकिक जानि । वहाँ मन में विहँसे थे । यहाँ प्रत्यक्ष विहँस रहे हैं । सखियों के कहने पर भी सीताजी के चरण स्पर्श न करने के साक्षी इस समय लक्ष्मणजी हैं । अतः उस समय का स्मरण करके प्रभु लक्ष्मण और जानकी की ओर देखकर हँस रहे हैं । कुछ लोग यहाँ पर हँसने के आशय को स्पष्ट करने के लिए किसी पूर्वजन्म की कथा की कल्पना करते हैं । पर ऐसी कल्पनाएँ यहाँ अप्रासङ्गिक हैं ।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई । सोइ कर जेहि तव नाव न जाई ॥

वेगि आनु जलु पाय पखारू । होत विलवु उतारहि पारू ॥१॥

अर्थ कृपासिन्धु मुसकुरा कर बोले कि अच्छा वही करो जिसमें तुम्हारी नाव बची रहे । शीघ्रता से जल लाकर पैर धो लो । देर हो रही है । पार उतार दो ।

व्याख्या कृपासिन्धु है । उसकी सब बखेडेबाजी को माने लेते हैं । कहते हैं कि जैसे तुम्हारी नाव बची रहे वही करो । मुझ इसे स्त्री बनाकर किसी मुनि को नहीं देनी है । मुझे पार जाने की जल्दी है । सो जल लाकर पैर धोने में जल्दी करो । इन सब बातों के कहने में सरकार के चेहरे पर मुसकुराहट है हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकाश । सूचत किरिन मनोहर हाँसा ।

जासु नामु सुमिरत एक वारा । उतरहि नर भवसिंधु अपारा ॥

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा । जेहि जगु किये तिहुँ पगहुँ ते थोरा ॥२॥

अर्थ जिसके नाम के एक बार स्मरण कर लेने से मनुष्य अपार भवसागर के

पार उतर जाता है। वही नामी कृपाल प्रभु केवट का निहोरा कर रहे हैं। जिन्होंने संसार को तीन पग से भी छोटा कर दिया था।

व्याख्या : आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अधरूप जे। कहि नाम वारक तेपि पावन होहि राम नमामि ते। जिसके नाम में ऐसी तारिणी शक्ति है कि एक बार उच्चारण करने से महापापी भी पावन होकर भवसागर पार होता है वही कृपाल गङ्गा पार जाने के लिए केवट से नाव मांगते हैं। वह नहीं लाता बखेड़ेबाजी करता है। तब आप उसका निहोरा करते हैं : सोई कर जेहि तव नाव न जाई * होत बिलबु उतारिहि पारु। यहाँ पर कवि प्रभु के वामनावतार का स्मरण दिलाते हैं कि राजा बलि से सङ्कल्प लेकर जो नापने चले तो तीनो लोक नाप डाले। तीन पग पूरा न हुआ। उसे आज गङ्गा पार करना असम्भव हो रहा है। यह उनकी लीला है।

पद नख निरखि देवसरि हरपी। सुनि प्रभु वचन मोह मति करपी ॥

केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि ले आवा ॥३॥

अर्थ : चरण के नख को देखकर गङ्गाजी प्रसन्न हुई। पर उनके वचन सुनकर मोह की ओर वृद्धि खिच गयी। केवट ने रामजी की आज्ञा पा ली सो कठौता भर के पानी लाया।

व्याख्या : गङ्गाजी को अपनी जन्मभूमि देखकर हर्ष हुआ। यथा : नख निर्गता मुनि वंदिता त्रैलोक्य पावन सुरसरी। क्योंकि सरकार के पद नख से उनकी उत्पत्ति है। पर निहोरावाला वचन सुनकर मोह की ओर वृद्धि खिचने लगी कि क्या वे वही सरकार नहीं हैं। भाव यह कि सरकार का मनुष्यभाव का अभिनय ऐसा मार्मिक होता है कि ऐसे जानकार को भी भ्रम हो जाय * और भ्रम नहीं है तो केवट को। यह सरकार की लीला है। उसे आज्ञा की देर थी। जल से भरकर कठौता ले आया कि इसमें पदरज धोयेंगे। उड़ जायगा तो कोई भारी हानि नहीं है।

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा ॥

वरखि सुमन सुर सकल सिहाही। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाही ॥४॥

अर्थ : अत्यन्त आनन्द से प्रेम के उमङ्ग में आकर चरण कमल धोने लगा। फूलों की वर्षा करके देवता लोग ईर्ष्यापूर्वक कहने लगे कि इसके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है।

व्याख्या : प्रभु खूब पाइके बोलाइ वाल घरनी को बदि के चरन चहुँदिसि बैठे घेरि घेरि। छोटी सो कठौता भरि आनि पानी गङ्गाजी को धोइ पाय पियत पुनीत वारि फेरि फेरि। इसीलिए कवि कहते हैं पखारन लागा। क्या शोभा हुई। बीच में सरकार है। केवट वाल बच्चों के सहित घेरे हुए बैठा है। सरकार के चरण कमल को धोकर उम जल को फेर फेर कर पो रहा है। जिसमें रज नीचे न बैठ जाने पावे। ऊपर से देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। ईर्ष्या कर रहे हैं कि हमारा

भाग्य ऐसा नहीं । इन चरणों को जनकजी ने धोया था । यथा बहुरि रामपद पवज धोये । जे हर हृदय कमल मँह गोये । उन चरणों को यह केवट होकर धो रहा है । अतः इस सा पुण्यवान् कोई नहीं ।

दो पद^१ पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार ।

पितर पारु करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयेउ लइ पार ॥१०१॥

अर्थ पैर धोकर स्वयं परिवार सहित जलपान किया और पितरों को पार करके प्रभु को हर्षित होकर पार ले गया ।

व्याख्या कोशलेन्द्रपदकज्जमञ्जुली कोमलावजमहेशचन्द्रिनी जानकीकरसरोज-लालितौ । प्रभु के चरण शिव अज से वन्दित है । जानकीजी के कर कमलों से लालित है । जेहि पद परसि तरी रिपि नारी । दड़क कानन पावन कारी । हर उर सर सरोज पद जोई । उस पद को अपने हाथों से प्रक्षालन करके उस चरणामृत को परिवार के साथ केवट ने पान किया । इससे उसके पितृकुल श्वशुरकुल तथा बन्धुओं के सभी कुल तर गये । इस भाँति उसने पहिल पितरों को भवसागर पार कर लिया तब प्रसन्न होकर प्रभु को गङ्गापार ले गया ।

१४ सुरसरि उतरि प्रयाग निवास

उतरि ठाढ भए सुरसरि रेटा । सीय रामु गुह लखन समेता ॥

केवट उतरि दडवत कीन्हा । प्रभुहि सकुच एहि नहि कछु दीन्हा ॥१॥

अर्थ सीता और रामजी गुह और लक्ष्मण के सहित उतरकर गङ्गाजी के रेत में खड़े हो गये । केवट ने उतरकर दण्डवत् किया । प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नहीं गया ।

व्याख्या गङ्गापार पहुँचकर सीता और रामजी निपादराज और लक्ष्मण के साथ नाव पर से उतरकर रेत में खड़े हो गये । क्योंकि यहाँ नित्यकृत्य करना है । तब केवट ने उतरकर दण्डवत् किया । यहाँ पर यह बात अभ्रान्त रूप से स्पष्ट हो जाती है कि केवट और निपादराज गुह दो व्यक्ति थे । राजाओं के यहाँ नट आदि जब अपनी करामात दिखा चुकते हैं तो पीछे इनाम के लिए दण्डवत् करते हैं । सो केवल को दण्डवत् करते देखकर प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नहीं गया । यद्यपि इसने कहा कि मुझ उतराई नहीं चाहिए । पर इससे परिवार का प्रतिपालन उतराई से ही होता है । अतः इसे कुछ देना चाहिए था । पैर धोने की गिनती उतराई में नहीं हो सकती ।

पिय हिय की सिय जाननिहारी । मनि मुंदरी मन मुदित उतारी ॥

कहेउ कृपाल लेहि उतराई । केवट चरन गहे अकुलाई ॥२॥

अर्थ पिय के हिय की जाननेवाली सीताजी थी । उन्होंने प्रसन्न मन से मणि की अगूँठी उतार दी । कृपालु ने कहा कि उतराई लो । केवट ने आकुल होकर चरण पकड़ लिया ।

व्याख्या प्रभु के सङ्कोच का सीताजी न लखा । वे इनके मन की जाननेवाली हैं । क्योंकि इनका मन सदा उनके पास रहता है । यथा सा मन सदा रहत तोहि पाँही । उतराई बड़ी छोटी चीज है । मणिमुदरी बड़ी अमूल्य वस्तु है । उतराई देने के लिए ऐसे अमूल्य आभूषण को उतारना स्त्रियों के लिए बड़े कष्ट की बात है । पर सीताजी को सरकार के सङ्काच के सामने मणिमुदरी क्या है । अतः प्रसन्न मन से उतार दिया । सरकार देखते रहे । दोनों पर बड़ी कृपा है । उस मुदरी को उतराई के रूप में देने लगे ।

उतराई का नाम सुनने ही केवट विमल हो गया । उतराई कैसी ? क्या मैंने इन्हें उतराई के लिए पार उतारा है । इतना हा तो मुझसे सेवा यावज्जीवन में बन पड़ी । उसका भी विनिमय दे रहे हैं । मेरी सेवा स्वीकार नहीं । लोग मुझ क्या कहेंगे कि उतराई के लिए स्त्री का गहना उतरवा लिया ।

नाथ आजु मैं काहु न पावा । मिटे दोष दुख दारिद्र दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । आज दीन्हि विधि वनि भलि भूरी ॥३॥

अर्थ हे नाथ । आज मैंने क्या नहीं पाया । दोष दुख और दरिद्र की दावाग्नि शान्त हो गयी । मैंने बहुत दिनों से मजदूरी की है । पर विधाता ने आज मुझे अच्छी और पूरी मजदूरी दी है ।

व्याख्या भाव यह कि मैं पूर्णकाम हो गया । हृदय में दोष दुख और दरिद्रता का दावानल जला करता था सो आज शान्त हो गया । मिटे दोष दुख भव रजनीके । सो दोष दुख स परलोक के दुख का नाश कहा और दारिद्र कहने से ऐहिक दुख का नाश कहा ।

केवट कहता है कि कभी ऐसी मजदूरी मिली हो नहीं थी । यदि कहिये कि मैंने सा दी ही नहीं मिल वैस गयी । इस पर कहता है कि विधाता ने दी । मनुष्य ऐसी मजदूरी दे नहीं सकता । मैंने आप से मजदूरी न लाने का प्रण किया था इसलिए विधि ने दी ।

अब बहुत नाथ न चाहिये मोरें । दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहि जो देया । सो प्रसादु मई सिंग धरि लेवा ॥४॥

अर्थ हे नाथ । हे दीनदयाल । तुम्हारे अनुग्रह से अब मुझ कुष्ठ न चाहिए । लौटती बार जा दोग वह प्रसाद मैं फिर घर घर लूँगा ।

व्याख्या मैं कृतकृत्य हो गया । आपके अनुग्रह में मुझे कोई घाटा नहीं रह गया । प्रभु दीनदयाल हैं । दया ने ही सब घाटा पूरा कर दिया । यदि कहिये घाटा नहीं सही । पर जा मिलता है उसका स्वीकार करने में क्या आपत्ति । इस पर कहता

है कि लौटती बार जो मिलेगा उसे शिरोधार्य कहेंगा । क्योंकि उस समय मैं अयोध्या लौटने में सहायक होऊँगा । इस समय तो मैं प्रभु के वन जाने का मार्ग निर्गल कर रहा हूँ । प्रभु की आज्ञा न टाल सका । इसलिए पार उतार दिया नहीं तो मैं कदापि पार न ले आता ।

दो. बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहि कछु केवटु' लेइ ।

विदा कीन्ह करुनायतन, भगति विमल वरु देइ ॥१०२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और रामजी ने बहुत प्रयत्न किया । पर केवट कुछ नहीं लेता । तब करुनायतन ने निर्मल भक्ति देकर विदा किया ।

व्याख्या : जब जानकीजी के हाथ से लेना केवट ने किसी भीति नहीं चाहा तो लक्ष्मणजी देने लगे । उनसे भी जब नहीं लिया तो स्वयं सरकार देने लगे । पर उसने किसी तरह से लेना स्वीकार नहीं किया । महात्माओं का कथन है कि उस अँगूठी का मूल्य तीनो लोक था । जब उसने नहीं लिया तो सरकार ने सब प्रकार से उसे निस्पृह समझकर निर्मल भक्ति का वर दिया । देव को चौदह वर्ष तक नहीं रोका जा सकता । दूसरी बात यह है कि प्रभु का सङ्कल्प अमोघ है । अतः उसे बिना माँगे अनुपमसुखमूल भक्ति दी । बिना माँगे अविरल भक्ति केवट ने हो पायी ।

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा । पूजि पारथिव नायेउ माथा ॥

सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥१॥

अर्थ : तब रघुकुलनाथ रामजी ने पार्थिव पूजन करके प्रणाम किया । सीताजी ने हाथ जोड़कर गङ्गाजी से प्रार्थना की कि माँ । मेरे मनोरथ को पूरा करना ।

व्याख्या : गृहस्थ के लिए मध्याह्नकृत्य में ही विस्तार का विधान है । प्रातः कृत्य तो सन्ध्या मात्र है । पूजनादि का विधान मध्याह्न में ही है । श्रीरामजी रघुकुलनाथ हैं । नित्य पार्थिवपूजन करते हैं । शिवजी के सावयव मूर्ति पूजने से लिङ्गपूजन अधिक विजयप्रद है । अश्वत्थामा ने व्यासजी से पूछा कि क्यों कृष्णार्जुन की ही विजय होती है मेरी क्यों नहीं होती । व्यासजी ने कहा कि तुम तीनो जन्म जन्मान्तर के शिवभक्त हो । कृष्णार्जुन ने महालिङ्ग पूजन किया और तुमने सावयव मूर्ति का पूजन किया है । अतः कृष्णार्जुन के सामने तुम विजयी नहीं हो सकते और लिङ्गपूजन में भी पार्थिव पूजन का बड़ा माहात्म्य है । अतः मध्याह्न स्नान करके रामजी ने पार्थिव मिट्टी का शिवलिङ्ग बनाकर पूजन किया और अन्त में प्रणाम करके विसर्जन किया ।

१. केवट में गुणमाहात्म्यासक्ति थी । यह ग्यारह प्रकार की शक्तियों में प्रथम है ।

यथा : गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्तिप्रख्यासक्तिकान्तासक्ति-
वात्सल्यासक्तिआत्मनिवेदनासक्तितन्मयासक्तिपरमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति ।
ना. म. सू. ८२ ।

रामजी ने शिवजी की आराधना की और जानकीजी ने गङ्गाजी से मनौती मानी । उमा और गङ्गा दोनों शिवजी की शक्तियाँ हैं । सीताजी ने उमा : गौरी के पूजन के समय माँ सम्बोधन किया । यथा : पति देवता सुतीय महँमातु प्रथम तव रेख और यहाँ गङ्गा के पूजन में भी मातु सम्बोधन दे रही हैं । आज भी स्त्रियाँ सौभाग्य के लिए गौरीपूजन और मनोरथ पूर्ति के लिए गङ्गापूजन करती हैं ।
पति देवर संग कुसल वहोरी । आइ करउँ जेहि पूजा तोरी ॥
सुनि सिय विनय प्रेमरस सानी । भइ तब विमल वारि वर वानी ॥२॥

अर्थ : जिससे पति और देवर के साथ कुशलपूर्वक लौटकर फिर तुम्हारी पूजा करें । प्रेमरस से ओत प्रोत सीताजी विनती सुनकर निर्मल जल से श्रेष्ठ शब्द निकले ।

व्याख्या : यहाँ वहोरी पद से पता चलता है कि जिस समय रामजी पार्थिव पूजन कर रहे थे उस समय सीताजी गङ्गापूजन कर रही थी । पूजनोपरान्त हाथ जोड़कर मनौती मानती हैं । गङ्गाजी तक कोसलराज की सीमा है । वन में प्रवेश तो इसी के बाद होगा । अतः प्रार्थना करती हैं कि पति देवर के साथ मैं चौदह वर्ष के लिए वन जा रही हूँ । अब यदि आपकी कृपा से सब कुशल रहे तो चौदह वर्ष के बाद ही फिर दर्शन का संयोग हो सकता है । अतः आप ऐसी कृपा करें कि पति और देवर के साथ लौटकर फिर मैं आपकी पूजा कर सकूँ ।

व्याख्या : सीताजी का विनय और प्रेम ऐसा सच्चा है कि उसने उमा को वश कर लिया था । यथा : विनय प्रेमवश भई भवानी । यहाँ उन्होंने गङ्गाजी को विनय और प्रेम के वश में कर लिया । वहाँ मूर्ति बोल उठी । यथा बोली गौरि हरष उर भरेल । यहाँ विमल जल से श्रेष्ठ वाणी निकल रही है । मूर्ति पूजन का यही रहस्य है कि विनय और प्रेम से जब मूर्तियों में देवत्व का आविर्भाव हो उठे ।

सुनु रघुवीर प्रिया वैदेही । तब प्रभाव जग विदित न केही ॥
लोकप होहि विलोकत तोरे । तोहि सेवहि सब सिधि कर जोरे ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर की प्रिया वैदेही । सुनो तुम्हारी प्रभुता ससार में कौन नहीं जानता । जिसे तुम देख दो वह लोकपाल हो जाय । तुम्हारी सेवा सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े किया करती हैं ।

व्याख्या : वहाँ भगवतो गौरी ने कहा : सुनु सिय सत्य असीस हमारी । यहाँ गङ्गा कह रही हैं : सुनु रघुवीर प्रिया वैदेही । विवाह के बाद पति के नाम के साथ सम्बोधन करने की चाल है । पति के नाम के साथ स्त्री के नाम के लय हो जाने से सर्वथा ऐक्य हो जाता है । अथवा रघुवीर प्रिया और वैदेही दोनों सम्बोधन देने से पतिकुल और पितृकुल दोनों की उत्तमता कहा । तुम उद्भवस्थितिसंहारकारिणी वनेशहारिणी तथा सर्वश्रेयस्करी हो । तुम्हारा प्रभाव कौन नहीं जानता । जिसकी ओर दृष्टि फिर जाय वह लोकपाल हो जाता है । यथा : जाकी कृपा बटाक्ष सुर

चाहत चितव न सोइ । सिद्धियाँ सब हाथ जोडे तुम्हारी सेवा किया करती हैं ।
यथा सिधि सब सिय आयेसु अकनि गई जहाँ जनवास । लिये मपदा सकल सुख
सुरपुर भोग बिलास ।

तुम्ह जो हमहि बडि विनय सुनाई । कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बडाई ॥
तदपि देवि मै देवि असीसा । सफल होन हित निज बागीसा ॥४॥

अर्थ तुमने जो हम बड़ी विनय सुनायी सो तुमने बड़ी कृपा की । मुझे
बडाई दो । फिर भी हे देवि । मैं अपनी वाणी को सफल करने के लिए तुम्ह
आशीर्वाद दूँगी ।

व्याख्या तुम्हारा इतना कहना हो बडा भारी विनय है । तुम जो चाहोगी
वह होकर ही रहेगा । फिर भी जो तुम विनय करती हो यह तुम्हारी कृपा है । मुझ
बडाई दे रही हो । प्रभु बडाई दे चुके । यथा सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई ।
विविध नदी महिमा अधिकाई । सो तुम उसी को पुष्ट कर रही हो ।

यद्यपि तुम सर्व समर्थ हो । फिर भी तुम्हारा विनय मोघ न हो इसलिए मैं
आशीर्वाद दूँगी । अथवा भागीरथी हाने से मैं नाते में तुमसे बड़ी हूँ । अतः
आशीर्वाद देने का मेरा हक भी है और आशीर्वाद देने में मेरी वाणी का साफल्य है ।
क्योंकि ऐसा होने ही वाला है । अब आशीर्वाद देती हूँ ।

दो प्राणनाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ ।

पूजिहि सब मन कामना, सुजसु रहहि जग छाइ ॥१०३॥

अर्थ तुम प्राणनाथ और देवर के सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी ।
तुम्हारी सब मन की कामनाएँ पूरी होगी और तुम्हारी कीर्ति ससार में छा जायेगी ।

व्याख्या प्राणनाथ और प्रिय देवर के साथ जिस भाँति बन जा रही हो
उसी भाँति कुशल पूर्वक अयोध्या में चौदह वर्ष बाद लौटोगी । तुम्हारे मन में सासो
की सेवा करने की कामना है । यथा सेवा समय देव बन दोन्हा । मोर मनोरथ
सफल न कीन्हा । सो मनोरथ सफल होगा और भी जितने मनोरथ हैं सभी पूर्ण
होगे और तुम्हारी कीर्ति ससार भर में व्याप्त हो जायगी । यथा जिति सुरसरि
कीरति सरि तोरी । गवन कीन्ह विधि अड करोरी । वहाँ भगवती गौरी ने भी
ऐसा ही आशीर्वाद दिया था । यथा सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मन
कामना तुम्हारी ।

गग वचन सुनि मगल मूला । मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥

तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू । सुनत सूख मुखु भा उर दाहू ॥१॥

अर्थ गङ्गाजी के मङ्गल मूल वचन का सुनकर सीताजी प्रसन्न हुई कि
गङ्गाजी मेरे अनुकूल हैं । तब प्रभु ने गुह से कहा कि घर जाओ सुनते ही उसका
मुख सूख गया और हृदय में दाह उत्पन्न हुआ ।

व्याख्या : गङ्गा सकल मुद मङ्गल मूला । अतः उनके वचन भी मङ्गलमूल हैं ।
वहाँ : जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरख न जाइ कहि । यहाँ : मुदित सीय सुरसरि
अनुकूला । जितना मांगा था उससे अधिक के लिए आशीर्वाद पाकर जाना कि
गङ्गाजी अनुकूल हैं । अतः सीताजी मुदित हैं ।

गङ्गाजी के आशीर्वाद के बाद सरकार आगे चलने को तैयार हुए । इसलिए
निपादराज को आज्ञा दी कि घर जाओ । हमें तो वन जाना है । निपादराज घर से
तैयार होकर चले थे कि सरकार जहाँ रहेंगे उसे देखकर लौटेंगे । मैं तो जङ्गली
हूँ । मेरे साथ रहने में क्या रोक है । पहिले भी आखेट में मैं साथ रहता ही था । पर
सरकार की आज्ञा सुनते ही उसके हृदय में दाह उत्पन्न हुआ । अतः मुख सूख गया ।

दीन वचन गुह कह कर जोरी । विनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी ॥

नाथ साथ रहि पंथु देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥२॥

अर्थ : गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला कि हे रघुकुलमणि ! मेरी विनती
सुनिये । मैं सरकार के साथ रहकर रास्ता दिखाऊँगा । चार दिन चरणों की सेवा
करूँगा ।

व्याख्या : आर्त होकर निपादराज दीन वचन बोले । भा उर दाह से मन की
दीन वचन कहकर वाणी की और करजोरी कहकर तन की दीनता दिखायी ।
रघुकुलमणि सम्बोधन से भाव यह कि इस कुल से अर्थी के मनोरथ की सदा से पूर्ति
होती आयी है । सरकार तो उसमें मणि हैं । मेरी प्रार्थना स्वीकार हो ।

सरकार हमारे नाथ हैं । मैं इस भाँति वन में कैसे जाने दूँ । वन का रास्ता
मेरा देखा है । मैं साथ रहकर रास्ता बतलाऊँगा । वन्य फल मूल का पता हम
लोगों को ही रहता है । शयन के लिए साथरी आदि बनाने का काम मैं करूँगा । इस
भाँति चार दिन के लिए सेवा का सौभाग्य मुझको प्राप्त होगा ।

जेहि वन जाइ रहब रघुराई । परन कुटी मैं करवि सुहाई ॥

तब मोहि कहं जसि देव रजाई । सोइ करिहौ रघुवीर दोहाई ॥३॥

अर्थ : हे रघुराई ! जिस वन में जाकर आप रहेंगे उसमें सुन्दर पत्ते की कुटी
मैं बना दूँगा । तब मुझे जो आज्ञा होगी सरकार की दोहाई मैं वह करूँगा ।

व्याख्या : निपादराज रहने का पूरा पता जान लेना चाहता है । कहता है कि
जिस वन में आप रहेंगे वहाँ पर्णकुटी कौन बनावेगा ? यदि कहिये कि हम लोग
बना लेंगे । तो इस पर कहता है कि वह ठीक न बनेगी । पत्ते की कुटी सुन्दर बनाना
तो हम लोग जानते हैं । जब मैं कुटी बना लूँगा तब मेरे जाने या रहने पर विचार
कीजियेगा । यदि आज्ञा होगी कि तुम चले जाओ तो सरकार की दोहाई मैं चला
जाऊँगा । रहने के लिए हठ न करूँगा ।

सहज सनेह राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥

पुनि गुह ग्याति योलि सब लीन्हें । करि परितोषु विदा तब कीन्हें ॥४॥

अर्थ : उसका स्नेह देगकर रामजी ने गुह को साथ ले लिया । उसके हृदय में उल्लास हुआ । तत्पश्चात् गुह ने जातिवालों को बुला लिया और उनको सन्तोष करके विदा किया ।

व्याख्या : सरकार सहज स्नेह के वश हैं । यथा : सहज स्नेह बिबस रघुराई अतः गुह को विनती स्वीकृत हुई । उसे साथ ले लिया । उसके हृदय में हर्ष है । सा जाने को खुशी है ।

गुह निपादराज है । अतः जातिवाले उसके साथ आये हैं । उनको बुलाकर गुह ने ममज्ञा दिया कि तुम लोग लौट जाओ । मेरा ही साथ जाना कठिन हो रहा है । तुम लोग साथ रहोगे तो मैं भी न जाने पाऊँगा । इनके रहने की व्यवस्था करके लौट आऊँगा । आगे भयङ्कर वन है । सम्भव है कि जानकीजी डरें । तो मुझे उन्हें लौटा ले जाने की आज्ञा मिलनी भी सम्भव है । ऐसी बातें कहकर उनको परितोष करके उन्हें विदा दिया ।

दो. तब गणपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ ।

सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

अर्थ : तब गणपति और शिवजी का स्मरण करके और गङ्गाजी को सिर नवाकर सखा अनुज और सीताजी के साथ सरकार वन को चले ।

व्याख्या : अपना नाम अपने रखने से रहता है । अतः जिनकी प्रथम पूजा नाम के प्रभाव से होती है उन्हें पहिले स्मरण किया । तत्पश्चात् अपने सर्वार्थकारी शिवजी का स्मरण किया । यथा : सेतक स्वामि सखा सिय पीके । प्रत्यक्ष नहीं है । इसलिए स्मरण मात्र किया और गङ्गाजी घर की बड़ी बूढ़ी हैं और सामने हैं । अतः उन्हें सिर नवाया । आरम्भ में चले थे तब गणपति तथा शिवजी के साथ गौरीजी को मनाया था । यहाँ गङ्गाजी को प्रमाण किया । दोनों शक्तियाँ शिवजी की हैं । सो दोनों का मान रक्खा । तब सखा निपादराज, लक्ष्मण और सीता के साथ रघुनाथजी ने वनगमन किया ।

तेहि दिन भयउ विटप तर बासू । लखन सखा सब कीन्ह सुपासू ॥

प्रात प्रातकृत करि रघुराई । तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥१॥

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास किया । लक्ष्मणजी और सखा निपादराज ने सब प्रबन्ध किया । सवेरे नित्यकृत्य करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज का दर्शन किया ।

व्याख्या : गङ्गा पार होने के बाद वहाँ से सीधा रास्ता चित्रकूट का है । पर सरकार प्रयागराज को बायाँ देना नहीं चाहते । अतः पूर्व की ओर मुड़े । रास्ते में ही सन्ध्या हो गयी । अतः वृक्ष के नीचे ठहर गये । भोजन शयनादि का प्रबन्ध लक्ष्मण और निपादराज ने किया ।

सरकार जहाँ सोते हैं उठने पर प्रातः काल का कृत्य वही करते हैं। जिसमें काल का लोप न हो। प्रयागराज निकट हैं। अतः मध्याह्न कृत्य वही होगा। तीर्थों के राजा हैं। इसलिए प्रयागराज कहलाते हैं। सरकार चल। तीर्थराज का दर्शन हुआ।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी ॥

चारि पदारथ भग्न भंडारू। पुण्य प्रदेश देस अति चारू ॥२॥

अर्थ सत्य मन्त्री हैं। श्रद्धा प्रिय स्त्री है। माधव जैसे हितकारी मित्र हैं। चारों पदार्थों से भण्डार भरा हुआ है। पुण्य प्रदेश ही अति सुन्दर राज्य है।

व्याख्या तीर्थराज हैं। सब राजसी ठाट वाट है। राजा के छ अङ्ग होते हैं मन्त्री, मित्र, राज्य, कोप, दुर्ग और सेना। राजा का मुख्य अङ्ग मन्त्री है। राज्य से भ्रष्ट राजा भी मन्त्री के होने से फिर राज्य प्राप्त कर सकता है। सो यहाँ सत्य ही मन्त्री हैं। बिना इनकी कृपा राजा से भेंट नहीं हो सकती। बिना सत्य के आश्रयण के तीर्थ फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। पट्टाभिषिक्ता महिषी श्रद्धा तीर्थराज की बड़ी प्रिय है। इनके बिना धर्म की उत्पत्ति ही नहीं होती। दूसरे अङ्ग मित्र रूप से माधव है। सब प्रकार से तीर्थराज के सहायक हैं। तीसरा अङ्ग कोप है। उसमें चारों पदार्थ धर्म अर्थ काम और मोक्ष भरा हुआ है और अन्तर्वेदा गङ्गा यमुना के बीच का पुण्य प्रदेश ही राज्य है।

छेत्रु अगमु गदु गाढ सुहावा। सपनेहुँ नहि प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥

सेन सकल तीरथ वर वीरा। कलुष अनीक दलन रन धीरा ॥३॥

अर्थ प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम दृढ दुर्ग किला शोभायमान है। जिसे पाने का स्वप्न भी शत्रु नहीं देख सकते। सब तीर्थ ही वीरों की सेना हैं। जो पाप की सेना के नाश में बड़े रणधीर हैं।

व्याख्या प्रयागराज का जो क्षेत्र है वही किला स्थानीय है। जिसमें न तो शत्रु का प्रवेश हो सकता है न उनका तोड़ा टूट सकता है। शत्रुओं ने कितने तीर्थ नष्ट कर डाले। पर प्रयागराज पर उनका बल न कभी चला और न चल सकने का वे स्वप्न ही देख सकते हैं। बौद्धों के काल में जब अयोध्यादि तीर्थ लुप्त हो गये थे केवल तीर्थराज बने रहे उन पर बौद्धों का जोर न चला। महाराज विक्रमादित्य ने प्रयाग की दूरी पुराणों से देख देखकर तीर्थों की स्थिति का पता लगाया और फिर से स्थापन किया। जितने बड़े बड़े तीर्थ ससार में हैं जो दिन रात पापों का नाश किया करते हैं वे सब तीर्थराज के ही सैनिक हैं।

सगमु सिंघासन सुठि साहा। छत्रु अछयवदु मुनि मनु मोहा ॥

चंवर जमुन अरु गग तरगा। देखि होहि दुख दारिद भगा ॥४॥

अर्थ गङ्गा यमुना का सङ्गम ही श्रेष्ठ सुन्दर सिंहासन है। मुनियों के मन

अर्थ : उसका सनेह देखकर रामजी ने गुह को साथ ले लिया । उसके हृदय में उल्लास हुआ । तत्पश्चात् गुह ने जातिवालों को बुला लिया और उनका सन्तोष करके विदा किया ।

व्याख्या : सरकार सहज स्नेह के वश हैं । यथा : सहज सनेह विवस रघुराई । अतः गुह को विनती स्वीकृत हुई । उसे साथ ले लिया । उसके हृदय में हर्ष है । साथ जाने को खुशी है ।

गुह निपादराज है । अतः जातिवाले उसके साथ आये हैं । उनको बुलाकर गुह ने समझा दिया कि तुम लोग लौट जाओ । मेरा ही साथ जाना कठिन हो रहा है । तुम लोग साथ रहोगे तो मैं भी न जाने पाऊँगा । इनके रहने की व्यवस्था करके लौट आऊँगा । आगे भयङ्कर वन है । सम्भव है कि जानकीजी डरें । तो मुझे उन्हें लौटा ले जाने की आज्ञा मिलनी भी सम्भव है । ऐसी बातें कहकर उनका परितोष करके उन्हें विदा दिया ।

दो. तब गणपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ ।

सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

अर्थ : तब गणपति और शिवजी का स्मरण करके और गङ्गाजी को सिर नवाकर सखा अनुज और सीताजी के साथ सरकार वन को चले ।

व्याख्या : अपना नाम अपने रखने से रहता है । अतः जिनकी प्रथम पूजा नाम के प्रभाव से होती है उन्हें पहिले स्मरण किया । तत्पश्चात् अपने सर्वार्थकारी शिवजी का स्मरण किया । यथा : सेवक स्वामि सखा सिय पीके । प्रत्यक्ष नहीं है । इसलिए स्मरण मात्र किया और गङ्गाजी घर की धडी बूढ़ी है और सामने हैं । अतः उन्हें सिर नवाया । आरम्भ में चले थे तब गणपति तथा शिवजी के साथ गौरीजी को मनाया था । यहाँ गङ्गाजी को प्रमाण किया । दोनों शक्तियाँ शिवजी की हैं । सो दोनों का मान रखा । तब सखा निपादराज, लक्ष्मण और सीता के साथ रघुनाथजी ने वनगमन किया ।

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू । लखन सखा सब कीन्ह सुपासू ॥

प्रात प्रातकृत करि रघुराई । तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥१॥

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास किया । लक्ष्मणजी और सखा निपादराज ने सब प्रबन्ध किया । सवेरे नित्यकृत्य करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज का दर्शन किया ।

व्याख्या . गङ्गा पार होने के बाद वहाँ से सीधा रास्ता चित्रकूट का है । पर सरकार प्रयागराज को बायाँ देना नहीं चाहते । अतः पूर्व की ओर मुड़े । रास्ते में ही सन्ध्या हो गयी । अतः वृक्ष के नीचे ठहर गये । भोजन शयनादि का प्रबन्ध लक्ष्मण और निपादराज ने किया ।

प्रयागराज मित्र हैं। यथा माधव सरिस मीत हितकारी। अत मित्र के समागम का सुख हुआ।

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बडाई ॥
करि प्रनामु देखत वन बागा। कहत महातम अति अनुरागा ॥२॥

अर्थ श्रीमुख से सीता, लक्ष्मण और सखा को सुनाकर तीर्थराज की महिमा कह सुनायी। प्रणाम करके वन और बागों को देख रहे हैं और अति अनुराग से माहात्म्य कह रहे हैं।

व्याख्या वेद पुराण द्वारा प्रयागराज की महिमा वर्णित है। फिर भी आज श्रीमुख से महिमा कह रहे हैं। अतः उसके प्रामाणिक होने में क्या सन्देह है। तीर्थ में जाने पर तीर्थ की महिमा का वर्णन होना चाहिए। माहात्म्यश्रवण बिना पूरा फल नहीं होता। इसलिए सीताजी लक्ष्मणजी को सुना रहे हैं। क्षेत्र की सीमा पर बाग वन है। उनके दर्शन का भी पुण्य है। अतः प्रमाण करके अति अनुराग से माहात्म्य वर्णन किया।

एहि विधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमगल देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाविधि तीरथ देवा ॥३॥

अर्थ इस विधि से आकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जो स्मरण करने से सब सुमङ्गल को देनेवाली हैं। प्रसन्न होकर स्नान किया और तीर्थ देवताओं की यथाविधि पूजा करके शिवजी की सेवा की।

व्याख्या तीर्थयात्रा की यही विधि है। तदनुसार चलकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जिसका स्मरण सभी सुमङ्गल का देनेवाला है। फिर दर्शन का क्या माहात्म्य कहा जाय। तीर्थराज में आज स्नान कर रहे हैं। इस बात की बड़ी खुशी है। तत्पश्चात् तीर्थ देवताओं की पूजा भी यथाविधि से की।

त्रिवेणी माधवं सोम भारद्वाजश्च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवट शेष प्रयाग तीर्थ-
नायकम्। त्रिवेणी माधव सोमनाथ वासुकी अक्षयवट और शेषनागादि वहाँ के देवता हैं। तत्पश्चात् शिवजी की सेवा की। पूजन कार्य समाप्त हुआ।

तव प्रभु भरद्वाज पहि आये। करत दण्डवत मुनि उर लाये ॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई ॥४॥

अर्थ तब सरकार भरद्वाजजी के यहाँ गये। दण्डवत् करते हुए उनको मुनिजी ने हृदय से लगा लिया। मुनिजी को ऐसा आनन्द है कि उनसे कुछ कहते नहीं बनता। मानो ब्रह्मानन्द की राशि की ही प्राप्ति हो गयी।

व्याख्या भरद्वाज मुनि बसहि प्रयागा। तिनहि रामपद अति अनुरागा। तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना। ये महात्मा जङ्गम तीर्थराज हैं। अतः सरकार ने दण्डवत् प्रणाम किया। भरद्वाजजी इनको दण्डवत्

करते देख न सके । बीच में ही उठाकर हृदय से लगा लिया । मुनिजी को बड़ा आनन्द हुआ । कहना चाहते हैं पर कुछ भी कहते नहीं बनता । उन्हें मानो ब्रह्मानन्द की राशि हाथ लग गयी । सरकार का शरीर पाश्चभौतिक नहीं है । धनीभूत ब्रह्मानन्द ही है । यथा चिदानन्दमय देह तुम्हारी । विगत विकार जान अधिकारी ।

दो दीन्हि असीस मुनीस उर, अति अनदु अस जानि ।

लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किए विधि आनि ॥१०६॥

अर्थ मुनिजी ने हृदय से ही आशीर्वाद दिया । उनके मन में ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द है कि विधाता ने लाकर मेरे पुण्य के फल को मेरे दृष्टिगोचर कर दिया ।

व्याख्या आशीर्वाद देना चाहते थे । पर बोल न सके । अतः मन से ही आशीर्वाद दिया । उन्हें ऐसा आनन्द है मानो सब साधनों के फल को ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया । सोचते हैं कि मैं खोजने भी न गया । ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया । तीन ही श्रेय के उपाय हैं । कर्मयोग भक्तियोग और ज्ञानयोग मैंने तीनों का अनुष्ठान किया । सो तीनों के फल मानो राम जानकी और लक्ष्मण के रूप में मुझे प्राप्त हो गये । यथा सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसन पावा ।

कुशल प्रश्न करि आसन दीन्हें । पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हें ॥

कन्द मूल फल अकुर नीके । दिये आनि मुनि मनहुँ अमो के ॥१॥

अर्थ कुशल पूछकर आसन दिया । पूजा करके प्रेम से परिपूर्ण किया । कन्द मूल फल और अच्छे अङ्कुर अमृत से सुस्वादु लाकर मुनिजी ने दिये ।

व्याख्या कुशल प्रश्न शिष्टाचार है । जो अपने यहाँ आवे उससे कुशल पूछना आसन देना जलपान कराना धर्मशास्त्र की विधि है । यथा तृणानि भूमिर्दक वाक् चतुर्थी तु सूनृता । एतान्यपि सत्ता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन । पूजन का प्राण श्रद्धा और भक्ति है । उसी से पूजा पूर्ण होती है । श्रुतियों का मार्जन होता है । अतः मुनिजी ने पूजा को प्रेम से परिपूर्ण कर दिया ।

नैवेद्य में कन्द मूल और अङ्कुर का भोग लगाया । मुनियों का यही आहार है । भरद्वाजजी कुलपति हैं । एक आवाज पर पचासो शिष्य दौड़ आते हैं । प्रयागराज में मुनियों का आना जाना लगा ही रहता है । अतः कन्द मूलादि संग्रह अधिक रहता है । उसमें से देखने में सुन्दर और खाने में अमृत स स्वादिष्ट फल मूलादि का नैवेद्य सामने रक्खा ।

सीय लखन जन सहित सुहाये । अति रुचि राम मूल फल खाये ॥

भये विगत श्रम राम सुखारे । भरद्वाज मृदु वचन उचारे ॥२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और निपादराज के साथ रामजी ने सुन्दर मूल फल को बड़े चाव से खाया । थकावट दूर हुई । रामजी सुखी हुए । तब भरद्वाजजी कोमल वचन बोले ।

व्याख्या : चारों मूर्तियों को एक साथ परोसा । कन्द मूल फल अङ्कुर बड़े स्वादु थे और बड़े प्रेम से दिये गये थे । अतएव बड़े चाव से रामजी ने भोजन किया । पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः । पत्र पुष्प फल जो कोई मुझे प्रेम से देता है सो मैं उस प्रेम से दिये हुए पदार्थ को बड़े चाव से खाता हूँ : भगवद्गीतायाम् ।

आज की यात्रा बड़ी लम्बी थी । अतः लौकिक व्यवहारानुसार सरकार थक गये थे । प्रेम परिपूर्ण पूजन से थकावट दूर हुई । पूजनोपरान्त स्तुति होनी चाहिए । अतः भरद्वाजजी मृदु वचन बोले ।

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग विरागू ॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू । राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥३॥

अर्थ : हे रामजी ! आपके दर्शन से आज तप तीर्थ त्याग सफल हुआ । जप योग विराग सफल हुआ । शुभ साधनों के सब साज सुफल हुए ।

व्याख्या : भरद्वाज तपस्वी थे । तीर्थराज में निवास करते थे । उदासीन थे । जप योग किया करते थे । वैराग्यवान् थे । अर्थात् परलोक के जो साधन हैं उनमें तत्पर थे । बहुत दिनों से यह क्रम चल रहा था । सो सबके सब आज अकस्मात् सफल हो गये । क्योंकि सब साधनों का फल रामजी का दर्शन है । यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज स्वरूपा । सरकार के दर्शन से मुनिजी को सहज स्वरूप की प्राप्ति हुई । इसलिए कहते हैं कि आज सब सफल हो गये ।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी । तुम्हरे दरस आस सब पूजी ॥
अव करि कृपा देहु वरु एहु । निज पद सरसिज सहज सनेहु ॥४॥

अर्थ : न तो लाभ की दूसरी अवधि है न सुख की दूसरी अवधि है । तुम्हारे दर्शन से सब आशा पूर्ण हो गयी । अब कृपा करके यह वर दो कि आपके चरण कमलों में मेरी स्वाभाविक भक्ति हो ।

व्याख्या : यं लब्ध्वा नापर लाभं मन्यते नाधिकं ततः । सो मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि इससे बढ़कर दूसरा लाभ हो नहीं सकता और ब्रह्मानन्द राशि की प्राप्ति के सुख से बढ़कर दूसरा सुख हो नहीं सकता । यही सुख की पराकाष्ठा है । क्योंकि सभी आनन्द ब्रह्मानन्द के उपजीवी हैं । यथा : एषोऽस्य परमानन्दो योऽखण्डै करसात्मकः । अन्यानि भूतान्येतस्य मात्रामेवोपभुञ्जते । सो मुनिजी ने ब्रह्मानन्द की राशि ही मानो पा ली । परम अनूप फल सहज स्वरूप की प्राप्ति से पूर्णकाम हो गये । इसलिए कहते हैं कि आस सब पूजी ।

महात्माओं में साध्य से अधिक आदर साधन का होता है । भगवान् से भी

अधिक आदर भक्ति का है। अतः चरण कमलों में सहज स्नेह प्राप्ति का वर मांगते हैं। बिना प्रयत्न के ही प्रेम बना रहे। यह अविरल भक्ति कृपासाध्य है। अतः पूजोपरान्त यही प्रार्थना है।

दो. करम वचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार ।

तब लगि सुख सपनेहुं नहि, किये कोटि उपचार ॥१०७॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा छल छोड़कर जब तक कोई तुम्हारा भक्त न होगा तब तक चाहे करोड़ों उपाय करे उसे सपने में सुख नहीं मिल सकता।

व्याख्या : कर्म वचन मन छल छोड़कर भक्त हो जाना यही सहज स्नेह है। बिना सहज स्नेह सुख नहीं। क्योंकि भक्ति ही सब सुखखानि है। यथा : सब सुखखानि भक्ति तैं मांगी। अन्य उपचार की निःसारता कहा। यथा : नाहि न आवत आन भरोसो। एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरो सो। सुख सपनेहु न जोग साधन फल रोग वियोग धरोसो।

यह सातवीं स्तुति पुनर्वसु नक्षत्र है। इसमें चार तारे चमकते हैं : फल आशा स्नेह और सुख। फल की प्राप्ति आशा की पूर्ति स्नेह का वरदान सुख प्राप्ति का उपाय ये ही चार बातें इस स्तुति में हैं। यहाँ तप तीर्थ त्याग सब सकाम दिखायी पड़ रहे हैं। लाभ सुख आशा सभी गृहधर्म दिखायी दे रहे हैं। अतः स्तुति की आकृति गृह सी है। पुनर्वसु की आकृति गृह सी ज्योतिषशास्त्र बतलाता है। फल-श्रुति है। बीज सकल व्रत धर्म नेम के। यहाँ सब व्रत धर्म नियम का सफल होना कहा है और फल में ही बीज रहता है।

मुनि मुनि वचन रामु सकुचाने । भाव भगति आनद अधाने ॥

तब रघुवर मुनि सुजसु सुहावा । कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी सङ्कुचित हो गये और भावभक्ति के आनन्द से तृप्त हुए। तब रामजी ने मुनि के सुन्दर सुयश को करोड़ों भाँति कहकर लोगों को सुनाया।

व्याख्या : सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई। केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई। सो मुनिजी सहज स्वरूप को लक्ष्य करके वरदान मांग रहे हैं। अतः रामजी सङ्कुचित हो गये। एवमस्तु भी नहीं कहा। परन्तु मुनिजी के कृतकृत्यता के भाव तथा भक्ति के आनन्द से तृप्त हो गये। भक्ति के आनन्द कहने का भाव यह कि भक्ति : राजसी और तामसी तो असुरों में पायी जाती है। ईर्ष्या पूर्वक द्वेष होना राजसी भक्ति : और भय पूर्वक द्वेष होना तामसी भक्ति है। पर इन भक्तियों में आनन्द नहीं। यथा : वैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। पर परलोक उनका अवश्य बन जाता है। आनन्द तो सात्त्विकी भक्ति में है। मुनिजी की सात्त्विकी भक्ति है। अतः भक्ति का आनन्द कहा। जहाँ बड़े का नाता मान लेते हैं वहाँ वर मांगने पर एवमस्तु नहीं कहते मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। यहाँ

मुनिजी की बड़ाई के व्याज से उनकी प्रार्थना की स्वीकृति द्योतित की। लोगो से मुनिजी के सुयश का वर्णन करने लगे कि ये साक्षात् जङ्गम प्रयागराज हैं। इतना बड़ा श्रोत्रिय कौन है। प्रणव की प्राप्ति इन्होंने इन्द्र से की है। ससार को रोग से आतं देखकर इन्ही महात्मा ने वेद्यशास्त्र का प्रचार सुश्रुत संहिता रचकर किया है करोड लक्ष सहस्र शत शब्द बहुवचन वाची हैं इत्यादि।

सो बड सो सब गुन गन गेहू । जेहि मुनीस तुम आदर देहू ॥

मुनि रघुवीर' परसपर नवही । वचन अगोचर सुख अनुभवही ॥२॥

अर्थ हे मुनीश्वर। जिसे तुम आदर दो वही बड़ा है और वही गुणगण का धर है। मुनिजी तथा रामजी परस्पर विनीत हो रहे हैं और ऐसे सुख का अनुभव कर रहे हैं जो वाणी का विषय नहीं।

व्याख्या अपने सहज स्वरूप को छिपाना है और मुनिजी के वचन को अप्रमाण कैसे कहे ? अत कहते हैं कि आप सत्यसङ्कल्प हैं। सत्यकाम है ! आप जिस किसी को जैसा कह दें वही वैसा हो सकता है। आपने जो मेरी स्तुति की है वह कृपा करके मुझे बड़ाई दी है। आपके आदर प्रदान से मैं बड़ा भी हुआ। गुण गेहू भी हुआ।

भक्त और भगवान् का परस्पर विनय दिखलाते हुए अनिर्वचनीय आनन्द का आविर्भाव दिखलाया। विनय से ही प्रीति की वृद्धि होती है और जहाँ आनन्द है वही प्रीति है।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी । बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी ॥

भरद्वाज आश्रम सब आये । देखन दशरथ सुअन सुहाये ॥३॥

अर्थ यह समाचार पाकर प्रयाग के रहनेवाले ब्रह्मचारी तपस्वी मुनि और उदासीन दशरथ के सुन्दर बेटो को देखने आये।

व्याख्या जहाँ सरकार जाते हैं सब लोग उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। चारों ओर सौन्दर्य की ख्याति फैल जाती है। अत यह समाचार सब लोगो में फैल गया कि राजा दशरथ के बेटे प्रयाग स्नान के लिए आये हैं। उनके रूप की सम्पत्ति अलौकिक है। इस समय वे भरद्वाज के आश्रम में हैं। अत ब्रह्मचारी वानप्रस्थ सन्यासी सिद्ध और विरतिरत गृही सभी देखने आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू । मुदित भये लहि लोयन लाहू ॥

देहि असीस परम सुखु पाई । फिरे सराहत सुदरताई ॥४॥

अर्थ रामजी ने सभी को प्रणाम किया। सब नेत्रों का लाभ पाकर प्रसन्न हुए। परम सुख पाकर सब आशीर्वाद देते हैं और सुन्दरता की प्रशंसा करते हुए घर लौटते हैं।

व्याख्या : बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी । सभी प्रणम्य ठहरे । अतः मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् ने सबको प्रणाम किया । नयनवन्त रघुपतिहि बिलोकी । पाइ जनम फल होहि विसोकी । सो ये लोग भी नयनफल पाकर विशोक हुए । सरकार के दर्शन से परम सुख हुआ । यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सहपा । परम सुख पाकर सबने आशीर्वाद दिया और सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए लौट आये ।

दो. राम कीन्ह विश्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ ।

चले सहित सिय लखन जन, मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥१०८॥

अर्थ : रामजी ने रात्रि को विश्राम किया । प्रात काल प्रयाग स्नान करके सीता लक्ष्मण और भक्त निपाद के साथ मुनिजी को सिर नवाकर प्रसन्न मन चले ।

व्याख्या . रामजी ने रात को भरद्वाजजी के आश्रम में ही विश्राम किया । एक रात्रि तीर्थ में बिताया । प्रातः स्नान प्रयागराज अर्थात् त्रिवेणी में हुआ । अब और आगे चले । वाल्मीकि मुनिजी के दर्शन के लिए उत्साह है । अतः प्रसन्न मन से चलना कहा । रामजी सीता लक्ष्मण और गुह निपाद के साथ मुनि : भरद्वाजजी को प्रणाम किया और चल पड़े ।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहो । नाथ कहिअ हम केहि मग जाही ॥

मुनि मन बिहंसि राम सन कहही । सुगम सकल मग तुम्ह कहुं अहहो ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ मुनिजी से कहा कि हे नाथ । बतलाइये कि हम लोग किस रास्ते से जायें । मुनिजी मन ही मन हँसकर रामजी से कहते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम हैं ।

व्याख्या : भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं । यद्यपि रामजी रास्ता पूछते हैं । पर किसी स्थान का नाम नहीं लेते . जहाँ जाना है । भाव यह कि मुनिजी रास्ता भी बतलायें और गन्तव्य स्थान का भी निश्चय कर दें । मुनिजी से स्वामी सेवक भाव रखते हुए नाथ सम्बोधन देते हैं और प्रेम से पूछते हैं ।

ऐश्वर्य छिपाते देखकर मुनिजी मन ही मन हँसे कि ये हमसे रास्ता पूछते हैं । अतः उत्तर देते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम हैं । जिसने जग को तीन पग से भी थोड़ा कर डाला उसके लिए दुर्गम क्या है । मुनिजी ने गुरुजी के पास पहुँचाने का रास्ता ठीक कर दिया और गन्तव्य स्थान का निर्णय उन्हीं पर छोड़ा ।

साथ लागि मुनि सिप्य बोलाये । मुनि मन मुदित पचासक आये ॥

सबहि राम पर प्रेम अपारा । सकल कहहि मगु दीख हमारा ॥२॥

अर्थ : साथ के लिए मुनिजी ने शिष्यों को बुलाया । सुनते ही प्रसन्न मन से लगभग पचास के आगये । सभी का रामजी पर अपार प्रेम है । सभी कहते हैं कि रास्ता हमारा देखा है ।

व्याख्या : रास्ता ऐसा नहीं था कि केवल बतला देने से काम चले । अर्थात् कोई पगडण्डी ऐसी नहीं थी जिसे पकड़ा देने से काम चल जाय । रास्ता दिखाने के लिए साथ जाने की आवश्यकता थी । अतः साथ भेजने के लिए मुनिजी ने शिष्यों को आवाज दिया । सुनते ही लगभग पचास के आगये । मुनिजी ने पूछा कि गुरुजी के यहाँ जाने का रास्ता किसका देखा है । सभी कहने लगे कि हमारा देखा है । हमारा देखा है । सभी का रामजी पर अपार प्रेम था । सभी की इच्छा थी कि रामजी के साथ जायें ।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे । जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे ॥
करि प्रनामु रिपि आयसु पाई । प्रमुदित हृदय चले रघुराई ॥३॥

अर्थ : मुनिजी ने चार ब्रह्मचारियों को साथ कर दिया । जिन्होंने बहुत जन्मों तक सब पुण्य किया था । प्रणाम करके ऋषिजी की आज्ञा पाकर रामजी प्रसन्न होकर चल पड़े ।

व्याख्या : एक के भी साथ देने से रास्ता दिखाने का काम चल सकता था । फिर भी मुनिजी ने चार शिष्य साथ कर दिये । क्योंकि जङ्गल की बात थी । उन्हें रामजी को पहुँचाकर लौटना भी था और मार्ग चलने में चार का विधान भी है । मुनिजी शिष्य सभी रामजी के प्रेमी थे । सभी पुण्यात्मा थे । अतः मुनिजी को उनके पूर्व जन्म के सुकृत के अनुसार निर्णय करना पड़ा ।

रामजी विदाई के लिए प्रणाम करते हैं । अथवा आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रणाम करते हैं । आज्ञा पाकर प्रमुदित होकर चले । मुदित होकर सिर नवाया था । अब प्रमुदित होकर चले ।

पंथ कथा प्रसङ्ग

ग्राम निकट जब निकसहि जाई । देखहि दरसु नारि नर धाई ॥
होहि सनाथ जनम फलु पाई । फिरहि दुखित मनु संग पठाई ॥४॥

अर्थ : जब किसी गाँव के निकट होकर निकलते थे तो स्त्री पुरुष दौड़कर दर्शन करते थे । जन्म फल पाकर सनाथ होते थे और मन को साथ भेजकर दुःखी लौटते थे ।

व्याख्या : वन के छोर पर कहीं कहीं ग्राम है । उनके निकट जब वन में से निकलते हैं तो दर्शन के लिए ग्रामवासी नर नारी दौड़ पड़ते हैं । सरकार की शोभा देखते हैं । अपने को सनाथ मानते हैं । ससार में जन्म लेने का फल उन्हें प्राप्त हो गया । उनका मन सरकार के साथ हो गया और फिर न लौटा । लौटने में उन्हें बड़ा कष्ट हुआ ।

दो. विदा किये बटु विनय करि, फिरे पाइ मन काम ।

उतरि नहाये जमुन जल, जो' सरीर सम स्याम ॥१०९॥

अर्थ : विनय करके ब्रह्मचारियों को विदा किया और वे मन चाहा फल पाकर लौटे । यमुना पार होकर स्नान यमुना जल में किया । जो उनके शरीर को भूति श्याम था ।

व्याख्या : ब्रह्मचारी अधिक दूर तक साथ जाने को उत्सुक थे । लौटना नहीं चाहते थे । सो उन्हें विनय करके लौटाया । वे भी खाली हाथ नहीं लौटे । उनकी कामनाएँ पूर्ण हुई । यमुना पार होकर मध्याह्न कृत्य किया । पार होने की व्यवस्था निपादपति ने की । यमुना जल को शोभा कहते हैं कि वह सरकार के शरीर सा श्याम था : सम्भवतः जो अब गुलीरीघाट कहलाता है वहाँ पहुँच गये ।

सुनत तीर बासी नर नारी । धाए निज निज काज बिसारी ॥

लखन राम सिय सुंदरताई । देखि करहि निज भाग्य बड़ाई ॥१॥

अर्थ : सुनते ही तीर के रहनेवाले नर नारी अपना अपना काम भूलकर दौड़े । लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं ।

व्याख्या : इस समाचार को सुनकर अति उत्कण्ठावश यमुना तीर के रहनेवाले अपना अपना काम अधूरा छोड़कर दौड़े कि उनके पहुँचने के पहिले ही कहीं चले न जायें । जैसे मुरली की ध्वनि सुनकर ब्रजगोपिकाएँ दौड़ी थीं । किसी ने एक ही आँख में अञ्जन लगा पाया था । किसी ने दूध को उफनता हुआ आग पर ही छोड़ा । वे श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्सुकता में सब काम भूल गयी । वही दशा आज यमुनातीरवासी नर नारियों की हुई ।

आकर जब लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता को देखा तो उन्हें ऐसा अलौकिक सुख हुआ कि अपने भाग्य की बड़ाई करने लगी । अचिन्तित सुख या दुःख की प्राप्ति में भाग्य ही कारण माना जाता है ।

अति लालसा बसहि मन माही । नाउँ गाउँ बूझत सकुचाही ॥

जे तिन्ह भहुँ बय बिरिध सयाने । तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने ॥२॥

अर्थ : उन लोगों के मन में बड़ी लालसा हो रही थी । फिर भी नाम ग्राम पूछने में सङ्कोच होता था । उनमें जो सयाने चतुर रहे उन्होंने युक्ति लगाकर रामजी को पहिचान लिया ।

व्याख्या : जिसके देखने से मन को इतना सुख मिल रहा है उनके नाम और पता जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है । पर पूछने में सङ्कोच होता है ।

महामहिम पुरुष से सामान्य पुरुष को ऐसा प्रश्न करने में सङ्कोच होता ही है। पर जानने की अभिलाषा प्रबल है। उनमें जो ज्ञानवृद्ध थे उन्होंने युक्ति से पहिचाना।

चतुर हैं। उनका संसार देखा हुआ है। पर ऐसे बटोही तो नहीं देखे। निश्चय राजकुमार है। पर मुनिवेष बनाये हुए हैं। राजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को वन दिया है। वही राम ये हैं। ऐसा युक्ति से निश्चय किया।

सकल कथा तिन्ह सर्वाहि सुनाई। वनहि चले पितु आयसु पाई ॥
सुनि सविषाद सकल पछिताहो। रानी राय कीन्ह भल नाहो ॥३॥

अर्थ : उन्होंने सब कथा सब लोगों को सुनायी कि पिता की आज्ञा से ये वन को जा रहे हैं। सुनकर सब लोग विषाद के साथ पछताने लगे कि राजा रानी ने अच्छा नहीं किया।

व्याख्या : उन समय लोग रामजी के अभिषेक की तैयारी कैकेयी का वरदान माँगने तथा रामजी का पिता की आज्ञा शिरोधार्य करने की कथा मालूम थी। अतः रामजी के पहिचानने में कठिनाई न हुई और अब उन्होंने सबको वह कथा कह सुनायी कि वे ही रामजी पिता की आज्ञा से वन जा रहे हैं। तब यह सुनकर सबको विषाद हुआ। सब पछताने लगे और राजा रानी को दोष लगाने लगे कि उन लोगों ने अच्छा नहीं किया। यहाँ तक नर का पछताना कहा।

तेहि अवसरु एक तपसु आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा ॥
कवि अलखित गति वेपु विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी ॥४॥

अर्थ : उसी समय में एक तपस्वी आया। जो तेजस्वी सुन्दर और अल्प-वयस्क था। वह गूढ़गति कवि था। उसका विरागी सा वेप था और मनसा वाचा कर्मणा रामानुरागी था।

व्याख्या : जिस समय लोग सविषाद पछता रहे थे उसी समय एक तपस्वी भी आगया। यमुना तीर के आनेवाले नर नारियों में उसकी विशेषता थी। अतः उसकी कथा अलग लिखते हैं।

सरकार अभी यमुना पार उतरे है। यही गुरौली घाट है। जहाँ पर सरकार का उतरना कहा जाता है। राजापुर श्रीगोस्वामीजी का जन्म स्थान यहाँ से बहुत निकट है। यहाँ इष्टदेव का आगमन वर्णन करने में भावावेश से कवि के लिए भूतकाल वर्तमान में परिणत हो गया और आप स्वयं आगये। तेज पुंज से भौतिकता का अभाव कहा। दिव्य मानसिक शरीर से आये : बाल्यपने सूयोमन राम सनमुख भयो। इसी से लघुबयस सुहावा कहा। कवि अलखित गति कहकर गोस्वामीजी स्पष्ट ही अलक्ष्यगति से अपना अर्थात् कहते हैं। श्रीगोस्वामीजी का विरागी वेप था ही। यथा : वेप विराग को राग भरो तनु। मन क्रम वचन श्रीरामजी में अनुराग होना प्रसिद्ध ही है।

दो. सजल नयन तन पुलकि निज, इष्ट देउ पहिचानि ।

परेछ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि ॥११०॥

अर्थ : अपने इष्टदेव को पहिचाकर उसकी आँखों में जल भर आया । रोंगटे खड़े हो गये । दण्ड के समान पृथ्वी तल पर गिर पड़ा । उसकी दशा वर्णन नहीं की जा सकती ।

व्याख्या : इन महात्मा को सरकार के पहिचान करने में युक्ति का सहारा नहीं लेना पड़ा । इन्होंने सीधे सीधे पहिचाना कि जिन तीन मूर्तियों का नित्य ध्यान करता हूँ वे यही तो हैं । यथा : राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर । ध्यान सकल कल्याण मय सुरतरु तुलसी तोर । अत कहते हैं : निज इष्टदेव पहिचानि सात्त्विक भाव हुआ । प्रेम में विभोर होकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरे । शरीर का अध्यास नहीं रह गया । इसलिए कहते हैं दसा न जाइ बखानि ।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रकु जनु पारसु पावा ॥

मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ । मिलत धरे तनु कह सबु कोऊ ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ पुलकित होकर इस भाँति हृदय से लगाया जैसे परम दरिद्र को पारस मिल गया हो । सब लोग कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ शरीर धारण करके मिल रहे हो ।

व्याख्या . भक्त सजल नयन पुलकित तन होकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिरा । भगवान् ने सप्रेम पुलकित तन होकर हृदय से लगा लिया । भक्त की दशा बखानी नहीं जाती । भगवान् की भी ऐसी ही दशा है । महादरिद्र को पारस मिलने से जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द हो रहा है । ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम् ।

परमार्थ को प्राप्त करानेवाला प्रेम है और प्रेम का चाहनेवाला परमार्थ है । अत देखनेवालों ने इस मिलन को देखकर कह दिया कि मानों प्रेम और परमार्थ शरीरधारी होकर मिल रहे हैं । राम ब्रह्म तो परमार्थ रूप हैं ही । इधर भक्त भी प्रेममय हो रहा है । अत ऐसी उपमा दी गयी ।

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा । लीन्ह उठाइ उमंगि अनुरागा ॥

पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा । जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा ॥२॥

अर्थ . तत्पश्चात् वह लक्ष्मणजी के पाँव पड़ा । उन्होंने प्रेम से उमँगकर उठा लिया । तत्पश्चात् सीताजी के चरणों की धूलि सिर पर रखी । माँ ने बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया ।

व्याख्या लक्ष्मणजी के चरण शीतल सुभग भक्त सुखदाया हैं । अतः उन चरणों को प्रणाम किया । उन्होंने भी अनुराग से उठा लिया । उठा लेने का अर्थ ही मिलना है ।

फिर उसने अधिकारानुसार सीताजी के चरणों की धूलि को सिर पर धारण किया। जगदम्बा ने उसका शिशु भाव देखकर आशीर्वाद दिया। इस भाँति वह कृतकृत्य हो गया। यथा : अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिप तौ अमोघ विख्याता।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मेलेउ मुदित लखि राम सनेही ॥
पिअत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा ॥३॥

अर्थ : निषाद ने उसे दण्डवत् किया। उसने रामजी का स्नेही जानकर गले लगाया। वह नेत्ररूपी चपक से सौन्दर्यामृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे सुन्दर भोजन पाकर भूखा प्रसन्न होता है।

व्याख्या : निषादराज ने उसे दण्डवत् किया। उन्होंने गले लगा लिया। निषादराज से पहिले पहल ये ही मिले। इन्होंने राम प्रेम के सामने जाति के अपकर्ष को कुछ न गिना। यथा तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैन दिन राम। ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम। अति ऊँचे भूधरन पै भुजगन्ह के अस्थान। तुलसी नीचे होत हैं ईख अन्न अरु पान।

अब वह तपस्वी आँखों को पान पात्र बनाकर सौन्दर्यरूपी अमृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे भूखा स्वादिष्ट अन्न पाकर प्रसन्न होता है। सरकार के रूप सुधा के पान करने से भक्तिरूपी सुस्वादु अन्न भी करतलगत होता है। यहाँ पर पीने और खाने की द्विविध तृप्ति का वर्णन किया। ये महात्मा तो इस प्रकार आनन्द लूटते रहे। अब नारी समाज का हाल सुनिये।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहि सनेह विकल नर नारी ॥४॥

अर्थ : हे सखि ! वे माता पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालकों को बन भेजा है। राम लक्ष्मण और जानकी के रूप को देखकर नर और नारी स्नेह से विकल हो रहे थे।

व्याख्या : आँखिन में सखि राखिवे जोग इन्हें किमि कै बनवास दयो है। जैसे निषादपति के यहाँ की नर नारियों ने कहा था वैसे ही ये भी कह रही हैं। यह अर्धाली मानस में दो बार आयी है। इन्हें माता पिता के निर्दयता पर आश्चर्य है।

पहिले तो राम लक्ष्मण और सीताजी के रूप को देखकर सब अपने भाग्य को बड़ाई करते थे। परन्तु जब सब कथा जान लिया तब उनके रूप को देखकर स्नेह से विकल होने लगे।

दो. तब रघुबीर अनेक विधि, सखहि सिखावनु दीन्ह।

राम रजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेई कीन्ह ॥१११॥

अर्थ : तब रामजी ने अनेक विधि से सखा को शिक्षा दी । रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके वह घर गया ।

व्याख्या : जब तक सरकार वहाँ थे यमुनातीरवासियों की ऐसी ही दशा थी । सरकार को सङ्ग में किसी का रखना पसन्द नहीं । अतः सखा निपादराज को अनेक प्रकार से शिक्षा दी । मेरा भजन जैसा वियोग में होता है वैसा संयोगावस्था में नहीं होता । अथवा वाल्मीकिजी के आश्रम जाने में कोई बाधक नदी भी नहीं है । हम लोग चले जायेंगे । तुम्हारे साथ रहने में राज सम्बन्ध लगा रहेगा । मेरे उदासीन व्रत में बाधा रहेगी इत्यादि । फिर भी निपाराज को लौटने की इच्छा नहीं । पर रामजी की आज्ञा माननी ही पड़ी और वह घर लौट चला ।

पुनि सिय राम लखन कर जोरी । जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई । रवितनुजा कइ करत बड़ाई ॥१॥

अर्थ : फिर सीता राम और लक्ष्मण ने फिर यमुनाजी को प्रणाम किया । सीताजी के सहित प्रसन्न होकर दोनों भाई सूर्य की बेटी यमुनाजी की महिमा कहते चले ।

व्याख्या : आने के समय प्रणाम नहीं कहा था । इसलिए जाते समय बहोरी पद देकर जनाया कि आने के समय भी प्रणाम किया था । बड़ी श्रद्धा से तीनों प्राणियों ने प्रणाम किया । मुख्य तो नदी की अधिष्ठात्री देवता हैं । जिनके जलमय शरीर को नदी कहा जाता है । आगे कहे हुए रवितनुजा शब्द से यही अर्थ स्पष्ट है ।

यमुना स्नान करके सीता राम और लक्ष्मण सभी प्रसन्न हैं । रास्ते चलते यमुनाजी की महिमा कहते चले । दर्शन करने के समय महिमा कहने का अवसर नहीं मिला था । बहु : गी प्रे । यमुना की महिमा यथा : यमुना ज्यौ ज्यौं लागी बाढन । त्यौ त्यौ सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहु काढन । ज्यौं ज्यौ जलमलीन त्यौं त्यौ जमगन मुख मलीन लहै आढन । तुलसीदास जगदघ जवास ज्यौं अनघ मेघ लागे डाढन : वि प. ।

पथिक अनेक मिलहि मग जाता । कहहि सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राज लखन सब अंग तुम्हारे । देखि सोचु अति हृदय हमारे ॥२॥

अर्थ : रास्ते में जाते हुए अनेक बटोही : राहचलतू मिलते हैं । दोनों भाइयों को प्रेम के सहित देखकर कहते हैं । तुम्हें तो सब राजलक्षण पड़े हैं । देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच है ।

व्याख्या : रास्ते से जा रहे हैं । अतः वन की ओर से आनेवाले पथिकों से भेंट होती है । दोनों भाइयों के दर्शन मात्र से उनके हृदय में प्रेम उमड़ आता है । उनमें सामुद्रिक के पण्डित भी हैं । देखते हैं तो दोनों भाइयों को राजलक्षण पड़े हुए हैं । कोई लक्षण ऐसे नहीं है जिससे इस दशा में पैदल चलें । उनसे बिना कहे नहीं

रहा जाता। वे कहते हैं कि तुम्हें देखकर हमें बड़ा सोच हो रहा है कि लक्षण तुम्हें तो सब राजा के से पड़े हैं।

मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ ॥

अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारी सुकुमारी ॥३॥

अर्थ : पैदल रास्ता चल रहे हो। हमारी समझ में तो ज्योतिष शास्त्र झूठ मालूम पड़ता है। रास्ता दुर्गम है। भारी पर्वत और वन है। तिस पर साथ में सुकुमारी स्त्री है।

व्याख्या : ऐसे लक्षण युक्त पुरुष टहलने भले ही पैदल चले। तीर्थ में पैदल चलें। पर रास्ता पैदल नहीं चलते। हम ज्योतिषी ठहरे। हमारे फलकथन से ज्योतिष शास्त्र सच्चा समझा जाता है। सो जहाँ कुछ लक्षण अच्छे हैं कुछ बुरे हैं वहाँ फल न घटने पर मानना पड़ता है कि दोषगुण के तारतम्य के न समझने से चूक हुई। पर यहाँ तो जितने राजलक्षण हैं सब तुम्हारे में मौजूद है और तुम पैदल मञ्जिल तय कर रहे हो। अतः मेरा हृदय तो अब ज्योतिष को सच्चा मानने के लिए तैयार नहीं है।

मार्ग भी दुर्गम है। बड़े बड़े पहाड़ हैं। भारी जङ्गल हैं। बीच में कोई विश्राम स्थान नहीं। साथ में कोई सहायक नहीं। उलटे सुकुमारी स्त्री साथ में है। तुमलोग इसकी रक्षा करोगे कि अपना प्राण बचाओगे।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम संग चलहि जो आयसु होई ॥

जाव जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुमहि सिरु नाई ॥४॥

अर्थ : हाथी और सिंहों का वन देखते नहीं बनता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप लोग जहाँ तक जायेंगे वहाँ तक पहुँचाकर फिर हम तुम्हें प्रणाम करके लौट आवेंगे।

व्याख्या : फिर वन भी कैसा है कि इसमें हाथी भी हैं। सिंह भी है। अतः बड़ा भयानक है। देखते नहीं बनता। हम उसी में से होते आ रहे हैं। रक्षा के लिए आपके सङ्ग चलने को तैयार हैं। परन्तु बिना आज्ञा सङ्ग चलना भी अनुचित है।

यदि कहिये कि कहाँ तक साथ चलोगे। इसपर कहते हैं कि जहाँ तक आप जायें वहाँ तक साथ चलेंगे। आपको गन्तव्य स्थान तक पहुँचाकर तब लौटेंगे। तुमहि सिरु नाई भाव यह कि इसका एहसान : निहोरा आप पर न होगा। हम अपने को कृतकृत्य मानेंगे।

दो. एहि विधि पूछहि प्रेम बस, पुलक गात जलु नैन।

कृपासिधु फेरहि तिन्हहि, कहि विनीत मृदु वैन ॥११२॥

अर्थ इस भाँति प्रमदश पूछते हैं। उनको पुलक हो जाता है। आँखों में जल आ जाता है। पर कृपासिन्धु सबको विनीत कोमल वचन कहकर लौटा देते हैं।

व्याख्या जो ज्योतिषी है। लक्षण देखकर पहिचानते हैं और जो नहीं लक्षण जानते वे भी रूप देखकर मुग्ध हो जाते हैं। प्रेम में उन्हें पुलकावली हो जाती है। आँखों में जल आ जाता है। सभी साथ जाने को तैयार हो जाते हैं। पर सरकार किसी को साथ नहीं लेते। विनीत और कोमल वचन कहकर लौटा देते हैं। क्योंकि कृपा के समुद्र हैं। समुद्र में जो कुछ डालिये उसे वह स्वीकार नहीं करता। गर्जन पूर्वक बाहर फेंक देता है पर सरकार कृपासिन्धु हैं। अतः विनीत मृदु वचन कहकर प्रार्थना अस्वीकार कर देते हैं।

जे पुर गाँव बसहि मग माही । तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाही ॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये । धन्य पुन्यमय परम सुहाये ॥१॥

अर्थ रास्ते में जो पुर और ग्राम पड़ते थे उनसे ईर्ष्या नागलोक और देवलोक करते थे कि किस पुण्यवान ने किस शुभ घड़ी में ये धन्य और पुण्यमय तथा बड़े सोहावने गाँव बसाये हैं।

व्याख्या यहाँ नागसुरनगर से उनके अधिष्ठात्री देवता अभिप्रत है। जहाँ सरकार जाते हैं वहाँ परमानन्द की बाढ आ जाती है। नागसुरनगर में तो केवल विषयानन्द का प्रचार है। अतः वे ईर्ष्या करते हैं कि ऐसा आनन्द हमारे यहाँ कभी नहीं हुआ।

पुर और ग्राम की विभूति उसके बसानेवाले के पुण्य और बसाने के मुहूर्त पर निर्भर है। क्योंकि वे ग्राम और पुर बसानेवाले के पुत्र स्थानीय हैं। उनके यश को बनाये रहते हैं। उनसे पुण्यानुसार ही उन पुर और ग्रामों की उन्नति होती है। बसाने का मुहूर्त ही उन पुर और ग्रामों का जन्म मुहूर्त है। सो ये ऐसे पुण्यमय हैं कि सरकार का चरण इनकी प्रान्तभूमि में आगया। अतः उन बसानेवाले सुकृतियों और उन पुण्यमुहूर्तों की प्रशंसा करते हैं।

जहँ जहँ राम चरन चलि जाही । तिन्ह समान अमरावति नाही ॥
पुन्यपुज मग निकट निवासी । तिन्हहि सराहि सुरपुरवासी ॥२॥

अर्थ जहाँ जहाँ रामजी के चरण चल जाते हैं उनके समान अमरावती भी नहीं है। रास्ते के निकट के रहनेवाले तो पुण्य के समूह ही हैं। उनकी प्रशंसा सुरपुरवासी करते हैं।

व्याख्या गाँव जा रास्ते में पड़ते हैं उनकी महिमा कहकर जिस स्थल में प्रभु के चरण पड़े उसकी महिमा कहते हैं। जिस भरत ने विधिविस्मयदायक विभव को आँख उठाकर नहीं देखा। वे ही रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहि। तब उसकी महिमा क्या वही जाय। इतना भाग्य इन्द्रपुर का कहाँ ?

स्वर्गवासियो का तो कमाया हुआ पुण्य क्षण क्षण क्षीण होता जाता है । जब सब पुण्य क्षीण हो जाता है तो स्वर्ग से गिरा दिये जाते हैं । मग निकट निवासियो ने तो अपना मन ही सरकार को अर्पण कर दिया । यथा : फिरहि दुखित मन संग पठाई । उनका पुण्य नित्य बढ़ता जा रहा है । वे पुण्यपुञ्ज हैं । अतः उनकी प्रशंसा स्वर्ग-निवासी कर रहे हैं ।

जे भरि नयन विलोकहि रामहि । सीता लखन सहित घनस्यामहि ॥

जे सर सरित राम अवगाहहि । तिन्हहि देव सर सरित सराहि ॥३॥

अर्थ : जो घनश्याम राम को सीता लक्ष्मण सहित आँख भरकर देख रहे हैं । जिस सरोवर और नदी में रामजी स्नान करते हैं उन्हें देवता के सर और सरित प्रशंसा करते हैं ।

व्याख्या : सुरपुरवासियो के प्रशंसा करने का कारण कहते हैं कि इतना भाग्य उनका नहीं है कि आँख भर सीता लक्ष्मण सहित रामजी का दर्शन पा सकें । नित्य-स्नान में सदा नदी नहीं मिलती है । तब सरोवर में स्नान होता है । सरकार सदा अवगाहस्नान करते हैं । कूप स्नान नहीं करते । देवसरि और देवसर मानसरोवर आदि हैं । इनका इतना भाग्य इस समय नहीं है कि सरकार के सर्वाङ्ग प्रक्षालन का सौभाग्य प्राप्त हो । अतः ये सब उन सरित सरोवर की प्रशंसा करते हैं जिनमें सरकार स्नान कर लेते हैं ।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहि जाई । करहि कल्पतरु तासु बड़ाई ॥

परसि राम पद पदुम परागा । मानति भूमि भूरि निज भागा ॥४॥

अर्थ : जिस पेड़ के तले सरकार जाकर बैठते हैं । उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष करता है । रामजी के चरण की धूलि का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा भाग्य मानती है ।

व्याख्या : सूर्यमण्डल के मध्य में चन्द्रमण्डल और उसके मध्य में अग्निमण्डल है और उसके भी मध्य में कल्पवृक्ष के नीचे दिव्य सिंहासन पर सरकार के ध्यान की विधि है । सो आज वही सरकार उस कल्पवृक्ष का अनादर करके साधारण वृक्ष के नीचे श्रमापनोदन के लिए जा बैठे हैं । अतः उस वृक्ष की बड़ाई कल्पवृक्ष करता है । जिसे कभी सरकार के श्रमापनोदन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ ।

सौभाग्य की हजारों मुहर तो पृथ्वी पर ही लग रही है । ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत वंटक किन लहे । इन चिह्नों से पृथ्वी अङ्कित हो रही है । जो चरण अज शंकर से वन्दित है उनके स्पर्श का सौभाग्य दिन रात हो रहा है । अतः भूमि का अपना भूरि भाग्य मानना प्राप्त ही है ।

दो. छाँह करहि घन विबुधगन, बरखाहि सुमन सिंहाहि ।

देखत गिरि बन बिहंग मृग, रामु चले मगु जाहि ॥११३॥

अर्थ : मेघ छाया करते और देवता फूल बरसाते और बड़ाई करते हैं। पर्वत वन पक्षी और मृगों को देखते हुए रामजी रास्ते में चले जा रहे हैं।

व्याख्या : अद्भुत शोभा है। पृथ्वी मङ्गलमयी हो रही है। आकाश से मेघ छाया करते चले जाते हैं। देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। सरकार पर्वत वन पक्षी मृगों को देखते हुए चल रहे हैं। वन यात्रा वन विहार हो रहा है। देवता लोग इस आनन्द को देखकर स्वर्ग सुख को तुच्छ मान रहे हैं। देवलोक में दो बड़े दोष हैं। एक ईर्ष्या और दूसरा गर्व। ये लोग दूसरे के सुखोत्कर्ष देखकर ईर्ष्या करते हैं और अल्पसुख देखकर गर्व करते हैं। उसी स्वभावानुसार इन्हें पृथ्वी पर के आनन्द को देखकर ईर्ष्या हो रही है।

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहि जाई ॥

सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहि तुरत गृहकाज बिसारी ॥१॥

अर्थ : जब सीता और लक्ष्मण सहित रामजी किसी गाँव के निकट निकलते थे तो सुनते ही सब बालक वृद्ध नर और नारी घर का कार्य भूलकर तुरन्त चल पड़ते थे।

व्याख्या : ग्राम के मध्य से नहीं जाते। वन में से जब मैदान में निकल आते थे तो खेतिहरों की दृष्टि पड़ी। यह अलौकिक शोभा देखकर उन्होंने दौड़कर गाँव में खबर दिया। अवस देखिये देखन जोगू।

बालक वृद्ध गृह कार्य से विनिर्मुक्त हैं। अतः पहिले बालक चले। पीछे से बूढ़े चले। नरनारी अर्थात् युवक युवती गृहकार्य में लगे हैं। उन्होंने भी कार्य छोड़ा। समाचार देनेवाले के शब्द में ऐसी शक्ति आगयी है कि सुननेवाला घर का काम छोड़ देता है।

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहि सुखारी ॥

सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा ॥२॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीताजी को देखकर नेत्र होने के फल को पाकर सुखी होते थे। उनके नेत्रों में जल आगया। शरीर पुलकित हो उठा। सब दोनों वीरों को देखकर मग्न हो गये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण पर दूर से ही दृष्टि पड़ी और सीताजी पर निकट आने पर। स्त्री पर विशेष रूप से दृष्टि न देना भारत की प्राचीन सभ्यता है। राम लक्ष्मण को दूर से ही देखते चले आते हैं। निकट आने पर सीताजी पर दृष्टि पड़ी। इसलिए राम लखन को पहिले कहा। दर्शन पाते ही शोकरहित हो गये। आँख होने का फल मिल गया। विशोक होना ही जन्म का फल है। अतः वे सुखी हो गये।

दोनों भाइयों का दर्शन चित्त देकर कर रहे हैं। अतः उसी आनन्द में मग्न हो गये। सात्त्विक भाव हो गया। आँखों में आँसू डवडवा आया और शरीर पुलकित हो उठा।

वरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी ॥
एकन्ह एक बोलि सिख देही । लोचन लाहु लेहु छन एही ॥३॥

अर्थ : उनकी दशा वर्णन करते नहीं बनता । जैसे कङ्गालो को चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय । एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते हैं कि इस क्षण नेत्रों का लाभ ले लो ।

व्याख्या : उनकी दशा कहने योग्य नहीं सब होश के बाहर हो रहे हैं । कङ्गाल को रोटी दुर्लभ उन्हें मानो चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय ऐसी दशा सबकी हो रही है । एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते हैं । अवलोकहु भरि नयन विकल जनि होहु करहु सुविचार । धैर्य धारण करके इस क्षण दर्शन करके नेत्र होने के फल को प्राप्त करो । ये बहुत शीघ्र आँख के ओट हो जायेंगे तब पछतावा रह जायगा कि आँख भर देख न पाये ।

रामहि देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहि संग लागे ॥
एक नयन मग छवि उर आनी । होहि सिथिल तन मन बरवानी ॥४॥

अर्थ : रामजी को देखकर किसी को ऐसा प्रेम हुआ कि देखते हुए साथ लगा चला जा रहा है । कोई नेत्र के मार्ग से छवि को हृदय में लाकर मनसा वाचा कर्मणा शिथिल हो गया ।

व्याख्या : पहिले ही कह आये हैं 'सुनि सब बाल वृद्ध नरनारी । चलहि तुरत गृह काज बिसारी । अतः' पहिले बालको की दशा कहते हैं कि उन्हें रामजी को देखकर बड़ा प्रेम हुआ । अतः उन्हें देखते रहने के लिए बाल्यावस्थानुसार उन्हें देखते हुए साथ चले जा रहे हैं । तत्पश्चात् वृद्धा की दशा कहते हैं कि वे सरकार की मनोमयी मूर्ति हृदय में लाकर शिथिल हो गये । उनका तन मन वाणी कोई काम नहीं करती है ।

दो. एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृण पात ।

कहहि गँवाइअ छिनुकु श्रमु, गवनव अवहि कि प्रात ॥११४॥

अर्थ : कोई बट की अच्छी छाया देखकर कोमल तृण और पत्ते बिछाकर कहता है कि क्षण भर यहाँ आराम कर लीजिये अभी जाइयेगा या कल प्रात काल ।

व्याख्या : अब नर युवा का हाल कहते हैं कि उसने देख लिया कि वन में से आ रहे हैं । उसमें विश्राम का स्थान नहीं है । अतः दौडकर पहिले ही रास्ते में के बरगद के पेड को देखा कि यहाँ शीतल छाया है । उनके विश्राम योग्य है । सो थोड़े से कोमल तृण और पत्ते आसन के लिए बिछा दिये । जब रामजी बट के समीकट गये तब वहा कि यहाँ क्षण भर आराम कर लीजिये । आपको जल्दी जाना है कि प्रात बाल तक ठहरियेगा ? उसकी हार्दिक इच्छा है कि रात भर ठहर जायें ।

एक कलस भरि आनहि पानी । अंचइअ नाथ कहहि मृदु बानी ॥
सुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुमील विसेखी ॥१॥

अर्थ कोई घड़ा भरकर पानी लाता है और मीठी वाणी से कहता है ।
नाथ । जल पी लीजिये । प्रिय वचन सुनकर और अत्यन्त प्रीति देखकर कृपा
रामजी जो विशेष सुशील है ।

व्याख्या अब नारी की व्यवस्था कहते हैं कि घड़े में जल लेकर पहुँच गया
और मीठी वाणी से कहने लगी कि नाथ । थोड़ा जल पी लिया जाय । सरकार
प्रिय वचन सुना और उनका प्रेम देखा कि विश्राम के लिए स्थान भी ठोक कर
रक्खा है । आसन के लिए कोमल तृण और पत्ते भी बिछे हैं । जल भी प्रस्तुत है
मीठी वाणी से स्वीकार करने के लिए प्रार्थना भी करते हैं । निदान आतिथ्य का
देशकालानुसार पूरी तैयारी है । रामजी स्वभाव से ही कृपालु है और विशेष सुशील
है । इनसे शील छोड़ते नहीं बनता ।

जानी श्रमित सीय मन माही । घरिक विलवु कीन्ह बट छाही ॥
मुदित नारि नर देखहि सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥२॥

अर्थ मन में सीताजी को थकी हुई जानकर बट की छाया में लगभग एक
घड़ी के विश्राम किया । प्रसन्न होकर नर नारी शोभा देखने लगे । अनूपरूप ने उनके
मन को लुभा लिया ।

व्याख्या चौथी बात यह कि यद्यपि सीताजी ने कुछ न कहा । पर सरकार
ने मन में जान लिया कि ये थकी हुई हैं । इसलिए वरगद की छाया में ठहर गये
ग्रीष्मकाल में बट की छाया शीतल होती है । लगभग एक घड़ी के वहाँ विश्राम किया ।

लोगों को स्थिर होकर शोभा देखने का अवसर मिल गया । अतः बड़े प्रसन्न
होकर देखने लगे । ऐसा अनुपम रूप कभी देखा नहीं था । इसलिए नेत्र और मन
लुब्ध हो गये । वहाँ से हटाये नहीं हटते । किसी भाँति तृप्ति नहीं होती ।

एकटक सब सोहहि चहुँ ओरा । रामचन्द्र मुख चंद चकोरा ॥
तरुन तमाल वरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मनु मोहा ॥३॥

अर्थ सब एकटक चारों ओर शोभित हुए । रामचन्द्र के मुखचन्द के लिए
उनकी आँखें चकोर हो गयी । नये तमाल के रंग की सी शरीर की शोभा थी ।
जिसके देखते हुए करोड़ों कामदेवों का मन मोहित हो जाता था ।

व्याख्या नयन और मन का लोभ दिखलाते हैं कि सबों ने चारों ओर से
घेर लिया और पलक पड़ना बन्द करके देख रहे हैं । रामजी की शोभा से वे भी
शाश्वत हो रहे हैं । चारों ओर से चन्द्रमा की घेरकर देखने में चकोरा की भी शोभा
हो जाती है । यथा मुनि समूह मह बैठे सनमुख सबकी ओर । सरद इंदु तन चितवत
पान्थन निवृत्त चकार ।

नये तमाल वृक्ष से श्यामता की उपमा दी गयी है। रामजी का वर्ण श्याम है इससे तरुण तमाल से उपमित किया। परन्तु लावण्य इतना है कि कोटि काम का मन मोह जाय। विचारे ग्रामवासियों का मोहित होना कौन सी बड़ी बात है।

दामिनि वरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जीके ॥

मुनि पट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहि कर कमलनि धनु तीरा ॥३॥

अर्थ • विजली ऐसे वर्णवाले लक्ष्मणजी अत्यन्त भले लगते थे। नख से लेकर शिख तक उनकी सुन्दरता मन को बड़ी प्यारी लगती थी। वल्कल वसन से कमर में तरकस कसा हुआ था और हाथों में धनुष बाण शोभायमान थे।

व्याख्या • गौरवर्ण और दीप्तिमान होने से लक्ष्मणजी की उपमा विजली से देते हैं। नख से शिख तक अवयव सगठन ऐसा है कि मन को बड़ा प्यारा लगता है। दोनों मूर्तियों का रूप पृथक् पृथक् वर्णन करके अब वेप का एक साथ ही वर्णन करते हैं कि यद्यपि वल्कल वसन पहने हैं। पर कमर में तरकस कसा हुआ है। हाथों में धनुष और बाण है। वन में से आ रहे हैं। अतः एक बाण तरकस से निकालकर हाथ में लिये हुए है खतरा का सामना करने के लिए।

दो जटा मुकुट सीसन्हि सुभग, उर भुज नयन विसाल।

सरद परव विधु बदन वर, लसत स्वेद कन जाल ॥११५॥

अर्थ • मस्तको पर सुन्दर जटा के मुकुट विशाल वक्ष स्थल भुजा और नेत्र शरदपूनों के चन्द्रमा से श्रेष्ठ मुखों पर पसीने के बूंदों का जाल शोभायमान था।

व्याख्या जटा के जूट उनके सिरों पर मुकुट की भाँति शोभा दे रहे हैं एवं वेप तो मुनियों सा है। पर उर भुज नयन का विशाल होना वीरता द्योतित कर रहा है। और शरदपूनों के चाँद से मुखों पर पसीने की बूंदों का जाल शृङ्गार को स्थान दे रहा है। यथा श्रमकन सहित श्याम तनु देखें। कहें दुख समझ प्राणपति पेखें। इस भाँति शान्त वीर और शृङ्गार रस तीनों का मेल इस झाँकी में दृष्टिगोचर हो रहा है।

बरनि न जाय मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥

राम लखन सिय सुदरताई। सब चितवहि चित मन मति लाई ॥१॥

अर्थ • मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता। शोभा बहुत है। मेरी बुद्धि थोड़ी है। राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को सब चित्त मन और बुद्धि लगाकर देख रहे हैं।

व्याख्या यहाँ सीताजी की शोभा का वर्णन कवि ने अनधिकार के कारण नहीं किया। कहते हैं कि राम लक्ष्मण की जोड़ी का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। क्योंकि मेरी बुद्धि थोड़ी है। उसमें यह अपार शोभा समाती नहीं। जो वस्तु बुद्धि में नहीं समाती उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है?

जो लोग उस शोभा को देख रहे हैं। उनकी अवस्था वर्णन से शोभा को महत्ता को समझिये। वे लोग राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को मन बुद्धि चित्त लगाकर देख रहे हैं। यहाँ चार अन्त करणों में केवल तीन का उल्लेख है। अहंकार का उल्लेख नहीं है। क्योंकि उसका पता ही नहीं। सब अपनपनी को भूले हुए हैं।

थके नारि नर प्रेम पिघासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से ॥
सीय समीप ग्रामतिय जाही। पूछत अति सनेह सकुचाही ॥२॥

अर्थ : प्रेम की प्यास से स्त्री पुरुष ऐसे थके जैसे मृगी मृग दीपक को देखकर थकित हो जाते हैं। सीताजी के पास गाँव की स्त्रियाँ जाती हैं और अति स्नेह से पूछने में सकुचाती हैं।

व्याख्या : प्रेम की प्यास मिटती ही नहीं बढ़ती ही जाती है। सरकार को देख रहे हैं। पर ऐसी इच्छा है कि यों ही देखते ही रहे। मृग और मृगी को दीपक देखने का अवसर नहीं मिलता। यदि मिल जाय तो वे निश्चल होकर देखा ही करें। उनके दीपक प्रेम की प्यास नहीं बुझती।

ग्राम की स्त्रियाँ प्रेम से सीताजी के पास पहुँच गयी। प्रेमवश सबका परिचय पूछना चाहती हैं। प्रयोजन कुछ बतला नहीं सकती। पर जानने की अभिलाषा है। अतः पूछने में सङ्कोच है।

बार बार सब लागहि पाए। कहहि वचन मृदु सरल सुभाए ॥
राजकुमारि विनय हम करही। तिय सुभाय कछु पूछत डरही ॥३॥

अर्थ बार बार सब पाँव पड़ती हैं और कोमल वचन सुन्दर भाव से पूछती हैं। हे राजकुमारी। मैं विनती करती हूँ। पर स्त्री स्वभाव के कारण पूछते डरती हूँ।

व्याख्या अविनय के क्षमापन के लिए बार बार पाँव पड़ती हैं। पूछत अति सनेह सकुचाही से मनसा प्रेम कहते हैं। बार बार सब लागहि पाएँ से कर्मणा प्रेम कहते हैं। कहहि वचन मृदु सरल सुभाए से वचसा प्रेम कहते हैं। सुन्दर भाव से मृदु सरल वचन कहती हैं। स्वरूप देखकर ही समझ गयी कि ये राजघराने की हैं। अतः राजकुमारी कहकर सम्बोधन करती हैं। कहती हैं कि मेरी विनती यही है कि मैं कुछ पूछना चाहती हूँ। स्त्री स्वभाव से पूछने में डर लगता है। कही आप अप्रसन्न न हो जायें कि तुम्हें इन बातों से क्या प्रयोजन ?

स्वामिनि अविनय छमवि हमारी। विलगु न मानवि जानि गँवारी ॥
राजकुअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तेलहि दुति मरकत सोने ॥४॥

अर्थ : हे स्वामिनि ! मेरी ढिठाई क्षमा करना । गँवारी जानकर नाराज न होना । ये दोनों राजकुमार स्वभाव से लावण्यधाम हैं । नीलम और सोने ने इन्हीं से चमक पायी है ।

व्याख्या : राजकुमारी होने से स्वामिनि सम्बोधन करती हैं । यह मेरा अविनय है जो मैं नाता सम्बन्ध पूछती हूँ । मेरा क्या अधिकार है जो पूछूँ । पर मैं गँवारी हूँ । मैं नहीं जानती कि क्या और कैसे पूछा जाता है । मेरे गँवारपन के पूछने से अप्रसन्न न होना ।

भगवती दोनों भाइयों से कुछ हटकर बैठी है । अतः उनसे पूछती है कि राजकुँवर दोउ बड़े ही सुन्दर हैं । नीलम को और सोने की द्युति इनके तेज के आगे फीकी है । इनके विषय में मुझे बड़ी उत्सुकता है ।

दो. श्यामल गौर किसोर वर, सुंदर सुखमा अयन ।

सरद सर्वरीनाथ मुख, सरद सरोरुह नयन ॥११६॥

अर्थ : ये श्यामल गौर किशोर अत्यन्त सुन्दर और परम शोभा के निवास-स्थान हैं । शरदचन्द्र ऐसा इनका मुख है और शरत् कमल ऐसी आँखें हैं ।

व्याख्या : श्यामल गौर से वर्ण कहा । किशोर वर से अवस्था कही । सुन्दर सुखमा अयन से शोभा कही । शोभा की मर्यादा मुख और नेत्र ही हैं । सो शरदचन्द्र से तो मुख हैं और शरत् के कमलों सी आँखें हैं । यद्यपि श्यामल गौर कहने से ही काम चल जाता । परन्तु वह शोभा पर इतनी लुब्ध है कि जैसा उससे हो सकता है पूरा वर्णन कर रही है ।

कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ॥

सुनि सनेहमय मंजुल वानी । सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥१॥

अर्थ : हे सुमुखि ! ये करोड़ों कामदेव के लजानेवाले तुम्हारे कौन हैं । प्रेम से पूर्ण सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सङ्कुचित हुई और मन में मुसकुरायी ।

व्याख्या : सुमुखि सम्बोधन का भाव यह कि श्यामल गौर किशोर ही सुन्दर नहीं है । तुम भी सुन्दरी हो । अतः कहती हैं कि मुझे सम्बन्ध जानने की उत्कण्ठा हुई है । काम में ही सौन्दर्य की पराकाष्ठा मानी गयी है । सो ये तो करोड़ों काम-देव के लजानेवाले हैं । ये तुम्हारे कौन हैं ? यही मैं जानना चाहती हूँ । भाव यह है कि बिना सम्बन्ध के तो स्त्री अकेली साथ जा नहीं सकती । अतः ग्राम-वधूटियाँ कुछ सम्बन्ध का अन्दाज कर रही हैं । वह अन्दाज ठीक है कि नहीं इसीलिए पूछती हैं । राम जानकी की शोभा ही ऐसी है कि इसमें दाम्पत्य भाव का होना देखनेवाले को इष्ट हो जाता है । यथा . जेहि बिरचि रचि सीय सँवारी । तेहि श्यामल वर रचेउ विचारी । जौं विधिअस अस बने सँजोगू । तौ वृत्तकृत्य होहि सब लोगू ।

स्पष्ट शब्दों में यह कहने में कि ये मेरे पति हैं स्त्रियों को सङ्कोच होता

ही है। फिर जानकीजी से आज तक ऐसा प्रश्न किसी ने किया ही नहीं था। अतः सङ्कुचित हुई और मनमें मुसकुरायी कि इस स्नेहमय सुन्दर वाणी की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः कहना ही पड़ा।

तिन्हहि विलोकि विलोकति धरनी । दुहुँ सकोच सकुचति वरवरनी ॥
सकुचि सप्रेम वाल मृग नयनी । बोली मधुर वचन पिक वयनी ॥२॥

अर्थ उन्हें देखकर पृथ्वी की ओर देखने लगी। सुन्दर वर्णवाली सीताजी दोनों सङ्कोचों से सङ्कुचित हुई। मृग के वच्चे सी आँखें हैं जिसकी ओर कोयल सी जिसकी वाणी है। ऐसी जानकीजी मधुर वचन बोली।

व्याख्या • सङ्कोच के समय वर्ण में दीप्ति अधिक हो जाती है। अतः वरवरनी विशेषण दिया। उनकी ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखने लगना सङ्कोच की मुद्रा है। पति के सामने उनके साथ सम्बन्ध का परिचय देने में भी सङ्कोच है और ऐसे प्रेम से पूछी हुई बात का उत्तर न देने में भी सङ्कोच है। अतः सीताजी दोनों सङ्कोचों से सङ्कुचित हो रही हैं।

नेत्र चञ्चल हो रहे हैं। इसलिए बालमृगनयनी विशेषण दिया। स्वभाव से ही बड़ा मधुर स्वर है। अतः पिकवयनी विशेषण दिया। ऐसी जानकीजी सङ्कोच और प्रेम से मधुर वचन बोली।

सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि वदनु विधु अचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौह करि बाँकी ॥३॥

अर्थ • स्वभाव से ही सुन्दर भाव वाले और गौर शरीरवाले का नाम लक्ष्मण है। ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर मुखचन्द्र को अञ्चल से ढककर और भौहे को टेढ़ी करके प्रिय की ओर देखकर।

व्याख्या भगवती सीताजी कहती हैं कि स्वभाव से भी सुन्दर शरीर से भी सुन्दर गौरवर्णवाले मेरे छोटे देवर हैं। अर्थात् इनसे बड़े भी एक देवर हैं। इनका नाम तो लक्ष्मण है। अप्रसक्त होने से भरतजी का नाम नहीं लिया। अब रामजी को अपना पति कहना है और कहने में सङ्कोच है। स्त्रियाँ पति का नाम नहीं लेती। सो पहिले देवर का परिचय नाम लेकर देने से और बाद उनके नाम न लेने से ही बहुत कुछ कह दिया। नाम लेने के स्थान पर पति की ओर देखा। परिचय देने में सङ्कोच द्योतित करने के लिए मुखचन्द्र को अञ्चल से ढककर देखा।

खंजन मजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ॥
भई मुदित सब ग्रामवधूटी । रकन्ह राय रासि जिमि लूटी ॥४॥

अर्थ खञ्जन सी आँखों को तिरछा करके सीताजी ने उन्हें इशारे से बतला

दिया कि ये हमारे पति हैं। गाँव की सब स्त्रियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं मानो उन्होंने सर्वोत्तम राशि लूट ली।

व्याख्या एक तो भगवती की आँखें स्वभाव से ही खञ्जन सी सुन्दर हैं। तिस पर भौंह टेढ़ी करके तिरछी निगाह से रामजी की ओर देखा। भाव यह है कि कुलवधू के टेढ़ी भौंह और तिरछी निगाह के पात्र उनके पति ही होते हैं। अतः इस इङ्गित से उन्हें अपना पति बतला दिया। मनचाही बात मालूम पड़ने से सब ग्राम की स्त्रियाँ बड़ी प्रसन्न हुईं। मानो लूट में सर्वोत्तम राशि छेर उन्हीं के हाथ लग गयी।

दो अति सप्रम सिय पाय परि, बहुविधि देहिं असीस।

सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि सीस ॥११७॥

अर्थ अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पाँव पकड़कर बहुत भाँति से आशीर्वाद देती हैं कि जब तक पृथ्वी शेष के सिर पर हैं तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो।

व्याख्या ग्राम की स्त्रियो को बड़ा आनन्द हुआ। अतः अति प्रेम से सीताजी के पाँव पड़ती हैं। नीच जाति की हैं। अतः पाँव भी पड़ती हैं और आशीर्वाद भी देती हैं। स्त्रियो के लिए भारत में सौभाग्य का ही आशीर्वाद सबसे बड़ा माना जाता है। अहि महि सीस कहकर युगलजोड़ी के चिरञ्जीवी रहने की कामना द्योतित की।

पारवती मम पति प्रिय होहु। देवि न हम पर छोडव छोहु ॥

पुनि पुनि विनय करिअ कर जोरी। जौ एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥१॥

अर्थ पार्वती के समान पति को प्रिय होओ। हे देवि! हम पर से छोड़ न हटाना। बार बार हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि यदि आपका इसी रास्ते से लौटना हा।

व्याख्या पति का प्रेम होना भी सोहाग है। यथा मानो मुख देखरावनी दुलहिन करि अनुराग। सास सदन मन ललन हू सौतिन्ह दीन्ह सोहाग। अतः दूसरे प्रकार के सोहाग का भी आशीर्वाद देती हैं कि पार्वती के समान पति को प्यारी हो शिवजी ने पार्वतीजी को अपने आधे शरीर में मिला लिया। इसीलिए सती से उपमा नहीं दिया। वे अन्त में प्रिय न रह सकी। आशीर्वाद देकर विनती भी करती हैं। जान गयी थी, कि सीताजी का हम पर छोड़ हैं। अतः उस छोड़ का बनाये रखने के लिए विनय है।

बार बार विनय करती हैं। हाथ जोड़कर कहती हैं कि यदि आपका लौटना इसी मार्ग से हो जिस मार्ग से आप जा रही हैं।

दरसनु देव जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी ॥

मधुर वचन कहि कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी ॥२॥

अर्थ तो अपनी दासी जानकर दर्शन देना । सीताजी ने लखा कि इन सगो को प्रेम की प्यास है । सो उन्हे मधुर वचन कहकर ऐसा सन्तुष्ट किया जैसे चाँदनी कुमुदिनी को पुष्ट करती है ।

व्याख्या पहिले ही स्वामिनि सम्बोधन करके उन सबो ने सेव्य सेवक भाव का नाता जोड़ रक्खा है । अत कहती हैं कि जैसे हम लोग आपको स्वामिनी जानती है वैसे ही आप हम लोगो को दासी जानकर लौटते समय दर्शन दीजियगा । हम लोगो के लिए अपनी सुविधा छोड़कर आप इधर स ही लौटें यह हम नही चाहती क्योंकि ऐसी प्रार्थना सेवक धर्म के विरुद्ध है ।

भगवती चन्द हैं । उनकी मधुर वाणी चाँदनी है । सो जैसे चाँदनी कुमुदिनी का परितोष करती है कुमुदिनी खिल उठती है उसी प्रकार से सीताजी के मधुर वचन से उनकी प्रेम की प्यास शान्त हुई । वे सन्तुष्ट हो गयी ।

तबहि लखन रघुवर रुख जानी । पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु वानी ॥
सुनत नारि नर भये दु खारी । पुलकित गात विलोचन वारी ॥३॥

अर्थ तब लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख जानकर लोगो से कोमल वाणी द्वारा रास्ता पूछा । सुनते ही स्त्री पुरुष सब दु खी हो गये । उनको रोमाञ्च हो गया । नेत्रो मे जल भर आया ।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने रामजी के रुख से लख लिया कि सरकार की अब चलने की इच्छा है । सीताजी और ग्रामवधूटियो का सम्वाद भी समाप्त हो चुका था । अत मृदु वाणी से वाल्मीकिजी के आश्रम का रास्ता लोगो से पूछा । सुनते ही स्त्री पुरुषो ने समझ लिया कि अब जाना चाहते हैं । पुलकित होना और सजलनयन होना सात्त्विक भाव है । यह दु ख मे भी होता है । सुख मे भी होता है । यहाँ पर दु ख से पुलक हुआ । इसलिए दु खारी शब्द भी लिख दिया ।

मिट्टा मोदु मन भये मलीने । बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने ॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा । सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥४॥

अर्थ हर्ष मिट गया । मन मिलन हो गया । मानो विधाता निधि देकर अब छीने लेते है । कर्मगति समझकर धैर्य धारण किया और उन लोगो न विचार करके सुगम रास्ता बतला दिया ।

व्याख्या सरकार के दर्शन से वे लोग लहि जनु रकन्हि सुरमनि ढरी । ऐसे प्रसन्न थे जैसे दरिद्रो को चिन्तामणि का ढेर मिल जाय । सो रामजी का चला जाना सोचकर ऐसे दु खी हुए मानो विधाता ने जो निधि दी थी उसे छीने लते है ।

अत धैर्य छूट गया था । पर समझा कि कर्मगति दुर्लभ्य है । इतना ही सुख भाग्य मे था । धैर्य धारण करके विचार किया और सुगम रास्ता बतला दिया ।

दो, लखन जानकी सहित तव, गवनु कीन्ह रघुनाथ ।

फेरे सब प्रिय वचन कहि, लिये लाइ मन साथ ॥११८॥

अर्थ • तब लक्ष्मण और जानकी के सहित रामजी चले । सबको प्रिय वचन कहकर लौटाया । पर उनका मन साथ ले लिया ।

व्याख्या • रघुनाथ हैं । अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हैं । एक वन से दूसरे में घुसते हो चले जाते हैं । ग्रामवासी भी साथ चल । प्रिय वचन कह के उनको लौटा दिया । पर उनके मन को साथ ले लिया । इस बार चित्त की चोरी नहीं की । पहिले की थी । यथा लिये चोरि चित राम बटोही । वे सब साथ चलने को तैयार नहीं थे । इसलिए चोरी करनी पड़ी । ये तो साथ चलने को तैयार थे । अतः केवल उनके मन को साथ लिया । उन्हें लौटा दिया ।

फिरत नारि नर अति पछताही । दैअहि दोषु देहिं मन माही ॥

सहित विपाद परसपर कहही । विधि करतव उलटे सब अहही ॥१॥

अर्थ • लौटते हुए स्त्री पुरुष अत्यन्त पछताते थे । मन ही मन दैव को दोष देते थे । विपाद के साथ एक दूसरे से कहने लगे कि विधाता के करतव सब उलटे ही हैं ।

व्याख्या • रामजी के कहने पर सब लौट पड़े । पर उन्हें पश्चात्ताप हो रहा है कि हम क्यों लौट रहे हैं । यह निधि दर्शन हम लोगों को विधाता ने दी थी । उसे छोड़कर हम घर लौट रहे हैं । यह भी विधि की प्रेरणा ही है । अतः मन ही मन कह रहे हैं कि इसमें भी विधाता का दोष है । लौटना न लौटना उनकी इच्छा की बात थी । इसमें भी विधाता को दोष देने पर लोग क्या कहेंगे । अतः इस मानसिक भाव को प्रकट नहीं करते पर मन में विधाता से अप्रसन्न हैं ।

अतः उस अप्रसन्नता को विधाता के सभी कार्य उलटे होते हैं ऐसा कहकर प्रकट कर रहे हैं । रामजी के वन जाने से दुःखी हैं । अतः एक दूसरे से कह रहे हैं ।

निपट निरकुश निठुर निसकू । जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलकू ॥

रघु कल्प तरु सागर खारा । तेहि पठए वन राजकुमारा ॥२॥

अर्थ • वह बिल्कुल निरकुश निर्दय और निडर है । जिसने चन्द्रमा को रोगी और बलहीन कर दिया । कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारा कर दिया । उसी ने राजकुमारों को वन भेजा ।

व्याख्या : सब दुःखी होकर ब्रह्मदेव को ही बुरा भला कह रहे हैं । कहते हैं : १ निपट निरकुश २ निठुर और ३ निशङ्क हैं । यदि किसी का अङ्कुश उस पर होता तो जगत के आह्लाददायक तथा तापहारक चन्द्रमा को क्षयोः रोगयुक्त तथा बलहीन न करता । यदि कुछ भी दया उसे होती तो कल्पवृक्ष ऐसे उदार को जड़ न बनाता । यदि कुछ भी डर उसे होता तो समुद्र को खारा न बनाता । जब नि छोटी छोटी तलैया कूप आदि भीठे हैं । छोटे जलाशय के जल को पिगाड़नेवाला

अपराधी माना जाता है। जल के इतने बड़े भण्डार को खारा कर देनेवाला कैसे दण्डनीय नहीं है। पर उसे किसी का डर नहीं है। उसी विधाता ने राजकुमारों को वन भेजा है। रामजी को वन देने से निरकुशता सीताजी को वन भेजने से निष्ठुरता और लक्ष्मणजी को वन भेजने से निशङ्कता द्योतित होती है।

जौ पै इन्हहि दीन्ह वनवासू । कीन्ह वादि विधि भोग विलासू ॥

ए विचरहि मग बिनु पदगाना । रचे वादि विधि वाहन नाना ॥३॥

अर्थ यदि विधाता ने इन्हें वनवास दिया तो भोग विलास का निर्माण व्यर्थ ही किया। यदि ये रास्ते में नगे पाँव चल रहे हैं तो विधाता ने अनेक प्रकार के वाहन व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या सब वस्तुओं के लिए अधिकार अपेक्षित है। भोग विलास का इनसे बढ़कर अधिकारी कौन है। इन्हें भोग विलास करते हुए देखकर ससार को सुख होगा। क्योंकि ये प्रिय सर्वाङ्ग जहाँ लगी प्राप्ति और इनको वन जाते देखकर लोग दुःखी होंगे। यथा जो सुनि सकल विस्व भइ सूला। अतः ऐसे अधिकारी को वन दिया तो विधाता का भोग विलास निर्माण ही व्यर्थ है।

ये वाहन पर निकलते तो देखकर ससार सुखी होता। इन्हें नङ्गे पाँव चलते देखकर किसका कलेजा नहीं फटेगा। यथा राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनि वेपु फिरहि वन बनही। एहि दुःखदाह दहइ दिन छाती। भूख न वासर नीद न राती। अतः विधाता का नाना प्रकार के वाहन की रचना ही व्यर्थ है।

ए महि परहि डसि कुस पाता । सुभग सेज कत सृजत विधाता ॥

तरुतर वास इन्हहि विधि दीन्हा । धवल धामु रचि रचि श्रमु कीन्हा ॥४॥

अर्थ जब ये कुश और पत्ते विछाकर पृथ्वी पर ही पड़ जाते हैं तो सुन्दर सेज विधाता ने क्यों बनाये है। जब विधाता ने इनके लिए पेड़ तले रहना नियत किया तो उज्ज्वल प्रासाद महल रच रचकर केवल परिश्रम के भागी हुए।

व्याख्या इन्हें कुश पत्ते विछाकर जमीन पर सोते देखकर किसे दुःख न होगा। यथा भयउ विषाद निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी। सुन्दर सेज की शोभा तो इन्हीं के सोने से हो सकती है। यथा जहाँ सिय राम सयन नित करही। निज छवि रति मनोज मन हरही। अतः ब्रह्मा द्वारा सुन्दर सेजों का बनाया जाना ही व्यर्थ हो गया।

उज्ज्वल प्रासादों में ही इनका निवास उचित था। जब विधाता ने इन्हें तरुतर वास दिया तब धवल धाम की आवश्यकता न रह गयी। उनके बनाने में विधाता को श्रम ही हाथ लगा। फल कुछ न हुआ।

दो जौ ये मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार ।

विविध भाँति भूषन वसन, वादि किये करतार ॥११९॥

अर्थ . यदि ये अत्यन्त सुन्दर सुकुमार बल्लक पहिने और जटा रखाये हैं तो अनेक प्रकार के भूषण वसन विधाता ने व्यर्थ ही बनाये ।

व्याख्या . सुन्दर सुकुमारो के लिए मुनिपट और जटा नहीं है । मुनिपट और जटा तो उनके लिए है जो तप के लिए सब भोग त्यागे हुए हैं । इनके लिए अनेक प्रकार के भूषण वसन चाहिए जिससे उन भूषण वसनो की शोभा हो । इनके जटा बल्लक धारण करने पर विधाता का भूषण वसन की रचना ही निष्प्रयोजन है ।

जो ए कद मूल फल खाही । बादि सुधादि असन जग माही ॥
एक कहहि ए सहज सुहाये । आपु प्रगट भए विधि न बनाये ॥१॥

अर्थ : यदि ये कन्द मूल खा रहे हैं तो ससार में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही है । एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं । ये आप ही प्रकट हुए हैं । इन्हें ब्रह्मा ने नहीं बनाया है ।

व्याख्या . ये अमृत आदि भोजन करने योग्य हैं । इन्हें यदि कन्दमूल फल खिलाना रहा तो अमृतादि भोजन किमके लिए बनाये ? भावार्थ यह कि जितने छ प्रकार के दुख ऊपर गिना आये हैं वे सब वनवास के ही दुख के अन्तर्गत हैं । ऐसे पुरुष को वनवास देने से विधाता को कौन सी फलसिद्धि हुई ?

इस पर एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं । स्वयम्भू हैं । स्वयं प्रकट हो गये । ये ब्रह्मदेव के बनाये नहीं हैं ।

जहं लगि वेद कही विधि करनी । श्रवण नयन मन गोचर बरनी ॥
देखहु खोजि भुवन दस चारी । कहं अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥२॥

अर्थ जहाँ तक वेदों ने ब्रह्मदेव की करणी बतलायी है जो श्रवण नयन और मन का विषय है उसे खोजो । चौदहो भुवन खोज डालो । कहाँ ऐसे पुरुष हैं और कहाँ ऐसी नारी है ।

व्याख्या : यह पण्डितों का गाँव मालूम होता है । यहाँ वेद के जानकार मौजूद हैं । कहते हैं कि श्रवण नयन मनगोचर जो कुछ विधि की करणी है सब में दोष का अनुवेद्य है । यथा : त्रिधि प्रपञ्च गुण अवगुण ताना । ये निर्दाप उसमें कहाँ से आगये ? चौदहो भुवन खोजकर देखो । न वही ऐसे पुरुष हैं न ऐसी नारियाँ ही वही हैं । ऐसे लोगो को वन क्यों दिया ?

इन्हि देखि विधि मनु अनुरागा । पटतर जोगु बनावइ लागा ॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए । तेहि इरिषा बस आनि^१ दुराए ॥३॥

अर्थ : इन्हें देखकर विधाता के मन में बड़ा प्रेम हुआ तो इनके ऐसा दूसरा

१. यहाँ हेतु अविद्यास्पदा उत्पत्ति है ।

वनाने लगे । परिश्रम बहुत किया । पर कोई अन्दाज ही नहीं लगा । उसी ईर्ष्या से इन्हे वन में लेकर छिपा दिया ।

व्याख्या • कलाकार जब कोई अच्छी चीज देखता है और उसे पसन्द आ जाती है तब वह वैसी ही दूसरी बनाने का प्रयत्न करता है । मालूम होता है कि उसी भाँति ब्रह्मदेव ने भी चाहा कि इनके ही ऐसा दूसरा बनावें । सो ब्रह्मदेव ने बहुत उद्योग किया । पर कुछ करते धरते नहीं बन पड़ा । तब उन्हें ईर्ष्या हुई कि लोग कहेंगे कि इन्हे बनाने नहीं आता । बनाने आता तो दूसरा भी ऐसा बनाते । इसलिए इन्हे लाकर वन में छिपा दिया । जिससे लोग इन्हे देख ही न पावे और उनकी रचना शक्ति का आदर बना रहे ।

एक कहहि हम बहुत न जानहि । आपुहि परम धन्य करि मानहि ॥
ते पुनि पुन्य पुज हम लेखे । जे देखहि देखिहि जिन्ह देखे ॥४॥

अर्थ • एक ने कहा कि हम बहुत नहीं जानते । हम तो अपने को परम धन्य मान रहे हैं । हमारे लेखे तो वे भी पुण्यपुञ्ज है जो इन्हे देखते हैं देखेंगे और जिन्होंने देखा है ।

व्याख्या तीसरे ने कहा कि भाई । तुम्हारी कल्पनाशक्ति बड़ी बलवती है । तुम बहुत जानते हो । अच्छा कारण ढूँढ निकाला । पर मैं कार्य कारण के पीछे नहीं पड़ता । मैंने इसका दर्शन पाया । इसी से अपने को धन्य मानता हूँ ।

मैं ही नहीं पहिले जिन्होंने इनका दर्शन किया आज जो कर रहे हैं और भविष्य में जो करेंगे वे भी पुण्यपुञ्ज है । मेरा तो यही मत है ।

दो एहि विधि कहि कहि वचन प्रिय, लेहि नयन भरि नीर ।

किमि चलिहि मारग अगम, सुठि सुकुमार शरीर ॥१२०॥

अर्थ • इस भाँति प्रिय वचन कह कहकर आँखों में आँसू भर लाते हैं कि अत्यन्त ही सुकुमार शरीरवाले ये दुर्गम रास्ते को कैसे पार करेंगे ।

व्याख्या फिरत नारि नर अति पछिताही से उपक्रम करके लेहि नयन भरि नीर से उपसहार करते हैं । यहाँ पर तीन प्रकार से लोग बोले हैं । पहिले के कहने में तमोगुण की झलक आती है । दूसरे में रजोगुण स्पष्ट है । तीसरे में सत्त्वगुण का प्रकाश है । इस भाँति यह सोचकर कि ऐसे सुकुमार शरीर इस दुर्गम रास्ते में कैसे निबहेगे । उन लोगों की आँखा में आँसू आ जाता है ।

नारि सनेह विमल वस होही । चकई साँझ समय जनु सोही ॥

मृदु पद कमल कठिन मगु जानी । गहवरि हृदय कहँहि वर बानी ॥१॥

अर्थ • स्त्रियाँ स्नेह से विक्लता के वश हो जाती हैं । जैसे सायकाल के समय चकई की शोभा हो जाती है । चरण कमल को कोमल और रास्त को कठिन जानकर भर हृदय से अच्छी वाणी बोलती हैं ।

व्याख्या विछोह के समय प्रेमपात्र पर अधिक प्रीति बढ़ जाती है। इसलिए विकलता के वश होना बड़ा। पुरुषों की दशा ऊपर वह आये कि उन्हें भी विपाद है। अब स्त्रियों की दशा कहते हैं कि वे तो विकलता के वश हो गयी हैं। उनकी अवस्था की उपमा सन्ध्या के समय चवई की अवस्था से दी गयी जब कि वह प्रिय के विरह से विकल होती है। प्रेमी की शोभा प्रेमपात्र के विछोह में विकल होने में है। इसलिए सोही शब्द का प्रयोग किया। स्त्रियाँ सरकार के रूप पर मोहित हैं। अतः चवई से उपमित किया। यथा कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी।

स्त्रियों के हृदय में भी वही विचार उठा जो पुरुषों के हृदय में उठा था कि कोमल सुन्दर चरण कठिन रास्ते में अत्यन्त पीड़ित होंगे। उस पीड़ा को सोचकर हृदय भर आया। अतः वर वाणी कहती हैं। प्रेमयुक्त वाणी ही वर वाणी है।

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥

जौ जगदीस इन्हहि वनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ॥२॥

अर्थ कोमल और लाल चरणों को छूने में पृथ्वी उसी भाँति सङ्कुचित होती है जिस तरह हमारा हृदय सङ्कुचित होता है। यदि जगदीश ने इन्हें वन दिया तो रास्ते को पुष्पमय क्या नहीं बनाया ?

व्याख्या इस अरुण मृदुल चरण को हृदय में लाने से मेरा हृदय सकुचता है कि इन चरणों के स्पर्श योग्य हमारे दूषित हृदय नहीं हैं। इसी भाँति पृथ्वी को सङ्कोच हो रहा है कि इन कोमल चरणों के धारण योग्य मेरा वक्षस्थल नहीं है।

कमल का पुष्पों के ऊपर रहना ही उचित है। अतः इनके चरण कमल के लिए पुष्पमय मार्ग ही उपयुक्त है। जब विधि ने इतना उलटा पलटा किया कि इन्हें वन दे दिया तो मार्ग में भी उलटा पलटा करना चाहता था। उसे कठोर से पुष्पमय बना देते।

जौ माँगा पाइअ बिधि पाही। ए रखिअहि सखि आँखिन्ह माही ॥

जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ॥३॥

अर्थ यदि ब्रह्मदेव से मुँह माँगा मिले तो हे सखि ! इन्हें आँखों में रखना चाहिए। जो नरनारि उस समय नहीं आये वे रामजी को नहीं देख पाये।

व्याख्या विधि है। अपना विधि बैठाया करते हैं। मुँह माँगा नहीं देते। यदि देते तो इन्हें आँखों में रखती। कही जाने ही न देती। आँख बड़ी कोमल होती हैं। पुष्प का भी स्पर्श सहन नहीं कर सकती। आँखों में सखि राखिवे जोग इन्हें किमि के वनवास दयो है। आँख निर्लेप है। उनके रहने योग्य है। हृदय तो कलुषित है। वहाँ उन्हें रहने को कैसे कहे।

कुछ लोग गाँव में नहीं थे। पीछे से आये। सबने देखा। वे देख ही नहीं पाये। पता लगा कि ऐसी अलौकिक सुन्दर तीन मूर्तियाँ इधर से ही वन गयी है।

बटतर कुछ दूर तक विश्राम भी किया था । लोगों ने चाहा भी था कि रात को यही ठहरें पर वे ठहरे नहीं ।

सुनि सरूप वृद्धहि अकुलाई । अब लगि गये कहाँ लगि भाई ॥

समर्थ धाइ विलोकहि जाई । प्रमुदित फिरहि जनम फलु पाई ॥४॥

अर्थ स्वरूप की प्रशंसा सुनकर आकुल होकर पूछते हैं कि भाई । ये लोग कहाँ तक गये होंगे । समर्थ लोग दौड़कर जाते थे और दर्शन करके जन्मफल पा जाते थे और प्रसन्न होकर लौटते थे ।

व्याख्या अलौकिक स्वरूप का वर्णन सुनकर दर्शन के लिए आकुल होकर पूछते थे कि अब तक वे कितनी दूर आगे बढ़ गये होंगे । उनके मन में बड़ी उत्कण्ठा दर्शन की है । सभी ने दर्शन पाया । हम ही रह गये । अतः पहुँच के भीतर हो तो जाकर दर्शन करना चाहिए ।

लोगों ने दूरी बतला दी । तब जो दौड़ने में समर्थ थे दौड़े पड़े । जाकर दर्शन किया । मनुष्य जन्म का फल ही सरकार का दर्शन है । यथा राम चरन वारिज जब देखौ । तब निज जन्म सफल करि लेखौ । सो दर्शन प्राप्ति से कृतकृत्य हुए । जन्मफल पाकर आनन्द से लौटे ।

दो अवला बालक वृद्ध जन, कर मीजहि पछिताहि ।

होहि प्रेम बस लोग इमि, रामु जहाँ जहाँ जाहि ॥१२१॥

अर्थ स्त्री बच्चे और बूढ़े हाथ मल मलकर पछताते हैं । इस भाँति जहाँ जहाँ रामजी गये वहाँ व लोग सब प्रेम के वश हो गये ।

व्याख्या अब असमर्थों की बात कहते हैं कि स्त्री बालक और वृद्ध हाथ मलते हैं । पछताते हैं कि हमारे भाग्य में दर्शन बदा नहीं था । स्त्रियाँ दौड़ नहीं सकती थी । वृद्ध महाअसमर्थ थे । बच्चे भी दूरतक नहीं दौड़ सकते थे । अतः इन्हें पछताना ही हाथ लगा । समर्थ को दौड़कर जाते देखकर ये जी ममोसकर रह जाते हैं । इस भाँति जहाँ रामजी जाते हैं वहाँ प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ता है । ऐसी मूर्ति है कि जिन्होंने देखा वे भी पछताते हैं कि मैं सग क्यो नहीं गया और जिन्होंने दर्शन नहीं पाया वे भी पछताते हैं कि मेरे भाग्य में दर्शन नहीं रहा ।

गाँव गाँव अस होई अनदू । देखि भानुकुल कैरव चदू ॥

जे कछु समाचार सुनि पावहि । ते नृप रानिहि दोसु लगावहि ॥१॥

अर्थ सूर्यकुल के कुमुद के चन्द्रमा रूप रामजी को देखकर गाँव गाँव में ऐसा आनन्द हो रहा है । जो कोई समाचार पाते हैं वे राजा रानी को दोष लगाते हैं ।

व्याख्या सरकार का सौन्दर्य ही ऐसा है कि उसे देखकर स्त्रियाँ चन्द्रोदय पर कुमुदिनी की भाँति खिल उठती हैं । यथा नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति विरह दिनेम । अस्त भय विगसित भई निरखि राम राकेस । वैसी ही गति पुरुषों

की भी है। अत कहते हैं कि इसी गाँव की यह दशा नहीं जितने गाँव रास्ते में पड़ते हैं वही आनन्द की लहर आ जाती है।

उन देखनेवालों में से किसी किसी को कुछ टूटा फूटा पता चल जाता है। वे राजा रानी को दोष देने लगते हैं। यथा ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे।

कहहि एक अति भल नरनाह। दीन्ह हमहि जेइ लोचन लाह ॥

कहहि परसपर लोग लोगार्इ। वाते सरल स्नेह सुहाई ॥२॥

अर्थ किसी ने कहा कि राजा बहुत अच्छा है। जिसने हमको नेत्र होने का फल दिया। स्त्री पुरुष आपस में स्नेह से सरल और सोहाई बातें कहते हैं।

व्याख्या अधिक लोग तो दोष लगानेवाले हो हैं। पर कोई ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छा है। उसने हम लोगों के कल्याण के लिए इतने बड़े स्वार्थ का त्याग किया। यदि इन्हे बन न भेजता तो हम लोगों के नेत्र सफल कैसे होते। यथा करहु सफल सबके नयन सुन्दर बदन देखाइ।

घर के भीतर बात हो रही है। अत लोग लोगार्इ का परस्पर कहना कहते हैं। स्नेह भरा चित्त होने से सरल बातें ही मुख से निकलती हैं और वे सोहाई भी होती हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगर जहाँ ते आये ॥

धन्य सोदेसु सैलु वनु गाऊँ। जहँ जह जाहि धन्य सो ठाऊँ ॥३॥

अर्थ वे माता पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हे जन्म दिया। वह नगर धन्य है जहाँ से आये हैं। वह देश पर्वत गाँव धन्य है। वह स्थान धन्य है जहाँ जहाँ वे जा रहे हैं।

व्याख्या कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बडाई तासु। राम लखन तुम सनु-हन सरिस तनय सुचि जासु। अत माता पिता धन्य हैं धन्य अवध जो राम बखानी। अत जहाँ से आये वह नगर धन्य है और परसि राम पद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा। अत वह देश वह पर्वत वह वन वह गाँव धन्य है जहाँ जहाँ ये जावेंगे। यथा बड भागी वनु अवध अभागी। जो रघुवस तिलकु तुम त्यागी।

सुख पायेउ विरचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥

राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई ॥४॥

अर्थ ब्रह्मदेव ने उसी को रचकर सुख पाया। जिसके ये सब भाँति से स्नेही हैं। राम लक्ष्मण के रास्ते की सोहाई कथा तमाम रास्ते और वन में छा गयी।

व्याख्या माता पिता धन्य हैं। जन्मस्थान धन्य है। जहाँ जाते हैं वह स्थान धन्य है। पर इनके स्नेही भक्त ऐसे धन्य हैं कि उनको रचकर ब्रह्मदेव अपने को मुसी मानकर धन्य हुए। यथा मो तुल धन्य उमा मुनु जगत पूज्य मुपुनीत।

श्रीरघुनाथ परायण जहाँ नर उपज विनीत । भक्त के उत्पन्न होने से कुल धन्य होता है । सभी कुल ब्रह्मदेव निर्मित है । अत वे भी धन्य हुए । अथवा ब्रह्मदेव के निर्माण कला की पराकाष्ठा मनुष्य की रचना में है । पर मनुष्यता की पूर्णता तो हरिभक्ति से होती है । नहीं तो तुलसी जेहि राम ते नेह नहीं सो सही पशु पूँछ विषाण न द्वै । अत हरिभक्त के निर्माण से अपनी कला की पूर्णता देखकर ब्रह्मदेव सुखी होते हैं ।

जिधर से सरकार जाते हैं उधर आनन्द की लहर आ जाती है । उसकी कथा चल पड़ती है और वह कथा सोहाई होती है । मनभावनी होती है । उसे कहते सुनते लोग सुख पाते हैं । यथा भव मग अगम अनदु बिनु श्रम रहेउ सिराइ ।

दो एहि विधि रघुकुल कमल रवि, मग लोगन्ह सुख देत ।

जाँहि चले देखत विपिन, सिय सौमित्रि समेत ॥१२२॥

अर्थ इस भाँति रघुकुल कमल के सूर्य रास्ते के लोगो को सुख देते हुए सीता और लक्ष्मण सहित वन को देखते हुए चल जाते हैं ।

व्याख्या छाँह करहिँ घन विबुध गन वरखाँहि सुमन सिहाँहि । देखत गिरिवन विहँग मृग रामचल वन जाँहि से उपक्रम करके एहि विधि रघुकुल कमल रवि मग लोगन सुख देत इत्यादि से उपसहार करते हैं । नौ दोही में कैसे रास्ते के लोगो को सुख दते हुए रामजी वन देखते चल जा रहे हैं । इस बात का वर्णन किया ।

आगे राम लखन वन पाछ । तापस वेप विराजत काछे ॥

उभय बीच सिय सोहति कैस । ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥१॥

अर्थ आगे आगे रामजी पीछ पीछ लक्ष्मणजी तपस्वियो का वेप बनाये हुए शोभायमान हैं । दोनों के बीच सीताजी कैसी सोहती हैं । जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो ।

व्याख्या अब वन में जाते हुए तीनों मर्तियों की कैसी शोभा है । इसे वर्णन करते हुए कहते हैं कि सम्बन्धानुसार तथा रक्षा के विचार से भी रामजी आगे आगे चलते हैं और लक्ष्मणजी पीछ पीछ चलते हैं । तपस्वियो के वेप में कैसे कसाये शोभायमान हैं । यथा अनुज सहित सिर जटा बनाये । दोनों के बीच में सीताजी हैं । इनका वेप अभी तपस्विनिया सा नहीं है । अत कवि राम लक्ष्मण की उपमा तो ब्रह्मजीव से देते हैं और सीताजी की माया से । ब्रह्म माया को नहीं देखता । सबथा स्वतन्त्र है । परन्तु माया उसी के आश्रित है । उसी के पीछ चलती है । जीव यद्यपि ब्रह्म का ही अंश है । पर माया का अनुसरण करता है । ब्रह्म और जीव सजातीय पुरुष हैं । माया विजातीय स्त्री है । अत वेप में भेद है । ब्रह्मजीव में भेद मायावृत्त है । अत माया को ब्रह्म जीव के बीच में बहा । इन्हीं सब बातों पर विचार करके कवि ने राम जानकी और लक्ष्मण की उपमा ब्रह्म माया और जीव

से दिया । देखनेवाला जहाँ खड़ा है वहाँ से आते हुए तीनों मूर्तियों में पहिले रामजी को देखता है । पीछे सीताजी को तत्पश्चात् लक्ष्मणजी को । यहाँ देखनेवाला कवि है । इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि वर्णन करने के समय कवि अपने को किस स्थान पर मान रहा है । अभी तीनों मूर्तियाँ दूर हैं । बहुत स्पष्ट दिखलायी नहीं पड़ रही है । अतः ब्रह्म माया और जीव से उपमित किया ।

बहुरि कहहुँ छवि जसि मन बसई । जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥

उपमा बहुरि कहौ जिय जोही । जनु बुध विधु विच रोहिनि सोही ॥२॥

अर्थ : फिर जैसी छवि मन में बसी है वैसी कहता हूँ । मानो मधु और कामदेव के बीच में रति शोभित हो । फिर अपने जी में सोचकर उपमा कहता हूँ । जैसे बुध और चन्द्रमा के बीच रोहिणी शोभायमान हो ।

व्याख्या : यहाँ मधु चैत्र मास वसन्त का उपलक्षण है । मदन और रति दम्पती हैं । वसन्त मदन का सखा है । चलते चलते ठीक सामने आजाने पर कवि शोभा को स्पष्ट देख रहा है । अतः मधु मदन और रति की उपमा देता है । आगे बढ़ने के बाद उपमा देने के समय सबसे पीछे होने के कारण लक्ष्मणजी को कवि पहिले देखता है तत्पश्चात् सीताजी को और उसके बाद रामजी को । अतः मधु को पहिले कहकर तब मदन रति का उल्लेख करता है । कवि शोभा देखने में मग्न है ।

जब मूर्तियाँ बहुत दूर निकल गयी, अब दृष्टि के ओझल हुआ चाहती है तब फिर उपमा देते हैं कि बुध और चन्द्रमा के बीच में जैसे रोहिणी हो । चन्द्रमा और रोहिणी दम्पती हैं । बुद्ध चन्द्रमा का पुत्र है । तीनों बहुत दूर हैं । दूर चले जाने पर उसी भाँति कवि पहले लक्ष्मणजी तत्पश्चात् सीता और रामजी को देखता है और उसी क्रम से वर्णन करता है । दूर की उपमा ब्रह्म, माया और जीव से दे आये हैं । और फिर दूर की ही उपमा देनी है । अतः कवि को सोचना पड़ा कि अब कौन सी उपमा दें । तो तीन तेजोमय वस्तु चन्द्र, रोहिणी और बुध से जो दूर स्थित है दे डाला । पर हृदय में बीचवाली छवि बसती है । अतः मधु, मदन, रति की उपमा दी । क्योंकि सबके मन में काम का निवास है और गोस्वामीजी के मन में उसके स्थान पर राम बसते हैं ।

प्रभु पद रेख बीच विच सीता । धरति चरन मग चलति सभीता ॥

सीय राम पद अक बराएँ । लखनु चलहि मग दाहिन लाएँ ॥३॥

अर्थ : प्रभु के चरणों की रेखाओं के बीच बीच में सीताजी अपना पाँव धरती और डरती हुई रास्ता चलती हैं । सीता और रामचन्द्र के चरणों के चिह्नों को बचा बचाकर लक्ष्मणजी दाहिनी ओर से रास्ता चलते थे ।

व्याख्या : सीताजी ठीक रामजी का अनुसरण करती हैं और अनुसरण करने-वाले का पैर अग्रगामी के चरण चिह्नो पर पड़ेगा ही । अतः सीताजी रामचन्द्र के चरण चिह्नो के बीच बीच में पैर रखती हैं और डरती हुई रास्ता चलती हैं कि

वही सरकार के चरण चिह्नों पर मेरा पैर न पड़ जाय । सीताजी की ऐसी पूज्य बुद्धि सरकार पर है ।

वैसी ही पूज्य बुद्धि लक्ष्मणजी की दोनों सरकारों पर है । उन्हें दोनों मूर्तियों के चरण चिह्नों को बँचाना ठहरा । अतः वे दाहिनी ओर हटकर चल रहे हैं ।

राम लखन सिय प्रीति सुहाई । बचन अगोचर किमि कहि जाई ॥

खग मृग मगन देखि छवि होही । लिये चोरि चित राम बटोही ॥४॥

अर्थ • लक्ष्मण राम और सीताजी की प्रीति वचन का विषय ही नहीं है । अतः कैसे कही जा सकती है । उनकी छवि देखकर पशु पक्षी मगन हो जाते थे । क्योंकि पथिक राम ने उनके चित्त चुरा लिये ।

व्याख्या : राम लक्ष्मण और सीताजी की प्रीति ऐसी पवित्र और सुन्दर है कि मन में तो बड़ी अच्छी लगती है पर कहते नहीं बनती । यथा : इनके प्रीति परसपर पावनि । कहि न जाइ मन भाव सुहावनि । सुनहु नाथ कह मुदित विदेह । ब्रह्म जीव इव सहज सनेह ।

शोभा कैसी अद्भुत है कि पशु पक्षी देखकर मोहित हो जाते हैं । अपनी जाति की ही शोभा पर जीव रीझते हैं । खग की शोभा खग ही समझते हैं । मृग की शोभा मृग ही समझते हैं । ये मनुष्य की शोभा नहीं समझ सकते । पर यहाँ महाशोभा की ऐसी अतिशयता है कि वे भी मगन हो जाते हैं । कवि कहते हैं कि इसमें खग मृग की कोई बात नहीं है । राम बटोही ही मन के चोर हैं ।

दो. जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाई ।

भव मगु अगमु अनदु तेइ, विनु श्रमु रहे सिराइ ॥१२३॥

अर्थ : जिसने जिसने सीता सहित दोनों भाई प्रिय पथिकों को देखा उनको ससार के अगम मार्ग में सुख हुआ और वह बिना परिश्रम के ही कट गया । समाप्त हो गया ।

व्याख्या . अब प्रिय पथिकों के दर्शन का माहात्म्य सुनिये । ससार का रास्ता अगम है । दुःखमय है । पता नहीं कहाँ जा रहा है । पर जिसने इन तीनों मूर्तियों को रास्ता चलते देखा उसे भवमग आनन्दमय हो गया और बिना परिश्रम ही उसका अन्त मिल गया । अर्थात् वे अनायास ही भवसागर के पार हो गये ।

‘अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ । वसहुँ लखन सिय राम बटाऊ ॥

रामधाम पथ पाइहि सोई । जो पथु पाव कवहुँ मुनि कोई ॥१॥

अर्थ • अब भी जिसके हृदय में कभी सपने में भी लक्ष्मण सीता और राम

तीनों पथिक बसते हैं। वह राम धाम के मार्ग को पायेगा। जिसको कोई मुनि कभी कभी पाते हैं।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं कि जिन्होंने रास्ते जाते हुए तीनों मूर्तियों को देखा उनका कैसा कल्याण हुआ। अब उक्त घटना से आजकल के लोगो का कैसे कल्याण होगा। सो बतलाते हैं। जैसा मनुष्य दिन को सोचता है वैसा ही रात को स्वप्न देखता है। अतः स्वप्न में देखना तभी सम्भव है जब जाग्रत में मनोयोग पूर्वक ध्यान करे। इस भाँति यदि सपने में भी पथिक रूप से राम लक्ष्मण सीता मन में आजयें तो उसे रामधाम का पथ मिल जाता है। रामधाम का पथ मिलना अतीव दुर्लभ है। किसी मुनि को किसी समय मिल जाता है।

तब रघुवीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी ॥

तहँ बसि कद मूल फल खाई। प्रातः नहाइ चले रेघुराई ॥२॥

अर्थ तब रामजी सीताजी को थकी हुई जानकर और पास ही बरगद का पेड़ और ठण्डा पानी देखकर वहाँ बसे। कन्द मूल फल खाया और सवेरा होते ही स्नान करके चल पड़े।

व्याख्या दोपहर को भी सीताजी को थकी देखकर बरगद के पेड़ तले ठहरे थे। यथा जानी श्रमित सीय मन माँही। घरिक बिलव कीन्ह बट छाँही। अब फिर सीताजी थक गयी तो फिर बरगद के तले ही ठहरे। वहाँ शीतल जलाशय भी था। रात्रि उसी पेड़ के तले बितायी। कन्द मूल फल भोजन किया। इससे यह भी पता चलता है कि केवल एक बार भोजन का नियम ल रक्खा है।

१५ वाल्मीकि मिलन प्रसङ्ग

देखत बन सर सैल सुहाये। वाल्मीकि आश्रम प्रभु आये ॥

रामु दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि काननु जलु पावन ॥३॥

अर्थ . सुन्दर वन तालाब पर्वत को देखते हुए प्रभु वाल्मीकिजी के आश्रम में आये। रामजी ने मुनि के सुहावने निवास स्थान को देखा कि सुन्दर वन है। पर्वत भी सुन्दर है और पवित्र जल है।

व्याख्या ग्रामवासियों ने विचार करके सुगम रास्ता बतलाया था। सो उसकी सुगमता कहते हैं कि सुन्दर वन जलाशय और पर्वत देखते देखते प्रभु वाल्मीकिजी के आश्रम पर पहुँच गये। रामजी ने मुनिजी के सुन्दर आश्रम को देखा। आदि कवि हैं। रम्य स्थान पर अपना आश्रम बनाया था। जहाँ सुन्दर पर्वत हैं, सुन्दर वन हैं और पवित्र जल है।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुजत मजु मधुप रम भूले ॥

खग मृग विपुल कोलाहल करही। विरहित बैर मुदित मन चरही ॥४॥

अर्थ तालाबो मे कमल और वनो मे वृक्ष फल रहे थे और सुन्दर भीरे रस मे मस्त हुए गुझार कर रहे थे । बहुत से पशु पक्षी कोलाहल कर रहे थे और बैर छोडे हुए आनन्द से विचर रहे थे ।

व्याख्या आदि कवि के निवास योग्य रमणीय स्थल था । जलाशयो की शोभा कमलो के फूलने से हो रही थी और वन की शोभा वृक्षो के फूलने से हो रही थी और वे फूल ऐसे सरस थे कि चारो ओर वन मे भीरे गुझार कर रहे थे । चिड़ियाँ चहचहा रही थी । वन्य पशु भी अनेक प्रकार के शब्द कर रहे थे । किसी मे स्वाभाविक बैर का नाम नही । सब प्रसन्न मन से विचर रहे थे ।

सरनि सरोज बिटप वन फूले से गन्ध कहा । गुजत मजु मधुप रस भूले से रस कहा । खग भृग विपुल कोलाहल करही से शब्द कहा । सुन्दर गिरि कानन जल पावन से रूप कहा । इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बतलाया । मुनिजी मे ऐसी अहिंसा की प्रतिष्ठा थी कि उनके सन्निधान से पशुपक्षी स्वाभाविक बैर छोडकर उस वन मे निर्भय आनन्द से विचर रहे थे ।

दो सुचि सुदर आश्रमु निरखि, हरखे राजिव नेन ।

सुनि रघुवर आगमनु मुनि, आगे आयेउ लेन ॥१२४॥

अर्थ राजीव लोचन राम पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर प्रसन्न हुए और मुनिजी रामजी के आगमन का समाचार सुनकर उनके लेने के लिए आगे आये ।

व्याख्या : जैसा कवि के लिए आश्रम चाहिए वैसा आश्रम है । पवित्र भी है । सुन्दर भी है । उसे देखकर राजीवल्लोचन रामजी भी प्रसन्न हो गये । चित्तइ कृपा करि राजिव नयना । रामजी के रास्ते की कथा सम्पूर्ण वन मे फैल गयी थी । शिष्यो ने समाचार दिया । पहाड पर आश्रम है । अतः उन लोगो ने दूर से ही सरकार को आते देखा । समाचार सुनकर मुनिजी ने आगे से आकर स्वागत किया ।

मुनि कहुं राम दडवत कीन्हा । आसिरबादु विप्रवर दीन्हा ॥

देखि राम छवि नयन जुडाने । करि सनमानु आश्रमहि आने ॥१॥

अर्थ मुनिजी का रामजी ने दण्डवत् किया । विप्रवर ने आशीर्वाद दिया । रामजी की छवि देखकर आँखें शीतल हो गयी । सम्मान करके आश्रम मे ले आये ।

व्याख्या वाल्मीकिजी बडे तपस्वी और मुनियो मे श्रेष्ठ हैं । अतः आते हुए देखकर रामजी ने दण्डवत् प्रणाम किया । जिस भाव से रामजी ने दण्डवत् किया । उसी भाव के अनुकूल ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने आशीर्वाद दिया ।

मुनिजी की आँखें दर्शन की प्यासी थी । अतः सन्तप्त हो रही थी । जिसके नाम को इतने दिन से जप रहे थे, जिसके नाम के प्रताप से शुद्ध होकर ऋषिराज हुए आज वही नामी मिलने के लिए आश्रम मे पधार रहे हैं । अतः आँखें उनको छवि देखकर शीतल हुईं । स्वागत के लिए बहुत आगे चल आये थे । अतः बडे सम्मान के साथ आश्रम मे लिवा ले गये ।

य पाये । कद मूल फल मधुर मँगाये ॥

खाये । तब मुनि आसन दिये सुहाये ॥२॥

प्रिय अतिथि पाया । मोठे मोठे कद मूल और फल
तथा रामजी ने फल खाया । तब मुनिजी ने सुन्दर

मुनिजी ने यह किया कि भोजन की व्यवस्था पहिले
के सरकार चले है । रास्ता चलकर आये है । भूख
मोठे कन्द मूल फल मँगाये । मुनिजी महाराज जनक
उपासक हैं । रामजी इन्हे प्राण से प्यारे हैं । सो इस
अत तुरन्त भोजन की व्यवस्था की सीताजी लक्ष्मणजी
चुके तब मुनिजी ने सुन्दर आसन दिये । भाव यह कि
पर वे सोहाये न थे । भोजन के समय पीढा का ही विधान
र्यात् कोमल आसन दिये ।

हु भारी । मगल मूरति नयन निहारी ॥

रघुराई । बोले वचन श्रवन सुखदाई ॥३॥

ने आँखो से देखकर वारमीकिजी को बड़ा आनन्द हुआ
नो को सुख देनेवाले वचन बोले ।

झल विदु । ब्रह्म ही मङ्गलमूर्ति है । वह नयन का विषय
आश्रम मे पधारा है । अत उन्हे आँखो से देखकर
न्द हुआ । यथा नयन विषय मो कहूँ भयेउ सो समस्त
जीव कहूँ भये ईस अनुकूल ।

ना सा भाव देखकर सरकार करकमल जोडकर श्रवण
या कि वारमीकिजी ने भरद्वाज की भाँति कुशल नही
जान गये । कष्टकर बात की चर्चा चलाना नही चाहते ।
लेकर निवास करना ठहरा । अत मै स्वयं सब कथा
स्थल पूछूँ । अत श्रवण सुखद वचन बोले ।

मुनिनाथा । विस्व वदरि जिमि तुम्हरे हाथा ॥

या बखानी । जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनू रानी ॥४॥

। आप त्रिकालदर्शी है । ससार आपके हाथ मे बेर के
कहकर सरकार ने जिस जिस भाँति रानी ने वन दिया

ने कहा कि आप मुनियो के नाथ है । परम ज्ञानी है तथा
कुछ छिपा नही है । यह ससार आपके करगत बेर के

फल के समान है। अर्थात् समार में जो कुछ हो रहा है वह सब आपको प्रत्यक्ष है। बदरी फल कहने का भाव यह कि आप समार को ठपय्य जानते हैं। यथा -
घात्रीफल मदा पय्यमपय्य बदरीफलम्। आप समझ सकते हैं कि राज्य मत्तान्धन है। इसके छूटने से मुझे हर्ष है।

ऐसा कहकर सरकार ने वाल्मीकिजी से सब कथा कही। जिस भाँति रानी ने वन दिया। भाव यह कि महाराज ने वन नहीं दिया। रानी ने दिया। सब कथा कहने का भाव यह कि जिससे सम्मति लेना हो उसे अपनी परिस्थिति में परिचित कर देना परम आवश्यक है। वाल्मीकि से निवासस्थल के लिए सम्मति लेनी थी। इसलिए सब कथा कह सुनायी। मुनिजी पूछते ही कि तुम राजकुमार होकर वन में क्यों वसना चाहते हो। अतः उनसे सब कहना प्राप्त था।

दो तात वचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अम राउ।

मो कहूँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्य प्रभाउ ॥१२५॥

अर्थ पिता का वचन तिस पर माता का हित और भरत जैसे भाई का राजा होना और हे प्रभु। मुझे आपका दर्शन मिलना यह सब मेरे पुण्य का प्रभाव है।

व्याख्या - जो बात सरकार ने महारानी केँकेयी से कहा था वही यहाँ भी कहते हैं। यथा मुनिगन मिलन विशेष वन सबहि भाँति हित मोर। तैहि महुँ पिनु आयसु बहुरि समति जननी तोर। भरत प्रानप्रिय पावहि राजू। विधि सब विधि मोहि समुव आजू। भाव यह कि पहिले भी विधि सम्मुख थे। पर आज ता सब विधि से सम्मुख हो गये हैं कि एक कार्य करने में चार चार कार्य सब रहे हैं। वन में आने से पिता का भला माता का भला भाई का भला और स्वयं अपना भला।

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥

अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदवेगु न पावै कोई ॥१॥

अर्थ हे मुनिराज। आपके चरणों को देखकर मेरे सब पुण्य सुफल हो गये। अब जहाँ आपकी आज्ञा हा और जहाँ रहने से कोई मुनि उद्वेग न पावे।

व्याख्या सुकृत का फल मुयश है। यथा पावन जस कि पुन्य विनु होई। सो सरकार के मुयश का प्रचार वाल्मीकिजी द्वारा ही होनेवाला है। अतः कहते हैं कि मेरे सब सुकृत तो आपके दर्शन से सुफल हुए। निश्चिन आमन्न नविष्य को भूतकाल में वर्णन किया जाता है। यथा रगभूमि आये दोउ भाई।

भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं। सो शिष्य से रास्ता पूछा था। अब गुरुजी से निवास स्थान पूछने हैं कि हम क्षत्रिय हैं। आखेट आदि करेंगे। इसमें मुनिलोगों के उद्वेग का भय है। अतः मुझे ऐसा स्थान चाहिए जहाँ रहने से किसी मुनि को उद्वेग न हो। क्योंकि उद्वेग उत्पन्न करना भी हिंसा है। यथा उद्वेगजनन हिंसा सन्तापकरण तथा।

मुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं । ते नरेस विनु पावक दहहीं ॥
मंगल मूल विप्र परितोष । दहइ कोटि कुल भूसुर रोष ॥२॥

अर्थ : मुनि तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं वे राजा विना आग के जल जाते हैं । ब्राह्मण का परितोष सब मङ्गलों का मूल है और ब्राह्मण का क्रोध करोड़ों कुल को भस्म करता है ।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि मैं अपने कल्याण के लिए पूछता हूँ । क्योंकि सब मङ्गलों का मूल ब्राह्मणों का परितोष है । क्योंकि इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं । यथा : हरितोषणव्रत द्विज सेवकाई और ब्राह्मण के रोष से कोटि कुल भस्म हो जाता है । यथा : इंद्र कुलिस मम सूल विसाला । कालदंड हरि चक्र कराला । जो इनकर मारा नहि मरई । विप्र रोष पावक सो जरई । इसलिए कहते हैं कि वह राजा विना आग के जल जाता है ।

अस जिअ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ । सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला । वासु करौ कछु कालु कृपाला ॥३॥

अर्थ : ऐसा मन मे समझकर वह स्थान बतलाइये जहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ मैं जाऊँ । वहाँ सुन्दर पत्ते और तृणों की कुटी बनाकर हे कृपालु । मैं कुछ दिनो तक वहाँ निवास करूँ ।

व्याख्या : स्थान पूछने के साथ ही साथ छुट्टी भी माँगते हैं कि हमलोग वहीं जाकर रहें । गृहस्थी के साथ रहना है । अतः वहाँ जलाशय आदि सभी बातों का सुपास चाहिए ।

रास्ते में तो वृक्ष तले भी रह जाते थे । परन्तु वहाँ तो कुछ काल तक रहना होगा । अतः पर्णतृणशाला बनानी पड़ेगी । वनवास चौदह वर्ष के लिए है । अतः साल छः महीने तो कम से कम रहना है ।

सहज सरल सुनि रघुवर बानी । साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न' कहहु अस रघुकुल केतू । तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू ॥४॥

अर्थ : रामजी की स्वभाव से ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि ने साधु साधु : वाह वाह कहा । हे रघुकुल के ध्वज ! आप ऐसा क्यों न कहें । आप सदा वेद के पुल के रक्षक हो ।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि वेदमार्ग का पालन तो रघुवशियों का सहज स्वभाव है । यथा : रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाळ । मनु कुपंथु पगु धरहि न काळ । और आप तो रघुवंश के ध्वज रूप हो । आप ऐसी बात क्यों न कहें । आप श्रुति सेतु का पालन सदा सर्वदा करते हैं । ब्राह्मणत्व की ही रक्षा से वैदिक धर्म रक्षित

होता है। अतः ब्राह्मणत्व का रक्षा विधायक वाक्य जिस सरलता से आप ने कहा है वह आपके लिए स्वाभाविक है। सिवा आपके ऐसा वाक्य कौन कहे।

छं. श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह, जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति, रुख पाइ कृपानिधान की ॥
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु, लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु, चले दलन खल निसिचर अनी ॥

अर्थ : हे रामजी। आप वेद के पुल के रक्षा करनेवाले जगदीश हैं। जानकी माया हैं। जो कृपानिधान का रुख पाकर ससार की रचना पालन तथा सहार किया करती है। जो सहस्र सिरवाले सर्पराज पृथ्वी के धारण करनेवाले है वे ही चराचर के स्वामी लक्ष्मण जी हैं। देवताओं के कार्य के लिए नृप शरीर धारण करके खल निशाचरों की सेना के सहार के लिए चले हैं।

व्याख्या : यही आधिदैविक रामायण की कुञ्जी है। वाल्मीकिजी कहते हैं कि आप श्रुतिसेतु पालक हो। सो आवश्यकता पड़ते ही आगये। सन्तत पालक कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप जगदीश हैं और यह जानकी आपकी माया हैं। यथा : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। सो आपलोग वेप बदले हुए ऐसा सुन्दर नाट्य कर रहे हैं। ये लक्ष्मणजी सहस्रशीर्षापुरुषः जाग्रत के विभु हैं। जाग्रत के आधार हैं। अतः चराचर के स्वामी हैं। ये भी मनुष्य बने हुए आपके साथ हैं। इस समय देवलोक और मनुष्यलोक से जो व्यापार चलता रहा. देवान् भावयन्तानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्पर भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। ब्रह्मदेव ने यज्ञ के साथ प्रजा की सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग देवताओं को बढ़ाओ और वे पूजित होकर तुम्हें बढ़ावे। इसी भाँति परस्पर भावना करते हुए परम कल्याण को प्राप्त हो। सो बन्द सा हो गया है। सुभ आचरन कतहुँ नहि होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई। द्विज भोजन मष होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा। इत्यादि। सो इस समय सुरकाज नरराज तन से ही हो सकता है। अतः आप लोग नरराज तन धारण करके खल निशाचरो का नाश करने चले हैं : गोस्वामीजी इस काण्ड के छन्दों में से केवल इसी में अपना नाम नहीं देते।

सो. राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।

अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥१२६॥

अर्थ : हे रामजी। आपका स्वरूप वाणी का अविषय और बुद्धि के बाहर की

१. गोस्वामीजी का यह भी नियम है कि कोई क्रम नहीं निबहने देते। अयोध्याकाण्ड भर में पचीस के सौरठा के साथ छन्द देते हैं। पर यहाँ छब्बीसवें सारठा के साथ दिया।

धात है । अव्यक्त है । अकथ है । अपार है । इसे नेति नेति कहकर वेद वर्णन करते हैं ।

व्याख्या : लीला विग्रह कहकर परम स्वरूप कहते हैं । न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्यो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदिता-दथो अविदितदधि ।

वेद कहता है कि न तो वहाँ दृष्टि जाती है न वाणी जाती है न मन जाता है । उसे न सामान्य रूप से जानते हैं न विशेषरूप से जानते हैं । कैसे कहे । वह जानने और न जानने दोनों से परे ही अतद्व्यावृत्ति से ही उसके विषय में कुछ कहा जा सकता है । अतः यह भी नहीं यह भी नहीं । स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं । इस प्रकार से वेद तुम्हारा निरूपण करता है ।

जगु पेत्वन तुम्ह देखनिहारे । विधि हरि संभु नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहि मरमु तुम्हारा । और तुम्हहि को जाननिहारा ॥१॥

अर्थ : ससार तमाशा है और तुम देखनेवाले हो और ब्रह्मा विष्णु और शिव नचानेवाले हैं । वे भी तुम्हारा मर्म नहीं जानते और तुम्हे जाननेवाला कौन है ।

व्याख्या : ससार दृश्य होने से जड है । तुम द्रष्टा होने से विद्रूप हो । विधि हरि शम्भु संसार की सृष्टि पालन और संहार करनेवाले तुम से ही बल पाकर अपने अपने कार्य में समर्थ हैं । यथा : जाके बल बिरचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा । वे भी तुम्हारे मर्म को नहीं जानते । यथा • पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मर्म न जानइ कोई । मया ततमिद सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना । मत्स्थानि सर्व-भूतानि न चाह तेष्ववस्थित । न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् । भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः । भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि मुझसे यह जगत् परिपूर्ण है । सब भूत मेरे में स्थित है । मैं उनमें स्थित नहीं हूँ और वे सब भूत मेरे में स्थित नहीं हैं । मेरे ऐश्वर्य योग को देख । भूतों को उत्पन्न करनेवाली मेरी आत्मा भूतों में स्थित नहीं है । मर्म का जानना ही वस्तुतः जानना है । अतः कहना होगा कि कोई तुम्हे नहीं जानता । यथा • न मे विदु सुरगणाः प्रभव न महर्षयः । गीतायाम् ।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन । जानहि भगत भगत उर चदन ॥२॥

अर्थ : जिसे तुम जना देते हो वही तुम्हे जानता है और तुमको जानते हो तुम्ही हो जाता है । हे रघुनन्दन ! तुम्हारी कृपा से हे भक्त उर चन्दन । तुम्हे भक्त जानते हैं ।

व्याख्या : भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं । भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः । भक्ति से मुझे जानता है कि तत्त्वतः मैं क्या हूँ और कितना हूँ और . ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति । ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है । यमेष वृणुते

तेन लभ्य । जिसे वह वरण करता है । उसी से वह प्राप्य है । अर्थात् तुम्हे जानना कृपा साध्य है । क्रिया साध्य नहीं है । भजन करनेवाले पर भगवान् कृपा करते हैं । निर्गलितार्थ यह है कि भजन करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं और भक्त को अपना ज्ञान करा देते हैं और ज्ञान हो जाने पर भक्त भगवन्त में भेद नहीं रह जाता । यथा भक्ति भक्त भगवत गुरु चतुर नाम वपु एक ।

चिदानन्दमय देह तुम्हारी । विगत विकार जान अधिकारी ॥

नर तनु धरेहु सत सुर काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥३॥

अर्थ तुम्हारी देह चित् आनन्दमय है । विकार से रहित है । इसे अधिकारी लोग जानते हैं । सन्त और देवताओं के लिए मनुष्य शरीर धारण कर रक्खा है । सासारिक राजाओं की भाँति कहते हो और करते हो ।

व्याख्या सबके देह में और तुम्हारे देह में बड़ा अन्तर है । तुम में देह देही भेद नहीं है । चिदानन्दमय लीलाविग्रह है । यथा आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि । मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति । माया के गुणों का अनुसरण करता हुआ वैसा ही मालूम होता है । वस्तुतस्तु अविकारी है । इसीलिए गोता में कहा है कि जन्म कर्म च मे दिव्यम् । मेरा जन्म कर्म दिव्य है ।

कर्मवश होकर तुमने देह धारण नहीं किया है । भक्त भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल । करत चरित धरि मनुज तन सुनत मिटहि जग जाल ।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड मोहहि बुध होहि सुखारे ॥

तुम्ह जो कहहु करहु सबु साचा । जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥४॥

अर्थ हे रामजी ! तुम्हारे चरित्र को देख सुनकर मूर्खों को मोह होता है और पंडित सुखी होते हैं । तुम जो कहते हो और करते हो सो सब सत्य है । क्योंकि जैसा काछ काछे वैसा ही नाच नाचना चाहिए ।

व्याख्या अवजानन्ति मा मूढा मानुषीतनुमाश्रितम् । पर भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम् । भगद्गीता में भगवान् ने कहा है कि मूढ़ लोग मुझ मनुष्य शरीर धारण करनेवाले की अवज्ञा करते हैं । मेरे परम भाव को नहीं जानते कि मैं लोक का महेश्वर हूँ । मनुष्य की भाँति चरित देखकर और सुनकर मूढ़ों को विपरीत ज्ञान होता है कि ये भी मनुष्य हैं । प्रभु के परम भाव को तो पण्डित जानते हैं कि लोक महेश्वर होकर कैसी मनुष्य लीला करते हैं । अतः वे सुखी होते हैं । यथा उमा राम गुण गूढ पडति मुनि पावहि विरति । पावहि मोह विमूढ जे हरि विमुख न धर्म रति ।

यथा अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोइ । सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ । नाट्य में जो कुछ कहा या किया जाता है वह वस्तु स्थित न होने पर भी रगमञ्च के लिए सच्चा है । क्योंकि जैसा वेष धारण करे वैसा ही अभिनय करने का नियम है ।

दो. पुछेहु मोहि कि रहौ कहँ, मै पूछत सकुचाउँ ।

जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि देखावउँ ठाँउ ॥१२७॥

अर्थ : मुझसे पूछते हो कि कहाँ रहूँ और मैं पूछते हुए सङ्कोच करता हूँ कि जहाँ तुम न हो वह स्थान मुझे बतला दो तो वही स्थान मैं तुम्हें दिखा दूँ ।

व्याख्या : अब जहाँ राउर आयसु होई का उत्तर देते है कि तुमने तो सङ्कोच नहीं किया । वेपानुसार ठीक ठीक अभिनय कर दिया । पर मुझे सङ्कोच लगता है । मैं भी वैसा ही तुम्हें कैसे मान लूँ मैं तो जानता हूँ कि तुम सर्वव्यापक हो । अतः तुम्हारे प्रश्न का ठीक उत्तर तो यही है कि पहले यह बतलाओ कि तुम कहाँ नहीं हो । तब मैं कह दूँ कि वही रहो ।

यह स्तुति पुण्य नक्षत्र है । तीन तारे यहाँ राम लक्ष्मण जानकीजी हैं । इन्हीं की चमक दिखायी पड़ती है । यहाँ ब्रह्म : राम लक्ष्य का वेध हुआ । अतः शर की आकृति माना । इसकी फलश्रुति है : समन पाप सत्ताप शोक के । सो : जानत तुमहि तुमहि होइ जाई से सन्ताप शोक का शमन कहा ।

सुनि मुनि वचन प्रेम रस साने । सकुचि राम मन महँ मुसुकाने ॥

बालमीकि हँसि कहहि बहोरी । बानी मधुर अमिअ रस बोरी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के वचन सुनकर रामजी सकुचे और मन ही मन मुसकुराये । बालमीकिजी फिर हँसकर भीठी वाणी अमृत रस से भिगोयी हुई बोले ।

व्याख्या : सरकार में शील की पराकाष्ठा है । जब मुनि लोग सहज स्वरूप कथा का वर्णन करने लगते हैं तो सरकार को सङ्कोच होता है । मुनिजी की इस उक्ति पर : जहँ न होउ तहँ देउ कहि तुमहि देखावउँ ठाँउ : सरकार मुसकुराये । मुनिजी के गौरव से प्रकट नहीं मुसकुराये । अतः कहते हैं : मन मह मुसुकाने ।

सरकार ने माधुर्य में प्रश्न किया । बालमीकिजी ऐश्वर्य में उत्तर देते हैं । उसी बात को और भी बढ़ाते हुए बहुत कुछ कहेंगे । इसलिए हँस रहे हैं । भक्ति से पूर्ण वाणी है । इसलिए मधुर और अमिअ रस बोरी कहा । मिठास तो भक्ति में ही है ।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता । जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना । कया तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥२॥

अर्थ : रामजी सुनो ! अब मैं घर बतलाता हूँ । जहाँ तुम सीता और लक्ष्मण के साथ बसो । जिनके कान समुद्र के समान हैं और तुम्हारी कयाएँ सुन्दर नदियाँ हैं ।

व्याख्या : आपने कहा : अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ । सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ । तहँ रचि रचिर परन तून साला । बास करौ कछु काल कृपाला । सो पर्णशाला में क्यों रहोगे । मैं तुम्हें घर बतलाता हूँ और ऐमा विस्तृत घर जहाँ तीन मूर्ति रह सकी । यहाँ भगवान् बाल्मीकि ने घर के व्याज से पूरी रामायण बही ।

रामायण का अर्थ ही यह है : रामस्य अयनम् रामायणम् । रामजी का घर ही रामायण है । ग्रन्थ का नाम रामायण इसलिए है कि इसमें रामजी ही प्रतिपाद्य हैं । यथा जेहि मह आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।

वस्तुतस्तु भगवान् की कथा और भागवत की कथा में भेद नहीं है । भागवत की कथा में सिवा भगवत् कथा के और कुछ होता ही नहीं । इसी भाँति भगवान् की कथा में भक्त की कथा रहती है । भगवान् वाल्मीकि ने यहाँ भक्त की कथा कहते हुए भगवान् की कथा अर्थात् पूरी रामायण कही है । अब वालकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्तों के लिए कहते हैं । इसमें उमा और भरद्वाज मुख्य श्रोता हैं । इनकी कथा पूर्वार्ध में है । ऐसे ही भक्तों को लक्ष्य करके कहा गया है कि जिनके वान समुद्र के समान हैं । समुद्र में स्वयं अपार जल भरा है । फिर भी १८०० नदियाँ इसमें अनवरत जल उडेली करती हैं और समुद्र सब को ग्रहण करता है । इसी भाँति श्रोता का हृदय राम कथा से पूर्ण है । फिर भी उसे कथा श्रवण से तृप्ति नहीं ।

भरहि निरतर होहि न पूरे । तिन्हके हिय तुम्ह कहूँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहि दरस जलधर अभिलाखे ॥३॥

अर्थ • दिन रात उन्हें भरती है किन्तु पूरे नहीं होते । उनके हृदय में तुम्हारे लिए सुन्दर घर है । जिन्होंने अपनी आँखों को पपीहा बनाकर रक्खा है और मेघरूपी आपके दर्शन के लिए लालायित रहते हैं ।

व्याख्या इतने जल के ग्रहण से भी समुद्र भर नहीं उठता । इसी भाँति जो श्रोता कथा श्रवण से ऊँचता नहीं सुनता ही जाता है उसके हृदय में तुम्हारे लिए सुन्दर घर है । उमा ने कहा साथ तवानन ससि सवत कथा सुधा रघुबीर । श्रवन पुटन्ह मन पान करि नहि अघात मतिधीर । इसी भाँति भरद्वाज भी नहीं अघाते । यथा सभु चरित सुनि सरस सुहावा । भरद्वाज मुनि अति सुख पावा । बहु लालसा कथा पर वाढी । नयनन्ह नीर रोमावलि ठाढी ।

वालकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त रूप के प्रेमी हैं । अतः उन्हें चातक कहा । चातक का नेम अटल है । वह मेघ से ही माँगता है । मेघ का दर्शन चाहता है । बूँद पान करता है । ससार में समुद्र भरा है । नदी तालाब जल से भरे हैं । पर चातक के लिए कुछ नहीं । इस प्रकार के भक्त मनु सतरूपा हैं । यथा उर अभिलाष निरतर होई । देखिय नयन परम प्रभु साई । जो भुसुंडि मनमानस हसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रससा । इत्यादि ।

निदरहि सरित सिधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहि सुखारी ॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक । बसहु बधु सिय सह रघुनायक ॥४॥

अर्थ • नदी समुद्र और तालाब के जल का निरादर करते हैं । रूप बिन्दु जल से ही सुखी होते हैं । उनका हृदय सुखदायक घर है । उसमें भाई और सीताजी के सहित हे रघुनायक । तुम रहो ।

व्याख्या : ऊपर मनु सतरूपा का चातक की भाँति राम श्यामघन के दर्शन की लालसा कहा। यहाँ निदरहि सरित सिन्धु सर बारी का मिलान कहते हैं। पानी का खजाना तो सरित सिन्धु और सर ही हैं। इसी भाँति सबके ध्येय ज्ञेय और आराध्य विधि हरिहर है। सो : विधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा। माँगहु वर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहि चलहि चलाये। अन्त मे प्रभु के रूप बिन्दु को पाकर ही वृत्तकृत्य हुए। ये ही दशरथ कौसल्या हुए। जनकजी की भी वही गति है। कहते हैं : इनहि विलोक्त अति अनुरागा। वरवस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। जानकीजी भी रूप बिन्दु से ही आनन्दित हैं। यथा : जनु चातकी पाइ जल स्वाती। जनक दूत : देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ। माता लोग : जे दिन गये तुमहि बिनु देखे। ते बिरचि नहि पारहि लेखे। चक्रवर्तीजी यथा : सुत हिअ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे। इस भाँति उत्तरार्ध ऐसे भक्तों से ही भरा पड़ा है।

ऐसे भक्तों का हृदय आपके लिए सुखदायक घर है। यहाँ आवभगत बराबर होती रहेगी। यहाँ भाई और सीताजी के साथ रहो। राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्याणमय सुरतरु तुलसी तोर।

दो. जस तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।

मुकुताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु ॥१२८॥

अर्थ : तुम्हारे यश रूपी निर्मल मानससरोवर में जिसकी जीभ हसिनी रूपा है तुम्हारे गुणगण रूपी मुक्ताफल को चुना करती है। हे रामजी! उसके हृदय में बसो।

व्याख्या : अयोध्याकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्त हैं अवध निवासी। ये दिन रात रामजी का गुणगान करते हैं। महाराज दशरथ को सब समाचार दूतों द्वारा लगा करता है। यथा : रामरूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ। सबकेँ उर अभिलाषु अस कहहि मनाइ महेसु। आपु अछत युवराज पदु रामहि देख नरेसु। को रघुवीर सरिस ससारा। सील सनेह निवाह निहारा। इन्ही लोगों की जिह्वा हँसी है जो रामयश मानस में विचरती हुई गुणगण रूपी मुक्ताफल चुना करती है। यथा : जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहि। बंठि परसपर इहै सिखावहि। भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि इत्यादि। बाल्मीकिजी कहते हैं कि ये आपका ही गुणगान करते हैं। अतः इनके हृदय में बसने में आपकी ही प्रधानता है।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुवासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥

तुम्हहि निवेदित भोजनु करही। प्रभु प्रसाद पदु भूपन धरही ॥१॥

अर्थ : जिसकी नाक प्रभु के सुन्दर पवित्र प्रसाद के सुगन्ध को आदर के साथ लेती है और जो तुमको अपंग वरके भोजन करते हैं और प्रभु का प्रसाद वस्त्र और भूषण धारण करते हैं।

अर्थ : जिनके हृदय में १ न काम है २ न क्रोध है ३ न भेद है ४ न मान है ५ न मोह है ६ न लोभ है ७ न क्षोभ है ८ न राग है ९ न द्वेष है १० न कपट है ११ न दम्भ है १२ न माया है हे रघुराज ! तुम उनके हृदय में बसो ।

व्याख्या : काम क्रोधादि सभी मानस रोग हैं । जिनका वर्णन उत्तरकाण्ड के अन्त में किया गया है । ये सदा जीव को पीड़ा पहुँचाया करते हैं । अतः उसे समाधि की प्राप्ति नहीं होती । जब मन इनसे रहित हो तब नैर्मल्य को प्राप्त होकर स्वस्थ होता है । उसी के लिए कहा गया है निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।

इस प्रकार के भक्त आरण्यकाण्ड के उत्तरार्ध में नारदजी है ।

- | | |
|-----------------|------------------------------------|
| १ कामाभाव | यथा : कामकला कछु मुनिहि न व्यापी । |
| २ क्रोधाभाव | यथा भयउ न नारद मन कछु रोपा । |
| ३४ मद मानाभाव | यथा : मोर सापकरि अगीकारा । |
| | सहत राम नाना दुख भारा । |
| | ऐसे प्रभुहि विलोकउँ जाई । |
| ५ मोह मायाभाव | यथा : साँचहुँ इनके मोह न माया । |
| ६ लोभाभाव | यथा रामसकल नामन ते अधिका । |
| | होहु नाथ अघ खग गन वधिका । |
| ७ क्षोभाभाव | यथा मुनिगति देखि सुरेस डेराना । |
| ८९ रागद्वेषाभाव | यथा उदासीन धन धाम न जाया । |
| १० कपटाभाव | यथा तब बिबाह मै चाहौ कीन्हा । |
| | प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा । |
| ११ दम्भाभाव | यथा निरखि सैल सरि विपिन बिभागा । |
| | भयउ रमापति पद अनुरागा । |
| १२ मायाराहित्य | यथा सहज बिकल मन लागि समाधी । |

सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख सुख सरिस प्रससा गारी ॥

कहहि सत्य प्रिय वचन विचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥२॥

अर्थ जो सबको प्रिय है । सबके हित करनेवाले हैं । दुख सुख प्रशसा और गाली जिन्हे समान है । सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते हैं । जो जागते और सोते तुम्हारे शरण हैं ।

व्याख्या . सबके प्रिय होने का कारण सबका हितकारी होना है । हितकारी ही प्रिय होता है । दुख और सुख को समान मानना धीर का लक्षण है । यथा : सुख हरपहि जड दुख विलखाही । दोउ सम धीर धरहि मन माही । जिनको सरकार के चरणों में ममता होती है वे ही प्रशसा गाली के समान मानने में समर्थ होते हैं । यथा : स्तुति निंदा उभय सम ममता मम पदकज । विचार पूर्वक सत्य

प्रिय वचन बोलने की शास्त्राज्ञा है। यथा सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियञ्च नानृत ब्रूयादेष्टधर्मं सनातन। जोव का भगवत् शरण जाना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। गीता में स्वयं भगवान् ने कहा है सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज। जाग्रत में ऐसी भावना दृढ़ हो गयी है कि स्वप्न में भी शरणागत हो रहते हैं।

ऐसे भक्त किष्किन्ध्याकाण्ड के पूर्वार्ध में सुग्रीवजी हैं। इनका सर्वप्रिय होना इसी से सिद्ध है कि इनको लोगो ने इनके न चाहने पर भी राजा बनाया। यथा दोन्हेउ मोहि राज बरिआई। ये सबके हितकारी थे। वालि का भी इन्होंने हित ही चाहा। यथा : वालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम समन बिपादा। इन्हे दुख सुख प्रशंसा गाली भी समान ही थी। यथा . सत्रु मित्र सुख दुख जग माँही। मायाकृत परमार्थ नाँही। ये सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते थे। यथा : विषयवस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पार्वर पसु कपि अतिकामी। शरणागत तो ये सदा से ही थे। हनुमानजी कहते हैं . सो सुग्रीव दास तव अहई।

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाही। राम बसहु तिन्ह के मन माही ॥

जननी सम जानहि पर नारी। धनु पराव विष तें विष भारी ॥३॥

अर्थ . जिन्हे तुम्हें छोड़कर दूसरी गति नहीं है। हे रामजी। तुम उनके मन में बसो जो परायी स्त्री को माँ के समान जानते हैं। पराये धन को विष से भी भारी विष मानते हैं।

व्याख्या . सरकार को छोड़कर सुग्रीवजी को दूसरी गति नहीं थी। यथा सुनि सुग्रीव परम भय माना। ऐसे भक्तों के हृदय में रामजी तुम बसो। भाव यह कि जो एकाकी तुम्हें भजता है उसके हृदय में एकाकी बसो और जिसकी भावना सस्त्रीक सानुज में हो उसके हृदय में सस्त्रीक सानुज बसो।

मातृवत् परदारिण्यं परद्रव्येषु लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु य पश्यति स पश्यति। अनुवाद में उत्कर्ष और भी बढ़ गया। पर द्रव्य को लोष्ट . ढेला नहीं विष से भी अधिक विष बतलाया गया। यह पच नहीं सकता। प्राण हरण करेगा। पुत्र पौत्र को भी अनिष्टकर होगा।

जे 'हरषहि' पर संपत्ति देखी। दुखित होहि पर विपत्ति बिसेखी ॥

जिन्हहि राम तुम्ह प्राण पिआरे। जिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥४॥

अर्थ : जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर दुःखी होते हैं। जिनको रामजी तुम प्राण के समान प्यारे हो। उनके मन तुम्हारे लिए मङ्गलमय घर हैं।

व्याख्या . पर सम्पत्ति से हर्ष, पर विपत्ति से विशेष दुःख, अपने सुख दुःख में

उतना हर्ष विपाद नहीं । यहाँ अनुवाद मूल से अधिक जोरदार उत्कर्षयुक्त हो गया । इनका हर्ष और दुःख भी अलौकिक हो गया । अपना सुख दुःख वैसा कार्य नहीं करता ।

पुत्र कलत्र प्राण प्यारे नहीं । तुम जिसे प्राण प्यारे हो अथवा अन्य देव भी मान्य हैं पर प्राण प्यारे तो तुम्हीं हो । अतः उनका मन तुम्हारे शुभ सदन है ।

ये किष्किन्धाकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त वानरवीर हैं जो सीताजी की खोज के लिए दक्षिण दक्षिण भेजे गये थे । जननी सम जानहि पर नारी । यथा मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुज । दूरि ते ताहि सबन्हि सिर नावा । धन पराव विष ते विष भारी । भूख प्यास से मर रहे थे । पर बिना मालिक की आज्ञा के पानी तक न ग्रहण किया । यथा तेहि तब कहा करहु जलपाना । खाहु सुरस सुंदर फल नाना । पर सम्पत्ति से हर्ष यथा धन्य जटायू सम कोउ नांही । पर दुःख से दुःखी यथा अस कहि लवन सिंधु तट जाई । बैठे कपि सब दर्भ डसाई । राम तुम प्राणपियारे यथा राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोड़ ।

दो स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात ।

मन मंदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

अर्थ हे तात । जिनके तुम स्वामी सखा माता और गुरु सब कुछ तुम ही हो उसके मन मन्दिर में सीता सहित दोनों भाई बसो ।

व्याख्या जननी जनक वधु सुत दारा । तनु धनु भवन सुहृद परिवारा । सबके ममता ताग बटोरी । मम पद मनहि बाँध बर डारी । सब भाव से जो सरकार की ही उपासना करता है । सब नाता उन्हीं से जोड़े हुए हैं । अतः वर्तमान सभी सम्बन्धी स्त्री और भाई सहित उसके मन मन्दिर में वास करो ।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ में हनुमानजी हैं । सरकार को ही स्वामी और पितु मातु मानते हैं । यथा सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ असोच बने प्रभु पोसे । सरकार इन्हे सखा मानते हैं । यथा ये सब सखा सुनहु मुनि मोरे । भये समर सागर वहँ बेरे । शिष्य होकर स्वयं हनुमानजी ने सरकार से प्रश्न किया था । यथा तापर मैं रघुवीर दोहाई । जानहुँ नहि कछु भजन उपाई ।

अवगुन तजि सबके गुन गहही । विप्र धेनु हित सकट सहही ॥

नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥१॥

अर्थ १ जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं । २ ब्राह्मण और गायों के लिए सकट सहते हैं । ३ नीति निपुण होने की ससार में जिनकी थाप है । उनका सुन्दर मन तुम्हारा घर है ।

व्याख्या जिनका स्वभाव हंस सा है । अवगुणरूपी जल का त्याग करके गुणरूपी दुग्ध का ग्रहण करते हैं । यथा सत हंस गुण गहहि पय परिहरि बारि बिकार । विप्र धेनु यज्ञ के साधक हैं । विप्र में मन्त्र और गाय में हवि प्रतिष्ठित है ।

इनकी रक्षा होनी ही चाहिए । अतः इनके लिए जो संकट सहते हैं । जो नीति में निपुण है । जिन्हे अनीति अच्छी नहीं लगती । ऐसे उत्तम हृदयवाले मनुष्य का हृदय तुम्हारा घर है । सरकार को नीति विरोध अच्छा नहीं लगता । यथा : नीति विरोध सोहाइ न मोही । अतः मुनिजी नीति निपुण के हृदय में उन्हें बसने के लिए कहते हैं ।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के उत्तरार्ध में विभीषणजी हैं । १. अवगुन तजि सबके गुन गहही । यथा : मुनहु पवन सुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि मँह जीभ विचारी २. विप्र धेनु हित यथा : विप्र रूप धरि बचन सुनाये । मुनत विभीषनु उठि तहँ आये इत्यादि । ३. नीति निपुन यथा : मैं जानौ तुम्हारि सब रीती । अति नय निपुन न भाव अनीती ।

गुन तुम्हार समुझाइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥

राम भगत प्रिय लागहि जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥२॥

अर्थ : १. जो गुण तो तुम्हारा और दोष अपना समझता है । २. जिसे सब भाँति से तुम्हारा भरोसा है । जिसको रामजी के भक्त प्यारे लगते हैं । उसके हृदय में बैदेही सहित वास करो ।

व्याख्या : संसार में उलटी बात है । जो बन जाय सो तो मैंने बनाया । बिगड़ जाय तो राम ने बिगाड़ा । यहाँ : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा । संसार में धन जन परिजन गुण चतुराई का भरोसा रहता है । पर यहाँ तो सब भाँति राम का भरोसा है । राम का प्रिय लगना नहीं कहते पर भक्त प्रिय लगें । अर्थात् भक्ति पर विशेष श्रद्धा है । यथा : पुनि रघुबीरहि भगति पियारी । अतः बैदेही सहित बसने को चाल्मीकिजी ने कहा ।

इस प्रकार के भक्त लङ्काकाण्ड के पूर्वार्ध में समुद्रजी हैं । १. गुन तुम्हार समुझै निज दोषा । यथा : छमहु देव सब अवगुन मोरे । प्रभु भल कीन्हि मोहि सिख दीन्हो । २. जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा । यथा : प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई । ३. रामभक्त प्रिय । यथा : जल निधि रघुपति दूत विचारी । तैं मैनाक होहि श्रम हारी ।

जाति पाँति धन धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥

सब तजि तुमहि रहइ उर लाई । तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥३॥

अर्थ : जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई प्रिय परिवार सुखदाई घर सब छोड़कर जो तुम्हारे में ली लगाये रहता है हे रघुराई ! तुम उसके हृदय में रहो ।

व्याख्या : जाति पाँति धन धर्म बड़ाई ये पाँच स्थान प्रतिष्ठा के हैं और परिवार तथा घर दो सुख के हैं । सो सबों को छोड़कर मन की वृत्तियों को तुम्हारे में लगावे उसके हृदय में रहो । वह अकेला है और अकेले तुम्ही में ली भी लगाये है । अतः अकेले आप भी रहो ।

ऐसे भक्त लङ्काकाण्ड के उत्तरार्ध में वानर सैनिक हैं। यथा : जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हरखे देव विलव न कीन्हा । वनचर देह धरी छिति मांही । अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाही । गिरि तरु नख आयुध सब बीरा । हरि मारग चित्तबहि मति धीरा । तथा : सुनु सुरपति कपि भालु हमारे । परै भूमि निसिचरन्ह जे मारे । मम हित लागि तजे इन्ह प्राणा । सकल जियाउ सुरेस सुजाना ।

सरगु नरकु अपवरगु समाना । जहँ तहँ देख धरें धनु वाना ॥
करम वचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि के उर डेरा ॥४॥

अर्थ : जिसे स्वर्ग नरक और मोक्ष समान है । सर्वत्र ही धनुर्वाणधारी को देखता है । मनसा वाचा कर्मणा आप का दास है । उसके हृदय में डेरा लगाओ ।

व्याख्या : १. जो सर्वत्र धनुर्वाणधारी सरकार को देखता है । उसके लिए स्वर्ग नरक दोनों समान है ।

२ मनसा वाचा कर्मणा सेवा में रत है । जिसे दूसरे का भरोसा नहीं । ऐसे भक्त उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध में सनकादिक हैं । ये सभी जगह सरकार को देखते हैं । अभेददर्शी हैं । यथा : रूप धरें जनु चारिउ वेदा । समदरसी मुनि बिगत बिभेदा । ३ सरकार में रति । यथा : आसा बसन व्यसन यह तिनही । रघुपति चरित होहि तहँ सुनही । ये असङ्ग विचरनेवाले हैं । गृही नहीं हैं । अतः इनके हृदय में आप भी संग रहित होकर डेरा कीजिये ।

दो. जाहि न चाहिअ कवहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु ।

बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु ॥१३१॥

अर्थ : जिसे कभी कुछ भी नहीं चाहिए और तुमसे जिसका स्वाभाविक प्रेम है उसके हृदय में निरन्तर वास करो । वही आपका अपना घर है ।

व्याख्या : किसी काल में किसी वस्तु की इच्छा नहीं । ऐसे भक्त भुसुण्डिजी हैं । यथा : मन से सकल वासना भागी । केवल रामचरन लय लागी । ऐसे का हृदय खास घर है । अतः इसमें निरन्तर रहो । ये ही चौदह भक्तिसूत्र वाल्मीकिजी से गोस्वामीजी को मिले हैं और इन्हीं के भाष्यरूप में सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया है ।

एहि विधि मुनिवर भवन देखाये । वचन सप्रेम राम मन भाये ॥

कह मुनि सुनहु भानु कुल नायक । आश्रमु कहउँ समय सुखदायक ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार मुनिजी ने घर दिखाये । उनके प्रेमयुक्त वचन रामजी को अच्छे लगे । मुनिजी ने कहा कि हे सूर्यकुल के नायक । सुनिये । अब इस समय सुख देनेवाला आश्रम बतलाता हूँ ।

व्याख्या : मुनिजी विधि के साथ बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक के भक्तों के मन को रहने के लिए दिखलाते गये । समझा कि अवध के महल में रहनेवाले हैं । जहाँ क्रोध के लिए भी पृथक् भवन बना हुआ है । कहीं सीताजी के

साथ रहते हैं। कही एकान्त में एकाकी रहते हैं। कही लक्ष्मणजी भी आजाते हैं। इनका एक भवन से काम नहीं चल सकता। इसलिए चौदह भवन दिखलाया और अनेक प्रकार से रहना कहा। वानी मधुर अमिअ रस बोरी से उपक्रम और वचन प्रेम से उपसंहार किया। अतः राम मन भाये कहकर प्रभु की स्वीकृति दिखलाया। मुनिजी के गौरव से स्पष्ट एवमस्तु न कहा।

भानुकुलनायक से लीलाविग्रह सूचित करते हैं। समय सुखदायक से भाव यह कि अन्तर्यामी रूप योग्य गृह। इस समय के लीला विग्रह के अनुकूल नहीं है। अतः इस समय के लिए सुखदायक स्थान बतलाते हैं।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ॥
सैलु सुहावन कानन चारु। करि केहरि मृग विहग विहारु ॥२॥

अर्थ : चित्रकूट पर्वत पर निवास करो। वहाँ तुम्हारे लिए सब प्रकार की सुविधा है। सुहावना पर्वत है। सुन्दर वन है। हाथी सिंह मृग और पक्षी विहार किये करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने पूछा था : अब जहाँ राउर आयसु होई : वास करहु कछु काल कृपाला। उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि चित्रकूट पर्वत पर निवास करो। यहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है। बड़ा सुहावना पर्वत है। राजधानी बनाने लायक है। वन भी बड़ा सुन्दर है। वन की सम्पत्ति से सम्पन्न है। उसीको इस समय राज्य बनाइये : इसका विस्तार भरतजी के आगमन के प्रसङ्ग में कहा गया है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि प्रिया निज तपवल आनी ॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि ॥३॥

अर्थ : पवित्र नदी है। जिसकी प्रशंसा पुराणों में है। इसे अत्रिजी की स्त्री अपने तपवल से लायी है। यह गङ्गाजी की धारा है। इसका नाम मन्दाकिनी है। पापरूपी बच्चों के लिए डाकिनीरूप है।

व्याख्या : जलाशय का सान्निध्य कहते हैं। मन्दाकिनी नदी वहाँ बहती है। बड़ी पवित्र है। गङ्गा की धारा है। भगीरथ तपवल से भागीरथी को लाये हैं और इसे अत्रिप्रिया अपने तपवल से लायी हैं। बड़े बड़े महापातक इसके आहार हैं। जैसे डाइन बच्चों को खा जाती है उसी भाँति यह महापातकों को खा जाती है।

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहो। करहि जोग जप तप तन कसहो ॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहु। राम देहु गौरव गिरिबरहु ॥४॥

अर्थ : अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं। योग और जप करते हैं तथा तप से शरीर को कसते हैं। रामजी ! चलो सबके परिश्रम को सफल करो और पर्वत श्रेष्ठ को बढ़ाई दो।

व्याख्या मुनियो के सत्सङ्ग की तुम्हे बड़ी चाह रहती है। यथा मुनिगन मिलन विसेष वन सर्वाहि भाँति हित मोर। सो अत्रि आदि बड़े बड़े मुनीश्वर वहाँ बसते हैं। जो मनसा वाचा कर्मणा परलोक जय में लगे हुए हैं। योग से मनोनिग्रह जप से वाणी का सदुपयोग तथा तप से शरीर का कसना वहाँ। यथा भरत भवन बसि तप तन कसही। वह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजुबलु मुख छवि सोई।

तुम्हारे वहाँ चलने से सबका श्रम सफल होगा। क्योंकि योग जप तप सब तुम्हारी प्राप्ति के लिए ही लोग करते हैं और तुम्हारे निवास से चित्रकूट की महिमा बढ़ेगी। अतः पर्वत श्रेष्ठ को बड़ाई दो। वह मेरुसे विमुक्त होकर विन्ध्य का शृङ्ग हो रहा है।

१६ चित्रकूट निवास प्रसङ्ग

दो चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।

आइ नहाये सरित वर, सिय समेत दोउ भाइ ॥१३२॥

अर्थ महामुनि ने चित्रकूट की अपार महिमा का वर्णन किया। तब सीता सहित दोनों भाइयों ने आकर उस श्रेष्ठ नदी में स्नान किया।

व्याख्या वाल्मीकिजी महामुनि हैं। इनका वर्णन अमोघ है। इन्होंने चित्रकूट की अपार महिमा वही। चित्रकूट वस्तुतः पर्वतों में जा परमेश्वर की विभूति मेरु पर्वत है उसका शिखर है। एकबार मेरु के गव से क्रुद्ध होकर वायुदेव ने उसे उड़ा देने की ठान ली। भगवान् ने उसकी महायत्ना के लिए गरुडजी को भेजा। उन्होंने मेरु को अपने डैनों से आच्छादित कर लिया। अतः वायु के प्रचण्ड वेग से भी मेरु की कोई हानि न हुई। मेरु ने कहा कि गरुडजी। मुझ तो कुछ पता नहीं चल रहा है। वायु कुछ बल दिखा रहे हैं कि नहीं। गरुडजी ने कहा कि बोलो मत। दबके पड़े रहो। बड़ी आपत्ति है। मेरु ने कहा कि तनिक सा मुझ भी सामना करने का अवसर दा। गरुडजी ने थोड़ा सा डैना खिसका दिया तो दो शृङ्ग उड़ गये। एक वृन्दावन में गिरा जिसका गोवर्धन नाम है। दूसरा विन्ध्य शृङ्गला में जा गिरा जिसे चित्रकूट कहते हैं। ये दोनों महामहिम शृङ्ग दधताभा के विहार स्थल मेरु के ही हैं। अतः पर्वतों में इनकी महिमा है।

मालूम होता है कि मुनिजी भी सरकार के साथ चित्रकूट आये। अतः विदाइ नहीं लिखी। आकर दोनों भाइयों ने सीताजी के सहित विषदगङ्गा मन्दाकिनी में स्नान किया। यहाँ आकर कहने का भाव है कि कवि अपने को चित्रकूट में मान रहे हैं।

रघुवर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ॥

लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥१॥

अर्थ रामजी ने कहा कि हे लक्ष्मण। घाट अच्छा है। अब कहीं ठहरने का

ठिकाना करो । लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर का करार देखा । जिसके चारो ओर धनुष की भाँति नाला फिरा हुआ था ।

व्याख्या नहाने के बाद घाट की प्रशंसा की और लक्ष्मणजी से कहा कि यही कही ठहरने की व्यवस्था करनी चाहिए । लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर के किनारे को पसन्द किया । क्योंकि उसके चारो ओर स्वभाव से ही रक्षा की व्यवस्था है । तीन तरफ तो एक नाला धनुष की भाँति घूमा हुआ है और दोनो ओर से पयस्विनी नदी में जा मिला । इस भाँति चारो ओर स्वभाव से खाई बनी हुई है ।

नदी पनच सर मम दम दाना । सकल कलुष कलि साउज नाना ॥

चित्रकूट जनु अचलु अहेरी । चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥२॥

अर्थ नदी मानो प्रत्यञ्चा है । शम दम दान वाण है । कलियुग के सत्र पाप शिकार हैं । चित्रकूट पर्वत ही मानो शिकारी है । मुठभेड के युद्ध में उसकी चोट खाली नहीं जाती ।

व्याख्या नदी मानो प्रत्यञ्चा है । बराबर धनुष पर मानो प्रत्यञ्चा चढ़ा ही रहता है । शम दम और दान ये तीन प्रकार के वाण हैं । नदी का आश्रयण करके इनका अनुष्ठान करने से कलियुग के सम्पूर्ण पाप मारे पड़ते हैं । वे ही मानो शिकार हैं ।

अहेरी बड़े चञ्चल होते हैं । लेट बैठकर दौड़कर चोट करते हैं । पर चित्रकूट रूपी अहेरी अचल है । पर घात कभी नहीं चूकता । सामने जाते ही मारता है । शिकारी को शिकार पर बड़ा चोप होता है । इसी भाँति चित्रकूट को कलिकलुष विध्वसन का बड़ा चोप है । पाप को मन्दाकिनी खा जाती है और कलिकलुष को चित्रकूट नष्ट करता है ।

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा । थलु विलोकि रघुवर सुख पावा ॥

रमेउ राम मनु देवन्ह जाना । चले सहित सुर थपति प्रधाना ॥३॥

“अर्थ : ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया । स्थल के देखने से रामजी को सुख हुआ । देवताओं ने जाना कि रामजी का मन रम गया । सो देवताओं के शवइयो में : स्थपति प्रधान विश्वकर्मा के साथ चले ।

व्याख्या • रामजी ने कहा : करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू । सो लक्ष्मणजी ने जगह तजबीज करके रामजी को दिखलाया । भाव यह कि मुझे तो पसन्द है । यदि सरकार को भी पसन्द हो । सरकार को बहुत पसन्द आया । इसलिए दर्शन मात्र से सुख पाना लिखते हैं । चित्रकूट भी अहेरी है । सरकार भी अहेरी हैं ।

इधर देवताओं ने जान लिया कि यह स्थल सरकार को पसन्द है । यही ठहरेगे । अतः विश्वकर्मा को साथ लेकर कुटी बनाने चले । सरकार को सुन्दर पर्णशाला की रुचि है । मुनिजी से कहा है • तहँ रुचि रुचिर परन तृन साला । वास करहुँ बहुत काल वृपाला । इसलिए देवताओं ने विश्वकर्मा को साथ लिया मोचा कि

हम लोगों के कारण अयोध्या का राजप्रसाद छोड़ा है । कुटी बनाकर रहना चाहते हैं । अतः पर्णशाला इनके रहने योग्य बननी चाहिए ।

कोल किरात वेष सब आये । रचे परन तृन सदन सुहाये ॥
बरनि न जाहि मंजु दुइ साला । एक ललित लघु एक विसाला ॥४॥

अर्थ : सब कोल किरात के वेष में आये और पत्ते तथा तृणों के घर बनाये । दो घर ऐसे सुन्दर बनाये कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता । उसमें एक सुन्दर छोटा सा है और एक बड़ा ।

व्याख्या : यदि देवता लोग अपने वेष से आते तो सरकार सेवा न लेते । इसलिए कोलकिरात का वेष धारण करके आये और पत्ते तथा तृणशाला बनाने लगे । विश्वकर्मा बनाने में लगे हैं । अतः पर्ण तृणशालाएँ ऐसी बनीं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता । लक्ष्मणजी के रहने के लिए एक छोटी सुन्दर सी शाला बनायी और सरकार के लिए बड़ी शाला बनायी । क्योंकि जगदम्बा साथ में थी ।

दो. लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत ।

सोह मदन मुनि वेष जनु, रति रितु राज समेत ॥१३३॥

अर्थ : लक्ष्मण और जानकी सहित प्रभु उस पर्णशाला में ऐसे विराजमान हुए मानो कामदेव रति और वसन्त के साथ मुनि का वेष धारण किये हुए हैं ।

व्याख्या : जो सुन्दर है वह सभी अवस्था में सुन्दर है । सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के साथ मुनिवेष से पत्ते की कुटिया में ठहरे हैं । पर वहाँ भी उनकी शोभा है । मानो स्वयं काम ने अपनी प्रिया रति तथा सखा वसन्त ऋतु के साथ मुनिवेष धारण कर रक्खा है ।

अमर नाग किन्नर दिसिपाला । चित्रकूट आए तेहि काला ॥

रामु प्रनामु कीन्ह सब काहू । मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥१॥

अर्थ : देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल उस समय चित्रकूट आये । रामजी ने सबको प्रणाम किया । देवता लोग नेत्र का फल पाकर प्रसन्न हुए ।

व्याख्या : अमर नाग किन्नर दिक्पाल कहने का भाव कि सभी श्रेणी के देवता उस समय चित्रकूट आये । जिस भाँति नारदजी को सोच हुआ था : बिरहवत भगवतहि देखी । नारद मन भा सोच बिसेखी । मोर श्राप करि अंगीकारा । सहत राम नाना दुख भारा । उसी प्रकार का भाव देवताओं के भी हृदय में उदय हुआ कि हम लोगो के कारण रामजी आज अयोध्या का राजप्रसाद छोड़कर पर्णकुटी में निवास कर रहे हैं । अतः इस समय दर्शन के लिए उपस्थित होना चाहिए । इस प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से देवता लोग कभी नहीं आये थे ।

मर्मादापुरुषोत्तम रामजी ने सबको प्रणाम किया । देवता लोग सरकार का

दर्शन पाकर प्रसन्न हो गये । इन लोगों ने भी रामजी के दर्शन से अपने नेत्रों का साफल्य माना ।

वरषि सुमन कह देव समाजू । नाथ सनाथ भये हम आजू ॥
करि विनती दुख दुसह सुनाये । हरपित निज निज सदन सिधाये ॥२॥

अर्थ : देव समाज ने पुष्पवर्षा कर दी और कहने लगे कि हे नाथ ! आज हम लोग सनाथ हो गये । विनती करके अपना दुःसह दुःख सुनाया और प्रसन्न होकर अपने अपने घर गये ।

व्याख्या : इन्ही लोगो ने कुमन्त्रणा करके सरस्वती द्वारा मन्यरा तथा कैकेयी की बुद्धि को पलटवाया । फलतः रामजी को वनवास मिला । अतः अपने को सापराध मान रहे हैं । सबने पुष्पाञ्जलि दी । अतः फूलों की वर्षा हो गयी । बोले कि हम लाग अनाथ हो रहे थे । जब सरकार ने इतना कष्ट उठाया कि हम लोगो के लिए आज पर्णशाला में निवास स्वीकार किया तो हम लोग सनाथ हो गये । इस भाँति अनेक विनती करके अपना अपना दुःसह दुःख सुनाया कि रावण के मारे हम लोगो के लोक उजाड़ हो गये । रावण के दरवार में हाथ जोड़कर खड़ा रहना पड़ता है । तिस पर भी इज्जत नहीं वचती । देव जच्छ गधर्व मुनि किन्नर नाग कुमारि । जीति वरो निज बाहु बल बहु सुन्दर वर नारि । इत्यादि । अपनी रक्षा के लिए सन्नद्ध मालिक से अपना सब दुःख सुना देने से सन्तुष्ट है । उन्हें अनुकूल देवकर प्रसन्न हो घर लौट गये ।

चित्रकूट रघुनन्दनु छाये । समाचार सुनि सुनि मुनि आये ॥
आवत देखि मुदित मुनि वृंदा । कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा ॥३॥

अर्थ : श्रीरामजी चित्रकूट में आ बसे हैं । यह समाचार सुन सुनकर मुनि लोग आये । मुनिवृन्द को आनन्दित हुए आते देखकर रघुकुल के चन्द्रमा रामचन्द्र ने दण्डवत् प्रणाम किया ।

व्याख्या : देवताओं को सब पता था । इसलिए कोल किरात वेप से आकर पर्णशाला बना गये । फिर अपने रूप से आकर अपना दुःख निवेदन कर गये । पर मुनि लोगो को सरकार के निवास करने के बाद पता चला । अतः पीछे से मुनि लोग आये । सरकार ने देखा कि मुनि लोग बड़े प्रसन्न चले आ रहे हैं । देवताओं से भी अधिक आदर सरकार के हृदय में मुनियों का है । अतः साष्टाङ्ग दण्डवत् किया । रघुकुल के चन्द्र हैं । सभी चकोरो को एक साथ प्रणाम करने में समर्थ हैं । अथवा रघुकुल में मुनियों का बड़ा आदर है और ये तो उस कुल के चन्द्रमा हैं । ये क्यों न इतना आदर करें ।

मुनि रघुवरहि लाइ उर लेही । सुफल होन हित आसिष देही ॥
सिय सौमिनि राम छवि देखहि । साधन सकल सफल करि लेखहि ॥४॥

अर्थ मुनि लोग रामजी को कलेजे से लगा लते हैं और वाणी की सफलता के लिए उन्हें आशीर्वाद देते हैं। सीता लक्ष्मण और रामजी की छवि देखते हैं और अपने सब साधनों को सफल मान रहे हैं।

व्याख्या सरकार के उन्मादकारी सौन्दर्य पर मुनिगण मोहित हैं। कलजे से लगाते हैं। सरकार की महिमा जानते हैं। फिर भी आशीर्वाद अपनी वाणी की सफलता के लिए देते हैं। भाव यह कि इनके बल्याण में सन्देह क्या? अतः जो आशीर्वाद इन्हें देगे सभी सफल होंगे। ये ही मुनि लोग कृष्णावतार में गोपिका हुए। तीनों मूर्तियों की छवि के दर्शन से अपने साधन की सफलता मानते हैं। यथा आज सफल तप तीरथ त्यागू। आज सफल जप जोग विरागू। सफल सकल सब साधन साजू। राम तुमहि अवलोकत आजू। वाल्मीकिजा ने जा कहा था चलहु सफल श्रम सत्रकर करहु सा सत्र का श्रम सफल हुआ।

दो जथाजोग सनमानि प्रभु, विदा किये मुनि वृद्ध।

करहि जोग जप जाग तप, निज आश्रमन्हि सुछन्द ॥१३४॥

अर्थ प्रभु ने जो जिस योग्य था उसका वैसा सम्मान वरके विदा किया। व लोग अपने अपने आश्रमों में स्वतन्त्र होकर याग यज्ञ जप तप करने लगे।

व्याख्या साष्टाङ्ग दण्डवत् तो प्रभु ने सबको समान रूप से ही किया। पर सम्मान में योग्यता के तारतम्य पर ध्यान रक्खा। मिलने के बाद सबको विदा किया। अब ये लोग अपने अपने आश्रमों में योग यज्ञ जप स्वच्छन्द होकर करते हैं। पहिले गक्षसों को डरते थे। अतः स्वच्छन्दता नहीं रही। वाल्मीकिजी ने यज्ञ का नाम नहीं लिया। इतना ही कहा करहि योग जप तप तन वसही। योग जप तप तो छिपकर भी हो सकता है। पर यज्ञ तो छिपकर नहीं हो सकता और देखत जग्य निसाचर धावहि। करहि उपद्रव मुनि दुख पावहि। सो मुनि लोग यज्ञ नहीं कर सकते थे। अब किसी का डर नहीं। स्वच्छन्द होकर यज्ञ भी करते हैं।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरपे जनु नव निधि घर आई ॥

कद मूल फल भरि भरि दोना। चले रक जनु लूटन सोना ॥१॥

अर्थ यह समाचार कोल किराना को मिला। व ऐसे प्रसन्न हुए माना नवोनिधि घर में आगयो। वे वन्द मूल फल दाना भर भर के ऐसे चल जैसे दरिद्र साना लूटने चला हा।

व्याख्या मुनिवृन्द का जाते और लौटते देखकर जिज्ञासा हुई कि क्या बात है। तब पता लगा। केवल पता लगने का यह माहात्म्य है कि उन्हें ऐसा आनन्द हुआ कि नवोनिधियाँ घर में आगयीं। महापद्मश्च पद्मश्च शम्बा मकरवच्छर्पा। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च सर्वश्च निधयो नव। निधि का अर्थ खजाना भी है पर खजाने का आना नहीं बनता। इसलिए नवनिधि को अधिष्ठानों दवों अर्थ किया गया।

देवता और ऋषियों को भेंट मिला करती है । इसलिए वे लोग भट लकर नहीं आये । ये भेंट लेकर भी चले । जो जिसके पास होता है वही भेंट भी देता है । इनके पास कन्द मूल फल छोड़कर और क्या है । इसलिए कन्द मूल फल को दोनों में भर भरकर ऐसे आह्लाद से चले जैसे दरिद्र जिसे अन्न भी मिलना कठिन हो सुने कि सोने की लूट हो रही है और दौड़ पड़े । उसी भाँति ये भी चल ।

तिन्ह महं जिन्ह देखे दोउ भ्राता । अपर तिन्हहि पूछहि मगु जाता ॥

कहत सुनत रघुवीर निकाई । आइ सवन्हि देखे रघुराई ॥२॥

अर्थ उनमें से जिन्होंने दोनों भाइयों को देखा था दूसरे रास्ते में जाते हुए उनसे पूछते हैं । इस भाँति रामजी की सुन्दरता कहते सुनते आकर सबों ने रघुराई को देखा ।

व्याख्या कुछ देखकर लौट रहे थे । उनसे सरकार के विषय में प्रश्न करते हैं कि तुम देख आये । बतलाओ तो कैसे सुन्दर है ? कैसा स्वभाव है ? वे भी वर्णन करते हुए साथ हो लिये । इस भाँति सौन्दर्य और स्वभाव का वर्णन करते हुए और सुनते हुए सबों ने आकर सरकार को देखा ।

करहि जोहार भेट धरि आगे । प्रभुहि विलोकहि अति अनुरागे ॥

चित्र लिखे जनु जहं तहं ठाढे । पुलक सरीर नयन जल बाढे ॥३॥

अर्थ भेट सामने रखकर जोहार करते हैं और बड़े प्रेम से प्रभु का दर्शन करते हैं । जैसे चित्र में लिखे हो वैसे ही जो जहाँ था वह वही खड़ा रह गया । उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में जल भर आया ।

व्याख्या कन्द मूल फल जो दोनों में भरकर लाये थे उन्हें पहिले भेंट के रूप में सामने रक्खा तब जोहार किया । आजकल जैसे हाथ में लोग सलाम करते हैं उसी भाँति दोनों हाथों से जोहार किया जाता है । तत्पश्चात् सरकार के रूप माधुर्य का दर्शन करते हुए प्रेम में मग्न होकर एकदम स्तब्ध हो जाते हैं । उनका कोई अङ्ग हिलता नहीं । मानो चित्र में लिखे हैं । सात्त्विक भाव हो जाने से शरीर में पुलक हो गया है और नेत्रों में जल है ।

राम सनेह मगन सब जाने । कहि प्रिय वचन सकल सनमाने ॥

प्रभुहि जोहारि वहोरि वहोरी । वचन विनीत कहहि कर जारी ॥४॥

अर्थ रामजी ने जान लिया कि सब स्नेह में मग्न हैं । अतः प्रिय वचन बोलकर सबका सम्मान किया । बार बार जोहार करते हैं और विनययुक्त वचन हाथ जोड़कर कहते हैं ।

व्याख्या देखा कि सब प्रेम में डूबाडूब हैं । कोई कुछ बोलता नहीं तो स्वयं सरकार ही प्रिय वचन बोल । तुम लोग राजी तो हो । बाल बच्चे तो राजी हैं । वन

मे फल मूल तो यथेष्ट रूप से प्राप्त होता है। तुम लोगो को कोई कष्ट तो नहीं है इत्यादि।

सरकार की वाणी सुनकर और भी प्रेम बढ़ा। अतः बार बार जोहार करते हैं और विनीत वचन हाथ जोड़कर बोलते हैं।

दो. अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाय।

भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय ॥१३५॥

अर्थ : अब हम प्रभु के चरणों के दर्शन से सनाथ हो गये। हे कोसलराय। हमारे भाग्य से आपका यहाँ आगमन हुआ है।

व्याख्या : मालिक के चरण दर्शन से दास सनाथ हो जाते हैं। नाथ के चरण दर्शन न होने से जीव अनाथ रहते हैं। कोसलराय के वन में आकर बसने का प्रयोजन क्या? यह मेरा भाग्य ही है जो आप यहाँ आ बसे हैं। देवताओं से प्रेमाधिक्य मुनियों ने दिखाया। अब उनसे भी अधिक प्रेम कोल किरातो में दिखलाते हैं। पिता दोन्ह मोहि कानन राजू का साफल्य स्पष्ट दिखायी पड़ रहा है।

धन्य भूमि वन पथ पहाड़ा। जहाँ जहाँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥

धन्य विहंग मृग कानन चारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ। जहाँ जहाँ तुमने पाँव रखे वह भूमि वन रास्ता और पहाड़ धन्य हैं। ये वनचारी पशु पक्षी धन्य हैं जिनके जन्म तुम्हारे दर्शन से सफल हो गये।

व्याख्या : घर से चलने में भूमिखण्ड वन मार्ग और पहाड़ अवश्य ही मिले होंगे। क्योंकि इस घोर वन में बिना वन पहाड़ आदि उल्लघन किये कोई आ नहीं सकता। वे सब आपके चरण स्पर्श से धन्य हो गये प्रेम के आवेश में कोल किरातो के मुख से ऐसी बातें निकल रही हैं जो शास्त्र सम्मत हैं।

नगर के विहंग मृग तो तुम्हारा दर्शन पाते हाथे। पर अब तो जङ्गल के विहंग मृग धन्य हो रहे हैं। दर्शन पा रहे हैं। उनका जन्म सफल हो गया। यथा : राम चरन वारिज जब देखौ। तब निज जन्म सफल करि लेखौ।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥

कीन्ह बासु भल ठाउ विचारी। इहाँ सकल रितु रहव सुखारी ॥२॥

अर्थ : हम सब तो सकुटुम्ब धन्य हो गये। क्योंकि तुमको आँख भरकर देख रहे हैं। तुमने बहुत अच्छी जगह तजबीज करके निवास किया है यहाँ पर सभी ऋतुओं में सुखी रहोगे।

व्याख्या : भूमि वन पथ पहाड़ जड़ है वे देख नहीं सकते। अतः चरण स्पर्श से धन्य हुए। वनचारी विहंग मृग उनकी अपेक्षा चेतन हैं। देख सकते हैं। वे चलते फिरते दृष्टि पड़ जाने से धन्य हुए। पर हम लोग तो बालवच्चो के साथ

धन्य हुए । क्योकि आँख भरकर देख रहे हैं • जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नही अघाय ।

उन कोल किरातो ने इस बात पर भी विचार किया कि यहाँ पर सरकार ठहरे हैं तो किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं होगा । तो इसी निश्चय पर पहुँचे कि यह स्थल सभी ऋतुओं में सुखदायक है । अतः सरकार के पसन्द का अनुमोदन करते हैं कि निवास स्थान सरकार ने ठीक तजबीज किया ।

हम सब भाँति करव सेवकाई । करि केहरि अहि बाध बराई ॥
वन बेहड़ गिरि कदर खोहा । सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥३॥

अर्थ : हम लोग हाथी सिंह सर्प और व्याघ्र को इधर आने ही न देंगे । सब प्रकार से सेवा करेंगे । वन अगम्य पर्वतों को अगम्य कन्दराएँ और खोह सबके सब हमारे रत्तो रत्ती देखे हुए हैं ।

व्याख्या हम लोग सरकार की सब भाँति से सेवा करेंगे । इंधन पत्ता कन्द मूल फल आदि से तो सेवा करेहीगे । खतरे में भी बँचावेंगे । करि केहरि को इधर न आने देना कौन सी बड़ी बात है । हम साँप को भा इधर से न आने देंगे ।

बोहड़ वन में करि केहरि कन्दर में सर्प और खोह में व्याघ्र रहते हैं । सो सब हमारे रत्ती रत्ती देखे हुए हैं । करि केहरि अहि व्याघ्र के निवास स्थान जानते हैं । उनकी सख्या जानते हैं । उन्हें बहकाकर दूसरे रास्ते में कर देना जानते हैं ।

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउव । सर निरझर जल ठाँउ देखाउव ॥
हम सेवक परिवार समेता । नाथ न सकुचव आयसु देता ॥४॥

अर्थ : हम आपको जहाँ तहाँ शिकार खेलावेंगे । तालाब झरने और रमणीय स्थल दिखलावेंगे । हम परिवार सहित सरकार के सेवक हैं । नाथ । आज्ञा देने में सङ्कोच न करियेगा ।

व्याख्या • आज भी जङ्गली ही शिकार खेलाते हैं । इसलिए कहते हैं कि तालाब झरना जहाँ जहाँ जानवर पानी पीने जाते हैं और रम्यस्थल जहाँ वे रहते हैं सब तुमको दिखायेंगे । हँकवा करके आपके सामने ला देंगे । वे सब समझ रहे हैं कि बड़े शिकारी हैं । शिकार के लिए यहाँ ठहरे हुए हैं ।

दो वेद वचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना अयन ।

वचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक वयन ॥१३६॥

अर्थ जो वेद के लिए वचन से अगम्य हैं । मुनि के लिए मन से अगम्य हैं । वे करुणायुक्त किरातो की बातें इस भाँति सुन रहे हैं जैसे बाप बच्चों की बातों को सुनता है ।

व्याख्या नेति नेति जेहि वेद निरुपा । अतः वेद वचन से अगम और जितिपवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावही । अतः मुनि मन अगम है ।

प्रभु ऐसे करणायतन हैं कि किरातो की बातें मन लगाकर बड़े चाव से सुन रहे हैं । जैसे पिता बालक की बातें सुनता है । यथा जो बालक कह तोतरि बाता । सुनहि मुदित मन पितु अरु माता ।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा । जानि लेउ जो जाननिहारा ॥

राम सकल वनचर तब तोपे । कहि मृदु वचन प्रेम परिपोष ॥१॥

अर्थ रामजी को केवल प्रेम ही प्यारा है । जो जाननेवाला हो जान ल । रामजी ने सब जङ्गलियों को प्रेम से परिपुष्ट कोमल वचन कहकर तुष्ट किया ।

व्याख्या जप योग नियमव्रत रहित प्रेम केवल प्रेम है । सो रामजी को केवल प्रेम प्यारा है । यथा जो जप जाग जोग व्रत वर्जित केवल प्रेम न चहते । तो कत सुर मुनिवर विहाय ब्रज गोपगेह बसि रहते । केवल प्रेम पर सरकार रीझ जाते हैं । यथा रीझत राम सनेह निसोते । ग्रन्थकार कहत हैं कि इस प्रसङ्ग से जो जिज्ञासु है वे जान लें ।

प्रेम की प्यास को सरकार ने प्रिय वचन से शान्त किया । मृदु वचन से ही प्रेम परिपुष्ट होता है । यह सरकार को बडाई है कि वनचर को भी तुष्ट करते हैं ।

विदा किए सिरु नाइ सिधाए । प्रभु गुन कहत सुनत घर आए ॥

एहि विधि सिय समेत दोउ भाई । बसहि बिपिन सुर मुनि सुखदाई ॥२॥

अर्थ विदा किया तो प्रणाम करके चल । सरकार के गुणा को कहते सुनते घर आये । इस भाँति सुरमुनिसुखदायी दानो भाई सोता सहित वन में बसने लगे ।

व्याख्या आश्वासन देकर देवताओं को विदा किया । सम्मान करके मुनियों को विदा किया । अब प्रेम से परितुष्ट करके कोल किरातो को विदा किया । सरकार की निकाई कहते सुनत आये थे । अब प्रभु का गुण कहत सुनते घर लौटते हैं ।

दरबार लगा रहता है । कभी देवता लोग आये । कभी मुनिगण पधारे । कभी कोल किरात हाजिर हुए । इस भाँति प्रभु वन में सुखी होकर बसते हैं । सुर मुनि के सुख के लिए ही वनवास अङ्गीकार किया है ।

जब तें आइ रहे रघुनायकु । तब तें भयउ बनु मगल दायकु ॥

फूलहि फलहि ब्रिटप विधि नाना । मजु बलित वर वेलि बिताना ॥३॥

अर्थ जब से रघुनायक आकर बसे तब से वन मङ्गलदायक हो गया । नाना प्रकार के पेड़ फूल और फल से भरे हुए हैं । सुन्दर लताओं ने लिपटकर मण्डप बना रक्खा है ।

व्याख्या जब से प्रभु आकर ठहरे तब से प्रकृति में परिवर्तन हो गया । वन में अनेक प्रकार के पेड़ हैं । उनके फूलने और फलने का समय अलग अलग है । पर प्रभु के पदार्पण का यह प्रभाव है कि सब वे सब फूल फल रहे हैं । इस भाँति भयानक

वन भी मङ्गलदायक हो गया । इस प्रकार का प्रकृति में परिवर्तन प्रभु के पूर्णावतार का द्योतक है । इनके सयोग से चराचर सुखी तथा वियोग में दुःखी हो जाते हैं ।

सुरतरु सरिस सुभाय सुहाये । मनहुं विबुध बन परिहरि आये ॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी । त्रिविध बयारि वहइ सुख देनी ॥४॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के समान वे स्वभाव से ही सुन्दर हैं । मानो अनेकों उपवनों को छोड़कर आये हैं । भँवरों की श्रेणियाँ अधिक सुन्दर गुञ्जार कर रही हैं और सुख देनेवाली शीतल मन्द सुगन्ध हवा बह रही है ।

व्याख्या : जिन पेड़ों का ऊपर उल्लेख हुआ है अब उनकी शोभा कहते हैं कि ऐसे सुन्दर पेड़ कहीं दिखायी नहीं देते । मालूम होता है कि ये इस लोक के वृक्ष ही नहीं हैं । ये देवलोक के वृक्ष हैं । सरकार का आना सुनकर ये भी नन्दनादि वनों का परित्याग करके यहाँ चले आये हैं । उनके फल फूल के देखने से मालूम होता था कि ऐसे ही कल्पवृक्ष होते होंगे ।

भौरों का गुञ्जार मञ्जु होता ही है । पर यहाँ के भौरों का गुञ्जार भी अधिक मञ्जु है । वन में घोर घाम हिम वात चलता है । सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्धयुक्त वायु चल रही है ।

दो. नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्र चकोर ।

भाँति भाँति बोलहि विहंग, श्रवन सुखद चित्त चोर ॥१३७॥

अर्थ : नीलकण्ठ कोयल तोता पपीहा चकवा और चकोर अनेक प्रकार की बोलियाँ बोल रहे हैं । जो कानों को सुख देनेवाली तथा चित्त को चुरानेवाली हैं ।

व्याख्या : जिस भाँति सब ऋतु के 'फूल और फल लग रहे हैं । उसी भाँति सब ऋतुओं की चिड़िया बोल रही है और ऐसा मधुर बोल रही हैं कि सुनने से कान को ऐसा सुख होता है कि मन उधर ही लग जाय । नीलकण्ठ ग्रीष्म में : बोलते हैं । 'कलकण्ठ वसन्त में शुक शिशिर में 'चातक वर्षा में चकवा हिमऋतु में रात के बड़ी होने से । चकोर शरद में : चन्द्रमा के निर्मल होने से । सो यहाँ सभी ऋतुओं में बोल रहे हैं । इस भाँति वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा ।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा । विगत बैर, विचरहि सब संग ॥
फिरत अहेर राम छवि देखी । होहि मुदित मृगवृन्द बिसेखी ॥१॥

अर्थ : हाथी सिंह बन्दर वाराह और मृग चैर छोड़कर एक सङ्ग विचर रहे हैं । शिकार के लिए घूमते हुए रामजी की छवि देखकर मृग लोग अधिक आनन्दित होते थे ।

व्याख्या : पक्षियों का वर्णन करने के बाद वन्य पशुओं का वर्णन करते हैं । करि केहरि कपि कोल कुरंगा में वर्ण मैत्री दिखाकर इनमें मैत्री द्योतित करते हैं । इनमें भक्ष्यभक्षक सम्बन्ध है प्रीति हो नहीं सकती । पर सरकार के पादापण से यह

असम्भव भी सम्भव हो गया । सब जीवों ने सहज वैर परित्याग किया । उस स्थल में आकर परस्पर में अनुराग करने लगते थे ।

राघव भावत मोहि विपिन की वीथिन्ह धावनि ।

सुन्दर स्यामल अग वसन पीत सुरग कटि निपग परिकर मेरवनि ।

तैसइ श्रमसीकर रुचिर राजत मुख तैसिये ललित भ्रुकुटिन्ह की नवनि ।

देखत खग निवर मृगरवनिन्ह जुत थकित विसारि जहाँ तहाँ की भवनि ।

हरिदरमन फल पायो है ग्यान विमल जाचत भगति मुनि चाहत जवनि ।

श्रवन सुख करनि भवसरिता तरनि गावत तुलसीदास कीरत पवनि ।

विबुध विपिन जहँ लगि जग माही । देखि रामवनु सकल सिहाही ॥

सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या । मेकलसुता गोदावरि धन्या ॥२॥

सब सर सिंधु नदी नद नाना । मदाकिनि कर करहि बखाना ॥

अर्थ ससार में जितने देवताओं के वन हैं वे सब रामवन को देखकर सिहाते हैं । गङ्गा सरस्वती यमुना नर्मदा और गोदावरी आदि पुण्य नदियाँ सभी सरोवर नाना नदी और नद सब मन्दाकिनी की सराहना करते हैं ।

व्याख्या जिस भाँति सब देवताओं के पृथक् लोक हैं वैसे ही उनके पृथक् पृथक् उपवन हैं जहाँ वे विहार करते हैं । वे वन आज रामवन की सम्पत्ति और भाग्य देखकर ईर्ष्या करते हैं कि हमारा भाग्य ऐसा नहीं हुआ कि सिय रघुवीर विहार स्थल हो सकें ।

ससार में गङ्गादिक जितनी पुण्य नदियाँ हैं वे मन्दाकिनी की प्रशंसा करती हैं कि मन्दाकिनी धन्य है । जिसमें तानो काल सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के सहित अवगाहन करते हैं ।

उदय अगस्त गिरि अरु कैलास । मंदर मेरु सकल सुरबास ॥३॥

सैल हिमाचल आदिक जेते । चित्रकूट जसु गावहि तेते ॥

बिधि मुदित मन सुखु न समाई । श्रम बिनु बिपुल बडाई पाई ॥४॥

अर्थ उदयाचल अस्ताचल कैलास और मन्दर मेरु आदि जितने देवताओं के निवास स्थान हैं और हिमालय आदिक जितने पर्वत हैं सब चित्रकूट का यशोगान करते हैं । विन्ध्याचल तो ऐसे प्रसन्न है कि उनके मन में आनन्द समा नहीं रहा है । उन्हें बिना परिश्रम ही बड़ी भारी बडाई मिल गयी ।

व्याख्या उदयाचल और अस्ताचल सूर्य नारायण से सम्बद्ध हैं । कैलास जहाँ सदाशिव उमा का निवास रहता है । मन्दर और मेरु पर तो सब देवताओं का निवास है । हिमालय पर्वतों के राजा ही ठहरे और अन्य जो महेन्द्राचलादि पुण्य पर्वत बड़े बड़े विशाल हैं वे सब छोटे से चित्रकूट पर्वत का यशोगान कर रहे

। क्योंकि वह आज सरकार का निवासस्थान हो रहा है। उसकी महिमा बहुत बढ़ी हुई है।

विन्ध्याचल के आनन्द का तो कुछ ठिकाना ही नहीं। क्योंकि उन्हें बिना परिश्रम ही इतनी बड़ी बड़ाई मिली। चित्रकूट विन्ध्यश्रेणी में ही है। विन्ध्य को बड़ाई पाने की बड़ी इच्छा थी। इसलिए वे बड़े भी थे। पर अगस्त्यजी ने उनका बड़ना रोक दिया। उनका सब श्रम ही व्यर्थ हो गया था। सो इस समय बिना परिश्रम ही इतनी बड़ी बड़ाई पा गये।

॥ दो चित्रकूट के विहंग मृग, बेलि बिटप तृण जाति ।

पुन्य पुंज सब धन्य अस, कहहि देव दिन राति ॥१३८॥

अर्थ : चित्रकूट के पक्षी पशु लता वृक्ष और तृण की जातियाँ पुण्यपुञ्ज हैं और धन्य हैं ऐसा देवता दिन रात कहते हैं।

व्याख्या इन सबो को सरकार का सानिध्य प्राप्त है। अतः सामोप्यसुख का अनुभव कर रहे हैं। देवताओं को तो केवल वैषयिक सुख प्राप्त है। अतः देवता लोग चित्रकूट के पशु पक्षी लता वृक्ष और घास फूस के पुण्य की प्रशंसा करते हैं। देवलोक में रात दिन इनके पुण्य का कथनोपकथन चल रहा है।

नयनवत रघुबरहि बिलोकी । पाइ जनम फल होहि विसोकी ॥

परसि चरन रज अचर सुखारी । भये परम पद के अधिकारी ॥१॥

॥ अर्थ : आँखवाले रामजी को देखकर जन्म होने का फल पाकर शोक रहित पद को प्राप्त होते हैं और अचर चरणरज की स्पर्श करके सुखी होते हैं। उन्हें मोक्ष का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

व्याख्या देवताओं द्वारा दिन रात चित्रकूट के चर अचर के गुणगान का कारण कहते हैं कि जिन्हें आँखें हैं वे तो रामजी को देखकर आँख होने का फल पा जाते हैं। आँख होने का फल तो यह है कि रामजी के चरणकमलों का दर्शन करके जन्म सफल हो। यथा : राम चरन बारिज जब देखी । तब निज जनम सफल करि लेखी । सो यहाँ चित्रकूट के विहंग मृग दर्शन करके शोक रहित पद को प्राप्त हो रहे हैं। जिन्हें आँखें नहीं हैं ऐसे अचर स्थावर योनिवाले चरण की धूलि के स्पर्श से सुखी हो रहे हैं। उन्हें परमपद का अधिकार प्राप्त हो रहा है जो देवताओं को प्राप्त नहीं है। यावदधिकार देवताओं को मुक्ति नहीं मिलती।

सो बनु सेलु सुभाय सुहावन । मगलमय अतिपावन पावन ॥

महिमा कहिअ कवन विधि तासू । सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥२॥

अर्थ : वह वन और पर्वत तो स्वभाव से ही सुहावना है। मङ्गलमय है। अति पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है। उसकी महिमा किस भाँति कही जाय। सुख के समुद्र ने स्वयं जहाँ निवास किया हो।

व्याख्या अब रामवन और रामशैल का वृत्तान्त कहते हैं कि वह स्वभाव से ही सोहावना है। सरकार का निवास होगा इसलिए वे सुन्दर पैदा ही हुए। मङ्गलमय है। वहाँ निवास करने से यात्रा करने से मङ्गल होता है। जो अति पावन हैं उन्हें भी पावनता वहाँ से मिलती है। क्योंकि सुखसागर रामजी ने वहाँ निवास किया है। उसकी महिमा अकथनीय है कही नहीं जा सकती।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई । जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ॥
कहि न सकहि सुखमा जसि कानन । जौ सत सहस होहि सहसानन ॥३॥

अर्थ क्षीर सागर और अवध छोड़कर जहाँ आकर राम जानकी ने निवास किया है। यदि एक लाख शेष भी हो तो भी वन की शोभा वे नहीं कह सकते।

व्याख्या सरकार का विग्रह रूप से प्राकट्य क्षीरसागर और वैकुण्ठ म माना जाता है। यथा पुर वैकुण्ठ जान वह कोई। कोउ वह पयनिधि वस प्रभु सोई। वैकुण्ठ से भी अधिक अवध माना गया है। यथा अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ। यहाँ अवध का उल्लेख है इसलिए वैकुण्ठ का नाम नहीं दिया। भावार्थ यह कि दोनों प्रिय निवास स्थान छोड़कर राम जानकी और लक्ष्मण यहाँ आ बसे हैं। उस वन की शोभा को लाखों शेष भी नहीं कह सकते। यथा जो सुख सुधा सिंधु सीकरते सिव विरचि प्रभुताई। सो सुख सिंधु उमगि चर्यौ दस दिसि कवन जतन कहौं गाई।

सो मैं वरनि कहौ विधि केही । डाबर कमठ कि मदर लेही ॥
सेवाहि लखनु करम मन वानी । जाइ न सीलु सनेहु बखानी ॥४॥

अर्थ उसे मैं किस भाँति वर्णन कर सकता हूँ। कछुवा का बच्चा क्या मन्दर धारण कर सकता है। लक्ष्मणजी कर्म मन वाणी से सेवा करते हैं। उनके स्नेह शील की प्रशंसा नहीं की जा सकती।

व्याख्या उस परम शोभा का वर्णन गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं कैसे करूँ। मन्दर पर्वत को सब सुरासुर मिलकर धारण न कर सके तब कच्छपरूप से भगवान् ने पीठ पर धारण किया। उसे क्या कच्छप का बच्चा धारण कर सकता है? वह शोभा मन्दर की भाँति महान् है और मैं कच्छप के बच्चे की भाँति तुच्छ जीव हूँ। उसका वर्णन मुझसे सर्वथा अशक्य है। डाबर शब्द का प्रयोग पुत्र के अर्थ में गोस्वामीजी ने कवित्त रामायण में भी किया है। यथा सोई बाँह गही जो गह्यौ समीर डाबरो।

॥ बिना शील और स्नेह के सेवा में सरसता नहीं आती। मनसा वाचा कर्मणा सेवा लक्ष्मणजी वर्णनातीत स्नेह के साथ कर रहे हैं। जेहि न राम बन लहहि कलसू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू का साफल्य दिखाया।

दो छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेहु।

करत न सपनेहुँ लखन चितु, बधु मातु पितु गेहु ॥१३९॥

अथ क्षण क्षण सीता रामजी के चरणों का दर्शन करके और अपने ऊपर उनका प्रेम देखकर सपने में भी लक्ष्मणजी भाई माँ बाप तथा घर का ध्यान नहीं करते ।

व्याख्या लक्ष्मणजी का प्रेम इतना बड़ा चढ़ा है कि प्रत्येक क्षण राम जानकी के चरणों के दर्शन का आनन्द लूट रहे हैं तथा उनका प्रेम अपने ऊपर देख रहे हैं । जिस पर अपना प्रेम हो वह भी अपने से प्रेम करे तभी प्रेम का आनन्द पूरा होता है । सो लक्ष्मणजी को पूर्णानन्द प्राप्त है । अतः उसी में मग्न होकर लक्ष्मणजी भाई माँ बाप और घर को याद भी नहीं करते । यहाँ घर शब्द से मेहिनी अभिप्रेत है ।

राम सग सिय रहति सुखारी । पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥
छिनु छिनु प्रिय विधु वदनु निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ॥१॥

अर्थ पुर परिजन और घर की सुधि भूलकर रामजी के साथ सीताजी सुखी रहती हैं । प्रतिक्षण प्रिय के चन्द्रवदन को देखकर चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं ।

॥ व्याख्या बिनु रघुपति पद पदुम परागा । मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा । का साफल्य दिखलाते हैं । स्वभाव से ही स्त्रियों को पुर परिजन और घर पर अधिक ध्यान रहता है । सो सीताजी ऐसी सुखी हैं कि उनको पुर परिजनादि स्मरण भी नहीं आते । नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद बिमल विधु वदन निहारे तथा छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहो मुदित दिवस जिमि कोकी । का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि सीताजी प्रतिक्षण प्रिय रामजी का मुखचन्द्र देखा करती हैं और चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं । चकोर कुमारी का चन्द्र से नवीन प्रेम है । बूढ़ी चकोरी में उतना प्रेम नहीं रह जाता । इसलिए चकोर कुमारी से उपमित किया ।

नाह नेह नित बढत बिलोकी । हरषित हरति दिवस जिमि कोकी ॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा । अवध सहस सम बन प्रिय लागा ॥२॥

अर्थ अपने नाथ के प्रेम को नित्य बढ़ता हुआ देखकर ऐसा हर्षित रहती हैं जैसे दिन में कोकी चकई प्रसन्न रहती है । सीताजी का रामजी के चरणों में ऐसा अनुराग है कि सहस्र अयोध्या की भाँति वन प्रिय लग रहा है ।

व्याख्या रामजी का अपने ऊपर प्रेम नित्य बढ़ता हुआ देखकर चक्रवर्ती की भाँति सीताजी हर्षित रहने लगी । रात्रि की प्रसन्नता द्योतित करने के लिए चकोरी से उपमा दी । अब दिन की प्रसन्नता कोकी से उपमा देकर दिखलाते हैं । भाव यह कि रात दिन प्रसन्न हैं । दुःख का लग नहीं । अब औघ मोघ सत सरिस पहाट का साफल्य दिखाते हैं कि जब वन का पहाड़ अवध के मोहल्लो व वगैरह है तो उन के भी सैकड़ों पहाड़ों का पहाड़ बन जाता है ।

परनकुटी प्रिय प्रियतम सगा । प्रिय परिवार कुरंग विहंगा ॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर । असनु अमिअ सम कंद मूल फर ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त प्यारे के साथ पत्ते की कुटी भी प्यारी है । पशु पक्षी प्रिय परिवार हो रहे हैं । मुनि की स्त्रियाँ और मुनि लोग सास ससुर हैं । कन्द मूल फल का भोजन अमृत के समान जान पड़ता है ।

व्याख्या : नाथ साथ सुर सदन सम पनसाल सुख मूल का साफल्य दिखलाते हैं कि पत्ते की कुटी प्रियतम के सङ्ग में प्रिय हो रही है । अर्थात् जो जो चाते सीताजी ने अयोध्या में कही थी वे सब सफल हो रही हैं । वहाँ कहा था - खग मृग परिजन । उसका साफल्य यह कहकर दिखलाते हैं कि कुरङ्ग विहङ्ग प्रिय परिवार हो रहे हैं । वहाँ कहा था - बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहि सासु ससुर सम सारा । सो सास के कथन के बल पर कहा था । यथा - पितु बन देव मातु बनदेवी । सो बनदेव और बनदेवी तो अदृश्य हैं । प्रत्यक्ष तो मुनियों की स्त्रियाँ और मुनि लोगो का व्यवहार सास ससुर सा है । कन्द मूल फल अमिअ अहारु का साफल्य ; असनु अमिअ सम कन्द मूल फर कहकर दिखलाया ।

नाथ माथ साँथरी सुहाई । मयन सयन सय सम सुखदाई ॥
लोकप होहि विलोक्त जासू । तेहि कि मोहि सक विषय विलासू ॥४॥

अर्थ - नाथ के साथ सुन्दर साँथरी पत्ते की चटाई कामदेव के सैकड़ों बिछौने के समान सुखदायक हो रहा है । जिसके देखने से लोकपाल पद प्राप्त होता है, उसे क्या विषयविलास मोहित कर सकता है ?

व्याख्या - नाथ साथ साथरी सुहाई । पिय संग मजु मनोज तुराई का साफल्य दिखा रहे हैं । अयोध्या में जो कुछ सीताजी ने कहा था उससे कुछ भी बढ़ाकर नहीं कहा था । हृदय का केवल शुद्ध भाव व्यक्त किया था, अतः ठीक वैसा ही अनुभव हो रहा है । जो बात गङ्गाजी ने कहा था । यथा - लोकप होहि विलोक्त तोरे । तोहि सेवहि सब सिधि कर जोरे । उसी का उद्धरण करते हुए कवि का कथन है कि उसे क्या विषय विलास मोहित कर सकता है । राम चरन पकज मन जिनही । विषय भोग बस करहि कि तिनही ।

दो सुमिरत रामहि तजहि जन, तृन सम विषय विलासु ।

राम प्रिया जग जननि सिय, कछु न आचरजु तौसु ॥१४०॥

अर्थ - रामजी को सुमिरते हुए भक्त लोग विषय विलास का तृण के समान परित्याग करते हैं । सीताजी तो रामजी की प्रिया हैं । जगदम्बा हैं । उनके लिए यह कौन सी आश्चर्य की बात है ।

व्याख्या - रमा विलास राम अनुरागी । तजहि वमन जिमि नर बडभागी । रामजी के अनुरागी मनुष्य लक्ष्मी के विलास को तो वमन की भाँति त्याग करते हैं ।

पर विषय विलास को भी वे तृण के समान त्याग देते हैं। उनकी दृष्टि में विषय विलास उपेक्षा का विषय है और लक्ष्मी के विलास को तो वे सहन नहीं कर सकते। वमन की भाँति त्याग करके सुखी होते हैं। उत्तम पदार्थों का सेवन विषय विलास है और लक्ष्मी विलास यथा झूमत द्वार मतग अनेक जजोर जडे पद अबु चुचाते। तीखे तुरग मनो गति चचल पौन के गौनहु ते बढ़ि जाते। भीतर चदमुखी अवलोकति बाहर भूप खडे न समाते। एते भए तो कहा तुलसी जो पै जानकी नाथ के रग न राते।

सीय लखन जेहि बिधि सुख लहही। सोइ रघुनाथ करहि सोइ कहही ॥

कहहि पुरातन, कथा कहानी। सुनहि लखन सिय अति सुख मानी ॥१॥

अर्थ सीताजी और लक्ष्मण को जिस भाँति सुख मिले वही रामजी करते थे और कहते थे। पुरानी कथा और कहानियाँ कहते थे। लक्ष्मण और सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते थे।

॥ व्याख्या सरकार ने अपनी इच्छा को सीता और लक्ष्मण की इच्छा में तन्मय कर दिया। यहाँ तक कि सीताजी और लक्ष्मणजी को जैसे सुख मिल वही काम करत है। यद्यपि रघुनाथ हैं। फिर भी अपने को भक्त पराधीन कर रक्खा है।

सीताजी और लक्ष्मणजी प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते हैं। यथा सुनो चहँ प्रभु मुख की बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी। अतः सरकार पुरानी कथा कहानी कहते हैं। कहानी के द्वारा भी प्राचीन काल में शास्त्रोपदेश की प्रथा थी। पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश से सभी परिचित हैं। बालपन से ही सरकार को वेद पुराण के कहने सुनने का व्यसन भी है। यथा वेद पुराण सुनहि मन लाई। आपु कहहि अनुजन्ह समुझाई।

जब जब राम अवध सुधि करही। तब तब बारि विलोचन भरही ॥

सुमिरि मातु पितु पुरजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई ॥२॥

अर्थ जब जब रामजी अवध की याद करते हैं तब तब माता पिता पुरजन भाई और भरतजी के स्नेह और सेवकाई को स्मरण करके आँखों में आँसू भर लाते हैं।

॥ व्याख्या सीताजी और लक्ष्मणजी अवध की सुधि नहीं करते। क्योंकि जिस प्रेमी के लिए अवध छोड़ा है वह साथ है। रामजी अवध की सुधि करते हैं। क्योंकि उन्होंने किसी के लिए अवध नहीं छोड़ा है। दूसरी बात यह कि अवध सरकार को वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है। अतः आँसू आ जाता है। कहते कुछ नहीं हैं। स्नेहमयी जननी, प्रेमनिधि पिता, शीलनिधि भाई शत्रुघ्न और भरतजी का स्नेह, शील और सेवा का स्मरण करके आँख में आँसू आ जाना स्वाभाविक है।

कृपासिधु प्रभु होहि दुखारी। धीरजु धरहि कुसमउ विचारी ॥

लखि सिय लखन विवल होइ जाही। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाही ॥३॥

अर्थ कृपासिन्धु प्रभु दुःखी हो जाते हैं। पर कुसमय जानकर धैर्य धारण करते हैं। इस बात को लखकर सीताजी और लक्ष्मणजी विकल हो जाते हैं। जैसे परछाही पुरुष का अनुसरण करती है।

व्याख्या : यद्यपि विस्मय हर्षरहित है। पर भगवान् कृपासिन्धु है। भक्त के दुःख से दुःखी हो जाते हैं। जानते हैं कि उनके बिना वे लोग कैसे दुःखी होंगे। कुसमय में शोक का परित्याग करके धैर्य धारण करने का विधान है। इसलिए धैर्य धारण करते हैं। कुछ कहते नहीं। फिर भी प्रतिक्षण सरकार के मुख देखनेवाली सीताजी और लक्ष्मणजी लखकर विकल हो जाते हैं। इन्हें सरकार का दुःख सह्य नहीं है। इन्हें प्रतिविम्ब की भाँति अपना सुख दुःख कुछ नहीं है। रामजी के दुःख से दुःखी और रामजी के सुख से सुखी होते हैं। जैसे प्रतिविम्ब विम्ब के सुख दुःख से सुखी दुःखी हुआ करता है।

प्रिया वधु गति लखि रघुनन्दनु । धीर कृपाल भगत उर चन्दनु ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता । मुनि सुखु लहहि लखनु अरु सीता ॥४॥

अर्थ रघुनन्दन धीर कृपाल और भक्त के हृदय के लिए चन्दन हैं। प्रिया और भाई की दशा देखकर कुछ पवित्र कथा कहने लगे। सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी ने सुख पाया।

व्याख्या कृपाल रघुनन्दन है। दुःखी नहीं रहने देंगे। धैर्य से अपने को भी संभाला और अब सीता और लक्ष्मणजी को संभालने के लिए कुछ पवित्र कथा कहने लगे। भक्त के हृदय को शीतलता पहुँचाने के लिए चन्दन रूप हैं। अतः कथा कहकर शोकापहरण किया। सीता और लक्ष्मणजी ने सुनकर सुख पाया।

दो. रामु लखन सीता सहित, सोहत परन निकेत ।

जिमि वासव वस अमरपुर, सची जयत समेत ॥१४१॥

अर्थ लक्ष्मण और सीताजी के सहित रामजी पर्णकुटी में ऐसे शोभित हैं जैसे इन्द्र इन्द्रपुर में इन्द्राणी और जयन्त के साथ बसते हैं।

व्याख्या पर्णकुटी में निवास है। पर तीनों मूर्तियों में परस्पर ऐसा प्रेम है कि पर्णकुटी इन्द्रासन हो गयी और उसमें सरकार इन्द्र की भाँति, सची रूप सीताजी और जयन्त रूप लक्ष्मण के साथ निवास करते हैं। दरबार लगा है। कभी देवता लोग और कभी मुनि लोग हाजिरी बजाते हैं।

जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे । पलक विलोचन गोलक जैसे ॥
सेवहि लखनु सीय रघुवीरहि । जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि ॥१॥

अर्थ प्रभु और सीताजी लक्ष्मणजी की कैसा संभाल रखते हैं जैसे पलक नेत्र के गोलक का संभाल रखता है और लक्ष्मणजी सीता और रामजी की कैसी सेवा करते हैं जैसी अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है।

व्याख्या रामजी का सीता और लक्ष्मण के साथ कैसा बर्ताव था और सीता तथा लक्ष्मण का रामजी के साथ कैसा बर्ताव था । इस बात को कहकर अब राम जानकी का लक्ष्मण के साथ कैसा बर्ताव था तथा लक्ष्मणजी का राम जानकी के साथ कैसा बर्ताव था सो कहते हैं ।

। पलक दोनों नेत्र के गोलक की जिस भाँति रात दिन रक्षा करती है । कोई सदमा यदि गोलक पर आवे तो उसे अपने ऊपर लेती है । उसी भाँति रामजानकी दोनों लक्ष्मणजी की ऐसी रक्षा करते हैं कि कोई सदमा लक्ष्मणजी पर न आने पावे । आता हो तो उसे अपने ऊपर ले लेते हैं और लक्ष्मणजी श्री सीतारामजी की ऐसी सेवा करते हैं जैसे देह को ही आत्मा माननेवाला अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है । वह धर्मधर्म कुछ नहीं जानता । जिसमें शरीर को सुख मिले वही करता है । इसी भाँति लक्ष्मणजी सेवाधर्म के आगे किसी धर्म को नहीं गिनते । जिससे श्री सीतारामको सुख हो वही करते हैं । यथा सो सब करम धरम जरि जाऊ । जहँ न राम पद पकज भाऊ ।

एहि विधि प्रभु वन वसहि सुखारी । खग मृग सुर तापस हितकारी ॥

कहेउ राम वन गवन सुहावा । सुनहुँ सुमन्त्र अवध जिमि आवा ॥२॥

१७ सचिवागमने प्रसङ्ग

अर्थ - इस विधि से खग मृग सुर और तपस्वी के हितकारी प्रभु वन में सुखी वसते हैं । रामजी का सुन्दर वन गमन तो कहा । अब सुमन्त्र अवध जिस भाँति आये उसे सुनिये ।

व्याख्या प्रभु का वन गमन भी सुन्दर है । अवध के लोगो का दुःखी होना और खग मृग सुर तापस का सुखी होना भी वनगमन की सुन्दरता का पोषक है । प्रभु तो सुख रूप हो ठहरे । वन में भी सुखी हैं । वन में भी सुखी रहने की विधि भी गोस्वामीजी ने यहाँ बतला दिया कि कुटुम्ब के लोगो में यदि परस्पर प्रेम हो और कुटुम्बियों के सुख के आगे अपने सुख को न गिने । परस्पर एक दूसरे के सदमा को अपने ऊपर लेने को तैयार हो तो वन में भी सुखी रह सकते हैं । इसके विपरीत होने से घर भी नरक हो जाता है । यहाँ तक रामचरित है । अब सुमन्त्र के अवध लौटने का प्रसङ्ग आरम्भ होता है ।

फिरेउ निपाद प्रभुहि पहुँचाई । सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥

मन्त्री विक्ल विलोकि निपादू । कहि न जाइ जस भयउ विपादू ॥३॥

अर्थ : निपाद प्रभु को पहुँचाकर लौटा तो मन्त्री सहित रथ को देखा । मन्त्री निपाद को देखकर विक्ल हो गये । ऐसा विपाद हुआ जो बहा नहीं जा सकता ।

व्याख्या चैत्र शुक्ल दशमी को वनवास हुआ । एकादशी को शृङ्गवेरपुर

ठहरे । द्वादशी को सुमन्त्र को विदा किया । त्रयोदशी को भरद्वाज के आश्रम में ठहरे । चतुर्दशी को निपादराज लीटे । देखा तो सुमन्त्रजी रथ के साथ अभी वही है ।

मन्त्रीजी निपादराज को देखकर विकल हो गये । रही सही आशा भी टूट गयी । सम्भावना थी कि घोर वन देखकर सीताजी डरेंगी तब रामजी उन्हें लौटा देंगे । वह भी नहीं हुआ । निपादराज भी दुखी होकर लीटे थे । एक दूसरे को देखकर दोनों रो पड़े । विपाद का वर्णन नहीं हो सकता ।

राम राम सिय लखनु पुकारी । परेउ धरनि तल व्याकुल भारी ॥

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाही । जनु बिनु पस विहंग अकुलाही ॥४॥

अर्थ राम राम लक्ष्मण और सीता ऐसा पुकारते हुए पृथ्वी पर भारी व्याकुल होकर गिरे । दक्षिण की ओर देखकर घड़े हिनहिना रह हैं जैसे बिना डेना का पक्षी व्याकुल हो ।

व्याख्या मन्त्री रथ से नीचे गिर पड़े । हाथ मारकर रोने लगे । मानो राम लक्ष्मण और सीताजी उतने ही दूर हैं जहाँतक उनकी आवाज पहुँच सकती है । इस भाँति तीनों मूर्तियों को नाम लेकर पुकारा । इधर घड़े अनाथ होकर दक्षिण की ओर देखकर अलग रो रहे हैं । उनका हिनहिनाना ही रोना है । ऐसे दीन हो रहे हैं जैसे बिना पंख के पक्षी हो ।

दो नहि तृन चरहि न पियहि जल, मोचहि लोचन बारि ।

व्याकुल भयेउ निपाद सब, रघुवर बाजि निहारि ॥१४२॥

अर्थ न तृण चरते हैं न जल पीते हैं । आँखों से आँसू बहाते हैं । निपाद लोग रामजी के घोड़ों को देखकर व्याकुल हो गये ।

व्याख्या सरकार से विछोह हुए तीसरा दिन है । तब से घोड़ों ने न घास खाया है न पानी पीया है । उनके आँख से आँसू बह रहा है । जिस ओर रामजी गये हैं उधर देख देखकर हिनहिनाना ऊपर कह आये हैं । घोड़ों की यह दशा देख कर निपादगण व्याकुल हो गये कि रामजी के विरह में जो न हो जाय सो थोड़ा है । जब पशुओं की यह दशा है तो सगे सम्बन्धियों की क्या दशा होगी । एक घोड़े की यह दशा होती तो समझा जाता कि बीमार है ।

धरि धीरज तव कहइ निपादू । अब सुमत्र परिहरउ विपादू ॥

तुम पंडित परमार्थ ग्याता । धरहु धीर लखि बिमुख विधाता ॥१॥

अर्थ धैर्य धारण करके निपादराज कहने लगा कि सुमन्त्रजी । अब विपाद को छोड़ो । तुम पण्डित हो । परमार्थ के जाननेवाले हो । विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण करो ।

व्याख्या विपाद में धैर्य छूट जाता है । सो सुमन्त्रजी तो धैर्य नहीं धारण कर सके । पर निपाद ने धैर्य धारण करके कहा कि मन्त्रीजी । जो होना था सो

हो चुका । विपाद छोड़ने से ही छूटता है । अशोच्य को सोचना पण्डित का काम नहीं । सत्रु मित्र सुख सुख जग माँही । मोह मूल परमारथ नाही । आप परमार्थ के जाननेवाले हैं । आपको दुखी नहीं होना चाहिए । जब ब्रह्मा प्रतिकूल हो जाते हैं तब कोई उपाय काम नहीं करता । धैर्य की परीक्षा का यही समय है । अतः आप धैर्य धारण कीजिये ।

विविध कथा कहि कहि मृदु बानी । रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोक सिथिल रथु सकै न हाँकी । रघुबर विरह पीर उर बाँकी ॥२॥

अर्थ कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहकर जबरदस्ती लाकर सुमन्त्र को रथ पर बिठाया । वह शोक से ऐसे शिथिल थे कि रथ हाँक नहीं सकते थे । उनके हृदय में रामजी के विरह की तीखी पीड़ा थी ।

व्याख्या सुमन्त्र किसी तरह बिना रामजी के अयोध्या लौटना नहीं चाहते । निपादराज ने कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कही । जिनसे धैर्य बँध सके और जबरदस्ती रथ पर ला बिठाया । रामजी के विरह की पीड़ा ऐसी तीव्र थी कि समझाने बुझाने का कोई फल नहीं हुआ । हार्दिक व्यथा से अङ्ग शिथिल थे । रथ हाँकने की शक्ति नहीं ।

चरफराहि मग चलहि न घोरे । बन मृग मनुहु आनि रथ जोरे ॥
अदुकि परहि फिरि हेरहि पीछे । राम बियोग विकल दुख तीछे ॥३॥

अर्थ घोड़े तड़फड़ाते थे । रास्ता नहीं चलते थे मानो जङ्गली जानवरों को लाकर रथ में जोड़ दिया है । ठोकर खाते हैं । घूम घूमकर पीछे देखते हैं । रामजी के तीखे दुख से विकल हैं ।

व्याख्या सारथि की यह दशा है कि रथ हाँक नहीं सकता । घोड़ों की यह दशा है कि वे आगे बढ़ना नहीं चाहते । रामजी के वियोग की पीड़ा उन्हें भी ऐसी कड़ी है कि वे रथ में जुते हुए तड़फड़ा रहे हैं । अन्य पशुओं की भाँति अशिक्षित से मालूम हो रहे हैं । बार बार ठोकर खाते हैं । आगे बढ़ाइये तो घूमकर पीछे देखते हैं ।

जो कहु रामु लखनु वैदेही । हिकरि हिकरि हित हेरहि तेही ॥
बाजि विरह गति कहि किमि जाती । विनु मनि फनिक विकल जेहि भाँती ॥४॥

अर्थ जो कोई राम लक्ष्मण और सीताजी का नाम ले लेता है हिनहिनाकर उसकी ओर प्यार की दृष्टि से देखते हैं । घोड़ों की दशा कैसे कही जाय । वे मणि विहीन सर्प की भाँति विकल हैं ।

व्याख्या सरकार सबकी आत्मा हैं । आत्मा किसे प्यारी नहीं है । घोड़ों की विवलता तो सारथि से कम नहीं । वे कुछ कह नहीं सकते । पर समझते सब

कुछ है । अत व्याकुल है । मणि विहोनु सर्पों को सी उनकी दशा हा रही है । माँ कौसल्या ने कहा है

राघव एकवार फिरि आवा ।
 ये वरवाजि विलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावो ।
 जे पय प्याइ पोखि करपकज बार बार चुचुकारे ।
 बयो जीवै मेरे राम लाडिल ते अब निपट विसारे ।
 भरत सौगुनीसार वरत हैं अतिप्रिय जानि तुम्हारे ।
 तदपि दिनहि दिन होत झंवरै मनहु कमल हिम मारे ।
 सुनहु पथिक जो राम मिलहि वन कहियो मातु सदसो ।
 तुलसी मोहि और सबहिन ते इनको अधिक अदेसो ।

दो भयउ निपादु विपादुवस, देखत सचिव तुरग ।

बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी सग ॥१४३॥

अर्थ मन्त्री और घोडो को दखकर निपाद विपादवश हो गया । चार सुसेवको को बुलाकर सारथि के साथ कर दिया ।

व्याख्या निपादराज धैर्य धारण किये था । पर मन्त्री और घोडा की दशा दखकर उसका धैर्य जाता रहा । चारो घोडो के सँभालने के लिए चार सेवक साथ कर दिये । जो घोडा को भी सँभाल तथा सारथि पर भी ध्यान रख । इसीलिए सुसेवक कहा । अथवा देख चुका है कि मुनिजी भरद्वाजजी ने पहुँचाने के लिए चार बटु साथ कर दिये थे । यथा मुनि बटु चार सग तब दीन्ह । इसलिए इसने भी चार सुसेवक साथ दिये । रास्ता चलने में चार का साथ चाहिए ।

गुह सारथिहि फिरेउ पहुचाई । विरह विपादु वरनि नहि जाई ॥

चले अवध लेइ रथहि निपादा । होहि छनहि छन मगन बिपादा ॥१॥

अथ गुह निपादराज सारथि को पहुँचाकर लौट आये । विरह से जो विपाद उन्हे है उसका वर्णन नहीं हो सकता । निपाद लोग रथ लकर अयोध्या चल । वे भी क्षण क्षण विपाद में मग्न होते जाते हैं ।

व्याख्या कुछ दूर तक निपादराज पहुँचान गये । अपनी आँखो देख लिया कि सुसेवक घोडो को सँभाल लिय जाते हैं । तब लौटे । जब मन्त्री का सामना हुआ तब भी कहा कहि न जाइ जस भयउ बिपादु । अब घर लौटने पर कहते हैं विरह बिपाद वरनि नहि जाई । बाल बच्चे सब रो रहे हैं ।

अब मन्त्री की अवध यात्रा कहते हैं । घाडे एकदम बेकार है । निपाद लोग रथ लिये चल जा रहे हैं । पर व भी क्षण क्षण विपाद में मग्न हो जाते हैं । बार बार अपने को सँभालते हैं । पर सरकार का विरह ही ऐसा है कि उसे हटा नहीं सकते । बार बार मग्न हो जाते हैं ।

सोच सुमंत्र विकल, दुख दीना । धिग जीवन रघुवीर विहीना ॥

रंहिहि । न अंतहुँ अधम-सरीरु । जसु न लहेउ विछुरत रघुवीरु ॥२॥

अर्थ : सुमन्त्रजी व्याकुल और दुःख से दीन होकर सोचते थे कि रघुवीर के बिना जीवन को धिक्कार है । अन्त में यह अधम शरीर रहने का नहीं । फिर रघुवीर के विछुरते समय इसने यश क्यों न लिया ।

व्याख्या : विकल पुरुष कैसा सोचता है सो कवि दिखलाते हैं । रघुवीर विरह पीर उर बाँकी है । उसे न सहकर मन्त्री दीन हो गया है । ऐसी पीड़ा के सहित जीवन को धिक्कारता है । रघुवीर विहीन होने की पीड़ा है । रामजी ने पिता सम माना । यथा : आदर कीन्ह पिता सम लेखा । सो मन्त्री ने भी पुत्र सम माना । जो पे प्रिय वियोग विधि कीन्हा । तो कस मरन न माँगे दीन्हा । छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित यह अधम सरीरा । सो भी अन्त में जाने ही वाला है । अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वे प्राणिना ध्रुवः । चाहे आज मरें चाहे सौ वर्ष बाद मरें । मरना तो ध्रुव ही है । इस समय मौका था । बड़ा यश मिलता । यथा : जिअन मरन फल दसरथ पावा । अंड कटाह अमित जस छावा । जिअत राम विधु वदन निहारा । राम विरह करि मरन सँवारा । सो यही मौका शरीर छोड़ने का था । सो नहीं छूटा ।

भए अजस अध भाजन प्राणा । कवन हेतु नहि करत पयाना ॥

अहह मंद मनु अवसर चूका । अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥३॥

अर्थ : मेरे प्राण अपयश और पाप के पात्र हो गये । किस कारण से ये नहीं निकलते । अहो ! यह मन्दमन मौका चूक गया । अब भी हृदय दो टुकड़ा नहीं हो जाता ।

व्याख्या : परम पावन प्राण आज अयश तथा अध के भाजन हुए । जगत् में दुर्गम हुआ कि मन्त्री होकर कुँवर को वन पहुँचा आया । यह मन्त्री होने योग्य न था । बिना पाप के पीड़ा होती नहीं और तोखी पीड़ा हृदय में हो रही है । अतः अधभाजन भी हुए । प्राण प्रयाण के दोनों हेतु यहाँ उपस्थित हैं । अत्यन्त पीड़ा और दुर्गम । फिर भी प्राण नहीं निकल रहा है । मन्त्री मन को धिक्कारता है कि यह अवसर चूक गया । रामजी के वियोग होते ही हृदय को फट जाना चाहता था । सो अब भी नहीं फटता ।

मोजि हाय सिरु घुनि पछिताई । मनहुँ कृपण धन रासि गवाई ॥
विरिद बाँधि वर वीरु कहाई । चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥४॥

अर्थ : हाथ मलकर सिर पीटकर पछता रहा है । मानो कृपण ने धन की राशि गवाई दो । घोरता का वाना बाँधकर और श्रेष्ठ चीर कहलाकर रणार्द्धन से जैसे सुभट भाग चला हो ।

व्याख्या : धनराशि के गँवा देने पर हाथ मलना सिर पोटना ये सब लक्षण कृपणों में प्रकट होते हैं। उनके पश्चात्ताप की कोई सीमा नहीं रहती। सुमन्त्र ने राम लक्ष्मण और जानकी तीनों धनराशि खोया। अब लोभी कृपण की भाँति पछता रहे हैं कि मैं रामजी के वन पहुँचाने का साधन बन गया। मेरे करतब से रामजी वन गये। मैंने ही पता न लगे इस भाँति रथ पर चढ़ाकर वन पहुँचा दिया। यथा : सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ।

सुमन्त्रजी इस हीसले से चले थे कि मैं लौटा लाऊँगा। लोग भी कहते थे कि मन्त्री है। महाराज का सखा है। निष्फल नहीं लौट सकता। कम से कम सीताजी को लौटा ही लावेगा। पर सरकार के सामने कोई युक्ति चली नहीं। लौटाने के लिए ये सो पहुँचाकर लौट रहे हैं। वीर लब्धप्रतिष्ठ जिस भाँति संग्राम से भागकर मुख दिखाना नहीं चाहता। उसी भाँति सुमन्त्रजी भी मुँह दिखाना नहीं चाहते। यश प्यारा नहीं हुआ। प्राण प्यारा हुआ।

दो. विप्र विवेकी वेदविद, संमत साधु सुजाति।

जिमि धोखे मद पान कर, सचिव सोच तेहि भाँति ॥१४४॥

अर्थ : जैसे विवेकी वेद का जाननेवाला, साधु सम्मत, कुलीन ब्राह्मण धोखे से मद्य पी ले। उसी भाँति मन्त्री को सोच हुआ।

व्याख्या : विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण यदि धोखे से मद्य पी ले तो उसका ब्राह्मणत्व ही चला जाता है। ब्राह्मण के लिए मद्य पीने पर जितने प्रायश्चित्त हैं सब मरणान्त हैं। अतः उसके शोक का ठिकाना नहीं। यही हाल सुमन्त्र का हुआ। यह धोखा खा गये। समझा था कि मैं अवश्य कम से कम सीताजी को लौटा लाऊँगा। पर नहीं लौटा सके। परम्परया महाराज के मृत्यु के कारण हो गये। यदि धोखा न होता तो उसी रथ पर महाराज को बिठला ले जाते।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम बन बानी ॥

रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥१॥

अर्थ : जिस भाँति किसी कुलीन, साध्वी, सयानी, मनसा वाचा कर्मणा पतिव्रता स्त्री को कर्मवश पति को छोड़कर रहना पड़े। वैसा ही दारुण दाह मन्त्री के हृदय में था।

व्याख्या : कुलीन से जाति कहा। साधु से स्वभाव कहा। पतिदेवता कर्म मन वाणी से धर्म निष्ठा कहा। सभी साधन सौभाग्य के हैं। परन्तु कर्मवश विधि के प्रतिकूल होने से उसे पति का वियोग हो गया। ऐसी स्त्री को दारुण दाह होता है। यथा : बन दुख नाय कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे। प्रभु वियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहि न कृपानिधाना।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन विकल मति भोरी ॥

सूखहि अधर लागि मुह लाटी। जिव न जाइ उर अवधि कपाटी ॥२॥

अर्थ नत्रो म जल आ जाने स दृष्टि थोड़ी हो गयी । बानो स सुनायी नही पड़ता था । विकलता के कारण बुद्धि भारी हो गयी । होठ सूख गये । तालू सूख गया । परन्तु अवधिरूपी किवाड के कारण प्राण नही निकल सकते थे ।

व्याख्या ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल हो गयी । बुद्धि भारी हो गयी । कुछ समझ म नही आ रहा है । मुख मे शोष हो रहा है । मरण की दशा उत्पन्न हो गयी । फिर भी मोत नही आती । आशा लगी हुई है कि चौदह वर्ष बाद सरकार फिर लौटेंगे । मानो अवधिरूपी किवाड लगे हुए हैं । प्राण को निकलने नही देते ।

विवरन भयउ न जाइ निहारो । मारेसि मनहुँ पिता महतारो ॥
हानि गलानि विपुल मन व्योपी । जमपुर पथ सोच जिमि पापी ॥३॥

अर्थ शरीर का रङ्ग ऐसा विकृत हो गया कि देखते नही बनता । मानो मातृ-हत्या पितृहत्या लगी हुई है । बड़ी हानि और गलानि मन मे व्याप रही है । जैसे पापी यमपुर पथ म सोच करता हो । ।

व्याख्या शोक का वेग बढ़ता ही जा रहा है । पहिले कृष्ण वैश्य का पछतावा कहा । उससे अधिक दुःख वीर क्षत्रिय का दुःख कहा । उससे भी अधिक विवेकी ब्राह्मण का सोच कहा । तीनों से तीव्र दाह पतिव्रता का कहा । इस भाँति उदाहरण देकर मन्त्री के शोक की बढ़ोत्तरी दिखायी । परन्तु ये सब उदाहरण दैव वश दुःख प्राप्ति के थे । अब शोक का वेग और बढा तो सोचने लगा कि मैं महाराज के मृत्यु का कारण हो रहा हूँ । अतः उनके चेहरे का रङ्ग बिगड गया । अब जितना अवध निवट आ रहा है उतनी ही विकलता बढ़ती जा रही है । जो हानि होनेवाली है उसका ध्यान बँधा और उससे मन मे गलानि उत्पन्न हुई । अयोध्या यमपुर मालूम होने लगा । जैसे पापी यमपुर के रास्ते मे महा दुःख पाता हुआ सोचता है कि जब रास्ते मे यह दशा हो रही है तो यमपुर पहुँचने पर क्या दशा होगी । इसी भाँति मन्त्री भी, अयोध्या पहुँचने पर जिस दुःख का सामना करना पड़ेगा उसे सोच रहा है ।

यहाँ सुमन्त्रजी सोच रहे हैं कि अवध जाने पर उन्हें सात प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा और इस भाँति सात प्रकार की तीव्रतम मानसिक व्यथाओं को झलना पड़ेगा । उह स्मरण करके सुमन्त्रजी का हृदय ऐसा कातर हो रहा है मानो उन्ह उन व्यथाओं का इसी समय अनुभव करना पड रहा हो ।

परिस्थिति

व्यथा

- | | |
|-----------------------------|--------------------------------|
| १ वचन न आव हृदय पछितार्ई । | १ अहह मद मन अवसर चूका । |
| अवध बाह में दखव जाई । | अजहुँ न हृदय होत दुई टूका । |
| २ राम रहित रघु देखिहि जोई । | २ मोजि हाथ सिर घुनि पछितार्ई । |
| सगुचिहि मोहि बिलोचत सोई । | मनहु वृषन घन रासि गँवाई । |

परिस्थिति ।

व्यथा

३ धाइ पूछिहहि मोहि जब विकल ३ बिरुद बांधि वर वीर कहाई ।
नगर नर नारि । उतरु देव मै सबहि । चलेउ समर जिमि सुभट बराई ।
तव हृदय । वज्रु बैठारि ।

४ पुछिहहि दीन दुखित सब माता । ४ बिप्र । बिबेकी । वेदविद
बहब काह । मै तिन्हहि विधाता । समत साधु । सुजाति ।

५ पुछिहहि जबहि लखन महतारी । ५ जिमि कुलीन तिय साधु सयानी ।
कहिहौ कवन सँदेस सुखारी । पति देवता करम मन बानी ।
रहै करम बस परिहरि नाहू ।

६ राम जननि जब आइहि धाइ । ६ लोचन । सजल डोठि भइ थोरी ।
सुमिरि बच्छ जनु धेनु लवाई । सुनइ न श्रवन विकल मति भोरी ।
पूछत उतरु देव मै तेहो । सूखहि अधर लागि मुँह लाटी ।

॥ गे वन रामु लखनु बैदेही ॥ जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ।
विवरन भयउ न जाइ निहारी ।
मारेसि मनहुँ पिता महतारी ।

७ पूछिहि जबहि राउ दुख दीना । ७ हानि गलानि विपुल मन व्यापी ।
जिवनु जासु रघुनाथ अधीना । जमपुर पथ सोच जनु पापी ।

देहो उतरु कवन मुँह लाई ।
आयेउ कुसल कुअर पहुँचाई ।
सुनत लखन सिय राम सँदेसू ।
तुन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥ ॥

वचन न आव हृदय पछितार्ई । अवध काह मै देखब जाई ॥

राम रहित रथ देखिहि जोई । सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई ॥४॥

अर्थ उसके मुख से बात नहीं निकलती । मन में पछतावा हो रहा है कि अयोध्या जाकर मैं क्या देखूँगा । राम से रहित जो रथ देखेगा वह मुझे देखने में सङ्कोच करेगा ।

व्याख्या विवरन भयउ से तन की दशा कहा । गलानि विपुल मन व्यापी से मन की दशा कहा । अब वचन न आव स वचन की दशा कहते हैं । मन में पछता रहे हैं कि अभी अवध में जाकर न जाने क्या देखना है । यहाँ सीता राम लक्ष्मण वन गमन देखा । अवध में मरण देखना शेष है ।

रहित कर्म करनेवाले को चाहे मुँह दिखाने में सङ्कोच न हो परं शिष्ट पुरुष को उसका सामना करने में सङ्कोच होता है । मन्थोजी सोच रहे हैं कि उसी

भांति अयोध्या में लोग मुझे देखने में सङ्कोच करेंगे कि यह रामजी को वन पहुँचाकर जीता लौट रहा हूँ । ॥ १४४ ॥

दो. धाइ पुछिहहि मोहि जब, विकल नगर नर नारि ।

उतरु देव मै सबहि तब, हृदय वज्रु बैठारि ॥१४५॥

अर्थ : जब नगर के नर नारी व्याकुलता से दौड़कर मुझसे पूछेंगे तब कलेजे पर वज्र रखकर मुझे जवाब देना होगा । ॥ १४५ ॥

व्याख्या : नगर के नर नारी विकल हैं । मेरे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं । मेरा आना सुनकर सब दौड़े हुए मेरे पास आवेंगे । तब उनको उत्तर देने के लिए मुझे वज्र सा कलेजा करना पड़ेगा । सुमन्त्रजी राष्ट्र के महामन्त्री हैं । अवध में बड़ी प्रतिष्ठा है । सबको भरोसा है कि रामजी वन गये । फिर भी महामन्त्री साथ हैं । बिना कुछ किये न लौटेगा । अतः मैं कुछ न कर सका । रामजी वन चले ही गये यह कहने में उसे मृत्युतुल्य कष्ट है ।

पुछिहहि दीन दुखित सब माता । कहव काह मै तिन्हहि विधाता ॥

पुछिहहि जबहि लखन महतारी ॥ कहिहौ कवन सँदेस सुखारी ॥१॥

अर्थ : जब दीन दुखी माताएँ पूछेंगी हे विधाता । तब मैं उनसे क्या कहूँगा । जब लक्ष्मण की माँ पूछेगी तब मैं सुखी होकर कौन सा सन्देश कहूँगा । ॥ १ ॥

व्याख्या : यम पुर पथ सोच जनु पापी : पहिले कह आये हैं । उसी को स्पष्ट करके दिखला रहे हैं कि पुरजन को उत्तर देने में महाकष्ट । फिर माताओं के उत्तर देने में जो स्वयं दुखी दीन हो रही हैं और भी अधिक कष्ट होगा । फिर लक्ष्मण की माँ पूछेगी जिनके बेटे को मैं वन पहुँचाकर आ रहा हूँ । उनको उत्तर देने में कितने बड़े कष्ट का सामना है । यहाँ दुखी होकर सुमन्त्रजी अपने को सुखारी कह रहे हैं । ॥ १ ॥

राम जननि जब आइहि धाई । सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई ॥

पूछत उतरु देव मै तेही । गे वनु राम लखनु बँदेही ॥२॥

अर्थ : जैसे नयी व्याई हुई गाय बछड़े का प्यार करके दौड़ती है । उसी भाँति जब दौड़ी हुई रामजी की माँ आवेंगी तब मैं उन्हें उत्तर दूँगा कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये । ॥ २ ॥

व्याख्या : नयी व्याई हुई गाय को बछड़े का प्यार होता है । उसके स्मरण से उसके धन से दूध टपक पड़ता है । इस भाँति कौसल्याजी को रामजी पर बड़ी प्रीति है । मेरे आने का समाचार सुनकर वे स्वयं दौड़ी हुई आकर समाचार पूछेंगी । उनसे यह उत्तर देना कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये कष्ट की परीक्षा है । ॥ २ ॥

जोइ पूछिहि तेहि उत्तर देवा । आइ अवध अब यहु सुख लेबा ॥
पूछिहि जबहि राउ दुख दीना । जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥३॥

अर्थ : जो पूछेगा उसे जवाब देना । यही सुख मुझे अब अवध में जाकर लेना है । जब दुःख से दीन महाराज पूछेंगे जिनका जीवन ही रामजी के आधीन है ।

व्याख्या : अब पूछने के प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि अयोध्या जाकर मुझे जिस बड़े भारी दुःख का सामना करना है वह यही है कि जो पूछेगा उसे उत्तर देना पड़ेगा । यदि सरकार को मैं लौटाने में समर्थ होता तो किसी को मुझसे पूछने की आवश्यकता ही क्या थी ? महा दुःखद सन्देश सबसे कहना मेरे लिए यही कार्य अयोध्या में है । यहाँ सुख से दुःख ध्वनित है । जैसे : कहिहौ कवन सँदेश सुखारी ।

यद्यपि महाराज है । पर इस समय दुःख से दीन हो रहे हैं । क्योंकि उनका जीवन ही राम दर्शन के आधीन है । यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना । जीवन राम दरस आधीना ।

देहौ उत्तर कौन मुहु लाई । आएउ कुसल कुँअर पहुँचाई ॥
सुनत लखन सिय । राम सँदेसु । तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसु ॥४॥

अर्थ : कौन मुँह लगाकर जवाब दूँगा कि कुँअर को पहुँचाकर मैं कुशल से लौट आया । लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनकर राजा तृण के समान शरीर छोड़ देंगे ।

व्याख्या : सुमन्त्रजी विचार करते हैं कि मैं मन्त्री होकर उनसे कौन मुँह लेकर उत्तर दूँगा । उन्होंने कह दिया था : नाहि त मोर मरनु परिनामा । कछु न बसाइ भयेउ बिधि वामा । ऐसे अवसर पर रामजी के न लौटने पर मुझे जीते जी लौटना किसी तरह से शोभा नहीं देता और लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनने की देर है । राजा के शरीर छोड़ने में देर न लगेगी । वे तृण के समान शरीर छोड़ देंगे ।

दो. हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत श्रीतमु नीरु ।

जानत हों मोहि दोन्ह बिधि, यहु यातना शरीरु ॥१४६॥

अर्थ : प्रियतम जल के बिछुड़ते ही हृदय कीचड़ की भाँति फट नहीं गया । मालूम होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यह यातना शरीर दे दिया है ।

व्याख्या : कीचड़ का प्रियतम जल है । क्योंकि वही उसके अस्तित्व का कारण है । उससे विछोह होते ही कीचड़ सूखकर फट जाता है । उसी भाँति प्रियतम रामजी के बिछुड़ते ही मेरे हृदय को फट जाना चाहता था परन्तु नहीं फटा । इससे अनुमान होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यातना शरीर दे रक्खा है । यातना शरीर नारकी लोगो को मिलता है । जो पीड़ा का तो ठीक ठीक अनुभव करता है

पर फटने छेदने पीटने आदि दण्ड पाने से छूटता नहीं। अजहुँ न हृदय होत दुइ
टूका से उपक्रम करके हृदय न विदरेउ से उपसहार करते हैं।

एहि विधि करत पथ पछितावा । तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
विदा किए करि विनय निपादा । फिरे पाय परि विकल विषादा ॥१॥

अर्थ इस विधि से रास्ते में पछतावा करते करते रथ तुरन्त तमसा के
तटपर पहुँच गया। विनय करके निपादों को विदा किया। वे भी चरणों पर गिरकर
विषाद से विकल लौट गये।

व्याख्या पछतावा तो बहुत हुआ। कहाँ तक लिखें। वचन न आव हृदय
पछिताई से लेकर यहाँ तक पछताने की विधि दिखाने के लिए प्रादेश मात्र कथन
किया। सुमन्त्रजी अयोध्या पहुँचने के भय से इतने डरे हुए हैं कि वहाँ पहुँचने में
जितनी देर हो उतना ही अच्छा समझते हैं। सई और गोमती नदी पार किया तब
तमसा तीर पहुँचे। पर उन्हें मालूम हो रहा है कि तुरन्त पहुँच गये।

तमसा नदी अयोध्या नगर से बहुत निकट है। नगर की सीमा उसके बाद
पड़ती है। यथा गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ। सुमन्त्रजी ने वही
रथ रोका और निपादों को लौटाने लगे। वे सुसेवक थे। राजभवन तक बिना पहुँचाये
लौटना नहीं चाहते थे। पर सुमन्त्र ने विनय करके उन्हें लौटा दिया। वे भी
नमस्कार करके विषाद से विकल होकर ही लौटे।

पैठत नगर सचिव सकुचाई । जिमि मारेसि गुरु ब्रांभन गाई ॥
वैठि विटप तर दिवस गंवावा । साँझ समय तब अवसर पावा ॥२॥

अर्थ नगर में प्रवेश करते हुए मन्त्री को ऐसा सङ्कोच होता था मानो
उन्होंने गुरु ब्राह्मण और गाय की हत्या की है। पेड़ के तले बैठकर दिन बिताया
जब सन्ध्या हुई तब मौका मिला।

व्याख्या गुरुहत्या ब्रह्महत्या और गोहत्या ऐसे निन्दित कर्म हैं कि इनमें से
एक का भी करनेवाला समाज से बहिष्कृत हो जाता है। उससे कोई सम्पर्क रखना
नहीं चाहता। उसे समाज में मुख दिखाते नहीं बनता और जिसने तीनों किया हो
उसके लिए कहना ही क्या है। मन्त्रीजी राम लक्ष्मण और जानकीजी को वन क्या
पहुँचा आये मानो इन्हें तीनों हत्याएँ लग गयीं। अतः इन्हें नगर प्रवेश करने में परम
सङ्कोच है। तमसा तीर निकट होने पर भी नगर से इतनी दूर है कि नागरिकों का
जाना वहाँ तक कम होता है। अतः पेड़ के तले बैठकर दिन का शेष भाग व्यतीत
किया जब सन्ध्या हुई तब प्रवेश का अवसर मिला।

अवध प्रवेसु कीन्ह अंधियारे । पैठ भवन रथु राखि दुआरे ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए । भूष द्वार रथु देखन आए ॥३॥

अर्थ अंधेरे में नगर में प्रवेश किया। रथ का दरवाजे पर छोड़कर राजभवन

मे घुस गये । जिन जिन लोगो ने समाचार सुना वे राजद्वार पर रथ देखने आये ।

व्याख्या यहाँ नगर का क्या हाल है कि तमाम अँधेरा पडा है । नगर में दीया नहीं जल रहा है । सन्ध्या समय सुमन्त्रजी तमसा तीर से चले । अँधेरा होते होते नगर में प्रविष्ट हो गये । रथ को द्वार पर छोड़कर तुरन्त राजभवन में घुस गये । जिसमें किसी से सामना न हो । फिर भी कुछ लोगो को समाचार लग गया कि सुमन्त्रजी लौट आये । रथ द्वार पर खडा है । सो लोग बात को पक्की करने के लिए रथ देखने आये । इतनी अधिक उत्सुकता लोगो को है ।

रथु पहिचानि विकल लखि घोरे । गरहि गात जिमि आतप ओरे ॥

नगर नारि नर व्याकुल कैसें । निघटत नीर मीनगन जैसे ॥४॥

अर्थ रथ को पहिचान करके और घोडो को विकल देख करके उनके शरीर की दशा धूप में गलते हुए ओले की सी हो गयी । नगर के नर नारी ऐसे व्याकुल हुए जैसे पानी के घटने से मछलियाँ व्याकुल होती हैं ।

व्याख्या • रथ को पहिचाना कि वही रथ है जिस पर सरकार सवार होकर गये थे । घोडो को देखा कि विकल है । समझ गये कि सरकार नहीं लौटे तो पसीना छूटने लगा । जैसे धूप में ओल की दशा हो रही है । नगर के लोग ऐसे व्याकुल हुए जैसे जल के घटने के समय मछलियाँ व्याकुल होती हैं । यथा अवध अबु प्रिय परिजन मीना ।

दो सचिव आगमनु सुनत सबु, विकल भयउ रनिवासु ।

भवनु भयकरु लाग तेहि, मानहुं प्रेत निवासु ॥१४७॥

अर्थ मन्त्री का आगमन सुनकर मारा रनिवास विकल हो गया । उसे घर ऐसा भयकर लगा मानो वह प्रेत का निवास है ।

व्याख्या • मन्त्री आगये यह सुनकर रनिवास विकल हो उठा । क्योंकि इस समाचार का तो अर्थ ही यही है कि रामजी नहीं आये । रामजी आये होते तो समाचार मिलता कि रामजी आये । इधर सुमन्त्रजी को राजमहल ऐसा भयंकर प्रतीत हुआ कि मानो यहाँ प्रेत का निवास है । यहाँ मनुष्य नहीं रहते । जिस घर में प्रेत का निवास होता है वह स्थान देखने से भयकर दिखायी पडता है । भले ही उसमें मनुष्य भी रहते हों । अथवा प्रेतनिवास का अर्थ यमपुर किया जा सकता है । क्योंकि यमराज परेतराट् कहलाते हैं । उनका निवास प्रेतनिवास है । पहिले कह आये हैं यमपुर पथ सोच जिमि पापी । सो मानो पापी यमपुर पहुँच गया । अब उसकी भयकरता देखता है । यथा यमद्वारे महाघोरे घोरा वैतरणी नदी ।

अति आरति सब पूँछहि रानी । उतरु न आव विकल भई वानी ॥

सुन इन श्रवन नयन नहि सूझा । कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि वूझा ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछ रही हैं। उत्तर नहीं दे सकते। वाणी विकल हो गयी। न तो आँख से सूझता है न कान से सुनायी पड़ता है। जिस तिस से पूछ रहे हैं कि राजा कहाँ हैं ?

व्याख्या : मन्त्रीजो किमी तरकीब से नर नारियो के पूछने से तो बचे। पर रनिवास मे हैं और रानियाँ अत्यन्त आर्त हैं। अतः सबकी सब पूछ रही हैं। पहिले यही उनके समझ मे नहीं आता था कि उनको क्या उत्तर देंगे। यथा - पुच्छिहर्हि दीन दुखित सब माता। कहब काह में तिनहि विधाता। सो वही हुआ वाणी विकल हो गयी। कुछ कहते नहीं बनता। विकलता और बढ़ी। ज्ञानेन्द्रियाँ ठीक काम नहीं कर रही हैं। न तो आँख से सूझ पड़ता है कि कौन मुझसे पूछ रहा है न कान से सुनायी पड़ता है कि क्या पूछ रहा है। यही सबसे पूछ रहे हैं कि महाराज कहाँ हैं ? एक घुन सवार है कि महाराज ने भेजा था। उन्ही से सब कहना है।

दासिन्ह दीख सचिव विकलाई। कौसल्या गृह गई लेवाई ॥

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु विराजा ॥२॥

अर्थ : दासियो ने मन्त्री की विकलता देखी तो कौसल्याजी के महल मे लिवा ले गयी। जाकर सुमन्त्र ने राजा को देखा। जैसे अमृत विहीन चन्द्रमा विराजमान हो।

व्याख्या : रानियो ने भी मन्त्री की विकलता देखी कि वे तो सुन ही नहीं रहे हैं उत्तर किसे दें। दासियो ने मन्त्री की विकलता देखी कि यहाँ मुख से कहने से काम न चलेगा। इन्हे महाराज तक पहुँचाना होगा। तब उन्हे कौसल्याजी के महल मे लिवा ले गयी। सुमन्त्रजी को महाराज ने कैकेयी के महल से भेजा था और वही मूर्च्छित हो गये थे। मूर्च्छा से जागने पर कौसल्याजी के महल में चले गये। कैकेयी का परित्याग किया। वहाँ जाने पर मन्त्री ने महाराज को देखा। स्वरूप मे बड़ा भारी अन्तर पाया। एक वारगी हतप्रभ हो गये हैं जैसे अमृतहीन चन्द्रमा पर राम विरह मे हतप्रभ होने की ही शोभा है। अतः विराजमान होना कहते हैं।

आसन सयन विभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना ॥

लेइ उसासु सोच एहि भांती। सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती ॥३॥

अर्थ : न तो आसन है। न शय्या है। न गहने हैं। अत्यन्त मलिन होकर पृथ्वी तल पर पड़े हैं। लम्बी लम्बी श्वास ले रहे हैं और इस भाँति सोच रहे हैं जैसे स्वर्ग से ययाति राजा गिरे हो।

व्याख्या : राजा रत्नभुक् होता है। ससार मे जितनी उत्तम वस्तु हैं उसका पात्र राजा है। उसे अपने गौरव की रक्षा के लिए सर्वोत्तम आसन, सर्वोत्तम शय्या, सर्वोत्तम वस्त्राभूषण रखना पड़ना है। पर दुःखी को सुख की सामग्री और भी दाहक होती है। अतः महाराज आसन शयन विभूषण हीन होकर भूमि पर पड़े हुए हैं। उनकी उपमा ययाति राजा से दी जा सकती है। जो इन्द्र से ठगे गये। अपने मुख से अपने

पुण्य का बखान करके क्षीणपुण्य होने से स्वर्ग से गिरा दिये गये । इस अंश में तो यह उपमा ठीक है कि दूसरे से ठगे गये निरपराध राजा स्वर्ग से गिराये गये । पर वे पृथ्वी पर नहीं आने पाये । उनके नातियों ने अपनी अपनी तपस्या का कुछ भाग देकर उन्हें फिर स्वर्ग भेज दिया । इतने अंश में उपमा मेल नहीं खाती । अतः सम्पाती की उपमा देते हैं ।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती । जनु जरि पंख परेउ संपाती ॥

राम राम कह राम सनेही । पुनि कह राम लखन बंदेही ॥४॥

अर्थ : क्षण क्षण में सोच से छाती भर लेते हैं । जैसे दग्धपक्ष सम्पाती गिरा हुआ है । राम राम प्यारे राम कहते हैं । फिर राम लक्ष्मण विदेहपुत्री ऐसा कहते हैं ।

व्याख्या . चक्रवर्तीजी पृथ्वी पर पड़े हुए है । अतः दग्धपक्ष सम्पाती से उपमा दी गयी । यथा : जरेउ पख अति तेज अपारा । परेउ धरनि करि घोरचिकारा । बिना पंख का विहंग दीन हो जाता है । उसके सोच का पारावार नहीं रहता । वही गति महाराज की हो रही है । प्रेमपात्र राम का स्मरण करते हैं । फिर राम लक्ष्मण वैदेही का स्मरण करते हैं । कोई दूसरी भावना ही मन में नहीं है ।

दो. देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनामु ।

सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त्र कहं रामु ॥१४८॥

अर्थ : देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया । सुनते ही व्याकुल होकर राजा उठ बैठे और कहा कि सुमन्त्र कहो राम कहाँ है ?

व्याख्या : राजा को ऐसी दशा में देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर दण्डवत् की । महाराज का सामना होते ही मन्त्री सावधान हो गये । सुनने भी लगे और देखने भी लगे । जिसका हृदय में अधिक गौरव होता है उसका सामना होते ही एक बार पागल को भी सावधान होते देखा गया है । जयजीव : का शब्द सुनते ही महाराज ने जान लिया कि सुमन्त्र आगये । उत्सुकता से उठ बैठे और पूछा कि राम कहाँ है ?

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाइ । बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥

सहित सनेह निकट बैठारी । पूछत राउ नयन भरि बारी ॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने सुमन्त्र को हृदय से लगा लिया । डूबते हुए को जैसे कुछ सहारा मिल जाय । प्रेम के सहित निकट बैठकर आँखों में आँसू भरे हुए राजा ने पूछा ।

व्याख्या : राजा का परम बल मन्त्री होता है । तिस पर सुमन्त्रजी सखा भी हैं । अति सङ्कट के समय ऐसे व्यक्ति के मिलने से कुछ आधार सा मिल जाता है । डूबते हुए को तिनका का सहारा भी सहारा मालूम होता है । राजा ने मन्त्री को

हृदय से लगा लिया और प्रेम से निकट बिठा लिया और आँख में आँसू भरकर महाराज ने पूछा । आते ही प्रश्न किया था कि राम कहाँ हैं ? कुछ उत्तर न पाकर परिस्थिति का आभास मिल गया । अतः नेत्रों में आँसू भरकर पूछते हैं ।

राम कुसल कहु सखा सनेही । कहँ रघुनाथ लखनु वैदेही ॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए । सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥२॥

अर्थ है सनेही सखा । रामजी का कुशल कहो । राम लक्ष्मण और वैदेही कहाँ हैं ? लौटा लाये कि वन को ही चले गये । सुनत ही मन्त्री की आँखें डबडबा आयीं ।

व्याख्या चक्रवर्ती जी मन्त्री से कहते हैं कि तुम मेरे सखा हो । प्रेम के पात्र हो । तभी तुम्हें रामजी के साथ लौटाने को भेजा था । सो सबसे पहिल तो रामजी का कुशल कहो । वे स्वस्थ तो हैं । तुम अकेले मेरे पास आये । राम लक्ष्मण सीता को कहाँ छोड़ा । वे लौट आये और तुम शुभ समाचार देने आये हो कि वन को ही चले गये ? सुनते ही मन्त्री की भी आँखें आँसू से भर गयी ।

सोक विकल पुनि पूँछ नरेसू । कह सिय राम लखन सँदेसू ॥
राम रूप गुन शील सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥३॥

अर्थ शोक से विकल है । इसलिए फिर महाराज पूछते हैं कि सीता राम और लक्ष्मण का सन्देश कहो । रामजी के रूप गुण शील और स्वभाव को स्मरण करके मन में राजा सोच रहे हैं ।

व्याख्या शोक से विकल हैं इसलिए दोबारा पूछते हैं । नहीं तो राजा हैं पहिले ही उत्तर न पाकर उन्हें समझ लेना चाहिए । फिर भी उत्तर न मिला । तब कहते हैं कि यदि नहीं लौटे तो कुछ कहा तो होगा । वह सन्देश ही सुना दो । ऐसा पूछते हैं और मन में रामजी का रूप गुण शील और स्वभाव नाच रहा है । मन ही मन सोचते हैं कि

राज सुनाइ दीन्ह बनवासू । सुनि मन भयउ न हरपु हरांसू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राणा । को पापी बड मोहि समाना ॥४॥

अर्थ राज सुनाकर मैंने वनवास दे दिया । सुनकर जिसके मन में न हर्ष हुआ न शोक हुआ ऐसे बेटे से, बिछोह होते प्राण न गया । ससार में मेरे सा पापी कौन है ?

व्याख्या मैंने वसिष्ठजी द्वारा राज देने का सन्देशा भेजा । सो देना तो दूर रहा मैंने वनवास दे दिया । ऐसा आज्ञाकारी बेटा कि उसने सुख दुःख को न गिना । मेरी आज्ञा के शिराधार्य करने में ही अपनी मनस्तुष्टि मानी । ऐसे पुत्र के बिछुडते ही मुझे मर जाना चाहता था । सो मैं नहीं मरा । न जाने कैसा पाप मैंने किया है कि मुझे यह दुःख भोगना पड रहा है । इससे तो मर जाना कितना अच्छा था । ससार

मे कोई भी ऐसा दुख पडने पर मर जाता । पर मैं नहीं मरा क्योंकि मुझे अपने किये हुए पाप का दुख भोगना है । अतः मेरे समान पापी ससार में कोई नहीं है ।

दो सखा रामु सिय लखनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ ।

नाहि त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१४९॥

अर्थ हे सखे ! जहाँ राम जानकी लक्ष्मण है वहाँ मुझे पहुँचा दो नहीं तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि प्राण मेरे चला चाहते हैं ।

व्याख्या मन्त्री स्वयं नहीं जानते कि राम जानकी सीता कहाँ हैं ? इसीलिए रामजी ने मन्त्री को शृङ्गवेरपुर से ही विदा किया । निपादराज साथ चला उसे भी यमुना पार से लौटा दिया । मन्त्री कहना नहीं चाहता कि मैं नहीं जानता कि राम लक्ष्मण सीता कहाँ हैं ? इधर महाराज कह रहे हैं कि मुझे जल्दी से राम जानकी लक्ष्मण के पास पहुँचाओ । नहीं तो मैं मरा चाहता हूँ ।

पुनि पुनि पूजत मनिहि राऊ । प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ ॥

करहि सखा सोइ वेगि उपाऊ । रामु लखनु सिय नयन देखाऊ ॥१॥

अर्थ बार बार मन्त्री से महाराज पूछते हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे का सन्देश सुनाओ । हे सखे ! तुरन्त ऐसा उपाय करो कि मैं राम सीता और लक्ष्मण को आँख से देखूँ ।

व्याख्या मन्त्री का धैर्य छूटा हुआ है । वह बोलने में असमर्थ हो रहा है । इधर महाराज बार बार पूछ रहे हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे राम का सन्देश सुनाओ । साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि जल्दी उन्हें लाकर मुझे दिखा देने का उपाय करो । विकलता में चित्त स्थिर न होने पर लोग ऐसा ही बोलते हैं । कैसे कोई राम जानकी लक्ष्मण को जल्दी से लाकर दिखा दे ।

सचिउ धीर धरि कह मृदु वानी । महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी ॥

वीर सुधीर धुरधर देवा । साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा ॥२॥

अर्थ मन्त्री ने धैर्य धारण करके कोमल वाणी कहा कि महाराज ! आप पण्डित ज्ञानी हैं । आप वीर हैं । सुन्दर धीरा में धुरन्धर हैं । आपने सदा साधु समाज का सेवन किया है ।

व्याख्या मन्त्री ने देखा कि महाराज का ज्ञान शोक से अपहृत हो गया है । अतः इन्हे अपने स्वरूप का स्मरण दिलाना चाहिए । अतः कहता है कि महाराज आप तो पण्डित हैं । पण्डित सोच नहीं करते । गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिता । आप ज्ञानी हैं । सर्वज्ञ समदर्शी हैं । आप के लिए पुत्र क्या और कलत्र क्या ? यथा ज्ञान मान जहँ एवी नाँही । देखइ ब्रह्म समाज सत्र माँही । आप वीर हैं । शूराणा मरण तृणम् आपको मृत्यु से भय कैसा ? आप वीर धुरन्धर हैं । दुख से विचलित क्यों होते ? साधु समाज की सदा सेवा की है ।

समझी बनकर बारात ले चलने के समय भी आपने साधुओं का साथ नहीं छोड़ा ।
यथा : साधु समाज संग महिदैवा । जनु तनु धरे करहि सुख सेवा । आपको यह
मोह कहाँ से आया ?

जनम मरन सब दुख सुख भोगा । हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा ॥
काल करम वस होहि गोसाईं । बरवस राति दिवस की नाई ॥३॥

अर्थ : जन्म, मरण, सब दुःख सुख के भोग, हानि, लाभ, प्रिय मिलन तथा
उनका वियोग कालकर्म के वश है । जबरदस्ती रात और दिन की नाई हुआ
करते हैं ।

व्याख्या : जन्म के बाद मरण फिर उसके बाद जन्म । दुःख के बाद सुख
फिर उसके बाद दुःख, हानि के बाद लाभ उसके बाद फिर हानि प्रिय मिलन के
बाद वियोग उसके बाद फिर मिलन । ये सब कर्म के फल के विपाक से होते हैं ।
नहीं चाहने से ये हटते नहीं । रात दिन की भाँति बलपूर्वक होते हैं । किसी के रोके
नहीं रुकते । सुखस्यानन्तरे दुःख दुःखस्यानन्तरे सुखम् । इस ईश्वर की नियति को
कोई अन्यथा नहीं कर सकता ।

सुख हरपहि जड़ दुख विलखाही । दोउ सम धीर धरहि मनमाही ॥
धीरजु धरहु विवेकु विचारी । छाड़िअ सोचु सकलु हितकारी ॥४॥

अर्थ : सुख से हर्षित होना और दुःख आजाने पर विलखने लगना तो
अज्ञानी का काम है । पण्डित तो दोनों को समान ही देखते हैं । आप विवेक से
विचार करके धैर्य धारण कोजिये । हे सकल हितकारी । सोच को छोड़िये ।

व्याख्या : सुख दुःख आगमापायी हैं । अनित्य हैं । इनके लिए सहन करने
का विधान है । यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुष पुरुषर्षभ । समदुःखसुखं धीर सोऽमृतत्वाय
कल्पते । जिसे दुःख सुख पीड़ा नहीं देते ऐसा धीर पुरुष अमृतत्व के योग्य होता है ।
आप सबके हित करनेवाले हैं । आप सोच को छोड़िये । आपके सोच करने से सबके
हित में बाधा पड़ेगी ।

दो. प्रथम वासु तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर ।

न्हाइ रहे जलपानु करि, सिय समेत दोउ वीर ॥१५०॥

अर्थ : पहिला निवास तमसा तट पर हुआ । दूसरा गङ्गा के तट पर दोनों
वीर सीताजी के सहित नहाने के बाद पानी पीकर रह गये ।

व्याख्या : शोक शान्ति की भूमिका बाँधकर पूरी कथा कहनी प्रारम्भ
कर दी । जिसमें महाराज की पूरी परिस्थिति से परिचय हो जाय । कहा कि पहिले
दिन तो तमसा तीर पर निवास हुआ । दूसरे दिन गङ्गातट पर निवास हुआ । दोनों
भाई वीर हैं । सीता राम की योग्या हैं । तीनों मूर्तियों ने स्नान करके केवल पानी
पी लिया । भाव यह कि वनवास में तीनों समर्थ हैं । यह व्यवस्था तब तक की है

जब तक निपादराज से भेंट नहीं हुई । वीर कहने का तात्पर्य ही यह है कि भोजन न करने से कोई म्लानता न हुई ।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई । सो जामिनि सिंगरौर गँवाई ॥

होत प्रात वट छोर मँगावा । जटामुकुट निज सीस बनावा ॥१॥

अर्थ केवट ने बड़ी सेवा की । वह रात सिंगरौर शृङ्गवेरपुर में बीती । तब सबेरा होते ही बरगद का दूध मँगाया और अपने सिर पर जटा मुकुट बनाया ।

व्याख्या दिन भर पानी पीकर ही रह गये । केवट ने बड़ी सेवा की । उसने सोने की भी व्यवस्था की । भोजन की भी व्यवस्था की । रात को वही रहे । प्रातः काल होते ही बरगद का दूध मँगाया और उससे जटा बनायी और सिर पर जूट जूड़ा बाँधने से उसकी मुकुट की शोभा हुई । भाव यह कि एकदम वन जाने पर तुल हुए देखकर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ ।

राम सखा तब नाव मगाई । प्रिया चढाइ चढे रघुराई ॥

लखनु बान धनु धरे बनाई । आपु चढे प्रभु आयसु पाई ॥२॥

अर्थ राम सखा ने तब नाव मँगायी । प्रिया सीताजी को सवार कराकर तब सरकार सवार हुए । लक्ष्मणजी ने धनुष बाण सँवारकर रख दिया । फिर प्रभु की आज्ञा पाकर स्वयं भी सवार हो गये ।

व्याख्या पहिल कह आये हैं बरबस राम सुमन्त्र पठाये । सुरसरि तीर आपु तब आये और सुमन्त्र रथ पर जाने के लिए सवार हो गये और यहाँ रामजी के नाव पर सवार होने के समय सुमन्त्रजी की उपस्थिति कह रहे हैं । सो यह दोनों बातें कैसे बनती हैं ? बात यह हुई कि सुमन्त्रजी से रहा न गया । रथ से उतरकर सरकार के सवार होने के समय फिर वहाँ पहुँचे । रामजी और केवट के सवाद से जो रस पाठको के हृदय में उत्पन्न होता है उसे कुछ समय तक बने रहने देने के लिए उस समय कवि ने सुमन्त्र के लौटने का उल्लेख नहीं किया । अतः सुमन्त्र के विदाई के पहले और उनके लौटने के बाद जो जो बातें हुई उनका सार सुमन्त्र के मुख से कहला रहे है ।

विकल बिलोकि मोहि रघुवीरा । बोले मधुर वचन धरि धीरा ॥

तात प्रनामु तात सन कहेहू । बार बार पद पकज गहेहू ॥३॥

अर्थ रघुवीर रामजी मुझे विकल देखकर धैर्य धारण करके मीठी बात बोले कि हे तात ! पिताजी से प्रणाम कहना और बार बार चरण कमल मेरी ओर से पकड़ना ।

व्याख्या भाव यह कि सुमन्त्र की विकलता देखकर रामजी का जी भर आया । अतः बोलने में धैर्य धारण करना पड़ा और बोले कि पिताजी से मेरा प्रणाम कहना और अनेक बार मेरी ओर से चरण पकड़कर तब मेरा सन्देशा कहना ।

यथा : पितु पद गहि करि कोटि नति विनय करव कर जोरि । चिन्ता कवनि वात की तात करव जनि मोरि ।

करवि पाय परि विनय बहोरी । तात करिअ जनि चिन्ता मोरी ॥

वन मग मंगल कुसल हमारे । कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे ॥४॥

अर्थ : फिर चरणों पर गिरकर विनय कीजियेगा कि मेरे लिए चिन्ता न करें । वन के रास्ते में हम लोगों का कुशल मङ्गल आपको कृपा अनुग्रह और पुण्य से होगा ।

व्याख्या : भाव यह कि मन्त्री को रथ सहित भेजना जिसमें मुझे रास्ता चलने का कष्ट न हो अथवा चार दिन में वन का दर्शन करके चले आना आदि सन्देश का तात्पर्य यही है कि आपको मेरी चिन्ता है । सो चिन्ता न कीजियेगा । आपका पुण्य ऐसा है जिसके प्रभाव से वन के मार्ग में भी हम लोगो का कुशल मङ्गल रहेगा ।

छं. तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौ ।

प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौ ॥

जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि विनती धनी ।

तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहि कुसली रहहि कोसल धनी ॥

अर्थ : हे पिता ! आपके अनुग्रह से वन जाते हुए सब सुख पाऊँगा । आज्ञा पालन करके कुशल के साथ चरणों के दर्शन के लिए फिर लौट आऊँगा । सब माताओं का सन्तोष करके, उनके चरणों पर पड़कर विनय कीजियेगा । तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा यत्न कीजियेगा जिसमें अवधपति कुशली रहे ।

व्याख्या : यद्यपि वन में दुःख ही दुःख होता है । पर आपके अनुग्रह से मुझे सब सुख होगा । कानन नन्दन वन हो जायगा । यथा : जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत । यह न समझियेगा कि सब सुख मिलने से कहीं वही न रह जायें । इसलिए कहते हैं कि इतने दिनों तक आपके चरणों के दर्शन की उत्कण्ठा रहने से, अवधि पूरी होते न होते मैं सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा । श्रीरामजी ने यह सन्देश पिता को देकर अब माताओं के लिए कहते हैं कि उनके पैरों पर गिरकर मेरी ओर से बड़ी विनती कीजियेगा । विनती वही है जो पिता से की गयी । इसलिए दोहराते नहीं हैं और मुझसे भी विनय किया कि आप ऐसा यत्न कीजियेगा जिससे महाराज कुशल रहे । रामजी पिता के प्रेम को जानते हैं । अतः उनकी ओर से इन्हें चिन्ता है । बार बार उनके कुशल के लिए बह रहे हैं ।

दो. गुर सन कहव सन्देशु, बार बार पद पदुम गहि ।

करव सोइ उपदेशु, जेहि न सोच मोहि अवधपति ॥१५१॥

अर्थ : धार वार गुरुजी के चरण कमलो को पकड़कर सन्देश कहना कि वही उपदेश करें जिससे मुझको कोसलपति न सोचें ।

व्याख्या : विश्वामित्रजी के साथ भी महाराज मुझे नहीं जाने देते थे । गुरुजी के उपदेश से ही जाने दिया था । यथा : तव वसिष्ठ बहुविधि समझावा । नृप सन्देह नास कहं पावा । रामजी कहते हैं कि आज भी उसी उपदेश की आवश्यकता है । जिसमे अवधपति मेरा सोच न करें । मेरे सोच करने से उन्हें खतरा है और सम्पूर्ण अवध की रक्षा का भार उन्हीं पर है । उन्हीं के कुशल से सब का कुशल है ।

पुरजन परिजन सकल निहोरी । तात सुनाएउ विनती मोरी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जा ते रह नरनाहु सुखारी ॥१॥

अर्थ पुरवासी कुटुम्बी आदि सबका निहारा करके हे तात । मेरी विनती सुना देना कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहे ।

व्याख्या सरकार पुरजन का प्रेम देखते आये हैं कि उनके लिए सब लोग घर द्वार पुत्र कलत्र सबको छोड़कर वनवास के लिए साथ चल पड़े । अतः उनसे निहोरा करके विनती करते हैं कि आप लोग निःसन्देह मेरा हित चाहते हैं । पर मेरे साथ वन में आकर बसने में मेरा सब प्रकार से हित नहीं है । सब प्रकार से हित तो महाराज के सुखी रखने में है ।

कहव संदेसु भरत के आए । नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी । सेयेहु मातु सकल सम जानी ॥२॥

अर्थ भरतजी के आने पर सन्देश कहना कि राजपद पाने पर नीति न छोड़ना । मनसा वाचा कर्मणा प्रजा का पालन करना । सब माताओं को समान जानकर सेवा करना ।

व्याख्या यद्यपि रामजी भलीभाँति जानते हैं कि भरतजी में वे सब बातें हैं जिनका कि वे उपदेश देना चाहते हैं । फिर भी छोटी को शिक्षा देना बड़ों का धर्म है । दूसरी बात यह है कि भरत को भी सन्देश देना है । न देने से नाराजगी मालूम होगी । अतः उपदेश के व्याज से उन्हें राज्य करने की आज्ञा देते हैं । कहते हैं कि राज्याभिषेक होने पर नीति नहीं छोड़ना । भाव यह कि तुम सदा नीति पर चलनेवाले हो । उसी रास्ते पर वने रहना । प्रजा के पालन में प्रमाद न करना । माताओं में भेद न रखकर सबकी सेवा करना अर्थात् कैकेयी पर रष्ट्र न होना ।

ओर निवाहेहु भायप भाई । करि पितु मातु सुजन सेवकाई ॥
तात भाँति तेहि राखव राऊ । सोच मोर जेहि करइ न काऊ ॥३॥

अर्थ : पिता माता और स्वजन की सेवा करके भाईपन की सीमा तक निर्वाह करना । महाराज को इस भाँति रखना जिससे वे कभी मेरा सोच न करें ।

व्याख्या : मेरे मत से यहाँ और पाठ होना चाहिए । ओर निवाहने का तो

अर्थ ही यह है राज्य स्वीकार न करना । ऐसा रामजी नहीं कह सकते । मैं तो यही अर्थ कहूँगा कि माताओ को समान जानकर सेवा करना और माता पिता और स्वजन की सेवा करके भाईपन निवाहना । अर्थात् तुम्हारा भाईपन निवाहना मैं इसी बात में मानूँगा कि माता और स्वजन की सेवा करो । यथा सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जाते रह नरनाह सुखारी । और पिताजी को तो इस भाँति रखो कि उन्हें मुझे स्मरण करने का अवसर न मिले कि रामजी यदि यहाँ होते तो मुझ यह कष्ट न होता या अमुक प्रकार से सुख देते । मेरे वन देने के कारण किसी भाँति अपमान न करना ।

लखन कहे कछु वचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई । कहबि न तात लखन लरिकाई ॥४॥

अर्थ • लक्ष्मणजी ने कुछ बठोर वचन कहे । उन्हें रोककर रामजी ने मेरा निहोरा किया और बार बार शपथ दिलायी कि लक्ष्मण के लडकपन को पिताजी से न कहना ।

व्याख्या रामजी के सन्देश के बाद लक्ष्मणजी के सन्देश की बारी आई । इस पर कहते हैं कि लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे । रामजी ने उन्हें ऐसा कहने से रोका । वे वचन रामजी को बड़े अनुचित मालूम पड़े । मैं आप से उसे नहीं कह रहा हूँ । क्योंकि रामजी ने बार बार मुझे शपथ दिलाया है कि लक्ष्मण का सन्देशा पिताजी से नहीं कहना और मेरा निहोरा किया है ।

दो कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिथ भइ सिथिल सनेह ।

थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह ॥१५२॥

अर्थ प्रणाम कहके कुछ कहना चाहा पर सीताजी स्नेह से शिथिल हो गयी । बाणी रुक गयी । नेत्र में जल आगये और देह में पुलकावली हो आयी ।

व्याख्या महाराज ने तीनों मूर्तियों का सन्देश पूछा था । अतः सुमन्त्रजी अन्त में सीताजी का हाल कहते हैं कि उन्होंने प्रणाम कहकर कुछ सन्देश भी कहना चाहा पर कह न सकी । स्नेह से शिथिल हो गयी । यहाँ यह शब्दा उचित नहीं है कि सीताजी ने जा जवाब सुमन्त्रजी को दिया । उसे सुमन्त्रजी नहीं क्यों कह रहे हैं ? महाराज ने राम लक्ष्मण और सीताजी का सन्देश पूछा था । सुमन्त्रजी तीनों का सन्देश कह रहे हैं । उनसे जो जो बातें रामजी से या सीताजी से हुई । उसके कहने की कोई आवश्यकता वन जाने के पश्चात् नहीं रह गयी ।

तेहि अवसर रघुवर रुख पाई । केवट पारहि नाव चलाई ॥

रघुकुल तिलक चले एहि भाँती । देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती ॥१॥

अर्थ उसी अवसर रामजी का रुख पाकर केवट ने पार के लिए नाव चला

दी । रघुकुलतिलक इस प्रकार चले गये और मैं खड़ा हुआ छाती पर वज्र रखे देखता रहा ।

व्याख्या जिस समय सीताजी सन्देश कहने को थी और स्नेहवश कह न सकी । उसी अवसर पर सरकार का रुख हुआ कि नाव आगे बढ़ाओ रुकने में कष्ट ही बढ़ेगा । अतः केवट ने पार की ओर नाव चला दिया । मैं कलेजे को वज्र किये हुए देखता रह गया और रघुकुल के तिलक रामजी चले गये ।

मैं आपन किमि कहहुँ कलेसू । जिअत फिरेउ लेइ राम सँदेसू ॥

अस कहि सचिव वचन रहि गयऊ । हानि ग्लानि सोचवस भयऊ ॥२॥

अर्थ मैं अपना क्लेश कैसे कहूँ । जो मैं राम का सन्देश लेकर जीता लौटा । ऐसा कहकर मन्त्री की वाणी रुक गयी और वह हानि ग्लानि और सोच के वश हो गये ।

व्याख्या मन्त्री जी कहते हैं कि मुझे इसी बात का बड़ा भारी क्लेश है कि मैं रामजी को न लौटाकर उनका सन्देश लेकर लौटा । मैं मर क्यों नहीं गया ? इससे आगे मन्त्रीजी कुछ न कह सके । हानि ग्लानि और शोक के वश हो गये । रामजी का वन चला जाना यह मूलधन की हानि है । मैं मर क्यों नहीं गया । इस बात की ग्लानि है अब क्या होनहार है । इस बात का सोच है ।

सूत वचन सुनतहि नरनाहू । परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥

तलफत विषम मोह मन मापा । माँजा मनहु मीन कहूँ व्यापा ॥३॥

अर्थ सारथि का वचन सुनते ही महाराज पृथ्वी पर गिर पड़े । उनके हृदय में दारुण दाह हुआ । तड़पने लगे । विषम मोह से विकल हो गये । मानो मछली को माँजा व्याप्त हो गया ।

व्याख्या सारथि के वचन से पूर्ण निराशा हुई और महाराज जो थोड़ी बहुत आशा के सञ्चार से उठकर बैठ गये थे पृथ्वी पर गिर पड़े । विरह की ज्वाला हृदय में भभक उठी । तड़पने लगे । विषम मोह में ऐसे विकल हो गये जैसे माँजा खाकर मछली विकल होती है । बरसात का पहला पानी पड़ने से जो केन नदियों में उत्पन्न होता है उसे माँजा मझा कहते हैं । उसे मछलियाँ खाकर अत्यन्त विकल होकर पानी के ऊपर आ जाती हैं ।

करि बिलाप सब रोवहि रानी । महा विपत्ति किमि जाइ बखानी ॥

सुनि बिलाप दुखहू दुखु लाग़ा । धीरजहू कर धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ बिलाप करके सब रानियाँ रोने लगी । महाविपत्ति का वर्णन कैसे किया जाय । उस बिलाप को सुनकर दुख भी दुखी हो गया । धैर्य का भी धैर्य जाता रहा ।

व्याख्या पुत्र और पुत्रवधू के लौटाने की आशा नहीं रही और पति को

यह दशा देखकर रानियां विलाप करके रोने लगी। अर्थात् हार्दिक दुःख को व्यक्त करती हुई रोने लगी। महाविपत्ति आ पड़ी। उसका बखान किया नहीं जा सकता।

उस विलाप को जिसने सुना वही दुःखी हो गया। उसका धैर्य छूट गया। अर्थात् वह भी रोने लगा। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा में कवि कहते हैं कि दुःख भी दुःखी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

१८. नृपमरणप्रसङ्ग

‘दो. भयउ कोलाहलु’ अवध अति, सुनि नृप राउर सोरु ।

विपुल विहग वन परेउ निसि, मानहु कुलिस कठोरु ॥१५३॥

अर्थ : महाराज के खास महल में शोर सुनकर अवध में बड़ा भारी हाहाकार मचा। जैसे बहुत से पक्षीवाले वन में कठोर वज्रपात हुआ हो।

व्याख्या : महाराज का खास महल महारानी कौसल्या का महल है। प्रजा भी जान रही है कि महाराज उसी महल में हैं और उनकी अवस्था चिन्ताजनक है। सुमन्त्र असफल होकर लौटे हैं। ऐसे अवसर पर उस महल में भारी रुदन शब्द का होना अत्यन्त अनिष्ट का सूचक है। अतः सम्पूर्ण अयोध्या में हाहाकार मच गया। उपमा देते हुए कवि कहते हैं कि जैसे पक्षियों से भरे वन में रात को वज्रपात हो और सम्पूर्ण वन के पक्षी ची ची करने लगे। महाराज के महल का शोर वज्रपात से उपमित है और नगर का कोलाहल पक्षियों के शब्द से उपमित है। तुम जेहि लागि वज्र पुर पारा का साफल्य दिखाया।

प्राण ‘कंठगत भयउ भुआलू । मनि विहीन जनु व्याकुल ब्यालू ॥

इन्द्री सकल विकल भई भारी । जनु सर सरसिज वनु विनु वारी ॥१॥

अर्थ : राजा का प्राण कण्ठ में आगया। ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणिविहीन सर्प। सब इन्द्रियाँ अत्यन्त विकल हो गयी। जैसे तालाब का कमलवन बिना जल के हो जाता है।

व्याख्या : समाचार सुनते ही राजा की मरणासन्न दशा हो गयी। प्राण कण्ठ में आगये। निक्लने में देर नहीं है। जैसे मणि के बिना सर्प व्याकुल हो जाता है। प्राणों के उखडने से इन्द्रियाँ भारी विकल हुईं। जैसे कमलवन के तालाब का पानी सूख गया हो। कमल सब मौजूद हैं पर नीरस होकर सूख चले हैं। इसी भाँति इन्द्रियाँ हैं। पर नीरस होकर विकल हो रही हैं। यहाँ शरीर की उपमा तालाब से है। इन्द्रियों की कमलवन से और रामजी की जल से।

कौमल्या नृपु दीक्ष मलाना । रविबुल रविअंयउ जिय जाना ॥

उर धरि धीर राम महतारी । बोली वचन समय अनुसारी ॥२॥

अर्थ : कौसल्या ने राजा को कुँभलाया हुआ देखा । समझ लिया कि सूर्यकुल के सूर्य अस्त हुआ चाहते हैं । हृदय में धीरज धारण करके रामजी माता समयानुकूल वचन बोली ।

व्याख्या : राजा की दशा देखकर कौसल्या ने समझा कि इनका शरीर अब नहीं रहा चाहता । मानसिक पीड़ा हो इस दशा का कारण है । अतः उस पीड़ा को कम करना चाहिए । मैं रामकी माता हूँ । मैं यदि आश्वासन दूँ तो सम्भव है कि ये सँभल जायें । अतः स्वयं अधीर होती हुई भी उन्होंने धैर्य धारण किया और ऐसे अवसर पर जैसा उचित है वैसा बोली ।

नाथ समुझि मन करिअ विचारू । राम वियोग पयोधि अपारू ॥

करनधार तुम्ह अवध जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥३॥

अर्थ : नाथ ! मन में समझ कर विचार कीजिये । राम का वियोग अपार समुद्र है । इस अवध जहाज के आप ही कर्णधार : मांझी है । सब प्रिय लोगों का समाज ही इस पर सवार है ।

व्याख्या : भाव यह कि शोक छोड़कर आप विचार में स्थित हो जाइये । बड़े असमझता का समय उपस्थित है । राम वियोग रूपी समुद्र का सामना पड़ गया । जिसका पार करना सबके सामर्थ्य के बाहर की बात है । अयोध्या रूपी जहाज इस समुद्र में आ फँसा है । इस पर सभी स्वजन बान्धव सवार हैं । आप ही इसके कर्णधार हो । कर्णधार से ही आशा की जाती है कि वह जहाज पार लगा देगा और पार लगना ही चाहिए । क्योंकि सब बन्धु बान्धव इस पर हैं ।

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू । नाहि त बूड़िहि मबु परिवारू ॥

जौ जियँ धरिअ विनय पिय मोरी । रामु लखनु सिय मिलहि बहोरी ॥४॥

अर्थ : धैर्य धारण कीजिये तो पार पाया जा सकता है । नहीं तो सब परिवार ही डूब मरेगा । यदि हे प्रिय ! आप मेरे विनय को हृदय में स्थान दें तो फिर राम लक्ष्मण सीता से भेंट होगी ।

व्याख्या : यदि कर्णधार धैर्य धारण किये रहे तो बेड़ापार हो नहीं तो सारा परिवार डूब मरेगा । अतः इस सङ्कट के समय में भले ही सबका धैर्य छूट जाय पर आपका धैर्य बना रहना चाहिए । आप यदि मेरे विनय को हृदय में स्थान दें तो राम लक्ष्मण सीता से फिर भेंट होगी ।

दो. प्रिया वचन मृदु सुनत नृपु, चितयउ आँखि उधारि ।

तलफत मीन मलीन जनु, सीचत सीतल वारि ॥१५४॥

अर्थ : प्रिया का कोमल वचन सुनकर राजा ने आँख खोलकर देखा । जैसे तड़पती हुई मलिन मछली शीतल जल से सींची गयी ।

व्याख्या : महाराज प्राणकण्ठगत थे । इन्द्रियाँ विकल थी । आँखें बन्द थी ।

तडपते थे । पर अपनी प्रिया कौमल्याजी का वचन सुनकर आँख खोल दिया । कुछ आश्वासन मिला । जैसे बिना जल के तडपती हुई मछली को कोई ठण्डे पानी से सिञ्चन करे और उसकी वेदना में तात्कालिक कमी हो जाय ।

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू । कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू ॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही । कहँ प्रिय पुत्रवधू वैदेही ॥१॥

अर्थ धैर्य धरकर महाराज उठ बैठे और बोल । सुमन्त्र ! बतलाओ कि कृपाल राम कहाँ हैं ? लक्ष्मण कहाँ है ? सनेही राम कहाँ हैं ? प्रिय पुत्रवधू वैदेही कहाँ है ?

व्याख्या महाराज राम लखन और सीता के फिर मिलने की बात सुनकर धैर्य धारण करके उठ बैठे । पर उन्हें शोक से उन्माद सा हो गया । वे सुमन्त्र से पूछने लगे कि राम लक्ष्मण जानकी हैं कहाँ ? सुन चुके हैं कि शृङ्गवेरपुर में गङ्गा पार जाते हुए सुमन्त्र ने देखा । उसके बाद का हाल उस कुछ मालूम नहीं । फिर भी पूछते हैं कि वे लोग कहाँ हैं ।

विलपत राउ विकल बहु भाँती । भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥
तापस अध साप सुधि आई । कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥२॥

अर्थ राजा विकल होकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे । रात युग के समान हो गयी । समाप्त ही नहीं होती । अन्धे तपस्वी के शाप की बात याद आगयी । सब कथा कौसल्याजी को सुनाया ।

व्याख्या राजा अनेक प्रकार से विलाप करने लगे । रात बीतना कठिन हो गया । दुःख की रात है । इसलिए युग के बराबर मालूम होने लगी । रात बीते तो राम लक्ष्मण जानकी कहाँ गये इसका पता लगाया जाय । उनसे भेंट करने का उपाय किया जाय । महाराज ने वन जाते समय रामजी से प्रश्न किया था और करे अपराध कोउ और पाव फल भोग । उसका उत्तर उस समय रामजी ने नहीं दिया । राजा को भी याद न रहा कि युवावस्था में मैंने हाथी के धोखे में रात के समय अन्धतापस के पुत्र को शब्दवेधी वाण मारा था । पुत्रशोक से दुःखी होकर तपस्वी ने शाप दिया था कि मेरी भाँति पुत्रशाक में भरोगे । यही उस प्रश्न का उत्तर था । रामजी की प्रणाम में इस समय वह घटना याद आगयी तो सब कथा कौसल्याजी को सुनाया ।

भयउ विकल बरनत इतिहासा । राम रहित धिग जीवन आसा ॥
सो तनु राखि करवि मै काहा । जेहि न प्रेम पनु मोर निवाहा ॥३॥

अर्थ उस इतिहास को वर्णन करते हुए विकल हो गये कहने लगे कि राम रहित जीवन की आशा को धिक्कार है । उस शरीर को रखकर मैं क्या करूँगा जिसने कि मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न किया ।

व्याख्या : अन्ध तपस्वी का इतिहास वर्णन करने में उसका पुत्रशोक स्मरण करके भारी ताप हुआ । अतः और भी विकल हुए । कहने लगे कि राम के न होने पर जीने की आशा को धिक्कार है ! रामजी जहाँ हों वहाँ जाकर भेंट कर आवें तो जी जायेंगे । ऐसा जीवन मैं नहीं चाहता । यदि राम के बिना शरीर रह गया तो मेरा प्रेम झूठा हो जायगा । अतः जो मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न करे ऐसे शरीर को रखकर मैं क्या करूँगा और प्रेमप्रण का निर्वाह शरीर छूटने से ही होगा । अतः हर हालत में शरीर छूटना ही ठीक है ।

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते । तुम विनु जिअत बहुत दिन बीते ॥

हा जानकी लखन हा रघुवर । हा पितु हित चित चातक जलधर ॥४॥

अर्थ : हा प्राणप्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे बिना जीते बहुत दिन बीत गये । हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! हा रघुवर । हा पिता के चित्तचातक के हित करनेवाले जलधर !

व्याख्या . महाराज विलाप करते हुए कहते हैं कि हा प्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे बिछोह होते ही मुझे मर जाना चाहता था । सो तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये । दशमी को रामजी वन गये । छठे दिन सुमन्त्र लौटे । सो छ दिन महाराज को बहुत दिन मालूम हो रहा है । रामजी को स्मरण करके लक्ष्मणजी को स्मरण करके तथा वैदेहीजी को स्मरण करके हाय हाय कर रहे हैं और अन्त में फिर रामजी के लिए हाय करते हैं और कहते हैं कि पिता के चित्तचातक के लिए वादलरूप तो तुम्ही हो ।

दो. राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम ।

तनु परिहरि रघुवर बिरह, राउ गयउ सुरधाम ॥१५५॥

अर्थ : राम राम कहकर, राम कहकर और फिर राम राम कहकर राम कहा और शरीर छोड़कर रामजी के विरह में राजा सुरलोक को पधारे ।

व्याख्या : असाध्य व्याधि को देखकर तीन बार नाम लिया । यथा : देखी व्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ । कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ । और मृत्यु को सामने देखकर छः बार स्मरण किया । यथा : राम राम राम राम राम राम जपत । मगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत । सो मङ्गल मुद के उदय तथा घरेलू झगड़े की शान्ति के लिए यही छः नामवाला मन्त्रोच्चारण ठीक समझा । इसी भाँति अनेक प्रकार से नाम लेने की अलग अलग फलश्रुतियाँ हैं । विनय-पत्रिका द्रष्टव्य है । अथवा 'षट्चक्र वैधे जौन । हरि रूप देखै तीन । अत. एक

१. १ मूलाधार २. स्वाधिष्ठान ३. मणिपुर ४ अनाहत ५. विशुद्ध ६. आज्ञाचक्र । ये छः चक्र शरीर में हैं । इनके वेधन में सहस्रार में गति होती है जहाँ ब्रह्म साक्षात्कार होता है ।

एक नाम स्मरण से एक एक चक्र का वेध किया । अथवा छ दिन तक सरकार का वियोग रहा । इसलिए छ वार लिया ।

जिअन मरनु फलु दसरथ पावा । अड अनेक अमल जसु छावा ॥

जिअत राम विधु वदनु निहारा । राम विरह करि मरन सँवारा ॥१॥

अर्थ : जीने मरने का फल राजा दशरथ ने पाया । अनेक ब्रह्माण्डों में उनका निर्मल यश छा गया । जीते जी रामजी का चन्द्र वदन देखते रहे और राम के विरह में प्राण त्याग करके अपने मरणको सँवार लिया ।

व्याख्या : एक वार जो रामजी का दर्शन पाता है उसका जीवन सफल हो जाता है और ये महाराज तो रामजी का दर्शन बराबर सत्ताईस वर्ष तक करते रहे । इनके ऐसा जीवन का फल पानेवाला कौन है जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमै मुकुत होइ श्रुति गावा । और इनका मरण तो रामजी के विरह में राम राम स्मरण करते हुए ही हुआ । अतः मरण का फल भी इनके समान किसी को नहीं मिला । यथा • वदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद । विछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ ।

जीना मरना उसी का फल है जिसका संसार में यश हो । महाराज दशरथ का निर्मल यश तो अनेक ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो गया । यथा तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान । राम तजेउ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ।

सोक विकल सब रोवहि रानी । रूपु सीलु बलु तेज बखानी ॥

करहि विलाप अनेक प्रकारा । परहि भूमितल वारहि वारा ॥२॥

अर्थ • शोक से विकल होकर सब रानियाँ रो रही हैं । रूप शील बल और तेज का बखान करके अनेक प्रकार से विलाप करती हैं और पृथ्वीतल पर बार बार गिर रही हैं ।

व्याख्या : महाराज चक्रवर्ती थे । इन्द्र के सखा थे । चौदहो भुवन में इनका प्रभाव था । इनके रूप शील बल और तेज के लिए कहना ही क्या है । ऐसे महाराज की रानियाँ आज रो रही हैं । उनके गुणों का बखान करके विलाप करती हैं । पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर रही है । ऐसी ही जगत् की गति है । यह जगत् का नाटक ही दु खान्त है ।

विलपहि विकल दास अरु दासी । घर घर रुदन करहि पुरवासी ॥

अथएउ आजु भानुकुल भानू । धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥३॥

अर्थ • दास और दासी विकल होकर विलाप कर रही है । घर घर पुरवासी रो रहे हैं । आज सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गये । जो धर्म के अवधि और गुण रूप के निधान थे ।

व्याख्या ऐसे स्वामी के वियोग में दास दासी भी विकल होकर रो रहे हैं ।

घर घर रोना गाना मचा हुआ है। महाराज ऐसे प्रजावत्सल थे कि इनके आनन्द में प्रजा आनन्दित होती थी और इनके वियोग में रो रही है। गोस्वामीजी ने शोक में भी तारतम्य दिखलाया है। पुरवासी उनकी धर्मनिष्ठा और गुण रूप की प्रशंसा कर रहे हैं। कहते हैं कि आज सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो गया।

गारी सकल कैकइहि देही। नयन बिहीन कीन्ह जग जेही ॥

एहि विधि विलपत रैन बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी ॥४॥

अर्थ - सब कैकेयी को गालियाँ देती हैं। जिसने ससार भर को नेत्ररहित कर दिया। इस प्रकार से विलपते हुए रात बीती और सब महामुनि ज्ञानी लोग आये।

व्याख्या : क्या रानियाँ, क्या दास दासी, क्या पुरवासी सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं। सूर्य ही जगत् के चक्षु हैं। उनके अस्त होने से ससार नेत्रहीन हो जाता है। सो यह सूर्यास्त तो कैकेयी के कारण से हुआ। ससार में जो आया है सो जायगा। पर उस आने जाने का प्राकृत नियम है। तदनुसार कार्य होने से दुख कम होता है। यथा : जौ विनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू।

इस भाँति विलाप कलाप में रात बीती। सवेरा होते ही महामुनि ज्ञानी आये। जिन पर शोक का प्रभाव नहीं पड़ता और दूसरों के शोकनिवारण में भी जो समर्थ हैं।

दो तव वसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास।

शोक निवारेउ सबहि कर, निज विग्यान प्रकास ॥१५६॥^१

अर्थ - तव वसिष्ठ मुनि ने समयानुकूल अनेक इतिहास कहकर सबके शोक की निवृत्ति अपने विज्ञान के प्रकाश से किया।

व्याख्या : वसिष्ठजी बड़े ज्ञानी हैं। कुलगुरु हैं। जानते हैं कि शोकनिवारण कैसे किया जाता है। उन्होंने ऐसे ऐसे इतिहास सुनाये जिनसे शोकनिवारण हो। ऐसे समयानुकूल इतिहास वर्णन तथा अपने विज्ञान के प्रकाश से ससार की असारता का प्रतिपादन करके सबके शोक का निवारण किया।

तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ॥

धावहु बेगि भरत पहि जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ॥१॥

अर्थ - नाव में तेल भरकर राजा के शव को उनमें रख दिया। फिर दूतों को बुलाकर कहा कि जल्दी दौड़ो। भरतजी के पास जाओ। राजा का हाल वही भी किसी से न कहना।

व्याख्या पहिला काम गुरुजी ने यह किया कि राजा के शव को तेल भरी

१ १५६ दोहो में रामचरित कहकर अब १४ दोहो में दशरथ का और्ध्वदैहिक क्रिया-प्रसङ्ग कहेंगे।

नाव में रखवा । जिसमें सस्वार के समय तक बिगड़ न जाय । तत्पश्चात् दूत को बुलाकर भरतजी के पास भेजा जो कि दूर वैक्य देश में थे । निकट ही चित्रकूट में राम लक्ष्मण थे उनके पास दूत नहीं भेजा । रामजी के स्वभाव को जानते थे कि पिता ने मेरे वियोग में प्राण त्याग किया । यह सुनकर रामजी की क्या दशा होगी । इसलिए यह समाचार रामजी को मेरी अनुपस्थिति में न लगे और उन्हें समाचार देना भी व्यर्थ है । वे नगर में आ नहीं सकते । भरतजी को ही महाराज अभिप्रेक करने के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं । अतः भरतजी को ही बुलाना उचित समझा । इसलिए वही दूत भेजा और राजा का समाचार कहीं किसी से कहने के लिए मना कर दिया । समय ऐसा था कि उस समय महाराज के चारों बेटों में से कोई भी न था । ऐसे ही अवसर पर शत्रु चढ़ दबाते हैं । इसलिए राजा के मृत्यु का समाचार छिपाया गया ।

एतन्इ कहेउ भरत सन जाई । गुर वोलाइ पठयेउ दोउ भाई ॥

सुनि मुनि आयसु धावन धाए । चले वेग बर बाजि लजाए । २॥

अर्थ भरत से इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनों भाइयों को बुला भेजा है । मुनिजी की आज्ञा सुनकर दूत दौड़ चल । अपने वेग से उत्तम घोड़े को लज्जित करते थे ।

व्याख्या यह समाचार भरतजी से भी न कहना । उनसे इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनों भाइयों को बुलाया है । मेरा नाम सुनते ही दोनों भाई तुरन्त चल पड़ेंगे । वसिष्ठजी की यह बात सुनकर दूत दौड़ चले । अश्वारोही भी नहीं भेजा । जिसमें किसी का ध्यान आकर्षित न हो । परन्तु वे दूत ऐसे थे कि उनके वेग को देखकर उत्तम घोड़े लज्जित हो जायें । अतः अश्वारोहियों को भेजना उचित नहीं था ।

अनरथु अवध अरभेउ जब तैं । कुसगुन होहि भरत कहूँ तब तैं ॥

देखहि राति भयानक सपना । जागि करहि कटु कोटि कल्पना ॥३॥

अर्थ जब से अयोध्या में अनर्थ आरम्भ हुआ तब से भरतजी को अपशकुन होने लगे । रात को भयानक स्वप्न देखते हैं और जागने पर करोड़ों बुरी कल्पनाएँ करते हैं ।

व्याख्या बाह्य जगत् और आन्तर जगत् में घना सम्बन्ध है । ईश्वर के घर से खतरे की घण्टी बजती है । उसी को अपशकुन कहते हैं । अवध में जब से अनर्थ आरम्भ हुआ अर्थात् जब से देवताओं की प्रार्थना से सरस्वती का आगमन विघ्नाचरण के लिए अवध में हुआ । यथा हरपि हृदय कोसलपुर आई । जिमि ग्रहदसा दुसह दुखदाई । तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगा । उसी का विवरण देते हैं । रात को भयानक सपना देखते हैं । जागने पर अनेक बुरी बुरी कल्पनाएँ

करते हैं। भयानक स्वप्न का फल बुरा होता है। भरतजी वैकेयदेश ननिहाल में हैं। घर पर क्या होता है इसका पता नहीं।

विप्र जेंवाइ देहि दिन दाना। सिव अभिषेक करहि विधि नाना ॥
माँगहि हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥४॥

अर्थ : नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराके दान देते थे। अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते थे। महादेव को मनाकर मन में माता पिता कुटुम्बी और भाइयों की कुशल चाहते थे।

व्याख्या : स्वप्नदोष की शान्ति के लिए ब्राह्मण-भोजन दान तथा रुद्राभिषेक का विधान है। अभिषेक भी जल दुग्धादि से अनेक प्रकार से किया जाता है। शिवलिङ्ग पर गोदोहन सद्यः प्रत्यय कारक है। भरतजी ब्राह्मण भोजन कराते हैं। दक्षिणा देते हैं। तत्पश्चात् स्वयं अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते हैं।

अभिषेक के बाद माता पिता परिजन और भाई के कुशल की प्रार्थना करते हैं। क्योंकि : भाविउ भेटि सकहि त्रिपुरारी। अपने प्रेमियों के प्रति मन सदा पापाशङ्की होता है। सोचते हैं। सवेरे सपना देखा और वह ऐसा भयानक था कि मैं जाग उठा। इसका फल निश्चय अशुभ है।

१९. भरतागमन प्रसङ्ग

दो. एहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।

गुरु अनुशासन श्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ ॥१५७॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी सोच ही रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा सुनकर गणेशजी को मना कर चले।

व्याख्या : भरतजी इस भाँति अशुभ की आशङ्का करके सोच रहे थे। तब से अयोध्या से दूत आगये। उन्होंने गुरुजी का अनुशासन सुनते ही गणेश को मनाकर प्रस्थान कर दिया। यहाँ गुरु अनुशासन शब्द ही कह रहा है कि इसमें विचार को स्थान नहीं है। अनिष्ट के अनुमान से भयभीत हो गये। गुरुजी की इच्छा मालूम होती है कि पहुँचने के पहिले मुझे कोई समाचार न मिले। ऐसा सोचकर भरतजी ने दूतों से अधिक पूछताछ न की और न यात्रा मुहूर्त दिखलाया। गुरु की आज्ञा को ही सब कुछ मानकर जय गणेश कहकर चल पड़े।

चले समीर वेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके ॥

हृदय सोचु बड कछु न सोहाई। अस जानहि जिअं जाउँ उड़ाई ॥१॥

अर्थ : उन्होंने हवा के वेगवाले घोड़ों को हाँका। नदी पहाड़ तथा बाँके जङ्गलों को पार करते हुए चले। हृदय में बड़ा भारी सोच था। इसलिए कुछ

अच्छा मालूम नहीं होता था । जी में ऐसा मालूम होता था कि उड़कर जल्दी से पहुँच जायें ।

व्याख्या : बड़ी शीघ्रता है । अतः वायुगतिवाले घोड़ों को रथ में जोड़ा । उन्हें भी जल्दी के लिए हाँक रहे हैं । बाँके शैल वन और नदियों को लाँघते चले जा रहे हैं । किसी की ओर दृष्टिपात नहीं करते । यद्यपि कैकय देश कश्मीर प्रान्त में है । वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बड़ा सुहावना है । पर भरतजी के हृदय में बड़ा भारी सोच है । उन्हें कुछ अच्छा नहीं लग रहा है । रथ के इतने वेग से भी वे सन्तुष्ट नहीं हैं । चाहते हैं कि मैं उड़कर पहुँच जाऊँ । वे सोच रहे हैं गुरुजी ने बुलाया है । इतना ही कहकर दूत चुप है और कुछ नहीं कहता । बात रोकी गयी है । जो हमारे पहुँचने पर खोली जायगी । पिताजी ने क्यों नहीं बुलाया ? जिस बात का कहना उसे मना किया गया है । उसे जानने के लिए दूत पर दबाव डालना भी उचित नहीं । इधर भयानक सपना भी देखा । बात क्या हुई ?

एक निमेष वर्ष सम जाई । एहि विधि भरत नगर निभराई ॥

असगुन होहि नगर पैठारा । रटहि कुभाँति कुखेत करारा ॥२॥

अर्थ . एक निमेष वर्ष के समान बीतता था । इस भाँति नगर के सन्निकट भरतजी पहुँचे । नगर में अब प्रवेश के समय अपशकुन होने लगे । कराल काग : कुखेत में बुरी तरह से शब्द करने लगे ।

व्याख्या . सोच को मात्रा इतनी बढी हुई है कि निमेष वर्ष के समान बीतने लगा । ऐसे समय में सरित शैल वन की शोभा देखने का अवकाश या रुचि किसे हो सकती है । नगर पहुँचने की विधि कहकर प्रवेश कहते हैं ।

प्रवेश के समय दाहिने सुखेत में काग का होना शुभ है । सो वहाँ बायें कुखेत में काग कठोर शब्द कर रहे हैं । काग की बोली अनेक प्रकार की होती है । कोई बड़ी ही भयङ्कर होती है ।

खर सियार बोलहि प्रतिकूला । सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥

श्रीहत सर सरिता वन बागा । नगर बिसेपि भयावनु लागा ॥३॥

अर्थ . गधे और सियार प्रतिकूल बोलने लगे । सुन सुनकर भरत के हृदय में शूल उठता था । तालाब नदी वन बाग सब शोभारहित हो रहे थे और नगर तो विशेषरूप से भयावन मालूम हुआ ।

व्याख्या : गधे रेंकते हैं । सियारिन फेकरती हैं । ये सब महा असगुन हैं । सुन सुनकर भरतजी के हृदय में शूल होता था कि कोई भारी अनर्थ हुआ है । जिसे वहाँ सुनाना मुझे अच्छा नहीं समझा गया ।

बागन्ह बिटप बेलि कुभिलाही । सरित सरोवर देखि न जाही । लागति अवध भयावनि भारी । मानहु कालराति अँधियारी । यह अवस्था रामजी के वन गमन

के समय हुई थी। अब तो महाराज भी नहीं हैं। स्थानों में मनुष्य के चेहरे की भाँति उदासी छा जाती है।

खग मृग हय गय जाँहि न जोए। राम विरोग कुरोग विगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सवन्हि सब सपति हारी ॥४॥

अर्थ . रामजी के वियोगरूपी कुरोग से सताये हुए पक्षी मृग घोड़े और हाथियों को देखते नहीं बनता था। नगर के स्त्री पुरुष एकदम दुखी हो गये थे। मानो सबने अपनी सम्पत्ति हार दी हो।

व्याख्या : हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुरपसु चातक मोर। सुक रथाग पिक सारिका सारस हस चकोर। राम वियोग विकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढ़े। ये इतने दुखी हैं कि इनको देखते नहीं बनता। रोगी होने से कैसा भी सुन्दर पुरुष दर्शनीय नहीं रह जाता। सो ये सब राम वियोगरूपी रोग से ग्रस्त हैं। अतः हतप्रभ हैं।

नगर के भीतर जाने पर नर नारियों को देखा। उनकी दशा सुनिये। सब सम्पत्ति हार जाने पर जैसे कोई दुखी होता है। उसे कुछ सूझता नहीं। वैसी दशा सबकी हो रही है। रामजी ही सबके सर्वस्व थे। उन्हीं से सब बिधि सब पुर लोग सुखारी थे। उन्हीं का मुखचन्द्र अयोध्या के लिए चन्द्र था। सो वन गये। इधर सूर्यास्त भी हो गया। यथा अथएउ आज भानुकुल भानू। अत अवध वासियों के दुख का पारावार नहीं।

दो. पुरजन मिलहि न कहहि कछु, गँवहि जोहारहि जाँहि।

भरत कुशल पूछि न सकहि, भय विपाद मन माँही ॥१५८॥

अर्थ . पुरजन मिलते हैं तो कुछ बोलते नहीं। चुपचाप जोहार करके अपना रास्ता पकड़ते हैं और भरतजी के मन में भय भी था विपाद भी था। इसलिए कुशल नहीं पूछ सकते थे।

व्याख्या : रास्ते में जो मिले उनका हाल सुनिये। उन्हें भरतजी के देखने पर किसी प्रकार का हर्ष नहीं है। उदासीनता इतनी बढी हुई है कि कुशल तक नहीं पूछते। राजा के नाते जोहार कर देते हैं और चुपके से अपना रास्ता पकड़ते हैं। जिसमें बातचीत का अवसर न आने पाये। उन्होंने कुशल न पूछा तो भला भरतजी ही पूछते। सो ये पूछ नहीं सकते थे। उनके मन में भय था कि पूछने पर कोई बड़ी ही अनिष्टकारी घटना का समाचार मिलेगा। जिससे परिचित करना मुझे उचित नहीं समझा गया। अतः अत्यन्त विषण्ण थे।

हाट बाट नहि जाइ निहारी। जनु पुरदहँ दिसि लागि दवारी ॥

आवत सुत सुनि कैकयनदिनी। हरषी रबिकुल जलरुह चदिनी ॥१॥

अर्थ बाजार और रास्ता देखते नहीं बनता था। मानो नगर के दसों

दिशाओ म आग लगी हो । बेटे का आगमन सुनकर सूर्यकुल कमल के लिए चांदनी रूपी कैकयनन्दिनी कैकेयी बड़ी प्रसन्न हुई ।

व्याख्या जिस नगर के दशो दिशाओ मे आग लगी हो वहाँ के हाट बाट की दुर्दशा के लिए क्या कहना है । यह आग कैकेयी रूपी किरातिनी ने अपने बेटे के कल्याण के लिए लगाया है गोडवाने मे आज भी बीमार बच्चो के कल्याणार्थ वन मे आग लगाने की मनौती मानो जाती है । इसीलिए उसे रविकुल जलरूह चन्दिनि कहा । भल ही वह कैकयानन्द वधनी क्यों न हो ।

सजि आरती मुदित उठि धाई । द्वारेहि भेटि भवन लेइ आई ॥

भरत दुखित परिवार निहारा । मानहु तुहिन वनज बनु मारा ॥२॥

अर्थ आरती सजाकर बड़े हर्ष से उठकर दौड़ी । द्वार पर ही मिलकर घर लिवा ले गयी । भरत ने परिवार को दुखी देखा । जैसे कमलवन पर पाला पड़ा हो ।

व्याख्या बेटा राजा होने आ रहा है । अत आरती साजी जा रही है । बड़ी प्रसन्न है । आप ही आरती करने दौड़ी । दूसरा कोई साथ नहीं है । द्वार पर पहुँच कर वही आरती की और मिल भेंटकर अपने घर लिवा ल गयी कि कहीं दूसरे किसी महल म प्रणाम करने न चल जायें । कोई ऐसी पट्टी न पड़ा दे कि सब करा धरा व्यर्थ पड़ जाय ।

भरतजी गुरुजी के यहाँ न जाकर सीधे घर आये । जानत है कि पूर्णकाम गुरुजी को कोई निज का काम हो नहीं सकता । कोई बात घर म विगड़ी है । माता पिता पुरजन और भाई के विषय मे आशङ्का है । स्वप्न म भी भारी अशुभ माता के विषय मे ही देखा है । दरवाजे पर लोग जुट गये हैं । पर दुखी हैं । कुछ पूछते पर माँ आगयी । आरती करके मिल भेंटकर अपने महल मे लिवा ल गयी । सब भेद कहना है । क्योंकि भरतजी कुछ जानते नहीं । शत्रुओ से सावधान करना है । मित्र रूप मे शत्रु बहुत है । क्योंकि इसी ने रघुकुल कमल विपिन पर चांदनी रात बनकर पाला गिराया है ।

कैकेई हरपित एहि भाँती । मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ॥

सुतहि ससोच देखि मनु मारे । पूँछति नैहर कुसल हमारे ॥३॥

अर्थ कैकेयी इस प्रकार प्रसन्न है जैसे किराती वन मे आग लगाकर प्रसन्न होती है । बेटे को शोकयुक्त तथा मनु मारे देखकर पूछती है कि हमारे मायके म सब कुशल तो है ।

व्याख्या किराती जङ्गल म आग लगाकर प्रसन्न हो जाती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा । इसी भाँति इतना बड़ा अनर्थ करके कैकेयी प्रसन्न है कि अब मेरा बेटा राजा हो जायगा । जैसे किराती जङ्गल म आग लगाकर हर्षित होती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा । किरातो म अब भी ऐसा विश्वास है कि

जङ्गल में आग लगा देने से बीमार अच्छा हो जाता है । अतः आज भी वे बीमार बच्चों के स्वास्थ्य लाभ के लिए वन में आग लगा देती है ।

लोगों को दुःखी देखकर भरत उदास हैं । इस बात का ख्याल ही नहीं है । रहै न नीच मते चतुराई । भय उत्पन्न हुआ कि मेरे मायके में तो सब कुशल है न । मायके का बड़ा भरोसा है । यथा नैहर जन्म भरव वरु जाई इत्यादि । भरतजी को सशोक मन मारे देखकर नैहर के कुशल के प्रति आशङ्का हुई ।

सकल कुशल कहि भरत सुनाई । पूंछी निज कुल कुशल भलाई ॥

कहु कहैं तात कहाँ सब माता । कहैं सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥४॥

अर्थ भरतजी ने सब कुशल कह सुनाया । तब अपने कुल का कुशल मङ्गल पूछा । बतला कि पिताजी कहाँ हैं, सब मातायें कहाँ हैं ? सीताजी रामजी और प्रिय भाई लक्ष्मण कहाँ हैं ?

व्याख्या परिजनो को देख ही लिया । अब जिन्हे नहीं देखा उन्हें पूछते हैं । महाराज कैकेयी को अधिक मानते थे । प्रायेण उसी के महल में रहते थे । इसी से सब का आना जाना लगा रहता था । सो कोई नहीं दिखायी पड़ रहा है । भरत का आना सुनकर भी कोई नहीं आया । इसलिए एक एक को पूछ रहे हैं ।

दो सुनि सुत वचन स्नेहमय, कपट नीर भरि नयन ।

भरत श्रवन मन शूल सम, पापिनि बोली वयन ॥१५९॥

अर्थ पुत्र के स्नेहमय वचन को सुनकर वह पापिनी आँखों में कपट के आँसू भरकर भरत के मन और कानों के लिए शूल के समान वचन बोली ।

व्याख्या पति विषयक स्नेहमय जिज्ञासा के वचन सुनकर विधवा माता को पीडा का पारावार नहीं रहता । सो कैकेयी को कोई पीडा नहीं हुई । उसे सात्त्विक भाव नाट्य करने के लिए आँखों में कपट के आँसू भरने पड़े । मन में दुःख नहीं है । दिखाना चाहती है कि मैं दुःखी हूँ । पति में प्रेम न देखकर पुत्र को माता के प्रति अश्रद्धा होती है । अतः यह नाट्य हो रहा है । इसी से कवि पापिनी कह रहे हैं । इसी के करतब से पति मरे । रामजी को वनवास हुआ । यह सब भरत के लिए किया । सो भरत को भी उसके वचन शूल की भाँति चोट पहुँचावगे ।

तात बात मैं सकल सँवारी । भइ मथरा सहाय विचारी ॥

कछुक काज विधि बीच बिगारेउ । भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥१॥

अर्थ बेटा । मैंने सारी बातें बना ली थी । बिचारी मन्थरा सहायक हुई । बीच में विधाता ने कुछ काम बिगाड़ दिया । महाराज इन्द्रपुर को पधार गये ।

व्याख्या कहती है कि आदमी का बिगाड़ा हुआ तो सब मैंने सँवार लिया । अर्थात् राम को राज्य सब मिलकर दिलवा ही चुके थे । इतना बड़ा रघुवंश है । किसी ने मेरी सहायता न की । बिचारी मन्थरा ने वचन सहाय किया । वही एक

मायके की है। जो करणी किया है उसी के प्रकट करने की भूमिका बाँध रही हैं। पहिले ही वार्ता विशेष न कहकर ऐसी बातें करना जिसमें पीछे विवक्षित बात जम जाय यही भूमिका है। जो बात ब्रह्मा बिगाडते हैं वह मनुष्य का सुधारा नहीं सुधारता। राजा का देहान्त हो गया। सँवारा सो हमने, बिगाड़ा सो ब्रह्मा ने : यही तामसी बुद्धि है। बात को सँभालकर कहती है। जिसमे भरतजी को कम पीड़ा हो। मरना न कहकर इन्द्रपुर पधारना कह रही है।

सुनत भरतु भए विवस विपादा । जनु सहमेउ करि केहरि नादा ॥
तात तात हा तात पुकारी । परे भूमि तल व्याकुल भारी ॥२॥

अर्थ : सुनते ही भरतजी विपाद के वश हो गये। जैसे सिंह का नाद सुनकर हाथी सहम उठा हो। तात। तात। हा तात ! ऐसा पुकार करके अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : हाथी के लिए सिंह का नाद श्रवण मन के लिए शूल के समान है। केहरि का गन्ध हाथी नहीं सह सकते। कोसों दूर भागते हैं। नाद सुनने पर तो कुछ करते धरते नहीं बनता। महाराज का अस्वस्थ होना भरतजी नहीं सह सकते थे। अतः मरण सुनने पर भारी विकलता हुई। अपने को सँभाल न सके। धैर्य छूट गया। चिल्लाकर रो उठे और पृथ्वी पर गिर गये।

चलत न देखन पायउं तोही । तात न रामहि सौपेहु मोही ॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी । कहु पितु मरन हेतु महतारी ॥३॥

अर्थ : अन्त समय में मैं आपको देख न सका। हे तात ! आपने मुझे रामजी को सौपा भी नहीं। फिर धैर्य धारण करके सँभलकर उठे। बोले माँ ! पिता के मरण का कारण बताओ।

व्याख्या : सुरपुर गवन सुनावा। अतः कहते हैं : चलत न देखन पायउं तोही। भरतजी ने समझा कि सरकार ने दाह क्रिया किया होगा। सो मरती समय मैं मुख भी न देख सका। अन्तिम दर्शन मेरे भाग्य में नहीं था। एक आवश्यक बात मेरे लिए नहीं कर सके। रामजी को मुझे नहीं सौपा कि मेरे बाद तुम्हीं इसके पिता हो।

कैकेयी कुछ नहीं कहती कि शोक का वेग निकल जाने दो। तब खुशी की बात सुनावेंगे। बेटे को ख्याल है कि राजा तो रामजी हो गये अब मेरा भरण पोषण रामजी के हाथ है। यदि सौंप देते तो बड़ी जागीर मिलने की आशा थी। नहीं तो थोड़ी ही मिलेगी और कौन कह सकता है कि न भी मिले। यह इसे नहीं मालूम है कि अब मैं ही राजा हूँ। अब इसे खुशखबरी सुनानी चाहिए। तब से भरतजी अपने को सँभालकर उठ बैठे। उठने में अपने को सँभालते हैं। हाथ पर ठीक काम नहीं करते। अब पूछते हैं कि महाराज को कौन सा रोग हो गया था ?

सुनि सुत वचन कहति कैकेई । मरमु पाछि जनु माहुर देई ॥
आदिहु तें सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥४॥

अर्थ बेटे का वचन सुनकर कैकेयी कहती है । मानो मर्म पर घाव करके विष दे रही है । वह कुटिल कठोर कैकेयी । आरम्भ से अपनी करणी बड़े प्रसन्न मन से सुना गयी वर्णन कर गयी ।

व्याख्या भरतजी का वचन सुनकर जो कैकेयी ने कहा उसे आगे कहा जायगा । पहले प्रभाव कहते हैं । मानो मर्म पर घाव करके उस पर विष की पट्टी दी जा रही है । पहला वरदान भरत को राज्य मांगना मर्म पर घाव करना है और दूसरा वरदान रामजी को वनवास देना उस पर जहर की पट्टी बांधना है । विष खिलाने से भी अधिक सद्य परिणाम घाव पर विष देने से होता है । क्योंकि खाने के बाद पाक होने में कुछ समय लगता है और घाव पर विष रखने से उसका ससर्ग रक्त से सद्य हो जाता है । अतः उसका तुरन्त प्रभाव होता है । शूल से वचन ने मर्म पर घाव किया । यथा भरत श्रवन मन शूल सम पापिनि बोली वचन । दूसरे वचन ने उस पर विष प्रयोग का प्रभाव डाला ।

कैकेयी ऐसी कठोर है कि अपनी कुटिलता भरी करणी लगी प्रसन्न होकर वर्णन करने । कहने लगी कि मन्थरा द्वारा पता लगने पर कि राम का राज्याभिषेक होनेवाला है । मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि उनके अभिषेक होने पर तुम्हें उनका गुलाम होकर रहना पड़ेगा । उधर अभिषेक की सब तैयारी हो चुकी थी । फिर मन्थरा ने जैसे जैसे समझाया जैसे जैसे वरदान मांगा गया, जैसे रामजी वन गये, जिस भाति महाराज का देहावसान हुआ, सब कह गयी ।

दो भरतहि विसरेउ पितु मरन, सुनत राम वन गौनु ।

हेतु अपनपउ जानि जिअ, थकित रहे धरि मौनु ॥१६०॥

अर्थ भरतजी को रामजी का वन जाना सुनकर पिता का मरण भूल गया । अपने को ही कारण समझकर चुप होकर ठक हो गये ।

व्याख्या राम वनगमन का चोट पितु मरण से भी बड़ा हुआ । मर्म पर घाव करने से विष की पट्टी अधिक दुःखदायक हुई । बड़ा भारी दुःख आजाने से छोटा दुःख भूल जाता है । पिता का मरण सुनने पर तो रोये चिल्लाये । पर राम वनगमन सुनकर मौन होकर स्तब्ध हो गये । क्योंकि मन में समझा कि सब अनर्थ का कारण तो मैं हुआ पहिल वरदान का ही दूसरा वरदान पोषक है ।

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति । मनहुं जरे पर लोनु लगावति ॥

तात राउ नहि सोचइ जागू । विडइ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू ॥१॥

अर्थ बिकल देखकर बेटे को समझाती है । मानो जल पर नमक छिड़कती

है । बेटा । महाराज सोचने योग्य नहीं है । उन्होंने पुण्य और यश उपार्जन करके ससार में सुख किया है ।

व्याख्या समझती है कि बाप के मरने के शोक में लड़के को राज्य प्राप्ति की खुशी दब गयी । मर्म पर चोट करके विष देना सहा जाता है । जले पर नमक छिड़वना नहीं सहा जाता । भरतजी का कलेजा जल रहा है । तिस पर इसका समझाना नमक का काम कर रहा है । सहा नहीं जाता । कैकेयी कहती है कि पाप कर्म करके सुख नहीं भोगा । पुण्य भी कमाया । यश भी कमाया और सासारिक सुख भी भोगा । पापी के लिए सोचा जाता है कि इसकी क्या गति होगी या दुखिया के लिए सोचा जाता है कि विचारा मर गया । कुछ सुख भोगने को न मिला । राजा को तो दोनों लोक में सुख ही सुख हुआ । उनके लिए क्यों सोचते हो ?

जीवत सकल जनम फल पाए । अत अमरपति सदन सिधाए ॥

अस अनुमानि सोच परिहरहू । सहित समाज राजु पुर करहू ॥२॥

अर्थ जीते जी जन्म पाने का सभी फल पाया । अन्त में इन्द्रासन पर चल गया । ऐसा अनुमान करके शोक को छोड़ो और समाज सहित नगर का राज्य करो ।

व्याख्या इन्द्रपुर जाना अनुमान से सिद्ध है । महाराज अश्वमेधान्त याजी थे । उनके इन्द्रपुर जाने में सन्देह क्या ? तिस पर इन्द्र के मित्र थे । यथा ससुर सुरेस सखा रघुराज । अत इन्द्र ने बुलाकर अपने पास रखवा होगा । इस अनुमान के बल पर सोच छोड़ो । राजा गये । पर अपना समाज छोड़ गये हैं । उस समाज के साथ राज्य करो । क्यों व्यर्थ दुःख करत हो ।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारु । पाके छत जुनु लाग अगारु ॥

धीरजु धरि भरि लेहि उसासा । पापिनि सर्वाहि भाँति कुल नासा ॥३॥

अर्थ सुनकर राजकुमार भरतजी एकदम सहम गये । मानो पके घाव पर अङ्गार छू गया । वे धैर्य धारण करके लम्बी साँस ली और बोल कि रे पापिनी । तैने सभी तरह से कुल का नाश किया ।

व्याख्या एक एक बात रानी साहिबा की दूसरे से बढ़कर हो रही है । अत ववि उपमा भी वैसी ही देते जाते हैं । पहिली बात मर्म पाछि जुनु माहुर देई । दूसरी बात मानहु लान जरे पर देई । अब तीसरी बात की उपमा देते हैं कि मानो पके हुए फाड़े पर कोई अङ्गार रख दे । राम का वनवास बहना मानो घाव पक गया है । उस पर राजपुर करऊ कहने ने तो मानो उस पर अङ्गार रखने का काम किया ।

धैर्य करके तब उच्छ्वास लिया । नहीं तो स्तब्ध खड़े थे । इस बार बोल ही बैठे । पापिनि बोली वैन । अत कहते हैं पापिनि सर्वाहि भाँति कुल नासा । दिन कर कुल जलरुह चन्दिनि है । राजा का मारा । परिजन को मरणान्त कष्ट दिया । बेटे को वन दिया । कुल नाश में कोई बसर न छोड़ा ।

जौ पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारे मोही ॥

पेड़ काटि तै पालउ सीचा । मीन जिअन निति बारि उलीचा ॥४॥

अर्थ : यदि तुझे अत्यन्त ही कुरुचि थी तो जन्म लेते ही मुझे क्यों नहीं मार दिया ? पेड़ काटकर तूने पल्लव सीचा । मछली के जीने के लिए तूने पानी ही उलीच डाला ।

व्याख्या : रघुकुल की रीति के विरुद्ध रुचि होना कुरुचि है और मुनिवेष धारण कराके रामजी को वन भेजना अत्यन्त कुरुचि है । इस कुरुचि द्वारा तैने मेरे यशोमय शरीर का वध किया । तब मुझे जनमते ही क्यों नहीं मारा ? उस समय मर गये होते तो हम अपयश भाजन, प्रियजन द्रोही तो न होते ।

यहाँ सीचा और उलीचा दोनों क्रियाओं से दोनों वरदान अर्थात् १. भरत को राज्य २. राम का वन माँगना द्योतित किया । रामजी को राज्य मिलना आमूल वृक्ष रूप था । उसके सिद्धन से हम लोग पल्लव रूप आप से आप सिंच जाते । सो उसे तैसे काटा । वृक्ष की जड़ ही कट गयी । पल्लव के सीचने से पल्लव की रक्षा नहीं हो सकती ।

मुझे राज्य देकर ही तू सन्तुष्ट नहीं हुई । तूने समझा कि राम के रहने से मैं राज्य न कर सकूँगा । सम्भव है कि मैं मारा जाऊँ । तूने यह न जाना कि जैसे मछली का जीवनाधार जल है उसी भाँति मेरे जीवनाधार राम हैं । जैसे कोई महामूर्ख यह समझकर कि जल में मछली डूब मरेंगी । पानी उलोच दे उसी भाँति तूने मेरी रक्षा के लिए रामजी को वनवास दिया । पहिले उदाहरण से राम के सुख से अपना सुख कहा । दूसरे से उन्हें जीवनाधार बताया । भाव यह कि मेरा हित चाहती हुई तूने मेरा सर्वनाश कर दिया ।

दो. हंसबस दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ ।

जननी तूं जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ ॥१६१॥

अर्थ : सूर्यवंश ऐसा कुल, दशरथ, ऐसे पिता, राम लक्ष्मण ऐसे भाई हुए और माता । तुम माता हुई । विधाता से कोई वश नहीं चलता ।

व्याख्या : जब ब्रह्मदेव ने सूर्यवंश ऐसे उज्ज्वल कुल में जन्म दिया, जिसके समान दूसरा नहीं ऐसा पिता दिया । यथा : दसरथ गुन गन वरनि न जाही । अधिक कहा जेहि सम जग नाही । राम लक्ष्मण सा भाई दिया : जिन्हके जस प्रताप के आगे । ससि मलीन रवि सीतल लागे और माँ तुम्हे बना दिया । जिसके पापी हृदय ने मेरा हित चाहते हुए सर्वनाश कर दिया । यहाँ दूसरे जननी शब्द में काकु है । भिन्नकण्ठध्वनिर्धोरैः काकुरित्यभिधोयते ।

जबतै कुमति कुमत जिअ ठयेऊ । खंड खंड ह्वै हृदय न गयेऊ ॥

बर माँगत मन भइ नहि पीरा । गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥१॥

अर्थ : रे कुमति ! जब यह दुर्वृद्धि तेरे हृदय में आयी तेरा हृदय टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया ! वर माँगने में तेरे मन में पीड़ा क्यों न हुई ! तेरी जीभ गली नहीं ! मुख में कीड़े न पड़े !

व्याख्या : जिस हृदय में सदा सुमति रही । जो सदा राम प्रेम से सरस रहा, उसमें जब दुर्वृद्धि का प्रवेश हुआ, उससे राम प्रेम जाता रहा । तब वह टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया । क्योंकि सरस वस्तु रस के वियोग से फट जाता है । इसलिए हृदय को फट जाना चाहता था ।

यदि फटा नहीं तो कम से कम वर माँगते समय उसमें पीड़ा तो होनी ही चाहती थी । पर तुझे पीड़ा तक न हुई । यथा : मागउँ दूसर वर करजोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी । जिस जीभ से जिस मुख से तैने ऐसा वरदान माँगकर इतना बड़ा धोर पाप किया उस जीभ को सद्यः गल जाना चाहता था और उस मुख में कीड़े पड़ जाने चाहते थे । यथा : ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजन पद त्रिमुख अभागी । भला तुझसे बिगड़ा तो बिगड़ा महाराज कैसे भूल गये ?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही । मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ॥
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥२॥

अर्थ : राजा ने तेरा विश्वास कैसे किया । मरती समय विधाता ने उनकी बुद्धि हरण कर ली । ब्रह्मदेव भी स्त्री के हृदय की गति नहीं जान पाते जो सब प्रकार के कपट पाप और अवगुण की खानि होती है ।

व्याख्या : महाराज तो नीतिकुशल थे । उन्हें समझना चाहिए था कि रामजी का अभिप्रेक है । आज यह कोपभवन में आयी है । खुशी नहीं मनाती । वरदान माँगती है । अवश्य इसे रामजी से भय है । रामजी के विरुद्ध ही कुछ माँगेगी । ऐसे अवसर पर विशेषतः तेरा विश्वास तो करना ही नहीं चाहता था । क्योंकि कोपभवन में जाने से ही तेरा भव व्यक्त हो गया था । सो : कालदण्ड गहि काहु न मारा । हरै धर्म बल बुद्धि विचारा ।

यदि कहिये कि राजा को इस बात का भरोसा था कि इसके हृदयगति को मैं जानता हूँ । यथा : जानेउ मरम राउ हँसि कहई । तुमहि कोहाब परम प्रिय अहई । तो मायारूप होने से ब्रह्मा भी नहीं जान सकते कि किस स्त्री की किस समय कैसी गति हो जायगी । माया के परिवार काम क्रोध से शिव चतुरानन के डरने की बात सुनी जाती है और नारि तो उनमें सबसे अधिक दारुण दुःखद है । यथा : काम क्रोध लोभादि पद प्रबल मोह कै धारि । तिन मह अति दारुन दुःखद मायारूपी नारि । जो जिसकी गति नहीं जानता उससे वह डरता है । अतः कहा जा सकता है कि विधाता को भी नारी के हृदय की गति नहीं मालूम । जितने कपट हैं, पाप हैं और अवगुण हैं । ये सब स्त्रियों के हृदय से ही उत्पन्न हुए हैं । जिस भाँति जितने धातु हैं । वे सब खानि से ही उत्पन्न होते हैं । कुछ पण्डितों का मत है कि विष देना

पहिले पहल स्त्रियो ने ही निकाला । नही तो जिसके पिता को वेदाधिकार हो, पति को हो, पुत्र को हो पर उसे न हो । यह बात निष्कारण नही हैं । । ।

सरल सुशील धरमरत राऊ । सो किमि जानइ तीय सुभाऊ ॥

अस को जीव जंतु जग माही । जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नांही ॥३॥

अर्थ : महाराज सरल सुशील धर्मात्मा थे । वे स्त्री स्वभाव को क्या जानें । ऐसे जीव जन्तु ससार में कौन है जिसे रघुनाथ प्राणप्रिय न हो ।

व्याख्या : सत्य कहहि कवि नारि सुभाऊ । सब विधि अगह अगाध दुराऊ । महाराज सरल, स्त्री कपटखानि : महाराज सुशील और स्त्री अधखानि : महाराज धर्मरत और स्त्री अवगुणखानि । कपटखानि होने से अगह, अधखानि होने से अगाध और अवगुणखानि होने से दुराऊ । अतः महाराज तो जान ही नहीं सकते थे ।

जिनहि निरखि मग सांपिनि बीछी । तजहि विषम विष तामस तीछी । क्योकि अपनी आत्मा किसे प्रिय नहीं है । राम सो परमात्मा भवानी । राम परमात्मा होने से सबकी आत्मा है । अतः वे सबको प्रिय हैं ।

मे अति अहित रामु तेउ तोही । को तू अहसि सत्य कहु मोही ॥

जो हसि सो हसि मुंह मसि लाई । आंखि ओट उठि बठहि जाई ॥४॥

अर्थ : वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये । तू है कौन मुझे ठीक ठीक बतला । चाहे तू जो हो मुख मे कालिख लगाकर उठ और मेरी आंखो के आड़ मे जाकर कही बैठ ।

व्याख्या : अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा । बैरिहु राम बड़ाई करही । वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये । अब तू है कौन ? मुझसे सत्य बतला दे । मेरी वह माँ तो तू नहीं है । उसे तो रामजी प्राण से भी प्यारे थे । तब मेरे माँ के रूप मे तू कौन है ? कोई राक्षसी है या पिशाची है । जो मेरी माँ का रूप धारण किये हुए है ।

अच्छा चाहे तू वही हो चाहे दूसरी हो । दुष्ट बुद्धि का मुख मसि योग्य होता ही है । यथा : असि बुधि तो बिधि मुँह मसि लोई । लोचन ओट बैठु मुँह गोई कहकर पति ने त्याग किया था : आंखि ओट उठि बैठहि जाई कहकर पुत्र ने भी त्याग किया । यथा : तजेउ पिता प्रह्लाद विभोपन बधु भरत महतारी ।

दो. राम विरोधी हृदय तें, प्रकट किन्ह बिधि मोहि ।

मो समान को पातकी, बादि कहौ कछु तोहि ॥१६२॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने मुझे राम विरोधी के हृदय से प्रकट किया है अतः मेरे समान पापी कौन है । तुझे मैं व्यर्थ ही कुछ कह रहा हूँ ।

व्याख्या : त्याग के बाद अब उस ओर से क्रोध हटा तब आत्मग्लानि हुई कि मैं विरोधी के हृदय से पैदा हुआ । ऐसी ही ग्लानि सती को हुई थी । यथा : दच्छ सुक सम्भव यह देही । पापा मैं हूँ तुम्हे व्यर्थ पापिनी कहता हूँ । कर्म सुभासुभ

देह विधाता । विधाता ने मेरा पाप देखकर ही तेरे उदर से मेरा जन्म दिया है । तू तो राम विरोधी के उदर से नहीं उत्पन्न हुई । मैं तो पूर्वजन्म का पापी हूँ । तू तो केवल इस जन्म की पापिनी है अतः मेरा तुझसे कहना व्यर्थ है ।

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई । जरहि गात रिस कछु न वसाई ॥
तेहि अवसर कुबरी तहं आई । वसन विभूषन विविध बनाई ॥१॥

अर्थ शत्रुघ्न का शरीर माता की कुटिलता सुनकर क्रोध से जल रहा था । कोई वश नहीं चलता था । उस अवसर पर कुबरी वहाँ आगयी । उसने अनेक प्रकार के कपड़े और गहने से अपने को सजा रक्खा था ।

व्याख्या अभी तक शत्रुघ्नजी बोल ही नहीं । यह रघुकुल का विनय है । बड़ों के सामने छोटे बोलते ही नहीं । शत्रुघ्नजी सबसे छोटे हैं । रामायण भर में ये बोले ही नहीं । यही हाल लक्ष्मणजी का भरतजी के सामने रहता है । शत्रुघ्नजी भरतजी के साथ हैं । माता की कुटिलता सुन सुनकर देह में आग लगी हुई है । आज दूसरे से यह बात हुई होती तो क्या न कर बैठते । माँ हैं । इसलिए कुछ कर नहीं सकते । भरतजी ने तो खरी खोटी भी कही । पर ये चुप हो रहे ।

जिस समय भरतजी ने माता का त्याग किया उसी अवसर पर कुबरी वहाँ चली आयी । वहाँ कोई आ नहीं सकता था । एकान्त में बात हो रही थी । कुबरी का साहस बढा हुआ है । बाहवाही लेने आयी है । समझ लिया कि मेरी हितचिन्तकता अब तक रानी साहिबा कह चुकी होगी । सो वस्त्राभूषण जो कैकेयी से मिले हैं उससे सज धजकर चखपूतरी बनी हुई आयी मुबारकबादी देने ।

लखि रिसि भरेउ लखन लघु भाई । बरत अनल घृत आहुति पाई ॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा । परि मुह भरि महि करत पुकारा ॥२॥

अर्थ लखकर लक्ष्मणजी के छोटे भाई क्रोध से भर गये । मानो जलती हुई आग में घी की आहुति पड़ी । कूबर ताककर हुमक कस कर लात मारा । मुँह के बल जमीन पर पुकार करती हुई गिरी ।

व्याख्या . यद्यपि भरतजी के साथ हैं । पर लक्ष्मणजी के छोटे भाई हैं । तेजस्वी स्वभाव है । उसके सजधजकर आने का आशय लखा । क्रोध से भर गये कि इसी की लगायी सब आग है । उसके आने से जलती हुई आग में घी का काम किया । क्रोध भभक उठा न बोले न चाले ।

कूबर ताककर लात मारा कि सब दोष की गठरी यही है । वीर के लात का आघात कुबरी क्या सहती । मुँह के बल पृथ्वी पर गिरी । चिल्लाने लगी कि क्या यही नेकी का बदला है ? होम करते हाथ जल रहा है ।

कूबर टूटेउ फूट कपारु । दलित दसन मुख रुधिर प्रचारु ॥
आह दइअ मै काह नसावा । करत नीक फलु अनइस पावा ॥३॥

अर्थ कूबर टूटा । सिर फूटा । दाँत टूट गये । मुँह से रक्त बह चला कहने लगी हाय देव । मैंने क्या बिगाडा ? मैंने भला किया उसके बदले में फल बुरा मिला ?

। व्याख्या कूबर पर लात लगा । इसलिए कूबर टूट गया । मुँह के बल गिरी । इससे कपाल में भी चोट आयी । दाँत भी टूट गये । भीतर से भी रक्त और बाहर से भी रक्त बह चला । फोरें जोग कपार हमारा का साफल्य है । कहने लगी अरे दैया रे मैंने क्या बिगाडा । बिगाडा तो कौसल्या ने जिन्होंने रचि प्रपञ्च भूपति अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई । मैंने तो भला किया । रानी को खबर दे दिया । नहीं तो आज रामचन्द्र राजा हो गये होते ।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि झोटी ॥

भरत दयानिधि दीन्ह छडाई । कौसल्या पहि गे दोउ भाई ॥४॥

अर्थ सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख से चोटी तक खोटी जानकर उसको झोटा केश पकड़ पकड़कर घसीटने लगे । दयासागर भरतजी ने उसे छोड़ा दिया । दोनों भाई कौसल्याजी के पास गये ।

व्याख्या उसकी बात सुनकर शत्रुघ्नजी ने लखा कि इसके कूबर में ही दोष नहीं हैं । इसके सर्वाङ्ग में दोष भरा है । उसका केश पकड़कर एक ओर घसीटकर फेंका और फिर घसीटकर दूसरी ओर फेंक दिया ।

भरतजी दयानिधान हैं । उस पर भी दया किया कि यह चेरी है । इसकी इतनी ही बुद्धि थी । जब रानी की यह गति है तो चेरी का क्या दोष है । उठकर छोड़ाया । कहने से काम नहीं चला । अतः दुखिनी रामजी की माता कौसल्याजी के पास दोनों भाई गये । महाराज का शव वही था ।

प्रेमवर्णन प्रसङ्ग

दो मलिन वसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भार ।

कनक कल्प बर वेलि बन, मानहुँ हनी तुसार ॥१६३॥

अर्थ देखा कि कपड़े मैले, बेरङ्ग, विकल, शरीर दुबली, दुख के बोझ से दबी ऐसी मालूम होती थी । जैसे सुनहली लहलहाती हुई कल्पलता को वन में पाला मार गया हो ।

व्याख्या आज महाराज दशरथ की पट्टाभिषिक्ता महिषी की यह दशा है कि कपड़े मैले हो गये हैं । शरीर का रङ्ग काला पड़ गया है । शोक से विकल हैं । दुबली पड़ गयी हैं । बड़ा भारी दुख है । क्या थी क्या हो गयी ? जैसे पाला मार देने से कल्पलता झुलस गयी हो । कैकेयी में ऐसे लक्षण एक भी न थे । उसके कपड़े भी साफ थे । रङ्ग भी फीका नहीं था । पहले की सी ज्यों की त्यों थी । बल्कि अधिक प्रसन्न दिखायी पड़ी थी ।

भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुरुछित अवनि परी झइआई ॥
देखत भरतु विकल भये भारी । परे चरन तनु दसा बिसारी ॥१॥

अर्थ भरत को देखकर माता कौसल्या उठकर दौड़ी पर चक्कर खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । देखते ही भरतजी बड़े विकल हुए । चरणा पर गिर पड़े । शरीर की सुघ बुध न रही ।

व्याख्या कैकेयी और कौमत्या में अन्तर दिखला रहे । दुःख के समय बेटे को आते देखकर जैसी माँ की गति होती है वही कौसल्याजी की है । जैसा वात्सल्य रामजी पर वैसा ही भरत पर । आते देखकर मिलने के लिए उठ दौड़ी । दुर्बलता से चक्कर आगया । मूर्च्छित हो गयी । इधर भरतजी की यह दशा हुई कि देखकर भारी व्याकुल हुए । कौसल्याजी के चरणों पर शरीर की सुघ बुध खोकर जा गिरे । कौसल्याजी की दशा देखकर विकल हुए थे । मूर्च्छित देखकर भारी विकल हुए ।

मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जनमी जग माँझा । जौ जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥२॥

अर्थ माता । पिताजी को दिखा दो । सीताजी और दोनों भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं । कैकेयी संसार में क्यों पैदा हुई । यदि हुई तो बन्ध्या क्यों न हुई ?

व्याख्या मातु सम्बोधन से भाव यह कि कैकेयी माता नहीं । माता तो तू है । जो पिता को दिखावे वही माता है मरती समय पिता को नहीं देखा । अतः शव का ही दर्शन चाहते हैं । सीताजी और राम लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं ? इन दोनों प्रश्नों से पिता के प्रति तथा भाइयों के प्रति अपना प्रेम द्योतित किया । अथवा इतना ही मालूम है कि वन गये । पर कहाँ है यह नहीं जानते । भाव के शुद्ध होने से अर्थ युक्त बातें आप से आप मुख से निकलती हैं । भरतजी के प्रश्न स्वाभाविक है । पर कैसा शोकोद्गार उससे प्रकट होता है ।

माता नहीं कहते कैकेयी कहते हैं । उसी ने सब बिगाड़ा । इसलिए कहते हैं कि वह जनमी क्यों ? जगत् के हित के लिए जगत् में जन्म होता है । उससे घोर अहित हुआ । यदि जनमी तो उसे बन्ध्या होना चाहिए था । न बेटा होता न उसके लिए यह इतना बड़ा अनर्थ करती ।

कुल कलकु जेहि जनमेउ मोही । अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागो । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥३॥

अर्थ जिसने मुझ कुलकलङ्क को जन्म दिया है । मैं अपयश का पात्र और प्रियजन का द्रोही हुआ । मेरे समान तीनों भुवन में कौन अभाग है । जिसके कारण माँ ! यह तेरी दशा हुई ।

व्याख्या जिसके पुत्रवती होने से रघुकुल में बलङ्क लगा । मैं बलङ्की पैदा

अर्थ : कूबर टूटा । सिर फूटा । दाँत टूट गये । मुँह से रक्त बह चला : कहने लगी हाय देव । मैंने क्या बिगाड़ा ? मैंने भला किया : उसके बदले में फल बुरा मिला ?

। व्याख्या : कूबर पर लात लगा । इसलिए कूबर टूट गया । मुँह के बल गिरो । इससे कपाल में भी चोट आयी । दाँत भी टूट गये । भीतर से भी रक्त और बाहर से भी रक्त बह चला । फोरें जोग कपार हमारा का साफल्य है । कहने लगी अरे देवा रे मैंने क्या बिगाड़ा । बिगाड़ा तो कौसल्या ने जिन्होंने : रवि प्रपञ्च भूपति अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई । मैंने तो भला किया । रानी को खबर दे दिया । नहीं तो आज रामचन्द्र राजा हो गये होते ।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि झोंटी ॥
भरत दयानिधि दीन्ह छडाई । कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥४॥

अर्थ : सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख से चोटी तक खोटी जानकर उसको झोटा : केश पकड़ पकड़कर घसीटने लगे । दयासागर भरतजी ने उसे छोड़ा दिया । दोनों भाई कौसल्याजी के पास गये ।

व्याख्या : उसकी बात सुनकर शत्रुघ्नजी ने लखा कि इसके कूबर में ही दोष नहीं हैं । इसके सर्वाङ्ग में दोष भरा है । उसका केश पकड़कर एक ओर घसीटकर फेंका और फिर घसीटकर दूसरी ओर फेंक दिया ।

भरतजी दयानिधान हैं । उस पर भी दया किया कि यह चेरी है । इसकी इतनी ही बुद्धि थी । जब रानी की यह गति है तो चेरी का क्या दोष है । उठकर छोड़ाया । कहने से काम नहीं चला । अतः दुखिनी रामजी की माता कौसल्याजी के पास दोनों भाई गये । महाराज का शव वही था ।

प्रेमवर्णन प्रसङ्ग

दो. मलिन वसन विवरन विकल, कृस सरीर दुख भारु ।

कनक कल्प बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसारु ॥१६३॥

अर्थ : देखा कि : कपड़े मैले, बेरङ्ग, विकल, शरीर दुबली, दुःख के बोझ से दबी : ऐसी मालूम होती थी । जैसे सुनहली लहलहाती हुई कल्पलता को वन में पाला मार गया हो ।

व्याख्या : आज महाराज दशरथ की पट्टाभिषिक्ता महिषी की यह दशा है कि कपड़े मैले हो गये हैं । शरीर का रङ्ग काला पड़ गया है । शोक से विकल हैं । दुबली पड़ गयी है । बड़ा भारी दुःख है । क्या थी क्या हो गयी ? जैसे पाला मार देने से कल्पलता झुलस गयी हो । कैकेयी में ऐसे लक्षण एक भी न थे । उसके कपड़े भी साफ थे । रङ्ग भी फीका नहीं था । पहले की सी ज्यों की त्यों थी । बल्कि अधिक प्रसन्न दिखायी पड़ी थी ।

भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुरुछित अवनि परी झइभाई ॥

देखत भरतु विकल भये भारी । परे चरन तनु दसा विसारी ॥१॥

अर्थ : भरत को देखकर माता : कौसल्या उठकर दौड़ी पर चक्कर खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । देखते ही भरतजी बड़े विकल हुए । चरणों पर गिर पड़े । शरीर की सुध बुध न रही ।

व्याख्या : कैकेयी और कौसल्या में अन्तर दिखला रहे । दुःख के समय बेटे को आते देखकर जैसी माँ की गति होती है वही कौसल्याजी की है । जैसा वात्सल्य रामजी पर वैसा ही भरत पर । आते देखकर मिलने के लिए उठ दौड़ी । दुर्बलता से चक्कर आगया । मूर्च्छित हो गयी । इधर भरतजी की यह दशा हुई कि देखकर भारी व्याकुल हुए । कौसल्याजी के चरणों पर शरीर की सुध बुध खोकर जा गिरे । कौसल्याजी की दशा देखकर विकल हुए थे । मूर्च्छित देखकर भारी विकल हुए ।

मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥

कैकइ कत जनमी जग माँझा । जौ जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥२॥

अर्थ : माता ! पिताजी को दिखा दो । सीताजी और दोनों भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं । कैकेयी ससार में क्यों पैदा हुई । यदि हुई तो बन्ध्या क्यों न हुई ?

व्याख्या : मातु सम्बोधन से भाव यह कि कैकेयी माता नहीं । माता तो तू है । जो पिता को दिखावे वही माता है : मरती समय पिता को नहीं देखा । अतः शव का ही दर्शन चाहते हैं । सीताजी और राम लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं ? इन दोनों प्रश्नों से पिता के प्रति तथा भाइयों के प्रति अपना प्रेम द्योतित किया । अथवा इतना ही मालूम है कि बन गये । पर कहाँ हैं यह नहीं जानते । भाव के शुद्ध होने से अर्थ युक्त बातें आप से आप मुख से निकलती हैं । भरतजी के प्रश्न स्वाभाविक हैं । पर कैसा शोकोद्गार उससे प्रकट होता है ।

माता नहीं कहते कैकेयी कहते हैं । उसी ने सब बिगाड़ा । इसलिए कहते हैं कि वह जनमी क्यों ? जगत् के हित के लिए जगत् में जन्म होता है । उससे घोर अहित हुआ । यदि जनमी तो उसे बन्ध्या होना चाहिए था । न बेटा होता न उसके लिए यह इतना बड़ा अनर्थ करती ।

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही । अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥

को तिभुवन मोहि सरिस अभागो । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥३॥

अर्थ : जिसने मुझ कुलकलङ्क को जन्म दिया है । मैं अपयश का पात्र और प्रियजन का द्रोही हुआ । मेरे समान तीनों भुवन में कौन अभाग है । जिसके कारण माँ ! यह तेरी दशा हुई ।

व्याख्या : जिसके पुत्रवती होने से रघुकुल में कलङ्क लगा । मैं कलङ्की पैदा

हुआ । जगत कहेगा कि भरत के कारण उसके पिता मरे । रामजी को वन हुआ । महाराज के मरण और रामजी के वन से बढकर प्रियजन द्रोह क्या होगा ?

जिस बेटे के कारण माता को विधवा होना पड़े, पुत्र शोक भी सहन करना पड़े, मूर्च्छित होना पड़े और उस बेटे ने कुछ किया न हो तो उस बेटे से बड़ा अभाग्य तीनों लोक में कौन होगा ?

पितु सुरपुर वन रघुवर केतू । मैं केवल सब अनर्थ हेतू ॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु वन आगी । दुसह दाह दुख दूखन भागी ॥४॥

अर्थ पिताजी स्वर्ग गये । रघुकुल केतु वन गये । मैं इन सब अनर्थों का कारण हुआ । मुझे धिक्कार है । मैं वाँस के वन में आग होकर कठिन, दाह दुख और दूषण का भागी हुआ ।

व्याख्या अपना अभाग कहते हैं पातीति पिता । रक्षा करनेवाले पिता तो स्वर्ग सिधारे और रघुकुल केतु श्रुतिसेतुरक्षक वन को गये । दोनों को असाधारण पीड़ा हुई । ये सब बड़े बड़े अनर्थ मेरे कारण हुए । दुसह दाह भागी यथा मरन कोटि सम दारुन दाह । दुख के भागी यथा सकर साखि रहेऊ ये घाये । दूषण के भागी यथा एक भरत कर सम्मत करही । यह सब दुख मुझे हुआ । विलाप में ही भरतजी जो कुछ उन्हें कहना था कह गये । अपने जन्म को धिक्कारते हैं । रघुवर केतू पाठ मानने से चारों भाइयों में श्रेष्ठ अर्थ करना पड़ेगा ।

दो मातु भरत के वचन मृदु, सुनि पुनि उठी संभारि ।

लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६४॥

अर्थ माता भरत के वचन सुनकर फिर से संभलकर उठी । उठाकर छाती से लगाया । आँखों से आँसू चल रहा था ।

व्याख्या अभी तक माँ भी पृथ्वी पर पड़ी है । भरतजी भी पड़े हैं । भरत का विलाप पृथ्वी पर पड़े ही पड़े हो रहा है । भरत के मृदु वचन ने सिञ्चन का काम किया । माँ संभलकर उठ बैठी । भरतजी को उठाकर छाती से लगाया और हृदय में लगाये हुए रो रही है । माँ हैं बेटे का विलाप नहीं सुन सकी ।

सरल सुभाय माय हिय लाए । अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥

भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई । सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥१॥

अर्थ सरल स्वभाव से माँ ने हृदय में लगाया । अत्यन्त प्रेम के साथ मानो रामजी लौट आये । फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई से मिली । शोक और स्नेह हृदय में समाता नहीं है ।

व्याख्या कौसल्याजी महाराज दशरथ की योग्या हैं । यथा तुम गुरु विप्र

धेनु सुर देवी । तस पुनीत कौसल्या देवी । जैसे महाराज सरल थे वैसी ही यह भी सरल हैं । भरतजी के मिलने पर ऐसा प्रेम है मानो रामजी लौटकर आये हैं ।

भरत को राम समान जानकर मिली और शत्रुघ्न को लक्ष्मण के समान जानकर मिली । शोक भी हृदय में समाने लायक नहीं । न प्रेम ही समाने लायक है । स्नेह से कलेजे से लगाती हैं । शोक से रो रही हैं । यहाँ पर स्पष्ट है कि शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजी सहोदर भाई थे ।

देखि सुभाउ कहत सबु कोई । राम मातु अस काहे न होई ॥

माता भरतु गोद बैठारे । आँसु पोछि मृदु वचन उचारे ॥२॥

अर्थ : स्वभाव को देखकर सब कोई कहता था कि रामजी की माँ ऐसी क्यों न हो । माता ने भरतजी को गोद में बिठा लिया और आँसू पोछकर कोमल वचन कहा ।

व्याख्या : घर के लोग प्रिय परिजन जिन्हें वहाँ जाने का अधिकार था सब लोग वहाँ पहुँच गये । बड़े मारके का समय है । यही भविष्य का निर्णय है । कौसल्याजी के स्वभाव की सरलता देखकर सबके मुँह से वाह निकल गया । कहने लगे कि यह राम की माँ हैं । न रामजी के हृदय में भेद न इनके हृदय में भेद । दूसरी माँ ऐसे समय में कठोर बोलती ।

कौसल्याजी का भरतजी पर विलकुल और सपुत्र सा भाव है । गोद में बिठाती हैं । आँसू पोछती हैं । रुख से समझ गयी कि कैकेयी का अनादर करके आ रहे हैं । कष्ट को कम करने के लिए इस प्रकार का वर्तन कर रही हैं ।

अजहुँ वच्छ बलि धीरज धरहू । कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥

जनि मानहु हियँ हानि गलानी । काल करम गति अधटित जानी ॥३॥

अर्थ : बत्स । मैं बलि जाऊँ । अब भी धैर्य धरो । बुरा समय जानकर धैर्य धरो । मन में हानि ग्लानि न मानो । इस बात को जान लो कि काल और कर्म की गति बनायी हुई नहीं है ।

व्याख्या : धैर्य न धारण करने से बहुत काम बिगड़ चुका । धैर्य न धारण करने से ही महाराज का देहावसान हुआ । बहुत हो चुका । अब धैर्य धारण करो । समय घोर उपस्थित है । यह जानकर शोक छोड़ो । बड़ी बड़ी आपत्ति का सामना करना है : महाराज की और्ध्वदैहिक क्रिया की ओर इङ्गित है । जो बिगड़ा सो बिगड़ा । अधिक न बिगड़े ।

पितु सुर पुर वन रघुकुल केतू । यह हानि है । घिग मोहि भयउ बेनुवन आगी इत्यादि ग्लानि है । माँ समझाती हैं कि हानि ग्लानि न मानो । काल और कर्म गति किसी की की हुई नहीं है । अर्थात् किसी के करने से काल की ओर कर्म की गति नहीं बनती ।

काहुहि दोसु देहु जनि ताता । भा मोहि सब विधि वाम विधाता ॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥४॥

अर्थ वेटा । किसी को दोष मत दो । विधाता सब प्रकार से मेरे प्रतिकूल हो गये हैं । यदि इतने दुख पर भी मुझे जिलाया तो कौन जाने उसे क्या मञ्जूर है ।

व्याख्या वही बात जो लक्ष्मणजी ने निपादराज से कही था काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता कौसल्याजी वह रही हैं । य रामजी की माता हैं । इन्हे कैकेयी को दोष देना अखरता है । रामजी को भी इसी भाँति अच्छा नहीं मालूम हुआ कहा दोष देइ जननिहि जड तेई । जिन्ह गुरु साधु सभा नहि सेई । कहती हैं कि उनकी बुद्धि का पलटा खाना मेरे प्रति विधाता के वाम होने का फल है । न कैकेयी को दोष दो न अपने को ।

दो पितु आयसु भूषन वसन, तात तजे रघुवीर ।

विसमउ हरपु न हृदयँ कछु, पहिरे बलकल चीर ॥१६५॥

अर्थ वेटा । पिता की आज्ञा से रघुवीर ने गहने और कपड़े उतार दिये । हृदय में न हर्ष हुआ न विस्मय हुआ । बलकल छाल धारण कर लिया ।

व्याख्या यही चोट राजा दशरथ को हुई राउ सुनाइ दीह बन्वासू । सुनि मन भयउ न हरप हरासू । सो सुत विछुरत गये न प्राणा । को पापी बड मोहि समाना । कौसल्याजी के हृदय में सरकार का बिना हर्ष विपाद के मुनिवेष धारण करना चुभा हुआ है । उसी कष्ट को भरतजी के सामने व्यक्त कर रही हैं ।

मुख प्रसन्न मन राग न रोपू । सब कर सब विधि करि परितोपू ॥

चले विपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ॥१॥

अर्थ प्रसन्न मुख न राग, न रोष । सबका सब विधि से परितोष करके वन को चल । सुनिके सोता सङ्ग लगी । राम चरण से अनुराग करनेवाली रुकी नहीं ।

व्याख्या - भूषण वसन परित्याग और बलकल धारण में भी मुखश्री वैसी ही प्रसन्न थी जैसी सदा रहा करती थी । क्योंकि उनके मन में न किसी के प्रति राग था न रोष था । राग और रोष दोनों में से किसी के वेग से आकृति में विकार हो जाता है । उन्हे वन जाने का विपाद भी नहीं हुआ । राजिव लोचन राम चल तजि बाप को राज बटाऊ की नाई । जाने के पहिले सबका सब विधि से परितोष किया । यथा कहि प्रिय वचन सकल समुझाये । विप्रबृद रघुवीर बोलाये । जाचक दान मान परितोषे । कहि प्रिय वचन प्रेम परिपोषे इत्यादि ।

विवलता से क्रम का ध्यान नहीं है । इसलिए कहती है कि उन्होंने किसी को साथ नहीं लिया । उनका जाना सुनकर सीता साथ लग गयी । उसको मैंने समझाया । स्वयं रामजी ने समझाया । उसके श्वसुर ने समझाया । और भी लोगो ने

समझाया । पर उसका अनुराग ऐसा दृढ था कि कोई उसको अपने निश्चय से हटा न सका ।

सुनतहि लखनु चले उठि साथ । रहहि न जतन किए रघुनाथ ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई । चले सग सिय अरु लघु भाई ॥२॥

अर्थ : सुनते ही लक्ष्मणजी उठकर साथ चले । रामजी के यत्न करने पर भी न रुके । तब रामजी सब ही को सिर नवाकर सीता और छोटे भाई को साथ लेकर चले ।

व्याख्या : सुनते ही लक्ष्मण ने सोचने विचारने को स्थान ही नहीं दिया । उनके रोकने के लिए केवल रामजी ने ही यत्न किया । सुमित्राजी ने आज्ञा ही दे दी । उर्मिला बोली ही नहीं । महाराज ने अकेले उनका रोकना अनुचित समझा । अतः उन्हें केवल रामजी ने रोका था पर नहीं रुके । तब रामजी सबको प्रणाम करके सीता और लक्ष्मण के साथ चले ।

रामु लखनु सिय वनहि सिधाए । गइउं न संग न प्रान पठाए ॥
एहु सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे । तउ न तजा तनु जीव अभागे ॥३॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता वन को चले गये । मैं न साथ गयी और न प्राणों को ही साथ भेज सकी । यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ । फिर भी अभागे जीव ने शरीर न छोड़ा ।

व्याख्या : लक्ष्मण और सीता के वन जाने पर दो ही रास्ता था । या तो मैं साथ चली जाती या प्राणों को साथ भेज देती । जैसा कि सीता ने सोचा था • चलन चाहत वन जीवन नाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू । की तनु प्रान कि केवल प्राना । बिधि करतबु कछु जाइ न जाना ।

सुनने में और आँखों से देखने में बड़ा भेद है । आँखों देखने में जैसा प्रभाव हृदय पर पड़ता है वैसा सुनने में नहीं पड़ता । यथा : अब सब आँखिन्ह देखेंउ आई । जिअत जीव जड सबइ सहाई । सो मैने तो सब आँखों से देखा । परन्तु मेरा जीव सुकृती नहीं है । सुकृती होता तो शरीर छोड़ देता । यह अभागा है । इसलिए नहीं छोड़ सका । न जाने इसे क्या क्या देखना है ।

मोहि न लाज निज नेहु निहारी । राम सरिस सुत मै महतारी ॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना । मोर हृदय सत कुलिस समाना ॥४॥

अर्थ : अपने स्नेह का विचार करने पर मुझे लज्जा नहीं है । राम जैसा बेटा और मैं माँ हूँ । जीना मरना ठीक महाराज ने जाना । मेरा हृदय तो सौ वज्र के समान है ।

व्याख्या : राम ऐसा बेटा जिसने माँ बाप की आज्ञा से प्रसन्नता पूर्वक क्षण भर में सर्वस्व त्यागकर वन का रास्ता लिया । मैं उसकी माँ हूँ । उसके विरह

होने पर जीते रहने में मुझे लज्जा होनी चाहिए । सो मुझे लज्जा नहीं है । जिसे लज्जा थी उसने शरीर छोड़ दिया । लज्जा महाराज को थी । यथा - वहेउ राज वन दियेउ नारि बस गरि गलानि गए राउ । उन्होंने ही जाना कि कैसे जीना चाहिए और कैसे मरना चाहिए । जितत राम विधु वदन निहारा । राम विरह करि मरन सैवारा । मेरा हृदय तो सो वज्र का सा कठोर है । जो ऐसे ऐसे आघात : पुत्र वनवास और पति के स्वर्गवास पर भी खण्ड खण्ड नहीं हुआ ।

दो. कौसल्या के वचन सुनि, भरत सहित रनिवासु ।

व्याकुल विलपत राजगृह, मानहुँ शोक निवासु ॥१६६॥

अर्थ : कौसल्याजी के वचनों को सुनकर भरतजी के सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा । राजगृह मानो शोकगृह हो गया ।

व्याख्या : यहाँ मातु वचन न कहकर कौसल्या के वचन कहते हैं । क्योंकि भरतजी का आना सुनकर सभी रानियाँ वहाँ चली आयी थी और सबने कौसल्याजी का वचन सुना । सबका धैर्य छूट गया । सब को सत्र विलाप कर रही हैं । वहाँ रोनेवाले सब हैं । समझानेवाला कोई नहीं । इसलिए कहते हैं कि राजगृह सीधे सीधे शोक का निवास स्थान हो गया ।

विलपहि विकल भरत दोउ भाई । कौसल्या लिये हृदय लगाई ॥

भाँति अनेक भरतु समझाए । कहि विवेकमय वचन सुहाए ॥१॥

अर्थ : दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे । तब कौसल्या ने हृदय से लगा लिया और विवेकमय अनेक बातें कहकर भरतजी को समझाया ।

व्याख्या : भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी भी विलाप करने लगे । शत्रुघ्नजी अब तक धैर्य धारण किये रहे । कौसल्याजी मूर्च्छित होकर गिरी । भरतजी व्याकुल होकर गिरे । विलाप करने लगे । पर शत्रुघ्नजी ने धैर्य न छोड़ा । पर कौसल्याजी के वचन सुनने पर उनका भी धैर्य छूट गया ।

कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है । भरतजी के प्रेम को जानती हैं । आगे कहेंगी भी गूढ़ सनेह भरत मन माँही । रहे चीक मोहि लागत नाँही । सो दोनों भाइयो को विकल देखकर अपने हृदय के साथ बड़ी जबरदस्ती करती हैं । दोनों भाइयो को अधिक विकल देखकर हृदय से लगा लेती है । सुन्दर विवेकमय वचन कहकर अनेक भाँति से समझाती है । यथा

दो पुत्रजन्म पितु मातु गति हेतु होत जग जान ।

याते सुत पितु हेतु जनि शोक करहु मति मान ॥

यथा दारुद्वे सरित बिच बहत कबहुँ मिली जात ।

तथा मिलन जग जीव को नहि अचरज बिलगात ॥

चौदह वर्ष बिताइ पुनि ऐहै रघुकलकेतु ।

भावी प्रबल न सकइ मिटी जनि सोचउ तेहि हेतु ॥

दुख सुख फल निज कर्म के टारि सकै नहि कोय ।
याते धरि धीरज सहिय जो कछु होनी होय ॥

भरतहुँ मातु सकल समुझाई । कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई ॥
छल विहीन सुचि सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुग पानी ॥२॥

अर्थ ' भरतजी ने भी सब माताओं को पुराण और वेद की सुन्दर कथायें कहकर समझाया । भरतजी दोनों हाथ जोड़कर छलरहित पवित्र और सरल वाणी बोले ।

व्याख्या : जब भरतजी शान्त हुए । तब सब माताओं को समझाने लगे । वेद के अधिकारी हैं । अतः वेद पुराण की कथा कहकर समझाने लगे । यथा

दो बड़े बड़े सकट सहत सहि न सकत सो छोट ।
काँच सहै नहि सहि सकै हीरक घन को चोट ॥
पतिदुख सुतदुख राजदुख निजदुख शैव्यारानि ।
सह्यो कह्यो काहुहि न कछु धर्म मर्म पहिचानि ॥
यहि असार ससार मे पग पग कठिन कलेस ।
ईस भजन बिनु अम्ब सुनु वतहुँ नही सुख लेस ॥
जहँ सयोग वियोग तहँ कोउ सकै नहि टारि ।
सब प्रकार भमता तजै बुध अस हिय निरधारि ॥
सपनो सो अपनो न कछु झूठो जग व्यवहार ।
भजिय राम सब काम तजि अम्ब इहै जगसार ॥

जब कुछ शान्ति हुई तब भरतजी अपनी सफाई देते हैं । स्थिति ऐसी बेढङ्ग है कि कोई मान नहीं सकता और न सफाई हो दी जा सकती है । अतः शपथ लेते हैं । छलविहीन वाणी है । इसलिए शुचि है फिर भी सरल है । जिसके अर्थ समझने में कोई कठिनता न हो । मृदु मधुर विनययुक्त वाणी ही सुवाणी है । माताओं के सामने बोल रहे हैं । अतः दोनों हाथ जोड़कर बोलते हैं कि कृपा करके सुन लिया जाय ।'

जे अध मातु पिता सुत मारे । गाइ गोठ महि सुरपुर जारे ॥
जे अध तिय बालक बध कीन्हे । भीत महीपति माहुर दीन्हे ॥३॥
जे पातक उपपातक अहही । करम वचन मन भव कवि कहही ॥
ते पातक मोहि होहु विधाता । जौ एहु होइ मोर मत माता ॥४॥

अर्थ जो पाप माता पिता और पुत्र के मारने से होता है और जो पाप गोशाला और ब्रह्मपुरी जलाने से होता है । जो पाप स्त्री और बालक के मार डालने से होता है और जो पाप मित्र और राजा को विष देने से होता है और जो जो पातक उपपातक मन वाणी और शरीर से किये हुए कवियों द्वारा कहे गये हैं । हे विधाता । वे सब पाप मुझे हो । यदि इसमें माता । मेरी सम्मति हो ।

व्याख्या • वेद की आज्ञा है • मातृदेवो भव पितृदेवो भव । माता पिता परमेश्वर के रूप हैं । वे ही उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले हैं । सन्तति अपनी आत्मा हैं । उन्हें जिसने मारा उसके पाप का क्या ठिकाना ? गाय लोक की माता है जिसके रोम रोम में देवताओं का निवास है । जिसके पञ्चगव्य से त्वगस्थिगत पाप दूर होता है । जिसके गोबर के लेप से स्थान पवित्र होकर धर्म कर्म करने योग्य होता है । उनके रहने के लिए जो शाला बनी है उसमें जिसने आग लगाया, न जाने कितनी गाय उसमें बँधी है, ऐसे आग लगानेवाले के पाप का अन्त क्या है ? वर्णमात्र के जो गुरु हैं, जिनके धर्म की रक्षा से वैदिक धर्म की रक्षा है, उनकी पुरी में जिसने आग लगाया उसने कौन सा महा पाप नहीं किया । इन लोगों का पाप घोरतिघोर है । इनके अतिरिक्त और भी महा पाप हैं । जैसे स्वर्णस्तेय सुरापान आदि तथा उपपातक हैं । यथा महायन्त्र निर्माण, बड़े बड़े इजिन बनाना । जिनसे हजारों लाखों की जीविका मारी पड़े । भरतजी ब्रह्मदेव को साक्षी देकर कहते हैं कि ये सब पातक मुझे हो । अर्थात् अकृत्यकरणवाले सब पाप मुझे हो । यदि इस अनर्थ में मेरी सम्मति हो ।

दो जे परिहरि हरि हर चरन, भर्जहि भूतगन घोर ।

तेहि कइ गति मोहि देउ विधि, जौ जननी मत मोर ॥१६७॥

अर्थ हे माता । जो हरिहर के चरणों को छोड़कर घोर भूतगण का भजन करते हैं, ब्रह्मदेव मुझे उनकी गति दें । यदि इस अनर्थ में मेरी सम्मति रही हो ।

व्याख्या कर्म सम्बन्धी पाप के विषय में कहकर अब उपासना सम्बन्धी पाप के विषय में कहते हैं । परिहरि का भाव यह कि पहिले हरिहर का भजन करते थे । पर तुच्छ सिद्धियों के लोभ में पड़कर घोर भूत प्रेतादि के पूजन में लग गये । ऐसे कर्णपिशाची आदि देखे गये हैं । जो अतीत घटना सब ठीक ठीक कह देते हैं । उनको सदा अशुद्ध रहना पड़ता है । देव पितृकर्म से उन्हें वञ्चित रहना पड़ता है । फलतः मरने पर उन्हें भूत ही होना पड़ता है । आजकल परलोक विद्या के नाम से भूत भजन का प्रचार बढ़ चला है । भरतजी कहते हैं कि मुझे उनकी गति मिले । यदि इस अनर्थ में मेरा मत हो ।

बात यह है कि इतनी बात तो सभी जानते हैं कि भरतजी ने किया कुछ नहीं है । अधिक से अधिक जो उनके विरुद्ध कहा जा सकता है वह इतना ही है कि उनके सम्मति से सब कुछ हुआ । यथा एक भरत कर सम्मत कहही । इसलिए भरतजी अपनी सम्मति न होने का शपथ ले रहे हैं ।

बेचहि बेदु धरमु दुहि लेही । पिसुन पराय पाप कहि देही ॥

कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी । वेद बिदूषक विस्व विरोधी ॥१॥

लोभी लपट लोलुप चारा । जे ताकहि पर धनु पर दारा ॥

पावउँ मै तिन्ह के गति घोरा । जौ जननी एहु समत मोरा ॥२॥

अर्थ : जो वेद को बेचते हैं । धर्म को दूह लेते हैं । चुगुलखोर हैं । जो दूसरे का पाप मुँह से बोल देते हैं । कपटी कुटिल झगडालू क्रोधी वेद की दिल्लगी उड़ानेवाले और विश्व के विरोधी हैं । लोभी हैं । लम्पट हैं । लालच के दास हैं । जो पराये धन और पराई स्त्री पर निगाह लगाये रहते हैं । मैं उनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ । यदि मैं ! अनर्थ मे मेरी सम्मति हो ।

व्याख्या : अब ज्ञान सम्बन्धी पाप के विषय से कहते हैं । मोल भाव का करना ही बेचना है । वेद का दान होता है विक्रय नहीं । गुरुदक्षिणा का ग्रहण होता है मूल्य का नहीं । वेद की कीमत आँकना महापाप है । धर्म को भावोपहत करना पाप है । जैसे विवाद के लिए विद्या पढ़ना, मद के लिए धन कमाना, दूसरे को पीडा देने के लिए शक्ति सञ्चय करना, दूसरे का पाप कहना - उसका पाप भक्षण करना है । कपटी छली को कहते हैं । जिसके मन की वक्रगति हो उसे कुटिल कहते हैं । वेद साक्षात् परमेश्वर की वाणी है । उसका मजाक उड़ानेवाला वेद विदूषक है । ससार से द्रोह करनेवाला विश्व विरोधी है । अथवा वेदविक्रयी आदि आठो विश्व-विरोधी हैं । पैसे पैसे का लोभी बेहया । यथा : लोलुप भ्रम गृहपशु ज्यों जहाँ तहाँ सिर पद तान बजे । तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजे । ऐसे को ही लोलुपचार कहते हैं और जो साकाक्ष दृष्टि से परधन और पराई स्त्री को देखते हैं, उसके हरण का अवसर देखा करते हैं, ऐसे लोगो की बड़ी घोर गति होती है । भरतजी कहते हैं कि मैं इनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ । यदि मेरी इस अनर्थ मे सम्मति रही हो ।

जे नहि साधु सग अनुरागे । परमारथ पथ विमुख अभागे ॥
जे न भजहि हरि नर तनु पाई । जिन्हहि न हरि हर सुजसु सुहाई ॥३॥
तजि श्रुतिपंथु वाम पथ चलही । बंचक विरचि वेप जगु छलही ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ । जननी जौ एहु जानउँ भेऊ ॥४॥

अर्थ : जिन्होंने साधु सङ्ग मे प्रेम नहीं किया । जो अभागे परमार्थ पथ से विमुख हैं । जिन्होंने नर शरीर पाकर भगवान् को नहीं भजा । जिन्हे हरि हर मुयस अच्छा नहीं लगता । जो वेदमार्ग छोड़कर वाममार्ग मे चलते हैं । ठग हैं । वेप बनाकर ससार को ठगते हैं । मुझे शङ्कर उनकी गति दे यदि माता ! मुझे यह भेद मालूम हो ।

व्याख्या : अब कृत्याकरण के लिए शपथ ग्रहण करते हैं । मान लिया कि भरत की सम्मति नहीं थी । पर उन्हें यह भेद मालूम था । उन्होंने प्रकाश नहीं किया चुप रह गये । यही कृत्याकरण है । इसके लिए कहते हैं ।

मति कीरति गति भूति भलाई । जो जेहि जतन जहाँ जब पाई । सो जानब सतसग प्रभाऊ । लोकहुँ वेद न आन उपाऊ । जिसका ऐसे सत्सङ्ग मे अनुराग नहीं वह तो परमार्थ पथ विमुख होगा ही । अतः वह अभागा है । नरतन भव-

वारिधि कहँ वेरो । जो न तरइ भवमागर नर समाज अस पाइ । सो वृत्त निंदक मन्दमति आतम हन गति जाइ । जिसे हरि हर सुयश नही सोहाता वह खल है । यथा . हरि हर जस राकेस राहु से । पहिले जो वैदिक थे वामाचार को श्रेष्ठ समझकर दक्षिणमार्ग परित्याग किया । सिद्धि के लालच से पञ्चमकार में रत हुए । सिद्धि कही कुछ नहीं । लाल कपडा पहन लिया । लाल तिलक हड्डी की माला धारण करके सिद्ध बने हुए ससार को ठगते हैं । ऐसे घोर कर्मियो की गति भरतजी कहते हैं कि मुझे शङ्कर दे यदि मुझे यह भेद भी मालूम हो ।

गोस्वामीजी ने दो प्रकार का भेद माना . १ अकृत्यकरण और २ कृत्याकरण । अकृत्यकरण के तीन भेद माने १. कर्म सम्बन्धी २ उपासना सम्बन्धी ३ ज्ञान सम्बन्धी । कर्म सम्बन्धी के तीन भेद माने १ शरीरजन्य २ वाक्जन्य और मनोजन्य । सो उपर्युक्त शपथो में सभी को गिनाया है ।

दो. मातु भरत के वचन सुनि, साचे सरल सुभायँ ।

कहति राम प्रिय तात तुम्ह, सदा वचन मन कायँ ॥१६८॥

अर्थ माता भरत के सरल स्वभाव के सच्चे वचन सुनकर कहने लगी कि बेटा ! तुम मनसा वाचा कर्मणा सदा रामजी को प्रिय हो ।

व्याख्या : सरल स्वभाव से कहे हुए सच्चे वचन बिना प्रभाव डाले नहीं रहते । ऐसे वचन सुनकर माँ कौसल्या ने कहा कि मेरी जानी बात है । तुमको राम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय है और राम को तुम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय हो । राम प्रिय शब्द से दोनों अर्थ निकलते हैं और यहाँ दोनों अभिप्रेत हैं ।

राम प्राणहु तैं प्राण तुम्हारे । तुम रघुपतिहि प्राणहु ते प्यारे ॥

विधु विष चवइ सबइ हिमु आगी । होइ वारिचर वारि विरागी ॥१॥

भये ज्ञान वरु मिटइ न मोह । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होह ॥

अर्थ : तुम्हे राम प्राणो से भी प्यारे है और तुम रामचन्द्र को प्राणो से प्यारे हो । चन्द्रमा से विष टपके और हिम पाले से आग निकले । जलचर जल से विरक्त हो जाय । ज्ञान होने पर चाहे मोह न मिटे पर तुम रामचन्द्र के प्रतिकूल नहीं हो सकते ।

व्याख्या : प्राण का प्राण ही प्राण से प्यारा हो सकता है । सो प्राण का प्राण आत्मा है । तो तुम राम की आत्मा हो और राम तुम्हारी आत्मा हैं । इससे वनवास में तुम्हारी सम्मति हो नहीं सकती । चन्द्रमा सुधाकर है । उनके किरणों में अमृत छाव हुआ करता है । सो चाहे वे अपना स्वभाव छोड़कर विष गिराने लग जायँ और आग का स्वभाव गरम है । पाला उसके निकट नहीं फटक सकता । यथा : तात अनल कर सहज सुभाउ । हिम तेहि निकट जाय नहि काऊ । सो चाहे हिम से आग निकलने लगे । जलचरो को जल ही शरण है । सो चाहे जलचर जल से विरक्त हो जाय । मोह का नाश ही ज्ञान है । यदि मोह न मिटा तो ज्ञान कैसा ? इस पर

कहते हैं कि यदि ज्ञान होने पर भी मोह न मिटे । अर्थात् यदि ये चारा महा असम्भव सम्भव हो जायें । पर तुम राम के प्रतिकूल हो नहीं सकते ।

भरतजी ने चार बार शपथ लिया । माता यहाँ चार दृष्टान्त देकर उन्हीं चारों का अनुमोदन करती हैं ।

मत तुम्हार एहु जो जग कहही । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही ॥२॥

अस कहि मातु भरतु हिय लाए । थन पय सर्वाह नयन जल छाए ॥

करत विलाप बहुत एहि भाती । बैठेहि बीत गई सब राती ॥३॥

अर्थ ससार में जो कोई इसमें तुम्हारी सम्मति कहेगा । उसे सपने में भी सुख और सुमति की प्राप्ति नहीं होगी । ऐसा कहकर माता ने भरतजी को कलेजे से लगा लिया । छाती से दूध बहने लगा और आँखों में आँसू भर आया । इस भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी ।

व्याख्या माता कौसल्याजी कहती हैं कि तुम्हारे ऐसे साधु को जो मिथ्या दोष लगावेगा उसे सुख और गति सपने से भी नहीं मिलेगी । अर्थात् उसका लोक परलोक दोनों नष्ट हो जायगा । पुरवासियों में से जब किसी ने कहा कि इसमें भरतजी सम्मत है तो तुरन्त दूसरे ने कहा कि सुकृत जाय अस कहे तुम्हारे । राम भरत कहँ प्रान पियारे । महारानी कौसल्या इस व्याज से स्वयं शपथ ले रही हैं कि मुझे तुम पर सन्देह नहीं हो सकता ।

ऐसा कहकर भरत को हृदय से लगा लिया । वात्सल्य भाव के उमड़ आने से छाती में दूध आगया और आँख में आँसू आगया । इतने दिनों बाद छाती में दूध का आना अति वात्सल्य का द्योतक है ।

कवि कहते हैं कि उस समय की करुणा का मैंने प्रादेशमात्र वर्णन किया । इसी भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी । करुणा भी एक प्रधान रस है । रोने से शोक का वेग निकल जाता है । इस भाँति कुछ सुख मिल जाता है । जो अति दुःख में नहीं रोता उसके मरने की सम्भावना रहती है ।

२० नृपक्रिया प्रसङ्ग

वामदेउ वसिष्ठ तव आए । सचिव महाजन सकल बोलाए ॥

मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे । कहि परमारथ वचन सुदेसे ॥४॥

अर्थ तब वामदेव और वसिष्ठजी आये । मन्त्री तथा महाजन लोगों को बुलवाया । बहुत भाँति से मुनिजी ने अवसरानुकूल परमार्थ के वचन कहकर भरतजी को बहुत भाँति से समझाया ।

व्याख्या वामदेव और वसिष्ठ दोनों महाज्ञानी और रघुबुल के हितचिन्तक हैं । भरतजी के आने का समाचार पाकर प्रातः काल होते ही आये । महाराज का शव अन्न-पुर में ही पड़ा है । अब भरतजी आगये । उनके हाथ सस्वार बगाना है ।

अतः मन्त्रियो और नगर के प्रतिष्ठितो को बुलवाया । तब भरतजी को बहुत भाँति से उपदेश दिया । क्योंकि भरतजी पर अनेक प्रकार का शोक आ पड़ा है । परमार्थ के वचन ही शोक के दूर करने में समर्थ हैं ।

दो. तात हृदय धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु ।

उठे भरत गुरु वचन सुनि, करन कहेउ सबु साजु ॥१६९॥

अर्थ : बेटा । धैर्य धरो और जैसा अवसर आ पड़ा है वैसा आज करो । भरतजी गुरुजी के वचन सुनकर उठे और सब साज करने की आज्ञा दी ।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने उपदेश के अन्त में कहा कि हृदय में धैर्य धारण करो और जो अवसर आज उपस्थित है उसे करो । भाव यह कि भरतजी की अनुपस्थिति में सबका कार्य वसिष्ठजी की आज्ञा से होता रहा । भरतजी के आते ही सब कार्य गुरुजी उनके सुपुर्द करते हैं कि अब तुम्हारी आज्ञा से कार्य होगा । अतः भरतजी उठे और सब साज करने के लिए आज्ञा दी ।

नृप तनु वेद विहित अन्हवावा । परम विचित्र विमानु बनावा ॥

गति पग भरत मातु सब राखी । रही रानि दरसन अभिलापी ॥१॥

अर्थ : महाराज के शरीर को वेदोक्त विधि से स्नान कराया । परम विचित्र विमान बनाया । चरणों को पकड़ पकड़कर माताओं को सती होने से रोका । वे भी रामजी के दर्शन की अभिलाषा से रुक गयी ।

व्याख्या : कार्य विवरण कहते हैं । भरतजी के न रहने से मरणोपरान्त का सब कार्य रुका हुआ था । और्ध्वदैहिक कृत्य प्रारम्भ हुआ । स्नान में वेद मन्त्र पढ़े गये । शव के स्नान कराने की विधि है । शव के वहन के लिए परम विचित्र विमान बनाया गया । उत्साह से क्रिया हो रही है ।

माताएँ वीरप्रसू होने पर भी सती होने के लिए उठी । वीरप्रसू को सती होने का अधिकार नहीं । यथा नान्वगात् वीरसू कृपी । परन्तु अन्य रानियों को अधिकार था । पर भरतजी ने सबको चरण पकड़कर रोका । एक को पुत्र होने से सब माताएँ पुत्रवती हो जाती हैं । आप लोगों को चार चार पुत्र हैं । आप क्यों सती होती हैं ? फिर जिसे अन्य वासना नहीं होती वे ही सती होती हैं तो क्या आप लोगों को रामजी के दर्शन की कामना नहीं है ? यह दूसरी युक्ति काम कर गयी और सब रानियाँ रुक गयी ।

चन्दन अगर भार बहु आए । अमित अनेक सुगंध सुहाए ॥

सरजु तीर रचि चिता बनाई । जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥२॥

अर्थ : चन्दन और अगर के बहुत से बोझ आये और बेपरमान बहुत से सुगन्धित पदार्थ आये । सरयू के किनारे रचकर चिता बनायी गयी । मानो स्वर्ग की सुन्दर सीढ़ी हो ।

व्याख्या : जहाँ नदी हो वहाँ नदीतटपर ही दाह का विधान है । यहाँ पुण्यतोया सरयू बहती है । अतः सरयू के किनारे चन्दन अगर आदि सुगन्धित पवित्र द्रव्यों से रचकर बड़ी ऊँची चिता बनायी गयी । देखने से मालूम होता था कि यही स्वर्ग जाने की सुन्दर सीढ़ी है । सुन्दरता का बड़ा ध्यान सब कार्यों में है । यहाँ तक कि चिता बनाने में भी इसका ध्यान रखा गया ।

एहि विधि दाह क्रिया सब कीन्ही । विधिवत न्हाइ तिलाजुलि दीन्ही ॥
सोधि सुमृति सब वेद पुराना । कीन्ह भरत दशगात्र विधाना ॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब दाह क्रिया की और विधि के साथ स्नान करके तिलाञ्जलि दी । फिर स्मृति वेद और पुराणों को देख सुनकर भरतजी ने दशगात्र का विधान किया ।

व्याख्या : उपर्युक्त सब विधि दाह क्रिया के अन्तर्गत हैं । दाह के बाद स्वयं स्नान करके दाहजनित तृपोपशान्त्यर्थ तिलाञ्जलि दिया । प्राण निकल जाने पर भी यावत् देह पूर्णरूपेण नष्ट नहीं हो जाता । जब तक जीवात्मा का मृत शरीर से सम्बन्ध बना रहता है । यहाँ तक कि शरीर के जलने से जीव को ताप होता है ।

दाह क्रिया के बाद दश दिनों तक दशगात्र विधान होता है । जिससे वह पुरुष सम्पूर्ण शरीरवाला होकर स्वर्ग में आनन्द करता है । यथा : यद् वो अग्निरजहा-
देकमङ्ग पितृलोक गमयज्जातवेदः । तद् एतन्युनराप्यायामि साङ्गात्स्वर्गे पितरो
मादयध्वम् : अथर्ववेद । अर्थ : हे पितरो ! पितृलोक जाते समय जो आपके जिस अङ्ग को अग्नि ने जलाया है उस अङ्ग को फिर पुष्ट करता हूँ । जिसमें सम्पूर्ण अङ्गवाले होकर आप स्वर्गलोक में आनन्द करें । दशगात्र विधान में श्रुति होने से वह पुरुष विकलाङ्ग होकर स्वर्ग में पूर्ण सुख का भागी नहीं हो सकता । अतः दशगात्र विधान के सुसम्पन्न करने में भरतजी ने बड़ी सावधानी से काम लिया । श्रुति स्मृति पुराण के समन्वय से दशगात्र विधान किया ।

जहं जस मुनिवर आयसु दीन्हा । तहं तस सहस्र भांति सबु कीन्हा ॥
भये विशुद्ध दिये सब दाना । धेनु वाजि गज वाहन नाना ॥४॥

अर्थ : जहाँ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने जैसी आज्ञा दी वहाँ सब वैसा ही हजारों तरह से किया । शुद्ध हो जाने पर गाय घोड़े हाथी और नाना प्रकार की सवारियाँ दान में दी ।

व्याख्या : अब एकादशाह का वृत्त्य कहते हैं । मुनिजी की आज्ञा का पालन हजार विधि से किया गया । दशगात्र के बाद जो वृत्त्य होता है उसे एकादशाह का वृत्त्य कहते हैं । शुद्ध होने पर वह वृत्त्य किया जाता है । उसके बाद विशुद्ध हो गये तो पिता के प्रीत्यर्थ सब प्रकार का दान किया । यथा : गोदान वाजिदान गजदान शिविकादि दान दिये ।

दो. सिंहासन भूपन वसन, अन्न धरनि धन धाम ।

दिये भरतु लहि भूमिसुर, मे परिपूरन काम ॥१७०॥

अर्थ : सिंहासन गहने वपडे अन्न पृथ्वी धन प्रासादादि भरतजी ने दिये । पाकर ब्राह्मण लोगो की कामना पूर्ण हो गयी ।

व्याख्या : अब एकादशाह का दान कहते हैं । धेनु घोडे हाथी तथा अनेक प्रकार के वाहन पहिले कह आये हैं और सात अब गिनाते हैं । इस भाँति ग्यारह की गिनती से एकादशाह का कृत्य कहते हैं । दान देने में देश काल पात्र का विचार होना चाहिए । अतः गोस्वामीजी तीनों दिखला रहे हैं । देश अयोध्यापुरी, काल एकादशाह, पात्र पृथ्वी के देवता, विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण । अब दान का परिमाण कहते हैं कि प्रतिगृहीता पूर्णकाम हो गये । उन्हें अब किसी वस्तु की इच्छा न रह गयी । महाराज चक्रवर्तीजी के तृप्त्यर्थ दान हो रहा है । अतः शय्या का नाम न लेकर सिंहासन कहते हैं । भाव यह कि राजोपयोगी सम्पूर्ण वस्तुओं का दान किया ।

राज्याभिषेक प्रस्ताव

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी । सो मुख लाख जाइ नहि वरनी ॥

सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए । सचिव महाजन सकल बोलाए ॥१॥

अर्थ पिता के निमित्त भरतजी ने जो करणी की उसे मुख से वर्णन नहीं किया जा सकता । सुदिन सोधकर वसिष्ठजी आये और सब महाजनो यथा मन्त्रियों को बुलाया ।

व्याख्या त्रिभुवन तीन काल में महाराज दशरथ ऐसा राजा हुआ नहीं । अतः जैसे पिता थे उन्हीं के अनुरूप करणी भरतजी ने की । इस भाँति एकादशाह का दान कहा । महाराज को यह सब अनन्तगुणित होकर प्राप्त होगा । ऐसा भाव मन में रखकर भरतजी ने दान दिये । इस लोक और परलोक का सुदृढ सम्बन्ध है । ब्रह्मदेव ने प्रजा की सृष्टि के साथ ही साय यज्ञ की भी सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग बढ़ो और यही तुम लोगो के लिए कामधेनु हो । इससे तुम लोग देवताओं की भावना करो और बदले में देवता तुम्हारी भावना करें । इस प्रकार परस्पर की भावना करते हुए परमश्रेय को प्राप्त हो । तदनुसार यज्ञ द्वारा इस लोक और परलोक में व्यापार चलता है । उसी व्यापारानुसार योग्य पात्र में उत्तम देशकाल में दो हुई वस्तु जिसके निमित्त दी जाती है उसे अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है । भरतजी की करणी ही ऐसी होती है । जिसका वर्णन नहीं हो सकता । कि पुनः पिता के लिए जो करणी की उसका वर्णन तो हो ही नहीं सकता । इसलिए सो मुख लाख जाइ नहि वरनी कहा ।

जब तक किसी का राज्याभिषेक न हो जाय तब तक मुनिजी पर राज्य का विशेष भार था । अतः स्वयं मुहूर्त देकर वसिष्ठजी आये । पहिले से किसी को

सूचना न दी । रामजी के अभिप्रेक का समाचार एक रात पहिले फैल जाने से इतनी बड़ी बाधा उपस्थित हो गयी । अतः गुरुजी ने किसी को सूचना न देना ही उचित समझा । सभा से आ जाने पर मन्त्रियों को बुलाया । तब सब नगर के महाजनो को बुलाया । महाजनो येन गत स पन्था । महाजन का अर्थ यह है जिसे लोग मानते हो, अनुसरण करते हो । देश के सच्चे प्रतिनिधि ऐसे महाजन हैं । उनके चुनने की आवश्यकता नहीं होती । स्वभावतः उनकी ख्याति होती है । इस भाँति मन्त्र को गुप्त रखकर कार्य करने में गुरुजी की नीतिमत्ता द्योतित होती है । गुरुजी सबकी सम्मति से आज ही भरत को गद्दी दिया चाहते हैं ।

बैठे राजसभा सब जाई । पठए बोलि भरत दोउ भाई ॥

भरतु वसिष्ठ निकट बैठारे । नीति धरममय वचन उचारे ॥२॥

अर्थ वे सब राजसभा में आकर बैठे । तब भरत शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुलवाया । भरतजी को वसिष्ठजी ने निकट बैठाया और धर्म नीतिमय वचन बोले ।

व्याख्या राजसभा में आकर गुरुजी ने सबको बुलवाया । अतः सब वही आये दरबार लग गया । इस समय कवि भरतजी के साथ हैं । अतः लिखते हैं कि बैठे राजसभा सब जाई । दरबार लग जाने पर दोनों भाई भरत की बुलाहट हुई । चक्रवर्तीजी के पुत्रों में इस समय ये ही दो भाई हैं । गुरुजी ने भरतजी से कहा था तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसर आज । तदनुसार भरतजी ने धैर्य तो धारण किया । परन्तु पिता की क्रिया करने के बाद फिर सोच में पड़ गये ।

अतः गुरुजी उन्हें बुलाकर आदर के लिए निकट बैठाया । भाव यह कि भरतजी पहिले से ही सिंहासन से दूर बैठ रहे हैं । तत्पश्चात् गुरुजी ने ऐसा वचन कहा जो धर्म और नीति दोनों दृष्टि से ठीक हो । यहाँ अर्थ का प्रश्न उपस्थित है । अर्थ का मूल्य राज्य है । जो अर्थ धर्म विरोधी होता है उसे अनर्थ कहते हैं और नीति विरुद्ध राज्य स्थायी नहीं होता । अतः गुरुजी के वचन धर्मनीतिमय हैं ।

प्रथम कथा सब मुनिवर वरनी । कइकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी ॥

भूप धरमव्रतु सत्य सहारा । जेहि तनु परिहरि प्रेमु निवाहा ॥३॥

अर्थ पहिले मुनिवर ने जिस भाँति कुटिल कैकेयी ने करणों की थी वह सब वह सुनायी । फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की प्रशंसा की जिसने शरीर त्यागकर प्रेम का निर्वाह किया ।

व्याख्या : जो बातें राजमहल में हुई उनका सुना सुनाया ज्ञान लोगों को था । भरतजी थे नहीं । अतः उन्हें भी सुनी सुनायी जानकारी है । गुरुजी निष्पक्ष पुरुष हैं । अतः सबकी जानकारी के लिए उपक्रम के रूप से कैकेयी की कुटिल करणी का वर्णन किया कि रामजी का अभिप्रेक आप लोगों की सम्मति से होनेवाला था । यह सुनकर कैकेयी जाकर कोपभवन में सोई । चक्रवर्तीजी मनाने गये । पूछा क्या

चाहती हो । कहने लगी दिया हुआ जब नहीं मिलता तो नयी बात क्या माँगे । राजा ने रामजी की शपथ ली । तब उसने वरदान माँगे ।

राजा धर्मव्रत थे । अधर्म उन्होंने कभी किया नहीं । अतः सत्य को धर्म का मूल समझकर उसे नहीं छोड़ा । तुलसी जान्यो दसरथहि घरमु न सत्य समान । राम तज्यो जेहि लागि विनु राम परिहर्यो प्रान । सो राजा धर्म और सत्य से न हटे । पर धर्म और सत्य के त्याग न करने से प्रेम का त्याग होता था । अतः राजा ने शरीर परित्याग करके इस असामञ्जस्य को भी दूर किया । अर्थात् प्रेम का निर्वाह भी भली भाँति किया ।

कहत राम गुन सील सुभाऊ । सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ ॥

बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी । सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी ॥४॥

अर्थ मुनिराज रामजी के गुण और स्वभाव को वर्णन करते हुए सजल नयन तथा पुलकित हो गये । फिर लक्ष्मणजी और सीताजी की प्रीति की प्रशंसा करने में ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गये ।

व्याख्या आत्मारामादच मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहेतुकी भक्ति-मित्यम्भूतगुणो हरि । श्रीरामजी के गुण शील और स्वभाव ही ऐसे हैं कि मुनि लोगो के भी चित्त जो हरण करते हैं । अस सुभाउ कहें सुनै न देखी । केहि खगेस रघुपति सम लग्यो । को रघुवीर सरिस ससारा । सील सनेह निवाहनिहारा । इस अवसरपर उनके गुण शील और स्वभाव का ऐसा चमत्कृत प्रकाश हुआ कि उसके कहने में मुनिराज को भी पुलक हो गया और आँखें डबडबा आयी ।

प्रीति क बखान म लक्ष्मणजी की प्रशंसा पहिले सीताजी की पीछे । सीताजी तो साथ जाने के लिए धर्मंत भी बद्ध थी । पर लक्ष्मणजी को तो इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं था । इनकी प्रीति का प्रभाव मुनिजी पर ऐसा पड़ा था कि वर्णन करने में ज्ञानीमुनि होने पर भी शोक और स्नेह में मग्न हो गये । रामजी की प्रीति न बखानी । क्योंकि वे किसी को सङ्ग नहीं लिया चाहते थे । यहाँ पर रामजी के प्रीति प्रदर्शन न करने से ही शोभा है ।

दो सुनहु भरत भावी प्रबल, विलखि कहेउ मुनिनाथ ।

हानि लाभु जीवन मरनु, जसु अपजसु विधि हाथ ॥१७१॥

अर्थ मुनिनाथ ने विलखकर कहा कि भरतजी सुनो । यह प्रबल भावी है । हानि लाभ जीना मरना यश अपयश यह सब ब्रह्मादेव के हाथ में है ।

व्याख्या भरतजी की अनुपस्थिति में जो कुछ हुआ उसे कहते हैं । राम वनवास कहने में मुनिजी विलम्ब उठे । कारण यह कि प्रबल भावी के सामने किसी का बल नहीं चलता । त्रिपुरारि भावी मेट सकते हैं । पर हरिश्चन्द्रा रूपी भावी के सामने उनका भी बल नहीं चलता । सो इन घटनाओं में हरिश्चन्द्रा रूपी प्रबल भावी काम करती थी । इसी से प्रतीकार न हो सका । हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश

मनुष्य के हाथों में नहीं है । लाभ जीवन और यश कौन नहीं चाहता । पर सबको प्राप्त नहीं होता । हानि मरण और अपयश कोई नहीं चाहता । पर इससे कोई बचता नहीं । अतः यह सब ब्रह्मदेव के हाथ में है । यथा : कर्म सुभासुभ देइ विधाता । सो यहाँ तो बात बिगाड़ने स्वयं सरस्वती आयी थी । मुनिजी ने रामजी का वनवास नहीं कहा । बिलखने से वनवास सूचित हुआ ।

अस विचारि केहि देइअ दोसू । व्यर्थ काहि पर कीजिअ रोसू ॥

तात विचारु करहु मन माही । सोच जोगु दसरथु नृपु नाही ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचार करके किसको दोष दिया जाय और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाय । हे तात ! मन में विचार तो करो । राजा दशरथ शोचनीय नहीं हैं ।

व्याख्या : गुरुजी भरतजी को दुःखी देखकर समझाते हैं कि हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि के हाथ में है । मनुष्य के हाथ में नहीं है । क्योंकि काहु न कोउ दुःख सुखकर दाता । निजकृत कर्म भोग फल भ्राता । कोई किसी को दुःख सुख नहीं दे सकता । सब अपने ही किये का फल भोगते हैं । विधि भी शुभ और अशुभ कर्म के फल दाता हैं । अतः विचार करने से कोई दोषी नहीं ठहरता । राम गवन वन अनरथ मूला : यह हानि है । भूपति सुरपति पुर पगु धारे : यह मरण है और हेतु अपनपौ जानि जिय थवित भये घरि मौन : यह अपयश है । इसमें कैकेयी का भी दोष नहीं । यथा : सो भावी वम रानि अयानी । करि कुचाल अतहु पछितानी । अतः पापिनि सबहि भाँति कुल नासा । इस भाँति दोष देना अथवा जोहसि मोहसि मुह मसिलाई । लोचन ओट बैठु तैं जाई । इस भाँति क्रोध करना उचित नहीं है ।

यदि कहिये कि मैं दोष नहीं देता हूँ । परन्तु पिता के मरण का सोच है । इस पर गुरुजी कहते हैं कि सोच तो असद्वृत्ति पुरुषों का किया जाता है । महाराज दशरथ तो परम सद्वृत्ति थे । जिसकी प्रजा सोच योग्य नहीं है । वह राजा सोच योग्य कैसे हो सकता है ?

सोचिअ विप्र जो वेद विहीना । तजि निज धरमु विषय लयलीना ॥

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥२॥

अर्थ : वह ब्राह्मण शोचनीय है जो वेदविहीन है और अपने धर्म को त्याग करके विषय में दत्तचित्त रहता है । वह राजा शोचनीय है जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राण के समान प्रिय नहीं है ।

१ सर्व एव महामाग महत्त्वं प्रति सोद्यमा । तथापि पुमा नाग्यानि नोद्यमा भोग-हेतव । वि. पु. । अर्थ : हे महामाग ! सभी महत्त्व के लिए प्रयत्न करने हैं । परन्तु पुरुष का भाग्य भोग्य के कारण है । उद्यम कारण नहीं है ।

व्याख्या केवल गायत्री जाननेवाला ब्राह्मण यदि वह धर्मात्मा है विषय-लीन नहीं है तो वह तीनो वेद जाननेवाले सदाचारहीन ब्राह्मण से अच्छा है। ऐसा मनु भगवान् का मत है। अतः यहाँ वेद विहीन से सन्ध्या गायत्री के भी न जाननेवाले से अभिप्राय है। अतः जिस ब्राह्मण को सन्ध्या गायत्री तक का ज्ञान नहीं है और अपने धर्म शम दम तप शौचादि से रहित है वह स्पर्श रूप रसादि के सुखों में भूला हुआ है। वह सोचने योग्य है कि इसकी क्या गति होगी? क्योंकि तप श्रुति और योनि ये तीन ही ब्राह्मण कारक हैं। सो योनि तो उसे ईश्वर की कृपा से मिल गयी। पर उसने न तप किया न वेद विद्या पढ़ी। ऐसा पतित ब्राह्मण सर्वथा शोचनीय है।

राजन्यवर्ग के लिए नीति का जानना और प्रजा पालन ये ही प्रधान धर्म है। क्योंकि बिना नीति जाने राज्य नहीं रह सकता। राज कि रहइ नीति बिनु जाने। और राजा की सृष्टि ही प्रजापालन के लिए हुई। प्रजा के लिए प्राणोत्सर्ग करना राजा का धर्म है। अतः जिस राजा ने नीति न जाना और प्राण के समान प्रजा का पालन नहीं किया उसके लिए सोचना चाहिए। क्योंकि उसका दोनों लोक विगड़ गया। नीति न जानने से राज्य नहीं रहेगा। सो यह लोक विगड़ गया और ठीक प्रजा पालन न करने से नरक का भागी होगा। यथा जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी। परलोक भी विगड़ा। अतः शोचनीय है।

सोचिअ वयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ॥

सोचिअ सूद्र विप्र अवमानी। मुखरु मानप्रिय ग्यान गुमानी ॥३॥

अर्थ धनी कृपण वैश्य का सोचना चाहिए जो अतिथि और शिवभक्त तथा सुजान नहीं है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाले शूद्र को सोचना चाहिए जो कि बकबादी प्रतिष्ठा चाहनेवाला और अपने को ज्ञानी मानता हो।

व्याख्या वैश्य यदि निर्धन है तो कृपण होना दोषावह नहीं है। धनवान होने पर उसे कृपण न होना चाहिए। मनुजी का कथन है कि ब्राह्मणों में वही श्रेष्ठ है जिसे ज्ञान अधिक है। क्षत्रियों में अधिक बलवाला श्रेष्ठ है और वैश्यों में धनी श्रेष्ठ है। ईप्सित फल की प्राप्ति बिना शिवजी की आराधना के नहीं होती। अतः वैश्य धनधान्य की समृद्धि के लिए अवश्य शिवभक्ति करे और अपने धन का विनियोग आतिथ्य सत्कार में करे। क्योंकि जितने में पेट भरे उतना ही धनियों का धन है। उससे अधिक को जो अपना धन मानता है उसे शास्त्र चोर बतलाता है। उसे दण्ड होना चाहिए। वैश्य को सुजान अर्थात् गुणग्राहक होना चाहिए। धनी यदि गुणग्राहक न होगा तो गुणों की पूजा का लोप हो जायगा। अतः श्रेष्ठ वैश्य यदि कृपण है, शिवभक्त नहीं है, अतिथिभक्त नहीं है गुणग्राहक नहीं है तो वह निरयगामी होगा। वह सोचने योग्य है।

शूद्र शोचनीय होता है ब्राह्मणनिन्दक होने से। सति प्राप्ति निषेध। राज्य

की कामना धन की कामना ब्राह्मणों ने नहीं की। अतः राजन्य और वैश्य के निन्दित होने के लिए स्थान नहीं है। शूद्रों की सेवावृत्ति विधान करने से अज्ञानी मानप्रिय शूद्रों द्वारा निन्दा की सम्भावना है। वे यह नहीं सोचेंगे कि जाति आयु और भोग पूर्वजन्म के कर्म का फल है। उन्हें नहीं मालूम ब्रह्माद्या ऋषिपर्यन्ता स्मारका न तु कारका। ब्रह्मदेव से लेकर ऋषि पर्यन्त सब स्मरण करनेवाले हैं। बनानेवाले कोई नहीं। वे धर्मशास्त्रों में अपना निम्न अधिकार देखकर ब्राह्मणों को दोषी ठहरावेंगे। उनकी निन्दा करेंगे। इस भाँति अपने लिए नरकका मार्ग निरगल करेंगे। शूद्र का धर्म है कि ब्राह्मण की सेवा करे। विनीत हो। ज्ञानी होने में रोक नहीं है ज्ञानमानी न हो। युधिष्ठिर के यज्ञ में ज्ञानी चाण्डाल के भोजन कराने की कथा है। बिना उसके भोजन कराये यज्ञ की पूर्ति नहीं होती थी। सो उसे बहुमान पुरस्सर पाण्डव अपने यज्ञ में लाना चाहते थे। पर उस ब्रह्मज्ञानी चाण्डाल ने सम्मान स्वीकार नहीं किया। केवल अन्न ग्रहण करके उनका यज्ञ पूर्ण कर दिया। अतः ब्राह्मणनिन्दक मुखर मानप्रिय और पण्डितम्मन्य शूद्र शोचनीय हो जाता है। क्योंकि उसकी असद्गति ध्रुव है।

सोचिअ पुनि पति वंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥

सोचिअ बटु निज व्रतु परिहरई। जो नहि गुरु आयसु अनुसरई ॥४॥

अर्थ उस स्त्री को सोचना चाहिए जो पति को ठगती हो। कुटिल हो। लडाकी हो और स्वतन्त्र हा। उस ब्रह्मचारी को सोचना चाहिए जिसने अपना व्रत त्याग किया और गुरु की आज्ञा के बाहर हो गया।

व्याख्या चारों वर्णों के धर्मों का वर्णन करके स्त्रियों का धर्म कहते हैं। जो पति को ठगती है अर्थात् परपति में रत है ऐसी स्त्री निरयगामिनी होती है। क्योंकि स्त्रियों के लिए एक ही धर्म व्रत और नियम शास्त्र में कहा है कि वे मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणों में प्रेम करे और जो पति को धोखा देकर जार को भजती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ती है। यथा एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। पति वचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई। ऐसी पतिवचक नारी सरल तो हो ही नहीं सकती। कुटिल अवश्य होगी। बटुवादिनी के लिए सद्य त्याग का विधान है। स्त्री में स्वातन्त्र्य की योग्यता नहीं है। उसका अवयव सङ्गठन इस प्रकार का होता है कि उसे सदा दूसरे की रक्षा की आवश्यकता रहती है। इसीलिए कहा है पिता रक्षति बीमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। जो इच्छाचारी स्त्री पिता पति और पुत्र से स्वतन्त्र होकर विचरेगी उसका पतन ध्रुव है। अतः ऐसी स्त्री को शोचनीय कहा है।

अब आश्रम का वर्णन करते हुए पहिले ब्रह्मचर्याश्रम के ही विषय में कहते हैं कि वह बटु ब्रह्मचारी सोचने योग्य है जो अपना व्रत परित्याग कर देता है। उसे अवकीर्णी कहते हैं। यथा अवकीर्णी भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम्। गर्दभं

पशुमालभ्य नैऋत स विशुध्यति । ब्रह्मचर्याविस्था मे ब्रह्मचर्यं ही प्रधान है । तीनों प्रकार के स्नातको के लिए व्रतपालन आवश्यक है । जिसने पूर्ण विद्या नहीं भी पढ़ी वह भी व्रतस्नात होकर आश्रम के फल को प्राप्त होता है । इसी भाँति महाभारत में अनेक उदाहरण आये हैं कि गुरु की आज्ञा पालनमात्र से वे सिद्धि को प्राप्त हुए । भाव यह कि व्रतपालन और गुरु आज्ञापालन ये ही दोनों ब्रह्मचर्याश्रम के सार हैं । इनके अनादर से बटु निरयगामी होता है । अतः शोचनीय है ।

दो. सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग ।

सोचिअ जती प्रपंच रत, बिगत विवेक विराग ॥१७२॥

अर्थ उस गृहस्थ को सोचना चाहिए जो मोहवश होकर कर्मपथ का त्याग करता है और उस सन्यासी को सोचना चाहिए जो प्रपञ्च में लगा हुआ है और उसे वैराग्य और विवेक नहीं है ।

व्याख्या : जो ब्रह्मचर्य अवस्था से सन्यास ग्रहण में असमर्थ होता है वह गृहस्थाश्रम स्वीकार करता है उसका अधिकार केवल कर्म में है । यथा • कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा । एव त्वयिनान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे । ईश० । केवल कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे । इसके अतिरिक्त हे नराभिमानी ! तेरे लिए दूसरा रास्ता नहीं है । फल की इच्छा न करने से तुझे कर्म का लेप न होता । अतः गृहस्थ को नित्य नैमित्तिक कर्म सदा करते रहने की विधि है । उसके त्याग से उसे प्रायश्चित्त होता है । ज्ञान होने पर वह सन्यास ग्रहण करके कर्मपथ का त्याग कर सकता है । पर मोहवश त्याग^१ करने से वह त्याग बन्धन का कारण है । इस भाँति मोहवश होकर कर्मपथ के त्याग से अधोगति होती है । अतः ऐसा गृहस्थ शोचनीय है । बन्धायैव भवत्येपा ह्यविद्याप्यक्रमोज्जिता । क्रम से छोड़ी हुई अविद्या बन्धन का ही कारण होती है । वि पु ।

लोकत्रय त्याग पूर्वक सन्यास ग्रहण किया जाता है । उसे यह सब मसार ब्रह्ममय प्रतीत होना चाहिए और त्याग पूर्वक जीवन यापन करना चाहिए । किसी के धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए । यथा ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्या जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागूध कस्यस्विद् धनम् । ईश० । सन्यास लेने पर जो प्रपञ्च में पड़ जाता है, ज्ञान वंगम्य खो बैठता है, उसे चान्ताशी कुत्ता कहते हैं । क्योंकि उसने जिस वस्तु का त्याग किया था उसे फिर ग्रहण कर लिया । अतः प्रपञ्चो सन्यासी शोचनीय हो जाता है ।

वैपानस सोइ सोचइ जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥

सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बधु बिरोधी ॥१॥

१ मोहवश कर्मपथ त्याग की इच्छा वाले अर्जुन का । मगवान् ने गीता का उपदेश करके कर्मपथारूढ़ किया ।

अथ वह वानप्रस्थ सोचने योग्य है जिसे तपस्या छोड़कर भोग अच्छा लगे । चुगुलखार निष्कारण क्रोध करनेवाले तथा माँ बाप गुरु और भाई से विरोध करने-वाल को सोचना चाहिए ।

व्याख्या तीसरा आश्रम वानप्रस्थ तप प्रधान है । ब्राह्मणों को चारा आश्रम का अधिकार है । क्षत्रिय को सन्यास का अधिकार नहीं है । वह विरक्त होकर वानप्रस्थ हो सकता है । यथा सत कहहि यह नीति दसानन । चौथेपन जाइय नृप कानन । अतहु नृपहि उचित बनवासू । वानप्रस्थ में ऐसी तपस्या करनी चाहिए कि देह भूल जाय और तपस्या में ही मन लग जाय । यथा बिसरी देह तपहि मन लागा । सो जिस वानप्रस्थी को भोग प्रिय है, तपस्या में मन नहीं लगता, वह स्वधर्म विरुद्धाचरण के कारण पापी है । उसे निरय निश्चय है ।

वर्णाश्रमानुकूल सद्वृत्ति कहकर अब सर्व सामान्य असद्वृत्ति कहते हैं । चुगुलखोरी से बटकर कोई पाप नहीं है । यथा अथ कि पिसुनता सम किछु आना । अकारण क्रोधी ही पिसुन होते हैं । अकारण क्रोधी का कुशल होता नहीं । यथा जिमि चह कुसल अकारन क्रोधी । वही माँ बाप गुरु और बन्धु का भी विरोधी होता है । माँ बाप गुरु ता साक्षात् देवता हैं । भाई की सहायता करना परम कर्तव्य है । पर पिसुन इन लोगो का भी विरोध करता है । अत उसका दोनों लोक बिगड़ता है । वह निश्चय शोचनीय है ।

सब विधि सोचिय पर अपकारी । निज तनु पोषक निर्दय भारी ॥

सोचनीय सबही विधि सोई । जो न छाडि छल हरि जन होई ॥२॥

अर्थ दूसरे के अपकार करनेवाल को सब भाँति सोचना चाहिए । क्योंकि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला बड़ा भारी निर्दय है और सब प्रकार से तो वह सोचनीय है जो छल छोड़कर हरिजन नहीं हो जाता ।

व्याख्या उपर्युक्त शोच्य तो वर्ण धर्म की दृष्टि से अथवा आश्रम धर्म की दृष्टि से अथवा कुशल की दृष्टि से शोच्य हैं । परन्तु सब विधि शोच्य तो परापकारी हैं । क्योंकि उनसा अधम कोई नहीं है । यथा परपोडा सम नहि अधमाई । उन्ही का लक्षण कहते हैं कि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला है । महा अविवेकी है । यह नहीं समझता सबके देह परम प्रिय स्वामी । वह भारी निर्दय होता है । क्याकि ठण्डी तबीयत से दूसरे को पीडा पहुँचाता है । निर्दय तो क्रोधी भी हाता है । पर उसकी निर्दयता तभी तक है जब तक कि उसे क्रोध है । शान्तावस्था में क्राधी बड़ी दया भी करते हैं । इसलिए परापकारी को भारी निर्दय कहते हैं । ये ही सच्चे खल हैं । परहित हानि लाभ जिन केरे । उजरे हृपं त्रिपाद बसेरे । हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन मिति । अत य सब विधि शोचनीय हैं ।

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ । सा वृत्त निदक मद मति आत्म-हन गतिजाइ । जा एमा नरजन्म पावय भव मन्तरण नहीं करता वह आत्मघाती

है और भव सन्तरण विना भगवद् भजन के हो नहीं सकता । यथा साधक सिद्ध विमुक्त उदासी । कवि कोविद वृत्तज्ञ सन्यासी । जोगी सूर सुतापस ग्यानी । धर्म निरस्त पंडित विज्ञानी । तरहि न विनु सेए मम स्वामी । राम नमामि नमामि नमामि । अतः भजन न करनेवाला आत्मघाती है । अन्य दोषों के न रहते हुए भी जिसने छल छोड़कर हरिभक्ति न ग्रहण की वह सब प्रकार से शोचनीय है । हरिजन का अर्थ हरिभक्त है । समय ऐसा आगया है कि हरिजन शब्द का अर्थ लिखना पडा । इस काल में शब्दों के सनातन से परिगृहीत अर्थ बदल रहे हैं । देखते देखते हरिजन शब्द का अर्थ अछूत हो गया । कोई ऐसा अर्थ न समझ ल इसलिए लिखना पडा ।

सोचनीय नहि कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥

भयउ न अहइ अब होनिहारा । भूपु भरत जस पिता तुम्हारा ॥३॥

बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा । वरनहि सब दसरथ गुन गाथा ॥४॥

अर्थ कोसलनाथ सोचने योग्य नहीं हैं । उनका प्रभाव तो चौदहों लोकों में प्रकट है । हे भरत ! तुम्हारे पिता जैसे राजा थे वैसे न कभी कोई हुआ न इस समय है और न भविष्य में होनेवाला है ।

व्याख्या कोसलनाथ महाराज दशरथ धर्म धुरन्धर राजर्षि ज्ञानी और परम भक्त थे । प्रजा का पालन उन्होंने और स पुत्र की भाँति किया । वे शोचनीय कैसे हो सकते हैं ? उनकी सद्गति ध्रुव है । त्रिभुवन तीन काल जग माँही । भूरिभाग दसरथ सम नाँही । यह वेजोड राजा था । पहिल भी बड़े बड़े राजा हुए पर दशरथ ऐसा कोई न हुआ । इस समय भी कोई नहीं है और न भविष्य में कोई होगा । रामचन्द्र भी दशरथ की बरावरी न कर सकेंगे । क्योंकि राम सा पुत्र होना तो दशरथ के ही भाग्य में था ।

सभु बिरचि विष्णु भगवाना । उपजहि जासु अस ते नाना । जिस रामजी के अश से त्रिदेवों की उत्पत्ति है वे राम उनके पुत्र हैं । अतः त्रिदेव दशरथजी के गुण ग्राम वर्णन करते हैं । यथा जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भए आइ । जे हरि हिय नयननि कवहुँ निरखे नही अघाइ । सुरपति बसहि बाहु बल जाके । इसलिए सुरपति उनके गुण गाथ वर्णन करते हैं । लोकप करहि प्रीति रख राखे । अतः दिक्पाल भी उनके गुणों का गान करते हैं ।

दो कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बडाई तासु ।

राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु ॥१७२॥

अर्थ हे तात ! कहो कोई उनकी बडाई कैसे कर सकता है जिनके राम, लक्ष्मण से तुम से और शत्रुघ्न से बेटे हैं ।

व्याख्या अब गुरुजी बडाई का मुख्य कारण कहते हैं । पुत्रेणाय लोको जय्य । पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है । अतः यदि किसी को तुम लागो के ऐसा पुत्र हो तो उसकी गणना करें । ऐसा भाग्यवान् कौन है ? पिता के पुण्य की इयत्ता तो पुत्र

की महिमा से ही की जाती है। तुम चारो भाइयो सा शुद्धान्त करण पवित्र कौन है? यथा ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतवधूँ देवसरि वारी। अत जिसके पुण्य से तुम चारो भाइयो का उनके घर जन्म हुआ उसकी बड़ाई कोई करना चाहे तो कैसे करे। इस व्याज से गुरुजी ने चारो भाइयो की बड़ी प्रशंसा की।

सब प्रकार भूपति बडभागी। बादि विषादु करिअ तेहि लागी ॥

यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥१॥

अर्थ • चक्रवर्तीजी सब प्रकार से भाग्यवान् थे। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। इसको सुनकर और समझकर शोक करना छोड़ दो और सिर पर धारण करके राजाज्ञा का पालन करो।

व्याख्या • चार प्रकार से ही लोग बडभागी होते हैं। यशस्वी होने से, राजा होने से, गुणी होने से तथा सत् सन्तान के होने से। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ से लेकर सरिस सुअन सुचि जासु तक कहकर गुरुजी ने चक्रवर्तीजी के चारो प्रकार का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। अतः चक्रवर्तीजी सब प्रकार से ही अशोच्य हैं। उन सा बडभागी कौन होगा। सोचे जाते हैं अभागी, जिनका न यह लोक बना न परलोक बना।

तात विचार करहु मन माँही से शोक न करने का उपक्रम करके यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। से उपसहार करते हैं और उपदेश देते हैं कि राज्य को सिर पर चढाकर अर्थात् स्वीकार करके राजाज्ञा का पालन करो। सुख के ध्यान से नही राजाज्ञा के ध्यान से करो। राजा दण्डधरो गुरु। सबको राजाज्ञा मानना चाहिए। विशेषतः तुम तो उनके पुत्र हो।

राय राजपदु तुम कहूँ दीन्हा। पिता वचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥

तजे रामु जेहि वचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम विरहागी ॥२॥

अर्थ • चक्रवर्तीजी ने राजगद्दी तुम्हें दी। पिता के वचन को सत्य करना चाहिए। जिस वचन के लिए उन्होंने रामजी को त्यागा और रामजी की विरहाग्नि में शरीर त्याग दिया।

व्याख्या • भरतजी को चुप देखकर गुरुजी फिर कहते हैं कि तुम्हारे मन में यदि यह हो कि बड़े भाई के रहते मेरा गद्दी स्वीकार करना उचित नहीं है तो ऐसी बात नहीं है। महाराज सर्वथा राज्य के स्वामी थे। वे राज्य दान कर सकते थे। उनका राज्य पर पूरा अधिकार था। उन्होंने तुम्हें राज्यपद दिया। तुमको तो उनके वचन को सत्य करना ठहरा। यहाँ राज्य सुख का प्रश्न नहीं है। पिता के वचन के सत्य करने का प्रश्न है।

यदि कहो कि पिता को तो राम का राज्य प्रिय था तो यह बात भी नहीं है। उन्हें सबसे प्रिय अपना वचन था। अपने वचन के लिए ही उन्होंने रामजी का परिणाम किया और रामजी उनको अपने देह से भी अधिक प्यारे थे।

है और भव सन्तरण बिना भगवद् भजन के हो नहीं सकता । यथा साधक सिद्ध विमुक्त उदासी । कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी । जोगी सूर सुतापस ग्यानी । धर्म निरत पंडित विज्ञानी । तरहिं न बिनु सेए भम स्वामी । राम नमामि नमामि नमामि । अतः भजन न करनेवाला आत्मघाती है । अन्य दोषों के न रहते हुए भी जिसने छल छोड़कर हरिभक्ति न ग्रहण की वह सब प्रकार से शोचनीय है । हरिजन का अर्थ हरिभक्त है । समय ऐसा आगया है कि हरिजन शब्द का अर्थ लिखना पडा । इस काल में शब्दों के सनातन से परिगृहीत अर्थ बदल रहे हैं । देखते देखते हरिजन शब्द का अर्थ अछूत हो गया । कोई ऐसा अर्थ न समझ ल इसलिए लिखना पडा ।

सोचनीय नहि कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥

भयउ न अहइ अब होनिहारा । भूपु भरत जस पिता तुम्हारा ॥३॥

बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा । बरनहि सब दसरथ गुन गाथा ॥४॥

अर्थ कोसलनाथ सोचने योग्य नहीं है । उनका प्रभाव तो चौदहों लोकों में प्रकट है । हे भरत ! तुम्हारे पिता जैसे राजा थे वैसे न कभी कोई हुआ न इस समय है और न भविष्य में होनेवाला है ।

व्याख्या कोसलनाथ महाराज दशरथ धर्म धुरन्धर राजर्षि ज्ञानी और परम भक्त थे । प्रजा का पालन उन्होंने और स पुत्र की भाँति किया । वे शोचनीय कैसे हो सकते हैं ? उनकी सद्गति ध्रुव है । त्रिभुवन तीन काल जग माँही । भूरिभाग दसरथ सम नाँही । यह वेजोड राजा था । पहिले भी बड़े बड़े राजा हुए पर दशरथ ऐसा कोई न हुआ । इस समय भी कोई नहीं है और न भविष्य में कोई होगा । रामचन्द्र भी दशरथ की बराबरी न कर सकेंगे । क्योंकि राम सा पुत्र होना तो दशरथ के ही भाग्य में था ।

सभु विरचि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अस ते नाना । जिस रामजी के अश से त्रिदेवों की उत्पत्ति है, व राम उनके पुत्र है । अतः त्रिदेव दशरथजी के गुण ग्राम वर्णन करते हैं । यथा जासु सनेह सकीच बस राम प्रकट भए आइ । जे हरि हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ । सुरपति बसहिं बाहु बल जाके । इसलिए सुरपति उनके गुण गाथ वर्णन करते हैं । लोकप करहिं प्रीति रख राखे । अतः दिक्पाल भी उनके गुणों का गान करते हैं ।

दो कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बडाई तासु ।

राम लखन तुम्ह सनुहन, सरिस सुअन सुचि जासु ॥१७३॥

अर्थ हे तात ! कहो कोई उनकी बडाई कैसे कर सकता है जिनके राम, लक्ष्मण से, तुम से और शत्रुघ्न से बेटे हैं ।

व्याख्या अब गुरुजी बडाई का मुख्य कारण कहते हैं । पुत्रेणाय लोको जय्य । पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है । अतः यदि किसी को तुम लागो के ऐसा पुत्र हो तो उसकी गणना करें । ऐसा भाग्यवान् कौन है ? पिता के पुण्य की इयत्ता तो पुत्र

की महिमा से ही की जाती है। तुम चारो भाइयो सा शुद्धान्त करण पवित्र कौन है ? यथा : ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधूँ देवसरि बारी। अतः जिसके पुण्य से तुम चारो भाइयो का उनके घर जन्म हुआ उसकी बड़ाई कोई करना चाहे तो कैसे करे। इस व्याज से गुरुजी ने चारो भाइयो की बड़ी प्रशंसा की।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि विपादु करिअ तेहि लागी ॥

यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥१॥

अर्थ . चक्रवर्तीजी सब प्रकार से भाग्यवान् थे। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। इसको सुनकर और समझकर शोक करना छोड़ दो और सिर पर धारण करके राजाज्ञा का पालन करो।

व्याख्या : चार प्रकार से ही लोग बड़भागी होते हैं। यशस्वी होने से, राजा होने से, गुणी होने से तथा सत् सन्तान के होने से। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ से लेकर . सरिस सुअन सुचि जासु तक कहकर गुरुजी ने चक्रवर्तीजी के चारो प्रकार का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। अतः चक्रवर्तीजी सब प्रकार से ही अशोच्य हैं। उन सा बड़भागी कौन होगा। सोचे जाते हैं अभागी, जिनका न यह लोक बना न परलोक बना।

तात विचार करहु मन माँही से शोक न करने का उपक्रम करके यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। से उपसहार करते हैं और उपदेश देते हैं कि राज्य को सिर पर चढाकर अर्थात् स्वीकार करके राजाज्ञा का पालन करो। सुख के ध्यान से नहीं राजाज्ञा के ध्यान से करो। राजा दण्डवरो गुरु। सबको राजाज्ञा मानना चाहिए। विशेषतः तुम तो उनके पुत्र हो।

राय राजपदु तुम कहूँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥

तजे रामु जेहि वचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥२॥

अर्थ . चक्रवर्तीजी ने राजगद्दी तुम्हे दी। पिता के वचन को सत्य करना चाहिए। जिस वचन के लिए उन्होंने रामजी को त्यागा और रामजी की विरहाग्नि में शरीर त्याग दिया।

व्याख्या : भरतजी को चुप देखकर गुरुजी फिर कहते हैं कि तुम्हारे मन में यदि यह हो कि बड़े भाई के रहते मेरा गद्दी स्वीकार करना उचित नहीं है तो ऐसी बात नहीं है। महाराज सर्वथा राज्य के स्वामी थे। वे राज्य दान कर सकते थे। उनका राज्य पर पूरा अधिकार था। उन्होंने तुम्हे राज्यपद दिया। तुमको तो उनके वचन को सत्य करना ठहरा। यहाँ राज्य सुख का प्रश्न नहीं है। पिता के वचन के सत्य करने का प्रश्न है।

यदि कहो कि पिता को तो राम का राज्य प्रिय था तो यह बात भी नहीं है। उन्हें सबसे प्रिय अपना वचन था। अपने वचन के लिए ही उन्होंने रामजी का परित्याग किया और रामजी उनको अपने देह से भी अधिक प्यारे थे। अतः उनके

विरहाग्नि में शरीर का भी परित्याग किया । अर्थात् देह से प्रिय राम और राम से भी अधिक प्रिय वचन । यथा • तुलसी जान्यौ दसरथहि घरमु न सत्य समान । रामु तज्यौ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ।

नृपहि वचन प्रिय नहि प्रिय प्राना । करहु तात पितु वचन प्रवाना ॥
करहु सीस धरि भूप रजाई । हइ तुम कहँ सब भाँति भलाई ॥३॥

अर्थ • राजा को वचन प्यारा था । प्राण प्यारा नहीं था । हे तात । पिता के वचन को प्रमाण करो । राजाज्ञा का सिर चढ़ाकर पालन करो । इसी में तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है ।

व्याख्या राजा का वचन ही सब कुछ होता है । अतः राजा को वचन प्रिय था । प्राण प्रिय नहीं था । उस वचन को प्रमाण करना ही चाहिए । तुम पुत्र होकर उनके वचन को प्रमाण न करोगे तो कौन करेगा । जिस वचन के लिए उन्होंने प्राण दिया वही अप्रमाण हो जायगा ।

यदि कहो कि महाराज के बाद हक बड़े भाई का होता है । बड़ा भाई भी पिता के समान होता है । ज्येष्ठो भ्राता पितु सम । अतः राज्य स्वीकार करने में मेरी भलाई नहीं है तो यह बात भी नहीं है । राजाज्ञा को शिरोधार्य करने में ही तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है । तुम तो अपनी इच्छा से राज्य नहीं ले रहे हो । तुम पुत्रधर्मपुरसर पिता की आज्ञा मान रहे हो । उस आज्ञा में यदि कोई दोष है तो उसके जिम्मेदार तुम नहीं हो । उसका प्रातिभाष्य आज्ञा देनेवाले पर है । प्रतिज्ञा और हेतु देकर अब उदाहरण देते हैं ।

परसुराम पितु आग्या राखी । मारी मातु लोग सब साखी ॥
तनय जजातिहि जौवनु दयऊ । पितु आग्याँ अघ अजसु न भयऊ ॥४॥

अर्थ : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा पालन की और माता को मार डाला । इसको ससार जानता है । यथापि राजा को बेटे ने जवानी दे दी । परन्तु पिता की आज्ञा के कारण उन लोगों को न पाप हुआ और न अपयश हुआ ।

व्याख्या परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से मातृवध किया । उन्हें मातृवध इष्ट नहीं था । मातृवध से बड़ा कोई पाप नहीं । तुमने भी पहिले उसी को गिनाया । यथा : जे अघ मालु पितु सुत मारे । इतने बड़े पाप को परशुरामजी ने पिता की आज्ञा के सामने कुछ न गिना और पितृ आज्ञा पालन के प्रताप से पाप उनका स्पर्श भी न कर सका और न उनकी इस कारण अपकीर्ति हुई । ससार इस कथा को जानता है कि एकबार जमदग्निजी ने अपनी पत्नी रेणुकादेवी पर रुष्ट होकर अपने पुत्रों को आज्ञा दे दी कि इसे मार डालो । पर कोई राजा नहीं हुआ । तब अपने छोटे पुत्र परशुरामजी को आज्ञा दी कि इसे मार डालो और मेरी आज्ञा न माननेवाले अपने भाइयों को भी मार डालो । परशुरामजी ने वैसा ही किया । जमदग्नि ऋषि प्रसन्न हो गये । परशुरामजी से वहा वर माँग । उन्होंने

वर माँगा कि मेरी माँ और भाई जो उठें और उन्हें यह याद न रहे कि मैंने उन्हें मारा था। पिता ने तथास्तु कह के जिला दिया। जो हो मातृवध तो उनके हाथ हुआ। बतलाओ कौन उन्हें पूज्य नहीं मानता ?

ययाति राजा भगवान् भार्गव के शाप से बूढ़े हो गये। कामवासना से उनका मन तृप्त नहीं हुआ था। बड़ी विनती करने पर ऋषिजी ने शापानुग्रह किया कि यदि कोई तुम्हारी बुढ़ाई लेकर अपनी जवानी दे दे तो मेरे प्रसाद से यह सम्भव होगा। अपने लड़को से उन्होंने जवानी माँगी पर किसीने न दिया। छोटे लड़के ने अपनी जवानी दी और बाप की बुढ़ाई लेकर बूढ़ा हो गया। यदि विचारा जाय तो कितना बड़ा अनर्थ हुआ। बेटा अपनी जवानी बाप को दे इससे बड़ा अनर्थ क्या होगा। क्योंकि पुत्र के यौवन से उसकी माता को ही भोगेगा। इस पार और दुर्यश का क्या ठिकाना ? परन्तु उसे यौवन देने की इच्छा न थी। बाप की आज्ञा से दे दिया। अतः न पाप हुआ न दुर्यश हुआ।

दो अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहि पितु वयन।

ते भाजन सुख सुजसु के, बसहि अमरपति अयन ॥१७४॥

अर्थ • जो उचित अनुचित का विचार छोड़कर पिता के वचन का पालन करते हैं वे सुयश के पात्र होकर इन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं।

व्याख्या • पिता के वचन में उचित अनुचित के विचार को स्थान ही नहीं है। जो पिता ने आज्ञा दे दी वही पालनीय है। औचित्यानीचित्य का भार पिता पर है। पुत्र तो आज्ञा पालक ठहरा। उसे पिता के वचन पालन का पुण्य होता है। पाप से उसका स्पर्श नहीं होता। ऐसा वचन यदि दुःख का कारण दुर्यश का कारण तथा निरय का कारण भी जान पड़े तो भी पुत्र पर इनका कोई प्रभाव न पड़ेगा। पिता की आज्ञा पालनेवाला दुःख न पाकर सुख पावेगा। उसकी अपकीर्ति न होकर कीर्ति होगी। वह नरकगामी न होकर इन्द्रलोक में निवास पायेगा।

अवसि नरेस वचन फुर करहु। पालहु प्रजा सोकु परिहरहु ॥

सुरपुर नृपु पाइहि परितोष। तुम्ह कहँ सुकृत सुजसु नहि दोष ॥१॥

अर्थ • तुम राजा के वचन को अवश्य सत्य करो। प्रजा का पालन करो और शोक का त्याग करो। राजा को स्वर्ग में सन्तोष होगा और तुमको पुण्य और सुन्दर यश होगा। दोष नहीं होगा।

व्याख्या • पहिले गुरुजी ने राजाज्ञा पालन करने को कहा। फिर पिता के वचन को सत्य करने को कहा। तीसरी बार पिता के प्रिय होने से वचन को प्रमाण करने के लिए कहा। चौथी बार राजाज्ञा पालन में भरतजी की भलाई दिखलाया। अब पाँचवीं बार भलाई का उदाहरण देकर उसी बात पर जोर देते हुए कहते हैं कि अवश्य राजा के वचन को सत्य करो। प्रधान राजधर्म प्रजा पालन है। वह हम नमय मित्रा तुम्हारे वरता कौन है ? इसलिए शाप छोड़कर राजधर्म में भाँलो।

यदि कहो कि राजा ने सन्तुष्ट होकर नहीं कहा है, वचनबद्ध होने से लाचार होकर कहा है। इसपर कहते हैं कि सुरपुर में राजा को सन्तोष होगा। तुम्हारे वचन पालन से जब सुरपुर में राजा का सम्मान बढ़ेगा तो उन्हें सन्तोष होगा। गुरु की हैसियत से कह रहे हैं कि तुम्हें पुण्य होगा, सुयश होगा। डरो मत कि मुझे पाप होगा या दुर्यश होगा। कारण देते हैं

वेद विदित समत सवहीका । जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥

करहु राजु परिहरहु गलानी । मानहु मोर वचनु हित जानी ॥२॥

अर्थ वेद में भी ऐसा ही कहा है और लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वही राजतिलक पावे। ग्लानि छोड़कर राज्य करो और मेरे वचन को हित जानकर मानो।

व्याख्या सर्वोपरि प्रमाण वेद है। वह भी यही कहता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। वेद की आज्ञा ही धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। लोकविद्विष्ट-धर्म को न करने का भी विधान है। पर इस विषय में लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। कुलरोति पिता के विशेष आज्ञा के अभाव में मान्य है।

इतना कहने पर भी भरतजी चुप हैं। अतः कहते हैं कि तुम ग्लानि को छोड़कर राज्य करो। मैं जो कहता हूँ उसे हित समझकर मानो। फिर भी भरतजी चुप हैं। गुरुजी की आज्ञा पर भी राज्य स्वीकार नहीं है। मम यह है कि स्वार्थ-सिद्धि की आज्ञा में विचार को अवसर मिलता है। स्वार्थ विरोध की आज्ञा में विचार को अवसर नहीं है। यही कारण है कि रामजी ने रख देखकर आज्ञा मान ली और भरतजी कहने पर भी नहीं मान रहे हैं। गुरुजी इस बात को भलीभाँति समझते हैं कि इन्हें राम जानकी की अप्रसन्नता का भय है। कौसल्या आदि माताओं के दुःखी होने का ख्याल है। रामजी के लौटने पर उनके सामने सिंहासन पर कैसे बैठेंगे। इस बात का क्षोभ है। अतः फिर गुरुजी बोले।

सुनि सुख लहव राम वैदेही । अनुचित कहव न पंडित केही ॥

कौसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजा सुख होहि सुखारी ॥३॥

अर्थ इस बात को सुनकर राम जानकी को सुख होगा और कोई पण्डित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्या आदिक माता लोग भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

व्याख्या राम जानकी यह सुनकर कि तुमने भी पिता की आज्ञा को शिरो धार्य किया सुखी होंगे। यह न सोचो कि वे अप्रसन्न होंगे। मैं उनके स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। राम पुनीत विषय रस रखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे। मूर्खों की कोई गणना नहीं। उनका कोई चला नहीं सकता। गणना तो पण्डित के कहने की है। उसका जिम्मा मैं लेता हूँ कि कोई पण्डित अनुचित नहीं कह सकता।

मूर्खों के विषय में कहा गया है : भलो कहे बिनु जानही बिनु जाने अपवाद । ते नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख विपाद ।

माताएँ भी महाराज दशरथ की योग्या हैं । उनको सबसे अधिक ख्याल प्रजा का रहता है । रामजी के वन चलते समय माता कौसल्याजी ने कहा : बेगि प्रजा दुख भेटव आई । इस समय प्रजा के अनाथ होने से वे सब दुखी हैं । तुम्हारे राजा होने से प्रजा सुखी होगी तो वे लोग भी सुखी हो जावेंगी ।

मरम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब विधि तुम्ह सन भल मानिहि ॥

सौपेहुँ राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥४॥

अर्थ : जो तुम्हारे और रामजी के मर्म को जानेंगे वे सब प्रकार से तुमसे भला मानेंगे । रामजी के आने पर उन्हें राज सौंप देना और सुन्दर प्रेम के साथ उनकी सेवा करना ।

व्याख्या : अब प्रजा के विषय में कहते हैं कि वे तो इस समय भी तुमसे भला मानते हैं । वे ही क्यो जो तुम्हारे और रामजी के मार्मिक प्रेम को जानेगा वह सब तुमसे भला मानेगा । यथा : देवि परन्तु भरत रघुवर की । प्रीति प्रतीति जाइ नही तरकी । विधु विप चवइ खवइ हिमु आगी । होइ वारिचर बारि बिरागी । भए ग्यान बरु मिटइ न मोहू । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ।

तुम्हारा सेवाधर्म भी नहीं बिगड़ेगा । तुम केवल रामजी की अनुपस्थिति में राज्य करो । उनके आने पर राज्य सौंप देना और आनन्द से उनकी सेवा करना । यह राज्य करना भी उनकी सेवा करना ही है । इतना कहकर गुरुजी मौन हो गये । वस्तुतः जो निष्कर्ष गुरुजी ने निकला वह किसी का किया अन्यथा नहीं हो सका । फिर भी भरतजी का रुख अनुकूल न देखकर मन्त्री लोग बोले । राज्यकार्य में गुरुजी के बाद इन्ही का नम्बर है ।

दो. कीजिअ गुर आयसु अवसि, कहहि सचिव कर जोरि ।

रघुपति आये उचित जस, तस तब करव बहोरि ॥१७५॥

अर्थ : मन्त्री हाथ जोड़कर कहते हैं कि अवश्य गुरुजी की आज्ञा का पालन कीजिए । रामजी के लौट आने पर जैसा उचित होगा वैसा कीजियेगा ।

व्याख्या : गुरुजी के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए मन्त्री लोग बोले कि पहिली चार बातें जिनमें राज करने को कहा गया है स्वीकार न हो तो गुरुजी की आज्ञा तो अवश्य कीजिये । यह बात मन्त्री लोग हाथ जोड़कर विनय कर रहे हैं । अर्थात् प्रजापालन अवश्य कीजिये । सरकार को लौटने पर उचित विचार का अवसर है । इस समय तो प्रजापालन कर्तव्य है । आप नहीं पालन करेंगे तो कौन करेगा ? पिता की आज्ञा का पालन भी हो गया और आपका सेवा धर्म भी बना रह गया । तब तस करव बहोरि : भाव यह कि इस समय दूसरा कुछ करने का अवसर नहीं है ।

कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुर आयेसु अहई ॥
 सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ विपादु काल गति जानी ॥१॥

अर्थ कौसल्याजी धैर्य धारणकर बोली • बेटा ! गुरुजी की आज्ञा पथ्य है । उसका आदर करो और हित मान करके आचरण करो । कालगति मानकर विपाद छोड़ो ।

व्याख्या . इस अवसर पर कौसल्याजी का बोलना अत्यन्त आवश्यक था । सब रानियों में प्रधान हैं । इन्हीं के पुत्र को वनवास दिया गया । इनके बिना कहे भरतजी का राज्य स्वीकार करना उचित भी नहीं था । भरतजी का प्रेम देखकर धैर्य छूट जाता था । अभिषेक की चर्चा से राम वनवास आँख के सामने आ गया । इसलिए धैर्य छूट रहा था । उसे धारण किया । तीसरे यह कि आज महाराज के न होने से यह गति हो रही है नहीं तो अभिषेक के लिए कितना बड़ा उत्सव होता इत्यादि । धैर्य छूटने के अनेक कारण वर्तमान होने पर भी धैर्य धारणकर माँ बोली । पूत सम्बोधन में ही वात्सल्य उमड़ा पड़ता है । कहती है कि गुरुजी की आज्ञा पथ्य है । रोगी के लिए हितकर है । इस समय रामवियोगरूपी कुरोग से सब दुःखी है । यथा राम वियोग कुरोग विगोये । इसी से रोग का उपशमन सम्भव है । रोगी हो, अपने मन का न करो । सद्गुरु के वचन का विश्वास करो • कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । सद्गुरु बँध बचन विश्वासा यहाँ विश्वास करना ही आदर करना है और आचरण करना हो पथ्य सेवन है ।

गुरुजी ने कहा था मानहु मोर बचन हित जानी । कौसल्याजी को गुरुचरणों में महाराज की सी भक्ति है । यथा तम पुनीत कौसल्या देवी । मेरे विशेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमंगल भागे अतः गुरुजी के वचन के लिए कहती हैं सा आदरिअ करिअ हित मानी और विपाद छोड़ने को कहती हैं । क्योंकि काल की गति हटाई नहीं जा सकती । यथा काल करम गति अघटित जानी । अतः विपाद व्यर्थ है । भरतजी रो रहे हैं । इस पर कहती हैं ।

वन रघुपति सुरपति नरनाह । तुम एहि भाँति तात कदराह ॥
 परिजन प्रजा सचिव सब अबा । तुमही सुत सब कह अवलबा ॥२॥

अर्थ रघुपति रामजी वन में हैं । महाराज इन्द्र के यहाँ हैं । और तुम इस भाँति कादर हो रहे हो । कुटुम्बीजन प्रजा मन्त्री तथा माताओं को बेटा ! केवल तुम अवलम्ब हो ।

व्याख्या माता कहती हैं कि उपाय भी तो दूसरा कोई नहीं है । रघुपति पालन में समर्थ थे सो तो वन में हैं यहाँ हैं नहीं महाराज भी नहीं है । वे अपने सखा इन्द्र के यहाँ चले गये । पहिले रामजी का नाम लिया । क्योंकि उन्हीं का अभिषेक सर्वसम्पत्ति से होनेवाला था । महाराज वृद्ध हो गये थे । राज्य के भार से हलका होना चाहते थे । अतः उनका नाम पीछे से लिया । वे भी होते तो लाचार

होकर पालन करते ही । जब दोनों नहीं है तो तुम्हारे अतिरिक्त पालन कौन करता है ? सा तुम वीर होकर इस भाँति कादर हो रहे हो कि रोते हो ।

प्रिय परिजन पुरजन, तुम्हारे पिता व सामने के मन्त्री, माताएँ सब इस समय निराधार हो रहे हैं । केवल तुम्हारा सहारा है । तुम्हारे साहस छोड़ने से ये सब मारे पड़ेंगे । इन पर दुःसह दुःख का भार आ पड़ेगा ।

लखि विधि वाम काल कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥

सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहु । प्रजा पालि पुरजन दुखु हरहु ॥३॥

अर्थ विधाता की प्रतिकूलता और काल की कठिनता को लखकर धैर्य धारण करो । माता तुम्हारी बलैया लती है । गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करो और तदनुसार आचरण करो । प्रजा का पालन करके नागरिकों के दुःख का हरण करो ।

व्याख्या धीरजु धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परसिअहि चारी । सो यह आपत्काल उपस्थित है, विधाता प्रतिकूल है जिसने बँकेयी को पागल बना दिया । यथा विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी और काल भी कठिन उपस्थित है जिसके आगे किसी का बल नहीं चलता । यथा सब कर आज सुकृत फल बीता । भयउ कराल काल विपरीता यही समय धर्म की परीक्षा का है । अतः मैं माँ हूँ तुम्हारी बलैया लती हूँ तुम धैर्य धरो ।

पूत पथ्य गुरु आयसु अहई से उपक्रम करक सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहु स उपसहार करती हुई कहती है कि प्रजापालन कौन करेगा ? इसलिए प्रजापालन करके पुरजन का दुःख हरण करो । क्योंकि इस समय बिना राजा के प्रजा अनाथ हो रही है ।

गुरु के वचन सचिव अभिनन्दनु । सुने भरत हिय हित जनु चदनु ॥

सुनि बहोरि मातु मृदु बानी । शील सनेह सरल रस सानी ॥४॥

अर्थ गुरुजी के वचन और मन्त्रियों का अभिनन्दन भरतजी ने सुना । जो हृदय के लिए चन्दन सा हितकर था । फिर शील स्नेह और सरलता के रस से सनी हुई माता की वाणी सुनी ।

व्याख्या गुरु के वचन प्रतीत न जेही । सपनेहु सुलभ न सुखसिधि तेही । जिसके लिए स्वयं भरतजी कहते हैं अवसि फिरव गुरु आयसु मानी । सो गुरु की वाणी किसी प्रकार हटाने योग्य नहीं जिसके विषय में धर्म विरुद्ध होने की शङ्का भी नहीं की जा सकती । फिर मन्त्रियों ने उसका अनुमोदन किया । अतः नीति विषयक सन्देह भी उस पर नहीं किया जा सकता । वह वाणी शीतल और हित कारक थी । जिस भाँति चन्दन हृदय के लिए और स्पर्श में शीतल है ।

फिर माता की मृदु वाणी सुनी । जो शील, स्नेह और सरल रस से सनी हुई थी । शील यथा पूत पथ्य गुरु आयसु अहई । सनेह यथा तुमही सुत सब कहें

अवलम्बा । सरल यथा • धीरज धरहु मातु वलि जाई । तथापि भरतजी का कष्ट घटने के स्थान में बढ़ा । उन्हें आशा थी कि कम से कम माता कहेगी कि यदि भरतजी राज्य नहीं लेते तो रामजी को लौटाओ पर ये ऐसी सरल थी कि जो सबने कहा उसी को इन्होंने भी मान लिया ।

छ. सानी सरल रस मातु वानी सुनि भरत व्याकुल भये ।

लोचन सरोरुह स्रवत सीचत विरह उर अकुर नये ॥

सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की ।

तुलसी सराहत सकल सादर सीव सहज सनेह की ॥

अर्थ सरलता के रस से सनी हुई वाणी को सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये । उनके कमल रूपी नेत्रों से आँसू बहकर हृदय के नये विरहाङ्कुरों को सीचने लगे । उस दशा को देखकर सबको अपने देह की सुधि न रह गयी । तुलसीदासजी कहते हैं कि उस सहज सनेह की सीमा को सब लोग आदर के साथ सराहने लगे ।

व्याख्या माता को ऐसी सरल वाणी सुनने से भरतजी व्याकुल हो गये । ऐसे सरल के ऊपर इतना बड़ा आघात हुआ और फिर भी इनकी सरलता ज्यों की त्यों है । भरतजी के नेत्रों से आँसू की धारा चली जिससे हृदय भीग उठा । मानो जो नये विरह के अकुर उगे हैं उन्हें यह अश्रुधारा सिञ्चन कर रही है । विरह के नये अङ्कुर उगने का भाव यह है कि भरतजी देखते हैं कि सभी ने रामजी का चौदह वर्ष वनवास मान लिया । उनके लौटाने के लिए यत्न करने की भावना भी किसी में नहीं है । अतः नये विरह के अङ्कुर उगे ।

भरतजी के प्रेम की वह दशा देखने से सभी लोग प्रेम में मग्न हो गये । किसी को अपने देह की सुधबुध न रही । कुछ समय तक तो यह दृश्य था । मन के संभलने पर सभी लोग आदर के साथ सहज प्रेम की सीमा की सराहना करते लगे । भाव यह कि सभी को सरकार के चरणों में प्रेम था । पर परम प्रेम की सीमा तो भरत में थी । प्रेमियों में प्रेम की गुण ग्राहकता होती है । अतः सादर सराहना करते हैं ।

सो. भरतु कमल कर जोरि, धीर धुरन्धर धीर धरि ।

बचन अमिअ जनु वोरि, देत उचित उत्तर सर्बहि ॥१७६॥

अर्थ धैर्य को धुरा के धारण करनेवाले भरतजी धैर्य धारण करके अपने कमल सदृश हाथों को जाड़कर मानो अमृत में डुबाए हुए वचनों से सबको उचित उत्तर देने लगे ।

व्याख्या : भरतजी को किसीकी सम्मति स्वीकार नहीं है । पर सब लोग धैर्य धारण करने को कहते हैं । इसलिए धैर्य धारण किया अथवा बिना धैर्य धारण किए उत्तर दिया नहीं जा सकता और यदि उत्तर नहीं देते तो मौन स्वीकारलक्षणम्

हुआ जाता है। जिनको उत्तर देना है वे सब बड़े हैं। इसलिए हाथ जोड़कर उत्तर देते हैं। उत्तर देने में कसर न रखेंगे इसलिए कहते हैं - देत उचित उत्तर सर्वाहं। जिसको जैसा उत्तर देना चाहिए वैसा उत्तर देंगे। परन्तु उत्तर वस्तु ही ऐसी है जो किसी को प्रिय नहीं लगती। सभी चाहते हैं कि मेरी बात का कोई उत्तर न दे। क्योंकि उत्तर सुनने में रस बिगड़ता है। परन्तु भरतजी ऐसे शब्दों में उत्तर देते हैं जिससे सुननेवाले को परम सुख हो। उत्तर मीठा लगे और उससे सन्तोष हो। भरतजी की पण्डिताई है कि भरतजी उत्तर तो देते हैं पर प्रजा को, पञ्च परमेश्वर को उत्तर देते हैं। धर्मतन्त्र के मूल सिद्धान्त को पकड़े हुए उत्तर दे रहे हैं। उत्तर देने के लिए उपक्रम का ही यह अर्थ है कि कही हुई बात स्वीकार नहीं है और न स्वीकार करने का यथेष्ट कारण है।

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव समत सबहीका ॥

मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौ कीन्हा ॥१॥

अर्थ मुझे गुरुजी ने अच्छा उपदेश दिया। प्रजा मन्त्री सभी की यह राय है। मैं ने भी उचित की धारणा से आज्ञा दी है। मैं शिरोधार्य करके अवश्य करना चाहता हूँ।

व्याख्या - पहिले पहल गुरुजी ही बोले थे। कहा था : मानहु मोर बचन हित जानी। इसलिए कहते हैं कि उपदेश में कोई त्रुटि नहीं है। वह अच्छा है। गुरुजी ने मानने के लिए कारण दिया। अतः भरतजी उसे आज्ञा न मानकर उपदेश मानते हैं। बात पर जोर देने के लिए मन्त्री कहते हैं कीजिअ गुरु आयसु अवसि। मैं कहती हूँ पूत पथ्य गुरु आयसु अहई। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वह आज्ञा नहीं है उपदेश है। वह उपदेश मन्त्रियों की सम्मति के अनुकूल है। परन्तु प्रजा ने तो कुछ नहीं कहा फिर भा भरतजी प्रजा की सम्मति कहते हैं। क्योंकि प्रजा की ओर से विरोध नहीं हुआ। धर्मशास्त्र कहता है कि सभा में प्रवेश न करे और करे तो स्पष्ट बोले। क्योंकि अनुचित कहनेवाला और चुप रहनेवाला समान पापी है। आजकल लोग उस नियम को भूल गये। इसलिए हाथ उठवाना पड़ता है। जब प्रजा चुप रह गयी तो निश्चय हो गया कि उसकी भी यही राय है।

माता ने नि सन्देह आदेश दिया। पर उन्होंने भी उचित की धारणा से आदेश दिया। उसे पथ्य समझकर करने को कहा। भरतजी कहते हैं कि मैं भी चाहता हूँ कि तदनुसार कार्य करूँ। पर करने में असमर्थ हूँ। आप लोग कहते हैं कि शिरोधार्य करो। मैं शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु चाहने पर भी करते नहीं बनता।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ॥

उचित कि अनुचित किये विचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥२॥

अर्थ गुरु पिता माता स्वामी और हित की वाणी सुनकर उसे प्रसन्न मन

से अच्छा समझकर करे । उसमें उचित अनुचित का विचार करने से धर्म जाता रहता है और सिर पर पाप का भार होता है ।

व्याख्या गुरु पिता माता स्वामी और हित इनमें से एक का भी वचन उत्तलधनीय नहीं है । यहाँ तो पाँचों का ऐकमत्य है । यथा

गुरुवाणी करहु राजु परिहरहु गलानी ।

पितुवाणी कछु दिन गये भरत जुवराजू ।

मातुवाणी प्रजा पालि पुरजन दुख हरहु ।

स्वामिवाणी बहव सँदेसु भरत के आये । नीति न तजिय राजपदु पाये ।

हितवाणी कीजिय गुरु आयसु अवसि ।

अतः इसकी उपादेयता में तो कोई प्रश्न ही नहीं है । सहज सुहृद गुरुस्वामि सिख जो न करई हित मानि । सो पछिनाय अघाय उर अवसि होय हितहानि । इनकी वाणी में उचित अनुचित विचार करने से धर्म का लोप होता है और पाप का बाझ मिर पर आ जाता है । अतः इसमें औचित्यानीचित्य के विचार को अवकाश नहीं है । अतः इस पर मैं भी विचार नहीं करता ।

तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई । जो आचरत मोर भल होई ॥

यद्यपि यह समुझत हौ नीके । तदपि होत परितोष न जीके ॥३॥

अर्थ तुम लोग तो वही शिक्षा मुझे देते हो जिसके आचरण से मेरा भला हो । यद्यपि मैं इस बात को भली भाँति समझ रहा हूँ । फिर भी जो को परितोष नहीं होता ।

व्याख्या उपदेश भी भावोपहत नहीं है सरल है । उसके समझने में भी कठिनता नहीं है । तुम लोग मेरा भला देख रहे हो । इस बात को अच्छी तरह से मैं समझ रहा हूँ । परन्तु अपने ही भले से मुझे सन्तोष नहीं होता । भाव यह कि तुम लोग सरकारके कष्ट को ओर दृष्टिपात नहीं कर रहे हो । क्या उनके कष्ट विनिमुक्ति का कोई उपाय नहीं है ? जब तक वे दुःख सहते वन में फिरते हैं तब तक मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है कि सोच छोड़कर प्रजापालन में दत्तचित्त हो जाऊँ । मेरे चित्त में परितोष नहीं हो रहा है । मैं आप लोगों की आज्ञा नहीं टाल सकता । परन्तु अपना हार्दिक भाव तो प्रकट कर सकता हूँ ।

अब तुम्ह विनय मोरि सुनि लेहु । मोहि अनुहरत सिखावनु देहु ॥

ऊतर देउँ छमव अपराधू । दुखित दोष गुन गनहि न साधू ॥४॥

अथ अत्र तुम मेरी विनय सुन लो और मेरी योग्यतानुसार सिखावन दो । मैं उत्तर देता हूँ मेरे अपराध को क्षमा करो । सज्जन लोग दुःखी आदमी के दोष गुण को नहीं गिनते ।

व्याख्या अन्निम आदेश के पहिले विनय सुनना उचित है । अतः मेरी विनती सुनिये और तब ऐसी शिक्षा दीजिये जो मुझसे हो सके । जो बात मेरी की

हुई नहीं हो सकती उसे मैं चाहता हुआ भी नहीं कर सकता । आप लोगों ने जो शिक्षा मुझे दी वह है बड़ी अच्छी पर मैं उसका अधिकारी नहीं । तदनुसार आचरण करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है ।

आप लोग बड़े हैं । आपका उत्तर देना अपराध है और मैं उत्तर देता हूँ । इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ । उत्तर देने का कारण यह है कि मैं दुखी हूँ । आप लोग साधु हैं । साधु लोग न तो दुखी के दोष को ही गिनते हैं और न गुण को ही गिनते हैं । यहाँ उत्तर देने का प्रकरण है । इसलिए दोष पहिले कहा । गुण पीछे कहते हैं । दुःखी गाढे में पड़कर कटु बोलता है । यथा : कटु कहिये गाढे परे सुनि समुझि सुसाँई । परन्तु स्वामी उसके दोष को नहीं गिनता । दुःखी वैराग्ययुक्त वाणी बोलता है । पर उसके राग या विराग की वाणी पर साधु कुछ ख्याल नहीं करते । यथा : सुनि विराग संजुत कपि बानी ।

दो. पितु सुरपुर सिय रामु बन, करन कहहु मोहि राजु ।

एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥

अर्थ : पिताजी स्वर्ग चले गये । सीता राम बन में हैं । मुझे राज करने को कहते हो । इसमें मेरी भलाई समझते हो या अपना कोई बड़ा काम समझ रहे हो ।

व्याख्या : पहिले यह विचार लो कि किस परिस्थिति में किससे क्या कह रहे हो । पिता मर गये । श्रीसीतारामजी बन गये और मेरे कारण से ये दुर्घटनाएँ हुई । तो मुझ ही को राज करने को कहते हो । यह नहीं समझ रहे हो कि मेरे राज्य स्वीकार का अर्थ ही यही है कि इन दुर्घटनाओं में मेरी सम्मति थी । अतः समझ लो कि राज्य स्वीकार करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है । दूसरी बात यह है कि जो कोई किसी काम के करने के लिए किसी से कहता है तो दो बातों में एक बात अवश्य रहती है । उससे या तो करनेवाले का भला ईप्सित होता है या अपना भला ईप्सित होता है । भरतजी पूछते हैं कि यह तो बतलाओ कि तुम लोगो ने किसका भला सोचकर मुझे शिक्षा दी है । इससे तुम लोगो का भला होगा या मेरा ?

हित हमार सियपति सेवकाई । सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥

मैं अनुमानि दीखि मन माँही । आन उपाय मोर हित नाँही ॥१॥

अर्थ : मेरी भलाई तो सीतापति की सेवा में है । उसे माता की कुटिलता ने हरण कर लिया । मैंने मन में अनुमान करके देख लिया कि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित सम्भव नहीं है ।

व्याख्या : यदि पहिला पक्ष लो कि मेरा हित राज्य स्वीकार में है तो ठीक नहीं । क्योंकि : सिय विरञ्चि सुर मुनि समुदाई । चाहत जासु चरन सेवकाई । वह सेवकाई मुझे प्राप्त थी । उस सेवकाई को माता की कुटिलता ने हरण कर लिया ।

मेरे हाथ से सेवकाई निकल गयी। अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम पदारविंद अनुरागी : सियपति कहकर महामाया पति कहा। यथा : उद्धवस्थितिसंहारकारिणी वलेशहारिणी सर्वश्रेयस्करी सीता नतोऽहं रामवल्लभां। माता और पुत्र का सम्बन्ध ऐसा है कि माता की कुटिलता का आरोप पुत्र पर होता ही है। विशेषतः उस समय जब कि उसका कुटिलाचरण पुत्र के स्वार्थ के लिए हो। अतः अब मेरी गणना सेवको मे नहीं रह गयी। माता पुत्र को हित करती है। सो माता ने मेरा हित ही हरण कर लिया। आप लोग यदि हित चाहते हो तो सेवा का अवसर दो। माँ ने उन्हें वन में भेजकर हित से वञ्चित किया है। यदि लौटें तो हित हो : स्वारथ साँच जीव कर एहा। मन क्रम वचन रामपद नेहा।

अनुमान द्वारा ही मन से देखा जाता है। पर्वतो वह्निमान् कहनेवाले ने बिना आँख से देखे मन द्वारा देख लिया। अन्वयव्यतिरेक से यही सिद्ध होता है कि मेरा हित दूसरे उपाय से होनेवाला नहीं। यथा : तुम बिनु दुखी सुखी तुमते ही। मेरा हित कहने का भाव यह कि दूसरे का हित भले ही दूसरे उपाय से हो : एक अंग जो सनेहता निसिदिन चातक नेह। तुलसी जा सो हित लगे वहि अहार वहि देंह। जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह। तुलसी चातक मन बस्यो घन सो सहज सनेह।

शोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें ॥
 'वादि बसन बिनु भूपन भारू। वादि विरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीता के चरणों को बिना देखे यह राज्य किस गिनती में है। यह शोक समाज है। कपड़े के बिना रहने का बोझ व्यर्थ है और वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है।

व्याख्या : यह राज्य नहीं है शोक समाज है। प्रिय के विरह में सुखद वस्तु भी दुःखद हो जाती है। यथा : जे हित रहे करै ते पीरा। अतः यह राज समाज शोक समाज मालूम पड़ता है। इसका भला सुख में क्या गिनती है। लक्ष्मण राम सीता के चरणों का दर्शन हो तो सभी में सुख है। सुख उन चरणों में है बाह्य उपकरणों में नहीं। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे। अब शङ्का यहाँ उठ सकती है कि लक्ष्मणजी तो छोटे हैं। उनके चरण दर्शन के लिए भरतजी क्यों कहते हैं। सीधा सा उत्तर यही है कि सीता और रामजी के साथ हैं। इसलिए : छत्रिणो गच्छन्ति की भाँति लक्ष्मणजी के साथ भी चरण शब्द का व्यवहार कर दिया। यथा : अनुज समेत गहेउ प्रभु चरना। दूसरी बात यह भी है कि यन्त्रराज के मुख्य त्रिकोण में ये ही तीन मूर्तियाँ हैं और इसी त्रिकोण रूप के शरण में देवता लोग गये। यथा :

हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया^१ चिता ।

श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्ट कोसलात्मजः ॥ ९ ॥

दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सघनुष्पाणिना पुनः ।

हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत् ॥ १० ॥

एव त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययुः । रा० ता० ४ ११

स्वर्णं वर्णवाली दो भुजाओंवाली सब अलंकार धारण किये हुए हाथ मे कमल लिये हुए सोता देवी से युक्त श्रीरामजी हैं । उनके दाहिनी ओर घनुष हाथ मे लिये हुए लक्ष्मणजी हैं जिनका रङ्ग सोने सा है । इस भाँति त्रिकोण होता है । उसी त्रिकोण के शरण मे देवता लोग गये ।

शत्रुघ्न भरत और हनुमान् दूसरे त्रिकोण मे हैं । यथा :

उदग्दक्षिणयोः स्वस्थ शत्रुघ्नभरतौ धृतः ।

हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणकम् ॥ ४ ३२ ।

अतः मुख्य त्रिकोण रूप मे भक्ति द्योतित करते हैं ।

गहना शोभा का कारण है पर यदि वस्त्र हो तो और यदि वस्त्र ही नहीं तो भूषण से शोभा नहीं । वह व्यर्थ होकर भाररूप हो जाता है । इसी भाँति रामजी हो तो राज्य सुखद है । उनके न होने पर राज्य में सुख कहाँ ? वह तो भाररूप हो जायगा । विधुवदनी सब भाँति सँवारी । सोह न बसन बिना बर नारी । इसी भाँति वैराग्य हो तो ब्रह्मविचार मे आनन्द है । यदि वैराग्य ही नहीं तो ब्रह्मविचार मे आनन्द कहाँ ? उल्टा ब्रह्मविचार बड़ा भारी बोझा हो जाता है । उसका स्मरण रखना कठिन हो जाता है ।

सरुज शरीर वादि बहु भोगा । विनु हरिभगति जायँ जप जोगा ॥

जाँय जीव विनु देह सुहाई । वादि मोर सबु विनु रघुराई ॥ ३ ॥

अर्थ : रोगी शरीर हो तो बहुत से भोग व्यर्थ हैं । बिना हरिभक्ति के जप योग व्यर्थ है । जीव के बिना सुन्दर देह व्यर्थ है । रघुराई के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है ।

व्याख्या : भोग सुख देनेवाला है । पर यदि शरीर मे कोई रोग हो तो भोग शक्ति भी घट जाती है और भोग से उस रोग की वृद्धि भी होती है । या यों कहिये कि रोगी के लिए भोग विष है । यथा : कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनउ मुनि जोगी । अतः सब भोग उसके लिए व्यर्थ हैं । इसी भाँति राम वियोग रूपी कुरोग से जो दुखी हैं उनके लिए राज्य अपथ्य है ।

जप योगादि अनुष्ठान हरिभक्ति के लिए ही किया जाता है । यथा : जहँ लगि साधन वेद बखानी । सब कर फल हरिभगति भवानी । यदि हरिभक्ति ही न हुई तो

सब साधन व्यर्थ गये । यथा : सो सब करम धरम जरि जाऊ । जहँ न रामपद प
भाऊ । जोग कुजोग ज्ञान अज्ञान । जह नहि राम प्रेम परधान ।

सुन्दर देह हो पर उसमे जीव न हो तो वह देह व्यर्थ है । अमङ्गल रूप
जीव रहने से वही देह मङ्गल रूप थी । यथा : जिय बिनु देह नदी बिनु वार
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी । परन्तु रामजी के बिना मेरा तो सब कुछ व्यर्थ है
अर्थात् रामजी से ही मेरी शोभा है । रामजी से ही आनन्द है । रामजी से ही हि
है । रामजी से ही सफलता है और रामजी से ही मङ्गल है अर्थात् बिना रामजी
न शोभा है, न आनन्द है, न हित है, न सफलता है, न मङ्गल है ।

जाउँ राम पहि आयसु देह । एकहि आँख मोर हित एह ॥
मोहि नृपु करि भल आपन चहह । सोउ सनेह जड़ता बस कहह ॥४॥

अर्थ • मुझे आज्ञा दीजिये । मैं भी रामजी के पास जाऊँ । इसी एक बात
मेरा हित है । मुझे राजा बनाकर जो अपना भला चाहते हो सो स्नेह की जड़ता
के वश होने से कहते हो ।

व्याख्या : भरतजी सभा से कह रहे हैं कि मैं आज्ञा से बाहर नहीं हूँ । अतः
आज्ञा माँगते हैं कि मुझे रामजी के पास जाने की आप लोग आज्ञा दें । क्योंकि मेरा
भला उनके यहाँ जाने में ही है और आप लोग मेरा हित चाहनेवाले हैं । अतः
अवश्य ही दीजिये ।

यदि कहो कि हम लोग अपने लाभ के लिए तुम्हे राजा बनाना चाहते हैं ।
तब तो मैं यही कहूँगा कि मेरे ऊपर आप लोगो का इतना स्नेह है कि आप लोगो की
बुद्धि में जड़ता आगयी है । आप लोगो की दोषो की ओर दृष्टि ही नहीं जा रही है ।
दोषज्ञ पण्डित का नाम है । जो दोष का विवेचन न कर सके वह कैसा पण्डित ?
मेरे राज्य से सुख हो नहीं सकता । कारण कहते हैं ।

दो. कैफइ सुअन कुटिलमति, राम विमुख गतलाज ।

तुम्ह चाहत सुख मोहवस, मोहि से अधम के राज ॥१७८॥

अर्थ • कैकेयी का बेटा, कुटिल बुद्धि, राम विमुख और निर्लज्ज ऐसे अधम के
राज्य में तुम सुख चाहते हो ।

व्याख्या : मैं कैकेयी का बेटा हूँ । कैकेयी की बुद्धि को कुटिलता को सब
जानते हैं । माँ का प्रभाव कहाँ तक बेटे पर न पड़ेगा । मेरी बुद्धि कुटिल है ।
रामजी के वन भेजने का कारण होने पर भी अपने को निर्दोष मानता हूँ । रामजी
के विमुख हूँ । उनके सम्मुख होने की कोई चेष्टा न करने से निर्लज्ज हूँ । इतना बड़ा
अपयश सहन करके जीवित हूँ । अधम कहते किसको है ? जिसका जन्म बुद्धि कम
और शील प्रशस्त न हो वही अधम है । मुझमें ये चारो नहीं हैं अतः मैं बहुत बड़ा
अधम हूँ । अधम को राजा बनाना नहीं चाहिए । क्योंकि उसके कारण प्रजा का
आदर्श विगड़ जाता है । यथा राजा तथा प्रजा । केवल दण्ड विधान करना ही राजा

का कार्य नहीं है। उसका चरित्र प्रजा के लिए आदर्शरूप होना चाहिए। अधम के राजा बनने से प्रजा अधम हो जायगी। फिर सुख का लेश कहां? अतः अधम को राजा बनाकर सुख चाहना जड़ता है।

कहो सांचु सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमशील नरनाहू ॥

मोहि राजु हठि देइहहु जबही। रसा रसातल जाइहि तबही ॥१॥

अर्थ : मैं सच कहता हूँ। सुनकर विश्वास करो। राजा धर्मात्मा होना चाहिए। मुझे हठपूर्वक राज्य जिस समय दोगे उसी समय पृथ्वी रसातल की चली जायगी।

व्याख्या : मैं विनय प्रदर्शन के लिए नहीं कह रहा हूँ। अथवा जब मैं अपने को अधम स्वीकार कर चुका हूँ तो यह न समझ लो कि इस समय मैं झूठ कह रहा हूँ। मैं सच कहता हूँ। आप लोग विश्वास करिये। मैं वस्तुतः कुटिल हूँ। आप लोगो का सरलभाव से कहना मेरे हृदय में नहीं बैठ रहा है। मैं समझ रहा हूँ कि आप लोग मुझे वस्तुतः राज्यलिप्सु समझ रहे हैं। मुझे माँ की राय में समझ रहे हैं। यथा : तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई। मैं राम विमुख हूँ। मेरे कारण रामजी सब प्रकार का कष्ट झेल रहे हैं। मुझे लज्जा नहीं है। जिसे लज्जा थी उसने शरीर त्याग दिया। मैं आप लोगो के सामने मुख दिखला रहा हूँ। अतः मैं राज्य के योग्य नहीं। कुटिल रामविरोधी और बेहया राजा नहीं होना चाहिए। राजा धर्मशील होना चाहिए। जिसमें प्रजा उसका अनुसरण करके धर्मात्मा हो।

अतः मैं राज लेना नहीं चाहता। आज्ञा के बल से मुझे दोगे तो मुझे लेना पड़ेगा। पर इसका फल बड़ा भयानक होगा। प्रजा मेरा अनुसरण करने लगेगी। पितृवध बन्धुविरोध धन-सम्पत्ति के लिए होने लगेगी। यथा राजा तथा प्रजा। प्रजा पतित हो जायगी। ऐसा पाप पृथ्वी पर बड़ेगा कि वह सह न सकेगी। रसातल की चली जायगी। मेरे सिंहासन पर बैठने की देर है। तुम्हारा भला कुछ न होगा। उलटा बड़ा भारी विनाश उपस्थित हो जायगा।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनवासू ॥

रायँ राम कहु काननु दीन्ह। बिछुरत गमनु अमर पुर कीन्ह ॥२॥

अर्थ : भला मेरे बराबर पाप का निवास स्थान कौन होगा? जिसके लिए सीता और राम को वनवास हुआ। राजा ने रामजी को वन तो दिया पर उनके बिछुड़ने पर आप सुरपुर भी चले गये।

व्याख्या : रसातल जाने का कारण कहते हैं कि मेरा पाप ही ऐसा है। क्योंकि मैं सीताजी और रामजी जैसे महापुण्यवानों के वनवास का कारण हूँ। वनवास बड़ा भारी दण्ड है। यथा : डरपहि धीर गहन सुधि आये। महा निकम्मों को वनवास बड़ा भारी दण्ड है। यथा : डरपहि धीर गहन सुधि आये। महा निकम्मों को वनवास दिया जाता है। यथा : अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता वनवास।

मेरे कारण इतने बड़े पुण्यवान् को ऐसा घोर दण्ड दिया गया। मेरे पाप का क्या ठिकाना ?

यदि कहिये कि तुम तो केवल वनवास दिये जाने के कारण हुए। प्रयोजक कर्त्ता हुए। मुख्यकर्त्ता अर्थात् वनवास देनेवाले तो महाराज थे। तो इसपर यह कहना है कि उन्होंने अपना प्राण देकर संसार के सामने अपनी सफाई भी दे दी। संसार जान गया कि राजा ने खुशी से वनवास नहीं दिया। वनवास जबरदस्ती राजा से दिलवाया गया जिसका उन्हें इतना दुःख हुआ कि उन्होंने प्राण दे दिया।

मैं शठ 'सब अनर्थ कर हेतू। बैठ बात सब सुनहुँ सचेतू ॥

बिनु रघुवीर विलोकि अवासू। रहे प्राण सहि जग उपहासू ॥३॥

अर्थ : मैं शठ हूँ। सब अनर्थ की जड़ हूँ। बैठा हुआ सब बातें सुन रहा हूँ। बिना रघुवीर के घर को देखकर भी ये प्राण जगत् की हँसी सहकर भी बने हैं।

व्याख्या : मैं शठ हूँ। मोठी बातें शठ कहे करिके महा बिगार। महाराज साधु थे। मैं अनर्थ का मूल होकर नहीं मरा। जीते जागते होश हवाह में बैठा सब बातें सुनता हूँ। एक भरत कर समत कहही। एक उदास भाव सुनि रहही : आदि। यदि कहिये कि तुम तो थे ही नहीं जब यह काण्ड हुआ। तो इसका उत्तर यह है कि जब घर लीटे और बिना सीता रामजी का घर पाया उस समय तो मुझ मर जाना था। पर नहीं मरा। मुझे कलङ्क से कौन बचा सकता है ? संसार मुझ पर हँसता है कि इसी के कारण रामजी को धन हुआ और मैं जीता हूँ। अतः मेरे निर्लज्ज होने में त्रुटि क्या है ?

राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥

कहँ लगि कहौ हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई ॥४॥

अर्थ : पवित्र राम विषय रस से रूखे हैं। लालची लोग पृथ्वी के भोग के भूखे होते हैं। मैं अपने हृदय की कठिनता को कहँ तक कहँ। इसने वज्र का भी निरादर करके बड़ाई पाया है।

व्याख्या : राज्य करने में अपनी अयोग्यता कहकर रामजी की योग्यता कहते हैं। चाहिअ धर्मशील नरनाहू। तो रामजी पुनीत हैं। धर्मशील हैं। उन्हें राज्य की भूख नहीं। वे विषय रस के रसिक नहीं। यथा : नवगयंद रघुवीर मनु राज अलान समान। छूट जान वनगवन सुनि उर अनन्द अधिकान। उन्हें राज्य छोड़ने और वन जाने की आज्ञा हुई। तुरन्त छोड़कर चले गये। परम त्याग का उदाहरण प्रजा के सामने उपस्थित कर दिया। आज कोई लालची भोग का भूखा होता तो क्या इस भाँति छोड़ देता। रामजी का वचन है :

वाताभ्रविभ्रममिद वसुधाधिपत्यमापातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।

प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां धर्मैः सदा मुहुर्दहो न विरोधनीयः ॥

हवा के बवण्डर की भाँति यह पृथ्वी का स्वामित्व है और विषयोपभोग भी

तत्काल के लिए ही मधुर है और तिनके के सिरे पर लटकते हुए जलबिन्दु की भांति प्राणों की स्थिति है। अतः हे मित्रो ! कभी भी धर्म का विरोध नहीं करना चाहिए।

ऐसे पुनीत रामजी के वनवास पर भी हृदय नहीं फटा तो यही कहना है कि इसने अपनी कठिनता से वज्र को भी मात कर दिया। अब मेरे हृदय की कठिनता की प्रशंसा है। कोमल हृदय महाराज का था जिन्होंने : बिछुरत गवन अमरपुर कीन्हा।

दो. कारन ते कारजु कठिन, होइ दोष नहि मोर।

कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥१७९॥

अर्थ : कारण से कार्य कठिन होता है। इसमें मेरा दोष नहीं है। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा कराल कठोर होता है।

व्याख्या : मेरा हृदय ऐसा कठोर हो गया कि रामजी से सूना घर देखकर नहीं फटा और संसार में उपहासास्पद होने पर भी नहीं सरका। इसमें मेरा दोष नहीं है। क्योंकि कार्य से कारण कठोर अधिक होता ही है। वज्र दधीच ऋषि की अस्थि से बना है। पर वह अस्थि से कहीं अधिक कराल है। पत्थर में ही लोहा पाया जाता है। सभी धातु पहाड़ से ही निकलते हैं। परन्तु पत्थर से भी अधिक कठोर लोहा होता है। भाव यह कि कैकेयी से मेरा जन्म हुआ है। अतः उनसे भी अधिक कठोर होने में मेरा दोष नहीं है।

कैकेयी ने मेरे लिए सब कुछ किया। पर वह इस समय अचेत है। पगली सी हो रही है और मैं सचेत होकर सब बात सुन रहा हूँ। अतः मैं अधिक कठोर हूँ।

कैकई भव तनु अनुरागे। पावन प्राण अघाइ अभागे ॥

जो प्रिय विरह प्राण प्रिय लागे। देखव सुनव बहुत अब आगे ॥१८॥

अर्थ : कैकेयी से उत्पन्न देह से प्रेम करनेवाले ये पावन प्राण बड़े अभागे हैं। यदि प्यारे के विरह में प्राण प्रिय लगा तो आगे बहुत कुछ देखना और सुनना है।

व्याख्या : प्राणों में पाप का वेध नहीं होता। वह सदा पावन है। परन्तु बड़ा ही अभागा है। क्योंकि मेरे इष्ट रामजी से विरोध करनेवाली कैकेयी से उत्पन्न शरीर पर इसने प्रेम कर रक्खा है। उसे छोड़ना नहीं चाहता। इष्ट विरोधी से उत्पन्न तन पर सती ने अनुराग नहीं किया। यथा : पिता मद मति निदत्त ओही। दक्ष सुक्र समव यह देही। तजिहीं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चद मौलि वृषकेतू। नहीं छोड़ने का फल यह हुआ कि भवभञ्जन पद विमुख होना पड़ा। यही अभाग है। यथा : भवभंजन पद विमुख अभागी। प्राण ही जीवात्मा बुद्धि और मन का सम्बन्ध शरीर से बनाये रखता है। यह यदि सम्बन्ध शरीर से तोड़ दे तो टूट जाता है। इसे यदि यह तन प्रिय न होता तो यह छोड़ देता। यह बड़ा भारी अभागा है कि ऐसे शरीर से सम्बन्ध बनाये हुए है।

प्राण सबको प्यारा होता है। परन्तु ऐसे प्रेमी होते हैं जिन पर प्राण से

अधिक प्रेम होता है। उनके विरह में प्राण प्रिय नहीं मालूम होता है। उसे छोड़ दिया जाता है। क्योंकि वह महा दुःखदायी हो जाता है। उसके रहने से प्रिय के प्रतिकूल बहुत सी बातें देखने और सुनने में आती हैं। परन्तु मुझे तो प्राण प्रिय मालूम होते हैं। चाहता तो था कि यदि प्राण शरीर से सम्बन्ध नहीं छोड़ते तो मैं ही प्राणों से सम्बन्ध छोड़ देता। जिस भाँति चक्रवर्तीजी ने छोड़ दिया और वेदना से मुक्त हो गये। पर मैं न छोड़ सका। इससे अनुमान होता है कि अभी न जाने क्या क्या मुझे देखना और सुनना बाकी है। भोग शेष है। इसलिए जीवात्मा प्राण और शरीर एक दूसरे से बँधे हुए हैं। भाव यह कि जिस परिस्थिति में भरतजी हैं उसमें उन्हें राज्य के लिए कथन मात्र से दुःसह वेदना हो रही है और जितना ही उनको स्वीकार के लिए बल दिया जाता है उतनी ही वेदना बढ़ रही है।

लखन राम सिय कहैं वनु दीन्हा । पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ॥

लीन्ह विधवपन अपजसु आपू । दीन्हेउ प्रजहिं सोकु सतापू ॥२॥

अर्थ लक्ष्मण राम और सीता को वन दिया। स्वर्ग भेजकर पति का हित किया और स्वयं विधवापन और अपयश लिया। प्रजा को शोक और सन्ताप दिया।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि जिस कैकेयी से मेरा शरीर उत्पन्न हुआ है और उसकी करणी कैसी है कि राम जानकी को वन देकर अपयश लिया। पति को स्वर्ग भेजकर विधवापन लिया। मातृधर्म पत्नीधर्म तथा आत्मधर्म का खूब निर्वाह करके रानीपन भी खूब निवाहा। प्रजाओं को शोक सन्ताप दिया। यथा मुख सुखाहि लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कटकई उत्तरी अवध बजाइ। बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरवासी। यहाँ व्यङ्ग्य से भरतजी माता की भर्त्सना कर रहे हैं।

मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू । कीन्ह कैकई सब कर काजू ॥

एहि ते मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम टीका ॥३॥

अर्थ मुझे सुख सुयश और सुन्दर राज्य दिया। कैकेयी ने सबका काम बना दिया। इससे अच्छा मेरा क्या होगा। तिस पर तुम लोग मुझे टीका देने को कह रहे हो।

व्याख्या मैं खास बेटा था। इसलिए मुझे तीन बातें दी १ सुख २ सुयश और ३ सुराज और लोगों को दो दो ही दी थी।

सुख। यथा भरतहि विसरयो पितु मरन सुनत रामवन गौन।

सुयश। यथा हेतु अपनपौ जानि जिय थकित परे धरि मौन।

सुराज। यथा सोक समाज राज केहि लेखे।

इस भांति कैकेयी ने पुत्रो का पति का अपना प्रजा का और सबका काम पूरा कर दिया । अर्थात् सर्वनाश कर दिया ।

खास मेरी माँ के हाथ से यह सब अनर्थ हुआ मेरे सुख, सुयश और सुराज के लिए । तिस पर तुम लोग यह चाहते हो कि मैं टीका भी कढवा लूँ । कही मुख दिखाने लायक भी मुझे रखोगे ? यह तो मेरे सिर कलङ्क का टीका लगा देना है । मेरी माँ ने मेरे लिए इतना किया इतना ही अपयश कौन कम है । टीका देकर उसी बात की पुष्टि किया चाहते हो ।

कैकै जठर जनमि जग माँही । यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाँही ॥

मोरि बात सब विधिहि बनाई । प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥४॥

अर्थ : जगत् में कैकेयी के पेट से जन्म लेने पर यह बात मेरे लिए अनुचित नहीं है । मेरी बातें तो सब ब्रह्मा ने ही बना दी हैं । अब प्रजा और पञ्च इसमें क्या सहायता दे रहे हो ।

व्याख्या : ऐसी स्थिति में टीका लेना ससार में किसी के लिए उचित न होता । पर मेरे लिए अनुचित नहीं है । क्योंकि मैं कैकेयी के पेट से पैदा हूँ । उसने इतना इतना काम कर डाला । मैं इतना भी न करूँ कि टीका ले लूँ । मुझे तो अनुचित नहीं है । पर तुम्हें भी उचित नहीं है कि मेरे कलङ्क को और भी दृढ़ बनाओ ।

मेरी बात तो सब ब्रह्मदेव ने ही बिगाड दी । यथा : हस बस दसरथ जनक राम लखन से भाइ । जननी तूँ जननी भई विधिसन कछु न बसाइ । अब बिगडे हुए को और क्या बिगाडते हो । तुम प्रजा हो । तुम्हें ऐसा न करना चाहिए । पञ्च परमेश्वर है । इस नाते भी ऐसा न करना चाहिए ।

दो ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार ।

ताहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ॥१८०॥

अर्थ : जो ग्रह से ग्रसित हो, बाई चढी हो, बीछी भी मारे हो उसे मद्य पिला रहे हो कहो तो यह कैसी चिकित्सा है ।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं १ लखन राम सिय कहँ बन दीन्हा २ पठइ अमर पुर पति हित कोन्हा ३ दोन्हेउ प्रजहि सोक सन्तापू ४ मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू । कोन्हा कैकेयी सब कर काजू । इसी प्रसङ्ग के उपसंहार में यह दोहा कहा गया है । इसमें भी चार बातें हैं १ ग्रह ग्रहीत २ बातबस ३ तेहि पुनि बीछी मार ४ ताहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार । इससे स्पष्ट है कि पहिले के कही हुई चार बातों के दोषों को दिखलाते हुए पिछली चार बातें उदाहरण के रूप में कही गयी हैं । लखन राम सिय का बन जाना ही ग्रह ग्रहीत होना है । यथा : हरखि हृदय कोसलपुर आई । जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई । पति को अमरपुर भेजना और विधवापन लेना एक ही बात है । इसका प्रभाव भरतजी पर सन्निपात

सा पडा । भरतजी ऐसे धीर ने माता को दुर्वाद कहा । सन्निपात जल्पसि दुर्वादा
 ३ प्रजा को बीछी मारे जाने सा कष्ट है । अत भरतजी को वैसी ही पीडा हो रही
 है । ४ राज मिलने को वारुणी के समान समझ रहे हैं । यथा सबसे कठिन राज
 मद भाई । सबका निर्गलितार्थ यह है कि भरत जी कह रहे हैं कि मैं तो इतना
 दुखी हूँ और आप लोग उस दुख को मिटाने के लिए मुझे राजरूपी वारुणी
 पिला रहे हैं । जिससे उसके नशे में सब दुख भूल जाऊँ । नहीं समझ रहे हैं कि
 ऐसे रोगी को वारुणी घातक है । इसके लोक परलोक दोनों को नष्ट करेगी । ऐसी
 दयनीय दशा में जो पडा हो उसके लिए सब शोकहरा सुरा देकर रोग शान्त
 करने का प्रयत्न करना कौन सी चिकित्सा है । ऐसे पुरुष के लिए तो सुरा विष है ।
 भाव यह कि राज्य देना सुरा है । यथा सबसे कठिन राजमद भाई । जो अचवत
 मातहि नृप लेई । मेरे रोग की चिकित्सा करो । राज दे दो । सब भूल जाँयगे । इस
 विचार से अनर्थ परम्परा बढ़ेगी, घटेगी नहीं ।

कैकई सुवन जोगु जग जोई । चतुर विरचि दीन्ह मोहि सोई ॥
 दशरथ तनय राम लघु भाई । दीन्ह मोहि विधि वादि बडाई ॥१॥

अर्थ कैकेयी के पुत्र के लिए जगत् में जो योग्य था चतुर विधाता ने मुझे
 वही दिया । परन्तु दशरथ का बेटा हाना और रामजी का छोटा भाई होना यह
 बडाई विधि ने मुझे व्यर्थ ही दी ।

व्याख्या योग्य माता को योग्य बेटा दिया । विरञ्चि बड़े चतुर हैं । मैं बेटे
 का अच्छा जोड़ जुटा दिया । अथवा कैकेयी के बेटे का क्या क्या मिलना चाहिए
 सो सब ब्रह्माजी ने मुझे दिया । अर्थात् दुःख दुर्गन्ध निलज्जता कठोरता करालता
 आदि ।

पर दो बडाई मुझे व्यर्थ दिया । अर्थात् महाराज दशरथ का बेटा और
 रामजी का छोटा भाई बनाया । जब इस बडाई की ओर देखता हूँ तब पिता का
 प्राण देना और बड़े भाई का वन जाना देखते हुए ऐसे पिता का पुत्र और ऐसे
 भाई का भाई हाकर राज्य कैसे ग्रहण करूँ । ब्रह्मदेव यदि ये व्यर्थ की दो बडाइयाँ
 न दिये होते तो मैं राज्य स्वीकार कर लिये होता । अतः

तुम्ह सब कहहु कढावन टीका । राय रजायसु सब कहँ नीका ॥
 उत्तर देउ केहि विधि केहि केही । कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥२॥

अर्थ तुम सब लोग मुझे राजतिलक बढाने को कहते हो । क्योंकि राजा
 की आज्ञा है और सबको अच्छा लगता है । मैं किसे किसे और किस विधि से उत्तर
 दूँ । जिसकी जैसे रुचि हो सुखपूर्वक कहते जाओ ।

व्याख्या मेरे टीका के लिए राजा की आज्ञा भी है और सब लोग अच्छा
 समझते हैं । मुझे तो न यह राजाज्ञा मालूम होती है और न सबके लिए उपकारक
 मालूम होती है । किसे किसे जवाब दें और किस विधि से दें । कहनेवालों में

गुरुजी हैं और पिताजी के मन्त्री भी सम्मिलित हैं। कोई उत्तर देने योग्य नहीं और न मुझे कोई विधि मालूम पड़ती है जिस विधि से उत्तर दिया जा सके। सभी लोग समझते हैं कि इस कुचक्र में मेरी सम्मति है। इसकी सफाई मैं दे नहीं सकता। अतः जिसे जैसी रुचि हो वह वैसा कहे। क्योंकि टीका के लिए कहना और इस कुचक्र में मेरी सम्मति मान लेना एक बात है। बात भी ऐसी ही है। राज्य उसी को दिया जाता है जिसने भलाई की हो। सो :

मोहि कुमातु समेत विहाई । कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई ॥
मो विनु को सचराचर माही । जेहि सिय रामु प्रान प्रिय नाही ॥३॥

अर्थ : कुमाता के समेत मुझे छोड़कर और कौन कहेगा कि मैंने भलाई की है। ससार में मेरे बिना कौन है जिसे रामजानकी प्राणप्रिय न हो।

व्याख्या : टीका मुझे होना चाहिये। क्योंकि राज्य के भलाई करनेवाले दो ही ठहरे : मेरी माँ या मैं। रामजी की माँ या रामजी ने तो राज की कोई भलाई की ही नहीं है। उन्हें टीका देने को आप लोग क्यों कहेंगे ! इतना दबाव मुझ पर डाला जाता है अपयश के लिए। क्योंकि यह मानी हुई बात है कि जगत् के प्राणसम राम मुझे प्रिय नहीं हैं। यदि सब लोग इतना दबाव रामजी पर दें गुरुजी भी, मन्त्री भी, माताएँ भी और प्रजा भी तो रामजी को राज्य स्वीकार करना पड़े।

जिसे राम प्राणप्रिय न हो वही टीका स्वीकार कर सकता है। नहीं तो प्राण-प्रिय से छीने हुए टीके को कौन स्वीकार कर सकता है ? इसीलिए आप लोग मुझे स्वीकार करने को कहते हैं।

परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू । अदिन मोर नहि दूषन काहू ॥
संसय सील प्रेम बस अहहू । सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू ॥४॥

अर्थ : जो परम हानि है उसी में सबको बड़ा लाभ दिखाई पड़ता है। यह मेरा बुरा दिन है। किसी का दोष नहीं है। तुम सब लोग सन्देहशील और प्रेम के वश हो। इसलिए सब लोग जो कुछ कहो वह उचित ही है।

व्याख्या : जिसमें मेरी यशोहानि, धर्महानि, प्रेमहानि अर्थात् परम हानि है उसी में सबको लाभ दिखाई पड़ना विपरीत बुद्धि है। मेरे बुरे दिन के कारण सबकी बुद्धि विपरीत हो गयी। मैं किसी को दोष नहीं देता।

भीतर से सशय है कि भरत की रुचि देखकर ही माँ ने राज माँगा होगा। आँखों में शील है। इससे कैसे कहे कि तेरा राज मुझे स्वीकार नहीं। रामजी को बुलाओ। मेरे ऊपर प्रेम भी है। अजो इसी को राजा होने दो। ऐसी परिस्थिति में जो कुछ कहते हो उचित ही है। यथा : सो सनेह जडता बस कहहू।

दो. राम मातु सुठि सरल चित, मो पर प्रेम बिसेखि ।

कहइ सुभाय सनेह बस, मोरि दीनता देखि ॥१८१॥

अर्थ : रामजी की माता अत्यन्त सीधे स्वभाववाली है और मुझपर उनका प्रेम भी अधिक है । वे स्वभाव और स्नेह के वश होकर मेरी दीनता देखकर कह रही हैं ।

व्याख्या : रामजी की माता का कहना कोई कहना नहीं है । वे बड़ी सरल हैं । जो सब लोगों ने कह दिया उन्होंने तुरन्त मान लिया और मुझ पर प्रेम भी अधिक करती हैं । मुझे आर्त देखकर वे भी वही बात कहती हैं । वे इस पेच के बात को नहीं पकड़ सकती कि मेरे राज्य स्वीकार करने से मेरी और मेरी माँ की एक सम्मति प्रमाणित हुई जाती है । कौसल्याजी के प्रति संशय का आक्षेप नहीं है । अतः उनके विषय में अलग कह रहे हैं । उनके सामने शपथ भी ले चुके हैं । वे कह चुकी हैं कि : मत तुम्हारा यह जो जग कहही । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही ।

गुर विवेक सागर जगु जाना । जिनहि विस्व कर बदर समाना ॥

मो कहँ तिलक साज सज सोऊ । भय विधि विमुख विमुख सबु कोऊ ॥१॥

अर्थ : संसार जानता है कि गुरुजी विवेक के समुद्र हैं । जिन्हे सारा संसार हाथ में आये हुए बेर के समान है । वे भी मेरे लिए तिलक का साज सजा रहे हैं । ब्रह्मा के विमुख होने पर सभी विमुख हो जाते हैं ।

व्याख्या : दूसरा व्यक्ति जिस पर संशय का आरोप नहीं हो सकता गुरुजी हैं और वे विवेक के समुद्र हैं । जिसने योगवासिष्ठ देखा है उसे मानना पड़ेगा कि वसिष्ठजी विवेक के समुद्र हैं । इतना ही नहीं सर्वज्ञ हैं । संसार में कोई बात इनसे छिपी नहीं है । इनके हाथ में संसार बदरी फल की भाँति है । सो और लोगो ने तो केवल मुख से कहा । पर गुरुजी तो साइत देखकर आये हैं तिलक देने के लिए । ये तो जानते हैं कि मेरा मत नहीं था । न मैं चाहता हूँ । न उचित है । फिर ये राज्य देने की तैयारी क्यों करते हैं ? अतः कहना पड़ेगा कि ब्रह्मा के विमुख होने से सब विमुख हो गये । ब्रह्मा हिरण्यगर्भ हैं । प्राण और मन की समष्टि हैं । जब समष्टि ही विमुख हो गया तो व्यष्टि प्रतीपाचरण कैसे कर सकता है ! जब सभी विमुख हो गये तो यह भी हो गये । अथवा गुरुजी ब्रह्मादेव के पुत्र हैं । पिता के नाराज हो जाने से ये भी अप्रसन्न हो गये हैं । पिता के प्रतिकूलाचरण धर्मतः भी नहीं कर सकते ।

परिहरि रामु सीय जग मांही । कोउ न कहिहि मोर मत नांही ॥

मो मै सुनब सहव सुख मानी । अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी ॥२॥

अर्थ : रामजी और सीताजी को छोड़कर जगत् में और कोई नहीं है । जो

यह कहे कि इसमे मेरी सम्मति नहीं है। सो मैं सब सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योंकि जहाँ पानी होता है वहाँ कीचड़ होता ही है।

व्याख्या जो लोग मुझे राज्य लेने को कहते हैं वे दूसरे शब्दों में यह कहते हैं कि भरत का मत रहा है। अतः अब सब किसी ने मुझे माता के राय में कह दिया। परन्तु एक ठिकाना मुझे है जो कहेगा कि इसमें भरत का मत नहीं है और वह राम सीता हैं। भरतजी का जैसा विश्वास रामजी पर है वैसा ही सीताजी पर है। जानते हैं कि दोनों मूर्तियों में वास्तविक अभेद है। कोउ नहीं कहहि का भाव यह कि जानता भी है कि मेरा मत नहीं है वह भी न कहेगा। नीति ही ऐसी है। असम्भाव्य न वक्तव्य साक्षात् दृष्टमपि क्वचित्। शिला तरति पानीयं गीत गायति वानर। इसी से कोई भी नहीं कहता।

जो बात लोग कह रहे हैं वह न सुनने लायक है न सहने लायक है। पर मैं सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योंकि गगन चढ़े रजः पवन प्रसगा। कीचहि मिले नीच जल सगा। सो मेरा जल रूप कैकेयी का सग है। अतः मेरा कीच होना प्राप्त है।

डर न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥

एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी ॥३॥

अर्थ मुझे ससार घुरा कहे इसका मुझे डर नहीं है। परलोक का भी मुझे सोच नहीं है। मेरे हृदय में एक ही दुसह दावानल दहक रहा है कि मेरे लिए श्रीराम जानकी दुखी हुए।

व्याख्या दुर्योधन का भय सब ही प्रतिष्ठित पुरुषों को रहता है। यथा : सभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दाहन दाहू। परन्तु मुझे उसका भी डर नहीं है। जिसका अपयश होता है उसको स्वर्ग में गति नहीं होती। उसका परलोक विगड़ जाता है। इस पर कहते हैं कि मुझे परलोक का भी सोच नहीं है। भाव यह कि इनको भी लक्ष्मणजी की भाँति कीर्ति भूति सुगति प्रिय नहीं है। यथा धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।

भरत जी कहते हैं कि मुझे एक ही सोच है जो मेरे हृदय में दावानल की भाँति दहक रहा है। यथा : जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। इस समय अनेक प्रकार की दावाग्नि लगी हुई है। मेरे लिए उनमें से एक असह्य है और उसी ने हृदय में डेरा डाल रक्खा है और वह यह है कि मेरे लिए राम जानकी दुखी हुए। अपने प्रेमी को कष्ट हो और अपने द्वारा हो इससे बढ़कर और कष्ट क्या होगा ?

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा ॥

मोर जनम रघुवर बन लागी। शूठ काह पछिताउँ अभागी ॥४॥

अर्थ लक्ष्मण जी ने जीने का अच्छा फल पाया। सब कुछ छोड़कर रामजी

अयोध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

मैंने तो एक यही बात निश्चय की है। भाव यह कि मैं भी इसी चिन्ता हूँ कि क्या करना चाहिए और आप लोग भी इसी चिन्ता में हैं। आप लो मुझे राज्य देने का निश्चय किया है उसे कह सुनाया। अतः मैं भी कहे देता मेरा निश्चय तो सवेरे सरकार के पास जाने का है।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहि कृपा बिसेखी ॥

अर्थ : यद्यपि मैं बुरा हूँ। अपराधी हूँ। मेरे ही कारण से सब उपद्रव हुआ तथापि मुझे शरण में आया हुआ देखकर सब क्षमा करके विशेष कृपा करेंगे।

व्याख्या : यदि कहिये कि तुम बुरे हो। क्योंकि अपराधी हो। अपराध : कि सम्पूर्ण उपाधि को जड तुम ही हो। मैं इस बात से इनकार नहीं करता ऐसा ही अपराधी हूँ कि मुझे क्षमादान दिया नहीं जा सकता है। अपराध कैकेयी है। फिर भी वह अपराध का कारण नहीं है उसने अपराध मेरे लिये किया तो सबकी जड तो मैं ही ठहरा।

यदि कहिये कि शरण जाने पर तो वे क्षमा अवश्य करेंगे। अपने प्रण निर्वाह करेंगे। पर शरण जाना ही कौन आसान काम है। शरण जाने में मद कपट छल सब छोड़कर शरण जाने का विधान है। तो क्या तुमने मद मोह छोड़ दिया जो शरण जाते हो। इस पर कहते हैं कि भले ही मुझमें शरणागत गुण नहीं हैं फिर भी जाने से शरण सम्मुख जो होलंगा। शरण को मेरी तो रहेगी। उनके क्षमा दान के लिए इतना ही यथेष्ट है। इतने से ही न केवल अपराध क्षमा होगा बल्कि विशेष कृपा भी करेंगे।

सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ।
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मै सिसु सेवक जद्यपि बामा।

अर्थ : रघुराज सुशील अत्यन्त सरल तथा सङ्कोची स्वभाववाले हैं। वे और प्रेम के घर हैं। राम ने कभी शत्रु का भी बुरा नहीं किया और प्रतिकूल होने पर भी बालक और सेवक हैं।

व्याख्या : सरकार शीलनिधान हैं। प्रभु तत्पर कपि डार पर ते किय समान। तुलसी कहें न राम ते साहिब सीलनिधान। शीलनिधान बुरे को बुरा व तिरस्कार नहीं कर सकता। इन सा सङ्कोची तो तीन काल में कही कोई हुआ नहीं। यथा : प्रेम कनौड़ी राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई। तरोरिनी हो कपि सो ऐसी मानिहि करे सेवकाई। अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते। वह ही सरल हैं। यथा : रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सो माता के वन माँगने को हो उन्होंने प्रतीपाचरण नहीं माना। अतः तीनों स के अङ्ग मेरे अनुकूल पड़ते हैं। चौथी बात यह कि कृपा और स्नेह के तो घर हैं।

अतः मेरे अपराध को क्षमा करके विशेष कृपा करना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है ।

उनका नाम राम है । उन्होंने शत्रु का भी कभी बुरा नहीं किया । 'वैरिउ राम बडाई करही । वैर वैर को सदा प्रेम से जीतना चाहते हैं । शत्रु का आदर शत्रु से भी विनय शत्रु पर प्रेम करने में वे ही समर्थ हैं । मैं प्रतिकूल तो हूँ पर शिशु, सेवक हूँ । अतः मेरे अपराध को क्षमा करते उन्हें कितनी देर लगेगी ।

तुम्ह पे पाँच मोर भल जानी । आयसु आसिप देहु सुबानी ॥

जेहि सुनि विनय मोहि जनु जानी । आवहि बहुरि रामु रजधानी ॥४॥

अर्थ : तुम पञ्चलोग भी इसमें मेरा कल्याण मानकर आज्ञा दो और सुन्दर वाणी से आशीर्वाद दो । जिससे मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे अपना सेवक जानकर रामजी राजधानी को लौट आवें ।

व्याख्या : तुम पञ्च हो । परमेश्वर हो । यदि अपना कल्याण न समझो तो मेरा कल्याण समझकर मुझे आज्ञा दो । आशीर्वाद दो । अर्थात् जाने के लिए आज्ञा दो और सफल मनोरथ होने के लिए आशीर्वाद दो । अयोध्या का नियम है कि पञ्च की सम्मति से सब काम होता है । यथा : जो पाँचइ मत लागै नीका । करहु हरषि हिय रामहि टीका । आयसु आसिप देहु सुबानी । यहाँ सुबानी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप लोग ऐसी वाणी कहिये कि तुम्हारी विनय सुनकर तुम्हे सेवक जानकर रामजी लौट आवें । मेरे कारण सकल उपाधि हुई । वही मैं लौटने के लिए विनय करने जाता हूँ । जब वनवास का कारण ही हट गया तब वनवास का प्रयोजन ही नहीं रह गया ।

दो. जद्यपि जनम कुमातु तें, मै सठु सदा सदोस ।

आपन जानि न त्यागिहहि, मोहि रघुवीर भरोस ॥१८३॥

अर्थ : यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं शठ सदा दोष युक्त हूँ । पर अपना समझकर नहीं त्यागेंगे । मुझे तो रघुवीर का ऐसा ही भरोसा है ।

व्याख्या : कुमाता से जन्म । यथा : साँइ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता । मैं शठ काम बिगाडकर मोठी बातें करता हूँ । सदा सदोष हूँ । मेरे दोष की सफाई नहीं दी जा सकती । मेरी ओर से तो सब बिगड़ा बिगड़ाया हुआ ही है । पर : मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई । ही तो साँइ द्रोही पे सेवक हित साँइ । अतः मुझे भरोसा है । अपना जानकर त्याग नहीं करेंगे । यथा : ससि कलंक हरि भृगुलता बड़वानलहि समुद्र । ग्रहण किये त्यागत नहीं महाघोर विपरुद्ध ।

भरत बचन सब कहुँ प्रिय लागे । राम सनेह सुधा जनु पागे ॥

लोग वियोग विषय विस दागे । मंत्र सबीज सुनत जनु जागे ॥१॥

१. ये दोनों पद राजापुर की प्रति में नहीं हैं और न उनकी आवश्यकता ही मालूम पड़ती है ।

अर्थ : भरत के वचन सबको अच्छे लगे : मानो वे रामजी के स्नेहरूपी अमृत से पगे हुए थे । लोग वियोगरूपी विषम विष से जल रहे थे । वे मानो बीज सहित मन्त्र सुनते ही जाग उठे हो ।

व्याख्या : गुरुजी बोले, माता बोली, मन्त्री लोग बोले, पर प्रजा की ओर से उपेक्षा बुद्धि ही थी । पर भरत के वचन सबको प्रिय लगे । यहाँ राज्य के लिए प्रस्ताव हो रहा था । पर प्रजा मानो सो रही थी । कोउ नृप होउ हमहि का हानी वाली बात चरितार्थ हो रही थी । प्रजा रामजी के दर्शन के लिए आर्त थी । यथा - राम दरस हित नेम व्रत लगैं करन नर नारि । मनहुँ कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि । सासारिक सुख दुख की ओर से उपेक्षा थी । अतः राज्य कौन करेगा ? इस प्रश्न पर ध्यान नहीं देते थे । राज्य के देवता तो प्रजा वर्ग हैं । उनके पुजारी राजा हैं । रञ्जनात् राजा । प्रजा के हित के लिए ही राजा है । प्रजा अपना हित रामदर्शन में मानती थी । वह राम विरह की अग्नि से जल रही थी । गुरुजी माता तथा सचिव सभी का मन्त्र तो अच्छा था । परन्तु उन मन्त्रों में बीज नहीं था । इससे देवता जाग्रत होकर अभिमुख नहीं होते थे । भरतजी के मन्त्र में बीज था : प्रातकाल चलिहौ प्रभु पाही । जेहि सुनि विनय मोहि जन जानी । आवहि बहुरि राम रजधानी । इसलिए कहते हैं कि लोग सबीज मन्त्र सुनते ही मानो जाग पड़े । अमृत में बोरी हुई बात थी । इसलिए सबको प्रिय भी लगी ।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी । सकल सनेह विकल भये भारी ॥

भरतहि कहहि सराहि सराही । राम प्रेम मूरति तनु आही ॥२॥

अर्थ : माताएँ मन्त्री गुरु और नगर के स्त्री पुरुष स्नेह से विकल हो गये । सब लोग भरतजी की प्रशंसा करके कहने लगे कि यह शरीर तो राम के प्रेम की मूर्ति ही-है ।

व्याख्या : माता, मन्त्री, गुरुजी तथा प्रजा सब अपना अपना प्रेम दवाये बैठे थे । महाराज के वरदान के सच्चा करने के लिए तथा भरतजी के सङ्कोच से राज्य के प्रस्ताव में सहमत थे । उद्बोधक कारण के पाते ही दवा हुआ प्रेम उमड़ उठा । जिसके लिए सब कुछ हुआ वही राज्य अस्वीकार करके रामजी के पास चलने को कहता है । इससे बड़ा उद्बोधक कारण और क्या हो सकता है । सब उमड़े हुए प्रेम के वेग के संभालने में असमर्थ हैं । इसलिए विकल भये भारी कहते हैं ।

भक्तों का सिद्धान्त है : सब मानिअहि राम के नातें । भरत पर भी अधिक प्रेम राम के ही नाते था । यथा : भरत आगमनु सबल मनावहि । आवहुँ वेगि नयन फल पावहि । इतनी भक्ति से भरतजी ने पिता की क्रिया की : पितु हित भरत कीन्ह जस करनी । सो मुख लाख जाइ नहि वरनी । पर भरतजी की प्रशंसा प्रजा ने नहीं की । अब भरतजी की बार बार सराहना होती है कि भरतजी तो मानो रामजी के प्रेम की मूर्ति है । मानो राम प्रेम ने नराकार धारण कर रखा है । ये भी रामजी की भाँति विषयरस रखे हैं ।

तात भरत अस काहे न कहू । प्राण समान राम प्रिय अहू ॥
जो पाँवरु अपनी जड़ताई । तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई ॥३॥

अर्थ : तात भरत ! तुम ऐसा क्यों न कहोगे । तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो । जो नीच अपनी जड़ता से माता की कुटिलता का तुम पर आरोप करता है ।

व्याख्या : प्रजा कहती है कि भैया भरत ! ऐसी बात तुम्हीं बोल सकते हो । क्योंकि रामजी को प्राणसे प्यारे हो । यथा - रामहि बधु सोचु दिन राती । अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँति । भरत प्राण प्रिय पावहि राजू । भरत सरिस प्रिय को जग माँही । जिसको जितना भरोसा रामजी पर होता है वह रामजी को उतना ही प्रिय होता है । भरतजी को रामजी का बड़ा भारी भरोसा है । अतः रामजी को प्राण समान प्रिय है । कहते भी हैं . जद्यपि जनम कुमातु ते मैं सठ सदा सदोस । आपन जानि न त्यागिहैं मोह रघुवीर भरोस ।

भरतजी ने कहा है - परिहरि राम सीय जगमाही । कोउ नहि कहिह मोर मत नाही । ससय सोल प्रेम बस अहू । इस बात का उत्तर सब लोग दे रहे हैं । शपथ लेते हुए कहते हैं कि हम लोगो को तुम पर सन्देह नहीं है । जिसे तुम पर सन्देह हो वह नीच है । उसे जड़ता हो गयी है । अपनी जड़ता से माता की कुटिलता का आरोप तुम पर करता होगा ।

सो सठु कोटिक पुरुष समेता । बसहि कल्प सत नरक निकेता ॥
अहि अघ अवगुन नहि मनि गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥४॥

अर्थ - वह शठ करोड़ो पुरुषों के साथ सौ कल्प तक नरक में रहेगा । साँप के अवगुण और पाप का मणि नहीं ग्रहण करती । वह साँप के विष का हरण करती है और दुःख और दरिद्र को जला देती है ।

व्याख्या : ऐसा अनर्थकारी आरोप करनेवाला नरक में निवास करेगा । यह अपराध इतना भारी है कि इसके करने से उसके कोटि कोटि पूर्वजों को भी नरक होगा और सौ कल्प के लिए होगा । इस व्याज से प्रजा वर्ग स्वयं शपथ लेती है कि हम लोगो को तुम पर सन्देह नहीं है । पहिल कहा - सुकृत जाइ अस कह तुम्हारे । राम भरत वहुँ प्राण पियारे । भरत के शपथ लेने पर माता कौसल्या ने कहा : मत तुम्हार यह जो जग बहही । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही । अब सबाज मन्त्र सुनकर जगी हुई प्रजा कह रही है कि ऐसा कहनेवाला कोटि पुरुषों के साथ अनन्त काल तक नरक निवास करेगा ।

यद्यपि जन्म कुमातु ते : का प्रजा उत्तर देती है कि कैकेयी सर्प है इसमें सन्देह नहीं । यथा : मानहु सरोप भुअग भामिनि विषय भाँति निहारई । पर सर्प से ही मणि उत्पन्न होती है और मणि उसे बहुत प्यारी भी है । दिन रात का साथ है । पर उसका गुण सर्प से सर्वथा विपरीत है । उसमें पुण्य गुण है । जो सर्प कृत दोषो

को हरण करता है सो भरतजी आप मणि हैं। अवसि चलिअ वन राम पहुँ। यह निश्चय आप का विपहरण करनेवाला है और आवहिं बहुरि राम रजधानी। यह निश्चय आप का दुख दरिद्र का दाह करनेवाला है।

दो अवसि चलिअ वन रामु जहँ, भरत मन्नु भल कीन्ह।

सोक सिधु बूडत सर्वाहि, तुम्ह अवलम्बनु दीन्ह ॥१८४॥

अर्थ भरत ने बड़ी अच्छी सम्मति स्थिर की है। जहाँ वन में रामजी है वहाँ अवश्य चलना चाहिए। शोकरूपी समुद्र में डूबते हुए को तुमने सहारा दिया।

व्याख्या मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे। अत कहते हैं भरत मन्त्र भल कीन्ह। जब रामजी प्रजा को तमसा तट पर सोते छोड़कर चले गये तब कहा था मनहु वारिनिधि डूब जहाजू। भये विकल सब बनिक समाजू। अत इस समय कह रहे हैं सोक सिधु बूडत सर्वाहि तुम अवलम्बन दीन्ह। यहाँ बूडत कहकर यह दिखलाया कि डूबता हुआ पुरुष इस बात पर ध्यान नहीं दे सकता कि गद्दी पर कौन बैठे। लोग कहते हैं कि भरतजी। हम लोग तुम्हारे सहारे बच गये। समुद्र के बाहर तो सरकार के निकाले निकलेंगे। कौसल्याजी ने यही बात महाराज से कही थी नाथ समुझि मन करिअ विचारा। राम वियोग पयोधि अपारा। कर्णधार तुम अवध जहाजू। चढ्यौ सकल प्रिय पथिक समाजू। इत्यादि। सब को आशा थी कि महाराज जीते रहेंगे। तो कोई उपाय रामजी को लौटाने का होगा। सो महाराज ने धैर्य छोड़ दिया। बिना कर्णधार के जहाज डूब रहा था कि भरतजा ने पतवार हाथ में लिया। रामजी के पास दूसरे दिन चलने का दृढ़ निश्चय किया।

भा सब के मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ॥

चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रान प्रिय भे सवही के ॥१॥

अर्थ सबके मन में थोड़ा आनन्द न हुआ। जैसे मेघ का गर्जन सुनकर चातक और मोर को होता है। सवेरे चलने का अभ्रान्त निर्णय समझकर भरतजी सभी को प्राणप्रिय हो गये।

व्याख्या चातक को बड़ी प्यास होती है। यथा चातक रटत तृषा अति ओही। उसे घन के गर्जन से बड़ा आनन्द होता है। भार को घन के आगमन से ऐसा आनन्द होता है कि नाचने लगता है। अयोध्या में दो प्रकार के भक्त हैं। ज्ञानी और जिज्ञासु। यथा मनहु कोक कोको कमल दीन बिहीन तमारि। इन्ही दोनों प्रकार के भक्ता की यहाँ चातक और मोर से उपमा दी हुई है।

जब भरतजी ने रामजी के पास जाने के लिए सब से आज्ञा और आशीर्वाद माँगा तब सब लोग भरतजी की बड़ाई करने लगे और स्वयं चलने को तैयार हो गये। अत रामजी के पास वन चलने का स्पष्ट निर्णय हो गया। जब रामजी वन का चलने लगे तो अवध को अनाथ जानकर लोग विकल होकर

साथ लगे थे । रामजी तमसा तीर सबको सोता हुआ छोड़कर चले गये । उस समय ऐसी गति हुई मनहु वारिनिधि बूड जहाजू । भयउ विक्ल बड वनिक समाजू । सो रामजी के पास जाने का सुअवसर भरतजी के द्वारा मिल रहा है । अतः भरतजी सबको प्राण से प्यारे हो गये ।

मुनिहि वदि भरतहि सिरु नाई । चले सकल घर विदा कराई ॥

धन्य भरत जीवनु जग माही । शील स्नेह सराहत जाही ॥२॥

अर्थ मुनिजी की वन्दना करके भरतजी को सिर झुकाया और सब विदा माँगकर घर चले । जाते हुए भरतजी के शील और स्नेह की प्रशंसा करते जाते हैं कि ससार में भरतजी का जीवन धन्य है ।

व्याख्या काम पूरा हो गया । बात निर्णीत हो गयी । सबके मन में भरतजी के साथ ही प्रस्थान करने का विचार है । यात्रा के लिए साज सामान करने की जल्दी है । इसलिए मुनिजी द्वारा सभा समाप्ति की घोषणा का इन्तजार बिना किये सब लोग जाने के लिए छुट्टी माँग रहे हैं । इतनी जल्दी है कि छुट्टी माँगने के पहिले ही विदाई का प्रणाम होने लगा । मुनिजी ने बुलवाया था भरतजी के लिए । अतः दोनों व्यक्तियों से विदाई लेना प्राप्त था ।

भरतजी की सराहना सभा में सब लोगों ने किया था । पर इतने से सन्तोष नहीं है । घर जाते समय रास्ते में भरतजी के शील और स्नेह की प्रशंसा करते जाते हैं । शील यथा तुम पै पाँच मोर भल मानी । आयसु आसिष देहु सुबानी । इत्यादि । स्नेह यथा देखे बिनु रघुनाथपद जियकै जरनि न जाइ । इत्यादि ।

२१ पुरवासी सहित चित्रकूट प्रस्थान प्रसङ्ग

कहहि परसपर भा बड काजू । सकल चलइ कर साजहि साजू ॥

जेहि राखहि रहु घर रखवारी । सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥३॥

कोउ कह रहन कहिअ नहि काहू । कौन चहइ जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ एक दूसरे से कहने लगे कि हुआ तो बड़ा भारी काम और अब चलने का साज सामान बनाने लगे । जिसे घर की रखवारी के लिए आज्ञा देते हैं वह समझता है कि मेरा सिर काट लिया गया । कोई कोई यह समझने लगे कि किसी को रहने के लिए न कहो । कौन ससार में जीने का लाभ नहीं चाहता ।

व्याख्या लोग कहते हैं कि बड़ा काम हुआ । तपस्या बहुत शीघ्र सफल हुई । रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम व्रत कर रहे थे । सो उसका योग जुट गया । भरत के साथ में हम लोग भी चलेंगे । उनसे किसी ने न कहा कि तुम भी चलो और न वह किसी से पूछते हैं । सीधे सीधे चलने का सामान ठीक कर रहे हैं । ये लोग कोक कोकी हैं । अर्थात् गृहस्थ हैं । घर की भी चिन्ता है । अरक्षित घर को छोड़ जाना ठीक न समझा । अतः किसी को घर की रखवारी के लिए चलने

से रोकते हैं। उसे घर में रहने के ख्याल से प्राणदण्ड पाने सा कष्ट हो रहा है। जिस मसान को भूत भी छोड़ रहे हैं उस सूने श्मशान में कैसे रहे। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

उनका दुःख देखकर कोई कमल स्थानीय कहने लगे कि किसी को घर रहने के लिए न कहो। अपने ही भाँति दूसरे को भी समझो। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। जिस भाँति तुम जीवन लाभ चाहते हो उसी भाँति दूसरा भी चाहता है। जीवन लाभ तो सब छोड़कर रामजी के चरणों में चित्त लगाने में है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन मन लावा।

दो. जरउ सो संपत्ति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।

सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥१८५॥

अर्थ : वह सम्पत्ति वह गृहसुख और वे माता पिता भाई जल जायें जो रामजी के चरणों के सम्मुख होने में सहस्री सहायता न करें।

व्याख्या : मुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहीं सेवकाई। ये सब रामभक्ति के बाधक। कहहि संत तव पद अवराधक। अतः सम्पत्ति गृहसुख मित्र माता पिता और भाई यदि रामजी के सम्मुख होने में सहायक हों तो रहे नहीं तो जल जायें। भाव यह कि सम्पत्ति सदन सुख जले। जिसकी रक्षा के लिए मैं श्रीरामजी के दर्शन से वञ्चित किया जाता हूँ और सुहृद माता पिता भाई जले जो इनकी रखवारी के लिए मुझे रामदर्शन से वञ्चित कर रहे हैं। इनका तो कर्तव्य था कि रामजी के सम्मुख होने से सहस्र प्रकार से सहायता करते। क्योंकि ये तो हितचिन्तक हैं। इन्हे मेरा सच्चा स्वार्थ देखना चाहिए था। यथा : स्वार्थ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम वचन रामपद नेहा। ये सच्चा स्वार्थ नहीं देखते। कच्चे हितचिन्तक हैं। अतः इनसे कोई सम्बन्ध नहीं।

घर घर साजहि वाहन नाना। हरपु हृदय परभात पयाना ॥

भरत जाइ घर कीन्ह विचारु। नगर वाजि गज भवन भँडारु ॥१॥

अर्थ : घर घर अनेक प्रकार के वाहन लोग साज रहे हैं। सबके हृदय में आनन्द है कि सवेरे चलना है। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर छोड़े हाथी घर और कोष।

व्याख्या : अयोध्या नगर बड़ा सम्पत्तिशाली है। घर घर वाहन हैं। लोगों की उत्सुकता देखिये। प्रयाण तो प्रभात समय होगा और वाहन इसी समय साजे जा रहे हैं। अति मोद में ऐसा ही होता है। लोग सोचते हैं कि कौन जाने भरतजी उसी वेग से चिनकूट चलें जिस वेग से कैवय देश से अयोध्या आये हैं। यथा : चले समोर वेग हय हाँके। नाघत सरित्त सैल बन चाँके। अथवा वही अभिषेक के लिए चतुरङ्गिणी सेना लेकर चलें। तब तो हम लोगों को भी तैयारी के साथ सज्ज चलना चाहिए। अतः सब प्रकार की तैयारी चाहिए। प्रस्थान करने में केवल रात्रि

मात्र का व्यवधान है। इसलिए हर्षित हैं। भरतजी विचार करते हैं कि राजा इस समय कोई है नहीं। मन्त्री लोगो का साथ चलना आवश्यक है। नगर वाजि गज भवन और भण्डार कोष अरक्षित हो जायगा। नगर भी एक प्रकार से सूना हो जायगा। सभी चलने की तैयारी कर रहे हैं। नगर की रक्षा से ही सब की रक्षा है। संपत्ति सब रघुपति के आही। जौ बिनु जतन चलौ तजि ताही ॥

तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप शिरोमणि साँझ दोहाई ॥२॥

अर्थ : यह सब सम्पत्ति रघुपति की है। जो बिना रक्षा किये छोड़कर चल दूँ तो अन्त में मेरे लिए अच्छा न होगा। स्वामि दोहाई में पाप शिरोमणि हो जाऊँगा।

व्याख्या : उपर्युक्त सब सम्पत्ति सरकारी है। अपनी होती तो मैं भी कह देता कि जरी सो सम्पत्ति सदन सुख। इन्तजाम इस समय मेरे हाथ में है। मैं सम्पत्ति को अरक्षित कैसे छोड़ जाऊँ। जो भवितव्य है वही होगा : यह ठीक है पर भवितव्य के भरोसे पुरुषार्थ त्याग तो नीति नहीं है। यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः। अतः दोष के बचाने लिए यत्न करना प्राप्त है।

यदि अरक्षित छोड़कर चलूँ तो परिणाम में दूसरे की भलाई चाहे हो भी पर मेरी भलाई तो नहीं ही होगी। मैं प्रभु और पिता के वचन को मोहवश हटाकर साज समाज के साथ वन जा रहा हूँ। इतनी ही धृष्टता कौन कम है। इतने से ही मैं पाप से बच न सकूँगा और इस पर यदि रक्षा में भी असावधानता रही तो राम दोहाई मेरे पाप शिरोमणि होने में कोई कसर न रह जायगी। अतः रक्षा करके ही चलना चाहिए।

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषण कोटि देइ किन कोई ॥

अस विचारि सुचि सेवकु बोले। जे सपनेहुँ निजधर्म न डोले ॥३॥

अर्थ : सेवक वही है जो स्वामी का हित करे। भले ही लोग उसे करोड़ों दूषण क्यों न लगावें। ऐसा विचार करके पवित्र सेवको को बुलाया। जो स्वप्न में भी अपने धर्म से विचलित नहीं हुए थे।

व्याख्या : पर यहाँ रखें किसे ? जिनहि कहहि रहु घर रखवारी। सो जानै जनु गर्दन मारी। सब चलने को तैयार हैं। जिसे रहने को कहूँगा वही दूषण देगा। अथवा ससार कहेगा कि झूठ ही भरत राज्य से इनकार करते हैं, इन्हे तो राज्य की बड़ी ममता है। जैसा हम लोगो को घर वैसा ही इनको राज्य। हमें तो अपने घर की परवाह नहीं और ये राज्यरक्षा के लिए हमें छोड़ रहे हैं। भरतजी सोचते हैं कि इस प्रकार का दूषण लोग मुझे लगा सकते हैं। पर मुझे इन दूषणों की परवाह नहीं करनी चाहिए। मुझे सेवक धर्म सँभालना है। मैं स्वामी का हित करूँगा। भल ही लोग मुझे दोष लगावें।

यहाँ पर शुचि सेवक की परिभाषा स्वयं ग्रन्थकार दे देते हैं कि जो सेवक

अपने धर्म से स्वप्न में भी चलायमान नहीं हुए । अर्थात् मालिक के न रहने पर शुचिसेवक ही प्राण की बाजी लगाकर स्वामी के हित की रक्षा कर सक्ता है ।

कहि सब मरमु धरमु सब भाग्या । जो जेहि लायक सो तेहि राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे । राम मातु पहि भरतु सिधारे ॥४॥

अर्थ : सब मर्म कहकर धर्म का उपदेश दिया और जो जिस योग्य था उसे उस कार्य पर नियुक्त किया । सब प्रबन्ध करके रक्षको को नियुक्त किया । तब रामजी की माता के पास भरतजी गये ।

व्याख्या : राज्य के ऐसे मर्म होते हैं जो केवल राजा ही जानते हैं । प्रजा को उसका पता भी नहीं रहता । उसे तो यह भी नहीं मालूम होना चाहिए कि राजा किस भाँति शोषण कर रहा है । यथा 'हरखत बरखत सब लखै करपत लखै न कोय । तुलसी पुहुमी भाग से भूप भानु सम होय । उसके मर्म को थोड़ा बहुत कामदार जानते हैं । मन्त्री को बड़ी जानकारी होती है पर पूरी जानकारी राजा को ही होती है । अतः शुचि सेवको को बुलाकर आवश्यक सब मर्म बतलाया । जिसमें भरतजी की अनुपस्थिति में यथोचित कार्य करने में समर्थ हों । कैसी अवस्था आ पडने पर क्या करना धर्म होगा । ये सब बातें भी बतलायी । परिस्थिति में परिवर्तन होने से राजधर्म में परिवर्तन करना होता है । अब भरतजी की पण्डिताई कहते हैं कि जो जिस योग्य था उसे वैसा ही कार्य भार दिया 'अयोग्य पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ।

यह सब व्यवस्था करके तत्पश्चात् भरतजी ने यथास्थान रक्षको की नियुक्ति की । नगर के रक्षक अलग, बाजि गज के अलग, कोष के अलग रक्षक योद्धा नियुक्त किये । तब कौसल्याजी के पास गये महल की व्यवस्था के लिए ।

दो आरत जननी जानि सबु, भरत सनेह सुजान ।

कहेउ बनावन पालकी, सजन सुखासन जान ॥१८६॥

अर्थ : स्नेह के पारखी भरतजी ने सब माताओं को आर्त जानकर उनके लिए पालकी सजने तथा सुखपाल आदि सवारी तैयार करने के लिए कहा ।

व्याख्या : भरतजी ने जान लिया कि सब माताएँ दर्शन के लिए आर्त हैं । वैकेयी भी आर्त हैं । माताओं के लिए पालकी सजने तथा उनके सभी सहेलियों के लिए सुखासन, दासियों के लिए यान तैयार करने के लिए कहा । भरतजी प्रेम के बडे पारखी हैं । यद्यपि माताएँ अपने चलने के लिए अनुरोध नहीं कर रही हैं । फिर भी उनको आर्त देखकर उनके चलने के लिए सवारी की आज्ञा देकर उनकी आर्ति को तत्काल दूर करना चाहते हैं । माताएँ स्त्री धर्म को आगे किये हुए अपने को पुत्र के अधीन मानती हैं । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।

चक्र चक्रि जिमि पुर नर नारी । चलत प्रात उर आरत भारी ॥

जागत सब निसि भयउ विहाना । भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥१॥

अर्थ चक्रवा चकई की भाँति पुर नर नारी सवेरे गमन के लिए आर्त हो रहे थे । पूरी रात जागते ही सवेरा हुआ । भरतजी ने सुजान मन्त्रियो को बुलाया ।

व्याख्या चक्रवाक और चक्रवाकी में रात्रि को बिछोह रहता है । एक नदी के इस पार तो दूसरा नदी के उस पार रहता है । इस भाँति उनकी रात्रि विरहव्यथा में कटती है । वे चाहते हैं कि कब रात्रि बीते और हम प्रियतम के पास चलें । इसी भाँति पुर नर नारी को भी रामजी के पास चलने में रात्रि व्यवधानरूप है । अतः उसके बीतने के लिए बड़े आर्त हो रहे हैं । किसी समय अभिषेक के लिए ऐसी ही उत्सुकता थी । यथा सकल कहहि कब होइहि वाली ।

लालसा और उछाह के कारण उस रात में किसी को नीद नहीं आयी । यथा 'तेहि निसि नीद परी नहि काहू । राम दरस लालसा उछाहू । चित्त के चञ्चल होने से निद्रा नहीं आती । सवेरा होते ही भरतजी ने सुजान मन्त्रियो को बुलाया जिनके लिए इशारा काफी था । सुमन्त्रजी ने एकान्त वास ले रक्खा है । रामजी को वन पहुँचाने के बाद से उनका उल्लेख नहीं मिलता । रामजी जब वन से लौटे हैं तब सुमन्त्रजी भी दिखायी पड़ते हैं । अतः अन्य सुजान मन्त्रियो को बुलाया ।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू । वनहि देव मुनि रामहि राजू ॥

वेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे । तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥२॥

अर्थ • कहा कि तिलक का सामान सब ले चलो । वन में ही मुनिजी रामजी को राज्य देंगे । जल्दी चलो ऐसा सुनकर मन्त्रियो ने जोहार किया और तुरन्त घोड़े रथ और हाथी सजाये ।

व्याख्या भरतजी ने आज्ञा दी कि तिलक का सामान जो सरकार के लिए पिताजी का एकत्रित किया हुआ है उसे साथ ले चलने की व्यवस्था करो । यथा • आनहु सकल सुतीरथ पानी । औषध मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मगल नाना । चामर चमर वसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगनित भाँती । मनिगन मगल वस्तु अनेका । जो जग जोग भूप अभिषेका । कारण भी कह देते हैं कि पिताजी का सकल्प सत्य हो । इसी सामान से मुनिजी वन में ही रामजी को राज्य दें । रामजी ने माता से कहा था • पिता दीन्ह मोहि कानन राजू सो गुरुजी वन में ही राज्य देंगे ।

उन सब चीजों को लेकर जल्द चलो । यहाँ जोहार से भाव यह कि आज्ञा शिरोधार्य है । पहिला काम यह कि चतुरङ्गिनी सेना सजायी । मुनिजी ने अभिषेक के समय यह भी कहा था कि सजहु तुरग रथ नाग और सामान तो सब सजा सजाया ही रक्खा था । उठाने मात्र की देर थी । तुरङ्ग रथ नाग की अभिषेक योग्य तैयारी करनी थी । अतः पहिले यही किया ।

अरुंधती अरु अग्निनि समाऊ । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥

विप्र वृंद चढ़ि बाहन नाना । चले सकल तप तेज निधाना ॥३॥

अर्थ : पहिले वसिष्ठजी भगवती अरुन्धती और अग्निहोत्र के सब सामान सहित रथ पर चढ़कर चले । फिर तपस्या और तेज के निधान ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार के बाहनों पर चढ़कर चले ।

व्याख्या : गुरुजी ने पत्नी के सहित अग्निहोत्र का सामान सब साथ में लिया : अभिषेकाङ्गभूत हवनादि प्रक्रिया की सिद्धि के लिए । इस यात्रा में अधिक दिन लगेंगे । अतः पूरी तैयारी से चले । पहिला रथ वसिष्ठजी का चला : मुनिजी को रामजी के लौटने में पूरा सन्देह है । राज्य भरतजी का हो गया । वे चाहे रामजी को दे सकते हैं । परन्तु चौदह वर्ष की अवधि के परिचर्तन में स्वयं चक्रवर्तीजी का अधिकार रघुनाथजी ने नहीं माना । चक्रवर्तीजी ने तो कह दिया : रथ चढ़ाइ देखराइ वन फिर्यौ गये दिन चारि । परन्तु रामजी ने इस आज्ञा को प्रियप्रेम प्रमाद ही समझा ।

गुरुजी के पीछे ब्राह्मणों का समूह चला । ये लोग कोई रथ पर कोई घोड़े पर कोई हाथी पर चढ़कर चले । सिविका सुभग सुखासन याना । आदि महारानियों की सवारी में नियुक्त है । ये ब्राह्मण लोग बड़े तेजस्वी थे । तप तेज के निधान थे । यथा - विनु तप तेज कि कर विस्तारा । भावार्थ यह कि पूरे ब्राह्मण^१ थे तपः स्वाध्याय निरत थे ।

नगर लोग सब सजि सजि जाना । चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥

सिविका सुभग न जाहि बखानी । चढ़ि चढ़ि चलत भई सब रानी ॥४॥

अर्थ : नगर के सवारियों को सजकर चित्रकूट को चल पड़े । सुन्दर पालकियों में जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता सब रानियाँ चढ़कर चली ।

व्याख्या : इसके बाद नगर के लोग चले । स्त्री पुरुष दोनों हैं । इसलिए : सब सजि सजि जाना कहा । नगर खाली पड़ गया । चित्रकूट की ओर चले । यद्यपि यह स्थिर नहीं है कि सरकार कहाँ हैं । पर इतना निपादगाज से सुमन्त्रजी को पता चल गया है कि भरद्वाजजी के आश्रम से वाल्मीकिजी के आश्रम की ओर गये । वाल्मीकिजी का आश्रम चित्रकूट से अति सन्निकट है और चित्रकूट प्रस्यातस्थल है । अतः चित्रकूट की ओर प्रयाण करना कहते हैं ।

भरतजी की आज्ञा से सिविका साजी गयी है । अतः कहते हैं : न जाहि बखानी । माताएँ बेटे को राज्य देने चल रही हैं । अतः मङ्गल उपस्थित है । इसलिए

१. तप श्रुतश्च मोनिश्च होत्रद् ब्राह्मणवाङ्कम् । तप श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः । तप श्रुति और जन्म ये तीन ब्राह्मण कारक हैं । जो तप और श्रुति में हीन हैं । वह केवल जन्म से ब्राह्मण है ।

सरकार देर में चले थे। बीच बीच में लोगों के समझाने बुझाने में भी देर हुई। अतः पहिला निवास तमसा तीर हुआ। भरतजी बड़े सबेरे चले। परन्तु सेना साथ थी। अतः तमसा तीर रुक गये। बहुत लोग साथ हैं। अतः नदी तीर पर डेरा देते हैं। सरकार दूसरे दिन गङ्गा तीर पहुँचे। पर भरतजी चौथे दिन पहुँचे। इन्हे बीच में गोमती तीर पर भी विश्राम करना पड़ा।

दो. पय अहार फल असन एक, निशि भोजन एक लोग।

करत राम हित नेम व्रत, परिहरि भूपन भोग ॥१८८॥

अर्थ : कोई दूध ही पीते हैं। कोई फलाहार ही करते हैं। कोई रात्रि में ही भोजन करते हैं। सब लोग रामचन्द्र के लिए भूषण और भोग छोड़कर नियम और व्रत करते थे।

व्याख्या : राम दरस हित नेम व्रत लगे करन नर नारि। इसी का स्पष्टीकरण करते हैं। पय अहार और फलअशन व्रत हैं और निशि भोजन नियम है। यह नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए हो रहा है। लोगों ने शृङ्गार और भोग दोनों को त्याग दिया है। भोग रोग सम भूषण भारू। पय अहार फल अशन ज्ञानी भक्त कर रहे हैं। निशि भोजन करनेवाले जिज्ञासु भक्त गृहस्थ लोग हैं। गृहस्थों के लिए रात्रि का उपवास वैद्यक शास्त्र में मना है। राम के वियोग का विधायक जो पाप है उसके नाश के लिए अवधवासियों ने यह नियम और व्रत ले रखा है।

सई तीर बसि चले विहाने। शृगवेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निपादा। हृदयं विचार करै सविपादा ॥१॥

अर्थ : सई के किनारे बसकर सबेरे ही चले। शृगवेरपुर के पास पहुँचे। निपाद ने जब सब समाचार पाया तो विपाद के साथ मन में विचार करने लगा।

व्याख्या . तीसरे दिन सई नदी के किनारे बसे। सबेरे ही चल पडे। जो रास्ता सरकार ने एक दिन में तय किया था उसे तय करने में सेना साथ रहने से भरतजी को तीन दिन से अधिक लगे। शृङ्गवेरपुर को ही सिंगरौर कहते हैं। यथा . सो जामिनि सिंगरौर गँवाई। सब लोग सिंगरौर के निकट पहुँच गये। अभी सबेरा ही है।

जब सिंगरौर से कुछ दूर रहे तभी निपादराज को पता लग गया कि भरतजी चित्रकूट जा रहे हैं और बड़ी भारी चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हैं। जिस बात की विधि नहीं बैठती उसमें विचार होता ही है। अनिष्ट की शङ्का में सविपाद विचार होता है और इष्ट प्राप्ति की आशा में सानन्द विचार होता है। सेना के साथ भरतजी का आगमन सुनने से उसे अनिष्ट की आशङ्का हुई। इसलिए सविपाद विचार करने लगा।

कारन कवन भरतु वन जाँही । है कछु कपट भाव मन माँही ॥
जौ पै जियँ न होति कुटिलाई । तौ कत लीन्ह सग कटकाई ॥२॥

अर्थ क्या कारण है कि भरतजी वन जा रहे हैं । कुछ कपट भाव मन में है । यदि कुटिलाई मन में न होती तो साथ में सेना क्यों लिया ?

व्याख्या रामजी के वन जाने का कारण था । वे पिता के वचन से गये । भरत को तो राज्य मिला है । महाराज की क्रिया से छुट्टी पाते ही इन्हे राज्य सँभालना था । ये वन क्यों जा रहे हैं ? यद्यपि ऐसे अवसर पर भाई से मिलकर उनका सन्तोष करके ही राज्य करना शिष्टता है । पर यह बात ऊपरी है । देखीआ है । इनके मन में दूसरी बात है ।

यदि इनके मन में कपट न होता तो साधारण रीति से चले जाते । पर सेन सग चतुरंग न थोरी की क्या आवश्यकता पड़ी । निष्कारण कार्य होता नहीं । सेना का साथ लना ही कुटिलता का प्रमाण है । ठीक ऐसा ही लक्ष्मणजी ने सोचा । यथा जौ जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहात रथवाजि गजाली । यह निपादराज लक्ष्मणजी का शिष्य है । उन्हीं की भाँति इसने भी सोचा । भरत के हृद्गत भाव तक गति नहीं हुई । यह न सोच सका कि भरत वन में ही राज्य देने जा रहे हैं ।

जानहि सानुज रामहि मारी । करौ अकटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी । तव कलकु अव जीवन हानी ॥३॥

अर्थ समझते हैं कि भाई के सहित रामजी को मारकर सुखी होकर निष्कण्टक राज्य भोगेंगे । भरत ने राजनीति को चित्त में स्थान नहीं दिया । तब तो कलङ्क ही था । अब प्राणों की हानि होगी ।

व्याख्या चौदह वर्ष के वनवास से इनका पेट न भरा । समझा कि चौदह वर्ष के बाद ही सही पर रामचन्द्र भारी कण्टक हैं । अभी तो पिता के वचन से बँधे हुए हैं । नाभिषेका न सस्कार सिंहस्य क्रियते मृगै । विक्रमाजितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता । विक्रम करके भी तुम राज्य न लेना । ऐसा वचन तो पिता का है नहीं । अतः कण्टकोद्धार के लिए चौदह वर्ष बाद का खटका न बना रहे राम लक्ष्मण को मारकर सुखी होकर राज्य करना चाहते हैं । लक्ष्मण और राम का अभिन्न हृदय है । अतः लक्ष्मण का भी वध चाहते हैं ।

दण्डनीति अन्तिम उपाय है । पहिल तो राजा को साम, दान, और भेद से काम लेना चाहिए । यथा साम दान अरु दड विभेदा । नृप उर वसहि नाय कह वेदा । नीति धर्म के चरन सोहाये । सो पहिल दण्डनीति से ही काम लते जान पड़ते हैं । यह राजनीति नहीं है । राज करने में तो यशोहानि थी । पर अब अकण्टक राज करने के उद्योग में जीवन हानि होगी ।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहिं समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरत अस करही । नहिं विषवेलिअमिअ फल फरही ॥४॥

अर्थ जितने योद्धा देवता और असुर हैं वे सब जुट जायें । फिर भी रामजी को नहीं जीत सकते । भरतजी के ऐसा करने में कौन आश्चर्य है ? विषकी लता में अमृत फल नहीं फलता ।

व्याख्या कारण यह है कि रामजी अजेय हैं । यथा जीति को सकै अजय रघुराई । सुरासुर में सभी योद्धा नहीं होते । सो यदि सुरासुरों में से छांटकर सब योद्धा इकट्ठे हो जायें फिर भी समर में अकेले रामजी को नहीं जीत सकते । फिर यह मानुषी सेना उनका क्या कर सकती है । उसके लिए अकेले रामजी ही यथेष्ट हैं कि पुन लक्ष्मणजी भी साथ है । इनके जीतने की इच्छा करना ही मृत्यु सूचक है ।

भरतजी यदि रामजी से संग्राम के लिए प्रस्तुत हो तो इसमें क्या आश्चर्य है । निपादराज कहते हैं कि जब माता ने १४ वर्ष के लिए वन दिया तब बेटा यदि प्राण लेना चाहे तो क्या आश्चर्य है । कैकेयी रूपी विषवेलि के ही फल तो भरतजी हैं । ये अमृतफल कैसे हो जावेंगे ? विचार करके निपादराज इस निर्णय पर आगये ।

दो अस विचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु ।

हथवासहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटारोहु ॥१८९॥

अर्थ ऐसा विचारकर गुह ने अपने जाति बिरादरी से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ । हाथ लगाओ और नावों को डुबा दो और घाट को रोक लो ।

व्याख्या हृदय विचार करै से उपक्रम और अस विचरि से उपसहार है । निपादराज का नाम गुह था । इन्हे सेना नहीं थी । इनके जाति भाई ही इनकी सेना थे । उनसे कहा कि तुम लोग होशियार हो जाओ । भरत से खतरा है । सब नावों को उठा उठाकर नदी में डुबा दो । जिसमें हम लोगों का अनादर करके गङ्गा पार न होने पावें । तब घाट रोककर डूँट जाओ । हम लोगों के मारे जाने पर भी हमारी नावों से काम न ल सके ।

होइ सँजोइल रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥

सनमुख लोह भरत सन लेऊ । जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥१॥

अर्थ तैयार होकर घाट को रोक लो और सब लोग मरने का साज साजो । सनमुख भरत से लोहा मैं लूँगा और जीते जी गङ्गा न उतरने दूँगा ।

व्याख्या भरतजी का सामना करना है । अतः सब लोग तैयार हो जाओ । पार उतरने की जो जगह है वही रोको । यदि कहो कि इतनी बड़ी सेना को कैसे

रोकेंगे ? इसपर निपादराज कहते हैं कि रोक न सकेंगे तो मर तो सकेंगे । इसलिए मरने का सामान साजो । ठाटहु कहने का भाव है कि वीरगति प्राप्ति के लिए उत्साह चाहिए । गङ्गा तुलसी मुख में लेकर तैयार हो जाओ तुम लोग सेना को रोको ।

भरतजी के सम्मुख लोहा मैं लूंगा । युद्धसिद्धिहि चञ्चला । अतः यह निश्चय नहीं कि मैं ही हारूँगा । पर सम्भावना ऐसी ही है । अतः यह निश्चय है कि जीते जी गङ्गा उतरने न दूँगा । मुझे मारकर तब पार उतरें । यहाँ आकर सेना ठहर जावेगी । नाव सब डूबी रहेगी । अतः पार उतरने की व्यवस्था उन्हें करनी होगी । उसी समय सग्राम का अवसर प्राप्त होगा । जो व्यवस्था करें उसे विगाडो । उतरते समय उन पर प्रहार करो ।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा । राम काजु छनभंगु सरीरा ॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू । बडे भाग असि पाइअ मीचू ॥२॥

अर्थ : युद्ध में वीरगति तिस पर गङ्गा का किनारा तिस पर भी रामजी के कार्य के लिए और यह शरीर क्षण में नष्ट हो जानेवाला है । भरत उनके भाई हैं, राजा हैं, मैं नीच सेवक हूँ, बड़े भाग्य से ऐसी मौत मिलती है ।

व्याख्या . यदि कहिये कि मर जाने से लाभ क्या ? तो इस पर निपादराज कहते हैं कि यदि शरीर चिरस्थायी होता तो यह प्रश्न बन सकता था । यह शरीर तो क्षणभङ्गुर है । कब छूट जायगा इसका क्या ठिकाना । पर छूटना निश्चित है । परन्तु ऐसा अवसर शरीर छोड़ने का क्या फिर मिल सकेगा ? द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ । परिव्राट् योगयुक्तस्तु रणे चाभिमुखे हत । समर मरण से उत्तम काल कहा । सुरसरि तीर से उत्तम देश कहा । यथा : रेवातीरे तपः कुर्यात् मरण जान्हीतटे । भाव यह कि अनित्य वस्तु को नित्य की प्राप्ति के लिए त्यागना बड़ा भारी लाभ है । यह ऐसे ही किसी को बड़े भाग्य से मिलता है । यथा : मरे बहुत मरिहैं बहुत आज कालि के बीच । तुलसी काहू नहि लही गीधराज की मीच : राजा का सग्राम साधारण पुरुषो से नहीं होता । पर यहाँ ऐसा ही सुयोग आ पड़ा है । उत्तम के हाथ से मरना प्रशस्त है । भरतजी रामजी के भाई और नराणा च नराधिप हैं । इनसे उत्तम कौन होगा ?

स्वामि काज करिहुँ रन रारी । जस धवलिहौ भुवन दस चारी ॥
तजौ प्रान रघुनाथ निहोरे । दूहैं हाथ मुद मोदक मोरे ॥३॥

अर्थ : मैं स्वामी के कार्य के लिए रण में युद्ध करूँगा और चौदहो भुवन को अपने यश से सफेद कर दूँगा । रघुनाथ के लिए प्राण त्याग करूँगा । मेरे दोनों हाथ में आनन्द के लड्डू हैं ।

व्याख्या : मेरे स्वामी तो रामजी हैं । सब कुछ उनको अर्पण हो चुका है । यथा : देव धरनि धन धाम तुम्हारा । मैं सेवक समेत परिवारा । अतः भरतजी भले साम्राज्य के स्वामी हो पर मेरे स्वामी तो रघुनाथजी ही हैं । उनके लिए

सग्राम मे भरतजी के हाथ से शस्त्रपूत होकर गङ्गाजी के तोर वीरगति को प्राप्त हूँगा । मेरे यश से चौदह भुवन भर उठेगा । यश का कवियो ने श्वेत रङ्ग माना है । इसलिए निषादराज कहते हैं कि चौदहो भुवन मेरे यश से सफेद हो जायेंगे ।

निषादराज मरण का निश्चय किये हुए युद्ध को प्रस्तुत हैं । उनका इतना ही मात्र प्रयोजन है कि जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ । भरत को समर मे जीतने को तो आशा भी नहीं की जा सकती । अपने लाभ के लिए लड़ने को तैयार हैं । लाभ यह है कि दोनो हाथ मे आनन्द के मोदक है । लोक परलोक दोनो बन जायगा । जस धवलहौ भुवन दसचारी से लोक बनेगा और रघुनाथ निहोरे प्राण त्याग से परलोक बन जायगा । आज भी यह चाल है कि सौभाग्यवती स्त्री के मरने मे उसके दोनो हाथ मे लड्डू रखकर ही श्मशान ले जाते हैं । दोनो हाथ के लड्डू लोक परलोक दोनो के बन जाने के प्रतीक है ।

साधु समाज न जाकर लेखा । राम भगत महँ जासु न रेखा ॥

जाय जिअत जग सो महि भारू । जननी जीवन बिटप कुठारू ॥४॥

अर्थ साधु समाज मे जिसकी गिनती न हो और रामजी के भक्तो मे जिसकी रेखा न हो वह ससार मे व्यर्थ जीता है । वह पृथ्वी का बोझ है । माता के यौवन रूपी वृक्ष के छेदन के लिए वह कुठार रूप हुआ ।

व्याख्या परहित लागि तजहिं जे देही । सतत सत प्रससहि तेही । अत परहित के लिए शरीर त्याग से सत समाज मे गणना होगी और रघुनाथजी के निहोरे वीरगति प्राप्त होने से रामभक्तो मे मेरी रेखा होगी । रेखा से भाव यह कि मेरे भक्त होने का निश्चय हो जायगा । यथा रेख खँचाइ कहौ बल भाखी । सब भक्तो को रामजी के निहोरे प्राण त्याग करने का अवसर नहीं मिलता । यथा धन्य जटायू सम कोउ नाही । राम काज कारन तन त्यागी । हरिपुर गयउ परम बड भागी ।

दो बिगत बिषाद निषादपति, सबहि बढाइ उछाहु ।

सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु ॥१९०॥

अर्थ बिषाद से रहित होकर निषादपति ने सबका उत्साह बढाकर रामजी का स्मरण करके तुरन्त तरकस धनुष और कवच माँगा ।

व्याख्या जब तक विचार करता था तब तक सविषाद था । अब निश्चय पर पहुँच गया । अत कहते हैं कि निषादपति बिषाद से रहित हुए । इतना ही नहीं अपने जाति भाइया का उत्साह भी अपने मरण को मङ्गलमय वर्णन करके बढाया और उस उत्साह को कार्य मे परिणत करने के लिए पहिले स्वयं युद्ध के लिए तैयार होने लगा । इष्टदेव रामजी का स्मरण करके तरकस धनुष और कवच को जल्दी से लाने के लिए आज्ञा दी । जल्दी इसलिए है कि भरतजी की सेना आगे बढ़ती चली आती है ।

वेगहु भाइहु सजहु' सँजोऊ । सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥

भलेहि नाथ सब कहहि सहरपा । एकहि एक बढ़ावइ करपा ॥१॥

अर्थ : भाइयो ! जल्दी करो सब तैयारी कर लो । मेरी आज्ञा को सुनकर कोई साहस न छोड़ो । सब हर्ष के साथ वहने लगे कि : नाथ ! बहुत अच्छा और वे आपस में एक दूसरे से चढ़ा ऊपरी करने लगे ।

व्याख्या : निषादराज बोले कि मैं तैयार हो रहा हूँ । तुम लोग जल्दी से तैयार हो जाओ । तुम लोग भाई हो । होहि कुठाहर बधु सहाए । तैयारी में कसर न रहे । इसलिए सजहु कह रहे हैं । मैंने मरने का ठाट ठटने की आज्ञा दे दी है । कादर मरने से डरते हैं । वे ऐसी आज्ञा सुनकर साहस छोड़ देते हैं । तुम लोग वीर हो । तुम में से कोई भी कादर की भाँति आचरण न करे ।

निषादराज ने सबका उछाह बढ़ाया था । इसलिए सभी हर्ष के साथ आज्ञा को शिरोधार्य कर रहे हैं । सब गुह को राजा मानते हैं । अतः नाथ सम्बोधन दे रहे हैं । एक दूसरे से अमर्ष बढ़ाते हैं । जिसमें युद्ध करने में कसर न लगावें । आपस में चढ़ा ऊपरी है कि देखें कौन कैसा पुरपार्थ करता है ।

चले निषाद जोहारि जोहारी । सूर सकल रन रूचै रारी ॥

सुमिरि राम पद पंकज पनही । भायी वाँधि चढ़ाइन्हि धनही ॥२॥

अर्थ : निषाद जोहारकर करके चले । सब शूर है । युद्धप्रिय हैं । रामजी की जूतियों का स्मरण करके तरकस बाँधा और धनुहियों को चढ़ाया ।

व्याख्या : रजायसु हुई : वेगहु भाइहु । अतः जोहारि जोहारि चले । क्योंकि सबके सब शूर हैं । रन रूचै रारी । भावार्थ यह कि सग्राम में झगड़ा रुचता है । घर में नहीं । निषाद की जाति की जाति ही वीर थी ।

यहाँ पर कवि ग्राम्य शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं । ये सब सरकारी जूतियों के उपासक हैं । अतः इष्ट स्मरणपूर्वक भायी बाँधा । भायी तरकस को कहते हैं । मालिक रामजी का स्मरण करता है । उसके सेवक रामजी के जूते का स्मरण करते हैं । दासानुदास हैं । तत्पश्चात् धनुही को चढ़ाया । धनुही छोटे धनुष को कहते हैं ।

अंगरी पहिरी कूँड सिर घरही । फरसा बाँस सेल सम करही ॥

एक कुसल अति ओढ़न खाँड़ि । कूदहि गगन मनहु छिति छाँड़ि ॥३॥

अर्थ : कवच पहनकर सिर पर कटोरा बाँधते हैं और परशु बाँस तथा वरछियों को सुधारते हैं । कोई कोई तलवार ढाल के बड़े पण्डित हैं । वे मानो पृथ्वी छोड़कर आकाश में कूद रहे हैं ।

व्याख्या : अंगरी लोहे की अंगरखी अङ्गरक्षा के लिए पहन रहे हैं । सिर पर टोप के स्थान पर कटोरा आदि वस्तुन बाँध रहे हैं । भायी और धनुष बाँधा था ।

दूर से लड़ाई के लिए फरसा, बाँस और बरछा निकट से लड़ने के लिए सीधा कर रहे हैं। ये दूसरे प्रकार के वीर हैं।

तीसरे प्रकार के तलवार बहादुर वीर हैं। बड़े पैतरेबाज हैं। ओड़न ढाल स्थानीय वस्तु को कहते हैं। उनका पैतरा अभी से आरम्भ हो गया। ऐसे उछल रहे हैं मानो धरती पर उनका पैर ही नहीं पड़ रहा है।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई ॥

देखि सुभट सब लायक जानें। लै लै नाम सकल सनमाने ॥४॥

अर्थ • अपना अपना साज समाज तैयार करके उन्होंने अपने स्वामी गुह को जाकर प्रणाम किया। देखकर सुभटो को सब योग्य जाना और नाम ले लेकर सबका सम्मान किया।

व्याख्या • तीनों प्रकार के वीरो ने अपना अपना साज समाज तैयार करके अपने मालिक गुह को जाकर प्रणाम किया। यही से सब तैयारी के लिए चले थे। यथा • चले निपाद जोहारि जोहागे। और तैयार होकर यही लौटे और निपादराज का फिर से जोहार किया कि हम लोग तैयार होकर आगये।

गुह राउत ने जब सुभटो को देखा तो बड़ा भरोसा हुआ कि ये सब लायक हैं। भली प्रकार सामना करने में समर्थ हैं। गुह राउत सबका नाम जानते हैं। कोई सेना तो है नहीं जो सबका नाम याद न रहे। यह तो टोली है। अपने ही भाई बन्धु सब हैं। अतः एक एक का नाम लेकर सम्मान कर रहे हैं। किसी से कहते हैं कि तुम्हारा बड़ा भरोसा मुझे है। किसी से कहते हैं कि तुम मेरी भुजा हो।

दो. भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।

सुनि सरोष बोले सुभट, वीरु अधीरु न होहि ॥१९१॥

अर्थ : भाइयो! कुछ भी कसर न उठा रखना। आज मेरा बड़ा भारी काम आ पड़ा है। सुनकर सब सुभट सरोष होकर बोले कि वीर धैर्य नहीं छोड़ते।

व्याख्या : निपादराज कहते हैं कि तुम सब भाई हो। नौकर नहीं हो। अतः लड़ने में कोई कसर न पड़ने पावे। बड़ा काम मेरा तो आज ही पड़ा है। स्वामी का कार्य होने से मेरा बड़ा भारी काम है। दूसरी बात यह कि आज बड़ा भारी लाभ मेरे सामने है जो कि तुम्हारी सहायता से ही सिद्ध हो सकता है और वह यह है, जस धवलहि भुवन दस चारो। मेरे यश से चौदह भुवन प्रकाशित होनेवाला है और कीर्तियस्य स जीवति। इतना सुनते ही वीरो को जोश आगया। कहने लगे कि वह वीर ही नहीं जो समय पर अधीर हो जाय। यह बात धनुर्धरो ने कही।

राम प्रताप नाथ बल तोरें। करहि कटकु विनु भट विनु घोरें ॥

जीवत पाउ न पाछे धरही। रुंड मुंडमय मेदिनि करही ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! रामजी के प्रताप से और आपके बल से सेना को बिना वीर और बिना घोड़े का कर देंगे । जीते जी पीछे पैर न रक्खेंगे । पृथ्वी को रुण्ड मुण्ड से पाट देंगे ।

व्याख्या : तब फरसा बाँस सेल सम करनेवाले बोले कि प्रताप रामजी का और बल आपका है, मेरा कुछ नहीं । सो उस प्रताप और बल की सहायता से सेना को बिना भट का और बिना घोड़े का कर दूँगा । भाव यह कि ऐसा चोट करूँगा यदि सवार बचे तो घोड़ा न बचेगा और यदि घोड़ा बचे तो सवार न बचेगा । मेरी चोट खाली जानेवाली नहीं है । भरत की सेना में यह विशेषता है कि उसमें सवार हैं । हमलोगों के पास घोड़े नहीं हैं । इसलिए हम लोग ऐसा युद्ध करेंगे कि घोड़ा बचे तो सवार नहीं और सवार बचा तो घोड़ा नहीं ।

तब ओडन खाँडे में कुशल तलवार बहादुर बोले कि हमलोग मरने पर चाहे जिस बल गिरें पर जीते जी पैर पीछे न रक्खेंगे । जिसमें कदराई का प्रश्न ही न उठने पावे और यो ही न मर जायेंगे । जिसे एक हाथ मारेंगे वे दो टुकड़े हो जायेंगे । इस भाँति पृथ्वी को रुण्ड मुण्डमय बना देंगे । मुण्ड सिर को और रुण्ड घड़ को कहते हैं ।

दीख निषादनाथ भल टोलू । कहेउ वजाउ जुझाऊ ढोलू ॥

एतना कहत छोक भइ बाएँ । कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ ॥२॥

अर्थ : निषादनाथ ने देखा कि टोली तो अच्छी है । बोले कि जुझाऊ ढोल वजने दो इतना कहते ही बायी ओर छोक हुई । शकुन विचार करनेवालों ने कहा कि रणक्षेत्र सुन्दर होगा अपने पक्ष की जीत होगी ।

व्याख्या : लोगों की बातें सुनकर निषादनाथ ने सुभटों की ओर देखा और मन में कहा कि टोली तो अच्छी है । वीरों के उत्साह वर्धन के लिए कहा कि जुझाऊ ढोल वजने दो । जुझाऊ वाजा तो है नहीं कि मारुताग बज सके । अतः जुझाऊ ढोल वजाने की आज्ञा दी । इससे भरतजी की सेना को भी सूचना देना है कि निषाद लोग युद्ध के लिए प्रस्तुत हैं । निषादराज के पास छोटे परिमाण में सब कुछ था ।

निषादराज के आज्ञा देते ही बायें ओर छोक हुई । प्राचीन काल में सेना के साथ सगुन विचारनेवाले भी रहते थे । उन्होंने कहा विजय होगी पर ये सब नौजवान बिना विचारे ही बोल दिया कि जिसमें टोली का जी न टूटे । यात्रा में छोक अच्छी नहीं मानी जाती । अथवा उन सबों ने यह अर्थ लगाया कि जो हम लोगों के बाएँ हैं, उन्हें विघ्न होगा ।

बूढ़ एक कह सगुन विचारी । भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥

रामहि भरतु मनावन जाँही । सगुन कहै अस विग्रहु नाँही ॥३॥

अर्थ : एक बूढ़ ने सगुन विचारकर कहा कि भरतजी से मिलिये क्षणों की

बात नहीं है। भरत रामजी को मनाने जाते हैं। सगुन कह रहा है कि झगड़ा नहीं है।

व्याख्या : नौजवान सगुनियों ने विचार नहीं किया। यथा : कह्यो सगुनिअन्ह खेत सोहाए। अवसरोपयुक्त बात बोल उठे। पर उनमें एक बूढ़ा था उसने सगुन पर विचार किया कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा देते ही छोड़ दूँ तो इसका तात्पर्य यह कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा न दो। अतएव कहता है कि सगुन कह रहा है कि झगड़े की बात नहीं है आप भरतजी से मिल लीजिये।

जब सगुन कहता है कि झगड़ा नहीं है तब निश्चय है कि भरत लड़ने नहीं जा रहे हैं। क्योंकि सगुन जुझाऊ बाजा बन्द करने को कह रहा है। यदि लड़ने नहीं जा रहे हैं तो सिवा मनाने के लिए जाने के दूसरी बात हो क्या सकती है? सेना मन्त्री सब अगवानी के लिए जा रहे हैं।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहि विमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु विनु बूझे। वड़ि हित हानि जानि विनु जूझे ॥४॥

अर्थ : यह बात सुनकर निपादराज गुह ने कहा कि बूढ़ा अच्छी बात कह रहा है। बिना विचारे काम करके विमूढ़ पछताते हैं। भरत का स्वभाव और शील बिना समझे अनजान में लड़ाई कर बैठने में बहुत बड़े कल्याण की हानि होगी।

व्याख्या : इस समय बड़ा भारी अनर्थ हो चुका था। सगुन के सावधान कर देने से बड़ा भारी अकल्याण रुक गया। सगुन पर ध्यान न देना अभिमान सूचक है। यथा : अति गर्व गनै न सगुन असगुन सर्वहि आयुध हाथ ते। निपादराज विचार शील थे। बूढ़े की राय पर विचार किया कि मैने तो जूझने में ही कल्याण देखा था पर यदि भरत सचमुच मनाने जा रहे हों तो उनके साथ जूझना रामजी का सद्य विरोध हुआ। रामजी के लिए जूझने में जितना लाभ था उतनी ही हानि राम विरोधी होकर जूझने में है। लोक परलोक दोनों बिगड़ेगा। संसार में अपक्रांति होगी कि बड़ा बेवकूफ था। बिना समझे ही लड़ गया। इससे यह लोक बिगड़ेगा और परलोक भागवत के विरोध से नष्ट हो जायगा।

दो. गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।

बूझि मित्र अरि मध्य गति, तस तव करिहुउँ आइ ॥१९२॥

अर्थ : सब वीर लोग इकट्ठे होकर घाट पर कब्जा किये रहो। मैं मिलकर भेद लेने जाता हूँ। शत्रु मित्र और उदासीन भाव का पता लगाकर फिर जैसा उचित होगा वैसा करूँगा।

व्याख्या : निपादराज अपने वीरों को आज्ञा दे रहे हैं कि सब लोग सिमिट-कर घाट पर कब्जा जमाये रहो बाजा बजते क्या देर लगेगी। मैं जाकर भरतजी से मिलकर पता लगाये लेता हूँ कि उनका भाव क्या है? रामजी का विरोध इनके

हृदय मे है कि मित्र भाव है कि उपेक्षा है । यदि मित्र होंगे तो सेवा करूँगा । विरोधी होंगे तो युद्ध करूँगा । यदि उनकी उपेक्षा दृष्टि होंगे तो मैं भी उदासीन रहूँगा ।

लवव सनेहु सुभाय सुहाएँ । वैर प्रीति नहि दुरइ दुराएँ ॥

अस कहि भेंट सजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ॥१॥

अर्थ : सुन्दर स्वभाव से प्रेम पहिचाना जायगा । वैर और प्रीति छिपाने से नहीं छिपती । इतना कहकर भेंट की तैयारी करने लगे । कन्द मूल फल पक्षी और मृग मँगाये ।

व्याख्या : मित्र अरि और मध्यगति के समझने में कोई कठिनता नहीं है । सुन्दर स्वभाव से ही प्रेम की परख हो जाती है । प्रेमी का ही सुन्दर स्वभाव सम्भव है । फिर वैर और प्रीति ऐसे प्रबल भाव हैं जो यत्नपूर्वक छिपाने से भी नहीं छिपते । जो स्वभाव और चेष्टा से मनोगत भाव नहीं लख सकता वह भेंट के पसन्द से क्या लखेगा ? रिक्तपाणिर्न पश्येत राजान भिषज गुरुम् । अतः भेंट की व्यवस्था करने लगे ।

इंधन पात किरात मितार्ई के अनुसार भेंट की तैयारी होने लगी । यद्यपि मङ्गल कार्य में जलभाजन में रखकर ही मछलियाँ लायी जाती हैं और केलि मृग पक्षी भी भेंट में जाते हैं पर यहाँ ऐसा नहीं मालूम होता । सेना में सब प्रकार के लोग होते हैं । राजसिक और तामसिक वृत्ति का तो यह आहार ही है । अतः उनके लिए भी शास्त्र में देव पितृ अर्चन पूर्वक ही खाने का विधान है । निपादराज सात्त्विकों के सत्कार के लिए कन्द मूल फल, राजसिक के लिए खग मृग इकट्ठा कर रहे हैं ।

मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥

मिलन साजु सजि मिलन सिधाए । मंगल मूल सगुन सुभ पाए ॥२॥

अर्थ : कहाँर लोग पुरानी मोटी मोटी पहिना मछलियों के भार भरकर लाये । मिलने का सामान सजकर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन मिले ।

व्याख्या : शास्त्रों में मछली खाने की बड़ी निन्दा है । मत्स्याद सर्वमांसादः । जिसने मछली खायी वह सब मांस खा चुका । अतः मछली घोर तामसिकों का आहार है । अतः उनके लिए मछलियाँ आयी । यद्यपि कहाँर निपाद की अपेक्षा उच्च जाति के हैं पर बहेंगी ढोना उन्हीं का काम है । यथा : कोटिन्ह काँवर चले कहाँरा ।

निपादराज ने मिलने का साज सजा अर्थात् तर्कस धनुष और सन्नाह कवच उतार दिया । और स्वजात्यनुकूल वस्त्र भूपादि से सुसज्जित होकर तथा उपहारादि लेकर मिलने गया । लडने की तैयारी के समय छोक वायें हुई । पर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन हुए । दधि दुर्वा रोचन फल फूला । नव तुलसी दल मंगल मूला । ये ही मङ्गलमूल शकुन हैं । इन्हीं का मिलना मङ्गलमूल शुभ शकुनों का मिलना है ।

देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दड प्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥३॥

अर्थ : दूर से ही मुनिराज को देखकर अपना नाम कहकर दण्डवत् किया । राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और मुनिराज ने भरत को समझाकर कहा ।

व्याख्या : पहिले ही मुनिराज के दर्शन हुए । यथा : अहंधती अह अग्नि समाजू । रथ चढि चलत भये मुनिराजू । सो निपादराज ने उनसे दूर से ही साष्टाङ्ग प्रणाम किया । जिसमे छाया न छू जाय । यथा : जासु छाह छुइ लेइय सीचा । अपना नाम परिचय के लिए कहा । अर्थात् नामग्रहण पूर्वक प्रणाम किया ।

गुरुजी ने नाम सुना था कि निपादराज रामजी का प्रेमी है और सरकार भी उस पर प्रेम करते हैं । अतः मुनिराज ने आशीर्वाद दिया । मुनिराज के रथ के बाद ही भरतजी का रथ है । माताजी की आज्ञा से जब रथ पर सवार हुए तो रथ अन्य रथियों के पीछे नहीं रह सकता । सो गुरुजी ने कहा :

यह निपाद पति सुहृद अति, रघुपति सखा मुजान ।

निरखि सेन सक्ति सजग, कीजिय याको मान ॥

राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ॥
गाउँ जाति गुह नाम सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ॥४॥

अर्थ : यह सुनते ही कि यह रामजी का सखा है । भरतजी रथ से उतर पड़े और अनुराग से उमगते हुए उसकी ओर चले । गुह ने गाँव जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार किया ।

व्याख्या : राम सखा से भाव यह कि सरकार की बराबरी का दर्जा है । अतः भरतजी ने उसके आदर के लिए रथ का त्याग किया और पैदल चल पड़े । क्योंकि निपादराज दूर पर थे । यथा : देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दड प्रनामू । चलते समय हृदय में अनुराग उमगा पड़ता था ।

अपनी ओर भरतजी को बढ़ते देखकर निपादराज ने पहिले ही अपने निवासस्थान का परिचय दिया । जिसमे समझ जाय कि यह निपादो के गाँव का रहनेवाला निपाद है । अस्पृश्य है । फिर भी भरतजी नहीं रुके । तब स्पष्ट रूप से जाति की घोषणा की । तत्पश्चात् नाम भी सुना दिया । उसे भ्रम हुआ कि मुनीशजी से जो मैंने कहा है उसे शायद भरतजी नहीं सुन सके । इसलिए उसने इस बार जोर से कह सुनाया । पर भरतजी आगे बढ़ते ही गये । तब पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार करता है । जिसमे स्पष्ट हो जाय कि यह अछूत है । मुनिजी को दण्डवत् किया । भरतजी को जोहार बरता है । राजा लोगो को दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया जाता है । जिसे जोहार कहते हैं ।

दो करत दडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ॥

मनहु लपन सन भेट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ॥१९३॥

अर्थ उसे दण्डवत् करते देखकर भरतजी ने छाती से लगा लिया। मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई है। हृदय में प्रेम नहीं समाता था।

व्याख्या प्रेम के उमङ्ग का अवसान तो हृदय लगाने पर ही होता है। भरतजी ने निपादराज को हृदय से लगा लिया और इतने अनुराग से गाढालिङ्गन किया मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई हो। फिर भी हृदय में प्रेम नहीं समाता पुलक के मिससे प्रकट हो रहा है। लक्ष्मणजी पर भरतजी का साधारण प्रेम नहीं है। यथा सोक समाजु राजु केहि लेखे। लखन रामसियपद बिनु दखे। लक्ष्मणजी सा प्रेम होने का कारण यह कि इसका भी त्याग श्रीरामप्रोत्यर्थं वैसा ही है जैसा लक्ष्मणजी का है। यथा देव घरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा।

भेटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहि प्रेम कै रीती ॥

धन्य धन्य धुनि मगल मूला। सुर सराहि तेहि वरसहि फूला ॥१॥

अर्थ भरतजी उसे बड़े प्रेम से भेंटे। लोग ईर्ष्या करने लगे। यह प्रेम की रीति है। देवता लोग मङ्गलका मूल धन्य धन्य ध्वनि करके उसकी बड़ाई करते हैं और फूलों की वर्षा करते हैं।

व्याख्या प्रेम वस्तु ही ऐसी है जिसमें नीच ऊँच का विचार रह नहीं सकता। प्रेम के प्रवाह में भेद बह जाता है। निपादराज ने सरकार से कहा था कि थापिअ जनु सब लोग सिहाऊ। सो भरतलाल ने उसे स्थापन कर दिया और लोग भी इस प्रेम की रीति का डाह करने लगे कि वाह रे। निपादराज का भाग्य।

नीचे लोग सिहाते हैं। ऊपर देवता सराहते हैं। बार बार उसे धन्य कहते हैं। देवताओं की धन्य धन्य ध्वनि मङ्गल मूल है। निपादराज साधारण धन्य नहीं हुए। देवपूजित हो गये। देवताओं ने उन पर पुष्पवर्षा की। ऐसी स्थापना हुई कि देवताओं ने फूल चढाया।

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सीचा ॥

तेहि भरि अक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ॥२॥

अर्थ जो लोक में और वेद में सब भाँति नीच था। जिसकी छाया छू जाने से मार्जन का विधान है उसी से रामजी के छोटे भाई पुलकित होकर छाती से लगाकर मिल रहे हैं।

व्याख्या लोक में नीच। यथा हम जड जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। पाप करत निसि वासर जाही। नहि पट कटि नहि पेट अघाही। यह हमारि अति बडि सेवकाई। लेहि न वासन बसन चोराई। इस भाँति लोक में नीच हुआ। यह वह कपूयाचरणा अभ्यागो ह्यत्ते कपूया योनिमापद्येरन्

श्वयोनिं सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा । इस भाँति निपाद होने से वेद में भी कपूय नीच योनि कहा गया । उसकी छाया के स्पर्श से मार्जन का विधान है । उसे स्पर्श करने को कौन चलावे ?

सो रामजी के छोटे भाई उसे अङ्ग भरके हृदय लगा रहे हैं और प्रेम से ऐसे परिपूर्ण है कि सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो रहा है । रामजी के छोटे भाई कहने का भाव यह है कि जिसके विषय में स्वयं वसिष्ठजी कहते हैं कि समुद्रव कहव करव तुम्ह जोई । धर्मसार जग होइहि सोई ।

राम राम कहि जे जमुहाही । तिन्हहि न पाप पुंज समुहाही ॥

यह तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जग पावन कीन्हा ॥३॥

अर्थ : जो राम राम कहकर जँभाई लेते हैं पापों के समूह उनका सामना नहीं करते । इसे तो रामजी ने हृदय से लगा लिया और कुल के सहित जगत में पवित्र कर दिया ।

व्याख्या : जो राम कहकर जँभाई लेते हैं : भाव यह कि जो आलस्य से भी रामनामोच्चारण करते हैं उनका सामना करने का सामर्थ्य पापपुञ्ज को भी नहीं । क्योंकि उनका सामना पड़ते ही नष्ट हो जाते हैं । नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्दहने हरेः । तावत् कर्तुं न शक्नोति पातक पातकीजन । आलस्य से जपना । यथा : भाव कुभाव अनख आलसहूँ । राम जपत मगल दिसि दसहूँ ।

भरतजी के हृदय लगाने से ही रामजी का हृदय लगाना हो गया । यथा : तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहि मोहि कछु अतर काऊ । पहिले ही यदि रामजी हृदय लगाये होते तो भरतजी के हृदय लगाने पर देवताओं की पुष्प वर्षा इस समय न होकर उस समय होती सो वहाँ मिलना भी नहीं कहते । यथा : लिए फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हिय हरखु अपारा । करि दडवत भेट धरि आगे । प्रभुहि विलोकत अति अनुरागे । देवता लोग कहते हैं कि अब यह कुल समेत ससार में पवित्र हो गया । भरतजी ने जब इसे हृदय से लगा लिया तो रामजी लगा चुके । लोक में यह जनश्रुति है कि रामजी के जल ग्रहण कर लेने से मल्लाहों की गिनती सत्शूद्रों में हो गयी । इनका पानी चलने लगा ।

करमनास जलु सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहि धरई ॥

उलटा नामु जपत जग जाना । वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना ॥४॥

अर्थ : कर्मनाशा का जल गङ्गाजी में गिरता है । तो उसे कौन सिर पर नहीं चढ़ाता । ससार जानता है कि उलटा नाम जपते-जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के तुल्य हो गये ।

व्याख्या : जनश्रुति है कि कर्मनाशा का जल स्पर्श करने से कर्म का नाश हो जाता है । इसलिए कर्मनाशा का जल कोई छूता नहीं । परन्तु कर्मनाशा जाकर गङ्गाजी में मिल गयी है । उसके जल के अनवरत गङ्गा में गिरते रहने पर भी

गङ्गाजल में अशुचिता नहीं आती। उसे सभी पापनाश के लिए सिर पर धारण करता है। अर्थात् जिसे सरकार ने अपना लिया वही पूज्य हो जाता है। उसके जाति आदि का विचार नहीं किया जाता। पर यह निश्चय हो जाना चाहिए कि रामजी ने अपना लिया। यथा :

जाको हरि दृढ करि अग करघो ।
सोई सुसील पुनीत वेद विद विद्या गुननि भरघो ॥
उत्पति पांडु सुतन की करनी सुनि सत पथ डरघो ।
ते त्रैलोक्य पूज्य पावन जस सुनि सुनि लोक तरघो ॥
जो निज धर्म वेद बोधित सो करत न कछु बिसरघो ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उघरघो ॥
ब्रह्म विसिख ब्रह्माण्ड दहन क्षम गर्भ न नृपति जरघो ।
अजर अमर कुलिसहु नाहिन वध सो पुनि फेन मरघो ॥
विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहि विगरघो ।
उनको कियो सहाय बहुत उर को सताप हरघो ॥

वाल्मीकिजी का उलटा नाम जप करना जगत् प्रसिद्ध है। उलटा जप का फल भी उलटा होना चाहिए। नाम के संसर्ग से उलटा जप भी महा फलदायक हुआ। वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हुए और उनकी वाणी वेद के समान हुई। यथा : वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना ।

दो. स्वपच सवर खस जवन जड़, पाँवर कोल किरात ।

रामु कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥१९४॥

अर्थ : चाण्डाल खस मूर्ख यवन नीच कोल किरात आदि सभी राम नाम के कहने से पवित्र होकर संसार में विख्यात हो जाते हैं।

व्याख्या : वाल्मीकिजी उदाहरण मात्र हैं। नियम यही है कि नीच भी राम कहने से परम पवित्र और भुवन विख्यात हो जाते हैं। स्वपच यवन आदि कहने से वेदवाह्यलोग अभिप्रेत हैं। अर्थात् जो जन्म से अपावन हैं वे भी पावन हो जाते हैं और उनकी संसार में ख्याति हो जाती है। कोई उनकी जाति का परवाह नहीं करता। इस प्रकार शास्त्र और लोक दोनों से शुद्धि कही।

नहि अचरज जुग जुग चलि आई । केहि न दीन्ह रघुवीर बड़ाई ॥

राम नाम महिमा सुर कहही । सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहही ॥१॥

अर्थ : आश्चर्य की बात नहीं है। यह प्रथा तो युग युग से चली आती है। रामजी ने किसे बड़ाई नहीं दी? राम नाम की महिमा देवता लोग कहते थे और सुन सुनकर अवधवासी सुखी होते थे।

व्याख्या : अनहोनी बात का हो पड़ना आश्चर्य है। पहिले बड़ा संशय हुआ कि लोक वेद सब भाँति से जो नीच है उससे इस भाँति भरतजी मिलते हैं। यह

क्या बात है ? फिर उस सशय का निरसन भी स्वयं ही करते हैं कि जो बात सदा से होती चली आयी हो उससे होने में आश्चर्य नहीं है। यथा संतत दासन्ह देहु बडाई। जो बड होत सो राम बडाई। सदा से हो भगवान् दासो को बडाई देते हैं। यह भी सरकार का अनन्य दास है। अतः उस नाते से इसे बडाई मिल रही है। जो जाति में बडे कहलाते हैं उन्हें ही बडाई कहां से मिली ? जिसने उन्हें बडाई दी थी वही निपादराज को भी बडाई दे रहा है।

राम की और नाम की महिमा देवगण आकाश में वर्णन कर रहे हैं। सुर सराहि तेहि वरपहि फूला से उपक्रम और राम नाम महिमा सुर कहही से उपसहार। देवता कह रहे हैं और अवधवासी श्रवण कर रहे हैं। इससे उन्हें सुख हो रहा है। यथा हम सम पुण्य पुज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे। देवताओं का सङ्कल्प है कि अवधवासी सुनें। अतः सुन रहे हैं, नहीं तो आकाश में कही हुई बात पृथ्वी पर क्यों सुनाई देने लगी ?

राम सखाहि मिलि भरतु सप्रेमा । पूछी कुसल सुमगल पेमा ॥
देखि भरत कर सीलु सनेहु । भा निपाद देहि समय विदेहु ॥२॥

अर्थ रामजी के सखा के साथ सप्रेम मिलकर भरतजी ने कुशल मङ्गल और क्षेम पूछा। भरतजी का शील और स्नेह देखकर निपादराज उस समय देह को सुधि भूल गये।

व्याख्या मिलन प्रसङ्ग पूरा करके फिर कथा प्रसङ्ग प्रारम्भ करते हैं। सप्रेम शब्द देहली दीपक न्याय से दोनों ओर लगेगा। अर्थात् सप्रेम मिलकर कुशलादि सप्रेम पूछा। कुशल शब्द से विघ्नराहित्य अभिप्रेत है। यथा बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं। मङ्गल से इष्ट प्राप्ति और पेम से इष्ट संरक्षण के विषय में प्रश्न किया। अर्थात् योगक्षेम पूछा।

निपादराज भरतजी के शील स्नेह का पता लगाने चले थे। सो उनका शील स्नेह देखकर स्तब्ध हो गये। उन्हें अपने देह की सुधि न रह गयी। शील देखा कि राम सखा सुनि स्यन्दनु त्यागा और स्नेह देखा भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ। प्रेम न हृदय समाइ। मन में भी यह बात न आयी थी कि भरतजी में इतना शील स्नेह होगा। अतः आश्चर्य और प्रेम में डूबाडूब होकर शरीर की सुधि भूल गया।

सकुच सनेहु मोद मन बाढा । भरतहि चितवत एकटक ठाढा ॥
धरि धीरज पद बदि बहोरी । विनय सप्रेम करत कर जोरी ॥३॥

अर्थ मन में सङ्कोच प्रेम और आनन्द बढ गया और खडा खडा एकटक भरतजी को देखने लगा। धैर्य धारण करके फिर चरणों में प्रणाम किया और प्रेम के साथ हाथ जोडकर विनय करने लगा।

व्याख्या निपादराज को अपने पूर्वकृत सन्देश पर सङ्कोच हुआ। शील

देखकर भरतजी पर स्नेह बढ़ा और स्वभाव देखकर मन में मोद हुआ। भरतजी कुशल पूछते हैं। उसका उत्तर देना चाहिए। परन्तु निषादराज भरतजी के गुणों को देखकर स्तब्ध हैं और प्रेम के उल्लास से भरतजी को एकटक देख रहे हैं। उत्तर देते नहीं बनता।

अतः धैर्य धारण किया। पहिले प्रेम से धैर्य छूट गया था। सो मनसा : धरि धीरज, कर्मणा : पद वदि और वचसा : वचन सप्रेम कहत कर जोरी। सप्रेम प्रेम हुआ था। यथा : सप्रेमा, पूछी कुशल सुमंगल पेमा। अतः विनय सप्रेम करत कर जोरी। यह दूसरी वन्दना उत्तर देने के समय की है।

कुशल मूल पद पंकज पेखी। मै तिहुँ काल कुशल निज लेखी ॥

अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरें ॥४॥

अर्थ : श्रीचरण ही कुशल के मूल हैं। उनका दर्शन करके मैंने तीनों काल : अपना कुशल निश्चय कर लिया। प्रभो ! अब आपकी कृपा से कोटि कुल के सहित मेरा मङ्गल है।

व्याख्या : कुशल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि अब तो मैं कुशल के मूल : जड़ तक पहुँच गया। नहीं तो : तब लगि कुशल न जीव कहँ सपनेहुँ मन विश्राम। जब लगि भजत न राम कह सोक धाम तजि काम। पूर्व काल में कुशल था। इसलिए चरणों का दर्शन हुआ। इस समय भी कुशल है। दर्शन कर रहा हूँ और भविष्य में भी इन्हीं चरणों के प्रताप से कुशल होगा।

मङ्गल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि दर्शन के बाद जो अनुग्रह हुआ उससे करोड़ों कुल के साथ मेरा मङ्गल हुआ। मेरी पूरी जाति पावन हो गयी। यथा : कुल समेत जग पावन कीन्हा। यथा : नम सराहि सुर वरपहि फूला।

दो. समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिअ जोइ।

जो न भजइ रघुवीर पद, जग बिधि बंचित सोइ ॥१९५॥

अर्थ : मेरे कुल और करतूति को समझकर और प्रभु की महिमा देखकर जो रघुवीर के चरणों को न भजे वह ससार में विधाता द्वारा ठगा गया।

व्याख्या : अब क्षेम का उत्तर देते हैं। कुल और करतूति दोनों मलिन हैं। यथा : जामु छाँह छुइ लेइय खीचा। हम जड़ जीव जीवगन घाती। कपटी कायर कुमति कुजाती और सरकार की महिमा का पारावार नहीं। यथा : भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति तीर ठाढ़ि अवलासी। इन दोनों बातों को जो देखेगा वह सब रघुवीर के पद को भजेगा। मैं भी भजूँगा। जो न भजे वह नृपशु है। मनुष्य शरीर देकर ब्रह्मदेव ने उसे ठग लिया। वह मनुष्य शरीर में पशु ही है। आहार निद्रा भय मैथुन में लगा है। उसे कुछ भी विवेक नहीं है। रघुवीर पद भजने से ही क्षेम होता है। यथा : राम विमुख सपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।

कपटी कायर कुमति कुजाती । लोक वेद बाहेर सब भांती ॥

राम कीन्ह आपन जवही ते । भयेउँ भुवन भूषण तवही ते ॥१॥

अर्थ कपटी कादर कुबुद्धि और कुजाति हूँ । सब भाँति लोक वेद से बाहर हूँ । पर जब से रामजी ने मुझे अपना कर लिया तभी से मैं ससार का भूषण हो गया ।

व्याख्या निषादराज कहते हैं न मेरा स्वभाव अच्छा, न हृदय अच्छा, न बुद्धि अच्छी और न जाति अच्छी, स्वभाव से कपटो, हृदय से कादर, बुद्धि तामसी और जाति से निषाद । मेरे स्वभाव में कपट है । उसका आरोप भरतजी ऐसे महासाधु पर किया । यथा कारन कवन भरत बन जाँही । है बछु कपटभाव मन माँही । हृदय मेरा कादर है । युद्ध के लिए तैयार भी हुआ तो जाति भाइया के भरोसे । फिर भी अधीर हो उठा । जाति भाइयो ने कहा वीर अधीर न होहि । मैने अधर्म का धर्म माना । भरतजी ऐसे महा भागवत से युद्ध करने का सकल्प किया । इससे मेरी बुद्धि तामसी । अधर्म धर्ममिति या मन्यते तमसावृता । सर्वार्थान् विपरीताश्च बुद्धि सा पार्थ तामसी । मेरी जाति पापमय है । राजा वेणु की जघा के मन्थन से जो पाप पुरुष उत्पन्न हुआ वही हमारा मूल पुरुष है । उसी से निषाद जाति हुई । वहा भी है कि अधम को वेनु समान ।

मुझे न लौकिक कर्म समाज प्रवेश का अधिकार और न वैदिक कर्म यज्ञादि साधनों का अधिकार । अतः हम लोक और वेद दोनों से बहिष्कृत हैं । कोई मुझसे सम्पर्क रखना नहीं चाहता । परन्तु जब से रामजी ने मुझे अपना लिया मेरे देव घरनि धन धाम तुम्हारा । मैं जन नीच परिवारा । कहकर आत्मनिवेदन करने पर सरकार ने कहेउ सत्य सब सुखा सुजाना । कहकर स्वीकार कर लिया । इतना ही नहीं आतिथ्य भी स्वीकार किया । तब से तो मैं भुवन का भूषण हो गया । सब लोग मेरी ऐसी चाह करने लगे जैसी आभूषण की चाह करते हैं । अर्थात् अब मेरे साथ से लोग अपने को कृतवृत्त्य मानने लगे ।

दखि प्रीति सुनि विनय सुहाई । मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई ॥

कहि निषाद निज नामु सुबानी । सादर सकल जोहारी रानी ॥२॥

अर्थ प्रीति देखकर और सुन्दर विनय सुनकर फिर भरतजी के छोटे भाई मिल । मोठी वाणी से अपना नाम ल लकर उसने सब रानियों का आदर से जोहार किया ।

व्याख्या भरतजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी तत्पश्चात् मिल । यहाँ बहोरि शब्द तत्पश्चात् के अर्थ में आया है । भरतजी के मिलने के बाद इन्हें कुछ देखने सुनने की आवश्यकता नहीं थी । पर भरतजी तो साक्षात् गुरु आज्ञा से मिल । शत्रुघ्नजी को कोई ऐसी आज्ञा नहीं थी । अतः शत्रुघ्नजी को देखने सुनने की आवश्यकता पड़ी । उन्होंने निषादराज की प्रीति आँखों देखा । यथा सकुच सनेह

भोद मन बाढा । भरतहि चितवत एकटक ठाढा । और सुन्दर विनय जो ऊपर लिखी गयी हैं कानों से सुना । अतः उसे आदर का पात्र जानकर उससे मिले ।

तत्पश्चात् जिस भाँति मुनिजी को दण्डवत् दूर से अपना नाम सुनाकर किया था उसी भाँति सुन्दर वाणी से अपना नाम सुना सुनाकर सब रानियों का आदर से जोहार किया । जोहार : कर्मणा । सादर : मनसा । निज नाम सुबानी : वचसा ।

जानि लखन सम देहि असीसा । जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ॥
निरखि निपाद नगर नर नारी । भए सुखी जनु लखनु निहारी ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मण के समान जानकर रानियाँ आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सौ लाख वरस तक जीओ और सुखी रहो । निपादराज को देखकर नगर नर नारी ऐसे सुखी हुए मानो लक्ष्मण को देख पाया हो ।

व्याख्या : संसार रानियों को जोहार करता है । पर रानियाँ सबको आशीर्वाद इस भाँति देती नहीं फिरती । अपने अति प्यारे पुत्रादि को ही आशीर्वाद देती है । पर निपादराज को सब ओर से आशीर्वाद इस भाँति दे रही हैं जैसे लक्ष्मणजी के प्रणाम करने पर माताएँ जिन शब्दों में आशीर्वाद देती थी । सुखी होने का आशीर्वाद देती थी और दीर्घायु का आशीर्वाद देती थी । सौ लाख वर्ष यहाँ विरकाल का बोधक है अथवा कीर्तियुक्त जीवन व्यतीत करने का आशीर्वाद देती थी । यथा : कीर्तियस्य स जीवति ।

नगर नर नारी ने भी वैसा ही मान लिया । क्योंकि भरतजी ने उसी भाव से उसका सत्कार किया था । लक्ष्मणजी पुरजल प्रिय पितु मातु दुलारे थे । अतः प्रिय के दर्शन से जैसे सुखी होते थे वैसे हुए । इसका आदर भरतजी माताओं और प्रजावर्गों की ओर से लक्ष्मणजी का सा हो रहा है । क्योंकि इसकी भक्ति उसी प्रकार की है । यह भी लक्ष्मणजी के समान रामजी के लिए प्राण निष्ठावर करने को प्रस्तुत हैं ।

कहहि लहेउ एहि जीवन लाहू । भेटेउ रामभाइ भरि वाहू ॥
सुनि निपादु निज भाग बड़ाई । प्रमुदित मन ले चलेउ लेवाई ॥४॥

अर्थ : कहने लगे कि जीने का लाभ इसने पाया । रामजी के भाई ने इसे भुजा भरकर भेटा । निपादराज अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर प्रसन्नचित्त होकर सबको लिवा ले चला ।

व्याख्या : सब कहने लगे कि इसने जीने का लाभ प्राप्त कर लिया । क्योंकि रामजी के भाई इससे भुजा पसारकर मिले । यदि रामभद्र पाठ माना जाय तो अर्थ करना होगा कि रामजी ने इसको परिज्वङ्ग दिया । रामभद्र का प्रयोग रामजी के लिए कवि ने कही किया नहीं । लक्ष्मणजी ने जीवन लाभ पाया है । यथा : जीवन लाहू लखन भल पावा । सब तजि राम चरन मन लावा । भरतजी लक्ष्मण के समान

मानवर मिले । अतः सब इसे लक्ष्मण के समान मान रहे हैं । इस प्रकार का मतैक्य अयोध्या में चलता है ।

अयोध्यावासियों के मुख से अपनी बड़ाई सुनकर निपादराज प्रमुदित हैं । क्योंकि अयोध्यावासी सरकार को अति प्रिय हैं । यथा अति प्रिय मोहि इहां वे वासी । जब रामजी के प्रिय किमी के भाग्य की बड़ाई करें तभी उसे भाग्यवान् समझना चाहिए । सर्व साधारण की बड़ाई का कोई मूल्य नहीं है । भलो कहै विनु जाने ही विनु जाने अपवाद । सो नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख विपाद ।

दो सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ ।

घर तरु तर सर बाग वन, बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

अर्थ सब सेवकों को इशारा किया । वे स्वामी का रुख पाकर चले । उन्होंने घरों में वृक्षों के नीचे तालाबों पर बगीचों और जंगलों में सबके ठहरने के लिए डेरे सँवारे ।

व्याख्या निपादराज ने कहा था . देखि मित्र अरि मध्यगति तब तस करिही आइ । सो सबको लिवाकर निपादराज आगे आगे आ रहे हैं । इससे मित्र होना स्पष्ट हो गया और यह भी स्पष्ट हो गया कि निपादराज इनका आतिथ्य सत्कार करेंगे । अब इशारा पाकर उनके रुख से समझ गये कि टिकाने का बन्दोबस्त होना चाहिए । अतः घाट को छोड़ा और टिकाने की व्यवस्था में लग गये । सेना बड़ी है । सबके टिकाने का काम साधारण नहीं है । अतः प्रधान लोगों के लिए घर में दूसरों को गाँव में औरों को पेड़ तले सैनिकों का ग्राम के बाहर सर बाग वन में डेरे सँवारे ।

सृगवेरपुर भरत दीख जब । भे सनेह वस अग सिथिल तब ॥

सोहत दिए निपादहि लागू । जनु धनु धरे विनय अनुरागू ॥१॥

अर्थ जब भरतजी ने शृङ्गवेरपुर को देखा तब प्रेमवश अङ्ग ढीले पड़ गये । निपादराज को टेके हुए ऐसे शोभित हैं मानो विनय और अनुराग ने धनुष धारण कर रक्खा हो ।

व्याख्या सरकार ने जब से अयोध्या से प्रस्थान किया तब से शृङ्गवेरपुर में ही फल मूल भोजन किया । यही सोये । यही जटा बनायी । यही से वन चले । यथा सो जामिनि सिंगरीर गँवाई । अतः शृङ्गवेरपुर के देखने से सरकार की स्मृति अति अधिक रूप में हुई । स्नेह के वश हो गये । अपने वश में नहीं रह गये । अतः अङ्ग ढीले पड़ गये ।

ऐसी शिथिलता हुई कि सहारा लेने की आवश्यकता हुई तो निपादराज का सहारा लिया । उसके हाथ में हाथ दिये चले जा रहे हैं । भरतजी मानो अनुराग की मूर्ति हैं और निपादराज इस समय विनय की मूर्ति हो गये । हाथ से हाथ मिलाने की उपमा आवृत्ति साम्य से धनुष के साथ दिया । विनय अनुराग का धनुष धारण

करना उनके उस समय प्रबल होने का द्योतक है। यहाँ भरतजी की उपमा अनुराग से और निपाद की उपमा विनय से दिया। तनु धरे पाठ मानने से यह अर्थ करना पड़ेगा कि मानो विनय और अनुराग ने शरीर धारण कर लिया है।

एहि विधि भरत सेनु सबु सगा । दीख जाइ जग पावनि गगा ॥
रामघाट कहैं कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥२॥

अर्थ इस विधि से भरत ने सेता के साथ जाकर जगत् को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी का दर्शन किया। रामघाट को प्रणाम किया। मन ऐसा मग्न हुआ मानो रामजी मिल गये।

व्याख्या भरतजी निपादराज से मिलने के बाद फिर रथ पर सवार नहीं हुए और भरतजी के पैदल चलने से सारा समाज पैदल चला। तीर्थ के निकट सवारी पर चलना निषिद्ध है। यथा गिरिवर दीख जनक नृप जबही। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबही। अत सब पैदल चले। पहिल शृङ्गवेरपुर दिखायी पडा और उसके बाद ही गङ्गाजी दिखायी पडी। जगपावनि कहने से सर्वतीर्थमयी गङ्गा कहा। यथा समृद्ध सौभाग्य सकलवसुधाया।

अब जहाँ सरकार ने स्नान किया था उसका नाम रामघाट पड गया था। यथा उत्तरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दडवत हरष बिसेखी। वह स्थल रामजी से अधिक पवित्र हो गया। विरह दशा म प्रेमास्पद के अङ्ग से लगी हुई वस्तु भी उसी की भाँति प्रिय मालूम होती है। अत भरतजी का मन मग्न हो गया। मानो राम ही मिल गये। पहिल सवारी से उतरना कहा। तत्पश्चात् दर्शन कहा अब सप्रेम प्रणाम कहते हैं।

करहि प्रनाम नगर नर नारी । मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मज्जनु माँगहि कर जोरी । रामचद्र पद प्रीति न थोरी ॥३॥

अर्थ नगर के नर नारी ब्रह्ममय बारि का दर्शन करके हर्षित होकर प्रणाम करते हैं। स्नान करके हाथ जोडकर माँगते हैं कि रामचन्द्र के चरणों में अधिक प्रेम हो।

व्याख्या भरतजी का प्रणाम कहकर अब पुरवासियों का प्रणाम कहते हैं कि नगर के नर और नारी सभी प्रणाम कर रहे हैं। भावना यह है कि गङ्गा जल जल नहीं है। स्वयं ब्रह्म ही द्रवीभूत होकर जल रूप से विद्यमान है। अत गङ्गा का दर्शन ब्रह्मसाक्षात्कार है और स्पर्श ब्रह्मस्पर्श है। गोलोक में भगवान् वासुदेव स्वयं द्रवीभूत होकर गङ्गारूप में वह चले। ऐसी कथा गर्ग संहिता में है। इसीलिए गङ्गाजी की उपासना नीराकार ब्रह्म की उपासना है।

दर्शन और प्रणाम के बाद मज्जन का विधान है। अत सब स्नान करने लगे। स्नान के बाद गङ्गाजी से प्रार्थना करते हैं। गङ्गाजी मनोरथ पूर्ण करती हैं। ऐसा विश्वास सभी गङ्गातटवासियों को है। सभी मङ्गलकार्य सम्पन्न होने पर गङ्गा

पुजैया होती है। अवधवासियों को एक मात्र यही मनोरथ है कि रामचन्द्र के चरणों में अनुराग बढे। जितना अनुराग है उतने को वे थोड़ा मानते हैं।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥

जोरि पानि वर माँगउ एहू। सीय राम पद सहज स्नेहू ॥४॥

अर्थ : भरतजी ने कहा है सुरसरि ! तुम्हारी रेणु सब कामनाओं को देनेवाली कामधेनु है। हाथ जोड़कर यही वर माँगता हूँ कि सीता राम के पद में सहज स्नेह हो।

व्याख्या : सबने वारि की प्रशंसा की और गङ्गाजी से वरदान माँगा। भरतजी रेणु की प्रशंसा करते हैं। जो दिन रात जल से सम्बद्ध है। कहते हैं कि गङ्गाजी की रेणु सब सुख देनेवाली है और सेवक के लिए तो कामधेनु ही है। जो चाहे वह ले लो। अतः भरतजी कहते हैं कि तब आपकी क्या प्रशंसा की जाय। मैं हाथ जोड़कर यह वर माँगता हूँ कि सीताराम के चरणों में सहज अनुराग हो। जो किसी प्रकार भङ्ग न हो। इसी का विस्तार प्रयागराज से वर माँगने के प्रसङ्ग में है। यथा : जलद जनम भर सुरति विसारउ। जाचत जल पवि पाहन डारउ। चातक रटनि घटे घटि जाई। बढे प्रेम सब भाँति भलाई। यही सहज प्रेम है।

दो. एहि विधि मज्जनु भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ।

मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लवाइ ॥१९७॥

अर्थ : इस विधि से गुरुजी की आज्ञा पाकर स्नान करके और यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी सबको डेरा पर लिवा ले चले।

व्याख्या : भरतजी ने गुरुजी की आज्ञा लेकर तब स्नान किया। क्योंकि पुण्यकार्य की शोभा बिना गुरुपूजन के होती नहीं। यथा : सुकृत संभुतन विमल विभूती। भरतजी का स्नान सबके पीछे है। देख लिया कि माता लोग भी स्नान कर चुकी। तब सबको डेरे पर लिवा ले चले।

जह तहँ लोगन्ह डेरा कीन्ह। भरत सोधु सबही कर लीन्ह ॥

सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहि गे दोउ भाई ॥१॥

अर्थ : लोगों ने जहाँ तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजी ने सबकी खोज खबर ली। तत्पश्चात् देवार्चन किया। तब आज्ञा पाकर माँ के पास गये।

व्याख्या : निपादराज के सेवको ने तब तक घर तरुतर सर बाग और वन में डेरा के योग्य स्थान बना दिया। निपादराज की सम्मति के अनुसार सब लोगो ने डेरा डाल दिया। अब भरतजी की सावधानी कहते हैं कि सबकी खोज खबर ली। कौन कहाँ ठहरा हुआ है? किसे क्या चाहिए? यही खोज खबर लेना है। पहिला काम प्रजा संरक्षण है। सुर सेवा उसके बाद का काम है।

राजा के लिए प्रजा का रक्षण ही सबसे बड़ी ईश्वर पूजा है। उससे समय

वचे तो देवाचन भी करें। अतः भरतजी ने प्रजा की व्यवस्था करके तब देवाचन किया। राजाओं में आज भी माँ के पास जाने में आज्ञा की आवश्यकता रहती है। अतः दासियों द्वारा आज्ञा पाकर तब कौसल्या के पास दोनों भाई गये।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु वानी। जननी सकल भरतु सनमानी ॥

भाइहि सौपि मातु सेवकाई। आपु निपादहि लीन्ह बोलाई ॥२॥

अर्थ : भरतजी ने सब माताओं के पैर दवाकर और मृदु वाणी कहकर उनका सम्मान किया। माता कैकेयी की सेवा भाई को सौंपकर स्वयं निपादराज को बुला लिया।

व्याख्या : आज माताएँ पैदल चली हैं। अतः भरतजी सबके पैर दवाते हैं और मृदु वाणी कहते हैं। माँ ! आज आपको बड़ा कष्ट हुआ। पर तीर्थाटन में पैदल चलने का ही माहात्म्य है। इत्यादि बातें भरतजी ने कही।

कैकेयी का त्याग किया है। यथा : तज्यौ पिता प्रह्लाद विभीषन वधु भरत महतारी। अतः उसके पास स्वयं सेवा के लिए नहीं गये। पर यह नहीं कि सेवा में श्रुति होने पावे। इसलिए भाई शत्रुघ्न को उनकी सेवा का भार सौंपा। इस भाँति सब व्यवस्था करके तब अपने दुःख सुख की ओर दत्तचित्त हुए। अपनी जलन को कम करने के लिए निपादराज को बुला लिया।

चले सखा कर सों करजोरे। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे ॥

पूँछत सखाहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ॥३॥

अर्थ : सखा के हाथ से हाथ मिलाये हुए चले। शरीर शिथिल हो रहा था। क्योंकि स्नेह थोड़ा न था। सखा से पूछते हैं कि वह स्थान बतलाओ। मैं अपने नेत्र और मन की जलन को कुछ शीतल कर सकूँ।

व्याख्या : सरकार ने निपादराज से सखा का नाता मान रखवा है। अतः भरतजी भी सखा मान रहे हैं। उनके हाथ से हाथ मिलाये चले। जहाँ चले वहाँ का स्मरण आते ही फिर पहिले की भाँति शरीर शिथिल हो चला। अतः उसी भाँति सखा का सहारा लिए हुए चले। यथा : राम सखा कर दीन्हे लागू।

वह स्थल देखना चाहते हैं जिसका वर्णन आगे करेंगे। अतः सखा से पूछते हैं। क्योंकि उसी ने सरकार का आतिथ्य सत्कार किया है। प्रयोजन यह है कि नयन और मन विरहानल से सन्तप्त हो रहे हैं। यथा : देखे विनु रघुवीर पद जिय की जरनि न जाय। सो जलन तो सरकार के दर्शन से ही मिटेगी। पर जिस स्थान से सरकार का सम्बन्ध वनगमन के समय हुआ है उसके दर्शन से भी कुछ शान्ति होगी।

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए ॥

भरत वचन सुनि भयउ विपादू। तुरत तहाँ लइ गयेउ निपादू ॥४॥

अर्थ : जहाँ सीता राम और लक्ष्मण रात को सोये थे। इतना कहते ही

मयन गोलक मे जल भर आया । भरतजी के वचन सुनकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ । तुरन्त उन्हे वहाँ ले गया ।

व्याख्या : अब भरतजी निषादराज से कहते हैं कि जहाँ श्री सीता रामजी तथा लखनलाल रात को सोये थे उस विश्राम स्थल का मैं दर्शन करना चाहता हूँ । पृथ्वी पर ही सोये होंगे । यह बात चित्त पर चढ़ते ही आँखों में आँसू डबडबा आये । सरकार को सोते देखकर परिजन के साथ निषाद विकल हो गया था । यथा : सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भयउ सपरिजन विकल बिषादू । अतः भरतजी को उसका ध्यान बँधते ही विषण्ण होना प्राप्त ही था ।

जब सरकार को सोते देखकर निषाद विकल हुआ तो लखनलाल ने उसे समझाया । लक्ष्मण गीता का उपदेश किया । उसका विषाद जाता रहा । दूसरो को विषादत्याग का उपदेश देने लगा था । यथा : अब सुमत परिहरहुँ बिषादू । सो भरतजी का वचन सुनकर उसे फिर विषाद हो गया । वह तुरन्त भरतजी को वहाँ ले गया । जिसमे जितनी जल्दी इनका ताप कम हो उतना ही अच्छा है ।

दो जहँ सिसुपा पुनीत तरु, रघुवर किय विश्रामु ।

अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दड प्रनामु ॥१९८॥

अर्थ : जिस अशोकवृक्ष के नीचे रामजी ने विश्राम किया था वहाँ भरतजी ने अत्यन्त आदर और स्नेह के साथ दण्डवत् प्रणाम किया ।

व्याख्या : वह स्थल तीर्थपूत हो गया था । यथा : जेहि तरु तर प्रभु बैठहि जाई । करहि कल्पतरु तासु बडाई । और उस वृक्ष के नीचे तो सरकार सोये थे । उसके तीर्थ होने मे सन्देह ही क्या ? जिसकी कृपा से मनुष्य विश्राम का पात्र होता है । यथा : जाकी कृपा लखलेस ते मतिमद तुलसीदास हूँ । पायेउ परम विश्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ । उस महाप्रभु ने जिस स्थल मे विश्राम पाया उसकी क्या महिमा कही जाय । इसलिए भरतजी ने उस स्थल को अत्यन्त स्नेह और आदर के साथ दण्डवत् प्रणाम किया ।

कुस साँथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई ॥

चरण रेख रज आँखिन्ह लाई । वनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥१९॥

अर्थ : कुस की सुन्दर चटाई को दखकर जाकर के प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की । चरण की रेखाओं के रज को आँखों मे लगाया । प्रीति की अधिकता कहते नही बनती ।

व्याख्या : सरकार के शृगवेरपुर आने के समय कह चुके हैं . गुह सँवारि साँथरी डसाई । कुस किसलयमय मृदुल सोहाई । सो वह साथरी आज तक जैसी की तैसी पड़ी है । जनसबाधवर्जित देश मे वस्तु ज्यों की त्यों पड़ी रह जाती है । अतः भरतजी ने उस सुन्दर साथरी का दर्शन किया । देखते ही भरतजी समझ गये कि

यही सरकार की शय्या रही है। अतः सन्निकट जाकर प्रणामपूर्वक प्रदक्षिणा की जिस भाँति देवताओं की प्रदक्षिणा की जाती है।

उसी साथरी के निकट चरण चिह्न थे। ध्वज कुलिश अङ्कुश कज्ज के स्पष्ट चिह्न को देखकर भरतजी पहिचान गये कि ये सरकार के चरण चिह्न हैं। चिह्न गम्भीर रेखा के हैं। अतः अब तक स्पष्ट बने हैं। भरतजी सरकार के चरण चिह्न पहिचानते हैं। जगदम्बा जानकीजी के चरण चिह्न नहीं पहिचानते। क्योंकि पलग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पद अवनि कठोरा। पूज्य चरणों के चिह्न भी पूज्य हैं और प्रिय हैं। अतः उनकी धूलियों को आँखों में लगाते हैं आँखों की जलन कम करने के लिए। यथा नेकु नयन मन जरनि जुडाऊ। उसके स्पर्श से प्रीति ऐसी बढी कि कवि वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे ॥

सजल विलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन वचन सुबानी ॥२॥

अर्थ दो चार सोने के घुँघुरू अथवा सलमा सितारा देखे। सीताजी के समान समझकर सिर पर रख लिया। आँखों में आँसू और हृदय में ग्लानि आयी। सखा से सुन्दर वाणी बोल।

व्याख्या रामजी और लक्ष्मणजी तो मुनि वेष में थे। परन्तु भगवती वसिष्ठजी की आज्ञा से राजवेष में ही थी। उनके साथरी के निकट दो चार सोने के घुँघुरू गिरे हुए थे। अतः भरतजी ने तुरन्त जान लिया कि ये भगवती के हैं। अतः उन्हें सीताजी के समान जानकर उन्हें सिर पर रख लिया। उनका पृथ्वी पर पड़ा रहना सहन न कर सके। भरतजी को शृङ्गवेरपुर में लक्ष्मण राम और जानकीजी तीनों व्यक्तियों से मिलने का सुख हुआ। रामजी से मिलने का सुख यथा राम-घाट कहँ कीन्ह प्रनामू। मे मनु मगनु मिल जनु रामू। लक्ष्मणजी से मिलने का सुख यथा करत दडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ प्रीति न हृदय समाइ। सीताजी से मिलने का सुख यथा राखे सीस सीय सम लेखे।

अब भरतजी की दशा कहते हैं। तन की दशा सजल विलोचन। मन की दशा हृदय गलानी। वचन की दशा कहत सखा सन वचन सुबानी। घुँघुरूआ ने सीताजी के भी साथरी की याद दिला दी। सरकार व साथरी शयन के दुख से भी अधिक दुख सीताजी के साथरी शयन से भरतजी को हुआ। अतः सखा से बोले।

श्रीहत सीय विरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि विलीना ॥

पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही ॥३॥

अर्थ ये घुँघुरू भी सीताजी के विरह से ऐसे कान्ति होन हो गये हैं जिस भाँति रामजी के विरह से अवधवामी निस्तेज हो गये हैं। इनसे पिता महाराज जनक की उपमा विसरे हैं। सगार में योग और भोग दोनों जिनकी मुट्ठी में हैं

व्याख्या उन कनकविन्दु के उठाने के समय भरतजी कहते हैं कि ये श्रीहृत हो गये हैं। इनकी श्री तो तब थी जब कि ये जगदम्बा के शरीर के साथ थे। मानो इन्हे भी सीताजी के विरह का दुख है। पहिल ये विनती भी कर चुके हैं। यथा नूपुर मधुर मुखर कवि बरनी। मनहु प्रेमवस विनती करही। हमहि सीय पद जनि परिहरही। अब उदाहरण देते हैं कि जैसे रामजी के विरह से अवधवासी श्रीहीन हो गये हैं। भाव यह कि रामविरह से अवधवासी श्रीहीन और सीताजी के विरह से कनकविन्दु श्रीहीन हैं। यहाँ विलीन और दुतिहीन शब्द समानार्थक हैं।

स्त्रियो की महिमा चार प्रकार से होती है १ पिता के प्रभाव से २ स्वसुर की महिमा से ३ पति के उत्कर्ष से और ४ अपने गुणों से। अतः पहिल पिता का वर्णन भरतजी करते हैं। महाराज तो अनेक हैं। पर जनकजी का जोड़ी कोई नहीं। जहाँ योग है वहाँ भोग नहीं। जहाँ भोग है वहाँ योग नहीं है। योग भाग की युग पत् स्थिति ईश्वरकोटि में ही देखी जाती है। जीवकोटि में केवल जनकजी ही ऐसे हैं जहाँ दोनों दिखायी पड़ते हैं।

ससुर भानुकुल भानु भूआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू ॥
प्राणनाथ रघुनाथ गोसाईं। जे बड होत सो राम बडाई ॥४॥

अर्थ जिसके स्वसुर सूर्यकुल के सूर्य हैं जिससे अमरावती के राजा इन्द्र भी ईर्ष्या करते हैं। जिनके प्राणनाथ स्वामी रामजी हैं। जो कोई बड़ा होता है वह उन्हीं की बडाई से होता है।

व्याख्या पिता का वर्णन करके स्वसुर का वर्णन करते हैं कि एक तो सूर्य कुल बड़ा। उनमें भी वे सूर्य। तिस पर राजा। तेज और ऐश्वर्य दोनों से सम्पन्न। यथा अवधराजु सुरराजु सिहाई। दशरथ धनु सुनि धनद लजाई। भाव यह कि जो सुख इन्द्र को अमरावती में नहीं वह सुख महाराज दशरथ अवध में कर रहे हैं। इसलिए इन्द्र लज्जित हैं। सासारिक सुख की पराकाष्ठा इन्द्र सुख ही है। सो भी महाराज दशरथ के भोग के जोड़ का नहीं। अवधवासियों को सुरदुर्लभ सुख है। यथा सुरदुर्लभ सुख सदन बिहाई। ऐसे महाराज दशरथ की पुत्रवधू सीताजी हैं।

स्वसुर का वर्णन करके पति का वर्णन करते हैं कि वे तो रघुकुल के नाथ हैं। तिस पर गोसाईं हैं। अर्थात् हृषीकेश हैं हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिअँ मोरे। तुलसिदास यह जीव सुखला छुटिहि तुम्हारेहि छोरे। अर्थात् रामजी स्वयं बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर माया प्ररक सीव हैं। मुख्य बडाई उन्हीं में है। दूसरे तो उनकी बडाई पाकर बडे होते हैं। विधिहि विधिता हरिहि हरिता हरहि हरता जिन दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोद मय मगल मई।

दो पति देवता सुतीय मनि, सीय साँथरी देखि।

बिहरत हृदय न हहरि हर, पवि तें कठिन त्रिसेखि ॥१९९॥

अर्थ पतिव्रता भली स्त्रियो मे मणि सीताजी की कुशशय्या देखकर मेरा हृदय हे हर ! फट नही जाता । यह वज्र से भी अधिक कठोर है ।

व्याख्या अब स्वयं भगवती के गुण कहते हैं कि ये तो साक्षात् पार्वती सी पतिव्रता हैं । यथा पति देवता सुतीय मति मातु प्रथम तव रेख । यहाँ पति देवता सुतीय मणि कहकर वही बात कही । उक्त विशेषण से पतिप्रिया भी कहा । यथा पारवती सम पतिप्रिय होहूँ । जिनमें ऐसे अलौकिक गुण हैं उन्हें साथरी पर सोना पड़ा और यह दुःख उन्हें मेरे कारण हुआ । भरतजी शङ्कर की स्मरण करके कहते हैं कि मेरे हृदय को तो फट जाना चाहता था । शङ्कर क स्मरण का भाव यह है कि ये दूसरे के दुःख दूर करने के लिए विषपान करनेवाले हैं । मेरा हृदय वज्र से भी कठिन है जो अब भी नहीं फटता । भावार्थ यह कि हर इस दुःख को हरण करे ।

लालन जोगु लखन लघु लोने । भे न भाइ अस अहहि न होने ॥

पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे । सिय रघुवीरहि प्रानपिआरे ॥१॥

अर्थ छोटे लोने लखनलाल लाड प्यार के योग्य हैं । ऐसे भाई न हुए, न हैं, न होनेवाले हैं । पुरवासियो को प्रिय माता पिता के दुलारे और रामजानकी को तो प्राण से प्यारे हैं ।

व्याख्या लक्ष्मणजी की साथरी नहीं देखी । इससे भरतजी समझ गये कि लक्ष्मणजी नहीं सोये । सरकार का पहरा देते थे । अतः कहते हैं कि लक्ष्मणजी पहरा देने योग्य नहीं हैं । लाड प्यार के योग्य हैं । छोटे भाई हैं । पुत्र के समान हैं । सुन्दर सलोने हैं । पहरा इन्हे शोभा भी नहीं देता । इतिहास पुराण मे भी ऐसे भाई सुनने को नहीं मिले जो राज्य छोड़कर भाई के साथ वन चला जाय । इस समय भी लक्ष्मण से भाई वहाँ हैं और भविष्य मे भी सम्भावना नहीं । क्योंकि द्वापर मे मे तो सत्त्वगुण स्वल्प होता है । कलियुग मे तो नाम मात्र शेष रह जाता है । उनमे ऐसे भाइया के होने की कौन सी आशा है ?

लक्ष्मणजी मे गुण ही ऐसे हैं कि सब कोई इनका सम्मान करता है । भाईपन जो इनका है वह तो आँव के सामने है । प्रजापालक भी ये ऐसे हैं कि पुरजन को प्रिय है । मातृ पितृ भक्ति ऐसी है कि पितु मातु दुलारे हैं । अर्थात् सभी लखनलाल का मुँह जोहते हैं । रामजानकी के तो परम प्रिय हैं । भाव यह कि जन्म से इनकी लालना सब ओर से होती आयी है । इन्हे कभी कष्ट का सामना ही नहीं पडा ।

मृदु मूरति मुकुमार सुभाऊ । तात वाउ तन लाग न काऊ ॥

ते वन सहहि विपति सब भाँती । निदरे कीटि कुलिम एहि छाती ॥२॥

अर्थ मूर्ति कोमल है । स्वभाव मुकुमार है । गरम हवा कभी शरीर मे लगी नहीं । वे वन मे सब भाँति विपति सहते हैं । इस मेरी छाती ने कीटि वज्रो का निरादर किया ।

व्याख्या जैसे शरीर सुकुमार होने से शीतोष्ण सहने में असमर्थ हैं उसी भाँति सुकुमार स्वभाव होने से किसी की बात सह नहीं सकते। जन्म से ऐसे दुलार में पल हैं कि गरम हवा शरीर में बभी लगी नहीं। इस गरमी में क्या वह अयोध्या में घर के बाहर निकलने पाते।

आज वे वन में जहाँ गरमी से बचने के लिए कोई आश्रय नहीं है और भयानक लू बहा करती है वहाँ सब प्रकार की विपत्ति सहन कर रहे हैं और कहाँ तक कहे साते भी नहीं। रात दिन पहरा दे रहे हैं इससे स्पष्ट है कि यह ज्येष्ठ का समय है और यह सब मेरे कारण हो रहा है। अतः मेरी छाती फट जानी चाहिए। पर वह नहीं फटती। उसके सामने कोटिवज्र भी कुछ नहीं है।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर ॥

पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सवहि सुखदाता ॥३॥

अर्थ रामजी ने जन्म लेकर सारे जगत् को उज्ज्वल कर दिया। वे रूप शील सुख सब गुणों की खानि हैं। पुरवासी कुटुम्बी गुरु पिता और माता सभी को राम का स्वभाव सुख देनेवाला है।

व्याख्या पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख है। सो रामजी सा पुण्य किसका हो सकता है जिसका जन्म से ही ससार में उज्ज्वल फैल गया। यथा भुवन कोटि कल्याण कद जायो पूत कौसल्या रानी। चारो भाई रूप शील और गुण के धाम हैं। उनमें भी रामजी अधिक सुख सागर हैं। यथा चारिउ रूप शील गुण धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। यहाँ सुख सागर के गुणाधिक्य का वर्णन करते हुए भरतजी कहते हैं रामजी का स्वभाव ही ऐसा पुण्यमय है कि उससे प्रजा कुटुम्बी गुरु पिता और माता का सुख उपजता है। यथा अस सुभाउ कहूँ सुनौ न देखौ। केहि खगेस रघुपति सम लखौ।

वैरिउ राम बडाई करही। बोलनि मिलनि विनय मन हरही ॥

सारद कोटि कोटि सत सेखा। करि न सकहि प्रभु गुन गन लेखा ॥४॥

अर्थ शत्रु भी रामजी की बड़ाई करते हैं। उनका बोलना मिलना और विनय मन का हरण कर लेता है। कोटि कोटि शत शेष आदर के साथ प्रभु के गुणगान की लखा नहीं कर सकते।

व्याख्या स्वभाव का सौष्ठव कहाँ तक कहा जाय। इतने से ही समझ लेना चाहिए कि वैरी भी रामजी की बड़ाई करते हैं। क्योंकि रामजी का स्वभाव उनके भी प्रतिकूल नहीं पड़ता। यथा जासु सुभाउ अरिहि अनुकूल। रामजी के बालने मिलन और विनय से उनका भी मन हरण हो जाता है। यहाँ वैरी से कुल वैरी अभिप्रेत है। महाराज चक्रवर्तीजी कहते हैं सेवक सचिव सकल पुरवासा। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सवहि राम प्रिय जेहि विधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि साही। नियम यही है कि वैरी सदा निन्दा ही करते हैं।

क्योंकि वे गुण को नहीं देख सकते । यथा : बैर अन्व • प्रेमहि न प्रबोधू । पर सरकार के गुण ऐसे हैं कि अन्व भी बिना अनुभव विये नहीं रह सकता ।

यद्यपि प्राचीन पाठ सादर सेप है । परन्तु ठीक पाठ सारद सेप है । लेखक के प्रमाद से सारद के स्थान पर सादर लिख गया । शारदा वाग्देवता हैं । जितना वाग्व्यवहार है सो उन्हीं की कृपा से चालू है । अतः उनसे बढ़कर लेखा करनेवाला स्वर्गादि लोको में कौन है और अति बुद्धिमान् शेषजी को सहस्र शीप हैं और प्रत्येक मुख में दो दो जिह्वा हैं । अतः वर्णन को इससे अधिक सामग्री किसी के पास हो नहीं सकती । ये पाताल के वक्ता हैं । सो दोनों लोकों के प्रधानवक्ता कोटि सख्या में प्रभु के गुणों को लेखा करना चाहे तो कर नहीं सकते । क्योंकि सरकार के गुणों का अन्त ही नहीं । जलसीकर महि रज गनि जाही । रघुपति गुन नहि वरनि सिराही ।

दो. सुख स्वरूप रघुवंस मनि, मंगल मोद निधान ।

ते सोवत कुम डारि महि, विधि गति अति बलवान ॥२००॥

अर्थ : रघुकुलमणि रामजी सुखस्वरूप ही हैं । मङ्गल और आनन्द के निधान हैं । वे पृथ्वी पर कुश बिछाकर सोते हैं । तो विधाता की गति अति बलवती है ।

व्याख्या : श्रीरामजी तो सुख के स्वरूप ही हैं । मङ्गल और मोद के निधान हैं । यथा : जो आनन्द सिंधु सुख रासी । सीकरते त्रैलोक्य सुपासी । मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी । अर्थात् आनन्दमङ्गल के स्रोत हैं । भूपति भवन सुभाष सुहावा । सुरपति सदन न पटतर आवा । मनिमय रचित चारु चौवारे । जनु रतिपति निज हाथ सँवारे । सुभग सुरभि पयफेन समाना । कोमल कलित सुपेती नाना । पलग मजु मनि दीप जहँ सब विधि सकल सुपास । ऐसे सुख सामग्री के साथ शयन करनेवाले वे कुशा बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं । तो यहाँ यही कहना पड़ता है कि विधि की गति ही बड़ी बलवती है । जो अचिन्त्य कार्य बिना कारण के कर डालती है ।

राम सुना दुखु कान न काऊ । जीवन तरु जिमि जोगवद् राऊ ॥

पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती । जोगवहि जननि सकल दिन राती ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कभी कान से भी दुःख नहीं सुना । चक्रवर्तीजी जीवनवृद्ध की भाँति रक्षा करते थे । जैसे पलक आँखों की और सर्प मणि की रक्षा करता है । उसी भाँति माताएँ रक्षा करती थी ।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी को आज्ञा थी कि कुमार रामभद्र बड़ा करणाकर तथा वैराग्यवान् हैं । उसके पास कोई दुःख का समाचार न पहुँचने पावे । दुःख के दृश्य देखने की बात तो दूर है । इसलिए रामजी ने कभी कान से भी दुःख नहीं सुना । ऐसी 'जनश्रुति' है कि किसी किसी का प्राण किसी वृद्ध में बसता है । उसके हरे रहने से वह स्वस्थ रहता है । मुखाने से रुग्ण होता है और सूखने से मर जाता

है। एतद्विषयिणी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। अतः प्राणपन से उस जीवन तरु की लोग रक्षा करते थे। क्योंकि उनका जीवनाधार वह वृक्ष था। महाराज चक्रवर्ती के जीवनवृक्ष रामजी थे। उसी भाँति वे उनकी रक्षा करते थे। यथा : सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाई। राम देत नहि बने गोसाईं।

केवल कौसल्याजी ही नहीं बल्कि सब माताएँ दिन रात बड़ी सावधानी और प्रेम से रक्षा करती थी। जैसे पलक गोलक की रक्षा दिन रात करता है। 'कोई आघात आ जाने पर अपने ऊपर उसे ले लेता है। इतने से काम न चला। इसलिए फणिमणि से उपमा दी। क्योंकि फणि : सर्प मणि के पास किसी गैर को आने नहीं देता और बलप्रदर्शन करनेवाले को यमलोक पहुँचा देता है। इसी भाँति जननी भी रामजी की रक्षा करती थी। अथवा जागृतावस्था की उपमा पलक नयन से है और सुषुप्तावस्था की उपमा फणिमनि से है। अथवा रामजी की रक्षा की उपमा पलक नयन से है और जानकीजी की रक्षा की उपमा फणिमणि से है। यथा सुदर बधुन्ह सास लै सोई। फनिकन्ह जिमि निज मनि उर गोई।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कद मूल फल फूल अहारी ॥
धिग कैकेई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ॥२॥

अर्थ : वे अब पैदल जङ्गल में घूमते हैं और वन्द मूल फल और फूल खाते हैं। अमङ्गल की मूल कैकेयी को धिक्कार है जो अपने प्राणप्रियतम के प्रतिकूल हो गयी।

व्याख्या : राजमहल के बाहर आँख के ओट जाने देने में जिसके इतना कडा पहरा रहता था। सवारी की इतनी बड़ी व्यवस्था थी। दुःख का दृश्य जिसके सामने आने नहीं पाता था और न दुःख के समाचार सुनने पाते थे। वे रामजी अब जङ्गल में घूमते हैं। उरपहि धीर गहन सुधिआएँ। और वहाँ भी पैदल घूमते हैं। यथा विनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। सकर साखि रहेहुँ एहि धाएँ। अन्न का अधिकार नहीं। नहीं तो जङ्गल को ही मङ्गल बना दिया जाता। सब कुछ यही प्रस्तुत कर दिया जाता। जिस भाँति राजा लंग मृगया के लिए जंगल में जाते हैं उसी भाँति वनवास मङ्गलमय हो जाता। आज सब कुछ रहते किसी को सुख देने का सामर्थ्य नहीं।

उस सामर्थ्य की हरण करनेवाली कैकेयी को धिक्कार है। यही अमङ्गल की मूल है। मेरे घर में अमङ्गल इसी के कारण हुआ। स्त्रियो के लिए पति ही सब कुछ है। यथा : मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। सुत सुदर सुसील सुखदाई। जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय विनु तियहि तरनिहुते ताते। तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू। भोग रोग सम भूपन भारू। जम जातना सरिस ससारू। सो यह अपने प्राणप्रियतम महाराज चक्रवर्ती के प्रतिकूल हो गयी। अथवा जीव जन्तु असको जग माँही। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाँही। मे अति

अहित रामु तेउ तोही । को तू अहसि सत्य कहु मोही । सबको रामजी प्राणप्रियतम हैं । उनसे भी प्रतिकूल हो गयी ।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी । सबु उत्पातु भयउ जेहि लागी ॥
कुल कलंकु करि सृजेउ विधाता । साँइ दोह मोहि कीन्ह कुमाता ॥३॥

अर्थ : मुझ पापसिन्धु भाग्य रहित को धिक्कार है । जिसके लिए ये सब उत्पात हुए । विधाता ने मुझे कुलकलङ्क पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामि-द्रोही कर दिया ।

व्याख्या : कैकेयी भी प्राणप्रियतम के प्रतिकूल पुत्र स्नेह के कारण हुई । अतः भरतजी अपने को धिक्कार देते हैं । मैं पापसिन्धु हूँ । क्योंकि दुर्योधन विना पाप के नहीं होता । मैं ऐसा अपयश भाजन पैदा हुआ । अतः अघउदधि हूँ और अभागी हूँ । भाग्यदोष से यह सब उत्पात मेरे लिए हुआ । अथवा सब उत्पात का मूल कारण होने से मैं अभागी हूँ । भवभञ्जन श्रीरामजी के विमुख होने की परिस्थिति आ पड़ी । कोई कुमति कैकेयी केरी । परी जासु फल विपति घनेरा । चक्रवर्तीजी का स्वर्गवास और राम वनवास संक्षेपतः ये ही दोनों विपतियाँ हैं । भरतजी राज्य मिलने पर अपने को अघउदधि और रामजी के वनवास से अपने को अभागी मानते हैं । अथवा माताओं के विधवापन का कारण मानते हुए अपने को अभागी कहते हैं । यथा : को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी । मोर जनम रघुवर बन लागी । व्यर्थ काह पछिताउँ अभागी ।

भरतजी कहते हैं कि ब्रह्मा ने ही मुझे कुल का कलङ्क बनाकर सिरजा । क्योंकि मैं अपयश भाजन हुआ और प्रियजन द्रोही हुआ और स्वामिद्रोह तो मुझे कुमाता के प्रसाद से प्राप्त हुआ । कुपुत्रो जायेत ववचिदपि कुमाता न भवति । जो अपने पुत्र को भगवद् द्राही बनावे अपयश का भाजन बनावे वही कुमाता है ।

सुनि सप्रेम समुझाव निपादू । नाथ करिअ कत वादि विपादू ॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि । यह निरजोसु दोसु विधि वामहि ॥४॥

अर्थ : सुन करके प्रेम के साथ निपादराज समझाते हैं कि हे नाथ ! आप व्यर्थ विपाद क्यों करते हैं । रामजी तुम्हें प्रिय है और रामजी को तुम प्रिय हो । इसमें वाम विधि का ही सच्चा : निखालिस दोष है ।

व्याख्या : जब स्वामी को सेवक प्रिय है और सेवक स्वामी प्रिय है तब स्वामी द्रोही की बात कहाँ से आयी ? यहाँ पर तो निष्केवल दोष वाम विधि का है और स्थली पर तो कुछ करणो कुछ कर्म गति मिलकर ही कार्य होता है । यहाँ तो करणो कुछ भी नहीं केवल कर्मगति काम कर रही है ।

प्रेमी को प्रेम से ही सब समझाया जाता है तब वह समझता है नहीं तो नहीं समझता । अतः भरतजी को निपादराज प्रेम से नमझा रहे हैं । प्रेम का पंथ ही

ऐसा है । निपादराज भरतजी से कहते हैं कि आप का विषाद व्यर्थ है । न उसके लिए कोई कारण है और न फल ही है ।

छं. विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी ।

तेहि राति पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सरहना रावरी ॥

तुलसी न तुम सो राम प्रीतम कहत ही सोहै किये ।

परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरजु हिये ॥

अर्थ - विधि वाम की करणी बड़ी कठिन है जिसने माता को पागल बना दिया । उस रात में प्रभु बार बार तुम्हारी सराहना करते थे । तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नहीं है । मैं इस बात की शपथ लेकर कहता हूँ । परिणाम में मङ्गल जानकर अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिये ।

व्याख्या - वाम विधि की करणी बड़ी कठिन होती है । वह स्वभाव ही पलट देती है । यथा - भयउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ । माता ऐसी थी नहीं और न अब ऐसी है । बीच में ही अकस्मात् उसके स्वभाव में घोर परिवर्तन हो गया । जैसे कोई पागल हो जाता है । आप विचार कर देखिये ।

कैकयी करी घौ चतुराई कौन ।

राम लखन सिय बनहि पठाए पति पठए सुरभौन ॥१॥

वहा भलो धौ भयो भरत को लगे तरुनतन दोन ।

पुरवासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति होन ॥२॥

कौसल्या दिनरात बिसूरति बैठि मनही मन मौन ।

तुलसी उचित न होइ रोइवो प्रान गए संग जौन ॥३॥

सुमति कुमति में परिवर्तित हो गयी । हिताहित परिज्ञान शून्य हो गयी : चरइ हरित तून बलि पसु जैसे । अपने होश में कैकेयी ने कुछ नहीं किया । अतः मैं उनका कुछ दोष नहीं मानता । प्रभु के हृदय में भी कुछ नहीं है । वे आप पर सन्देह नहीं करते । जिस रात को यहाँ ठहरे थे । बार बार आपकी प्रशंसा करते थे । निपादराज भरतजी के आश्वासन के लिए शपथ लेते हैं कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नहीं है । क्योंकि जब पहिले पहल साथरी पर सोये तो वह समय कटु कहने का था सो आप की प्रशंसा कर रहे थे । सरवार जहाँ जाते थे भरतलाल की भूरि भूरि प्रशंसा करते थे । जिसमें उनकी कीर्ति को कलङ्कपङ्क स्पर्श न कर सके ।

इस समय तो अमङ्गल हो ही गया । पर परिणाम में मङ्गल होगा । यत्तदग्रे विपमिव परिणामेऽमृतोपमम् । तत्सुख सात्त्विक प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् । जो सुख प्रारम्भ में विष की भाँति होता है । पर परिणाम उसका अमृत के समान होता है । वही सात्त्विक सुख है । वह आत्मबुद्धि के प्रसाद से प्राप्त होता है । अतः परिणाम में सात्त्विक सुख की प्राप्ति होगी । इस बात को मन में लाकर अधीर न होइये । हृदय में धैर्य को स्थान दीजिये ।

दो अतरजामी रामु, सकुच सप्रेम कृपायतन ।

चलिअ करिअ विश्रामु, एह विचार दढ आनि मन ॥२०१॥

अर्थ रामजी अन्तर्यामी हैं । सङ्कोच प्रेम और कृपा के आयतन हैं । ऐसा विचार मन में दृढ़ करके चलिये । विश्राम कीजिये ।

व्याख्या निपादराज कहते हैं कि रामजी अन्तर्यामी हैं । उनसे कुछ छिपा नहीं है । यथा तुमते कछु न छिपी करुनानिधि तुम हो अतरयामी । भीतर की बात सब जानते हैं । तब निर्दोष को भय क्या ? तिस पर सङ्कोची स्वभाव है । यथा कहें न राम सम स्वामि सँकोची । रामजी कभी शील नहीं ताड़ेंगे । बात बनी बनायी समझिये । प्रेमी हैं । आप के सामना की देर है । प्रेम रोके न रुकेगा । कृपायतन हैं । आपको दुःखी देखकर कृपा करेंगे । इस भाँति चार कारण धैर्य धरने का देकर निपादराज कहते हैं कि बहुत देर हो गयी । आप चलकर विश्राम करिये । जो कारण मैंने दिये हैं । उन्हें आप भी जानते हैं । पर उन्हें दृढ़ रूप से मन में स्थान नहीं देते हैं इसलिए व्यर्थ विपाद कर रहे हैं ।

सखा वचन सुनि उर धरि धीरा । वास चले सुमिरत रघुवीरा ॥

एह सुधि पाइ नगर नर नारी । चले विलोकन आरत भारी ॥१॥

अर्थ सखा का वचन सुनकर हृदय में धैर्य धारण किया और रामजी को स्मरण करते डेरे पर चले । यह खबर पाकर अवध के नर नारी अत्यन्त आर्त होकर देखने चले ।

व्याख्या सखा का वचन सुनकर धैर्य धारण किया । समझते हैं कि यह अन्यथा नहीं कहेगा । मृत को प्रीति प्रतीत मीत की । श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि प्रीति तो बेटे पर होती है । परन्तु विश्वास तो मित्र का ही हाता है । सखा ने कहा चलिअ करिअ विश्राम । अतः रघुवीर का स्मरण करते डेरे पर चल । भाव यह कि रघुवीर हैं । सब सङ्कोचों के सामना करने में समर्थ हैं । सखा के वचनानुसार विचार को दृढ़ करने के लिए रघुवीर का स्मरण करते हैं ।

जैसा श्रेष्ठ पुरुष आचरण करता है वैसा ही दूसरे भी आचरण करते हैं । वह जो प्रमाण करता है ससार उसी का अनुसरण करता है । खबर फैल गयी कि भरतजी शयनस्थान के दर्शन के लिए गये हैं । अब सब अयोध्यावासियों शयनस्थान के दर्शन के लिए आर्त हो उठे कि भरतजी चल गये हम लोगों को नहीं ले गये । अथवा उनके भी नयन मन में जर्जनि है । उस शोतल करने के लिए चले ।

परदक्षिणा करि करहि प्रनामा । देहि कैकइहि खोरि निकामा ॥

भरि भरि बारि विलोचन लेही । वाम विधातहि दूषन देही ॥२॥

अर्थ प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी का अत्यन्त दोष देते हैं । आँखों में आँसू बार बार आ जाता है और वाम विधि का दोष देते हैं ।

व्याख्या : जिस भाँति भरतजी ने जाकर कुश साथरी की प्रदक्षिणा की थी और प्रणाम किया था उसी भाँति सारे अयोध्यावासी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं। उन्हे भी साथरी देखकर विषाद होता है। अतः वे सब कैकेयी की निन्दा करते हैं कि यह सब अनर्थ केवल इसी के दोष से हुआ।

अत्यन्त दुःख से आँखों में जल भर आता है। सोचते हैं कि क्या घाटा रहा। जङ्गल में ही सब भोग की सामग्री जुट जाती। सब कुछ रहते कुछ करते नहीं बन रहा है। अतः वाम विधाता को दोष देते हैं। जिसके कारण कैकेयी के स्वभाव ने पलटा खाया। नहीं तो कैकेयी बड़ी शीलवती थी।

एक सराहहि भरत सनेह । कोउ कह नृपति निवाहेउ नेह ॥

निर्दाहि आपु सराहि निपादहि । को कहि सकइ विमोह विपादहि ॥३॥

अर्थ : कोई भरतजी की प्रशंसा करते हैं। कोई कहते हैं कि स्नेह का निर्वाह तो चक्रवर्तीजी ने किया। अपनी निन्दा और निपाद की सराहना करते हैं। विमोह के विपाद को कौन कह सकता है।

व्याख्या : कोई भरतजी के स्नेह की प्रशंसा करता है कि इन्हीं के प्रेम से रामजी के दर्शन की आशा है। अथवा इसलिए प्रशंसा करते हैं कि उनके कारण से साथरी का दर्शन हुआ। हम लोग तो सोच भी नहीं सकते थे। भरतजी का ऐसा प्रेम है कि सरकार के इस चिह्न को खोजकर निकाला। कोई चक्रवर्ती जी के स्नेह के निर्वाह की प्रशंसा करते हैं कि सत्य के पास में बँधकर यद्यपि रामजी को वन दिया पर शरीर का परित्याग करके स्नेह का भी भलीभाँति निर्वाह किया। यथा : नेह निवाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई। वे लोग कहते हैं कि प्रेम का पन्थ ही ऐसा कठिन है कि निवह जाय तब जान पड़े कि प्रेमी हैं। सो राजा की निवह गयी और किसी से प्रेम निवाहते न बना। भरतजी भी धर्म से बँधे हैं। देखें यह कैसे नेह का निर्वाह करते हैं।

अयोध्यावासी अपनी निन्दा करते हैं कि हम लोग सम्पत्ति के साथी हैं। निपादराज की प्रशंसा करते हैं कि यह विपत्ति का साथी है। जन्म से हमारा साथ था। सो हम में उतना प्रेम नहीं जितना निपादराज में है। बात फैल गयी कि कुटुम्ब के साथ मरने को तैयार था। हम लोग मरने को तैयार नहीं हुए। माधुर्य में विपाद बढ़ा। अतः विमोह कहते हैं। साथरी देखने से अवधवासियों को करुणा उमड़ आयी। शोक और मोह ये ही दो ससारवृक्ष के बीज हैं। परन्तु ये ही भगवत्सम्बन्धी होने से कल्याण के हेतु हो गये।

एहि विधि राति लोगु सबु जागा । भा भिनुसार गुदारा लागा ॥

गुरहि सुनाव चढ़ाइ सोहाई । नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥४॥

दड चारि महं भा सबु पारा । उतरि भरत तब सर्वाहि सँभारा ॥५॥

अर्थ . इस भाँति रात भर सब लोग जागते रहे। सवेरा होते ही गुदारे की

नाव लग गयी । पहिले अच्छी और सुन्दर नाव पर गुरुजी को चढ़ाया । नयी नावों पर माताओं को चढ़ाया । चार घड़ी में सब पार हो गये । तब भरतजी उतरकर सबको सँभालने लगे ।

व्याख्या इस भाँति रोते गाते रात बीती । करुणा से किसी को नीद न आयी । केवल कैकेयी भरत चक्रवर्तीजी और निपादराज की ही चर्चा होती रही । उधर निपादराज का इन्तजाम है । सवेरा होते ही नावें आकर घाट पर लग गयी । सुन्दर और मजबूत नाव पर पहिले गुरुजी का चढ़ाया । सभी मङ्गलयात्रा में गुरुजी की ही सवारी पहिले निकलती है अरुधती अर अग्नि समाजू । रथ चढ़ि चलत भये मुनिराजू । इसलिए एक नाव केवल गुरुजी के लिए है । माताओं को नयी नावों पर चढ़ाया जिसमें भीतर जल आने का भय न रहे । भरतजी सबके पीछे उतरे । सेना बड़ी थी इसलिए कई खेवा करना पड़ा । चार घड़ी में सब पार हो गये । टिकने के समय भी • भरत साथ सबही कर लीन्हा और उतरने पर भी उत्तरि भरत तत्र सबहि सँभारा ।

दो. प्रात क्रिया करि मातु पद, वदि गुरहि सिरु नाइ ।

आगे किये निपाद गन, दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥२०२॥

अर्थ • प्रात काल की क्रिया करके माता के चरणों की वन्दना करके गुरुजी को सिर नवाया और निपादगण को आगे करके सेना का कूच बोल दिया ।

व्याख्या • उस पार उतरकर प्रात काल का कृत्य किया । तब माता की वन्दना पश्चात् गुरु की वन्दना की । आगे का रास्ता निपादगण का देखा है । अतः उन्ही को आगे कर दिया और सेना चल पड़ी । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । ऐसा वेद की आज्ञा है । अतः माता का चरण वन्दन करके तब गुरुजी की वन्दना की ।

कियेउ निपादनाथु अगुआई । मातु पालकी सकल चलाई ॥

साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा । विप्रन्ह सहित गवन गुर कीन्हा ॥१॥

अर्थ • निपादराज ने अगुआई किया • अर्थात् आगे आगे चले । माताओं की पालकियाँ उसके बाद चलायी गयी । छोटे भाई को बुलाकर साथ में दिया । ब्राह्मणों के साथ गुरुजी चले ।

व्याख्या अपने राज्य की सीमा से बाहर वन में चल रहे हैं इसलिए इन्तजाम बदल गया । सबसे पहिले गुरुजी की सवारी चलती थी । सो मुरक्षा की दृष्टि से सबके पीछे चली । सत्रके आगे सेना चल रही है । उसके भी आगे रास्ता दिखलाने के लिए निपादगण चल रहे हैं । उसके बाद माताओं की पालकियाँ चली । उन पालकियों के आगे आगे स्वयं निपादराज चल रहे हैं । माताओं की रक्षा भरतजी ने निपादराज के जिम्मे अपना प्रतिनिधि बनाकर किया और शत्रुसूदनजी को निपादराज के साथ कर दिया । उसके बाद ब्राह्मणों के ममाज के साथ गुरुजी

चले । इन्तजाम बरनेमाले से कोई धारण नही पूछता । वह जैसा उचित है वैसी व्यवस्था करता है : एक नायक की आज्ञा चलनी चाहिए । क्योंकि बिना नायक के नाश होता है और अनेक नायक के होने से भी नाश होता है । अनायका विनश्यन्ति बहुनायका ।

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू । सुमिरे लखन सहित सिय रामू ॥
गवने भरत पयादेहि पाएँ । कोतल संग जाहि डोरिआएँ ॥२॥

अर्थ • भरतजी ने स्वयं गङ्गाजी को प्रणाम किया । लक्ष्मणजी के सहित सीताराम का स्मरण किया । भरतजी पाँव पैदल चले । कोतल त्रिना सवार के घोड़े बागडोर से बँधे चले जा रहे थे ।

व्याख्या • आने के समय भी गङ्गाजी को प्रणाम किया । अब जाने के समय भी प्रणाम कर रहे हैं । भेद इतना ही था कि आने के समय रामघाट कहूँ कीन्ह प्रनामू । अब उस पार चले गये हैं । उधर जगल होने से घाट नहीं है । अतः सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू लिखा । लक्ष्मणजी के सहित सीतारामजी का स्मरण करते हैं । क्योंकि वे ही यात्रा के लक्ष्य है । यथा सोक समाज राज बेहि लेखे । लखन राम सिय पद विनु देखे ।

यहाँ से ही रामजानकी तथा लक्ष्मणजी ने पाँव पैदल यात्रा की थी । अतः यहाँ से भरतजी ने पैदल यात्रा आरम्भ की । अयोध्या से ही पैदल चले थे पर माताजी ने रोक दिया । कहा तुम्हारे चलत चलिहि सब लोगू । सकल सोक कृस नहिं मग जोगू । फिर भी वही बात होगी । इसलिए इस बार भरतजी ने सबको आगे चला दिया । आप पीछे रह गये । जिसमें उन्हें पैदल देखकर लोग सवारी से उतर कर पैदल न चलने लगे । सेवकों ने सब समाज को चले जाते देखकर भरतजी की सवारी के लिए घोड़े रख लिये । समझा कि कुछ दूर पैदल चलने की इच्छा है । फिर सवारी का काम पड़ेगा ही । शत्रुघ्नजी भी साथ नहीं हैं । अतः रथ पर चलने की इच्छा नहीं मालूम होती है । इसलिए उन सबों ने भरतजी के सवारी के घोड़े रोक रखे । वे बिना सवार को बागडोर से बँधे चल रहे हैं ।

कहहि सुसेवक बारहि वारा । होइअ नाथ अस्व असवारा ॥
रामु पयादेहि पाय सिधाये । हम कहँ रथ गज वाजि बनाये ॥३॥

अर्थ • सुसेवक लोग बार बार कह रहे हैं कि सरकार घोड़े पर सवार हो जायें । रामजी पाँव पैदल ही गये हैं और मेरे लिए रथ हाथी घोड़े बनाये गये हैं ।

व्याख्या जब देख लिया कि मन बहलाने के लिए जितनी दूर पैदल चला जाता है उस सीमा का अतिक्रमण हो गया । तब सुसेवकों ने कहा कि सरकार घोड़े पर सवार हो जायें । वे सुसेवक हैं । स्वामी का उचित से अधिक पैदल चलना सहन नहीं कर सकते । सेवक समय न ढीठ ढिठाई । अतः बोल बैठे । भरतजी ने उस कहने की उपेक्षा की । आगे बढ़ते ही चले गये । सुसेवकों से नहीं रहा गया ।

फिर कहा फिर कहा । तब भग्नजी बोले कि सरकार रामजी तो पैदल गये । रथ हाथो घोडे सब उनके लिए हैं । मेरे लिए नहीं है । यथा सपति सब रघुपति के आहो । मैं सेवक हूँ । जहाँ उनका पैर पड़ा है वहाँ मेरा सिर लगाना चाहिए । वहाँ मैं सवारी पर कैसे चलूँ ।

सिर भर जाऊँ उचित अस मोरा । सब ते सेवक धरमु कठोरा ॥

देखि भरत गति सुनि मृदु वाणी । सब सेवक गन गरहि गलानी ॥४॥

अर्थ : मेरे लिए उचित तो यह था कि सिर के बल जाता । क्योंकि सब धर्मों से कठिन सेवक धर्म है । भरतजी की अवस्था देखकर और कोमल वाणी सुनकर सेवकगण ग्लानि से गले जा रहे थे ।

व्याख्या . कहहु तो वहाँ चरन कहैं माथा । जहाँ मालिक का चरण वहाँ सेवक का भस्तक । अत उचित तो था कि जहाँ रामजी पाँव के बल चले वहाँ मैं सिर के बल चलूँ । परन्तु यह सम्भव नहीं है । इससे कम से कम मैं पैदल तो चलूँ । सेवक का ठीक धर्म पालन में मैं असमर्थ हो रहा हूँ ।

भरतजी की प्रेम परवश दशा देखकर और मृदु वाणी सुनकर सेवक लोग ग्लानि से गले जा रहे थे । अर्थात् उन्हें ग्लानि हुई कि हम सुसेवक कहलाकर भी सेवाधर्म से अनभिज्ञ ठहरे और भरतजी स्वामी होकर सेवाधर्म में ऐसे पटु हैं । भरतजी ने मृदु वाणी कहा । धिक्कारा नहीं पर बात लग गयी । ऐसे उच्चकोटि के सेवक हैं कि उन्हें अविवक्षित ध्वनि से ग्लानि हुई ।

दो भरत तीसरे पहर कहैं, कीन्ह प्रवेशु प्रयाग ।

कहत राम सिध राम सिध, उमगि उमगि अनुराग ॥२०३॥

अर्थ भरतजी ने तीसरे पहर में प्रवेश किया । सीताराम सीताराम अनुराग के उमङ्ग में कहते जा रहे थे ।

व्याख्या सब लोग बहुत पहिले प्रयाग पहुँच गये । पर भरतजी तीसरे पहर में प्रयाग पहुँचे । ये पैदल पाँव बिना जूते के चल रहे थे । रेत धूप से जल रही थी । अत चलने में अधिक कठिनता पड़ी । चित्रकूट जाने की इतनी स्वरा होने पर भी तीर्थ को बाँया नहीं दिया । प्रयागराज चले गये । मनसा वाचा कर्मणा धर्म प्रवृत्ति । यथा . कर्मणा कीन्ह प्रवेश प्रयाग । वचसा कहत रामसिध रामसिध । मनसा : उमगि उमगि अनुराग ।

झलका झलकत पायन्ह कैसें । पंकज कोस ओस वन जैसे ॥

भरत पयादेहि आए आजू । भयउ दुखित सुनि सकल समाज ॥१॥

अर्थ चरणों में झलका • छाले वैसे चमक रहे हैं जैसे कमल के कोष में ओस के कण चमकते हैं । भरतजी आज पैदल ही आये । यह समाचार सुनकर सब समाज दुखी हो उठा ।

व्याख्या जलती हुई धूलि में बिना जूते के चलने से सम्पूर्ण चरणों में छोटे छोटे छाले पड़ गये । परन्तु चरणों की शोभा और भी बढ़ गयी । कमल के कोप पर ओस के कणों के पड़ जाने पर जैसी कमल की शोभा होती है वैसी ही चरणों की शोभा हुई । डेरे पर आने पर जब धूलि धूसरित चरण धोये गये तब यह शोभा दिखायी पड़ी ।

समाचार सब समाज में फैल गया । सब चिन्तित थे कि भरतजी के आने में देर क्यों हो रही है । जब मालूम हुआ कि आज भरतजी पैदल ही आये । तो यह सुनकर सब समाज दुःखी हो गया । सब लोग समझ गये कि जहाँ से जहाँ तक रामजी पैदल गये हैं भरतजी सवारी पर नहीं चलेंगे । अब भरतजी की यात्रा पैदल होगी । कोमल चरण हैं । जेठ की धूप से पृथ्वी तप रही है । पहिले दिन के चलने में ही पैर में छाले पड़ गये । यह पूरा रास्ता कैसे कटेगा ? भरतजी का निश्चय है यह टल भी नहीं सकता । अतः सब समाज दुःखी हो गया । माता लोग भी उनके सेवा धर्म में बाधक नहीं होना चाहती ।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाये । कीन्ह प्रनामु त्रिवेनिहि आये ॥
सविधि सितासित नीर नहाने । दिये दान महिसुर सनमाने ॥२॥

अर्थ पता लगा लिया कि सब लोग नहा चुके । तब त्रिवेणी में आकर प्रणाम किया । विधि के साथ श्याम और श्वेतजल के सङ्गम में स्नान किया । ब्राह्मणों का सम्मान किया और दान दिया ।

व्याख्या आते ही भरतजी सबका संभाल करते हैं । पता लगा कि सब लोग स्नान कर चुके । क्योंकि पहिले ही पहुँच चुके थे । तब आप स्नान के लिए सङ्गम पर गये और भगवती त्रिवेणी का प्रणाम किया ।

सितासित शब्द से प्रयागराज का वेद प्रतिपाद्य होना द्योतित किया । यथा सितासिते सरिते यत्र सगते । श्रुति । प्रयागराज में त्रिवेणी स्नान की जो विधि है । उस विधि से स्नान किया । सगम सिंहासन सुठि सोहा । चँवर जमुन अरु गग तरगा । देखि होहि दुख दारिद भगा । स्नान के उपरान्त दान की विधि है । अतः ब्राह्मणों को दान दिया और सम्मान किया । क्योंकि सम्मान सबसे बड़ा दान है । यथा तुलसी कहत पुकार के मुनहु सकल दै कान । हेम दान गज दान ते बडो दान सम्मान । सरकार के स्नान के समय कहा मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा । पूजि यथाविधि तीरथ दवा । दान देना नहीं कहा । क्योंकि वे उदासीन थे । भरतजी के साथ धन है । अतः दान सम्मान दोनों लिखा । बिना सम्मान का दान व्यर्थ है और बिना दान का सम्मान केवल दम्भ है । अतः दान सम्मान दोनों होना चाहिए ।

देखत स्यामल धवल हलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल काम प्रद तीरथ राऊ । वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ वाली और सुफेद लहरो को देखकर भरतजी ने पुलकित होकर हाथ

जोडा । हे तीर्थराज ! आप सब कामनाओं के देनेवाले हैं । आपका प्रभाव ससार में प्रकट है और वेद में भी विदित है ।

व्याख्या : स्यामल धवल हिलोरे के देखने से भरतजी को रामजानकी का स्मरण हो उठा । अतः शरीर में पुलक हो गया । यथा : उत्तरि नहाये जमुन जल जो शरीर सम स्याम । तीर्थराज को प्रणाम करना चाहिए और मनोरथ प्राप्ति के लिए वरदान माँगना चाहिए । क्योंकि तीर्थराज का भण्डार चारों फल से भरा पूरा है । यथा : चारि पदारथ भरा भंडार । सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम । वदो वेद पुरान गन कहहिं विमल गुनग्राम । इस दोहे के पहिले पद से जग प्रगट प्रभाक और दूसरे पद से वेद विदित पद की व्याख्या की ।

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ॥

अस जिय जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक वानी ॥४॥

अर्थ : मैं अपना धर्म छोड़कर भीख माँगता हूँ । क्योंकि आर्त कौन सा कुकर्म नहीं करते । ऐसा मन में समझकर जो सुजान सुदानी हैं वे संसार में याचक की वाणी को सफल करते हैं ।

व्याख्या : भिक्षा माँगना क्षत्रिय के लिए निषिद्ध है । परन्तु आर्त पुरुष को विधि निषेध का ख्याल नहीं रहता । अतः आर्त होकर क्षत्रिय भी भिक्षा माँगते हैं । भरतजी कहते हैं कि हे तीर्थराज ! आप प्रख्यात दानी हैं और मैं अत्यन्त आर्त हूँ । प्रमाण यह है कि क्षत्रिय होकर आप से भिक्षा माँगता हूँ । इतना आर्त हूँ कि अपने धर्म का भी परित्याग कर रहा हूँ । अतः मैं आर्त अधिकारी हूँ ।

सुजान सुदानी जाचक के पात्रापात्र का विचार यदि वह आर्त हो तो नहीं करते । अपात्र भी आर्त होने से पात्र ही है । अतः उसकी वाणी को सफल करते हैं । आप भी पात्रापात्र का विचार न करके मेरी वाणी सफल कीजिये ।

दो. अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहौ निरवान ।

जनम जनम रति राम भद, यह वरदानु न आन ॥२०४॥

अर्थ : मुझे धर्मार्थ काम की रुचि नहीं है और निर्वाण गति भी नहीं चाहता हूँ । मैं यही वरदान चाहता हूँ कि जन्म जन्मान्तर में मेरी भक्ति श्रीरामजी के चरणों में हो । दूसरी कोई बात मैं नहीं चाहता ।

व्याख्या : इतने आर्त होने का कारण कहते हैं कि आपका भण्डार धर्मार्थ काम और मोक्ष से भरपूर है और यही याचको को मिला करता है । पर इनमें मेरी रुचि नहीं । मैं तो जन्म जन्म में रामजी के चरणों में रति प्राप्ति का वरदान चाहता हूँ । जो भण्डार में नहीं है वह चाहता हूँ । आप याचक की वाणी पूरा करनेवाले सुजान दानी हैं । आप जैसे हो सकें मुझे भक्ति भिक्षा दीजिये । अर्थ धर्म काम तथा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए । यथा : सगने उपासक मोक्ष न लेंहों ।

जानहु रामु कुटिल करि मोही । लोगु कहउ गुर साहिव द्रोही ॥
सीताराम चरन रति मोरे । अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे ॥१॥

अर्थ : रामजी भले ही मुझे कुटिल समझे और भले ही लोग मुझे गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही कहे । सीताराम के चरणों में मेरी प्रीति आपके अनुग्रह से नित्य बढ़ती रहे ।

व्याख्या : वरदान में भरतजी एकाङ्गी प्रीति माँगते हैं । रामजी चाहे प्रेम करें चाहे प्रेम न करें । भले ही मुझे कुटिल मानकर घृणा करें मुझे स्वीकार है । उन पर आप कोई प्रभाव न डालें । उन्हें स्वच्छन्द रहने दें । पर रामजी के कुटिल जानने से दुर्यश होगा । लोग कहेंगे कि भरत गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही हैं और रघुकुल यशोधन हैं । यशोहानि कैसे सही जायगी ? इस पर भरतजी कहते हैं कि यशोहानि मुझे स्वीकार है । पर सरकार की स्वच्छन्दता में भेद न पड़ने पावे । भरतजी कहते हैं कि वरदान का प्रभाव मुझ पर पड़े । श्रीसीतारामजी के चरणों में मेरी प्रीति नित्य बढ़ती रहे । अर्थात् सिद्धा भक्ति के लिए भरतजी की प्रार्थना है ।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पवि पाहन डारउ ॥
चातकु रटनि घटे घटि जाई । बढे प्रेम सब भाँति भलाई ॥२॥

अर्थ : मेघ चाहे जन्म भर पपीहे को याद न करे । जल माँगने पर पत्थर और वज्र गिरावे । पपीहे की रटन घटने से वह घट जावेगा । प्रेम बढ़ने में ही उसकी सब भाँति से भलाई है ।

व्याख्या : चातक हंस सराहियत टेक विवेक विभूति । हंस विवेकी है और चातक प्रेमी है । अतः हंस में विवेक की विभूति है और चातक में टेक की विभूति है । यदि चातक की रटनि घट जावे तो उसके टेक की विभूति ही जाती रही । उसकी भलाई तो प्रेम के बढ़ने में ही है । चाहे मेघ उसे कितना भी कष्ट दे । इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली में बड़े मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है । यथा

मान राखिवो माँगिवो पिय सो नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फवँ जौ चातक मत लेहु ॥
तीनलोक तिहुकाल जस चातक ही के हाथ ।
तुलसी जासु न दीनता सुनौ दूसरे नाथ ॥
जौ घन वरसँ समयसिर जौ भरि जनम उदास ।
तुलसी या चित चातकहि तरु तिहारी आस ॥
रटत रटत रसना लटी तृपा सुखिगे अग ।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रग ॥
चढत न चातक चित कबहुँ प्रियपयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ॥

परखि - परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टुक ।
 तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहि चूक ॥
 उपल वरपि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर ।
 चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥
 पवि पाहन दामिनि गरज झरि झँकोरि खरि खोजि ।
 रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रोजि ॥
 प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
 जाचक जगत कनाउडो कियो कनौडौ दानि ॥
 साधन सांसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु ।
 तुलसी चातक जलद की रोजि बूझि बुध काहु ॥
 चातक जीवन दायकहि जीवन समय सुरीति ।
 तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥
 जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह ।
 तुलसी चातक मन बस्यौ घन सों सहज सनेह ॥
 प्रेम न परखिय परुषपन पयद सिखावन एह ।
 जग कह चातक पातकी ऊसर बरपै मेह ॥
 चरण चंगु गत चातकहि नेम प्रेम को पीर ।
 तुलसी परवस हाड़ पर परिहँ पुहमो नीर ॥
 बध्यौ बधिक पर्यौ पुन्यजल उलटि उठाई चोंच ।
 तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच ॥
 तुलसी चातक देत सिख सुतहि बारही बार ।
 तात न तर्पन कीजिये बिना वारिधर धार ॥
 सो. जियत न नाई नार चातक घन तजि दूसरहि ।
 सुर सरिहू को वारि मरत न मांगेउ अरघ जल ॥
 सुन रे तुलसीदास प्यास पपीअहि प्रेम की ।
 परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वातिकी ॥
 जाचै बारह मास पियै पपीहा स्वाति जल ।
 जान्यौ तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन ॥
 दो. उष्णकाल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख ।
 चातक बतियाँ ना रुची अनजल सीचे ऊख ॥

जलद चातक का प्रेम पात्र है । चातक उसी का जल पीता है । दूसरे को उसे आशा नहीं । जलद जो उसे भूल जाय उस पर अत्याचार करे फिर भी चातक का प्रेम बढ़ता ही जाता है । इसी भाँति भरतजी भी श्रीरामजी के चरणों में प्रेम चाहते हैं । यही वरदान है ।

कनकहि वान चढइ जिमि दाहे । तिमि प्रियतम पद नेम निवाहे ॥
भरत वचन सुनि मांझ त्रिवेनी । भइ मृदु वानि सुमंगल देनी ॥३॥

अर्थ : जिस भाँति सोने को तपाने से उस पर रङ्ग चढ़ जाता है वैसा ही रङ्ग प्रियतम के चरणों में प्रीति निर्वाह करने में चढ़े । भरतजी का वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी में शुभ मङ्गल देनेवाली कोमल वाणी हुई ।

व्याख्या : चेतन की उपमा देकर अब जड़ की उपमा देते हैं । प्रेम जड़ की अवस्था अभीष्ट है । चेतन का दुखी होना सम्भव है । इसलिए जड़ की उपमा देते हैं । उसमें भी सोना तपाने के समय दमक उठता है । प्रेमास्पद के जलाने से और भी प्रेम में चमक बढ़े । जानते हैं कि सरकार विरहानल में तप्त करके प्रेम की परीक्षा ले रहे हैं । यथा प्रेम अमिअ मन्दर बिरह भरत पयोधि गँभीर । मथि प्रगटेउ सुरसाधु हित कृपासिधु रघुवीर ।

भरतजी के ये वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी अर्थात् सङ्गमरूपी सिंहासन से वचन सुनायी पड़ा । स्वयं त्रिवेणीजी बोल रही हैं ।

तात भरत तुम्ह सब विधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माँही । तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाँही ॥४॥

अर्थ तात भरत ! तुम सब प्रकार से साधु हो । रामचरण में तुम्हें अथाह प्रेम है । मन में व्यर्थ गलानि कर रहे हो । तुम्हारे समान रामजी को कोई प्रिय ही नहीं है ।

व्याख्या जानहु राम कुटिलकरि मोही । लोग कहउ गुरुसाहिब दोही । का उत्तर तीर्थराज देते है : तुम्ह सब विधि साधू । पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया । तुम में स्वार्थ कहां ? साधु समाज में तुम्हारी रेखा और रामभक्तों में तुम्हारी लेखा है । तुम्हें स्वयं अगाध अनुराग है । मैं क्या हूँ ? केवल तुम्हारे सन्देह मिटाने के लिए निपादराज की भाँति निपादराज के ही शब्द दोहराये देता हूँ । यथा नाथ करिअ कत बादि बिपादू । राम तुमहि प्रिय तुम प्रिय रामहि । तुलसी न तुम सम राम प्रीतम कहत हो सौहे किये । इत्यादि ।

दो. तनु पुलकेउ हिय हरपु सुनि, बेनि वचन अनुकूल ।

भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरपित वरपहि फूल ॥२०५॥

अर्थ : वेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय में हर्ष हुआ । भरतजी धन्य हैं धन्य है ऐसा कहकर देवता फूलों को वर्षा करते हैं ।

व्याख्या • भई मृदु वानि सुमंगल मूला से उपक्रम करके • बेनि वचन अनुकूल से उपसहार करते हैं । गङ्गा यमुना सरस्वती के सङ्गम तीर्थराज का सिंहासन है । अतः त्रिवेणी की वाणी ही प्रयागराज की वाणी है । भरतजी ने धिग धिग मोहि

अथ उदधि अभागी कहा था । अतः उसी का सम्मार्जन करते हुए देवता लोग भरतजी को धन्य धन्य कह रहे हैं और पुष्पवर्षा करके पूजन कर रहे हैं ।

प्रमुदित तीर्थराज निवासी । वैखानस वटु गृही उदासी ॥

कहहि परसपर मिलि दस पाँचा । भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ॥१॥

अर्थ : प्रयागराज के रहनेवाले वानप्रस्थ गृहस्थ उदासी सब प्रसन्न हुए और दस पाँच आपस में मिलकर कहते हैं कि भरतजी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है ।

व्याख्या : भरतजी के साथ सेना आयी है । बड़ो भीड़भाड़ है । अतः सबको भरतजी के आने की खबर है । वैखानस वानप्रस्थ आश्रमी को कहते हैं । गृहस्थाश्रमी को गृही कहते हैं । वटु ब्रह्मचारी को कहते हैं और उदासी से यहाँ सन्यासी से तात्पर्य है । तीर्थराज हैं । अतः यहाँ सभी आश्रम के लोग बसते हैं । अतः भरतजी को देखने के लिए पहिन्ने से ही तैयार हैं । रामजी जब आये थे तो उनके साथ भीड़ नहीं थी । अतः उनके आने का पता देर से लगा और वे सुन्दरता देखने की भावना से आये थे । यथा : यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी । वटु तापसमुनि सिद्ध उदासी । भरद्वाज आश्रम सब आये । देवन दसरथ तनय सुहाये ।

जहाँ तहाँ गोष्ठी में बातचीत हो रही है । त्रिवेणी के मध्य से जो वाणी का प्रादुर्भाव हुआ उसी का अनुवाद कर रहे हैं । यथा : रामचरन अनुराग अगाधू । भरत सनेह सील सुठि साँचा । यथा : तात भरत तुम सब विधि साधू ।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए । भरद्वाज मुनिवर पहि आए ॥

दंड प्रनामु करत मुनि देते । मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ॥२॥

अर्थ : रामजी के गुणगणों को सुनते हुए भरद्वाज मुनिवर के पास आये । मुनिजी ने भरतजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करते देखा तो उन्हें मूर्तिमान् अपना भाग्य माना ।

व्याख्या : भरतजी के स्नेह और शील वर्णन के बाद प्रसङ्ग प्राप्त रामजी का गुणग्राम वर्णन करने लगे । रामजी का रूप और स्वभाव देख चुके हैं । यथा : राम प्रणाम वीन्ह सब काहू । मुदित भये लहि लोचन लाहू । देहि असीस परम सुख पाई । फिरे सराहत सुदरताई । रामजी के दर्शन से मुदित थे । आज भरतजी के दर्शन से मुदित हैं । भरतजी उधर से ही जा रहे हैं । तमाम रास्ते यही चर्चा है । अतः राम गुणग्राम सुनते हुए भरद्वाज के आश्रम पर आये । प्रयाग में भरद्वाजजी का दर्शन प्रधान है । क्योंकि ये जङ्गम तीर्थराज हैं । प्रयागराज के देवताओं की भक्ति में भी अङ्गभूत है । यथा : प्रयागं माधवं सोम भारद्वाज च वासुकिम् । वन्देऽक्षयवट शेषं प्रयाग तीर्थनायकम् ।

न तो सरकार के ही आने का पता मुनिजी को था जो आगे लंने आते और न भरतजी के ही आने का पता लगा । भावार्थ यह कि तीर्थराज में रहने से इनके

यहाँ लोगो का आना जाना सदा लगा रहता था। घोर वन में रहनेवाले मुनियो के यहाँ जिस भाँति किसी विशेष व्यक्ति का आना एक विशेष घटना समझी जाती थी और उसका समाचार बटु लोग पहिले से ही दे देते थे। वैसी कोई बात यहाँ न थी। अतः शिष्यो ने पहिले से खबर नहीं दी। इसलिए भरतजी को दण्डवत् प्रणाम करते मुनिजी ने देखा तो अपना बड़ा भाग्योदय माना। पूर्वजन्मकृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। अतः भरतजी को मूर्तिमान् पूर्वं जन्मकृत पुण्य माना। सरकार को वर्तमान जन्म का किया हुआ पुण्य माना था। यथा लोचन गोचर सुकृत फल मनहु किये विधि आनि।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे ॥
आसनु दीन्ह नाइ सिर बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे ॥३॥

अर्थ दौड़े और उठाकर छाती से लगा लिया। आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया आसन दिया तो सिर झुकाकर बैठे मानो सङ्कोच रूपी घर में भागकर घुस जाना चाहते हैं।

व्याख्या भरतजी ने दूर से प्रणाम किया था। अतः दौड़ पड़े। इतने बड़े भागवत का दण्ड की भाँति भूमि में पड़ा रहना सह न सके तथा उन्हें हृदय लगा लेने की बड़ी चाह है। सत्कार करने का बड़ा उत्साह है। आशीर्वाद देने के लिए हृदय उमगा आ रहा है। अतः चार क्रियाओ का एक साथ ही प्रयोग है। भरतजी इस सत्कार से कृतार्थ हुए अथवा भक्तिरस्तु ऐसा आशीर्वाद दिया। इससे भरतजी ने अपने को कृतार्थ माना। सिर झुकाकर बैठना सङ्कोच तथा सोच की मुद्रा है। सरकार से मुनिजी ने कुशल प्रश्न करके तब आसन दिया। भरतजी से कुशल प्रश्न नहीं किया। आसन द दिया। मुनिजी समझते हैं कि जब जानता हूँ कि कुशल नहीं है तब उसका प्रश्न करना और भी छेड़कर दुःख देना है। भरतजी को देखा कि ये इतने सङ्कुचित हैं मानो सङ्कोचरूपी घर में पैठ जाना चाहते हैं। सम्मुख होकर बात करने में कष्ट है।

मुनि पूछव कछु येह बड सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सकोचू ॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। विधि करतव पर किछु न बसाई ॥४॥

अर्थ यह बड़ा सोच था कि मुनिजी कुछ पूछेंगे। ऋषिजी भरतजी का शील सङ्कोच देखकर बोले भरतजी। सुनो मुझे सब पता लग गया है। विधाता के किये हुए को कौन मिटा सकता है। किसी का कुछ वश्य नहीं है।

व्याख्या सङ्कोच को स्पष्ट करते हैं। मुनिजी ने कुशल तो नहीं पूछा। फिर भी कुछ तो पूछेंगे ही और यह पूछना चाहे किसी विषय में हो। माता की चर्चा बिना चले नहीं रह सकती। माता के निन्दनीय कर्म से सन्तान को सङ्कोच होता ही है और विशेषतः जब उसी के पुत्र को किसी के पूछने पर कहना पड़े। ये मुनि ठहरे। इनसे सब कहना पड़ेगा। इस सङ्कोच को लखकर मुनिजी बोल उठे कि भरतजी।

फहना नही है। मुझे सब पता लग गया है। जो कुछ हुआ है उसमें करणी नहीं है। वह सब विधि की करणी है। मानुषी करणी होती तो उस लग सकता था। जो विधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ हार। अतः किसी का कोई वश्य नहीं है।

१. तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति ।

तात, कैकइहि दोसु नहि, गई गिरा मति धूति ॥२०६॥

अर्थ : तुम माता की करतूत समझकर अपने मन में गलानि न करो। हे [समें] कैकेयी का दोष नहीं है। सरस्वती उनकी बुद्धि को ठग ले गयी।

व्याख्या : मुनिजी को देवताओं के रहस्य का पता है। अतः स्पष्ट कहे देते सरस्वती ने आकर मन्थरा द्वारा कैकेयी की बुद्धि हरण कर ली। कैकेयी का उ भी नहीं है। ब्रह्मदेव का रुख पाकर ही सरस्वती ने देवताओं के विनय को किया। अतः यह सब विधि की करणी है। तुम व्यर्थ गलानि न करो।

कहत भल कहहि न कोऊ । लोकु वेदु बुध, सम्मत दोऊ ॥

तुम्हार विमल जस गाई । पाइहि लोकउ वेदु वड़ाई ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहने को कोई अच्छा नहीं कहेगा। क्योंकि पण्डितों को लोक और वेद दोनों मान्य है। हे तात ! तुम्हारे निर्मल यश को गाकर लोक और वेद दोनों वड़ाई पायेंगे।

व्याख्या : बात तो मैंने ठीक कही। पर इसे अच्छा कोई न कहेगा। क्योंकि कहने में पण्डिताई नहीं है और पण्डितों को लोक और वेद मान्य है। लोक वेद पीछे। क्योंकि वेद कौन है ? इस प्रश्न का निपटारा तो लोक से ही होगा। वेद भी लोक प्रमाण पर ही ठहरा है। माता के निर्दोष होने से तुम निर्दोष होना तुम्हारा अपमान करना है। बात तो यह है कि कैकेयी के करतब से ही इतना निर्मल यश हुआ।

क्योंकि तुम्हारा यश बड़ा पवित्र है। तुम्हारे ऐसा आचरण करना महा दुर्लभ उनके वर्णन से लोक और वेद की वड़ाई होगी। जो लोग तुम्हारा यश गावेंगे वड़ाई होगी। वेद की भी तुम्हारे यशोगान से प्रशंसा होगी। ऐसे महायशस्वी को कोई कहे कि निर्दोष है तो कहनेवाले को ससार कहेगा कि इनसे कहते हैं।

वेद सम्मत सबु कहई । जेहि पितु देइ राजु सो लहई ॥

सत्य व्रत तुम्हहि बोलाई । देत राजु सुखु धरमु वड़ाई ॥२॥

अर्थ : सब लोग ऐसा ही कहते हैं। यह बात लोक और वेद सम्मत है कि पिता दे वह राज्य पावे। सत्यव्रत राजा तुम्हें बुलाकर राज्य सुख धर्म और दे देते।

व्याख्या लोक और वेद के बड़ाई पाने का कारण कहते हैं कि तुम्हारी करणी लोक और वेद दोनों से लँची निकली । क्योंकि इस बात में सबका ऐकमत्य है कि जिसे पिता दे वही राज्य पावे । यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है ।

राजा सत्यव्रत थे । अतः विशेष नियम से काम ले सकते थे । वरदान दे दिया था उसे मिथ्या नहीं कर सकते थे । अतः रामजी को न देकर तुम्हें दे देते और उसके साथ सुख धर्म और बड़ाई भी देते । सुख यथा हरखे सबल पाइ जनु राजू । धर्म यथा प्रजा पालि परिजन दुख हरहू । बड़ाई यथा राजा दण्डधरो गुरु ।

राम गवनु वन अनरथ मूला । जो सुनि सकल विस्व भइ सूला ॥

सो भावी बस रानि अयानी । करि कुचालि अतहु पछितानी ॥३॥

अर्थ रामजी का वन जाना अनर्थ का मूल हो गया । जिसे सुनकर ससार को शूल हुआ । सो भी होनहार के वश बेसमझ रानी कुचाल करके अन्त में पछतायी ।

व्याख्या पर दूसरा वर बड़ा अनर्थकारी माँगा । राम वनगमन से अयोध्या उजाड़ हुई । महाराज मरे । जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध था उनकी गति कौन कहे । ससार भर में जिसने सुना उसे शूल हो गया । ससार से अभिप्राय उन लोगों से है जिनमें वस्तुतः मनुष्यता है । मनुष्यरूप से जो पशु विचरते हैं उनकी गणना मनुष्यों में नहीं है ।

भावीवश हो जाने से बड़े बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि बिगड़ जाती है । शानी महाराज भानुप्रताप की बुद्धि बिगड़ गयी । जिसने जन्मभर वासुदेवार्पण कर्म किया । यथा करै जे धरम करम मन बानी । वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी । उसने वर माँगा देहाध्यासियों की भाँति । यथा जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ । एकछत्र रिपुहीन महि राज कल्पसत होउ । महारानी तो सूधी थी । यथा काह कहौं सखि सूध सुभाऊ । दाहिन वाम न जानेहुँ काल । यह यदि भावीवश होकर विकृत मस्तिष्क हो गयी तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? भावीवश इसकी बुद्धि मारी गयी । यथा भावी बस प्रतीति उर आई । फिर जब प्रकृतिस्थ हुई तो पछतायी । पहिल भी रामजी में प्रेम था । आज भी प्रेम है । तो बीच में हो क्या गया ? यही भावी है ।

तहउँ तुम्हार अल्प अपराधू । कहइ सो अधमु अयान असाधू ॥

करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू । रामहि होत सुनत सतोषू ॥४॥

अर्थ वहाँ भी यदि कोई तुम्हारा स्वल्प भी अपराध कहे तो वह अधम है । अज्ञानी है और साधु नहीं है । यदि तुम राज्य भी करते तो तुम्हारा कोई दोष न होता । रामजी को सुनकर सन्तोष होता ।

व्याख्या कुचाल में बड़ा अपराध प्रयाजक कर्ता का हुआ करता है और स्वल्प अपराध उपेक्षा करनेवाला का होता है । सो तुम्हें प्रयोजक कर्ता तो कोई कह नहीं सकता । यदि कोई स्वल्पापराध भी कहे तो वह अधम है । अर्थात् लोक वेद

से विमुख है। बुद्धिहीन है और उसका हृदय दूषित है। ऐसे पुरुष ही अपने बुद्धि दोष से दूसरों में दोष देखते हैं।

अधम यथा : कहहि सुनिहि अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिताच ।

अमान यथा : मरम तुम्हार रामकर जानिहि ।

ते सब विधि तुम्ह सन भल मानिहि ।

असाधु । यथा : मत तुम्हार यह जो जग कहही ।

ते सपनेहुँ सुख सुगति न लहही ।

जो वसिष्ठजी ने कहा था वही भरद्वाजजी भी कहते हैं। यथा : सुनि सुख लहव राम वैदेही । अनुचित कहव न पडित केही । राय राजपद तुम कहँ दीन्हा । पिता वचन फुर चाहिअ कीन्हा ।

दो. अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुमहि उचित मत एहु ।

सकल सुमंगल मूल जग, रघुवर चरन सनेहु ॥२०७॥

अर्थ : भरतजी ! अब तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारे लिए यही उचित राय थी। रामजी के चरणों में प्रेम होना इस ससार में सब सुमङ्गलों का मूल है।

व्याख्या : भरतजी ! यदि तुम राज्य करते तो वह भी भली बात थी : धर्माविरुद्ध प्रेय को कौन नहीं चाहता ? तुमने नहीं किया। यह अत्यन्त भली बात हुई। राज्य करते तो धर्मानुकूल होता। इसलिए उसे भला कहा। परन्तु तुमने श्रीरामचरणानुराग को आगे करके राज्य का त्याग करके श्रेय का ग्रहण किया। अतः यह बहुत ही भला हुआ। तुम्हारे ऐसे साधु पुरुष के योग्य कार्य हुआ।

सो सब करम धरम जरि जाऊ । जहँ न रामपद पंकज भाऊ । जोग कुजोग ज्ञान अज्ञान । जहँ नहि राम प्रेम परधान । अतः रामजी के चरणों में स्नेह ही सब मङ्गलों का मूल है। क्योंकि रामजी स्वयं मङ्गल मूल हैं। यथा : मंगल मूल राम सुत जासू । अतः मङ्गल मूल से स्नेह करना स्वयं मङ्गल मूल है।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राणा । भूरिभाग को तुम्हहि समाना ॥

यह तुम्हार आचरजु न ताता । दशरथ सुजन राम प्रिय भ्राता ॥१॥

अर्थ : और वह तुम्हारा धन जीवन और प्राण है। तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कौन है ? हे तात ! यह तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। तुम दशरथ के पुत्र और रामजी के प्रिय भाई ठहरे।

१. अयच्छ्रेयोऽन्यदुत एव श्रेयस्तेनानाये पुरुष. सिनीत. । तयो. श्रेय आददानस्य साधु भवति । होयतेऽर्थात्तय उ प्रेयो वृणीते । काठके । श्रेय दूसरी वस्तु है और प्रेम दूसरी वस्तु है । वे दोनों पृथक् पृथक् विषय में मनुष्यों का बाँधते हैं । उनमें से श्रेय के ग्रहण करनेवाले का बल्याण होता है और वह अर्थ से गिर जाता है जो प्रेय को स्वीकार करता है ।

व्याख्या : वह रघुवर चरण स्नेह तुम्हारा धन है । यथा : मांगहु भोख त्यागि निज धर्म से : अनुदिन बढहु अनुग्रह तोरे तक अथवा : सोक समाज राज केहि लेखे । लखन राम सिय पद बिनु देखे । तुम्हारा जीवन है । यथा : वादि जीव बिनु देह सोहाई । वादि मोर सब बिनु रघुराई । और वही तुम्हारा प्राण है । यथा : अस को जीव जन्तु जग माँही । जेहि रघुनाथ प्राण प्रिय नाही । अतः तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कोई नहीं ।

जिस कुल में जो न हो आयो हो उस काम को कर बैठना आश्चर्य की बात है । तुम्हारे कुल में तो ऐसा होता आया है । अतः तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है । पहिले की बात न कहकर वर्तमान की बात कहता हूँ । तुम्हारे पिता महाराज दशरथ प्रेम के समुद्र थे । यथा : वदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद । बिछुरत दीन दयाल प्रिय तन तून इव परिहरेउ । तुम्हारे बड़े भाई कैसे भ्रातृवत्सल हैं । यथा : भरत प्राण प्रिय पावहि राजू । बिधि सब बिधि मोहि समुख आजू । रामहि वधु सोच दिन राती । अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती । अतः तुम में इतना राम स्नेह होना आश्चर्य की बात नहीं है ।

सुनहु भरत रघुपति मन माँही । प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाँही ॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती । निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ॥२॥

अर्थ : भरतजी ! सुनो । रामजी के मन में तुम्हारे समान प्रेमपात्र कोई दूसरा नहीं है । लक्ष्मण राम और सीताजी की सारी रात तुम्हारी प्रशंसा करने में ही बीती ।

व्याख्या : भरद्वाजजी भरतजी को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि रामजी तुमको प्रिय है; इतना ही नहीं है रामजी को तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है । यथा : भरत सरिस प्रिय को जग माँही । इहै सगुन फल दूसर नाँही ।

भरतजी की उस समय यह गति थी कि रात को भयानक सपने देखते थे । यथा : देखहि रात भयानक सपना । जागि करहि कटु कोटि कल्पना । भक्त भयानक स्वप्न देखता है । जागकर अनेक चिन्ता करता है । अतः सरकार नहीं सो रहे हैं । भक्त का स्मरण कर रहे हैं । इसी बात को निपादराज कह रहे हैं । यथा : तेहि रात पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सरहना रावरो । और यही बात भरद्वाजजी कह रहे हैं कि जिस दिन मेरे यहाँ टहरे तीनो प्राणी रात भर तुम्हारी ही सराहना करते रह गये ।

जाना मरमु नहात प्रयागा । मगन होहि तुम्हरे अनुरागा ॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुवर कैं । सुख जीवन जग जस जड़ नर कैं ॥३॥

अर्थ : मैंने प्रयाग में स्नान करते उनके मर्म को जाना । वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे । तुम पर ऐसा स्नेह रामजी का है जैसे जड़ पुरुष को संसार के सुखमय जीवन पर होता ।

व्याख्या : भरद्वाजजी कहते हैं कि यद्यपि सब रात तुम्हारी प्रशंसा होती रही। पर तुम्हारे और रामजी के प्रेम का मर्म मैंने उनके प्रयाग स्नान करते समय जाना कि शरीर तो सितासित नीर में मग्न हो रहा है। पर मन तुम्हारे अनुराग में मग्न था। श्यामवर्ण वारि को देखकर तुम्हारे स्मरण से शरीर में पुलक हो गया : इसी भाँति भरतजी भी श्याम वर्ण जल को देखकर रामजी के स्मरण हो आने से विरह समुद्र में मग्न हुए थे। यथा : रघुवर वरन विलोकि वर वारि समेत समाज। होत भगन वारिधि विरह चढ़े विवेक जहाज।

भरद्वाजजी कहते हैं कि तीर्थराज में स्नान के समय में भी तुम्हारे अनुराग में मग्न रहना श्रीरामजी के अतोव प्रेम का द्योतक है। ऐसा प्रेम जो जड़ मनुष्य को सुख जीवन पर होता है वह सुख जीवन के लिए क्या नहीं करता धर्म अर्थ काम और मोक्ष सबसे हाथ धो बैठता है। इसी का साफल्य दिखाते हुए कहेंगे : मुख प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

यह न अधिक रघुवीर बड़ाई। प्रणत कुटुम्ब पाल रघुराई ॥
तुम्ह तज भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू ॥४॥

अर्थ : यह रामजी के लिए अधिक बड़ाई की बात नहीं है। वे प्रणत : प्रणाम करनेवाले के कुटुम्ब के पालन करनेवाले हैं। हे भरतजी ! मेरा मत तो यह है कि तुम शरीरधारी रामप्रेम ही हो।

व्याख्या : तुम्हारे ऊपर रामजी का इतना प्रेम होना रामजी के लिए कोई बड़ाई की बात नहीं है। क्योंकि वे तो एक बार के प्रणाम करनेवाले को अपना बना लेते हैं। उसके कुटुम्ब को अपना मान लेते हैं। अतः उसके पालन की बात कौन कहे। उसके कुटुम्ब का पालन करते हैं और तुम तो मेरे मत से शरीरधारी रामप्रेम ही हो। अतः तुम्हारे ऊपर उनका इतना प्रेम होना प्राप्त ही है।

दो. तुम्ह कहँ भरत कलंक यह, हम सब कहँ उपदेशु।

राम भगति रस सिद्धि हित, भा यह समझ गनेसु ॥२०८॥

अर्थ : तुम्हारे लिए तो भरत यह कलङ्क है। पर हम तपस्वियों के लिए तो यह उपदेश : हो गया। रामभक्ति रस सिद्धि के लिए यह समय : जब कि रामजी तापस वेप से वन में हैं और तुम उन्हें लौटाने जा रहे हो गणेश रूप हो गया।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं : अवधराज सुरराज सिद्धाई। दसरथ धन मुनि धनद लजाई। ऐसा राज्य पिता ने तुमको दिया। उसकी स्वीकृति तुम : गृहस्थ को कलङ्क मालूम हो रही है। यह बात हम वनवासी तपस्वियों के लिए उपदेश रूप है। रामभक्ति के लिए तुम ऐसे समृद्ध राज्य का त्याग कर रहे हो जिसका मर्म यही है कि भक्तिमुख के सामने स्वर्ग सुख भी तुच्छ है। यथा : सूख हाड़ ले भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीन लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज।

तथा : सब सुख खानि भगति ते मांगी । नहि जग कोउ तोहि सम बड भागी । लाभ कि कछु हरिभगति समाना । जेहि गावहि श्रुति सत पुराना ।

यह समय तो सिद्धिदाता गणेश हो गया । इसके स्मरण करने से भक्तिरस की सिद्धि होगी । यथा - जेहि सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन । विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावो से व्यञ्जना वृत्ति द्वारा जो स्थायी भाव अभिव्यक्त होता है उसी को रस कहते हैं । यथा : प्रीति की उत्पादिका ललना आदि आलम्बन है । प्रीति के पोषक चन्द्रोदय आदि उद्दीपन हैं । इन्हीं आलम्बन और उद्दीपनो को विभाव कहते हैं । इसके बाद अश्रु और पुलक आदि जो अनुभव में लाने योग्य विकृति होती है । उसे अनुभाव कहते हैं । विशेष रूप से हृदय में स्थायी भाव सञ्चार करानेवाले जो हर्षादि भाव हैं उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं और अविच्छिन्न प्रवाहवाला भाव स्थायीभाव कहलाता है ।

जैसे सियमुख ससि भये नयन चकोरा । यहाँ सीताजी आलम्बन हैं । ककन किंकिन नूपुर धुनि सुनि उद्दीपन है । भये विलोचन चारु अचचल यह अनुभाव है । मानहु मदन दुदुभी दीन्ही । मनसा बिस्वविजय कहँ कीन्ही । यह व्यभिचारी भाव है और यहाँ सीता विषयक जो प्रेमरूपा चित्तवृत्ति है यही रति स्थायी भाव है । यथा देखि सीय सोभा सुख पावा । हृदय सराहत बचन न आवा । यही स्थायी भाव उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और विभाव से पुष्ट होकर रसरूप हो गया और शृङ्गार कहलाया ।

इसी भाँति जहाँ सर्वेश्वर रामचन्द्र आलम्बन हैं । रामचरित्र का पाठ या श्रवण उद्दीपन है । पुलक और अश्रु अनुभाव है । हर्षादि व्यभिचारी भाव है । ये रामचरणरति स्थायी भाव को पुष्ट करके रसरूप में परिणत कर देते हैं । यही भक्तिरस है ।

परन्तु काव्य शास्त्र के पारङ्गत कहते हैं : रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाश्चित । स्त्री पुरुष की एक दूसरे के विषय में प्रेम नामक जो चित्तवृत्ति होती है उसे रति स्थायी भाव कहते हैं । वही प्रेम यदि देवता गुरु तथा पुत्रादि के विषय में हो तो भाव कहलाता है । इसके लिए वे कई सूक्ष्म कारण भी देते हैं । परन्तु वह केवल बाल की खाल निकालना है । उन कारणों पर विचार करने पर यद्यपि वे इस बात को स्पष्ट नहीं कहते । तात्पर्य इतना ही निकलता है कि कान्ता विषयक प्रेम जितना गाढ़ा होता है उतना देवतादि विषयक प्रेम नहीं होता ।

और बात भी ऐसी ही है । ससार में ऐसा ही देखा जाता है । वेद भगवान् भी साक्षी देते हैं कि उस प्रेम में न बाहर का ज्ञान रहता है न भीतर का ज्ञान रहता है । जब देवादि के विषय में वैसा प्रेम नहीं होता तो उसे रस कैसे कहे ? स्वयं गोस्वामीजी नौ रस मानते हैं । यथा : नवरस जप तप जोग बिरागा । भक्ति को रस मानने से तो दस हो जायेंगे ।

इस पर भरद्वाजजी कहते हैं कि यह ठीक है । पहिले ऐसा ही था । पर भरतजी

तुम्हारे प्रेम ने भक्तिभाव का रस होना सिद्ध कर दिया । यथा : परम प्रेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति विसराई : रामजी और भरत लाल के मिलन में दोनों भाइयों का प्रेम ऐसा है कि बाहर भीतर का ज्ञान जाता रहा । इसका प्रभाव भी दर्शकों पर ऐसा पड़ता है कि भरत मिलाप जैसा मेला दूसरा काशी में कोई होता नहीं । अतः अब से भक्तिरस की सिद्धि हुई ।

नव विधु विमल तात जसु तोरा । रघुवर किकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अथइहि कबहू ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥१॥

अर्थ : हे तात ! तुम्हारा यश निर्मल नया चन्द्रमा है और रामजी के भक्त लोग उसके लिए कुमुद और चकोर हैं । यह सदा उदित रहेगा । कभी अस्त न होगा और संसाररूपी आकाश में यह घटेगा नहीं । दिन दिन दूना होता चला जावेगा ।

व्याख्या : रामभक्ति रस साक्षात् अमृत है । उसकी स्थिति भरत यश रूपी चन्द्र में सदा रहेगी । इसी के दिखलाने के लिए कवि भरतयश को नव विधु से उपमित करते हुए रूपक बाँधते हैं । भरद्वाजजी कहते हैं कि हे तात ! तुम्हारा यश, निर्मल नवीन चन्द्र है । निर्मल शब्द से कलङ्क रहित होना कहा और नवीन शब्द से उसे बढ़नेवाला कहा । नवीन : दुइज का चन्द्र नित्य वर्धनशील होता है और पुराना पूर्णिमा का चन्द्र ह्रासशील होता है । रामजी के दो प्रकार के भक्त पकज और कोक स्थानीय भरतयश चन्द्र के लिए क्रमशः कुमुद और चकोर स्थानीय हो जाते हैं । रामचन्द्र का यश सूर्य है और भरत का यश चन्द्र है । रामोपासक ही भरतयश के प्रेमी होते हैं । अतः जो रामयश के लिए पङ्कज हैं वे भरतयश के लिए कुमुद हो जाते हैं और जो रामयश के लिए कोक हैं वे भरतयश के लिए चकोर हो जाते हैं ।

भरतयश चन्द्र की इस चन्द्र से बहुत विशेषता है । यह चन्द्र कभी उदय होता है और कभी अस्त हो जाता है । शुक्लपक्ष में बढ़ता है और कृष्णपक्ष में घटता है । पर भरतयश चन्द्र अस्त होना जानता ही नहीं और न घटना जानता है । दिन दिन बढ़ता ही जाता है । इस चन्द्र का प्रचार तो आकाश में है । पर भरतयश चन्द्र का प्रसार सम्पूर्ण संसार में होगा । निर्गलितार्थ यह कि चन्द्रमा में बहुत दोष है । यथा : अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही । परन्तु भरतयश चन्द्र निर्दोष है और गुणाधिक्य भी इसमें है ।

कोक तिलोक प्रीति अति करिही । प्रभु प्रतापु रवि छविहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू । ग्रसिहि न कैकइ करतव राहू ॥२॥

अर्थ : त्रैलोक्यरूपी कोक इस पर अत्यन्त प्रीति करेगा । प्रभु रामजी के प्रताप का सूर्य इसकी छवि का हरण न करेगा । यह रात दिन सदा भवको सुख देनेवाला होगा और इसे कैकेयी का करतवरूपी राहु न ग्रस सकेगा ।

व्याख्या : चन्द्र तो कोक को शोक देता है । परन्तु भरतयश चन्द्र के प्रति त्रिलोकरूपी कोक का अत्यन्त प्रेम है । चकोररूपी रामभक्त तो प्रेम करते ही हैं और

चन्द्र से न प्रेम करनेवाले कोक भी भरतयश चन्द्र से अत्यन्त प्रेम करते हैं। अर्थात् विरही को भी भरतयश चन्द्र शान्तिप्रद है।*

इस चन्द्र की छवि को सूर्य का प्रताप छीन लेता है। पर भरतयश चन्द्र की छवि को प्रभु प्रताप रवि नहीं छीनता। चन्द्रमा निसिदिन सबको सुखद नहीं होता। दिन के समय किसी को सुखद नहीं होता और रात्रि के समय विरहियों के लिए महा दुःखद है और भरतयश चन्द्र सदा सबको सुखद है।

राहु सूर्य और चन्द्र दोनों के तेज पर चोट करता है। इसी भाँति कैकेयी के करतवरूपी राहु ने राम और भरत दोनों के ऊपर अपना प्रभाव डाला। राम के प्रति यथा : तापस वेष विसेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी। भरत के प्रति यथा : देहु एक बर भरतहि टीका। सो रामरूपी सूर्य पर तो कैकेयी के करतव का प्रभाव पड़ गया। अर्थात् रामजी को वनवास हो गया। पर भरतजी पर प्रभाव न पड़ा। भरतजी ने टीका स्वीकार नहीं किया।

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहि दूषा ॥

राम भगत अब अमिअ अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा वसुधाहू ॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रेमामृत से परिपूर्ण है और गुरुअपमान रूपी दोष से दूषित नहीं है। रामजी के भक्त लोग अब इस अमृत से परितृप्त हो। क्योंकि तुमने इस अमृत को वसुधा में भी सुलभ कर दिया।

व्याख्या - चन्द्र में अमृत का निवास माना गया है। पर भरतयश चन्द्र तो राम सुप्रेमामृत से पूर्ण है। चन्द्र गुरुअपमान से दूषित हैं। यथा : ससि गुरुतियगामी नहुप चढेउ भूमि सुर यान। पर भरतयश चन्द्र गुरुअपमान दोष से दूषित नहीं है। गुरुअपमान का प्रसङ्ग आ पड़ा। महाराज दशरथ ने रामजी को युवराज पद देना कहकर स्त्रीवश हो भरत को राज्य दिया। यदि भरतजी स्वीकार कर लेते तो बड़े भाई के अपमान से दूषित हो जाते। पर भरतजी ने वह राज्य अङ्गीकार नहीं किया। अथवा भरतजी ने पिता की आज्ञा भङ्ग किया। फिर भी गुरु अपमान दोष से दूषित नहीं हुए।

चन्द्रमा में अमृत बसता है। पर वह किसी को पान करने के लिए नहीं मिलता। ससार में उसका मिलना दुर्लभ है। अब इस अमृत के रसिक रामभक्त लोग इस अमृत को जो भरकर पीकर परितृप्त हो जायें। भरतजी के द्वारा श्रीराम सुप्रेमामृत जगत् को सुलभ हो गया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी ॥

दसरथ गुन गन वरनि न जाही। अधिकु कहा जेहि सम जग नाही ॥४॥

अर्थ - राजा भगीरथ गङ्गा लाये जो स्मरण करने से सुमङ्गल की खानि है। राजा दशरथ के गुणगण का वर्णन नहीं हो सकता। अधिक के लिए क्या कहा जाय जिसके समान कोई भी नहीं है।

व्याख्या : भानु वंश भये भूप घनेरे । अधिक एक ते एक बडेरे । इनमे राजा भगीरथ ने तो लाकर गङ्गाजी को पृथ्वी पर बहा दिया । जिस गङ्गा को स्मरण करने से सब सुमङ्गल सिद्ध होते हैं । गङ्गा गङ्गेति यो व्रूपात् योजनाना शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति । गङ्गा गङ्गा ऐसा स्मरण करने से सब पाप कट जाते हैं । विष्णुलोक मे गति हो जाती है । इतना बड़ा कल्याण ससार का किया ।

इसी वंश में राजा दशरथ हुए । इनके गुणों का वर्णन नहीं हो सकता । उनसे बड़ा कोई क्या होगा ? उनके बराबरी का ही ससार मे कोई नहीं हुआ । इसी बात को अगले दोहे मे स्पष्ट करते हैं ।

दो. जासु सनेह सकोच वस, राम प्रगट भए आइ ।

जे हर हिय नयननि कवहुँ, निरखे नही अधाइ ॥२०९॥

अर्थ : जिसके स्नेह और सङ्कोच के वश मे पड़कर रामजी आकर प्रकट हुए । जिन्हे महादेवजी हृदय की आँखों से जीभरकर कभी न देख सके ।

व्याख्या : राजा भगीरथ विष्णुपदी गङ्गा लाये । राजा दशरथ स्वयं उस प्रभु को लाये जिनके चरणकमल से गङ्गाजी की उत्पत्ति है । राजा दशरथ ने स्वायम्भू मनु के रूप से बड़ा भारी तप करके रामजी का दर्शन पाया । संसार को भी यह दर्शन हो इसलिए पुत्ररूप मे उन्हें माँगा । उनके प्रेम और सङ्कोच से रामजी इस पृथ्वी पर आकर प्रकट हुए । नहीं तो रामजी का यथेष्ट दर्शन शिवजी को भी ध्यान मे दुर्लभ है । उस रामजी को जगत् के सब लोगो ने भौतिक नेत्रों से पेट भर देखा । अतः महाराज दशरथ राजा भगीरथ से भी बढ गये ।

कीरति विधु तुम कीन्ह अनूपा । जहँ वस राम प्रेम मृगरूपा ॥

तात गलानि जरहु जिय जाएँ । डरहु दरिद्रहि पारस पाएँ ॥१॥

अर्थ : तुमने बड़ा अनोखा कीर्तिरूपी चन्द्रमा बनाया जहाँ राम का प्रेम मृग रूप होकर बसता है । हे तात ! तुम व्यर्थ ही जी मे गलानि करते हो । पारस पाने पर भी तुम दरिद्र को डरते हो ।

व्याख्या : राजा भगीरथ की भरद्वाजजी ने गङ्गाजी के लाने के कारण महा यशस्वी बहा । महाराज दशरथ का यश उनसे अधिक हुआ । उन्होंने स्वयं राम को लाकर सबके लिए उनका दर्शन सुलभ कर दिया । परन्तु हे भरतजी जिस यशचन्द्र को तुमने बनाया उसकी उपमा नहीं है । इस चन्द्र में तो राम का प्रेम भक्त के प्रति मृग रूप से बसता है । यथा : जग जप राम राम जप जेही । राम सम्बन्धी प्रेम तो अमृतरूप से इस चन्द्र मे पूर्ण तो है ही । यथा : पूरण राम सुप्रेम पिपूपा । राम प्रेम भक्त के प्रति इसमे मृगरूप से बसता है । यह रामप्रेम मृगरूप है । वही स्थिर नहीं रहता । यथा : बोले विहँसि महेस तज ग्यानी मूढ न कोइ । जेहि जस रघुपति करहि जय सो तस तेहि छन होइ । पर तुम्हारे यशचन्द्र मे यह मृग स्थिर होकर बस गया

है । इसे छोड़कर कही जाता ही नहीं । यथा सुनहु लखन भल भरत सरीसा ।
विधि प्रपच महँ सुना न दीसा । अत तुम्हारी महिमा सबसे बड़ी है ।

तुम तो व्यर्थ ही मन में ग्लानि करते हो । तुम रामोपासक परहितनिरत हो ।
तुम्हें दुःख कहाँ ? यथा कउहुँक दुःख सबकर हित ताके । तेहि कि दरिद्र परस मनि
जाके । ग्लानि का कारण तुम्हारे सन्निकट आ नहीं सकता । अत व्यर्थ दुःख
मत मानो ।

सुनहु भरत हम झूठ न कहहो । उदासीन तापस बन रहहो ॥

सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसनु पावा ॥२॥

अर्थ भरतजी सुनो । हम झूठ नहीं कहते क्योंकि उदासीन हैं । तपस्वी हैं
और वन में रहते हैं । सब साधनों की सुन्दर सफलता लक्ष्मण राम और सीताजी का
दर्शन पाना है ।

व्याख्या भरद्वाजजी कहते हैं कि जो बात मैं कहूँगा वह हठात् मनमें न
बैठेगी । अत यह कहना आवश्यक पड़ गया कि मैं झूठ नहीं कहता । अत मेरी बात
को अर्थवाद न मान लेना । क्योंकि झूठ तो रागद्वेषवाले पुरुष विषय लोलुप तथा
जनसमाज में रहनेवाले बोलते हैं । मैं उदासीन हूँ । तपस्वी हूँ और वन में रहता
हूँ । मुझे किसी से रागद्वेष नहीं । मैं झूठ क्यों बोलूँगा । सत्य से कर्मफल को आश्रय
मिलता है । मैं यदि झूठ बोलूँ तो तपस्या ही नष्ट हो जाय । मैं वन में रहता हूँ । किसी
से कोई प्रयोजन नहीं । असत्य तो किसी प्रयोजन से धोला जाता है ।

इतनी भूमिका के पश्चात् भरद्वाजजी ने निम्नलिखित बात कही । लक्ष्मणजी
रामजी तथा सीताजी का दर्शन पाना सब साधनों की सुन्दर सफलता है । यथा
आजु सफल तपु तीरथ त्यागू । आजु सफल जप जोग बिरागू । सफल सकल सुभ
साधन साजू । राम तुम्हहि अवलाकत आजू । लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी ।
तुम्हरे दरस आस सब पूजी ।

तेहि फल कर फटु दरस तुम्हारा । सहित पयाग सुभाग हमारा ॥

भरत धन्य तुम्ह जस जग जयेऊ । कहि अस पेम मगन मुनि भयेऊ ॥३॥

अर्थ उस फल का फल तुम्हारा दर्शन है । प्रयागराज के सहित हमारा
अहोभाग्य है । भरतजी । धन्य हो । तुमने यश से जगत् को जीत लिया । ऐसा कहकर
मुनि जी प्रेम में मग्न हो गये ।

व्याख्या लखन रामजानकी का दर्शन तो दिव्य फल है । उस फल में भी
फल लगता है । यथा मनु मतरूपा ने तप करके राम जी का दर्शन पाया । वह दर्शन,
उनके तप का फल था । पर उस फल में भी फल लगा । सरकार बोल माँगहु बर
जोइ भाव मन महादानि अनुमानि । सो मैंने जो कुछ साधन किया था उसके फल रूप
में रामजानकी तथा लक्ष्मणजी का दर्शन लाभ किया और उस फल का फल है कि

तुम्हारा दर्शन पाया । इस दर्शन से मैं भी कृतार्थ हुआ और प्रयागराज भी कृतार्थ हुए । क्योंकि महात्मा लोग ही तीर्थ को तीर्थ बनाते हैं ।

भरद्वाजजी कहते हैं कि भरतजी तुम धन्य हो । तुमने यश से ससार को जीत लिया । शस्त्रबल अस्त्रबल सैन्यबल से ससार के जीतनेवाले धन्य नहीं हैं । ऐसा कहकर मुनिजी प्रेममग्न हो गये । आगे कुछ नहीं कह सके । भरतजी चुपचाप सुन रहे हैं । मुनिजी चार दोहे तक बोलते ही गये । प्रेम उनका बढ़ता ही गया । यहाँ तक कि प्रेम में मग्न होकर चुप हो गये ।

सुनि मुनि वचन सभासद हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥

धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा । सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा ॥४॥

अर्थ : मुनिजीका वचन सुनकर सभासद हर्षित हुए और साधु साधु ऐसी प्रशंसा करके देवताओं ने फूल बरसाये । आकाश में और प्रयागराज में धन्य धन्य की ध्वनि गूँज उठी । उसे सुन सुनकर भरतजी प्रेम में मग्न हो रहे थे ।

व्याख्या : जिस समय भरतजी वहाँ गये थे मुनियों की सभा लगी थी । यथा • तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा । जाहि जे मज्जन तीरथ राजा । सो सभा की सभा ने मुनिजी के वचन का अनुमोदन हर्षित होकर किया । भरद्वाजजी के वचन ऐसे प्रभावपूर्ण थे कि आकाश से देवताओं ने उनकी प्रशंसा करके पुष्पवृष्टि की ।

आकाश में देवताओं की धन्य धन्य ध्वनि और प्रयागराज में मुनियों की धन्य धन्य ध्वनि हुई । भगवतो सत्योक्ति की पूजा दोनों लोको में हुई । कहनेवाले मग्न और सुननेवाले भरतजी प्रेम में मग्न हो रहे थे ।

दो पुलक गात हियँ रामु सिय, सजल सरोरुह नयन ।

करि प्रनामु मुनि मंडलिहि, बोले गदगद बयन ॥२१०॥

अर्थ : शरीर में पुलक और हृदय में राम जानकी और नेत्रकमल अश्रु से पूर्ण थे । इस भाँति भरतजी मुनि मण्डली को प्रणाम करके गदगद वचन बोले ।

व्याख्या : पुलकगात और सजल सरोरुह नयन से भरतजी के तन की दशा कही । गदगद बयन कहकर वाणी की दशा कही • हिय राम सिय से मन की दशा कही । इस भाँति प्रेम से पूर्ण भरतजी मुनिमण्डली को प्रणामकर बोले । भाव यह कि मुनिजी ने जो कुछ कहा है भरतजी का दुःख उससे व्यतिरिक्त है । यदि वही दुःख होता तो बोलने के लिए अवकाश नहीं था ।

मुनि समाजु अरु तीरथ राजू । साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू ॥

एहि थल जी किछु कहिअ बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई ॥१॥

अर्थ : मुनियों का समाज और तीर्थों के राजा प्रयागराज यहाँ सच्चा शपथ लेने से भी हानि को पराकाष्ठा है । यहाँ पर यदि कुछ बनाकर कहा जाय तो इसके बराबर या अधिक पाप और नीचता नहीं है ।

व्याख्या : सच्ची शपथ लेना भी धर्मशास्त्र से गहि़त है । फिर झूठी शपथ के लिए क्या कहा जाय । उससे तो बड़ा भारी पाप होता है । कोई अधम ही ऐसे पाप करने का दुःसाहस करेगा । उसमें भी तीर्थ पुण्य पाप के लिए उर्वरा भूमि है । इसमें किया हुआ पाप शतगुण सहस्रगुण अधिक हो जाता है । यह तो तीर्थराज प्रयाग है । तिस पर जङ्गम तीर्थराज साधु समाज के बीच में बैठा हुआ है । मुनिजी ने कहा था : सुनहु भरत हम झूठ न कहही । यहाँ पर भरतजी कहते हैं कि मैं झूठ नहीं कहता हूँ । मुनिजी यति हैं । अतः झूठ न कहने का कारण अपनी विरक्तता बतलाते हैं । भरतजी गृहस्थ हैं । अतः झूठ न कहने का कारणरूप से स्थल की महत्ता कहते हैं । भाव यह कि अपनी अपनी बातों पर सन्देह दोनों महापुरुषों को है कि श्रोता झूठ समझेंगे ।

अतः मुनि समाज अरु तीर्थ राजू कहकर भरतजी शपथ ग्रहण कर रहे हैं । कहते हैं कि इस स्थल में सच्ची बात में भी यदि अलङ्कारादि रचना से कुछ बनावट की जाय तो इसके समान पाप नहीं है । नहि़ असत्य सम पातक पुजा । गिरि सम होहि़ कि कोटिक गुजा । उस असत्य का पुट भी यदि इस स्थल में आ जाय तो उसके समान पाप कोई नहीं और ऐसे पाप करनेवाले सा अधम कोई नहीं । इससे अधिक पाप और अधमार्द क्या होगी । भाव यह कि जो कुछ मैं कहूँगा वह निवारण सत्य होगा । अर्थवाद को भी स्थान नहीं है ।

तुम्ह सर्वग्य कहउँ सतिभाऊ । उर अतरजामी रघुगाऊ ॥
मोहि न मातु करतव कर सोचू । नहि़ दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू ॥२॥

अर्थ . आप सर्वज्ञ हैं । मैं सच्चे भाव से कहता हूँ । रामजी हृदय की बात जाननेवाले हैं । मुझे माता की करतूति का सोच नहीं है और न इस बात का दुःख है कि ससार मुझे नीच समझेगा ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि तिस पर यह बात है कि आप सर्वज्ञ हैं । आपके सामने बनावट नहीं चल सकती और न जिसके विषय में कुछ बहना है उसी के सामने कोई बनावट चल सकेगी । क्योंकि रघुराज रामजी उर अन्तर्यामी हैं । आपने कहा : तुम गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु करतूति । अतः मुझे माता की करतूति का सोच नहीं है । आपने कहा . तात गलानि करहु जिय जायें । अतः मुझे ससार के यह समझने का कि भरत नीच हैं : कोई दुःख नहीं है । क्योंकि श्री मुख से उसका निराकरण हो चुका ।

नाहिन डरु विगरिहि परलोकू । पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए । लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥३॥

अर्थ : परलोक विगडने का भी मुझे डर नहीं है । पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नहीं है । उनका सुन्दर पुण्य और कीर्ति ससार में भर उठी है और लक्ष्मण तथा राम ऐसे उन्हें पुत्र मिले हैं ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं : आपने कहा कि करतेहु राज त तुमहि न दोयू । रामहि होत सुनत संतोषू । सो मुझे इस बात का डर नहीं है कि राज्य ग्रहण से परलोक विगड़ेगा । अथवा जो मैं पिता का वचन न मानकर जा रहा हूँ इससे परलोक विगड़ेगा । इस बात का डर मुझे नहीं है । भले ही मेरा परलोक विगड़े । पर रामजानकी और लक्ष्मण को सुख हो ।

और क्या कहें पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नहीं है । यथा : भरतहि बिसरेत पितु मरन सुनत राम वन गोन । अब गुरु मुख से सुने हुए अशोच्य प्रतिपादक प्रसङ्ग के अनुकूल पिता का अशोच्य होना कहते हैं । यथा -

सोचनीय नहि कोसल राऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
भयल न अहइ न अब होतिहारा । भूप भरत जसपिता तुम्हारा ॥
विधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा । बरनहि सब दसरथ गुनगाथा ॥

दो. कहहु तात केहि भाँति कोऊ करहि बड़ाई तासु ।
रामलखन तुम शत्रुहन सरिस मुअन सुचिजासु ॥

सब प्रकार भूपति बड़ भागी । दादि विपादु करिब तेहि लागी ॥

राम विरह तजि तनु छनभंगू । भूप सोच कर कवनु प्रसंगू ॥
राम लखन सिय विनु पग पनही । करि मुनि वेषु फिरहि वन वनही ॥४॥

अर्थ : रामजी के विरह में क्षणभङ्गुर शरीर का परित्याग किया । इसलिए महाराज के शोक का तो कोई प्रसङ्ग नहीं है । परन्तु राम लक्ष्मण और सीताजी पावों में बिना जूता पहिने मुनिवेष धारण किये हुए वन वन में फिर रहे हैं ।

व्याख्या : गुरुजी ने जो : सब प्रकार भूपति बड़ भागी कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए भरतजी कहते हैं कि उनके मरण की विधि में भी उनके बड़े भाग्य ने उनका साथ दिया । यथा : राम विरह दसरथ मरन मुनि मम अगम सुमीचु । राम विरह में प्राण त्यागना यह इतने बड़े भाग्य की बात है कि मुनि लोग मन से भी इसके पाने की आशा नहीं रखते । इसलिए भरतजी कहते हैं कि चक्रवर्तीजी के सोच करने के लिए तो कोई प्रसङ्ग ही नहीं है ।

उपर्युक्त में चार बातें ही ऐसी थी जिसके लिए दुःख होना चाहता था । सो उनका मुझे दुःख नहीं है । अब जिस बात का दुःख है उसे कहते हैं । राम लखन जिनके बारे में निपादराज कहता है :

मातु पिता परिजन पुरवासो । सखा सुसोल दास अरु दासी ॥
जोगवहि जिन्हहि प्राण की नाई । महि सोवत तेइ रामु गोसाई ॥
पिता जनक जग विदित प्रभाऊ । ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥
रामचदु पति मो वैदेही । सोवत महि विधि बाम न वैही ॥

लक्ष्मणजी के विषय मे स्वयं भरतजी कह चुके हैं । यथा •

लालन जोगु लखन लघु लोने । भे न भाइ अस बहहि न होने ॥

पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे । सिय रघुबीरहि प्रान पिपारे ॥

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । तात बाउ तन लाग न काऊ ॥

ते बन सहहि विपति सब भाँती । इन तीनों मूर्तियों के पैरो मे कुशकण्टकादि से रक्षा के लिए जूते नहीं हैं । शीत ऋण निवारण के लिए कपड़े नहीं हैं । मुनि का वेष बनाये हुए हैं । आण के लिए कोई स्थान नहीं है । वन वन मे घूम रहे हैं । राजा का रङ्ग की भाँति रहना अति कष्ट कारक है ।

दो. अजिन बसन फल असन महि, सयन डसि कुस पात ।

बसि तरु तर नित सहत हिम, आतप वरषा बात ॥२११॥

अर्थ • मृगछाला पहनना, फलों का भोजन, कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर सोना और पेड़ों के नीचे रहकर नित्य धूप वर्षा और बात का सहन करना ।

व्याख्या . जीवन के जितने आवश्यक साधन हैं उन सब में ही तीनों मूर्तियों को अत्यन्त कष्ट हो रहा है । बहुमूल्य सुखप्रद वस्त्र धारण करनेवालों को मृगचर्म पहनना पड़ रहा है । अमृतवत् सुस्वादु भोजन करनेवालों को अन्न दुर्लभ है । वन्य फलों पर गुजारा करना पड़ रहा है । क्षीर फेन सम मृदु बिछावन युक्त मञ्च • पलङ्ग पर सोनेवालों को कुश पल्लव बिछाकर पृथ्वी पर सोना पड़ रहा है । महल मे रहनेवाले पेड़ तले धूप पाला और झझावात सह रहे हैं । सुख के सब साधन सुलभ हैं । पर उनके उपभोग से वे बिना अपराध के वञ्चित किये गये हैं । भरतजी कहते हैं कि इन चार बातों का मुझे दुःख है ।

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती । भूख न वासर नीद न राती ॥

एहि कुरोग कर औपधु नाँही । सोधेउँ सकल विस्व मन माँही ॥१॥

अर्थ • इस दुःख की जलन से सदा छाती जला करती है । न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है । इस कुरोग की कोई दवा नहीं है । मैंने मन ही मन सारा विश्व ढूँढ डाला ।

व्याख्या चिन्ता ज्वाला सरीर वन दावा लागि लागि जाय । प्रगट धुआँ नहि देखिये उर अतर धुंधुवाय । उर अतर धुंधुवाय जरे जिमि काँच की भट्टी । जरिगे लोह मास रह गयी हाड की ठट्टी । कह गिरिधर कवि राय सुनोरे मेरे मीता । सो नर कैसे जिये जासु उर व्यापै चीता ।

सो भरतजी को रामजी की चिन्ता रूपी ज्वाला हृदय को जला रही है । क्षण भर भी शान्त नहीं होती । भूख और नीद जाती रही । बही विश्राम नहीं । यथा : निसि न नीद दिन भूख नहि भरत विकल सुठि सोच । नीच कौच विच मगन जस मोनहि सलिल सकोच ।

यह कुरोग है । इसने नित्यरोग क्षुधा निद्रा को भी दवा लिया है । यथा :

कहा भलो धौ भयो भरत को लगे तरुन तन दोन । अथवा इसकी दवा नही है इसलिए कुरोग है । यह मानसिक रोग है । इसके शान्ति के उपाय ढूँढने में भरतजी कहते हैं कि मैंने मन से सम्पूर्ण विश्व ढूँढ डाला । सद्गुरु वैद्य का भी वचन सुन चुका । कोई औषध हाथ न लगा ।

मातु कुमत बढई अघ मूला । तेहि हमार हित कीन्ह वसूला ॥
कलि कुकाठ करि कीन्ह कुजतू । गाडि अवध पढि कठिन कुमन्तू ॥२॥

अर्थ माता का बुरा विचार ही पापों का मूल बढई हुआ । उसने हमारे हित को वसूला बनाया । उसने कलि के कुकाठ का कुयन्त्र बनाया और कठिन कुमन्त्र को पढकर अवध में गाड़ दिया ।

व्याख्या भरतजी का कहना है कि इस दुख से मैं ही दुखी नहीं हूँ । सम्पूर्ण प्रजा मण्डल का यही हाल है । अचल विपत्ति की नींव पड़ गयी । सम्पूर्ण अयोध्या उजाड़ हुआ चाहती है । इसी बात को यन्त्र के रूपक में कहते हैं । देश के उजाड़ने के लिए बढई वसूला द्वारा बहेड़े के काठ का यन्त्र बनाता है । कलि शब्द का अर्थ बहेड़े का वृक्ष है और विरोध अर्थ भी है । उस यन्त्र को कुमन्त्र पढकर गाड़ा जाता है । इससे वह देश उजाड़ हो जाता है । सिवा उस यन्त्र को उखाड़ फेंकने के देश के बसने का कोई उपाय नहीं । यहाँ कैकेयी का कुविचार ही बढई हुआ । उसने भरतजी के हित को वसूला बनाकर विरोध रूपी काठ से वह यन्त्र तैयार किया और तापस वेप विसेप उदासी । चौदह बरिस राम बनवासी । इस मन्त्र को पढकर अयोध्या में गाड़ दिया अर्थात् वरदान माँग लिया । अघमूला । यथा काई कुमति कैकेई केरी । परो जासु फल विपति घनेरी । अवधि पाठ मानने से भी अर्थ वही रहेगा । पर गाड़ने के स्थान का निश्चय नहीं हो सकेगा ।

मोहि लगि यह कुठाटु तेहि ठाटा । घालेसि सबु जगु बारहँवाटा ॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ । वसै अवध नहिँ आन उपाएँ ॥३॥

अर्थ उसने यह कुठाट मेरे लिए रचा और सारे लोगों को बारह बाट करके नष्ट कर दिया । रामजी के लौटने से यह कुयोग मिट सकता है । अयोध्या के बसने का उपाय यही है । दूसरा नहीं है ।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि यह कुसाज मेरे हित के लिए साजा गया । इससे साजनेवाले की महामूर्खता चोत्तित किया । यन्त्र बनानेवाले ने यह न समझा कि इससे भरत का हित नहीं हो सकता उलटा देश उजाड़ जायगा । जिस भाँति रामचरण में लीन रहने से अन्तःकरण में स्वराज्य रहता है । परन्तु बहिर्मुख होने से दश इन्द्रियाँ और मन बुद्धि का मार्ग पकड़कर बारह बाट हो जीव दोन हो जाता है । उसी भाँति रामजी के रहने से सब सुख रहेगा और उनके बन जाने से सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो जायगा । रामजी का लौटना ही उस यन्त्र का उखाड़ना है । वे यदि फिर आवें तो अयोध्या बसती है । नहीं तो दूसरा उपाय नहीं है ।

भरत वचन सुनि मुनि सुखु पाई । सबहि कीन्ह बहु भाँति बडाई ॥
तात करहु जनि सोचु विसेखी । सब दुख मिटिहि राम पग देखी ॥४॥

अर्थ : भरत के वचन को सुनकर मुनि ने सुख पाया और सबने बहुत प्रकार से प्रशंसा की और बोले हे तात ! विशेष सोच न करो । रामजी के चरण दर्शन से सब दुख मिट जायगा ।

व्याख्या : भरतजी का वचन सुनकर मुनि भरद्वाज को सुख हुआ । भरतजी का श्रीराम चरणों में प्रीति सूचक वचन सुनने से परमार्थपद परम सुजान को सुख होना स्वाभाविक है । सबने बहुत भाँति से भरतजी की प्रशंसा की अर्थात् भरतजी के भायप, भगति, भरोस, भलाई को बडाई की ।

मुनिजी सोच करने को नहीं रोकते । क्योंकि यह सोच भी कल्याणदायक है । विशेष सोच न करने की सलाह देते हैं । क्योंकि दूसरी दवा है और वह यह सब दुख मिटिहि रामपद देखी । भरतजी पहिले वह भी चुके है देखे बिन रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय ।

इस भाँति सोच को कम करने का आदेश देकर भोजन शयन के लिए आग्रह करते हैं ।

दो. करि प्रबोधु मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।

कंद मूल फल फूल हम, देहि लेहु करि छोहु ॥२१२॥

अर्थ : समझाने के बाद मुनिराज ने कहा कि अब तुम प्रेमप्रिय अतिथि होओ और कन्द मूल फल फूल जो कुछ हम दें कृपा करके उसे स्वीकार करो ।

व्याख्या : आतिथ्य सत्कार की स्वीकृति के लिए पहिले प्रबोध किया । चित्त का कष्ट मिटाया । उचित आतिथ्य की योग्यता अपने में न समझकर प्रेम प्रिय होहु कहते हैं । अर्थात् मेरे प्रेम को स्वीकार करो । तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं । कृपा करके मेरा दिया हुआ फल फूल स्वीकार करो । मुझ पर छोह करो । मुनिजी भरतजी की महामहिमा जानते हैं । यथा : जयति विबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राज सुखप्रद विरागी ।

सुनि मुनि वचन भरत हियँ सोचू । भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥

जानि गरुड गुरु गिरा वहोरी । चरन बदि बोले कर जोरी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर भरतजी के मन में सोच हुआ कि कुअवसर मे कठिन सङ्कोच आ पड़ा । फिर गुरु की वाणी का गौरव समझकर चरणों की वन्दना करते हुए हाथ जोड़कर बोले ।

व्याख्या भरतजी समझ गये कि भरद्वाजजी हम लोगों को विश्राम देना चाहते हैं । परन्तु यह अवसर सुखोपभोग का नहीं है । मैं सेवा धर्म में हूँ । जब तक स्वामी सुखोपभोग स्वीकार न करें तब तक सेवक सुखोपभोग कैसे करे । अथवा

भरतजी ने यह सोचा कि मैं तीर्थ में आया हूँ । यहाँ दान करना प्राप्त है । ब्राह्मण का आतिथ्य कैसे स्वीकार करूँ । परन्तु भरद्वाजजी के वचन का उल्लघन भी नहीं किया जा सकता । वर्णानां ब्राह्मणो गुरु । तिस पर भरद्वाजजी तापस शम दम दया निधान और परमार्थ पथ में परम सुजान हैं । ये तो नितरा गुरु हैं ।

ऐसे अवसर पर गुरुगिरा हो प्रमाण हैं । जहाँ धर्म दूसरा हो और गुरु आज्ञा कुछ भिन्न हो तो गुरु आज्ञा ही बड़ी मानी जाती है । गुरु की आज्ञा पालन में उचित अनुचित विचार को स्थान नहीं है । यथा कह सिव जदपि उचित अस नाहीं । नाथ वचन पुनि भेटि न जाँही ।

सिर धरि आयेसु करिअ तुम्हारा । पर धरम येहु नाथ हमारा ॥

भरत वचन मुनिवर मन भाए । सुचि सेवक सिष निकट बोलाए ॥२॥

अर्थ : आप की आज्ञा को शिरोधार्य करके पालन करूँ । यही है नाथ । मेरा परम धर्म है । भरत के वचन मुनिराज को अच्छे लगे । उन्होंने पवित्र सेवको और शिष्यों को निकट बुलाया ।

व्याख्या : सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धर्म यह नाथ हमारा । यही अर्घाली ज्यों की त्यों उस प्रकरण में आयी है । जिसमें रामजी उमा के स्वीकार करने के लिए शङ्करजी से अनुरोध करते हैं । वहाँ शङ्करजी की प्रतिज्ञा थी कि एहि तन सतिहि भेट मोहि नाँही और रामजी का अनुरोध इसके विपरीत था । यथा : जाइ विवाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु । यहाँ शिवजी को भी कुअवसर कठिन सङ्कोच पड़ा था । सामान्य धर्म का परम धर्म से बाध होता है । गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करना परम धर्म है । अतः भरतजी ने अपने सामान्य धर्म के प्रतिकूल शिवजी की भाँति गुरु आज्ञा को परम धर्म मानते हुए आतिथ्य का स्वीकार कर लिया ।

भरतजी की स्वीकृति से मुनिजी को प्रसन्नता हुई । अतः मन भाए लिखते हैं । भरतजी से छोह करने के लिए मुनिजी ने कहा था । सो भरतजी ने छोह कर दिया । अतः आतिथ्य सत्कार की तैयारी करनी चाहिए । भरतजी के आतिथ्य का अर्थ है सम्पूर्ण सेना तथा अयोध्यावासियों का आतिथ्य । इसलिए जितने व्यक्ति मुनिजी की सेवा में थे वया शिष्य वया भृत्य जो सपने में भी अपने धर्म से विचलित नहीं हुए थे उन्हें निकट बुलाया । भरतजी के आतिथ्य में केवल पुण्यात्मा लोगों से ही काम लिया जायगा । रामजी को मार्ग प्रदर्शन के लिए भी भरद्वाजजी ने इस बात का ध्यान रखा । यथा : मुनि बटु चारि सग तव दीन्हें । जिन बहु जन्म सुवृत्त सब कीन्हें ।

चाहिअ कीन्ह भरत पहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ॥

भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए । प्रमुदित निज निज काज सिघाए ॥३॥

अर्थ : उनसे कहा कि भरत की पहुनाई करनी चाहिए । इसलिए कन्द मूल

फल जाकर ले आवो । उन्होने कहा हे नाथ । बहुत अच्छा । सिर नवाया और प्रसन्न होकर अपने अपने काम पर चले गये ।

व्याख्या : भरत की पहुनाई करनी चाहिए । इतने में ही जो कुछ कहना था मुनिजी ने कह दिया । जगत् के भरण पोषण करनेवाले भरत की पहुनाई करनी है । अतः इनके अनुरूप कन्द मूल फल ले आवो । मुनिजी के शिष्य सेवक बड़े पटु हैं । मुनिजी के पास अत्युत्तम फल मूलकन्द तैयार भी रहता है । रामजी के सत्कार के समय कहा गया है : कन्द मूल फल अकुर नीके । दिये आनि पुनि मनहु अमीके ।

वे सेवक और शिष्य बड़े शुचि थे । आज्ञा पाकर बड़े प्रमुदित हुए । खोज खोजकर अधिक मात्रा में जल्दी से लाना है । अतः तुरन्त चल दिये और छितरा कर चले फल लाने को कोई फलवाले वृक्षों की ओर चले । कन्द लाने कोई उस ओर चले जिधर उसकी बहुतायत थी । सब ने काम बाँट लिये । इसलिए निज निज काज सिधाये कहा : ऋषियो के सत्कार के लिए तो कन्द मूल ही जायगा ।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चाहिअ जस देवता ॥

सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई । आयसु होइ सो करहि गोसाई ॥४॥

अर्थ : मुनिजी को सोच हुआ कि मैंने पाहुन मेहमान तो बड़ा नेवत दिया है । अब जैसा देवता हो वैसी पूजा भी चाहिए । यह सुनकर ऋद्धि और अनिमादि सिद्धि आयी । बोली हे स्वामिन् जो आज्ञा हो सो हम करें ।

व्याख्या : नेवता देना तो सहल है । पर आतिथ्य सत्कार कठिन कार्य है । देवता के स्वरूपानुकूल पूजा होनी चाहिए । विश्व भरण पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई । अतः भरत की महामहिमा है । ये बड़े पाहुन हैं । इनके स्वरूपानुकूल आतिथ्य कैसे हो मुनिजी इस सोच में पड़े । रामजी के आने पर सोच नहीं हुआ । क्योंकि उनका मुनिव्रत वेप अहार था । कन्द मूल फल से काम चल गया । पर भरत के लिए तो यह बात नहीं है और राज समाज के साथ हैं । अतः इनका आतिथ्य तो बड़े ठाट वाट से होना चाहिए ।

परन्तु भरद्वाजजी की तपस्या और त्याग ऐसा है कि ऋद्धि सिद्धि शिष्यों से पूछती रहती हैं कि हम लोगो की सेवा का समय आ पड़े तो बतलाना । ऋषिजी से जाकर पूछने का उनका साहस नहीं पड़ता । ऋषिजी को उनकी आवश्यकता नहीं । आज शिष्यों में दौड़ धूप देखकर पूछा । अपना अवसर जानकर स्वयं मुनिजी की सेवा में उपस्थित हो गयी और आज्ञा मांगने लगी कि हमलोगो को भी कुछ सेवा के लिए हुकुम हो ।

दो. राम विरह व्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज ।

पहुनाई करि हरहु समु, कहा मुदित मुनिराज ॥२१३॥

अर्थ : मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा कि रामजी के विरह में भरतजी अपने

छोटे भाई और समाज के साथ विकल हैं। सो तुमलोग उनका आतिथ्य सत्कार करके थकावट दूर करो।

व्याख्या : ऋद्धि सिद्धि के इस समय आ जाने से मुनिराज प्रसन्न हो उठे। बोले भरतजी शत्रुघ्नजी और उनका सारा समाज रामविरह से व्याकुल है। मनसे पीड़ित शरीर से श्रमित है। -यथा : भरत पमादेहि आये आजू। भयल दुखित मुनि सवल समाजू। झलका झलकत पायन्ह कैसे। पवज कोस ओस कन जैसे। सो इन लोगो की ऐसी पहुनाई हो कि इन लोगो का चित पहुनाई के सुख की ओर खिच आवे और कुछ समय के लिए विरह भूल जाय और श्रम जाता रहे।

रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर वानी। वड़भागिनी आपुहि अनुमानी ॥

कहहि परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥१॥

अर्थ : ऋद्धि सिद्धि ने श्रेष्ठ मुनिजी की चाणी को शिरोधार्य करके अनुमान किया कि हम लोग बड़ी भाग्यवान् हैं। आपस में सिद्धि लोग कहती हैं कि रामजी के छोटे भाई ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलना नहीं।

व्याख्या : ऋद्धि साक्षात् कुबेरजी की धर्मपत्नी हैं। सिद्धियाँ आठ हैं। यथा : १. अणिमा २ लघिमा ३ प्राप्ति ४ प्राकाम्य ५ महिमा तथा ६ ईशित्व ७ वशित्व च ८ तथा गरिमा। ऋद्धि और सिद्धियों ने भरद्वाजजी की आज्ञा शिरोधार्य किया। आज तक मुनिजी ने कभी कोई काम नहीं लिया था। अतः उन लोगो ने अनुमान किया कि हम लोगो का बड़ा भाग्य जगा है। तभी मुनिजी ने सेवा स्वीकार को है। शत्रुघ्न सहित समाज भरतजी के पहुनाई करने का अवसर मिला और इस समय हमारी की हुई पहुनाई मुनिजी की मानी जायगी। अतः भरतजी को स्वीकार करना पड़ेगा। इससे भी अपने को वड़भागिनी माना। यथा : सीतापति सेवकाई। कामधेनु सत सरिस सोहाई। तथा मानत सुख सेवक सेवकाई।

सिद्धि लोग आपस में बात करने लगी कि तस पूजा चाहिये जस देवता और भरतजी तो रामजी के छोटे भाई हैं। अत वेजोड़ अतिथि हैं। इनके स्वरूपानुकूल पूजा कैसे बनेगी? भरतजी के वेजोड़ होने के प्रमाण में स्वयं कवि कहते हैं : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। कहिय सुमेरु कि सेर सम कविकुल मति सकुचानि।

मुनि पद वंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू ॥

अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहि विमाना ॥२॥

अर्थ : मुनिजी के चरणवन्दन करके आज ऐसा ही काम करना चाहिए जिसमें सारा राजसमाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन लोगो ने ऐसे सुन्दर सुन्दर घर बनाये। जिन्हें देखकर विमान बिलख उठें।

व्याख्या : भरद्वाजजी कुबेरजी के नाता हैं। ऋद्धि सिद्धि ने सलाह की कि उनके चरणों की वन्दना करके ऐसा तो कर ही डालना चाहिए। जिसमें यदि

भरतजी को सुखी न कर सकें तो उनका समाज तो सुखी हो जावे । ऋद्धि सिद्धि को आशा नहीं है कि वे भरतजी को सुखी करने में समर्थ होंगे । तब उन्होंने सोचा कि यदि उनके समाज को हम लोग सुखी बना सकी तो यह भी भरतजी के सुखी होने का कारण होगा ।

ऐसा विचार करके उन लोगो ने अपनी दिव्य शक्ति से क्षणभर में ऐसे घर बनाये जिनके सामने विमान भी कुछ न ठहरें । घर ही सुख के समान का आश्रय है । अतः यही सम्पूर्ण भोग का उपलक्षण है । इसलिए पहिल गृह रचे । विमान की उपमा देकर उन्हें दैवी भोगो से परिपूर्ण कहा तथा अत्यन्त ऊँचा कहा अथवा उन्हें मङ्गम गृह कहा । समाज का टिकाना है । इसलिए नाना प्रकार के गृह बनाये ।

भोग विभूति भूरि भरि राखे । देखत जिनहि अमर अभिलाखे ॥

दासी दास साजु सब लीन्हे । जोगवत रहहि मनहि मनु दीन्हे ॥३॥

अर्थ उन घरों में बहुत सा भोग और ऐश्वर्य भर रक्खा । जिन्हे देखकर देवताओं का जी ललच जाय । दासी दास सब प्रकार के सामान लिये हुए मन में मन मिलाकर उसकी सँभाल करते हैं ।

व्याख्या उन घरों में सब प्रकार के भोग तथा उनके साधन विभूति ऐश्वर्य को खूब भरा । मकान तो ऐसे बने जिनके टक्कर के विमान नहीं और उनमें सामान ऐसे भरे गये जिन्हे देखकर देवताओं को भी अभिलाषा हो उठे । क्योंकि अवधवासी उनमें ठहरनेवाले हैं । जो ऋद्धि सिद्धि से तथा सुरदुर्लभ सुख से अपरिचित नहीं हैं । यथा रिधि सिधि सपति नदी सुहाई । उमगि अवध अबुधि कहें घाई । तथा सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई ।

यदि अनुकूल सेवक न हो तो सम्पत्ति का आनन्द नहीं मिलता । अतः घरों में दासी दास सुख का साज लिए प्रस्तुत हैं । मालिक से मन मिलाकर सेवा करना जानते हैं । चाहते ही ईप्सित पदार्थ प्रस्तुत कर देते हैं । आज्ञा को आवश्यकता नहीं । यथा मधुपर्क मगल द्रव्य जो जेहि समय मुनिमन मँहु चहें । भरे कनक कोपर कलस सो सब लिये परिचारक रहें ।

सब समाजु सजि सिधि पल भाँही । जे सुख सुरपुर सपनेहु नाँही ॥

प्रथमहि वास दिये सब केही । सुदर सुखद यथा रुचि जेही ॥४॥

अर्थ सिद्धियों ने वहाँ पलभर में सब समाज सजा दिये । जो सुख स्वर्ग में भी सपने में न मिले । पहिल तो सबको उनकी रुचि के अनुसार सुन्दर सुखदायी निवास स्थान दिये ।

व्याख्या इतने बड़े समाज को सजने में ऋद्धि सिद्धि को कुछ भी विलम्ब न हुआ । सिद्धियों के लिए यह क्षणभर का काम था । जितना जल्दी पहुँचाई आरम्भ हो जाय उतना ही अच्छा । अतः पहिले उन घरों में सब लोगो को टिकाया । इस टिकाने में यथायोग्य से काम नहीं लिया गया । बल्कि यथारुचि से काम लिया

गया । योग्यता पर ध्यान देने से यथेष्ट सुख न मिलता । ये घर देखने में सुन्दर और रहने में सुखद थे ।

दो. वहुरि सपरिजन भरत कहूँ, रिषि भस आयेसु दीन्ह ।

विधि विसमय दायकु विभव, मुनिवर तपबल कीन्ह ॥२१४॥

अर्थ : फिर कुटुम्ब सहित भरत को निवास दिया । क्योंकि ऋषिजी ने ऐसी ही आज्ञा दी और उन्होंने अपने तप बल से ऐसा वैभव रच दिया जिसे देखकर ब्रह्मदेव को भी आश्चर्य हो ।

व्याख्या : सपरिजन भरत के रहने के लिए ऋषिजी ने ऋद्धि सिद्धि को यह आज्ञा दी कि सबके टिका देने के पीछे इन्हें टिकाना और अपने तपबल से विधि विस्मय दायक विभव उत्पन्न किया । यथा : तप से अगम न कुछ ससारा । विधि विस्मय दायक विभव से त्रिपाद् विभूति का विभव कहा । मुनिजी ने ऐसी व्यवस्था की कि मुनियों का सत्कार तो शिष्य सेवकों के सुपुर्द किया । राज समाज का सत्कार ऋद्धि सिद्धि के सुपुर्द किया और भरतजी का सपरिजन सत्कार तपबल से स्वयं करने लगे ।

मुनि प्रभाउ जब भरत विलोका । सब लघु लगे लोकपति लोका ॥

सुख समाजु नहि जाइ वखानी । देखत विरति विसारहि ग्यानी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी के प्रभाव को जब भरतजी ने देखा तो उन्हें सभी लोकपतियों के लोक छोटे जैचने लगे । सुख समाज की प्रशंसा नहीं हो सकती । जिसके देखते ही ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय ।

व्याख्या : भरतजी का स्वभाव है कि सबकी खोज लेंते हैं । अतः ऋद्धि सिद्धि का भी प्रभाव देखा : राजा जनक की ओर से सीताजी की आज्ञा से ऋद्धि सिद्धि आयी थी । यथा : सिधि सत्र सिय आयसु अकिन गयी जहाँ जनवास । लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग विलास । निज निज वास त्रिलोकि वराती । सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती । विभव भेद कुछ कोउ न जाना । सकल जनक कर करहि वसाना । सबका खोज खबर लेकर जब अपने डेरे की ओर देखा तो वहाँ की समृद्धि के सामने इन्द्रादि लोकपाल के लोक हलके भालूम पड़े ।

१. वहाँ कैसा सुख समाज था ? इसका वर्णन नहीं हो सकता । क्योंकि वह तो विस्मय दायक विभव था । विधि के सृष्टि के जीव उसका क्या वर्णन कर सकें । उसे देखकर ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय । ज्ञानी में वैराग्य की पराकाष्ठा होती है । यह समाज महामाया की कृपा से हुआ । ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति । पर भरतजी परम भक्त हैं । इनकी विरति बनी रही । यथा : भरतहि होइ न राजमदु विधि हरिहर पद पाय ।

आसन सयन सुवसन विताना । वन वाटिका विहग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना । विमल जलासय विवि विधाना ॥२॥

अर्थ : आसन, शय्या, वस्त्र, चंदवा, उपवन, फूलवारी और नाना प्रकार के पक्षी और मृग सुगन्धित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल और अनेक प्रकार के निर्मल जलाशय ।

व्याख्या - आसन बैठने के लिए, शय्या सोने के लिए, सुवसन शीत उष्ण निवारण के लिए, वितान क्षुद्र जन्तुओं से रक्षा के लिए । वन वाटिका विहार के लिए, नाना प्रकार के पक्षी चहचहाने के लिए और मृग कुलेल करने के लिए । अब उन उपवन तथा वाटिका के फल फूल का वर्णन करते हैं । फूल सुगन्धित हैं और फल अमृत के समान स्वादु हैं ।

असन^१ पान सुचि अमिअ अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही के । लखि अभिलाषु सुरेस सची के ॥३॥

अर्थ खान पान और पवित्र अमृत सा जल जिन्हें देखकर लोग यमी की भाँति सङ्कोच करते हैं । सभी के पास कामधेनु और कल्पवृक्ष थे । जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को अभिलाष उत्पन्न हो ।

व्याख्या अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा । १ अहिंसा २ सत्य ३ चोरी न करना ४ ब्रह्मचर्य ५ सग्रह न करना । ये पाँच यम हैं । जिन्होंने इनका व्रत ले रखा है वे यमी हैं । इन्हें भोग्य पदार्थ के सग्रह में सङ्कोच होता है । पर यहाँ के भोग्य पदार्थ इतने ऊँचे दर्जे के हैं कि लोगो को उन्हें देखकर यमियो की भाँति सङ्कोच होता है । उनका चित्त कहे देता है कि इनके उपभोग की मेरे में योग्यता नहीं । अमिअ का अर्थ जल भी है । यथा पय कीलालममृत जीवन भुवन वनम् । यहाँ प्रथम अमिअ का अर्थ जल है ।

इतने पर भी कोई घाटा न रह जाय । इसलिए सबके पास कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं । जिन्हें देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो कि मेरे नन्दन वन में भी ऐसी कामधेनु और ऐसे कल्पतरु होते । राजसमाज के सुख को देखकर अमर अभिलाषे पर मुनिवर के तपबल से अर्जित सम्पत्ति ऐसी थी कि उसे देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो जावे ।

रितु बसत वह त्रिविध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चंदन वनितादिक भोगा । देखि हरख बिस्मय बस लोगा ॥४॥

अर्थ वसन्त ऋतु हो गयी । शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी । सबको धर्मार्थ काम मोक्ष सुलभ हो गया । माला चन्दन तथा स्त्री आदि में है जिनके : ऐसे भोगो को देखकर लोग हर्ष और आश्चर्य के वश में हो गये ।

व्याख्या : समय का परिवर्तन हो गया । ग्रीष्म ऋतु वसन्त हो गयी । अतः त्रिविध समीर बहने लगा । धर्मार्थ काम की कौन चलावे मोक्ष भी उस समय सुलभ हो गया । माला और चन्दन का गृही को अधिकार है । क्योंकि ये कामोपभोग की सामग्री हैं और स्त्री शरीर को सासारिक मुखो का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है । इसीलिए वनितादिक भोग कहते हैं । जब स्वर्ग के सभी सुख हैं, कामधेनु हैं, कल्प-वृक्ष हैं तो अप्सराएँ क्यों न हो ? यह सब देखकर लोगों को हर्ष भी हुआ और आश्चर्य भी हुआ कि ऐसा भोग मोक्ष का एकत्रकरण कहीं देखा नहीं गया था और न सुना ही गया था ।

दो. संपत्ति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार ।

तेहि निसि आश्रम पिजराँ, राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

अर्थ : सम्पत्ति चकई हुई, भरतजी चकवा हुए और मुनिजी की आज्ञा मानो खेलवाड़ हो गया । उस रात को आश्रम रूपी पिजड़े में दोनों को रखे ही रखे सवेरा हो गया । चकवा चकई का समागम न हुआ ।

व्याख्या : चकवा चकई में भोक्तृभोग्य सम्बन्ध है । परन्तु उनका मिलन सूर्य साक्षिक ही होता है रात्रि में वियोग रहता है । यह जानकर मानो किसी खेलवाड़ी ने उन दोनों को रात के समय एक पिजड़े में बन्द कर दिया । यह देखने के लिए इतने सन्निकट होने पर भी दोनों का वियोग कैसे स्थिर रह सकता है । पर उन दोनों के एकत्रित होने पर वियोग बना रहा । दोनों ने एक दूसरे की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा । यहाँ तक कि सवेरा हो गया । वैसी ही दशा यहाँ हुई । यहाँ चकवा स्थानीय भरतजी और चकई स्थानीय सम्पत्ति हुई । भानुकुल भानु के न होने से वह समय रात्रि स्थानीय हुआ । उस विशेष रात्रि में मानो भरतजी सम्पत्ति के साथ एक स्थान में मुनिजी की आज्ञा से एकत्रित हो गये । अन्यथा भरतजी सम्पत्ति से दूर रहते थे । यथा : नदि गाँव करि परन कुटोरा । कीन्ह निवास घरम घुर घोरा । पर उस एकत्रित होने से भरतजी के नियम में भङ्ग न हुआ । सम्पत्ति का कोई प्रभाव भरतजी पर नहीं पड़ा । भरतजी की वियोग व्यथा ज्यों की त्यों बनी रह गयी और रात्रि व्यतीत हो गयी । यथा : मनहुँ कोक कोकी कमल दोन विहीन तमारि ।

कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा । नाइ मुनिहि सिर सहित समाजा ॥

रिपि आयसु असीस सिर राखी । करि दंडवत विनय बहु भापी ॥१॥

अर्थ : तीर्थराज में स्नान किया । समाज के सहित मुनिजी की वन्दना की । ऋषिजी की आज्ञा और आशीर्वाद को शिरोधार्य करके दण्डवत् की ओर बहुत विनय किया ।

व्याख्या : तीर्थराज में प्रवेश होने के समय भी स्नान और जाते समय भी स्नान की विधि है । सरकार ने भी ऐसा ही किया था । यथा : राम कीन्ह विश्राम

निसि प्रात प्रयाग नहाइ । चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिर नाइ । सहित समाज पहुनाई हुई थी । अत सहित समाज सिर नवाया । विदाई माँगा । यहाँ प्रयाग न कहकर तीर्थराज कहा । भाव यह कि यह भी सहित समाज विराजमान है ।

ऋषिजी की आज्ञा से पहुनाई स्वीकार किया था । अत जाने के लिए भी आज्ञा माँगी । सो आज्ञा मिली । वन्दना किया था । इसलिए आशीर्वाद मिला कि मनोवाञ्छित सिद्ध हो । अत आज्ञा और आशीर्वाद दोनों को शिरोधार्य करके दण्डवत् किया । आने के समय भी दण्डवत् किया था । मुनिजी ने सत्कार करने में कुछ उठा नहीं रक्खा । इसलिए बहुत विनती भी की ।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे । चले चित्रकूटहि चितु दीहे ॥
राम सखा कर दीन्हे लागू । चलत देहु धरि जनु अनुरागू ॥२॥

अर्थ रास्ते के जानने में चतुर लोगो को साथ लिया और चित्रकूट में चित्त दिये हुए चले । राम सखा के हाथ का सहारा पकड़े चल जा रहे हैं । मानो देह धारण किये हुए साक्षात् अनुराग ही है ।

व्याख्या सरकार के चलने के समय जब रास्ता दिखाने के लिए शिष्यों को बुलाया तो पचासो आगये और सब कहने लगे कि हमारा सब रास्ता देखा है । पर चार व्यक्तियों को रास्ता दिखाने के लिए पचास तो भेजे नहीं जा सकते । अधिक से अधिक चार जा सकते हैं । अत मुनिजी ने ऐसे चार को चुना जिन्होंने अनेको जन्म में बहुत से पुण्य किये थे । शेष शिष्यों का अभिलाष मन में ही रह गया । आज भरतजी को रास्ता दिखाना और इनके साथ पूरा समाज है । अत आज पचासो की नियुक्ति रास्ता दिखाने के लिए कर दी गयी । अथवा सरकार को रास्ता दिखाने के लिए चारो वेद शिष्य वेष में गये थे और सारे समाज को रास्ता दिखाने के लिए साङ्गोपाङ्ग वेद सरहस्य सोपनिषद सेतिहास पुराण रास्ता दिखाने चले । पहिले तो चित्तवृत्ति प्रयाग की ओर थी । तीर्थराज को बायाँ देकर जाना नहीं चाहते थे । पर अब तो मन सीधे चित्रकूट में लगा हुआ है ।

अत्यन्त प्रेम से शरीर शिथिल है । अत निषादराज का सहारा लिये चल रहे हैं । मानो शरीरधारी अनुराग हैं । इस समय सखा में वह विनय नहीं है जो प्रथम मिलन के समय था । यथा राम सखा कर दीन्हे लागू । जनु धनु धरे विनय अनुरागू । घनिष्ठता अधिक हो जाने से विनय की मात्रा कम हो गयी ।

नहि पद नान सीस नहि छाया । पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया ॥
लखन राम सिय पथ कहानी । पूछत सखहि कहत मृदु बानी ॥३॥

अर्थ न पावो में जूते हैं, न सिर पर छाया है और प्रेम नेम व्रत और धर्म सब मायारहित है । लक्ष्मण और रामजानकी की पन्थ कथा पूछते चलते हैं और सखा मृदुवाणी से कहता चला जा रहा है ।

व्याख्या : राजा लोग जूता तो पहनते हैं पर छाता नहीं लगाते । छाता दूसरे खोले रहते हैं उसी की छाया में चलते हैं । यहाँ न जूता पैर में है न सिर पर छाया है । प्रेम ऐसा है : चलत देह धरि जनु अनुरागू । नेम ऐसा है : गवने भरत पयादाहि पाएँ । कोतल संग जाहि डोरिआएँ । व्रत ऐसा है : नहि पद श्रान सीस नहि छाया और धर्म ऐसा : लखन रामसिय पंथ कहानी । पूछत सखहि कहत मृदु बानी । इन सब में छल का स्पर्श नहीं । अतः अमाया कहते हैं ।

पन्थ कहानी में पहिले लक्ष्मण विषयक प्रश्न किया । क्योंकि वे सर्वार्यकारी थे । तत्पश्चात् प्रभु विषयक प्रश्न है । सीता विषयक प्रश्न सबके पीछे है । क्योंकि वे तो रक्ष्य रही । सत्ता शृङ्गवेरपुर से ममुनातीर तक साथ रहा है । अतः उस कथा को मृदुवाणी से कह रहा है और भरतजी सुनते जा रहे हैं ।

राम वास थल बिटप बिलोके । उर अनुराग रहत नहि रोके ॥

देखि दसा सुर वरसहि फूला । भइ मृदु महि मग मंगलु मूला ॥४॥

अर्थ : रामजी के निवासस्थल के वृक्ष को देखने से हृदय में अनुराग रोके नहीं रुकता । यह दशा देखकर देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं । पृथ्वी कोमल हो गयी । रास्ता मङ्गलमूल हो गया ।

व्याख्या : पन्थ कथा सुनते भरतजी अपने अनुराग को रोके चले जा रहे हैं । तब से वह वटवृक्ष आगया जिसके तले भगवान् ने विश्राम किया था । उसे देखने से अनुराग रोकने पर भी नहीं रुकता । सच्चे अनुरागी अपने अनुराग को छिपाया चाहते हैं पर वह छिपता नहीं । अति सनेह सादर भरत कोन्हेउ दड प्रनाम । यह भरतजी की यात्रा विधि है ।

अब प्रेम की दशा का फल कहते हैं । भक्ति की दशा में पूजन का सौभाग्य मिलना कठिन है । अतः देवताओं ने फूल की वर्षा ऊपर से की । पृथ्वी ने अपनी सहज कठोरता परित्याग किया । कुश कण्टकादि को दूर करके रास्ते को मङ्गलमूल कर दिया । क्योंकि भरतजी के पाँव में जूते नहीं हैं ।

दो. किये जाहि छाया जलद, सुखद वहइ बर वात ।

तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात ॥२१६॥

अर्थ : बादल छाया करते जा रहे हैं । सुख देनेवाली हवा वह रही है । वैसा रास्ता रामजी को भी नहीं हुआ जैसा भरत को जाने के समय में हुआ ।

व्याख्या : भरतजी को छाता नहीं लगा था । अतः बादल छाया करते जा रहे हैं । बादल की छाया के सामने छाता की छाया क्या वस्तु है । ज्येष्ठ का महीना है । सो लू नहीं चल रही है । शीतल मन्द सुगन्ध वायु वह रही है । यद्यपि ऐसी ही वात रामजी के चलने के समय हुई थी । यथा : परसि रामपद पदुम परागा । मानत भूमि भूर निज भागा । छाँह करहि घन विबुध गन वरखहि मुमन सिंहाही । इत्यादि । पर भरत की यात्रा के समय में अधिकता से हुई । राम ते अधिक रामकर दासा ।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे । जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भये परम पद जोगू । भरत दरस मेटा भव रोगू ॥१॥

अर्थ : रास्ते में जड़ चेतन जीव भरे पड़े थे । उनमें जिन्होंने प्रभु को देखा या जिनको प्रभु ने देखा वे सब परमपद के अधिकारी हो गये । भरत के दर्शन से उनका संसाररूपी रोग छूट गया ।

व्याख्या : सरकार के दर्शन के विषय में कह चुके हैं: जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ । भवमग अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ । अब भरतजी की विशेषता कहते हैं कि रास्ते के जीवमात्र को परमपद की योग्यता प्राप्त हो गयी । जो चेतन जीव थे उन्होंने प्रभु भरतजी को देखा और जो जड़जीव थे देखने में असमर्थ थे उन्हें प्रभु भरत ने देखा । दोनों कृतार्थ हो गये । जिन्होंने प्रभु को देखा उनकी अन्तःकरणवृत्ति भरताकार में परिणत हुई और ऐसा होते ही उनके सम्पूर्ण कल्मष दूर हो गये । उन्हें परमपद प्राप्ति की योग्यता हो गयी और जिनको भरतजी ने देखा । उनके आकार से भरतजी की अन्तःकरण की वृत्ति आकारित हो गयी । जिसके आकार से परम पुनीत भरतजी की वृत्ति आकारित हो जाय उसके सद्गति में सन्देह ही क्या है ? यहाँ प्रभु शब्द भरतजी के लिए आया है । क्योंकि यहाँ भरतजी की प्रभुता कह रहे हैं । मेघनाद वध प्रकरण में देवताओं ने प्रभु कहकर ही लक्ष्मणजी की स्तुति की है । यथा . तुम प्रभु सब देवन्ह निस्तारा । भव रोग को नष्ट होने से अभिप्राय आवागमन से रहित होने का है ।

यह बड़ि बात भरत कइ नांही । सुमिरत जिनहि रामु मन मांही ॥
बारक नाम कहत जग जेऊ । होत तरन तारन नर तेऊ ॥२॥

अर्थ : भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है । जिन्हे स्वयं रामजी मन में स्मरण किया करते हैं । संसार में यदि कोई एक बार भी नाम स्मरण करता है वह स्वयं तरता है और दूसरों को तारता है ।

व्याख्या : यदि कोई कहे कि यह तो बड़ी भारी बात है । रामजी के दर्शन से तो नेत्रवाले ही तरे । नेत्रविहीनो का कोई उपकार नहीं कहते और भरतजी के कारण चराचर का उपकार हुआ । इस पर कवि कहते हैं कि भरतजी के लिए बड़ी बात नहीं है । जिसके नाम का जप स्वयं रामजी किया करते हैं । यथा : जग जप राम राम जप जेही । उनकी महिमा स्पष्ट ही रामजी से बड़ी है । अब मार्ग के मङ्गलदातृत्व का कारण कहते हैं ।

एक बार भी जिसके नाम को लेकर मनुष्य स्वयं भी तर जाता है और दूसरों को भी तारता है । संभालकर रामजी का नाम लिया जाता है । यथा : बार बार रघुवीर संभारी । तरकेउ पवन तनय बल भारी । संभारि श्रीरघुवीर धरि प्रचारि कपि रावन हन्यौ । महात्मा किनारामजी ने कहा है : सो प्रभु सब में रमि रह्यौ सर्व रूप सब ओर । ताते राम संभारि गहु सब नामन को मोर । इसीलिए

कहते हैं । जनम जनम मुनि जतन कराही । अत राम कहि आवत नाही । जिसके नाम की इतनी प्रभुता है ।

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता । कस न होइ मगु मगलदाता ॥

सिद्ध साधु मुनिवर अस कहही । भरतहि निरखि हरपु हिय लहही ॥३॥

अर्थ : भरतजी तो रामजी को प्रिय हैं और उनके छोटे भाई हैं । अत रास्ता मङ्गलदाता क्यों न हो । यह बात सिद्ध साधु और श्रेष्ठ मुनि गण कहते हैं । और भरतजी का दर्शन करके हृदय से हर्षित हो रहे हैं ।

व्याख्या : अपने सत्कार से मनुष्य उतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि अपने प्रिय के सत्कार से तथा अपने पुत्र के सत्कार से प्रसन्न होता है । भरतजी तो रामजी को अत्यन्त प्यारे हैं । यथा : भरत सरिस प्रिय को जगमाँही । और छोटे भाई होने से पुत्र स्थानीय हैं । अतः रास्ता भरत के लिए रामजी से भी अधिक सुखकारक हुआ । कवि कहते हैं कि ऐसा न होने का कोई कारण नहीं ।

ऐसी बातें सिद्ध साधक और स्थितधी महात्मा आपस में कहने लगे और भरतजी का दर्शन करके कृतकृत्य हो गये । सिद्ध लोग चाहने से सिद्धि द्वारा प्रकृति के किसी नियम में परिवर्तन कर सकते हैं । यहाँ आप से आप हो रहा है । साधु लोगो का मनसा वाचा परोपकार करने का स्वभाव है । सो देख रहे हैं कि भरतजी के मार्ग में चलने से चराचर का आप से आप उपकार हो रहा है । मुनि लोग स्थितप्रज्ञ हैं । इन्हें जीवो की परम प्राप्ति योग्यता से हर्ष है । अथवा बिना साधन के ही अपने कल्याण की प्राप्ति से हर्षित हैं ।

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू । जगु भल भलेहि पोच कहूँ पोचू ॥

गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई ॥४॥

अर्थ : यह प्रभाव देखकर इन्द्र को चिन्ता हुई । संसार भले को भला और बुरे को बुरा है । गुरुजी से कहा कि हे प्रभो ! अब ऐसा कीजिये कि राम से और भरत से भेंट न हो ।

व्याख्या : प्रकृति में परिवर्तन द्वारा भरत की महामहिमा देखकर उपर्युक्त महानुभावो को तो सुख हुआ । परन्तु इन्द्र को सोच हुआ कि यहाँ तो जड़ पिघल रहे हैं । राम तो करुणासिन्धु हैं । उन्हें पिघलते कितनी देर लगेगी । संसार विचित्र वस्तु है । बुरे को यहाँ भला खोजने से नहीं मिलता । उसी भाँति भले को बुरा नहीं मिलता । यहाँ एक ही वस्तु एक को विष है और दूसरे को अमृत है । निर्णायक कुछ भी नहीं । अतः यही कहना होगा कि अपने भावतानुसार संसार की प्रतीति होती है ।

इन्द्र गुरुजी को आज्ञा देते हैं । उनसे उपाय पूछना चाहिए । सो उन्हें ही उपाय बतलाते हैं । यह उनकी आसुरी सम्पत्ति है । कहते हैं कि आप प्रभु हैं । आप में सामर्थ्य है । आप चाहे तो रामजी से भरतजी की भेंट न हो और इसी में हम लोगो का कल्याण है और आप गुरु हैं । हमारा कल्याण साधन कीजिये ।

दो. राम सँकोची प्रेम वस, भरत सपेम पयोधि ।

वनी बात विगडन चाहति, करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥

अर्थ : रामजी सङ्कोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी सुन्दर प्रेम के समुद्र हैं । वनी बात विगड़ना चाहती है । अतः माया करके कोई उपाय करना चाहिए ।

व्याख्या : इन्द्रजी कहते हैं कि रामजी स्वभाव से सङ्कोची हैं । आगे कहेंगे : तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू और प्रेमवश हैं । यथा : रामहि केवल प्रेम पियार । जानिलेहु जो जाननि हारा । ये सङ्कोच प्रेमवश होकर सब कुछ कर सकते हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं । इन दोनों महात्माओं के मिलने की देर है । भरत निश्चय रामजी को लौटा ले जावेंगे । हम लोगो की बात बन गयी है । रामजी राज्य छोड़कर बन आगये हैं । सो सब करा घरा मिट्टी हुआ चाहता है । अतः इनके न मिलने में ही हम लोगो की कुशल है और न मिलने देने का कोई प्रशस्त यत्न नहीं है । माया से ही ऐसा उपाय सम्भव है । क्योंकि वही अघटित घटना पटोयसी है । सो ऐसी माया हम लोगो से साध्य नहीं है । आप गुरु हैं । समर्थ हैं । आप ही कोई ऐसी माया कीजिये जिससे राम और भरत से भेंट न हो ।

वचन सुनत सुरगुरु मुसकानें । सहसनयन बिनु लोचन जानें ॥

मायापति सेवक सन माया । वरियत उलटि परइ सुरराया ॥१॥

अर्थ : वचन सुनकर बृहस्पतिजी मुसकुराये और हजार आँखवाले को बिना आँख का समझा । बोले हे देवराज ! मायापति के सेवक से यदि माया की जाय तो उलटकर अपने गले पड़ती है ।

व्याख्या : देवराज ने तो कहा : करिय जतन छल सोधि । पर गुरुजी मुसकुरा पडे । सोचा कि इनकी तो यह दशा है : लोचन सहस न सूझ सुमेरू । इन्द्र को हजार आँखें हैं पर क्या एक से भी नहीं सूझता । ये अन्धे ही हैं । यथा - तुलसी स्वारथ सामुहे परमारथ तन पीठि । अंध कहे दुख पाइहैं दिठियारो बेहि डीठि । ये केवल अपना ही स्वार्थ देख रहे हैं । परमार्थ की ओर से मुँह फेर लिया है । अतः ये अन्धे हैं । इन्हे आँखवाला किस हिसाब से कहा जाय ।

देवराज से कहा कि रामजी मायापति हैं । इनकी माया सबसे प्रबल है । यथा : सुन खग प्रबल राम की माया । माया सब सिय माया माहू । वह रामजी की माया उनके सेवक पर बड़ी कृपा करती है । उसे नहीं व्यापती । यथा - नट कृत विकट कपट खगराया । नट सेवकहि न व्यापे माया । यदि उनके सेवक से कोई माया करता है तो वह माया उलटकर उस माया करनेवाले के गले पड़ जातो है । यथा : हित्तः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते । पीडा देनेवाला अपने पाप से ही मारा पड़ता है और साधु समदर्शिता द्वारा भय से छूट जाता है ।

तके नीच जो मोच साधुकी सो पामर तेहि मोच मरै ।

वेद विदित प्रह्लाद न भगति पय पाव धरै ॥

य किछु कीन्ह राम रख जानी । अब कुचालि करि होइहि हानि ॥

मुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहि न काऊ ॥२॥

अर्थ : उस समय तो रामचन्द्र का रख जानकर कुछ किया था । अब कुचाल करने से हानि होगी । हे देवराज ! रघुनाथजी का स्वभाव सुनो । अपने अपराध से कभी अप्रसन्न नहीं होते ।

व्याख्या : यदि कहो कि पहिले आप ऐसा कर चुके हैं । सरस्वती को प्रेरणा किया था । यथा : विपत्ति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु । राम जाहि बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु । यद्यपि उस प्रसङ्ग में स्पष्ट बृहस्पतिजी का उल्लेख नहीं आया है । पर मालूम होता है कि देवताओं की ओर से प्रवक्ता गुरुजी ही थे । गुरुजी ने उस समय रामजी का रख देख लिया था । यथा : जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई । कर्नवेध उपवीत विआहा । संग संग सब भयउ उछाहा । विमल वंस यह अनुचित एकू । बंधु विहाइ बड़ेहि अभिपेकू । तथा : नवगयंदु रघुवीर मनु राजु अलान समान । छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान । रख देखकर माया के लिए सरस्वती की प्रेरणा की । राम रख पाकर कुचाल में भी हानि नहीं । यथा : चलेहुँ कुमग पग परहि न खाले । इस समय रामजी का रख भरत से मिलने का है । दिन रात सोचते हैं । यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती । इस समय कुचाल करने से रक्षा नहीं है ।

देवता स्वार्थी होते हैं । देवराज होने से इनका महास्वार्थी होना च्योतित किया । यहाँ सुरेस शब्द में यही व्यङ्ग्य है । अब रामजी का स्वभाव देवराज को बतलाते हैं । जिससे व्यवहार करना हो उसके स्वभाव को समझ लेना बड़ा आवश्यक है । उनका स्वभाव है कि अपने अपराध से अप्रसन्न नहीं होते । रामजी को बन हुआ यह उनके प्रति अपराध था । इसलिए सरकार अप्रसन्न न हुए ।

जो अपराधु भगत कर करई । राम रोप पावक सो जरई ॥

लोकहुँ वेद विदित इतिहासा । येह महिमा जानहि दुरवासा ॥३॥

अर्थ : जो भक्त का अपराध करता है वह रामजी के क्रोधाग्नि में भस्म होता है । इसका इतिहास लोक और वेद में भी विदित है । इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं ।

व्याख्या : भगवान् भक्त के प्रति किये हुए अपराध को नहीं सहते । क्रोध करते हैं और उनके क्रोध करने पर अपराधी फिर नहीं बचता । यथा : वेद विरुद्ध मही सुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारथौ । और कहा कहाँ तीय हरी तबहुँ कछनाकर कोप न धारथौ । सेवक छोह ते छाड़ी छमा तुलसी कहे राम सुभाउ तुम्हारो । तोलो न दाप दल्यौ दसकंधर जो लौ विभीषन लात न मारथौ ।

दो बड़े भारी प्रमाण हैं : लोक और वेद । सो दोनों में यह बात प्रसिद्ध है । तुम्हें नहीं मालूम यह बड़े आश्चर्य की बात है । भक्त की महिमा दुर्वासा ऋषि

जानते हैं। जिन्होंने भक्त अम्बरीष पर क्रोध करके कृत्या उत्पन्न की। तुरन्त भगवान् का सुदर्शनचक्र चला। उसने कृत्या को भस्म करके दुर्वासा को अपना लक्ष्य बनाया। दुर्वासाजी साल भर भागते फिरे। ब्रह्मधाम शिवलोकादि में रक्षा के लिए गये। पर रक्षा न हुई। सुदर्शन से पीछा नहीं छूटा। तब स्वयं भगवान् के शरण गये। उन्होंने कहा कि तुम्हें क्षमा प्रदान तो अम्बरीष ही कर सकता है। अन्ततः भक्त अम्बरीष के शरण जाने पर ही रक्षा मिली।

भग्न सरिस को राम स्नेही। जगु जप राम रामु जप जेही ॥४॥

अर्थ भरत के ऐसा राम का स्नेही कौन है? ससार तो राम को जपता है और रामजी भरत को जपा करते हैं।

व्याख्या राजा अम्बरीष भी बड़े स्नेही रामजी के थे। परन्तु भरत ऐसा तो कोई भी नहीं है। यथा सुनहु भरत रघुवर मन माही। प्रेमपात्र तुम सम कोउ नाही। और कहाँ तक कहा जाय सम्पूर्ण ससार राम को जपता है। सो राम भरतजी के स्नेह के ऐसे वशीभूत हैं कि वे सदा भरत भरत भरत जपा करते हैं। सो भरत के अपराधी को कहाँ त्राण मिलेगा। राम भरत के भेंट में बाधक होना भगवत् अपराध और भागवत् अपराध दोनों ही है।

दो मनहु न आनिअ अमरपति, रघुवर भगत अकाजु।

अजसु लोक परलोक दुख, दिन दिन सोक समाजु ॥२१८॥

अर्थ हे अमरपति। रघुवर भक्त के काम बिगाडने की बात मन भी न आने दो। इससे लोक में दुर्यश और परलोक में दुख होगा और दिन दिन शोक समाज बढ़ेगा।

व्याख्या भगवत् का अपराध तथा भागवत् अपराध मन में भी स्थान देने योग्य नहीं है। इन्हे मन में स्थान देने से लोक परलोक दोनों बिगड़ता है और सुख तो भाग ही जाता है। निरन्तर शोक की शृङ्खला बढ़ती है। लोग दुर्यश तथा परलोक का दुख ऐहिक सुख के लिए अङ्गीकार करते हैं। पर भागवतापराध से ऐहिक सुख भी नष्ट हो जाता है और उसे विपत्ति पर विपत्ति आती ही जाती है। दुर्यश तथा परलोक का नष्ट होना ऊपर से होता है। इस बात को दूसरे शब्द में कहा करे तो उलटि पडै सुरराया। मन में स्थान देना ही कार्यारम्भ है। जिसने मन में स्थान दिया वह एक दिन कर बैठेगा।

सुनु सुरेस उपदेशु हमारा। रामहि सेवक परम पियारा ॥

मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैर अधिकारी ॥१॥

अर्थ हे देवराज। मेरा उपदेश सुनो। रामजी को सेवक अत्यन्त प्रिय हैं। वे सेवक की सेवा करने से सुख मानते हैं। सेवक से बैर करने से अधिक बैर मानते हैं।

व्याख्या : इन्द्र ने गुरुजी से कहा था : करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई । उसी का उत्तर गुरुजी देते हैं कि मेरा उपदेश सुनो । आज्ञा मत दो । सचिव वैद्य गुरु तीन जो प्रिय बोलहि भय आस । राज धर्म तन तीनि कर होइ वेगि हो नास । मैं तुम्हारे भले की बात बहता हूँ । रामजी को सेवक के समान कोई प्यारा नहीं । यथा : पुनि पुनि सत्य कहों तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम कोउ प्रिय नाही । सो उनका स्वभाव है कि उनके सेवक की यदि कोई सेवा करे तो बड़े सुखी होते हैं । यथा : सीतापति सेवक सेवकाई । कामधेनु सय सरिस सुहाई ।

और यदि कोई उनके सेवक से वैर करे तो उसके प्रति अधिक वैर मानते हैं । उन्हें देवता प्यारे हैं । इसमें सन्देह नहीं । पर सेवक के इतने नहीं : सहे सुरन्ह बहु काल बिपादा । हरहरि किये प्रकट प्रह्लादा । देवता लोग तो हिरण्यकश्यप द्वारा बहुत सताये गये । पर अवतार न हुआ । पर जब वह भक्त प्रह्लाद को सताने लगा तो खम्भ फाड़कर प्रकट हुए ।

यद्यपि सम नहि राग न रोष । गहहि न पापु पूनु गुन दोष ॥

करम प्रधान विस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥२॥

अर्थ : यद्यपि सम हैं । न उन्हें राग है न क्रोध है । किसी के पाप पुण्य का ग्रहण नहीं करते । विश्व में कर्म को प्रधान कर रक्खा है । जो जैसा करता है वैसा फल पाता है ।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं । उनमें रागरोषरूपी विषमता नहीं है । यथा : विस्मय हरष रहित रघुराऊ । तुम जानहु सब राम प्रभाऊ । पर विश्व के कार्य सञ्चालन के लिए कर्म को प्रधान बना रक्खा है । यथा : करे जो कर्म पाव फल सोई । निगम नीति अस कह सब कोई । अर्थात् कर्म की प्रधानता में किसी को सन्देह नहीं है । यथा : तुलसी यह तन खेत है मन बच कर्म किसान । पाप पुण्य द्वे बीज है बर्वे सो लवै निदान ।

तदपि करहि सम विषम विहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥

अगुन अलेख अमान एकरस । रामु सगुन भये भगत प्रेम बस ॥३॥

अर्थ : फिर भी भक्त और अभक्त के हृदयानुसार वे सम और विषम विहार करते हैं । निर्गुण निर्लेप अमान और एकरस होते हुए भी रामजी भक्त के प्रेमवश सगुन हो गये ।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा है । विषमता से रहित है । न उन्हें राग द्वेष है न उन्हें किसी के पुण्य से कोई प्रयोजन है । ससार कर्मानुसार सुख दुःख भोगा करता है । फिर भी उनका विहार कभी सम और कभी विषम होता है । जिस भाँति दर्पण सबके लिए समान है । उसे किसी से रागद्वेष नहीं । पर उसमें यदि क्रोधपूर्वक देखें तो दर्पण में क्रोधमयी मूर्ति का और यदि प्रसन्न होकर देखें तो हँसमुख मूर्ति का दर्शन होता है । उनमें भक्त और अभक्त के हृदयों का

भाव प्रतिफलित होता है। ऐसा होने से न तो दर्पण में विपमता आता है और न रामजी में ही विपमता आती है। पर व्यवहार विपम होता है।

रामजी स्वभाव से निर्गुण है। निर्लेप हैं। उनमें भेद को स्थान नहीं है। इसलिए अमान हैं और उनमें विकार नहीं होता। इसलिए एकरस है। अतः उन्हें अज कहा है। उनका जन्म नहीं होता। परन्तु परम भक्त स्वायम्भू को अभिलाषा हुई कि मैं उनका दर्शन इस चमक चक्षु से करूँ तो भगवान् को शरीर धारण करना पड़ा। वे निर्गुण से सगुण हो गये। यथा उर अभिलाष निरतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई। अगुन अखड अनत अनादी। जेहि चितहि परमारथवादी। नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानद निरूपाधि अनूपा। सभु विरचि विष्णु भगवाना। उपजहि जासु अस ते नाना। ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लोला तनु गहई।

राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी ॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई ॥४॥

अर्थ रामजी ने सदा सेवक की रुचि रखी है। वेद पुराण देवता और सन्त इसके साक्षी हैं। ऐसा मन में समझकर कुटिलता छोड़ो और भरतजी के चरणों में सुन्दर प्रीति करो।

व्याख्या सेवक सेवा धर्म में स्थिर है। कुछ मांगता नहीं। तब सरकार को उसकी रुचि देखकर कार्य करना पड़ता है। वेद पुराण सन्त और देवता रामकथा के जाननेवाले हैं। सो सब जानते हैं कि रामकथा वस्तुतः सेवको की रुचि रखने की कथा है। सन्तों की रुचि रखने के लिए रामावतार हुआ। यथा तुम सारिखे सत प्रिय मोरे। धरी देह नहि आन निहोरे। बाल लीला कुमार लीला आदि सेवको की रुचि रखने के लिए हुआ। राज्य त्यागकर वनगमन भी सेवको की रुचि रखने के लिए ही हुआ। यथा अत्रि आदि मुनिबर बहु बसही। करहि जोग जप तप तन कसही। चलहु सफल श्रम सबकर करहु। राम देहु गौरव गिरिवरहु। अतः रामजी अपने सेवक भरत की रुचि अवश्य रखेंगे। इसमें सन्देह नहीं है।

तुम जो कहते हो करहु जतन छल सोधि यही कुटिलाई। सो कुटिलाई छोड़कर भरत के चरणों में प्रीति करो। भरत तुम्हारा काम नहीं बिगड़ने देंगे।

दो राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।

भगत शिरोमणि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल ॥२१९॥

अर्थ हे सुरपति। भरतजी रामभक्त हैं। परहित में तत्पर रहते हैं। दूसरे के दुख से दुखी होनेवाला दयालु हैं। भक्त शिरोमणि हैं। उनसे डरो मत।

व्याख्या रामभक्त से भी काम नहीं बिगड़ता। यथा साधु ते होइ न कारज हानी। क्योंकि रामभक्त परहित निरत होते हैं। दूसरे के दुख से दुखी होते हैं। उनका स्वभाव दयालु होता है। यथा सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्न

पर कहै न जाना । निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दुख द्रवहि संत सुपुनीता ।
यहाँ तो भरतजी भक्त शिरोमणि हैं । इनसे डरने की कौन बात है । सो तुम क्यों
डरते हो । तुम तो सुरपाल हो । असुरपाल डरें तो एक बात भी है ।

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी । भरत राम आयसु अनुसारी ॥
स्वारथ विवश विकल तुम्ह होहू । भरत दोसु नहि राउर मोहू ॥१॥

अर्थ : प्रभु सत्यसन्ध हैं । देवताओं के हितकारी है और भरतजी रामजी
के आज्ञा पालक हैं । स्वार्थ विवश हो । इसलिए तुम विकल होते हो । भरत का
दोष नहीं है । तुम्हारा ही अज्ञान है ।

व्याख्या : न डरने का कारण कहते हैं । रामजी समर्थ हैं । सत्यसन्ध हैं । जो
प्रतिज्ञा की है उसे पूरा करेंगे । यथा : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा हरिहीं सकल
भूमि गरु आई । निर्भय होहु देव समुदाई : देवताओं के सदा से हित करनेवाले हैं ।
यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो । नाना तनु धरि तुमहि नसायो । जब
मालिक ऐसा है और भरतजी सेवक हैं आज्ञाकारी हैं तब डरने की तो कोई बात
नहीं है । अत्यन्त स्वार्थ के कारण तुम इस पर ध्यान न देकर विकल हो रहे हो ।
इसमें भरतजी का कोई दोष है ही नहीं । केवल अपने अज्ञान से आप व्यर्थ
दुःखी हो रहे हैं ।

सुनि सुरवर सुरगुर वर वानी । भा प्रमोदु मन मिटी गलानी ॥
वरपि प्रसून हरपि सुरराऊ । लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥२॥

अर्थ : सुरगुरु की श्रेष्ठ वाणी सुनकर देवराज के मन की ग्लानि मिट गयी
और प्रसन्नता हुई । देवराज ने हर्षित होकर फूल बरसाया और भरत के स्वभाव
की प्रशंसा करने लगे ।

व्याख्या : इन्द्र भगवान् देवताओं में श्रेष्ठ हैं । गुरु के वाक्य पर विश्वास है ।
उनकी संशयोच्छेदिनी वाणी सुनकर ग्लानि मिट गयी । यथा : वंदौ गुरूपद कंज
कृपासिंधु नररूप हर । महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर । देवराज
प्रसन्न हो गये । देखि दसा सुर वपंहि फूला । सो देवराज के सोच से पुष्प वर्षा बन्द
हो गयी थी । अब फिर प्रारम्भ हुई । देवराज ने स्वयं हर्षित होकर बरसाया और
भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे । देवता लोग पहिले से ही भरत के स्वभाव
पर मुग्ध हैं । उन्हें भ्रम हो गया था कि यह स्वभाव उनके प्रतिकूल पड़ेगा । जब
गुरुजी के वचन से प्रतिकूलता की शङ्का जाती रही तब प्रशंसा करने लगे ।

एहि विधि भरतु चले मग जाही । दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाही ॥
जबहि रामु कहि लेहि उसासा । उमगत प्रेमु मनहुं चहुं पासा ॥३॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी रास्ते से चले जाते थे । उनकी दशा देखकर मुनि

और सिद्ध सिहाने लगे । जब राम कहकर लम्बी श्वास लेते थे तो मानो चारो ओर प्रेम उमड़ा पड़ता था ।

व्याख्या : राम सखा के हाथ का सहारा लिये हुए नगे पैर बिना छाता लगाये लक्ष्मण राम और जानकीजी के रास्ते की कहानी सखा द्वारा सुनते प्रेम में मग्न चले जा रहे हैं । यह भरतजी के रास्ता चलने की विधि है । उनकी दशा प्रेम में ऐसी हो रही है जिसे देखकर स्थितप्रज्ञ मुनिगण और जीवन्मुक्त सिद्ध को भी ईर्ष्या होती है कि यह दशा मेरी कभी नहीं हुई । सिद्ध सिहाते हैं कि बिना सिद्धि के लिए प्रयत्न किये ही भरत को ऐसी सिद्धि प्राप्त है : किये जाहि छाया जलद सुखद बहइ बरवात । भई मृदु महि मग मगल मूला । इत्यादि ।

भरतजी प्रेम के पयोधि हैं । पयोधि जब उच्छ्वास लेता है तब जल फैल जाता है ज्वार भाटा आजाता है । इसी भाँति जब भरतजी राम कहकर उच्छ्वास लेते हैं तो चारो ओर प्रेम उमगने लगता है । उनके नामोच्चारण में ऐसा दर्द है कि सुननेवाले का हृदय पिघल उठता है । इस दशा को मुनि लोग सिहाते हैं ।

द्रवहि वचन सुनि कुलिस पखाना । पुरजन पेमु न जाइ बखाना ॥

बीचवास कर जमुनहि आए । निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥४॥

अर्थ : वचन सुनकर वज्र और पापाण पिघले जा रहे हैं । पुरजन के प्रेम का तो वर्णन नहीं हो सकता । बीच में मुकाम करके यमुना तीर पहुँचे । जल देखकर आँखों में जल आगया ।

व्याख्या : उनके नामोच्चारण में ऐसा दर्द है कि उसका प्रभाव जड़ पदार्थों पर पड़ रहा है । वज्र और पापाण पिघल रहे हैं । तेन शृण्वन्ति पादपा । इस महाभरत के वचन से पता लगता है कि पेड़ भी सुनते हैं । गोस्वामीजी कहते हैं कि पत्थर और पापाण भी सुनते हैं और द्रवीभूत भी होते हैं । पर वचन में वैसा ही दर्द होना चाहिए । भरतजी के साथ पुरजन है । उनके कान में जब पापाण को द्रवीभूत करनेवाली वाणी पड़ती है तो उनकी कैसी दशा हुई जाती थी । इसका तो वर्णन नहीं हो सकता ।

एक रात्रि रास्ते में निवास हुआ । दूसरे दिन यमुना तीर पहुँच गये । यहाँ यमुना से तीर में लक्षणा है । यमुना जल की श्यामता की उपमा सरकार की शरीर की श्यामता से दी जाती है । यथा : उत्तरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम । उसी का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि उस जल के देखने से सरकार की श्याम मूर्ति हृदय पटल पर हो आयी । अतः नेत्रों में जल डबडबा आया ।

दो. रघुवर बरन विलोकि बर, बारि समेत समाज ।

होत मगन वारिधि विरह, चढे विवेक जहाज ॥२२०॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी के रङ्ग का सुन्दर जल देखकर समाज सहित भरतजी राम विरह समुद्र में डूबते डूबते विवेकरूपी जहाज पर चढ़ गये ।

व्याख्या : जितना आगे बढ़ते जाते हैं विरह की उत्पत्ति बढ़ती जाती है । रामवास थल बिटप धिलोके । उर अनुराग रहत नहि रोके । अब तो प्रभु सरीर सम स्याम यमुना जल देख लिया । वस विरह समुद्र में मग्न होने लगे । मग्न होने का भाव यह कि अपने को ही भूलने लगे । समुद्र में डूबनेवाला यदि जहाज पर चढ़ जाय तो बच जाता है । भरतजी भी समाज सहित विवेक जहाज का आश्रयण करके ही डूबने से बचे । अपने को संभालना ही विवेक है । यथा प्रेम मग्न मन जानि नृप करि विवेक धरि धीर । इस भाँति भरतजी ने समाज सहित अपने स्वरूप को संभालकर धैर्य धारण किया ।

जमुन तीर तेहि दिन करि वासू । भयेउ समय सम सर्वाहि सुपासू ॥
रातहि घाट घाट की तरनी । आई अगनित जाइ न वरनी ॥१॥

अर्थ : यमुनाजी के किनारे उस दिन निवास किया । समयानुसार सबको सुभीता मिला । रात ही रात घाट की नौकाएँ अनगिनती आगयी । उनका वर्णन नहीं हो सकता ।

व्याख्या : पहिले जो बात लक्षणा से कहा था उसे अभिधा से कह रहे हैं पहिले कहा था : बीच बास करि जमुनहि आए । सो यमुना में कोई नहीं आता । सो यमुना शब्द ने अपना मुख्य अर्थ छोड़ा और पवित्र शीतल गुणयुक्त तट का ग्रहण किया । भरतजी समाज सहित यमुना तट आये । परन्तु पार नहीं गये । वही डेरा डाल दिया । सबके खाने पीने की व्यवस्था करनी थी । सो ऐसी परिस्थिति में जैसा सुभीता सम्भव है वैसा किया गया । इधर पार होने की भी व्यवस्था होने लगी । नियम यही है कि घाटों पर नाव लगी रहती हैं । जिसे आवश्यकता होती है वही से चले हैं । सो रात ही रात सब घाटों से नावों को मँगाकर वहाँ बाँध दिया जिसमें सबेरे पार जाने में सुभीता हो । सेना को नदी के किनारे ठहराने में सुभीता होता है । नहीं तो जल की व्यवस्था में कठिनाई होती है ।

प्रात पार भये एकहि खेवा । तोपे रामसखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई । साथ निपादनाथु दोउ भाई ॥२॥

अर्थ : सबेरे एक ही खेवा में पार हो गये । अतः राम सखा की सेवा से तुष्ट हुए । दोनों भाई साथ में निपादनाथ स्नान करके और नदी को प्रणाम करके चले ।

व्याख्या : यहाँ चले क्रिया का कर्ता दोउ भाई है । शब्द स्पष्ट है । इससे यह कल्पना करना कि निपादनाथ दो भाई थे । केवल श्रोता के मनोरञ्जन के लिए है । क्योंकि ऐसा अर्थ करने से चले क्रिया का कर्ता ही लुपता हो जाता है ।

नाव को एक पार से दूसरे पार ले जाने को खेवा कहते हैं । सो रात ही रात नावों को जुटा लेने का यह फल हुआ कि सारा समाज एक खेवा में ही पार हो गया । यह व्यवस्था रामसखा निपादनाथ ने की । अतः उनको इस सेवा पर

लोग सन्तुष्ट हुए । बड़ी हैरानी बची नहीं तो गङ्गा पार होने में चार दण्ड लगा था । यथा दण्ड चार में ही सब पारा । उतरि भरत पुनि सर्वाहि सँभारा ।

उस पार जाकर स्नान किया । प्रातः कृत्य का उस पार ही किया जाना अनुमित है । चलने के समय नदी को प्रणाम किया । आने के समय प्रणाम नहीं कहा । नदी का दर्शन होते ही तो विरह सागर में मग्न होने लगे, प्रणाम की सुधि ही न रही । अतः चलते समय प्रणाम कहते हैं । निपादराज के अधिकृत वन प्रदेश में आगये । अतः शत्रुघ्नजी गुरु के साथ न रहकर भरतजी के साथ हैं । इन्तजाम बदल गया ।

आगे मुनिवर बाहन आछे । राज समाजु जाइ सबु पाछे ॥
तेहि पाछे दोउ बधु पयादे । भूषण वसन वेप सुठि सादे ॥३॥

अर्थ आगे मुनिजी की श्रेष्ठ सवारी थी । पीछे सब राज समाज चल रहा था । उसके पीछे दोनों भाई अत्यन्त सादे भूषण वसन और वेप में पैदल जा रहे थे ।

व्याख्या कोई भय नहीं है । इसलिए मुनिजी की सवारी आगे आगे है । मुनिवर के साथ सारा समाज है । मुनिवर बाहन आछे कहने से सबका सवारी पर होना कहा ।

सबके पीछे दोनों भाई पैदल जा रहे हैं इससे भी और लोगो का सवारी पर जाना ही सिद्ध होता है । तापस वेप नहीं है । तथापि अत्यन्त सादा शृङ्गार है । महाराज कुमार के भूषण वसन वेप का सादा होना उदासी का लक्षण है । यहाँ दोउ भाई शब्द का तात्पर्य बहुत स्पष्ट हो गया । साथ निपादनाथ दोउ भाई पद में जो दोउ भाई शब्द आया है उसी को यहाँ दोउ बधु पयादे शब्द से कह रहे हैं ।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथ । सुमिरत लखनु सीय रघुनाथ ॥
जहँ जहँ राम वास विश्रामा । तहँ तहँ करहि सप्रेम प्रनामा ॥४॥

अर्थ सेवक मित्र और मन्त्रों के पुत्र उनके साथ थे । लक्ष्मण और राम जानकी का स्मरण करते जाते थे । जहाँ जहाँ रामजी का निवास या विश्राम हुआ था वहाँ वहाँ प्रेम के साथ प्रणाम करते थे ।

व्याख्या भरत पयादेहि आये आजू । भयउ दुखित सुनि सकल समाजू । अतः आज भरतजी का समाज भरतजी के साथ है । सेवक तो साथ है ही सुहृद अर्थात् बालसखा तथा निपादराज साथ है । मन्त्री के पुत्र भी साथ में हैं । राजकुमारों के साथ मन्त्री पुत्र रहते हैं । यथा निरखि राम रुख सचिव सुत कारन कहेउ बुझाइ ।

बीच में रामजी के निवासस्थल भी मिले । विश्रामस्थल भी मिले । श्रद्धातिशय से सभी जगह प्रणाम करते हैं । रामजी के क्षणिक सगर्ग से वे तीर्थ हो गये ।

दो. मगवासी नर नारि सुनि, धाम काम तजि धाइ ।

देखि सरूप सनेह सब, मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

अर्थ : रास्ते में रहनेवाले स्त्री पुरुष सुनकर घर के कामकाज छोड़कर दौड़ पड़ते थे और सब लोग उनके रूप और स्नेह को देखकर जन्म लेने का फल पाकर प्रसन्न हो जाते थे ।

व्याख्या : रास्ते में के रहनेवाले प्रभु के आगमन का समाचार पाकर अपना काम छोड़कर दौड़े थे । यथा : सुनत ग्रामवासी नर नारी । धाये निज निज काज बिसारी । राम लखन सिय सुंदरताई । देखि कहहि निज भाग्य बडाई । वे ही भरतजी का आगमन सुनते हैं । अतः उन लोगो ने अति आतुरता से धाम भी छोड़ा काम भी छोड़ा । दौड़ पड़े ।

स्वरूप और स्नेह को देखकर प्रसन्न हैं । स्वरूप से सौन्दर्य और स्नेह से स्वभाव अभिप्रेत है । दर्शन करके लोग कृतार्थ होते हैं । जिन्होंने रामजी को नहीं देखा था शोभा सुनकर पछताते थे । वे भी दौड़े । धाम को भी अरक्षित छोड़ा ।

कहहि सप्रेम एक एक पाँही । रामु^१ लखनु सखि होहि कि नाँही ॥

वयवपु वरन रूपु सोइ आली । सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥१॥

अर्थ : एक दूसरे से प्रेम के साथ कहती हैं कि हे सखी ! ये राम लक्ष्मण हैं कि नहीं हैं । हे आली ! आयु शरीर रङ्ग और रूप तो वही है । शील और स्नेह भी सदृश है तथा चाल भी वैसी ही है ।

व्याख्या : स्त्रियो का हाल कहते हैं कि उन सबो ने रामजी का दर्शन किया है । तीनों मूर्तियो के नाम से भी परिचित हैं । यथा : सकल कथा तिन सबहि सुनाई । बनहि चले पितु आयसु पाई । भरतजी रामजी के ही सदृश है । एकाएक कोई लख नहीं सकता और लक्ष्मण शत्रुसूदन एक रूप हैं । अतः भरत और शत्रुसूदन दोनों भाइयो को देखकर राम लक्ष्मण का भ्रम हुआ जनकपुर में भरत शत्रुघ्न को देखकर एक सखी की उक्ति है : सखि जस राम लखन कर जोटा । तैसइ भूप सग दुइ ढोटा । स्याम गौर सब अग सोहाए । परन्तु कुछ सन्देह भी हो रहा है अतः आपस में एक दूसरे से पूछती हैं कि कदाचित् किसी को अधिक जानकारी हो ।

अब सशय का कारण कहती हैं कि उम्र भी इन लोगो की उतनी ही है । शरीर भी वैसा ही है । रंग भी वही है । आकृति भी वैसी ही है । इस भाँति शरीर का मिलान करके स्वभाव का मिलान करती है कि शील और स्नेह भी वैसा ही है : जिस भाँति प्रत्येक पुरुष की आकृति और स्वर में भेद होता है उसी भाँति उनकी गति भी भिन्न प्रकार की होती है । इनकी गति भी वैसी ही है । मत्त मजु कुँजर वर गामी है ।

वेपु न सो सखि' सीय न संगी । आगे अनी चली चतुरंगा ॥
नहि प्रसन्न मुख मानस खेदा । सखि संदेहु होइ एहि भेदा ॥२॥

अर्थ : हे सखि ! परन्तु वैसा वेप नहीं है और सीताजी भी साथ नहीं हैं । इनके आगे आगे चतुरंगिनी सेना चल रही है । मुख प्रसन्न नहीं है । इनके मन में खेद है इस भेद से सन्देह हो रहा है ।

व्याख्या : जिस भाँति समता के तीन कारण हैं उसी भाँति भिन्नता के तीन कारण हैं । एक तो इनका तापस वेप नहीं है : राजसी वेप है । यथा : भूपन वसन वेप सुठि सादे । इनके साथ सीताजी भी नहीं हैं और तीसरा भेद यह बतलाती है कि उनके साथ तो कोई भी नहीं था । इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना है । फिर भी ये तीनों भेद बहिरङ्ग हैं । अन्तरङ्ग नहीं हैं । इसलिए अन्तरङ्ग लक्षण कहती है कि इन्हें मानस खेद मालूम होता है । वे लोग तो प्रसन्न थे । यथा : आनद उमग मन, यौवन उमंग तन शोभा को उमग उमगत अंग अंग है ।

तासु तरक तियगन मन मानी । कहहि सकल तेहि सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी । बोली मधुर वचन तिय दूजी ॥३॥

अर्थ : उसका तर्क स्त्रियों को ठीक जँचा । सब कहने लगी कि तेरे समान कोई चतुर नहीं है । उसकी प्रशंसा करके और उसकी सत्योक्ति का सम्मान करके दूसरी स्त्री मधुर वाणी बोली ।

व्याख्या : उपर्युक्त सखी को युक्ति बड़ी परिष्कृत थी । समता और भेद को उसने गिनकर अलग दिखला दिया । अतः सबके मन में उसकी बात बैठ गयी । सबकी सब उसको सराहने लगी कि तेरे ऐसी सयानी कोई नहीं है । तूने एक एक बात को निगरा दिया ।

तत्पश्चात् दूसरी सखी जिसे कथाप्रसङ्ग का परिचय था उसकी प्रशंसा करके उसकी सत्योक्ति की पूजा की अर्थात् कहा कि यह एकदम ठीक कह रही है । यहाँ सम्मान पूर्वक अनुमोदन ही पूजा है और तब सबकी जानकारी के लिए मधुर शब्दों में कहने लगी ।

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू । जेहि विधि राम राज रस भंगू ॥
भरतहि वदुरि सराहन लागी । सील सनेह सुभाय सुभागी ॥४॥

अर्थ : उसने प्रेम के सहित सब कथाप्रसङ्ग कहा कि इस इस भाँति रामजी के राज्याभिषेक में विघ्न हुआ । तत्पश्चात् वह सुभागी भरतजी और उनके शील सनेह की प्रशंसा करने लगी ।

व्याख्या : यह आख्यान उसको प्रिय था । इसलिए उसने प्रेम से रामजी के

राज्याभिषेक का प्रस्ताव तथा रानी कैकेयी का चक्रवर्तीजी से दो वरदान मांगना तदनुसार रामजी का वन गमन तथा सीता और लक्ष्मणजी का प्रेम से उनका अनुगमन करना वर्णन किया।

तत्पश्चात् भरतजी की प्रशंसा करने लगी कि जिसके लिए सब कुछ हुआ उसने इस अनर्थ का अनुमोदन नहीं किया और गुरु मन्त्री आदि के अनुरोध पर भी राज्य स्वीकार नहीं किया और भाई प्रेम से दुःखी होकर उनके पास जा रहे हैं। भाव यह कि ये दोनों भी उन्हीं राम लक्ष्मण के भाई हैं। इसीलिए वैसा ही रूप स्वभाव और चाल है। ये राम लक्ष्मण नहीं हैं।

दो. चलत पयादें खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।

जात मनावन रघुवरहि, भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

अर्थ : पैदल चलते हैं। फल खाते हैं। पिता ने राज्य दिया उसे छोड़कर रामजी को मनाने जाते हैं। आज कौन भरत के समान है ?

व्याख्या : शील का वर्णन करती है : चलत पयादे खात फल। स्नेह का वर्णन करती है : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। राज छोड़ने का प्रमाण यह है : चलत पयादे खात फल। तब राज्य कौन करेगा ? इसके उत्तर में कहती है : जात मनावन रघुपतिहि। अर्थात् रामजी लौट आवें और राज्य करें। इसलिए उन्हें मनाने जाते हैं। दूसरे के मनाने से उनके मानने की आशा नहीं है। पिता के दिये हुए राज्य को ठोकर मारनेवाला इस समय कौन है ? भाव यह कि चाहे पहिले कोई हुआ हो तो हम नहीं जानती। पर इस समय ऐसा कौन है : अर्थात् कोई नहीं है।

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू ॥

जो किछु कहव थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई ॥१॥

अर्थ : भरत का भाईपन भक्ति और आचरण कहते और सुनते दुःख और दूषण का नाश होता है। हे सखि ! जो कुछ कहा जाय सो थोड़ा है। रामजी के भाई ऐसे क्यों न हो।

व्याख्या : पहिले जो शील स्नेह सुभाय कह आये हैं उसी को दूसरे शब्दों में भायप भगति और आचरण शब्द से कह रहे हैं। भायप शील के अन्तर्गत भक्ति स्नेह के अन्तर्गत है और आचरण स्वभाव के अन्तर्गत है। चलत पयादे खात फल : यह भरतजी की भक्ति है। पिता दीन्ह तजि राज : यह भाई पन है और जात मनावन रघुपतिहि : यह आचरण है। इन बातों के कहने सुनने से दुःख और उसका कारण दूषण दूर हो जाता है। अर्थात् भरतजी सबसे बड़े पुण्यश्लोक हैं। यथा : पुण्यसिलोक तात्तर तोरे। अतः इनके ऐसा आज कोई नहीं है।

इनके विषय में जो कुछ कहा जायगा वही थोड़ा पड़ेगा। क्योंकि इनके गुण वैखरी के विषय नहीं हैं। इतना ही कहना यथेष्ट है कि ये रामजी के भाई हैं।

रामजी के गुण इनमे वर्तमान हैं। रामजी मे कैसा भायप है ? कहते हैं : भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू। कैसा स्नेह है कि रामहि बंधु सोच दिन रातो। अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भांती। और कैसा आचरण है कि : राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।

हम सब सानुज भरतहि देखे। भइन्ह धन्य जुवती जन लेखे ॥
सुनि गुन देखि दसा पछितांही। कैकइ जननि जोग सुत नांही ॥२॥

अर्थ : हम लोग भाई के साथ भरतजी का दर्शन करके पुण्यवान् स्त्रियो की गिनती मे आगयी। भरतजी के गुण सुनकर और दसा देखकर सब पछताती हैं कि यह बेटा तो कैकेयी माता के योग्य नहीं है।

व्याख्या : भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दु ख दूपन हरनू। और हम लोगो ने तो इनका दर्शन पाया है। अतः हम लोगो का भी लेखा पुण्यवान् स्त्रियो मे हो गया। वहाँ हम लोक वेद विधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी। पुण्यवान् स्त्रियाँ कह सकती हैं कि हमने अमुक पुण्य किया है। हम लोग अपना कौन पुण्य बतला सकती थी। पर अब हम भी कह सकती हैं कि हमने भरत शत्रुघ्न का दर्शन किया है। अतः हम लोग भी धन्य युवतियो के लेखे मे आगयी।

भरतजी का गुण सुना : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। और दसा दखी। चलत देह धरि जनु अनुरागू। तो सब पछताने लगी कि रामजी को वन नाहक हो गया। जब भरतजी राज्य चाहते ही नहीं तो उनके लिए राज्य और रामजी के लिए वन क्यों माँगा ? अतः कैकेयी बड़ी कठोर हृदय है। भरत ऐसा कोमल हृदय बेटे को ऐसा माता का मिलना योग्य कार्य न हुआ। अथवा भरत रामजी के भाई होने योग्य तो है कैकेयी के बेटे होने योग्य नहीं हैं।

कोउ कह दूपन रानिहि नाहिन। विधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ॥
कहँ हम लोक वेद विधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥३॥

अर्थ . किसी ने कहा है कि इसमे रानी का दोष नहीं है। यह सब ब्रह्मा ने किया जो कि हमारे दाहिने अनुकूल है। कहाँ हम लोग लोक और वेद विधि से हीन स्त्रियो मे लघु है। कुल की करतूत भी मलिन है।

व्याख्या . एक कहती है हम लोगो को विधाता अनुकूल हो गये थे। घर मे बैठे इनका दर्शन दिलाना चाहते थे। अतः उन्होंने इस प्रकार उलट फेर कर दिया। शुद्ध हृदय से जो बात निकलती है वह बिना जाने लक्ष्य वेध कर देती है। जो बात भरद्वाज मुनि कहते हैं : विधि करतब पर किछु न बसाई। वही बात ये स्त्रियाँ बिना जाने कह रही है।

ब्रह्मदेव के अनुकूल होने का कारण देती हैं कि यह अघटित घटना कैसे हुई ? हम लोग तो लोक वेद दोनो मे हीन हैं। यथा : लोक वेद सब भांतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सीचा। स्त्रियो मे भी हम अधम हैं। यथा : उत्तम मध्यम नीच लघु।

चार प्रकार कहा गया है । लघु शब्द अधम के अर्थ में प्रयुक्त है । कुल करतूति मलीनी । यथा : पाप करत निसि वासर जाही । नहि कटि पट नहि पेट अघाही ।

वसहि कुदेश कुगाँव कुवामा । कहै यह दरसु पुन्य परिनामा ॥

अस अनंदु अचरजु प्रतिग्रामा । जनु मरुभूमि कल्पवृक्ष जामा ॥४॥

अर्थ : हम कुदेश और कुगाँव में बसती हैं और वुरी स्त्री हैं और कहाँ दर्शन पुण्यों का फल है । गाँव गाँव में ऐसा आश्चर्य और आनन्द हो रहा है जैसे मरुदेश में कल्पवृक्ष उग आया हो ।

व्याख्या : यहाँ कुदेश से अभिप्राय वन्य देश से है और कुगाँव से भीलों के ग्राम से तात्पर्य है और हम लोग स्वयं वुरी स्त्री हैं । भाव यह कि पयभ्रष्ट, कुलभ्रष्ट, करणीभ्रष्ट, देशभ्रष्ट और धर्मभ्रष्ट । अधम से अधम अधम अति नारी । तिन्ह महुँ में मतिमंद अधारो । हमें यह दर्शन महादुर्लभ है । यह घटना तो ब्रह्मदेव के हमारे दाहिने होने से हुई है ।

अनहोनी बात होने से आश्चर्य और परम भङ्गलदायक होने से आनन्द । गोस्वामीजी उदाहरण देते हैं कि जैसे मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग जावे । मरुभूमि में कोई वृक्ष नहीं होता । जहाँ तहाँ आक : भदार के पेड़ दिखायी पड़ते हैं । वहाँ आम का होना आश्चर्य और आनन्द की बात है कल्पवृक्ष के लिए कहना ही क्या है । यहाँ अच्छे लोग दिखायी हो नहीं पड़ते । भरतजी ऐसे महापुरुषों के आने की कौन आशा थी ?

दो. भरत दरसु देखत खुलेउ, मगु लोगन कर भागु ।

जनु सिधलवासिन्ह भयंउ, विधि वस सुलभ प्रयागु ॥२२३॥

अर्थ : भरत दर्शन से रास्ते के लोगों का तो भाग्य खुल गया । जैसे सिहलदेश : सीलोन के रहनेवालों को भाग्यवश प्रयागराज सुलभ हो गया हो । भारत वर्ष से सिहल द्वीप जहाज पर जाना होता है ।

व्याख्या : सिहलद्वीप के निवासी लङ्का के पड़ोसी हैं । उनसे प्रयागराज से क्या मतलब ? यदि ऐसी घटना घट जाय कि विधिवश प्रयागराज को ही वहाँ जाना पड़े तो उनके आश्चर्य और आनन्द का क्या ठिकाना है । श्रीगोस्वामीजी ने सत्सङ्ग को जङ्गम प्रयागगज माना है । उसका भी लङ्का के पड़ोस में जाना दुर्घट है । अतः कवि का कथन है कि मगवासी लोगों का भाग्य खुल गया । जिस भरतजी के दर्शन का भरद्वाजजी : तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा : कहते हैं । वह दर्शन रास्ते के निवासियों को अनायास सुलभ हो गया । अतः उनका अहोभाग्य है ।

निज गुन सहित राम गुन गाया । सुनत जाहि सुमिरत रघुनाथा ॥

तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा । निरति निमज्जहि करहि प्रनामा ॥१॥

अर्थ अपने गुणों के सहित रामजी के गुणग्राम सुनते और रघुनाथजी को स्मरण करते भरतजी चलें जा रहे हैं। तीर्थ मुनि आश्रम और देव मन्दिर देखकर स्नान करते हैं और प्रणाम करते हैं।

व्याख्या इस समय लोगो में भरतजी की चरचा चल रही है। परन्तु भरत चरित्र का आश्रम रामचरित है। रामचरित से पृथक् करके भरत चरित नहीं वर्णन किया जा सकता। अतः भरतजी रास्ते जाते हुए लोगो के मुख से अपने गुणग्राम के साथ ही साथ रामगुणग्राम सुनते चले जा रहे हैं। भरतजी रामगुणग्राम के सुनने के रसिक हैं। अतः सुनत जाँहि क्रिया का कर्म रामगुणगाथा को रक्खा।

रास्ते में तीर्थ मिलते हैं। उन्हीं को पकड़कर मुनि के आश्रम हैं और उन आश्रमों में देव मन्दिर है। यह देखकर भरतजी तीर्थ में स्नान करते हैं। आश्रम और मन्दिरों को प्रणाम करते हैं। यथा कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। तीर्थ प्रायेण पुण्य जलाशय को ही कहते हैं।

मन ही मन माँगहि वर एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू ॥

मिलहि किरात कोल बनवासी। वैपानस बटु जती उदासी ॥२॥

अर्थ मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि राम जानकी के चरणों में भक्ति हो। कोल किरात वन के रहनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, सन्यासी और उदासी मिलते हैं।

व्याख्या भरतजी तीर्थ आश्रम और देव मन्दिर को जड़ पदार्थ नहीं मानते। इनके भी अधिष्ठात्री देवता होते हैं। उनकी प्रतिष्ठा होती है। अतः उनको प्रणाम करके मन ही मन वरदान माँगते हैं। तीर्थराज से स्पष्ट शब्दों में वरदान माँगा था। सो स्पष्ट शब्दों में उत्तर मिला। अतः दिखावा बचाने के लिए मन ही मन वरदान माँगा। वरदान भी वही है जो तीर्थराज से माँगा था। यथा सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे।

वन में जा रहे हैं। अतः रास्ते में किरात कोल वन के रहनेवाले मिलते हैं। वानप्रस्थ मिलते हैं। ब्रह्मचारी तथा सन्यासी मिलते हैं। उदासीन गृहस्थ भी मिलते हैं। भरतजी सबको प्रणाम करते हैं। भक्त आश्वचाण्डालगोखरम्। कुत्ता, चाण्डाल, गौ, गधा सबमें परमेश्वर को देखते हुए सबको प्रणाम करते हैं।

करि प्रनामु पूछहि जेहि तेही। केहि वन लखनु रामु वैदेही ॥

ते प्रभु समाचार सब कहही। भरतहि देखि जनम फलु लहही ॥३॥

अर्थ प्रणाम करके जिस किसी से पूछते हैं कि लक्ष्मण और राम जानकी किस वन में रहते हैं। वे लोग सरकार का सब समाचार कहते हैं और भरतजी को देखकर जन्म का फल प्राप्त करते हैं।

व्याख्या जिस ज्ञान का आश्रय करके गोस्वामीजी ने जड़ चेतन जितने जीव हैं सबको प्रणाम किया। उसी ज्ञान का आश्रय करके भरतजी सबको प्रणाम

करते हैं। जी मे खटका लगा है : राम लखन सिय सुनि मम नाँक। उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ। अतः सबसे वन का नाम पूछते हैं। जिसमे लक्ष्मण राम जानकी निवास करते हैं। जैसे मुहल्ले और नगरो के नाम होते हैं उसी भाँति वनो के नाम भी होते हैं।

तब वे लोग प्रभु का समाचार बतलाते हैं। भरतजी तो केवल वन का नाम पूछते हैं। पर वे भरतजी को बातें देखकर सब समाचार जो उन्हें मालूम हैं बतलाते हैं और भरतजी के दर्शन से उनका जन्म सुफल हो जाता है। भरद्वाजजी ने कहा ही है - तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।

जे जन कहहि कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे ॥

एहि विधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम वनवास कहानी ॥४॥

अर्थ : जो लोग कहते हैं कि हमने देखा है वे कुशल से हैं। उन्हें राम लक्ष्मण के समान प्रिय माना। इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणी द्वारा पूछते और रामजी के वनवास की कहानी सुनते चले जाते हैं।

व्याख्या : प्रिय का कुशल कहनेवाला भी परम प्रिय होता है। यथा : जे कहिहैं आए राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। ते तुलसी प्रिय मोहि लागि है ज्यों सुभाय सुतचारी। शुभ समाचार देनेवाला प्रिय माना जाता है। उसे पुरस्कार दिया जाता है। अतः कुशल कहनेवाले ऐसे प्रिय लगे जैसे राम लक्ष्मण प्रिय थे।

सबसे पूछने का अभिप्राय यही कि यदि सब लोग एक ही वन का नाम लें तो निश्चय हो जाय कि मेरा नाम सुनकर वन छोड़कर अन्यत्र नहीं गये। दूसरी बात यह है कि भरतजी रामचरित के रसिक हैं। सबसे पूछने से कुछ न कुछ नयी बात मालूम ही होती है।

दो. तेहि वासर बसि प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।

राम दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२२४॥

अर्थ : उस दिन रहकर सवेरे ही रघुनाथजी को स्मरण करके चले। भरतजी ही के समान सब साथ में रहनेवालों को रामजी के दर्शन की लालसा है।

व्याख्या : वन में ही डेरा डाला। सवेरा होते ही चल पडे। पता चल गया कि सरकार का निवासस्थान सन्निकट है। इसलिए रामजी के दर्शन की लालसा बढी हुई है। जैसी भरत की लालसा है वैसी ही सब साथवालों की है। अतः सबको बड़ी जल्दी है। कवि ने भी शीघ्रता की है। कथा संक्षेप में कह रहे हैं। दो शब्द में उस रात का ठहरना कहा। स्मरण में भी संक्षेप कर रहे हैं। पहिले लिखते थे : सुमिरत लखन सीय रघुनाथ। यहाँ कहते हैं : सुमिरि रघुनाथ।

जहाँ नदी किनारे नहीं ठहरते वहाँ स्नानादिक का वर्णन नहीं करते। क्योंकि अवगाह स्नान ही वस्तुतः स्नान है। यथा : बीच वास करि जमुनहि आये और

यहाँ से चलते समय कहते हैं . चले नहाइ नदिहि सिर नाई । लक्ष्मण सीत
रघुनाथजी का स्मरण करके प्रस्थान करते थे । आज शीघ्रता में रघुनाथ
स्मरण कहा ।

मंगल सगुन होहि सब काहू । फरकहि सुखद बिलोचन बाहू
भरतहि सहित समाज उछाहू । मिलिहहि रामु मिटहि दुख दाहू

अर्थ . मङ्गल शकुन सब किसी को हो रहा है । सुख देनेवाले नेत्र और
फड़कने लगी । भरतजी को समाज के सहित उत्साह है कि रामजी मिलें
दुख का दाह मिटेगा ।

व्याख्या शुभाशुभ सूचक कुछ चिह्न हैं जिन्हें भगवतो प्रकृति शु
घटनाओं के पहिले प्रकट कर देती हैं । इसके लिए शकुन शास्त्र ही पृथक् बन
है जिसमें उन चिह्न विशेष के फल दिये हुए हैं । यह बराबर घटत
श्री गोस्वामीजी इनका बार बार उल्लेख करते हैं । यहाँ पर कहते हैं कि
सूचक शकुन सबको हो रहा है । सबकी आँखें और भुजाएँ फड़क रही हैं ।
के वाम अङ्ग का फड़कना शुभ है और पुरुषों के दक्षिण अङ्ग का फड़कना
है । यथा भरत नयन भुज दक्षिण फरकत वारहि वार । जानि सगुन
हरष अति लागे करन विचार । तथा जन अति भयेउ बिरह उरदाहू ।
वाम नयन अरु बाहू । यहाँ नर नारि दानो हैं । अत दक्षिण वाम न कहकर
बिलोचन बाहू कहा ।

शकुन विचार करके भरतजी को समाज सहित उत्साह है । क्योंकि
मिलन ही शुभ शकुन का फल है । यथा सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी । अत र
के मिलन का निश्चय हो रहा है । फलत वियोगजन्य दुखदाह के मिटाने का
दृढ आशा है । सो सबके हृदय में उत्साह है । मुनिजी ने कहा भी है सब
मिटिहि रामपद पेखी ।

करत मनोरथ जस जिय जाकैं । जाहि सनेह सुरा सब छाके ॥
शिथिल अग पग मग डगि डोलहि । विह्वल वचन प्रेम बस बोलहि ॥

अर्थ जिसके मन में जैसा मनोरथ है वैसा ही मनोराज करते हुए प्रेम
मदिरा में उन्मत्त हुए सब चले जा रहे हैं । सब अङ्ग शिथिल हैं । पैर भी शि
थिल हैं । रास्ते में डगमगाते हुए चल रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं ।

व्याख्या यहाँ पर सबके प्रेम का वर्णन करते हुए कवि उनकी मद्य
उपमा दे रहे हैं । जब मनुष्य सुरापान करके मदोन्मत्त हो जाता है तब अपने
की बात जोर जोर से कहने लगता है । उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं । रास्
ठीक ठीक पैर नहीं पड़ते । वही दशा यहाँ हो रही है । सबके सब प्रेममयी म
से उन्मत्त हो रहे हैं । अत रामजी के दर्शन पाने पर क्या क्या करेंगे । वे सब
मन में ही न रखकर मुख से स्पष्ट बोलते जा रहे हैं । प्रिय के मिलने का नि

होने पर मनोरथ उठते हैं। पर उसे व्यक्त कोई नहीं करता। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। यहाँ मुख से बोलने लगे। शरीर और वाणी की भी वही दशा हो गयी जो शराबियो की होती है। पैर ओखा पडता है। हकला हकलावर बोलते हैं।

राम सखा तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा ॥

जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहि दोउ बीरा ॥३॥

अर्थ उस समय रामसखा ने उस स्वभावतः सुन्दर पर्वत शिरोमणि को दिखलाया। जिसके समीप पयस्विनी नदी के तीर पर सीताजी के सहित दोनों वीर बसते थे।

व्याख्या प्रयागराज से ही सब लोग चित्रकूट की ओर चित्त लगाये चले जा रहे थे। यथा चले चित्रकूटहि चित्त दीन्हे। सो चित्रकूट कामदगिरि दिखायी पडने लगा। रामसखा पहिचानता था और उसे पता लग गया था कि सरकार का चित्रकूट के समीप पयस्विनी नदी के तट पर डरा है। अतः उसने दिखलाया कि वही चित्रकूट दिखला रहा है। चित्रकूट मेरु का शिखर है। वायु देवने मेरु से पृथक् करके यहाँ डाल दिया है। इसलिए सहज सुहावन है और सरकार के निवास से शैलशिरामणि हो गया। यथा सैलहिमालय आदिक जेते। चित्रकूट जस गावहि तेते।

देखि करहि सब दड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा ॥

प्रेम भगन अस राजसमाजू। जिमि फिरि अवध चले रघुराजू ॥४॥

अर्थ देखकर सब लोग जानकीजीवन रामचन्द्र की जय कहकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। राजसमाज ऐसा प्रेम में मग्न हुआ मानो रामजी अयोध्या लौटकर चल रहे हो।

व्याख्या चित्रकूट का महा माहात्म्य है। शैल शृङ्ग भवभग हेतु लखु दलन कपट पाखंड दम दलु। जहाँ जनमे जग जनक जगपति बिधि हरिहरि प्रपच छलु। त्रिदेव मे से किसी से सम्बद्ध होने से ही वह भूमि महातीर्थ हो जाती है और चित्रकूट तो तीनों देव की जन्मभूमि है। यहाँ रुद्र भगवान् दुर्वासा होकर, विष्णु भगवान् दत्तात्रेय होकर, ब्रह्मदेव चन्द्रमा होकर अवतीर्ण हुए हैं और तीनों ब्रह्मज्ञानी ऋषि हुए। उत्पत्ति स्थिति सहार के प्रपञ्च से सम्बन्ध न रखता अतः त्रिदेव की जन्मभूमि होने से इस महातीर्थ का दर्शन करके जनकजी ने रथ परित्याग किया। यथा गिरिवर दीख जनक नृप जवही। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तयही। अतः सब लोग दण्ड प्रणाम कर रहे हैं। इस समय जानकीजीवन राम का निवास स्थान हो रहा है। अतः जानकीजीवन रामजी की जय कहकर दण्डवत् कहत हैं।

दो भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकहि न सेपु।

कविहिअगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेपु ॥२२५॥

अर्थ : उस समय भरत का जैसा प्रेम था वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते । कवि को उसका कहना वैसा ही अगम है जैसा अहङ्कार और ममता से मलिन पुरुष को ब्रह्मसुख अगम होता है ।

व्याख्या : सारे समाज की दशा कहकर तब भरतजी की दशा कहते हैं कि उनकी दशा तो शेष भी नहीं कह सकते । शेष बड़े प्रेमी है, सरकार का साथ नहीं छोड़ते, बड़े वाग्मी हैं, दो सहस्र जिह्वा है । उन्हें अगम नहीं है । पर कह नहीं सकते । गोस्वामीजी कहते हैं कि मुझे अगम है । क्योंकि मुझे अनुभव नहीं है । जैसे ब्रह्मसुख का अनुभव अहन्ता ममता से मलिन हृदय पुरुष को नहीं हो सकता । यथा : मैं तैं मोर मूढता त्यागू । महामोह निसि सोवत जागू । तथा : मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना । राम रूप देखहि किमि दीना । अतः मैं कैसे कह सकता हूँ । जब न द्वैत भासे और न निद्रा हो । उस सुख को ब्रह्मानन्द कहते हैं । अहन्ता ममता से मलिन पुरुष को या तो द्वैत भासेगा या निद्रा होगी । अतः उस ब्रह्मसुख का अनुभव ही नहीं सकता ।

सकल सनेह शिथिल रघुवर कैं । गए कोस दुइ दिनकर ढरकैं ॥

जलु थलु देखि बसे निसि बीते । कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते ॥१॥

अर्थ : सब लोग रामजी के स्नेह में शिथिल हो गये । दो कोस चले । सूर्य अस्ताचल की ओर अभिमुख हुए । जलाशय देखकर डेरा डाल दिया । सवेरा होते ही रामजी के प्रेमी चल पड़े ।

व्याख्या : सब लोग ऐसे स्नेह सुरा से छके थे कि रास्ता चलना असाध्य व्यापार हो पड़ा । शरीर शिथिल है । चलने में डगमगाते हैं परन्तु दर्शन की लालसा से चलना बन्द भी नहीं करते । दिन भर चलते रहे । पर दो ही कोस चल पाये । तब तक सूर्यनारायण अस्ताचल के सन्निकट पहुँच गये ।

तब होश आया कि कही ठहरना चाहिए । सो जलाशय देखकर ठहर गये । पर रात बीतना कठिन हो गया । रात तीन पहर में ही खतम हो जाती है । चौथे पहर की दिन में गिनती है । सो एक पहर रात रहते ही चल पड़े । ये सबके सब रामजी के प्रेमी हैं । कब भेंट होगी : इस लालसा के कारण बड़ी शीघ्रता है ।

लक्ष्मण क्रोध प्रसङ्ग

उहाँ रामु रजनी अवसेखा । जागैं सीय सपन अस देखा ॥

सहित ममाज भरत जनु आए । नाथ वियोग ताप तन ताए ॥२॥

अर्थ : वहाँ रामजी रात के अन्तिम भाग में जागे । सीताजी ने स्वप्न देखा कि मानो सरकार के वियोग से सन्तप्त भरतजी समाज सहित आये हैं ।

व्याख्या : कवि सदा भगवान् के साथ रहते हैं । अतः रामजी के यहाँ का जो कुछ हाल बहना है उस प्रकरण में इहाँ शब्द का प्रयोग करते हैं और दूसरे स्थान

के लिए वहाँ कहते हैं। परन्तु भक्त का प्रसङ्ग आने पर कवि रामजी का साथ छोड़कर भक्त के पास चले जाते हैं। तब उस स्थान को इहाँ और रामजी के पास को उहाँ कहते हैं। इस नियम का निर्वाह सारे ग्रन्थ में कवि ने किया है। अतः इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। रामजी के यहाँ की कथा लिखने में उहाँ का प्रयोग करते हैं।

वहाँ अवधवासियों के प्रयाण करने के पहिले ही सरकार जाग गये। उसी समय अर्थात् रात्रि अवशेष में सीताजी ने स्वप्न देखा। जिस स्वप्न का घटना से सम्बन्ध होता है कवि उस स्वप्न का भी उल्लेख करते हैं। सीताजी ने वह सपना रामजी को सुनाया। वे समझती हैं कि यह स्वप्न निरर्थक नहीं है। क्योंकि जागते समय इसे देखा है। सपना देखने के बाद नींद लग जाने से स्वप्न निरर्थक हो जाता है।

और रामजी से कहने लगी इतने शब्दों का अव्याहार करना होगा। सपना का हाल कह रही हैं। अतः कहती है कि सहित समाज मानो भरतजी आये। अपना प्रातिभासिक सत्य है। व्यावहारिक सत्य की अपेक्षा मिथ्या होता है। अतः मानो शब्द का प्रयोग किया और कहती हैं कि भरतजी समाज के सहित सरकार के वियोग से सन्तप्त हैं। नाथ शब्द का भाव यह कि भरतजी ने राज्य नहीं स्वीकार किया नाथ आप ही को माना। ताप तन तापे का भाव यह कि वियोगाग्नि सहन न हो सकी। मनाने आये हैं।

सबल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी ॥

सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचवस सोच विमोचन ॥३॥

अर्थ : सब मन मलिन हैं। दीन और दुखी हो रहे हैं और देखा कि सासु लोग जैसी थी वैसी नहीं हैं।

व्याख्या . अब समाज की दशा कहती हैं सब उदास हैं। किसी में प्रसन्नता नहीं बल्कि ऐसे दुखी हैं कि दीन हो रहे हैं। भाव यह कि मानसिक दुख से दुखी हैं। मन की म्लानता से दुख और दुख की अधिकता से दीनता है। सासु वही हैं पर उनका स्वरूप दूसरा हो रहा है। स्वप्न का कुछ भाग सत्य और कुछ का फल असत्य होता है। यथा : त्रिजटा का स्वप्न : वानर लका जारी। जालुधान सेना सब मारी। इतना भाग सत्य हुआ : खर बारूढ नगन दसभीमा। मुडित सिर खडित भुज बोझा। इत्यादि का फल असत्य हुआ। इसी भाँति यहाँ भी भरतजी का समाज सहित दुखी होकर आना सत्य हुआ और : सासु आन अनुहारी का फल असत्य हुआ।

सीताजी के स्वप्न के फल का विचार करके आँखों में आँसू भर आया। सरकार सोच विमोचन हैं। फिर भी सोचवस हो गये। ऐसा कहने से सरकार की लोला कही। यथा : जया अनेक बेप धरि नृत्य करे नट बोद। सोइ सोइ

भाव देखावे आपुन होइ न सोइ । असि रघुपति लीला उरगारी । दनुज विमोहनि जन सुखकारी ।

लखन सपन यह नीक न होई । कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बधु समेत नहाने । पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥४॥

अर्थ लक्ष्मण । यह स्वप्न अच्छा नहीं है । कोई बहुत बुरा समाचार सुनावेगा । ऐसा कहकर भाई के साथ स्नान किया और शङ्कर की पूजा करके साधुओं का सत्कार किया ।

व्याख्या जिस समय भगवती ने स्वप्न कहा उस समय लक्ष्मणजी भा पाद वन्दना के लिए आगये थे । अतः सीताजी से कुछ न कहकर लक्ष्मणजी से कहते हैं कि इस स्वप्न का फल अच्छा नहीं है । कोई बड़ा अनिष्ट समाचार सुनावेगा । क्योंकि भरतजी के आने की तो सम्भावना नहीं है । कोई समाचार ही लेकर आवेगा और वह समाचार ऐसा होगा जिसके कारण भरत भी दुखी हैं । समाज भी दुखी है और माताओं के स्वरूप में भी अन्तर पड़ा है ।

कुछ सपने ऐसे होते हैं जिनका फल होते देखा जाता है । स्वप्नाध्यायी में इसका विस्तार है कि कौन कौन सपने सत्य होते हैं और कौन निष्फल होते हैं तथा किस सपने का फल कितने विलम्ब से होता है । सीताजी का सपना ऐसा था जिसका फल सद्यः होनेवाला था ऐसा ही सपना त्रिजटा का था ।

स्वप्न दोष निवारण के लिए प्रातः स्नान, शिव पूजन, दानादि का विधान है । अतः मर्यादा पुरुषोत्तम ने भाई के साथ स्नान किया । शिव पूजन किया तथा मुनियों का सम्मान किया ।

छ सनमानि सुर मुनि बदि बैठे उतर दिसि देखत भये ।

नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आश्रम गये ॥

तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे ।

सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

अर्थ देवता तथा ऋषिया का सम्मान करके बैठे तो उत्तर की ओर देखने लगे । आकाश में धूलि है और चिड़ियाएँ तथा मृग भागे हुए प्रभु के आश्रम में पहुँचे । तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर उठे कि क्या कारण है और चकित रह गये । उस समय कोल किरातो ने आकर सब समाचार सुनाया ।

व्याख्या सरकार स्वप्न की यथासाध्य शान्ति करके बैठे । उत्तर की ओर विशेषता दिखायी पड़ी । अतः उस ओर देखने लगे । सेना के आगमन का चिह्न दृष्टिगोचर होने लगा । धूरि पूरि नभ मण्डल रहा । उत्तर से दक्षिण की ओर सेना आ रही है । अतः खग मृग भागकर आश्रम की ओर चल आ रहे हैं । अयोध्या वहाँ से उत्तर ही पड़ती है । विशेष दृष्टि प्रसार के लिए उठे । चकित होकर देखते हैं कि धूलि

उठने और खग मृग क भागने का कारण क्या है । किरात कोलो ने कहा था हम सब भाँति करव सेवकाई । करि केहरि अहि बाघ बराई । सो सेना का आगमन देखकर उन सबो ने पता लगाया कि किसकी सेना है और आकर पहिले ही सरकार को समाचार दिया ।

दो सुनत सुमगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर ।

सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

अर्थ सुन्दर मङ्गल के वचन सुनते ही मन मे आनन्द हुआ । शरीर मे पुलक हुआ । शरत्काल के कमल से आँखो मे तुलसीदास कहते हैं कि प्रेम का जल भर आया ।

व्याख्या भरतजी के आगमन का समाचार सुमङ्गल है । तत्सूचक वचन भी सुमङ्गल है । भरतजी पर सरकार का इतना प्रेम है कि उनके आगमन के समाचार सुनते ही मन मे हर्ष हो उठा । शरीर म पुलक हो गया । पुलक होना और नेत्रो मे जल भर आना ये अनुभाव है । जो शोक और हर्ष दोनों मे होते हैं । यथा सकल सखी गिरिजा गिरि मैना । पुलक सरीर भरे जल नैना । नारदहूँ यह भेद न जाना । दस एक समुझव बिलगाना । सरकार ने कुछ कहा नहीं । अत यह पता न लग सका कि यह सजल नयन और पुलक तन किस विभाव का अनुभाव है ।

बहुरि सोच वस भे सियरवनू । कारन कवन भरत आगवनू ॥

एक आइ अस कहा बहोरी । सेन सग चतुरग न थोरी ॥१॥

अर्थ फिर जानकी नाथ सोच मे पड गये कि भरत के आने का कारण क्या है ? फिर एक ने आकर कहा कि उनके साथ थोड़ी चतुरङ्गिनी सेना नहीं है ।

व्याख्या पहिले सीताजी का सपना सुनकर सोचवश हुए थे । यथा भये सोचवश सोच विमोचन । अब भरतजी का आगमन सुनकर रामजी फिर सोचवश हुए । सोच यह कि भरत के आने का कारण नहीं मालूम होता । पिताजी ने राज्य के लिए कह ही दिया था । मैंने भी उसका बार बार अनुमोदन किया । यथा भरत प्रान प्रिय पावहि राजू । विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू । और हमारे तथा कहव सदेस भरत के आए । नोति न तजिअ राजपद पाये । फिर पिताजी के आदेश के प्रतिकूल यहाँ आने का वारण क्या ?

पहिले किरात ने आकर केवल भरतजी के आगमन का समाचार दिया । जैसा सुना था वैसा ही उसने खबर दिया । जब उन सबो ने आँखो देखा कि बड़ी भारी सेना है । यह तो अङ्गरक्षक सेना नहीं है । आक्रमणोपयागी सेना है । तब दूसरी राखर भेजने की आवश्यकता हुई । क्योंकि सेना का चलना युद्ध की सूचना देता है और यहाँ रामजी के मित्रा दूसरा है कौन ? अत हमारे ने यह खबर भी दे डाली ।

सो सुनि रामहि भा अति सोचू । इत पितु वच इत बंधु सकोचू ॥
भरत सुभाउ समुझि मन माँही । प्रभु चित हित थिति पावत नाँही ॥२॥

अर्थ : यह सुनकर रामजी को अत्यन्त सोच हुआ । इधर तो पिता का वचन और इधर भाई का सङ्कोच । भरतजी स्वभाव को मन में समझकर प्रभु का चित्त हित स्थिति को प्राप्त नहीं होता ।

व्याख्या : दूसरे समाचार को सुनते ही सरकार समझ गये कि भरत मेरे अभिषेक की तैयारी किये हुए आ रहे हैं । अतः यह सुनते ही सोच की मात्रा अधिक बढ़ गयी । पिता की आज्ञा और भाई का सङ्कोच इन दोनों में कोई कम प्यारा नहीं है । अतः दोनों पक्षों के लिए इत शब्द का प्रयोग हुआ है । यदि तारतम्य होता तो जिधर अधिक प्रवृत्ति होती उधर के लिए इत और जिधर कम प्रवृत्ति होती उधर के लिए उत आता । ग्रन्थभर में इत उत का इसी भाव में प्रयोग हुआ है । इस समय परिस्थिति ऐसी आगयी कि या तो पिता का वचन छोड़ें या भाई का सङ्कोच छोड़ें । तीसरा मार्ग नहीं है । अतः सरकार को बड़ा सोच हुआ ।

रामजी भरत के स्वभाव को सोचते हैं कि भरत को मेरे चरणों में प्रेम है । यथा : राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजै न पासू । बहुत सम्भव है कि भरतजी राज्य स्वीकार न करें । तब क्या होगा ? मैं पिता का वचन छोड़ नहीं सकता । भरत राज्य स्वीकार नहीं करता । ऐसी विकट स्थिति में तीसरा मार्ग कौन है जिससे सामञ्जस्य बैठ जाय । ऐसा कोई मार्ग दिखायी नहीं पड़ता ।

समाधान तब भा यह जाने । भरत कहे महु साधु सयाने ॥
लखनु लखेउ प्रभु हृदय खभारू । कहत समय सम नीति विचारू ॥३॥

अर्थ : तब यह जानकर समाधान हुआ कि भरत मेरी आज्ञा में हैं और सयाने साधु हैं । लक्ष्मणजी ने लखा कि प्रभु के हृदय में सोच है । समयानुकूल नीति का विचार कहा ।

व्याख्या : इस विचार से सामञ्जस्य बैठ गया कि भरत मेरी आज्ञा मानने-वाले हैं । यथा : भोरेहुँ भरत न पेलिहहि मनसहुँ राम रजाय । तथा : भरत राम आयसु अनुसारी । इसके अतिरिक्त भरत सयाने साधु हैं । मुझे पुत्रधर्म से विमुख होने पर कभी हठ न करेंगे । स्वयं कष्ट सह जावेंगे पर किसी के धर्म पर आघात न होने देंगे ।

लक्ष्मणजी सदा प्रभु की चित्तवृत्ति को लखा करते हैं । सो इन्होंने लखा कि सरकार कहते कुछ नहीं पर इनके हृदय में सोच है । सीताजी ने बुरा सपना देखा है और उसका फल सरकार ने कह दिया कि कोई बड़ा अनिष्ट का समाचार सुनावेगा । यह किरात आकर चतुर्द्धिनी सेना के साथ भरतजी के आगमन का समाचार दे रहा है । यह समाचार अति अनिष्टकर तभी हो सकता है जब भरत के मन में पाप आवे । अतः यह अवसर युद्ध के लिए मन्त्रद्व हो जाने का है । यह विचार का समय

नही है कि भरत धर्म की मर्यादा कैसे मिटावेंगे और मुझसे प्रेम करना कैसे छोड़ देंगे । अतः समयानुकूल नीतिका विचार कहने लगे ।

विनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं । सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई ॥
तुम्ह सर्वग्य शिरोमनि स्वामी । आपुनि समुझि कहउँ अनुगामी ॥४॥

अर्थ : हे स्वामी । बिना पूछे ही कुछ कहता हूँ । सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं होता । आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं । मैं सेवक हूँ । अपनी समझ कहता हूँ ।

व्याख्या . लक्ष्मणजी ने कहा कि बिना पूछे कुछ कहना ढिठाई है । यह व्यापन करना है कि मैं बड़ा समझदार हूँ । पर मेरी ढिठाई समय : मौके की है । अतः इस ढिठाई से मैं ढीठ नहीं समझा जा सकता । अथवा यह सेवक का समय है अतः मेरी ढिठाई ढिठाई नहीं है । सेना सिर पर आगयी । उसका सामना करना मुझ सेवक का काम है । प्रभु सर्वज्ञों में शिरोमणि है । मैं अल्पज्ञ जीव हूँ । आप का ही समझना उपादेय है पर मैं अपनी समझ कहता हूँ । भरतजी के आगमन के दो ही कारण हो सकते हैं । एक तो जैसा सरकार सोचते हैं । दूसरा वह जो कि मैं सोचता हूँ ।

दो. नाथ सुहृद सुठि सरल चित, शील स्नेह निधान ।

सब पर प्रीति प्रतीति जियँ, जानिअ आपु समान ॥२२७॥

अर्थ . नाथ । आप सुहृद अत्यन्त सरलचित्त और शील स्नेह के निधान हैं । सबके ऊपर आपकी प्रीति है । सब पर विश्वास है और सबको अपने समान जानते हैं ।

व्याख्या . लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो मैं सोचता हूँ उसे सरकार सोच नहीं सकते । क्योंकि निष्कारण भला चाहने का आपका स्वभाव है । मन वाणी और कर्म एक रूप है । महात्मा हैं । शील और स्नेह के निधान हैं । आप दुःशील निर्दय स्वार्थी कपटियों को बातें समझ नहीं सकते । क्योंकि सब पर आपका प्रेम है और सब पर विश्वास है । अतः प्रीति प्रतीतिवाली बात ही सोचते हैं । यह सोचना भी ठीक ही है । क्योंकि जो जैसा होता है वैसा ही ससार को देखता है ।

बिपई जीव पाइ प्रभुताई । मूढ मोह बस होहि जनाई ॥

भरत नीति रत साधु सुजाना । प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना ॥१॥

अर्थ : विषयी जीव जब प्रभुता पाते हैं तो वे मूढ अज्ञान के वश अपने को जानते हैं । भरतजी नीतिरत हैं । सुजान साधु हैं । उनकी सरकार की चरणों में प्रीति है । यह सारा ससार जानता है ।

व्याख्या . तीन प्रकार के जीव ससार में होते हैं । १ सयाने सिद्ध २ साधक और ३. विषयी । यथा विषयी साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग बेद बखाने ।

उनमे से सिद्ध और साधक तो सम्पत्ति पाकर अधिक नम्र हो जाते हैं। यथा : फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि नियराय । पर उपकारी पुरुष जिमि नवहि सुसपति पाइ । परन्तु विषयी जीव की बात ही दूसरी है। उन्हें सम्पत्ति न रहे, प्रभुता न रहे तभी उनकी चित्तवृत्ति शान्त रहती है। बड़े सीधे और बड़े अच्छे बने रहते हैं। पर जहाँ उनको प्रभुता मिली तहाँ वे होश के बाहर हो जाते हैं। अपने को जनाने की धुन उन्हें सवार हो जाती है। मूढ़ लोग ही विषयी होते हैं। प्रभुता पाने से उनकी मूढ़ता अधिक बढ़ जाती है। तब वे अपनी प्रभुता के ख्यापन के लिए असमर्थ करने लगते हैं। यह साधारण नियम है।

नीतिरत साधु प्रकृति हरिभक्त के प्रभुता पाने से तो ससार को सुख होता है। यथा : बिस्व सुखद जिमि इदु तमारी । वे सूर्य चन्द्र की भाँति सम्पूर्ण विश्व के सुखदाता हो जाते हैं। परन्तु यहाँ तो अद्भुत बात हुई। भरतजी नीतिरत भी हैं और साधुओं में सुजान हैं। उनकी प्रसिद्धि है कि सरकार के चरणों के अनुरागी हैं।

तेऊ आज राज पदु पाई । चले धरम मरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबधु कुअवसर ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ॥२॥

अर्थ : वे भी आज राज्यपद पाकर धर्म की मर्यादा को मिटा चले। जो कुटिल कुबन्धु होते हैं वे कुअवसर देखनेवाले होते हैं। उन्होंने रामजी को बनवास में अकेला जानकर।

व्याख्या अतः यह ठीक है। श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि । देखिये जिन भरतजी में आज के पहिले ऐसे उत्कृष्ट गुण थे आज जब उन्हें राजपद मिल गया तो धर्म की मर्यादा मिटाकर चल पड़े। धर्म में कर्म ज्ञान उपासना तीनों का अन्तर्भाव है। सो भरतजी ने तीनों मिटाया : कर्मपथ से विचलित हुए। यथा : भरत न राजनीति उर आनी । तब कलक अब जीवन हानी । ज्ञान भी नहीं रह गया : सकल सुरासुर जुरहि जुझारा । रामहि समर न जीतनि हारा । उपासना भी गयी जानहि सानुज रामहि मारी । करौ अकटक राज सुखारी ।

भरतजी की इस करणी को देखकर पता चलता है कि अपने को असमर्थ पाकर अपने रूप को छिपाये रहे। राज पाने पर अपने यथार्थ रूप को प्रकट कर दिया। भरत कुबन्धु हैं। सुबन्धु तो कुअवसर में सहाय होते हैं। यथा : होहि कुठायँ सुबधु सहाये । ये कुअवसर के ताक में रहे। वह कुअवसर अब मिला। अयोध्या में तो सारी प्रजा आपके साथ है। वहाँ आपका क्या कर सकते थे ? यहाँ देखा कि वन में अकेले हैं। यद्यपि आप अकेले नहीं हैं। पर वे जानते हैं कि अकेले हैं। सरकार सुठि सरल हैं। भरत कुबन्धु हैं। सरकार सील सनेह निधान हैं। भरत कुअवसर ताकी हैं। सरकार को तो : सब पर प्रीति प्रतीति जि है और भरत अकटक राज करने आये हैं।

करि कुमंशु मन साजि समाजू । आए करइ अकटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आए दल बटोरि दोउ भाई ॥३॥

अर्थ : मन में बुरी सलाह ठानकर और समाज सजाकर अकण्टक राज्य करने आये हैं । करोड़ों प्रकार की कुटिलता की कल्पना करके दोनों भाई सेना इकट्ठी करके आये हैं ।

व्याख्या . अतः आप अपने समान भरत को न समझिये । इन्होंने अपने मन में कुमन्त्र विचारा है । इसलिए साज समाज छोड़कर अकण्टक राज करने चले हैं । माता से जो कसर रह गयी उसे पूरा करने चले हैं । उसने १४ वर्ष के लिए सरकारी वनवास मांगा । पर चौदह वर्ष के बाद तो क्षत्रिय अपना धर्म सँभाले गा ही । राज्य के लिए युद्ध होगा ही । ऐसा निश्चय करके भरत आपको अकण्टक समझते हैं । अतः कण्टकोद्धार के लिए सेना इकट्ठी करके आये हैं ।

इन्होंने करोड़ों प्रकार से कुटिलता की कल्पना की है । अपने में कुटिलता है । इसलिए आप ऐसे महापुरुष में उन्हें करोड़ों प्रकार की कुटिलता दिखायी पड़ रही है । शत्रुघ्न भी पश्यन्त्र में सम्मिलित हैं । अतः दोनों भाई सेना लिये आ रहे हैं ।

जो जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहात रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ । जग वीराइ राजपद पाएँ ॥४॥

अर्थ . यदि इनके जो में कपट कुचाल न होती तो रथ घोड़े और हाथियों की पक्षि किसे अच्छी लगती । व्यर्थ ही भरत को दोष कौन दे । राजपद पाने पर सभी उन्मत्त हो जाते हैं ।

व्याख्या : यदि कहिये कि भरतजी सरकार से मिलने आये हैं । उनके मन में कपट कुचाल नहीं है । उनके मन में सरकार के वनवास होने का दुःख है । अतः राजा होने पर भी भाई की समवेदना से मिलने आ रहे हैं तो यह बात भी नहीं है । यदि दुःखी होते तो उन्हें यह ठाट बाट अच्छा न लगता । उन्हें ठाट बाट इतना प्रिय है कि केवल भेंट करने के लिए चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हुए है । यही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि उन्हें सरकार के वनवास का दुःख नहीं बल्कि खुशी है ।

अपनी बात की पुष्टि करते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि यही ससार का नियम है कि जो राजपद पा जावे वही पागल हो जाय । अतः हमारा भरतजी को दोष देना व्यर्थ है जो दोष सभी से हो जाता हो उसके लिए किसी एक को दोषी नहीं कहा जा सकता ।

दो. ससि गुरु तिय गामो नहुपु, चढेउ भूमिसुर जान ।

लोक वेद ते विमुख भा, अधम को वेन समान ॥२२८॥

अर्थ : चन्द्रमा ने गुरु स्त्री से गमन किया । नहुप ब्राह्मणों के द्वारा ले चलने-

वाले यान पर चढ़े । राजा वेन सा अधम तो कोई नहीं हुआ । क्योंकि वह लोक और वेद दोनों से विमुख हुआ ।

व्याख्या : उदाहरण देते हैं । चन्द्रमा ने राज्य पाकर : औषधियो और ब्राह्मणों के पति होकर महापातक किया । गुरुत्तल्पग हुए । क्या ससार अन्य सुन्दरियो से रिक्त हो गया था । नहुष राजा इन्द्रत्व पाकर ऐसे यान पर चढ़ने की धृष्टता की जिसके ढोने में ब्रह्मर्षि लोग लगाये गये थे । क्या ससार में उसे दूसरी सवारी न मिली । ब्रह्मर्षियों के यान पर चढ़ने में क्या कोई विशेष सुख है । राजा वेणु लोक वेद दोनों से गया । न सासारिक सुख ही किया न धर्म ही कमाया । उसने परमेश्वर से कोई सम्बन्ध न रखा । न प्रेमी ही हुआ न वैरी ही हुआ । उसकी आज्ञा थी : न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्यं कदाचन । कोई यज्ञ न करे, हवन न करे और न कोई दान करे । यज्ञ और होम में खाद्य पदार्थ के हवन करने से लोगों की हानि होती है । दान करने से आलसियों की संख्या बढ़ती है । अतः यह कर्म कोई कर न पावे । इसलिए कहते हैं कि वेन सा नीच कौन होगा ?

सहस्र बाहु सुरनाथ त्रिसंकू । केहि न राजमद दीन्ह कलकू ॥

भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रंच न राखव काऊ ॥१॥

अर्थ : कार्तवीर्यार्जुन इन्द्र तथा विशकु राजा इनमें से किसे राजमद ने कलङ्क नहीं दिया ? भरत ने यह उचित उपाय किया कि शत्रु और ऋण का शेष भी नहीं रखना चाहिए ।

व्याख्या . सहस्रबाहु कार्तवीर्यार्जुन ने ऋषि की गाय चाही । उन्हें रत्नभुक् होने का मद था और वह जमदग्नि ऋषि की गाय रत्न थी । ऋषिजी ने देने से इनकार कर दिया । इस कलङ्क में ऋषिजी मारे गये । उनके अपराध से इक्कीस बार पृथ्वी निक्षत्र की गयी । यह कलङ्क राजा सहस्रबाहु को राजमद के कारण लगा । नहीं तो राजा सहस्रबाहु ऐसे योगी थे कि चौदहो भुवन में चौदह शरीर धारण करके एक ही समय में अपना राज्याभिषेक कराया था । इन्द्र रत्नभुक् होने के अभिमान से स्त्रीरत्न अहल्या के जार हुए और धीरे दुर्दशा को प्राप्त हुए । आज तक वह कलक न गया । सहस्र नेत्र के रूप में उनके शरीर में विद्यमान हैं । विशकु राजा ने सशरीर स्वर्ग जाने की धुन में गुरु वसिष्ठजी का अपमान किया । ऋषि पुत्र के शाप से चाण्डाल हो गये । महर्षि विश्वामित्र की कृपा से ऊर्ध्वगति भी हुई तो आज तक स्वर्ग में उलटे लटके हैं । सो राजमद से सबको कलङ्क लगता ही है ।

भरतजी तो राजमद से पागल नहीं हुए । जैसा कि ये लोग हो गये थे । ये तो उचित उपाय कर रहे हैं । नीति शास्त्र कहता है : ऋणशेषोऽग्निशेषश्च व्याधिशेषस्तथैव च । विवर्धते पुनर्यस्मात् तस्माच्छेष न कारयेत् । ऋण और शत्रु का शेष भी न रहने देना चाहिए । क्योंकि ये समय पाकर बढ़ जाते हैं । यदि कोई कहे कि हम लोग तो भाई भाई हैं शत्रु कैसे हुए ? तो एक भोग्य वस्तु के निमित्त सहोदरो में बड़ा भारी बैर खड़ा हो जाता है । यथा : एकामिपप्रभवमेव सहोदराणामुज्जृम्भते

जगति वैरमिति प्रसिद्धम् । भरत की दृष्टि से आप वैरी हैं । अतः यह प्रयत्न भरतजी का कण्ठकोटार के लिए है ।

एक कोन्ह नहि भरत भलाई । निदरे रामु जानि असहाई ॥

समुझि परिहि सो आजु विसेखी । समर सरोप राम मुखु पेखी ॥२॥

अर्थ . भरत ने एक बात अच्छी नहीं की जो रामजी का असहाय जानकर निरादर किया है । सो आज वह भी विशेष रूप से समझ में आ जायगा जब युद्ध में क्रुद्ध रघुनाथजी का मुख देखेंगे ।

व्याख्या आज वे असहाय हैं । इसलिए रामजी को असहाय जानकर निरादर करने चले हैं । जब तक रामजी सहाय थे तब तक तो सेवक ही बने फिरते थे । यथा प्रभु पद प्रेम सबल जग जाना । उन्होंने समझ लिया है कि रामजी असहाय हैं । पर हैं नहीं । धनुष हाथ में रहते असहाय कैसे हैं ?

भरतजी ने आज तक रामजी का क्रुद्ध मुख देखा ही नहीं है । क्योंकि संग्राम में कभी साथ नहीं रहे । मैंने सुबाहु मारीच के युद्ध में बालानल के सदृश मुख रघुनाथजी का देखा है । वह मुख आज भरतजी को संग्राम भूमि में दिखायी पड़ेगा । तब उन्हें विशेष रूप से समझ पड़ेगा कि रामजी का अनादर करके बहुत ही बुरा किया । यथा राम विरोध कुसल चह सठ हठ बस अति अग्य ।

एतना कहत नीति रस भूला । रन रस बिटघु पुलक मिस फूला ॥

प्रभु पद वदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बल भाषी ॥३॥

अर्थ इतना कहते हुए नीति रस भूल गया और युद्ध रस रूपी वृक्ष पुलक के व्याज से फूल उठा । प्रभु के चरणों में नमस्कार करके रजको सिर पर चढ़ाया और सच्चे सहज बल की घोषणा करते हुए बोले ।

व्याख्या उनके रहते सरकार को युद्ध करना पड़ेगा । इस बात को वीर लक्ष्मण सहन नहीं कर सकते । युद्ध में सरकार के सुख के देखने में भरत असमर्थ होगा । इस बात के मुख से निकालते ही नीतिरस विस्मरण हो गया । क्योंकि रणरस का बड़े वेग से आविर्भाव हुआ । लक्ष्मणजी को पुलक हो गया मानो रणरस रूपी वृक्ष के लिए बहार आगयी । लक्ष्मणजी मानो स्वयं रणरस हैं और पुलक होना उनका पुष्पित हो उठना है ।

अब फल लग रहा है । युद्ध के लिए आज्ञा माँगेंगे । इसलिए वन्दना करते हैं । भाव यह कि सरकार को धनुष उठाना न पड़ेगा । सरकारी चरण रज के प्रभाव से लक्ष्मण सब करेगा । इसलिए चरणरज सिर पर धारण करते हैं । युद्ध में दर्प करना वीर की शोभा है । अतः दर्प करने में भी लक्ष्मणजी अपने बल को बढ़ाकर नहीं कह रहे हैं । अपने स्वाभाविक बल का सत्य स्वरूप वर्णन करते हैं ।

अनुचित नाथ न मानव मोरा । भरत हमहि उपचरा न थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥४॥

अर्थ हे नाथ । मेरे आचरण को अनुचित न मानियेगा । भरत ने हम लोगो की कम पूजा नहीं की । कहाँ तक सहे और मन मारे रहे । नाथ मेरे साथ हैं और धनुष मेरे हाथ में है ।

व्याख्या लक्ष्मणजी को डर है कि उनके इस आचरण से सरकार अग्रसन्न होंगे । कहेंगे कि तुम अनुचित करते हो । अतः व्यङ्ग्य से कह रहे हैं कि भरत ने हम लोगो की थोड़ी पूजा नहीं की । माता छोड़ाया । पिता छोड़ाया । कुटुम्ब छोड़ाया । राज्य छोड़ाया । अब हम लोग वन वन मारे फिरते हैं । इतने पर भी सन्तोष नहीं । अब सेना लेकर प्राण लने आये हैं ।

सहने की भी तो कोई सीमा होती है । बिना एक बिन्दु रक्त गिराये हम लोगो ने राज्य छोड़ दिया । घर कुटुम्ब सर्वस्व छोड़ दिया । वन में दुःसह कष्ट बिना एक शब्द मुख से निकाल भाग रहे हैं । तिस पर हमें सेना बल दिखाने आये हैं । तो अब दत्तलाइये कहाँ तक सहे । यदि कोई कहे कि अनाथ असहाय के लिए अन्य उपाय क्या है ? तो इस पर कहते हैं कि मैं असहाय भी नहीं हूँ । हमारा सहाय धनुष है । मैं अनाथ भी नहीं हूँ । मेरे नाथ मेरे साथ हैं ।

दो छत्र जाति रघुकुल जनमु, राम अनुग जग जान ।

लातहुँ मारे चढति सिर, नीच को धूरि समान ॥२२९॥

अर्थ एक तो क्षत्रिय जाति दूसरे रघुकुल में जन्म । ससार जानता है कि मैं राम का अनुगामी हूँ । धूल भी लात मारने से सिर चढ़ती है । उसके बराबर तो नीच कोई नहीं है ।

व्याख्या धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते । क्षत्रिय के लिए धर्म युद्ध से अधिक कल्याणकर कुछ भी नहीं । युद्ध हमारे लिए प्रेय भी है श्रेय भी है । दूसरे रघुकुल में जन्म है । जिस कुल में कोई संग्राम में पीठ नहीं दिखाता । तीसरे मैं सरकार का अनुगामी हूँ । ऐसे अवसर पर अनुगामी ही अग्रगामी होता है । अतः मैं चुप नहीं रह सकता । धूल तो महा नीच है । लात खाते हो खाते धूल हुई है । पर उसे कोई हाथ से मारे तो सिर चढ़ जाती है । भरत ने लात तो पहिले मारा । अब हाथ मारने आये हैं । अतः मैं उनसे सिर चढ़ जाऊँगा । आगे बढ़कर भरत से लोहा लूँगा ।

उठि करजोरि रजायसु माँगा । मनहु वीर रस सोवत जागा ॥

बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा । साजि सरासनु सायकु हाथा ॥१॥

अर्थ उठकर हाथ जोड़ आज्ञा माँगी । मानो वीर रस सोते से जग गया । सिर में जटा बाँधी कमर में तरवस बसा और धनुष को चढ़ाकर हाथ में बाण ले लिया ।

व्याख्या : इतना कहकर लक्ष्मणजी उठ खड़े हुए। बिना आज्ञा युद्ध नहीं कर सकते थे। इसलिए रजायसु माँगा। मानो लक्ष्मणजी में वीर रस सो रहा था वह जाग उठा। प्रसुप्तावस्था से उदारावस्था को प्राप्त हुआ। सरकार चुप हैं। सब कुछ सुन रहे हैं। लक्ष्मणजी ने फिर भी युद्ध को तैयारी आरम्भ कर दी। आगे चलकर सेना का सामना करना है।

जटा बाँधा जिसमें युद्ध करते समय आँख के सामने न आ जावे। तरकस कमर में बाँधा जिसमें युद्ध करते समय ईप्सित वाण के निकाल लेने में सुभीता हो। धनुष पर प्रत्यश्चा चढाना हो धनुष को साजना है। शत्रु का सामना होने पर प्रहार में देर न हो इसलिए एक वाण तरकस से निकालकर हाथ में ले लिया।

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ॥२॥

अर्थ • आज रामजी के सेवक होने का यश लूँगा। भरत को लड़ना सिखाऊँगा। रामजी के निरादर का फल पाकर दोनों भाई रणशय्या पर सोवें।

व्याख्या : लक्ष्मणजी यशोधन है। बड़ा भारी लाभ रामसेवक रूपी यश है। आज सेवा धर्म की परीक्षा का समय आगया है। आज भारत से युद्ध करना ही सरकारी सेवा है। सो उसमें यश लूँगा। भरत को बतलाऊँगा कि इस प्रकार से लड़ना होता है। तब ससार जानेगा कि तीनों भाइयों में रामजी का सेवक तो लक्ष्मण है।

निदरे राम जानि असहाई। सो उस निरादर का फल पावें। राम निरादर का फल यही है कि रणशय्या पर दोनों भाई सोवें। भावार्थ यह कि मेरे हाथ उन लोगों का वध होगा। वे राम निरादर का फल पावेंगे। मैं तो निमित्त मात्र होकर यश का भागी हूँगा। राम का निरादर करनेवाला तो उसी समय गत प्राण हो जाता है जिस समय कि निरादर करता है। उसके मारने में रक्खा क्या है। आये दल बटोरि दोउ भाई। अतः सोवहुँ समर सेज दोउ भाई। भाव यह कि भरत लक्ष्मण में भाई का नाता है। मुझसे कोई नाता नहीं। मानिय सयहि राम के नाते। जब रामजी के वैरी हूँ तो हमारे वैरी है।

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥३॥

अर्थ : सब समाज आज भले ही जुट गया है पिछले क्रोध को आज प्रकट करूँगा। जैसे सिंह गजगणों का सहार करता है और बाज जैसे लवा को लपेट लेता है।

व्याख्या शत्रु का पूरा समाज का समाज हाथ लग गया। नहीं तो यह पता लगाना कठिन होता कि शत्रु समाज में कौन कौन लोग हैं। वस इतने ही के सहार से शत्रु मात्र का सहार हो जायगा। वरदान से बँधे हुए हम क्रोध को दबाये

बैठे हैं। रिसि उर मारि ग्व जिमि राजा। विपिन वसै तापस के साजा। सो गति हमारी हो रही है। लक्ष्मण के हृदय में आरम्भ से ही चोट है। यथा समाचार जब लछिमन पाये। व्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। तथा पुनि कछु लखन कही कटु बानी प्रभु वरजे बड अनुचित जानी अत क्रोध को प्रकट न कर सके।

आज तो बात दूसरी हो गयी। भाग्य से स्वयं भरत सेना साजकर चढ आये हैं। अब तो पिछल क्रोध के प्रकट करने का समय आगया। अब तो युद्ध करने में वरदान बाधक न हागा। आज सबको मारूँगा। समशीलवीर भरत शत्रुघ्न तथा सेनानायकादि हैं। उनका ऐसा विदारण करूँगा जैसे सिंह अकेला गजयूथ का विदारण करता है। रही सेना वह बिचारी क्या लड़ेगी? लाख लवा क्या एक बाज से युद्ध कर सकते हैं। बाज के चपेट से लवा कही दिखायी नहीं पडते। यथा बाज झपट जिमि लवा लुकाने।

तैसेहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥

जो सहाय कर सकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥४॥

अर्थ वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई के समेत रणक्षेत्र में निरादर करके गिराऊँगा। यदि शिवजी भी सहायता के लिए आवेंगे तो भी राम दोहाई रण में बिना मारे न छोड़ूँगा।

व्याख्या सानुज भरत के लिए लक्ष्मणजी जिमिकरि निवर दलइ मृगराजू और सेना के मदन के विषय में लेइ लपेटि लावा जिमि बाजू। उपमा देते हैं। उन्होंने रामजी का निरादर किया है। उसका फल समर भूमि में निरादर करके दूँगा। अर्थात् खेलाकर मारूँगा।

शङ्कर भगवान् सहायकर्ता है। अतः इनका सामना कोई नहीं कर सकता। तो यदि शङ्करजी भी भरतजी की सहायता करें तो भी राम दोहाई में रण में भरत को मार ही डालूँगा। दूसरे स्थान में भी लक्ष्मणजी ने इन्हीं शब्दों में शङ्करजी को स्मरण किया है। यथा जो सत सकर करें सहाई। तदपि हतौ रन राम दोहाई। अतः यह शङ्का उठनी स्वाभाविक है कि रामजी के अत्यन्त प्रिय शङ्करजी पर लक्ष्मणजी इस भाँति आक्षेप क्यों करते हैं? इन स्थलों में शङ्करजी का कोई प्रसङ्ग भी नहीं था। फिर व्यर्थ उन्हें अपमानित क्यों करते हैं?

बात यह है कि इन स्थलों में शङ्कर सम्बन्धी आक्षेप सूचक शब्दों में वक्ता का तात्पर्य नहीं है। तात्पर्य तो इस बात पर जोर देने में है कि मैं शत्रु का वध अवश्य करूँगा। क्योंकि शङ्कर भगवान् का इन स्थलों में कोई प्रसङ्ग नहीं है। अतः तत्सम्बन्धी तात्पर्य नहीं है। न निन्दा निन्द्य निन्दितु प्रवृत्ता किन्तु विधेय स्तोतुम्। निन्दा का निन्द्य के निन्दा में तात्पर्य नहीं है। किन्तु विधेय की स्तुति में तात्पर्य है। शास्त्रों में जहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण की महिमा है वही भस्म रुद्राक्ष की निन्दा है और जहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण की महिमा कही गई है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा की गयी है।

ऐसे वाक्यों में मोह उन्ही को होता है जो तात्पर्य निर्णय की विधि से अनभिज्ञ हैं। जहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र तुलसीमाला धारण की महिमा बही जा रही है वहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण का कोई प्रसङ्ग नहीं है। अतः वह निन्दा तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की स्तुति के लिए है भस्म रुद्राक्ष की निन्दा के लिए नहीं। इसी भाँति जहाँ भस्म रुद्राक्ष की महिमा गायी गयी है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा भस्म रुद्राक्ष की स्तुति के लिए है तुलसी ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा के लिए नहीं। इस बात को न समझकर लोग व्यर्थ बड़ा भारी विवाद उपस्थित करते हैं।

अतः यहाँ शिवजी पर आक्षेप केवल शत्रु वध के निश्चय पर जोर देने के लिए है न कि शिवजी की निन्दा के लिए। आज भी लोग कह बैठते हैं कि ब्रह्मा आवें तो भी मैं नहीं मानूँगा उनका तात्पर्य न मानने पर रहता है। ब्रह्मदेव की आज्ञा भङ्ग पर नहीं।

दो. अति सरोप मापें लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान ।

समय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥२३०॥

अर्थ : लक्ष्मणजी को अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ देखकर और उनके प्रमाण शपथ को सुनकर सब लोग डर गये और लोकपतियों ने घबराकर भागना चाहा।

व्याख्या : क्रोध के स्पष्ट चिह्न देखकर जाना कि लक्ष्मणजी अतिक्रुद्ध है। यथा : माखे लखन कुटिल भइ भौहैं। रदपट फरकत नैन रिसौहे। और प्रमाण शपथ सुनकर समझा कि ये कर दिखावेंगे। यह तो प्रलयवाला क्रोध है। अतः लोकवासी लोग सभय हो गये और लोकपति लोक छोड़कर भागना चाहते हैं। जैसे भूकम्प में लोग घर छोड़कर भागते हैं। जनकपुर में भी : लखन सरोप बचन जे बोले। डगम-गानि महि दिग्गज डोले। इस समय तो शपथ लिया है। अतः लोकपति भागना चाहते हैं। लक्ष्मणजी जगत् के आधार साक्षात् शेष है। अतः उनके कोप से जगत् व्याकुल हो उठता है। जाग्रत के विभु के क्रोध के सामने कौन ठहरेगा ?

जगु भय भगन गगन भइ बानी । लखन बाहुबलु विपुल बखानी ॥

तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥१॥

अर्थ : जगत् तो भय में मग्न था। इधर आकाश वाणी हुई। लक्ष्मणजी के बाहुबल की विपुलता का बखान किया। हे तात ! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जाननेवाला है।

व्याख्या : यहाँ जग शब्द से जगत् की अधिष्ठाता देवता अभिप्रेत है। नहीं तो जड़ से हर्ष और भय बन नहीं सकता। आकाश से देवता बोले। देवता दिखायी नहीं पड़ रहे हैं। शब्द सुनायी पड़ रहा है। इसलिए कहते हैं कि आकाशवाणी हुई। बीरो के शान्त करने का यही उपाय है कि उनके उत्कर्ष का वर्णन किया जाय। अपवर्ष कहना तो तेजोवध है और शत्रु पक्ष के उत्कर्ष कहने से क्रोध ही बढ़ता है। इसलिए लक्ष्मणजी के बाहुबल का वर्णन देवताओं ने किया कि आप कन्दुक :

गेंद की भाँति ब्राह्माण्ड के उठाने में समर्थ हैं। कच्चे घड़े की भाँति उसे तोड़ सकते हैं। मन्दर और मेरु को मूली की भाँति तोड़ सकते हैं इत्यादि।

बाहुबल कहने के बाद प्रताप कहते हैं। प्रताप बल से पृथक् होकर काम करता है। यथा : समुद्रि रामप्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा। प्रताप और प्रभुता दोनों बल से पृथक् काम करते हैं। भेद यही है कि प्रताप में ताप का अनुभव होता है प्रभाव में ऐश्वर्य का। देवता लोग कहते हैं कि आप अनन्त हैं। अनन्त के प्रभाव और प्रताप का ज्ञान ही किसी को नहीं हो सकता। उसका वर्णन कैसे सम्भव है। यथा : जय अनन्त जय जगदाधारा।

अनुचित उचित काजु किछु कोऊ। समुद्रि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥
सहसा करि पाछे पछिताही। कहहि वेद बुध ते बुध नाही ॥२॥

अर्थ : कोई भी कार्य हो उचित और अनुचित विचारकर तब उसे करना चाहिए। जिसमें सब लोग अच्छा कहे। जो एकाएक कर बैठने के बाद पीछे से पछताते हैं वेद और विद्वान् कहते हैं कि वे पण्डित नहीं हैं।

व्याख्या : आकाशवाणी द्वारा देवता कहते हैं कि अनुचित उचित का विचार करके ही कार्य करना चाहिए। यही नियम है। यहाँ अनुचित होने जा रहा है इसी से उसे पहिले कहा। देवताओं से गुरुजी ने कहा था : करहु भरत पद प्रीति सोहाई। सो यह आकाशवाणी भरत पद प्रीति का फल है। नहीं तो : रामहि भरतहि भेंट न होई का सयोग तो जुट ही गया था। यह : आकाशवाणी लक्ष्मणजी के क्रोध को अनुचित ठहराती है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदा पदम्। एकाएक कोई काम नहीं कर बैठना चाहिए। क्योंकि अविवेक बड़े भारी आपदा का कारण है। नीति रस भूल गये थे। उसे देवता लोग याद दिलाते हैं कि जो बिना विचारे भावावेश में काम कर बैठता है उसे पीछे पछताना होता है। ऐसा कार्य आपके योग्य नहीं है। क्योंकि ऐसा करनेवाले को निन्दा वेद ने भी की है और विद्वान् लोग भी कहते हैं कि बिना विचारे काम करनेवाला पण्डित नहीं है।

सुनि सुर वचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई ॥३॥

अर्थ : देवताओं के वचन सुनकर लक्ष्मणजी सङ्कुचित हो गये। रामजी और सीताजी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया और कहा हे तात ! तुमने सुन्दर नीति कही। राजमद सबसे कठिन है।

व्याख्या : जब देवताओं के वचन लक्ष्मणजी ने सुने तो उन्हें सङ्कोच हुआ। देवता मिथ्या कह नहीं सकते। सरकार की ही समझ ठीक है। मैंने बेसमझ बड़े भाई को क्या कह डाला। यह समझकर सङ्कुचित हुए। तब रामजी और जानकीजी ने आदर के साथ सम्मान किया। लक्ष्मणजी की बांह पकड़कर सन्निवट बिठाया।

भरतजी ने पहिले कहा था : परिहरि राम सोय जग मांही । कोउ नहि कहहि मोर मत नांही । लक्ष्मणजी भी नहीं कहेंगे । दूसरे को गिनती क्या ? वही हुआ ।

सरकार पहिले लक्ष्मणजी की नीति की प्रशंसा करते हैं । यही कायदा है कि जिसके बातों का उत्तर देना हो तो पहिले उसके कथन के उस अंश की प्रशंसा करनी चाहिए जितना कि उपादेय हो । तत्पश्चात् अनुपादेय अंश का खण्डन करना चाहिए । पहिले खण्डन ही आरम्भ करने से उपादेय अंश की प्रशंसा करने के लिए अवसर नहीं मिलता । अतः सरकार ने पहिले नीति की प्रशंसा की : कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकात । यह खाये वीरात है वह पाये वीरात । लक्ष्मणजी ने कहा था : जग वीराय राजपद पाये । उसी की पुष्टि सरकार कर रहे हैं । यहाँ मद शब्द मद्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । भाव यह कि सभी मद्यो में राजरूपी मद्य का नशा बड़ा कठिन है ।

जो अंचवत मातहि नृप तेई । नाहिन साधुसभा जेहि सेई ॥

सुनहुँ लखन भल भरत सरीसा । विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥४॥

अर्थ : उसे पीते वे ही राजा लोग मतवाले हो जाते हैं जिन्होंने साधु सभा की सेवा नहीं की । लक्ष्मण ! सुनो भरत सा भला ब्रह्मा की सृष्टि में न कोई सुना गया न देखा गया ।

व्याख्या : पर इस मद्य की मादकता साधुसेवियों पर प्रभाव नहीं डाल सकती । जो साधुसेवी नहीं हैं उनके विवेक को यह हरण कर ही लेती है । त्रिपयी साधक पिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग वेद बखाने । राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभा बड आदर तासू । साधु सभा में बैठनेवाला जानता है कि उस सभा में राजा का मान नहीं है । भक्तों का मान है ।

ब्रह्मा का प्रपञ्च ही गुण अवगुण मिलाकर बना है । इसमें गुण अवगुण ऐसे मिले हुए हैं जैसे दूध में जल मिल जाता है । यथा : सगुनु खीर अवगुनु जल ताता । मिलइ रचइ परपच विधाता । पर भरत ने हंस की भाँति उसमें से गुण को ही ग्रहण किया है । अवगुण को एक बारगी त्याग कर दिया है । यथा : गहि गुन पय तजि अवगुन वारी । निज जस जगत कीन्ह उँजियारी । भरत हंस रवि बस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा । भरत साधु शिरोमणि हैं ।

दो. भरतहि होइ न राजमदु, विधि हरिहर पद पाइ ।

कवहुँ कि काजी सीकरनि, छीरसिंधु विनसाइ ॥२३१॥

अर्थ : भरत को तो विधि हरिहर पद पाने पर भी राजमद नहीं हो सकता । क्या काँजी के छीटे से क्षीरसिन्धु विकृत हो सकता है ।

व्याख्या : यह कतिपय देश का राज्य क्या वस्तु है जो कि नदी देश पर्वतादि से सीमित है । विधि हरिहर का अधिकार असोम है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर चलता है । सो उनका पद यदि अकेले भरतजी को मिल जाय तो भी उन्हें राजमद नहीं

हो सकता। थोड़े दूध को छेना में परिवर्तन करने के लिए उसमें कांजी का छोटा दिया जाता है जिससे दूध फट जाता है। पर उसका कुछ भी प्रभाव क्षीरसिन्धु पर नहीं पड़ सकता। विधि हरिहर पद भी भरतरूपी अगाध क्षीरसिन्धु के लिए कांजी का छोटा है। इसमें उसमें विकार आ नहीं सकता।

तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहि मिलई ॥

गोपद जल बूढ़हि घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी ॥१॥

अर्थ : अन्धकार चाहे दोपहर के सूर्य को निगल जाय, आकाश चाहे डूबकर मेघ में समा जाय, अगस्त्यजी गोपद के जल में डूब जाय, पृथ्वी चाहे स्वाभाविकी क्षमा छोड़ दे।

व्याख्या : पञ्चभूतों में कभी विकार नहीं होता। केवल सृष्टि के आरम्भ में तथा प्रलय के समय विकार होता है। क्योंकि इनको अपने स्वभाव पर स्थिर रहने से ही जगत् की स्थिति है। यथा : गगन समीर अनल जल धरनी। इन्हकइ नाथ सहज जड करनी। तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रथनि गाये। प्रभु आयसु जेहि कहँ जो अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। सो तेज का स्वभाव है कि वह अन्धकार को नष्ट कर देता है। अन्धकार तेज के सामने ठहर नहीं सकता। सो तेजः पुञ्ज मध्याह्न के सूर्य को चाहे अन्धकार ग्रस ले। आकाश सबको अवकाश प्रदान करता है। सो वह सङ्कुचित होकर मेघ में मिल जाय। अगस्त्यजी समुद्र का शोषण कर गये थे। सो गोपद का जल ऐसा रूप धारण करे कि अगस्त्यजी को ही डूबा दे। पृथ्वी की क्षमा से ही संसार चल रहा है। वह सब कुछ सहन किया करती है। वह भी चाहे अपनी स्वाभाविकी क्षमा का परित्याग करे। इस भाँति तेज, आकाश, जल और पृथ्वी के विषय में कहकर अब वायु के विषय में कहते हैं।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहि भरत समाना ॥२॥

अर्थ : मच्छर की फूँक से चाहे मेरु पर्वत उड़ जाय। पर हे भाई! भरत को राजमद नहीं हो सकता। हे तात! तुम्हारी शपथ और पिता की दोहाई भरत के ऐसा पवित्र और अच्छा भाई कही नहीं है।

व्याख्या : गुणों में तीव्रता या मन्दता का होता ही विकार है। अतः पञ्चभूतों में दोनों प्रकार का विकार दिखाते हुए कहते हैं कि मच्छर की फूँक से रूई के कण में भी गति नहीं देखी गयी। वह फूँक यदि मेरु को उड़ा दे ऐसा भारी परिवर्तन हो पर भरत को राजमद नहीं हो सकता। यथा : भरत सुभाउ सुसोलताई। सदा एकरस वरनि न जाई। भाव यह कि पञ्चभूतों में भले ही विकार हो जाय पर भरत के स्वभाव में विकार आ नहीं सकता।

भरत पर कुटिल कुबंधु का आरोप न करो। तुम सा प्यारा कोई नहीं। पिता सा पूज्य कोई नहीं। सो मैं दोनों को शपथ लेकर कहता हूँ कि भरत के ऐसा पवित्र

सुवन्धु कोई नहीं । भाईपन के नाते तुम भी वैसे नहीं । तुम्हे तो राज्य छूटने का क्रोध है । भरत राज्य को गिनता नहीं । हम लोगो के कष्टो को सोचकर दुःखी हुआ आ रहा है ।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता । मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरतु हंस रविवंस तडागा । जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा ॥३॥

अर्थ : गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल मिलाकर ब्रह्मा ने इस ससार को रचा है । सूर्यवंश रूपी तालाब में भरत हंस है । जिसने जन्म ग्रहण करके गुण दोष का विभाग किया है ।

व्याख्या वेद पुराण और इतिहास सभी कहते हैं कि ब्रह्मदेव की सृष्टि गुण दोष को मिलाकर बनी है । यथा दुःख सुख पाप पुण्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती । दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू । माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रक अवनीसा । कासी मग सुरसरि कबिनासा । मरु मालव महिदेव गवासा । सरग नरक अनुराग बिरागा । निगम अगम गुन दोष विभागा । ऐसा गुण दोष मिला हुआ है कि पता ही नहीं चलता । वेद शास्त्र ने उसका विभाग करके बतलाया है । परन्तु अवगुण को छोड़कर गुण को ग्रहण करने की शक्ति हंस की भाँति सन्त की है । हंस दूध और पानी मिले हुए में से दूध को ग्रहण कर लेता है जल को छोड़ देता है । सो सूर्यवंश में हंस की भाँति भरत सन्त है । जैसे हंस से तालाब शोभित होता है उसी भाँति भरत से सूर्यकुल शोभित है । भरतजी ने जो किया भरतजी जो करते हैं या जो करेंगे सो सब गुण है : इसीलिए गुरुजी ने कहा : समुझव कहव करव तुम्ह जोई । धर्मसारु जग होइहि सोई ।

गहि गुन पय तजि अवगुन वारी । निज जस जगत कीन्ह उँजिआरी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ । प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥४॥

अर्थ : गुण रूपी दूध को लेकर और अवगुण रूपी जल का परित्याग करके अपने यश से ससार को उँजेल कर दिया । भरत के गुण शील और स्वभाव को वर्णन करते करते प्रेम के समुद्र में रामजी मग्न हो गये ।

व्याख्या : भरतजी ने ससार के सामने आदर्श उपस्थित कर दिया । संसार जान गया कि गुण क्या है और अवगुण क्या है । इस भाँति ससार में जो गुणावगुण के अविवेक का अन्धकार था सो मिट गया ।

भरतजी के गुण शील स्वभाव पर सरकार रीझे हुए हैं । अतः उसके वर्णन करने में रामजी प्रेम समुद्र में मग्न हो रहे हैं : इसीलिए कहा है : भरत चरित करि नेम जे सप्रेम गावहि सुनहि । सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति । अथवा रामजी तो थोड़े से प्रेम पर ही रीझ जाते हैं और भरत सुप्रेम पयोधि में मग्न हो रहे हैं ।

दो. सुनि रघुवर बानी विबुध, देखि भरत पर हेतु ।

सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपा निकेतु ॥२३२॥

अर्थ : रामजी की वाणी सुनकर और भरत पर प्रेम देखकर सब देवता लोग सराहने लगे कि प्रभु के ऐसा कृपा निधान कौन है ?

व्याख्या : रामजी की भरत सम्बन्धिनी गुण शील स्वभाव निरूपिणी वाणी सुनी । गुण यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीसा । विधि प्रपंच मह सुना न दोसा । शील यथा : भरतहि होइ न राजमद विधि हरिहर पद पाइ । स्वभाव यथा : भरत हंस रविवस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुण दोष विभागा । और भरत पर रामजी का प्रेम देखा । यथा : प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ । सब देवता प्रशंसा करने लगे कि रामजी के ऐसा कोई प्रभु कृपानिकेत नहीं है । भाव यह कि प्रभु लोग दूसरे की वेदना समझते ही नहीं । 'लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम् । शेषो धराभरा-क्रान्तः शेते नारायणः स्वयम् । सरकार तो सेवक के प्रेम में मग्न है । अतः ऐसा कृपानिधान स्वामी कही नहीं है ।

जौ न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥

कवि कुल अगम भरत गुन गाथा । को जानई तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥१॥

अर्थ : यदि जगत् में भरत का जन्म न होता तो सब धर्मों की धुरा रूपी पृथ्वी को कौन धारण करता ? हे रघुनाथ ! कविकुल के पहुँच के बाहर भरत के गुणों की गाथा सिवा तुम्हारे और कौन जाने ।

व्याख्या : धारणात् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः । सो एक धर्म का धारण करना कठिन हो जाता है सकल धर्म के धुरा को कौन धारण कर सकता है ? उसके धारण करने में भरतजी ही समर्थ हैं । इनके धारण करने से धरणी की रक्षा है । यथा : भरत भूमि रह राउर राखी । बिना धर्म के धुर धारण किये धारण की हुई भी धरणी अरक्षित होकर नष्ट हो जाती है ।

कवियो से कोई बात नहीं छिपी रहती । नारदहू यह भेद न जाना । लछिमनहू यह मरम न जाना । सो कवियो ने जान लिया । परन्तु भरत की गुणगाथा कवियो के लिए अगम है । क्योंकि : कविहि अरथ आखर बल साँचा । अनुहर ताल गतिहि नट नाचा । अर्थ ही कवि के हृदय में नहीं आता । यथा : कविहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेपु । जान सिरोमणि कोसल राऊ । मात्र उस गुण गाथ से परिचित हैं ।

लखन राम सिय सुनि सुरबानी । अति सुख लहेउ न जाइ बखानी ॥

इहाँ भरतु सब सहित सहाएँ । मंदाकिनी पुनीत नहाएँ ॥२॥

१. लक्ष्मीवान् प्रायेण दूसरे के दुःख को नहीं समझते । शेष पर तो सम्पूर्ण पृथ्वी लदी हुई है । उस पर नारायण भी स्वयं जाकर सोने हैं ।

अर्थ . लक्ष्मणजी रामजी और सीताजी ने देवताओं की वाणी सुनकर ऐसा सुख पाया जिसका वर्णन नहीं हो सकता । यहाँ भरतजी ने सेना के साथ पवित्र मन्दाकिनी नदी में स्नान किया ।

व्याख्या . यह आकाश वाणी देवताओं की हुई थी । इसलिए कहते हैं कि तीनों मूर्ति बड़े प्रसन्न हुए । उसमें पहिले लक्ष्मणजी को कहते हैं । महात्माओं का क्रोध व्यक्ति पर नहीं होता अवगुण पर होता है । अवगुण पर क्रोध हुआ । पर जब मालूम हो गया कि ये अवगुण भरतजी में नहीं हैं । क्योंकि देवता अन्यथा नहीं कहते और भरतजी में बड़े दिव्यगुण हैं जिन्हें रामजी ही जानते हैं । तो लक्ष्मणजी बड़े प्रसन्न हुए । रामजी और सीताजी को भी बड़ी प्रसन्नता हुई । अपने प्रिय के गुणगणों की प्रशंसा देवताओं के मुख से सुनकर ऐसा सुख हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ।

उहाँ राम रजनी अवसेपा । जागे सीय सपन अस देखा । कहकर जिस प्रसङ्ग को उठाया उसे यहाँ समाप्त कर रहे हैं । अतः इहाँ शब्द का प्रयोग करके कथन आरम्भ करते हैं । भाव यह कि अब भरतजी का चरित कहेंगे और उन्हीं के साथ कवि अपने को मान रहे हैं । जल थल देखि बसे निसि बीते । कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरिते । यहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था । अब मन्दाकिनी स्नान से प्रसङ्ग फिर से आरम्भ करते हैं । जहाँ ठहरे थे वहाँ से सन्निकट ही मन्दाकिनी थी । अतः वही स्नान किया है । मन्दाकिनी गङ्गाजी की धारा है । इसलिए पुनीत कहते हैं । यथा . सुरसरि धार नाँउ मन्दाकिनि । जो सब पातक पोतक डाकिनि ।

सरित समीप राखि सब लोगा । माँगि मातु गुर सचिव नियोगा ॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई । साथ निपादनाथु लघु भाई ॥३॥

रामजी से भेंट

अर्थ : नदी के तीर पर सब लोगो को ठहराकर तथा माता गुरु और मन्त्री से आज्ञा माँगकर भरतजी वहाँ चले जहाँ सीताजी और रामजी थे । उनके साथ निपादराज और शत्रुघ्नजी थे ।

व्याख्या . शरण जा रहे हैं । इसलिए भरतजी किसी को साथ नहीं लेते । मन्दाकिनी के तीर पर सबके टिकने का भी सुभीता है । गुरुजी तथा माताओं को लेने के लिए स्वयं सरकार को आना चाहिए । अतः उन्हें भी साथ नहीं लिया । सरकार मुनिवृत्ति में हैं । अतः वहाँ साज समाज का जाना भी ठीक नहीं । अतः अकेले जाने के लिए गुरुजी माताजी तथा मन्त्रियों से आज्ञा माँगी । निपादनाथ रास्ता दिखाने के लिए साथ हैं । शत्रुघ्न के साथ रहते हुए भी भरतजी दो नहीं गिने जाते । लक्ष्मण ने भी दो नहीं गिना ।

समुझि मातु करतव सकुचाही । करत कुतरक कोटि मन माही ॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ ॥४॥

अर्थ माता का करतव समझकर सङ्कुचित होते हैं और मन में कुतर्क की कोटि करते हैं। रामजी लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़ किसी दूसरी जगह न चले जायें।

व्याख्या : माता के कुकृत्य से पुत्र को सङ्कोच होना स्वाभाविक है। माता ने जो कुछ किया पुत्र की कल्याण कामना के लिए ही किया। अतः माता के करतव से पृथक् होना सम्भव नहीं है। इसलिए स्वयं निपराध होते हुए भी सङ्कुचित हैं और ऐसी अवस्था में जैसे कुतर्क की कोटियाँ मन में उठती हैं वैसी ही उठ रही हैं।

भरतजी की कुतर्क की कोटि का प्रादेशमात्र कवि दिखलाते हैं। भरतजी सोचते हैं कि मेरे आने का समाचार सरकार को पहिले ही लग जायगा। क्योंकि मेरे साथ सेना है। मेरे करतव पर ध्यान करके कही यह निश्चय न कर लें कि मैं भरत का मुख न देखूँगा। इसलिए कही तीनो मूर्ति आश्रम छोड़कर दूसरी जगह न चले जायें। जहाँ हमें पता न लग सके। सामान कोई पास नहीं है जिसे हटाने में देर लगे। केवल उठकर दूसरी जगह चला जाना ही तो है।

दो मातु मते महँ मानि मोहि, जो किछु करहि सो थोर।

अथ अवगुन छमि आदरहि, समुझि आपनी ओर ॥२३३॥

अर्थ . मुझे माता के मत में मानकर जो कुछ कर बैठें वह थोड़ा है और यदि अपनी ओर समझें तो पाप और अवगुण को क्षमा करके आदर कर सकते हैं।

व्याख्या यहाँ विचार करने में दो ही पक्ष उठ सकते हैं। या तो मुझे माता की राय में समझें जैसा कुछ लोगो ने समझा था एक भरत कर सम्मत कहही। तब तो मेरा अपराध सर्वथा अक्षम्य है। फिर मुझे यह आज्ञा होना तुम मुख न दिखलाओ यहाँ से चले जाओ आदि जो कुछ कहे वह थोड़ा ही होगा। अपराध इतना गुरुतर है कि कोई दण्ड उसके मुकाबिले का नहीं है और यदि मुझे अपनी ओर समझें माता की ओर न समझें तो मातृकृत अपराध को क्षमा करके आदर भी कर सकते हैं। जैसा पुरवासियो ने कहा था अहि अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई। अथवा यदि अपने स्वरूप पर ध्यान दें तो अथ अवगुण को क्षमा करके आदर भी कर सकते हैं।

जौ परिहरहि मलिन मन जानी। जौ सनमानहि सेवकु मानी ॥

मोरे सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही ॥१॥

अर्थ . यदि मलिन मन जानकर त्याग करें या सेवक मानकर सम्मान करें। मेरे लिए तो रामजी की जूती ही शरण है। रामजी भले स्वामी हैं। दोष सब सेवक का है।

व्याख्या अब भरतजी अपना कर्तव्य निश्चय करते हैं। चाहे रामजी का उनके साथ जैसा वर्ताव हो। पर अपने लिए निश्चित मार्ग होना चाहिए। जिससे हर हालत में काम लिया जा सके। मलिन मन का सरकार त्याग करते हैं। यथा

मोहि कपट छल छिद्र न भावा । परन्तु दूसरा पक्ष यह भी है निज अपराध
रिसाहि न काळ । रहत न प्रभु चित चूक किये की । को साहिब सेवकाहि नेवाजी ।
आपु समाज साज सब साजी । इत्यादि ।

राम तो सुस्वामी हैं । उनमें दोष नहीं है । कुस्वामी पर सन्देह रहता है कि
कदाचित् कुछ दोष स्वामी का भी हो । पर जब यह निश्चित है कि सुस्वामी हैं
तब जो कुछ दोष सम्भव है वह जन का ही है । अतः चाहे परित्याग करें चाहे
सम्मान करें । भुझे उनकी जूती ही शरण है । पर जूती इस समय त्यक्त है । यथा :
राम लखन सिय विनु पाग पनही । करि मुनिवेष फिरिहि बन बनही । अतः मैं उसी
त्यक्त जूती के शरण जाऊँगा या तो उसे पहना दूँगा नहीं तो उसी की
उपासना करूँगा ।

जग जस भाजन चातक मीना । नेम पेम निज निपुन नवीना ॥

अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह शिथिल सब गाता ॥२॥

अर्थ : ससार में पपीहा और मछली ये ही यश के पान हैं । जो अपने अपूर्व
नेम और प्रेम में निपुण हैं । ऐसा मन में विचारते चले जाते हैं । सङ्कोच और प्रेम
से सब शरीर शिथिल है ।

व्याख्या : भरतजी मन में कहते हैं कि ससार में प्रेमियों में से दो ने ही
यश पाया : एक चातक ने और दूसरे मछली ने । चातक अपूर्व नेम में निपुण है ।
यथा : डोलत विपुल बिहंग बन पियत पोखरिन्ह बारि । सुजस धवल चातक नवल
तुही भुवन दस चारि । और मीन अपूर्व प्रेम में निपुण है । यथा : मकर उरग दादुर
कमठ जल जीवन जल गेह । तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह । भाव यह कि
मीन के ऐसा प्रेम तो केवल चक्रवर्तीजी निवाह पाये और किसी से न निबहा ।
यथा : बंदी अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामपद । विछुरत दीन दयाल प्रिय तनु
तून इव परिहरेउ । अब तो चातकवाला नेम निर्वाह करना है । जो सुख सम्पत्ति
राम धनश्याम से न मिले उसे स्वीकार न करना यही निश्चय है

भरतजी रास्ते चले जाते हैं और इसी प्रकार का विचार करते जाते हैं । यहाँ
भाव सन्धि है । स्नेह के साथ सङ्कोच है । रास्ते में ही स्नेह से शिथिल शरीर हो
रहा है और सरकार के सन्मुख जाने में सङ्कोच भी है । इस द्विविध मनोगति से
सारा शरीर शिथिल है ।

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी । चलत भगति बल धीरज धोरी ॥

जब समुक्षत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ॥३॥

अर्थ : माता की की हुई दुष्टता मानो पीछे हटाती है । पर धैर्य धुरीण :
भरतजी भक्ति के बल से चल रहे हैं । जब रामजी के स्वभाव को समझते हैं तब
रास्ते में जल्दी जल्दी पैर पड़ता है ।

व्याख्या : शरीर शिथिल हो रहा है । जिस पर माता की की हुई करणी

मानो पीछे फेर रही है कि कौन मुँह लेकर सामने जाऊँ । पर भरतजी धीरे धुरीण हैं । भक्ति के बल से चले जा रहे हैं । भरतजी भक्त शिरोमणि हैं । उनकी गति माता की करणी के स्मरण से तो रुकती है पर जब सरकार के स्वभाव का स्मरण करते हैं : अस सुभाउ कहूँ सुनै न देखै । केहि खगेस रघुपति सम लेखै । सुनहु सखा निज कहूँ सुभाऊ । जान भुसुंड़ि सम्भु गिरि जाऊ । जौ नर होइ चराचर द्रोही । आवइ सभय सरन तकि मोही । तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना । तब तो आशा के सञ्चार से पैर जल्दी जल्दी उठने लगता है ।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ॥

देखि भरत कर सोचु सनेह । भा निषाद तेहि समय विदेह ॥४॥

अर्थ : उस समय भरतजी की दशा वैसी हो रही है जैसी कि भौरे की जल प्रवाह में होती है । भरतजी के सोच और स्नेह को देखकर निषादराज को तो अपने शरीर की सुधि न रह गयी ।

व्याख्या : रामजी के स्वभाव के स्मरण से भरतजी की गति तीव्र हो जाती है और माता के दोष के स्मरण से एकाएक रुक जाते हैं । फिर चल पड़ते हैं । ऐसा ठहर ठहर कर वेग से चलने की उपमा गोस्वामीजी जल के भौरे से देते हैं । वह प्रवाह में वेग से चलता हुआ बार बार रुकता ही जाता है । गोस्वामीजी ने यह एक अद्भुत उपमा दी जिसे जहाँ तक मेरी जानकारी में कोई भी कवि किसी अवसर में नहीं दे सका है ।

निषादराज देखते हैं कि भरतजी कुछ सोचकर ठहर जाते हैं और फिर प्रसन्न होकर चल पड़ते हैं । इससे उनके सोच और स्नेह का अनुभव करते हुए निषादराज ऐसे मग्न हो गये कि उन्हें अपने देह की सुधि न रह गयी ।

दो. लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु ।

मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम विषादु ॥२३४॥

अर्थ : मङ्गल शकुन होने लगे । उन्हें सुनकर और गुनकर निषादराज ने कहा कि सोच मिटेगा । हर्ष होगा । परन्तु परिणाम में विषाद ही है ।

व्याख्या : यहाँ शकुन का सुनना कहते हैं । इससे मालूम होता है कि यहाँ पक्षी की बोली से शकुन निर्णय किया जा रहा है । प्रधान शकुन तो पक्षी ही हैं । पक्षी को ही शकुन कहते हैं । अन्य शुभाशुभ सूचक घटनाएँ तो गौण हैं । निषादराज शकुन ज्ञान में बड़े पण्डित थे । इनकी युद्ध यात्रा के समय जो 'छीक' हुई उसके फल निर्णय करने में सगुनियों में मतभेद हुआ तो उसका निर्णय निषादराज ने ही किया । यथा : नीक कह बूढा । पहिले पक्षी के बोलने से मालूम हुआ : मिटिहि सोच दूसरे के बोलने से पता लगा : होइहि हरष । तीसरे के बोलने से मालूम हुआ : पुनि परिनाम विषाद । अथवा पक्षी नहीं दिखायी पड़ता है । केवल शब्द सुनायी पड़ता है ।

इससे अनुमान हुआ कि हर्ष स्थायी नहीं होगा । उसी बात को निपादराज भरतजी से कह रहे हैं ।

सेवक वचन सत्य सब जाने । आश्रम निकट जाइ निअराने ॥

भरत दीख बन शैल समाजू । मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥१॥

अर्थ सेवक की सब बातों को सत्य जाना । आश्रम के सन्निकट जाकर समीप पहुँच गये । भरतजी ने वन और पर्वत के समाज को देखा । ऐसे प्रसन्न हुए जैसे भूखा सुअन्न पाकर प्रसन्न होता है ।

व्याख्या भरतजी ने सेवक के तीनों वचनों को सत्य जाना । अर्थात् सरकार का दर्शन होगा । इसलिए मिटिहि सोच कह रहा है । सरकार सम्मान करेंगे । इसलिए होइहि हरख कह रहा है । पर अवध नहीं लीटेंगे इसलिए परिणाम विपाद वह रहा है । आश्रम में नहीं पहुँचे परन्तु राम वन जिसमें आश्रम है उसके निकट पहुँच गये ।

इतने निकट पहुँचे कि वन और शैल का समाज दिखायी पड़ने लगा । सबका समाज पृथक् पृथक् होता है । सो कवि पहले वन समाज वहकर तब शैल समाज का वर्णन करेंगे । यहाँ उस समाज के देखने से भरतजी को कैसी प्रसन्नता हुई । उसी का वर्णन करते हैं । भूखे को अन्न चाहिए चाहे वह कैसा ही हो । कदन्न पाकर भी भूखा सुखी होता है । यदि उसे सुअन्न मिल जाय तो उसकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना ! उस वन शैल समाज को देखने से ही भरतजी अति प्रसन्न हैं । इस प्रसन्नता के साथ आतुरता का योग है । इसलिए भूखे के सुअन्न प्राप्ति से उपमित किया ।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी । त्रिविध ताप पीडित ग्रह मारी ॥

जाइ सुराज सुदेश सुखारी । होहि भरत गति तेहि अनुहारी ॥२॥

अर्थ ईति प्रीति से जैसे प्रजा दुखी हो, तीनों ताप से तप्त हो, मारीग्रह से पीडित हो सो सुदेश और सुराज में जाकर सुखी हो वैसी ही भरत की गति हो रही है ।

व्याख्या भरतजी केवल अपने ही दुख से दुखी नहीं हैं उन्हें माताओं और प्रजाओं का भी भारी दुख है । यथा देखि न जाहि विकल महतारी । जरहि त्रिविध जर पुर नर नारी । पहिले भरतजी के व्यक्तिगत दुख का मिटना कहकर अब प्रजावर्ग के दुख का मिटना कहते हैं । प्रजावर्ग के दुख के मिटने से भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दुख मिटा ।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूपका शलभा शुका । प्रत्यासन्नाश्च राजान पडैता ईतय स्मृता । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डी, सुग्गो का आक्रमण तथा राजाओं का सन्निकट आना ये छ इति कही गयी है । इन छटा के कारण दुर्भिक्ष पड़ता है । सो जैसे ईति आदि के डर से प्रजा 'देश छोड़कर भाग चली है उसे आधिदैविक

आधिभौतिक और आध्यात्मिक ताप भी हो, ग्रह भी उनके प्रतिकूल हो वे सुराज और सुदेश पाकर सुखी हो जाते हैं। सो अवधवासी ईति के भय से देश छोड़कर चले आ रहे हैं। यथा : मुख सुखाहि लोचन सखहि सोकु न हृदय समाइ। मनहु करन रस कण्ट कई उतरो अवध बजाइ। उन्हे आधिदैविक ताप भी है। यथा : मिलेहि भाझ बिधि बात बिगारी। तथा कोन्ह मातु मिस काल कुचाली। ईति^१ भीति जनु पाकत साली। आध्यात्मिक ताप। यथा . तन वृस मन दुख बदन मलीने। बिकल मनहु माछी मधु छीने। आधिभौतिक ताप। यथा : नगर फैल गयी घात सुतीछी। छुअत चढी जनु सब तन बीछी। ग्रहमारी भो है। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

ऐसी प्रजा को सुदेश की चाह होती है। जहाँ सुभिक्ष हो और सुराज की आवश्यकता होती है। जहाँ सुव्यवस्था हो। यदि उन्हे सुदेश और सुराज दोनों की प्राप्ति एक ही स्थल में हो तो वे सुखी हो जाते हैं। सो पुर नर नारियो के दुख की शान्ति समझकर भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दुख जाता रहा।

राम वास वन संपत्ति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥

सचिव विरागु विवेकु नरेसू। विपिन सुहावन पावन देसू ॥३॥

अर्थ . राम वास वन . वन की सम्पत्ति से ऐसा शोभित है जैसे अच्छे राजा की प्राप्ति से प्रजा सुखी होती है। विराग मन्त्री हैं विवेक राजा हैं। सुहावना वन हो पवित्र देश है।

व्याख्या पहिले राम वन का वर्णन कवि करते हैं कि वह वन वन की सम्पत्ति से शोभायमान है। अर्थात् मुनि तपस्वी के उपयोग की सामग्री से परिपूर्ण है। जैसे अच्छे राजा के होने से प्रजा सुखी हो जाती है। वन सात्त्विक प्रदेश है। यहाँ निवृत्तिमार्ग के ऋषि मुनि रहते हैं। उनके उपयुक्त सभी सामग्री यहाँ हैं।

वहाँ पर विराग मन्त्री हैं, विवेक राजा है और वन प्रदेश ही उत्तम देश है। जहाँ विवेक राजा का राज्य है। भाव यह कि ससार में प्रायेण सर्वत्र ही मोह राजा का राज्य है और काम क्रोधादि का आधिपत्य है। पर यहाँ तो विवेक राजा की विजय है। मोह राजा के राज्य में ससार दुख झल रहा है। सुख तो तभी सुलभ है जब विवेक राज्य में पदार्पण करे।

भट जम नियम सैल रजधानी। साति सुमति सुचि सुदर रानी ॥

सकल अग सपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ ॥४॥

अर्थ : यम नियमादिक योद्धा हैं। पर्वत ही राजधानी है और शान्ति तथा सुमति सुन्दर रानियाँ हैं। श्रेष्ठ राजा सब अङ्गों से परिपूर्ण है और रामजी के चरणों के आश्रित होने से चित्त में प्रसन्नता है।

१ यह छठी ईति है। करुण रस रूपी राजा का घावा अवध पर हो गया है।

व्याख्या • राजा विवेक के योद्धा पाँच यम और पाँच नियम हैं। जिस भाँति मोह राजा के काम क्रोधादि योद्धा हैं और विवेक राजा की राजधानी राम शैल है जिस भाँति मोह राजा की राजधानी इन्द्रपुर है। राजधानी उस प्रदेश को कहते हैं जहाँ स्वयं राजा का निवास हो। शैल पर मानो विवेक राजा स्वयं रहते हैं। राजा को दो पवित्र रानियाँ भी हैं एक तो शान्ति रानी है और दूसरी सुमति रानी हैं।

राजा के जितने अङ्ग सेना कोषादि हैं सबसे विवेक राजा सम्पन्न है और वे रामचरण के आश्रित हैं। अतः स्नेह में मग्न रहते हैं।

दो. जीति मोह महिपालु दल, सहित विवेक भुआलु।

करत अकटक राजु पुर, सुख संपदा सुकालु ॥२३५॥

अर्थ • विवेक राजा मोह राजा को दल सहित जीतकर निष्कण्टक राज्य कर रहे हैं और पुर में सुख सम्पत्ति और सुकाल है।

व्याख्या : इससे यह पता चलता है कि पहिले यहाँ भी मोह राजा का राज्य था। पर जब से सरकार का आगमन हुआ तब से सरकार के आश्रय से विवेक राजा की जीत हो गयी। अब वे वन और प्रदेश में अकण्टक राज्य करते हैं। वहाँ सुख सम्पदा और सुकाल बना हुआ है। भाव यह कि जिस भाँति पिण्ड में विवेक जय से आनन्द होता है उसी भाँति राम वन और शैल में आनन्द का साम्राज्य है। यथा सेवक सुमिरत नाम सुप्रीति। विनु श्रम प्रबल मोहदल जीती। फिरत स्नेह मग्न सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहि सपने।

वन प्रदेश मुनि वास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥

विपुल विचित्र विहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ वखाना ॥१॥

अर्थ : वन प्रदेश में बहुत से मुनियों के निवास स्थान हैं। वे ही मानो पुर, नगर, गाँव और पुरवा हैं। बहुत से अनेक प्रकार के पक्षी और बहुत प्रकार के मृग हैं। वे ही ऐसे प्रजा समाज हैं जिनका वखान नहीं हो सकता है।

व्याख्या उस वन प्रदेश में बहुत से मुनियों के आश्रम हैं। वे आश्रम ही मानो पुर नगर ग्राम और खेट विस्तार के तारतम्य से हैं। नगर बड़ा होता है। पुर उससे छोटा, ग्राम उससे भी छोटा होता है। खेट शब्द का प्राकृत रूप खेर है अर्थात् पुरवा। यथा : आप पाप को नगर वसावत सहि न सक्त पर खेरे।

अब उन पुर, नगर, ग्राम और खेरा के निवासी प्रजा कौन से हैं? मुनि लोग प्रजा हो नहीं सकते और न एक आश्रम में उतने मुनि ही रह सकते हैं कि उनकी उपमा नगरादि से दी जा सके। अतः कहते हैं कि उन आश्रमों में अनेक प्रकार के बहुत से पक्षी बसे हुए हैं। उनमें अनेक प्रकार के मृग भी विचरते हैं। वे ही मानो प्रजा के समाज हैं। पक्षी ऐसे सुन्दर हैं, उनकी बोली इतनी सुहावनी है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर मृग अनेक प्रकार के कलोल कर रहे हैं। उनके लिए भी ऐसी ही बात कही जा सकती है। भगवती ने कहा था : खग

मृग परिजन नगर बन । माँ कौमल्या ने कहा था : खग मृग चरण सरोरुह सेवी ।
सो उन्ही का प्रजा रूप से वर्णन हो रहा है ।

खगहा करि हरि बाघ वराहा । देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
वयरु विहाय चरहि एक संग । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥२॥

अर्थ : गेंडा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सुअर, भैंसा, बैल के साज को देखकर प्रशंसा की । वे बैर छोड़कर जहाँ तहाँ विचर रहे हैं । मानो वे ही चतुरंगिणी सेना हैं ।

व्याख्या : इस पशु समाज को जो देखता है वही प्रशंसा करता है । खगहा गेंडे को, हरि सिंह को, वाराह बनेले सुअर को, महिष भैंस और वृष बैल को कहते हैं । इन सबों में एक दूसरे से बैर है । सो स्वाभाविक बैर छोड़कर एक साथ विचर रहे हैं । जैसे चतुरंगिणी सेना विचर रही हो ।

पहिले कह आये है : सकल अग सपन्न सुराज । उन अङ्गों का वर्णन करते हुए सम्पत्ति, मन्त्री, देश, रानी, सेनापति, प्रजा, सेना का वर्णन करके अब सुराज के मङ्गल का वर्णन करते हैं ।

झरना झरहि मत्त गज गाजहि । मनहुँ निसान विविध विधि बाजहि ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥३॥

अर्थ : झरना झरते हैं । मत्त हाथी गरजते हैं । मानो अनेक प्रकार के डके बज रहे हैं । चकवा, चकोर, पपीहा, शुक, कोयल और हंस प्रसन्न मन होकर कूज रहे हैं ।

व्याख्या : जहाँ मङ्गल होता है वहाँ डके बजते हैं । वहाँ बाघ, गान और नृत्य होता है । सो यहाँ जो झरना झर रहा और मत्त हाथी गरज रहे हैं । वे ही मानो डके बज रहे हैं । ध्वनि में भेद होने से विविध विधि कहा ।

यहाँ पर छ : पक्षियों का कूजना लिखा जा रहा है । जो भिन्न ऋतुओं में बोलते हैं । पर आनन्दातिरेक से यहाँ सब बोल रहे हैं । ये ही मानो तालधारी हैं बाजे बजा रहे हैं । पुष्पवाटिका में चातक कोकिल कीर चकोरा । कुजत विहंग नटत कल मोरा कह आये हैं । यहाँ नदी के निकट होने से चक और हंस अधिक कह रहे हैं ।

अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृण सफल सफूला । सब समाजु मृदु मंगल मूला ॥४॥

अर्थ : भौंरो के झुण्ड गाते और मोर नाच रहे हैं । मानो सुराज में चारों ओर मङ्गल हो रहा है । बिटप तृण सब फल और फूल से सम्पन्न हैं । सब समाज आनन्द और मङ्गल का मूल हो रहा है ।

व्याख्या : जब तालधारी लोगो ने साज मिला लिया तब गान आरम्भ होता है । यहाँ भ्रमरगण ही गानेवाले हैं । जब गान होने लगा और बाघ बजने लगे तब उस रस की पूर्ति तो नृत्य से ही हो सकती है । अतः कहते हैं कि मोर नाच रहे हैं ।

नाचनेवाला बड़े सजधज से आता है। पक्षियों में मोर से अधिक सजधज किसी का नहीं है।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना। उनमें भी फल फूल लगे हैं। राजा राम चरन आश्रित चित चारु है। प्रजा बैर बिहाय चरहि एक सगा। पक्षी नाच गा रहे हैं। बेलि बिटप सब सफल सफूल है। इसलिए सब समाज को मङ्गल मूल कह रहे हैं।

दो. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु।

तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

अर्थ : राम शैल की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो रहा है। जैसे तपस्या का फल प्राप्त होने पर तपस्वी नियमों की समाप्ति में सुखी होता है।

व्याख्या : भरत दीख वन सैल समाजू : उपक्रम करके : राम सैल सोभा निरखि से उपसहार करते हैं। उसके देखने से सबके हृदय में आनन्द हुआ। पर भरत के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ प्रेम का आनन्द है। यथा : तदपि प्रीति के प्रीति सुहाई। मानो तपस्वी को तप फल मिल गया और जो कष्ट कर नियम उसने स्वीकार किये थे वे सब समाप्त हो गये। उस समय जैसा सुख तपस्वी को होता है वैसा सुख भरतजी को 'रामशैल शोभा निरीक्षण से हुआ। क्योंकि जहाँ रामजी होते हैं वही शोभा रहती है। भरतजी स्वयं अयोध्या की व्यवस्था देख चुके हैं। श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर विसेषि भयावनु लागा। खग मृग हय गय जाहि न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए। अतः रामजी के यहाँ होने के निश्चय से भरतजी को अत्यधिक सुख हुआ। जिस भरतलाल को भरद्वाजजी के विधि विस्मय दायक विभव का कोई प्रभाव न पड़ा उस पर राम शैल का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके दर्शन के सुख में मग्न हैं।

तब केवट ऊँचे चढि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥

नाथ देखिअहि बिटप विसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥१॥

अर्थ : तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा कि हे नाथ। ये जो बड़े बड़े पेड़ देखे जाते हैं पाकर का पेड़ है। जामुन का पेड़ है। आम और आवनूस का पेड़ है।

व्याख्या : ऊँचे पर चढ़े जाने से दूर के और नीचे के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। केवट ने ठीक अन्दाज कर लिया है। फिर भी निश्चय करने के लिए ऊँचे पर दौड़कर चढ़ गया। भरतजी को अतिप्रिय के दर्शन कराने की उत्सुकता से शीघ्रता की और भरतजी को दिग्दर्शन कराने के लिए भुजा उठाकर बोला।

बहता है कि इस वन के पेड़ों में जो बड़े बड़े पेड़ों का झुण्ड है उसे देखिये।

मृग परिजन नगर वन । मां कौमल्या ने कहा था : खग मृग चरण सरोरुह सेव
सो उन्ही का प्रजा रूप से वर्णन हो रहा है ।

खगहा करि हरि बाघ वराहा । देखि महिप वृष साजु सराहा ॥
वयरु विहाय चरहि एक संगी । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥२॥

अर्थ : गेंडा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सुअर, भैंसा, बैल के साज को देखकर प्रशंसा की । वे वैर छोड़कर जहाँ तहाँ विचर रहे हैं । मानो वे ही चतुरंगिणी सेना हैं ।

व्याख्या : इस पशु समाज को जो देखता है वही प्रशंसा करता है । खग गेंडे को, हरि सिंह को, वाराह बनेले सुअर को, महिप भैंस और वृष बैल को कह रहे हैं । इन सबों में एक दूसरे से वैर है । सो स्वाभाविक वैर छोड़कर एक साथ विचर रहे हैं । जैसे चतुरंगिणी सेना विचर रही हो ।

पहिले कह आये हैं - सकल अग सपन्न सुराऊ । उन अङ्गों का वर्णन कर हुए सम्पत्ति, मन्त्री, देश, रानी, सेनापति, प्रजा, सेना का वर्णन करके अब सुरा के मङ्गल का वर्णन करते हैं ।

झरना झरहि मत्त गज गाजहि । मनहुँ निसान विविध विधि बाजहि ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥३॥

अर्थ : झरना झरते हैं । मत्त हाथी गरजते हैं । मानो अनेक प्रकार के डके बज रहे हैं । चकवा, चकोर, पपीहा, शुक, कोयल और हंस प्रसन्न मन होकर कूज रहे हैं ।

व्याख्या : जहाँ मङ्गल होता है वहाँ डके बजते हैं । वहाँ वाद्य, गान और नृत्य होता है । सो यहाँ जो झरना झर रहा और मत्त हाथी गरज रहे हैं । वे ही मानो डके बज रहे हैं । ध्वनि में भेद होने से विविध विधि कहा ।

यहाँ पर छ : पक्षियों का कूजना लिखा जा रहा है । जो भिन्न ऋतुओं में बोलते हैं । पर आनन्दातिरेक से यहाँ सब बोल रहे हैं । ये ही मानो तालधारी हैं बाजे बजा रहे हैं । पुष्पवाटिका में चातक कोकिल कीर चकोरा । कुजत विहग नटत कल मोरा कह आये हैं । यहाँ नदी के निकट होने से चक और हंस अधिक कह रहे हैं ।

अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृण सफल सफूला । सब समाजु मृदु मंगल मूला ॥४॥

अर्थ : भौंरो के झुण्ड गाते और मोर नाच रहे हैं । मानो सुराज में चारों ओर मङ्गल हो रहा है । बिटप तृण सब फल और फूल से सम्पन्न है । सब समाज आनन्द और मङ्गल का मूल हो रहा है ।

व्याख्या : जब तालधारी लोगो ने साज मिला लिया तब गान आरम्भ होता है । यहाँ भ्रमरगण ही गानेवाले हैं । जब गान होने लगा और वाद्य बजने लगे तब उस रस की पूर्ति तो नृत्य से ही हो सकती है । अतः कहते हैं कि मोर नाच रहे हैं ।

नाचनेवाला बड़े सजधज से आता है। पक्षियों में मोर से अधिक सजधज किसी का नहीं है।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन वर बेलि बिताना। उनमें भी फल फूल लगे हैं। राजा राम चरन आश्रित चित चारु हैं। प्रजा बैर बिहाय चरहि एक संग। पक्षी नाच गा रहे हैं। बेलि बिटप सब सफल सफूल हैं। इसलिए सब समाज को मङ्गल मूल कह रहे हैं।

दो. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु।

तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

अर्थ : राम शैल की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो रहा है। जैसे तपस्या का फल प्राप्त होने पर तपस्वी नियमों की समाप्ति में सुखी होता है।

व्याख्या : भरत दीख वन सैल समाजू : उपक्रम करके : राम सैल सोभा निरखि से उपसंहार करते हैं। उसके देखने से सबके हृदय में आनन्द हुआ। पर भरत के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ प्रेम का आनन्द है। यथा : तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मानो तपस्वी को तप फल मिल गया और जो कष्ट कर नियम उसने स्वीकार किये थे वे सब समाप्त हो गये। उस समय जैसा सुख तपस्वी को होता है वैसा सुख भरतजी को रामशैल शोभा निरीक्षण से हुआ। क्योंकि जहाँ रामजी होते हैं वहीं शोभा रहती है। भरतजी स्वयं अयोध्या की व्यवस्था देख चुके हैं। श्रीहत सर सरिता वन वागा। नगर विसेषि भयावनु लागा। खग मृग हय गय जाहि न जोए। राम वियोग कुरोग विगोए। अतः रामजी के यहाँ होने के निश्चय से भरतजी को अत्यधिक सुख हुआ। जिस भरतलाल को भरद्वाजजी के विधि विस्मय दायक विभव का कोई प्रभाव न पड़ा उस पर राम शैल का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके दर्शन के सुख में मग्न हैं।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥

नाथ देखिअहि बिटप विसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥१॥

अर्थ : तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा कि हे नाथ ! ये जो बड़े बड़े पेड़ देखे जाते हैं पाकर का पेड़ है। जामुन का पेड़ है। आम और आवनूस का पेड़ है।

व्याख्या : ऊँचे पर चढ़े जाने से दूर के और नीचे के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। केवट ने ठीक अन्दाज कर लिया है। फिर भी निश्चय करने के लिए ऊँचे पर दौड़कर चढ़ गया। भरतजी को अतिप्रिय के दर्शन कराने की उत्सुकता से शीघ्रता को और भरतजी को दिग्दर्शन कराने के लिए भुजा उठाकर बोला।

कहता है कि इस वन के पेड़ों में जो बड़े बड़े पेड़ों का झुण्ड है उसे देखिये।

उसमे पाकर जामुन रसाल और तमाल के पेड़ हैं। भाव यह कि इतने निकट पहुँच गये हैं कि वृक्षों की पहिचान हो रही है।

जिन्ह तरुवरन्ह मध्य वटु सोहा । मजु विसालु देखि मनु मोहा ॥
नील सघन पल्लव फल लाला । अविचल छाँह सुखद सब काला ॥२॥

अर्थ उन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में वट का वृक्ष शोभित हो रहा है। वह बड़ा सुन्दर है। विशाल है। उसके देखने से मनमोहित हो जाता है। नीले घने पत्ते हैं और लाल फल है। इसकी छाया घनी और सब काल में सुख देनेवाली है।

व्याख्या अब पाँचवाँ पेड़ दिखला रहे हैं जो उपर्युक्त चारों वृक्षों के बीच में है। वह वट का वृक्ष है। वट के पत्ते दूर से देखने से नीले रङ्ग के मालूम होते हैं। उन पत्तों में लाल फल बड़ी शाना दे रहे हैं। वटवृक्ष सभी वृक्षों में बड़ा होता है। इसका फैलाव बहुत विस्तृत होता है। घने पत्तों के कारण धूप छनकर भी नहीं आ सकती इससे उसकी छाँह भी घनी होती है। जाड़े में गरम होती है। बरसात में भी यह जल को बहुत रोकता है। अतः ये सब गुण वट को छोड़कर अन्य वृक्षों में नहीं पाये जाते।

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी । विरची विधि सँकेलि सुषमासी ॥
ए तरु सरित समीप गोसाईं । रघुवर परनकुटी जहँ छाई ॥३॥

अर्थ मानो ब्रह्मदेव ने अन्धकार और अरुणिमा की राशि को इकट्ठा करके परम शोभा सी रच दी है। ये पेड़ हे गोसाईं! नदी के तीर पर हैं। जहाँ रामजी ने पर्णकुटी बना रखी है।

व्याख्या अब पहिले जो कह आये हैं कि देखि मन मोहा उसी का कारण कहते हैं कि वटवृक्ष में मानो परम शोभा सी छापी हुई है। ऐसा जान पड़ता है कि अन्धकार की राशि और अरुण राशि को मिलाकर इसे ब्रह्मदेव ने बनाया है। अन्धकार और अरुणिमा को लेकर कुछ रचना करना मनुष्य द्वारा साध्य नहीं है। इसलिए कहते हैं कि मानो ब्रह्मदेव ने बना रक्खा है। नील सघन पल्लव मानो अन्धकार है और लाल लाल फूल मानो अरुणिमा है।

ये पेड़ मन्दाकिनी के तट पर हैं। सरकारी पर्णकुटी के आगे हैं। केवट कहता है कि मैंने कहा था जेहि बन जाइ रहव रघुराई। पर्णकुटी में करव सुहाई। सो मुझ यमुना पार से हो लौटा दिया है। कला विधान से मालूम होता है कि स्वयं ही बनाया है।

तुलसी तरुवर विविध सुहाए । कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए ॥
वट छायाँ वेदिका बनाई । सिय निज पानि सरोज सुहाई ॥४॥

अर्थ अनेक प्रकार के तुलसी के सुन्दर सुन्दर पेड़ कहीं कहीं सीताजी ने

कही कही लक्ष्मणजी ने लगा रक्खा है। वट की छाया में वेदिका : चबूतरा बना हुआ है। उसे सीताजी ने अपने कर कमलों से बनाया है।

व्याख्या : निपादराज सब बातों को खबर दिन रात लिया करते थे। छोटी सी छोटी बातों का उन्हें पता है। कहते हैं कि बहुत से तुलसी के पेड़ वहाँ लगे हुए हैं। उनमें से किसी किसी को लक्ष्मणजी किसी किसी को सीताजी ने लगा रक्खा है। भाव यह कि तुलसी बहुत पवित्र है और रामजी को प्रिय है। यथा : रामहि प्रिय पावन तुलसी सी। पूजा के भी बड़ी उपयोगी है। स्वास्थ्य के लिए भी परम हितकर है। अतः कोई घर तुलसी से रहित न होना चाहिए।

वट की छाया में जो वेदिका बनी है उसे सीताजी ने अपने हाथ से बनाया है। भाव यह : मृदु मूर्ति सुकुमार सुमाऊ होने पर भी लक्ष्मणजी तथा परम सुकुमारी जनक दुलारी सीताजी गृहस्थों के सब कार्य सानन्द अपने हाथों कर रही हैं।

दो. जहाँ बैठि मुनिगन सहित, नित सिय रामु सुजान ।

सुनहि कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥२३७॥

अर्थ : जहाँ मुनि समाज के साथ बैठकर मुजान सीता रामजी कथा इतिहास शास्त्र वेद और पुराण सुना करते हैं।

व्याख्या : वह वेदिका भी छोटी सी नहीं है जिसे सीताजी ने बनाया है। उस पर मुनियों की सभा लगती है। सीताजी और रामजी बड़े सुजान हैं। कथा सुनने के बड़े प्रेमी हैं। सब जानने पर भी बार बार सुनते हैं। यथा : वेद पुराण वसिष्ठ वसुधैव कुटुम्बकम्। सुनहि राम जद्यपि सब जानहि। भाव यह कि इन ग्रन्थों का श्रवण महापुण्य जनक है। कल्याणकांक्षी को इनका श्रवण नित्य करना चाहिए। मुनिगण मिलन वितेय वन सर्वाह भक्ति हित मोर : का साफल्य दिखला रहे हैं। वचन से सरकार श्रवण के बड़े रसिक हैं। यथा : वेद पुराण सुनहि मन लाई। आपु कहै अनुजन्ह समुझाई। काष्ठ जिह्वा स्वामीजी कहते हैं : श्रवणहि सब भावन की जरिहै। बिना सुने कौन कैसे जानिहै बिनु जाने कौन का करिहै।

सखा वचन सुनि विटप निहारी। उमगे भरत विलोचन वारी ॥

करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥१॥

अर्थ : सखा का वचन सुनकर पेड़ों की देखा तो भरतजी के आँखों में जल उमग चला। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उस प्रेम को बहते हुए सरस्वती सङ्गुचित होती है।

व्याख्या : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम। राम सैल की सोभा देखने से ही भरत के हृदय में अत्यन्त प्रेम उमड़ा था। तब से निपादराज ने मुजा उठाकर दिखलाया कि इस वट विटप को देखिये। जिसके नीचे मुनि समा में सरकार कथा सुनते हैं। सखा के इस वचन को सुनकर विटप की देखा तो

प्रेम और अधिक समझा आँखों में जल उमग आया। सरकार को अति निकट समझकर वही से प्रणाम करते चले। जिस भाँति मन्दिर का शिखर दर्शन करते ही परम भक्त लोग साष्टाङ्ग करते चलते हैं। पहिले ही कहा था : सिर भर जावे उचित अस मोरा। सो यही सिर के बल चलना है। उतनी दूर से समाज के साथ इस भाँति चलने में बड़ी बाधा थी। पर यहाँ तो निकट भी पहुँच गये और समाज भी साथ नहीं है। अतः साष्टाङ्ग प्रणाम करते चले।

यहाँ प्रीति के वर्णन का प्रसङ्ग आगया। कवियों को शारदा का भरोसा रहता है। उन्हीं की कृपा से वर्णन करते हैं। यथा : भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत घाई। सो स्वयं सरस्वती को प्रीति के वर्णन में सङ्कोच है। क्योंकि उस प्रेम तक शारदा की भी गति नहीं है। वर्णन क्या करे ?

हरखहि निरखि रामपद अंका। मानहु पारस पायेउ रंका ॥

रज सिर धरि हियं नयनन्हि लावहि। रघुवर मिलन सरिस सुख पावहि ॥२॥

अर्थ : रामजी के चरणों के चिह्न देखकर ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे दरिद्र को पारस मिल गया हो। धूलि को सिर पर धरकर हृदय और आँखों में लगाते हैं। रामजी से मिलने के बराबर सुख पाते हैं।

व्याख्या : यहाँ तक सरकार बराबर आते जाते हैं। दण्डवत् प्रणाम करते समय : ध्वज कुलिश अंकुश कज्ज के चिह्न विस्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं। रामपद अङ्क पारस है। इसी से अभीष्ट सिद्धि होती है। रामजी मिलते हैं। पारस स्वयं सोना नहीं है। पत्थर है। पर सोना बनाता है। इसलिए उसका आदर सोना से भी अधिक है। गीधराज को दर्शन का बड़ी आति रही। अतः उन्होंने पद अङ्क का ही ध्यान किया। यथा : सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा। अति दरिद्र को सोना की बड़ी चाह है। इसलिए पारस पाने पर उसकी प्रमन्नता का अन्त नहीं है। इसी भाँति चरण चिह्न की प्राप्ति से भरतजी कृतकृत्य हैं।

उस अङ्क के रज को सिर पर धारण करते हैं। प्रिय वस्तु के लिए शरीर में तोन ही स्थान है। सिर हृदय और नयन। अतः उस धूलि को सिर पर रखवा। जो उँगली लगी रह गयी उसे हृदय में लगाया। फिर भी सूक्ष्म अश, लगा रह गया उसे आँखों में लगा रहे हैं। रामजी मिलते तो आँखों से देखते हृदय से लगाते। सिर से प्रणाम करते। यहाँ भी तीनों अङ्गों को इसी भाँति सुख मिल रहा है। इसलिए कहते हैं : रघुवर मिलन सरिस सुख पावहि।

देखि भरत गति अकथ अतीर्वा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवां ॥

सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर, बरषहि फूला ॥३॥

अर्थ : भरत की अत्यन्त अकथनीय गति देखकर पशु पक्षी जड़ जीव प्रेम में मग्न हो गये। सखा तो प्रेम के विवश होने के कारण रास्ता भूल गया। तब देवताओं ने रास्ता बतलाकर फूल बरसाये।

व्याख्या • भरत दसा तेहि समय जस तस कहि सकहि न सेपु । कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अह मम मलिन जनेपु । मन्दाकिनी के उस पार से ही भरतजी की अकथ दशा थी । इस समय तो अतीव अकथ है । इसका प्रभाव कोल किरात को कौन कहे जड जीव पशु पक्षी पर भी पडा । वे भी प्रेममग्न हो गये ।

सखा निषादराज रास्ता दिखाने लिए साथ थे । पेड़ों को पहिचानते ही ऊँचे पर चढ़े । भलीभाँति मार्ग का निर्णय कर लिया । पर भरतजी का प्रेम देखकर वे भी ऐसे प्रेममग्न हुए कि उन्हें रास्ता भूल गया । बेरास्ते चल पड़े । देवताओं को सेवा करने का अवसर मिल गया । उन लोगों ने सुन्दर रास्ता बतलाया और ऐसी प्रेमावस्था में भरतजी के पूजन की महा महिमा समझकर फूल बरसाया ।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ॥

होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ॥४॥

अर्थ : देखकर सिद्ध और साधक भी अनुराग में आगये । स्वाभाविक स्नेह की सराहना करने लगे । इस भूतल पर यदि भरतजी का अस्तित्व न होता तो जड को चेतन और चेतन को जड कौन करता ?

व्याख्या • भरत के प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी आदि निम्न कोटि के जीवों तक पडा और सिद्ध साधक ऐसे उच्चकोटि के जीवों पर भी पडा । विराग के बानावाले सिद्ध साधक भी अनुराग में आगये क्योंकि विरागी जिसके अनुरागी होते हैं यथा : जेहि लागि विरागी अति अनुरागी उन्ही के ये भी अनुरागी हैं । अतः स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे । वैधी भक्ति ऐसी हो नहीं सकती । यह तो स्वाभाविकी भक्ति है ।

प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह सामर्थ्य भरत के ही प्रेम में है जिसके प्रभाव से जड तो द्रवीभूत हो जायें उनमें चेतन के धर्म दृष्टिगोचर होने लगे और चेतन स्तब्ध हो जायें उनमें जड के धर्म लखायी पडने लगे । भाव यह कि भरत के कारण जगत् का बड़ा भारी उपकार हुआ और साधुओं के लिए तो आदर्श खडा हो गया । यथा :

दो प्रेमु अमिअ मदरु विरहु, भरतु पयोधि गंभीर ।

मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिधु रघुवीर ॥२३८॥

अर्थ : प्रेमरूपी अमृत को विरह रूपी मन्दर से भरत रूपी अथाह समुद्र को मथकर कृपा के समुद्र रामजी ने देवता रूपी साधु के लिए प्रकट किया ।

व्याख्या : भरत गम्भीर पयोधि हैं । यथा • कबहुँ कि कांजी सीकरन्हि छीर सिधु बिनसाइ । पयोधि का मन्यन तो मन्दर से हुआ । पर भरत रूपी गम्भीर पयोधि का मन्यन तो उससे नहीं हो सकता था । इसलिए उनके मन्यन के लिए विरह ही मन्दर हुआ । पयोधि को तो सुरासुर ने मन्यन किया था । परन्तु इस मन्दर के सञ्चालन की शक्ति तो उनमें भी नहीं । अतः सरकार ने स्वयं अपने विरह से

मन्यन किया । भरतजी विचलित हो उठे । भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम
वन गौन । उस पयोधि का मन्यन तो देवताओं के हित के लिए हुआ । पर भरत
रूपी पयोधिका मन्यन साधुओं के लिए हुआ । क्योंकि मन्यन से प्रेमामृत प्रकट हुआ
जिसके रसास्वादन करनेवाले साधु हैं । इतना बड़ा कष्ट साधुओं के हित के लिए
उठाया । अतः कृपासिन्धु कहते हैं ।

सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लखन सघन वन ओटा ॥

भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन । सकल सुमंगल सदन सुहावन ॥१॥

अर्थ : सखा सहित मनोहर जोड़ी को घने वन के आड़ के कारण लक्ष्मणजी
ने नहीं लखा । भरतजी ने प्रभु के पावन आश्रम को देखा । जो सब सुमङ्गल का
सुन्दर घर था ।

व्याख्या : भरत शत्रुघ्न की जोड़ी मनोहर है । यथा : सखि जस रामलखन
कर जोटा । तैसइ भूप संग दुइ ढोटा । और सखा के संग हैं । अतः मिलने की बड़ी
उत्कण्ठा होनी चाहिए । परन्तु लक्ष्मणजी ने नहीं लखा । लक्ष्मणजी सरकार का
पहरा दिया करते हैं । बड़े सावधान रहते हैं । यथा : कछुक दूरि सजि वान
सरासन । जागन लगे बैठि वीरासन । परन्तु बीच में सघन वन था । सघन वन में से
बाहर की वस्तु दिखायी पड़ती है । परन्तु बाहर से सघन वन के भीतर कुछ भी नहीं
दिखायी पड़ता । अतः सावधान होने पर भी लक्ष्मणजी लख न सके ।

परन्तु भरतजी ने प्रभु के आश्रम को देखा जो कि पवित्र भी था । सुमङ्गल
भवन भी था और सुन्दर भी था । पवित्र वस्तु इष्ट प्रापक नहीं होता और यदि दोनो
बातें हों भी तो वह सुन्दर नहीं होती । प्रभु के आश्रम में तीनों बातें हैं ।

करत प्रवेश मिटे दुख दावा । जनु जोगी परमारथु पावा ॥

देखे भरत लखन प्रभु आगें । पूछे बचन कहत अनुरागें ॥२॥

अर्थ : प्रवेश करते ही दुःख दावानल मिट गया । मानो योगी को परमार्थ की
प्राप्ति हुई । भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी सरकार के सामने हैं । पूछने पर अनुराग
में पगे हुए कुछ कह रहे हैं ।

व्याख्या : भरतजी के हृदय में दुःख का दावानल लगा हुआ है । वह उस
आश्रम में प्रवेश करते ही मिट गया । यथा : एहि दुख दाह दहै दिन छाती । भूख
न वासर नीद न राती । इससे उस आश्रम का सुमङ्गल सदन होना दिखलाया ।
दुःखदाव भी मिटा और परम सुख की प्राप्ति हुई । दोषापनयन कहकर गुणाधान
कहते हैं कि मानो योगी ने परमतत्त्व पा लिया । यथा : पावा परमतत्त्व जनु योगी ।
अमृत लहेउ जनु संतत रोगी । भावार्थ यह कि भरतजी मानो कृतकृत्य हो गये । यह
वही समय है । जब सरकार पूछ रहे हैं कि भरतजी कहाँ तक आगये हैं । तुमने पेड़ पर
चढ़कर क्या क्या देखा ? और लक्ष्मणजी उत्तर दे रहे हैं । प्रसंगप्राप्त बात तो यही
है । वाल्मीकीय में लक्ष्मणजी का पेड़ पर चढ़ना और भरतजी की सेना का अवलोकन

लिखा है। ग्रन्थकार कुछ स्पष्ट लिखते नहीं। अतः अनुमान यही होता है कि लक्ष्मणजी के क्रोध की शान्ति के बाद सरकार उसी विषय में कुछ पूछ रहे हैं।

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे। तून् कसे कर सर धनु काँधे ॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू ॥३॥

अर्थ सिर पर जटा बाँधे हुए हैं और कमर में बल्कल बाँधा हुआ है। तरकस कसे हुए हैं। हाथ में बाण और कन्धे पर धनुष है। वेदी के ऊपर मुनि और साधुओं का समाज है। सीताजी के सहित रामजी सुशोभित हैं।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने वीररस के आवेश में युद्ध की तैयारी की थी अभी तक उसी वेष में हैं। यथा बाँधि जटा सिर कटि कसि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा। भेद इतना ही है कि उस समय सजा हुआ धनुष था। इस समय कन्धे पर लटक रहा है। लक्ष्मणजी वेदी के नीचे हैं। यह वही वेदी है जिसके बारे में निषादराज ने कहा था बट छाया वेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सोहाई। जहाँ बैठि मुनि गन सहित नित सिय राम सुजान। सुनिहि कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान। सा सरकार भी बैठे हैं सीताजी भी बैठी हैं। मुनि समाज भी जुट गया है। सरकार का दरबार लगा हुआ है। इस मुनि मण्डली में राम जानकी की बड़ी शोभा है। क्योंकि सरकार मुनिवेष में हैं।

बलकल वसन जटिल तनु स्यामा। जिमि मुनिवेष कीन्ह रति कामा ॥
कर 'कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥४॥

अर्थ पेड़ों के छाल का कपड़ा है। शरीर श्याम है। मानो काम और रति ने मुनि का वेष बना रक्खा है। करकमलो से धनुष बाण फेरते हैं और सहासावलोकन से जी की जलन का हरण कर रहे हैं।

व्याख्या पीतरङ्ग के बल्कल धारण करने से श्याम शरीर सुभास्य सुहावन की बड़ी शोभा हो रही है। सरकार का रङ्ग श्याम है। जगदम्बा का वर्ण गौर है। सौन्दर्य की पराकाष्ठा रति और काम में ही माना गया है। अतः कवि उपमा देते हैं कि मानो स्वयं रति और काम ने ही मुनि का वेष धारण कर रक्खा है। रति का वर्ण गौर और काम का श्याम है।

सरकार वीरोचित स्वभावानुकूल अस्त्र शस्त्र से सदा सावधान रहते हैं। उसे सुधारा करते हैं। अभ्यास के लिए फेरा करते हैं। सो उस समय धनुष बाण फेर रहे हैं और हँसकर देख रहे हैं। उस सहासावलोकन से मानो जिय की जलन का हरण कर रहे हैं। भरतजी ने कहा था देखे बिनु रघुनाथ पद जिय के जरनि न जाइ। सो मानो उसी के मिटाने के लिए हँसकर देख रहे हैं।

दो लसत मजु मुनि मडली, मध्य सीय रघुचदु ।

ग्यान सभां जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानन्द ॥२३९॥

अर्थ . सुन्दर मुनिमण्डली के बीच में रामचन्द्र सीताजी के साथ विराजमान हैं । जैसे शरीर धारण किये हुए ज्ञान की सभा में भक्ति और सच्चिदानन्द विराजमान हो ।

व्याख्या . ज्ञान प्राचुर्य के कारण मुनि मण्डली की उपमा ज्ञानसभा से दी गयी । अर्थात् साक्षात् विवेक विराग शम दम मानो मूर्तिमान बैठे हैं और ज्ञान की शोभा बिना भक्ति के होती नहीं । यथा सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जल जानू । जोग कुजोग ग्यान अग्यानू । जहँ नहि राम प्रेम परधानू । सो सच्चिदानन्द राम है । यथा राम सच्चिदानन्द दिनेसा । और भक्ति उनकी प्रिया हैं । यथा पुनि रघुबीरहि भगति पियारी । अत सीय रघुचद की उपमा भक्ति सच्चिदानन्द से दी गयी । वे भी शरीर धारण किये हुए विराजमान हैं ।

सानुज सखा समेत मगन मन । विसरे हरष शोक सुख दुख गन ॥

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई । भूतल परे लकुट की नाई ॥१॥

अर्थ भरतजी भाई और सखा सहित मगन मन हो गये । हर्ष शोक सुख दुख सब भूल गये । हे नाथ ! रक्षा करो । हे गोसाई ! रक्षा करो ऐसा कहकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर गये ।

व्याख्या भरतजी शत्रुघ्न और निपादराज सबका मन मग्न हो गया । अर्थात् अपना कार्य करने में असमर्थ हो गया । अतः हर्ष शोक सुख दुख का स्मरण न रह गया । अनुभूतविषयासम्प्रमोष स्मृति । सो स्मृति नहीं रह गयी । पहिले हर्ष हुआ था । यथा हरषहि निरखि रामपद अका । सुख यथा रघुवर मिलन सरिस सुख पावहि । दुख और शोक तो पहिले ही मिट गया था । यथा करत प्रवेस मिटे दुख दावा । जनु जोगी परमारथ पावा । इस समय तो स्मरण भी नहीं रह गया कि कभी शोक दुखादि थे ।

भूयोऽर्थ में दो बार पाहि कहा । यथा त्राहि त्राहि आरत हरन । अथवा प्रभु पितु वचन मोह बस बेली । आएउ इहाँ समाज सकेली । अतः दोनों अपराध की क्षमा के लिए दो बार पाहि कहा । भरतजी दुर्बल हो रहे हैं । अतः लकुटी की नाई भूमि पर गिरना कहा । मनु शतरूपा हृष्टपुष्ट थे । अतः उनके लिए लिखा परे दड इव गहि पद पानी ।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने । करत प्रनामु भरत जियँ जाने ॥

बधु सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिव सेवा बस जोरा ॥२॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने प्रेम सहित वचन पहिचाने और ऐसा जी में जाना कि

भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। इधर तो भाई का सरस प्रेम और उधर स्वामी की सेवा की प्रबलता।

व्याख्या : भरतजी के सप्रेम वचन को लक्ष्मण ने पहिचाना और किसी ने नहीं। क्योंकि सरकार की सेवा में सावधान है। इतना ही नहीं यह भी जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। भाई के सरस प्रेम ने इस ओर मन को खँचा : दौड़कर भाई से लिपट जाने को जी चाहा और उधर सरकार पूछते थे। लखनलाल उत्तर दे रहे थे। अतः स्वामी की सेवा में लगे थे। यथा : देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूछे वचन कहत अनुरागे। गोस्वामीजी दोनों ओर इत लिखते हैं। यथा : इत पितु वच इत बंधु सकोचू।

मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई। सुकवि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खँच खेलारू ॥३॥

अर्थ : न मिलते बनता है और न छोड़ते ही बनता है। सुकवि लक्ष्मण के चित्त की गति का वर्णन करता है। सेवा पर ही भार रख छोड़ा। जैसे पतङ्ग उड़ाने-वाला चढ़ी हुई पतङ्ग को खींचता हो।

व्याख्या : सेवा में रहने से मिलि न जाइ और भाई के सरस प्रेम के खँच से मन उस ओर से इधर भी नहीं आता। इसलिए कहते हैं : नहि गुदरत बनई। छोड़ते भी नहीं बनता। लखनलाल दोनों ओर की खँचतान में पड़ गये। इस समय लखनलाल के मन की गति का वर्णन करना सुकवि का काम है सो सुकवि कहता है।

चङ्ग सीधे ऊपर नहीं जाती हवा के रुख पर जाती है। यहाँ चङ्ग उपमान है। मन उपमेय है। मन भरतजी की ओर खिंचा। इसी को चङ्ग का चढ़ना कहा। लक्ष्मणजी की उपमा खेलाड़ी : पतङ्गबाज से है सो खेलाड़ी ने पतङ्ग को हाथ से जाने न दिया। परेते पर बोझा दिया। यहाँ सेवा परेता है। उसी में लखनलाल की मनोवृत्ति रूप नख लिपटा हुआ है।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रणाम करत रघुनाथ ॥
उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहँ पट कहँ निपंग धनु तीरा ॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण ने प्रेम सहित पृथ्वी पर सिर नवाकर कहा कि हे रघुनाथ ! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। रामचन्द्र इस बात को सुनते ही प्रेम से अधीर हो उठे। कपड़ा कही है। निपंग कही है। धनुष कही है और तीर कही है।

व्याख्या : बात करते करते प्रणाम का भाव यही कि अत्यन्त आवश्यकता बात इस बीच में आन पड़ी। यदि सादा प्रणाम होता तो बात के सिलसिले में ही समझा जाता। अतः लक्ष्मणजी ने पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। भरतजी ने नाथ कहकर पाहि कहा था। अतः लक्ष्मणजी रघुनाथ सम्बोधन करके कहते हैं कि आप रघुकुल के नाथ हैं। रघुकुल के मुख्य भरत प्रणाम करते हैं।

लक्ष्मणजी का वचन सुनते ही सरवार उठे। उठते ही सबने देखा तीर की

भाँति भरत के पास पहुँचते कोई देख न पाया । अतः गोसाईंजी ने सरकार का चलना नहीं लिखा । उठने में अधीरता दिखलाते हैं । खबर नहीं कि उत्तरोय कहाँ गिरा । हाथ से धनु सायक फेर रहे थे सो धनुष कहाँ गिरा । निपट्ट और तोर कहाँ गिरे इसका ध्यान न रहा । रामजी को अधीर करनेवाला केवल प्रेम है ।

दो. वरवस लिए उठाइ उर, लाये कृपानिधान ।

भरत राम की मिलन लखि, विसरे सर्वहि अपान ॥२४०॥

अर्थ : कृपा निधान रामचन्द्र ने भरत को जोर से उठाकर छाती से लगाया । भरत और रामजी के मिलने को देखकर सब अपनी सुधि भूल गये ।

व्याख्या : प्रेम में जो मग्न होता है उसे उठना अच्छा नहीं लगता । यथा : प्रेम मग्न तेहि उठव न भावा । अतः कहते हैं कि बल पूर्वक सरकार ने उठा लिया । स्वयं प्रेम में अधीर है । इसलिए हृदय से लगा लिया । भरतजी ने यह भी अनुमान किया था : जो सनमानहि सेवक मानी । सो हृदय से लगाकर सम्मान किया । अतः प्रभु को कृपानिधान कह रहे हैं । सो मिलते समय ऐसी प्रीति बढ़ी कि देखनेवाले ऐसे मग्न हुए कि उन्हें अपनी सुधि न रही ।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कविकुल अगम करम मन बानी ॥

परम प्रेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति विसराई ॥१॥

अर्थ : मिलने का प्रेम कैसे वर्णन किया जाय । क्योंकि कवियों के लिए मनसा वाचा कर्मणा अगम है । मन बुद्धि चित्त अहन्ता को भूलकर दोनों भाई परम प्रेम से परिपूर्ण हो रहे हैं ।

व्याख्या . रामजी की प्रीति भरत के प्रति जैसी थी उसे वर्णन भी किया यथा : रामहि बधु सोच दिन राती । अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती था । भरत की प्रीति रामजी के प्रति जैसी थी सो भी कहा । यथा : राम चरन पकज मन बासू । लुबुध मधुप इव तजै न पासू । परन्तु कवि कहते हैं कि मिलने की प्रीति कैसे बखानी जा सकती है जब कि मार्ग में चलने की प्रीति ही कविकुल के लिए अगम थी । यथा : कविहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेपु । वहाँ तो अगमता की उपमा दी थी । पर यहाँ तो सीधे कह रहे हैं कि मनसा वाचा कर्मणा अगम है ।

परम प्रेम में दोनों भाई ऐसे डूबाडूब है कि अन्तःकरण चतुष्टय का पता नहीं । प्रेम समाधि लग गयी । दर्शन करने से ही भरतजा को हर्ष शोक सुख दुःख गण भूल गया था । इस समय हर्ष शोक सुख दुःख गण के अनुभव के जो कारण है : मन बुद्धि और चित्त उनकी भी विस्मृति हो गयी । भाव यह कि स्वयं मिलनेवालों को ही अपनी दशा का पता नहीं तो दूसरे कैसे जानें । मन में प्रेम के भर जाने से उसकी गति रुद्ध हो गयी । यदा : प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ।

कहुहु सुप्रेम प्रगट को करई । केहि छायाँ कवि मति अनुसरई ॥

कविहि अरथ आखर बलु साँचा । अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा ॥२॥

। अर्थ : कहिये तो उस प्रेम को कौन प्रकट करे । किस छाया का कवि की मति अनुसरण करे । कवि को तो अक्षर और अर्थ का सच्चा बल होता है । जैसे नट ताल की गति के अनुसार नाचता है ।

व्याख्या . जिस प्रेम में मन बुद्धि चित्त अहन्ता का विस्मरण हो गया वह कैसे प्रकट किया जा सकता है ? अन्तःकरण ही अन्तः के प्रेम को प्रकट करते हैं । अन्तःकरण की गति की छाया का अनुसरण करके ही कवि वर्णन करते हैं । यहाँ अन्तःकरण में गति ही नहीं । तब किस छाया का कवि अनुसरण करे । कवि को अक्षर और अर्थ का सच्चा बल है । शब्द और अर्थ ही काव्य का शरीर है । वह अक्षर और अर्थ का ऐसा प्रयोग करता है कि उसे सरस्वती का नृत्य कहा जाता है । कुछ भाव अक्षर के प्रयोग से ही प्रकट हो जाते हैं । कुछ अर्थ के बल से प्रकट होते हैं । परन्तु वह तभी सम्भव है जब मन बुद्धि चित्त अहङ्कार में गति हो । बिना गति के ताल कैसे दिया जायगा । ताल कालक्रिया मानम् और बिना ताल के नाचनेवाला कैसे नृत्य करे । इस भाँति कविकुल के लिए कर्म मन वाणी से उस प्रीति को अगम बतलाया ।

अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मनु विधि हरिहर को ॥
सो मैं कुमति कही केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥३॥

अर्थ भरत और रामजी का स्नेह दुर्गम है । जहाँ ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का भी मन नहीं जाता । उस प्रेम को मुझ सा कुबुद्धि कैसे कह सकता है । क्या भेंड की ताँत से अच्छा राग बज सकता है ।

व्याख्या . अब मन से अगम कह रहे हैं कि विधि हरिहर के मन के लिए अगम है । कवि तो मनुष्य है । उसकी क्या गिनती है । अहङ्कार शिव बुद्धि अज मनराशि चित्त महान । यहाँ मन बुद्धि चित्त अहमिति का ही विस्मरण है और विधि हरिहर उन्हीं के अधिष्ठाता हैं । अतः उनकी गति नहीं है ।

विधि हरिहर सुमतियों के शिरोमणि हैं और मैं तो कुमति हूँ । जब ऐसी की पहुँच नहीं तो मेरी पहुँच कहाँ तक हो सकती है । भेंड की ताँत आँत के नसों से सुराग नहीं बज सकता । सारङ्गी आदि में बूढ़ी भँस आदि की आँत की नस का प्रयोग होता है तब अच्छा राग बजता है । भेंड की आँत छोटी होती है और उसमें लचक नहीं होती । अर्थात् मैं कुमति होकर उसे कैसे कह सकता हूँ । इस भाँति वाणी से अगम कहा । सङ्गीत में तीन की आवश्यकता होती है । गान ताल और नृत्य की । इस भाँति कवित्व में भी तीन की आवश्यकता होती है । शिक्षा जानकारी और शक्ति की । यहाँ विषम अगम्य शक्ति दुर्बल और कुमति गाँडर ताँती है । सुमति वृद्धा भँसे की ताँती है । गाँडर ताँती से सुराग ही नहीं बजता और जिस गान के ताल का थाह नहीं वह गाँडर ताँती से कैसे बजेगा । गाँडर भेंड को कहते हैं । इसीलिए उसके चरवाहे को गँडेरिया कहा जाता है ।

मिलनि बिलोकि भरत रघुवर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे । बरपि प्रसून प्रसंसन लागे ॥४॥

अर्थ : भरत और रघुवर का मिलन देखकर देवताओं की तो डर से छाती घड़कने लगी । जब बृहस्पतिजी ने समझाया तब उनकी जड़ता गयी । फूलों की वर्षा करके प्रशंसा करने लगे ।

व्याख्या : इतने बड़े प्रेम को देखकर देवताओं का कलेजा हिलने लगा कि यह तो वही बात हुई जिसको हमलोग डरते थे । राम सँकोची प्रेमबस भरत सुप्रेम पयोधि । वनी बात बिगरेन चहति करिअ जतनु जल सोधि । भरतजी निश्चय लौटा ले जावेंगे और रामजी लौट जायेंगे । भरत का अनुरोध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता । हम कहते रहे : करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई । पर गुरुजी ने नहीं माना । अब तो भेंट हो गयी । अब क्या उपाय है ?

गुरुजी ने समझाया कि रामजी के अनुरोध को भरत ही कैसे टालेंगे । इस समय भक्त और भगवान् का सम्मिलन हो रहा है । यही पूजन का समय है । तुम लोग क्या सोच रहे हो ? तब देवताओं की जड़ता गयी और पुष्पवृष्टि तथा स्तुति करने लगे ।

दो. मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवटु भेटेउ । राम ।

भूरि भायँ भेटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

अर्थ : प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर फिर रामजी केवट से मिले । लक्ष्मण को प्रणाम करते देखकर भरतजी बड़े प्रेम के साथ उनसे मिले ।

व्याख्या : भरतजी के बाद सरकार शत्रुघ्नजी से मिले । तत्पश्चात् केवट से मिले । जब सरकार भरतजी से मिल चुके तब लक्ष्मणजी को प्रणाम करने का अवसर मिला । भरतजी लक्ष्मण से बड़े प्रेम के साथ मिले । तब तक सरकार केवट से मिले । लक्ष्मणजी की भी वही दशा है जो भरतजी की थी । ये भी उठना नहीं चाहते । अतः भरतजी का मिलना कहते हैं ।

भेटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥

पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥१॥

अर्थ : तब फिर लक्ष्मणजी उमगकर छोटे भाई से मिले । फिर निषाद को छाती से लगा लिया । फिर दोनों भाइयों ने मुनियों की वन्दना की और ईप्सित आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए ।

व्याख्या : भरतजी से छूटते ही लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से लिपट गये । प्रणाम करने तक का अवसर नहीं दिया । इतनी उत्सुकता ललकि शब्द के द्योतित होती है । इधर रामजी केवट से मिल चुके तब से लक्ष्मणजी ने उसे हृदय से लगा लिया । जब तक रामजी और भरतजी का मिलन हुआ तब तक लोग स्तब्ध होकर खड़े

रहे। फिर रामजी का और केवट मिलन तथा भरत लक्ष्मण मिलन एक काल में हुआ। तत्पश्चात् लक्ष्मणजी ने केवट को हृदय से लगाया।

यह मिलन वेदी के बाहर हुआ। अब वहाँ से वेदी के पास लौटे तो देखा कि मुनि मण्डली खड़ी प्रेम मिलन देख रही है। अतः मुनिगण को दोनों भाई भरत शत्रुघ्न ने प्रणाम किया। भगवद्भक्तिरस्तु यही अभिमत आशीर्वाद है। इस आशीर्वाद से दोनों भाइयों को बड़ा आनन्द हुआ। क्योंकि मुनियों का आशीर्वाद है। निष्फल नहीं जा सकता।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरिसिरसिय पदपदुम परागा ॥

पुनि पुनि करत प्रणाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए ॥२॥

अर्थ फिर भरतजी छोटे भाई के साथ उमगकर सीताजी के चरणों की धूलि को माथे चढ़ाकर बार बार प्रणाम करने लगे। सीताजी ने उनके मस्तक को अपने कर कमल से स्पर्श करके उन्हें उठाया और बिठला दिया।

व्याख्या सरकार तो दौड़ पड़े। लक्ष्मणजी भी साथ ही गये। पर सीताजी जहाँ की तहाँ रह गयी। अतः वहाँ पहुँचने पर भरतजी ने पग धूलि ली। भगवती की चरण धूलि कहीं नहीं मिली थी। केवल कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे। सरकार की चरण धूलि अपेक्षाकृत सुलभ है। पर भगवती की चरण धूलि महा दुर्लभ है। स्त्रियों के चरण स्पर्श का अधिकार भारतवर्ष में अतिविरल है।

भगवती को बारम्बार भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। क्योंकि इनके अनुग्रह पर सरकार का अनुग्रह अवलम्बित है जब से यह भाव देश से उठ गया तब से घर में फूट होने लगी। भगवती ने हाथ के इशारे से उठाया। सिर का स्पर्श कर कमल से किया। यह सौभाग्य भरतजी का ही हुआ।

सीयँ असीस दीन्ह मन माही। मगन सनेह देह सुधि नाही ॥

सब विधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच डर अपडर बीता ॥३॥

अर्थ सीताजी ने मन ही मन में आशीर्वाद दिया। वे स्नेह में मग्न थीं। उन्हें देह की सुधबुध नहीं थी। सब प्रकार से सीताजी को सानुकूल देखकर भरतजी सोच रहित हो गये। निर्मूल भय जाता रहा।

व्याख्या सीताजी आशीर्वाद देना चाहती हैं। परन्तु स्नेहाधिक्य से वाणी काम नहीं कर रही है। अतः मन में ही आशीर्वाद दिया। दोनों भाई परम प्रेम में पूर्ण थे। भगवती भी परम प्रेम में पूर्ण हैं। इन्हें भी देह की सुधि नहीं है। भरतजी ने लख लिया। सिर के कर कमल द्वारा स्पर्श से जान लिया कि सीताजी सभी प्रकार से सानुकूल हैं। भरतजी को भरोसा भी ऐसा ही था। अवध की सभा में कहा भी था : परिहरि रामसीय जगमाही। कोउ नहि कहिहि मोर मत नाही। फिर भी मन में डर होता था कि कदाचित् दुखी हो। क्योंकि दुखी होने के लिए

यथेष्ट कारण है। सो अब मालूम हुआ कि वह डर निर्मूल था। माता की पूरी प्रसन्नता है।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूंछा । प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥४॥

अर्थ : उस समय न किसी ने कुछ कहा न किसी ने कुछ पूछा। मन प्रेम से भर गया था। अतः अपनी स्वाभाविक गति से रीता था। उस अवसर केवट ने धैर्य धारण करके प्रणाम पूर्वक करबद्ध प्रार्थना की।

व्याख्या : इतने दिन के बाद भेंट हो रही है। कुशल मङ्गल पूछना चाहिए। परिस्थिति में इतना बड़ा परिवर्तन हुआ है कि उस विषय की चर्चा होना प्राप्ति है। सो कोई कुछ बोलता नहीं। सब व्यवहार का कारण मन की हलचल है। सो मन में प्रेम भरा है। अतः वह स्थिर हो रहा है। फिर पूछने या कहने की प्रक्रिया हो तो कैसे हो। बड़ी सावधानी रखी गयी है कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार रामजी को गुरुजी के अनुपस्थिति में न लगने पावे। नहीं तो उन्हें सँभालेगा कौन?

केवट ने धैर्य धारण किया। डूबती हुई नाव के समय धैर्य धारण करने का उसे अभ्यास है। कुशल कुछ कहने लायक नहीं। अयोध्या का हाल गुरुजी के मुख से ही कहा जाना चाहिए। किसे साहस है कि चक्रवर्तीजी का मरण सुनाये और किसे सामर्थ्य है कि रामजी को उस समय सँभाले। अतः पहिले इनकी भेंट गुरुजी से होनी चाहिए। अतः प्रणाम करके विनय करता है।

दो. नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।

सेवक सेनप सचिव सब, आए विकल वियोग ॥२४२॥

अर्थ : हे नाथ ! मुनिनाथ के साथ सब माताएँ, नगर निवासी, सेवक, सैनिक और मन्त्री सब लोग वियोग से व्याकुल आये हैं।

व्याख्या : निषादराज का भाव यह कि भरतजी तो सानुज मेरे साथ चले आये। उधर गुरुजी के साथ माताएँ और सब प्रजा है। इतना ही नहीं मन्त्री लोग सेनापति लोग आये हैं। कारण यह है कि सब सरकार के वियोग से विकल हैं। यथा : सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी। इस तरह से निषादराज कह रहे हैं। जिसमें चक्रवर्तीजी के विषय में प्रश्न ही न उठे। समझ लें कि महाराज वहाँ हैं ही। सबके आने में कोई हानि नहीं।

सीलसिधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू ॥

चले सवेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला ॥१॥

अर्थ : शीलसिन्धु रामजी ने गुरुजी का आगमन सुनकर सीताजी के पास शत्रुघ्नजी को रक्खा। धैर्य और धर्म के धुरन्धर दीनदयाल उस समय वेग से चले।

व्याख्या : सदाचार के समुद्र हैं। जिस गुरुजी के वहने से पिता वचन त्याग सकते हैं यथा : अवसि फिरहि गुरु आयसु मानी : उस गुरुजी का आगमन सुनकर क्षण भर भी नहीं ठहर सकते। निपादराज ने तो माताओं का भी आगमन कहा। पर सबसे अधिक प्रभाव रामजी पर गुरु के आगमन का पड़ा। सीताजी को साथ ले जाने से फिर वही ठहरना पड़ेगा और यहाँ ठहरना ठीक नहीं। अतः सीताजी को रक्षा के लिए शत्रुघ्नजी को छोड़ दिया। लक्ष्मणजी का भी जाना प्राप्त था। कुलवधू अरक्षित किसी भाँति नहीं छोड़ी जा सकती।

सरकार मत्तमजु कुजर वर गामी हैं। पर उस समय वेग से चले। गुरुजी के अगवानों की त्वरा है। इस भाँति और किसी स्थान पर चलना नहीं पाया जाता। गुरुजी घर पर आये तो यहाँ भी सरकार ने अगवानी किया। गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा। यहाँ तो गुरुजी अयोध्या से चलकर आ रहे हैं। अतः अधिक आगे होकर लेना चाहिए। धीरे हैं। पण्डित हैं। धर्म के घुरा के वहन करनेवाले हैं। दोनों के ऊपर दया करनेवाले हैं। बड़ों का सम्मान करेंगे। वियोग से विकल लोगों की आत्ति का हरण करेंगे।

गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे ॥

मुनिवर घाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेटे दोउ भाई ॥२॥

अर्थ : गुरुजी को देखकर भाई के साथ अनुराग में आगये। प्रभु दण्ड प्रणाम करने लगे। मुनिवर ने दौड़कर उन्हें छाती से लगा लिया और प्रेम में उमगकर दोनों भाइयों से मिले।

व्याख्या : सरकार का आना सुनकर गुरुजी को आगे करके मिलने के लिए सब लोग इकट्ठे हो गये। जहाँ से गुरुजी पर दृष्टि पड़ी वही से सरकार ने दण्ड प्रणाम साष्टाङ्ग दण्डवत् आरम्भ किया। क्योंकि गुरुजी के चरणों में अटूट प्रेम है।

सरकार को साष्टाङ्ग करते हुए आते देखकर गुरुजी दौड़ पड़े कि अब एक दण्डवत् भी अधिक न हो। गुरुजी प्रेम से उमगकर दोनों भाइयों से मिले। भावार्थ यह कि दोनों भाई साष्टाङ्ग प्रणाम करते आ रहे थे।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू ॥

राम सखा रिपं बरवस भेटा। जिमि महि लुठत सनेह समेटा ॥३॥

अर्थ : फिर केवट ने प्रेम से पुलकित हो अपना नाम कहकर दूर से प्रणाम किया। ऋषिजी राम सखा से जबरदस्ती मिले। मानो जमीन पर गिरते हुए धी प्रेम को समेट लिया।

व्याख्या : सरकार के साथ आया है और तदीय हैं। सरकार दण्डवत् करते हैं तो निपादराज भी दण्डवत् करता है। गुरुजी को देखता है कि प्रेम के उमंग में है वही मुझे छू न लें। अतः दूर से दण्डवत् करता है। अपना नाम कहता है। यह

नियम हाथ लगा कि अत्यन्त प्रेम में स्पृश्यास्पृश्य का विचार आर्यसन्तान न करे और अस्पृश्य जाति उनको धर्मरक्षा के लिए स्वयं दूर रहे ।

मुनिजी ने केवट को नहीं भेंटा रामसखा को भेंटा । रामसखित्व के सामने जाति का विचार कुछ नहीं । वह मिलना नहीं चाहता था । ऋषिजी जबरदस्ती मिले । घी का घड़ा तो लुढ़कना चाहता है पर सावधान पुरुष गिरते हुए घी को समेट लेता है गिरने नहीं देता । इसी भाँति मुनिजी स्नेह-प्रेम का पृथ्वी पर लुढ़कना न देख सके । निपादराज के मिलने में मुनिजी ने बल और त्वरा दोनों से काम लिया । यहाँ स्नेह शब्द में श्लेष है । स्नेह प्रेम घी तेल आदि का वाचक है ।

रघुपति भगति सुमगल मूला । नभ सराहि सुर वरसहि फूला ॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाँही । बड वसिष्ठ सम को जग माँही ॥४॥

अर्थ . आकाश में देवता लोग रघुपति भक्ति सुमगल मूल है । ऐसी प्रशंसा करके फूल की वर्षा कर रहे हैं । कहते हैं इसके ऐसा एक बारगी नीच कोई नहीं और वसिष्ठ से बड़ा ससार में कौन है ?

व्याख्या : सकल सुमगल मूल जग रघुवर चरन स्नेह । इस स्नेह को प्रारब्ध के मिटाने की शक्ति है । भक्ति ने इसे शुद्ध बना दिया । भक्ति की स्तुति देवता कर रहे हैं और पुष्पवृष्टि द्वारा गुणों का पूजन कर रहे हैं ।

देवता लोग आश्चर्य कर रहे हैं कि निपाद अत्यन्त नीच जाति है और वसिष्ठजी से बड़ा कोई नहीं है जिन्हें रामजी के गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इन्होंने ही विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बनाया । अतः जो वसिष्ठजी करें वही प्रमाण है । वसिष्ठजी ने इसे स्पृश्य बना लिया । रामजी के मिलने पर देवताओं ने आश्चर्य नहीं किया । क्योंकि ये तो सदा सर्वमत सर्वहित हैं । सभी से मिले मिलाये हैं । वसिष्ठजी के मिलने पर बड़ा आश्चर्य है । क्योंकि ये तो कर्मकाण्डी हैं । इन्होंने कर्मकाण्ड का अवहेलन कैसे किया ।

दो जेहि लखि लखनहु ते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ ।

सो सीतापति भजन को, प्रकट प्रताप प्रभाउ ॥२४३॥

अर्थ जिसे देखकर मुनिराज लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर मिले । यह सब सीतापति के भजन का प्रत्यक्ष प्रभाव है ।

व्याख्या वसिष्ठजी लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर निपादराज से मिले । स्वयं मुनिनाथ हैं । लक्ष्मणजी मिलना चाहते थे और यह नहीं चाहता था । अतः मुनिजी को बलपूर्वक मिलना पड़ा । भजन सत्कार विशेष के पाने की इच्छा से नहीं किया जाता । पर भजन का प्रभाव ऐसा है कि भक्त का जगत् सत्कार करता है । उसमें भी उद्भवस्थिति सहारकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी सीता के वल्लभ के भजन का प्रभाव क्यों न सकल सुमङ्गल मूल हो ।

आरत लोग राम सबु जाना । करुणाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाखी । तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी ॥१॥

अर्थ करुणा की खानि तथा सुजान भगवान् ने सब लोगो को जाना कि आतं हो रहे हैं । जो जिस भाव का अभिलापी रहा उसकी वैसी ही रुचि रखी ।

व्याख्या शत्रुघ्नजी से मिलने के बाद और लोगो से मिलने की बारी है और सब लोग मिलने के लिए उत्सुक हैं । सब लोग अपने हृदय में अपना पृथक् पृथक् मनोरथ लिये है कि मैं इस भाँति मिलूँगा । भगवान् सुजान है । यथा को जियके रघुबर बिनु बूझा । करुणाकर हैं । सबको देख रहे हैं कि मिलने के लिए आतं हैं । अतः जिसे जिस भाव से जिसकी मिलने की अभिलापा थी उससे उसी भाव से मिले । किसी की रुचि में भेद न पड़ने पाया । मिलने में सबकी रुचि रखते हैं । कोई कृपा कटाक्ष के भूखे थे । कोई चरणरज चाहते थे । कोई गल लगाना चाहते थे । कोई अपने सिर पर सरकार का हाथ चाहते थे । कोई वचनामृत सुनना चाहते थे । सो सबकी अभिलापा पूर्ण की ।

सानुज मिलि पल महु सब काहू । कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू ॥
यह बडि बात राम कै नाही । जिमि घट कोटि एक रबि छाँही ॥२॥

अर्थ एक पल में भाई के सहित सबसे मिलकर दुःख और दारुण दाह को दूर किया । रामजी के लिए यह बड़ी बात नहीं है । जैसे करोड़ों घड़ा में एक सूर्य की छाया पड़ती है ।

व्याख्या यह भगवान् का ऐश्वर्य है कि एक पल में सबसे भाई के साथ मिले । अमित रूप प्रकटे तेहि काला । सो नहीं हुआ । सरकार उसी रूप से लक्ष्मणजी के साथ सबसे मिले । एहि दुःख दाह दहै दिन छाती । सो दाह कार्य और दुःख कारण है । मानसिक दुःख दाह का कारण होता है । सो कारण के साथ कार्य को दूर किया ।

अब उदाहरण देते हैं कि जैसे भगवान् सूर्य एक ही हैं पर प्रतिविम्ब द्वारा करोड़ों घट से एक साथ मिलते हैं । उसी भाँति अपनी अघटित घटना पट्टीयसी माया द्वारा सबसे मिले ।

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा । पुरजन सकल सराहहि भागा ॥
देखी राम दुखित महतारी । जनु सुबेलि अवली हिम मारी ॥३॥

अर्थ सब पुरजन अनुराग से उमगकर केवट से मिलकर भाग्य की सराहना करते हैं । रामजी ने माताओं को दुःखी देखा । जैसे सुन्दर लता की श्रेणी को पाला मार दिया हो ।

व्याख्या सरकार से मिलकर सब केवट से मिलते हैं । गुरुजी का अनुमरण करते हैं । यद्यदाचरति श्रेष्ठ तत्तदेवेतरो जन । स यत् प्रमाण कुरुते लोकस्तदनु-

वर्तते । वास्तविक गुण पूजा के सामने जाति पर ध्यान नहीं दिया जाता । अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं । अथवा केवट के भाग्य की प्रशंसा करते हैं । केवट को सरकार का साथी मानते हैं । यह अयोध्यावासी नहीं है । वनवासी है ।

देखी साम आन अनुहारी । यह भाग सीताजी के स्वप्न का ठीक हो रहा है । कौसल्याजी को भरत ने देखा कनक कल्प वर बेलि जनु मानहु हनी तुपार । यही अवस्था सब माताओं को रामजी देख रहे हैं । मानो सुनहली कल्पवल्ली को पाला मार दिया हो । पाला मारते ही बेली झुलस जाती है । सरकार सबसे मिलकर सब माताओं से मिल रहे हैं ।

प्रथम राम भेटी कैकेई । सरल सुभायं भगति मति भेई ॥

पग पर कीन्ह प्रबोधु बहोरी । काल करम विधि सिर धरि खोरी ॥४॥

अर्थ पहिले रामजी कैकेयी से मिले । सरल स्वभाव के साथ और बुद्धि उनकी भक्तिरस से भोगी हुई थी । चरणों पर गिरकर फिर समझाया और दोष का कालकर्म और विधि के सिर पर रक्खा ।

व्याख्या सरकार का यह हाल है कहें मोहि मैया कहौ मैं न मैया भरत की बलैया लैहौ भैया तेरी मैया कैकेयी है । सरल सुभाय रघुराय तेहि मातु मानी काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है । अत पहिले कैकेयी से सरल स्वभाव तथा भक्ति भरे हुए मिले ।

कैकेयी रोने लगी । अत चरणों को पकड़कर समझाया । भरद्वाजजी ने केवल विधि को दोष दिया था । सरकार ने काल कर्म और विधि को दोष दिया । इन्हीं को कर्म फल प्राप्ति का कारण कहा ।

जननी जनि होय दुखी जिय मे करनो विधि की कछू जात न जानी ।

सब नाचत कर्म की डोर बंधे अस कोइ नही अपने बस प्रानो ॥

मतिहू तसि होत समय जस होत बूथा मन मे नर मानत ग्लानी ।

सपनो सो सबे अपनो न कछू जिय जानि के हानि न मानत ज्ञानी ॥

दो भेटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोधु परितोषु ।

अबु ईस आधीन जगु, काहु न देइअ दोषु ॥२४४॥

अर्थ फिर रामजी प्रबोध और परितोष करके सब माताओं से मिले । बोले हे अम्ब ! यह जगत् ईश के अधीन है । किसी को दोष नहीं देना चाहिए ।

व्याख्या तत्पश्चात् सब माताओं से मिले । यहाँ स्पष्ट है कि तीनों पट्टमहि-पियो के अतिरिक्त जो माताएँ थी उनसे मिले । सबकी वही दशा है । अत सबको समझाना बुझाना और परितुष्ट करना पड़ा । उन लोगों ने कैकेयी को दोष दिया । अत सरकार कहते हैं कि ससार ईश्वर के अधीन नटमकंट की भाँति नाचता है । परतन्त्र को क्या दोष है ? वह तो प्रेरक की प्रेरणानुसार आचरण करता है । अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते । अत किसी को दोष नहीं देना चाहिए ।

गुरतिअ पद बंदे दुहुँ भाई । सहित विप्रतिय जे संग आई ॥
गंग गौरि सम बस सनमानी । देहि असीस मुदित मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी की स्त्री की दोनों भाइयो ने वन्दना की और जो ब्राह्मण की स्त्रियाँ उनके साथ आयी थी उन सबका गङ्गा और गौरी के समान सम्मान किया और वे प्रसन्न होकर मृदु वाणी से आशीर्वाद देने लगी ।

व्याख्या : अरुन्धती अरु अग्नि समाऊ । रथ चढि चले प्रथम मुनिराऊ ।
सो भगवती अरुन्धती भी आयी हुई हैं । वे भी रनिवास के साथ हैं । अतः उनके चरणों की भी दोनों भाइयो ने वन्दना की । इनसे मिलना नहीं कहते । केवल चरण वन्दना का अधिकार है । वसिष्ठजी के साथ ब्राह्मण लोग थे । भगवती अरुन्धती के साथ ब्राह्मणियाँ थी । ब्रह्मकुल शङ्कर रूप हैं । शङ्कर की दो शक्तियाँ उमा और गंगा । अतः उनका सम्मान गंगा और गौरी के समान किया । ब्राह्मणियों के सम्मान में मनुष्य बुद्धि ही नहीं । सभी मङ्गल कार्य में गंगा और गौरी का पूजन किया जाता है । 'आरम्भ में गौरी का और अन्त में गंगाजी का । सम्मान करने से वे प्रसन्न हो गयी । मृदुवाणी में आशीर्वाद देने लगी ।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका । जनु मेटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरनन दोउ भ्राता । परे प्रेम व्याकुल सब गाता ॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी के पावो पडकर उनके गोद में ऐसे लिपटे जैसे अति दरिद्र को सम्पत्ति मिले । तत्पश्चात् माँ के चरणों में दोनों भाई गिरे । प्रेम से उनके अंग शिथिल थे ।

व्याख्या : चरण पकडने के बाद दोनों भाई सुमित्राजी के गोद में लिपट गये । छोडना नहीं चाहते । जैसे सम्पत्ति पाने पर दरिद्र उससे लिपट जाता है । अलग होना चाहता ही नहीं । सुमित्राजी का सिद्धान्त है : सकल सुकृत कर बड फल एहू । सीय रामपद कमल सनेहू । अतः सरकार भी उन्हें उसी भाँति चाहते हैं ।

तत्पश्चात् माँ कौसल्या के चरणों में गिरे । प्रेम से अपने को संभाल नहीं सक रहे हैं । अतः प्रेम से सब शरीर व्याकुल है । अति माना होने से प्रेम में और सुख में भी व्याकुलता होती है ।

अति अनुराग अंब उर लाए । नयन सनेह सलिल अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरख विपादू । किमि कवि कहइ मूक जिमि स्वादू ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त प्रेम से माँ ने हृदय से लगा लिया । प्रेम के आँसू से नहला

१. गनपति गौरि गिरीस मनाई । चले राम तथा : तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माय ।

दिया । उस समय के हर्ष विपाद को कवि कैसे कहे । जैसे गूँगा स्वाद का वर्णन कैसे करे ।

व्याख्या : माँ ने कहा था : सुदिन सुघरी तात कव होइहि । जननी जित वदन विधु जोइहि । सो वह घड़ी आगयी । अति अनुराग से प्रेमाम्बु प्रवाह वह चला । हृदय में लगाये हुए हैं आँखों से आँसू बह रहा है । वह सरकार के ऊपर पड़ रहा है । दोनों भाई भोग गये ।

हर्ष मिलने का और विपाद वनवास का । उस समय हर्ष भी अत्यन्त हुआ । साथ ही साथ विपाद भी कम नहीं है । उसे कवि अनुभव करता है । पर कह नहीं सकता । स्वाद का कहना अशक्य है । गुड़ चीनी शहद मिश्री का अन्तर कोई कह नहीं सकता । अनुभव सब करते हैं । सो मूक तो बोलने में ही असमर्थ है । वह स्वाद का वर्णन क्या कर सकता है । कवि हर्ष विपाद के समिश्रण का कैसे वर्णन करें ।

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ । गुरसन कहेउ कि धारिअ पाऊ ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू । जल थल तकि उतरेउ लोगू ॥४॥

अर्थ : भाई के सहित रामजी माँ से मिलने के बाद गुरुजी से कहा कि पधारिये । तब नगर के लोग मुनिजी की आज्ञा पाकर जलयुक्त थल देखकर उतरने लगे ।

व्याख्या : उदासीन रूप से रहने का 'वचन' है । इसलिए सरकार प्रजावर्ग के साथ रहना नहीं चाहते । केवल गुरुजी से चलने को कहते हैं । माता के मिलन से मिलन की पूर्णाहुति । किसे ठहरने को कहे । किसे साथ चलने को कहे । इस असामञ्जस्य में केवल गुरुजी से कहा । गुरुजी जैसा उचित समझें करें ।

गुरुजी ने चलने के पहिले सबको वही ठहरने की आज्ञा दी । लोग जलाशय देख देखकर वहाँ ठहर गये । भरतजी के कहने से लोग नदी के किनारे ठहर गये थे । मालूम नहीं कहाँ निवास करना होगा । अब मालूम हुआ कि यही ठहरना है । अतः जल थल देखना पडा । नदी के किनारे धूप रहती है । अतः छाया और जल दोनों का सुभीता देखकर लोग उतरे ।

दो. महिसुर मंत्री मातु गुर, गने लोग लिए साथ ।

पावन आश्रम गवनु किय, भरत लखन रघुनाथ ॥२४५॥

अर्थ : ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरु तथा गिने हुए लोगों को साथ में लिया और भरत लक्ष्मण तथा रामजी पावन आश्रम को गये ।

व्याख्या : गुरुजी ने अपने साथ ब्राह्मण, मन्त्री, और माताओं को लिया । कवि भी पद मैत्री से काम लेकर बार बार मकार का प्रयोग करते हैं महिसुर,

मन्त्री और मातु और कम से कम लोग उनकी सेवा के लिए साथ में लिया और आश्रम की ओर चले । शत्रुघ्नजी पहिले से वही हैं । इसलिए भरत, लखन और रघुनाथजी का चलना कहते हैं । गिने हुए लोग को साथ में लेने का भाव यह कि अनगिनती लोगो को वहाँ छोड़ा । अथवा साथ में लेनेवालो को गिन लिया कि इनसे एक भी अधिक जाने न पावें ।

सीय आइ मुनिवर पग लागी । उचित असीस लही मन मागी ॥

गुरुपतिनिहि मुनि तियन्ह समेता । मिली पेमु कहि जाइ न जेता ॥१॥

अर्थ : सीताजी आकर वसिष्ठजी के पावो पड़ी । मन मांगी हुई उचित आशीष प्राप्त हुई । तत्पश्चात् गुरुजी की स्त्री तथा मुनियो की स्त्रियो से मिलीं । वह प्रेम कहा नहीं जाता ।

व्याख्या • गुरुजी को आया हुआ देखकर भगवती स्वयं प्रणाम करने गयी । गुरुजी ने सावित्री भव ऐसा आशीर्वाद दिया । कुल वधुओ के लिए यही उचित आशीर्वाद है और यही सीताजी को ईप्सित था । सीताजी ने चाहा था कि गुरुजी से यही आशीर्वाद मिले और वही मिला । महिसुर मन्त्री और माताएँ गिने गिनाये लोग ही थे । अतः सीताजी अकेले उस समाज में चली गयी ।

तत्पश्चात् अरुन्धतीजी के पास गयी । उनके साथ मुनिपत्नियाँ थी । उन लोगो से सीताजी जाकर मिली । उनसे मिलने में अकथनीय प्रेम था । सीताजी ठोक क्रम के अनुसार मिल रही हैं । सरकार ने व्युत्क्रम कर दिया । माताओ को अति दुखी देखकर गुरुतिय वन्दन के पहिले ही उनसे मिल । यथा देखी गम दुखित महतारी । जनु सुबेलि अवली हिम मारी । प्रथम राम भेटी कैकेई ।

बदि बदि पग सिय सबही के । आसिर वचन लहे प्रिय जी के ॥

सासु सकल जब सीय निहारी । मूँदे नयन सहमि सुकुमारी ॥२॥

अर्थ : सीताजी ने सभी के चरणो में प्रणाम करके अपने जो के प्यारे आशीर्वाद पाये । सासुओ को जब सीताजी ने देखा तो सुकुमारी ने सहमकर आँखें बन्द कर ली ।

व्याख्या : जितनी मुनि की स्त्रियाँ आयी थी सरकार ने सबका गङ्गा गोरी सा सम्मान किया । दूर से पूजन किया । भगवती पहिले सत्रसे मिली । तत्पश्चात् सबके चरणो की वन्दना की । उन लोगो ने भी जो हृदय को प्रिय रहा वही आशीर्वाद दिया । स्त्रियो में तो एक ही आशीर्वाद सौभाग्य विषयक प्रचलित है ।

सरकार ने माताओ को देखा । जनु सुबेलि अवली हिम मारी । परन्तु भगवती सुकुमारता के कारण देख न सकीं । भय से आँख मूँद ली । इतना बड़ा परिवर्तन माताओं में हुआ है कि जो सीताजी निर्भीक वन में गयी वे ही सासो की यह दशा देख न सकी ।

परी बधिक बस मनहु मराली । काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा । सो सब सहिअ जो दैउ सहावा ॥३॥

अर्थ . मानों हसिनियाँ बधिक के बश में पड़ी हुई हैं । सोचने लगी : कतने यह क्या कुचाल किया । उन्होंने सीताजी को देखकर अत्यन्त ही दुःख पाया कहने लगी : जो दैव सहावें वह सहना ही है ।

व्याख्या . मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली सो मराली बधिक के बश पड़ी है । मानो आसन्न मृत्यु सी हैं । अति विकल हैं ब्रह्मदेव को दूषण देती हैं । जैसा सपना में देखा था : देखी सासु आन अनुहारी । वदशा सासो की है । सरकार को माताएँ : जनु सुबेलि अबली हिम मारी : दिखा पड़ती है । क्योंकि वे भी इनको सुबेलि की दृष्टि से देखती थी । यथा : मुदित म सब सखी सहेली । फलित विलोकि मनोरथ बेली । और माता भगवती को मराली रूप से देखती थी । यथा जिअइ कि लवन पयोधि मराली । अतः उन्होंने सास व मराली रूप देखा ।

सास ने सीताजी को आँख की पुतली को भाँति माना था । यथा : नय पुतरि करि प्रीति बढाई । राखेउ प्रान जानकिहि लाई । सो जानकी को तापस वे में देखकर अत्यन्त दुःखी हुई और सब दुःख तो सहा अब यह भी सहना पड़ा कि पुत्रवधू तापस वेप में है । सोचती हैं कि यह पूर्वजन्म के कर्म का फल है । पूर्वजन्म कृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते । इससे सहना ही पड़ेगा ।

जनक सुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥
मिली सकल सामुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना महि छाई ॥४॥

अर्थ . तब राजा जनक की बेटी सीताजी ने हृदय में धैर्य धारण करके और नीले कमल से नेत्रों में आँसू भरकर सब सासों से जाकर मिली । उस अवसर पर करुणा पृथ्वी पर छा गयी ।

व्याख्या : सीताजी महाराज जनक की बेटी हैं । तुरन्त धैर्य धारण किया पर आँखों में आँसू भर गये । भगवती की आँखों में कज्जल है । इसलिए नीले कमल की उपमा कवि दे रहे हैं ।

जानकी प्रत्येक सास के पास जा जाकर मिली । उस समय करुण रस का ऐसा प्रवाह वहा कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर छा गया । छाई का भाव यह कि सब पर असर पड़ा । कोई बाकी न रहा ।

दो लागि लागि पग, सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग ।

हृदय असोसहि प्रेम बस, रहिअहु भरी सोहाग ॥२४६॥

अर्थ : सीताजी सबके पावों पर पड़ पड़कर अति प्रेम से मिलने लगी । वे लोग प्रेमवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि सदा सौभाग्यवती रहोगी ।

व्याख्या : लडकियाँ माताओं से मिलती हैं । पर सास का चरण पकड़ती हैं । ऋषि पत्नियों में माता की दृष्टि थी । अतः पहिले उनसे मिली । पूज्य होने के कारण प्रणाम पीछे किया । परन्तु रानियाँ तो सब सास हैं । अतः प्रणाम पहिले किया । पीछे से अति प्रेम के कारण मिली । सब का कण्ठ गद्गद है । जी भरा है । बोल नहीं सकती । अतः मन ही मन आशीर्वाद देती हैं । पति के जीवित रहने को सोहाग कहते हैं । तथा पति के प्रेम को भी सोहाग कहते हैं ।

विकल सनेह सीय सब रानी । बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानी ॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा । कहे कछुक परमारथ गाथा ॥१॥

अर्थ : सीताजी तथा सब रानियाँ स्नेह से व्याकुल हो रही थी । तब ज्ञानी गुरुजी ने सबको बैठने के लिए कहा । फिर मुनिनाथ ने जगत् की मायिक गति कहकर कुछ परमार्थ की गाथा कही ।

व्याख्या : गुरुजी ज्ञानी हैं । अतः विकल नहीं है । यथा : सोक निवारेउ सबहि कर निज विज्ञान प्रकास । देखा कि सारा समाज विकल है । किसी को बैठने की सुधि नहीं है और अब महाराज चक्रवर्तीजी के स्वर्गारोहण का समाचार छिप नहीं सकता । अतः यही समय है कि रामजी को महाराज दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाया जाय । इस समाचार के सुनाने में पाण्डित्य है । रामजी को संभालना है । यह अपने विरह में महाराज का मरण सुनकर अति विकल होंगे । इसी से प्रयत्न पूर्वक इस समय तक इनसे चक्रवर्तीजी के मरण का समाचार छिपाया गया था । समाचार सुनाने के पहिले रामजी को उसके सुनाने के लिए तैयार करना है । अतः अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए गुरुजी की आज्ञा हुई कि सब लोग बैठ जायें । सब लोग जहाँ के तहाँ बैठ गये ।

तब मुनियों के नाथ हैं इन्होंने जगत् की गति का मायिक होना वर्णन किया कि यह जगत् क्षणभंगुर है । यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है । यहाँ जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा । यहाँ सब कुछ मृत्यु के मुख में है और व्यवहार स्थिर की भाँति है । यहाँ न कोई किसी का पिता है न कोई किसी का पुत्र है । कोई किसी का कुछ नहीं है । जैसे नदी में बहते हुए काठ कुछ देर के लिए इकट्ठे हो जाते हैं और उसी नदी के वेग से फिर अलग अलग हो जाते हैं । इसी भाँति यहाँ पुत्र पिता स्त्री पति आदि का मिलना है । सब प्रकार से विछोह ही सिद्ध है और कुछ परमार्थ की गाथा कही । यथा : इस नश्वर ससार से चित्त हटाकर इसे स्वप्न समझकर उस सत्य वस्तु में ही चित्त स्थिर करना चाहिए । जिसमें इस विश्व की उत्पत्ति स्थिति और लय होता है । जिसके प्रकाश से सृष्टि प्रकाशित होती है । जो आनन्द तथा प्रकाश रूप शान्त सनातन है । यह द्वैत अन्धकार है । उसका परित्याग करके उस परम भूतेश्वर का सहारा लेना चाहिए । तभी यह संसाररूपी महा वन्धन से मनुष्य छूट सकता है । इस भाँति ज्ञान की भूमिका तैयार करके तब :

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा । सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ॥
मरन हेत निज नेहु विचारी । भे अति बिकल धीर धुरधारी ॥२॥

अर्थ राजा की स्वर्गयात्रा सुनायी । सुनकर रामजी को दु सह दु ख हुआ । मरने का कारण अपना स्नेह समझकर धीर धुरन्धर अत्यन्त व्याकुल हुए ।

व्याख्या वसिष्ठजी ने राजा दशरथ के स्वर्गारोहण का समाचार कहा कि तुम्हारे वियोग ' चक्रवर्तीजी ने शरीर परित्याग किया । इतनी भूमिका करने पर भी इस समाचार से सरकार को ऐसा दु ख हुआ कि सह न सके । दु ख के न सहे जाने पर जो मनुष्य की दशा होती है वह दशा रामजी की हुई । यद्यपि रामजी स्वभाव से धीर धुरन्धर थे । पर यह विचारकर कि मेरे प्रेम से ही महाराज की मृत्यु हुई अत्यन्त भारी विकलता रामजी को हुई । इसी विकलता को सोचकर सबने यही निश्चय किया था कि गुरुजी ही यह समाचार कहे ।

कुलिस कठोर सुनत कटु वानी । विलपत लखन सीय सब रानी ॥
सोक बिकल अति सकल समाजू । मानहुँ राज अकाजेउ आजू ॥३॥

अर्थ वज्र के समान कठोर कटु वाणी सुनकर लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगी । सारा समाज अत्यन्त शोक से विकल हो गया । मानो आज ही राजा का देहान्त हुआ है ।

व्याख्या महाराज के स्वर्गारोहण की वाणी सुनने में कुलिस कठोर और ग्रहण करने में कटु थी । लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगी । लक्ष्मण और सीताजी ने अभी सुना है । इसलिए पहिल उनका नाम देते हैं । सारा समाज इस भाँति शोक विकल हुआ मानो चक्रवर्तीजी का देहान्त आज ही हुआ । यथा सोक बिकल सब रोवहि रानी । रूप सील बल तेज बखानी । करहि विलाप अनेक प्रकारा । परहि भूमितल वारहि वारा । भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर । विपुल बिहग बन परेउ निसि मानहु कुलिस कठोर ।

मुनिवर बहुरि रामु समुझाए । सहित समाज सुसरित नहाए ॥
व्रत निरबु तेहि दिन प्रभु कोन्हा । मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा ॥४॥

अर्थ मुनिवर ने फिर रामजी को समझाया । समाज के सहित मन्दाकिनी में स्नान किया । उस दिन सरकार ने निर्जल व्रत किया । मुनिजी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया ।

व्याख्या गुरुजी ने पहिले भी समझाया था । ज्ञान की भूमिका समझाना ही था । सिवा गुरुजी के सरकार को समझावे कौन ? गुरुजी ने रामजी का समझाया । क्योंकि सबसे अधिक विकलता उन्हीं की थी । उनके समझाने पर सब लोग समझ जायेंगे । यथा तुम सुजान सब जानि जनि सोच करिय मतिमान । जनम मरन बिछुरन मिलन हित अनहित अज्ञान । झूठो सकल सनेह जग स्वारथ ही को नेह ।

सकल खेल दिन चारि को बन्धु मातु पितु गेह । उठहु तात धीरज घरहु विलपत
सकल समाज । चह्यो पुत्र जेहि हेतु नृप बेगि करी सो आज ।

पिता का मरण सुनते ही अशौच लगता है । अतः स्नान प्राप्त है । समाज
सब शोक ग्रस्त है । अतः सभी अशुचि हैं । सो समाज के सहित सरकार ने मन्दाकिनी
में स्नान किया । सरकार ने उस दिन निर्जल व्रत किया । सबने वैसा ही किया ।
प्रेमातिरेक से गुरुजी का भी वचन किसी ने नहीं माना । गुरुजी का कहना आज्ञा
नहीं है । धर्मशास्त्र का निर्णय मात्र है । गुरुजी का कहना था कि व्रत रामजी करें
तो कर सकते हैं । तुम लोगों को व्रत आवश्यक नहीं । कम से कम जल तो पी लो ।
पर किसी ने न पीया ।

दो. भोरु भये रघुनन्दनहि, जो मुनि आयसु दीन्ह ।

श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सबु सादरु कीन्ह ॥२४७॥

अर्थ : सवेरा होने पर मुनिजी ने जो आज्ञा दी उसे श्रद्धा भक्ति के साथ
प्रभु ने बड़े आदर के साथ किया ।

व्याख्या : ज्येष्ठ पुत्र होने से प्रिय होने से और्ध्वदैहिक क्रिया का अधिकार
रामजी को हो पा । उनकी अनुपस्थिति में भरतजी ने सब कुछ किया था । अतः
फिर से पितृ क्रिया रामजी ने की । यहाँ मुनिजी की आज्ञा ही सब कुछ है । श्रद्धा
बिना धर्म नहीं होई । गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वास, श्रद्धा ।

करि पितु क्रिया वेद जसि बरनी । भे पुनीत पातक तम तरनी ॥

जासु नाम पावक अध तूला । सुमिरत सकल सुमंगल मूला ॥१॥

अर्थ : जैसा वेद ने वर्णन किया है । वैसी पिता की क्रिया करके पापरूपी
अन्धकार के लिए सूर्यरूप रामजी पवित्र हुए । जिसका नाम पापरूपी रूई के लिए
अग्नि है । जिसका स्मरण सब सुमङ्गल का मूल है ।

व्याख्या : जहाँ सूर्य हैं । वहाँ अन्धकार की प्राप्ति नहीं है जहाँ रामजी हैं
वहाँ पातक की प्राप्ति नहीं है । फिर भी उन्होंने जैसा वेद ने वर्णन किया है उस
विधान से क्रिया की । रामजी सात्त्विक कर्ता हैं । शास्त्र की मर्यादा का यथार्थ पालन
करते हैं । अतः लौकिक व्यवहार के अनुसार शुद्ध हुए । नहीं तो उन्हें अशुद्धि कहाँ ?
इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रभु स्वयं पातकरूपी अन्धकार के लिए
सूर्य हैं और उनका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है । सूर्य को अन्धकार के
नाश में कोई आयास नहीं : उदय तासु त्रिभुवन तम भागा । अग्नि के एक कण को
भी रूई के अपार राशि के नाश में कुछ अधिक आयास नहीं है । जिसकी उपाधि
होने से नाम में इतनी सामर्थ्य है कि पापराशि का तो नाश करता ही है सम्पूर्ण
मङ्गल का भी विधान करता है । दोषापनयन हो नहीं गुणाधान भी करता है ।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस । तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥

सुद्ध भएँ दुइ वासर बीते । बोले गुर सन राम पिरीते ॥२॥

अर्थ वे शुद्ध हुए ऐसी साधुओं की सम्प्रति है। जैसे गङ्गाजी में तीर्थ का आवाहन। शुद्ध हुए दो दिन बीते तब रामजी ने प्रीति के साथ गुरुजी से कहा।

व्याख्या यह साधु सम्मत है कि स्वयं राजा अपने बनाये हुए नियम से शासित हो। मनुष्यरूप धारण करने पर स्वयं भगवान् वेद की मर्यादा का पालन करें। उसके विधान के अनुसार शुद्ध हो। जिस भाँति गङ्गाजी परम पावन हैं। सर्व तीर्थमयी हैं। उन्हें पवित्र करने के लिए किसी तीर्थ की आवश्यकता नहीं है। फिर भी गङ्गाजी में अन्य तीर्थों का आवाहन किया जाता है। साधु सम्मत नियम है कि जिस जल में स्नान करना हो उसमें तीर्थों का पहिले आवाहन करे। जिसमें वह पुनीत हो जाय। उसी नियमानुसार गङ्गा स्नान करनेवाले गङ्गाजल को पवित्र करने के लिए तीर्थों का आवाहन करते हैं। इस पवित्रीकरण का यह अर्थ नहीं है कि गङ्गाजल अशुद्ध था। मतलब शास्त्र मर्यादा रक्षण से है। इसी भाँति क्रिया करने पर रामजी का शुद्ध होना है। ज्येष्ठ कृ १४ को रामजी सम्भवतः शुद्ध हुए।

शुद्ध होने के बाद दो दिन और बीते। अर्थात् एकादशाह की क्रिया भी समाप्त हो गयी। अब जाने के लिए कहना है। सो प्रधान से ही कहना चाहिए। सब लोग गुरुजी के साथ आये हैं। यही समाचार महाराज को लगा था। नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग। अतः उन्हीं से कहना है। जाने के लिए कहने में प्रीति का हनन होता है। अतः प्रीति के साथ बोले।

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कद मूल फल अबु अहारी ॥

सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥३॥

अर्थ हे नाथ। सब लोग अत्यन्त दुखी हैं। कन्द मूल फल और पानी से गुजर कर रहे हैं। शत्रुघ्न के साथ भरत मन्त्री और सब माताओं को देखकर मुझे एक पल युग के समान बीत रहा है।

व्याख्या जाने के लिए कहना है। इसलिए रामजी पहिले रहने के दुख की चर्चा करते हैं। कहते हैं कि इन लोगों का दुख मुझसे सहा नहीं जाता। ये लोग सुर सदन सुख घर छोड़कर आये हैं और यहाँ कोई सुख का साधन नहीं है। भूमि सयन बलकल बसन असन कद फल मूल। अतः सब लोग अत्यन्त ही दुखी हैं। यह तो प्रजा का हाल हुआ। शत्रुघ्न के सहित भरत, मन्त्री और माता सबको दुखी मैं नहीं देख सकता। सरकार अपने दुख से दुखी नहीं है। अपने प्रमियों के दुख से दुखी हैं। कहते हैं कि मुझे एक पल युग की भाँति बीतता है। निष्कारण इतना कष्ट क्यों उठा रहे हैं। भावार्थ यह कि इन लोगों को क्षणभर भी यहाँ रहना ठीक नहीं। जितना जल्दी हो सके सब लोग जायें।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राज ॥

बहुत कहेउँ सबु कियेउँ ठिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाई ॥४॥

अर्थ : सबके साथ अयोध्या पधारिये । आप यहाँ हैं और महाराज इन्द्रपुर में हैं । मैंने बहुत कह डाला । यह मैंने ठिठाई की । जैसा उचित हो वैसा करिये ।

व्याख्या : आप सबके साथ अयोध्या पधारिये । भाव यह कि अपने साथ भरत शत्रुघ्न मन्त्री भासा तथा पुरलोग को भी लेते जाइये । आप ही के साथ ये लोग आये हैं । आप के बिना अयोध्या अनाथ होगी । यदि महाराज होते तो कोई हर्ज नहीं था । वे भी तो अमरावती को कूच कर गये । अब अयोध्या का रक्षक कोई इस समय नहीं है । भाव यह कि यहाँ वहाँ दोनों जगह लोग दुःखी हैं ।

आपको स्वयं सबकी चिन्ता है । मेरा इतना कह जाना अनुचित है । ठिठाई है । पर मेरे मन में जो था मैंने कह दिया । मेरे बातों का ख्याल न करके जैसा उचित हो वैसा आप करें ।

दो. धर्म सेतु करुणायतन, कस न कहहु अस राम ।

लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहुँ विश्राम ॥२४८॥

अर्थ : हे धर्मसेतु करुणायतन राम ! आप ऐसा क्यों न कहें ? लोग दुःखित हैं । दो दिन आप का दर्शन पाकर विश्राम पा रहे हैं ।

व्याख्या : गुरुजी कहते हैं कि आप धर्मसेतु हैं । प्रजा का इतना ध्यान होना, आपको उचित है । गुरु पर इतनी आस्था होनी ही चाहिए । करुणायतन हैं । अपने कद मूल फल अम्बु अहार से दुःख नहीं है । लोगों को ऐसा आहार मिलता है इस बात का इतना दुःख है कि पल युग के समान बीतता है । सो बात ऐसी नहीं है । लोग तो आपके दर्शन बिना दुःखी थे । दो दिन से दर्शन हो रहा है । सो विश्राम पा रहे हैं । कन्द मूल फल अम्बु आहार को किसी को चिन्ता नहीं है । अयोध्या का यथेष्ट रक्षा का प्रबन्ध भरतजी कर आये हैं । अतः उसकी चिन्ता नहीं है । इतने दिनों में कुछ बनता बिगड़ता नहीं ।

राम वचन सुनि सभय समाजू । जनु जलनिधि महुँ विकल जहाजू ॥

सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला । भयउ मनहु माखत अनुकूला ॥१॥

अर्थ : रामजी का वचन सुनकर सारा समाज डर गया । जैसे समुद्र में जहाज विकल हो उठे । सुमङ्गलमूल गुरुजी का वचन सुना मानो अनुकूल हवा चल पड़ी ।

व्याख्या : रामजी का कहना कि सबके साथ आप लौट जाइये सुनकर समाज का समाज भयभीत हो गया कि इनके घर लौट चलने का तो प्रश्न ही नहीं उठने पाया और यह सबको घर लौटा रहे हैं । मानो हम लोग इनके हाथ से चक्रवर्तीजी की क्रिया सम्पन्न कराने आये थे । भगवती कौसल्या ने कहा था : नाथ समुझि मन करिय बिचारु । राम बियोग पयोधि अपारु । कर्णधार तुम अवध जहाजू । चढेउ सकल प्रिय पथिक समाजू । धीरजु धरिय त पाइअ पारु । नाहि त बूढ़िहि सब परिवारु । सो कर्णधार तो चल बसे । सब लोग शोक सिन्धु में डूब रहे थे । उन्हें भरतजी ने अवलम्ब दिया । सबको लेकर चित्रकूट आये । यथा : सोक

सिंधु बूडत सबहि तुम्ह अवलबनु दीन्ह । यहाँ आने पर रामजी के वचनरूपी प्रतिकूल मारुत का ऐसा झोका लगा कि सारा जहाज विकल हो गया । उसी समय गुरुजी का वचन ऐसा मज्जलमूल हुआ कि उससे सबकी विदाई भी रुक गयी और यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि प्रजा आपको अपनी आँखों के मोट नहीं चाहती । यह वचन तो ऐसा हुआ मानो हवा अनुकूल बह गयी ।

पावन पय तिहुँ काल नहाही । जो बिलोक अघ ओघ नसाही ॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि । निरखहि हरपि दंडवत करि करि ॥२॥

अर्थ - जिस जल के दर्शन से पाप समूह नष्ट हो जाता है उस पवित्र जल में लोग त्रिकाल स्नान करते हैं । दण्डवत् करके लोग मज्जल मूर्ति का दर्शन प्रसन्न होकर आँख भर कर रहे हैं ।

व्याख्या : अब पवन को अनुकूलता में जो सुख हुआ उसे कहते हैं । मन्दाकिनी गङ्गा की धारा है । पातक पोतक डाकिनी हैं । डाकिनी को देखने से बच्चे डरकर मर जाते हैं । इसी भाँति मन्दाकिनी के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं । उसके पवित्र जल में सब लोग त्रिकाल स्नान करते हैं । स्नान के बाद दर्शन करते हैं । सरकार मज्जल भवन अमज्जल हारी है । उनका दर्शन आँख भरकर कर रहे हैं । क्योंकि दर्शन की भूख है । पियत नयन पुट रूप पियूखा । मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा । पहिले साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं । तत्पश्चात् खड़े होकर दर्शन कर रहे हैं । भाव यह कि किसी की सरकार के प्रति मनुष्य बुद्धि नहीं है ।

राम शैल वन देखन जाँही । जहँ सुख सकल सकल दुख नाँही ॥
झरना झरहि सुधासम वारी । त्रिविध तापहर त्रिविध बयारी ॥३॥

अर्थ रामशैल और रामवन देखने जाते हैं । जहाँ सब सुख है और दुख सब के सब नहीं हैं । झरनों से अमृत के समान जल झरता है और त्रिविध ताप हरनेवाली त्रिविध वायु चल रही है ।

व्याख्या तत्पश्चात् सब लोग यात्रा के लिए जाते थे । रामशैल और वन की यात्रा करते थे । वे लोग राम वन से बाहर ही टिकाये गये थे । अतः वहाँ यात्रा के लिए जाते हैं । रामशैल वन की महिमा कहते हैं कि वहाँ सभी सुख हैं । शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ही द्वारा बाह्य ज्ञान होता है । सो वहाँ सब अनुकूल हैं और दुख सबके सब नहीं हैं । वहाँ शान्ति ऐसी है कि सब दुख भाग जाते हैं और मन को परम विश्राम मिलता है । अब सब सुखों का वर्णन करते हैं कि झरनों के जल अमृत की भाँति स्वादु और तोषदायक है । शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलती है । वह ऐसी अद्भुत है कि आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ताप का हरण करती है और ससार की त्रिविध वायु तो केवल भौतिक ताप को कम करने वाली होती है ।

विटप वेलि तृण अगणित जाती । फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाही । जाइ बरनि वन छवि केहि पाही ॥४॥

अर्थ अगणित जाति के विटप वेलि और तृण थे । फल फूल और पत्ते अनेक प्रकार के थे । सुन्दर चट्टान और सुख देनेवाली पेड़ों की छाया थी । वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है ।

व्याख्या रामशैल का वर्णन करके वन का वर्णन करते हैं । ऐसा वन है जिसमें एक ही जाति के पेड़ नहीं हैं सभी जाति के पेड़ हैं । जिनकी गिनती नहीं हो सकती । यही हाल वल्ली और तृण का है । अतः अपूर्व शोभा वन की हो रही है । विटप में फल हैं । वल्ली में फूल हैं और तृण में पत्ते हैं । जब विटप वेलि और तृण अगणित जाति के हैं तब फल फूल और पत्ते भी उतने ही भाँति के होंगे ।

सुन्दर चट्टान पड़ी है । चलते चलते थक जानेवालों के लिए वे विश्रामप्रद हैं और वे भी पेड़ों की छाँह में हैं । जैसे बागों में कुरसियाँ लगी रहती हैं । कवि का कहना है कि वन की छवि ऐसी है जो किसी से वर्णन की नहीं जा सकती । यथा : सो वन बरनि न सक अहिराजा । जहाँ प्रकट रघुवीर बिराजा ।

दो सरनि सरोरुह जल बिहग, कूजत गुजत भृग ।

बैर बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहग बहु रग ॥२४९॥

अर्थ तालाबों में कमल खिल रहे हैं । जल के पक्षी कूज रहे हैं और भैंर गूँज रहे हैं । बैर को छोड़कर वन में मृग और बहुत रङ्ग के पक्षी विहार कर रहे हैं ।

व्याख्या सरनि सरोरुह से गन्ध कहा । बिहग कूजत गुजत भृग से शब्द कहा । झरना झरहि सुधासम वारी से रस कहा । त्रिविध साप हर त्रिविध बयारी से स्पर्श कहा । जाइ बरनि वन छवि केहि पाही से रूप कहा । इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा ।

कोल किरात भिल्ल वनवासी । मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी ॥

भरि भरि परन पुटी रचि रूरी । कंद मूल फल अकुर जूरी ॥१॥

अर्थ वन के रहनेवाले बोलकिरात और भील पवित्र सुन्दर और अमृत सी सुस्वाद मधु को सुन्दर पत्तों की दोनियाँ रचकर उनमें भरकर और कन्द मूल फल अकुर और जूरी को ।

व्याख्या कोल किरात भील ये सब जङ्गली जातियों के नाम हैं । रामजी के पधारने पर भी इन सबों ने आतिथ्य सत्कार किया था । यथा कंद मूल फल भरि भरि दोना । चले रक जनु लूटन सोना । अब अयोध्यावासी जो वन में विहरने गये हैं उनके आतिथ्य सत्कार का उपक्रम करते हैं । वे लोग पत्तों की दोनियों में शहद भर भरकर लाये जङ्गली जाति ऐसी सुन्दर दोनियाँ बनाते हैं जिनमें भरा

हुआ जल टपक नहीं सकता । मधु शब्द का शहद भी अर्थ है और मद्य भी अर्थ है । इसीलिए शुचि शब्द दिया जिसमें शहद का ही बोध हो । सुन्दर स्वादु मधु कमल की होती है । कदाचित् ही कोई वस्तु ऐसी स्वादु होती हो । इसलिए अमृत सी कहते हैं । जङ्गली जाति भीठे के नाम पर केवल शहद को ही जानते हैं । अतः उनके आतिथ्य सत्कार में प्रधानता मधु की है । इसलिए पहले उसी का उल्लेख करते हैं । कन्द मूल फल अकुर जूरी का तो बोझा ही है । इसलिए उनके लिए पात्र नहीं कहा । अथवा उन्हें भी दोनों में भरकर लाये । जूरी बनारस प्रान्त की भाषा है । जिस अङ्कुर में पत्ते आजायें और फटकर अलग न हो उसे जूरी कहते हैं । सूरन आदि की जूरी ही खाने के काम में आती है । क्योंकि वह गला नहीं काटती ।

सबहि देहि करि विनय प्रनामा । कहि कहि स्वादु भेदु गुन नामा ॥
देहि लोग बहु मोल न लेही । फेरत राम दोहाई देही ॥२॥

अर्थ : सबको विनय और प्रणाम करके देते हैं । उनके स्वाद का भेद बतलाते हैं । उनके गुण कहते हैं । नाम बतलाते हैं । लोग उनका अधिक मूल्य देते हैं । फिर भी नहीं लेते । फेरने पर रामजीकी दोहाई देते हैं ।

व्याख्या नगर के लोग वन के कन्द मूलादि को क्या जानें । इसलिए उन्हें उनका स्वाद गुण और नाम बतलाते हैं । भाव यह कि जो आपकी प्रकृति के अनुकूल पड़े उसे स्वीकार करिये । जिसे बतलाइये उसे और लावें । उनके स्वीकार करने से अपने को कृतकृत्य समझते हैं । अतः प्रणाम पूर्वक स्वीकार करने के लिए विनय करते हैं ।

उनकी श्रद्धाभक्ति से प्रसन्न होकर अवधवासी उनकी बहुत कीमत देते हैं । वे कीमत लेने पर राजी नहीं । अवधवासी मुफ्त में लेना नहीं चाहते । अतः फेर देते हैं । इस पर वे रामजी की दोहाई देते हैं । विनय प्रणाम से जब काम न चला तब स्वामी की दोहाई दी ।

कहहि स्नेह भगन मृदु वाणी । मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निपादा । पावा दरसनु राम प्रसादा ॥३॥

अर्थ वे स्नेह में भग्न होकर कोमल वाणी से कहते थे कि प्रेम की पहिचान करके साधु लोग मानते हैं । आप लोग पुण्यात्मा हैं । हम नीच निपाद हैं । रामजी के प्रसाद से आपका दर्शन मिला ।

व्याख्या • वे प्रेम में भग्न हैं कि हमारे यहाँ ऐसे ऐसे पुण्यात्मा अतिथि आये हैं । अतः मृदुवाणी बोलते हैं कि आप लोग साधु हैं । साधु लोग प्रेम के ग्राहक होते हैं । यह प्रेमोपहार है । हम लोग भी व्यवसायी नहीं हैं ।

हम लोग आप लोगों के पादार्पण से कृतकृत्य हैं । क्योंकि आप उत्तम हैं । सुकृती हैं । उस जन्म में सुकृत किया है तब ऐसा जन्म पाया है । इस जन्म में भी पुण्य ही कमा रहे हैं । किसी दूसरे की वस्तु बिना कीमत चुकाये लेना नहीं चाहते ।

हम निषाद है। निषाद पापी जाति मात्र का उपलक्षण है। अतः निषाद मे कोल किरात भिल्ल तीनों का अन्तर्भाव है। निषाद कहने का भाव यह कि पूर्वजन्म के पाप से नीचकुल मे जन्म हुआ और इस जन्म मे भी पापाचरण ही हो रहा है। हमारा इतना भाग्य कहाँ कि आप लोगो का दर्शन हमे मिले। यह तो रामजी की कृपा है कि आपका दर्शन मिला। वे कृपा करके यहाँ आये और उसी कारण से आप यहाँ आये हुए हैं।

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा ॥

राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चाहिअ जस राजा ॥४॥

अर्थ : हम लोगो को तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जैसे मरुभूमि मे गङ्गाजी की धारा दुर्लभ है। कृपालु रामजी ने निषादो पर दया की। परिजन प्रजा को भी राजा का अनुगमन करना चाहिए।

व्याख्या : कोल किरात कहते हैं कि हम लोगो की भूमि मरुभूमि तुल्य है। जहाँ जल दुर्लभ है। कूप भी ऐसे विरल हैं जहाँ कठिनता से भी जल की प्राप्ति हो सके वहाँ जैसे गङ्गा की धारा बह उठे। इस भाँति आपका आगमन हमारे यहाँ हुआ है। हम लोग कृतकृत्य हो गये तो क्या हम गङ्गा की धारा की पूजा न करें। गङ्गा की धारा को क्या यह शोभा देता है कि वह कहे कि मैं पापियो का उपहार न ग्रहण करूँगी। तब गङ्गा आयी क्यों ? गङ्गा का आगमन तो पापियो के उद्धार के लिए ही होता है।

कृपाल रामजी ने निषादो पर कृपा की। निषादराज का सत्कार स्वीकार किया। यहाँ आने पर हम लोग जो कुछ कन्द मूल फल ले गये उसे स्वीकार किया। आप लोग तो उनकी प्रजा है। प्रजा को राजा का अनुगमन करना चाहिए। राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा. पापे पापा समे समा.। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। अतः आप लोग हमारा प्रत्याख्यान न कीजिये।

दो. यह जियँ जानि संकोचु तजि, करिअ छोहु लखि नेहु।

हमहि कृतारथ करन लगि, फल तृण अंकुर लेहु ॥२५०॥

अर्थ : ऐसा जी मे जानकर सङ्कोच छोड़कर हमारा स्नेह देखकर छोह कीजिये। हम लोगो को कृतार्थ करने के लिए फल तृण और अङ्कुर को स्वीकार कीजिये।

व्याख्या : राजा रामचन्द्र ने हमारे सत्कार को स्वीकार किया। दाम देने की बात भी जवान पर न लाये। आप क्यों सङ्कोच करते हैं। आपके लिए रास्ता साफ है कि राजा स्वीकार कर चुके तो हमे क्या दोष है। अतः सङ्कोच न करिये। हम छोटे हैं। हम पर छोह करिये। हमारा प्रेम देखिये कि वन मे से ढूँढ़कर अच्छे फूल फल लाये हैं। आपको आवश्यकता नहीं है। अयोध्या से रसद लदकर आयी है।

पर हम कृतार्थ कैसे होंगे । आप हम लोगो को कृतार्थ करने के लिए स्वीकार करिये । हमारे गार्हस्थ्य धर्म की रक्षा कीजिये ।

तुम्ह प्रिय पाहुने वन पगु धारे । सेवा जोगु न भाग हमारे ॥
देव^१ काह हम तुमहि गोसाईं । ईंधनु पात किरात मिताई ॥१॥

अर्थ • आप प्रिय अतिथि वन में पधारें हैं । हमारे भाग्य आपकी सेवा करने योग्य नहीं । हे गोसाईं । हम आपको क्या देंगे । किरात की मित्रता तो ईंधन और पत्ते की होती है ।

व्याख्या • पाहुन अर्थात् अतिथि । अतिथि कहकर पूज्य होना चोतिन किया । प्रिय दर्शन होने से प्रिय पाहुन कहते हैं । यथा प्रिय पाहुने भूप सुतचारी । यह अघटित घटना हुई कि आपका पधारना वन में हुआ । हमारा धर्म है कि आपको पूजा करें । मन में बड़ा उत्साह भी है कि आपकी पूजा करें । परन्तु भाग्य हमारा खोटा है तब पूजा चाहिये जिस देवता । हममें आपकी पूजा की शक्ति नहीं है । हम आपका उचित सत्कार नहीं कर सकते ।

आपको सङ्कोच है कि हम दूसरे का मुफ्त कैसे लें । यहाँ हमारे पास धरा ही क्या है जो आपको दें । प्रसिद्ध कहावत है ईंधन पात किरात मिताई । किरात प्रेम करें तो ईंधन दें और पत्ते दें । सो हम ईंधन पत्तेवाले आप ऐसे ऐश्वर्य-वान् की पूजा कैसे करें ।

यह हमारि अति बडि सेवकाई । लेहि न वासन वसन चोराई ॥
हम जड जीव जीवगन घाती । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥२॥

अर्थ हमारी बड़ी भारी सेवा यही है कि हम आपका वस्त्र कपड़ा नहीं चुरा लेंगे । हम जड़ जीव हैं । जीवगण को मारा करते हैं । कुटिल, कुचाली, कुमति और कुजाति हैं ।

व्याख्या आप ऐसे महान् हैं कि हमारे दिये हुए फल फूल को भी बिना मूल्य दिये स्वीकार नहीं करते और हम ऐसे नीच हैं कि चोरी करके भी दूसरे की वस्तु ले लेते हैं । हमें कपड़े वस्त्र कहाँ मिले । अतः उसके लिए चोरी करते हैं । आपके यहाँ कपड़े और वस्त्र भरे पड़े हैं । पर हमने नहीं चोराया । यह हमारी थोड़ी सेवकाई नहीं है । आप नहीं समझ सकते कि कपड़ा और वस्त्र देखने के बाद एक किरात को चोरी से मन को रोकने में कितने बड़े मनोनिग्रह से काम लेना पड़ता है ।

केवल चोरी ही नहीं प्राण मारकर चोरी करते हैं । हिंसा ही हमारा उद्यम है । हम जड़जीव हैं । जीवों को मारा करते हैं । मन से कुटिल हैं । करणों से कुचाली हैं । बुद्धि से कुमति हैं और व्यवहार में कुजाति हैं । दिन रात द्रोह करते हैं ।

पाप करत निसि वासर जाही । नहि पट कटि नहि पेट अघाही ॥

सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ । यह रघुनन्दन दरस प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ : पाप करते रात दिन बीतता है । न तो कमर में कपड़ा है और न पेट अघाता है । हमको कभी धर्म बुद्धि कैसी ? यह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है ।

व्याख्या : किरात कहते हैं कि हम लोग रात दिन पाप ही करते हैं । चोरी और हिंसा की जीविका है । फिर भी भूखे नगे रहते हैं । जीवन निर्वाह दुष्कर है । पुनर्दरिद्रो पुनरेव पापी । पाप करते हैं लोग लौकिक सुख के लिए । हमे पाप करने पर भी अन्न वस्त्र दुर्लभ है । यह तो जाग्रत का हाल है ।

अब सपने का हाल सुनिये । जाग्रत के संस्कारानुसार ही स्वप्न होता है । अतः स्वप्न में भी पाप कर्म ही देखते हैं । धर्मबुद्धि सपने में भी दुर्लभ है । यह धर्मबुद्धि जो हम लोगों में पाप देख रहे हैं कि अतिथि सत्कार का भाव जाग्रत हुआ है वह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है । आपके राजा द्वारा ही तो हममें धर्मबुद्धि का उदय हुआ है । हम सत्कार करने चले हैं और आप ही प्रत्याख्यान द्वारा उसका अवरोध कर रहे हैं ।

जब तैं प्रभु पद पदुम निहारे । मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥

वचन सुनत पुरजन अनुरागे । तिन्हके भाग सराहन लागे ॥४॥

अर्थ : जब से सरकारी चरण कमलों का हमें दर्शन हुआ हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गये । वचन सुनकर पुरजन अनुराग में आगये । उनके भाग्य की प्रशंसा करने लगे ।

व्याख्या : सरकार के दर्शन से बुद्धि भी पलटी और दुःख दोष भी मिटा । दोष होने से ही दुःख होता है । अतः दुःख अपने कारण के साथ मिट गया ।

भविष्य में भी पाप की आशङ्का नहीं रह गयी । इस समय हम सब तरह से शुद्ध हैं । सरकार के दर्शन के बाद भी क्या हम में दोष लगा है ।

विनती युक्तियुक्त भक्ति संयुत वचन सुनकर पुरजनों को अनुराग हुआ । वे लोग उनके भाग्य की सराहना करने लगे : बड़ भागी बन अवध अभागी । जो रघु-वंश तिलक तुम त्यागी । भाग्यवान् ये लोग हैं जिनमें सरकार आकर बसे हुए हैं । आज हम लोग अभागी हो रहे हैं जिन्हे छोड़कर सरकार यहाँ आये हैं ।

छं. लागे सराहन भाग सब अनुराग वचन सुनावही ।

बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेह लखि सुख पावही ॥

नरनारि निदरहि नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा ।

तुलसी कृपा रघुवंसमनि की लोह लै लौका तिरा ॥

अर्थ : सब लोग उनके भाग की सराहना करते हैं और अनुराग के वचन सुनाते हैं । उन लोगों का बोलना मिलना और सीता रामजी के ऊपर जो उनका

स्नेह है उसे लखवर सुख पा रहे हैं। नर नारी कोल भीलो की वाणी सुनकर अपने प्रेम का अनादर करते हैं। श्री तुलसीदास कहते हैं कि यह रघुवशमणि की कृपा है कि लोहा लेकर लौका तिर गया।

व्याख्या यहाँ प्रसङ्ग यह है कि अवधवासियों में और किरातो में शास्त्रार्थ छिड़ गया है। जङ्गली लोग आतिथ्य के लिए कन्द मूल फल लाये हैं। अवधवासी उसका मूल्य देना चाहते हैं और न लेने पर उनका कन्द मूल फल फेर देते हैं। हम अन्त्यजो का प्रतिग्रह क्यों करें। धर्मशास्त्र में यह महा निषिद्ध है। जङ्गलियों का उत्तरपक्ष यह था कि सरकार के दर्शन से हमारे दोष दुख मिट गये। यह दान भी नहीं है आतिथ्य सत्कार है। उदाहरण में वे स्वयं सरकार को देते हैं कि उन्होंने हमारा सत्कार स्वीकार किया है। इस वाग्युद्ध के अन्त में जङ्गलियों की जीत हुई। अवधवासियों के पास उत्तर नहीं रह गया। उनका प्रेम देखकर अपने प्रेम की निन्दा करने लगे। अर्थात् उन्हें सत्कार स्वीकार करना पड़ा। इसी बात को महाकवि ने चार अक्षरों में कहा लोहा लै लौका तिरा। अर्थात् सामना करके लौका तिर गया। लोहा लेना सामना करना या लड़ाई करने को कहते हैं। यथा सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। लौका तिरने का अधम साधन है सो समर में लोहा लेकर सामना करके जहाज का तिरना कठिन हो जाता है। यहाँ अवधवासियों से मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुदर सब भाँति। से सामना करके अर्थात् शास्त्रार्थ करके लौका कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। तिर गया। अर्थात् पार पा गया। अवधवासियों को उनका फल मूलादि ग्रहण करना पड़ा।

दो विहरहि वन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।

जल ज्यौ दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥२५१॥

अर्थ सब लोग प्रसन्न होकर वन में चारों ओर प्रतिदिन विचर रहे हैं। पहली ही वर्षा में जिस प्रकार मेढक और मोर मोटे हो जाते हैं उसी प्रकार इन लोगों की भी दशा हो गयी।

व्याख्या मानसिक सुख दुख का प्रभाव शरीर पर कितना बड़ा पड़ता है। इसी बात को दिखाते हुए कवि कहते हैं कि नित्य लोग प्रसन्न मन से वन में चारों ओर विचरते हैं जहाँ सुख सकल सकल दुख नाही। अतः उनकी दशा उन मेढक और मोरों सी हो रही है जो पहिली ही बरसात में हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं।

वर्षारितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास। राम नाम बर बरन जुग सावन भादो मास। एक ऐसे हैं जो मोर की भाँति ठहर ठहरकर सुस्वर से नामोच्चारण करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो मेढक की भाँति नाम की धुन बाँधते हैं। ये राम घनश्याम की कृपा दृष्टि को वृष्टि से पहिली ही वर्षा भक्ति की उमग में हृष्ट पुष्ट हो गये। नहीं तो तनकृस मन दुख बदन मलीने थे।

पुरजन नारि मगन अति प्रीती । वासर जाहि पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति वेप बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥१॥

अथ पुर नर नारि अत्यन्त प्रीति म मग्न थे । पलक की भाँति दिन बीत रहे थे । सीताजी जितनी सास थी उतने वेप बनाकर आदर के साथ समान सेवा करती थी ।

व्याख्या पुर नर नारी ऐसे प्रेम में मग्न हुए कि बाहर का उन्हें कुछ अनुसन्धान भी नहीं रहा । पूरा दिन बीत गया । उन्हें मालूम हो रहा है कि एक निमेष बीता है । अत्यन्त सुख के दिन बीतते देर नहीं लगती । यथा मास दिवसकर दिवस भा मरम न जानै कोइ ।

सब लोगो का हाल कहकर अब रनिवास का हाल कहते हैं । भगवती सास की सेवा के लिए पहुँच गयी । सासों की सेवा की बड़ी अभिलाषा है । यथा सेवा समय दैउ बन दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा । सो मनोरथ के पूरा करने का अवसर हाथ लगा । सास हैं सख्या में अधिक । एक शरीर से सबकी सेवा हो नहीं सकती । अतः जिस भाँति सबसे मिलने के लिए सरकार ने अमित रूप धारण किया उसी भाँति भगवती भी जितनी सास थी उतनी हो गयी । निरादर के साथ सेवा किसी काम की नहीं । अतः सादर सबकी समान भाव से सेवा करने लगी । जैसी सेवा कौसल्या की वैसी ही सेवा कैकेयी की ।

लखा न मरमु राम बिनु काहू । माया सब सिय माया माहूँ ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही । तिन्ह लहि सुख सिख आसिप दीन्ही ॥२॥

अर्थ इस भेद को सिवा रामजी के और कोई नहीं लख पाया । क्योंकि सत्र माया सीताजी की माया के अन्तर्गत है । सीताजी ने सासुवों को सेवा के वश कर लिया । उन्होंने सुख पाकर शिक्षा और आशीर्वाद दिये ।

व्याख्या सब सास समझ रही है कि सीता केवल मेरी सेवा में है । यहाँ पृथक् पृथक् महल भी नहीं हैं । सब दासियाँ सब जगह आ जा रही हैं । फिर भी इस मर्म को कोई न लख सका कि सीताजी की सब सासों के पास युगपत् उपस्थिति कैसे हो रही है । न लखने का कारण देते हैं कि यह सीताजी की माया है और जितनी माया है सबकी सब इसके सीताजी की माया के अन्तर्गत हैं । आदि सक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया । अतः जिसकी माया है वही मर्म को लख सका । विवाह के समय भी जो महिमा भगवती ने प्रकट किया था उसे रघुनाथक हो जान सके थे । जीव उम माया के मर्म को कैसे लख सकता है ?

भगवती ने ऐसी सेवा की कि सास सत्र उतने वश में हो गयी । उन्हें बड़ा सुख हुआ । सुख मिलने पर बड़ों से दो वस्तुएँ मिलती हैं । एक शिक्षा और दूसरा आशीर्वाद । सो दोनों मिला ।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई । महि न बीचु विधि बीचु न देई ॥३॥

अर्थ : सीताजी के सहित दोनों भाइयों को सरल देखकर कुटिल रानी पेट भर पछतायी । अब कैकेयी पृथ्वी और यम से याचना करती है । पर न तो पृथ्वी फटती है और न ब्रह्मदेव मृत्यु देते हैं ।

व्याख्या : सब माताओं का हाल कहकर अब रानी कैकेयी का हाल कहते हैं । सीताजी की सेवा के वश हो गयी । उन्होंने रामजी को कुटिल समझा था । यथा : सहज सरल रघुवर बचन कुमति कुटिल करि जान । अब देखा कि दोनों भाई सरल हैं । रामजी ने जो कहा था : सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी । तनय मातु पितु तोपनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा । मुनिगन मिलन विसेपि बन सबहि भाँति हित मोर । तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर । भरतु प्रान प्रिय पावहि राजू । विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू । सो इनका आन्तरिक भाव था । वन देने से मुझ पर कुछ भी रोप नहीं है और सीता भी वैसी ही हैं । मैंने इस महासाधुओं के साथ क्या किया ? पछतायी तो पहिले भी थी । पर अब पेटभर पछतायी । यह पश्चात्ताप तो तभी मिटे जब पृथ्वी फटे मे समा जाऊँ या विधाता मुझे मौत दें । अतः पृथ्वी और यम से प्रार्थना करती हैं । पर न तो पृथ्वी फटती है न विधाता मौत देते हैं । यम भी विधाता की आज्ञा के अनुवर्ती है । बिना विधाता की आज्ञा के मृत्यु भी नहीं दे सकते । अतः यम न कहकर विधाता कहा ।

लोकहु वेद विदित कवि कहही । राम विमुख थलु नरक न लहही ॥
यह संसउ सब के मन माँही । राम गवनु विधि अवध कि नाँही ॥४॥

अर्थ : यह बात लोक और वेद में प्रसिद्ध है और कवि भी कहते हैं कि रामविमुख को नरक भी स्थान नहीं देता । यह सशय सबके मन में है कि है विधि ! रामजी अवध जायँगे कि नहीं ।

व्याख्या : इस बात पर सबका ऐकमत्य है कि राम विमुख का कहीं ठिकाना नहीं लगता । अन्य पापियों का तो ठिकाना नरक में लगता है । पर राम विमुख को स्थान देना नरक भी स्वीकार नहीं करता । सब जग ताहि अनलहु ते ताता । जो रघुवीर विमुख सुनु आता ।

रनिवास का हाल कहकर अब रामजी के घर के लौटने के विषय में क्या हो रहा है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि सबके मन में यह सशय है कि रामजी घर लौटते हैं कि नहीं । उनके कहने से उनका रुख स्पष्ट है कि लौटना नहीं चाहते । पर गुरुजी हम लोगों की ओर से बोल रहे हैं । इसलिए सब लोग सशय में पड़े हुए हैं कि देखें क्या होता है ।

दो. निसि न नीद नहि भूख दिन, भरतु विकल सुचि सोच ।

नीच कीच विच मगन जस, मीनहि सलिल संकोच ॥२५२॥

अर्थ : न रात को नीद है न दिन को भूख है । भरतजी पवित्र सोच में विकल हैं । जैसे कीच में नीचे डूबी हुई मछली को जल का सङ्कोच हो । जल न मिले ।

व्याख्या : सोच करनेवाले को न रात को नीद लगती है न दिन को भूख लगती है । महात्माओं का सोच भी पवित्र होता है । क्योंकि वह अविद्या के अन्तर्गत न होकर विद्या के अन्तर्गत होता है । विकलता भी साधारण नहीं है । अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना । सो यहाँ दो दिन की अवधि है वह भी बीत चली । पानी सूख चला कीचड़ बाकी है । कीचड़ के भी सूखने के भय से महाविकल है । इसी भाँति भरतलालजी की विकलता कहा । ये बड़े मच्छ हैं । इसलिए विकलता विशेष है और मछलियों के लायक पानी है । उन्हें सोच नहीं वे मगन हैं । यथा : पुर नर नारि मगन अति प्रीती ।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली ॥

केहि विधि होइ राम अभिपेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ॥१॥

अर्थ : माता के व्याज से काल ने कुचाल किया । जैसे धान पकते समय ईति का भय हो । किस विधि से रामजी का अभिपेक हो मुझे ता कोई उपाय नहीं फुर रहा है ।

व्याख्या : अब भरतजी का सोच कहते हैं । भरतजी को कैकेयी का पछिनावा है । अतः कहते हैं कि माता को तो व्याज बनाया कराल काल ने । यथा : सब कर आज सुकृत फल बीता । भयउ कराल काल विपरीता । क्योंकि सभी कार्यों की सिद्धि में बाल असाधारण कारण है । उपमा देते हैं कि जैसे धान पकने के समय अतिवृष्टि हो पड़े । अथवा कोई दूसरी ईति आ पड़े । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूपक, टिड्डी और राजाओं का आक्रमण यह सब ईतियाँ हैं । इसी भाँति सरकार के राज्याभिषेक के समय कैकेयी का वरदान हुआ । यथा : मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ।

सब लोग तो केवल शंका में पड़े हैं कि देखें रामजी लौटते हैं या नहीं । पर भरतजी तो उपाय सोच रहे हैं कि किस उपाय से रामजी का अभिपेक हो । किस भाँति लौटने पर राजी हो जायें । तब अभिपेक के लिए कहा जाय । जिससे राजसी ठाट से घर लौटें । पर कोई उपाय स्थिर नहीं कर पा रहे हैं । सबसे प्रबल उपाय मौजूद है । पर उनसे काम कैसे लिया जाय । अतः भरतजी कहते हैं कि कोई सामञ्जस्य नहीं बैठता ।

अवसि फिरिहि गुर आयसु मानी । मुनि पुनि कहव राम रुचि जानी ॥

मातु कहेहुं बहुरहि रघुराऊ । राम जननि हठ करवि कि काऊ ॥२॥

अर्थ गुरुजी की आज्ञा मानकर तो निश्चय ही लौट चलेंगे। पर मुनिजी रामजी का रुख देख लेंगे तब कहेंगे। माता के कहने पर भी रामजी लौटेंगे। पर वे राम की माता हैं वे क्या कभी हठ करेंगी ?

व्याख्या सबसे बड़ा उपाय तो यह है कि गुरुजी आज्ञा दें तो पिता की आज्ञा गुरुजी की आज्ञा के सामने हट जायगी। आचार्यों यस्तु या जाति विधिवद्वेद पारग। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा। पिता तो इस स्थूल देह को उत्पन्न करता है। पर आचार्य से जो जन्म सावित्री द्वारा होता है यही सत्य है और अजर अमर है। अतः गुरु का पद पिता से भी बड़ा है। उनके आज्ञा देने पर निश्चय अयोध्या लौट चलेंगे। पर गुरुजी तो उनका रुख देखते हैं। यदि उनका रुख अनुकूल होगा तभी आज्ञा देंगे। वन चलते समय महल से निकलकर गुरुजी के ही द्वार पर खड़े हुए। गुरुजी चाहते तो रोक लेते। पर गुरुजी ने रुख नहीं पाया। इसलिए नहीं रोका।

इनके बाद माता का दर्जा है। माता यदि हठ पकड़ लें तो भी लौट चलेंगे। पहिले भी माता ने कहा था जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बडि माता। जौ पितु मातु कह्यौ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना। पर यह रामजी की माता हैं। यह कभी हठ करेगी नहीं। वन जाते रोका भी तो यह कह दिया कि यदि कैकेयी की भी आज्ञा हो तो चले जाओ। हठ करना तो मेरी माता जानती है कि चाहे प्रलय हो जाय वह अपने हठ से नहीं हटती। सो कौसल्याजी कभी हठ करेंगी ही नहीं।

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि मह कुसमउ बाम विधाता ॥

जौ हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि ते गुरु सेवक घरमू ॥३॥

अर्थ मैं तो सेवक हूँ। मेरी बात ही क्या ? तिस पर कुसमय है और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ कर बैठूँ तो यह बड़ा भारी बुरा काम होगा। क्योंकि सेवक का धर्म कैलाश से भी भारी है।

व्याख्या भरतजी समझ रहे हैं कि इनके बाद यदि किसी का प्रभाव पड़ सकता है तो मेरा ही पड़ सकता है। सरकार स्वयं कहेंगे तासु बचन मेदत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू। फिर भी मैं तो सेवक हूँ। सेवक की बात ही क्या है। उसका धर्म स्वामी को सङ्कोच न आने देना ही है। यथा जो सेवक साहिबहिं सकोची। निज हित चहै तासु मति पोची। सो मैं यदि हठ कर बैठता हूँ तब तो सेवक धर्म ही जाता रहेगा। इससे बढ़कर अनुचित क्या होगा ? सेवक धर्म का सँभाल बड़ा कठिन है। कैलाश पर्वत उठाना उतना कठिन नहीं है। रावण ने कैलाश उठाया पर सेवक धर्म सँभाल न सका। स्वामी का घर ही उखाड़ डाला। अतः मैं हठ कर नहीं सकता।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन विहानी ॥

प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई। बैठत पठए रिपयँ बोलाई ॥४॥

अर्थ एक युक्ति भी मन में नहीं ठहरी । भरत को सोचते ही सोचते रात बीत गयी । सवेरे नहाकर और प्रभु को प्रणाम करके बैठते ही ऋषिजी ने बुला भेजा ।

व्याख्या भरतजी ने इन उपायों के अतिरिक्त और भी उपाय सोचे जिनका वर्णन विस्तार से आगे होगा । जिसमें पिताजी का वचन भी बना रहे और सरकार अयोध्या भी लौट चलें और वह यह है कि हम दोनों भाई अपना अपना हिस्सा पलट लें । रामजी मानते हैं पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । सो कानन का राज मैं ल लूँ और अवध का राज्य रामजी स्वीकार करे । पर यह बात प्रमाण न होने पावेगी । सरकार मुझ भी पिता के वचन से न हटने दगे । यह बात प्रमाण तो तब हो जब गुरुजी इसकी व्यवस्था दे । पर यह बात गुरुजी क्यों नहीं कहते । इसी विचार में रात बीत गयी कोई बात मन में बैठी नहीं । सब लोग सोये पर भरतजी जागते ही रह गये ।

भरतजी भी स्नान करके सरकार के दर्शन के लिए जाते हैं । सो ज्योंही दर्शन करके लौटकर बैठे तब तक ऋषिजी का बोलावा आगया । ऋषिजी का भाव यह कि दो दिन के लिए मैंने कहा था । सा बीत गया अब काम की बात हानी चाहिए ।

प्रथम सभा पुनि रघुपति बहु विधि समझाए प्रकरण

दो गुरु पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ ।

विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

अर्थ गुरुजी के चरणों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठे । ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री सब सभासद आकर जुट गये ।

व्याख्या सरकार ने गुरुजी से ही कहा था सब समेत पुर धारिअ पाऊँ । आप इहाँ अमरावतिराऊ उचित होय सा करिअ गोसाईं । अतः अब क्या करना उचित है । इसलिए गुरुजी ने सवेरा होते ही ब्राह्मण, महाजन अगुआ मन्त्री को बुलवाया और भरतजी को बुलवाया । भरतजी ने आकर चरणकमलों की वन्दना की । गुरुजी की आज्ञा पाकर बैठ गये । तब तक सब समाज जुट गया । सभा लग गयी ।

बोले मुनिवरु समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥

धरम धुरीन भानुकुल भानू । राजा राम स्ववस भगवानू ॥१॥

सत्य सध पालक श्रुति सेतू । राम जनमु जग मगल हेतू ॥

अर्थ श्रेष्ठ मुनिजी समय के अनुसार बोले कि हे सभासदों तथा सुजान भरत सुनो । धर्म के घुरन्वर तथा सूर्यकुल के सूर्य राजाराम स्वतन्त्र भगवान् हैं । वे सत्यसन्ध हैं । श्रुतिसेतु पालक हैं । राम का जन्म ससार के मङ्गल के हेतु हुआ है ।

व्याख्या मननात् मुनि । वसिष्ठजी मनन करनेवालों में श्रेष्ठ हैं । ये जा सत्रसे सम्मति पूछ रहे हैं यही समयानुबूल बोलना है । अयोध्या में यही निश्चय

हुआ था अवसि चलिअ वन रामु हैं । तथा जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी ।
आवहि बहुरि राम रजधानी । सो रामजी के पास तो हम लोग पहुँच गये । अब
रामजी अयोध्या कैसे लौटें कैसे उनका अभिषेक हो यही विचार करना है । इसी लए
गुरुजी ने सभा इकट्ठी की है । जिसमें सबकी लाभ हानि हो उसमें सबकी सम्मति
लेनी चाहिए । सभा के धर्माधर्म में सबका भाग है । अतः सभासदों को पहिल
सम्बोधन करते हैं । परन्तु गुरुजी जानते हैं कि इनमें करने धरनेवाले भरत हैं । अतः
विशेष लक्ष्य भरत की ओर है । उन्हें सुजान कहकर भणित भगति मति गति का
जानकार होना सूचित किया ।

अब कहते हैं कि रामजी धर्मधुरीण हैं । धर्म से डिगेगे नहीं । भानुकुलभानु हैं ।
यथा जानहु तात तरनि कुल रीती । सत्यसध पितु कीरति प्रीती । पिता की कीर्ति
को न विगडने दोगे । सत्यसन्ध हैं सत्य को छोड़ेंगे नहीं । श्रुति सेतुपालक हैं । पितृ देवो
भव मातृ देवो भव आदि जो वेद का मार्ग है उसे नष्ट न होने देंगे । रामजी का
जन्म केवल अयोध्या के मङ्गल के लिए नहीं है सम्पूर्ण ससार के मङ्गल के लिए है ।
सच्चे राजा तो राम ही हैं । इनकी आज्ञा का उल्लंघन हो नहीं सकता । क्योंकि सदा
स्वतन्त्र हैं । और सभी परवश हैं । माया के नचाने से नाचते हैं । ये भगवान् हैं ।
उत्पत्ति प्रलयश्चैव भूतानामगति गति । वेत्ति विद्यामविद्याश्च स सवाच्यो भगवान् इति ।
जो उत्पत्ति, प्रलय प्राणियों की अगति, गति, विद्या और अविद्या को जाने उसे
भगवान् कहते हैं ।

गुर पितु मातु वचन अनुसारी । खल दल दलन देव हितकारी ॥
नीति प्रीति परमार्थ स्वारथु । कोउ न राम सम जान जथारथु ॥२॥

अर्थ गुरु पिता माता के वचन के अनुसार चलनेवाले हैं । खल दल के दलन
करनेवाले और देवता के हितकारी हैं । नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ को राम की
भाँति यथार्थ कोई नहीं जानता ।

व्याख्या कभी पिता की आज्ञा उल्लंघन नहीं करेंगे । पूर्व के छवो विशेषणों
का यही सारांश है । अब पिछले दो विशेषणों का सारांश कहते हैं कि इन्हें खल
दल का नाश और देवताओं का हित करना है तुलसिदास जो रहों मातु हित की
सुर साधु विप्र भय टारें ।

इसके अतिरिक्त रामजी सा जानकार भी कोई नहीं । नीति प्रीति परमार्थ
और स्वार्थ के भीतर ही सब कुछ है । सो इन चारों विषयों का इनके समान कोई
जाननेवाला नहीं है । चारों को विचार के ही वन में आये हैं । यथा परमार्थ
मुनिगन मिलन विशेष वन । नीति तेहि पर पित आयसु । प्रीति सम्मत जननी
तोर । स्वार्थ भरत प्रान प्रिय पावहि राजू । विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू ।
विधि हरि हर ससि रवि दिसिपाला । माया जीव करम बुलि काला ॥
अहिप महिप जँह लगि प्रभुताई । जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥३॥

अर्थ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, कर्म और काल ये सब शेष से लेकर राजा तक जो प्रभुताई है और योग की सिद्धियाँ जिनका गान वेद ने किया है।

व्याख्या विधि हरि हर उत्पत्ति स्थिति और लय करनेवाले हैं। रवि शशि संसार के हित कर्त्ता और इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ये क्रमशः पूर्वादि दिशाओं के पालन करनेवाले हैं। माया जो सारे संसार को नचानेवाली है। जीव संसार का भोक्ता है। उसी के भोग के लिए संसार बना हुआ है और कर्म जिसकी मूर्ति संसार है और काल गुणों का क्षोभक जिसके कारण प्रकृति में वैषम्य होकर सृष्टि होती है और जो सबका सहारकर्त्ता है प्रभुताई की सोमा शेष से लेकर राजा तक है। शेष पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। राजा भी प्रजा रूपी धर्म द्वारा देश विदेश को धारण करता है और योग की अनेक सिद्धियाँ जो वेदादि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित हैं।

करि विचार जिय देखहु नीके । राम रजाइ सीस सबही के ॥४॥

अर्थ अच्छी तरह से जी में विचार करके देखो। रामजी की आज्ञा सबके सिर पर है।

व्याख्या यहाँ पर वसिष्ठजी सरकार के ऐश्वर्य को एक बारगी खोले देते हैं। महात्मा है। सभा में अन्यथा भाषण नहीं करेंगे। दूसरे यह कि त्रिकालज्ञ हैं। उन्हें भरतजी की इस भावना का उत्तर देना है। मुनि पुनि कहव राम रुचि जानी। कहते हैं कि सब लोग विचार करके अच्छी तरह से देखो। यह जो संसार का बड़ा भारी आडम्बर चल रहा है उसके चलानेवाले क्षण भर विश्राम न करके जो अपने कार्य में तत्पर हैं वे किसकी न हटाई जानेवाली आज्ञा के वशीभूत होकर काम कर रहे हैं। सभी रामजी की आज्ञा के वशीभूत हैं। वैसा ही चलने में उन्हें सुख है। यथा प्रभु आज्ञा जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

दो राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।

समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि समत सोइ ॥२५४॥

अर्थ रामजी की आज्ञा और रुख रखने से ही हम लोगों का कल्याण होगा। यह समझकर आप लोग सुचतुर हैं। सब लोग मिलकर राय बिठाओ।

व्याख्या गुरुजी का कहना है कि राय करने के पहिले इस बात को दृढ़ रूप से मन में रख लो कि रामजी की आज्ञा मानने और रुचि रखने में ही सबका कल्याण है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध कार्य करने में भलाई नहीं है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध चाहे मैं आज्ञा दूँ। चाहे कौसल्याजी हठ करें। चाहे भरतजी सझौच डालें। कभी कल्याणप्रद फल नहीं हो सकता। अतः उनकी आज्ञा और रुख को ध्यान में रखते हुए आप लोग कोई रास्ता सोचें।

सब कहँ सुखद राम अभिपेकू । मगल मोद मूल मगु एकू ॥
 केहि विधि अवध चलहि रघुराऊ । कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥१॥

अर्थ रामजी का अभिपेक होना सबके लिए सुखद है और यही एक रास्ता मङ्गल मोद का मूल है । अतः किस विधि से रामजी अवध चल इस बात को आप लोग समझकर कहिये । वही उपाय किया जाय ।

व्याख्या भरतजी सोचते थे केहि विधि होइ राम अभिपेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू । गुरुजी भी वही बात कहते हैं और उसका उपाय सत्रसे पूछते हैं । क्योंकि सबको इसी में सुख है । यही रास्ता मङ्गलमूल है और अभिपेक तभी सम्भव है जब रामजी अयोध्या लौटने को राजी हो । अब इनके लौटने की विधि क्या होगी ? पिता के वचन को ये छोड़ेंगे नहीं और बिना छोड़े अयोध्या जाना कैसे बनता है ? और बिना अयोध्या जाने को राजी हुए अभिपेक कैसे बनता है ? अभिपेक में झगडा नहीं है । उसे रामजी मान जायेंगे । क्योंकि पिता ने भरतजी को राज्य दिया । भरत उसे स्वीकार करते हैं और रामजी के चरणों में अर्पित किया चाहते हैं । अतः अभिपेक में बाधा नहीं है । बाधा है अयोध्या लौटने में । उसे कैसे दूर किया जाय । इसी पर आप लोग विचार करिये । जो उपाय निश्चित हो तदनुसार ही काम किया जाय ।

सब सादर सुनि मुनिवर वानी । नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
 उतरु न आव लोग भए भोरे । तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥२॥

अर्थ सब ने आदर के साथ मुनिवर की श्रेष्ठ वाणी सुनी । जो नीति परमार्थ और स्वार्थ से सनी हुई थी । किसी से जवाब नहीं चलता । लोग भोले हो गये । तब सिर नवाकर भरतजी ने हाथ जोडा ।

व्याख्या बोले मुनिवर समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना । इस भाँति सबसे सम्मति पूछना मुनिजी की नीतिमत्ता है । रामजी के स्वरूप का ज्ञान कराना परमार्थ है । राखे राम रजाय रख हम सबकर हित होइ । यह स्वार्थ है । इस भाँति वसिष्ठजी की नय परमारथ स्वारथ सानी वाणी सबने आदर से सुनी । भाव यह कि सबको विश्वास है कि मुनिजी कहते हैं वही तथ्य और वही पथ्य है ।

वसिष्ठजी पहले सभासदों को सम्बोधन करके बाले थे । अतः पहिले उन्हीं से उत्तर की आशा थी । सो इन लोगों की बुद्धि काम नहीं करती । अतः कवि ने कहा कि लोग भोले हो गये । अपनी बुद्धि का सभी को अभिमान होता है । पर जब वह काम नहीं करती तब लाचार होकर मानना ही पड़ता है कि बुद्धि काम नहीं कर रही है । अतः सब लोग चुप है । सबको चुप देखकर भरतजी ने माथा नवाकर हाथ जोडा । अर्थात् कुछ कहा चाहते हैं ।

भानुवंस भये भूप घनेरे । अधिक एक ते एक वडेरे ॥

जनम हेतु सब कहँ पितु माता । करम सुभासुभ देइ विधाता ॥३॥

अर्थ : सूर्यवंश में बहुत से राजा लोग हुए । उनमें से एक से एक अधिक और बड़े भी हुए । माँ बाप से उनका जन्म हुआ और शुभाशुभ कर्म ब्रह्मदेव ने दिया ।

व्याख्या : वैवस्वत मन्वन्तर भर में सूर्यवंशी राजाओं की प्रधानता रहती है । सो सूर्यवंश में न जाने कितने राजा हुए और बड़े बड़े प्रतापी हुए । किसे कम कहा जाय और किसे अधिक कहा जाय । पर इन लोगों के बड़प्पन का कारण क्या हुआ ? इसे विचारने पर तो यही देखा जाता है कि माता पिता तो केवल जन्म के कारण हुए और ब्रह्मदेव ने उस जन्म में भोगने के लिए शुभाशुभ कर्म का विधान कर दिया । अर्थात् प्रारब्ध कर्म निश्चित कर दिये । भाव यह कि माता पिता जन्म के साथी हैं पर कर्म का साथी कोई नहीं । ब्रह्मदेव के नियत शुभाशुभ कर्म को भोगने के सिवा अन्य गति नहीं ।

दलि दुख सजइ सकल कल्याणा । अस असीस राउरि जग जाना ॥

सो गोसाईं विधि गति जेहि छेंकी । सकै को टारि टेक जो टेकी ॥४॥

अर्थ : संसार जानता है कि आपका आशीर्वाद ऐसा है कि दुख को नाश करके सब कल्याणों को साज देता है । आप ऐसे स्वामी हैं कि ब्रह्मदेव की गति को भी रोक देते हैं । आपने जो टेक किया उसे कौन टाल सकता है ।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने जो शुभाशुभ नियत कर दिया उसे मिटानेवाला कोई नहीं । यथा : कह मुनीस हिमवत सुनु जो विधि लिखा लिलार । देव यज्ञ गन्धर्व मुनि कोउ न मेटनिहार । सो सूर्यवंश के पुरोहित आप हैं । आपके आशीर्वाद से सूर्यकुल के राजाओं का दुख टलकर सदा कल्याण हुआ । आपके आशीर्वाद का यह प्रताप संसार जानता है । अर्थात् मेरे कुल का कल्याण तो सदा आप द्वारा होता आया है ।

ब्रह्मा की गति शुभाशुभ कर्मों का विपाक है । सो अशुभ कर्म के विपाक को आप सदा से रोकते आये हैं । माता पिता की की हुई रक्षा न हुई । वे तो जन्म के साथी थे । विधाता ने शुभाशुभ दोनों कर्म दिया । उनसे भी कोई सहायता नहीं मिली । सहायता तो आपसे सदा मिलती आयी है । आपने हमारे कुल के लिए ब्रह्मा की गति को भी रोका है । आपने जो टेक घर लिया उसे ब्रह्मा भी नहीं टाल सकते । तो दूसरे की गिनती क्या ? अतः आप यदि रामजी को लौटने की टेक पकड़ लें तो कौन बाधा कर सकता है ?

दो. वृद्धिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभागु ।

सुनि सनेहमय वचन गुर, उर उमगा अनुरागु ॥२५५॥

अर्थ : अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं। यह सब मेरा अभाग्य है। स्नेहमय वचन सुनकर गुरुजी के हृदय में अनुराग उमड़ पड़ा।

व्याख्या : उपाय बतलानेवाले आप सो मुझसे उपाय पूछते हैं। यह हमारा अभाग्य नहीं है तो क्या है? हम तो आज्ञाकारी ठहरे। आज्ञा देनेवाले तो आप हैं। यही हमारे कुल का रास्ता है। यथा • मोहि सम यह अनुभयेउ न दूजे। सब पायेउ रज पावनि पूजे। उत्तर में भरतजी ने ऐसे स्नेहमय वचन कहे कि गुरुजी के हृदय में अनुराग उमड़ आया। तात्पर्य यह कि आप उपाय बतलाइये। हम लोग तदनुकूल आचरण करें।

तात बात फुरि राम कृपाही। राम विमुख सिधि सपनेहुँ नाही ॥
सकुचउँ तात कहत एक वाता। (अरध तजहि बुध सरबसु जाता ॥१॥
तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखन सीय रघुराई ॥
सुनि सुवचन हरखे दोउ भ्राता)। भे प्रमोद परिपूरन गाता ॥२॥

अर्थ हे तात। पर राम कृपा की बदौलत ही यह बात है। राम के विमुख तो सपने में भी सिद्धि नहीं है। बेटा! मैं एक बात कहने में सङ्कोच करता हूँ • बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर आधा छोड़ देते हैं। तुम दोनों भाई वन जाओ। लक्ष्मण सीता और रामजी को लौटा लिया जाय। ऐसा सुन्दर वचन सुनते ही दोनों भाई के शरीर में पुलक हो गया।

व्याख्या मैं टेक कर लेता था उसे कर डालता था। यह बात सच है। पर वह सिद्धि भी तो रामकृपा का ही फल है। यहाँ तो राम से ही काम पड़ गया है। अतः टेक चल नहीं सकती। राम की कृपा से टेक निवहता है। उनके विमुख होने से सिद्धि कहाँ?

गुरुजी ने यह बात तो कही। फिर भी उपाय बतलाने का बोझा तो उन पर ही रहा। पर जो उपाय था उसके कहने में गुरुजी को सङ्कोच था। राजा ने अयोध्या का राज भरत को दिया और चौदह वर्ष के लिए वन का राज्य रामचन्द्र को। यथा • पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। सो दोनो भाई अपना अपना भाग बदल लो। तुम वन जाओ। राम राज पर जायें। पर निरपराध भरत को वन कैसे भेजें। अतः कहा : सकुचउँ तात कहत एक वाता। परम बुद्धिमान् भरतजी भी वसिष्ठ के ही शिष्य थे। कहते ही लख लिया कि गुरुजी के मन में यह बात है। सो आनन्द से भर उठे।

श्री गोस्वामीजी : जहाँ प्रेम तहँ नेम नहि • का अनुसरण करते हुए से मालूम होते हैं। सातो काण्ड में कोई भी नियम निवहने नहीं दिया है। छ काण्डों में श्लोको से मङ्गलाचरण करते हुए भी लङ्का में दोहे से मङ्गलाचरण कर दिया। केवल अयोध्या में प्रायेण नियम निवहा है। परन्तु उसमें भी कई स्थानों पर सात अर्धालियाँ हैं। पचोस दोहे पर बराबर छन्द आते गये हैं। पर स्थल पर २६ दोहो

पर छन्द दिया है। आरण्य में तो दो अर्धालियों के बाद भी छन्द देखा गया है। अतः किसी विशेष स्थल पर छ अर्धालियाँ भी आश्चर्य जनक नहीं है।

राजापुर की प्रति को मैं प्रतिष्ठित प्राचीनतम प्रति मानता हूँ। उनमें उपर्युक्त कोष्ठान्तर्गत चार अर्धालियाँ अर्धं तर्जहि बुध सर्वस जाता। आदि नहीं है। न उनकी आवश्यकता है और न सामञ्जस्य बैठता है। सर्वस क्या है? अर्ध क्या है? जो अर्ध बतलाया जाता है वह वस्तुतः अर्ध होता है कि नहीं? लखन सीय रघुवीर के लौटने में दोनों भाइयों के वन जाने की कारणता कैसे हुई? इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर नहीं मिलता। तुम कानन गवनहु दोउ भाई। ऐसा गुरुजी का आदेश सुनने पर भी उनसे : कीजिय वचन प्रवान कहकर प्रमाण माँगना और वन को न चले जाना और गुरुजी के सकुचहुँ तात कहत एक वाता। कहकर एकदम न ठहरना और बेधड़क उस बात को कह डालना अस्वाभाविक मालूम पड़ता है।

यह बात अवश्य है कि अयोध्या में गुप्त भाव भरे हुए हैं और कठिनता से हाथ आते हैं। इस काण्ड में आदेश से कम काम लिया जाता है। रुख से काम लिया जाता है। भरतजी को सोचते सोचते रात बीत गयी। कोई युक्ति प्रभु के लौटाने की स्थिर नहीं कर सके। कौन भरतजी? जिनके महिमा सिन्धु के किनारे मुनिजी की मति अबला सी खड़ी रह गयी। उनके मन में यह धर्मसम्मत युक्ति भी आयी कि पिता ने प्रभु को चौदह वर्ष के लिए वन दिया और मुझे राज्य दिया। सो प्रभु तो उसे स्वीकार करके वन चले आये। पर मुझे अस्वीकार है। इसलिए हम दोनों भाई अपना अपना हिस्सा अदल बदल कर लें। इस भाँति प्रभु के धर्म में पीड़ा भी न होगी। केवल यह एक युक्ति है जिसे धर्मसम्मत कह सकते हैं। पर प्रभु मुझे भी पिता की आज्ञा से हटने न देंगे। यथा मोहि अनुचर कर केतिक वाता। तेहि मैंह कुसमउ वाम बिधाता। इसलिए यह युक्ति भी ठहर न सकी।

यहाँ सभा में मुनिजी सरकार के लौटने का उपाय पूछने लगे। भरतजी खिझलाकर कहने लगे : वृझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु। इस पर गुरुजी ने उसी एक मात्र उपाय को कहना चाहा। पर उस उपाय का कहनेवाला भी कैकेयी की भाँति निन्द्य समझा जायगा। अतः इतना ही कहकर ठहर गये : सकुचहुँ तात कहत एक वाता।

मुनिजी के मुख से यह बात निकलते ही समझनेवाले लोग समझ गये कि वह कौन सी बात है। भरतजी प्रसन्न हो गये कि इस बात पर यदि मुनिजी स्थिर हो जायें तो सरकार को भी मानना पड़ेगा। रह गयी मुझे निष्कारण वन भेजने की बात जिसके कहने में मुनिजी को सङ्कोच है सो तो मुझे परम इष्ट है। अतएव मुनिजी के सङ्कोच मिटाने और उन्हें उसी बात पर दृढ़ रखने के लिए कहते हैं : कानन करहुँ जनम भर वासू। एहि ते अधिक न मोर सुपामू नाथ निज कीजिअ वचन प्रवान।

यह बात अवश्य है कि इस प्रकार अर्थ करने में दोनों भाइयों के हिस्से के अदल बदलवाली बात की कल्पना करनी होगी। परन्तु भरत के वन भेजने में

ऐसी कल्पना बिना किये अर्थ बैठ ही नहीं सक्ता । चाहे कोई भी अर्थ किया जाय । अतः मैं राजापुर की प्रति के पाठ से पूर्ण सम्मत हूँ और कौष्ठान्तर्गत चार पद मुझे क्षेपक मालूम होते हैं ।

मन प्रसन्न तन तेजु विराजा । जनु जिय राउ रामु भये राजा ॥

बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी । सम दुख सुख सब रोवहि रानी ॥३॥

अर्थ मन प्रसन्न हो गया । शरीर में तेज विराजमान हो गया । मानो चक्रवर्तीजी गये और रामजी राजा हो गये । लोगो को लाभ अधिक और हानि थोड़ी थी । रानियो के लिए दुःख सुख समान ही रह गया । वे रोने लगी ।

व्याख्या दो बात का शोक था । एक चक्रवर्तीजी के सुरपुर गमन का । दूसरे राम के वनवास का । सो मानो दोनों बिगड़ी हुई बातें बन गयी । ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई । दशरथजी के जो उठने के समान खुशी हुई । अतः मन प्रसन्न हो गया और रामजी के राजा होने के समान उत्साह हुआ । अतः शरीर में तेज विराजमान हुआ । नहीं तो गँवारी कह रही थी मुख प्रसन्न नहीं मानस खेदा । इतनी खुशी का कारण यह कि भरतजी सोचते हैं कि रामजी के राजा होने से लोगो को बड़ा लाभ होगा और मेरे वन जाने से हानि बहुत थोड़ी होगी । पर रानियाँ रोने लगी कि एक बेटा लौटा तो दूसरा वन चला । उनके लिए बात वह की वही रह गयी ।

कहहि भरतु मुनि कहा सो कीन्हे । फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥

कानन करउँ जनम भरि बासू । एहि ते अधिक न मोर सुपासू ॥४॥

अर्थ भरतजी ने कहा कि मुनिजी का कहा करने से ससार के जीवो को अभिमत देने का फल मिलेगा । मैं जन्म भर वन में ही रहूँ इससे बढ़कर मुझे कोई सुभीता नहीं है ।

व्याख्या भरतजी कहते हैं सकचहुँ तात कहत एक बाता । कहकर मुनिजी को जो बात अभिप्रेत है । उसके करने से जगत् के जीवो को अभिमत दान का फल होगा । रामजी के वनवास से सारे विश्व को शोक है । उनका राज पर लौटना सबको इष्ट है । सम्पूर्ण विश्व को अभिमत दान के पुण्य की सीमा नहीं है । इसके लिए यदि मैं जन्म भर वनवास करूँ तो भी थोड़ा है । इससे अच्छा सुअवसर कब मिलेगा कि केवल वनवास करने से जीव मात्र के अभिमत दान का फल मिले ।

गुरुजी ने जिस बात का इशारा मात्र किया था उसके खोल देने से भरतजी का यह अभिप्राय था कि कहने में जब गुरुजी सङ्कुचित होते हैं तो उनको सङ्कोच में रखना उचित नहीं । अतः स्वयं उस बात को स्पष्ट करके तदनुकूल कार्य करने में अपना बड़ा भाग्य होना ख्यापन करते हैं ।

दो अन्तरजामी रामु सिय, तुम सरवग्य सुजान ।

जौ फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ वचनु प्रवान ॥२५६॥

अर्थ : राम सीता अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं । यदि आप सच कह रहे हैं तो हे नाथ ! आप अपने वचन को प्रमाण कीजिये अर्थात् पूरा कीजिये ।

व्याख्या : भरतजी ने कहा कि आप जिस बात को कह रहे हैं वह मुझे स्वीकार है । उसे करने में मुझे बड़ा आनन्द है । चौदह वर्ष नहीं मैं यावज्जीवन वनवास के लिए प्रस्तुत हूँ । मेरी बातें बनावटी नहीं स्वयं सरकार तथा महारानी सीता देवी अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञों में भी सुजान हैं । देख लीजिये कि मेरे हृदय में कितना आनन्द है । सम्बन्ध प्रागल्भ्य से कहते हैं कि यदि आपने मुझे बहकाने के लिए न कहा हो तो अपने वचन का प्रमाण कीजिये । सरकार को लौटाइये और मुझे वन भेजिये ।

भरत वचन सुनि देखि सनेहू । सभा सहित मुनि भयउ विदेहू ॥

भरत महा महिमा जलरासी । मुनि मति ठाढ़ि तीर अवला सी ॥१॥

अर्थ : भरत का वचन सुनकर और उनकी प्रीति देखकर मुनि वसिष्ठ को सभा के सहित देह की सुधि न रही । भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के तट पर मुनिजी की बुद्धि स्त्री के समान खड़ी रह गयी ।

व्याख्या : कानन करहुँ जनम भर वासू । एहि ते अधिक न मोर सुपासू । इत्यादि वचन सुनकर : मन प्रसन्न तन तेज विराजा । जनु जिय राउ राम भये राजा । ऐसी प्रेम की दशा देखकर न मुनिजी को तन मन की सुधि रह गयी और न सभासदों को तन मन की सुधि रह गयी ।

भरत की प्रशंसा करने के लिए उनकी महिमा का बखान करने के लिए मुनिजी का जी उमगा । पर मुनिजी की बुद्धि नहीं काम करती कि कैसे भरतजी का बखान करें । उनकी महा महिमा देखकर मुनिजी की बुद्धि ऐसी स्तब्ध रह गयी जैसे महा समुद्र को देखकर कोई स्त्री स्तब्ध रह जाय और उसे न सूझे कि इसमें मेरी गति कैसे हो । यहाँ अबला शब्द देखकर गोस्वामीजी ने यह दिखलाया कि वह प्रबला है अबला नहीं है जो दुःसाहस कर बैठे ।

गा चह पार जतनु हियं हेरा । पावत नाव वोहितु वेरा ॥

अउर करहि को भरत यड़ाई । सरसी सीप कि सिंधु समाई ॥२॥

अर्थ : पार जाना चाहती है । मन से अनेक उपाय ढूँढे । पर उसे न नाव ही मिली न जहाज ही मिला और न वेड़ा ही हाथ लगा । दूसरा कौन भरत की बड़ाई कर सकता है । क्या तालाब की सीप में समुद्र समा सकता है ?

व्याख्या : समुद्र का सन्तरण भुज बल से नहीं हो सकता । अतः उसका उपाय नाव जहाज या वेड़ा की प्राप्ति है । इसी भाँति जब मुनिजी की बुद्धि ने भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के पार करने के लिए विद्यारूपी नाव वेदरूपी जहाज और शरीररूपी वेड़ा का सहारा चाहा । पर कोई प्राप्त न हुआ । मग्न प्रयत्न

निष्फल गये - विद्या के नाव होने का प्रमाण । यथा : केवट बुधि विद्या बड़ि नावा । वेद के जहाज होने का प्रमाण । यथा : वंदौं चारिउ वेद भव वारिधि वोहित सरिस । शरीर के बेड़ा होने का प्रमाण । यथा : नर तन भव वारिधि कहूं बेरो ।

भावार्थ यह कि न तो विद्या के बल से पद्यादि की रचना से भरत की महामहिमा कह सके । न वेद मन्त्रों के उद्धरण से ही महिमा कही जा सकी । न न शरीर की चेष्टा से ही हृद्गत भाव व्यक्त कर सके । अतः मुनिजी की बुद्धि स्तब्ध रह गयी ।

जब विवेक सागर गुरु वसिष्ठजी ही बड़ाई करने में असमर्थ रहे तो दूसरे किस में यह सामर्थ्य कहाँ से आवे कि भरत की बड़ाई कर सके । समुद्र से सीपी निकलती है । उसमें समुद्र नहीं समा सकता । अतः जब समुद्र की सीपी में जो कि दीर्घाकार होती है समुद्र नहीं समा सकता । तो तालाब की सीपी में जो कि अति क्षुद्राकार होती है समुद्र कैसे समायेगा ? अगम सनेह भरत रघुबर को । जहूँ न जाय मन विधि हरिहर को । विधि समुद्र है । उससे उत्पन्न सीपी स्थानीय वसिष्ठजी है । सो भरत के स्नेह की महिमा में विधि की गति नहीं । तब वसिष्ठजी की गति न होना स्वभाव से प्राप्त है । सामान्य लोग तो पल्लव की सीपी हैं । इनकी उत्पत्ति जीवों से है । इनके मन में भरत की महिमा कैसे आ सकती है ।

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए । सहित समाज राम पहि आए ॥

प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसन । बैठे सब मुनि मुनि अनुसासन ॥३॥

अर्थ भरतजी मुनिजी के मन में बहुत अच्छे लगे । तब समाज के सहित रामजी के पास आये । प्रभु ने प्रणाम करके सुन्दर आसन दिये और सब मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ गये ।

व्याख्या मुनिजी भरतजी की बड़ाई तो नहीं कर सके । पर उनके हृदय में उनकी महिमा का अनुभव हुआ और भरतजी पर उनका बड़ा प्रेम हो गया । अतः कुछ न कहकर भरतजी का काम करने के लिए रामजी के पास चल पड़े । सारा समाज साथ हो गया । रामजी के पास पहुँचे । सरकार ने उठकर समयानुकूल सुन्दर आसन दिये । सरकार के सामने सब खड़ा रहना चाहते हैं । मुनिजी के अनुशासन पाने पर बैठे । यथा : बैठन सर्वाहि कह्यो गुरुजानी ।

बोले मुनिवर वचन विचारी । देस काल अवसर अनुहारी ॥

सुनहुँ राम सरवग्य सुजाना । धरम नीति गुन ग्यान निधाना ॥४॥

अर्थ मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी देश काल और अवसर के अनुसार विचार कर बोले । हे सर्वज्ञ, सुजान, धर्म नीति, गुण और ज्ञान के निधान रामजी मुनिये ।

व्याख्या : मुनिजी ने जब भरतजी को बुलवाया था उस अवसर पर समय के समान बोले थे । यथा : बोले मुनिवर समय समाना । पर यहाँ रामजी के सामने देश काल अवसर के अनुसार बोले । मुनिजी ने विचार किया कि ऐसे अवसर पर

रामजी से ही उपाय पूछना चाहिए। यहाँ सब लोग वन में हैं। राजगद्दी खाली पड़ी है। सब लोग आर्त हो रहे हैं। भरतजी गद्दी स्वीकार नहीं करते। ऐसी स्थिति अधिक दिन चल नहीं सकती। एव मनन करनेवाले श्रेष्ठ मुनिजी देश काल अवसर का विचार करते हुए बोले।

रामजी को सम्बोधन करते हुए सर्वज्ञ सुजान धर्म नीति और गुणनिधानादि विशेषण से विशेषित करते हैं। भाव यह कि एव गुण विशेषण विशिष्ट पुरुष ही ऐसे अवसर पर उपाय कह सकता है। रामजी सर्वज्ञ शिरोमणि हैं। कोई बात उनसे छिपी नहीं। सुजान हैं। गुण ग्राहक हैं। सबका सम्मान जानते हैं। धर्म नीति में बाधा न पड़े। दोष और मोह से सम्पर्क न हो ऐसा उपाय बतला सकते हैं।

दो. सबके उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।

पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहहु उपाउ ॥२५७॥

अर्थ : सबके हृदय में वास करते हो। सबके भाव कुभाव को जानते हो। जिसने पुरजन माता और भरत का हित हो ऐसा उपाय बतलाओ।

व्याख्या : सबके उर अंतर बसहु। कहकर वसिष्ठजी आज ऐश्वर्य खोले देते हैं। क्योंकि सबके हृदय देश में रहनेवाला तो केवल ईश्वर है। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। सो रामजी से किसी के हृदय का भाव छिपा नहीं है। अतः परिस्थिति समझाने की आवश्यकता नहीं। जो रामजी उपाय कहे वही धर्माविरोधी होगा। सन्तोष कारक होगा और हित होगा। अतः कहते हैं : पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहहु उपाउ।

भाव यह कि हम लोगो को उपाय नहीं सूझ रहा है। पुरजन जननी भरत हित पर ध्यान देने से धर्म में बाधा है। धर्म की रक्षा करने से पुरजन जननी भरत हित नहीं होता और पुरजन जननी भरत हित किसी भी उपाय का विषय भी नहीं है।

आरत कहहि विचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥

मुनि मुनि वचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥१॥

अर्थ : आर्त विचारकर कभी नहीं कहते। जुआड़ी को अपना ही दाँव मूझता है। मुनिजी का वचन सुनकर रामजी कहने लगे कि नाथ। उपाय तो आपके हाथ में है।

व्याख्या : इस पर यदि कहा जाय कि आप गुरु हैं। विवेक सागर हैं। आपके हाथ में विश्व बदरीफल के समान है। आपका ही उपाय बतलाना प्राप्त है। अतः कहते हैं कि इस समय में आर्त हूँ। मैं विचार पूर्वक कुछ नहीं कह सकता। आर्त होने का कारण कहते हैं कि मेरी दशा इस समय जुआड़ी की सी हो रही है। मुझे भरत की रुचि रखने के अतिरिक्त और कुछ सूझ नहीं रहा है जुआड़ी को अपना ही दाँव मूझता है। हमारे सर्वस्व तो आप हैं। यथा : मुनि जन धन सर्वसं निव प्राणा।

सो आप लौटते हैं। या वन जाते हैं। यही दाँव लगा हुआ है। सो मुझे आपका लौटना ही सूझता है। उचित अनुचित नहीं सूझता। इतने में ही मुनिजी को जो कुछ कहना रहा सब कह दिया।

मुनिजी ने कहा था पुरजन जननी भरत हित होय सो कहिय उपाय। इस पर सरकार कहते हैं कि उपाय आपके हाथ है और तदनुसार कार्य करना मेरा काम है। दोनों भाई एक ही बात बोलते हैं। भरतजी ने कहा : बूझिअ मोहि उपाय अब सो सब मोर अभाग। और रामजी कह रहे हैं : नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ। अर्थात् उपाय कहना आपका कर्तव्य और आज्ञापालन मेरा कर्तव्य है।

सबकर हित रख राउरि राखे। आयसु किए मुदित फुर भाखें ॥

प्रथम जो आयसु मो कहूँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई ॥२॥

अर्थ : आपका रख रखने में सच कहने और प्रसन्न होकर आज्ञा पालन में सबका हित है। पहिले मुझे जो आज्ञा हो मैं उस शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँगा।

व्याख्या : मन से आपके रख पर ध्यान रखे। कर्म से आपकी आज्ञा प्रसन्न मन से पालन करे और वचन को सत्य वहे। इसी में पुरजन जननी और भरत सबका हित है। केवल कहता ही नहीं हूँ करने को स्वयं तैयार हूँ। आज्ञा हो वन जाऊँ। आज्ञा हो अवध फिर चलूँ। पिता की आज्ञा छोड़ दूँ। जो आज्ञा हो वही करूँ और प्रसन्नता से महाप्रसाद रूप से आज्ञा को सिर चढ़ाऊँ। यदि इस पर कहा जाय कि आप तो मान लेंगे। पर क्या इसी भाँति और लोग भी मानेंगे? अतः कहते हैं :

पुनि जेहि कहूँ जम कहव गोसाई। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई ॥

कह मुनि राम सत्य तुम भाखा। भरत स्नेह विचार न राखा ॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् जिसको जो आज्ञा होगी वह सब तरह से सेवकाई करेगा। मुनिजी ने कहा कि रामजी। आपने सत्य कहा। पर भरत के स्नेह ने विचार रहने नहीं दिया।

व्याख्या : भाव यह कि मैं ही नहीं सब लोगो को आपकी आज्ञा माननी होगी। आपकी आज्ञा पालन करने के लिए ही मैंने जन्म लिया है। यथा : आयसु काह कहिय किन मोही। आप आर्त क्यों होते हैं?

मुनिजी ने कहा कि रामजी। आपका कहना ठीक है। सारा समाज और स्वयं आप भी मेरा कहना मानेंगे। पर मैं तो गुरु हूँ। मुझे तो जो धर्म है वही कहना चाहिए। पर भरत के स्नेह ने मुझे विचारपथ से विचलित कर दिया है। यहाँ सीधे सीधे धर्म कथन से भरत के प्रेम को बड़ा धक्का पहुँचेगा। प्रेमी प्रेमपात्र के समझाने से ही समझ सकता है। केवल धर्म की व्यवस्था देने से नहीं समझता।

तेहि ते कहउँ वहोरि बहोरी। भरत भगति वस भइ मति मोरी ॥

मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥४॥

अर्थ : इसलिए मैं बार बार कहता हूँ कि मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गयी है। मेरी समझ में भरत की रुचि रखकर जो कीजियेगा वही शुभ होगा। इस विषय में मैं शङ्कर को साक्षी देता हूँ।

व्याख्या : वसिष्ठजी कहते हैं कि पहिले भी मैंने कहा था : भरत हित होय सो कहिय उपाउ। और अब भी कहता हूँ भरत सनेह विचार न राखा। मेरी बुद्धि अपने वश में नहीं है। भरत की भक्ति के वश हो गयी है। भरत जैसा चाहते हैं। मेरी बुद्धि वैसी ही हो गयी है। मैं इस समय यथार्थ कहने में असमर्थ हूँ। फिर भी इतना कहे देता हूँ कि चाहे घर लौटिये चाहे वन जाइये पर जो करिये वह भरत की रुचि रखते हुए करिये। इसमें सन्देह न कीजिये कि भरत की रुचि रखने में अधर्म स्पर्श करेगा। मैं शङ्कर को साक्षी देकर कहता हूँ कि भरतजी की रुचि रखकर जो ही कुछ किया जायगा उससे शुभ ही होगा। क्योंकि भरत जो समझेंगे कहेंगे करेंगे वही ससार में धर्मसार होगा।

दो भरत विनय सादर सुनिअ, करिअ विचार बहोरि।

करव साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

अर्थ : भरतजी के विनय को आदर के साथ सुनिये और फिर से विचार कीजिये और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का जो निचोड़ हो वही कीजिये।

व्याख्या : भरत की रुचि समझने के लिए उनके सन्तोष के लिए भरत के विनय को तदनुकूल कार्य करने का भाव हृदय में रखकर सुनिये। मैं यह नहीं कहता कि वैसा कर ही डालिये। भरत का मनोभङ्ग न होने पावे और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का सार ग्रहण करके कार्य कीजिये। मुनिजी भरत के विनय का बल देख चुके हैं जिससे कि उनकी बुद्धि भरत के वश हो गयी। मुनिजी जानते हैं कि भरत की विनय सुनने के बाद भक्तवत्सल बिना द्रवीभूत हुए नहीं रह सकते। सारांश यह कि आप उचित ही करिये पर भरत को सन्तुष्ट करके।

गुर अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनदु विसेखी ॥

भरतहि धरम धुरधर जानी। निज सेवक तन मानस वानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी का अनुराग भरत पर देखकर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। भरतजी को धर्म धुरन्धर और मनसा वाचा कर्मणा अपना सेवक जानकर।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : भरत मुनिहि मन भीतर भाये। सो मन के भीतर अच्छा लगना ही अनुराग है। वह अनुराग गुरुजी के वचनों से खूब विस्पष्ट हो गया। मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी। इससे अधिक क्या कहा जा सकता है ? सो गुरुजी का इतना प्रेम भरत पर देवकर सबको आनन्द हुआ। पर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। क्योंकि भरत रामजी को प्राणप्यारे हैं।

यथा : तुम रघुपतिहि प्राणहुँ ते प्यारे । अपने प्रिय का इतना बड़ा भाग्य देखकर विशेष आनन्द हुआ ।

रामजी की अपार भक्ति गुरु चरणों में है । गुरुजी के अनुराग होने से भरतजी को बड़भागी समझा और उनको अपना आज्ञाकारी तथा सयाने साधु पहिले से ही जानते थे । यथा : भरत कहे मैंह साधु सयाने । अतः भरतजी पर ही निर्णय छोड़ देना रामजी ने ठीक समझा । नीति भी है कि जिस पर भार दे उसे पहिले समझ भी लेना चाहिए ।

बोले गुर आयसु अनुकूला । वचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥२॥

अर्थ : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल मनोहर कोमल और मङ्गलमूल वचन बोले । हे नाथ ! आपकी शपथ और पिता के चरणों की दोहाई देकर कहता हूँ कि इस ससार में भरत सा भाई कोई हुआ नहीं ।

व्याख्या : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल रामजी बोले । अर्थात् भरतजी की रुचि को भलीभाँति स्थान देने के लिए बोले :

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥
जे गुर पद अबुज अनुरागी । ते लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी ॥
मजुवचन : राउर जापर अस अनुरागू । को कहि सके भरत कर भागू ॥
मृदु वचन : लखि लघु वधु बुद्धि सकुचाई । करत बदन पर भरत धड़ाई ॥
मङ्गलमूल वचन : भरत कहहि सोइ किये भलाई ।

शपथ दो ही का लिया जाता है पूज्य का या प्रिय का । यहाँ रघुनाथजी दोनों का शपथ लेते हैं : पूज्य वसिष्ठजी का और प्रिय पिताजी का और कहते हैं : भयउ न भुवन भरत सम भाई । इस भाँति भरत के स्नेह का विचार किया । भरतजी के पीठ पीछे भी लक्ष्मणजी से कहा था : लखन तुम्हार सपथ पितु आता । सुचि सुवधु नहि भरत समाना ।

जे गुर पद अबुज अनुरागी । ते लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी ॥
राउर जा पर अम अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ॥३॥

अर्थ : जो गुरु के चरण कमल के अनुरागी है वे लोक और वेद में भी बड़भागी माने जाते हैं । आपका जिस पर ऐसा अनुराग है उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है ।

व्याख्या : गुरु के चरण में प्रीति होने से इस लोक और परलोक दोनों में कल्याण होता है । इसलिए लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी कहा । यथा : बंदो गुरुपद पदुम परागा से : बड़े भाग उर आवै जासू तरु ।

यहाँ तो बात बहुत चढ़ी बढ़ी है । स्वयं गुरुजी कहते हैं : भरत भगति बस

भइ मति मोरी । इत्यादि । यहाँ तो गुरुजी का अनुराग भरत पर है । इसलिए भरत के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है ।

लखि लघु बधु बुद्धि सकुचार्ई । करत वदन पर भरत बडार्ई ॥

भरत कहहि सोइ किएँ भलार्ई । अस कहि राम रहे अरगार्ई ॥४॥

अर्थ छोटे भाई को देखकर उसके मुँह पर बडार्ई करने में बुद्धि को सङ्कोच होता है । भरत जो कहे वैसा ही करने में भलार्ई है । ऐसा कहकर रामजी चुप हो गये ।

व्याख्या बड़े के सम्मुख उनकी बडार्ई करना स्तुति प्राप्त है । परन्तु अपने से छोटे की बडार्ई उसके मुख पर नहीं करना चाहिए । भरत छोटा भाई है । उसके सामने उसकी बडार्ई करने में बुद्धि सङ्कुचित होती है । तात्पर्य यह कि भरत में बड़े गुण हैं जो मैं उनके सामने नहीं कह सकता ।

जब भरतजी सामने नहीं रहे तब रामजी ने लक्ष्मण से भरतजा की बडार्ई करते कहा था ।

सुनहु लखन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपच मँह सुना न दीसा ॥

भरतहि होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ ।

कबहुँकि काँजी सीकरनि छोर सिंधु विनसाइ ॥

सगुन खीर अवगुन जल ताता । मिलइ रचइ परपच विधाता ॥

भरत हस रविवस तडागा । जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा ॥

गहि गुन गय तजि अवगुन वारी । निज जस जगत कीन्ह उँजियागी ॥ इत्यादि ।

अन्त में रामजी ने कहा कि भरत जो कहे तदनुसार कार्य करने में भलार्ई है । भाव यह कि भरत साधुमत लोकमत नृप नय निगम को अवहेलना कभी करेंगे नहीं । अतः यही विचार ठीक है कि भरत जो कहे वही सब करें मैं भी करूँ ।

दो तब मुनि बोले भरत सन, सबु सँकोचु तजि तात ।

कृपासिंधु प्रिय बधु सन, कहहु हृदय की बात ॥२५९॥

अर्थ तब मुनिजी ने भरत से कहा कि हे तात ! सत्र सङ्कोच छोड़कर कृपासिंधु प्रिय बन्धु रामजी से अपने हृदय की बात कह डालो ।

व्याख्या रामजी को चुप देखकर मुनिजी बोले कि यही अवसर है अपने हृदय की बात कहने का । तुम मुझसे उपाय के लिए कहते थे । सो उपाय मैंने कर दिया । रामजी ने सब निर्णय तुम्हारे ऊपर छोड़ दिया । इस समय यदि सङ्कोच करोगे तो बात न बनेगी । फिर जिसस कहना है वे कृपासिंधु हैं और प्रिय बन्धु हैं । उनसे दिल खोलकर बोला । मैंने सनेह सकोचबस सन्मुख वहेउँ न वेन वाली बात इस अवसर पर ठीक नहीं ।

मुनि मुनि बचन राम रख पाई । गुर साहिब अनुकूल अघाई ॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू । कहि न सकाहि कछु करहि विचारू ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी का रख पाकर गुरु और स्वामी व
पूरी तरह से अनुकूल देखकर और अपने ऊपर नहीं सँभलनेवाला बोझा अनुभ
करके कुछ कह नहीं सकते भरतजी विचार कर रहे हैं ।

व्याख्या : मुनिजी का वचन सुना । सङ्कोच छोड़कर बोलने के लिए औ
सरकार का भी रख पाया कि हाँ कहो । गुरुजी ने कहा था : राखे राम रजा
रख हम सबकर हित होय । सो रख भी देख लिया । अवसर ठीक पाकर ही बोलन
चाहिए । सो भरतजी ने देख लिया कि गुरुजी और स्वामी रामजी पूरी तरह
अनुकूल हैं । विनय करने का यही अवसर है ।

गुरुजी ने मेरी ओर से बहुत कहा । अतः स्वामी रामजी ने सब बोझा मे
ऊपर छोड़ दिया । यह बोझा मेरे सँभालने लायक नहीं है । पिता के वचन त्याग
से अवर्म है । सो उसे त्यागने को कैसे कहूँ । नहीं कहता हूँ तो पुरजन जननी औ
अपना स्वार्थ भी नहीं सधता । इधर सँभालो तो उधर नहीं सँभलता । उध
सँभालो तो इधर नहीं सँभलता । अपने ऊपर बोझा : जिम्मेदारी आ पड़ना बड़
कठिन समस्या है । वही भरतजी जो सोचते थे : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी
मुनि पुनि कहव राम रुचि जानी । मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ । राम जननि ह
करवि कि काऊ । मोहि अनुचर कर केतिक वाता । तेति मैह कुसमउ वाम विधाता
वही जब उनके ऊपर सब बोझा रख दिया गया तब लौटने के लिए कहने मे
हिचकते हैं । विचार करने लगे कि रामजन्म संसार भर के मङ्गल के लिए है
रामजी खलदल दलन देव हितकारी हैं । सो देवताओं का हित इनके वन जाने मे
है । प्रजाओं का हित इनके लौटने मे है । यहाँ क्या करना चाहिए ।

पुलकि सरीर सभां भये ठाढे । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहव मोर मुनिनाथ निवाहा । एहि ते अधिक कही मैं काहा ॥२॥

अर्थ : शरीर मे पुलक हो गया । सभा मे खड़े हो गये । कमल ऐसे नेत्र आँसू
से भर गये । कहने लगे कि मेरा कहना तो मुनिनाथ ने निवाह दिया । इससे अधिक
मैं क्या कहूँ ?

व्याख्या : गुरु और स्वामी को अनुकूल जानकर भरतजी को हर्ष से सात्त्विक
भाव हुआ । रोंगटे खड़े हो गये । नेत्रों मे जल भर आया । बोलने के लिए सभा मे
खड़े हो गये । सबके हित अनहित का प्रश्न है । भरत के मन्त्र को ही पसन्द करके
सब लोग भरतजी के साथ आये हैं । अतः सब कुछ भरतजी के विनय पर ही निर्भर
है । अतः सबके सुनने के लिए भरतजी खड़े होकर बोले । अथवा बड़ो की सभा है ।
अतः बोलने के समय खड़े हो गये । सभा मे खड़ा होकर बोलने की रीति अति प्राचीन
मालूम होती है ।

भरतजी कथन के प्रारम्भ में ही मुनिजी के कथन को चर्चा करते हैं कि जो कुछ मुझे कहना था वह सब मुनिजी ने कह दिया । अर्थात् मेरी ओर से बोलने में गुरुजी ने कुछ बाकी नहीं छोड़ा ।

मैं जानऊँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेखी । खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ॥३॥

अर्थ • मैं अपने स्वामी का स्वभाव जानता हूँ कि अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते । मुझ पर तो अधिक प्रेम करते हैं । खेल में भी क्रोध करते कभी नहीं देखा ।

व्याख्या भयउ न भुवन भरत सम भाई का उत्तर देते हुए कहते हैं कि यह तो मेरी जानी बात है कि अपराधी पर भी कभी न क्रोध करने का सरकार का स्वभाव है । मैंने पहिले ही कहा था यद्यपि मैं अनभल अपराधी । भा मोहि कारन सकल उपाधी । तदपि सरन सम्मुख मोहि देखी । छमि सब करिहै कृपा बिसेखी । वही हुआ । मेरे अपराध पर ध्यान नहीं उलटे मेरे भाईपन की प्रशंसा हो रही है ।

मेरे ऊपर तो सदा से ही अधिक कृपा करने का स्वभाव है । खेलने में झगडा हो ही जाता । मैंने तो खेलने में भी सरकार को कभी क्रोध करते नहीं देखा । यथा कहत राम बिधु बदन रिसौहे सपनेहुँ लख्यौ न काउ । सो आज भी मुझ पर परम कृपा है ।

सिसुपन ते परिहरेऊँ न सगू । कबहु न कीन्ह मोर मन भगू ॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही । हारेहु खेल जितावहि मोही ॥४॥

अर्थ बचपन से कभी साथ नहीं छोड़ा । कभी मेरा मन नहीं तोड़ा । मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारा हुआ खेल भी मुझे जिता देते थे ।

व्याख्या भरतजी सिसुपन ते परिहरेउ न सगू कहकर अपना दुःख प्रकट कर रहे हैं कि आज जन्म का सग छूट रहा है । रामचरन पकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजै न पासू । सो आज भौरे का कमल से विछोह हो रहा है । आज तक सरकार ने कभी मेरा मन भङ्ग नहीं किया । बचपन में भी जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दियावत दाउँ । सो आज मेरा मन भङ्ग हो रहा है ।

मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारी हुई बाजी मुझे जिता देते थे । वही स्वभाव पडा है । वही आशा दृढ है । आज भी मेरी हारी हुई बाजी जिताइये ।

दो महु सनेह सकोच वस, सनमुख कही न वयन ।

दरसन तृपति न आजु लगि, पेम पियासे नयन ॥२६०॥

नये घोघे से ही कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं निकलती तो पुराने से मोती बे निकलेगी । कही ताल पाठ है । वहाँ पर यह अर्थ करना होगा कि जब समुद्र के घोंघे से मोती नहीं निकलती तो ताल के घोघे से कैसे निकलेगी ।

सपनेहु दोस क लेस न काहू । मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिनु समझे निज अघ परिपाकू । जारिउं जायँ जननि कहि काकू ॥३॥

अर्थ : सपने में भी किसी के दोष का लेश नहीं है । मेरा दुर्भाग्य रूपी समुद्र का थाह नहीं है । बिना अपने पापों का परिणाम समझे मैंने माता को काहू कहकर व्यर्थ जलाया ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि किसी को दोष का लेश भी नहीं है । न ब्रह्मदेव का कोई दोष है और न माता का ही दोष है । बिना पाप के दुख होता नहीं । पूर्वजन्म कृत कर्म ही वर्तमान जन्म का भाग है । मेरे पूर्वजित कर्म बड़े खोटे हैं । अतः इस जन्म में मेरा ऐसा अभाग्य उदय हुआ कि उसे अथाह समुद्र कहा जा सकता है । इस बात को बिना समझे मैंने व्यर्थ ही काकु का प्रयोग कर दिया । अर्थात् : जननी तू जननी भई विधि सन कछु न बसाइ । ऐसा कहकर माँ का दुखाया । भिन्नकण्ठध्वनिधीरैः काकुरित्यभिधीयते । भिन्न कण्ठध्वनि को पण्डित लोग काकु कहते हैं ।

हृदयँ हेरि हारेउं सब ओरा । एकहि भाँति भलेहि भल मोरा ॥
गुर गोसाईं साहिव सिय रामू । लागत मोहि नीक परिनामू ॥४॥

अर्थ : मैं अपने मन से चारों ओर ढूँढ़कर थक गया । केवल एक ही भाँति अच्छी तरह से मेरा भला है कि गुरुजी समर्थ हैं और सीताराम मालिक हैं । मुझे परिणाम भला मालूम पड़ता है ।

व्याख्या : एकौ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहि रैन बिहानी । अतः भरद्वाजजी से भी कहा : एहि कुरोग कर औपध नाँही । सोधेउं सकल बिस्व माँही । यही बात यहाँ कह रहे हैं कि कोई उपाय ऐसा नहीं जिसमें मेरा भलीभाँति भला हो । एक ही बात का आसरा है कि गुरुजी समर्थ हैं । यथा : सो गोसाईं बिधि गति जेहि छेकी और सीताराम स्वामी हैं । इन्हें छोड़कर मुझे निर्दोष कहने वाला कोई नहीं है । यथा : परिहरि रामसीय जग माँही । कोउ नहि कहिहि मेरे मत नाँही । इनके किये मेरा सब प्रकार से भला होगा और इन सब बातों का परिणाम अच्छा होगा ।

दो. साधु सभा गुर प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ ।

प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहि मुनि रघुराउ ॥२६॥

अर्थ : साधु सभा में गुरुजी और स्वामी के निकट तथा पवित्र स्थल में

सच्चे भाव से कह रहा हूँ। यह प्रेम है कि प्रपञ्च है। झूठ है कि सत्य है। इसे मुनिजी और रामजी जानते हैं।

व्याख्या : अब हृदय की बात कहते हैं। अतः शपथ ले रहे हैं कि मैं सत्यभाव से कहता हूँ। यहाँ साधु सभा है। तिस पर स्वयं गुरुदेव और स्वामी भी बैठे हैं। चित्रकूट सा तीर्थ है यहाँ पर मैं कह रहा हूँ। असत्य नहीं कह सकता। यदि कहना भी चाहूँ तो बात छिप नहीं सकती। मुनि वसिष्ठजी तथा साक्षात् रघुराज खूब समझते हैं कि मेरा प्रेम है या प्रपञ्च है। मैं झूठ कह रहा हूँ या सच कह रहा हूँ। गुरुजी सर्वज्ञ हैं और रघुराज अन्तर्यामी हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥

देखि न जाहि विकल महतारी। जरहि दुसह जर पुर नर नारी ॥१॥

अर्थ : प्रेम के प्रण की रक्षा करके महाराज का देहावसान हुआ। माँ की दुर्बुद्धि को संसार जानता है। माँ लोग ऐसी विकल हैं कि देखते नहीं बनता। पुर के नर नारी दु सह ज्वर से जल रहे हैं।

व्याख्या : पहिला शूल यह है कि पिता का देहावसान हुआ। परन्तु सन्तोष की बात इतनी हुई कि प्रेमप्रण की रक्षा में हुआ। जिसकी प्रशंसा स्वयं गुरुजी ने किया। यथा : भूप धरमव्रतु सत्य सहारा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा। दूसरी विपत्ति यह कि माँ का दुर्यश संसार में फैल गया। जिसकी दुर्बुद्धि से महाराज का मरण हुआ। यदि माँ का मरण हो गया होता तो वह भी सह्य था। पर अपयश होना असह्य है। गुरुजी को भी कहना पड़ा। यथा : प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कैकई कुटिल कीन्ह जस करनी।

तीसरा शूल यह कि कौसल्यादि माता ऐसी विकल हैं उनकी दशा देखी नहीं जाती। यथा : मलिन वसन बिबरन विकल कृस सरीर दुख भार। कनक कल्प वर बेलि बन मानहुँ हनी तृसार। चौथा यह कि प्रजागण दु सही विरह यातना भोग रहे हैं। यथा : नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब सम्पति हारी।

मही सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब मूला ॥

सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि वेप लखन सिय साथ ॥२॥

अर्थ : मैं ही सब अनर्थों का मूल हूँ। सो सुनकर और समझकर सब शूल मैंने सहा। परन्तु रघुनाथजी लक्ष्मण और सीता के साथ मुनि का वेप बनाकर बन गये। यह सुनकर।

व्याख्या : ये सब अनर्थ मेरे कारण हुए। यथा : सुतहि राज रामहि बन-वासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू। यह सब सुना और मन में यह विचारा कि जब मैं ही सब अनर्थ का मूल हूँ तो मुझे छोड़कर इन शूलों को कौन सहेगा। अतः ये तीनों शूल सहन करने योग्य न होने पर भी मैं सहन कर गया।

अब शूलो से बड़ा शूल कहते है कि जब सुना कि रघुनाथजी वन को गये । साथ में सीता और लक्ष्मणजी गये और मुनिवेष बनाकर गये ।

यथा : राम गवन वन अनरथ मूला ।

जो सुनि सकल विस्व भइ सूला ॥

तथा : पितु आयसु भूपन वसन तात तजे रघुवीर ।

विसमउ हरख न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर ॥

चले बिपिन सुनि सिय संग लागी । रहइ न रामचरन अनुरागी ॥

सुनतहि लखन चले उठि साथा । रहहि न जतन किये रघुनाथा ॥

विनु पानहिन्ह पयादेहि पाँए । संकर साखि रहेउँ एहि धाए ॥

बहुरि निहारि निपाद सनेह । कुलिस कठिन डर भएउ न बेहू ॥३॥

अर्थ : कि बिना जूते के पैदल गये । शङ्कर साक्षी हैं कि इस घाव से भी मैं बँच गया । फिर निपाद का स्नेह देखकर इस वज्र से कठिन हृदय में छेद नहीं हुआ ।

व्याख्या : ऐसी दशा में भी पैदल वन गये । पैर में जूते भी नहीं । यह चोट ऐसी वैठी कि इससे वचना कठिन था । शङ्कर को साक्षी देकर भरतजी कह रहे हैं कि फिर भी मैं बँच गया । यथा : भरतहि विसरथौ पितु मरन सुनत राम वन गोन । हेतु अपनपौ जानि जिअ थकित रहे धरि मौन । फिर निपाद का प्रेम देखा कि सरकार के लिए मरने को तैयार था । यथा : भरत भाइ नृप मै जन नीचू । बड़े भाग अस पाइअ मीचू । इसका प्रेम देखने पर तो मेरे कलेजे को फट जाना चाहता था कि जिसके प्रेम से निपाद प्राण देने को प्रस्तुत है उसका भाई होकर मैं जीवित हूँ । पर मेरा कलेजा नहीं फटा । यह वज्र से भी अधिक कठिन है ।

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई । जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ॥

जिन्हहि निरखि मग साँपनि बीछी । तजहि विषम विष तापस तीछी ॥४॥

अर्थ : अब तो मैंने सब आँखों से देख लिया । जीव जड़ को जीते रहने से सभी सहना पड़ता है 'जिसे देखकर विषम विषवाली साँपिन और बीछी भी जो तपस्वियों के लिए भी तोखी है रास्ता छोड़ देती है ।

व्याख्या : पहिले तो सब सुनता आता था । यहाँ आकर तो सब अपनी आँखो देख लिया । अब तो शरीर छूट जाना चाहिए था । परन्तु नहीं छूटा । यह शूल भी मैं सह गया । जड़ जीव जो अवसर आने पर भी नहीं मरता उसे क्या क्या नहीं सहना पड़ता ?

भयानक विषैली साँपिन और बीछी अधिक अन्धकार में बड़ी विकराल हो उठती है । तनिक सा खटका होते ही काटती है । तपस्वियों के लिए तो उनका वैर त्यागना प्राप्त है । यथा : अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वरत्यागः । परन्तु वे नहीं त्यागती । रामजी के देखने से वे भी आर्द्र हो जाती है । रामजी को देखकर उनका

भी वैर छूट जाता है। वे भी इतनी भली हो जाती हैं कि रास्ता छोड़कर हट जाती हैं।

दो. तेइ रघुनन्दनु लखनु सिय, अनहित लागे जाहि।

तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

अर्थ वे ही रघुनन्दन लक्ष्मण और सीता जिसे वैरी मालूम पड़े उसके बेटे को छोड़कर देव दु सह दु ख किसे सहावे।

व्याख्या : जिस रामजी लक्ष्मण और जानकी की तपस्वियो से भी अधिक अहिंसा प्रतिष्ठा है। अथवा जिस राम जानकी और लक्ष्मण को वन की साँपिन बोछी भी हित मानते हैं उन्हें जिसने अहित माना उसे घोर दण्ड होना ही चाहिए। फिर माता के लिए पुत्र का दु सह दु ख अतीव असह्य है। अतः उसके बेटे को दु सह दु ख सहाना देव का कर्तव्य हो जाता है। क्योंकि देव शुभाशुभ फल का देनेवाला है। यथा कर्म सुभासुभ देइ विधाता।

सुनि अति विकल भरत वर बानी। आरति प्रीति विनय नय सानी ॥

सोक मगन सब सभा खँभारु। मनहु कमल बन परेउ तुषारु ॥१॥

अर्थ भरतजी की अति विकल आर्त्ति प्रीति विनय और नय से सनी हुई वाणी सुनकर सब सभा अति शोकयुक्त हो गयी जैसे कमल वन में पाला पड़ गया हो।

व्याख्या यद्यपि भरतजी की वाणी अत्यन्त व्याकुलता से भरी है। फिर भी उसमें आर्त्ति, प्रीति, विनय और नय सना हुआ है। पहिले नय कहा। यथा कहव मोर मुनि नाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहव मैं काहा। फिर विनय किया। यथा मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। तब प्रीति कहा। यथा महुँ सनेह सकोच वस सनमुख कहेउँ न बैन। अन्त में आर्त्ति कहा। यथा तेइ रघुनन्दन लखन सिय अनहित लागे जाहि।

भरतजी का ऐसा वचन सुनते ही सभी सभासद के हृदयो में शोक उमड़ आया। सब दुखी हो गये। उनके आकार और चेष्टा ऐसी दैन्यसूचक हो गयी जैसे कमल वन में पाला पड़े और वह खाक स्याह हो जाय। ऐसे ही अवसर पर खँभार शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी देखा जाता है। यथा देखि निबिडतम दसहु दिसि कपि दल परेउ खँभार।

कहि अनेक विधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥

बोले उचित वचन रघुनदू। दिनकर कुल कैरव वन चदू ॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार की पुरानी कथाएँ कहकर मुनि ज्ञानी ने भरतजी को समझाया। सूर्यकुल रूपी कोई के चन्द्रमा रघुनन्दन रामजी उचित वचन बोले।

व्याख्या ऐसे अवसर पर प्राचीन कथा जिसमें ससार के अनित्यत्व का वर्णन हो और महापुरुषों के महाविपत्ति में धैर्य धारण करने का वर्णन हो सुनाने

से ही शोकयुक्त का शोक थमता है। अतः ज्ञानी मुनिजी ने अनेक विधि से ऐसी कथाएँ कही।

पूत प्रह्लाद को न लाग्यो पापलेश पितु पार करने को तासु भक्ति भई नैयासी।
त्योही पृथुराज को न लाग्यो वेनु कृत पाप प्रबल प्रताप पुहुमीहू भई गैयासी।
भगति बखानों भूरि भाष्य बखानों तेरी बिरति बखानो एक बात नहि मैयासी।
दुखित न होउ देखि दोष जननी को तुम कीरति तुम्हारी जग जागत जुन्हैयासी।

दो बिना पुण्य सुख होत नहि दुख न होत बिनु पाप।

काहुहि दोष न दीजिये समुझि मनहि मन आप ॥

राम सच्चिदानन्द धन तहाँ नही दुख लेश।

ताते बहुत न कीजये हिय महँ व्यर्थ कलेश ॥

मुनिजी स्वयं ज्ञानी है। अतः उनके कथन का प्रभाव भरतजी पर पडा और उन्हें प्रबोध हुआ।

वसिष्ठजी के उपदेश और भरतजी के प्रबोध के बाद रघुनन्दन रामजी बोले। ये रघुकुल रूपी कैरव कोई के वन के लिए चन्द्रमा हैं। इनके उदय से कैरव वन खिल उठता है। शोक का अपनयन गुरुजी ने किया। अब आनन्द का आधान रामजी करेंगे। इनकी वाणी से ऐसा प्रभाव है कि तुषार के मारे कमल वन को कैरव वन बनाकर प्रफुल्लित कर दिया। फिर भी मुख से जो वचन निकलते हैं वे मनोरञ्जक होते हुए भी उचित ही होते हैं।

तात जायँ जिय करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी ॥

तीन काल तिभुवन मत मोरे। पुन्यसिलोक तात तर तोरे ॥३॥

अर्थ हे तात! ईश्वर के अधीन जीव की गति जानकर तुम व्यर्थ जी मे ग्लानि करते हो। मेरे मत से तो तीनों काल में जो पुण्य श्लोक तीनों लोक के हैं वे सब तुम्हारे नीचे हैं।

व्याख्या सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय विचारी। शुभाशुभ फल का देनेवाला ईश्वर है। अतः कम बन्धन से निवद्ध जीव की गति ईश्वर के अधीन है। फिर ग्लानि करना ही व्यर्थ है। ग्लानि करने से ईश्वरीय व्यवस्था उलट नहीं सकती।

रह गयी तुम्हारी बात। सो तुम्हारे विषय में मैं यह कह सकता हूँ कि जिन पुण्यात्माओं का नाम मङ्गलमय दिन बीतने के लिए प्रातः काल लिया जाता है वे सब तुमसे निम्नकोटि में हैं। तुम्हारे ऐसा पुण्य श्लोक तीनों लोक में न हुआ न है और न होगा।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई ॥

दोसु देइ जननिहि जड तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहि सेई ॥४॥

अर्थ तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार की कुटिलता हृदय में लाते ही लोक भी

जाता रहेगा और परलोक भी नष्ट होगा । माता को वे ही जड़ दोष देते हैं जिन्होंने कभी गुरु और साधु को सभा का सेवन नहीं किया है ।

व्याख्या : मही सकल अन्तरथ कर मूला : इस भरतजी की उक्ति का उत्तर देते हुए सरकार कहते हैं कि तुम्हारे ऊपर जो मन से भी कुटिलता का आरोप करेगा उसका लोक परलोक सब बिगड़ जायगा । जितने ही पवित्र पुरुष का निन्दक निन्दा करता है उतनी ही उसके दोष को मात्रा बढ़ी हो जाती है । सो तुम्हारे ऐसे पुण्यात्मा पर मिथ्यारोपण का भाव भी मन में आना परम अकल्याण का कारण होगा ।

भरतजी ने कहा था : जननी कुमति जगत सब साखी : इस उक्ति का उत्तर देते हुए कहते हैं कि माता को दोष देना अनुचित है । माता को दोष तो जड़ व्यक्ति दिया करते हैं जिन्हे समझ नहीं । मातृदेवो : भव ऐसा वेद कहता है । उनका हर प्रकार से मान करना चाहिए । जिसने गुरु साधु को सभा का सेवन किया है वह जानता है कि कोई भी किसी के दुःख सुख का देनेवाला नहीं है । अपना कर्म ही शुभाशुभ फल देते हैं । यथा : जीव कर्मबस दुःख सुख भागी । फिर गुरु सेवी और साधु सेवी माता को दुःख देनेवाली कैसे मान सकते हैं ? भरतजी तुम तो गुरु साधु सेवी हो । तुम ऐसा न कहो । जिसे ज्ञान नहीं है वह दूसरे को दुःख सुख देनेवाला मानता है ।

दो. मिटिहहि पाप प्रपञ्च सब, अखिल अमगल भार ।

लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

अर्थ : तुम्हारा नामस्मरण से सब पाप प्रपञ्च और सम्पूर्ण अमङ्गल के समूह मिट जायेंगे और इस लोक में सुयश और परलोक में सुख होगा ।

व्याख्या : भरतजी सब पुण्य श्लोको में बड़े हैं । अतः उनके नामस्मरण की महिमा सरकार श्रीमुख से कहते हैं कि तुम्हारे नामस्मरण से पाप का प्रपञ्च भी मिटेगा और अमङ्गल भी नष्ट होगा । स्मरण करनेवालों को इस लोक में कीर्ति और परलोक में आनन्द प्राप्त होगा । तुम्हारी अकीर्ति का तो प्रश्न ही नहीं है । यथा : समस्त सकल उत्पत्ति सब भरत चरित जप जाग । सरकार ने कह दिया उर आनत तुम पर कुटिलाई । जाइ लोक परलोक नसाई । इससे कुछ अयोध्यावासी जिन्होंने भरत का सम्मत कहा था लोक परलोक से भ्रष्ट हो चले थे उनका परिहार सरकार ने इस वचन से कर दिया कि वे भी भरतजी का नाम लेकर लोक में सुयश और परलोक में सुख के भागी होंगे ।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥

तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर प्रेम नहि दुरइ दुराएँ ॥१॥

अर्थ : मैं शिवजी की साक्षी देकर स्वभाव कहता हूँ । हे भरतजी ! कि तुम्हारे रखने से पृथ्वी ठहरी है । हे तात ! तुम व्यर्थ का कुतर्क न करो । बैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपता ।

व्याख्या : सरकार उस भाव को समझ रहे हैं जिससे प्रेरित होकर भरतजी ने कहा था : मोहि राज हठि देही जवही । रमा रसातल जाइहि तवही । आदर्श बिगड जाने से पृथ्वी रसातल को जाती है । अतः राजा का आचरण ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रजा का आदर्श न बिगडने पावे । भरतजी के राज्य स्वीकार से प्रजा का आदर्श बिगड जाता । प्रजा के सामने यह आदर्श उपस्थित हो जाता कि पिता के मरने की परवाह न करके भाई को वनवास देकर स्वार्थ साधन करना चाहिए । ससार की व्यवस्था ही बिगड जाती और लोगो का घोर पतन होता : जैसा कि आजकल हो रहा है । अतः सरकार कहते हैं कि आदर्श के न बिगडने देने का श्रेय तुम्हे ही है । अतः तुम्हारे रक्षा करने से ससार बड़े भारी पतन से बच रहा है ।

जिससे कोई लाभ न हो ऐसा सुतर्क भी करना निष्फल है और निष्फल कुतर्क तो करना ही नहीं चाहिए । भगवती कैकेयी न कोदव हैं । न सवुक काली है । न साँपिन वीछी हैं । उनमें कोई दोष नहीं है और न तुममें दोष का लेश है । ते रघुनन्दन लखन सिय अनहित लागेजाहि । तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावै काहि । ऐसी बातें करना कुतर्क है और इससे कोई लाभ भी नहीं है । तुम्हें अपने प्रेम के लिए शपथ लेने की आवश्यकता नहीं । वैर और प्रेम ये दोनों भाव ऐसे हैं कि इन्हें कोई छिपाना भी चाहे तो छिपा नहीं सकता । निपादराज ने भी यही कहा था : लखब सनेहु सुभाव सुहाएँ । वैर प्रीति नहि दुरइ दुराएँ ।

मुनिगन निकट विहग मृग जाही । बाधक बधिक विलोकि पराही ॥
हित अनहित पसु पंछिउ जाना । मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥२॥

अर्थ : मुनियों के पास चिड़ियाँ और जानवर चले जाते हैं और बाधक तथा बधिक को देखकर भागते हैं । अपना हित और अनहित पक्षी और पशु भी जानते हैं । मनुष्य का शरीर तो गुण ज्ञानका निधान है ।

व्याख्या : मुनिगण अहिंसा में प्रतिष्ठित हैं । वे जीव जन्तु से भी प्रेम करते हैं । अतः उनके प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी पर भी पड़ता है । वे नि शङ्क उनके पास पहुँच जाते हैं और बाधक बधिक का प्रभाव इतना उग्र होता है कि उन्हें देखकर पशु पक्षी भाग खड़े होते हैं । अतः यह सिद्ध है कि हित अनहित का परिज्ञान अज्ञानो पशु और पक्षियों को भी हो जाता है । फिर मनुष्य को क्यों न होगा । मनुष्य का चाल तो गुण ज्ञान का भण्डार है । उसे हित अनहित का ज्ञान होना स्वाभाविक है । नहि कस्तूरिकामोद शपथेन विभाव्यते । कस्तूरी की सुगन्ध शपथ से नहीं प्रमाणित की जाती । भाव यह कि तुम्हारा प्रेम ससार दम्य रहा है ।

तात तुम्हहि मैं जानेउँ नीके । करौ काह असमंजसु जीके ॥
राखेउ राँय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ पेम पनु लागी ॥३॥

अर्थ : हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ । पर क्यों क्या ? जी में बड़ा

असामञ्जस्य हो रहा है। महाराज ने मेरा त्याग करके सत्य की रक्षा की और प्रेम के प्रण के लिए शरीर त्याग दिया।

व्याख्या तुम्हे तो वचन से देख रहा हूँ। यथा जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकारि। वनवेध उपवीत बिआहा। सग सग सब भयेउ उछाहा। अत तुम्हे अच्छी तरह जानता हूँ और तुम्हारे प्रेम प्रण को सफल भी करना चाहता हूँ। पर करूँ क्या? बड़ा भारी असामञ्जस्य उठ खड़ा हुआ है। उसकी विधि किसी भाँति नहीं बैठ सका। पिताजी भी असामञ्जस्य में पड़ गये थे। सत्य और प्रेम का सामञ्जस्य नहीं बैठता था। अत मुझे त्याग करके उन्होंने सत्य की प्रतिष्ठा की और मेरे प्रेम के निर्वाह में शरीर ही त्याग दिया। इस भाँति उन्होंने तो सामञ्जस्य बिठा लिया।

तासु वचन मेदत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सकोचू ॥

तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउ सोइ कीन्हा ॥४॥

अर्थ उनके वचन के मिटाने में मन में सोच हो रहा है और उससे भी अधिक तुम्हारा सङ्कोच है। उसके ऊपर स्वयं गुरु की आज्ञा हो गयी। अत जो तुम कहो उसे निश्चय सिर चढ़ाकर करना चाहता हूँ।

व्याख्या असामञ्जस्य यह है कि उस सत्यप्रतिज्ञ प्रमनिधि पिता के वचन को कैसे मिटा दूँ और इधर तुम्हारा सङ्कोच मैं किसी भाँति नहीं छोड़ सकता। जब से तुम्हारा आना सुना तभी से इस असामञ्जस्य में पड़ा हूँ। यथा सो मुनि रामहि भा अति सोचू। उत पितुवच इत वधु सँकोचू। ऐसी स्थिति में पड़ गया कि किसे छोड़ूँ किसे ग्रहण करूँ। फिर भी पलड़ा तुम्हारे ही ओर झुकता था। अब तो कोई बात ही नहीं है। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। यथा मोरे जान भरत रुचि खी। रजो कीजिअ सो सुभ सिव साखी। अब तो जो तुम कहो वही मैं करना चाहता हूँ।

दो मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौ सोइ आजु।

सत्यसन्ध रघुवर वचन, सुनि भा सुखी समाजु ॥२६४॥

अर्थ मन प्रसन्न करके और सङ्कोच छोड़ करके जो कहो सो मैं आज करूँ। सत्यसन्ध रघुवर रामजी के वचन को सुनकर समाज सुखी हो गया।

व्याख्या रामजी कहते हैं कि भरत तुम्हारी सङ्कोची वान है। गुरुजी ने भी कहा और मैं भी कहता हूँ कि सङ्कोच छोड़कर स्पष्ट कहो कि क्या चाहते हो इतना ही नहीं प्रसन्न मन से कहो। जिसमें तुम प्रसन्न हो वही मैं किया चाहता हूँ। जो तुम कहोगे उसे आज ही करूँगा हीलाहवाली नहीं। बोलो क्या चाहते हो।

सरकार का वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया। रघुकुल कैरव वनचन्द के वचन को सुनकर कैरव वन खिल उठा। क्योंकि सरकार सत्यसन्ध है। जो कह दिया वह निश्चय करेंगे। भरतजी लौटने को कहेंगे ही। अत आशा की पूर्ति होते देखकर सब प्रसन्न हो गये।

सुर गन सहित सभय सुरराजू । सोचहि चाहत होन अकाजू ॥
बनत उपाउ करत कछु नाँही । राम सरन सब गे मन माँही ॥१॥

अर्थ : देवगण के सहित इन्द्र भयभीत हो गये । सोचने लगे कि अब काम बिगडा चाहता है और कुछ करते धरते बन नहीं रहा है । सो सब मन से रामजी के शरण गये ।

व्याख्या : रामजी की बात सुनकर सब देव समाज डर गया । इन्द्र भी डर गये कि रामजी ने तो सब बोझा भरतजी पर डाल दिया । अब भरतजी क्या कहेंगे कि आप वन चले जाइये । भरतजी कहेंगे ही अयोध्या लौटाने को । सरकार सत्यसन्ध हैं । अयोध्या लौट जायेंगे और यदि वे अयोध्या चले गये तो फिर सीताहरण और रावण वध कैसे होगा ? रावण स्वयं रामजी से लड़ने नहीं आवेगा । सुबाहु वध हुआ । विराध वध हुआ । पर रावण चुप रह गये । रामजी निष्कारण उसका वध करेंगे नहीं । तब तो हम लोगो का दुख फिर ज्यो का द्यो रह गया ।

हम पहिले ही कह रहे थे : करिय जतन छल सोधि । जिसमे रामजी से भरत की भेंट न हो । पर गुरुजी ने कहा : भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल । अब क्या करें ? समय का बड़ा सङ्कोच है । रामजी और भरतजी पर माया चल नहीं सकती । दूसरे पर चलावे तो उसे कार्य मे परिणत करने के लिए समय चाहिए । रामजी इधर प्रतिज्ञा कर बैठे हैं : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करी सोइ आज । अतः अब तो कोई उपाय नहीं है । सभा बैठी हुई है । इस समय हम लोग प्रत्यक्ष जाकर कुछ कह नहीं सकते । अतः कोई उपाय नहीं है । इस भाँति अपने को असमर्थ पाकर सब देवता लोग मन से रामजी के शरण गये ।

बहुरि बिचारि परसपर कहही । रघुपति भगत भगतिवस अहही ॥
सुधि करि अंबरीष दुरवासा । भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥२॥

अर्थ : फिर विचारकर आपस मे कहने लगे कि रघुपति तो भक्त की भक्ति के वश मे रहते हैं । राजा अम्बरीष और दुर्वासा का कथानक स्मरण करके देवगण और इन्द्र अत्यन्त निराश हो गये ।

व्याख्या : शरण जाने के बाद यह बुद्धि फुरी कि अब रामजी के हाथ रह ही क्या गया । ये तो भक्त के वश मे हैं । भरत ने जो प्रार्थना की तो इन्होंने सब भार भरत पर ही डाल दिया । यही इनका स्वभाव है । जब दुर्वासा शरण मे गये तो कह दिया : अह भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज । इसी तरह हम लोगो को भी टका सा जवाब मिल गया : अह भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव । अतः अब तो राम शरण से भी आशा नहीं ।

सहे सुरन्ह बहु काल विपादा । नरहरि किए प्रगट प्रह्लादा ॥
लगि लगि कान कहहि धुनि माथा । अब सुर काज भरत के हाथा ॥३॥

अर्थ देवताओं ने बहुत काल तक दुःख उठाया । पर नृसिंह को प्रह्लाद ने प्रकट किया । सब एक दूसरे के कान लगकर और सिर धुनकर कहने लगे कि अब देवताओं का काम तो भरत के हाथ में है ।

व्याख्या सरकार को देवताओं से कहीं अधिक भक्त का ध्यान रहता है । पहिले भी हिरण्यकश्यप ने क्या कम दुःख दिया । पर सरकार प्रकट नहीं हुए । इन्हें तो भक्त प्रकट करता है । प्रह्लाद पर दुःख पड़ा तब प्रकट हुए । अतः इनका वन जाना या अयोध्या लौटना अब भरत के हाथ में है ।

अतः लज्जा से सभा में खुले मैदान नहीं कह रहे हैं । एक दूसरे के कान में कह रहे हैं और पश्चात्ताप से सिर पीटते हैं कि हम सब लोगो ने तो मिलकर पाँव रोपकर भरत का अपकार किया । यथा पाँव रोपि सब मिलि मोहि घाला । अब भरत के हाथ में मेरी वार्यसिद्धि आयी । अतः बात बिगड़ी ही बिगड़ी है ।

आन उपाई न देखिअ देवा । मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सपेम सुमिरहु सब भरतहि । निज गुन सील राम बस करतहि ॥४॥

अर्थ हे देवता लोग ! दूसरा उपाय तो अब कुछ दिखाता नहीं । रामजी सुसेवक की सेवा का मानते हैं । अतः प्रेमयुक्त हृदय से सब कोई भरत का स्मरण करो । जिसने अपने गुण और शील से रामजी को वश कर लिया है ।

व्याख्या सब देवता लोग इसी बात पर आगये कि सिवा भरत के शरण गये कोई उपाय नहीं है । क्योंकि रामजी सुसेवक की सेवा को मानते हैं । देवताओं का सङ्कोच उसके सामने कुछ नहीं है । परन्तु भरत की शरण जाने का भी तो अवसर नहीं है । अतः हृदय से ही भरतजी को प्रेम से सुमिरो । भरतजी बड़े शीलवान् हैं । बड़े गुणी हैं । हम लोगो का काम बिगड़ने नहीं देंगे । उनमें कम शील और गुण है । रामजी तो उनके शील और गुण के वश हैं ।

दो सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ, भल तुम्हार बड भागु ।

सकल सुमगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु ॥२६५॥

अर्थ देवताओं की सम्मति सुनकर बृहस्पतिजी ने कहा कि तुम्हारा बड़ा अच्छा भाग्य है । ससार में भरत के चरण में अनुराग होना सब शुभमङ्गलो का मूल है ।

व्याख्या देवताओं की सम्मति जब गुरु बृहस्पति ने सुनी तब बोल । अभी तक चुप रहे क्योंकि पहिले की उनकी वही हुई बात देवताओं के मन में ठीक नहीं बैठी थी । उन्होंने पहिले ही कह दिया था भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल । सो सुरपाल समाज सहित डर गये । गुरुजी चुप है कि डर रहे हैं तो डरने दो । हम क्या करें । हमने तो पहिले ही कह दिया है कि मत डरो । अब जब देखा कि देवता भरतजी के शरण में मन से जाना चाहते हैं तो इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए गुरुजी ने कहा कि तुम्हारा भाग्य अच्छा है और बड़ा भाग्य

है कि तुम्हारे मन में भरत के शरण जाने की बात आगयी। भरत के चरण में अनुराग होना इस ससार में सब सुमङ्गलो का मूल है। अतः तुम्हारा मङ्गल होनेवाला है। उन लोगो का अभाग है जिनके मन में भरत की भक्ति नहीं आती।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥

भरत भगति तुम्हारे मन आई। तजहु सोचु विधि बात बनाई ॥१॥

अर्थ : सीतापति सेवक की सेवकाई सौ कामधेनु के समान सुन्दर है। तुम्हारे मन में भरत की भक्ति आगयी। सब सोच छोड़ दो। ब्रह्माजी ने ही बात बना दी।

व्याख्या : सीतापति के सेवक भरत हैं। उनकी सेवकाई अर्थात् भक्ति सौ कामधेनु के समान कल्याणकारिणी है। रामजी की भक्ति तो एक ही कामधेनु के समान कही गयी है। यथा - सुनु खगेस हरि भगति विहाई। जे सुख चाहहि आन उपाई। ते जड कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहि पय लागी। एक कामधेनु सब मनोरथ पूर्ण करती है सौ कामधेनु क्यों न पूरा करेंगी ?

तुम लोगो के मन में यह बात जो आयी : हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। सो मानो सौ कामधेनु का आगमन हुआ। अब मनोरथ पूर्ण होने में सन्देह नहीं है। पहिले जो तुम लोगो ने विचार किया था : रामहि भरतहि भेंट न होई। वह बात बिगड़ने का रास्ता था। विधि सानुकूल होते हैं तब भरत की भक्ति मन में आती है। अतः अब सोच छोड़ दो म्वयं ब्रह्मा ने ही बात बना दी। मेरे कहने पर बात मन में न आयी और इस समय आगयी तो यह ब्रह्मा की ही करतूत है।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायँ विवस रघुराऊ ॥

मन थिर करहु देव डरु नाँही। भरतहि जानि राम परिछाही ॥२॥

अर्थ : हे देवराज ! भरत का प्रभाव देखो। रामजी जिसके सहज स्वभाव से वश हो रहे हैं। भरतजी को राम की परिछाही जानकर देवता लोग ! मन को स्थिर करो। डर की कोई बात नहीं है।

व्याख्या : गुरुजी कहते हैं कि भरत के प्रभाव को आँखों से देख लो। भरत ने न कोई तप किया, न आराधना की। अपने स्वभावानुकूल काम करते जा रहे हैं और उस पर रामजी उनके वश में हैं। कह रहे हैं - कहहु करउँ सो आज। भरत के मन रखने के सामने न पिता का वचन ही कुछ है और न तुम लोगो का सङ्कोच ही किसी गिनती में है।

तुम्हारा मन चञ्चल हो उठा है। उसे स्थिर करो। क्योंकि डर की कोई बात नहीं है। भरत को राम की परिछाही : प्रतिविम्ब जानो। पुरुष जैसी चेष्टा करता है उसका प्रतिविम्ब भी वैसी ही चेष्टा करता है। प्रतिविम्ब विम्ब के प्रतिकूल चेष्टा कर नहीं सकता।

सुनि सुरगुर सुर संपत सोचू । अंतरजामी प्रभुहि संकोचू ॥
निज सिर भारु भरत जियं जाना । करत कोटि विधि उर अनुमाना ॥३॥

अर्थ : बृहस्पतिजी और देवताओं की सलाह और विचार सुनकर प्रभु अन्तर्यामी को सङ्कोच हुआ । भरतजी मन में जान गये कि सब बोझा मेरे ऊपर है । इसलिए करोड़ों प्रकार का अनुमान करने लगे ।

व्याख्या : बृहस्पतिजी की सम्मति और देवताओं का विचार सरकार ने सुना । उनके लिए व्यवधान कोई वस्तु नहीं है । बातचीत आकाश में होती थी । पर सरकार सब सुनते थे । गुरुजी की सम्मति भी सुनी और देवताओं का विचार भी सुना । अतः सरकार सङ्कुचित हुए । सङ्कुचित होने का यथेष्ट कारण भी है । यथा : प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरोसो । सो आज सब निणंय भरत पर छोडे बैठे है । अन्तर्यामी हेतु गर्भ विशेषण है । सबके अन्तर का हाल जानते हैं ।

देवताओं का विचार कहकर जहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था वही फिर उठाते हैं । रामजी के यह कहने से कि कहहु करउँ सोइ आज । भरतजी ने जान लिया कि सरकार ने सब बोझा मेरे ऊपर छोड़ दिया । पिता के वचन का भार, प्रजा के सुख का भार, स्वामी के धर्म का भार, माताओं की अभिरुचि का भार, देवताओं के कार्य का भार, सब भरतजी पर आ पड़ा । अतः तर्कों की कोटियाँ उठी । स्वामी के धर्म को वचाते हैं तो पुरजन परिजन माताओं के दुख का अन्त नहीं और अवध लौट चलने को कहते हैं तो देवताओं का कार्य बिगड़ता है और सरकार के धर्म में बाधा पड़ती है । मैं सेवक हूँ स्वामी का धर्म कैसे बिगड़ने दूँ इत्यादि ।

जरि विचारु मन दीन्ही ठीका । राम रजायसु आपन नीका ॥
निज पन तजि राखेउ पन मोरा । छोहु सनेहु कीन्ह नहि थोरा ॥४॥

अर्थ : विचार करके मन में यही ठीक किया कि रामजी की आज्ञा में ही अपनी भलाई है । अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रक्खा । सो थोड़ा छोह और स्नेह नहीं किया ।

व्याख्या : विचार करके गुरुजी के उपदेश पर आगये : राखे राम रजाय रुख हम सब कर हित होइ । राजा वही है जिसकी रजायसु . आज्ञा सब पर चले । अब यदि रामजी की आज्ञा से सब कार्य होना आरम्भ हो जाय तो स्वभावतः वे राजा हो जाते हैं । अतः यदि न भी लौटे तो भी राज्य की स्वीकृति तो हो ही जाती है । जीव का कल्याण ईश्वर की आज्ञापालन में है । यथा . प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ।

जिस समय सरकार ने कह दिया : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौ सोइ आज । उसी समय वन से लौटना और सिंहासनारूढ़ होना स्वीकार कर लिया । अपना प्रण छोड़ दिया और मेरा प्रण रख लिया । छोह और स्नेह की सीमा हो

गयी । अब जो वह आशा दें वही करने में भलाई है । ऐसे मालिक को सङ्कोच में डालना अच्छा नहीं ।

दो. कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब विधि सीतानाथ ।

करि प्रनामु बोलेउ भरतु, जोरि जलज जुग हाथ ॥२६६॥

अर्थ : सीतानाथ ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अनुग्रह किया । दोनों कर कमल जोड़कर और प्रमाण करके भरतजी बोले ।

व्याख्या : तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहिहि कृपा विसेखी । यह आशा जो भरतजी को थी वह परिपूर्ण हो गयी । सीतानाथ पद से दिखलाया कि सीताजी की भी वैसी ही कृपा हुई । यथा : सब विधि सानुकूल लखि सीता । मे निसोच, उर अपडर बीता । अतः सरकार के कथन के उत्तर में विनय करने के लिए प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले ।

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी । कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥

गुर प्रसन्न साहिव अनुकूला । मिटी मलिन मन कल्पित सूला ॥१॥

अर्थ : हे स्वामिन् ! क्या मैं कहूँ और क्या कहलाऊँ । आप कृपा के समुद्र हैं और अन्तर्यामी हैं । गुरुजी प्रसन्न हैं । स्वामी अनुकूल हैं । मलिन मन का कल्पित शूल मिट गया ।

व्याख्या : भरतजी बड़े सङ्कोची हैं । यदि कुछ कहना होता है तो दूसरे से कहलाते हैं । यथा : महुँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन । अतः कहते हैं कि मैं क्या कहूँ या दूसरे से कहलाऊँ । कृपा के समुद्र और अन्तर्यामी से कहना क्या है ? कहना या कहलाना तो उससे होता है जिसे कृपा भी थोड़ी हो और मन की बात भी न जानता हो । यहाँ तो कृपा का समुद्र उमड़ रहा है और किसी के हृदय की बात छिपी नहीं है ।

गुरुजी ने कह दिया : मोरे जान भरत रुचि राखी । जो किजिअ सो सुभ सिव साखी । अतः देख लिया कि गुरुजी प्रसन्न हैं । सरकार स्वयं कह रहे हैं : तेहि ते अधिक तुम्हारा सकोचू । अब इससे अधिक अनुकूलता क्या होगी । मेरा मन मलिन है । अतः बात जल्दी समझ में नहीं आती । मन की मिथ्या कल्पना से शूल उठता था : राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ । सो शूल जाता रहा । मैं गुरुजी को भी अप्रमत्त समझता था । यथा : वृक्षिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभाग । अब मन का सब दुःख मिट गया ।

अपडर डरेउँ न सोच समूलें । रविहि न दोसु देव दिसि भूलें ॥

मोर अभागु मातु कुटिलाई । विधि गति विषम काल कठिनाई ॥२॥

अर्थ : मैं झूठे डर से डर गया । मेरा सोच निर्मूल था । जिसे दिग्भ्रम हुआ

हो सूर्य को दोष नहीं देना चाहिए । मेरा अभाग और माँ की कुटिलता ब्रह्मा की विषमगति और काल की कठिनता ।

व्याख्या सरकार के तात तुमहि में जानउँ नीके । इस कहने का उत्तर देते हैं कि दोष सरकार का नहीं । दोष मेरा है कि मैं निष्कारण भय से भीत हो गया । मेरी गति दिग्भ्रमवाले की सी हो गयी । दिग्भ्रमवाले को सूर्यनारायण पश्चिम उदित होते प्रतीत होते हैं तो उसमें सूर्यनारायण का कोई दोष नहीं । वे तो यथा पूर्व सदा पूर्व में ही उदय होंगे । दोष तो दिग्भ्रमवाले की मति का है जो विपरीत समझ रहा है ।

वात यह हुई कि चार बातें आ पड़ी । १ मेरा अभाग्य उदय हो गया । २ माँ ने कुटिलता से काम लिया । ३ ब्रह्माजी बायें हो गये और ४ कराल काल उपस्थित हो गया । १ मोर अभाग । यथा झूठ काह पछिताउँ अभागी । २ माँ की कुटिलता । यथा कैकयनदनि मदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह । ३ विधिगति विषय । यथा विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्हो बावरी और । ४ काल कठिनाई । यथा भयउ कराल काल विपरीता ।

पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला । प्रणतपाल पन आपन पाला ॥

येह नइ रीति न राउरि होई । लोकरुँ वद विदित नहि गोई ॥३॥

अर्थ सबने मिलकर पाँव रोपकर मेरा सत्यानाश किया । पर प्रणतपाल ने अपने प्रण का पालन किया । यह आपकी नयी रीति नहीं है । लोक और वेद में विदित है । कही छिपी नहीं है ।

व्याख्या उपर्युक्त चारों ने प्रतिज्ञा करके मेरा सर्वनाश किया । पाँव रोपना का अर्थ प्रतिज्ञा करना है । यथा सुनु दसकठ कहौं पन रोपी । इन चारों के विरोध करने पर रक्षा का उपाय नहीं । पर प्रणतपाल ने अपना प्रण पालन किया । सरकार का प्रण है कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त प्रणश्यति ताते नाश न होइ भक्त वर । सरकार ने मुझ वचा लिया ।

यह सरकार की बड़ी पुरानी नीति है । मेरी रक्षा करने में किसी नयी रीति से काम नहीं लिया गया । यह नीति अनादिकाल से चली आती है । अतः वेद में भी कहा है लोक में भी सब कोई जानता है । इसी से सङ्कट आ पड़ने पर बड़ा भारी नास्तिक भी सरकार की शरण जाता है । क्योंकि यह प्रसिद्ध बात है कि सरकार अशरण शरण हैं और अकारण करुण हैं ।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं । कहिअ होइ भल कासु भलाई ॥

देउ देवतरु सरिस सुभाऊ । सनमुख विमुख न काहुहि काऊ ॥४॥

अर्थ ससार तो बुरा है । एक सरकार ही भले हैं । फिर किसकी भलाई से भला हो ? हे देव । आपका स्वभाव कल्पवृक्ष सा है । न आप कभी किसी के सम्मुख रहते हैं और न विमुख रहते हैं ।

व्याख्या : भरत भूमि रह राउर राखी का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि सरकार ही केवल भले हैं । वयोकि सच्चिदानन्द रूप हैं । जगत् तो अनित्य जड और दुःखरूप है । जगत् मे भलाई है ही नहीं । उससे भलाई कैसे होगी । उसमे यदि कही भलाई की झलक दिखायी पडे तो वह सरकार की ही भलाई की झलक है ।

सरकार देव है और स्वभाव सरकार का देवतरु अर्थात् कल्पवृक्ष सा है । कल्पवृक्ष न किसी के अनुकूल है न प्रतिकूल है । अपने स्वरूप मे स्थित है । कितना भी कोई बुरा हो कल्पवृक्ष किसी को दण्ड देने नहीं जाता और न भले को इनाम देने जाता है ।

दो. जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच ।

माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंकु भल पोच ॥२६७॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के पास जाय । उसे पहिचाने तो उसकी छाया से सब सोच नष्ट होता है और माँगने से राजा रक भले बुरे संसार मे उससे अभिलषित पदार्थ प्राप्त करते है ।

व्याख्या : कल्पवृक्ष तो कही है ही । पर वह किसी को लाभ नहीं पहुँचाता । जिसे लाभ प्राप्त करना हो वह उसके पास जाय । तथा अन्य वृक्षो मे उसे पहिचाने । तो इतना फल वह तुरन्त देता है कि उसके छाँह मे जानेवाले का सोच हरण कर लेता है और यदि उससे प्रार्थना करे तो जो चाहे वही मिलता है ।

इसी प्रकार जिसे कल्याण की कामना हो वह सरकार के सम्मुख जाय । सरकार को पहिचाने । आश्रय ग्रहण करे । तो इतने से ही उसके कोटि जन्म के पाप नष्ट हो जाते है । यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जवही । जन्म कोटि अध नासहि तवही और माँगने से तो जो जिसकी अभिलाषा करता है उसकी प्राप्ति होती है । यथा : मोर दरस अमोघ जगमाँही ।

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेह । मिटेउ छोभु नहि मन सन्देह ॥

अब करुना कर कीजिअ सोई । जनहित प्रभु चित छोभु न होई ॥१॥

अर्थ : सब प्रकार से गुरु और स्वामी का स्नेह लख करके मेरा क्षोभ मिट गया । अब मन मे सन्देह नहीं है । हे करुणाकर । अब ऐसा कीजिये कि सेवक के लिए प्रभु के चित्त मे क्षोभ न हो ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे मन मे क्षोभ भी था और सन्देह भी था । क्षोभ यथा : मही सकल अनरथ कर मूला । और सन्देह यथा : जो परिहरहि मलिन मनु जानी । जो सनमानहि सेवक मानी । अब दोनों मिट गया । गुरुजी का इतना स्नेह कि मेरे लिए सरकार से कहा : भरत भगति बस भइ मति मोरी । और सरकार का इतना स्नेह कि मेरे सङ्कोच को पिता के वचन से अधिक माना । अतः अब न तो क्षोभ है न सन्देह है ।

सरकार करुणाकर मेरे ऊपर करुणा करके सब कुछ करने को तैयार है। पर ऐसे मालिक को क्षोभ में डाल देने से मेरा धर्म बिगड़ेगा। अतः अब मेरी यही प्रार्थना है कि सरकार वैसा ही करें जिसमें मेरे कारण सरकार का चित्त क्षुब्ध न हो।

जो सेवक साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई ॥२॥

अर्थ : जो सेवक मालिक को सङ्कोच में डालकर अपना हित चाहता है उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है कि स्वामी की सेवकाई सब सुखों का लोभ छोड़कर करे।

व्याख्या : सेवक का धर्म बड़ा गहन है। योगियों के लिए भी अगम्य है। जहाँ मालिक पयादे पाँव चले वहाँ सेवक का सिर बल चलना उचित है। यथा सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा। अतः सेवक का मालिक को सङ्कोच में डालकर अपना काम निकालना नीचता है।

सेवक का धर्म यह है कि सब सुखों का लोभ छोड़कर मालिक की सेवा करे। जो सेवक अपना सुख चाहेगा वह सेवा क्या करेगा ? अतः मैं अपने सुख के लिए तो सरकार को सङ्कोच में डाल ही नहीं सकता।

स्वारथु नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि विधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥३॥

अर्थ : हे नाथ। आपके लौटने में सबका स्वार्थ है। पर आपकी आज्ञा शिरोधार्य करना कोटि गुना अच्छा है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार है। सब पुण्यों का फल है और सुगति का शृङ्गार है।

व्याख्या : सरकार के वियोग में पुर नर नारी विकल हैं। यथा - जरहि विषम ज्वर पुर नर नारी। अतः सरकार के लौट चलने से उनका ज्वर उतर जायगा। यथा : सब कहँ सुखद राम अभियेकू। वे सुखी हो जायेंगे। यह अच्छी बात है। पर इससे करोड़गुनी अच्छी बात यह है कि सब आपकी आज्ञा माने। क्योंकि सबका कल्याण तो आपकी आज्ञा मानने से ही होगा। गुरुजी ने कह दिया है - राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। क्योंकि प्रभु की आज्ञा जिसके लिए जो हो वह उसी भाँति से चलने में सुख पाता है। मनुष्य प्रेय के लोभ में आकर श्रेय को हाथ से जाने देते हैं। यह उनकी भूल है। श्रेय तो सरकार के आज्ञापालन में है। यथा - प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

सरकार की आज्ञा का पालन ही स्वार्थ का सार है। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा। और परमार्थ का सार भी यह है। यथा : सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू। अर्थात् सरकार की भक्ति ही स्वार्थ परमार्थ का सार है और : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अर्थात्

उत्तमोत्तम भक्ति सरकार की आज्ञा का पालन है । यही सब पुण्यों का फल है ।
यथा : जहँ लगि साधन बेद बखानी । सबकर फल हरि भगति भवानी । और यही
सुगति का शृङ्गार है । यथा : सोह न राम प्रेम विनु जानू । कर्नधार विनु जिमि जल
जानू । जोग कुजोग ग्यान अग्यानू । जँह नहि राम प्रेम परधानू ।

देव एक विनती सुनि मोरी । उचित होइ तस करब बहोरी ॥

तिलक समाजु साजि सब आना । करिअ सुफल प्रभु जौ मनु माना ॥४॥

अर्थ : हे देव ! एक विनती मेरी है । उसे सुन लीजिये । तत्पश्चात् जो उचित
हो वह कीजिये । तिलक का सब समाज साज करके लाया हूँ । यदि सरकार का
जी चाहे तो उसे सफल कीजिये ।

व्याख्या : मुनिजी ने आज्ञा दी थी : कृपासिन्धु प्रियवधु सन कहहु हृदय
की बात । सो हृदय की बात कह रहे हैं कि वन में ही राज्य देने के लिए तिलक साज
सजा सजाया आया हुआ है । यदि सरकार का जी चाहे तो सफल कर दीजिये ।
यह मेरी विनय है । इसी के लिए गुरुजी ने कहा है : भरत विनय सादर सुनिय
करिय बिचार बहोरि । करब लोकमत वेदमत नृप नय निगम निचोरि । अब इस पर
विचार करिये । जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये । यह तो प्रथम पक्ष है ।

दो. सानुज' पठइअ मोहि वन, कीजिअ सबहि सनाथ ।

नतरु फेरिअहि बंधु दोउ, नाथ चली मै साथ ॥२६८॥

अर्थ : अथवा मुझे छोटे भाई के साथ वन भेज दीजिये और सबको सनाथ
कीजिये । यदि यह भी स्वीकार न हो : तो दोनों भाई लौट जायँ मैं साथ चलूँ ।

व्याख्या : मुनिजी की सोची हुई बात कह रहे हैं कि दोनों भाइयों में दायका
बदल बदल हो जाय । आप राज्य पर जाइये और मैं वन जाऊँ । इससे लाभ यह
होगा कि प्रजा सनाथ हो जायगी । वह सरकार में ही अनुरक्त है । शत्रुघ्नजी विनय
भरतजी से कर चुके हैं कि आप वन जाइयेगा तो मुझे अवश्य साथ ले लीजियेगा ।
अतः शत्रुघ्न सहित वन जाने की आज्ञा माँग रहे हैं । यदि यह भी पसन्द न हो तो
तीसरा पक्ष कहते हैं कि दोनों भाई लक्ष्मण शत्रुघ्न घर फिर जायँ और सरकार के
साथ मैं वन चलूँ । भरतजी का मुख्य आशय यह है कि मुझे सरकार की सेवा का
सौभाग्य हो । अयोध्या लौटकर शासन में हाथ न लगाना पड़े । एक क्षण के लिए
राज्य भरतजी को स्वीकार नहीं ।

नतरु जाहि वन तीनिउँ भाई । बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥

जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुना सागर कीजिअ सोई ॥१॥

अर्थ : नहीं तो हम तीनों भाई वन जायँ । सरकार जनकनन्दनी के साथ
जायँ । जिस प्रकार सरकार का मन प्रसन्न हो हे करुणासागर ! वही कीजिये ।

व्याख्या : भाव यह कि सर्व प्रधान विनय तो यह है कि सरकार अपना अभिप्रेक स्वीकार करें। फिर राजा की इच्छा चाहे जहाँ से राज्य करें। नहीं तो राज्य में और वन में अदला बदली हो जाय। यह भी नहीं तो : कर्ता भोक्ता त्वमेव हि। ऐसा सरकार ने लक्ष्मणजी से कहा है। सो उन्हीं को राज्य पर भेज दिया जाय। सहायता के लिए साथ में शत्रुघ्न रहे और सेवा में मैं रहूँ। यदि सरकार समझें कि वन का शासन इस समय कठिन व्यापार है वह मुझसे ही सधेगा। यथा • पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड काजू। तो आप के स्थान पर हम तीनों भाई वन जायें। तीनों मिलकर काम सँभाल लेंगे। हवि के विभाग के अनुसार भी रामचन्द्र के हवि के तुल्य शेष तीनों भाइयों का हवि मिलाकर होता है। यथा : अर्ध भाग कीसित्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा। इत्यादि।

सीय सहित कहने का यह भाव है कि कही यह आज्ञा न हो कि मैं सीता को लौटा देता हूँ। इतने से हो सन्तोष करो। यथा : जौं सिय भवन रहै कह अवा। मो कह होइ बहुत अवलबा। यथा • तो तुम्ह विनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेस किसोरी।

भरतजी कहते हैं कि यदि ये चारों विधियाँ नापसन्द हो तो जिस विधि से सरकार का मन प्रसन्न हो वही किया जाय। मैं यह जोर नहीं देता कि इन चार पक्षों में से सरकार किसी को अवश्य स्वीकार करें। सरकार करुणासागर है। सरकार जो करेंगे वही ठीक होगा।

देव दीन्ह सबु मोहि अभाऊ। मोरे नीति न धरम बिचारू ॥

कहउँ वचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू ॥२॥

अर्थ : हे देव। आप ने सब बोझा मेरे ऊपर रख दिया और मुझे नीति और धर्म का विचार नहीं है। जो वचन कहता हूँ सो स्वार्थ के लिए कहता हूँ। क्योंकि आर्त्त के मन में विवेक नहीं रहता।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि नीति और धर्म के विचार की यहाँ आवश्यकता है। यह विवेचना करना है कि धर्म में बाधा भी न हो और अपना स्वार्थ भी सधे। सो मुझमें यह सामर्थ्य नहीं। यथा एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी। सो बोझा मेरे ऊपर डाला गया है। उसके वहन में मैं समर्थ नहीं हूँ। इस पर कहा जा सकता है कि तब तुमने ये चार पक्ष कैसे उठाये? इस पर भरतजी कहते हैं। इन चारों पक्षों में मेरा स्वार्थ साधन होता है। स्वार्थ के कारण मैं आर्त्त हो रहा हूँ। आर्त्त को विचार शक्ति नहीं होती। गुरुजी ने ठीक ही कहा था : आरत कहहि विचारिन काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥

अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू ॥३॥

। अर्थ : जो स्वामी की आज्ञा सुनकर उत्तर दे उस सेवक को देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती है । मैं ऐसे दोषों का अथाह समुद्र हूँ । यह स्वामी का स्नेह है कि मेरी प्रशंसा साधु कहकर कर रहे हैं ।

व्याख्या : स्वामी का रुख देखकर ही काम कर देना चाहिए । सेवक का धर्म है कि स्वामी के मन में मन मिलाये हुए उसके मनोनुकूल चले । यथा : जोगवत रहहि मनहि मन दीन्हें । यदि स्वामी को कहना पड़ा तब तो अवश्य ही कर डालना चाहिए । फिर भी न करे तो लज्जा की बात है और यदि सेवक ने उत्तर दे दिया तो इससे बढ़कर लज्जा की बात क्या होगी : भृत्यश्चोत्तरदायकः । भृत्य का उत्तर देना बड़ा भारी दोष है ।

मैं तो ऐसा दोष का समुद्र हूँ कि सरकार की आज्ञा पाकर भी स्वीकार नहीं किया और यहाँ उत्तर देने को खड़ा हो गया । पर सरकार ऐसे करुणासागर हैं कि मेरी साधुता की सराहना करते हैं कि साधुता के कारण भरत मेरा वचन नहीं मानता । भरत साधु हैं । यथा : पुन्यसिलोक तात तर तोरे ।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाहि न पावा ॥

प्रभु पद सपथ कहहुँ सति भाऊ । जग मंगल हित एक उपाऊ ॥४॥

अर्थ : हे कृपाल ! अब मुझे यही मत अच्छा लगता है कि जिसमें स्वामी के मन में सङ्कोच न पाया जाय । प्रभु के चरण की शपथ सच्चे भाव से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए एक ही उपाय है ।

व्याख्या : जब सरकार ने कह दिया कि जो भरत कहे उसे आज कर डालूँगा तब तो बात सब पलटा खा गयी । भरत तो सेवक है । सरकार की आज्ञा का पालन करनेवाला है । उसे आज्ञा देने का अधिकार भी नहीं है । वह ऐसा चाह भी नहीं सकता । सरकार मालिक है । सरकार के मन में सङ्कोच न हो । प्रसन्न चित्त से आज्ञा दें । मालिक तो वही है जिसकी आज्ञा चले । सरकार आज्ञा दें और उसी के अनुसार सब चले । यही मेरा अब अभीष्ट है । अतः सरकार के चरण की शपथ लेकर शुद्ध हृदय से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए यही एक उपाय है । सब कहें सुखद राम अभिपेकू । मंगल मोद मूल मगु एकू । सो सरकार की आज्ञा देने से और सबका उसका पालन करने से वह काम हो जाता है । अभिपेक आज हो या दस दिन बाद हो ।

दो. प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव ।

सो सिर धरि धरि करिहि सबु, मिटिहि अनट अवरेव ॥२६९॥

अर्थ : सरकार प्रसन्न होकर सङ्कोच छोड़कर जिसे जो आज्ञा देंगे वही शिरोधार्य करके सब लोग करेंगे । बड़ा भारी उपद्रव और उलझन मिट जावेगी ।

व्याख्या : सरकार ने कहा था : तासु वचन मेटत मन सोचू । तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू । अतः भरतजी कहते हैं कि सोच छोड़ दीजिये । प्रसन्न मन से आज्ञा

दीजिये और सङ्कोच भी न करिये । जिस भाँति सरकार ने भरतजी से कहा था : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सो आज । सो भरतजी भी उसी भाँति सरकार पर सब भार छोड़ते हुए कहते हैं : प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव इत्यादि । सो सिर धरि धरि करिहि सब : कहने का भाव यह कि इस समय भरतजी सम्पूर्ण प्रजावर्ग की ओर से बोल रहे हैं । गुरुजो के किये हुए निर्णय पर आगये ' राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होय । अतः कह रहे है कि आज्ञा पालन से ही यह कठिन अवरेव मिट जायगा । अर्थात् जो कुछ दुःख सुख होगा । वह राजाज्ञा के पालन में होगा । अतः सरकार के दुःख से दुःखी प्रजा को बहुत बड़ा आश्वासन होगा ।

भरत वचन सुचि सुनि सुर हरपे । साधु सराहि सुमन सुर वरपे ॥

असमजस बस अवध निवासी । प्रमुदित मन तापस बनवासी ॥१॥

अर्थ : भरतजी का वचन सुनकर देवता प्रसन्न हो गये और चाह वाह कहकर उन पर फूल बरसाने लगे । अयोध्या निवासी असमञ्जस में पड़ गये और तपस्वी तथा वन के निवासियों का मन प्रसन्न हो गया ।

व्याख्या : वचन की शुचिता यही है कि वह सत्य प्रिय और हित हो । इसलिए शुचि कहा अथवा धर्मयुक्त होने से तथा स्वार्थ विहीन होने से भरतजी के वचन को शुचि कहा । सरकार का वचन सुनने से देवताओं के सहित इन्द्र भयभीत हो गये थे । सो भरतजी का वचन सुनकर हर्षित हुए कि जब रामजी पर बात आगयी तो ये अपनी प्रसन्नता से पिता का वचन नहीं छोड़ेंगे और अवधवासी भी असमञ्जस में पड़ गये कि देखे भरतजी के कहे हुए पक्षों में से रामजी किसे पसन्द करते हैं । बहुत सम्भावना तो यही है कि न लौटें । रामजी का वचन सुनकर बेचारे सुखी हो गये थे । सो फिर असमञ्जस में फँस गये । तपस्वी और वनवासियों ने समझ लिया कि जब रामजी पर बात आगयी तो नहीं लौटना ही सिद्ध है । अतः सरकार के सहवास के आनन्द से वञ्चित न होंगे । भावार्थ यह कि अपने अपने स्वार्थानुकूल लोगो को हर्ष या विषाद हुआ ।

चुपहि रहे रघुनाथ सकोची । प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥

जनक दूत तेहि अवसर आए । मुनि बसिष्ठ सुनि वेगि बोलाए ॥२॥

अर्थ सङ्कोचो रघुनाथजी चुप ही रह गये । प्रभु की गति देखकर सभा की सभा सोच में पड़ गयी । उसी अवसर पर जनकजी के दूत आये । सुनकर वसिष्ठजी ने उन्हें तुरन्त बुलवाया ।

व्याख्या : कोउ न राम सम स्वामि सँकोची । सरकार का स्वभाव ही सङ्कोचो है । यद्यपि भरतजी ने कहा कि सरकार सङ्कोच छोड़कर आज्ञा दें । पर सरकार सङ्कोच नहीं छोड़ सकते हैं । कैसे कह दें कि तुम लोग लौट जाओ मैं नहीं जाऊँगा ।

सब सभा के लोगों को सरकार का सङ्कोच देखकर सोच पैदा हो गया कि ये अयोध्या जाने के लक्षण नहीं हैं ।

सरकार सङ्कोच में पड़े हुए चुप हैं । सभा स्तब्ध है कि देखें क्या आज्ञा होती है । तब से प्रतिहारियों ने समाचार दिया कि महाराज जनक के दूत आये हैं । यह समाचार ऐसा आया कि सब काम ही रुक गया । गुरुजी ने कहा कि जल्दी बुलाओ । भाव यह कि जनकजी का समाचार सुनने के पहिले ही रामजी कोई निर्णय न कर दें ।

करि प्रनाम तिन रामु निहारे । वेपु देखि भए निपट दुखारे ॥
दूतन्ह मुनिवर वृक्षीं वाता । कहहु विदेह भूप कुसलाता ॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके उन्होंने रामजी को देखा तो वेप देखकर बड़े दुःखी हुए । मुनिजी ने दूतों से कहा कि विदेह राजा कुशल कहो ।

व्याख्या : दूत लोग सभा में उपस्थित हुए । प्रणाम करके रामजी को देखा । विवाह के समय देखा था । कहाँ वह वेप और कहाँ वल्लल वसन पहिने और जटा बनाये हुए देखा । अतः दूतों को बड़ा भारी दुःख हुआ ।

मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी ने इसके पहिले कि दूत कुछ कहें पूछा विदेह राजा का कुशल कहो । भाव यह कि राजा जनक विदेह हैं । उन्हें देहाध्यास नहीं है । इतना बड़ा अनर्थ अयोध्या में हो गया । जनकपुर से कोई पूछने न आया कि क्या हो रहा है । अतः यह जानने की उत्सुकता है कि महाराज विदेह कुशल से तो हैं ?

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा । बोले चरवर जोरें हाथा ॥
वृक्षव राउर सादर साईं । कुसल हेतु सो भयेउ गोसाईं ॥४॥

अर्थ : सुनकर सङ्कुचित होकर दूत लोग नमस्कार करके हाथ जोड़े हुए बोले कि आपका जो आदर के साथ पूछना हुआ वही कुशल का कारण हो गया ।

व्याख्या : मुनिजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत लोग सङ्कुचित हुए । परन्तु दूतों में ये श्रेष्ठ है । उत्तर देना जानते हैं । उन सबों ने तो पहिले पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया । तत्पश्चात् हाथ जोड़कर : अत्यन्त विनय से बोले ।

दूतों ने कहा कि आपने जो आदर के साथ पूछा कि विदेह राजा कुशल से तो है ? आपने राजा कुशल से हैं ऐसा नहीं पूछा । आदर के लिए विदेह विशेषण दिया । वही विदेहता ही कुशल का कारण हो गयी । भाव यह कि अयोध्या के समाचार से महाराज को ऐसी चोट लगी कि विदेह होने के कारण रक्षा हो गयी । नहीं तो वहाँ भी अनर्थ हो ही चुका था ।

दो. नाहि त कोसल नाथ कैं, साथ कुसल गइ नाथ ।

मिथिला अवध विसेष ते, जगु सब भयउ अनाथ ॥२७०॥

अर्थ • हे नाथ ! नहीं तो कोसलनाथ महाराज दशरथ के साथ कुशल चली गयी । सारा जगत् अनाथ हो गया और मिथिला अवध तो विशेषरूप से अनाथ हो गये ।

व्याख्या • दूत कहते हैं कि वस्तुस्थिति तो यह है कि कुशल तो कोसलनाथ साथ लेते गये । कोसलनाथ यद्यपि अवध के ही राजा थे पर चक्रवर्ती थे । सभी राजा उनकी कृपा के भिखारी बने रहते थे । यथा • नृप सब रहहि कृपा अभिलाषे । लोकप करहि प्रीति रख राखे । उन पर उनका शासन चलता था । अतः महाराज के देहावसान से ससार अनाथ हो गया । महाराज जनक तो सेवक सेव्यभाव रखते थे । यथा • यह राज साज समाज सेवक जानवी बिनु गथ लये । अतः मिथिला और अवध विशेषरूप से अनाथ हो गये । क्योंकि इनसे उनका साक्षात् सम्बन्ध था । मिथिला के लोग तो महाराज से ऐसी प्रीति रखते थे दशरथ गवन सोहाइ न काहू । भावार्थ यह कि महाराज के देहावसान का दुःख अवध से कम मिथिला में नहीं मनाया गया ।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा । भे सब लोग सोक बस वौरा ॥

जेहि देखे तेहि समय विदेह । नामु सत्य अस लाग न केहू ॥१॥

अर्थ • कोसलपति की गति सुनकर जनकपुर के लोग तो मारे शोक के पागल हो गये । उस समय जिसने महाराज विदेह को देखा उसे उनका विदेह नाम सच्चा न मालूम हुआ ।

व्याख्या • रामजी के विरह में महाराज के देहावसान के समाचार का ऐसा प्रभाव जनकपुर निवासियों के ऊपर पड़ा कि सब पागल से हो गये । किसी को अपनी सुधि न रह गयी और महाराज जो मिथिलाया प्रदग्धाया न में किञ्चित् प्रदह्यते । माननेवाले थे । वे तो ऐसे विकल हुए कि उस समय जिसने उन्हें देखा उसे यही मालूम हुआ कि इनका नाम विदेह नाहक लोगो ने रख छोड़ा है । इन्हें तो प्रबल देहाध्यास है । समझी के मरने का समाचार पाकर इस भाँति तो कोई सामान्य पुरुष भी विकल नहीं होता ।

रानि कुचालि सुनत नरपालहि । सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि ॥

भरत राज रघुबर बनवासू । भा मिथिलेसहि हृदयँ हरांसू ॥२॥

अर्थ • रानी की कुचाल को सुनते ही राजा की ऐसी दशा हो गयी जैसे मणि के बिना सर्प की हो जाती है । उन्हें कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था । भरत को राज और राम का वनवास सुनकर मिथिलाधिपति के हृदय में अत्यन्त दुःख हुआ ।

व्याख्या • स्वायम्भू मनु ने वर माँगा था मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना । मम जीवन तिमि तुमहि अधीना । सो जल बिनु मीन की दशा महाराज दशरथ की हुई उन्होंने प्राण ही त्याग दिया और मणि बिनु फनि की दशा राजा जनक की हुई । यथा • मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे । और यह सब रानी

के कुचाल से हुआ । अतः उसका प्रतीकार कुछ नहीं हो सकता था । यदि दूसरे द्वारा ऐसी बात होती तो महाराज दण्ड विधान करते । अब कुचाल को स्पष्ट करता हुआ दूत कहता है : भरत राज रामहि बनबासू । यह दोनो बातें ऐसी आपड़ी कि कुछ किया नहीं जा सकता था । भरत का राज्य अनिष्ट नहीं कहा जा सकता था । पर राम के वनवास से उसका सम्बन्ध जुटने से इष्ट भी नहीं कहा जा सकता । जैसे राम जामाता तैसे भरत जामाता । यहाँ पुरुषार्थ को एकदम कोई स्थान ही नहीं था । अतः महाराज के हृदय में ह्रास हुआ ।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू । कहहु विचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ । चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ॥३॥

अर्थ : महाराज ने विद्वत् समाज तथा मन्त्रिमण्डल से पूछा कि इस अवसर पर क्या करना चाहिए । अवध के दोनों असामञ्जस्यो को समझकर चलना चाहिए या रह जाना चाहिए । इस प्रश्न पर सब मौन रह गये ।

व्याख्या : अपनी बुद्धि काम करते न देखकर महाराज ने विद्वत् समाज और मन्त्रिमण्डल बुलाया । बड़ा विकट प्रश्न है । अतः राज्य के सभी बुद्धिमान् इकट्ठे किये गये । प्रश्न यह सामने रखवा गया कि ऐसे अवसर पर महाराज को क्या करना चाहिए । अयोध्या प्रस्थान करें या यही ठहरकर देखें कि आगे क्या होता है । तब उचित अवसर पर कुछ किया जाय । इसी प्रश्न पर विचार करना था ।

रामजी और भरतजी दोनो दामाद हैं । किसी एक का पक्ष लिया नहीं जा सकता । जाने पर किसी न किसी का पक्ष ग्रहण करना ही होगा । रामजी वन गये भरत को राज्य मिला । पर इतने से ही मामला ठण्डा नहीं हुआ । रामजी के विरह में चक्रवर्तीजी ने प्राणत्याग किया । प्रजा रामजी में ही अनुरक्त है । नहीं तो भरत के राज्य के साथ साथ रामजी को वनवास मांगने का क्या अभिप्राय था ? जब चक्रवर्तीजी ही सामञ्जस्य नहीं बिठा सके तो दूसरा कैसे बिठा सकेगा ? तिस पर जनकजी का सम्बन्ध ऐसा है कि ये कुछ भी नहीं कह सकते । अतः न जाना ही ठीक है । पर दूसरा पक्ष यह भी है कि इस समय अयोध्या में आग लगी हुई है । यथा • विधि कैकयी किरातिनि कीन्ही । जिन्ह दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही । ऐसे समय पर अति सन्निकट सम्बन्धी दूर खड़े तमाशा कैसे देख सकते हैं ? अतः इन दोनो असामञ्जस्य को देखकर किसी से कोई निश्चित निर्णय करते नहीं बना ।

नृपहि धीर धरि हृदय विचारी । पठए अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ । आएहु वेगि न होइ लखाऊ ॥४॥

अर्थ : राजा ने ही धैर्य धारण करके विचार किया और चार चतुर दूतों को अयोध्या भेजा और आज्ञा दी कि भरतजी का सद्भाव दुर्भाव समझकर जल्द आवो । पर कोई तुम लोगों को लख न सके ।

व्याख्या : महाराज ने देख लिया कि किसी की बुद्धि काम नहीं करती है ।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी । आपत काल परखिअहि चारी । सो महाराज ने धैर्य धारण करके स्वयं विचार किया कि रानी कैकेयी के कुभाव का पता चल गया । परन्तु भरतजी के मन में क्या है इस बात का पता बिना लगे कर्तव्य निश्चित नहीं किया जा सकता । अतः अत्यन्त चतुर चार दूतों को बुलाया और उन्हें अयोध्या भेजा कि जाकर के सद्भाव या कुभाव का पता लगावें । वैषभूषा और भाषा आदि से कोई लख न पावे कि ये दूत बाहर से पता लगाने आये हैं और जितना सम्भव हो उतनी शीघ्रता इस काम में करें ।

दो गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति ।

चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति ॥२७१॥

अर्थ दूत लोग अवध गये । भरत की गति का पता लगाकर और करतूत देखकर जब भरतजी चित्रकूट चल तब दूत मिथिला चले ।

व्याख्या वसिष्ठजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत महाराज का हाल भी कहने लगे । भाव यह कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार पाते ही शोक के प्रथम वेग समाप्त होने पर महाराज स्वयं अवध चलने को तैयार थे । परन्तु बिना सब बात समझे काम करना उचित न समझकर दूतों को सच्चा पता लगाने के लिए भेजा । ऐसे अवसरो पर राजकाज में जिन भावों का प्रदर्शन किया जाता है वे प्रायेण वास्तविक नहीं होते । दूतों से ही असली भेद हाथ लगता है । सो दूत अवध आये । आप लोगों को पता न लगा और सब समाचार लेकर जब भरतजी चित्रकूट चले तब दूत भी मिथिला चल । यही कारण महाराज के देर करने का हुआ । यदि आपके यहाँ से समाचार गया होता तो महाराज के आने में देर न होती ।

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी । जनक समाज जथामति बरनी ॥

सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति । भे सब सोच सनेह विकल अति ॥१॥

अर्थ दूतों ने आकर भरतजी की करणी जनकजी की सभा में यथा वृद्धि वर्णन की । सुन करके गुरु सभासद मन्त्री और राजा सबके सब सोच और स्नेह में अत्यन्त विकल हो गये ।

व्याख्या भरतजी के ही सद्भाव और कुभाव के जानने के लिए दूत भेजे गये थे । अतः उन लोगों ने भरतजी की मङ्गलमय करणी का वर्णन राज समाज में किया और कहा कि हम लोग भरतजी की करणी यथामति कह रहे हैं । नहीं तो वह अवर्णनीय है ।

महाराज उस समय सभा में थे । अतः गुरु परिजन और मन्त्री लोग भी थे । यह समाचार सुनकर सब सोच और प्रेम में मग्न हो गये । सोच रामजी का और प्रेम भरतजी का । रामजी पिता का वचन हटाकर लौट आवेंगे इस बात में सबको सन्देह है और भरत राज्य स्वीकार नहीं करेंगे । यह भी निश्चय है । तब हाता

क्या है ? इस प्रकार का सोच पैदा हुआ और भरतजी की प्रेम कथा सुनने से सबके मन में प्रेम उमड़ आया ।

धरि धीरजु करि भरत बडाई । लिए सुभट साहनी बोलाई ॥

घर पुर देस राखि रखवारे । हय गय रथ बहु जान सँवारे ॥२॥

अर्थ : धैर्य धारण करके भरतजी की बडाई की । योद्धाओं और सेनापतियों को बुलवाया । घर राजधानी और देश की रक्षा का प्रबन्ध करके हाथी, घोड़े, रथ और बहुत सी सवारियाँ सजायी ।

व्याख्या : जिस भाँति चक्रवर्तीजी के निधन पर सबका धैर्य छूट गया था उसी भाँति भरतजी की करणी सुनकर भी सबका धैर्य जाता रहा । पहिली बार भी महाराज ने ही सब के पहिले धैर्य धारण किया । इस बार भी उन्ही ने ही अपने को सबके पहिले सँभाला और निश्चय कर लिया कि चलना चाहिए और देर न होने पावे । भरतजी और रामजी में कोई बात तय पाने के पहिले मेरा पहुँचना जरूरी है । ऐसा सोचकर महाराज ने पहिले घर की रक्षा की । तत्पश्चात् राजधानी और तत्पश्चात् देश की रक्षा की व्यवस्था की । जहाँ जैसा उचित था सेना और सेनापति स्थापित किये गये और साथ चलने के लिए चतुरङ्गिणी सेना तथा बहुत सी सवारियाँ सजायी गयी । दूतों से सुन चुके हैं कि भरतजी के साथ रनिवास की भी यात्रा हुई है । अतः महाराज ने भी रनिवास का ले जाना उचित समझा । ऐसी आपत्ति के समय बेटे दामाद से मिलने की उन लोगों को उत्कट इच्छा होना स्वाभाविक था ।

दुधरी साधि चले ततकाला । किए विश्रामु न मग महिपाला ॥

भोरहि आजु रहाइ प्रयागा । चले जमुन उतरन सबु लागा ॥३॥

अर्थ : दुधरी साध के उसी समय चल पड़े । महाराज ने रास्ते में विश्राम भी नहीं किया । आज प्रातः काल ही प्रयाग स्नान करके चल पड़े । लोग यमुना पार करने लगे ।

व्याख्या : काल बल प्राप्त करने के लिए मुहूर्त देखकर ही कार्य करने की विधि है और यात्रा का मुहूर्त बड़ी कठिनता से मिलता है । यहाँ चलने की बड़ी शीघ्रता है । ऐसे अवसर के लिए दुधडिया मुहूर्त का विधान है । अत्यन्नावश्यकता में उसी से काम लिया जाता है । वह मुहूर्त दो घड़ी में एक बार आ जाता है । अतः तत्काल यात्रा के लिए दुधडिया साइत देखी गयी । महाराज चल पड़े सो अत्यन्त शीघ्र पहुँचने के लिए रास्ते में विश्राम भी नहीं किया । आज प्रातः काल प्रयागराज पहुँच गये । त्रिवेणी स्नान करके चल पड़े । बीच में यमुनाजी पड़ी । पार करने की व्यवस्था हुई । लोग उतरने लगे ।

खबरि लेन हम पठये नाथा । तिन कहि अस महि नायउ माथा ॥

साथ किरात छ सातक दीन्हे । मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! हम लोगों को खबर लेने के लिए भेजा है । ऐसा कहकर उन सबों ने सिर झुकाया । छः सात किरात साथ देकर मुनिजी ने तुरन्त उन सबों को विदा किया ।

व्याख्या : मुनिजी के जिज्ञास्य विषय का उत्तर देकर उन सबों ने पुनः प्रणाम किया । अर्थात् यह दिखलाया कि हम लोगों का इतना ही कथन था । हम लोग तो केवल खबर लेने आये हैं । कोई विशेष बात हम लोगों को नहीं कहनी है ।

मुनिजी ने समझ लिया कि महाराज जनक इन लोगों का इन्तजार करते होंगे । अतः इनका रोकना ठीक नहीं । अतः तुरन्त उनको विदा किया तथा उन सबको सरल मार्ग दिखाने तथा महाराज को सेना सहित सुभीते के रास्ते से लाने के लिए छः सात किरातों को साथ कर दिया ।

जनकागमन प्रसङ्ग

दो. सुनत जनक आगवनु सवु, हरषेउ अवध समाजु ।

रघुनंदनहि सकोचु बड़, सोच विवस सुरराजु ॥२७२॥

अर्थ : जनकजी का आना सुनकर अयोध्या का समाज प्रसन्न हो उठा । रामजी बड़े सङ्कोच में पड़ गये और इन्द्र देवता को तो बड़ा सोच हुआ ।

व्याख्या : जनकजी के आने के समाचार मात्र से मामला पलटा खा गया । अवध निवासी असमञ्जस में पड़े हुए थे सो हर्षित हो गये । भरतजी का वचन सुनकर देवता हर्षित हो गये थे सो सोच के विवश हो गये । महाराज रामचन्द्र वैसे ही सङ्कोच के वश चुप हो रहे थे सो उनका सोच और भी बढ़ गया । महाराज जनक चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं । इनका बड़ा भारी प्रभाव सब पर है । इनके स्वयं आने का रामजी के लौटाने को छोड़कर दूसरा अर्थ हो नहीं सकता ।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई । काहि कहै केहि दूषनु देई ॥

अस मन आनि मुदित नर नारी । भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥१॥

अर्थ : कुटिल कैकेयी गलानि से गली जाती है । किस से कहे और किसे दूषण दे । स्त्री पुरुष तो यह बात मन में लाकर प्रसन्न हो रहे हैं कि फिर चार दिन तो रहना हो गया ।

व्याख्या : जनकजी का आगमन सुनकर कैकेयी तो गलानि के मारे गली जाने लगी कि समधी आ रहे हैं । वे क्या कहेंगे । स्त्रियों को समधी का बड़ा ख्याल होता है । पछताती तो पहिले से ही थी । यथा : लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई । अब उसकी गलानि से बुरी दशा है । गलानि से सम्भावित पुरुष को तो मृत्यु हो जाती है । यथा : कहुँ राजबन दियो नारिवस गरि गलानि गये राउ । कैकेयी का इस समय कोई सहानुभूति करनेवाला नहीं है । जिससे कि वह अपना दुःख कहे । क्योंकि कहने से भी कुछ दुःख घट जाता है और कोई

ऐसा भी नहीं है जिसे वह दोष दे कि मैं अमुक के बहकावे में आगयी। कुंवरी को भी दोष नहीं दे सकती। क्योंकि कुलमान्य जठरी तथा उसके परम प्रिय सखियों ने बहुत समझाया था और अन्त में वह भी दिया : जो नहीं लगिहौ कहे हमारे। नहीं लगिहि कछु हाथ तुम्हारे। सो सखियों की सलाह छोड़कर उसने मतिमन्द कुंवरी की बात क्यों मानी ? अतः स्पष्ट सब दोष उसी का था। उसने सखियों की भी सहानुभूति खो दी। अब मन ही मन मर रही है। किसी से कुछ कह नहीं सकती।

जनकजी के आने का परिणाम क्या होगा ? इस बात पर तक वितर्क न करके लोग इतने पर ही प्रसन्न हैं कि मिथिलेश के आने से चार दिन ठहरने का अवसर और हाथ लग गया।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ ॥
करि मञ्जनु पूजहि नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी ॥२॥

अर्थ : इस प्रकार वह दिन बीता। प्रात काल होते ही सब लोग नहाने लगे। नहा नहाकर स्त्री और पुरुष, गणेश, गौरी और सूर्य का पूजन करते हैं।

व्याख्या : अपने अपने हृद्गत भावों के उधेड़बुन में शेष दिन भी बीत गया। यहां दिन में रात का भी अन्तर्भाव है। सवेरा हुआ। जनकजी के आने की बात है। इसलिए तुरन्त नित्यकृत्य के निर्वाह में लग गये। अब अवधवासियों की दिनचर्या बहते हैं।

पहिले स्नान किया। सन्ध्या तर्पणादि का उसी में अन्तर्भाव है। तब पूजन आरम्भ हुआ। अवधवासी स्मार्त वैष्णव हैं। शिवद्रोही नहीं हैं। शिव विष्णु में अभेद है। यथा : माधवो माधवावीशो सर्वसम्पदविधायिनी। वन्दे परस्परात्मनौ परस्पर-नुतिप्रियो। माधव विष्णु और उमाधव शिवजी दोनों सम्पत्ति के देनेवाले हैं। दोनों एक दूसरे की आत्मा हैं और दोनों को एक दूसरे की वन्दना करना प्रिय है। स्मार्त वैष्णव पञ्चदेवोपासक होते हैं। अतः ये लोग गणपति, गौरी, शिवजी और सूर्य का पूजन करते हैं।

रमा रमन पद बदि बहोरी। विनवहि अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा रामु जानकी रानी। आनंद अवधि अवध रजधानी ॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् रमारमण विष्णु भगवान् के चरणों की वन्दना करके अञ्जलि और अञ्चल जोड़कर विनय करते हैं कि रामजी राजा हो। जानकी रानी हो और आनन्द की सीमा अयोध्या राजधानी हो।

व्याख्या : यहाँ रमारमण शब्द का अन्वय पूर्व की अर्धाली के साथ है अर्थात् पूजहि क्रिया का कर्म रमारमण शब्द है। पूजन के बाद चरणों की वन्दना करके पुरुष लोग अञ्जलि बाँधकर और स्त्रियाँ अञ्चल जोड़कर विनय करती हैं कि रामजी राजा हो। प्रजा सिवा रामजी के दूसरे को राजा नहीं चान्ती। इतना ही नहीं

जानकी रानी हों। सबकी प्रीति जैसे रामजी में है वैसी ही जानकीजी में है। इस मनोहर जोड़ी के देखते रहने की बड़ी अभिलाषा है। यथा : फिरहि दसा बिधि बहुरि कि मोरो। देखिहौ नयन मनोहर जोरी।

राजा लोग अपने पसन्द के अनुसार कभी राजधानी बदल भी देते हैं। सो ऐसा न हो राजधानी अयोध्या ही रहे। क्योंकि अयोध्या आनन्द की पराकाष्ठा है। सरकार के चार विग्रहों में एक है। यथा : रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम्। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् रामस्य विग्रहः। पाठभेदः एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्। तथा अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहि राम धनुषानी।

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुं जुवराजा॥

एहि सुख सुधा सीचि सब काहू। देव देहु जगजीवन लाहू॥४॥

अर्थ : फिर आनन्द सहित सब समाज बसे। भरत को रामजी युवराज बनावें। इस सुखरूपी अमृत से सींचकर हे देव ससार में जीने का लाभ दीजिये।

व्याख्या : भरतजी पहिले ही कह चुके हैं : मिटे कुजोग राम फिरि आये। बसिहि अवध नहि आन उपाये। नही तो सब वारहबाट हो जायेंगे। वही बात आज प्रजा पञ्चदेव की उपासना करके मांगती है कि राजा राम हो जानकी रानी हो इत्यादि। तब यह प्रश्न उठता है कि महाराज ने भरत को टीका देने का वचन दिया है। उसकी क्या गति होगी। इस पर कहते हैं कि चक्रवर्तीजी ने यौवराज्य के टीका का वचन दिया था। सो रामजी भरत को युवराज का टीका कर दें। चक्रवर्तीजी का वचन भी बना रह जाता है।

सब लोग दुःसह ज्वर से जल रहे हैं। सो इस सुखरूपी अमृत से पञ्चदेव सबको सीचें। बिना इस अमृत का सिञ्चन किये ज्वर और जलन दोनों न मिटेगी। अभिलाष सबका यही है। यथा : कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा। कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहि राम होइ चित चैता। उसी अभिलाष में बाधा पड़ने से ज्वर है। अभिलाष की पूर्ति ही जीवन का लाभ है। अतः हमारे जीवन का लाभ इसी में है कि रामजी राजा हो इत्यादि।

दो. गुर समाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ।

अछत राम राजा अवध, मरिअ मांग सबु कोउ॥२७३॥

अर्थ : बड़ों के समाज के और भाइयों के सहित रामजी का राज्य पुर में हो और राम के राजा रहते ही सबका देहावसान हो जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी तो चले गये। चौदह वर्ष में न जाने कितने लोग चले जायेंगे। उनका अभिलाष पूरा न हो सकेगा। भरतजी जो स्वयं बन जाने को तैयार हैं। भाइयों को भी साथ ले जाने को कह रहे हैं। सो भी न हो। ऐसा न होने से जो सुख हम लोग चाहते हैं वह पूरा न होगा। यथा : सम दुःख सुख सब

रोवहि रानी । और रामजी का वियोग किसी को कभी न हो । हम सबकी मृत्यु रामजी के राजा रहते ही हो जाय ।

सुनि सनेहमय पुरजन बानी । निंदहि जोग विरति मुनि ज्ञानी ॥

एहि विधि नित्य करम करि पुरजन । रामहि करहि प्रनाम पुलकि तन ॥१॥

अर्थ : पुरजन की प्रेममय वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं । इस भाँति नित्यकर्म करके पुरजन रामजी को पुलकित शरीर होकर प्रणाम करते हैं ।

व्याख्या : वाणी से पुरजन के प्रेम का उत्कर्ष जानकर ज्ञानी लोग लगे वैराग्य और योग की निन्दा करने । प्रजा राजा के सम्बन्ध के कारण इनकी इतनी प्रीति बढी हुई है । अतः सम्बन्ध ही परतम भाव है । जिससे बिना ध्यान, बिना तप, बिना योग और बिना ज्ञान के श्रीरघुनन्दन पर अव्यभिचारिणी प्रीति होती है । यथा 'एभ्यः परतमो भावः' सम्बन्धाख्य स्वयं स्वराट् । बिना ध्यानेन तपसा योग ज्ञान विनैव हि । श्रीरघुनन्दने प्रीति पराह्यव्यभिचारिणी । वर्धतेऽनुदिन विप्र सत्य सत्य न चान्यथा^१ । सो यह सम्बन्धाख्य महाभाव का प्रभाव है कि इन सामान्य लोगों की जिनका ध्यान तप योग से कोई सम्बन्ध नहीं है रामजी में ऐसी प्रीति है । अतः वैराग्य और योग सम्बन्धाख्य भाव के सामने कुछ नहीं है ।

नित्य कर्म को विधि ऊपर कह आये हैं । सभी लोग पञ्चदेव की उपासना करके राम सम्बन्धी माँगन माँगते हैं । तत्पश्चात् रामजी को प्रणाम करने के लिए जाते हैं ।

ऊँच नीच मध्यम नरनारी । लहहि दरसु निज निज अनुहारी ॥

सावधान सबही सनमानहि । सकल सराहत कृपानिधानहि ॥२॥

अर्थ : उच्च नीच और मध्यम श्रेणी के नरनारी अपने अपने अनुसार दर्शन पाते हैं । भगवान् : सावधान होकर सबका सम्मान करते हैं और सब कृपानिधान को बढाई करते हैं ।

व्याख्या . पुर नरनारी में सात्त्विक राजस और तामस सभी प्रवृत्ति के लोग आये हैं और वे सब सरकार के दर्शन के लिए गये । पर सबको एक रूप दर्शन नहीं हो रहा है । सात्त्विक रूप का दर्शन पाते हैं । राजसिक राजसरूप का दर्शन पाते हैं और तामसिक तामसरूप का दर्शन पाते हैं । तीनों प्रकार का ध्यान शास्त्रों में कहा गया है ।

सरकार बड़ी साहिबी में बडे सावधान हैं । ऐसा नहीं होता कि कोई उपेक्षित रह जाय । जो राजदर्शन के लिए जाता है सरकार सबका सम्मान करते हैं । यथा : अस वपि एक न सेना माही । राम कुसल जेहि पूछी नाही । सम्मान ही सब

दानो मे बड़ा है । सो सम्मान पाकर सब कृतकृत्य हैं और सरकार की बड़ाई करते हैं । कहते हैं कि यह कृपानिधान की कृपा है जो हमारा इतना सम्मान हो रहा है ।

लरिकाइहि तें रघुवर बानी । पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥

शील सकोच सिंधु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥३॥

अर्थ वचन से ही सरकार का स्वभाव है कि प्रीति की पहिचान करके नीतिका पालन करते हैं । श्रीरघुनाथ शील सङ्कोच के समुद्र हैं । उनका श्रीमुख सुन्दर नेत्र सुहावना और स्वभाव सरल है । भगवान् सुमुख हैं । मीठी वाणी बोलते हैं और सुलोचन हैं सदा कृपा दृष्टि से देखते हैं ।

व्याख्या रीझत राम सनेह निसोते । प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की । पुरलोग कहते हैं कि लोगो में सद्गुण सिखाने से आते हैं । पर सरकार में तो यह गुण वचन से ही दिखायी पड़ते हैं । प्रीति की पहिचान करके नीति का पालन करते हैं । व्यवहार यथायोग्य करते हैं । परन्तु प्रीति के पहिचान की झलक बराबर रहती है । शील सङ्कोच के तो समुद्र हैं । सुमुख सुलोचन होने से उसका प्रभाव और भी बढ जाता है । तिस पर सरल स्वभाव होने से उत्कर्ष की सीमा हो जाती है ।

शील । यथा चारिउ शील रूप गुन धामा ।

तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥

सङ्कोच । यथा चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची ।

प्रभु गति देखि सभा सत्र सोची ॥

सुमुख । यथा सब बिधि सब पुरलोग सुखारी ।

रामचद्र मुखचद्र निहारी ॥

सुलोचन । यथा मामवलोक्य पवज लोचन ।

कृपा विलोकनि सोच विमोचन ॥

सरल सुभाऊ । यथा रामहि मातु वचन सब भाए ।

जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥

कहत राम गुन गन अनुरागे । सब निज भाग सराहन लागे ॥

हम सम पुन्य पुज जग थोरे । जिनहि रामु जानत करि मोरे ॥४॥

अर्थ रामजी के गुणगणों को कहते कहते अनुराग में आगये । सब अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि हम लोगो के समान पुण्यपुञ्ज ससार में थोड़े ही लोग हैं । जिन्हें राम अपना करके मानते हैं ।

व्याख्या सरकार के गुणगण ही ऐसे हैं कि उनके स्मरण करने से अनुराग बढ़ता है । यथा सुमिरि सुमिरि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढाउ । उपर्युक्त चौपाई में जो गुणगण सरकार के कहे गये हैं उनके स्मरण करने से रामपद में अनुराग बढ़ता है । अतः उन लोगो का अनुराग बढ़ा । तब अपने अपने भाग्य की

बड़ाई करते
रहा है।
ती ॥

॥३॥
करके
श्रीगुरु
वाणी

वार
तो
ग

अयोध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

सराहना करने लगे। ऐसे ही स्थल में भाग्य की सराहना की जा
सराहना करने से बड़े की स्तुति ध्वनित हो।
जो अतिप्रिय हो वही अपना होता है। जिससे प्रेम नहीं वह
भी अपना नहीं माना जाता। सरकार हम लोगों को अपना करके जान
हम लोग सरकार को अतिप्रिय हैं। यथा अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी
योगीन्द्र मुनीन्द्र बड़े बड़े पुण्यपुञ्ज चाहते हैं कि उनका सरकार पर प्रेम
सरकार हमारे पर प्रेम करते हैं। अतः हमारे पुण्य का क्या ठिकाना ?
अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं।

दो. प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा सभ्रम उठेउ, रविकुल कमल दिनेसु ॥१॥

अर्थ : उस समय सब प्रेम में मग्न थे। समाचार आया कि मिथिलेश
हैं। अतः सभा के सहित सूर्यकुल कमल के सूर्य एकाएक उठ खड़े हुए।

व्याख्या सब लोग मिथिलेश के आगमन की आशा से ही नित्यकृत्य
निर्वाह करके पास जुट गये थे और सरकार से सम्मान पाकर उनके गुणों के स्तुति
से प्रेम में विभोर हो रहे थे। उन्हें स्मरण भी नहीं रहा कि क्यों यहाँ इकट्ठे हुए
तब से समाचार मिला कि महाराज जनक आ रहे हैं। महाराज की इतनी प्रतिष्ठा
सरकार की दृष्टि में है कि धवडायें से उठ खड़े हुए और सभा की सभा उसी भ
उठ खड़ी हुई।

भाई सचिव गुरु पुरजन साथ। आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा ॥
गिरिवरु दीख जनकपति जबही। करि प्रनामु रथु त्यागेउ तबही ॥२॥

अर्थ भाई मन्त्री गुरु और पुरजन को साथ लिये हुए रघुनाथजी आगे चले।
राजा जनक ने जब पर्वतो में श्रेष्ठ चित्रकूट को देखा तो उसी समय प्रणाम करके
रथ से उतर पड़े।

व्याख्या : सरकार से ज्यों ही जनकराज का आगमन सुना त्यों ही ससम्भ्रम
उठे और उनको आगे से लेने के लिए चल पड़े। सभा में उस समय भाई गुरु और
पुरजन जुटे थे। वे भी साथ ही लिये। अभी राजा जनक इतनी दूर है कि शैलशृङ्ग
का दर्शन हुआ ही चाहता है। सो दर्शन होते ही महाराज ने चित्रकूट को प्रणाम
किया और तीर्थ का आदर करते हुए रथ से उतर पड़े। यहाँ से महाराज जनक
समाज सहित सरकार से मिलने पैदल चले और उधर समाज सहित सरकार उनसे
मिलने पैदल चले आ रहे हैं। जिस भाँति रघुपति शब्द का प्रयोग होता है उसी
भाँति जनकपति शब्द का प्रयोग है।

राम दरसु लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू ॥
मन तहँ जहँ रघुवर वंदेही। विनु मन तन दुख सुख सुधि केही ॥२॥

अर्थ : रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह से रास्ते के परिश्रम के लेश का भी क्लेश किसी को नहीं है। उनका मन तो रामजी में लगा था। बिना मन के दुःख सुख की सुध किसको हो।

व्याख्या - राजा जनक के समाज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराम जानकी के दर्शन की लालसा और शीघ्र दर्शन की दृढ आशा से सबको ऐसा उत्साह है कि रास्ते चलने में परिश्रम पडा है। उसके क्लेश का लेश भी किसी में नहीं है। जनकपुर से चित्रकूट चले आ रहे हैं और रास्ते में कहीं विश्राम भी नहीं किया। अतः सबके थक जाने में सन्देह नहीं है। परन्तु कोई थकावट का अनुभव नहीं कर रहा है। क्योंकि सबका मन रामजी में ऐसा लगा है कि तन की सुध बुध किसी को नहीं और शीघ्र दर्शन पाने के उत्साह से सब भरे हैं। इससे अयोध्यावासियों सा ही प्रेम मिथिलावासियों का भी दिखलाया।

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती ॥

आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे ॥३॥

अर्थ - इस भाँति समाज सहित जनकजी चले आ रहे थे। उन लोगों की बुद्धि प्रेम से मतवाली हो रही थी। निकट पहुँचकर सबको अनुराग हुआ और आदर के साथ एक दूसरे से मिलने लगे।

व्याख्या - इस भाँति लालसा उत्साह और प्रेम में मग्न जनकजी समाज के साथ बड़े चले आते थे। उधर से रघुनाथजी समाज सहित आगये। रास्ते में भेंट हो गयी। दोनों समाज के लोग दूसरे समाज से परिचित हैं। देखते ही अनुराग उमड़ पडा। अतः आदर से आपस में मिलने लगे। परिस्थिति में बड़ा अन्तर है। इसलिए कवि आनन्द की चर्चा नहीं कर रहे हैं। जैसा व्याह के समय किया था। यथा : जनु आनन्द समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल।

लगे जनक मुनिजन पद वन्दन। रिपिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन ॥

भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लेवाइ समेत समाजहि ॥४॥

अर्थ : जनकजी मुनियों की चरण वन्दना करने लगे और ऋषियों को रामजी ने प्रणाम किया। भाइयों के सहित रामजी महाराज से मिलकर समाज के सहित उन्हें लिवा चले।

व्याख्या - अवध समाज में रामजी आगे हैं। मिथिला समाज में जनकजी आगे हैं। अतः गोस्वामीजी पहिले इन्हीं की व्यवस्था कहते हैं कि जनकजी तो वसिष्ठ वामदेवादि की वन्दना करने लगे और रामजी शतानन्द विश्वामित्रादि की वन्दना करने लगे। सगे सम्बन्धी से मिलने के पहिले ऋषियों की वन्दना आवश्यक समझी गयी। तत्पश्चात् रामजी भाइयों के साथ महाराज जनक से मिले और उन्हें समाज के साथ लिवा चले। ऐसे अवसर पर रास्ता दिखाने के लिए छोटे भी बड़े के आगे चलते हैं।

दो आश्रम सागर साँत रस, पूरन पावन पाथु ।

सेन मनहुँ करुणा सरित, लिए जाहि रघुनाथु ॥२७५॥

अर्थ शान्त रसरूपी पावन जल से भरे हुए आश्रमरूपी समुद्र की ओर मानो सेनारूपी करुणानदी को रामजी लिवाये जा रहे हैं ।

व्याख्या जिस भाँति राजा भगीरथ गङ्गाजी को लिवाकर समुद्र में मिला दिया । स्वयं रथ पर आगे आगे चले और गङ्गाजी पीछे पीछे चली उसी भाँति रघुनाथजी सेनारूपी सरित को आश्रमरूपी समुद्र की ओर लिवा ले चल । यहाँ आश्रम की उपमा समुद्र से दी । समुद्र क्षीरजल से भरा होता है और आश्रम शान्तरस के जल से पूर्ण है । समुद्र का जल पावन नहीं होता । केवल विशेष विशेष अवसर तथा विशेष विशेष तीर्थ के योग होने पर ही उसके स्पर्श का विधान है । पर शान्तरस रूपी जल तो सदा पावन है ।

सेना की उपमा करुणा नदी से दी । चक्रवर्तीजी के देहावसान के बाद आज ही अवध तथा जनकपुर के समाज से भेट हुई । भेंट होने से धाव ताजा हो गया । दोनों समाज में करुणा छा गयी । सब विलाप करते जा रहे हैं । इसी से उनकी उपमा करुणा सरित से दिया । रामजी आगे आगे चल रहे हैं । सबको अपने आश्रम में लिवाये जाते हैं । अतः करुणा सरित का लिवा जाना उनके लिए कहा गया है ।

वोरित ग्यान विराग करारे । वचन ससोक मिलन नद नारे ॥

सोच उसास समीर तरगा । धीरज तट तटवर कर भगा ॥१॥

अर्थ ज्ञान विराग रूपी करारों का डूबीती हुई चली । शोकयुक्त वचनरूपी नदनारे मिलते गये । सोच रूपी हवा से उच्छ्वासरूपी तरङ्ग उठने लगी । धैर्यरूपी तट के वृक्ष गिरने लगे ।

व्याख्या समुद्र में अनेक नदियाँ अनेक दिशाओं से आकर मिलती हैं । यहाँ रामजी के आश्रम की उपमा शान्तरस के समुद्र से दी गयी है । उसमें भी कुछ शान्तिरस की नदियों का आकर मिलना मानना ही होगा । जिन रास्तों से मुनिगण आकर सरकार का दर्शन करते थे उन्हें शान्तिरस की नदियाँ से उपमित किया जा सकता है । उन्हीं रास्तों में एक वह भी है जिससे रघुनाथजी महाराज जनक को लिवाये जा रहे हैं । आज उस रास्ते से शोकयुक्त समाज जा रहा है । अतः वह शान्तिरस की नदी उस अत्यन्त भारी करणारस की नदी से जिसे रघुनाथजी लिये जाते हैं ऐसी दब गयी है कि उसके ज्ञान विराग के करारे भी डूब गये । ज्ञान विरागरूप करारा शान्तिरस की नदी का ही माना जा सकता है । करुणा सरित का नहीं माना जा सकता । भाव यह कि बड़े बड़े ज्ञानी विरागी भी करणारस में मग्न हो रहे हैं । शोक भरे वचन नद और नाले हैं । जिससे नदी की वृद्धि होती जा रही है । साव से जो उच्छ्वास ले रहे हैं वही मानों वायुजनित तरङ्ग हैं । धैर्यरूपी तट के वृक्ष जो अभी तक चट्टमूल थे इस प्रचल तरङ्ग से छिन्नमूल होकर गिरते जा रहे

हैं। भाव यह कि जिनका धैर्य अभी तक छूटा न था वह भी शोकपूरित उच्छ्वास से छूटा जा रहा है।

विषम विपाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ॥

केवट बुध विद्या बडि नावा। सकहि न खेइ ऐक नहि आवा ॥२॥

अर्थ विषम विपाद ही त्वरावती धारा है। उसमें भयरूपी भँवर और भ्रमरूपी आवर्त चक्कर पड़ रहा है। पण्डित लोग विद्यारूपी बड़ी नाव के केवट हैं। सो वे नाव के चलाने में असमर्थ हैं। क्योंकि वे किकर्तव्यविमूढ हो रहे हैं।

व्याख्या लोगो में जो विषम विपाद है वही इस करुणा नदी की तीव्र धारा है। त्वरावती शब्द का प्राकृत रूप तोरावती हुआ। विपाद में क्या होनेवाला है इस बात का भय उत्पन्न होता है और यथार्थ अनुभव की शक्ति जाती रहती है। इसलिए भ्रम होता है। इसीलिए विपादरूपी धारा का भँवर भय को और आवर्त भ्रम को कहा। भँवर और आवर्त वेगवती धारा में ही पड़ते हैं। उसी भाँति विषम विपाद में भय और भ्रम उत्पन्न होता है।

विपादरूपी धारा के पार करने में विद्यारूपी नाव द्वारा पण्डितरूपी केवट ही समर्थ हैं। अर्थात् विद्या के बल से पण्डित ही ऐसी समय में धैर्य बँधा सकते हैं। सो उनका किया भी कुछ नहीं हो रहा है। विपाद का वेग इतना बड़ा हुआ है कि उन्हें इस बात का अन्दाज ही नहीं लगता है कि कैसे धैर्य बँधावें।

वनचर कोल किरात बिचारे। थके विलोकि पथिक हिय हारे ॥

आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अबुधि अकुलाई ॥३॥

अर्थ बटोहीरूपी विचारे वन के फिरनेवाले काले और किरात उसे देखकर स्थगित हो गये। उनकी हिम्मत छूट गयी। जब वह आश्रमरूपी समुद्र में जा मिली तो मानो समुद्र आकुल हो उठा।

व्याख्या जिस वेगवती नदी में बड़ी बड़ी नाव और केवट की बुद्धि नहीं काम करती वहाँ वन में फिरनेवाले कोल किरात क्या कर सकते हैं। वे तो विचारे हैं। उनका कोई चारा नहीं। उनके पास तो छोटी सी भी नाव नहीं है। उनकी हिम्मत तो इसी नदी को देखकर छूट जाती है। वे किकर्तव्यविमूढ होकर देखते ही रह जाते हैं।

दुखी समाज को देखकर राह चलते हुए की भी इच्छा होती है कि उनके दुख का कारण पूछें और उन्हें धैर्य बँधावें। सो यहाँ वन में विचरनेवाले कोल किरात ही बटोही स्थानीय हैं। वे ही इस दुखी समाज के साथ समवेदना प्रकट करके धैर्य बँधाने का प्रयत्न कर सकते हैं। पर इस समाज में इस समय विपाद का इतना वेग है कि बड़े बड़े ज्ञानी विरागी शोकमग्न हो रहे हैं। इनकी दशा देखकर ही वे अल्पज्ञ कोल किरात स्तब्ध हो गये। उन्हें कुछ भी चेष्टा करने का साहस न हुआ।

जब वह करुणा नदी जाकर आश्रमरूपी समुद्र से मिली तो मानो समुद्र आकुल हो उठा । अर्थात् वह शान्त रस से भरापूरा आश्रम इन विपाद करनेवालों के पहुँचने से कोलाहल पूर्ण हो गया ।

सोक विकल दोउ राज समाजा । रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ॥

भूप रूप गुन सील सराही । रोवहि सोक सिंधु अवगाही ॥४॥

अर्थ : दोनों राज समाज शोक से विकल है । न वहाँ ज्ञान है । न धैर्य है । न लज्जा है । महाराज : दशरथ के रूप गुण और शील की सराहना करके शोक सिन्धु में स्नान करनेवाले रो रहे हैं ।

व्याख्या : जहाँ गङ्गा जाकर समुद्र से मिलती है उसे गङ्गासागर तीर्थ कहते हैं । वहाँ लोग स्नान करते हैं । यहाँ भी करुणा नदी और आश्रम सागर का सङ्गम हुआ है । यहाँ के स्नान करनेवाले यात्री दोनों राज समाज हैं । करुणा नदी के सङ्गम से वह आश्रम शोक सिन्धु हो गया । इसी में यात्री स्नान करते हैं । अर्थात् शोक से विकल हैं । उनका धैर्य छूट गया है । ज्ञान का कहीं पता नहीं । उन्हें रोने में छाती पीटने में देह के संभाल के बाहर हो जाने में लज्जा नहीं है । वे स्तुति पाठ की भाँति महाराज चक्रवर्तीजी के रूप गुण और शील की प्रशंसा करते हैं और रो रहे हैं ।

छं. अवगाहि सोच समुद्र सोचहि नारि नर व्याकुल महाँ ।

दै दोष सकल सरोस बोलहि वाम विधि कीन्हौ कहाँ ॥

सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा विदेह की ।

तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की ॥

अर्थ : शोक समुद्र में स्नान करके स्त्री पुरुष अत्यन्त व्याकुल हैं । वे ब्रह्मा को दोष देकर रोष के साथ कह रहे हैं कि वामविधि ने क्या कर दिया । देवता सिद्ध तपस्वी और योगी लोगो ने महाराज विदेह की दशा देखी । तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा समर्थ कोई नहीं है जो स्नेह की नदी का अतिक्रमण कर सके ।

व्याख्या : यद्यपि चक्रवर्तीजी के देहावसान हुए एक महीना बीत गया है । दोनों समाज अपना शोक दबाये हुए थे । पर दोनों स्नेहियों का समाज मिल गया है । रामजी का वेष देखकर जनकपुर निवासियों का दुःख फूट पड़ा जो कि उन्हें वरवेष में देख चुके थे । उनके दुःख फूटने से अयोध्यावासियों का भी दुःख ताजा हो गया । दोनों समाज इस समय रामजी के आश्रम में ठहरकर रो रहे हैं । उसी दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नर नारी अत्यन्त व्याकुल हैं । उन्होंने मानो शोक समुद्र में स्नान किया है । वे सोच रहे हैं कि क्या हो रहा था और क्या हो गया ? वे इसमें ब्रह्मदेव को दोष दे रहे हैं और क्रोध से कह रहे हैं कि प्रतिकूल होकर ब्रह्मदेव ने यह क्या कर दिया ।

ऊपर कह आये हैं : रहा न ज्ञान न धीरज लाजा । उसी को यहाँ दिखला रहे हैं । व्याकुल महा : से धैर्य का न रहना कहा । शोक समुद्र में स्नान से ज्ञान का न रहना कहा । दै दोष सकल सरोप बोलहिं वाम विधि कीन्ही कहा : से लज्जा न रहना कहा । राजा विदेह मुनियो के भी गुरु स्थानीय हैं । यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा । वचन किरन मुनि कमल विकासा । उनको दशा सुरसिद्ध तापस योगियो ने देखी कि महा शोकाकुल हो रहे हैं । अतः गोस्वामीजी कहते हैं कि जब देहाध्यास रहित जनकजी की यह दशा है तब यही कहना पड़ता है कि स्नेह की नदी के सन्तरण का सामर्थ्य किसी को भी नहीं ।

सो. किए अमित उपदेश, जहं तहं लोगन्ह मुनिवरन ।

धीरज धरिअ नरेस, कहेउ वसिष्ठ विदेह सन ॥२७६॥

अर्थ : जहाँ तहाँ लोगो को मुनियो ने बहुत से उपदेश दिये । वसिष्ठजी ने महाराज से कहा कि राजन् । धैर्य धारण कीजिये ।

व्याख्या : डूबते हुए लोगो को सहारा देने के लिए मुनिगण ने हाथ बढ़ाया । अर्थात् स्नेह सरित के पार करने में लोगो को असमर्थ देखकर महात्मा लोग करुणा करके ज्ञानोपदेश जहाँ तहाँ देने लगे । क्योंकि प्रेम का वेग ज्ञान से ही शान्त होता है । यथा परम प्रेम तिनकर प्रभु देखा । कहा विविध विधि ग्यान बेसेखा । यहाँ तो विदेह राजा जिन्हे देहाध्यास नहीं वे भी स्नेह सरित में गोता खा रहे हैं । उन्हें कौन उपदेश दे । अतः उन्हें वसिष्ठजी ने केवल इतना कहकर सावधान किया कि राजा अपनी जिम्मेदारी को समझें । यदि राजा ही धैर्य छोड़ेगा तो प्रजा कैसे धैर्य धारण करेगी ।

जासु ग्यानु रवि भव निसि नासा । वचन किरन मुनि कमल विकासा ॥

तेहि कि मोह ममता निअराई । यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥१॥

अर्थ : जिसके ज्ञानरूपी सूर्य से संसाररूपी रात्रि का नाश हो जाता है और वचनरूपी किरण के लगने से मुनिरूपी कमल खिल उठते हैं । उनके निकट क्या मोह ममता आ सकती है ? यह तो सीता राम के प्रेम की बड़ाई है ।

व्याख्या : उत्तरकाण्ड में ज्ञान दीपक का वर्णन है । जिसके प्रकाश से साधक के भेद भ्रम का नाश होता है । आत्मानुभव सुख होता है । परन्तु जनकजी का ज्ञान ऐसा है कि संसाररूपी रात्रि को ही नष्ट कर देता है और उनके वचन ऐसे होते हैं कि सुनकर मुनि लोग कमल की भाँति खिल उठते हैं । उस ज्ञान रवि के सामने मोह ममतरूपी अन्धकार जा नहीं सकता । यथा : तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू । उनमें जो मोह ममता दिखलायी पड़ती है वह भक्ति का उत्कर्ष है । मोह ममता नहीं है । वही स्नेह पुत्र कलत्रादि में होने से मोह ममता कहलाता है । यदि परमेश्वर में हो तो भक्ति कहलाता है और परम कल्याण का कारण होता है ।

यथा आत्मारामश्च^१ मुनयो निर्ग्रन्थाअप्युत्क्रमे । कुर्वन्त्यहेतुकी भक्तिमित्य भूतगुणो हरि ।

विसई साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग वेद वखाने ॥

राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभाँ बड आदर तासू ॥२॥

अर्थ विषयी साधक और सयाने सिद्ध इन तीन प्रकार के जीव का होना वेद वर्णन करता है । परन्तु जिसका मन रामजी के प्रेम से सरस होता है । साधु सभा में उसका बड़ा आदर होता है ।

व्याख्या वेदादि शास्त्र कहते हैं कि तीन प्रकार के ही जीव होते हैं । एक जो विषय में लिप्त हैं । दूसरे जो सद्गति के लिए यत्नशील हैं और तीसरे सयाने सिद्ध अर्थात् जीवन्मुक्त मुनीन्द्र । साधु सभा में यथास्थान सभी का आदर है । परन्तु बड़ा आदर तो उसी का है जिसका हृदय रामजी के स्नेह में सरस हो । चाहे वह विषयी ही क्यों न हो । अर्थात् जिसका चित्त भगवत् चरित्र से द्रवीभूत हो उसी का अत्यन्त आदर होता है । कठोर चित्तवाले का वैसा आदर नहीं होता ।

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥

मुनि बहुविधि विदेहु समुझाए । रामघाट सब लोग नहाए ॥३॥

अर्थ रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान की शोभा उसी भाँति नहीं होती जैसे बिना कर्णधार के जलयान की शोभा नहीं होती । मुनिजी ने अनेक प्रकार से विदेह राजा को समझाया । सब लोगो ने रामघाट पर स्नान किया ।

व्याख्या निरुपास्ति ज्ञान से पतन होता है । इसलिए सोपास्ति ज्ञान की ही प्रशंसा है । यथा जे ज्ञान मान बिमत्त तव भय हरनि भगति न आदरी । ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी । ज्ञान और भक्ति से वही सम्बन्ध है जो नाव और कर्णधार में है । नाव मनुष्य को जल में डूबने नहीं देगी । पर वह स्वयं लक्ष्य स्थान प्राप्ति कराने अर्थात् पार पहुँचाने में असमर्थ है । कर्णधार ही उसे पार पहुँचा सकता है । इसी भाँति ज्ञान साधक को भवसागर में डूबने से बचा सकता है । पर उसके पार नहीं पहुँचा सकता । पार तो भक्ति ही पहुँचावेगी । यथा बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे । जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे । भाव यह कि जनकजी का ज्ञान सोपास्ति ज्ञान था ।

वसिष्ठजी ने बहुत प्रकार से विदेहराज को समझाया । यथा

जनम होत नृप मरन हित मरन जनम हित होय ।

चला चली चहुँदिसि लखिय थिर कतहुँ नहिं कोय ॥

१ आत्माराम मुनिगण जिनकी चिज्जडमयी ग्रन्थि छूट गयी है वे भी भगवान् में निष्कारण भक्ति करते हैं । क्योंकि भगवान् के गुण ही ऐसे हैं ।

थिर मानै गन्धर्वपुर दामिनि सरद पयोद ।
 सो थिर मानि शरीर को करै विनोद प्रमोद ॥
 गिरिहु गिरत तारा खसत सूख जाति जल राशि ।
 ध्रुवहु अध्रुव जग होत है कतहुँ न कोउ अविनाशि ॥
 शशक शृग वन्ध्या तनय मृगजल सम जग जानि ।
 दुख सुख सम करि जानिये, किये शोक हित हानि ॥
 तुमसे ज्ञान विधान को उचित न करन विपाद ।
 जानत ही एहि जगत को तीन काल मे बाध ॥
 सत्यसन्ध दसरथ नृपति, धर्म निरत जग जान ।
 तीनि बाल तिहु भुवन मे नहि कोउ तासु समात ॥
 शोचनीय सो होइ नहि मनमह करहु विचार ।
 करि विवेक धीरज धरहु जानिन्ह के सरदार ॥

शोक भी एक प्रकार का सूतक है । अतः सबने रामघाट पर स्नान किया । जहाँ सरकार एक बार स्नान करते हैं उस घाट का नाम रामघाट पड़ जाता है । सरकार के स्नान से तीर्थ का उत्कर्ष बढ़ जाता है । शृङ्गवेरपुर में भी इसी भाँति रामघाट नाम पड़ा । यथा रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ।

सकल शोक सकुल नर नारी । सो वासर बीतेउ बिनु बारी ॥
 पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू । प्रिय परिजन कर कौन बिचारू ॥४॥

अर्थ सब नरनारी शोक से परिपूर्ण थे । वह दिन बिना जल के ही बीत गया । पशु पक्षी और मृगों ने भी कुछ न खाया । प्रिय परिजन की तो बात ही क्या है ?

व्याख्या लोगों का शोक ऐसा बढ़ गया था कि उस दिन किसी ने जल भी ग्रहण नहीं किया । यद्यपि मुनि लोगों ने बहुत उपदेश दिया । फिर भी शोक का दृढ़ संस्कार मिटा नहीं । दोनों समाज के भेंट हो जाने से चोट ताजी हो गयी । उसका प्रभाव वातावरण पर ऐसा पड़ा कि पशु खग मृग ने भी आहार ग्रहण नहीं किया । यहाँ पशु से अभिप्राय सेना के हाथी घोड़ों से है और खग मृग से अभिप्राय वन्य पशु पक्षी से है । जब इन लोगों की ऐसी दशा हुई तब सगे सम्बन्धियों के लिए यह कहना कि उन्होंने भी जल नहीं ग्रहण किया व्यर्थ है ।

दो दोउ समाजु निमिराजु रघु, राजु नहाने प्रात ।

बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृस गात ॥२७७॥

अर्थ महाराज जनक और रामचन्द्रजी तथा दोनों समाजों ने प्रातः स्नान किया और दोनों जाकर वटवृक्ष के नीचे बैठे । उनके मन मलिन थे और शरीर दुबल था ।

व्याख्या : रात में दोनों समाज में से किसी को नींद नहीं आयी । शोक से भूख नींद जाती रहती है । सवेरा होने की देर थी । सबने स्नानादि नित्य कर्म किये । तत्पश्चात् वट के पेड़ तले इकट्ठे हुए । वटवृक्ष का ही इतना बड़ा होना सम्भव है कि जिसके नीचे दो राजसमाज एकत्रित हो सकें । मन की खिन्नता का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि कल जो हट्टे कट्टे थे यथा : जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम : वे ही आज कृशगात हो गये हैं । दृढ़ मूलक शोक का संस्कार मुनियों के उपदेश से भी नहीं मिटा । स्नान करने पर भी मन मलिन हो रहे है ।

जे महिसुर दसरथ पुर वासी । जे मिथिलापतिनगर निवासी ॥

हंस वंस गुर जनक पुरोधा । जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा ॥१॥

अर्थ : दशरथपुर के रहनेवाले जो ब्राह्मण थे और जो जनकपुर के रहनेवाले थे तथा सूर्यवंश के गुरु तथा जनकजी के पुरोहित जिन्होंने संसार में परमार्थ का मार्ग ढूँढ निकाला था ।

व्याख्या : जनकजी का आना सुनकर कल मुनि लोग आस पास से आगये थे । उन लोगों ने उपदेश किया था । आज वे लोग नहीं है और लोगों में केवल शोक का वेग रुक मात्र गया है । पर भीतर ज्यो का त्यो बना हुआ है । अतः अयोध्या तथा मिथिला के महिसुर जो मोहजनित संशय के हरण में समर्थ हैं वे लोग तथा सूर्यवंश के गुरु ज्ञाननिधि वसिष्ठजी तथा पुरोहित शतानन्दजी जिन्होंने संसार में परमार्थ पथ ठीक कर लिया है कि कैसा आचरण करने से जीव परमार्थ पथ में अग्रसर होता है ।

लगे कहन उपदेस अनेका । सहित धरम नय विरति बिवेका ॥

कौंसिक कहि कहि कथा पुरानी । समझाई सब सभा सुबानी ॥२॥

अर्थ : वे लोक धर्म नीति वैराग्य और विवेक युक्त अनेक उपदेश कथन करने लगे । विश्वामित्रजी ने अनेक पुरानी कथाओं को कहकर सम्पूर्ण सभा को सुन्दर वाणों से समझाया ।

व्याख्या : जनकपुर के लोगों को वहाँ के ब्राह्मण, अयोध्या के रहनेवालों को अयोध्या के ब्राह्मण, अयोध्या के राज घराने को वसिष्ठजी तथा मिथिला के राज-घराने को शतानन्दजी उपदेश करने लगे । इन लोगों को परमार्थ का रास्ता मालूम था । अतः इनके उपदेश का प्रभाव पड़ा । पहिले विषादयोग होता है । तब ज्ञानयोग के उपदेश का अवसर उपस्थित होता है । विषण्ण होकर आर्त हो गये थे । अतः इनमें उपदेश की पात्रता आगयी थी । अधिकारानुसार कही धर्म नीतिका उपदेश हो रहा है । यथा : सोचनीय नहिं कोसल राऊ । भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ । कही विरति का उपदेश । यथा : राम बिरह तजि तन छन भगू । भूप सोच कर कौन प्रसंगू । कही ज्ञान का । यथा : जो तनु घरों तजों पुनि अनायास हरि जान । जिमि नूतन पट पहिरै नर परिहरै पुरान ।

पीछे से विश्वामित्रजी ने पुरानी कथाएँ, हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, रन्ति-देवादि की कथाएँ कहकर सम्पूर्ण सभा को समझाया कि धर्मचरण में जितना ही कष्ट होता है उतना ही अनुष्ठाता के पुण्य का उत्कर्ष है। विश्वामित्रजी का समझाना। यथा

आया है सो जायगा सुनहु सभासद वृद्ध ।
 यहाँ शोक करना नहीं कोई भी स्वच्छन्द ॥
 वे हैं धन्य जो धर्म के लिए उठाते कष्ट ।
 उनका जीना व्यर्थ जो धर्म पन्थ से भ्रष्ट ॥
 सत्य न छोड़ा भूप ने दिया देह को छोड़ ।
 दुनिया में हो गया इक नृप दशरथ बेजोड़ ॥
 तौल तराजू पर दिया काटि काटि निज मांस ।
 गुरुता बढी कपोत की शिवि नहि हुए उदास ॥
 गये काटते अन्त तक काँप उठा ससार ।
 कठिन परिक्षा धर्म की धन्य जो पावे पार ॥
 राज गया रानी बिकी बिके डोम के हाथ ।
 हरिश्चन्द्र फिर भी नहीं तजे धर्म का साथ ॥
 वामन ने बलि को ठगा बलि ने तजा न धर्म ।
 नाप दिया निज देह को कठिन धर्म का मर्म ॥
 बढी विरह ज्वाला बढी जल भुन गया शरीर ।
 सत्य न दशरथ तज सके ऐसे थे मति धीर ॥
 ऐसे राजा की प्रजा होकरके तुम लोग ।
 शोक तजो धीरज धरो नश्वर सुख दुख भोग ॥

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ । हाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ ॥

मुनि कह उचित कहत रघुराई । गयउ बीति दिन पहर अढाई ॥३॥

अर्थ तब रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे नाथ ! कल सब लोग निर्जल रह गये । मुनिजी ने कहा कि रघुनाथजी ठीक कहते हैं । ढाई प्रहर दिन भी बीत गया ।

व्याख्या सबका सोच रघुनाथजी को है । यथा सानुज भरत सचिव सब माता । देखि माहि पल जिमि जुग जाता विश्वामित्रजी का उपदेश समाप्त होते ही सरकार ने उनसे कहा कि सबको भोजन करने के लिए आज्ञा दीजिये । कल किसी ने पानी तक नहीं पीया है । अतः क्षुधातृषा भी चित्त के दुःख बढ़ाने में सहायक है । प्राप्त तो यह था कि आज लोग नित्य की अपेक्षा सवेरे ही भोजन करते ।

श्री रघुनाथजी का आशय समझकर मुनिजी महाराज जनक की ओर अभिमुख होकर कहते हैं कि श्री रामजी का कहना उचित है । कल का दिन तो बीता ही

आज भी मध्याह्न से ऊपर आधा पहर बीत गया । मध्याह्न तक भोजन कर लेने का विधान है ।

रिपि रुख लखि कह तेरहुति राजू । इहाँ उचित नहि असन अनाजू ॥

कहा भूप भल सर्वाहि सोहाना । पाइ रजायसु चले नहाना ॥४॥

अर्थ ऋषिजी का रुख देखकर विदेहराज ने कहा कि यहाँ अन्न खाना उचित नहीं । सबको यह बात अच्छी लगी । कहने लगे कि महाराज ठीक कहते हैं और राजा की आज्ञा पाकर नहाने चले ।

व्याख्या विश्वामित्रजी का आशय कि अब सब लोगो को भोजन करना चाहिए । समझकर महाराज जनक बोले कि यहाँ आश्रम में जहाँ कि श्रीरामजी कन्द मूल फल खाते हैं । हम लोगो का अन्न खाना ठीक नहीं है । यह बात सबको ठीक जँची । सब कहने लगे कि महाराज ठीक कह रहे हैं । सब लोग आज्ञा माँग माँगकर मध्याह्न स्नान के लिए चल । तीर्थ में आने से सब लोग त्रिकाल स्नान मन्दाकिनी में करते हैं । यथा मन्दाकिनी मज्जन तिहुँकाला ।

दो तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार ।

लै आये वनचर विपुल, भरि भरि काँवरि भार ॥२७८॥

अर्थ उसी समय बहुत से वनवासी कोल भील फल फूल मूल अनेक प्रकार के भारों वहँगियो में भर भरकर ल आये ।

व्याख्या उधर कोल भिल्लो को आतिथ्य सत्कार की चिन्ता लगी । सो उन लोगो ने बहुत फल फूल कन्द मूल इकट्ठे किये जिसमें सारे समाज का सत्कार हो सके । आतिथ्य सत्कार तो अवधवासियों से पहले ही स्वीकार करा चुके हैं । यथा तुलसी कृपा रघुवस मनि की लोह लै लौका तिरा । सो उसी समय जबकि लोग नहाने चले वे सब वहँगियो में भर भरकर कन्द मूल फलादि ले आये ।

कामद भे गिरि राम प्रसादा । अवलोकत अपहरत विषादा ॥

सर सरिता वन भूमि विभागा । जनु उमगत आनद अनुरागा ॥१॥

अर्थ रामजी के प्रसाद से पर्वत कामदायक हो गया । उसके देखने से विषाद जाता रहता था । तालाब नदी वन और भूमि का विभाग ऐसा था कि मानो आनन्द और अनुराग उमड़ा पड़ता है ।

व्याख्या अब प्रश्न यह उठता है पर्वत पर इतना कन्द मूल फल कहाँ से आगया कि दोनों समाज के लिए यथेष्ट हो । इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि रामजी के प्रसाद से वह पर्वत कामद हो गया । कामधेनु कामतरु तो सुना था पर कामद गिरि सुनने में नहीं आया । रामजी के प्रसाद से उस पर्वत में कामनापूर्ण करने की शक्ति आगयी । जिसने जो कन्द मूल फल जिस परिणाम में चाहा उसे वह उसी परिणाम में मिला और मनोहर ऐसा हो गया कि उसके देखने से विषाद का नाश

हो जाय । सब लोग विपण्ण थे । मुनियो के समझाने बुझाने से धैर्य बँधा था । अतः उन पर अनुग्रह करके सरकार ने ऐसी शक्ति पहाड को दी । सर शैल विपिन विभाग मे ऐसी शोभा होती है कि उसके देखने से भगवत् चरणों मे अनुराग उपजता है । यथा : निरखि सैल सरि विपिन बिभागा । भयउ रमापति पद अनुरागा । यहाँ भगवत् कृपा से ऐसी शोभा हुई कि उन विभागो से मानो आनन्द और अनुराग उमगा पड़ता है ।

बेलि बिटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाह । त्रिविध समीर सुखद सब काहू ॥२॥

अर्थ . लताएँ और वृक्ष फल और फूल से युक्त हो गये । खग मृग और भौरे अनुकूल बोलते थे । उस अवसर पर वन मे अधिक उछाह था । शीतल मन्द सुगन्ध वायु सबको सुख देनेवाली वहती थी ।

व्याख्या . ऋतु और कुन्ऋतु की कालगति का उल्लङ्घन करके सभी बेलि बिटप पुष्पित और फलित हो गये । इससे वन का कामदातृत्व कहा और खग के अनुकूल बोलने से उसका मनोहरत्व कहा । उस वन मे तो सदा उछाह रहता था । यथा . अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मगल चहुँ ओरा । परन्तु इस अवसर मे उछाह बढ गया । यहाँ तक कि जेठ के महीने मे शीतल मन्द सुगन्धि युक्त वायु चलने लगी । वन का वातावरण ऐसा हो गया कि उसका प्रभाव बिना लोगो पर पडे न रह सके ।

जाइ न बरनि मनोहरताई । (जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई) । राम जनक मुनि आयसु पाई ॥३॥

अर्थ : वहाँ की सुन्दरता का वर्णन नहीं की जा सकती : मानो पृथ्वी जनक आतिथ्य सत्कार कर रही हो । तब सब लोग स्नान करके रामजी जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर ।

व्याख्या : अवलोकित अपहरत बिषादा . से इस प्रसङ्ग का उपक्रम करके : जाइ न बरनि मनोहरताई : से यहाँ उपसहार करते हैं । कोष्ठान्तर्गत पद राजापुर के प्रति मे नहीं है और खटकते भी हैं । जाइ न बरनि मनोहरताई . कहने से स्पष्ट है कि यहाँ मनोहरता का वर्णन समाप्त हो गया । जाइ न बरनि मनोहरताई के पहिले ही उत्प्रेक्षा के लिए अवसर था । वर्णन समाप्त करने के बाद उत्प्रेक्षा से उसी प्रसङ्ग को उठाना शोभा नहीं देता । अतः इसे मैं क्षेपक मानता हूँ ।

देखि देखि तरुवर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद विधि नाना । पावन सुदर सुधा समाना ॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ वृक्षो को देखकर पुरजनों को अनुराग हुआ और वे जहाँ तहाँ

वैशाखा। अतः
सुरेश्वर विनि
में अनुराग
रत्नार्ति पद
नानों बानन्द

जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये
बड़ा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख^१ सोच बस ले

अर्थ : भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं। तो स्वायं
ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड़ दी। सब किसी को
राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका ल

व्याख्या : गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब
को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनों व्यक्तियों पर देवताओं
चल नहीं सकती। अतः देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड़ दी। राम
स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तों के पराधीन से हो जाते हैं। अतः
लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नहीं वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे हैं। अतः उनके सोच
अन्त नहीं है। समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियों के एक मत होने में कितनी देर लगेगी
दो. रामु सनेह सकोच वस, कह ससोच सुरराजु।

रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु ॥२९४॥

अर्थ : शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के
वश हैं। अतः सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नहीं तो बात विगड़ा चाहती है।

व्याख्या शोक के वश सब देवताओं की ऐसी गति देखकर स्वयं देवराज
शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के
वशीभूत हो जाते हैं। अतः अब चुप रहने का समय नहीं है। सब पञ्च मिलकर
माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को
विगड़ने में देर नहीं है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही ॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु विबुध कुल करि छल छाया ॥१॥

अर्थ : देवताओं ने सरस्वती का स्मरण करके स्तुति की और कहा कि हे
देवि। हम लोग शरण में आये हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि
फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या : सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगो ने रामा-
भिप्रेक में विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

१. यहाँ विरोधामास . अलङ्कार है।

हो जाय । सब लोग विपण्ण थे । मुनियो के समझाने बुझाने से धैर्य बँधा था । अतः उन पर अनुग्रह करके सरकार ने ऐसी शक्ति पहाड को दी । सर शैल विपिन विभाग में ऐसी शोभा होती है कि उसके देखने से भगवत् चरणों में अनुराग उपजता है । यथा . निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा । भयउ रमापति पद अनुरागा । यहाँ भगवत् कृपा से ऐसी शोभा हुई कि उन विभागों से मानो आनन्द और अनुराग उमगा पड़ता है ।

बेलि विटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू । त्रिविध समीर सुखद सब काहू ॥२॥

अर्थ : लताएँ और वृक्ष फल और फूल से युक्त हो गये । खग मृग और भौरे अनुकूल बोलते थे । उस अवसर पर वन में अधिक उछाहू था । शीतल मन्द सुगन्ध वायु सबको सुख देनेवाली बहती थी ।

व्याख्या : ऋतु और कुऋतु की कालगति का उल्लङ्घन करके सभी बेलि विटप पुष्पित और फलित हो गये । इससे वन का कामदातृत्व कहा और खग के अनुकूल बोलने से उसका मनोहरत्व कहा । उस वन में तो सदा उछाहू रहता था । यथा : अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मगल चहुँ ओरा । परन्तु इस अवसर में उछाहू बढ़ गया । यहाँ तक कि जेठ के महीने में शीतल मन्द सुगन्धि युक्त वायु चलने लगी । वन का वातावरण ऐसा हो गया कि उसका प्रभाव बिना लोगों पर पड़े न रह सके ।

जाइ न बरनि मनोहरताई । (जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई) । राम जनक मुनि आयसु पाई ॥३॥

अर्थ : वहाँ की सुन्दरता का वर्णन नहीं की जा सकती . मानो पृथ्वी जनक आतिथ्य सत्कार कर रही हो । तब सब लोग स्नान करके रामजी जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर ।

व्याख्या : अवलोकित अपहरत बिपादा : से इस प्रसङ्ग का उपक्रम करके : जाइ न बरनि मनोहरताई : से यहाँ उपसहार करते हैं । कोष्ठान्तर्गत पद राजापुर के प्रति में नहीं है और खटकते भी हैं । जाइ न बरनि मनोहरताई . कहने से स्पष्ट है कि यहाँ मनोहरता का वर्णन समाप्त हो गया । जाइ न बरनि मनोहरताई के पहिले ही उत्प्रेक्षा के लिए अवसर था । वर्णन समाप्त करने के बाद उत्प्रेक्षा से उसी प्रसङ्ग को उठाना शोभा नहीं देता । अतः इसे मैं क्षेपक मानता हूँ ।

देखि देखि तरुवर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कद विधि नाना । पावन सुदर सुधा समाना ॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ वृक्षों को देखकर पुरजनों को अनुराग हुआ और वे जहाँ तहाँ

जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये । इनका बहुत बड़ा सङ्कोच रघुनाथजी को है ।

राम भगतिमय भरतु निहारे । सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा । भए अलेख^१ सोच वस लेखा ॥४॥

अर्थ : भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं । तो स्वार्थी देवताओं ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड़ दी । सब किसी को देखा कि राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका लेखा नहीं हो सकता ।

व्याख्या : गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी । अब भरतजी को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं । इन तीनों व्यक्तियों पर देवताओं का बल चल नहीं सकती । अतः देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड़ दी । रामजी के स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तों के पराधीन से हो जाते हैं । अतः उनके लौट जाने के भय से भीत हो गये ।

इतना ही नहीं वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे हैं । अतः उनके सोच का अन्त नहीं है । समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियों के एक मत होने में कितनी देर लगेगी ।

दो. रामु सनेह सकोच वस, कह ससोच सुरराजु ।

रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु ॥२९४॥

अर्थ : शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं । अतः सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो । नहीं तो बात विगड़ा चाहती है ।

व्याख्या : शोक के वश सब देवताओं की ऐसी गति देखकर स्वयं देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते हैं । अतः अब चुप रहने का समय नहीं है । सब पञ्च मिलकर माया करो । एक दो की माया से काम न चलेगा । यदि त्रुटि हुई तो काम को विगड़ने में देर नहीं है । यही समय पुरुषार्थ करने का है ।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही । देवि देव सरनागत पाही ॥

फेरि भरत मति करि निज माया । पालु विबुध कुल करि छल छाया ॥१॥

अर्थ : देवताओं ने सरस्वती का स्मरण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि ! हम लोग शरण में आये हैं रक्षा करो । अपनी माया करके भरत की बुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो ।

व्याख्या : सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगों ने रामाभिषेक में विघ्न किया । रामजी को वनवास हुआ । भरतजी के प्रेम के कारण वह

१. यहाँ विरोधामास : अलङ्कार है ।

सब प्रयत्न आज निष्फल हुआ चाहता है । अतः इन्द्र की आज्ञा मानकर देवताओं ने प्रपञ्च रचने के लिए फिर सरस्वती का आवाहन किया । उन्हें प्रसन्न करने के लिए स्तुति की । उन्हें सङ्कोच में डालने के लिए शरणागत हुए ।

अन्त में अपना प्रयोजन निवेदन करते हैं कि भरत की बुद्धिरूपी आतप से हम लोग पीड़ित हैं । अतः माया करके भरत की बुद्धि तू फेर दे । माया के आवरण की छाया में हम लोग घोर आतप से बच जायें । जैसे पहले कर चुकी हो । यथा : अजम पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ।

बिबुध विनय सुनि देवि सयानी । बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरु । लोचन सहस न सूझ सुमेरु ॥२॥

अर्थ : देवताओं की स्तुति और विनय सरस्वतीजी ने आकर सुनी । परन्तु सरस्वती बड़ी सयानी हैं । देवता स्वार्थ के कारण जड़ हो गये हैं । यह जानकर बोली कि मुझे भरत की बुद्धि फेरने को कहते हैं । इन्हे नेत्र तो हजार हैं । पर सुमेरु पर्वत नहीं देखता ।

व्याख्या : इनकी बुद्धि काम नहीं करती । जहाँ बिबुध कुमुद द्विजराज स्वयं बैठे हैं । वहाँ बिबुध : देवताओं को भय कहाँ ? परन्तु देवता स्वार्थान्ध हो गये हैं । इनकी विवेक दृष्टि मारी पड़ी है । स्थूल दृष्टि हजार होने से भी कोई आँखवाला नहीं हो जाता । देखो हजार आँख होने पर भी इन्द्र को यह नहीं सूझ रहा है कि किसकी बुद्धि फेरी जा सकती है और किसकी नहीं फेरी जा सकती । रामजी के परम प्रेमी की बुद्धि कौन फेर सकता है । उनके स्नेह तक त्रिदेव का मन नहीं जाता वहाँ मेरी क्या गति है । पहिले जो मैंने बुद्धि फेरा था तो मन्दमति मन्थरा की बुद्धि को फेरा था । मन्थरा सेर है और भरत सुमेरु हैं । कहाँ मन्थरा और कहाँ भरत ।

विधि हरि हर माया बड़ी भारी । सोउ न भरत मति सकै निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी । चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥३॥

अर्थ : विधि हरिहर की माया बड़ी भारी है । वह भी भरत की मति की ओर देख नहीं सकती । उस मति को भोरी करने के लिए मुझे कहते हो । चाँदनी सूर्य को कैसे चुरा सकती है ।

व्याख्या : जिसे भरत के स्वरूप का ज्ञान है वह समझ सकता है कि विधि हरिहर ईश्वर है । उनकी माया के बल से ससार की उत्पत्ति पालन और लय हुआ करता है । पर उनको स्थिति भरत के सामने ऐसी है जैसे क्षीरसागर के सामने काँजी के दो चार बिन्दु । भरत की बुद्धि सूर्य के समान है । मायारूपी अन्धकार उसके सामने टिक नहीं सकता । मैं तो विधि की आश्रिता हूँ । चाँद की चाँदनी हूँ । मेरे तेज के सामने खद्योत भले ही छिप जायें । सूर्य कैसे छिप सकते हैं । भाव यह

कि जिस भाँति सूर्य की ज्योति से ही चन्द्र प्रकाशित है उसी भाँति भरत के तेज से ही विधि हरिहर का तेज है । तुम लोगों को भरत के स्वरूप का बोध नहीं है ।

भरत हृदय सिय राम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥

अस कहि सारद गइ विधि लोका । विबुध विकल निसि भानहु कोका ॥४॥

अर्थ : भरत के हृदय में राम जानकी का निवास है । वहाँ अन्धकार वहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश है । ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक चली गयी । देवता लोग ऐसे विकल हो गये जैसे रात को चकवा ।

व्याख्या : भरतजी की इतनी बड़ी महिमा का कारण यह है कि उनके हृदय में राम जानकी का निवास है । रामजी सूर्य हैं । सीताजी उनकी प्रभा हैं । इसीलिए भरतजी की बुद्धि सूर्यरूप हो रही है । भरतजी की महिमा विधि हरिहर से अधिक कही गयी है । वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति कहीं ?

ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक चली गयी । देवताओं को और कुछ कहने सुनने का अवसर नहीं दिया । देवताओं के लिए सूर्यास्त हो गया । वे बोक की भाँति विकल हो गये ।

दो. सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु ।

रचि प्रपंचु माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु ॥२९५॥

अर्थ : देवता स्वार्थी हैं । उनका मन मलीन है । उन्होंने सलाह करके बुसाज माजा । प्रपञ्च, प्रबल माया, भय, भ्रम, अप्रीति और उचाट की रचना की ।

व्याख्या : देवताओं को स्वार्थी कहने पर भी मलिन मन कहा । क्योंकि सरस्वती के समझाने पर भी उन्हें बोध न हुआ । यथा : तदपि मलिन मन बोध न आया । भरतजी ने कहा था : सबके सम्मत सर्वहित करिअ प्रेम पहिचानि । तो सबको यदि उचाट हो जाय : भ्रमादि हो जाय तो काम बन सकता है । भरत पर माया नहीं चल सकती । लोगों पर तो चल सकती है । देवताओं की समष्टि की माया है । इसलिए प्रबल माया कहते हैं । लोगों को वन में भय लगने लगा । मन में अस्थिरता आगयी । घर की ओर भी मन दौड़ने लगा । सरकार की प्रीति भी कम हो गयी । चित्त में उचाट हो गया ।

करि कुचालि सोचत सुरराजू । भरत हाथ सयु काजु अकाजू ॥

गये जनकु रघुनाथ समीपा । सनमाने सब रविकुल दीपा ॥१॥

अर्थ : कुचाल करके इन्द्र सोचने लगे कि काम का विगाड या सुधार तो भरत के हाथ में है । जनकजी सब रामजी के दाम गये । रविकुलदीप ने सबका सम्मान दिया ।

व्याख्या : यद्यपि सब देवताओं ने मिलकर प्रपञ्च : माया रची । फिर भी सबके सरदार होने से इन्द्र का नाम लिया जा रहा है । उन्हीं की आज्ञा से माया

रची गयी। अब वे सोचने लगे कि जिनके ऊपर माया काम करेगी उनके हाथ में तो कुछ है नहीं। काम का बिगाड़ना या सुधारना तो भरतजी के हाथ में है और उन पर यह माया भी काम नहीं कर सकती। कवि ने : भूप भरत सब साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच में देवताओं का हाल कहने लगे। अब फिर वही से प्रसङ्ग उठाते हैं कि जनकजी रामजी के पास पहुँचे। प्रधान होने से उन्हीं का नाम लिया। रामजी ने सबका सम्मान किया।

जब रामजी को सुमन्त चक्रवर्तीजी के यहाँ लिवा चले तब दीप कहा था। यथा : रघुकुल दीपहि चले लवाई। यहाँ जनकजी के सामने भी दीप ही कह रहे हैं। भानुकुल भानु नहीं कहते अथवा राम और भरत दोनों दीप हैं। यथा : जानेउ सदा भरत कुलदीपा। चार बार मोहि कहेउ महीपा।

समय समाज धर्म अविरोधा। बोले तब रघुवंस पुरोधा॥
जनक भरत संवादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥२॥

अर्थ : रघुवंश के पुरोहित तब समय समाज और धर्म के अनुकूल बोले। उन्होंने जनक और भरत की बातचीत कह सुनायी और भरतजी की सीहावनी उक्ति भी कही।

व्याख्या : सरकार ने वसिष्ठजी से कहा था : उचित होय सो कीजिय नाथा। अतः तुरन्त वसिष्ठजी काम में लग गये। जनकजी के पास गये। उन्हें लिये दिये भरतजी के पास गये। समय समाज और धर्म के अविरोध बोलना ही उचित है। वसिष्ठजी रघुवंश के पुरोहित हैं। पूज्य हैं। सब प्रकार से हितचिन्तक हैं। इनका कहना कोई टाल नहीं सकता।

समय ऐसा उपस्थित है कि कोई कुछ निर्णय नहीं कर पाता। जनकजी ने भरत के ऊपर सब छोड़ा कि जो भरत कहे सो किया जाय और भरतजी कहते हैं : राखि राम रख धर्म ब्रत पराधीन मोहि जानि। सबके सम्मत सर्वहित करिय प्रेम पहिचानि। अवध समाज के मुखिया भरत मैथिल समाज के मुखिया राजा जनक। सो इन्हीं दोनों की सम्मति सारे समाज की सम्मति समझनी चाहिए। ऐसे अवसर पर वसिष्ठ कहते हैं कि मेरी सम्मति यह है।

तात राम जस आयसु देह। सो सब करइ मोर मत एह॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु वानी॥३॥

अर्थ : हे तात राम ! तुम जैसी आज्ञा दो वही सब करे। मेरा तो यही मत है। सुनकर रामजी दोनों हाथ जोड़कर मृदु वाणी बोले।

व्याख्या : नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ सबके तुम यथार्थ जानकार हो। अतः सबके सम्मत सर्वहित का निर्णय तुम्हीं कर सकते हो। अतः तुम जो आज्ञा दो वही सब लोग करें। इससे भरत के सेवाधर्म का भी निर्वाह हो जायगा। क्योंकि

इसके बाद जो कुछ भरत करेंगे वह सब करना तुम्हारी आज्ञा का पालन होने से सेवकाई के अन्तर्गत होगा ।

यह सुनकर रामजी ने आज्ञा नहीं दी । बड़ो के सामने जैसा बोलना चाहिए वैसा बोले । दोनों हाथ जोड़कर सत्य सरल और मृदु वाणी बोले ।

विद्यमान आपुनि मिथिलेसू । मोर कहव सब भाँति भदेसू ॥

राउर राय रजायसु होई । राउरि सपथ सरी सिर सोई ॥४॥

अर्थ : स्वयं मिथिलेश के विद्यमान होते हुए मेरा कहना सब तरह से गँवार-पन है । आपकी और महाराज की जो आज्ञा हो मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि वही मेरे लिए ठीक है और शिरोधार्य है ।

व्याख्या : पिता के समान महाराज मिथिलेश है । उनके सामने आज्ञा देना अनुचित है । किसी प्रकार उचित नहीं है । आप गुरु हैं । आपकी आज्ञा सर्वोपरि है । अतः आप दोनों बड़े उपस्थित हैं । आप लोग सम्मति कर लीजिये । वही मुझे शिरोधार्य होगा । इसके लिए मैं आपकी शपथ लेता हूँ । भाव यह कि यदि आप लोगो की यही आज्ञा हुई कि तुम लौट चलो तो मैं पिता का वचन छोड़ दूँगा । यही रामजी की सत्य सरल और मृदु वाणी है ।

दो. राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत ।

सकल विलोकत भरत मुख, बनइ न ऊत्तर देत ॥२९६॥

अर्थ : रामजी की शपथ सुनकर मुनिजी और जनकजी सभा समेत सङ्कुचित हो गये । सब लोग भरतजी का मुख देखने लगे । किसी से उत्तर देते नहीं बनता ।

व्याख्या : धर्म के मर्म के जाननेवाले महापुरुष पिता के वचन के उल्लंघन करने की सम्मति दे नहीं सकते । तो जब लौटने को कह ही नहीं सकते तो और कहेंगे ही क्या ? अतः किसी को उत्तर नहीं सूझता । रामजीने सरल बात कही कि मुझे तो बड़ो की बात माननी है । उनका वचन मानकर बन आया । अब स्वयं गुरुजी तथा पिता सहश मिथिलेश कहे कि तुम लौट चलो तो मैं चलूँ । अब गुरुजी तथा जनकजी धर्मविरोध कैसे करें । इसलिए जवाब नहीं सूझता । भरतजी का मुख देखते हैं कि तुमसे जो कुछ कहते बने इस समय वही । क्योंकि तुम्हीं इस कार्य में अग्रसर हो ।

सभा सकुच बस भरत निहारी । रामबंधु धरि धीरजु भारी ॥

कुसमउ देखि सनेहु संभारा । वदत विधि जिमि घटज निवारा ॥१॥

अर्थ : भरतजी ने देखा कि सभा सङ्कुच के वश में पड़ गयी । तब रामजी के भाई ने भारी धैर्यधारण किया । कुसमय देखकर इस भाँति स्नेह को संभाला जिस भाँति बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोक दिया था ।

व्याख्या : भरतजी ने देखा कि रामजी के शपथ पूर्वक कहने से अब किसी

को उत्तर नहीं सूझ रहा है। सबके सब सङ्कोच में पड़ गये। भरतजी प्रेम से भरे हुए हैं। जनकजी के आ जाने पर स्वयं कुछ कहना नहीं चाहते। अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर एक बार बोले थे। अब फिर बिना बोले काम नहीं चलता। अतः भारी धैर्य धारण करके बोले। रामजी भाई हैं। उनको उत्तर देने में ये ही समर्थ हैं।

कथा है कि किसी समय विन्ध्याचल बढ़ने लगा। उसका इरादा इतना बढ़ने का था जिसमें सूर्यनारायण उसकी परिक्रमा करने लगे जिस भाँति सुमेरु की परिक्रमा करते हैं। इस अस्वाभाविक बढ़ाव को देखकर देवताओं को भय हुआ। वे लोग काशी आकर अगस्त्यजी को लिवा ले गये जो विन्ध्य के गुरु थे। उन्हें देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। मुनिजी ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण से नहीं लौटता तब तक यो ही पड़े रहो। उस समय से विन्ध्याचल का बढ़ना रुक गया। अगस्त्यजी दक्षिण से लौटे ही नहीं।

यहाँ इतने से ही तात्पर्य है कि भरतजी का प्रेम विन्ध्याचल की भाँति बढ़ता चला जाता था। उसे रोकने से सद्गुणरूपी सुरगण असमर्थ थे। फिर भी भरतजी ने उसे ऐसा रोका जैसे अगस्त्यजी ने विन्ध्याचल को बढ़ने से रोक दिया। अर्थात् प्रेम को प्रसुप्तावस्था में ला दिया।

यहाँ भरतजी की समता अगस्त्य मुनि से और प्रेम की विन्ध्याचल से है।

शोक कनकलोचन मति छोनी । हरी विमल गुन गन जगजोनी ॥
भरत विवेक वराह विसाला । अनायास उधरी तेहि काला ॥२॥

अर्थ : शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणरूपी जग को उत्पन्न करनेवाली बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया था। भरत के विचाररूपी विशाल वराह ने उसका तत्काल उद्धार किया।

व्याख्या - कथा है कि किसी समय हिरण्याक्ष नामी दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल में ले गया था। उसे वाराह रूप में प्रकट होकर भगवान् ऊपर ले आये। यहाँ शोक को हिरण्याक्ष कहा। उसने सबकी बुद्धि हरण कर ली। समष्टि की बुद्धि होने से उसे पृथ्वी से उपमित किया। जिस भाँति पृथ्वी स्थावर जङ्गम का उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति बुद्धि भी सब गुणगणों का उत्पत्ति स्थान है। भरत के विवेक ने उसका उद्धार किया। इसीलिए उसे वाराह कहा। भरत के विवेक से सत्रको बात सूझने लगी। यह बात किसी को न सूझी कि सरकार से कहे कि आप पिता का वचन मानिये। भरत नहीं मान रहे हैं। उन्हें मानने के लिए आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से भरत सब करें। उनका सेवाधर्म न बिगड़े।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे । राम राउ गुरु साधु निहोरे ॥
छमव आजु अति अनुचित मोरा । कहउँ वदन मृदु वचन कठोरा ॥३॥

अर्थ : भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीगणेशजी का

जनकजी का गुरुजी का और साधुओं का निहोरा किया और बोले कि आज मेरे अत्यन्त अनुचित आचरण को क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुख से कठोर बातें कहता हूँ।

व्याख्या पहिले प्रणाम किया। तत्पश्चात् रामजी जानकीजी गुरुजी और साधुओं से क्षमा करने के लिए निहोरा किया कि आज मैं अत्यन्त अनुचित कर रहा हूँ। बात सरकार से और गुरुजनों से हो रही है। इस बीच मैं मेरा हस्तक्षेप अनुचित है और तिस पर मैं कठोर कहूँगा जो कहना कि मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। अतः मेरे इस भारी अनुचित कर्म को आप लोग क्षमा करें। इसके लिए मैं निहोरा करता हूँ।

हियं सुमिरी सारदा सुहाई। मानस ते मुख पकज आई ॥

विमल विवेक धरम नय साली। भरत भारती मजु मराली ॥४॥

अर्थ हृदय से स्मरण करते ही सुन्दर सरस्वती मानस से मुखकमल में आगयी। भरतजी को सरस्वती निर्मल विवेक धर्म और नीतिवाली सुन्दर हसिनी रूप थी।

व्याख्या यह भरतजी की सरस्वती हैं। अतः बड़ी सुन्दर हैं। भरतजी ने उनका स्मरण किया। ये उनके मानस में रहती हैं। इसलिए उन्हें मराली कहा। स्मरण करते ही भरतजी के मुख में आगयी। वाणी की सुन्दरता तभी है जब उसमें विवेक धर्म और नीति तीनों का याग हो। वाणीरूपी हसिनी गुणरूपी पद्म और दोषरूपी जल को अलग करती हैं। पर यह हसिनी धर्म और नीति से भी युक्त हैं। अतः अधिक सुन्दर हैं।

दो निरखि विवेक विलोचननि, सिथिल स्नेह समाजु।

करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु ॥२९७॥

अर्थ विवेकरूपी नेत्र से सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर उन्हें प्रणाम किया और राम जानकी को स्मरण कर भरतजी बोले।

व्याख्या रामजी के स्नेह में भग्न समाज को देखकर भरतजी ने उस समाज को प्रणाम किया। यदि समाज का समाज प्रेमभग्न हो तो वह सब प्रकार से प्रणम्य हो जाता है। बोलने के पहिले रामजानकी के स्मरण का भाव यह कि अपनी बात का सही उत्तर आप ही मेरे द्वारा दीजिये।

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अतरजामी ॥

सरल सुसाहिवु सोल निधानू। प्रणतपालु सर्वग्य सुजानू ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो। आप पिता माता सुहृद परमहित अन्तर्यामी हैं। आप सरल सुस्वामी शीलनिधान प्रणतपाल सर्वज्ञ और सुजान हैं।

व्याख्या यहाँ भरतजी ने अठारह विशेषण दिये हैं। जिनमें सात तो

बन्धबोधक हैं और शेष सरकार के गुणों के व्यापक है। ये ही विरदावली हैं नका वर्णन भरतजी करेंगे। अगस्त्य संहिता में सम्बन्ध को परतम स्वराट् भाव है। इसके द्वारा बिना ध्यान और बिना योग के बिना तप के और बिना न के श्री रघुनन्दन में परा अव्यभिचारिणी प्रीति नित्य बढ़ती ही रहती है।
 ॥ : एभ्य परतमो भावो सम्बन्धाख्य स्वयं स्वराट् । बिना ध्यानेन तपसा योग न विनैव हि । श्रीरघुनन्दने प्रीतिः पराह्यव्यभिचारिणी । वर्धतेऽनुदिन विप्र सत्य य न चान्यथा । श्रीगोस्वामीजी कहते हैं : मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो वै । सो भरतजी ने सात सम्बन्ध माने । पिता माता सुहृद गुरु स्वामी पूज्य र परम हित के सम्बन्ध । यहाँ पर भरतजी ने भाई के सम्बन्ध को नहीं गिनाया । लेकिन उसके लिए कह आये हैं . दसरथ सुअन राम लघु भाई । दीन्हू मोहि विधि दि बड़ाई । अङ्गद ने तीन सम्बन्ध माना था गुरु का पिता का और माता का । ॥ . मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता । जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता । यहाँ तो त सात सम्बन्ध हैं । भाव यह कि मैं आपको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ ।

प्रभु यथा . राजाराम स्ववस भगवान् ।
 पितु यथा : ज्येष्ठ भ्राता पितु. समः ।
 मातु यथा : रामहि वधु सोच दिन राती ।
 अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥
 सुहृद यथा . सिसुपल ते परिहरेउ न संगू ।
 कवहु न कीन्हू मोर मन भगू ॥
 गुरु यथा : वेद पुरान सुनहि मनलाई ।
 आप कहहि अनुजहि समुझाई ॥
 स्वामी यथा : जेठ स्वामि सेवक लघु भाई ।
 पूज्य यथा . पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते ।
 सब मानिये राम के नाते ॥
 परमहित यथा . भरत सरिस प्रिय को जगमाँही ।
 कवहुँ न कीन्हू मोर मन भगू ।

अब सरकार के सद्गुण कहते हैं कि श्रीमद से लोग टेढ़े हो जाते हैं । यथा : श्रीमद वक्र न कीन्हू केहि । पर सरकार महान् श्रीमान् होने पर भी सरल है । सरकार सुस्वामी हैं । अपनी ओर देखकर कुसेवक का भी भरण करते हैं । यथा : राम सुस्वामि कुसेवक मोसो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो । तिस पर भी शील निधान हैं । सेवक की ढिठाई पर ध्यान नहीं देते । यथा प्रभु तरु तर कपि डारपर किये आपु समान । तुलसी कहूँ न राम से साहिब शील निधान । प्रणत के पालन करनेवाले हैं । यथा : सकृत् प्रणाम किये अपनाये । सर्वज्ञ हैं । यथा : तुमसे कछु न अपी करुनानिधि तुम ही अन्तरजामी । सुजान हैं । जन के जी की बात जानते हैं । यथा . राम सुजान जान जन जो की । समर्थ हैं । दोष अपनी क्रिया उन पर नहीं कर सकते । यथा समरथ कहूँ नहि दोष गोसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाई ।

समर्थु सरनागत हितकारी । गुणग्राहकु अवगुन अधहारी ॥
स्वामि गोसाइहि सरिस गोसाई । मोहि समान मै सांइ दोहाई ॥२॥

अर्थ : समर्थ हैं । शरणागत के हित करनेवाले हैं । गुणग्राहक हैं । अवगुण और पाप के नाश करनेवाले हैं । हे स्वामी ! मालिक तो मालिक से ही हैं और मैं भी अपने ही जैसा हूँ । स्वामी की शपथ लेकर कहता हूँ ।

व्याख्या : समर्थ के विषय में ऊपर कह आये हैं । अथवा समर्थ शब्द का अन्वय शरणागत हितकारी के साथ है । भाव यह कि सरकार शरणागत के हित करने में समर्थ हैं । यथा : जौं सभीत आवा सरनाई । रखिहौं ताहि प्रान की नाई । सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा । बिस्व द्रोह कृत अध जेहि लागा । सरकार गुणग्राहक हैं । यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने । सुनि गुन साधु समाज बखाने । सरकार अवगुन अधहारी हैं । यथा : करौ सद्य तेहि साधु समाना ।

अनन्वयालङ्कार से अपने इस कथन का तात्पर्य कहते हैं कि न तो आप सा भला स्वामी कही है और न मुझ सा बुरा सेवक ही कोई है । यथा : राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो । राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो । अब अपनी खोटाई कहते हैं :

प्रभु पितु वचन मोह बस पेली । आयेउँ इहाँ समाजु सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअँ अमरपद माहुरु मीचू ॥३॥

अर्थ : प्रभु और पिता के वचन को मोह के बश हटाकर यहाँ समाज इकट्ठा करके आया हूँ । संसार में बुरा भला ऊँचा और नीचा अमृत अमरपद विष और मृत्यु है ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि भलाई में मेरे मालिक का जोड़ नहीं और खोटाई में मेरा कोई जोड़ नहीं । मैं ऐसा खोटा कि अज्ञान के बश में आकर प्रभु सम्मत पिता के वचन को न मानकर मैं यहाँ समाज इकट्ठा करके आया । भाव यह कि प्रभु और पिता के वचन मानने में विचार को स्थान नहीं है । इस पर विचार करना ज्ञान नहीं है अज्ञान है । सो प्रभुसम्मत पिता के वचन का मैंने स्वयं तो उल्लङ्घन किया ही और आपसे भी उल्लङ्घन कराने के लिए गुरु माता सचिव तथा पुरजनों को इकट्ठा करके यहाँ ले आया । इस बात का भी विचार न किया कि आज्ञा कोई हटा नहीं सकता । चाहे भला हो चाहे बुरा हो । चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो । चाहे अमृत हो चाहे विष हो । चाहे अमरपद हो चाहे मृत्यु ही हो । सबको मानना पड़ता है ।

राम रजाइ मेटि मन माँही । देखा सुना कतहुँ कोउ नाँही ॥
सो मइ सब विधि कीन्ह ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥४॥

अर्थ : पर जिसने रामजी की आज्ञा को मन से भी मेटा हो ऐसा कही भी

किसी को न देखा न सुना । सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की । पर स्वामी ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया ।

व्याख्या उपर्युक्त भलो और बुरे में कितनों को तो मैंने देखा है और कितनों को सुना है । पर ऐसा सामर्थ्य कहीं किसी में न पाया जो आपकी आज्ञा मन से भी मेट सके । भाव यह नट मकंठ इव सबहि नचावत । राम खगेस वेद अस गावत । तथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई । प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई । करहु सो वेगि जो तुमहि सोहाई ।

मैंने ऐसे प्रभु की आज्ञा को सब प्रकार से न मानने की ढिठाई की । यह मेरी खोटाई है और उस ढिठाई को स्नेह और सेवकाई मान लेना यह सरकार का अधहारित्व है ।

दो. कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर ।

दूषण भे भूषण सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२९८॥

अर्थ अपनी कृपा और भलाई से नाथ ने मेरा भला किया । मेरे दूषण हो भूषण हो गये और सुन्दर सुयश चारों ओर फैल गया ।

व्याख्या जग अनभल भल एकु गोसाईं । कहिअ होइ भल कासु भलाई । सा मुझम भलाई थी ही नहीं । सरकार ने कृपा करके ऐसी भलाई की कि मेरे दूषण हो भूषण हो गये । मेरी ढिठाई लोगों की दृष्टि में स्नेह और सेवा के रूप में परिणत हो गयी । सरकार ने प्रशंसा कर दिया भयउ न भुवन भरत सम भाई । सो मेरा सुन्दर सुयश चारों ओर फैल गया । यह सरकार का गुणग्राहकत्व है ।

राउरि रीति सुवानि बडाई । जगत विदित निगमागम गाई ॥

क्रूर कुटिल खल कुमति कलकी । नीच निसील निरीस निसकी ॥१॥

अर्थ आपकी सुन्दर रीति आपका सुन्दर स्वभाव आपकी बडाई ससार में प्रसिद्ध है । उसका गान वेद शास्त्र ने किया है । जो क्रूर, कुटिल, खल, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, दु शील, नास्तिक और नि शङ्क है ।

व्याख्या सरकार की रीति ही ऐसा है कि पतिता को पवित्र करते हैं । इसी से पतितपावन विरद है । यथा ऐसी कौन प्रभु की रीति । विरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति । स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि नीच से भी प्रीति करते हैं यदि उसमें प्रेम हो । यथा श्रीरघुवीर की यह वानि । नीच हूँ सो करत प्रीति सुप्रीति उर अनुमानि । बडाई अर्थात् महिमा की तो सीमा ही नहीं है । यथा महिमा अमित न कहि सकहि सहस सारदा सेस । यह बात छिपी नहीं है । ससार जानता है । वेद और शास्त्रों में इसकी प्रशंसा है । यह सरकार का समर्थ सरनागत हितकारित्व है ।

क्रूर में दया नहीं हाती और दया में ही सब धर्मों का निवास है । यथा दया में वसत नाथ सकल धरम । कुटिल में सरलता नहीं हाती । कुटिल ही दुरात्मा है । उसके मन वाणी और कर्म में एकवाक्यता नहीं । यथा मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्

कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । खल निष्कारण ही दूसरे की बुराई करते हैं । यथा खल बिनु कारण पर अपकारी । तामसी बुद्धिवालो की विपरीत बुद्धि होती है । वे अधर्म को ही धर्म समझते हैं । हित को अनहित समझते हैं । यथा . तब उर कुमति बसी विपरीता । हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता । कलङ्की को दुनिया बुरा कहती है । यथा : कुल कलक जेहि जनम्यो मोही । अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही । लोक वेद से बहिष्कृत को नीच कहते हैं । यथा : लोक वेद बाहर सब भाँती । आचारहीन को दु शील कहते हैं । उन्हे वेद भी पवित्र नहीं कर सकते । यथा . आचारहीन न पुनन्ति वेदा । निरीश ही असुर हैं । यथा : मानहि मातु पिता नहि देवा । साधुन्ह सन करवावहि सेवा । जिनके अस आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी । निःशङ्क से भाव यह कि जिनको परलोक का डर नहीं । यथा स्वारथ बस परलोक नसाही । ये शरण में रखे जाने के पात्र नहीं हैं ।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए । सकृत प्रनाम किहे अपनाए ॥
देखि दोष कबहु न उर आने । सुनि गुन साधु समाज वसाने ॥२॥

अर्थ : वे भी सुनकर जहाँ सामने आये और एक बार प्रणाम किया तहाँ आपने अपना लिया । देखकर भी दोष को हृदय में स्थान नहीं देते । गुणों को सुनकर भी साधुसमाज में बग़वान करते हैं ।

व्याख्या : ऐसे क्रूर कुटिल खल से सभी दूर भागते हैं । पर सरकार की बात दूसरी है । आपके सामने यदि ऐसा पुरुष भी आपके गुण गुणों को सुनकर शरण में आवे तो एक बार प्रणाम करने से ही आप उसे अपना लेते हैं । पहिली बात यह है कि आपके सुयश सुनने से उसे यह सङ्कल्प हो कि मैं ऐसे के अनुकूल चलूँगा । इनके प्रतिकूल का परित्याग करूँगा और उसे विश्वास हो जाय कि सरकार निश्चय मेरी रक्षा करेंगे मैं इन्हीं को अपना रक्षक मानूँगा । मुझ से तो सब मिगड़ गया और अपने को सरकार को ममर्पण कर दें तो सरकार एक प्रणाम से प्रसन्न होकर उसे अपना बना लेते हैं । वह तदीय हो जाता है ।

यथा : सनमुख होइ जीव माहि जवही । जनम कोटि अध नासहि तबही ।

जौ नर होइ चराचर द्रोही । आवे सभय सरन तकि मोही ।

तजि मदमोह कपट छल नाना । करें सद्य तेहि साधु समाना ।

उसके एक प्रणाम से रामजी प्रसन्न हो जाते हैं । उस प्रणाम की बड़ी महिमा है । यहाँ : प्रनत पाल सरवज्ञ सुजानू का साफल्य दिखलाया ।

उसके दोषों को कभी हृदय में स्थान नहीं देते । देखते हुए भी नहीं देखते ।

यथा : जेहि अध घघेउ व्याघ जिमि बाली ।

फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥

सोइ बरतूति विभीषन बेरो ।

सपनेहुँ सो न राम हिये हेरो ॥

तेहि भरतहि भेटत सनमाने ।
गजमर्मा रघुवीर वसाने ॥

जो तदीय हो चुका उससे चूक भी हो जाय तो वह फिर परित्यक्त नहीं होता । ऐसा गुन्दर सरकार का स्वभाव है । अब बड़ाई कहते हैं ।

को माहिब सेवकहि नेवाजी । आपु समाज साज सब साजी ॥
निज करतूति न समुझिअ सपने । सेवक सकुच सोचु उर अपने ॥३॥

अर्थ : ऐसा कौन स्वामी है जो सेवक पर कृपा करके अपने सब समाज और राज राज दे । अपनी करतूत पर स्वप्न में भी ध्यान न दे । यदि सेवक को सङ्कोच हो तो अपने मन में सोच हो ।

ध्याया सेवक कैसा भी हितचिन्तक हो पर उसे कोई बराबरी का दर्जा नहीं देता । पर रामजी की यह बड़ाई है कि उसका स्वयं समाज साज देते हैं ।

यथा बालि आस व्याकुल दिन राती ।
तन बहु प्रन चिता जर छाती ॥
सो सुग्रीव कोन्ह कपि राऊ ।
अति कृपाल रघुवीर सुभाऊ ॥

प्रभु तत्पर कपि डारपर ते किये आपु समान ।
तुलसी कहैं न राम से साहिब सोल निधान ॥

सरकार का स्वभाव बड़ा विस्मरणशील है । स्वयं जो जो भलाई किया है उसे भूल जाते हैं और सेवक को यदि सङ्कोच हो तो उन्हें मन में सोच होता है अर्थात् सङ्कोच मिटाने का प्रयत्न करते हैं । यथा : सकुच बिहाय मागु नृप मोहो । तथा मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।

सो गोसाईं नहि दूसर को पी । भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ॥
पशु नाचत सुक पाठ प्रवीना । गुन गति नट पाठक आधीना ॥४॥

अर्थ : ऐसा मालिक दूसरा कोई नहीं है । मैं भुजा उठाकर और प्रण करके कहता हूँ । पशु नाचते हैं और तोता पाठ करने में प्रवीण होता है । परन्तु गुण और गति नट और पाठक के अधीन होता है ।

ध्याया भरतजी कहते हैं कि मालिक तो बहुत हैं । पर ऐसा मालिक कोई है नहीं । भुजा उठाकर प्रण रोपकर मैं कहता हूँ : सारी सभा में सबका साक्षी देने के लिए भुजा उठाकर प्रण किया जाता है । यथा : निसिचर हीन करउँ महि भुज उजाद पन कोन्ह । कि : स्वामि गोसाईंहि सरिस गोसाईं ।

सरकार ने जो कहा : भयउ न भुवन भरत सम भाई इत्यादि । उसपर भरतजी कहते हैं कि इसमें मेरी करतूत कुछ नहीं । पशु नाचता है । उसके नृत्य की गति नट के अधीन होती है । उसकी शिक्षा के अनुसार वह नाचता है । तोता श्लोक

पढ़ता है । वह कुछ नहीं समझता । जैसा सिखाया हुआ है वैसा कहता है । सो मेरे में जो गुण दिखायी पड़ते हैं वे सरकार की प्रेरणा से हैं । यह अन्तर्यामित्व है ।

दो. यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर ।

को कृपालु विनु पालिहै, विरदावलि बरजोर ॥२९९॥

अर्थ : इस भाँति अपने जन को सुधारकर और सम्मान देकर साधुओं का सिरमोर बना दिया । कृपालु के बिना ऐसी बाँकी विरदावली का कौन बल पूर्वक पालन कर सकता है ।

व्याख्या : मुझमें गुण कहाँ । जो दिखायी पड़ते हैं वे सरकार के सिखाये हैं । यथा : बेद पुरान सुनहिं मन लाई । आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई । अथवा मैंने तो ढिठाई की । न पिता की आज्ञा मानी न सरकार की शिक्षा मानी । परन्तु सरकार ने बलपूर्वक बिगड़ी हुई बात को सुधार दिया । यथा : सुनहु लखन भल भरत सरोखा । बिधि प्रपच मह सुना न दीखा । सम्मान दिया । यथा : उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहूँ पट कहूँ निपग कहूँ तीरा । साधु सिरमोर बनाया । यथा : भरतहिं होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ । कबहुँ कि काँजो सीकरन्ह छोर सिधु बिनसाइ । यहाँ : प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी । पूज्य परम हित का साफल्य दिखलाया ।

सोक स्नेह कि बाल सुभाएँ । आयेउँ लाइ रजायसु बाएँ ॥

तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा । सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥१॥

अर्थ : शोक से स्नेह से या बाल स्वभाव से आज्ञा को हटाकर मैं यहाँ आया । फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर सभी भाँति से मेरा भला ही माना ।

व्याख्या : भरतजी अपना दोष कहते हैं कि मैं स्वयं निश्चय नहीं कर सकता कि मैं यहाँ क्यों आया ? शोक के कारण आया कि स्नेह के कारण आया कि बाल-स्वभाव से आया । यहाँ बाल का अर्थ अज्ञानी है । अर्थात् स्वभाव से मैं अज्ञानी हूँ । उसी स्वभाव की प्रेरणा से आया है । चाहे जैसे आया पर आज्ञा उल्लंघन करके ही आया । क्योंकि आज्ञा पालन में विचार को स्थान नहीं है । यथा : मातु पिता गुरु प्रभु के बानी । बिनहि विचार करिअ सुभजानी । शोक यथा : राम लखन सिय विनु पग पनही । करि मुनिबेष फिरहि बन बनही । एहि दु ख दाह दहै दिन छाती । भूख न वासर नींद न राती ।

स्नेह यथा : देखे विनु रघुनाथ पद जिय के जरनि न जाइ ।

बाल सुभाएँ यथा : आन उपाउ मोहि नहिं सूझा ।

सरकार कृपालु हैं । अपनी ओर देखते हैं । जन के दोष को नहीं देखते । जब मुझ से आज्ञा भङ्ग का अपराध नहीं हुआ था तब तो भला मानता ही था । यथा : तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ । मो कह दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ । आज्ञा भङ्ग करने पर भी भला ही माना । नहीं तो मैं इस योग्य

दानन्द दिनेश कहा । ऐसे महाप्रभु की शपथ लेकर अपनी रुचि कहते हैं । जो जाग्रत अवस्था में तो सदा बनी ही रहती है । स्वप्न भी जाग्रत के सस्कार के अनुरूप ही होता है । अतः स्वप्न में भी यही रुचि सस्कार रूप से रहती है । घोर निद्रा के समय में भी वह बीज रूप से रहती है । गुरुजी ने सरकार को मेरी रुचि रखने को कहा । सरकार भी उसके रखने के लिए सब तरह से तैयार हैं । अतः मैं उसे कहे देता हूँ ।

सहज स्नेह स्वामि सेवकाई । स्वार्थ छल फल चारि विहाई ॥

अग्या सम न सुसाहिव सेवा । सो प्रसादु जन पावइ देवा ॥२॥

अर्थ स्वामी की सेवा में स्नेह हो । चारों फल सम्बन्धी स्वार्थ रूपी छल छोड़कर हो । अच्छे स्वामी की सबसे बड़ी सेवा आज्ञा पालन है । वही प्रसाद आपका दास चाहता है ।

व्याख्या सच्ची सेवा में स्वार्थ ही छल है और जितने स्वार्थ हैं वे अर्थ धर्म काम और मोक्ष के अन्तर्गत हैं । अतः इनसे रहित स्वामी की सेवा में सहज स्नेह चाहता हूँ । कपट प्रीति या कृत्रिम प्रीति नहीं चाहता । सेवा में भी सबसे बड़ी स्वामी की आज्ञा है । अतः आप कृपा करके आज्ञा दें । उसी का मैं पालन करूँ । आपकी आज्ञा से जो कुछ मैं करूँगा । वही सरकार की सेवा हो जायेगी । अतः अज मैं यही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे आज्ञा हो कि भरत ! तू यह कर । बस इतना ही मेरा अभीष्ट है ।

अस कहि प्रेम विवस भए भारी । पुलक सरीर विलोचन बारी ॥

प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर भारी प्रेम के वश हुए । उनके शरीर में पुलक हो आया । आँखें डबडबा आयी । सरकार के चरण को व्याकुल होकर पकड़ लिया । उस समय का वह स्नेह कहा नहीं जाता ।

व्याख्या पहिले स्नेह सँभाला था । बढत विन्ध्य जिमि घटज निवारा । परन्तु इस बात के निवेदन करने में वह स्नेह नहीं सँभल सका । फूट चला । अतः एकदम प्रेम के विवश हो गये । उन्हें सात्त्विक भाव हो गया । प्रेम में डूबने लगे । आधार की भाँति चरण को व्याकुल होकर पकड़ लिया । भरतजी को सब दुःख स्वीकार है । पर सरकार असामञ्जस्य में न रहे ।

कृपासिन्धु सनमानि सुवानी । बैठाये समीप गहि पानी ॥

भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥४॥

अर्थ कृपासिन्धु ने सुन्दर वाणी से सम्मान करके हाथ पकड़कर बैठाया । भरतजी का विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सारी सभा और स्वयं रामजी स्नेह से शिथिल हो गये ।

अर्धाली मे तापर राम प्रेम सिसु सोहा • कहकर वर्णन किया । यही प्रेम जनकजी के ज्ञान का अवलम्बन हुआ । तापस वेप मे सीताजी को देखकर जो प्रेम बढा उसी की समता अक्षय वट से दी गयी है । उसी के आधार पर रामप्रेम था । जनकजी के लिए रामप्रेम का आधार सीताप्रेम का ही होना स्वाभाविक है । वही प्रेम ज्ञान का अवलम्बन हुआ । उसी से विशेष परितोष हुआ ।

अब परितोष का रूप कहते हैं कि इस पतिप्रेम से रघुकुल निमिकुल दोनो पवित्र हुए । ऐसा सती बेटी के उत्पन्न होने से पितृकुल और पतिकुल दोनो पवित्र हो जाते हैं । सो तेरा सुयश ससार मे फैल गया । सभी कहते हैं कि धन्य है ससार जिसमे ऐसी स्त्रीरत्न उत्पन्न होती है ।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी । गवनु कीन्ह विधि अड करोरी ॥

गग अवनि थल तीनि बडेरे ॥ एहि किए साधु समाज घनेरे ॥२॥

अर्थ : तुम्हारी कीर्तिरूपी नदी गङ्गाजी को भी जीतकर करोडो ब्रह्माण्ड मे चली गयी । गङ्गाजी के तीन बडे स्थल पृथ्वी पर हैं । पर इस कीर्ति ने बहुत से साधु समाज बनाये ।

व्याख्या • जनकजी कहते हैं कि त्रिपथगा गङ्गा तो केवल तीनो लोको मे गयी हैं । पर तेरी कीर्तिरूपी नदी तो करोडो ब्रह्माण्डो मे पहुँच गयी । गङ्गाजी ने केवल तीन बडे तीर्थ बनाये । १ हरद्वार २ प्रयाग और ३ गङ्गा सागर । पर तेरी कीर्ति नदी ने न जाने कितने साधु समाज बना दिये । जो तीर्थ को भी तीर्थ बनाते हैं । यथा तीर्थोऽकुर्वन्ति तीर्थानि । भाव यह कि धर्म के लिए कष्ट सहने का ऐसा उदाहरण तुमने स्थापन किया कि कितने लोग धर्म के लिए कष्ट सहने को खडे हो जावेंगे और यही साधुता है ।

पितु कह सत्य सनेह सुबानी । सिय सकुच महुँ मनहुँ समानी ॥

पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई । सिख आसिप हित दीन्हि सुहाई ॥३॥

अर्थ • पिता तो सच्ची स्नेह युक्त सुन्दर वाणी कहते थे । पर सीताजी तो मानो सङ्कोच मे गढी जाती थी । फिर पिता माता ने उन्हे गले से लगा लिया और हितकर शिक्षा तथा आशीर्वाद दिया ।

व्याख्या . जनकजी ने प्रेम से सच्ची बात प्रशसा के रूप मे कहा । यह पिता के मुख से अपने पतिप्रेम की प्रशसा सुनकर सीताजी अत्यन्त सङ्कुचित होती जाती थी । स्नेहमयी वाणी यथा • पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ । सत्य वाणी यथा सुयस धवल जग वह सब कोऊ । सुवाणी यथा • जिति सुरसरि कीरति मरितोरी • इत्यादि :

अति प्रेम से फिर पिता ने और माता ने हृदय से लगाया । कवि वात्सल्य दिखलाते हुए कहते हैं कि पिता माता ने शिक्षा दी कि इसी भाँति धर्मपालन करने से ही दोनो लोक बनता है इत्यादि और आशीर्वाद दिया । यद्यपि यहाँ सीताजी

द्वारा वन्दना नहीं लिखा । फिर भी आशीर्वाद देने से प्रणाम का अनुमान करना पड़ेगा ।

कहति न सीय सकुचि मनमाही । इहाँ बसब रजनी भल नाही ॥

लखि रूख रानि जनायउ राऊ । हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ ॥४॥

अर्थ सीताजी मन में सङ्कोच करती हुई यह कह न सकी कि यहाँ रात को रहना ठीक नहीं । रानी ने रूख समझकर महाराज को सूचित किया और मन से शील स्वभाव की प्रशंसा की ।

व्याख्या सीताजी रामजी के साथ वानप्रस्थ धर्म से रहती हैं । सरकार को : मुनि व्रत वेष अहार . की आज्ञा पिता द्वारा मिली हुई है । वानप्रस्थावस्था में क्षत्रिय पत्नी के साथ शयन करें और दोनों के बीच से साक्षीरूप से खड्ग रक्खा रहे । अतः रामजी के पास जाना आवश्यक था । पर सङ्कोच से कह नहीं सकती थी । पर उनका रूख देखकर माँ समझ गयी । हृदय से सीताजी के शील स्वभाव की प्रशंसा करती हुई महाराज जनक से जाकर कहा कि सीताजी कहती नहीं है पर उनका जाना आवश्यक है ।

दो. बार बार मिलि भेंटि सिय, विदा कीन्ह सनमानि ।

कही समय सिर भरत गति, रानि सुवानि सयानि ॥२८७॥

अर्थ . सीताजी से बार बार मिलकर और सम्मान करके उन्हें विदा किया और चतुर रानी तो ठीक अवसर देखकर भरत का हाल सुन्दर वाणी से कह सुनाया ।

व्याख्या . अत्यन्त प्रेम के कारण बार बार मिली । समय ऐसा था कि विदाई में कुछ दे नहीं सकते थे । अतः सम्मान करके ही सीताजी को विदा किया । कौसल्याजी ने कहा था : रानि रायसन अवसर पाई । अपनी भाँति कहब समुझाई । सो सयानी रानी ने अच्छा मौका देखकर भरतजी का हाल सुन्दर वाणी द्वारा राजा से कहा कि भरत का प्रेम ऐसा है कि इन्हे घर लौटाने में बड़ा खतरा मालूम होता है । इनका प्रेम भी महाराज दशरथ सा ही है । एक गलती हो चुकी है कि महाराज दशरथ को लोगो ने रामजी के पास वन में नहीं भेजा । अब दूसरी गलती भरत को अयोध्या भेजकर न करनी चाहिए । बल्कि लक्ष्मण को अयोध्या भेज दिया जाय इत्यादि ।

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू । सोन सुगंध सुधा ससि सारू ॥

मूँदे सजल नयन पुलके तन । सुजसु सराहन लगे मुदित मन ॥१॥

अर्थ : राजा ने भरत का व्यवहार सुनकर जो सोने में सुगन्ध और चन्द्रमा के सारभूत अमृत सा था आँखें मूँद ली और शरीर उनका पुलकित हो गया तथा प्रसन्न मन होकर उनके सुयश की प्रशंसा करने लगे ।

व्याख्या : गति और व्यवहार समानार्थक शब्द हैं। उस व्यवहार को सोना सा कहा। पर सोने में सुगन्ध नहीं स्वाद नहीं। इस व्यवहार रूपी सोने में सुगन्ध भी है और अमृत सा स्वाद भी है। व्यवहार में सोनापन भरतजी का स्वभाव है। यथा : कनकहि वान चढे जिमि दाहे। कनकौ पुनि पखान ते होई। जारेउ सहज न परिहरि सोई। कसे कनक मनि पारिख पाये। पुरुष परखियहि समय मुभायें। सुवास से भाईपन कहा। यथा : १. अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। २. भाषय भलि चहु बंधु की। १ जल माधुरी २ सुवास। सुधा ससि सारू से भक्ति कहा। यथा : राम सनेह सुधाकर सारू। भाव यह कि भरत का व्यवहार अलौकिक सोना है जो इस ससार में नहीं है। अमृत भी अनेक प्रकार का होता है। वह भी अमृत ही था जिसे पाताल में पीकर भीमसेन बलवान हुए थे। पर वह उन्हें अमर न कर सका। वह पाताल लोक का अमृत था। परन्तु चन्द्रमा में जो अमृत है उसे देवता लोग पान करते हैं। वह अमृतों में भी उत्तम कोटि का है। इसी भाँति भरतजी की भक्ति भी उत्तम कोटि की है।

ऐसे व्यवहार को सुनकर महाराज जनक को सात्त्विक भाव हुआ। आनन्द से उन्होंने आँखें बन्द कर ली। रोगटें खड़े हो गये। बोल न सके। मन ही मन सुयश की सराहना करने लगे। भाव यह कि तन मन वचन से प्रेम में मग्न हो गये। मूँदे सजल नयन से तन की दशा कही। सुजस सराहन लगे से वचन की दशा कही और मुदित मन से मन की दशा कही।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध विमोचनि ॥

धरम राजनय ब्रह्मविचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥२॥

अर्थ : राजा ने कहा कि हे सुमुखि सुलोचनि। भरत की कथा भवबन्धन से छुड़ानेवाली है। तुम सावधान होकर सुनो। धर्म राजनीति और ब्रह्मविचार इन विषयों में यथामति मेरी पहुँच है।

व्याख्या : जनकजी प्रिया होने से सुमुखि सुलोचनि सम्बोधन देते हैं। अथवा रानी का नाम सुलोचनि। सुनयना है और सुमुखि नाम का विशेषण है। भरत की कथा असाधारण है। उसके सुनने से भवबन्धन कट जाता है। यथा : भरत चरित्त करि नेम तुलसी जे सादर सुनहि। सीय रामपद प्रेम अर्वास होइ भवरस बिरति। अतः मैं जो कहता हूँ उसे सावधान होकर सुनो।

मेरी गति तीन विषयों में है। धर्मशास्त्र में राजनीति में और ब्रह्मविद्या में। इन तीनों विषयों की यदि कोई बात हो तो उसमें मैं अपनी सम्मति दे सकता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय भी कर सकता हूँ।

सो मति मोर भरत महिमाही। कहइ काह छल छुअति न छाँही ॥

विधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद ॥३॥

भरत चरित कीरति करतूती । धरम शील गुन विमल विभूती ॥

समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू ॥४॥

अर्थ वह मेरी बुद्धि भरत की महिमा का क्या वर्णन करे । उसकी छाया को भी छल छू नहीं पाता । ब्रह्मदेव गणेश शेष शारद कवि कोविद और बुद्धि विशारद पण्डित के लिए भरत का चरित कीर्ति करतूति धर्म शील गुण और निर्मल ऐश्वर्य सुनने और समझने में तो सबको सुखद है और गङ्गाजल सा पवित्र और अमृत से अधिक सुस्वादु है ।

व्याख्या महाराज जनक कहते हैं कि वह मेरी बुद्धि जो धर्मशास्त्र राजनीति और ब्रह्मविचार में काम कर जाती है भक्त महिमा कहने में कुण्ठित हो जाती है । किसी विषय के कथन करने में उसे सीमित करना पड़ता है । उसका आदि अन्त कहना पड़ता है । महिमा का विचार वही तक है जहाँ तक छल का स्पर्श नहीं है । छल का स्पर्श होते ही महिमा समाप्त हो जाती है । अतः जहाँ तक छल नहीं है वही तक महिमा का वर्णन होता है । पर भरत की महिमा की छाया का छल स्पर्श नहीं करता । अतः उसका वर्णन हो तो कैसे हो ?

१ विधि, २ गणपति, ३ अहिपति, ४ शिव, ५ शारद, ६ कोविद कवि और ७ बुद्धि विशारद पण्डित । ये ही सात बड़े वर्णन करनेवाले हैं । इन सब लोगों को १ भक्त का चरित्र, २ कीर्ति, ३ करतूति, ४ धर्म, ५ शील, ६ गुण और ७ निर्मल विभूति, समझने और सुनने में सुखद है ।

१ विधि को चरित्र सुखद सृष्टि रक्षा के कारण । यथा
सोक सिंधु बूडत सबहि तुम अवलब न दीन्ह ।

२ गणपति को कीर्ति सुखद विघ्न विनाशकारी होने से । यथा
समन अमित उत्पात सब भरत चरित जप जाग ।

३ शेषजी को करतूति सुखद पृथ्वी संभालने से । यथा
भरत भूमि रह राउर राखी ।

४ शिवजी को धर्म सुखद रामभक्ति हाने से । यथा
रामभगति मय भरत निहारे ॥

५ शारदा को शील सुखद स्वार्थ रहित होने से । यथा
परमारथ स्वारथ सुख सारे ।
भरत न सपनेहु मनहु निहार ॥

६ कवि कोविद को गुण सुखद रसास्वाद होने से । यथा
करहु सो प्रेम प्रगट को करई ।
केहि छाया कवि मति अनुसरई ॥

७ बुद्धि विशारद पण्डित को विमल विभूति सुखद शिक्षामय होने से । यथा
भरतहि होइ न राज मद बिधि हरिहर पद पाइ ।

क्योंकि ये गङ्गाजल की भाँति पवित्र है। छलहीन होने से और अमृत से भी मीठे हैं। राम प्रेममय होने से।

दो. निरवधि^१ गुन निरुपम पुरुष, भरतु भरत सम जानि।

कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कविकुल मति सकुचानि ॥२८८॥

अर्थ : असीम गुणवाले उपमारहित पुरुष भरत भरत के ही समान हैं। सुमेरु को क्या सेर के समान कहा जायगा? इसलिए : कवि समाज की बुद्धि सङ्कुचित हो गयी।

व्याख्या : भरत के गुणों की सीमा नहीं इसलिए निरवधि कहा और उनकी उपमा भी नहीं इसलिए निरुपम कहा। अनन्वयालङ्कार देते हुए महाराज कहते हैं कि भरत के समान भरत ही है। दूसरे लोगों से समानता दी नहीं जा सकती। अन्य लोगों में और भरत में उतना ही अन्तर है जितना कि सुमेरु पर्वत और सेर : बटखरे में है। अतः दूसरे से उपमा देने में कवि की बुद्धि सङ्कुचित होती है कि इतना बड़ा वैपम्य होते हुए उसे सामान्य धर्म में लाना ठीक नहीं।

अगम सवहि वरनत वर वरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ॥

भरत अभित महिमा सुनु रानी। जानहि रामु न सकहि बखानी ॥१॥

अर्थ : हे श्रेष्ठ वर्णवाली। सभी के लिए वर्णन करना अगम है। जैसे जल रहित पृथ्वी पर मछली की गति नहीं होती। हे रानी। भरतजी की असीम महिमा रामजी जानते हैं। परन्तु वे भी वर्णन नहीं कर सकते।

व्याख्या : भरत का चरित्र विषय वासना रहित है। इसलिए उसकी उपमा जलहीन धरनी से दी गयी। विषय को अत्यत्र जल और मन को मीन माना गया है। यथा : विषय धारि मन मीन भिन्न नहीं होते कबहुँ पल एक। विषयरूपी जल से मनरूपी मछली क्षण भर के लिए भी अलग नहीं हो सकती। इसलिए निर्विषय वस्तु में मन की गति होना वैसा ही है जैसे जलहीन स्थान में मीन की गति। अतः भरत के चरित्र में किसी की गति नहीं है। मछली जानती ही नहीं कि बिना जल का प्रवेश कैसा होता है। इसी भाँति भरत की महिमा कोई नहीं जानता। केवल रामजी जानते हैं क्योंकि वे भी विषय रस से रूखे हैं। यथा : राम पुनीत विषय रस रूखे। परन्तु वे भी कह नहीं सकते। क्योंकि कहना और सीमित करना एक बात है। असीम का वर्णन हो नहीं सकता। असीमता जानी जा सकती है पर कही नहीं जा सकती। अतः भरत की महिमा रामजी जानते हैं कि असीम है। कही नहीं जा सकती इसीलिए तो असीम है।

वरनि सपेम भरत अनुभाऊ। तिथि जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥

वर नहि लखनु भरत वन जाँही। सब कर भल सबके मन माँही ॥२॥

अर्थ : प्रेम के साथ भरत की महिमा का वर्णन करके स्त्री की रुचि देखकर राजा ने कहा कि भरत वन जायें। इसी में सबका भला है और यही बात सबके मन में है। लक्ष्मण का जाना अच्छा नहीं।

व्याख्या : पहिले राजा जनक ने भरतजी की महत्ता का वर्णन किया। रानी ने भरत की गति कहने में इस बात के दिखलाने का पूरा प्रयत्न किया कि लक्ष्मणजी को रोक लिया जाय और भरत को रामजी के साथ वन जाने दिया जाय। क्योंकि रामजी का विरह भरत के लिए असह्य है। लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी मिलकर राजकाज संभालेंगे। अतः रानी की रुचि का समर्थन करते हुए राजा ने कहा कि जो तुमने कहा है वह सबके भले की बात है और सभी यह चाहते हैं कि लक्ष्मण का जाना ठीक नहीं। भरतजी वन जायें।

देवि परंतु भरतु रघुवर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहि तरकी ॥

भरतु अवधि स्नेह ममता की। यद्यपि राम सीम समता की ॥३॥

अर्थ : परन्तु हे देवी ! भरत और रामजी की प्रीति और प्रतीति में तर्क काम नहीं करता। यद्यपि रामजी समता की सीमा है तथापि भरत स्नेह और ममता की सीमा है।

व्याख्या : जनकजी रानी से कहते हैं कि तुम्हारा तर्क ठीक है। परन्तु रामजी में और भरत में कितनी प्रीति है और कितनी प्रतीति है इसमें तर्क काम नहीं करता। क्योंकि बुद्धि की वहाँ तक पहुँच नहीं।

जिस भरतजी के कल्याण के लिए तुम उनका वन जाना सोच रही हो वे अपना कल्याण किस बात में मानेंगे। रामजी की आज्ञा पालन में या उन पर सङ्कोच डालने में यह कौन कह सकता है।

यद्यपि रामजी समता की सीमा है। उनके साथ चाहे लक्ष्मण जायें या भरत जायें उनके लिए दोनों बराबर हैं। पर भरत भी स्नेह और ममता की सीमा है। वे कभी लक्ष्मणजी या रामजी के मन में ठेस नहीं लगने देंगे।

परमार्थ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥

साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥४॥

अर्थ : परमार्थ और स्वार्थ के सारे सुखों को तो मानो भरत ने कभी सपने में भी नहीं देखा। साधन और सिद्धि : दोनों रामजी के चरणों का प्रेम है। मुझे तो यही भरत का मत मालूम पड़ता है।

व्याख्या : भरत ने प्रयागराज से माँगा : अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहीं निर्वान। अर्थ धर्म काम से स्वार्थ सुख कहा और निर्वान गति से परमार्थ सुख कहा। इन दोनों सुखों को भरतजी चाहते नहीं। मानो इनकी ओर कभी आँख उठाकर देखा ही नहीं है।

नियम तो यही है कि भक्ति से मुक्ति सुलभ हो जाती है । यथा राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं । अनइच्छिन् आवै वरिआई । रामभक्ति साधन हुई और मुक्ति साध्य हुई । यही साधारण नियम है । यथा भक्तिर्मुक्तिविधायनी भगवत् श्रीराम-चन्द्रस्य हि । परन्तु मुझे मालूम होता है कि भरतजी साधन और सिद्धि भक्ति को ही मानते हैं । रामभजन करके वे भक्ति ही चाहते हैं मुक्ति नहीं चाहते । यथा सगुन उपासक मोक्ष न लही । तिनकहँ राम भगति निज देही ।

दो भोरेहुँ भरत न पेलिहहि, मनसहु राम रजाइ ।

करिअ न सोचु सनेह वस, कहेहु भूप विलखाइ ॥२८९॥

अर्थ भूल करके भरतजी मन से भी रामजी की आज्ञा का उल्लंघन न करेंगे । प्रेम के वश होकर सोच न करो । ऐसा राजा ने विलखकर कहा ।

व्याख्या आज्ञा सम न सुसाहिव सेवा । सबसे बड़ी सेवा आज्ञापालन है । रामजी आज्ञा देंगे कि तुम राज्य पर जाओ तो भरत मन से भी उसका उल्लंघन न करेंगे । दुःख सह लेंगे । सो जिसे दुःख झेलना है वह स्वयं झलने के लिए तैयार हो तो उसके लिए सोच न करना चाहिए । स्नेह के वश होकर शोक करना व्यर्थ है । यह बात राजा ने विलखकर कहा ।

राम भरत गुन गनत सप्रीती । निसि दपतिहि पलक सम बीती ॥

राज समाज प्रात जुग जागे । न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥१॥

अर्थ रामजी और भरतजी के गुणों को प्रेम के साथ गिनते हुए दोनों प्राणी को सारी रात पलक के समान बीत गयी । सवेरे दोनों राज समाज जागे और नहा नहाकर देव पूजन करने लगे ।

व्याख्या न तो रामजी के गुणों की सख्या और न भरतजी के गुणों की सीमा थी । यथा जल सीकर महिरज गनि जाही । रघुपति गुन नहि वरनि सिराही । तथा निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि । भगवान् और भागवत् के गुण ही ऐसे हैं । उनकी गणना में बड़ा मन लगता है । अतः दोनों प्राणी रात भर उन्हीं की गणना करते रहे । रात कब बीत गयी उन लोगों को पता नहीं । राजा रानी तो जागते रहे पर समाज खूब सोया । अतः उनका जागना लिखते । उठने के साथ ही नित्यकृत्य में लग गये । गनप गौरि तिपुरारि तमारी । रमारमन पद वदि बहोरी । बिनवहि अजुलि अचल जोरी । इत्यादि ।

२२ दूसरी सभा रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग

गे नहाइ गुर पहि रघुराई । वदि चरन बोले रुख पाई ॥

नाथ भरतु पुरजन महतारी । सोक बिकल बनवास दुखारी ॥२॥

अर्थ रघुराज स्नान करके गुरुजी के पास गये । चरण की वन्दना करके

रुख पाकर बोल । हे नाथ । भरत, नगरनिवासी और माताएँ सब सोच से विकल और वनवास से दुखी हैं ।

व्याख्या सब लागो ने तो नहा नहाकर इष्टदेवो का पूजन किया । पर सरकार के तो इष्टदेव गुरुजी हैं । ये स्नानादि करके गुरुजी के दर्शन को जाते हैं । आज भी इसीलिए गये । पर आज कुछ कहना है मुनिजी ने समझ लिया । सो मुनिजी का जब रुख पाया कि क्या कहना चाहते हो । तो चरण वन्दना करके बोल ।

भरत, पुरजन और माताएँ ये सब लोग मानसिक और शारीरिक कष्ट से दुखी है । शोक विकल से मानसिक कष्ट कहा और वनवास से शारीरिक कष्ट कहा । गुरुजी तो तपस्वी हैं । अतः उनके दुख का नाम नहीं लते । ये लोग व्यर्थ दुख सह रहे हैं ।

सहित समाज राउ मिथिलेसू । बहुत दिवस भये सहत कलेसू ॥

उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा । हित सबही कर रउरे हाथा ॥३॥

अर्थ महाराज मिथिलश को सहित समाज कष्ट उठाते बहुत दिन हो गये । इसलिए हे नाथ । जो उचित हो वही कीजिये । आप ही के हाथ सबका हित है ।

व्याख्या भरत माता पुरजन तो कलश उठा रहे हैं । सम्बन्धी भी कष्ट उठा रहे हैं । राजा मिथिलश के कष्ट उठाने का कोई कारण नहीं है । फिर वे भी कष्ट उठा रहे हैं । पहिले भी मैंने कहा था । तब आज्ञा हुई लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहुँ बिश्राम । सो वे दो दिन तो कभी के बीत गये । तब से मिथिलश आगये । इन्हे भी आये कई दिन हो गये । मुझे जा कहना था कह दिया आगे आप मालिक है । जो आप उचित समझें सो करें । आपकी ही आज्ञा मानने और रुख रखने में सबकी भलाई है । आप जैसा कहेंगे वैसा ही सब करेंगे । अतः जिसमें सबका हित हो सो कीजिये । हित सदा उचित करने में होता है । ध्वनि यह है कि पिता के वचन की रक्षा हो ।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ । मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ ॥

तुम्ह बिनु राम सकल सुख राजा । नरक सरिस दुहु राज समाजा ॥४॥

अर्थ ऐसा कहकर रामजी अति सङ्कुचित हो गये । मुनिजी शील स्वभाव देखकर पुलकित हो गये । कहा हे राम । तुम्हारे बिना दोनों राजममाज का सुख साज नरक के समान है ।

व्याख्या गुरुजी को कुछ भी करने के लिए विनय करने में भी रामजी को सङ्कोच होता है । पहिले भी जाने के लिए जब कहा था तब अन्त में यही कहा बहुत वहेउँ सब कियेउँ ढिठाई । उचित होय तस करिअ गोसाईं । वही बात फिर कह रहे हैं । इसलिए अत्यन्त सकुचे । मुनिजी प्रभु का सङ्कोची स्वभाव देखकर मग्न हो गये । पुलक हो आया । अस सुभाऊ कहूँ सुनै न देखैं । केहि खगेस रघुपति सम रखैं ।

प्रिय के विरह में सुख के साज और भी दुःखदायी हो जाते हैं। अतः गुरुजी कहते हैं कि दोनों समाज को सुख तो तुम्हारे सयोग में है। तुम्हारे विरह में ये सुख के साज नरक समान दुःखदायक हो जायेंगे।

दो. प्राण प्राण के जीव के, जिव सुख के सुख राम।

तुम्ह तजि तात सोहात गृह, जिनहि तिनहि विधि वाम ॥२९०॥

अर्थ : हे तात ! तुम प्राण के प्राण हो। जीव के जीव हो और सुख के सुख हो। तुमको छोड़कर जिन्हे घर अच्छा लगता है उन पर विधाता बायें हो गये हैं।

व्याख्या : सब लोग कष्ट सह रहे हैं। इस बात का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि सुख के मूल स्रोत तो आप हैं। आपके छोड़ने में सुख कहाँ ? आप ही के कारण प्राण प्राणन क्रिया करता है। इसलिए आप प्राण के प्राण हैं। जिस बिम्ब का जीव प्रतिबिम्ब है वह बिम्ब आप ही हैं। इसलिए आप जीव के जीव हैं। विषय सुख के भी मूल में ब्रह्म सुख है। इसलिए आप सुख के सुख हैं। गृह में भी सुख है। पर वह सुख भी आप के होने से है। आपको छोड़कर सुख कहाँ। यथा : जगदात्मा प्राणपति रामा। तासु त्रिमुख विमि लह विश्रामा। यही साधारण नियम है। स्वभाव से जीव और ब्रह्म में स्नेह है। यथा ब्रह्म जीव इव सहज सनेह। जिस पर विधाता वाम होते हैं उसका स्वभाव पलट जाता है। यथा : भयउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ। अतः आपको छोड़कर जिसे घर अच्छा लगा उसके लिए समझ लेना चाहिए कि इस पर विधाता ही बाये हो गये। भाव यह कि सब लोग यही रहने से सुखी हैं किसी को घर जाने की रुचि नहीं है।

सो सुख करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥

जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानु। जहँ नहि राम पेम परधानू ॥१॥

अर्थ : वह सुख और वह कर्म धर्म जल जाय जिसमें रामजी के चरणों में प्रेम न हो। वह योग कुयोग है। वह ज्ञान अज्ञान है। जिसमें रामजी का प्रेम प्रधान न हो।

व्याख्या . उचित होय सो कीजिय नाथा का उत्तर देते हुए गुरुजी कहते हैं कि यहाँ उचित अनुचित कुछ नहीं। जिसमें धर्म अर्थ और काम में बाधा न हो वही उचित है। परन्तु जिस धर्मार्थ काम में आप के चरणों के प्रेम का अभाव हो वह धर्मार्थ काम जले। उससे कोई प्रयोजन नहीं।

जिस योग में रामप्रेम न हो उससे मोह का नाश नहीं होता और जिस ज्ञान में रामप्रेम की प्रधानता न हो वह तारने में समर्थ नहीं होता। यथा : पुरष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहि सके उपारी। तथा : सेह न रामप्रेम विनु जानू। करनधार विनु जिमि जलजानू।

तुम्ह विनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिअँ जो जेहि केही ॥

राउर आयसु सिर सवही के। विदित कृपालहि गति सब नीके ॥२॥

अर्थ तुम्हारे बिना दुखी और तुमसे ही सब सुखी है। जिसके हृदय में जो है उसे तुम जानते हो। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। हे कृपाल! आपको सबकी गति विदित है।

व्याख्या चाहे विषयी हो। चाहे साधक हो। चाहे सिद्ध हो। सब तुम्हारे बिना दुखी रहते हैं। यथा तन कृस मन दुख बदन मलीने। विकल मनहु माछी लघु छीने और तुम्हारी उपस्थिति से सब सुखी होते हैं। यथा सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी। तुम्ही सबके हृदय के जाननेवाले हो। यथा को जिय के रघुबर बिनु वृज्ञा।

जो आपने कहा 'हित सबही कर रउरे हाथा।' सो बात नहीं है। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। मेरे सिर पर भी है। क्योंकि आप कृपाल हैं और अन्तर्यामी सबकी गति जानते हैं। यथा सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। जीव चाहे कैसा ही बड़ा हो ईश के ऐसा नहीं हो सकता। अतः आपकी ही आज्ञा के पालन से सबका हित है। यथा प्रभु आज्ञा अपेल सुति गाई। तथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह शिथिल मुनिराऊ ॥
करि प्रनामु तब राम सिधाए। रिपि धरि धीर जनक पहुँ आए ॥३॥
राम वचन गुरु नृपहि सुनाए। शील सनेह सुभाव सुहाए ॥

अर्थ अब आप आश्रम में पधारिये। यह कहकर मुनिराज प्रेम से शिथिल हो गये। रामजी प्रणाम करके चले गये। ऋषिजी धैर्य धारण करके जनकजी के पास आये। गुरुजी ने रामजी का शील स्नेह और स्वभाव से सुन्दर वचन राजा को सुनाया।

व्याख्या ऋषिजी ने आपु आश्रमहि धारिअ पाऊँ। कहकर यह जना दिया कि मैं आपका अभिप्राय समझ गया। वही होगा। रामजी के वचन सुनकर ऋषिजी स्वयं स्नेह से शिथिल हो गये थे। अतः रामजी के चल जाने पर धैर्य धारण करके महाराज जनक के यहाँ आये और रामजी का शील स्नेह और उनका स्वाभाविक सुन्दर वचन उन्हें कह सुनाया। शील यथा वदि चरन बोले रुख धाई। तथा अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। स्नेह यथा नाथ भरतु पुरजन महतारी। साक विकल बनवास दुखारी। सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू। सुन्दर स्वभाव यथा उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर तुम्हरे हाथा।

इस भाँति ऋषिजी ने महाराज को रामजी के आन्तरिक भावों से परिचित करा दिया। कोष्ठान्तर्गत दो पद राजापुर की प्रति में नहीं है। पर इन्हे बिना माने काम नहीं चलता।

महाराज अब कीजिअ सोई। सबकर धर्म सहित हित होई ॥४॥

अर्थ : गुरुजी ने कहा कि महाराज ! अब वही कीजिये जिससे सबका सहित हित हो ।

व्याख्या : भाव यह कि यह अर्धाली रामजी के वचन • उचित होइ सोइ कीजे नाथा का अनुवाद है । धर्म सहित सबका हित करना ही उचित है । चक्रवर्तीजी के न रहने पर जनकजी की उपस्थिति में उनकी ही आज्ञा सब पर चलेगी । अतः मुनिजी उन्हीं से कहते हैं ।

दो. ग्यान निधान सुजान सुचि, धरम धीर नरपाल ।

तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ एहि काल ॥२९१॥

अर्थ : हे राजन् ! तुम ज्ञान के घर सुजान पवित्र और धर्मधीर हो । तुम्हारे बिना इस असामञ्जस्य के मिटाने में इस समय कौन समर्थ है ।

व्याख्या • भाव यह धर्म राजनय ब्रह्म विचारू । इहाँ यथा मति मोर प्रचारू । जनकजी ने कहा था सो मुनिजी जिन विशेषणों से राजा को सम्बोधित करते हैं उनका भी यही अभिप्राय है । ज्ञान निधान से ब्रह्म विचार कहा । सुचि सुजान से राजनय कहा । धर्मधीर से धर्मशास्त्र का ज्ञान कहा । ऐसा गुणी राजा इस समय में कौन है । सामञ्जस्य बिठाना निर्णय करना राजा का काम है । यहाँ जो असामञ्जस्य आ पड़ा है कि धर्म पर ध्यान देने से सबका अहित होता है । सबका हित करने से रामजी का धर्म जाता है । इस असामञ्जस्य को आप ही मिटा सकते हैं ।

सुनि मुनि वचन जनक अनुरागे । लखि गति ग्यानु विरागु विरागे ॥

सिथिल सनेह गुनत मन भाँही । आए इहाँ कीन्ह भल नाँही ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनने से जनकजी प्रेम में आगये । उनकी गति देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया । स्नेह से शिथिल होकर मन में विचार करने लगे कि मैंने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया ।

व्याख्या • जनकजी ने जब मुनिजी का वचन सुना कि आप इस प्रेम और धर्म के सामञ्जस्य को बिठलाइये । जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि मुझसे सामञ्जस्य नहीं बैठता तो जनकजी स्वयं प्रेम में आगये । रामानुराग का दर्जा ज्ञान विराग से बड़ा चढ़ा है । जनकजी का अनुराग देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया कि अब हम यहाँ नहीं रहेंगे । अब अनुराग ही यहाँ रहे । क्योंकि काम आ पड़ने पर जनकजी अनुराग का ही सम्मान करते हैं । वे हृदय से अनुरागी हैं । यथा : जाहि रामपद गूढ सनेहू । इनके लिए राजा जनक विचारते हैं । यहाँ धर्म तो यही है कि रामजी वन जायें और स्नेह वन जाने देना नहीं चाहता । मैं सम्बन्धी हूँ । मैं कैसे कहूँ कि रामजी का वन जाना ही ठीक है अतः मेरा यहाँ आना ठीक नहीं हुआ ।

रामहि राय कहेउ वन जाना । कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना ॥
हम अब वन ते वनहि पठाई । प्रमुदित फिरव विवेक बडाई ॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने रामजी को वन जाने को कहा और स्वयं उन्होंने प्यारे के प्रेम को सच्चा कर दिखलाया और हम अब रामजी को वन में ही भेजकर विवेक को बडाई के साथ लौटेंगे ।

व्याख्या : भाव यह कि जनकजी चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं । यथा : सम समधी देखा हम आजू । सो चक्रवर्तीजी ने तो रामजी को वन में भेजकर धर्म निवाहा और अपना शरीर छोड़कर प्रेम का निर्वाह भी कर दिखाया । यही तो एक मात्र रास्ता धर्म और प्रेम के सामञ्जस्य बिठाने का है । यह तो नहीं है कि मैं रामजी को वन से लौटा ले चलने के बदले वन जाने की सम्मति देकर घर लौटूँ और यह समझकर सन्तोष कर लूँ कि मैं बड़ा विवेकी हूँ ।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी । भये प्रेम बस विकल विसेखी ॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा । चले भरत पहि सहित समाजा ॥३॥

अर्थ तपस्वी मुनि और ब्राह्मण लोग सुनकर और देखकर प्रेम के वश हो विशेष व्याकुल हुए । फिर राजा समय का विचार करके और धैर्य धारण करके समाज के सहित भरतजी के पास आये ।

व्याख्या सभी लोगो की बात नहीं कहते । जो लोग विराग का व्रत लिये हुए है वे भी वसिष्ठजी की बात सुनकर और दोनों महाज्ञानियो की दशा देखकर प्रेमवश हो गये । उनकी विकलता सामान्य लोगो से भी अधिक थी । क्योंकि वे विषय की मूढमता को विशेषरूप से समझ रहे थे ।

प्रजा का रक्षण करनेवाला ही राजा कहलाता है । राजा ने सोचा कि मेरी विकलता के व्यक्त होने से प्रजा अधिक विकल होगी और मेरी स्थिति ऐसी है कि जब मैं यहाँ आया हूँ तो मुझे ही सामञ्जस्य बिठलाना है । वसिष्ठजी कहते हैं । अतः राजा ने धैर्य धारण किया । जनकजी राजा है । सामञ्जस्य बिठलाने की विधि जानते हैं । देखा कि सम्पूर्ण प्रजा की दृष्टि इस समय भरतजी पर है और प्रेम भी भरतजी का सबसे अधिक है । धर्म के भी जानकार भरतजी हैं । अतः सामञ्जस्य बिठाने का भार भरत पर ही छोड़ा जाय । अतः कुछ न कहकर समाज सहित भरतजी के पास चल पडे ।

भरत आइ आगे भइ लीन्हे । अवसर सरिस मुआसन दीन्हे ॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ । तुम्हहि विदित रघुबीर सुभाऊ ॥४॥

अर्थ भरतजी ने आगे आकर उनका स्वागत किया और समयानुकूल अच्छा आसन दिया । तिरहुत तीरयुक्त के राजा ने कहा कि हे तात भरत ! तुम्हें रामजी का स्वभाव मालूम है ।

व्याख्या श्वसुर भी पिता के तुल्य है। अतः जनकजी का आगमन जानकर भरतजी आगे आकर उनका स्वागत करके अपने डेरे पर लिवा ल गये। यहाँ वन में सिंहासन का योग नहीं था। अतः सुन्दर आसन जो इस समय दिया जा सकता था सो दिया।

बैठने के बाद महाराज जनक ने भरतजी को सम्बोधन करते हुए कहा कि तुम तो जानते हो कि रामजी का कैसा सङ्कोची स्वभाव है। यथा कहूँ न राम सम स्वामि सङ्कोची।

दो राम सत्यव्रत धर्म रत, सब पर सीलु सनेहु।

सकट सहत सङ्कोच बस, कहिय जो आयसु देहु ॥२९२॥

अर्थ रामजी सत्यव्रत हैं। धर्म में रत हैं। सब पर उनका स्नेह और शील है। सङ्कोच के वश पड़े हुए सङ्कट सह रहे हैं। इसलिए जो तुम आज्ञा दो उनसे कहा जाय।

व्याख्या रामजी के सङ्कोच को और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि रामजी का व्रत ही सत्य है और सदा धर्म में ही लगे रहते हैं। अर्थात् सत्य और धर्म वे छोड़ नहीं सकते और सत्य धर्म तो यही है कि वे वन जायें। साथ ही साथ उन्हें सबका शील है और सब पर उनका स्नेह है। अतः यह स्पष्ट आज्ञा भी नहीं दे रहे हैं कि तुम लोग यहाँ से चले जाओ। मैं नहीं लौट सकता। वे शील स्नेह भी नहीं छोड़ सकते। अतः वे सङ्कोच वश सङ्कट सह रहे हैं। उन्हें सङ्कट से छुड़ाना तुम्हारा काम है। अब एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। यह द्विविधा की दशा असह्य है। अतः तुम जो आज्ञा दो वही उनसे करने का कहा जाय। भाव यह कि तुम्हारे ऐसा उनका स्नेही कोई नहीं है। तुम्हीं उन्हें लौटाने आये हो। हम लोग तो तुम्हारे पक्ष को पुष्ट करने आये हैं। अतः रामजी के सत्यव्रत और धर्म को विचार करके तथा स्नेह को भी ध्यान में रखकर जो तुम निर्णय करके कहो वही हम लोग चलकर रामजी से करने के लिए कहे।

सुनि तन पुलकि नयन भरि वारी। बोले भरतु धीर धरि भारी ॥

प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥१॥

अर्थ सुनकर भरतजी को पुलक हो गया और आँखों में आँसू भर आया। भरत जी भारी धैर्य धारण करके बोल। आप प्रभु पूज्य पिता के समान हैं। कुलगुरु के समान हितकारी न बाप हैं और न माँ हैं।

व्याख्या जनकजी का उपर्युक्त वचन सुनकर भरतजी को सात्त्विक भाव हुआ, उनके रोंगटे खड़े हो गये। नेत्रों में जल आगया। उन्हें बोलने में भारी धैर्य धारण करना पड़ा। यहाँ प्रेमियों का समाज इकट्ठा हुआ है। सबका धैर्य छूटा जा रहा है। जनकजी चलते हैं तो धैर्य धारण करके चलते हैं। भरतजी बोलते हैं तो भारी धैर्य धारण करके बोलते हैं।

पिता धर्मंत पुत्रो का प्रभु भी हैं और पूज्य भी है। श्वशुर पिता के तुल्य है। इसलिए भरतजी कहते हैं कि आप प्रभु पूज्य पिता के तुल्य हैं। धर्म यही है कि आप आज्ञा दें और मैं पालन करूँ और कुलगुरु आप से भी अधिक है। क्योंकि वे पिता और माता से भी विशेष हितकारी हैं। उन्हें मुझे आज्ञा देनी चाहिए। मुझसे सम्मति न पूछनी चाहिए।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥२॥

अर्थ : विश्वामित्रादि मुनिसमाज है। सचिवसमाज है। हे स्वामी। मुझे बच्चा सेवक और आज्ञा पालक जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

व्याख्या विश्वामित्रादि मुनिगण सभी प्रभु और पूज्य हैं। पिताजी का मन्त्री समाज है। सभी को मुझे आज्ञा देने और उपदेश देने का अधिकार है। स्वयं आप आज दिन ज्ञान के समुद्र हैं। सभी ऋषि मुनि आपका थाप मानते हैं। मैं आप के लिए शिशु, गुरुजी के लिए सेवक और शेष महानुभावों के लिए विधेय हूँ। आप लोगों के सामने मुझे आज्ञा देने का अधिकार नहीं है। मैं तो आज्ञाकारी हूँ। ऐसा जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मै बोलब बाउर ॥
छोटे वदन कहौ बडि बाता। छमव तात लखि वाम विधाता ॥३॥

अर्थ ऐसे समाज में ऐसी जगह में आपका पूछना। मुझसे मैं मौन हूँ और मलिन हूँ। मैं उलटा सुलटा बोलूँगा। मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात। विधाता को बायें समझकर आप क्षमा कीजियेगा।

व्याख्या : बड़े का प्रश्रय : अदब यहाँ तक माना जाता है कि जब से भरतजी आये हैं लक्ष्मणजी मौन है कि जो कुछ बातचीत करना होगा भरतजी करेंगे। उनके सामने मेरा बोलना अनुचित है और जब से जनकजी आये हैं भरतजी मौन है कि मुझ से बड़ा बोलने के लिए आगया है। बोलते भी हैं तो कहते हैं कि मेरा कहना छोटे मुँह बड़ी बात के सदृश है। उसे क्षमा कीजिये। जिसके विधाता विमुख हो जाते हैं वह ऐसा ही बोलता है।

इसीलिए भरतजी कहते हैं कि मैं तो सब भार आप पर छोड़कर मौन हूँ। जो आप कर दें सो स्वीकार है और दूसरी बात यह कि मैं दुखी हूँ। इसलिए अन्तःकरण मलिन हो रहा है। न जाने कैसी बात मुख से निकल जाय। भाव यह कि आप लोग बड़े हैं। आपकी आज्ञा रामजी पर चल सकती है। सो आप लोग कुछ कहते नहीं। मुझ सेवक से कहने के लिए कहते हैं। ऐसी बातें मेरे मन में हैं जिसके कहने में घृष्टता है। अतः कहते हैं मैं बोलब बाउर। रामजी के पास भरत या लक्ष्मण में से कोई न कोई रहता ही है। इसी से शत्रुघ्नजी को बोलने का अवसर ही रामायण भर में न मिला।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवा धरमु कठिन जग जाना ॥
स्वामि धरमु स्वार्थहि विरोधू । वैर अध प्रेमहि न प्रबोधू ॥४॥

अर्थ वेद शास्त्र और पुरान म प्रसिद्ध है और ससार जानता है कि सेवाधर्म कठिन है । स्वामी के धर्म और स्वार्थ मे विरोध है, वैर अन्धा है, और प्रेम का प्रबोध नहीं होता ।

व्याख्या यहाँ स्वामी के धर्म से और सेवक के स्वार्थ से विरोध पड गया है । स्वामी का धर्म यथा मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा । तजे तिहूँ पुर अपजस छावा । सेवक का स्वार्थ । यथा जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी । आवहि बहुरि राम रजधानी । दोनो मे विरोध पड गया । दोनो एक साथ नहीं हो सकता । स्वामी का धर्म सेवक के स्वार्थ को नहीं देख सकता और न सेवक का स्वार्थ स्वामी के धर्म को देख सकता है । क्योंकि वैर अन्धा है । इस पर यदि यह कहा जाय कि फिर सेवक अपना स्वार्थ छोडे तो इस पर यह कहते हैं कि प्रेम को प्रबोध नहीं । वह मानता नहीं ।

दो राखि राम रुख धरमु व्रतु, पराधीन मोहि जानि ।

सब कैं समत सर्व हित, करिय पेमु पहिचानि ॥२९३॥

अर्थ रामजी का रुख धर्म व्रत की रक्षा करते हुए, मेरी पराधीनता पर ध्यान देते हुए, सब की राय से जो सबका हित हो उसे प्रेम पहिचान कर करना चाहिए ।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि मेरा सेवाधर्म न बिगडने पावे । इसलिए रामजी का रुख रखिये और स्वामी का धर्म व्रत न भङ्ग हो इसलिए उसकी भी रक्षा कीजिये । मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं । अतः मुझे पराधीन जान लीजिये । मेरा विचार छोडिय । जिसमे सबकी राय हो सबका हित होता हो उसे प्रेम के पहिचान के साथ कीजिये । जिसम दरबार का कायदा न बिगडने पाये । यथा प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की । कहिय जो आयसु देउ का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि मैंने पहिल ही कहा था मौन मलिन मैं बोलव बाउर । आप एक सामञ्जस्य बिठाने के लिए मेरे यहाँ आये और मैंने बहुत से सामञ्जस्य बिठाने के लिए निवेदन किया ।

भरत वचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ॥

सुगम अगम मृदु मजु कठोरे । अरथु अमित अति आखर थोरे ॥१॥

अर्थ भरत के वचन सुनकर और स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक प्रशंसा करने लगे कि भरतजी की वाणी सुगम भी है अगम भी है । मृदु मज्जु भी है । कठोर भी है । असीम अर्थ है और अक्षर थोडे है ।

व्याख्या सब लोग भरतजी की वाणी और स्वभाव पर मुग्ध है कि क्या

वाणी है और कैसा सुन्दर स्वभाव है कि सब कुछ कह दिया पर कठोरता व्यक्त न हुई। वाणी की प्रशंसा करते हैं कि सुनने में तो सुगम है पर समझने में अगम है। विनय प्रेम युक्त होने से मृदु है। निर्दोष होने से मञ्जु है। फिर भी कठोर उत्तर है कि आप कुलगुरु हैं। अवस फिरव गुरु आयसु मानी। और आप पिता के समान हैं। सब कुछ कह सकते हैं। पर कुछ कहना नहीं चाहते। मुझ पराधीन सेवक से कहलाना चाहते हैं। ऐसी ध्वनि निक्कलती है। इससे कठोर भी है। स्वामिधर्म स्वारथहि विरोधू। वर अध प्रेमहि न प्रबोधू। इतने से अक्षरो में असीम अर्थ भरा पड़ा है।

जिमि मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥

भूप भरतु मुनि साधु समाजू। गे जहं विबुध कुमुद द्विजराजू ॥२॥

अर्थ जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब हो और दर्पण अपने हाथ में हो। पर मुख का प्रतिबिम्ब पकड़ा नहीं जाता। ऐसी अद्भुतवाणी है। तब राजा जनक भरत और मुनि साधु का समाज देवकुल कुमुद चन्द्र रामचन्द्र के पास गये।

व्याख्या भरतजी की वाणी दर्पण की भाँति निर्मल है और उसमें प्रतिबिम्बित मुख अत्यन्त स्पष्ट हैं। दर्पण इतना छोटा कि हाथ में आगया। फिर भी इतना बड़ा मुख ज्यो का त्यो उसमें आगया। पर यह सामर्थ्य किसी को नहीं कि उस प्रतिबिम्बित मुख को कोई पकड़ सके। हाथ के भीतर दर्पण और उसके भीतर मुख फिर भी हाथ उसे नहीं पकड़ सकता। यही अद्भुतता है। ऐसी ही भरतजी की वाणी है। बात स्पष्ट और थोड़े शब्दों में कही। पर पकड़ में नहीं आती है। भाव यह कि भरत के वचन का उत्तर किसी के पास नहीं।

वसिष्ठजी जनक के पास गये। वे भरतजी के पास गये। कुछ निर्णय न हुआ। अब सब लोग मिलकर रामजी के पास जा रहे हैं।

सुनि सुधि सोच विकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा ॥

देव प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेखी ॥३॥

अर्थ यह समाचार सुनकर लोग सोच से ऐसे व्याकुल हुए जैसे नये जल के याग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओं ने पहले कुलगुरु की गति देखी। फिर राजा जनक के विशेष प्रेम को देखा।

व्याख्या जलती हुई पृथ्वी पर जब पहिला जल गिरता है तो वह भी तप्त हो जाता है और जब वह जल जलाशय में पहुँचता है तो मछलियाँ व्याकुल हो उठती हैं। इसी प्रकार यह समाचार पाकर लोग विकल हो गये। समाचार नवीन जल स्थानीय है।

देवताओं को अपना स्वार्थ इतना सताये हुए है कि ये प्रत्येक हलचलो पर निगाह रखते हैं। उन्होंने पहिल कुलगुरु की गति देख ली कि स्नेह से शिथिल हो रहे हैं। इनकी आज्ञा मिलने पर रामजी पिता के वचन को भी नहीं मानेंगे। इधर

जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये । इनका बहुत बड़ा सङ्कोच रघुनाथजी को है ।

राम भगतिमय भरतु निहारे । सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥

सब कोउ राम प्रेममय पेखा । भए अलेख^१ सोच बस लेखा ॥४॥

अर्थ • भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं । तो स्वार्थी देवताओं ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड़ दी । सब किसी को देखा कि राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका लेखा नहीं हो सकता ।

व्याख्या गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी । अब भरतजी को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं । इन तीनों व्यक्तियों पर देवताओं का बल चल नहीं सकती । अतः देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड़ दी । रामजी के स्वभाव की देवता जानते हैं कि वे भक्तों के पराधीन से हो जाते हैं । अतः उनके लौट जाने के भय से भीत हो गये ।

इतना ही नहीं वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे हैं । अतः उनके सोच का अन्त नहीं है । समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियों के एक मत होने में कितनी देर लगेगी ।

दो रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु ।

रचहु प्रपञ्चहि पच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु ॥२९४॥

अर्थ शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं । अतः सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो । नहीं तो बात विगडा चाहती है ।

व्याख्या शोक के वश सब देवताओं की ऐसी गति देखकर स्वयं देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते हैं । अतः अब चुप रहने का समय नहीं है । सब पञ्च मिलकर माया करो । एक दो की माया से काम न चलेगा । यदि श्रुति हुई तो काम की विगडने में देर नहीं है । यही समय पुरपार्थ करने का है ।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही । देवि देव सरनागत पाही ॥

फेरि भरत मति करि निज माया । पालु विबुध कुल वरि छल छाया ॥१॥

अर्थ देवताओं ने सरस्वती का स्मरण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि ! हम लोग शरण में आये हैं रक्षा करो । अपनी माया करके भरत की बुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो ।

व्याख्या • सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगो ने रामाभिप्रेत में विघ्न बिधाया । रामजी को वनवास हुआ । भरतजी के प्रेम के कारण वह

१ यहाँ विरोधामास अलङ्कार है ।

सब प्रयत्न आज निष्फल हुआ चाहता है । अतः इन्द्र की आज्ञा मानकर देवताओं ने प्रपञ्च रचने के लिए फिर सरस्वती का आवाहन किया । उन्हें प्रसन्न करने के लिए स्तुति की । उन्हें सङ्कोच में डालने के लिए शरणागत हुए ।

अन्त में अपना प्रयोजन निवेदन करते हैं कि भरत को बुद्धिरूपी आतप से हम लोग पीड़ित हैं । अतः माया करके भरत की बुद्धि तू फेर दे । माया के आवरण की छाया में हम लोग घोर आतप से बच जायें । जैसे पहले कर चुकी हो । यथा : अजम पेढारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ।

विवुध विनय सुनि देवि सयानी । बोली सुर स्वारथ जड जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू । लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥२॥

अर्थ देवताओं की स्तुति और विनय सरस्वतीजी ने आकर सुनी । परन्तु सरस्वती बड़ी सयानी है । देवता स्वार्थ के कारण जड हो गये हैं । यह जानकर बोली कि मुझे भरत की बुद्धि फेरने को कहते हैं । इन्हे नेत्र तो हजार हैं । पर सुमेरु पर्वत नहीं दीखता ।

व्याख्या इनकी बुद्धि काम नहीं करती । जहाँ विवुध कुमुद द्विजराज स्वयं बैठे हैं । वहाँ विवुध देवताओं को भय कहाँ ? परन्तु देवता स्वार्थान्ध हो गये हैं । इनकी विवेक दृष्टि मारी पड़ी है । स्थूल दृष्टि हजार होने से भी कोई आँखवाला नहीं हो जाता । देखो हजार आँख होने पर भी इन्द्र को यह नहीं सूझ रहा है कि किसकी बुद्धि फेरी जा सकती है और किसकी नहीं फेरी जा सकती । रामजी के परम प्रेमी की बुद्धि कौन फेर सकता है । उनके स्नेह तक त्रिदेव का मन नहीं जाता वहाँ मेरी क्या गति है । पहिले जो मैंने बुद्धि फेरा था तो मन्दमति मन्थरा की बुद्धि को फेरा था । मन्थरा सेर है और भरत सुमेरु है । कहाँ मन्थरा और कहाँ भरत ।

विधि हरि हर माया बडि भारी । सोउ न भरत मति सकै निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी । चदिनि कर कि चडकर चोरी ॥३॥

अर्थ विधि हरिहर की माया बड़ी भारी है । वह भी भरत की मति की ओर देख नहीं सक्ती । उस मति को भोरी करने के लिए मुझे कहते हो । चाँदनी सूर्य को कैसे चुरा सकती है ।

व्याख्या • जिसे भरत के स्वरूप का ज्ञान है वह समझ सकता है कि विधि हरिहर ईश्वर हैं । उनकी माया के बल से ससार की उत्पत्ति पालन और लय हुआ भरता है । पर उनकी स्थिति भरत के सामने ऐसी है जैसे क्षीरसागर के सामने काँजी के दो चार बिन्दु । भरत की बुद्धि सूर्य के समान है । मायारूपी अन्धकार उसके सामने टिक नहीं सकता । मैं तो विधि की आश्रिता हूँ । चाँद की चाँदनी हूँ । मेरे तेज के सामने खद्योत भले ही छिप जायें । सूर्य कैसे छिप सकते हैं । भाव यह

कि जिस भाँति सूर्य की ज्योति से ही चन्द्र प्रकाशित है उसी भाँति भरत के तेज से ही विधि हरिहर का तेज है । तुम लोगो को भरत के स्वल्प का बोध नहीं है ।

भरत हृदय सिय राम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥

अस कहि सारद गइ विधि लोका । विबुध विकल निसि मानहु कोका ॥४॥

अर्थ : भरत के हृदय में राम जानकी का निवास है । वहाँ अन्धकार वहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश है । ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक चली गयी । देवता लोग ऐसे विकल हो गये जैसे रात को चकवा ।

व्याख्या : भरतजी की इतनी बड़ी महिमा का कारण यह है कि उनके हृदय में राम जानकी का निवास है । रामजी सूर्य हैं । सीताजी उनकी प्रभा हैं । इसीलिए भरतजी की बुद्धि सूर्यरूप हो रही है । भरतजी की महिमा विधि हरिहर से अधिक वही गयी है । वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति कहाँ ?

ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक चली गयी । देवताओं को और कुछ कहने मुनने का अवसर नहीं दिया । देवताओं के लिए सूर्यास्त हो गया । वे कोक की भाँति विकल हो गये ।

दो. सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमत्र कुठादु ।

रचि प्रपचु माया प्रवल, भय भ्रम अरति उचादु ॥२९५॥

अर्थ : देवता स्वार्थी हैं । उनका मन मलीन है । उन्होंने सलाह करके बुसाज साजा । प्रपञ्च, प्रवल माया, भय, भ्रम, अप्रीति और उचाट की रचना की ।

व्याख्या : देवताओं को स्वार्थी कहने पर भी मलिन मन कहा । क्योंकि सरस्वती के समझाने पर भी उन्हें बोध न हुआ । यथा तदपि मलिन मन बोध न आवा । भरतजी ने कहा था . सबके सम्मत सर्वहित करिअ प्रेम पहिचानि । तो सबको यदि उचाट हो जाय . भ्रमादि हो जाय तो काम बन सकता है । भरत पर माया नहीं चल सकती । लोगो पर तो चल सकती है । देवताओं की समष्टि की माया है । इसलिए प्रवल माया कहते हैं । लोगो को वन में भय लगाने लगा । मन में अस्थिरता आगयी । घर की ओर भी मन दौड़ने लगा । सरकार की प्रीति भी कम हो गयी । चित्त में उचाट हो गया ।

करि कुचालि सोचत सुरराजू । भरत हाथ सबु काजु अकाजु ॥

गये जनकु रघुनाथ समीपा । सनमाने सब रविकुल दीपा ॥१॥

अर्थ : कुचाल करके इन्द्र सोचने लगे कि काम का बिगाड या सुधार तो भरत के हाथ में है । जनकजी तब रामजी के पास गये । रविकुलदीप ने सबका सम्मान किया ।

व्याख्या : यद्यपि सब देवताओं ने मिलकर प्रपञ्च - माया रची । फिर भी सबके सरदार होने से इन्द्र का नाम लिया जा रहा है । उन्हीं की आज्ञा से माया

रची गयी । अब वे सोचने लगे कि जिनके ऊपर माया काम करेगी उनके हाथ में तो कुछ है नहीं । काम का बिगाड़ना या सुधारना तो भरतजी के हाथ में है और उन पर यह माया भी काम नहीं कर सकती । कवि ने - भूप भरत सब साधु समाजू । मे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू से प्रसङ्ग छोड़ा था । वोच मे देवताओ का हाल कहने लगे । अब फिर वही से प्रसङ्ग उठाते हैं कि जनकजी रामजी के पास पहुँचे । प्रधान होने से उन्हीं का नाम लिया । रामजी ने सबका सम्मान किया ।

जब रामजी को सुमन्त चक्रवर्तीजी के यहाँ लिवा चले तब दीप कहा था । यथा : रघुकुल दीपहि चले लवाई । यहाँ जनकजी के सामने भी दीप ही बह रहे हैं । भानुकुल भानु नहीं कहते अथवा राम और भरत दोनों दीप हैं । यथा : जानेउ सदा भरत कुलदीपा । बार बार मोहि बहेउ महीपा ।

समय समाज धर्म अविरोधा । बोले तब रघुवस पुरोधा ॥
जनक भरत संवादु सुनाई । भरत कहाउति कही सुहाई ॥२॥

अर्थ रघुवश के पुरोहित तब समय समाज और धर्म के अनुकूल बोले । उन्होंने जनक और भरत की बातचीत बह सुनायी और भरतजी की सोहावनी उक्ति भी कही ।

व्याख्या : सरकार ने वसिष्ठजी से कहा था : उचित होय सो कोजिय नाथा । अत तुरन्त वसिष्ठजी काम में लग गये । जनकजी के पास गये । उन्हें लिये दिये भरतजी के पास गये । समय समाज और धर्म के अविरोध बोलना ही उचित है । वसिष्ठजी रघुवश के पुरोहित हैं । पूज्य हैं । सब प्रकार से हितचिन्तक हैं । इनका कहना कोई टाल नहीं सकता ।

समय ऐसा उपस्थित है कि कोई कुछ निर्णय नहीं कर पाता । जनकजी ने भरत के ऊपर सब छोड़ा कि जो भरत बहे सो किया जाय और भरतजी कहते हैं राखि राम रुख धर्म व्रत पराधीन मोहि जानि । सबके सम्मत सर्वहित करिय प्रेम पहिचानि । अवध समाज के मुखिया भरत मैथिल समाज के मुखिया राजा जनक । सो इन्ही दोनों की सम्मति सारे समाज की सम्मति समझनी चाहिए । ऐसे अवसर पर वसिष्ठ कहते हैं कि मेरी सम्मति यह है ।

तात राम जस आयसु देह । सो सब करइ मोर मत एह ॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी । बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥३॥

अर्थ - हे तात राम । तुम जैसी आज्ञा दो वही सब करें । मेरा तो यही मत है । सुनकर रामजी दोनों हाथ जोड़कर मृदु वाणी बोले ।

व्याख्या : नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ सबके तुम यथार्थ जानकार हो । अत सबके सम्मत सर्वहित का निर्णय तुम्हीं कर सकते हो । अत तुम जो आज्ञा दो वही सब लोग करें । इससे भरत के सेवाधर्म का भी निर्वाह हो जायगा । क्योंकि

इसके बाद जो कुछ भरत करेंगे वह सब करना तुम्हारी आज्ञा का पालन होने से सेवकाई के अन्तर्गत होगा ।

यह सुनकर रामजी ने आज्ञा नहीं दी । बड़ों के सामने जैसा बोलना चाहिए वैसा बोले । दोनों हाथ जोड़कर सत्य सरल और मृदु वाणी बोले ।

विद्यमान आपुनि मिथिलेसू । मोर कह्य सब भाँति भदेसू ॥

राउर राय रजायसु होई । राउरि सपथ सरी सिर सोई ॥४॥

अर्थ : स्वयं मिथिलेश के विद्यमान होते हुए मेरा कहना सब तरह से गँवार-पन है । आपकी और महाराज की जो आज्ञा हो मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि वही मेरे लिए ठीक है और शिरोधार्य है ।

व्याख्या : पिता के समान महाराज मिथिलेश हैं । उनके सामने आज्ञा देना अनुचित है । किसी प्रकार उचित नहीं है । आप गुरु हैं । आपकी आज्ञा सर्वोपरि है । अतः आप दोनों बड़े उपस्थित हैं । आप लोग सम्मति कर लीजिये । वही मुझे शिरोधार्य होगा । इसके लिए मैं आपकी शपथ लेता हूँ । भाव यह कि यदि आप लोगों की यही आज्ञा हुई कि तुम लौट चलो तो मैं पिता का वचन छोड़ दूँगा । यही रामजी की सत्य सरल और मृदु वाणी है ।

दो. राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत ।

सकल विलोकत भरत मुगु, वनइ न ऊत्तर देत ॥२९६॥

अर्थ : रामजी की शपथ सुनकर मुनिजी और जनकजी सभा समेत सङ्कुचित हो गये । सब लोग भरतजी का मुख देखने लगे । किसी से उत्तर देते नहीं बनता ।

व्याख्या : धर्म के मर्म के जाननेवाले महापुरुष पिता के वचन के उल्लंघन करने की सम्मति दे नहीं सकते । तो जब लौटने को कह ही नहीं सकते तो और कहेंगे ही क्या ? अतः किसी को उत्तर नहीं सूझता । रामजीने सरल बात कही कि मुझे तो बड़े को बात माननी है । उनका वचन मानकर वन आया । अब स्वयं गुरुजी तथा पिता सदृश मिथिलेश कहे कि तुम लौट चलो तो मैं चलों । अब गुरुजी तथा जनकजी धर्मविरोध कैसे करें । इसलिए जवाब नहीं सूझता । भरतजी का मुख देखते हैं कि तुमसे जो कुछ कहते चने इस समय कहो । क्योंकि तुम्हीं इस कार्य में अग्रसर हो ।

सभा सकुच वस भरत निहारी । रामबंधु धरि धीरजु भारी ॥

कुसमउ देखि सनेहु सँभारा । बढ़त विधि जिमि घटज निवारा ॥१॥

अर्थ : भरतजी ने देखा कि सभा सङ्कुच के वश में पड़ गयी । तब रामजी के भाई ने भारी धैर्यधारण किया । कुसमय देखकर इस भाँति स्नेह को सँभाला जिस भाँति बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोक दिया था ।

व्याख्या : भरतजी ने देखा कि रामजी के शपथ पूर्वक कहने से अब किसी

को उत्तर नहीं सूझ रहा है। सबके सब सङ्कोच में पड़ गये। भरतजी प्रेम से भरे हुए हैं। जनकजी के आ जाने पर स्वयं कुछ कहना नहीं चाहते। अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर एक बार बोले थे। अब फिर बिना बोले काम नहीं चलता। अतः भारी धैर्य धारण करके बोले। रामजी भाई हैं। उनको उत्तर देने में ये ही समर्थ हैं।

कथा है कि किसी समय विन्ध्याचल बढ़ने लगा। उसका इरादा इतना बढ़ने का था जिसमें सूर्यनारायण उसकी परिक्रमा करने लगें। जिस भाँति सुमेरु की परिक्रमा करते हैं। इस अस्वाभाविक बढ़ाव को देखकर देवताओं को भय हुआ। वे लोग काशी आकर अगस्त्यजी को लिवा ले गये जो विन्ध्य के गुरु थे। उन्हें देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। मुनिजी ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण से नहीं लौटता तब तक यो ही पड़े रहो। उस समय से विन्ध्याचल का बढ़ना रुक गया। अगस्त्यजी दक्षिण से लौटे ही नहीं।

यहाँ इतने से ही तात्पर्य है कि भरतजी का प्रेम विन्ध्याचल की भाँति बढ़ता चला जाता था। उसे रोकने से सद्गुणरूपी सुरगण असमर्थ थे। फिर भी भरतजी ने उसे ऐसा रोका जैसे अगस्त्यजी ने विन्ध्याचल को बढ़ने से रोक दिया। अर्थात् प्रेम को प्रसुप्तावस्था में ला दिया।

यहाँ भरतजी की समता अगस्त्य मुनि से और प्रेम की विन्ध्याचल से है।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी विमल गुन गन जगजोनी ॥
भरत विवेक वराह विसाला। अनायास उधरी तेहि काला ॥२॥

अर्थ शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणरूपी जग को उत्पन्न करनेवाली बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया था। भरत के विचाररूपी विशाल वराह ने उसका तत्काल उद्धार किया।

व्याख्या - कथा है कि किसी समय हिरण्याक्ष नामी दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल में ले गया था। उसे वाराह रूप में प्रकट होकर भगवान् ऊपर ले आये। यहाँ शोक को हिरण्याक्ष कहा। उसने सबकी बुद्धि हरण कर ली। समष्टि की बुद्धि होने से उसे पृथ्वी से उपमित किया। जिस भाँति पृथ्वी स्थावर जङ्गम का उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति बुद्धि भी सब गुणगणों का उत्पत्ति स्थान है। भरत के विवेक ने उसका उद्धार किया। इसीलिए उसे वाराह कहा। भरत के विवेक से सबको बात सूझने लगी। यह बात किसी को न सूझी कि सरकार से कहे कि आप पिता का वचन मानिये। भरत नहीं मान रहे हैं। उन्हें मानने के लिए आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से भरत सब करें। उनका सेवाधर्म न बिगड़े।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे ॥
छमव आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ वदन मृदु वचन कठोरा ॥३॥

अर्थ : भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीरामजी का

जनकजी का गुरुजी का और साधुओं का निहोरा किया और बोले कि आज मेरे अत्यन्त अनुचित : आचरण को क्षमा कीजियेगा । मैं कोमल मुख से कठोर बातें कहता हूँ ।

व्याख्या : पहिले प्रणाम किया । तत्पश्चात् रामजी जानकीजी गुरुजी और साधुओं से क्षमा करने के लिए निहोरा किया कि आज मैं अत्यन्त अनुचित कर रहा हूँ । बात सरकार से और गुरुजनों से हो रही है । इस बीच में मेरा हस्तक्षेप अनुचित है और तिस पर मैं कठोर कहूँगा जो कहना कि मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता । अतः मेरे इस भारी अनुचित कर्म को आप लोग क्षमा करें । इसके लिए मैं निहोरा करता हूँ ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई । मानस ते मुख पंकज आई ॥

विमल विवेक धरम नय साली । भरत भारती मजु मराली ॥४॥

अर्थ : हृदय से स्मरण करते ही सुन्दर सरस्वती मानस से मुखकमल में आगयी । भरतजी की सरस्वती निर्मल विवेक धर्म और नीतिवाली सुन्दर हसिनी रूप थीं ।

व्याख्या : यह भरतजी की सरस्वती हैं । अतः बड़ी सुन्दर हैं । भरतजी ने उनका स्मरण किया । ये उनके मानस में रहती हैं । इसलिए उन्हें मराली कहा । स्मरण करते ही भरतजी के मुख में आगयी । वाणी की सुन्दरता तभी है जब उसमें विवेक धर्म और नीति तीनों का योग हो । वाणीरूपी हसिनी गुणरूपी पय और दोषरूपी जल को अलग करती हैं । पर यह हसिनी धर्म और नीति से भी युक्त हैं । अतः अधिक सुन्दर हैं ।

दो. निरखि विवेक विलोचननि, सिथिल स्नेह समाजु ।

करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु ॥२९७॥

अर्थ : विवेकरूपी नेत्र से सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर उन्हें प्रणाम किया और राम जानकी को स्मरण कर भरतजी बोले ।

व्याख्या . रामजी के स्नेह में मग्न समाज को देखकर भरतजी ने उस समाज को प्रणाम किया । यदि समाज का समाज प्रेममग्न हो तो वह सब प्रकार से प्रणम्य हो जाता है । बोलने के पहिले रामजानकी के स्मरण का भाव यह कि अपनी बात का सही उत्तर आप ही मेरे द्वारा दीजिये ।

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी । पूज्य परम हित अतरजामी ॥

सरल सुसाहिवु सील निधानू । प्रणतपालु सर्वग्य सुजानू ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप पिता माता सुहृद परमहित अन्तर्यामी हैं । आप सरल सुस्वामी शीलनिधान प्रणतपाल सर्वज्ञ और सुजान हैं ।

व्याख्या : यहाँ भरतजी ने अठारह विशेषण दिये हैं । जिनमें सात तो

सम्बन्धबोधक है और शेष सरकार के गुणों के व्यापक हैं। ये ही विरदावली हैं जिनका वर्णन भरतजी करेंगे। अगस्त्य सहिता में सम्बन्ध को परतम स्वराट् भाव कहा है। इसके द्वारा बिना ध्यान और बिना योग के बिना तप के और बिना ज्ञान के श्री रघुनन्दन में परा अव्यभिचारिणी प्रीति नित्य बढ़ती ही रहती है। यथा एभ्य परतमो भावो सम्बन्धाख्य स्वयं स्वराट्। बिना ध्यानेन तपसा योग ज्ञान विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीति पराह्यव्यभिचारिणी। वधतेऽनुदिन विप्र सत्य सत्य न चान्यथा। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै। सो भरतजी ने सात सम्बन्ध माने। पिता माता सुहृद गुरु स्वामी पूज्य और परम हित के सम्बन्ध। यहाँ पर भरतजी ने भाई के सम्बन्ध को नहीं गिनाया। क्योंकि उसके लिए कह आये हैं दसरथ सुअन राम लघु भाई। दीन्हू मोहि विधि बादि बडाई। अङ्गद ने तीन सम्बन्ध माना था गुरु का पिता का और माता का। यथा मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता। यहाँ तो सात सात सम्बन्ध हैं। भाव यह कि मैं आपको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ।

प्रभु यथा राजाराम स्ववस भगवान्।
 पितु यथा ज्येष्ठ भ्राता पितु सम।
 मातु यथा रामहि वधु सोच दिन राती।
 अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥
 सुहृद यथा सिसुपल ते परिहरेउ न सगू।
 कबहु न कीन्ह मोर मन भंगू ॥
 गुरु यथा वेद पुरान सुनहि मनलाई।
 आप कहहि अनुजहि समुझाई ॥
 स्वामी यथा जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।
 पूज्य यथा पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
 सब मानिये राम के नाते ॥
 परमहित यथा भरत सरिस प्रिय को जगमाँही।
 कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।

अब सरकार के सद्गुण कहते हैं कि श्रीमद से लोग टेढ़े हो जाते हैं। यथा श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि। पर सरकार महान् श्रीमान् होने पर भी सरल है। सरकार सुस्वामी हैं। अपनी ओर देखकर कुसेवक का भी भरण करते हैं। यथा राम सुस्वामि कुसेवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। तिस पर भी शील निधान हैं। सेवक की ढिठाई पर ध्यान नहीं देते। यथा प्रभु तरु तर कपि डारपर ते किये आपु समान। तुलसी कहूँ न राम स साहिब शील निधान। प्रणत के पालन करनेवाले हैं। यथा सकृत् प्रणाम किये अपनाये। सर्वज्ञ है। यथा तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम ही अन्तरजामी। सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं। यथा राम सुजान जान जन जो की। समर्थ हैं। दोष अपनी क्रिया उन पर नहीं कर सकते। यथा समरथ वह नहि दोष गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाई।

समर्थु सरनागत हितकारी । गुणग्राहकु अवगुन अधहारी ॥
स्वामि गोसाईंहि सरिस गोसाईं । मोहि समान मै साइ दोहाई ॥२॥

अर्थ : समर्थ हैं । शरणागत के हित करनेवाले हैं । गुणग्राहक हैं । अवगुण और पाप के नाश करनेवाले हैं । हे स्वामी । मालिक तो मालिक से ही है और मैं भी अपने ही जैसा हूँ । स्वामी की शपथ लेकर कहता हूँ ।

व्याख्या : समर्थ के विषय में ऊपर कह आये हैं । अथवा समर्थ शब्द का अन्वय शरणागत हितकारी के साथ है । भाव यह कि सरकार शरणागत के हित करने में समर्थ हैं । यथा : जों सभीत आवा सरनाई । रखिहीं ताहि प्रान की नाई । सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा । विस्व द्रोह कृत अध जेहि लागा । सरकार गुणग्राहक हैं । यथा : देखि दोष कवहुँ न उर आने । सुनि गुन साधु समाज बखाने । सरकार अवगुन अधहारी हैं । यथा : करों सद्य तेहि साधु समाना ।

अनन्वयालङ्कार से अपने इस कथन का तात्पर्य कहते हैं कि न तो आप सा भला स्वामी कही है और न भुल सा बुरा सेवक ही कोई है । यथा : राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो । राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो । अब अपनी खोटाई कहते हैं :

प्रभु पितु वचन मोह वस पेली । आयेउं इहाँ समाजु सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअं अमरपद माहुरु मीचू ॥३॥

अर्थ : प्रभु और पिता के वचन को मोह के वश हटाकर यहाँ समाज इकट्ठा करके आया हूँ । ससार में बुरा भला ऊँचा और नीचा अमृत अमरपद विष और मृत्यु है ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि भलाई में मेरे मालिक का जोड़ नहीं और खोटाई में मेरा कोई जोड़ नहीं । मैं ऐसा खोटा कि अज्ञान के वश में आकर प्रभु सम्मत पिता के वचन को न मानकर मैं यहाँ समाज इकट्ठा करके आया । भाव यह कि प्रभु और पिता के वचन मानने में विचार को स्थान नहीं है । इस पर विचार करना ज्ञान नहीं है अज्ञान है । सो प्रभुसम्मत पिता के वचन का मैंने स्वयं तो उल्लङ्घन किया ही और आपसे भी उल्लङ्घन कराने के लिए गुरु माता सचिव तथा पुरजनों को इकट्ठा करके यहाँ ले आया । इस बात का भी विचार न किया कि आज्ञा कोई हटा नहीं सकता । चाहे भला हो चाहे बुरा हो । चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो । चाहे अमृत हो चाहे विष हो । चाहे अमरपद हो चाहे मृत्यु ही हो । सबको मानना पड़ता है ।

राम रजाइ मेटि मन माँही । देखा सुना कतहु कोउ नाँही ॥
सो मइ सब विधि कीन्ह ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥४॥

अर्थ : पर जिसने रामजी की आज्ञा को मन से भी मेटा हो ऐसा कही भी

किसी को न देखा न सुना । सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की । पर स्वामी ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया ।

व्याख्या उपर्युक्त भलो और बुरो मे कितनो को तो मैंने देखा है और कितनो को सुना है । पर ऐसा सामर्थ्य कही किसी मे न पाया जो आपकी आज्ञा मन से भी मेट सके । भाव यह नट मकंठ इव सबहि नचावत । राम खगेस वेद अस गावत । तथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई । प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई । करहु सो बेगि जो तुमहि सोहाई ।

मैंने ऐसे प्रभु की आज्ञा को सब प्रकार से न मानने की ढिठाई की । यह मेरी खोटाई है और उस ढिठाई को स्नेह और सेवकाई मान लेना यह सरकार का अधहारित्व है ।

दो. कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर ।

दूषण मे भूषण सरिस, सुजसु चारु चहु ओर ॥२९८॥

अर्थ अपनी कृपा और भलाई से नाथ ने मेरा भला किया । मेरे दूषण ही भूषण हो गये और सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया ।

व्याख्या जग अनभल भल एकु गोसाईं । कहिअ होइ भल कासु भलाई । सो मुझमे भलाई थी ही नहीं । सरकार ने कृपा करके ऐसी भलाई की कि मेरे दूषण ही भूषण हो गये । मेरी ढिठाई लोग की दृष्टि में स्नेह और सेवा के रूप में परिणत हो गयी । सरकार ने प्रशसा कर दिया भयउ न भुवन भरत सम भाई । सो मरा सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया । यह सरकार का गुणग्राहकत्व है ।

राउरि रीति सुबानि बडाई । जगत विदित निगमागम गाई ॥

क्रूर कुटिल खल कुमति कलकी । नीच निसील निरीस निसकी ॥१॥

अर्थ आपकी सुन्दर रीति आपका सुन्दर स्वभाव आपकी बडाई ससार में प्रसिद्ध है । उसका गान वेद शास्त्र ने किया है । जो क्रूर, कुटिल, खल, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, दु शील, नास्तिक और नि शङ्क है ।

व्याख्या सरकार की रीति ही ऐसी है कि पतितो को पवित्र करते हैं । इसी से पतितपावन विरद हैं । यथा ऐसी कौन प्रभु की रीति । विरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति । स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि नीच से भी प्रीति करते हैं यदि उसमें प्रेम हो । यथा श्रीरघुवीर की यह बानि । नीच हूँ सो करत प्रीति सुप्रीति उर अनुमानि । बडाई अर्थात् महिमा की तो सीमा ही नहीं है । यथा महिमा अमित न कहि सकहि सहस सारदा सेस । यह बात छिपी नहीं है । ससार जानता है । वेद और शास्त्रों में इसकी प्रशसा है । यह सरकार का समर्थ सरनागत हितकारित्व है ।

क्रूर में दया नहीं होती और दया में ही सब धर्मों का निवास है । यथा दया में वसत नाथ सकल धरम । कुटिल में सरलता नहीं होती । कुटिल ही दुरात्मा है । उसके मन वाणी और कर्म में एकवाक्यता नहीं । यथा मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्

कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । खल निष्कारण ही दूसरे की बुराई करते हैं । यथा खल विनु कारण पर अपकारी । तामसी बुद्धिवालो की विपरीत बुद्धि होती है । वे अधर्म को ही धर्म समझते हैं । हित को अनहित समझते हैं । यथा तब उर कुमति बसी विपरीता । हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता । कलङ्की को दुनिया बुरा कहती है । यथा • कुल कलक जेहि जनम्यो मोही । अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही । लोक वेद से बहिष्कृत को नीच कहते हैं । यथा : लोक वेद बाहर सब भाँती । आचारहीन को दु शील कहते हैं । उन्हे वेद भी पवित्र नहीं कर सकते । यथा आचारहीन न पुनन्ति वेदा. । निरीश ही असुर है । यथा : मानहि मातु पिता नहि देवा । साधुन्ह सन करवावहि सेवा । जिनके अस आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी । नि शङ्क से भाव यह कि जिनको परलोक का डर नहीं । यथा स्वारथ बस परलोक नसाही । ये शरण में रखे जाने के पात्र नहीं हैं ।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए । सकृत प्रनाम किहे अपनाए ॥
देखि दोष कवहु न उर आने । सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥२॥

अर्थ : वे भी सुनकर जहाँ सामने आये और एक बार प्रणाम किया तहाँ आपने अपना लिया । देखकर भी दोष को हृदय में स्थान नहीं देते । गुणों को सुनकर भी साधुसमाज में बखान करते हैं ।

व्याख्या : ऐसे क्रूर कुटिल खल से सभी दूर भागते हैं । पर सरकार की बात दूसरी है । आपके सामने यदि ऐसा पुरुष भी आपके गुण गणों को सुनकर शरण में आवे तो एक बार प्रणाम करने से ही आप उसे अपना लेते हैं । पहिली बात यह है कि आपके सुयश सुनने से उसे यह सङ्कल्प हो कि मैं ऐसे के अनुकूल चलूँगा । इनके प्रतिकूल का परित्याग करूँगा और उसे विश्वास हो जाय कि सरकार निश्चय मेरी रक्षा करेंगे मैं इन्हीं को अपना रक्षक मानूँगा । मुझ से तो सब बिगड गया और अपने को सरकार को समर्पण कर दें तो सरकार एक प्रणाम से प्रसन्न होकर उसे अपना बना लेते हैं । वह तदीय हो जाता है ।

यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जवही । जनम कोटि अघ नासहि तवही ।

जौ नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही ।

तजि भदमोह कपट छल नाना । करें सद्य तेहि साधु समाना ।

उसके एक प्रणाम से रामजी प्रसन्न हो जाते हैं । उस प्रणाम की बड़ी महिमा है । यहाँ : प्रनत पाल सरवज्ञ सुजानू का साफल्य दिखलाया ।

उसके दोषों को कभी हृदय में स्थान नहीं देते । देखते हुए भी नहीं देखते ।

यथा : जेहि अघ बधेउ व्याघ जिमि वाली ।

फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥

सोइ करतूति विभीषन केरी ।

सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥

तेहि भरतहि भेटत सनमाने ।
राजसभा रघुवीर बखाने ॥

जो तदीय हो चुका उससे चूक भी हो जाय तो वह फिर परित्यक्त नहीं होता । ऐसा सुन्दर सरकार का स्वभाव है । अब बड़ाई कहते हैं ।

को साहिव सेवकहि नेवाजी । आपु समाज साज सब साजी ॥
निज करतूति न समुझिअ सपने । सेवक सकुच सोचु उर अपने ॥३॥

अर्थ ऐसा कौन स्वामी है जो सेवक पर कृपा करके अपने सत्र समाज और साज साज दे । अपनी करतूत पर स्वप्न में भी ध्यान न दे । यदि सेवक को सङ्कोच हो तो अपने मन में सोच हो ।

व्याख्या सेवक कैसा भी हितचिन्तक हो पर उसे कोई बराबरी का दर्जा नहीं देता । पर रामजी की यह बड़ाई है कि उसका स्वयं समाज साज देते हैं ।

यथा वालि त्रास व्याकुल दिन रातो ।
तन बहु व्रन चिता जर छाती ॥
सो सुग्रीव कोन्ह कपि राऊ ।
अति कृपाल रघुवीर सुभाऊ ॥

प्रभु तरुतर कपि डारपर ते किये आपु समान ।
तुलसी कहैं न राम से साहिव सील निधान ॥

सरकार का स्वभाव बड़ा विस्मरणशील है । स्वयं जो जो भलाई किया है उसे भूल जाते हैं और सेवक को यदि सङ्कोच हो तो उन्हें मन में सोच होता है अर्थात् सङ्कोच मिटाने का प्रयत्न करते हैं । यथा सकुच बिहाय मागु नृप मोही । तथा मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।

सो गोसाईं नहि दूसर को पी । भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ॥
पशु नाचत सुक पाठ प्रवीणा । गुन गति नट पाठक आधीना ॥४॥

अर्थ ऐसा मालिक दूसरा कोई नहीं है । मैं भुजा उठाकर और प्रण करके कहता हूँ । पशु नाचते हैं और तोता पाठ करने में प्रवीण होता है । परन्तु गुण और गति नट और पाठक के अधीन होता है ।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि मालिक तो बहुत हैं । पर ऐसा मालिक कोई है नहीं । भुजा उठाकर प्रण रोपकर मैं कहता हूँ सारी सभा में सबका साक्षी देने के लिए भुजा उठाकर प्रण किया जाता है । यथा निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कोन्ह । कि : स्वामि गोसाईंहि सरिस गोसाईं ।

सरकार ने जो कहा . भयउ न भुवन भरत सम भाई इत्यादि । उसपर भरतजी कहते हैं कि इसमें मेरी करतूत कुछ नहीं । पशु नाचता है । उसके नृत्य की गति नट के अधीन होती है । उसकी शिक्षा के अनुसार वह नाचता है । तोता श्लोक

पढ़ता है । वह कुछ नहीं समझता । जैसा सिखाया हुआ है वैसा कहता है । सो मेरे मे जो गुण दिखायो पड़ते हैं वे सरकार की प्रेरणा से हैं । यह अन्तर्यामित्व है ।

दो. यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर ।

को कृपालु विनु पालिहैं, विरदावलि वरजोर ॥२९९॥

अर्थ : इस भाँति अपने जन को सुधारकर और सम्मान देकर साधुओं का सिरमोर बना दिया । कृपालु के बिना ऐसी चाँकी विरदावली का कौन बल पूर्वक पालन कर सकता है ।

व्याख्या : मुझमें गुण कहाँ । जो दिखायी पड़ते हैं वे सरकार के सिखाये हैं । यथा : वेद पुराण सुनहिं मन लाई । आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई । अथवा मैंने तो ढिठाई की । न पिता की आज्ञा मानी न सरकार की शिक्षा मानी । परन्तु सरकार ने बलपूर्वक बिगड़ी हुई बात को सुधार दिया । यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा । विधि प्रपंच मह सुना न दीखा । सम्मान दिया । यथा : उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहूँ पट कहूँ निपग कहूँ तीरा । साधु सिरमोर बनाया । यथा : भरतहि होइ न राजमद विधि हरि हर पद पाइ । कबहुँ कि कौजो सीकरन्ह छोर सिधु बिनसाइ । यहाँ : प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी । पूज्य परम हित का साफल्य दिखलाया ।

शोक सनेह कि बाल सुभाएँ । आयेउं लाइ रजायसु बाएँ ॥

तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा । सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥१॥

अर्थ : शोक से स्नेह से या बाल स्वभाव से आज्ञा को हटाकर मैं यहाँ आया । फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर सभी भाँति से मेरा भला ही माना ।

व्याख्या : भरतजी अपना दोष कहते हैं कि मैं स्वयं निश्चय नहीं कर सकता कि मैं यहाँ क्यों आया ? शोक के कारण आया कि स्नेह के कारण आया कि बाल-स्वभाव से आया । यहाँ बाल का अर्थ अज्ञानी है । अर्थात् स्वभाव से मैं अज्ञानी हूँ । उसी स्वभाव की प्रेरणा से आया है । चाहे जैसे आया पर आज्ञा उल्लंघन करके ही आया । क्योंकि आज्ञा पालन में विचार को स्थान नहीं है । यथा : मातु पिता गुरु प्रभु के वानी । बिनहि विचार करिअ सुभजानो । शोक यथा : राम लखन सिय विनु पग पनही । करि मुनिवेप फिरहि बन बनही । एहि दुख दाह दहै दिन छाती । भूख न वासर नीद न राती ।

स्नेह यथा : देखे विनु रघुनाथ पद जिय के जरनि न जाइ ।

बाल सुभाएँ यथा : आन उपाउ मोहि नहिं सूझा ।

सरकार कृपालु हैं । अपनी ओर देखते हैं । जन के दोष को नहीं देखते । जब मुझ से आज्ञा भङ्ग का अपराध नहीं हुआ था तब तो भला मानना ही था । यथा : तात वचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ । मो कह दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ । आज्ञा भङ्ग करने पर भी भला ही माना । नहीं तो मैं इस योग्य

था कि मेरा मुख भी न देखते । यथा राम लखन सिय सुनि मम नाकें । उठि
जनि अनन्त जाहि तजि ठाकें । सो मुझ दर्शन दिया ।

देखेउँ पायँ सुमगल मूला । जानेउँ स्वामी सहज अनुकूला ॥

बड़े समाज विलोकेउँ भागू । बड़ी चूक साहिव अनुरागू ॥२॥

अर्थ सुमङ्गलमल चरणों का दर्शन पाया । जाना कि स्वामी की स्वभाविक
कृपा बनी है । बड़े समाज में अपना भाग्य देखा कि मुझ से बड़ी चूक होने पर भी
स्वामी अनुकूल हैं ।

व्याख्या सरकार मेरा नाम सुनने पर भी दूसरी जगह नहीं चले गये । इन
मङ्गलमूल चरणों का दर्शन हुआ । तब मुझे मालूम हुआ कि सरकार की स्वाभाविक
अनुकूलता में कोई भेद नहीं पड़ा ।

इतना ही नहीं । इतनी बड़ी चूक पर भी स्वामी का इतना अधिक अनुराग
है । इससे मैं अपने को बड़भागी मानता हूँ । यह सभा बड़ों की है । जिसमें गुरु
श्वशुर माता सचिव तथा वृद्ध महाजन सभी एकत्रित हैं । इसमें सरकार ने पिता
के वचन के गौरव से अधिक मेरे सङ्काच को स्थान दिया । यथा तासु वचन
मेटत मन सोचू । तेहि ते अधिक तुम्हार सकोचू जो मैं कहूँ वही कर डालने पर
तैयार हो गये और श्रीमुख से मेरे भाग्य की बढाई की ।

कृपा अनुग्रह अगु अघाई । कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ॥

राम्बा मोर दुलार गोसाईं । अपने शील सुभायँ भलाई ॥३॥

अर्थ हे गोसाईं ! हे कृपानिधि । आप ने कृपा और साङ्ग अनुग्रह जो खोल-
कर अधिकता के साथ किया । अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा
दुलार रक्खा ।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि मेरे अपराधों को केवल क्षमा ही नहीं
किया बल्कि उन अपराधों को ही सद्गुण का रूप दे दिया । दूषण भूषण हो गये ।
दुर्यश सुयश हो गया । सम्मान मिला । मैं साधुआ का सिरमौर बन गया । मेरे लिए
पिता का वचन तक त्यागने को प्रस्तुत हो गये । अब कृपा और अनुग्रह का
कौन सा अङ्ग वचा जिसका प्रयोग मुझ पर जो खोलकर और पूरी तरह से नहीं
किया गया ।

मेरा दुलार सदा से होता आया है । उसे ब्रह्मा नहीं सह सके । माँ के व्याज
से उसमें बीज डालना चाहा । यथा विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा । नीच बीच
जननी मिस पारा । परन्तु सरकार ने अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार
रख लिया । ब्रह्मा का बिगाड़ा भी नहीं बिगड़ा । सरकार का शील स्वभाव और
भलाई प्रख्यात है ।

शील यथा तुलसी कहूँ न राम ते साहिव शील निधान ।

स्वभाव यथा जासु स्वभाव अरिहु अनुकूला ।

भलाई । यथा : राम निकाई रावरी है सत्रही को नीक ।

नाथ निपट मइ कीन्हि ढिठाई । स्वामि समाज सकोच विहाई ॥

अविनय विनय जथारुचि बानी । छभिहि देउ अति आरति जानी ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मैंने अत्यन्त ढिठाई की । जो स्वामी और समाज के सङ्कोच को छोड़कर नरम और कड़ी मनमानी वाणी कही । हे राजन् ! उसे मुझे अत्यन्त आर्त जानकर क्षमा करें ।

व्याख्या : कहलें वदन मृदु वचन कठोरा से उपक्रम करके : अविनय विनय यथा रुचि बानी से उपसंहार कर रहे हैं । यहाँ स्वामी और बड़ो का समाज उपस्थित है । ऐसे समाज में सङ्कोच ही उचित है । यदि बोले भी तो सयत भाषा में ही बोलना उचित है । भरतजी कहते हैं सो मैं सङ्कोच छोड़कर इतना बोल गया और उसमें कठोर वाणी भी कही । यथा : फरइ कि कोदव वालि सुसाली । मुक्ता प्रसव कि सबुक काली इत्यादि । अतः क्षमा माँगता हूँ । मैं अत्यन्त आर्त हूँ और आप सुस्वामी हैं । यथा : कटु कहिये गाढे परे सुनि समुझि सुसाँई ।

दो. सुहृद सुजान सुसाहिवहि, बहुत कहव वड़ि खोरि ।

आयसु देइअ देव अब, सबुइ सुधारी मोरि ॥३००॥

अर्थ : सुहृद सुजान और सुस्वामी से बहुत कहना भी बड़ा दोष है । हे राजन् ! अब आप आज्ञा दें और मेरा सब कुछ सुधार दें ।

व्याख्या : सुहृद सुजान और सुसाहिव से अधिक न कहना चाहिए । क्योंकि अधिक कहने का यह अर्थ होता है कि स्वामी सुहृद सुजान नहीं हैं । अब मैं विनती कर चुका और सरकार ने सादर सुना भी । अब आप आज्ञा दें । आपके आज्ञा देने से ही सब सुधर जायगा । भाव यह कि जिसकी आज्ञा चले वही राजा है । आपकी आज्ञा से मैं काम करूँगा तो राजा आप रहे मैं सेवक रहा । मेरा सेवधर्म बना रह जायगा । सरकार ने मेरे दूषण को भूषण तो किया । अब आज्ञा देकर मेरी बिगड़ी भी सुधार दें । यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई ।

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई । सत्य सुकृत सुख सीव सुहाई ॥

सो करि कहउँ हिये अपने की । रुचि जागत सोवत सपनेकी ॥१॥

अर्थ : जो सत्य सुकृत और सुख की सुन्दर सीमा हैं उस स्वामी के चरण कमल के रज की दोहाई देकर जागत सोवत और सपने की रुचि जो हृदय में है कहता हूँ ।

व्याख्या : सरकार सुन्दर सत्य की सीमा हैं । जगत् में आपेक्षिक सत्य है । पूर्ण रूपेण सत्य तो सरकार ही हैं । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । सत्यसंघ दृढव्रत रघुराई । सरकार सुकृत की सीमा हैं । यथा : सुकृत सनेह अवधि रघुराई । सरकार आनन्द की सीमा हैं । यथा : जो आनन्द सिधु सुख रासी । इस भाँति रामजी को मन्त्रि-

दानन्द दिनेश कहा । ऐसे महाप्रभु की शपथ लवर अपनी रुचि कहते हैं । जो जाग्रत अवस्था में तो सदा बनी ही रहती है । स्वप्न भी जाग्रत के सस्वार के अनुरूप ही होता है । अतः स्वप्न में भी यही रुचि सस्वार रूप से रहती है । घोर निद्रा के समय में भी वह बीज रूप से रहती है । गुरुजी ने सरकार को मेरी रुचि रखने को कहा । सरकार भी उसके रखने के लिए सब तरह से तैयार हैं । अतः मैं उसे बहे देता हूँ ।

सहज स्नेह स्वामि सेवकाई । स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥

अग्या सम न सुसाहिव सेवा । सो प्रसादु जन पावइ देवा ॥२॥

अर्थ स्वामी की सेवा में स्नेह हो । चारों फल सम्बन्धी स्वार्थ रूपी छल छोड़कर हो । अच्छे स्वामी की सबसे बड़ी सेवा आज्ञा पालन है । वही प्रसाद आपका दास चाहता है ।

व्याख्या सच्ची सेवा में स्वार्थ ही छल है और जितने स्वार्थ हैं वे अर्थ धर्म काम और मोक्ष के अन्तर्गत हैं । अतः इनसे रहित स्वामी की सेवा में सहज स्नेह चाहता हूँ । कपट प्रीति या कृत्रिम प्रीति नहीं चाहता । सेवा में भी सबसे बड़ी स्वामी की आज्ञा है । अतः आप कृपा करके आज्ञा दें । उसी का मैं पालन करूँ । आपकी आज्ञा से जो कुछ मैं करूँगा । वही सरकार की सेवा हो जायेगी । अतः अब मैं यही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे आज्ञा हो कि भरत । तू यह कर । वस इतना ही मेरा अभीष्ट है ।

अस कहि प्रेम विवस भए भारी । पुलक सरीर विलोचन वारी ॥

प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ स्नेहु न सो कहि जाई ॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर भारी प्रेम के वश हुए । उनके शरीर में पुलक हो आया । आँखें डबडबा आयी । सरकार के चरण को व्याकुल होकर पकड़ लिया । उस समय का वह स्नेह कहा नहीं जाता ।

व्याख्या पहिल स्नेह सँभाला था । बढत बिन्ध्य जिमि घटज निवारा । परन्तु इस बात के निवेदन करने में वह स्नेह नहीं सँभल सका । फूट चला । अतः एकदम प्रेम के विवश हो गये । उन्हें सात्त्विक भाव हो गया । प्रेम में डूबने लगे । आधार की भाँति चरण को व्याकुल होकर पकड़ लिया । भरतजी को सब दुःख स्वीकार है । पर सरकार असामञ्जस्य में न रहे ।

कृपासिन्धु सनमानि सुवानी । बैठाये समीप गहि पानी ॥

भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल स्नेह सभा रघुराऊ ॥४॥

अर्थ कृपासिन्धु ने सुन्दर वाणी से सम्मान करके हाथ पकड़कर बैठाया । भरतजी का विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सारी सभा और स्वयं रामजी स्नेह से शिथिल हो गये ।

व्याख्या : भरतजी चरणो पर गिरे थे । सरकार ने उनका हाथ पकड़कर निकट बैठाया । सरकार कृपासिन्धु हैं । भरतजी के आचरण से द्रवीभूत हो गये । उनका सत्कार सुन्दर वाणी से किया । सभा ने और रामजी ने भरतजी का विनय सुना । जिसका तात्पर्य यह था कि मेरा स्वामीसेवक भाव न बिगड़े । भरतजी सब दुःख सहने को तैयार हैं । पर सरकार की आज्ञा से । निर्गलितार्थ यह कि आप मालिक होना स्वीकार करिये । सब कुछ आप की आज्ञा से हो ।

सुरगुरुजी ने पहिले ही कहा था : देखु देवपति भरत प्रभाऊ । सहज सनेह विवस रघुराऊ । सो विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सभा सहित रामजी स्नेह से शिथिल हो गये ।

छं. रघुराउ सिथिल सनेहु साधु समाज मुनि मिथिला धनी ।

मन महु सराहत भरत भायप भगति की महिमा धनी ॥

भरतहि प्रसंसत विबुध वरखत सुमन मानस मलिन से ।

तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से ॥

अर्थ : रामजी साधु समाज मुनि मिथिलेश सब स्नेह से शिथिल हो गये और मन ही मन भरतजी के भाईपन तथा भक्ति की महा महिमा की सराहना करने लगे । देवता लोग भरतजी की प्रशंसा करते हैं और मलिन मन से फूल वरसाते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग सुनकर विकल हो गये और रात आने पर कमल की भाँति सङ्कुचित हो गये ।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : सिथिल सनेह सभा रघुराऊ । इसी पुरश्न का कमल है : रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी । सभा में ये ही लोग थे । वे सबके सब स्नेह में ऐसे शिथिल हो गये कि मुख से वाक्य नहीं निकलता । भरतजी के भाईपन की सराहना मन ही मन कर रहे हैं कि भरतजी सब दुःख सहने को तैयार हैं । पर रामजी के चित्त पर सङ्कोच की छाया तक नहीं आने देते और भक्ति की महामहिमा की प्रशंसा करते हैं कि जिसके प्रभाव से सारी सभा जिसमें ऐसे ऐसे धुरन्धर ज्ञानी भी हैं स्नेह से शिथिल हो गयी । सभा की गति कहकर अब देवताओं का हाल कहते हैं कि अपनी कार्य सिद्धि भरतजी द्वारा होने देखकर फूलों का वर्षा कर रहे हैं । पर मलिन मन से वरते हैं । क्योंकि मन इनका शुद्ध नहीं है । लोगों की यह अवस्था हुई कि यह दशा सुनकर वे मुरझा गये । पढ़ते उनका छटपटाना कहा था । यथा : सुनि सुनि सोच त्रिकल सब लोग । मनहु भोगन नव जल जोगा । अब उनका मुरझाना कहते हैं कि निशागमन के कारण जैसे कमल सङ्कुचित हो जाता है वैसे हो गये ।

मो. देखि दुसारी दीन, दुहु समाज नर नारि सब ।

मधवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चाहत ॥३०१॥

अर्थ दोनों समाज के सब नर नारियो को दीन दुखी देखकर महामलिन इन्द्र मरे हुए को मारकर मज्जल चाहते हैं ।

व्याख्या जो स्वयं दुख से दुखी हो रहा हो उसे और दुख देने के लिए तत्पर होना ही मरे हुए को मारना है । सभा का सब समाचार पाकर लोग बड़े दुखी हुए । इन्द्र ने देखा कि इनका दुखी होना भी सरकार के लौट चलने का कारण हो सकता है । अतः ऐसा उपाय होना चाहिए जिसमें लोगो की बुद्धि ही पलट जाय । ये रामजी के साथ वन में रहना चाहते हैं । सो उन्हें घर लौटना अच्छा लगने लगे । दीन दुखियो का मन स्वस्थ नहीं होता । उन पर माया शीघ्र काम करती है । अतः यही समय माया करने का है । देवता मानस मलिन हैं । देवराज इन्द्र महामलिन हैं ।

कपट कुचालि सीव सुरराजू । पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥

काक समान पाकरिपु रीती । छली मलीन कतहूँ न प्रतीती ॥१॥

अर्थ देवराज तो कपट और कुचाल की सीमा हैं । इन्हे दूसरे का काम बिगाड़ना और अपना काम बनाना प्रिय है । इन्द्र की रीति कौवे के समान है । छली हैं । मलिन हैं । इन्हे कही भी विश्वास नहीं है ।

व्याख्या इन्द्र को केवल अपना काम प्रिय हो इतनी ही बात नहीं । दूसरे का काम बिगाड़ना भी उतना ही प्रिय है । देवता लोगो को केवल अपना काम प्रिय था । अपना काम हाते ही फूलों की वर्षा करने लगे । परन्तु इन्द्र से लागो में इतनी भक्ति का होना न देखा गया । उनके मानसिक सद्भाव को बिगाड़ने पर तुल गये ।

उनकी रीति कौवे की रीति सी है । जिस भाँति कौआ छली मलिन होता है उसे किसी का विश्वास नहीं होता । उसी भाँति इन्द्र भी छली हैं । मलिन हैं । दिव्य शरीर प्राप्त करने पर भी इनके हृदय का मालिन्य दूर नहीं हुआ । माया कर ही बैठे । इन्हे कही विश्वास नहीं । स्पष्ट देख रहे हैं कि भरतजी रामजी की आज्ञानुसार ही चलना चाहते हैं और रामजी को पिता की आज्ञा शिरोधार्य है । पर इन्द्र को इन पर भी विश्वास नहीं । कदाचित् लोगो के अनुरोध से ही रामजी लौट जायँ इस सन्देह के कारण उन पर माया चलाना चाहते हैं । भाव यह कि जहाँ विषय की लोलुपता है वहाँ कपट और कुचाल रहेगा ही । इन्द्रपद विषय भोग की सीमा है । अतः वहाँ कपट कुचाल की पराकाष्ठा रहेगी ही ।

प्रथम कुमत करि कपटु सकेला । सो उचाटु सबके सिर मेला ॥

सुरमाया सब लोग बिमोहे । राम प्रेम अतिसय न विछोहे ॥२॥

अर्थ पहिल ही कुमन्त्रणा करके माया की रचना की थी । उसी उच्चाटन को सबके ऊपर डाल दिया । देवताओ की माया से सब लोग मोहित हो गये । रामजी के प्रेम से अत्यन्त निरहाकुल नहीं हुए ।

व्याख्या रचि प्रपञ्च माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट । इस प्रकार जो माया पहिले सब ने मिलकर बनायी थी उसी का प्रयोग समय पाकर सबके ऊपर कर दिया । यहाँ उच्चाटन के अन्तर्गत भय भ्रम और अति को समझ लेना चाहिए । देवताओं ने उच्चाटन का प्रयोग किया । इससे लोगो को रामजी के विरह का जितना दुःख होता था उतना नहीं हुआ । कर मीजहि सिर धुनि पछिताही । जिमि विनु पख विहग अकुलाही । ऐसी दशा नहीं हुई ।

भय उचाट बस मन थिर नाही । छन वन रुचि छन सदन सोहाही ॥

दुविध मनोगति प्रजा दुखारी । सरित सिधु सगम जनु वारी ॥३॥

अर्थ भय और उचाट के वश हो गये । मनमे स्थिरता नहीं रह गयी । क्षण मे वन मे रहने को जो चाहने लगा । दूसरे क्षण मे घर को ओर मन दौड़ने लगा । मन को द्विविध गति से प्रजा दुखी हो गयी जैसे नदी और समुद्र के सङ्गम मे श्रेष्ठ जल की दशा हो जाती है ।

व्याख्या उच्चाटनवाली माया सबके हृदय मे काम करने लगी । ज्वारभाटा आने लगा । कभी समुद्र के पानी का वग नदी मे आ जाता है । इससे नदी मे बाढ़ आजाती है और कभी उसके हट जाने से स्वाभाविक अवस्था मे हो जाती है । इसी भाँति उनके हृदय मे कभी रामजीका प्रेम अत्यन्त अधिक हो जाता है और अभी घर को सुधि आने से कम हो जाता है । पर सर्वथा प्रेमाभाव नहीं होता ।

नदी की गति स्वाभाविक समुद्र की ओर जाने की है । पर समुद्र का सङ्गम होने पर उस गति मे बाधा आ पड़ती है । समुद्र के झाँके के कारण नदी का जल कभी उलट पड़ता है और उसकी उलटी गति हो जाती है फिर ठीक हो जाता है । फिर उलटा बहने लगता है । यह क्रम सङ्गम पर चला ही करता है । जल की एक गति नहीं होने पाती । यही दशा लोगो के चित्त नदी की हो गयी । मन रामसिन्धु की ओर तो अनवरत जाता ही रहता है पर बार बार घर की ओर भी लौटता है ।

दुचित कतहुँ परितोषु न लहही । एक एक सन मरमु न कहही ॥

लखि हियै हँसि कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवान जुवानू ॥४॥

अर्थ मनकी द्विविध गति हो जाने से कही भी मन्ताप नहीं हो रहा है । एक दूसरे से मर्म नहीं बह रहे हैं । इस बात को लखकर कृपानिधान मन हो मन हँसकर बहने लगे कि श्वान जवान और मघवान इन्द्र एक से ही हैं ।

व्याख्या न घर मे मन ठहरता है न वन मे लगता है । कही शान्ति नहीं पाता । मन के इस प्रकार के परिवर्तन को कोई एक दूसरे पर प्रकाशित नहीं करता । सद्भाव मानूस हाता है कि कही सुख समेत सम्बत दुःख साता । पल सम होहि न जनिअहि जाता । इत्यादि भावना थी और वहाँ दो ही दिन मे घर की ओर मन दौड़ने लगा ।

इस बात को कृपा सिन्धु रामजी ने लखा । कृपा सिन्धु हैं । यह देखकर भी अप्रसन्न नहीं होते । मन ही मन इन्द्र की करणी पर हँसते हैं कि व्याकरण शास्त्र में भी श्वन् युवन् मधवन् शब्दों की एक ही गति है । यथा श्वयुवमधोनामतद्धिते । व्यवहार में भी ऐसा ही जान पड़ता है । विषय लोलुपता तीनों में समान है ।

दो भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत विहाइ ।

लागि देवमाया सर्वाहि, तथा जोगु जनु पाइ ॥३०२॥

अर्थ भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री और सावधान साधुओं को छोड़कर देवताओं की माया और सभी को जो जैसा था उसे वैसी ही लगी ।

व्याख्या सो उचाट सबके सिर मेली । इसलिए सबको देवमाया लगी । किसी को कम किसी को अधिक । उनकी साधुता और सावधानता के तारतम्यानुसार लगी । भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्रिगण और सावधान साधु पर देवमाया का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । भाव यह राम भगति चिंतामनि सुन्दर । बसइ गरुड जाके उर अतर । तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकै कछु निज प्रभुताई ।

कृपा सिन्धु लखि लोग दुखारे । निज सनेह सुरपति छल भारे ॥

सभा राउ गुरु महिसुर मत्री । भरत भगति सब कै मति जत्री ॥१॥

अर्थ कृपा सिन्धु रामजी ने देखा कि लोग मेरे स्नेह और इन्द्र की प्रबल माया से दुखी हो रहे हैं और सभा, राजा, गुरुजी, ब्राह्मण और मन्त्रियों की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड़ रक्खा है ।

व्याख्या सरकार ने देखा कि द्विविधा में पड़े हुए लोग दुखी हो रहे हैं । इन्द्र की माया उन्हें घर की ओर खींच ल जाती है । मेरा स्नेह भी छोड़ते नहीं बनता और इधर सभा, महाराज, जनक, वसिष्ठजी, ब्राह्मण और मन्त्री समाज भरत की भक्ति के वशीभूत हो रहा है । यथा रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी । कोई अपने काबू में नहीं है ।

रामहि चितवत चित्र लिखे से । सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥

भरत प्रीति नति विनय बडाई । सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥२॥

अर्थ रामजी को इस भाँति देख रहे हैं मानो चित्र में लिखे गये हो और बोलते हुए सङ्कुचित होते हैं । मानो सिखायी हुई बातें बोल रहे हैं । भरत की प्रीति नम्रता विनय और बडाई सुनने में तो सुख देनेवाली है पर उसका वर्णन कठिन है ।

व्याख्या अतः जिन्हें इन्द्र की माया लगी है वे भी और जिन्हें नहीं लगी है वे भी एकटक रामजी की ओर देख रहे हैं कि देखें सरकार की क्या मर्जी होती है । सबको स्वयं कुछ कहने में सङ्कोच हो रहा है जैसे सिखी सिखायी बात कहने में सङ्कोच होता है । जो बात मन से उठती है वह बिना कहे नहीं रही जाती और सिखी सिखायी बात समय पड़ने पर भूल जाती है ।

भरतजी की प्रीति यथा अस कहि प्रेम विवस भये भारी ।
 भरतजी की नति यथा प्रभु पद पदुम गहे अकुलाई ।
 भरतजी की विनय यथा प्रभु पद पदुम पराग दोहाई ।
 सत्य सुकृत सुख सीम सोहाई ॥
 सो करि कहौ हिये अपने की ।
 रुचि जागत सोवत सपने की ॥
 भरतजी की बडाई यथा सहज सनेह स्वामि सेवकाई ।
 स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥

जासु विलोकि भगति लवलेसू । प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू ॥
 महिमा तासु कहै किमि तुलसी । भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी ॥३॥

अर्थ जिसके भक्ति के लवलेश को देखकर मुनिगण और मिथिलेश प्रेम में मग्न हो गये । उसकी महिमा तुलसी कैसे कहे । भक्ति के स्वभाव से सुमति तो उठी ।

व्याख्या भरत सुप्रेम पयोधि । भरत जी प्रेम के समुद्र हैं । समुद्र की तरङ्ग तट पर स्थित मनुष्य को सराबोर कर देती है । पर भरत ऐसे समुद्र हैं कि इनकी भक्ति के लवलेश के दर्शन से मुनिगण और स्वयं मिथिलेश जैसे ज्ञानी प्रेम में मग्न हो जाते हैं । उस भक्ति की महिमा तुलसी कैसे कह सकता है । परन्तु भक्ति का स्वभाव है कि उसके कारण सुमति उठती है । सो हृदय में सुमति उठी परन्तु

आपु छोटि महिमा बडि जानी । कविकुल कानि मानि सकुचानी ॥
 कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई । मति गति बाल वचन की नाई ॥४॥

अर्थ अपने को छोटी और महिमा को बड़ी जानकर कविकुल की मर्यादा पर ध्यान देकर सद्बुद्धि हो गयी । गुण कह नहीं सकती और रुचि अधिक है । सो बुद्धि की गति वच्चा के वचन जैसी हो गयी ।

व्याख्या भक्ति के प्रभाव से सुमति तो उठी पर उसने देखा कि मैं छोटी हूँ और महिमा बड़ी है । मेरा वर्णन करने के लिए प्रयत्न करना कविकुल की प्रतिष्ठा की बिगाड़ना है । अतः गुणों का वर्णन कर नहीं सकती और रुचि वर्णन करने की बहुत है । अतः उसकी गति बालक के वचन सी हो गयी । बालक को बालने की बड़ी रुचि है । पर उससे बोलते बनता नहीं ।

दो भरत विमल जसु विमल विधु, सुमति चकोर कुमारि ।

उदित विमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि ॥३०३॥

अर्थ भरत का निर्मल यशरूपी चन्द्रमा जो भक्त के हृदयरूपी आकाश में उदय हुआ है उसे सुमतिरूपी चकोर की कन्या टकटकी लगाये देखती रह गयी ।

व्याख्या नव विधु विमल तात जस तोरा । रघुवर विवर कुमुद चकोरा
 गुरु अपमान दोष नहि दूषा । वही भरत का निर्मल यश भक्त के निर्मल हृदय रूपी

इस बात को कृपा सिन्धु रामजी ने लखा । कृपा सिन्धु हैं । यह देखकर भी अप्रसन्न नहीं होते । मन ही मन इन्द्र की करणी पर हँसते हैं कि व्याकरण शास्त्र में भी श्वन् युवन् मघवन् शब्दों की एक ही गति है । यथा : श्वयुवमघोनामतद्धिते । व्यवहार में भी ऐसा ही जान पड़ता है । विषय लोलुपता तीनों में समान है ।

दो. भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ ।

लागि देवमाया सर्वाहि, तथा जोगु जनु पाइ ॥३०२॥

अर्थ • भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री और सावधान साधुओं को छोड़कर देवताओं की माया और सभी को जो जैसा था उसे वैसी ही लगी ।

व्याख्या : सो उचाट सबके सिर मेला । इसलिए सबको देवमाया लगी । किसी को कम किसी को अधिक । उनकी साधुता और सावधानता के तारतम्यानुसार लगी । भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्रिगण और सावधान साधु पर देवमाया का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । भाव यह : राम भगति चिंतामनि सुन्दर । बसइ गरुड जाके उर अतर । तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकै कछु निज प्रभुताई ।

कृपा सिंधु लखि लोग दुखारे । निज सनेह सुरपति छल भारे ॥

सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री । भरत भगति सब के भति जनी ॥१॥

अर्थ • कृपा सिन्धु रामजी ने देखा कि लोग मेरे स्नेह और इन्द्र की प्रबल माया से दुखी हो रहे हैं और सभा, राजा, गुरुजी, ब्राह्मण और मन्त्रियों की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड़ रक्खा है ।

व्याख्या सरकार ने देखा कि द्विविधा में पड़े हुए लोग दुखी हो रहे हैं । इन्द्र की माया उन्हें घर की ओर खींच ले जाती है । मेरा स्नेह भी छोड़ते नहीं बनता और इधर सभा, महाराज, जनक, वसिष्ठजी, ब्राह्मण और मन्त्री समाज भरत की भक्ति के वशीभूत हो रहा है । यथा • रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी । कोई अपने काबू में नहीं है ।

रामहि चितवत चित्र लिखे से । सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥

भरत प्रीति नति विनय बड़ाई । सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥२॥

अर्थ : रामजी को इस भाँति देख रहे हैं मानो चित्र में लिखे गये हो और गोलते हुए सङ्कुचित होते हैं । मानो सिखायी हुई बातें बोल रहे हैं । भरत की प्रीति नम्रता विनय और बड़ाई सुनने में तो सुख देनेवाली है पर उसका वर्णन कठिन है ।

व्याख्या : अतः जिन्हें इन्द्र की माया लगी है वे भी और जिन्हें नहीं लगी है वे भी एकटक रामजी की ओर देख रहे हैं कि देखें सरकार की क्या मर्जी होती है । सबको स्वयं कुछ कहने में सङ्कोच हो रहा है जैसे सिखी सिखायी बात कहने में सङ्कोच होता है । जो बात मन से उठती है वह बिना कहे नहीं रही जाती और सिखी सिखायी बात समय पड़ने पर भूल जाती है ।

भरतजी की प्रीति यथा अस कहि प्रेम विवस भये भारी ।
 भरतजी की नति यथा प्रभु पद पदुम गहे अकुलाई ।
 भरतजी की विनय यथा प्रभु पद पदुम पराग दोहाई ।
 सत्य सुकृत सुख सोम सोहाई ॥
 सो करि कहों हिये अपने की ।
 रुचि जागत सोवत सपने की ॥
 भरतजी की बडाई यथा सहज सनेह स्वामि सेवकाई ।
 स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥

जासु विलोकि भगति लवलेसू । प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू ॥
 महिमा तासु कहै किमि तुलसी । भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी ॥३॥

अर्थ जिसके भक्ति के लवलेश को देखकर मुनिगण और मिथिलेश प्रेम में मग्न हो गये । उसकी महिमा तुलसी कैसे कहे । भक्ति के स्वभाव से सुमति तो उठी ।

व्याख्या भरत सुप्रेम पयोधि । भरत जी प्रेम के समुद्र हैं । समुद्र की तरङ्ग तट पर स्थित मनुष्य को सराबोर कर देती है । पर भरत ऐसे समुद्र हैं कि इनकी भक्ति के लवलेश के दर्शन से मुनिगण और स्वयं मिथिलेश जैसे ज्ञानी प्रेम में मग्न हो जाते हैं । उस भक्ति की महिमा तुलसी कैसे कह सकता है । परन्तु भक्ति का स्वभाव है कि उसके कारण सुमति उठती है । सो हृदय में सुमति उठी परन्तु आपु छोटि महिमा बडि जानी । कविकुल कानि मानि सकुचानी ॥
 कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई । मति गति वाल वचन की नाई ॥४॥

अर्थ अपने को छोटी और महिमा को बड़ी जानकर कविकुल की मर्यादा पर ध्यान देकर सङ्कुचित हो गयी । गुण कह नहीं सकती और रुचि अधिक है । सो बुद्धि की गति वचनों के वचन जैसी हो गयी ।

व्याख्या भक्ति के प्रभाव से सुमति तो उठी पर उसने देखा कि मैं छोटी हूँ और महिमा बड़ी है । मेरा वर्णन करने के लिए प्रयत्न करना कविकुल की प्रतिष्ठा को बिगाड़ना है । अतः गुणों का वर्णन कर नहीं सकती और रुचि वर्णन करने की बहुत है । अतः उसकी गति बालक के वचन सी हो गयी । बालक को बोलने की बड़ी रुचि है । पर उससे बोलते बनता नहीं ।

दो भरत विमल जसु विमल विधु, सुमति चकोर कुमारि ।

उदित विमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि ॥३०३॥

अर्थ भरत का निर्मल यशस्वी चन्द्रमा जो भक्त के हृदयरूपी आकाश में उदय हुआ है उसे सुमतिरूपी चकोर की कन्या टकटकी लगाये देखती रह गयी ।

व्याख्या नव विधु विमल तात जस तोरा । रघुनर किवर कुमुद चकोरा गुरु अपमान दोष नहि दूपा । वही भरत का निर्मल यश भक्त के निर्मल हृदय में

आकाश मे उदित हुआ । उसे सुमतिरूपी चकोर कुमारि एकटक देखती रह गयी । कुछ कह न सकी । सुमति भक्ति के स्वभाव से अभी उत्पन्न हुई है । यथा भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी । इसलिए चकोरी न कहकर चकोरकुमारि कहा । बोलने की कुशलता भी उसमे नहीं है । प्रेम भी नया है । अतः वर्णन म सर्वथा असमर्थ है ।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ । लघु मति चापलता कवि छमहू ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ॥१॥

अर्थ भरत का स्वभाव वेद को भी सुगम नहीं है । हे कविलोग ! लघुमति की चपलता आप लोग क्षमा करें । भरत के सत्य भाव को कहते सुनते हुए सीतारामजी के चरणों में कौन रत नहीं होगा ।

व्याख्या त्रैगुण्यविषया वेदा । वेद का विषय त्रैगुण्य है और भरत का सुन्दर भाव त्रैगुण्य से परे है । परमहंसों को प्रिय हैं । अतएव कहते हैं न सुगम निगमहूँ । ऐसे महापुरुष के गुण वर्णन की रुचि की अधिकता यदि लघुमति तुलसीदास को हो तो उसका प्रयत्न चपलता ही है । अतः कवि लोगो से गोस्वामीजी क्षमा माँगते हैं ।

अब ऐसे प्रयत्न करने का कारण कहते हैं कि भरतजी के सद्भाव कथन श्रवण से उस भाव का मज्जन पान हो जाता है । यथा मज्जन पान पाप हर एका । कहत सुनत एक हर अबिबेका । अतः भरत के सद्भाव में मज्जन करने से उसे पान करने से श्रीसीताराम के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है । अतः इस कथन का प्रयत्न भी महाफल देनेवाला है ।

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को । जेहि न सुलभु तेहि सरिस वाम को ॥
देखि दयाल दसा सबही की । राम सुजान जानि जन जी की ॥२॥

अर्थ भरतजी को स्मरण करते हुए भी जिसे रामजी का प्रेम सुलभ न हो । उसके ऐसा वाम कौन है ? दयाल रामजी ने सबकी दशा देखी । सरकार सुजान हैं । जन के जी की बात जानते हैं ।

व्याख्या सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिसेखे । नाम स्मरण से ही नामी में विशेष प्रेम हो जाता है । भरतजी का स्मरण करना और रामजी में प्रेम होना एक बात है । यथा तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू । धरे देह जनु राम सनेहू । अतः भरत के स्मरण से ही रामप्रेम की प्राप्ति होनी चाहिए । जिसे नहीं हुई उसके ऐसा बुरा कोई नहीं ।

रामजी दयालु है । उन्होंने सबकी दशा देखी कि सब दुःखी हैं । तिस पर इन्द्र की माया का भी प्रभाव इन पर पड़ा है । सुजान हैं । उनकी मनोगति भी देख रहे हैं कि बिचारे द्विविधा में पड़े हैं । साधु समाज ने मुनि मिथिलश की दशा देखी कि स्नेह से शिथिल हैं । भरत की दशा देखी कि प्रेम में आकुल हो रहे हैं । अतः

धरम धुरीन धीर नय नागर । सत्य स्नेह शील सुख सागर ॥

देसु कालु लखि समउ समाजू । नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥३॥

अर्थ • धर्म के धुरन्धर, धीर, नीति में चतुर, सत्यस्नेह और सुख के समुद्र नीति और प्रीति के पालन करनेवाले रघुराज, देशकाल, समाज और अवसर देखकर ।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर है • धर्म कभी छोड़ेंगे नहीं । धीर हैं • नहीं लौटेंगे । नयनागर हैं • सभी विपमताओं का सामञ्जस्य बिठावेंगे । सत्य के सागर हैं : प्रतिज्ञा भङ्ग कभी न करेंगे । स्नेह के सागर हैं प्रेम का भङ्ग न करेंगे । शील के सागर हैं शील भङ्ग नहीं करेंगे और सुख सागर है : सबको सुख पहुँचावेंगे । देश काल अवसर और समाज का ध्यान रखते हुए नीति प्रीति का पालन करते हुए बोले ।

बोले वचन वानि सरवसु से । हित परिणाम सुनत ससिरसु से ॥

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना । लोक वेद विद प्रेम प्रवीना ॥४॥

अर्थ रामजी वाणी के सर्वस्व जैसे वचन बोले । जो परिणाम में हित और सुनने में अमृत सा था । हे भैया भरत ! तुम धर्म धुरीण हो । लोक और वेद को जाननेवाले हो और प्रेम में प्रवीण हो ।

व्याख्या . विमल विवेक धरम नयसाली । भरत भारती मजु मराली । भरत की वाणी ऐसी थी । उसके उत्तर में रामजी का वचन मानो वाणी का सर्वस्व था । क्योंकि : हित मनोहारि च दुर्लभ वच और सरकार के वचन परिणाम में हित और सुनने में अमृत से मनोहारी था ।

भरतजी ने कहा था • प्रभु पितु वचन मोह बस पेली । आयेउँ इहाँ समाज सकेली । मैंने सरकारी आज्ञा भङ्ग किया । मैं अपराधी हूँ । इस पर सरकार कहते हैं कि तुम धर्मधुरीण हो । जो तुमने किया वही धर्म है । लोक और वेद के जाननेवाले के लिए ऐसा ही करना प्राप्त था । ऐसा ही करने से प्रेम का निर्वाह होता है । तुम्हारे आचरण का कही जोड़ नहीं है ।

दो. करम वचनु मानस विमल, तुम्ह समान तुम्ह तात ।

गुरु समाज लघु वंघु गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥३०४॥

अर्थ . हे तात ! कर्म वचन और मन की निर्मलता में तुम तुम ही जैसे हो । बड़ों के समाज में छोटे भाई का गुण इस कुसमय में कैसे कहा जा सकता है ।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि तुमने जो कहा है : मोहि समान मैं साई दोहाई । सा ठोक है । सचमुच तुम्हारा जोड़ नहीं । परन्तु अवगुणों में नहीं गुणों में । तुम्हारे ऐसा : कर्म वचन मानस विमल । वहाँ खोजने से मिलेगा । यह समय तुम्हारे गुणों के कथन के अनुकूल नहीं है । क्योंकि उसका अर्थ दूसरा लग जायगा

और बड़ो के समाज मे छोटे भाई के गुणो का वर्णन भी उचित नहीं है । तुम अपने को सापराध मत मानो । तुम्हारे गुणो पर मैं मुग्ध हूँ ।

जानहु तात तरनि कुल रीति । सत्यसध पितु कीरति प्रीती ॥

समउ समाजु लाज गुरुजन की । उदासीन हित अनहित मन की ॥१॥

अर्थ हे तात । सूर्यकुल की रीति जानते हो कि सत्यसन्ध होते हैं और पिता की कीर्ति पर प्रीति होती है । समय समाज बड़ो की लज्जा और उदासीन मित्र और शत्रु के मन को भी जानते हो ।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि हे तात । तुम सूर्यकुल की रीति जानते हो रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु बरु वचनु न जाई । अज, दिलीप, रघु आदि जितने महाराज इस कुल मे हुए हैं सभी सत्यसन्ध हुए हैं । सभी पिता की कीर्ति के बढ़ानेवाले हुए । अतः सत्य का अनादर नहीं होना चाहिए और पिता की कीर्ति न बिगडनी चाहिए । तुम समय को भी जान रहे हो कि कैसा कठिन समय उपस्थित है कि सब व्यवस्था ही डाँवाडोल हो रही है । समाज की भी दशा जान रहे हो कि सब अपने को अनाथ मान रहे हैं । गुरुजन की लज्जा को भी तुम जान रहे हो कि ये कैसे सङ्कोच मे पड़े हैं कि सामञ्जस्य बिठाना भी चाहते हैं फिर भी स्वयं कुछ नहीं कह रहे हैं । हमी दोनो भाइयो को आपस मे निर्णय करने के लिए कह रहे हैं । राजाआ के कितने शत्रु मित्र होते हैं । कितने उदासीन होते हैं । उनका पता लगाना कठिन होता है । परन्तु तुम राजकाज से भली भाँति परिचित हो । तुम सबको जानते हो । इतना ही नहीं उनके मन मे क्या है यह भी तुम्हे अविदित नहीं है ।

तुमहि विदित सबही कर करमू । आपन मोर परम हित धरमू ॥

मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउँ अवसर अनुसार ॥२॥

अर्थ तुम सबके कर्मों को भी जानते हो । अपने और मेरे परमहित और धर्म को भी जानते हो । मुझे सब तरह से तुम्हारा भरोसा है । फिर भी अवसर के अनुसार कहता हूँ ।

व्याख्या शत्रु मित्र और उदासीनो ने कब कब क्या क्या किया है । सो भी तुम जानते हो अर्थात् राज्य के मर्मों के जानकार हो । मेरा परमहित कैसे होगा । मेरा धर्म क्या है । तथा स्वयं तुम्हारा परमहित कैसे होगा तथा स्वयं तुम्हारा धर्म क्या है । उसे भी जानते हो । भावार्थ यह कि शासकोचित सभी बातें तुम मे मौजूद हैं । अतः मुझे तुम्हारा भरोसा सब प्रकार से है । फिर भी अवसर ऐसा प्राप्त है कि मुझे मुख से कहना ही पड रहा है ।

तात तात विनु बात हमारी । केवल गुरुकुल कृपा संभारी ॥

नतरु प्रजा परिजन परिवारू । हमहि सहित सबु होत खुआरू ॥३॥

अर्थ • हे तात ! पिताजी के बिना हमारी बात को केवल कुलगुरु की कृपा ने सँभाल लिया । नहीं तो प्रजा नगरवासी कुटुम्बी सभी हमारे साथ बड़े दुख को प्राप्त होते ।

व्याख्या हम लोगो की बात तो विगड ही चुकी थी । चक्रवर्तीजी का देहान्त हुआ और वहाँ हम चारो भाइयो मे से कोई नहीं । ऐसे ही समय मे शत्रुओ की बन पडती है । सो कुलगुरु ने चक्रवर्तीजी के देहावसान के समाचार को नगर की सीमा के बाहर जाने नहीं दिया । महाराज के शव को तेलभरी नाव मे रक्खा । तुम्हे बुलाने के लिए दूत कैकय देश मे भेजा । मुझे बुलाने के लिए यहाँ कोई नहीं आया । यदि कोई आता तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा छोडकर पिता की क्रिया करने के लिए अयोध्या जाना ही पडता । सम्भव था कि मैं उस चोट को न सह सकता । तो और भी अनर्थ होता । तुम्हे भी गुरुजी ने पिताजी के मरण और मेरे वनवास का समाचार नहीं भेजा । केवल इतना ही कहलाया कि गुरुजी ने बुलाया है । ठीक समाचार मिलने से तुम्हारी वहाँ क्या दशा होती कौन कह सकता है । गुरुजी की उपस्थिति मे समाचार मिलने पर चोट हम लोगो को लगी । उसे गुरुजी ने अपने विज्ञान के प्रकाश से सँभाल लिया । इसी भाँति माताओ को भी गुरुजी ने सँभाला । प्रजा परिवार का संरक्षण भी राजा के अभाव मे गुरुजी ने ही किया । यदि गुरुजी ने यह सब न किया होता तो हम लोग सभी प्रजा परिवार के सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाते ।

जौ बिनु अवसर अथव दिनेसू । जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥

तस उत्पातु तात विधि कीन्हा । मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥४॥

अर्थ यदि बेसमय ही सूर्य अस्त हो जायें तो कहो ससार मे किसे कष्ट न होगा । ऐसा उत्पात हे तात ! ब्रह्मदेव ने किया । पर मुनिजी तथा मिथिलाधिपति ने सबको बँचा लिया ।

व्याख्या रामजी भी विधि को ही उत्पात का कारण बतला रहे हैं । यह उत्पात इतना प्रबल था कि जैसे बेसमय सूर्य का अस्त होना । बेसमय मे सूर्य का अस्त होना विधि के किये ही हो सकता है । दूसरे को ऐसा सामर्थ्य ही नहीं है । ऐसा होने पर ससार मे उथल पुथल मच जाना स्वाभाविक है । समय पर अस्त होना तो स्वाभाविक नियम ही है । चक्रवर्तीजी का प्रियविरह मे शरीरत्याग अनवसर का सूर्यास्त था । उस समय सब सँभालना गुरुजी का ही काम था । गुरुजी जिस भाँति सदा से विधिगति को रोकते आये हैं वैसे ही इस बार भी रोका । महाराज के देहावसान का पता लगने के बाद जनकजी ने भी रक्षा का प्रयत्न किया । स्वयं रक्षा के लिए सन्नद्ध हाकर दूतों के द्वारा समाचार लेते रहे । इसलिए जनकजी का भी नाम पीछे से रक्षा के कार्य मे जोड दिया ।

दो. राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम ।

गुर प्रभाव पालिहि सर्वाहि, भल होइहि परिनाम ॥३०५॥

अर्थ : सब राजकार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, धरणी, धन और धाम का पालन गुरुजी की कृपा करेगी और परिणाम अच्छा होगा ।

व्याख्या : मोहि राज हठि दे हो जबही । रसा रसातल जाइहि तबही । आदि बातें जो तुम्हारे मनमें भरी हैं : उन्हें छोड़ो । राजकार्य लज्जा प्रतिष्ठा धर्म धरणी आदि का पालन गुरु के प्रसाद से होता रहेगा । मुझे या तुम्हें तो निमित्त मात्र होना है । भावार्थ यह कि गुरुजी की आज्ञा मानते हुए चले चलना मात्र हम लोगो का काम है । परिणाम की चिन्ता कदापि नहीं करनी चाहिए । गुरु की आज्ञा पालन रूप में जो कुछ होगा उसका परिणाम बुरा हो नहीं सकता ।

सहित समाज तुम्हार हमारा । घर बन गुरु प्रसाद रखवारा ॥

मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू । सकल धरम धरनीधर सेसू ॥१॥

अर्थ : समाज के सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक घर और बन में गुरुजी की कृपा है । माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा सम्पूर्ण धर्मरूपी धरणी के लिए शेष रूप है ।

व्याख्या भाव यह कि ' राज काज सब लाजपति धरम धरनि धन धाम का रक्षक तो गुरुजी का प्रभाव है और हमारा तुम्हारा रक्षक उनका प्रसाद है । प्रभाव प्रभुता को कहते हैं और प्रसाद कृपा को कहते हैं । गुरुजी बैठे रहेंगे . उनके प्रभाव से राजकार्य आदि ठीक चलता रहेगा और उनकी कृपा से मेरी रक्षा बन में होती रहेगी और घर में तुम्हारी रक्षा होती रहेगी ।

क्योंकि माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पर ही सब धर्म उसी भाँति टिके हुए हैं जैसे पृथ्वी शेषजी पर टिकी है । सम्पूर्ण धर्मों के सँभालने की शक्ति केवल माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पालन में है दूसरे में नहीं । सम्पूर्ण धर्म का विचार करके पृथक् पृथक् पालन में कौन समर्थ है ? माता पिता आदि की आज्ञा पालन से ही सब धर्मों का पालन आप से आप हो जाता है ।

सो तुम करहु करावहु मोहू । तात तरनि कुल पालक होहू ॥

साधक एक सकल सिधि देनी । कीरति सुगति भूतिमय वेनी ॥२॥

अर्थ : उसे तुम भी करो और मुझ से भी कराओ । हे तात ! सूर्यकुल के पालक बनो । साधक के लिए यह सब सिद्धियाँ की देनेवाली कीर्ति सुगति और भूतिमय त्रिवेणी एक ही है ।

व्याख्या : भाव यह कि यदि तुम मुझ से पिता के वचन का पालन न कराओगे तो मैं न कर सकूँगा । मैं तो कह चुका हूँ : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करों सोइ आजु । अतः पिता की आज्ञा का पालन तुम भी करो और मुझ से भी कराओ । इस भाँति सूर्यकुल की रक्षा करो । नहीं तो सूर्यकुल की सत्यसन्ध पितु कीरति प्रीतिवाली रीति मिट जायगी ।

कामनाओं के पूर्ण करनेवाली त्रिवेणी में जिस भाँति गङ्गा यमुना और

सरस्वती का सङ्गम है उसी भाँति पिता की आज्ञापालनरूपी त्रिवेणी में कीर्ति
सुगति और भूति दोनों का सङ्गम है और यह साधना सकल सिद्धियों को
देनेवाली है ।

सो विचारि सहि संकटु भारी । करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥
वाँटी विपत्ति सवहि मोहि भाई । तुमहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥३॥

अर्थ : यह विचारकर भारी सङ्कट सहकर तुम प्रजा और परिवार को सुखी
करो । हे भाई ! मुझ पर विपत्ति आयी । उसे सबने बाँट ली । फिर तुम्हे तो चौदह
वर्ष की अवधि तक बहुत कष्ट है ।

व्याख्या : ऐसा विचार करके हमारे वन जाने के सङ्कट को सहो । मैं जानता
हूँ कि मेरे वन जाने को तुम पिता के मरण से भी बड़ा सङ्कट मानते हो : इसलिए
संकट कहते हैं । उसे तुम सहो और प्रजा परिवार को सुखी करो । तुम्हारे लिए
राज्य सङ्कट है । फिर भी प्रजा परिवारके सुख के लिए इस सङ्कट को सहो ।

विपत्ति बाँटनेवाला वही है जो उस विपत्ति में दुःखी हो और स्वयं साथ में
दुःख भोगे । यथा : विपत्ति बाँटावनिहार बंधु बिनु करौं भरोसो का को । सो मेरी
विपत्ति को सबने बाँट लिया । यथा : राम दरस हित नेम धृत लगे करन नर नारि ।
मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि । सो मैं तुम्हे विपत्ति बाँटने को कहता
हूँ राज करने के लिए नहीं कहता ।

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा । कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥
होहि कुठायँ सुबंधु सहायें । ओड़िअहि हाथ असनिहु के घायें ॥४॥

अर्थ : तुम्हे कोमल जानकर भी मैं कठोर कह रहा हूँ । यह समय ही ऐसा
कठिन है । मेरा अनुचित नहीं है । ऐसे बुरे समय पर अच्छे भाई ही सहायक होते हैं,
वज्र की चोट को भी हाथ से ही रोका जाता है ।

व्याख्या : तुम्हारे ऐसे कोमल स्वभाव के पुरुष से यह कहना कि तुम भारी
सङ्कट सह जाओ कठोरता है । पर समय ही ऐसा उपस्थित है कि मैं लाचार होकर
कह रहा हूँ । इसलिए मेरा कहना भी अनुचित नहीं है । वज्र की चोट ऊपर आयी
तो सिवा हाथ के और कौन आड़े आवेगा । यही भारी विपत्ति ऊपर आयी तो
सिवा भाई के और किसे आगे करें । राज्य विपत्ति है : इसे तुम जानते हो । मैं
जानता हूँ । ससार नहीं जानता । उसे चौदह वर्ष संभाल दो । उसके बाद मैं आकर
संभाल लूँगा । राज्ये गृध्नन्त्यविद्वांसो ममत्वाहृतचेतसः । अहंमानमहामानमदमत्ता
न मादृशाः । मूढ़ लोग जिनके चित्त को अहन्ता ममता ने ग्रस लिया है राज्य
चाहते हैं । मेरे ऐसे लोग नहीं चाहते । वि ७.१.७ ।

दो. सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिव होइ ।

तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहहि सोइ ॥३०६॥

अर्थ सेवक तो हाथ पैर और आँख सा होता है और मालिक मुख की भाँति होता है। तुलसीदास कहते हैं कि इस तरह की प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी बड़ाई करते हैं।

व्याख्या परस्पर भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ। सेवक और स्वामी दोनों राज्य में परस्पररोपकारक हैं। भाव यह है कि तुम प्रसाद चाहते हो। यथा : सो प्रसाद जन पावइ देवा। सो यही नियम है कि कर पद नयन सेवक हैं। खाद्य लाकर मुख को अर्पण करते हैं और फिर उसी के रस को प्रसाद रूप से ग्रहण करते हैं। इस भाँति सरकार ने भरत के राज्य अर्पण को स्वीकार किया और पुनः प्रसाद रूप से भरत को सुपुर्न करके हैं। यही प्रीति की रीति है और इसी की सुकवि प्रशंसा करते हैं। निर्गलितार्थ यह कि मुझे राज्य स्वीकार है। अब तुम उसके सेवक की भाँति चलाओ।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअ जनु सानो ॥

शिथिल समाजु स्नेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी ॥१॥

अर्थ सारी सभा ने रामजी की वाणी सुनी। जो प्रेम के समुद्र के समान अमृत से सनी थी। सारा समाज स्नेह की समाधि में शिथिल हो गया। यह दशा देखकर सरस्वती मौन हो गयी।

व्याख्या रामजी की वाणी में से प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ता था। उसका जल लवण समुद्र के जल की भाँति खारा न था। अमृत के समान मीठा था। जैसे परिचित समुद्र का जल लवण से सना होता है उसी भाँति प्रेम समुद्र मानो अमृत से सना हुआ था।

सभी सभासद भरतजी के वचन से स्नेह में शिथिल हो रहे थे। रामजी की वाणी सुनते ही उनको प्रेम समाधि लग गयी। गोरक्ष सहिता के मत से प्रेम समाधि भी समाधि का एक भेद है। सो सब के सब प्रेम समाधि में मग्न हो गये। उन लोगों की यह दशा देखकर समाधि भङ्ग के भय से सरस्वती भी चुप हो गयी। नहीं तो स्वभावतः वे तो मुखर हैं। यथा गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। भाव यह कि सब चुप है। किसी के मुख से बात नहीं निकलती। सन्नाटा छा गया।

भरतहि भयउ परम सतोष। सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोष ॥

मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू ॥२॥

अर्थ भरतजी को परम सन्तोष हुआ कि स्वामी अनुकूल है और दोष दुःख हट गया। भरतजी का मुखमण्डल प्रसन्न हो गया। मन से विषाद मिट गया। जैसे गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी हो।

व्याख्या सन्तोष तो सभा मात्र को हुआ। पर भरतजी को परम सन्तोष हुआ। कारण कहते हैं कि स्वामी हमारे अनुकूल है और दोष तथा उसका कार्य दुःख दूर हो गया। सरकार ने राज्य स्वीकार कर लिया। कर पद नयन की भाँति

काम करने के लिए आज्ञा हुई। अब मेरा शासन करना भी राज करना नहीं है। विपत्ति बटाना है। रामजी की सेवा करना है।

भरतजी का विपण्ण मुख प्रसन्न हो गया। ग्रामवासियों तक ने कहा था : मुख प्रसन्न नहीं मानस खेदा। मानस खेद भी दूर हो गया। जनकजी से कहा था : मौन मलिन मैं बोलव बाउर। सो मानो गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी। वह बोलने भी लगा और उसे सब शास्त्र भी फुरने लगा। ऐसी प्रसन्नता भरतजी की हुई।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु वहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी ॥

नाथ भयेउ सुखु साथ गाए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ॥३॥

अर्थ : फिर प्रेम के साथ प्रणाम किया और करकमल जोड़कर बोले। हे नाथ ! साथ जाने का सुख मुझे मिल गया। संसार में जन्म लेने का लाभ मिल गया।

व्याख्या : सप्रेम : से मनसा। बोले : से वाचा और : पानि पंकरुह जोरी : से कर्मणा प्रेम कहा। अब यह प्रणाम वृत्तकृत्य होने का है अथवा पुनः कुछ कहना चाहते हैं। अतः प्रणाम करते हैं। हाथ जोड़कर बोलने का भाव यह कि दसो नह जोड़कर मैं सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ।

भरतजी कहते हैं कि मुझे बड़ी अभिलाषा थी कि मैं लक्ष्मण की भाँति साथ वन में जाता और सेवा करता। इसलिए मैंने कहा था : नतह फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलीं मैं साथ। क्योंकि सरकार की सेवा में ही जीवन जन्म का लाभ है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन चित लावा। सो लाभ मुझे मिल गया। सरकार के साथ वन में जाने से सेवा करने से जो सुख मिलता वही मुझ मुझे अयोध्या में रहकर सरकारी सेवा करने से मिलेगा। भावार्थ यह कि भरतजी ने रामजी का वनवास और अपना अवधवास स्वीकार कर लिया।

अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई ॥

सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पार पावउँ जेहि मेई ॥४॥

अर्थ : हे कृपालु ! अब आपको जैसी आज्ञा हो वही सिर परकर आदर के साथ करूँ। आप मुझे वह अवलम्ब दीजिये। जिसकी सेवा करके अवधि का पार पा जाऊँ।

व्याख्या : बात सब ठीक हो गयी। फिर भी भरतजी स्पष्ट आज्ञा के बिना विनय करते हैं। भाव यह : प्रभु पितु बचन मोह बस पैलो। आनेई इहाँ मनाइ सकेलो। सो बात अब नही होगी। अब जो आज्ञा होगी उसे शिरोधार्य करके आदर के साथ पालन करूँगा।

चरण की सेवा साक्षात् रूप से नहीं कर सकता तो ऐसा आचार तो चाहिए। जिसे चरणों का प्रतीक मानकर सेवा करना हुआ अवधि का पार पावूँ। बिना अवलम्ब चौदह वर्ष काटे नहीं कटेगा।

दो. देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुसासनु पाइ ।

आनेऊँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०७॥

अर्थ : हे राजन् । आपके अभिषेक के लिए सब तीर्थों का जल गुरुजी की आज्ञा पाकर लाया है । उसके लिए क्या आज्ञा होती है ।

व्याख्या : अभिषेक में सब तीर्थों के जल की आवश्यकता पड़ती है । सो गुरुजी की आज्ञानुसार चक्रवर्तीजी ने मँगवाया था । यथा : आनहु सकल सुतीरथ पानी । उस जल को गुरुजी की आज्ञा से ही साथ लाया है । अन्य सामग्री तो टिकाऊ हैं । पर जल तो चौदह वर्ष नहीं रह सकता । सब तीर्थों का जल होने से अद्भुत वस्तु हो गयी । आपके ही अभिषेक के लिए प्रस्तुत किया गया है । अतः अब आप जैसी आज्ञा दें वैसा किया जाय ।

एकु मनोरथु बड़ मन माही । सभय सकोच जात कहि नाही ॥

कहहु तात प्रभु आयेसु पाई । बोले बानि सनेह सुहाई ॥१॥

अर्थ : एक बड़ी लालसा मन में है । परन्तु भय और सङ्कोच के कारण कहते नहीं बनता । प्रभु की आज्ञा हुई कि हे भाई ! कहो । तब सुन्दर स्नेहमय वाणी बोले ।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम । सो अति प्रेम होने से उसके देखने की बड़ी लालसा है । सब लोगो ने घूम घूमकर देखा । यथा : विहरहि वन चहुँ ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब । जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम । परन्तु भरतजी सोच में ही पड़े रहे : निसि न नीद नहि भूख दिन भरत विकल सुठि सोच । नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच । इन्होंने घूमकर नहीं देखा । अब सोच के दूर होने पर वह लालसा जाग पड़ी । अतः कहते हैं कि मन में बड़ी लालसा है ।

बड़ो के सामने सैर सपाटा की लालसा प्रकट करने में सङ्कोच होना स्वाभाविक है । यथा : लखन हृदय लालसा विसेखी । जाइ जनकपुर आइअ देखी । प्रभु भय वहुँर मुनिहि सकुचाही । प्रगट न कहहि मनहि मुसुकाही । यहाँ उसी भाँति भरतजी को भी कहने में भय और सङ्कोच होता है । परन्तु लालसा के अधिक होने से कहना ही पडा ।

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन । खग मृग सरसरि निर्झर गिरिगन ॥

प्रभु पद अंकित अवनि विसेखी । आयसु होइ त आवउँ देखी ॥२॥

अर्थ : यदि आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थल, तीर्थ, वन, पक्षी, मृग, नदी तालाव झरने, पर्वत और विशेष करके सरकार के चरण चिह्न से अङ्कित भूमि को देख आऊँ ।

व्याख्या : चित्रकूट में प्रवेश करते समय भरतजी ने वहाँ की शोभा देखी

तो उस वन के भली भाँति देखने की लालसा उसी समय हुई । परन्तु वह समय पर्यटन के लिए उपयुक्त नहीं था । उसी लालसा को ही प्रकट करते हुए उस हृदय का वर्णन करते हुए कवि ने कहा . भरत दीख वन सैल समाजू । मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू . 'राम वास वन सपति आजा । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ' 'वन प्रदेश मुनि वास घनेरे ' 'विपुल विचित्र विहंग मृग नाना । प्रजा समाज न जाइ बखाना ' 'सरना झरहि मत्त गज गाजहि इत्यादि । उस पर भी वह भूमि प्रभुपद अंकित होने से बड़ी सौभाग्यवती हो गयी है । यथा . हरखहि निरखि राम पद अका । जनु भेटी सपति अति रका । अतः इन वस्तुओं के देखने की आज्ञा चाहते हैं ।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू । तात विगत भय कानन चरहू ॥

मुनि प्रसाद वनु मंगल दाता । पावन परम सुहावन भ्राता ॥३॥

अर्थ : हे तात । अवश्य अत्रिजी की आज्ञा को शिरोधार्य करो । हे भाई । निर्भय होकर वन में विचरो । मुनिजी की कृपा से यह वन मङ्गलदाता पावन और परम सुहावना है ।

व्याख्या . यहाँ के मुख्य ऋषि अत्रिजी हैं । यथा : अत्रि आदि मुनिवर जहाँ बसही । करहि जोग जप तप तन बसही । सो जो विधि से बतलावें उसी विधि और क्रम से यात्रा करो । फिर वन के विचरने में कोई भय नहीं है । किसी तपस्वी या मुनि को उद्देग न होगा । इस वन में जो पवित्रता, शोभा और माङ्गल्य जो देख रहे हो वह मुनिजी के प्रसाद से है । यहाँ की प्रधान नदी मन्दाकिनी भी उन्हीं की धर्मपत्नी भगवती अनुसूया की लायी हुई हैं ।

रिपिनाथकु जहँ आयसु देही । राखेहु तीरथ जलु थल तेही ॥

मुनि प्रभु वचन भरत सुखु पावा । मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा ॥४॥

अर्थ . ऋषियों के राजा अत्रिजी की जहाँ के लिए आज्ञा हो वहाँ तीर्थ के जल को रखना । प्रभु का वचन सुनकर भरतजी को सुख हुआ और प्रसन्न होकर मुनिजी के चरणों में सिर नवाया ।

व्याख्या : भरतजी ने पहिले पूछा था : आनेउँ सब तीरथ सलिल तेहि कहँ कहा रजाइ । उसके उत्तर में रामजी कहते हैं कि यहाँ अत्रिजी का शासन है । उन्हीं से पूछो कि जल वहाँ रक्खा जाय । जहाँ बतलावें वही रख देना । रख देना कहने का भाव यह है कि वे ही जानते हैं कि कहाँ रख देने से वह जल सदा बना रहेगा ।

लालसा पूर्ति के अनुकूल आज्ञा पाने से भरतजी को सुख हुआ । मुनिजी भी उस सभा में आसीन थे और सब सुन रहे थे । भरतजी ने जाकर उनके चरणों में प्रसन्न होकर प्रणाम किया । भाव यह कि अब जैसी आज्ञा आपकी हो वैसा करूँ । सरकार जो कुछ करते हैं ऋषियों की आज्ञा लेकर करते हैं । वैसी ही आज्ञा भी भरतजी की दी ।

दो. भरत राम संवाद सुनि, सकल सुमंगल मूल ।

सुर स्वारथी सराहि कुल, वरपत सुरतरु फूल ॥३०८॥

अर्थ : भरत और रामजी के सकल सुमङ्गल मूल सम्वाद को सुनकर स्वार्थी देवता लोग कुल की प्रशंसा करते हुए हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे ।

व्याख्या : भरतजी और रामजी का सम्वाद सभी मङ्गलों का मूल है : कीर्ति सुगति भूति मय वेनी । इसी में सारे संसार के सुमङ्गल का बीज निहित है । इसलिए इसे सुमङ्गल मूल कहते हैं । इसे सुनकर देवता लोग हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे । पहिले फूल बरसे थे । उस समय मलिन मन से बरसे थे । अब हर्षित होकर वर्षा कर रहे हैं । क्योंकि निश्चय हो गया कि रामजी अयोध्या न लौटेंगे और सूर्यकुल की प्रशंसा करते हैं । स्तुति करते हैं कि इस कुल में सभी धर्मात्मा हैं । स्वार्थी केवल अपना स्वार्थ देखते हैं । संसार का भला बुरा नहीं देखते । देवता लोग अपना काम बिगड़ते देखकर जिन रघुवंशियों पर : रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट फेंका था इस समय अपना काम बनते देखकर उन्हीं पर कल्पवृक्ष का फूल बरसा रहे हैं ।

धन्य भरत जय राम गोसाईं । कहत देव हरपत वरिआई ॥

मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू । भरत वचन सुनि भयेउ उछाहू ॥१॥

अर्थ : भरत धन्य हैं । राम गोसाईं का उत्कर्ष है । ऐसा देवता कहते हैं और जबरदस्ती प्रसन्न होते हैं । मुनिजी को मिथिलेश को और सभी सभासद को भरत के वचन को सुनकर उत्साह हुआ ।

व्याख्या : देवता लोग कहते हैं कि भरत पुण्यात्मा है । अपने कष्ट का ख्याल न किया । संसार के मङ्गल पर ध्यान दिया । इसलिए धन्य हैं । सुकृती पुण्यवान् धन्यः । और स्वामी रामजी का उत्कर्ष है कि जैसा हम लोगों को भरोसा दिया था वैसा ही किया । सबका मन भी रख दिया । धर्म सम्बन्धी असामञ्जस्य भी मिटा दिया । इसलिए उनकी जय जयकार है । देवताओं का कार्य अग्रसर हुआ । इसलिए प्रसन्नता प्रकाश करते हैं । परन्तु उन्हें सच्ची प्रसन्नता नहीं हुई । उनकी प्रसन्नता पूरी तो तब होती जब उनकी माया द्वारा कार्य होता । सो उनकी माया द्वारा तो कोई कार्य हुआ नहीं । वह तो रामजी, भरतजी, जनकजी, तथा सावधान साधुओं पर काम ही न कर सकी । जो कुछ हुआ सो रामजी की और भरतजी की सज्जनता के कारण हुआ । किसी तरह कार्य तो हो गया । इसलिए मन में व्यर्थ माया के प्रयोग करने की लज्जा भी है । अतः प्रसन्नता सच्ची नहीं है ।

सबको भरत का स्नेह देखकर भय था कि यदि रामजी न लौटें तो इनकी क्या दशा होगी । पर जब उनका वचन सुना : नाथ भयेउ सुख साथ गए को । लहेउ लाहु जग जनम भए को । तो मुनिजी, जनकजी तथा सभी सभासदों को उछाह हुआ ।

भरत राम गुन ग्राम स्नेह । पुलकि प्रसंसत राउ विदेह ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन । नेमु पेमु अतिपावन पावन ॥२॥

अर्थ : विदेह राजा पुलकित होकर भरत और रामजी के गुणगण तथा स्नेह की प्रशंसा करने लगे । सेवक और स्वामी दोनों का स्वभाव सुहावना है । उनका नियम और प्रेम अत्यन्त पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है ।

व्याख्या : देहाध्यास रहित राजा जनक को भी भरत और रामजी के गुणों और प्रेम को देखकर आनन्द से पुलक हो गया । प्रशंसा करने लगे कि दोनों भाइयों में कैसा स्नेह है । जो देखने में नहीं आता और कैसे अद्भुत गुण हैं । जिनके कारण बड़ा भारी असामञ्जस्य दूर हुआ । जिसे देखकर मेरे मन में यह बात उठ गयी : आये इहाँ कीन्ह भल नाही ।

गुणग्राम । यथा : सेवक स्वामि सुभाव सोहावन । स्नेह । यथा : नेम प्रेम अतिपावन पावन । जो पावन होता है वह सोहावन नहीं होता और जो सोहावन होता है वह पावन नहीं होता । पर यहाँ तो दोनों भाइयों के स्वभाव नेम और प्रेम में सुन्दरता और पावनता भरी है । ज्ञान अतिपावन है । यथा . नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते । परन्तु इनका नेम उसको भी पवित्र करनेवाला है । यथा : भक्तार्थं कल्पित द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम् ।

मति अनुसार सराहन लागे । सचिव सभासद सब अनुरागे ॥
सुनि सुनि राम भरत सम्वाद । दुहु समाज हियँ हरपु विपाद ॥३॥

अर्थ . मन्त्री और सभासद सब अनुराग से अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशंसा करने लगे । रामजी और भरतजी के सम्वाद को सुन सुनकर दोनों समाज के हृदय में हर्ष और विपाद दोनों हुआ ।

व्याख्या : सबकी समाधि भङ्ग हो गयी । सरस्वती खुल गयी । मन्त्री और सभासद सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशंसा करने लगे । पूरी प्रशंसा तो हो नहीं सकती । फिर भी अनुराग ऐसा है कि बिना प्रशंसा किये रहा नहीं जाता ।

सबका तो सभा में प्रवेश सम्भव नहीं था । अतः सभा में जो जो हुआ सो सब वर्ण परम्परा से सब लोगों को मालूम हुआ । पता लगने पर सबको हर्ष भी हुआ और विपाद भी हुआ । रामजी के राज्य स्वीकार से हर्ष हुआ और चौदह वर्ष का विछोह तो सहना पड़ेगा इस बात का विपाद भी हुआ । सभी के मन में यह शङ्का थी कि चौदह वर्ष के बाद भी रामजी राज्य स्वीकार नहीं करेंगे ।

राममातु दुखु सुखु सम जानी । कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥
एक कहहि रघुवीर बडाई । एक सराहत भरत भलाई ॥४॥

अर्थ : रामजी की माता ने दुःख सुख को समान जानकर रामजी के गुणों

का वर्णन करके रानियो को समझाया । एक रामजी की बड़ाई करने लगी । एक भरत की सज्जनता की प्रशंसा करने लगी ।

व्याख्या समदुःखसुख धीरम् । दुःख सुख को समान देखना ही पण्डिताई है । रामजी की माता हैं । कारण के गुण कार्य में रहते हैं । माता समदुःखसुख धीर हैं । इसलिए रामजी भी वैसे ही हैं । अतः कौसल्या माता ने सुख दुःख सम जानकर और रानियो को जो विषाद कर रही थी समझाया कि रामजी तो साधु हैं । उन्हें सुख दुःख बराबर है । राम वैराग्यवान् हैं राम धर्मात्मा हैं । इनका वनवास में कोई अनिष्ट नहीं हो सकता इत्यादि ।

रानियो में कोई रामजी की बड़ाई करती है कि रामजी कैसे सत्यप्रतिज्ञ हैं । कैसे धर्मात्मा हैं । कैसे शीलवान् हैं । इसी भाँति कोई कैसे साधु हैं कैसे आज्ञाकारी हैं । कैसे प्रेमी हैं इत्यादि भरत की सज्जनता कह रही हैं ।

दो अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप ।

राखिअ तीरथ तोय तहँ, पावन अमिअ अनूप ॥३०९॥

अर्थ अत्रिजी ने भरतजी से तब कहा कि इस पर्वत के सन्निकट एक कूआ है । यह पवित्र अमृत रूप अनुपम है । तीर्थ जल वही रखिये ।

व्याख्या सरकार ने भरतजी से कहा था कि अत्रिजी जहाँ कहे वहाँ तीर्थ जल रख दो । अतः अत्रिजी ने भरत से कहा कि कहीं दूर नहीं जाना है । इसी पर्वत के निकट एक सुन्दर कूआ है जो स्वयं पवित्र है । उसी में यह तीर्थ जल रखवा । गुणवान् में देने से इसका महत्त्व और भी बढ़ जायगा । नदी नहीं बतलाया । क्योंकि उसमें जल ठहर नहीं सकता । कूआ में छोड़ने से वह कूआ सदा के लिए परम पावन हो जायगा । तीर्थजलप्रभाव के कारण पावन है । गुण होने से अमिअ है और अनादि सिद्ध स्थल होने से अनूप है ।

भरत अत्रि अनुसासन पाई । जल भाजन सब दिये चलाई ॥

सानुज आपु अत्रि मुनि साधू । सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥१॥

अर्थ भरतजी ने अत्रि मुनि की आज्ञा पाकर सब जलपात्रों को रवाना कर दिया । स्वयं भाई के सहित, अत्रि मुनि और साधुओं के सङ्ग वहाँ गये जहाँ वह अथाह कूआ था ।

व्याख्या अत्रिजी ने यह तो बतला दिया कि इसी पर्वत के सन्निकट कूआ है । उसी में तीर्थ जल रखना चाहिए । परन्तु किस मुहूर्त में जल का स्थापन करना चाहिए ? कौन स्थापन करे ? किस विधि से स्थापन हो ? इन सब बातों के लिए जब भरतजी ने पूछा तब अत्रिजी की आज्ञा हुई कि आज ही मुहूर्त अच्छा है । जल ले चलो । अतः भरतजी ने सब जलपात्रों का तुरन्त रवाना कर दिया और भरतजी शत्रुघ्नजी अत्रिमुनि तथा साधुगण उस जल के पीछे पीछ चले ।

पावन पाथ पुन्यथल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥

तात अनादि सिद्ध थल एह । लोपेउ काल विदित नहि केहू ॥२॥

अर्थ : उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में स्थापन किया और प्रेम से प्रसन्न होकर महर्षि अत्रि ने कहा कि हे तात ! यह अनादि सिद्धपीठ है । बहुत दिन से इसका लोप हो गया था । किसी को इसका पता न रहा ।

व्याख्या : इस पृथ्वी में भिन्न भिन्न स्थानों का भिन्न भिन्न प्रभाव है । जिस भाँति कहीं केसर होता है कहीं घास तक नहीं जमती । कहीं घान होता है तो कहीं गेहूँ होता है । इसी भाँति कोई स्थल धर्म के लिए अनुकूल है तो कोई अर्थ के लिए अनुकूल है । कोई काम के लिए अनुकूल है और कोई मोक्षदायक है । इसी भाँति बहुत से सिद्धपीठ हैं जहाँ अनुष्ठान करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है । ऐसे सिद्धपीठ भी कहीं किसी महापुरुष के तपश्चर्या से बन गये हैं और कोई स्वभाव से ही बने हुए हैं । जिस स्थल में जल रखने का प्रस्ताव मुनिजी ने किया था वह अनादि सिद्धपीठ था । मुनिजी कहते हैं कि काल के प्रभाव से यह पट गया था । किसी को मालूम भी नहीं था कि यहाँ तीर्थ है । वहाँ जल का स्थापन करके मुनिजी उस तीर्थ की महिमा बहने लगे । संसार का उपकार होने से मुनिजी बड़े प्रसन्न हैं और प्रेम से भरे हुए हैं ।

तव सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप विसेखा ॥

विधि बस भयउ विस्व उपकारु । सुगम अगम अति धरम विचारु ॥३॥

अर्थ : तुम्हारे सेवकों ने देखा कि इस स्थल में खोदने से पानी जल्दी निकलेगा । अतः सुन्दर जल के लिए विशेष कूआँ बना दिया । सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया । धर्म का विचार अत्यन्त सुगम भी और अगम भी है ।

व्याख्या : सेना प्रस्थान के पहिले ही कुछ लोग आगे से जाकर उसके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थल ठीक करते हैं और उसके ठहरने की व्यवस्था करते हैं । जहाँ जलाशय नहीं होता वहाँ पहिले से ही कूप खोदकर तैयार कर देते हैं । क्योंकि प्यास लग जाने पर कूआँ खोदते नहीं बनता । मुनिजी ने भरतजी से कहा कि तुम्हारी सेना के अग्रगामी दल ने देखा कि यहाँ सेना का विश्राम होना चाहिए और जल यहाँ पर वही सेना के उपयोग के लिए यथेष्ट नहीं है । विशेषज्ञों ने बतलाया कि इस स्थान पर खोदने से जल मिलेगा । अतः यही खोदकर कूआँ बना दिया : मालूम होता है कि भरतजी की सेना यही ठहरी थी । क्योंकि गुरुजी की आज्ञा से गिने गिनाये लोग ही आश्रम में गये ।

सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया । सेना तो आकर चली गयी । परन्तु कूआँ बना हुआ है । इसके जल से जो काम लेंगे उन्हें पुण्य होगा । अतः बड़े भारी तार्थ का उद्धार अनायास हो गया । कहीं धर्म बड़ी सुगमता से अनायास प्राप्त होता है और किसी अवसर पर बड़े आयास करने पर भी प्राप्त होना कठिन हो

जाता है। इसी को कहते हैं धर्मस्य सूक्ष्मा गति । सो यह बड़ा भारी पुण्य कार्य तीर्थोद्धार अनायास तुम्हारे द्वारा हो गया ।

भरतकूप अब कहिहै लोगा । अति पावन तीरथ जल जोगा ॥

प्रेम सनेम निमज्जत प्राणी । होइहि विमल करम मन बानी ॥४॥

अर्थ लोग अब इसे भरतकूप वहेगे । यह अत्यन्त पवित्र तीर्थ जल के योग्य था । प्रेम और नेम के सहित इसमें स्नान करने से प्राणी कर्म मन और वाणी से निर्मल हो जायेंगे ।

व्याख्या मज्जन और पान करने से तीर्थ का जल पाप हरण करता है । भगवद् गुणानुवाद से वाणी निर्मल होती है । शास्त्र विचार से मन निर्मल होता है । परन्तु इस कूप में यह अपूर्वता है कि यदि प्रेम और नियम के साथ इसका सेवन हो तो यह कर्म मन और वाणी तीनों के निर्मल कर देने में समर्थ है ।

दो कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ ॥

अत्रि सुनायेउ रघुवरहि, तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥३१०॥

अर्थ कूप की महिमा कहते हुए सब रामजी के पास गये । तब मुनिजी ने रघुनाथजी को तीर्थ के पुण्य प्रभाव को सुनाया ।

व्याख्या मुनि अनुकथन परस्पर होई । पथिक समाज सोह सर सोई । सो लौटते समय तीर्थ के पुण्य प्रभाव का कथनानुकथन हो जाता था । तीर्थ सम्बन्धी बातों में ही रास्ता कटा । सरकार के पास पहुँचने पर रामजी को अत्रि मुनिजी ने उन्हें तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया । जिस समय मुनिजी ने उसकी फलस्तुति की थी उस समय रघुनाथजी नहीं थे और उन्हें सुनाना परमावश्यक था । उनके सुन लने से ही कथन की हुई महिमा स्थायी भी हो गयी ।

कहत धरम इतिहास सप्रीती । भयउ भोरु निसि सो सुख बीती ॥

नित्य निवाहि भरत दोउ भाई । राम अत्रि गुर आयसु पाई ॥१॥

अर्थ धार्मिक इतिहास कहते कहते सवेरा हो गया । वह रात सुख से बीत गयी । नित्य कर्म का निर्वाह करके दोनों भाई भरत रामजी गुरु और अत्रि की आज्ञा पाकर ।

व्याख्या उस पुण्य स्थल में जो जो धार्मिक घटनाएँ हुई थी उनका इतिहास अत्रिजी प्रेम से वर्णन करने लगे । सब लोग प्रेम से सुनने लगे । इस भाँति सारी रात बीत गयी । किसी को कुछ मालूम न हुआ । भावार्थ यह कि उस स्थल का ऐसा महा माहात्म्य है जिसके वर्णन में अनेक कथाएँ अत्रिजी ने सुनायी ।

नित्य कर्म भी सक्षेप से किया । इसीलिए निर्वाह करना चाहते हैं । शास्त्र भी ऐसे समय में नित्यकर्म के सक्षेप करने की आज्ञा देता है । दोनों भाई अर्थात् भरत शत्रुघ्न ने पहिल गुरुजनो की आज्ञा प्राप्त की । स्वामी की आज्ञा प्राप्त की

जिसमे रामवन मे पर्यटन का अधिकार प्राप्त हो । तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा प्राप्त की । जिसमे सुकृत की शोभा हो । तत्पश्चात् अत्रिजी की आज्ञा प्राप्त की । जिसमे मुनि तापस के बाधा पाने का भय न हो ।

सहित समाज साज सब सादे । चले राम बन अटन पयादे ॥

कोमल चरन चलत बिनु पनही । भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनही ॥२॥

अर्थ : समाज के सहित सादे साज से राम वन की यात्रा के लिए पैदल चले । बिना जूते के कोमल चरणों द्वारा चल रहे हैं । अतः पृथ्वी मन ही मन सकुचाकर कोमल हो गयी ।

व्याख्या . तीर्थाटन की विधि कहते हैं । तीर्थाटन मे ठाटवाट मना है । इसलिए सब साज समाज सादा है । राजसी ठाट कोई भी नहीं । यहाँ तक कि पैर मे जूते भी नहीं । पैदल वन मे चले जा रहे हैं । चक्रवर्ती के पुत्र हैं । बिना जूते के पैदल चलने का अभ्यास नहीं और चरण भी इतने कोमल हैं कि पृथ्वी पर चलने योग्य नहीं ।

उनको इस भाँति चलते देखकर पृथ्वी को अपने मन मे अपनी कठिनाई पर सङ्कोच हुआ । अतः वह स्वयं कोमल हो गयी जिसमे भरतजी उसके कठोरता का अनुभव न करें । जिसकी रक्खी भूमि रह रही है उसको दुःखद होने मे पृथ्वी को सङ्कोच है । यथा . भरत भूमि रह राउर राखी ।

कुस कंटक काँकरी कुराई । कटु कठोर कुवस्तु दुराई ॥

महि मज्जुल मृदु मारग कीन्हे । वहत समीर त्रिविध सुख लीन्हे ॥३॥

अर्थ : कुश, कण्टक, कङ्कड़ी, कुराई, कटु कठोर बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुन्दर कोमल रास्ता कर दिये और सुख लिये शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी ।

व्याख्या रास्ते के छोटे गडहे जिसके चारो ओर घास पात जम जाते हैं । उसे कुराई कहते हैं । कोई इसका अर्थ कुरैया का वृक्ष कहते हैं । भूमि के मृदु होने का वर्णन करते हैं कि उसने अति कठोर बुरी वस्तुओं को अपने भीतर कर लिया । जिसमे कोमल चरणों को कष्ट न हो । गडहों के अभाव से मार्ग मज्जुल हो गया और कुश कण्टकादि के न होने से मृदु हो गया । ज्येष्ठ के महीने मे लू चलती है । सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहती है जिससे शरीर को सुख मिले ।

सुमन वरपि सुर घन करि छाँही । बिटप फूल फलि तृन मृदुताही ॥

मृग विलोकि खग वोलि सुवानी । सेवाहि सकल राम प्रिय जानी ॥४॥

अर्थ : देवता फूल वरस करके, बादल छाया करके, पेड़ फूल व फलकर, तृण कोमल होकर, मृग देखकर, पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर सब भरतजी की सेवा करते हैं । वे जानते हैं कि ये रामजी को प्रिय हैं ।

व्याख्या : त्रिविध समीर : से स्पर्श सुख कहा । सुमन वृष्टि : से गन्ध सुख कहा । बिटप फूल फलि : से रस सुख कहा । मृग बिलोकि : से रूप सुख कहा और खग बोलि सुबानी : से शब्द कहा । इससे सर्वेन्द्रिय तर्पण दृश्य का वर्णन किया । जो राम को प्रिय होता है उस पर चराचर की कृपा स्वभाव से होती है । राम सब की आत्मा है । अतः अपनी आत्मा के प्रिय की कौन सेवा नहीं करेगा ?

जो जिसको प्रिय होता है । उसकी शक्ति उसमें काम करने लगती है । महात्माओं में अलौकिक शक्ति के काम करने का यही रहस्य है । भरतजी रामजी को अत्यन्त प्रिय है । अतः उनको जड़ को चेतन बनानेवाली शक्ति भरत में काम कर रही है । यथा : होत न भूतल भाव भरत को । अचर सचर चर अचर करत को । अतः भरत के सन्निधान में उनका जड़त्व अत्यन्त शिथिल हो गया और उन्होंने भरत को राम प्रिय जानकर उनकी सेवा की ।

दो. सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात ।

राम प्राणप्रिय भरत कहँ, यह न होइ बड़ि बात ॥३११॥

अर्थ : साधारण पुरुष को भी जो राम कहकर जँभाई लेता है उसे सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं । सो राम के प्राणप्रिय भरत के लिए यह बड़ी बात नहीं है ।

व्याख्या : श्रोता के चित्त में शङ्का हो सकती है कि ऐसी सिद्धि होनी कि उसके सान्निध्य से अचर को भी ज्ञान हो जाय बड़ी बात है । इस पर गोस्वामीजी कहते हैं कि यह भरत के लिए बड़ी बात नहीं है । क्योंकि भरतजी रामजी को प्राण प्रिय हैं । उनमें रामजी की सब शक्तियाँ काम कर सकती हैं । जो लोग रामजी का इतना ध्यान रखते हैं कि कम से कम जँभाई लेने के समय तो उनका नाम मुँह से निकले । ऐसे ध्यान रखनेवाले को भी सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं और भरतजी तो रामजी को ऐसे प्रिय हैं कि रामजी उनका दिन रात ध्यान रखते हैं । यथा : रामहिं वधु सोच दिन राती । अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ।

यहाँ पर गोस्वामीजी ने सिद्धि प्राप्ति का अत्यन्त सरल मार्ग बतला दिया । साधक को बस इतना ध्यान नाम का रखना पड़ेगा कि जँभाई के समय अवश्य नाम मुख से निकल जाय । इतने ध्यान के सतत बने रहने से सामान्य अधिकारी को भी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं । नाम का प्राण से सम्बन्ध होने पर सिद्धियाँ मिलती हैं । नाम का निःश्वास प्रश्वासात्मक जप करने से प्राणों से नाम का सम्बन्ध हो जाता है ।

एहि विधि भरत फिरत बन माही । नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाही ॥

पुन्य जलासय भूमि विभागा । खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥१॥

अर्थ : इस विधि से भरतजी वन में घूम रहे हैं । नेम प्रेम देखकर मुनियों को

सङ्कोच हो रहा है। पवित्र जलाशय, भूखण्ड, पक्षी, मृग, तृण, वृक्ष, पर्वत, वन और वाग।

व्याख्या भरतजी के वन की यात्रा की विधि का उपसहार करते हुए कहते हैं कि इस विधि से भरतजी वन की यात्रा कर रहे हैं। राजकुमार होकर अत्यन्त सादे वेष से पैदल बिना जूता के ऐसे वन में जहाँ कुश कण्टक कङ्कड़ी भरी हुई है जेठ के महीने की धूप में घूम रहे हैं। इसे देखकर मुनि लोगो को भी सङ्कोच होता है कि हम लोग भी इस भाँति नहीं यात्रा कर सकते। कम से कम पादुका तो धारण कर ही लेते हैं और न हम लोगो में ऐसा प्रेम ही है कि सरकार के चरण चिह्नो को देखकर ऐसा हर्ष हो जैसा भरत को हो रहा है।

चित्रकूट के जलाशय पावन हैं। जिन्हे देखकर देवनदी और देवसर ईर्ष्या करते हैं। यथा • जे सर सरित राम अवगाहहि। तिनहि देवसर सरित सराहहि। भूखण्ड पवित्र है। क्योंकि वे सरकार के चरण चिह्नो से अङ्कित हैं। पक्षी मृग वेलि विटप तृण सब धन्य हैं। क्योंकि उन्हे रामजी का सन्निधान प्राप्त है। यथा चित्रकूट के विहंग मृग वेलि विटप तृण जाति। पुन्य पुज सब धन्य अति कहत देव दिन राति।

चारु पवित्र विचित्र बिसेखी। वृक्षत भरतु दिव्य सब देखी ॥
सुनि मन मुदित कहत रिपिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥२॥

अर्थ सुन्दर पवित्र और विशेष विचित्र तथा दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और ऋषिराज उनके प्रश्नो को सुनकर प्रसन्न मन से उनके हेतु गुण और प्रभाव बतलाते हैं।

व्याख्या जलाशय, भूमि विभाग, खग, मृग, तृण, तरु सब अलौकिक शोभा सम्पन्न हैं। मानो इस लोक के हैं ही नहीं। इसलिए भरतजी जलाशय के पुण्यमय होने का हेतु पूछते हैं। खग मृग के नाम पूछते हैं। तृण तरु के गुण पूछते हैं। गिरि वन वाग का पुण्य प्रभाव पूछते हैं और अत्रि मुनि सबका पृथक् पृथक् वर्णन करते हैं। भाव यह कि यात्रा में यात्री को इन सब बातों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। केवल रास्ता नापने से यात्रा का साफल्य नहीं है।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ विलोक्त मन अभिरामा ॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई ॥३॥

अर्थ कही स्नान करते थे। कही प्रणाम करते थे। कही मनोहर वन का दर्शन करते थे। कही मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ जाते थे और सीताजी के साथ रामजी का स्मरण करते थे।

व्याख्या पुण्य जलाशयो में स्नान करते थे। भूमि विभाग को प्रणाम करते थे। खग मृग तृण तरु को देखते थे। वन वाग में मुनिजी की आज्ञा से ठहर जाते थे और बैठकर रामजानकी का स्मरण करते थे। भक्त को भगवान् के स्मरण चिन्तन

मे ही विश्राम मिलता है सृष्टि वैचित्र्य के देखने से उन्हें उस स्रष्टा के विचित्र महा-सृष्टिनैपुण्य का ध्यान बँधता है ।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा । देहि असीस मुदित बनदेवा ॥

फिरहि गएँ दिनु पहर अढाई । प्रभु पद कमल बिलोकहि आई ॥४॥

अर्थ : स्वभाव स्नेह और अच्छी सेवा देखकर वनदेव प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं । ढाई पहर बीतने पर यात्रा से लौटते हैं और सरकार के चरण कमलो का दर्शन करते हैं ।

व्याख्या : वनों के भी पृथक् पृथक् अधिष्ठातृ देवता और देवियाँ होती हैं । यथा : वनदेवी वनदेव उदारा । करिहहि सास ससुर सम सारा । सो वनदेव भरतजी का स्नेह देखकर कि सरकार के चरणों में इतनी प्रीति है । स्वभाव देखकर कि मुनिजी की आज्ञा से ही सब कुछ करते हैं । एक एक वस्तु के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं । माहात्म्य जानकर कही स्नान करते हैं और कही प्रणाम करते हैं । ऐसी सेवा देखकर वनदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और आशीर्वाद देते हैं ।

इस भाँति भरतजी ढाई पहर तक तो यात्रा में व्यतीत करते हैं । तब अपराह्न में भोजनादि के लिए लौटते हैं । लौटने पर फिर सरकार के चरणों का दर्शन करते हैं और उसी दर्शन से यात्रा की परिपूर्णता मानते हैं ।

दो. देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ ।

कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयउ दिवस भइ साँझ ॥३१२॥

अर्थ : भरतजी ने पाँच दिन में चित्रकूट के सब तीर्थों का दर्शन कर लिया । हरिहर का सुयश कहते सुनते दिन बीता और सन्ध्या हुई ।

व्याख्या : आज भी चित्रकूट की यात्रा पाँच दिनों में की जाती है । पाँच दिनों में यात्रा पूर्ण हुई । यात्रा के दिनों में अवशिष्ट समय को हरिहर सुयश के कथन श्रवण में बिताना चाहिए । अतः कहते हैं कि भरतजी का दिन इस भाँति यात्रा के नियमों को पालन करते बीता ।

तीसरी सभा

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू । भरत भूमिसुर तिरहुति राजू ॥

भल दिनु आजु जान मन माही । रामु कृपाल कहत सकुचाही ॥१॥

अर्थ : सवेरे नहाकर सब समाज जुटा । जिसमें भरतजी ब्राह्मण लोग तथा तिरहुत के राजा थे । आज अच्छा दिन है ऐसा मन में जानने पर भी राम कृपालु कहने में सङ्कोच करते हैं ।

व्याख्या : सब कुछ निर्णय हो गया । भरतजी की समाज के सहित यात्रा भी समाप्त हो गयी । लोग नहा नहाकर सरकार के पास आगये । अब उन लोगों

को छुट्टी माँगनी चाहिए। पर कोई कुछ कहता नहीं है। रामजी मन में सोच रहे हैं कि आज यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त है। यात्रा का मुहूर्त जल्दी मिलता नहीं। अतः इन लोगों को आज चला जाना चाहिए। पर मैं कैसे कहूँ कि आप लोग जाइये। रामजी इस सङ्कोच में पड़ गये। बड़े कृपालु हैं। निष्ठुर वचन मुख से कहना नहीं चाहते।

गुरु नृप भरत सभा अवलोकी । सकुचि राम फिरि अवनि विलोकी ॥
शील सराहि सभा सब सोची । कहूँ न राम सम स्वामि संकोची ॥२॥

अर्थ : रामजी ने गुरु, राजा, भरत तथा सभा की ओर देखा। फिर सङ्कुचित होकर नीचे देखने लगे। शील की प्रशंसा करके सभा ने सोचा कि राम के समान सङ्कोची मालिक कहीं नहीं है।

व्याख्या : शुभ मुहूर्त का ध्यान गुरुजी को होना चाहिए। इसलिए उनकी ओर देखा। महाराज जनक को ख्याल होना चाहिए कि दोनों राज्य सूने पड़े हैं। इसलिए जनकजी की ओर देखा। भरतजी ने वन देखने के लिए आज्ञा माँगा था। सो देख चुके। अब ठहरने का कारण नहीं है। अतः उनकी ओर देखा। अन्य लोगों को ठहर ठहरकर घर की सुधि आ जाती है। यथा : छन वन रुचि छन सदन सोहाहीं। अतः उन लोगों की ओर देखा। जब कोई न बोला तो सङ्कोच से निगाह नीची कर ली।

सभी सभासद रुख पहिचाननेवाले हैं। समझ लिया कि सरकार विदा करना चाहते हैं। पर सङ्कोच से कह नहीं रहे हैं। मन ही मन प्रशंसा करते हैं कि ऐसा सङ्कोची मालिक कहीं मिलेगा। रामजी शील के सागर हैं।

भरत सुजान राम रुख देखी । उठि सप्रेम धरि धीर बिसेली ॥
करि दंडवत कहत कर जोरी । राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥३॥

अर्थ : सुजान भरतजी ने रामजी का रुख देखा। विशेष धैर्य धारण करके प्रेम के साथ उठे। दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले कि नाथ ने मेरी सब रुचि रख ली।

व्याख्या : भरत सुजान हैं। समझते हैं कि सरकार से छुट्टी भी मुझे ही लेनी पड़ेगी। मेरी ही मन्त्र से सब लोग यहाँ आये हैं। अतः विदाई के लिए कोई न कहेगा और रामजी के सबकी ओर देखने और सङ्कुचित होने का मतलब यही है कि आज अच्छा दिन है। अब सब लोग प्रस्थान करें। अतः रामजी के वियोग जन्य दुःख के सहन करने के लिए विशेष धैर्य धारण किया और प्रेम के साथ उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले कि सरकार ने मेरी सभी रुचि रख ली। मुझे सेवक जानकर सम्मानित किया। मेरा कलङ्क मिट गया। मेरे कहने पर अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने के लिए भी तैयार हो गये। वन की यात्रा के

लिए भी आज्ञा दे दो । अतः मेरा आना सार्थक हुआ । यथा : नाथ भयउ सुख साथ
गए को । लहेउँ लाहु जग जनम भए को ।

मोहि लगि सहेउ सबहि सतापू । बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥
अब गोसाईं मोहि देउ रजाई । सेवउँ अवध अवधि भर जाई ॥४॥

अर्थ : मेरे लिए सभी सन्ताप सहा और बहुत भाँति स्वयं दुःख उठाया ।
हे स्वामी ! अब मुझे आज्ञा मिले कि मैं जाकर अवधि भर अवध की सेवा करूँ ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे लिए सरकार को मानसिक सन्ताप सब
प्रकार का सहना पडा । मैंने सरकारी आज्ञा नहीं मानी । सबको इकट्ठा करके
सरकार को सङ्कोच में डाला । सरकार के चित्त में क्षोभ हुआ । कष्ट उठाया । यथा
राम सत्यव्रत धर्मरत सबकर सील सनेहु । सकट सहत सकोच बस कहिअ जो
आयसु देहु । और भी बहुत प्रकार के दुःख आपको हुए । अब मैं अधिक कष्ट देना
नहीं चाहता । केवल आज्ञा चाहता हूँ । मुझे आज्ञा हो कि जब तक सरकार वन से
नहीं लौटते तब तक मैं अयोध्या की सेवा करूँ । अर्थात् प्रजा पालन करूँ ।

दो. जेहि उपाय पुनि पाँय जनु, देखइ दीनदयाल ।

सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसल पाल कृपाल ३१३॥

अर्थ : हे कोसलपाल कृपाल ! अवधि तक के लिए मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये
जिस उपाय से हे दीनदयाल ! यह दास फिर चरणों का दर्शन करे ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि कोसलपाल आप है । आप ही कोसल के
प्रकृत राजा हैं । प्रजा के हृदय पर आप का राज्य है । मैं तो कोसलपुर का सेवक
होकर उसकी सेवा उतने ही दिन करूँगा जितने दिन कि आप वन में हैं । अब
आप कृपा करके ऐसी शिक्षा दीजिये जिससे मैं अयोध्या का पालन भी करूँ और
लौटने पर सरकार उसे जूठा न समझें और मैं भी जिस उपाय का अवलम्बन करके
उतने दिन तक जीवन धारण कर सकूँ । भाव यह है कि आप दीनदयाल हैं । कृपाल
हैं । मैं दीन हो रहा हूँ । मुझे यह उपाय नहीं सूझ रहा है कि चौदह वर्ष तक बिना
आपके मैं कैसे जीवन धारण कर सकूँगा और लौटने पर सरकार को यह धारणा
भी न हो कि चौदह वर्ष तक भरत ने शासन किया तो अब मैं जाकर इसे कैसे
हटाऊँ । इसी को शासन करने दो । सरकार की दयालु प्रकृति होने से मुझे यह भी
भय हो रहा है । अतः कृपा करके आप ही उपाय बताइये ।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं । सब सुचि सरस सनेह सगाई ॥

राउर बदि भल भव दुख दाहू । प्रभु विनु वादि परम पद लाहू ॥१॥

अर्थ : हे गोसाईं ! पुरजन कुटुम्बी और प्रजा सब स्नेह के सगापन से सरस
और पवित्र हैं । आप के लिए ससार के दुःख का दाह भी भला है । प्रभु के बिना
परम पद का लाभ भी व्यर्थ है ।

व्याख्या : अपनी ओर से कहकर अब प्रजा की ओर से कहते हैं कि पुरजन और परिजन सब स्नेह के नाते से सरस है। यथा : हम सम पुन्य पुज जग थोरे। जिनहि राम जानत करि मोरे। अतः सब पवित्र हैं। क्योंकि भक्ति से ही अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई।

सभी की यह व्यवस्था है कि आपके लिए यदि संसार दुःख का दाह भी हो तो अच्छा मानते हैं। भाव यह कि संसार के दुःख का दाह यदि अपने लिए हो तो बुरा है। यथा : डरपहि धीर गहन सुधि आये। पर आपके लिए वह भी सहना परम सुखद है। यथा : सुख समेत संवत दुइ साता। पल सम होहि न जनिअहि जाता। और यदि आप न हो तो परम पद की प्राप्ति भी व्यर्थ है। यथा : सगुन उपासक संग तहँ रहहि मोक्ष सुख त्यागी।

स्वामि सुजानु जानि सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रणतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहँ दिसि ओर निवाहू ॥२॥

अर्थ : हे स्वामि सुजान प्रणतपाल ! आप तो सबके हृदय की रुचि और रहनी सम्बन्धी जी की लालसा जानकर सबका पालन करेंगे। दोनों तरफ का पूरा निर्वाह करेंगे।

व्याख्या : सुजान तो वही हैं जो हृदय की बात जान लें। आप सुजान स्वामी हैं। सबके हृदय की बात जानते हैं। आपसे किसी की रुचि, लालसा और रहनी छिपी नहीं है।

रुचि यथा : दोउ समाज अस रुचि मन माँही।
बिनु सिय राम फिरव भल नाँही ॥
दाहिन दैउ होइ जब सबही।
राम समीप बसिअ बन तबही ॥
लालसा यथा : गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी।
रमा रमनपद बंदि बहोरो।
बिनवहि अंजुलि अंचल जोरो ॥
राजा राम जानकी रानी।
आनंद अवधि अवध रजधानी ॥
गुह समाज भाइन्ह सहित रामराज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माँग सब कोउ ॥
रहनि यथा : राम दरस हित नेम व्रत लगे करन नर नारि।
मनहु कोक कोको कमल दीन बिहीन तमारि ॥

आप प्रणतपाल हैं। यहाँ सभी प्रणत हैं। यथा : मंगल मूरति लोचन भरि भरि। निरखहि हरपि दंडवत करि करि। अतः सरकार सबका पालन करेंगे और घर और बन दोनों ओर का निर्वाह करेंगे।

अस मोहि सव बिधि भूरि भरोसो । किये बिचार न सोचु खरो सो ॥

आरति मोर नाथ कर छोह । देहु मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोह ॥३॥

अर्थ मुझे तो ऐसा बड़ा भारी भरोसा है । यदि विचार करता हूँ तो सोच की बात कुछ भी नहीं है । अपनी आर्ति और सरकार का छोह दोनों ने मिलकर मुझे हठ करके ढीठ बना दिया ।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि सरकार सबका पालन करेंगे । घर वन दोनों का निर्वाह करेंगे । इस बात का मुझे पूरा भरोसा है । अतः विचार करने पर तो सोच को कहीं स्थान नहीं है । फिर भी मैं सोच करता हूँ । अविनय विनय यथा रुचि वाणी बोलता हूँ । तो यह मेरी ढिठाई है । मैं ढिठाई करना चाहता नहीं । परन्तु मैं आर्ति हूँ और आर्ति से ढिठाई हो ही जाती है । यथा आरति बस सनमुख भइउ बिलग न मानव तान । और छोह करने से भी बच्चे ढीठ हो जाते हैं । सो सरकार का छोह इतना है कि उसने भी मुझे ढीठ बना दिया है ।

यह बड दोषु दूरि करि स्वामी । तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥

भरत विनय सुनि सवहि प्रससी । छीर नीर विवरन गति हसी ॥४॥

अर्थ हे स्वामिन् । इस बड़े दोष को दूर करके मैं अनुचर हूँ मुझे शिक्षा दीजिये । भरत की प्रार्थना सुनकर सबने प्रशंसा की कि भरतजी की वाणी दूध और जल को अलग करने के लिए हस सी थी ।

व्याख्या वात्सल्य को स्थान देकर सरकार मेरा सम्मान करते हैं । इससे मेरी ढिठाई बढ़ती है । मैं इसे बड़ा दोष मानता हूँ । सो सरकार मेरा सम्मान न कर और सङ्कोच छोड़कर मुझे शिक्षा दें कि मैं अवध की सेवा किस भाँति करूँ । मुझ जो बिधि पालन करने की सरकार बतलायेंगे उसी विधि से मैं पालन करने का प्रयत्न करूँगा । भावार्थ यह कि आपके अयोध्या में न रहने पर आपकी आज्ञा से अवध का पालन करना मुझे स्वीकार है । परन्तु जिस विधि से मैं पालन करूँ वह विधि भी आपकी बतलायी हुई होगी तभी सेवा धर्म निबहेगा ।

ऐसे गुण दोष की पृथक् करनेवाली वाणी की उपमा हस से दी गयी है । इसे सुनकर सभी ने प्रशंसा की ।

दो दीनबधु सुनि वधु के, वचन दीन छलहीन ।

देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रवीन ॥३१४॥

अर्थ दीनबन्धु प्रवीण रामचन्द्र भाई के छलहीन दीन वचन सुनकर देश काल और अवसर के अनुकूल बोल ।

व्याख्या सरकार दीनबन्धु है । भरतजी बन्धु भी है और दीन वचन बोल रहे हैं । सरकार प्रवीण हैं । जानते हैं कि इस वचन में छल की छाया नहीं है । यदि भरतजी शिक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं तो उनका ऐसा करना उचित है । अतः

देश काल और अवसर अनुसार बोले । देश काल और अवसर के अनुसार बोलना ही प्रवीणता है ।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की । चिता गुरहि नृपहि घर वन की ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू । हमहि तुम्हहि सपनेहु न कलेसू ॥१॥

अर्थ है तात । मेरी परिजन की, घर की और वन की चिन्ता गुरुजी और महाराज को है । हम लोगो के सिर पर गुरुजी और मिथिलाधिपति बने हैं । हमे और तुम्हें सपने मे भी कलेश नहीं है ।

व्याख्या : भरतजी ने कहा था • देव दुहु दिसि ओर निबाहु । उसी के उत्तर मे सरकार कहते हैं हम लोग अनाथ नहीं हैं कि चिन्ता करें कि घर मे क्या होता होगा या वन मे क्या होता होगा । भरतजी ने सब बोझा अपने बड़े रामजी पर रक्खा और रामजी सब बोझा अपने बड़े गुरुजी तथा महाराज जनक पर रख रहे हैं ।

हम लोगो के सिर पर गुरुजी तथा महाराज मिथिलेश के करकमलो की छाया है । हमे या तुम्हे चिन्ता करने की कोई बात नहीं है । गुरुजी तथा महाराज जनक सदा रक्षा करेंगे ।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु । स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालिहि दुहु भाई । लोक वेद भल भूप भलाई ॥२॥

अर्थ • मेरा तुम्हारा परम पुरुषार्थ स्वार्थ सुयश और परमार्थ यही है कि दोनो भाई पिता की आज्ञा पालन करें । राजा की भलाई से लोक और वेद मे भी भला है ।

व्याख्या • नीति प्रीति परमारथ स्वारथ । कोउ न राम सम जान जथारथ । सो रामजी निर्णय किये देते हैं कि स्वार्थ, सुयश, धर्म और पुरुषार्थ सब कुछ पिता की आज्ञा पालन करने मे हैं । यथा • पिता धर्म पिता कर्म पितैव परमा गति । पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता । अतः रामजी कहते हैं कि हम दोनो भाइयो की सब तरह से भलाई पिता की आज्ञा के पालन करने मे है । आज्ञा पालन से सुरपुर मे चक्रवर्तीजी की सन्तोष होगा । उनका सत्य अधुण रह जायगा । उनकी भलाई होगी तो हम लोगो का भी लोक और परलोक सुधरेगा । यहाँ वेद शब्द परलोक का उपलक्षण है । क्योंकि वह अज्ञातार्थ का ज्ञापक है ।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें । चलेहुँ कुमग पग परहि न खाले ॥
अस विचारि सब सोच विहाई । पालहु अवध अवधि भरि जाई ॥३॥

अर्थ • गुरु पिता माता स्वामी की शिक्षा पालन करने से बेरास्ते चलने पर भी पैर खाले मे नहीं पडता । ऐसा विचार करके सब सोच छोडकर अवधि पर्यन्त अवध का पालन करो ।

व्याख्या स्वयं वेद कहता है मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । स्वामी भी पिता ही है । क्योंकि वह रक्षा करता है । पातीति पिता । पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है । इन चारों में देवभाव रखना चाहिए । जिस भाँति देवता की आज्ञा में विचार को स्थान नहीं है तदनुसार कार्य करने से हानि हो नहीं सकती । ईश्वरीय सहायता होती है । गुरु पिता माता स्वामी को आज्ञा अटपटी होने पर भी हानिकारक नहीं हो सकती । परिणाम उसका अच्छा ही होता है । रामजी के कहने का भावार्थ यह है कि हम लोग तो भल रास्ते पर चल रहे हैं हमारी हानि कैसे होगी ?

अब रामजी आज्ञा देते हैं कि ऐसा विचारकर सब सोच छोड़कर चौदह वर्ष तक अयोध्या का पालन करो । लौट आने पर मैं सँभाल लूँगा ।

देसु कोसु परिजन परिवारु । गुर पद रजहिं लाग छरुभारु ॥

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी । पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥४॥

अर्थ देश, कोश, पुरवासी और परिवार आदि की जिम्मेदारी तो गुरुजी के चरणा की धूलि को है । तुम मुनिजी माता और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर पृथ्वी प्रजा और राजधानी की रक्षा करना ।

व्याख्या भरतजी ने शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की थी । अतः सरकार कहते हैं कि तुम्हें तीन काम करना है पृथ्वी का पालन । प्रजा का पालन और राजधानी का पालन । सो गुरुजी माता और मन्त्रियों की सम्मति लेकर करना । पृथ्वी दूसरे के अधिकार में न जाने पावे । प्रजा दुखी न हो और राजधानी की व्यवस्था बिगडने न पावे । राजधानी ही सम्पूर्ण व्यवहार का स्रोत है ।

दो मुखिया मुखु सो चाहिये, खान पान कहँ एक ।

पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥३१५॥

अर्थ तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया मुख की भाँति होना चाहिए । जो अकेले खाय और पीये । पर सब अङ्गों का विवेक के सहित पालन पोषण करे ।

व्याख्या मुख अकेले ही खाता है और पीता है । पर अपने पास कुछ नहीं रखता । उसे कूँच पीसकर पाक के योग्य बनाकर पक्वाशय के सुपुर्द कर देता है और वहाँ से उसका रस बनकर यथायाग्य सब अङ्गों का पोषण होता है । विवेक के साथ भोजन का भाव यह कि इतना न खा जावे कि अजीर्ण हो जाय । न इतना कम खाय कि शरीर क्षीण हो जाय । शुद्ध और पथ्य पदार्थ का ही सेवन करे ।

इसी भाँति मुखिया को आचरण करना चाहिए । वह जो कुछ ग्रहण करे इसमें से कुछ अपने पास न रखे । सबका सब सार्वजनिक कार्य विभाग के सुपुर्द कर दे और वहाँ से यथोचित सबका पालन हो । इतना अधिक कर न ले कि प्रजापीडा हो और इतना कम भी न ले कि शासन व्यवस्था दुर्बल हो जाय । जिनसे कर लेना उचित है उन्हीं से ले । शास्त्रीय मर्यादा भङ्ग न हो ।

राजधरम सरवसु एतनोई । जिमि मन माँह मनोरथ गोई ॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती । बिनु आधार मन तोषु न साँती ॥१॥

अर्थ : राजधर्म का सार सर्वस्व इतना ही है । जैसे मन में मनोरथ छिपा रहता है । रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया । परन्तु बिना आधार के न मन में सन्तोष हुआ न शान्ति हुई ।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि इतना ही राजधर्म का सर्वस्व है । शेष का सम्पूर्ण राजधर्म इसका विस्तार है । इस पर ध्यान रहने से सम्पूर्ण राजधर्म का पालन होगा । जैसे सम्पूर्ण मनोरथों का निवास मन में ही रहता है उसी भाँति सम्पूर्ण राजधर्म इसी दोहे में है । इस भाँति राजधर्म की शिक्षा देकर बहुत भाँति से भरतजी को समझाया । यथा :

तुम्हरे निवाहे निवहेगी सबही कि बलि उर धरि धीर धर्म मारग सँवारिये ।
जा में विजय आनंद बधाई तिहुँलोक बजै विप्र सुर साधु महि सकट निवारिये ॥
होवै सुरकाज महाराज को वचन साँच तात कुल कीरति पताका फहराइये ।
वचन तिहारो मानि आइके करोगो राज अवधि बिताय तौलों अवध सँवारिये ॥

इस प्रकार से बहुत समझाया । परन्तु भरतजी साकारोपासक हैं । उन्हें आधार चाहिए । बिना आधार के उन्हें न सन्तोष है न शान्ति है ।

भरत सील गुरु सचिव समाजू । सकुच सनेह बिबन रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही । सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥२॥

अर्थ : भरत का शील और गुरु तथा सचिव का समाज, रघुराज सङ्कोच और स्नेह के वश में पड़ गये । कृपा करके प्रभु ने अपने खड़ाऊँ दिये जिन्हे आदर के साथ भरतजी ने सिर पर चढ़ा लिये ।

व्याख्या : इधर भरतजी का शील उधर बड़ों का तथा पिता के मन्त्रियों का समाज । भरतजी अवलम्ब चाहते हैं । बड़े के अभाव में उसकी चरण पादुका के ही उपासना की सनातन रीति है । अतः अपनी चरण पादुका देना प्राप्त है । परन्तु बड़ों के समाज में अपनी चरण पादुका देने में रामजी को सङ्कोच है । भरत का इतना शील स्नेह है कि उनके माँगने पर कैसे न दें । इधर बड़ों के समाज में अपने चरण पादुका के देने में सङ्कोच है । अतः रामजी सङ्कोच के वश में पड़ गये । अन्त में स्नेह की ही विजय हुई । सरकार को चरणपादुका देनी पड़ी ।

चरन पीठ करुनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरत सनेह रतन के । आखर जुग जनु जीव जतन के ॥३॥

अर्थ : करुनानिधान के खड़ाऊँ : चरणपीठ मानो प्रजाप्राण के दो पहरेदार हैं । भरतजी के प्रेमहपी रत्न के लिए डब्बा है । जाव के यत्न के लिए मानो दो अक्षर हैं ।

व्याख्या : सरकार के खड़ाऊँ मानो दो पहरेदार प्रजा के प्राण के हैं । वे उसे निकलने न देंगे । प्रजा यह समझकर प्राण धारण करेगी कि सिंहासन पर रामजी नहीं हैं तो उनका खड़ाऊँ तो है । अब निर्विवाद रूप से रामजी का राज्य है ।

रक्षा के लिए रत्न पेटक में रखे जाते हैं । पेटक में दो ढकने होते हैं । भरतजी का प्रेम बड़ा बहुमूल्य है । इसलिए उसे रत्न कहते हैं । जिस भाँति रत्न का आधार पेटक होता है । उसी भाँति भरतजी के प्रेम का आधार दोनों खड़ाऊँ हुए । भरतजी उन्हीं का पूजन करेंगे । सिंहासन पर स्थापित करेंगे । उन्हीं से आज्ञा लेकर सब राजकाज सँभालेंगे ।

इन खड़ाऊँ की आराधना से रामजी की प्राप्ति होगी । जिस भाँति रा और म दोनों के जप से रामजी की प्राप्ति जीव को होती है । यथा : नाम निरूपन नाम जतन से । सोउ प्रकटत जिमि मोल रत्न से ।

कुल कपाट कर कुशल करम के । विमल नयन सेवा सुधरम के ॥

भरत मुदित अवलंब लहे ते । अस सुख जस सिय राम रहे ते ॥४॥

अर्थ : कुल के लिए मानो किवाड़ थे । कर्म के लिए मानो दोनों कुशल हाथ थे । सेवारूपी सुधर्म के लिए मानो दोनों नेत्र थे । अवलम्ब प्राप्त होने से भरत प्रसन्न हुए । उन्हें ऐसा सुख हुआ जैसा सीता राम के रह जाने से होता ।

व्याख्या : कुल के लोगों के लिए भी वह खड़ाऊँ प्राणाधार हुआ । अतः कुल का रक्षक हुआ । कपाट से रक्षा होती है । यथा : ध्यान तुम्हार कपाट । कपाट भी दो होते हैं और खड़ाऊँ भी दो होते हैं । कर्म का कौशल यही है कि वह बन्ध का कारण न हो । इन खड़ाऊँ को सिंहासनारूढ करके जो राजकार्य भरतजी करेंगे वह बन्धन का कारण न होगा । इसलिए उन्हें कर्म के लिए दो कुशल हाथों से उपमित किया । सेवारूपी सुधर्म के लिए तो वे मानो दोनों आँख हो गये । माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति । भरतजी उन्हीं खड़ाऊँ की आज्ञा से सब राजकार्य करते थे । ये खड़ाऊँ न होते तो किससे आज्ञा माँगते । आज्ञा सम न सुसाहिव सेवा । अतः वह सेवा अन्धों की सेवा सी होती । मन में स्थिर न कर सकते कि जो मैं कर रहा हूँ वह सरकार की मर्जी के अनुकूल है या नहीं । खड़ाऊँ के कारण निश्चय करने में सुभीता था । इसलिए उसे आँख कहा ।

दो. माँगेउ विदा प्रनामु करि, राम लिये उर लाइ ।

लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाइ ॥३१६॥

अर्थ : प्रमाण करके विदा माँगा । रामजी ने हृदय से लगा लिया । कुटिल इन्द्र ने कुअवसर पाकर लोगों के चित्त में उचाट कर दिया था ।

व्याख्या : पाँवरी मिल गयी । अतः काम पूरा हो गया । इसलिए भरतजी ने प्रणाम किया और विदा माँगी । रामजी ने हृदय से लगा लिया । भाव यह कि तुम प्राण से प्यारे हो । अवश होकर मैं विदा करता हूँ । कवि इन्द्र को कपटी कहते हैं

कि ऐसे करुणा के अवसर मे भी उन्हें वपट न भूला । देखा कि यह मेरे लिये बड़ा अच्छा अवसर है । इस समय उच्चाट का प्रयोग करने से रामजी अप्रसन्न न होंगे और लोगो ने जो निश्चय किया था कि बिना रामजी के फिरना अच्छा नही वे हठ भी न करेंगे ।

सो कुचालि सब कहं भइ नीकी । अवधि आस सम जीवनि जी की ॥

नतरु लखन सिय राम वियोगा । हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥१॥

अर्थ : वह कुचाल सब के लिए अच्छी हो गयी । अवधि की आशा के समान जीव की जीवन हो गयी । नही तो लक्ष्मण सीता और राम के वियोगरूपी कुरोग से सब लोग हहरकर मर जाते ।

व्याख्या : अवधि आस सब राखहि प्राना । सबका जीवनाधार अवधि हो गयी थी । अर्थात् सब यह आशा लगाये जी रहे थे कि चौदह वर्ष बाद फिर भेंट होगी । उसी भाँति यह उच्चाटन भी जीवनाधार हो गया । नही तो लक्ष्मण सीता और रामजी का वियोग ऐसा कुरोग था जो सबका प्राण लेकर ही छोड़ता । उच्चाटन के कारण वियोग व्यथा बहुत कुछ कम हो गयी ।

रामकृपा अवरेव सुधारी । विबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥

भेटत भुज भरि भाइ भरत सो । राम प्रेमरसु कहि न परत सो ॥२॥

अर्थ : रामजी की कृपा ने अवरेव सुधार दिया । देवताओ की सेना गुणदायक गोहार हो गयी । भुजा भरके भरत से भाई को भेंटते हुए रामजी का वह प्रेमरस बहते नही बनता ।

व्याख्या : देवताओ ने तो लोगो की बुद्धि को विकृत करने के लिए उच्चाटन का प्रयोग किया था । इससे उनकी बुद्धि मे विकार भी हो गया । पर रामजी की कृपा से वह विकार लाभदायक हो गया । विगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई । अवरेव टेढी काट को कहते हैं । सो देवताओ की यह टेढी चाल • कुचाल रामकृपा से हितकर सिद्ध हुई । देवता लोग तो सब मिलकर अहित करने चले थे । जिस भाँति सेना अहित करने चलती है । पर रामजी की कृपा से वह सेना गोहार हो गयी । हितकारिणी हो गयी । निर्बल की सहायता के लिए जो लोग इकट्ठे होकर चलते हैं उसे गोहार कहा जाता है । यथा : गाय गोहार तिरिया गोहार आदि ।

भयउ न भुवन भरत सम भाई । सो ऐसे भाई का गाढ आलिङ्गन करने मे जिस प्रीतिरस का प्रादुर्भाव हुआ वह सर्वथा अवर्णनीय था ।

तन मन वचन उमग अनुरागा । धीर धुरंधर धीरजु त्यागा ॥

बारिज लोचन मोचत वारी । देखि दसा सुर सभा दुखारी ॥३॥

अर्थ : शरीर मन और वचन मे अनुराग उमड़ पड़ा । धैर्यधारियो के धुरन्धर ने

धैर्य छोड़ दिया । कमल ऐसे नेत्रों से जल गिर रहा है । इस दशा को देखकर देवसभा दुःखी हो गयी ।

व्याख्या • तन मन बचन से रामजी का उमङ्ग कही नहीं कहा गया । क्योंकि सरकार का स्वभाव हर्ष शोक से रहित है । यथा : विस्मय हरख रहित रघुराज । तुम जानहु सब राम प्रभाज । सो यहाँ प्रेम ऐसा बढ़ा कि सरकार के स्वभाव में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा । इतने बड़े धीर का धैर्य डग गया । आँखों से जल गिरने लगा ।

देवताओं का तो काम बन रहा था । पर सरकार की दशा देखकर वे भी दुःखी हो गये । इसीलिए सेना शब्द का प्रयोग न करके कवि ने सभा शब्द का प्रयोग किया ।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से । ग्यान अनल मन कसे कनक से ॥

जे विरचि निरलेप उपाए । पदुम पत्र जिमि जग जल जाए ॥४॥

अर्थ • मुनि समाज गुरु वसिष्ठजी और जनक के समान धीर जिनका मन-रूपी सोना ज्ञान की अग्नि में कसा हुआ था । जिन्हें ब्रह्मदेव ने निर्लेप उत्पन्न ही किया था । ससाररूपी जल में जो कमल के पत्ते की भाँति पैदा हुए थे ।

व्याख्या : मुनि समाज का अर्थ ही ज्ञानी समाज है । स्थितधीर्मुनिरुच्यते । क्योंकि स्थितप्रज्ञ को ही मुनि कहते हैं । उनमें भी वसिष्ठजी सबसे अग्रगण्य जिन्होंने योगवासिष्ठ कहा है और जनक के समान धीर । जिनका कहना है • सहज विराग रूप मन मोरा । मिथिलाया न मे किञ्चित् प्रदह्यते । वामदेवादि गर्भज्ञानी । जो ससार में ही पैदा हुए । ससार से ही जीवन धारण करते हैं । फिर भी पद्मपत्र की भाँति निर्लेप रहते हैं । वे भी ।

दो तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार ।

भए मगन मन तन बचन, सहित विराग विचार ॥३१७॥

अर्थ : वे भी रामजी के मिलने की अनुपम अपार प्रीति देखकर विराग और विचार के सहित तन मन बचन से मग्न हो गये ।

व्याख्या भरत और रामजी की प्रीति की उपमा नहीं है । क्योंकि प्रीति तो स्वार्थ को लेकर होती है । यथा सुर नर मुनि सबके यह रीती । स्वार्थ लागि करहिं सब प्रीती । और इनकी प्रीति में स्वार्थ का लेश नहीं । इसलिए प्रीति को अनूप कहा और राम सकोची प्रेम बस भरत सुप्रेम पयोधि । इससे अपार कहा और भी अनूपता यह है कि ऐसे ऐसे ज्ञानी भी उसे देखकर प्रेम में डूबने लगे । उनका विवेक विचार भी डूबने लगा । ज्ञानी तो पद्मपत्रमिवाम्भसा रहते हैं । उनके प्रेम में डूबने का तो प्रश्न ही नहीं उठता । वे विवेक के जहाज पर चढ़े हैं । पर यह प्रेम ऐसा अनूप अपार था कि इसे देखकर डूबने लगे और ऐसा अपार था कि पार न पा सके ।

भावार्थ यह कि ऐसे ऐसे लोग भी प्रेमाकुल हो गये । उनका विवेक विचार उस समय कार्य करने में असमर्थ हो गया ।

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
वरनत रघुवर भरत वियोगू । सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू ॥१॥

अर्थ : जहाँ जनक और गुरुजी की मति की गति भोली हो जाती है उस प्राकृत प्रीति कहना बड़े दोष की बात है । रामजी और भरत के वियोग का वर्णन करने से सुनकर लोग कवि को कठोर जानेंगे ।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं कि मुनिगण वसिष्ठजी और जनकीजी राम और भरत की अपार प्रीति देखकर विवेक विचार के साथ मग्न हो गये । अर्थात् उन लोगों की मति गति भोली हो गयी । वह प्रीति सांसारिक प्रीति नहीं है । वह भक्त और भगवान् की प्रीति अलौकिक है । संसार से मन हटाकर ही भगवान् में लगान सम्भव है । अतः उस प्रीति को सांसारिक प्रीति कथमपि नहीं कहा जा सकता । उसे सांसारिक प्रीति भाई भाई की प्रीति कहने में बड़ा दोष है ।

दूसरी बात यह है कि रामजी और भरतजी के वियोग वर्णन में इतनी करुण है कि उसके वर्णन को सुनकर लोग वर्णन करनेवाले को कठोर कहेंगे । अतः जो विषय वर्णनातीत है और उसके वर्णन के प्रयत्न में सुननेवाले भी उसे बुरा कहें उस विषयको अच्छा छोड़ देना ही ठीक है ।

सो सकोचु रसु अकथ सुवानी । समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी ॥
भेटि भरतु रघुवर , समुझाए । पुनि रिपुदवनु हरखि हिय लाए ॥२॥

॥ अर्थ : वह सङ्कोच है और रस कथनीय नहीं है । सुन्दर वाणी समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी । रामजी ने भरत से गले मिलकर उन्हें समझाया । तत्पश्चात् फिर शत्रुघ्नजी को हर्षित होकर हृदय से लगा लिया ।

व्याख्या : एक तो कठोर कहे जाने का सङ्कोच दूसरे वियोग में रसका उत्कर्ष संयोग से भी अधिक हो जाता है । सो राम और भरत के वियोग का रस सर्वथा अकथनीय है । अतः कवि की सुवाणी उस समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी । कुछ कह न सकी अर्थात् अपना नृत्य उसने वन्द कर दिया ।

। अब निष्कर्ष कहते हैं कि रामजी ने भरतजी से गले मिलकर उन्हें समझाया ।

यथा : मे पितु बचन प्रमाण करि करि पूरन सुरकाज ।
जब लगि आवत तात तुम पालहु राज समाज ॥
अघटित घटना जो घटी सो सुर माया जानि ।
सोच करहु' जनि ईस बस जीव सदा जिय जानि ॥
निज स्वार्थ हित सब सहत दुःख सुख योग वियोग ।
जग मंगल हित सहहि दुःख तात धन्य ते लोग ॥

शत्रुघ्न सबसे छोटे हैं। उन पर बड़ा वात्सल्य है। अतः हर्ष से हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई ॥

सुनि दारुन दुख दुहुँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा ॥३॥

अर्थ सेवक और मन्त्री भरतजी का रुख पाकर अपने अपने काम में सब लग गये। दारुण दुख की बात सुनकर दोनों समाज चलने का साज सजने लगे।

व्याख्या सरकार के समझाने से भरतजी को प्रबोध हो गया। क्योंकि पादुका प्राप्त कर चुके थे। अतः उनका चलने का रुख हुआ। रुख देखकर मन्त्री लोग अपने कार्य में लगे। तिलक का साज साथ आया था। सबको संभालकर ले चलना, सेना को आज्ञा देना, माताओं के चलने की व्यवस्था आदि में तथा सेवक लोग अपनी अपनी सेवा सम्बन्धी व्यवस्थाओं में लग गये। रुख पाकर कार्य करने की विशेषता। अयोध्याकाण्ड भर में गोस्वामीजी ने दिखलाया है। चिन्तित कार्य करना ही उत्तम सेवक का लक्षण है। आज्ञा पाने पर कार्य करनेवाले मध्यम हैं। आज्ञा पाने पर भी आनाकानी करनेवाले अधम हैं।

दोनों समाज ने सुन लिया कि भरतजी विदा हो लिये। तो उन्हें दारुण दुख हुआ। देवताओं की माया के काम करते रहने पर भी उनके प्रेम की माया में अधिक ह्रास नहीं हुआ। इतना ही हुआ कि वे दुःखी मन से चलने को तैयार हो गये। अपना अपना बोरिया बधना बाँधने लगे।

प्रभु पद पदुम बदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई ॥

मुनि तापस वनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥४॥

अर्थ सरकार के चरण कमलों की वन्दना करके दोनों भाई रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके चले। मुनि तपस्वी और वनदेव का निहोरा किया। सबका बार बार सम्मान किया।

व्याख्या दोनों भाई भरतजी और शत्रुघ्नजी ने मिलने के बाद रामजी के चरण कमलों की वन्दना की और चल पड़े। जो सरकार से प्राप्त होता है उसे भरतजी शिरोधार्य करते हैं। पादुका मिली उसे शिरोधार्य किया। यथा प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही। इस समय जाने के लिए आज्ञा हुई उसे भी शिरोधार्य किया। पहिले भरतजी ने कहा था अब गोसाईं मोहि होइ रजाई। सेवहुँ अवध अवधि भरि जाई। सो आज्ञा मिल गयी कि अवधि भर अर्थात् मेरे लौटने तक जाकर राज्य की सेवा करो। अतः आज्ञानुसार सेवा करने के लिए भरतजी चल। चलते समय मुनि तपस्वी और वनदेवों का भरतजी ने निहोरा किया। बार बार सम्मान किया कि आप लोगो ने बड़ी कृपा की। हम लोगो के दुख सुख में बड़ी सहानुभूति दिखलायी। ऐसी ही कृपा सदा बनी रहे इत्यादि।

दो. लखनहि भेटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि ।

चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमगल मूरि ॥३१८॥

अर्थ लक्ष्मणजी से गले मिलकर और प्रणामपूर्वक सीताजी की चरण की धूलि सिर पर धारण करके सकल सुमङ्गल मूल आशीर्वाद श्रवण करके प्रेम के साथ प्रस्थान किया ।

व्याख्या : इस समय लक्ष्मणजी सीताजी के सन्निकट थे । सो दोनों भाई लक्ष्मणजी से मिले । प्रणामादि प्रक्रिया मिलने के ही अन्तर्गत है । तत्पश्चात् भगवती जनकनन्दिनी को प्रणाम करके उनकी चरण की धूलि को सिर पर धारण किया । भगवती की चरण धूलि की महा महिमा भरतजी जानते हैं । आये तब भी उस धूलि को सिर पर धारण किया था । जाने के समय भी सिर पर धारण कर रहे हैं । इस समय भगवती ने स्पष्ट शब्दों में आशीर्वाद दिया । पहिले से ही चित्त को सावधान आशीर्वाद देने के लिए किये हुए हैं । माता का आशीर्वाद अमोघ है । यथा - आसिस तव अमोघ विख्याता । अतः सुमङ्गल मूल कहते हैं ।

सानुज राम नृपहि सिर नाई । कीन्हि बहुत विधि विनय बड़ाई ॥

देव दया बस बड़ दुखु पायेउ । सहित समाज काननहि आयेउ ॥१॥

अर्थ . लक्ष्मण के सहित रामजी ने जनकजी को प्रणाम किया और बहुत विधि से विनय और स्तुति की । कहा कि राजन् ! आपने दया परवश होकर बहुत दुःख पाया । समाज के सहित वन में चले आये ।

व्याख्या : भरतजी के विदा होने पर लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि अब सरकार जनकजी को विदा करेंगे । अतः लक्ष्मणजी रामजी के पास चले आये और उनके साथ जनकजी को प्रणाम किया । श्री रामजी ने जनकजी की स्तुति की । ऐसे अवसर पर बड़ों की स्तुति करना प्राप्त है । विनय भी किया । संक्षेप में स्तुति कहते हैं कि आप ब्रह्मज्ञानियों के सरदार हैं । आपकी सब में समदृष्टि है । अतः आपके लिए अपना पराधा कुछ भी नहीं । आपका कष्ट उठाना केवल दयापरवश होने से होता है । सो आपने बड़ा कष्ट उठाया । समाज के सहित जनकपुर से यहाँ वन में चले आये ।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा । कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ॥

मुनि सहिदेव साधु सनमाने । विदा किए हरि हर सम जाने ॥२॥

अर्थ : अब आशीर्वाद देकर पुर को पधारिये । महाराज ने धैर्य धारण करके प्रस्थान किया । मुनिगण, साधुगण, ब्राह्मणों का सम्मान करके हरि और हर के समान करके विदा किया ।

व्याख्या : सरकार जनकजी से कहते हैं कि आपको कष्ट उठाने बहुत दिन हुए । सो अब हम लोगो को आशीर्वाद दीजिये । आपके आशीर्वाद से ही हम लोगो का मङ्गल होगा और अब राजधानी को सनाथ कीजिये । महाराज स्नेह से विह्वल

हो रहे थे । रामजी का वचन सुनकर धैर्य धारण किया और चल पड़े । फिर भी स्पष्ट शब्दों में आशीर्वाद न दे सके ।

तत्पश्चात् सरकार ने मुनिगणों ब्राह्मणों और साधुओं को विदा किया । उन लोगों का सम्मान हरि और हर को भाँति किया । त्रिदेव में ब्रह्मा विष्णु और महादेव तीन देवता हैं । सो अपूज्य होने से ब्रह्मदेव का उल्लेख कवि ने नहीं किया ।

सासु समीप गये दोउ भाई । फिरे बंदि पग आसिप पाई ॥

कौसिक वामदेव जावाली । पुरजन परिजन सचिव सुचाली ॥३॥

अर्थ : दोनों भाई सास के पास गये और चरणवन्दना की तथा आशीर्वाद पाकर लौटे । विश्वामित्र, वामदेव, जावालि, परिजन, पुरजन तथा सज्जन मन्त्रियों को ।

व्याख्या : फिर दोनों भाई सास से मिलने जनकजी के डेरा पर गये । जाकर चरणवन्दना की । महाराज आशीर्वाद न दे सके । दोनों भाइयों के मिलन प्रीति देखने से अत्यन्त विह्वल हो गये थे । सास ने नहीं देखा था । अतः वे आशीर्वाद देने में समर्थ हुई ।

जनक समाज को विदा करके सरकार धनुर्वेद के गुरु विश्वामित्र गभंजानी वामदेव तथा जावालि महर्षि तथा परिजन, पुरजन, सज्जन तथा मन्त्रियों को सम्मान करके लौटाया । परिजन पुरजन और मन्त्रिगण अपने अपने कामों में लगे थे । अतः उनके पास जा जाकर कृपानिधि ने सबका सत्कार किया सरकार का स्वभाव सज्जन सदाचारी के पास स्वयं जाने का है । सुचाली शब्द से कवि ने वही बात जनायी ।

जथा जोगु करि विनय प्रनामा । विदा किये सब सानुज रामा ॥

नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे । सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥४॥

अर्थ : यथा योग्य विनय प्रणाम करके भाई के साथ रामजी ने विदा किया । कृपानिधान ने सब छोटे मध्यम और बड़े स्त्री और पुरुषों को सम्मान करके लौटाया ।

व्याख्या : प्रणाम में भी दर्जा है । कोई वाङ्मात्र पूजन का अधिकारी है । किसी का चरण स्पर्श किया जाता है । किसी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया जाता है । इसी प्रकार से विनय में भी तत्तम्य है । अतः रामजी ने भाई के सहित सभी पूज्य महानुभावों को यथायोग्य प्रणाम तथा विनय पूर्वक विदा किया । पूज्यपूजा व्यतिक्रम नहीं होने पाया । प्रभु कृपानिधि हैं । शेष लोगों में जो छोटे बड़े मध्यम स्त्री और पुरुष थे उन सबका सम्मान करके घर लौटाया । सामान्य लोगों को विदाई न कह कर सम्मानपूर्वक घर लौटाना कहा ।

दो. भरत मातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि ।

विदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब भेंटि ॥३१९॥

अर्थ : भरतजी की माता के चरणों की वन्दना करके पवित्र प्रेम से उनसे मिले भेटे । उनका सङ्कोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर विदा किया ।

व्याख्या : अब माताओं को विदा करना शेष रहा । सो जिस भाँति : प्रथम राम भेंटी कैकेई । उसी भाँति पहिले कैकेयी को ही विदा किया । पवित्र स्नेह से न मिलने का यथेष्ट कारण था । अतः कवि कहते हैं कि पवित्र स्नेह से मिल भेटकर : गले लगाकर विदा किया । उनका सङ्कोच और सोच दूर किया । उनके आने पर भी सरल स्वभाव और भक्ति से मिले थे पर देखा कि उनका सङ्कोच और सोच गया नहीं है । बिना बात स्पष्ट किये सङ्कोच सोच जा नहीं सकता । अतः देवमाया के भेद को स्पष्ट कहकर और भूभार उतारने के लिए वन जाने की आवश्यकता बतलाकर उसे सोच सङ्कोच से विनिर्मुक्त किया । सम्मान के लिए स्वयं पालकी सजाकर उस पर बिठाया ।

परिजन मातु पितहि मिलि सीता । फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता ॥
करि प्रनामु भेटी सब सासू । प्रेम कहत कवि हिय न हुलासू ॥१॥

अर्थ : प्राणपति में जिसका पवित्र प्रेम है । ऐसी सीताजी परिजन माता और पिता से मिलकर लौट आयी । तत्पश्चात् प्रणाम करके सब सासों से मिली । प्रेम के वर्णन करने में कविहृदय में हुलास नहीं है ।

व्याख्या : जब भरतजी प्रणाम करने आये और आशीर्वाद लेकर चले गये तब यह समझकर कि विदाई हो रही है सीताजी जनकजी के डेरे पर गयी । उसी समय दोनों भाई राम और लक्ष्मणजी भी सास से मिलने आये । सीताजी पहिले परिजनो से मिली । पीछे माता और पिता से मिलकर लौट आयी । क्योंकि प्राणप्रिय रामचन्द्र में उनका पुनीत प्रेम है । यथा : प्रीति पुरातन लखै न कोई । तथा : मन बिहँसे रघुबसमनि प्रीति अलौकिक जानि ।

अवध प्रान्त की रीति है कि बेटियाँ माँ से मिलती हैं प्रणाम नहीं करती । माताएँ भी बेटियों से मिल लेती हैं आशीर्वाद नहीं देती । तदनुसार कवि ने भी सीताजी का माता आदि से मिलना ही कहा । प्रणाम आशीर्वाद नहीं कहा ।

लौटने पर सीताजी सास लोगों के डेरे पर गयी । उनसे प्रणाम करके सब मिली । उस समय जो प्रेम का दृश्य हुआ वह ऐसा करुणामय था कि उसके लिखने में कवि के हृदय में उल्लास नहीं होता । अतः नहीं लिखा ।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई । रही सीय दुहु प्रीति समाई ॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई । करि प्रबोधु सब मातु चढाई ॥२॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और जो चाहा आशीर्वाद पाकर सीता, दोनों ओर की प्रीति में मग्न हो गयी । रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायी और समझा बुझाकर सब माताओं को चढाया ।

व्याख्या : सास लोगों ने शिक्षा दी कि इस भाँति पति तथा देवर के साथ

बर्ताव करना इत्यादि और मनचाहा आशीर्वाद दिया कि परमेश्वर तुम्हें पति देवर के साथ कुशलपूर्वक वन से घर लौटावें। यथा : पति देवर सग कुसल बहोरी। आइ करौ जेहि पूजा तोरी। तब से रामजी भी कैकेयी को विदा करके आगये। सीताजी मैके और ससुराल दोनों ओर की प्रीति में मग्न हो रही थी।

रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायी। माताओं की इच्छा जाने की नहीं। अतः उन्हें समझाया। यथा :

अवधि मात्र घोरज धरिअ अम्ब समुझि बिधि वाम।
जेहि पावै परितोष नृप अधिक वसत सुर धाम॥
तुम्हरे दुख कीन्हें अधिक पोर भरत हिय होइ।
रहैं सुखी जेहि बिधि भरत सब मिलि कीजै सोइ॥
त्यागि मोह ममता सकल सिर धरि ईस रजाय।
भजिय ताहि ससार भ्रम जाते जाय नसाय॥

एवं समझा बुझाकर पालकियों पर चढ़ाया।

बार बार हिलि मिलि दुहु भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
साजि वाजि गज वाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥३॥

अर्थ : दोनों भाई बार बार हिल मिलकर समान स्नेह के साथ माताओं को पहुँचाया। घोड़े हाथी आदि अनेक प्रकार के वाहनों का साजकर राजा जनक और भरत की सेनाओं ने प्रस्थान किया।

व्याख्या : सब माताओं से हिलने मिलने में लक्ष्मणजी साथ हैं। माताओं के साथ ठीक बच्चों सा भाव वात्सल्य की दृढ़ता के लिए दर्शाया। सब माताओं के समान स्नेह के साथ सेना तक पहुँचाया।

इधर सेना भी आयी थी। इससे गजवाजि का सजाना लिखते हैं। आने के समय दोनों सेनाएँ अलग-अलग आयी। अब विदा होकर साथ साथ चल रही हैं। क्योंकि जनकजी अवध जाना चाहते हैं। जनकजी बड़े हैं। इससे उनकी सवारी आगे आगे चल रही है। भरतजी समाज सहित उनके पीछे है।

हृदय रामु सिय लखनु समेता। चले जाहि सब लोग अचेता॥
वसह वाजि गज पशु हिय हारे। चले जाहि परवस मन मारे॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण के सहित राम जानकी हृदय में हैं। सब लोग अचेत चले जा रहे हैं। बेल घोड़े हाथी आदि पशु मन मारे हिय हारे परवश में पड़े चले जा रहे हैं।

व्याख्या : राम जानकी तथा लक्ष्मण को साथ नहीं ले जा सके तो उनकी मनोमयी मूर्तियों को हृदय में धारण किये हुए चले जा रहे हैं। पर साक्षात् उनका साथ नहीं है। अतः अचेत हैं। अर्थात् अन्तर्यामी की प्रेरणा से चले जा रहे हैं। मन जाने का अब भी नहीं है।

अचेत का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि सेना में क्रम नहीं है। पहिले बेल चल रहे हैं। सबसे आगे चलनेवाले घोड़े उनके पीछे हैं। हाथी बीच में चल रहे हैं। बैसर महिष उनके पीछे हैं। उनका मन भी जाने का नहीं है। पर पराये वश में हैं। अतः हियहारे चले जा रहे हैं। उत्साह उन्हें भी नहीं है।

दो. गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु, सीता लखन समेत ।

फिरे हरख विसमय सहित, आये परन निकेत ॥३२०॥

अर्थ : सरकार सीता और लक्ष्मण के सहित गुरु और गुरु की स्त्री के चरणों की वन्दना करके हर्ष और विस्मय के साथ लौटे और अपने पर्णकुटी में आये।

व्याख्या : सबसे प्रधान होने के कारण अन्त में भगवती अरुन्धती के साथ वसिष्ठजी की वन्दना की। गुरुजी भी जनकीजी की भाँति धैर्य सँभाले रह गये। आशीर्वाद तक न दे सके। गुरुजी की वन्दना है। धर्मकृत्य है। अतः सपत्नीक वन्दना किया। यथा : धरे चरन सिय सहित बहोरी। रघुनाथजी हर्ष विस्मय रहित हैं। सो हर्ष विस्मय सहित लौटे। सङ्कोचवश सङ्कुट में पड़े थे। उसके छूटने से हर्ष और प्रिय परिजन के वियोग से विस्मय।

विदा कीन्ह सनमानि निपादू। चलेउ हृदय बड़ विरह विपादू ॥

कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥१॥

अर्थ : सम्मान करके निपाद को विदा किया। वह चल पड़ा। उसके हृदय में बड़ा विरह और विपाद था। कोल किरात भिल्ल वन के रहनेवाले लौटने पर जोहार कर करके लौटे।

व्याख्या : सबके पीछे विदा किया। क्योंकि निपादराज पर्णकुटी के यहाँ बैठे रह गये थे। सरकार लौटकर आये तब उसका सम्मान करके विदाई की। निपादराज विदा करने पर चल तो पड़े पर उनकी इच्छा जाने की नहीं थी। सरकार के विरह से उनके हृदय में बड़ा विपाद हुआ था।

कोल किरात भिल्ल आदि वन के रहनेवाले सरकार के यहाँ इतने अतिथियों का आना देखकर आप से आप सेवा के लिए उपस्थित हो गये थे। इतने दिन साथ रहने से उन्हें सरकार का साथ छोड़ा अच्छा नहीं लगता था। अतः सरकार ने कहा कि अब तुम लोग अपने अपने निवास स्थान को लौट जाओ। तब जोहार करके लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाही। प्रिय परिजन वियोग विलखाही ॥

भरत सनेहु सुभाउ सुवानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥२॥

अर्थ : प्रभु सीताजी लक्ष्मणजी बट की छाया के तले बैठकर प्रिय परिजन के वियोग में बिलखने लगे। भरतजी का स्नेह स्वभाव सुवाणी सरकार प्रिया और अनुज से बखान करके कहने लगे।

व्याख्या इस समय वट तले कोई नहीं है। केवल यही तीन प्राणी बैठे हैं और प्रिय परिजन के वियोग में बिलख रहे हैं। उधर वे लोग भी विरह में अचेत चले जाते थे। ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्। यह युक्ति चरितार्थ हो रही थी।

सरकार भरत के स्वभाव स्नेह और सुवाणी का वर्णन प्रिया और अनुज से करने लगे।

भरत का स्वभाव यथा भरत सुभाउ न सुगम निगमह ।
भरत का स्नेह यथा होत न भूतल भाव भरत को ।
सचर अचर चर अचर करत को ॥
भरत की सुवाणी यथा बिमल विवेक धरम नय साली ।
भरत भारती मजु मराली ॥

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम वस वरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना ॥३॥

अर्थ रामजी ने भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन प्रेम के वश होकर श्रीमुख से किया। उस अवसर में चित्रकूट के पक्षी मृग और पानी की मछलियाँ चर और अचर सब उदास हो गये।

व्याख्या सरकार प्रेम के वश में हैं। इसलिए श्रीमुख से भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन सीताजी और लक्ष्मणजी से कर रहे हैं। सच्चा बखान वही है जो सामने भी किया जाय और पीठ पीछे भी किया जाय। यथा - बामदेव रघुकुल गुरु जानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी। यह बखान विश्वामित्रजी के चले जाने पर किया गया। जो कि उनकी कथा का बखान उनके सामने हो चुका था।

यथा मुनि मन अगम गाधिसुत करनी ।
मुदित बसिष्ठ विपुल बिधि वरनी ॥
बोले बामदेव सब माँची ।
कीरति कलित लोकतिहुँ साँची ॥

उस समय चित्रकूट के आकाशवासी खग पृथ्वी पर के रहनेवाले मृग तथा जल में की रहनेवाली मछलियाँ जिन्हें दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त न था सबके सब खिन्न हो गये। चर और अचर के उदास होने का कारण यह है कि चित्रकूट के अधिष्ठात्री देवता स्वयं इस वियोग के दृश्य को देखकर दुःखी हो गये थे।

बिबुध बिलोकि दसा रघुवर की। वरपि सुमन कहि गति घर घर की ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरौसो। चले मुदित मन डरु न खरो सो ॥४॥

अर्थ देवताओं ने रामजी की दशा देखकर फूला की वर्षा की और घर घर

की जो गति हो रही थी सो निवेदन किया । प्रभु ने प्रणाम करके भरोसा दिया । प्रसन्न होकर चले । उन्हें तृण के समान भी भय नहीं रह गया ।

व्याख्या : सरकार को पीड़ित देखकर मन पलटने के लिए देवताओं ने पुष्प की वर्षा की और रावण के कारण जो दशा उन लोगों की हो रही थी उसका पृथक् पृथक् वर्णन किया । उसमें सरकार के हृदय से वीररस का उदय हो । दूसरी बात यह भी है कि वनवास के प्रधान कारण होने से अपने को सापराध भी मानते हैं । अतः अपनी अपनी पीड़ा को कथा कह सुनायी कि बिना सरकार के आये हम लोगों की पीड़ा मिट नहीं सकती थी इसलिए हम लोग निरुपाय थे ।

सरकार मर्यादापुरुषोत्तम हैं । अतः प्रणाम किया और उन लोगों को भरोसा दिया कि अब मैं आगया । अब आप लोग चिन्ता न करें । सुनकर देवता लोग प्रसन्न हो गये । सरकार के अप्रमत्त होने का भय जाता रहा और सरकार के भरोसा देने से रावण से पिण्ड छूटने का दृढ़ विश्वास हो गया । अतः अपने अपने लोक को चले । नहीं तो जब से भरतजी चले थे देवता लोग साथ थे । उन्हें बड़ी उत्सुकता थी कि देखें क्या होता है ।

दो. सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर ।

भगति ग्यानु वैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२१॥

अर्थ : लक्ष्मण और सीताजी के साथ सरकार पर्णकुटी में ऐसे शोभित हैं जैसे भक्ति ज्ञान और वैराग्य शरीर धारण करके शोभित हो ।

व्याख्या : यहाँ कवि सरकार की कथा को विश्राम दे रहे हैं । पहिले जब आकर चित्रकूट में ठहरे थे । तब आनन्द का वर्णन करते हुए कहा था : राम लखन सीता सहित शोभित परन निकेत । जिमि वासव बस अमर पुर सची जयन्त समेत । इस समय प्रभु वियोगावस्था में है । इसलिए पर्ण निकेत न कहकर पर्ण कुटीर कह रहे हैं । लक्ष्मणजी की उपमा जयन्त से न देकर वैराग्य से दे रहे हैं । सीताजी को सची न कहकर भक्ति कह रहे हैं । सरकार को वासव न कहकर सशरीर ज्ञान से उपमित कर रहे हैं । निर्गलितार्थ यह कि सरकार जिस अवस्था में रहे उसी में उनकी शोभा है । यहाँ कथा को विश्राम देकर अब जहाँ से भरतचरित छोड़ा था वही से उठाते हैं ।

१३. पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसङ्ग

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू । राम विरह सब साज विहालू ॥

प्रभु गुन ग्राम गनत मन माही । सब चुपचाप चले मग जाही ॥१॥

अर्थ : मुनि, ब्राह्मण लोग, गुरुजी, भरतजी तथा राजा जनक तथा सब साज समाज रामजी के विरह में बेहाल हो रहा है । सरकार के गुणग्राम को मन में गुनते हुए सब चुपचाप रास्ते में चले जा रहे हैं ।

व्याख्या : बसह बाजि गज पसुहिय हारे । चले जात परबस मन मारे । यहाँ से प्रसङ्ग छोड़ा था । अब : राम बिरह सब साज बिहालू । कहकर उसी प्रसङ्ग को फिर से उठाते हैं । पहिले कह आये हैं : हृदय राम सिय लखन समेता । चले जात सब लोग अचेता । उसी बात को : प्रभु गुन ग्राम गुनत मन मांही । पद से कह रहे हैं । चले जात सब लोग अचेता : का अनुवाद करते हुए कहते हैं : सब चुपचाप चले मग जाही ।

जमुना उतरि पार सबु भएऊ । सो बासर विनु भोजन गएऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू । रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू ॥२॥

अर्थ : यमुना उतरकर सब लोग पार हुए । वह दिन बिना भोजन के बीत गया । दूरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला । रामसखा निषादराज ने सब सुभीता किया ।

व्याख्या : लौटते समय सीधा रास्ता पकड़ा । पहिले ही दिन यमुना पार करके डेरा डाला । जिसमे सबेरे नाव पर चढ़ने उतरने का टण्टा न रहे । विपादी को भूख नहीं लगती । अतः किसी ने कुछ खाया नहीं । प्रयागराज जाना नहीं था । इसलिए दूसरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला । दो दो सेना एक साथ चल रही हैं । अतः सिवा नदी के किनारे के दूसरी जगह पड़ाव पड़ नहीं सकता । गङ्गा पार होने पर शृङ्गवेरपुर में आगये । वहाँ निषादराज का निवास स्थान है । अतः उसने सब सुभीता कर दिया ।

सई उतरि गोमती नहाये । चौथें दिवस अवधपुर आये ॥
जनकु रहे पुर बासर चारी । राज काज सब साज सँभारी ॥३॥

अर्थ : फिर सई उतरकर गोमती नदी में स्नान किया । चौथे दिन अयोध्या पहुँच गये । जनकजी चार दिन राजधानी में रहे । राजकाज और सब साज को सँभाला ।

व्याख्या : जाते समय : तमसा प्रथम दिवस करि बासू । दूसर गोमति तीर निवासू । सई तीर बसि चले बिहाने । लौटाते समय पहिले सई पड़ी । तब गोमती पड़ी । दो दिन का रास्ता एक दिन में तय किया । अवध पुर आये : कहने से ही तमसा पार होना कह दिया गया ।

जनकजी का पहिले पहल अयोध्या आना ग्रन्थकार लिखते हैं । अयोध्या आकर जनकजी चार दिन ठहरे । इसी बीच में वहाँ के शासन प्रणाली का निरीक्षण किया । सेना कोष दुर्ग आदि की व्यवस्था का निरीक्षण किया । देख लिया कि सब ठीक है । तब :

सौपि सचिव गुर भरतहि राजू । तेरहुति चले साजि सब साजू ॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी । बसे सुखेन राम रजधानी ॥४॥

अर्थ मन्त्री गुरु और भक्त को राज्य सौंपकर सब साज सजकर मिथिला को प्रस्थान किया। नगर के नर नारी गुरुजी की शिक्षा मानकर सुख से रामजी की राजधानी में बसे।

व्याख्या जनकजी ने राज्य की व्यवस्था मन्त्रियों के जिम्मे किया। गुरुजी को निरीक्षण का भार दिया। शासन भरतजी के सुपुर्द करके मिथिला को प्रस्थान किया। सेना साथ है। इसलिए सब साज साजना कहते हैं। सौंपने का भाव यह कि यह थाती रामजी की है। जब तब वे न लौटें तब तब सँभालो। कोई अडचन आ पड़े तो मुझे समाचार दो।

लोगों ने सुना कि रामजी नहीं लौटेंगे। अतः वे बड़े दुःखी हुए। उनका मन उचटा हुआ है। अवध में बसना नहीं चाहते। पर गुरुजी ने सबको समझाया कि रामजी नहीं लौटेंगे यह ठीक है। पर राज उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह राज उन्हीं का है और उन्हीं की राजधानी है। उनकी अनुपस्थिति में राज्यभार भरतजी के ऊपर है। आप लोग किसी बात की चिन्ता न करें। इस भाँति गुरुजी के प्रबोध करने पर सब लोग सुख से बसे।

दो राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।

तजि तजि भूपन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥३२२॥

अर्थ रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम और उपवास करने लगे। भूषण और भोग सुख को छोड़ दिया। रामजी के दर्शन की आशा से सब जी रहे हैं।

व्याख्या फिर लोगों का नियम उपवास आरम्भ हो गया। नियम यथा पय अहार फल असन इव। उपवास यथा निसि भोजन इव लोग। काम्य कर्म सब लोगों ने बन्द कर दिया। भूषण से आभिमानिक सुख होता है। अतः उसे भी छोड़ा। उस भाँति अनुष्ठान करने से ही इष्ट की प्राप्ति होती है। इन लोगों की इष्टप्राप्ति रामजी का दर्शन है। ये उसी की आशा से जीवन धारण कर रहे हैं।

२४ भरत रहनि प्रसङ्ग

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥

पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौपी सकल मातु सेवकाई ॥१॥

अर्थ भरतजी ने मन्त्रियों और सुसेवकों को समझाया। वे सब शिक्षा पाकर अपने अपने काम में लग गये। फिर छोटे भाई को बुलाकर शिक्षा दी। सब माताओं की सेवा उन्हें सौपी।

व्याख्या नगर के लोगों को गुरुजी ने समझाया और वे उनका कहना मानकर अवध में सुख से बसे। गुरुजी आज्ञा में रामजी भी हैं। भरतजी भी हैं। अतः जो गुरुजी ने कहा उसमें सन्देह करने के लिए किसी को स्थान नहीं है।

इसलिए प्रजा मात्र को दिलासा गुरुजी ने दिया और प्रजा ने उसे माना । जनकजी के सोपने के अनुसार गुरुजी ने कार्यारम्भ कर दिया ।

इस समय शासक भरतजी है । पर वे राजकाज में दिन रात व्यस्त रहना नहीं चाहते । अतः मन्त्रियों और कामदारों को बुलाकर^१ समझाया कार्य विभाग करके उन लोगों में काम बाँट दिया और वे लोग अपने अपने काम में लग गये । अब रह गयी माताओं की सेवा । उसे छोटे भाई शत्रुघ्न के सुपुर्न किया । दूसरे से यह सेवा बन नहीं सकती थी और उन्हें तत्सम्बन्धी शिक्षा भी दी ।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे । करि प्रनाम बय विनय निहोरे ॥

ऊँच नीच कारजु भल पोचू । आयसु देव न करब सकोचू ॥२॥

अर्थ ब्राह्मणों को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोड़े और प्रणाम करके विनय निहोरा किया कि ऊँचा नीचा भला बुरा जो काम हो उसके लिए आज्ञा दीजियेगा । सङ्कोच न कीजियेगा ।

व्याख्या भरतजी ने तत्पश्चात् ब्राह्मणों को बुलवाया । ये पृथ्वी के देवता हैं । इनकी प्रजा में गिनती नहीं है । प्रजा में गिनती वैश्य और शूद्र की है । इसलिए राजा विशाम्पति कहलाता है । ब्राह्मणों के लिए किसी पर दावा करने का विधान नहीं है । वह अपने अपराधी को अपनी तपस्या के बल से दण्ड दे । अतः भरतजी ने उन्हें प्रणाम किया । उनसे बहुत विनती की और उनका निहोरा किया कि जो उनकी आज्ञा में न चले उनके लिए मुझे आज्ञा दें । सङ्कोच न करें कि नित्य उठकर आज्ञा देना भी अच्छा नहीं है । मैं उस आज्ञा के लिए कृतज्ञ हूँगा और जिस प्रकार का कार्य हो उसके लिए मुझे आज्ञा मिले । इस बात का सङ्कोच न किया जाय कि अमुक कार्य ऐसा तुच्छ है । ऐसा छोटा है । इसके लिए भरत को कैसे कहे इत्यादि ।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए । समाधानु करि सुवस बसाए ॥

सानुज ने गुरु गेहँ बहोरी । करि दडवत कहत कर जोरी ॥३॥

१ जब लगि प्रभु आवत नाही तब लगि सब अधिकार ।

जो जाको जैसो रह्यो सो सब करै सँभार ॥

सम्मति रघुपति की सकल राज पाट धन धाम ।

योग धोम बाढ़े सदा समुझि सँभारो काम ॥

दुखी प्रजा रघुपति विरह करहु तासु मनुहार ।

वरहि सकल सत भाव से वेद विहित आचार ॥

होय न पावै पाप कहूँ करिअ नित्य यह सोध ।

रहै प्रजा सुख शान्ति से बढै न कहूँ विरोध ॥

सेवक धर्म सँभारिये सजग होउ सब कोय ।

परमधर्म सब को यथा स्वामी को हित होय ॥

त रहना
विभाग
गये।
नरे से

अध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

अर्थ : परिजन पुरजन और प्रजाओ को बुलवाया। उनका उन्हें स्वतन्त्र करके बसाया। छोटे भाई के साथ गुरुजी के घर गये करके हाथ जोड़कर बोले।

व्याख्या : तत्पश्चात् परिजन अर्थात् कुटुम्बी क्षत्रियवर्ग को बुलवानी के रहनेवाले तथा देशवासियों को बुलवाया। उनका समाधान किया सरकार धर्मशाप में बंधे रहने के कारण नहीं लौटे फिर भी उन्होंने रा कर लिया है। मैं तो उनकी आज्ञा से आप लोगों की सेवा करूँगा। आ व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य में कोई बाधा नहीं पड़ने पायेगी।

फिर शत्रुघ्नजी को लिये हुए गुरुजी के पास गये। जिसमें जो कुछ मु उससे शत्रुघ्नजी परिचित रहे। वहाँ गुरुजी को दण्डप्रणाम किया और बोले आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा समुझव कहव करव तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई

अर्थ : आज्ञा हो तो नियमपूर्वक रहूँ। मुनिजी पुलकित होकर प्रेम से कि जो कुछ तुम समझोगे, कहोगे, करोगे, संसार में वही धर्म का सार : तथ्य हो

व्याख्या : रामजी पिता की आज्ञा से मुनिव्रत वेप आहार स्वीकार किये हैं। उनके इस भाँति जीवन पालन करने पर मैं सुख नहीं चाहता। मैं भी उ भाँति रहना चाहता हूँ। पर उस भाँति रहने के लिए बड़े की आज्ञा की आवश्यक है। सो आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसी नियम से रहूँ। भरतजी की यह बात सुनकर मुनिजी प्रेम से पुलकित हो उठे और बोले कि तुम्हारी ऐसी स्थिति होगी है कि जो तुम मन में समझोगे, वाणी से कहोगे, और कर्म से आचरण करोगे वही धर्म का सार होगा। अर्थात् तुम साक्षात्तधर्मा हो गये। तुम्हारे लिए किसी की आज्ञा की आवश्यकता न रह गयी और न धर्मशास्त्र देखने की आवश्यकता रही।

दो. मुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिनु साधि।
सिधासनु प्रभु पादुका, बैठारे

अर्थ : शिक्षा सुनकर और बहुत बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाकर सुदिन निश्चय किया और सरवार को पादुकाओं को सिंहासन पर निर्विघ्न प्रतिष्ठित कर दिया।

व्याख्या : मुनिजी की शिक्षा हुई कि जो कुछ तुम सोच रहे हो। उसे निःसन्देह कर डालो। क्योंकि वही धर्म होगा। संसार धर्म के अनुसार चलकर अपने को कृत्य मानता है। परन्तु तुम जो आचरण करोगे वही धर्म होगा। यह इतना बड़ा आशीर्वाद है जो किसी को कभी मिला नहीं। अतः भरतजी ने ज्योतिषियों को बुलाकर शुभ मुहूर्त निश्चय कराया और उसी मुहूर्त में सरकार की पादुका को सिंहासना-रुढ़ किया। इस प्रकार से पिता की आज्ञा से जो राज्य मिला था उसे रामजी को

अर्पण किया। पितु आयसु पालिअ दोउ भाई वहकर जो रामजी ने आज्ञा दी थी उस वचन को भी पूरा किया। इसके लिए गुरुजी से सुदिन नही पूछा। गुरुजी तो सरकार के अभिषेक का सुदिन बतलावेंगे। यथा गुरु वसिष्ठ द्विज लिये बुलाई। आज सुधरो सुदिन समुदाई। रामजी के अभिषेक में उपाधि उठ खड़ी हुई थी। अतः भरतजी ने सरकारी पादुका को निविघ्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

इस सिंहासन पर पादुका प्रतिष्ठित हो चुकी है। इस पर सरकार का अभिषेक होना ठीक नहीं। यही समझकर प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन मांगा। रवि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिर नाई।

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ॥
नदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ॥१॥

अर्थ रामजी की माता के और गुरुजी के चरणों में प्रणाम करके और सरकार की पादुका की आज्ञा पा करके नन्दिग्राम में पत्ते की कुटिया बनाकर धर्म धुरधीर भरतजीने निवास किया।

व्याख्या आज्ञा अपनी माता से ही मांगना उचित था। यथा विदा मातु सन आवहुँ मांगी। पर भरतजी ने उनका त्याग किया था। यथा तज्यौ पिता प्रह्लाद बिभीषन बधु भरत महतारो। अतः रामजी की माता से आज्ञा मांगी। उन्हीं को माता मानते हैं। यहाँ केवल प्रणाम ही लिखा है। पर इस प्रणाम का तात्पर्य स्वीकृति प्राप्त करना है। गुरुजी की स्वीकृति तो मिल चुकी है। तत्पश्चात् स्वामी के अभाव में उनकी पादुका से आज्ञा ली। क्योंकि वे ही विमल नयन सेवा सुधरम के हैं। देवताओं के अस्त्र शस्त्र आभूषण वाहन सभी उनके स्वरूप से पृथक् नहीं होते। अतः पादुका ने आज्ञा दे दी। यह तो आखर युग जनु जीव जतन के हैं। इनसे तो सरकार स्वयं रत्न से मूल्य की भाँति प्रकट होते हैं। सो उन्हें प्रकट करके आज्ञा ले ली।

नन्दिग्राम तीन पुण्य ग्रामों में से एक है और राजधानी से अत्यन्त दूर है और न अत्यन्त निकट है। वही पर्णकुटी बनायी। सरकार को पर्णकुटी में रहते देख आये हैं। अतः महल में न रहेंगे। धर्म धुरधीर हैं। अपने रहने के लिए पर्णकुटी बनायी।

जटा जूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
असन वसन वासन व्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ॥२॥

अर्थ सिर में जटाजूट और बल्कल वसन धारण किया। पृथ्वी खोदकर कुश लेकर साँथरी बनायी। भोजन, वसन, वस्त्र, व्रत, नेम आदि कठिन ऋषि धर्म को प्रेम के साथ करने लगे।

आज्ञा दी थी
। गुरुजी तो
उसे बुलाई।
थी। अतः

अनितेक
त दिव्य

१॥

और

म

व्याख्या : देखा था कि सरकार बल्कल वसन और जटा धारण किये हुए हैं। अतः आप ने भी जटा धारण की और बल्कल वसन पहिना। देख आये हैं कि सरकार साथरी पर सोते हैं। इसलिए भरतजी ने भी कुशाओ की साथरी बनायी। छिन्न मूल होने से कुशा अशुद्ध हो जाते हैं। इसलिए पृथ्वी खोदकर कुशा निकाले। सरकार का मुनिव्रत वेप आहार है। अतः भरतजी ने भी उन्ही की भाँति भोजन वसन और वरतनो से काम लिया और व्रत तथा नियम जैसा वानप्रस्थ अवस्था में किया जाता है करने लगे। वानप्रस्थ का धर्म बड़ा कठिन है। पर भरतजी प्रेम से उसका पालन करने लगे।

भूपन वसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे तिन तूरी ॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई ॥३॥

अर्थ : भूपण वसन और भोग के बड़े भारी सुख को मनसा वाचा कर्मणा तृण के समान तोड़कर फेंक दिया। अवध के राज्य को इन्द्र भी सिहाते थे और चक्रवर्तीजी के धन को सुनकर कुबेरजी भी लज्जित होते थे।

व्याख्या : धर्मशील महाराज दशरथ के राज्य में सुख सम्पत्ति बिना बुलाये ही चली आती थी। यथा रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अवुधि कहें धाई। कहि न जाइ कछु नगर विभूती। जनु एतनिअ विरचि करतूती। अतः अवध का राज्य ऐसा सुखसमृद्धि से भरा था और चक्रवर्तीजी के पास इतना धन था कि उसे त्रिलोकीनाथ इन्द्र और घनाधिप कुबेर ईर्ष्या करते थे। लज्जित होते थे कि लोकपाल होने पर भी हम राजा दशरथ के जोड़ के नहीं हैं। ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहि पराई विभूती।

तेहि पुर वसत भरत विनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलासु रामे अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़भागी ॥४॥

अर्थ : उस पुर में भरतजी रागरहित होकर बसते हैं जैसे चम्पक बाग में भौरा बसे। लक्ष्मी के विलास को बड़भागी रामानुरागी वमन की भाँति त्याग देते हैं।

व्याख्या : ऐसे समृद्ध राज्य में जहाँ : करहि सकल सुर दुर्लभ भोगा। भरतजी विरक्त की भाँति रहते हैं। उन्हें सुख नहीं। क्योंकि वे तो रामजी के चरण कमल के भौर हैं। वही सुख मानते हैं। चम्पक बाग में उन्हें सुख कहाँ? अयोध्या चम्पक बाग की भाँति सबकी सुखदायी है पर भरत को नहीं। चम्पा में गुन बहुत है रूप रंग अरु वास। पर यह अवगुन एक है कि भँवर न आवे पाम। सो दैवयोग से भरतरूपी भौर को अवधरूपी चम्पक बाग में बसना पडा। अतः उसमें विरक्त की भाँति वे बस रहे हैं।

कारण यह कि लक्ष्मी का विलास रामानुरागी के अनुकूल नहीं पडता है। वे उसे पचा नहीं सकते। अजीर्ण अन्न की भाँति वह उनके लिए महा कष्टकर होता है। वमन की भाँति उसे परित्याग करके ही वे सुखी होते हैं।

दो राम पेम भाजन भरतु, बडे न येहि करतूति ।

चातक हस सराहिअत, टेक विवेक विभूति ॥३२४॥

अर्थ रामजी के प्रेमपात्र भरतजी इस करतूति से बडे नहीं हैं। टेक की विभूति से चातक की और विवेक की विभूति से हस की प्रशंसा होती है।

व्याख्या लक्ष्मी के प्रेम भाजन रामजी हैं। यथा जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारविंद रति करति सुभावहि खोइ। और रामजी के प्रेम भाजन भरतजी हैं। भरतजी की ऐसी महिमा है कि उनके गुणों पर रामजी मुग्ध हैं और रामजी के गुणों पर लक्ष्मी मुग्ध हैं। अतः लक्ष्मी के गुणों पर यदि भरतजी न मुग्ध हो तो उनके लिए कोई बात नहीं है। उनके लिए ऐसा टेक तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। और ऐसा विवेक तजत बमन जिमि जन बडभागी। कोई बड़ी बात नहीं है। टेक के लिए चातक की प्रशंसा ठीक है। विवेक विभूति के लिए हस की प्रशंसा उचित है। क्योंकि वे पक्षी होकर ऐसा टेक और ऐसी क्षीर नीर विवरण की विभूति को धारण करते हैं।

देह, दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछवि सोई ॥

नित नव राम पेम पनु पीना। बढत धरम दलु मन न मलीना ॥१॥

अर्थ शरीर प्रतिदिन दुर्बल होकर घटता जाता था। पर तेज और बल नहीं घटता था और मुख की शोभा भी वैसी ही थी। नित्य नवीन रामप्रेम प्रण से पुष्ट होकर धर्म दल बढ़ता जाता था और मन उदास नहीं होता था।

व्याख्या जिस भाँति कसरत करनेवालों का शरीर दुर्बल हो जाता है परन्तु उसमें कस बढ़ता जाता है। उसी भाँति योग जप तप से शरीर की स्थूलता मात्र कम हुई तेज और बल नहीं। यथा करहि जोग जप तप तन कसही। यथार्थ बल के ह्रास न होने से मुख छवि में अन्तर नहीं पडा। दल अर्थात् जप तप आदि नित्य नये रामप्रेम के प्रण से पुष्ट होकर बढ़ते जाते थे। उदासी मन में आने नहीं पाती थी। अतः शरीर की दुर्बलता से कोई वास्तविक हानि नहीं थी। क्योंकि दिव्य तेज और दिव्य बल जिनका सम्बन्ध धर्म से है वह बढ़ रहा था। बिना रामप्रेम के धर्म पुष्ट नहीं होता।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। विलसत वेतस वनज विकासे ॥

सम दम सजम नियम उपासा। नखत भरत हियँ विमल अकासा ॥२॥

अर्थ जिस भाँति शरद ऋतु के प्रकाश से जल तो घटता है परन्तु वेत का विलास बढ़ता है। कमल खिल जाते हैं। शम, यम, नियम, उपवासरूपी नक्षत्र भरत के निर्मल हृदयरूपी आकाश में शोभित होते हैं।

व्याख्या शरद ऋतु में वर्षा की बुड़ाई आजाती है। इसलिए जल घटने लगता है। पर वेत में पत्ते नये नये बढ़ जाते हैं और कमल फूलने लगते हैं। यहाँ

भरतजी का शरीर ही तालाब है। वह मुनि व्रतरूपी शरद के आगमन से क्षीण तो होने लगा।

यहाँ भरतजी का शरीर जल है। वह नेमरूपी शरद के आगमन से नित्य घट रहा है। परन्तु जल का आश्रित वेंत बढ रहा है। उसके पत्ते पुष्ट हो रहे हैं। कमल विकसित हो रहा है। यहाँ धर्मदल को वेतसविलास से उपमित किया है और अम्लान मन को विकसित कमल से उपमित किया है। यहाँ दल शब्द में श्लेष है। धर्म के पक्ष में इसका अर्थ सेना होगा और वेंत के पक्ष में पत्ता अर्थ किया जायगा। भावार्थ यह कि भरतजी की धर्म सम्पत्ति बढती जाती है और मन में म्लानता नहीं आने पाती। शरदागमन से भरत का दहराकाश हृदयाकाश निर्मल हो गया है। शम, दम, नियम, उपवास आदि नक्षत्र स्पष्टरूप से चमक रहे हैं।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरवीथि बिकासी ॥

राम प्रेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा ॥३॥

। अर्थ विश्वास ही ध्रुव तारा है। अवधि पूर्णिमा भी है। स्वामी की सुरतिरूपी सुरवीथी प्रकाशित हो रही है। रामजी का प्रेम ही निश्चल और निष्कलङ्क चन्द्रमा है जो समाज के सहित नित्य शोभायमान है।

व्याख्या - ताराओं में ध्रुव अविचल है। यथा ध्रुव अविचल कबहूँ न चलै। इसी भाँति भरतजी के हृदय में रामजी के प्रति अविचल विश्वास है। वही ध्रुव है और चौदह वर्ष की अवधि ही पूर्णिमा तिथि है। बारहो पूर्णिमाओं में शरद पूर्णिमा बड़ी सुन्दर होती है। इसी भाँति सयोगदशा के प्रेम से वियोग के समय के प्रेम में अधिक चमत्कार है। स्वामी की स्मृतिरूपी सुरवीथी सम्पूर्ण आकाश में फैला हुई है। उसका प्रकाश बहुत स्पष्ट हो रहा है एवं राम प्रेमरूपी चन्द्रमा समाज के सहित भरतजी के हृदयरूपी निर्मल नभ में नित्य अत्यन्त शोभायमान है। भेद इतना ही है कि यह चन्द्रमा सदा कलङ्कयुक्त है और चलायमान है। पर रामप्रेमरूपी चन्द्र निश्चल और निष्कलङ्क है। वीथी की सख्या नव शास्त्रकारों ने बतलाया है। १ नाग वीथी २ गज वीथी ३ ऐरावती वीथी ४ आर्षभी वीथी ५ गो वीथी ६ जारदग्वी वीथी ७ अज वीथी ८ मार्गी वीथी और ९ वैश्वानरी वीथी। ये नवो वीथियाँ सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में फैली हुई हैं। तीन तीन नक्षत्र एक एक वीथी में पडते हैं। इस भाँति सत्ताइस नक्षत्रों में नव वीथियाँ हैं। स्मरण करने-वाले स्मरणीय के गुणग्रामों को ही स्मरण करते हैं। अतः सुरवीथी से स्वामि सुरति को उपमित किया।

१. ये नवगुण गुरुजी के कहे हुए हैं जिनकी सुरति भरतलाल सदा किया करते हैं। यथा १. धर्म धुरीन २. मानुकुल मानू ३. राजाराम ४. स्ववस ५. भगवानू ६. सत्यसन्ध ७. पालक श्रुति सेतू ८. रामजन्म त्रग मंगल हेतू ९. गुरु पितु मातु वचन अनुसारी १०. खल दल दान देव हितकारी।

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति विरति गुन विमल विभूती ॥

वरनत सकल सुकवि सकुचाही । सेस गनेस गिरा गमु नाही ॥४॥

अर्थ : भरत का रहन सहन समझ और करतूत, उनकी भक्ति, उनका वैराग्य, उनकी निर्मल विभूति का वर्णन करने में सभी सुकवि सङ्कुचित होते हैं । शेष गणेश और सरस्वती की गति नहीं है ।

व्याख्या : १. भरत रहनि यथा : तेहि पुर बसत भरत विनु रागा ।

चचरीक जनु चपक बागा ॥

२ समुझनि यथा : रमा विलास राम अनुरागी ।

तजत वमन जिमि जन बड़भागी ॥

३. करतूति यथा : रामप्रेम भाजन भरतु बडे न एहि करतूति ।

चातक हस सराहिअत टेक विवेक विभूति ॥

४. भगति यथा : नित नव राम प्रेम पन पीना ।

५ विरति यथा : बढत धरम दल मन न मलीना ॥

६. गुन यथा : सम दम संजम नियम उपासा ।

नखत भरत हिय विमल अकासा ॥

७ विमल विभूति यथा : रामप्रेम विधु अचल अदोषा ।

सहित समाज सोह नित चोखा ॥

भाव यह कि कवि समझ रहे हैं कि मुझसे वर्णन ठीक नहीं हुआ । अतः कहते हैं कि सभी सुकवि को सङ्कोच होता है । अतः मुझे सङ्कोच होना ठीक ही है । क्योंकि भक्त की महिमा शेष शारदा भी नहीं कह सकते । स्वयं सरकार कहते हैं : कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पकज गहे । अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे । गणेश और शारदा दोनों समकक्ष के योग्यतावाले हैं : एक वाङ्मय है और दूसरी वाग्देवता है । यथा : वर्णानामर्थसंघाना रसाना छन्दसामपि । मङ्गलानाञ्च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ । अतः गणेशजी के लिए भी वही बात कही गयी ।

दो. नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ।

माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति ॥३२५॥

अर्थ : नित्य प्रभु की पादुका की पूजा करते हैं, प्रीति हृदय में समाती नहीं और आज्ञा माँग माँगकर बहुत भाँति के राजकार्य का सम्पादन करते हैं ।

व्याख्या : नित पूजत प्रभु पाँवरी : कर्मणा । प्रीति न हृदय समात : मनसा । माँगि माँगि आयसु करत : वाचा । प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही । सादर भरत सीस धरि लीन्ही । अतः करुणानिधान के चरणपोठ को सिंहासनारूढ किया । सीताराम की भावना से उसकी नित्य पूजा करते हैं और राजकार्य करने में उसकी आज्ञा माँग लेते हैं । क्योंकि वही : कुल कपाट कर कुसल करम के । विमल नयन

सेवा सुधरम के : स्थानीय हैं। उसी के द्वारा भरतजी की जिज्ञासा सरकार तक पहुँचती है और वहाँ से जो आज्ञा होती है वह भरतजी तक पहुँच जाती है। उपासना के बल से पादुका टेलीफोन का काम दे रहा है।

पुलक गात हियँ सिय रघुवीरु । जीह नामु जप लोचन नीरु ॥

लखन राम सिय कानन बसही । भरतु भवन बसितपुतनु कसही ॥१॥

अर्थ : शरीर में पुलक है। हृदय में रामजानकी हैं। जिह्वा से नाम जप हो रहा है। नेत्रों में जल है। लक्ष्मण राम और सीता तो वन में बसते हैं। पर भरतजी तो घर में ही रहते हुए तप से तन को कस रहे हैं।

व्याख्या : अब भरतजी की दशा कहते हैं। प्रेमातिशय से शरीर में पुलक और नेत्रों में जल बना रहता है। यह तो शरीर की दशा है और सदा हृदय में रामजानकी का निवास रहता है। यह मन की दशा है और जिह्वा से नाम का जप चला जा रहा है। यह वचन की दशा है। लक्ष्मण राम और जानकी तो वन में बसते हैं। फिर भी ऐसे रङ्ग से रहते हैं जैसे षष्ठी और जयन्त के साथ इन्द्र अमरावती में रहते हैं। समय पाकर भगवतों का पुष्प शृङ्गार भी हो जाता है। यथा : एक बार चुनि कुसुम सोहाए। निजकर भूपन राम बनाए। सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर। परन्तु भरतजी अयोध्या में ही रहते हुए ऋषियोंकी भाँति तप से शरीर को कस रहे हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसही। करहि जोग जप तप तन कसही।

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू । सब विधि भरत सराहन जोगू ॥१॥

मुनि व्रत - नेमु साधु मकुचाही । देखि दसा मुनिराज लजाही ॥२॥

अर्थ : दोनों ओर का विचार करके सब लोग कहते हैं कि सब प्रकार से तो भरत ही सराहना के योग्य हैं। भरतजी का नियम और व्रत सुनकर साधु सङ्गुचित होते हैं और दशा देखकर मुनीश्वर लज्जित हो जाते हैं।

व्याख्या : लोग रामजी का रहन सहन देख आये हैं और अब भरतजी का रहन सहन देखते हैं। दोनों का मिलान करते हैं तो इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि सब विधि से भरतजी की सराहना उचित है। रामजी तो पिता के वाक्य से वन में गये। मुनिव्रत वेप आहार स्वीकार किया। उनको इस विधि से सराहना है। इधर भरतजी को पिता ने राज्य दिया। परन्तु भरतजी ने उसका परित्याग किया। सेवाधर्म को अग्रसर करके रामजी की पादुका को सिंहासनारूढ किया। अब उसी की सेवा करते हैं। मुनिजी को आज्ञा लेकर मुनिव्रत वेप आहार सम्पूर्ण भोग सामग्री के रहते हुए घर में रहकर कर रहे हैं। अतः भरतजी सभी विधि से प्रशंसा के योग्य हैं।

साधु लोग सब कुछ छोड़कर नियमव्रत करते हैं। सी भरतजी का नियम व्रत घर में ही उनसे बड़ा चढ़ा है। मननशील मुनि लोग वन में रहकर स्थितप्रज्ञ होते

हैं। यहाँ भरतजी सदा प्रेम में डूबाडूब रहते हैं। अतः इनकी दशा सुनकर साधु और मुनियों को सङ्कोच होता है। हम लोगो ने गृहस्थी छोड़ा फिर भी ऐसा नियम व्रत और भगवत् प्रेम का निर्वाह नहीं कर सकते। यही सङ्कोच है।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मजु मुद मंगल करनू ॥

हरन कठिन कलि कलुष कलेशू। महामोह निसि दलन दिनेसू ॥३॥

अर्थ भरतजी का चरित्र परम पवित्र, मधुर, सुन्दर, मुद और मङ्गल का करनेवाला है। कठिन कलियुग के कलुष : पाप और कलेश को हरण करनेवाला है और महामोहरूपी रात्रि को दूर करने के लिए तो सूर्य है।

व्याख्या कवि उपसहार करते हैं कि भरत का चरित्र परम पवित्र है। साधु और मुनियों के लिए भी अनुकरणीय है। बड़ा ही मधुर है। यथा : नित पूजित प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समार्ति। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। सुन्दर ऐसा है कि सब लोग सराहना करते हैं। यथा : सब विधि भरत सराहन जोगू। मुद मङ्गल करण ऐसा है। सुनि व्रत नेम साधु सकुचाही। देखि दसा मुनिराज लजाही। प्रशस्त आचरण ही मङ्गल है तथा कलियुग में पाप और कलेश की तीक्ष्णता का आधिक्य है। उसे हरनेवाला है और महामोह को तो ऐसा नाश करता है जैसे सूर्य रात्रि का नाश करते हैं। कही अन्धकार का लेश नहीं रह जाता। कलेश पाँच है : अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, भिनिवेश। आचरण म रहनि, समुझनि करतूति, भगति, विरति, गुन और विभूती इन सातों का अन्तर्भाव है।

पाप पुंज कुजर मृगराजू। समन सकल सताप ममाजू ॥

जन रजन भजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू ॥४॥

अर्थ पापरूप हाथी के लिए तो सिंह रूप है। सन्ताप समाज के लिए यम-रूप हैं। भक्तों के मन को प्रसन्न करनेवाला, ससार के भार को दूर करनेवाला और राम के स्नेहरूपी चन्द्र का तो साररूप अमृत है।

व्याख्या : इन सातों की फलश्रुति कहते हुए बतलाते हैं कि भरतजी की रहनि : कठिन कलि कलुष और कलेश को हरनेवाली हैं। उनकी समुझनि महामोह निसि दलन दिनेश हैं। उनकी करतूति : पापपुंज कुजर मृगराज हैं। उनकी भक्ति सकल सन्ताप समाज के लिए यमराज हैं। यमराज का ही नाम शमन है। यथा शमनो यमराज् यम। भरतजी की विरति जनरञ्जन है। उनके गुण भवभार भञ्जन है और उनकी विभूति : रामसनेह सुधाकर सार है।

छ. सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।

मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को ॥

दुख दाह दारिद दभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।

कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

अर्थ : रामजानकी के प्रेम से भरे हुए भरत का यदि जन्म न हुआ होता त मुनि के मन के लिए भी अगम यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत का आचरण कौन करता ? दुःख जलन दरिद्र दम्भ और दूषण को सुयश के वहाने से कौन हरण करता ? कलिकाल में भी तुलसी ऐसे शठों को हठ करके रामजी के सम्मुख कौन करता ?

व्याख्या : सीताराम के चरणों में भरतजी का प्रेम जन्म से ही था । यथा : 'तुम तब भरत और मत एह । घरे देह जनु राम सनेह । रामजी में प्रेम होना और सीताजी में प्रेम होना एक ही बात है । क्योंकि रामजी और सीताजी : देखिअत भिन्न न भिन्न हैं । इसीलिए : सिय राम प्रेम कहा । रामजी में अवधवासियों को इतना प्रेम था : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग । करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूपन भोग । और भरतजी तो रामप्रिय और लघु भाई थे । इसलिए उन्होंने जो यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत किये वह मुनि लोगों के लिए करने को कौन चलावे मन से भी अगम था । अर्थात् ऐसा अनुष्ठान किसी ने नहीं किया । भाव यह है कि जिसे रामभक्ति होती है वह राम की प्राप्ति के लिए शम, दम, यम, नियमादि विषम व्रत का आचरण करता है । जो रामजी की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान नहीं करता है उसे रामभक्ति हुई ही नहीं ।

अब भरत चरित्र की फलश्रुति कहते हैं । भरत चरित्र से दांपत्यनयन होता है उसे कहते हैं कि दुःख दाह दरिद्र दम्भ और दूषण का इस चरित्र के श्रवण से नाश होता है । यम के श्रवण से दुःख का नाश होता है । नियम के श्रवण से दाह का नाश होता है । शम के श्रवण से दरिद्रता का नाश होता है । दम के श्रवण से दम्भ का नाश होता है और विषम व्रत के श्रवण से दूषण का नाश होता है ।

यम	१.	भरत की अहिंसा	यथा : देखि दसा मुनिराज लजाही । भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई ।
	२.	अस्तेय	यथा : संपति सब रघुपति कर आही ।
	३.	ब्रह्मचर्य	यथा : नन्दिग्राम करि पनकुटीरा ।
	४.	अपरिव्रह	यथा : जटाजूट सिर मुनिपट धारी । महि खनि कुस साथरी सँवारी ।
	५.	सत्य	यथा : कहहुँ साँच सब मुनि पतियाहू ।
नियम	१.	तप	यथा : भरत भवन बसि तप तन कसही ।
	२.	शौच	यथा : करत सकल रिपि धर्म सप्रेमा ।
	३.	सन्तोष	यथा : भरत मुदित अवलब लहेने । अस सुख जस सिय राम रहेते ।
	४.	स्वाध्याय	यथा : जीह नाम जप लोचन नीरू ।
	५.	ईश्वर प्रणिधान	यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरो । प्रीति न हृदय समात ।

शम यथा : पुलक गात हिय सिध रघुवीरु ।
 जीह नामु जप लोचन नीरु ॥
 दम यथा . भूपन बसन भोग सुख भूरी ।
 मन तन बचन तजे तृन तूरी ॥
 व्रत : विषम यथा . सुनि व्रत नेम साधु सकुचाही ।

दोषानयन कहकर गुणाधान कहते हैं कि इस कराल कलिकाल में भी अत्यन्त शठो को हठ करके राम सम्मुख तो भरत का यश ही करता है ! जो अपने अज्ञान को राम पर धरनेवाले शठ है । यथा : ते सठ हठ बस संसय करही । निज अज्ञान राम पर धरही । वे भी यदि भरत चरित्र सुने तो यह चरित्र उन्हें बलपूर्वक रामजी के सम्मुख कर देता है ।

सो. भरत चरित करि नेमु, तुलसी ' जे सारद सुनहि ।

सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भव रस, विरति ॥३२६॥

अर्थ : भरत चरित्र को जो नियम पूर्वक प्रेम से गाते या सुनते है उनको अवश्य श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम होता है और संसार के रस से उन्हें अवश्य वैराग्य हो जाता है ।

व्याख्या : अत्यन्त शठ के लिए रामभक्ति प्राप्त करने का यही साधन है कि भरत चरित्र को प्रेम और नेम के साथ गान करे या सुने । उसकी शठता छूट जाती है । वह भव रस में निरत या सो विरत हो जायगा । वह अपने अज्ञान का आरोप रामजी पर करता था । सो उसकी : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा । ऐसी बुद्धि अवश्य हो जायगी ।

भरत चरित्र की इति नहीं है । अतः ग्रन्थकार ने इति नहीं दिया ।

नम. शिवाय

मङ्गलाचरण

श्लो. मूल^१ धर्मतरोविवेकजलधेः पूर्णेदुमानदद
 वैराग्यावुजभास्करं ह्यघघनध्वातापह तापह ।
 मोहाभोधरपूगपाटनविधौ स्व.सम्भवं शकर
 वदे ब्रह्मकुल कलकशमन श्रीरामभूप्रिय ॥१॥

अर्थ : धर्मरूपी वृक्ष के मूल, विवेकरूपी समुद्र को आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमल के लिए सूर्यरूप, पापरूपी अन्धकार को निश्चय ही मिटानेवाले, तीनो तापो के हरण करनेवाले, मोहरूपी बादलो के समूह को छिन्न भिन्न करने की क्रिया में वायुरूप तथा शकररूप, श्री राजा रामचन्द्र के प्रिय, बलङ्कनासक ब्रह्मकुल की मैं वन्दना करता हूँ ।

व्याख्या • जिस भाँति शङ्कररूप हनुमानजी की वन्दना करने से शिवजी की पृथक् वन्दना सुन्दरकाण्ड में नहीं की । उसी भाँति इस काण्ड में भी शङ्कररूप ब्रह्मकुल की वन्दना करते हैं । पृथक् वन्दना शङ्करजी की नहीं करते । इस काण्ड के कथानुसार सरकार का ब्रह्मकुल में निवास अनेक वर्षों तक होता रहा । किसी ब्रह्मकुल में पन्द्रह दिन ही रहे । किसी में छ महीने रहे । वनवास का अत्यधिक भाग यो ही व्यतीत किया । इसलिए उस महावन का नाम महाकोसल पड गया । कहा भी है सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह । ब्रह्मकुल की रक्षा के लिए ही शेष कथा का विस्तार हुआ । यथा निसिचर होन करउँ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह । इसी के लिए अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा । यथा • अब सो मन्त्र दहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारी सुर द्रोही । अत कवि ने भी शङ्कर की वन्दना ब्रह्मकुल के रूप में ही की । शङ्करजी अष्टमूर्ति है । १ पृथ्वी २ अप ३ तेज ४ वायु ५ आकाश ६ सूर्य ७ चन्द्र और ८ यजमान । इसी भाँति ब्रह्मकुल भी अष्टमूर्ति हैं । उसी का विवरण करते हैं । गीताभाष्य में भाष्यकार कहते हैं : ब्राह्मणत्वस्य हि^२ रक्षणेन रक्षितो भवति वैदिको धर्म । अत धर्मवृक्ष का मूल ब्रह्मकुल ही है । एव वृक्षमूल कहकर पृथ्वीरूप कहा : १

विवेक का कोई ओर छोर नहीं है । इसीलिए इसकी उपमा समुद्र से दी जाती है । यथा : गुर बिबेक सागर जग जाना । उस विवेक समुद्र को आनन्द देनेवाला ब्रह्मकुल है । ब्रह्मकुल के दर्शन से विवेक की वृद्धि होती है । ब्राह्मणों के दर्शन न होने से विदेश में गये हुए क्षत्रिय ही म्लेच्छ, हूण, पुलकस यवन आदि हो गये । अत ब्रह्मकुल को चन्द्ररूप कहा • २

१. शार्दूल विक्रीडित छन्द है ।

२. ब्राह्मणत्व की ही रक्षा में वैदिक धर्म की रक्षा होती है ।

वैराग्यरूपी कमल का पोषण करनेवाला ब्रह्मकुल सूर्यरूप हैं : ३. ब्रह्मकुल के उदय से ही वैराग्य विकसित हो उठता है । यथा : प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती । एहि कर फल पुनि विषय विरागा ।

; पापान्धकार के नाश के लिए ब्रह्मकुल तेजरूप हैं : ४. ब्राह्मण के दक्षिण अङ्गुष्ठ में सब तीर्थों का निवास है । अतः विप्रपादोदक के पान करनेवाले के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ।

तापनाशक होने से ब्रह्मकुल को जलरूप कहा : ५ यथा : विपद्घनध्वान्त-सहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः । अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मण-पादरेणवः ॥

मोहरूपी मेघ आकाशरूपी आत्मस्वरूप को आच्छादित कर देता है । उसे तितरवितर कर देने में वायुरूप ब्रह्मकुल समर्थ हैं : ६ यथा : वदों प्रथम मही सुर चरना । मोह जनित संसय सब हरना ।

आकाश अवकाश प्रदान से सबका कल्याण करता है । इसलिए वह शङ्कर हैं । ब्रह्मकुल भी अपने ब्रह्मकर्म से संसार का कल्याण करता है । इसलिए वह भी शङ्कर हैं । इस भाँति ब्रह्मकुल को आकाशरूप कहा : ७

श्रीरामभूप्रिय का अर्थ है श्रीरामभूप्रिय हैं जिसको । या जो रामभूप्रिय को प्रिय है । यथा : हरितोपन व्रत द्विज सेवकाई । यजमान यज्ञ से भगवान् की पूजा करता है । इसलिए वह भगवान् को प्रिय है और ब्राह्मण का कर्म ही यजन याजन है । अतः ब्रह्मकुल को यजमान रूप कहा : ८.

इस भाँति अष्ट मूर्ति ब्रह्मकुल शङ्कररूप होकर कलङ्क का नाश करता है । कलङ्क ब्रह्मकुल की कृपा बिना नहीं छूटता । जब ब्राह्मण प्रायश्चित्तादि से पवित्र करके किसी को ग्रहण करते हैं तभी उसका कलङ्क छूटता है । ऐसे ब्रह्मकुल की श्रीग्रन्थकार वन्दना करते हैं ।

श्लो. 'सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणी वाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरं ।
राजीवायतञ्जोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥२॥

अर्थ : जिनका शरीर धना आनन्दरूपी जल वरसानेवाले मेघों के समान शोभायुक्त हैं । जो पीताम्बर धारण किये हैं और सुन्दर^१ हैं । जिनके हाथों में वाण और धनुष है । जिसका कटि भाग उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है । कमल के

१ यह भी शार्ङ्गल विभीषित छन्द है ।

२. समविमत्ताङ्ग ।

समान जिसके विशाल नेत्र हैं। जो मस्तक पर जटाजूट धारण करने से अत्यन्त शोभायमान हैं और जो सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग में चले जा रहे हैं। ऐसे आनन्द देनेवाले श्री रामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : बादल जल की वर्षा करते हैं। परन्तु सरकार का शरीर आनन्द बरसानेवाला बादल है। अतः वैसी ही उसकी शोभा है। पीतवल्कल उनके शरीर पर आ जाने से पीताम्बर की शोभा दे रहा है अथवा भगवती जनकनन्दनी पीताम्बर धारण किये हुए है। उसका आगेप सरकार पर करके उनको पीताम्बर कह रहे हैं। यथा : छत्रिणो गच्छन्ति कहने में जो छाता नहीं लगाये हुए हैं उस पर भी छातावाले का आरोप होता है। अथवा श्याम शरीर पर पीताम्बर सा मुनिपट अत्यन्त ग्विल रहा है। इससे सुन्दर कहते हैं। हाथ में धनुषबाण और कटि में तूणीर की शोभा है। इससे भक्त विपत्तिभञ्जन गुण का वर्णन किया। यथा : राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत विपत्ति भजन सुखदायक। कृपादृष्टि युक्त होने से : राजीवायत लोचन कहा। यथा . चित्तइ कृपाकरि राजिव नैन। जटाजूट धारण करने से शोभा घटी नहीं, प्रत्युत और बढ़ गयी। यथा : मरवत्त सयलपर लरत्त दामिनि कोटि। सीता और लक्ष्मण के साथ मार्ग चलने से और भी मनोहरता बढ़ी। यथा : जनु मधु मदन मध्य रति लसई। ऐसे सुन्दर राम को गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं प्रणाम करता हूँ।

सान्द्रानन्दपयोद सौभागतनु से : रघुपति चित्रकूटवसि जाना। चरित किये श्रुति सुधा समाना कहा। पीताम्बर सुन्दर से दिव्यवसन भूपन पहिराये। जे नित नूतन अमल सोहाये। अर्थात् अत्रि मिलन कहा। पाणी बाणशरासनो वटिलसत्तूणीरभार वरं से : विराध वध तथा खरदूषण वध कहा। राजीवायतलोचन से : मुनियो पर कृपा कहा। धृतजटाजूटेन सशोभित से मुनिवेष में भी सूर्यणखा का आसक्त होना कहा। सीतालक्ष्मणसयुत से . पञ्चवटी निवास कहा। पथिगत से : सीतान्वेषण कहा। अभिराम से : शवरी गीघ गति तथा नारद वरदान कहा। इस प्रकार सरकार के ध्यान वर्णन के व्याज से अरण्यकाण्ड की सम्पूर्ण कथाओं के प्रतीक दे दिये।

इस काण्ड में सीताहरण होगा। अतः दो ही श्लोको में वन्दना किया। सुन्दरकाण्ड में पता लग जायगा तब फिर उस काण्ड से तीन श्लोको में वन्दना प्रारम्भ हो जायगी।

२५. सुरपति सुत करनी प्रसंग

सो. उमा' राम गुन गूढ, पडित मुनि पावहि विरति।

पावहि मोह विमूढ, जे हरि विमुख न धर्म रति ॥१॥

अरण्यकाण्ड : तृतीय सोपान

अर्थ हे उमा । रामजी के गुण गूढ़ हैं । पण्डित मुनि इससे वैराग्य प्राप्त करते हैं । परन्तु जो विमूढ़ हैं । परमेश्वर से विमुख हैं और जिन्हे धर्म में प्रेम नहीं है वे मोह को प्राप्त होते हैं ।

व्याख्या अरण्यकाण्ड की कथा में ही उमा को सती शरीर में मोह हुआ था । अतः शङ्कर भगवान् सावधान करते हैं । जब से रामजी जनकपुर में गये तब से लेकर यहाँ तक की कथा में गोस्वामीजी के वक्तृत्व की ही प्रधानता है । धनुषभङ्ग हुआ, व्याह हुआ, वनवास हुआ, भरतजी मनाने गये, महाराज जनक आये, भरतजी को पादुका मिली, भरतजी के साथ महाराज जनक अवध आये, राज को संभाल-कर जनकपुर लौट गये, यह सब माधुर्य की कथा थी । अतः गोस्वामीजी ही बोलते रहे । ऐश्वर्य की कथा आते ही ज्ञान घाट के वक्ता शिवजी बोल उठे - उमा राम गुन गूढ़ । गूढ़ कथा को ज्ञानी ही समझ सकता है ।

जो शीघ्र लखाई न पड़े उसे गूढ़ कहते हैं । यथा गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू । लखनेवाले पण्डित ज्ञानी और मुनि मनन करनेवाले हैं । उन्हें राम गुण में वैराग्य होता है । यथा कामिन्हू के दीनता देखाई । धीरन्हू के मन विरति दृढाई । जिसे सीधी बात न समझ पड़े उसे मूढ़ कहते हैं । यथा माया विवस भये मुनि मूढ़ा । समुझी नहि हरि गिरा निगूढ़ा । जिन्हे बात उलटी समझ पड़े वे विमूढ़ हैं । विमूढ़ होने से ज्ञान के अधिकारी नहीं । हरिविमुख होने से भक्ति के अधिकारी नहीं । धर्म रति न होने से कर्म के अधिकारी नहीं । ऐसे वेदबाह्यो को रामगुण से मोह प्राप्त होता है । भरत चरित ऐसा नहीं है । यथा भरत चरित करि नेमु तुलसी जे सादर सुनहि । सीयराम पद प्रेम अवसि हाहि भव रस विरति । भरत चरित समाप्त हुआ । अतः रामचरित प्रारम्भ करने के पहिले अपने शिवजी श्रोता को सावधान करते हैं ।

पुर नर भरत प्रीति में गाई । मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन । करत जेवन सुरनर मुनि भावन ॥१॥

अर्थ पुरवासियो और भरतजी के अनुपम और सुन्दर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया । अब अत्यन्त पवित्र प्रभु के चरित्र सुनो जिसे सुरनर मुनि भावन चरित्र को वे वन में कर रहे हैं ।

व्याख्या अब द्वितीय सोपान और तृतीय सोपान के दाब की क्या चली एक सीढी दूसरे को दाबकर ही बनती है । उसे दोनों की सन्धि समझना चाहिए । इसे सङ्गति भी कह सकते हैं । पुर नर प्रीति पहिले यथा राम दरस हित लोग सब करत नेम उपवास । परिहरि भूपन भोग सुख जित अवध की आस । तत्पश्चात् भरत की प्रीति कहो । यथा नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समात । माँगि माँगि आयसु करत राज बाज चहु भाँति । मति अनुरूप कहकर यथार्थ गान में अपनी असमर्थता कहा । भगवान् और भागवत का गण मति अनुरूप ही कहा जा सकता है । यथा बरनत सकल सुखि सकुचाही । शेष गनेस गिरा गमु नाही । अनूप

यथा : मुनिमन अगम जम नियम सम दम विपम व्रत आचरत को । सुहाई यथा : कलि काल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।

शिवजी कहते हैं कि तुम सेवक का चरित सुन चुकी । अब प्रभु का चरित सुनो । एहि विधि प्रभु बन बसहि सुखारी । खग मृग सुर तापस हितकारी । सो वह पावन चरित था । इस चरित मे खग मृग के स्थान मे नर का हित होने लगा । अतः इसे अतिपावन कहते हैं । अथवा भक्तिका शृङ्गार रस के योग से अत्यन्त उत्कर्ष हो उठता है, इसलिए अतिपावन कहा ।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज कर भूपन राम बनाए ॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर । बैठे फटिक शिला पर सुंदर ॥२॥

अर्थ—एक बार सुन्दर सुन्दर फूल चुनकर रामजी ने अपने हाथों से गहने बनाये और सीताजी को अत्यन्त आदर के साथ पहिनाये । तब सुन्दर स्फटिक की शिला पर बैठे ।

व्याख्या : शृङ्गार तो प्रायेण करते ही रहते थे । यथा : सिय अंग लिखे धातु राग सुमननि भूपन विभाग तिलक करनि का कही कला निधान की । माधुरी बिलास हास गावत यश तुलसीदास बसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की । गीतावली । इस समय एक बार की बात कही जाती है । कुसुम : कहने से वसन्त ऋतु कहा । क्योंकि इसी ऋतु मे कुसुम फूलता है । सुहाये चुनि : कहने का भाव यह कि भूषण बनाने योग्य फूल । निजकर . कहने का भाव यह कि पूजन के लिए अपने हाथों से फूल चुनने का विधान है । दूसरे यह कि भूषण बनानेवाला ही जान सकता है कि किन किन फूलों की कितनी आवश्यकता है । राम बनाये . कहने से प्रभु की रसिकता कलाज्ञान तथा शास्त्रनिष्ठा सूचित की । स्त्रियो की पूजा वस्त्र भूषण द्वारा करनेका शास्त्र विधान है और तापस बेप बिसेख उदासी : रहने का वरदान है । अतः फूलों के गहने जगदम्बा के पूजन के लिए बना रहे हैं । नवरात्र मे पूजन का माहात्म्य अधिक है ।

सादर पहिराये : कहने से पूजन करना कहा । सुन्दरी सीता सुन्दर राम सुन्दर फटिक शिला पर बैठे हैं । सामने मन्दाकिनी बह रही हैं । उस पार सामने जयन्त टीला है । चारो ओर हरियाली छा रही है । अद्भुत झाँकी है ।

सुरपति सुत धरि वायस बेखा । सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा । महा मंदमति पावन चाहा ॥३॥

अर्थ : इन्द्र का बेटा शठ था । उसने कौए का रूप धारण करके रघुपति का बल देखना चाहा । जैसे महामन्दमति चीटी समुद्र का थाह पाना चाहे ।

व्याख्या : बल की महिमा सुन रक्खा था । चरित्र से विलासप्रियता सूचित हुई । अतः सन्देह हुआ । सुरपति सुत : कहने का भाव यह है : ऊँच निवास नीच करतूती । देखि न सक्ँ पराई बिभूती । ऐसे का बेटा है । रङ्ग मे भङ्ग करने चला । दूसरे यह कि : काक समान पाक रिपुरीती । छली मलीन न कतहुँ प्रतीती । उनका

बेटा होने से यह भी छली मलिन और प्रतीतिहीन है। आप पुरुषों से सुनने पर भी इसे प्रतीति नहीं। काक सा स्वभाव है। अतः वही वेप धारण किया। छली है। समझता है कि किसी को सम्भावना भी नहीं होगी कि सुरपति का बेटा काक बनेगा। राठ है ध्ययं दुराव करता है। उसकी इच्छा है कि किसी को पता भी न लगे और मैं परीक्षा ले लूँ। इसलिए यह रूप लाया। कपट सार सूची सहस्र बांधि वचन परवास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास।

पिपीलिका के लिए जल की रेखा दुर्लभ है। उसके लिए समुद्र के घाह पाने की वासना ही महाअमङ्गलरूप है। कोई चीटी ऐसी मतिमन्द नहीं है जो किसी घट के जल का भी घाह जानना चाहती हो। पर यह महामतिमन्द है। चीटी होकर समुद्र का घाह स्वयं लेना चाहता है।

सीता चरेन चोच हति भागा। मूढ मन्दमति कारन कागा ॥

चला रुधिर रघुनायक जाना। सीक धनुष सायक संधाना ॥४॥

अर्थ : काग होने के कारण सीताजी के चरण में मूढ मन्दमति चोच मारकर भागा। रक्त वह चला तो रघुनाथजी ने जाना। सीक के धनुष पर बाण का सन्धान किया।

व्याख्या : मूढ बेसमझ को कहते हैं। बेसमझी के कारण भगवत् अपराध और भागवत् अपराध दोनों कर बैठा। रामजी तो चाहने पर परीक्षा भी दे देते हैं। यथा कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। बालि महाबल अतिरन धीरा। दुदुभि अस्थिताल देखराये। विनु प्रयास रघुनाथ ढहाये। ऐसे सरल प्रभु से कपट करके दो अपराध करने की क्या आवश्यकता थी। अतः मूढ वहा। अवसर चूक गया। इसलिए मन्दमति कहा। यथा : अहह मदमनु अवसर चूका। जगदम्बा के चरणों को पाकर लोग कौन सा मनोरथ नहीं सिद्ध कर लेते। सो इस मन्दमति ने उस पर प्रहार किया। कारण कागा : भाव यह कि मन उसका कौआ सा था ही। शरीर भी कौआ का धारण कर लिया। अतः भीतर बाहर से कौआ ही हो गया। अतः मूढता और मति की मन्दता का परिचय दे रहा है। सीताजी के चरण में चोच मारकर भागा। रामजी ने आघात करने के समय न जाना। जगदम्बा के अङ्क में आराम करते थे। यथा : ममाङ्के भरताग्रजः। जब गरम गरम रक्त का शरीर से योग हुआ तब जाना। रघुकुल की प्रतिष्ठा रखने के लिए बाध्य थे। नहीं तो देवताओं के रक्षक हैं। शृङ्गार में थे धनुष बाण पास न था। क्रियासिद्धि सत्वे भवति महता नोपकरणे। सीक का ही धनुष बाण बना लिया। कौआ उड़ाने के लिए यही बहुत है। उसने भी समझा कि रामजी ने मुझे कौआ ही जाना है। इसलिए सीक धनुष और बाण से मुझे डरा रहे हैं।

१. ऐन्द्र काशरतदागत्य नखैस्तण्डेन चासकृत् । मन्नादाङ्गुष्ठमारक्त विददारामिषाशया ।
[अध्या० । इन्द्र का बेटा काक बनकर नख और चोच से मेरे पैर के अँगूठे में चोट किया।

दो. अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह ।

ता सनु आइ कीन्ह छलु, मूरख अवगुन गेह ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी अत्यन्त कृपालु हैं । सदा दीनो पर उनकी अनुकम्पा रहती है । मूर्ख अवगुण के घर ने उनसे आकर छल किया ।

व्याख्या • रघुनाथ अति कृपालु हैं । यदि यह उनका अपराध किये होता तो क्रोध भी नहीं करते । यथा : सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाळ । निज अपराध रिसाहि न काळ । जो अपराध भगत कर बरई । राम रोष पावक सो जरई । उनका दीन पर सदा प्रेम रहता है । यदि यह दीन होकर सुग्रीव की भाँति बल में सन्देह करता तो कृपा पूर्वक उसको बल भी दिखा देते और उसका अकल्याण भी न होता । ऐसे प्रभु से छल करना मूर्खता और दोषाकरता का परिचय देना है । छल तो उससे किया जाता है जिससे सरलता से काम न निकले । ऐसे कृपालु दीनानाथ से छल किया । अतः मूर्ख है । अवगुण का घर है । उसे अच्छी बात सूझती ही नहीं ।

प्रेरित मन्त्र ब्रह्मासर धावा । चला भाजि वायस भय पावा ॥

धरि निज रूप गयउ पितु पाँही । राम विमुख राखा तेहि नाँही ॥१॥

अर्थ • मन्त्र से प्रेरित होकर ब्रह्मास्त्र दौड़ा । वीर भयभीत होकर भाग चला । अपना रूप धारण करके पिता के पास गया । पर राम विमुख होने से उसने नहीं रक्खा ।

व्याख्या वह सीक का बाण मन्त्र बल से ऐषीकास्त्र हो गया । ऐषीकास्त्र ब्रह्मास्त्र का भेद है । उसका प्रयोग सीक द्वारा ही होता है । जिस भाँति यह देखने में वीर पर वस्तुतः इन्द्र पुत्र था, उसी भाँति उसके प्रति जिस बाण का प्रयोग किया गया वह देखने में सीक था । पर वस्तुतः ब्रह्मास्त्र था । जयन्त ने पहिले साँक ही समझा । अतः निर्भय था । पर जब उसने ऐषीकास्त्र कालानल के समान तेज देखा तो डर के भागा । वायस भय पावा कहने का भाव यह कि वायस काय करता भागा ।

पातीति पिता । पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है । पुत्र का परमाश्रय पिता ही होता है । अतः पहिले इन्द्रलोक गया । वहाँ काक का प्रवेश नहीं । इसलिए काक रूप परित्याग करके अपना रूप धारण किया । दूसरे यह कि काक रूप होने से पिता के पहिचानने में विलम्ब की सम्भावना थी और विलम्ब होने से अस्त्र के मार लाने का भय था । इसलिए अपना रूप धारण किया । तीसरे पिता की अप्रसन्नता का भी भय था कि तूने काक रूप क्यों धारण किया । चौथे यह पिता के लिए पुत्र प्रिय दर्शन है । अतः अपने रूप में होने से वात्सल्य की अधिक आशा थी । सो पिता ने रक्खा नहीं । अर्थात् निकाल दिया कि जैसा किये है वैसा फल भोग । मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता । जयन्त ने ज्ञान बल और दिव्य बल तो

देख ही लिया । ब्रह्मास्त्र को अप्रतिक्रिय जानकर ही भागा है । अब प्रभाव का अनुभव कर रहा है ।

भा निरास उपजी मन त्रासा । यथा चक्र भय रिपि दुर्वासा ॥

ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका । फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका ॥२॥

अर्थ : निराश हो गया । उसके मन में त्रास उत्पन्न हो गया जिस भाँति दुर्वासा ऋषि चक्र से सन्न्यस्त हो गये थे । वह ब्रह्मलोक शिवलोकादि समस्त लोकों में थका हुआ और भय शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा ।

व्याख्या : पहिले जयन्त को आशा थी कि पिता रक्षा करेंगे । उनके प्रत्याख्यान से वह निराश हो गया । पहिले भयभीत होकर भागा था अब सन्न्यस्त हो गया । जैसे चक्र के भय से दुर्वासा ऋषि निराश और सन्न्यस्त हो गये थे वही दशा इसकी हो गयी । अम्बरीष राजा के यहाँ दुर्वासा ऋषि अतिथि हो गये । उस दिन द्वादशी थोड़ी थी । राजा एकादशी व्रत करके पारण करने जा रहा था । ऋषिजी से मोजन के लिए प्रार्थना किया । ऋषिजी ने स्वीकार किया और आवश्यक कार्य के लिए यमुना किनारे गये । ऋषिजी के आने में देर हुई । इधर द्वादशी बीत रही थी । इसलिए ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर राजा ने जल प्राशन कर लिया । इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने कृत्या प्रकट की । सुदर्शनचक्र राजा की रक्षा करता था । उसने कृत्या को तो भस्म कर ही दिया स्वयं दुर्वासा ऋषिजी पर घावा कर दिया ।

ऋषिजी भाग चले । चक्र ने पीछा किया । जितना ऋषिजी भागते थे उतना ही सुदर्शन भी दौड़कर उनका पीछा करता था । ऋषिजी सन्न्यस्त होकर शरण खोजने लगे । पर किसी ने उन्हें शरण नहीं दी ।

इसी भाँति जयन्त भी भागता हुआ देवताओं की परम शरण ब्रह्माजी के पास गया । वहाँ भी शरण न मिली तो अवदर दानी शिवजी के शरण गया । वहाँ से भी निराश होकर वरुण कुबेरादिक के लोको में घूमता फिरा । दौड़ते-दौड़ते श्रमित हो गया । भय और शोक से उसकी बुरी गत हो गयी ।

काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सकै राम कर द्रोही ॥

मातु मृत्यु पितु समन समाना । सुधा होइ विष सुनु हरिजाना ॥३॥

अर्थ : किसी ने उसे बैठने तक को नहीं कहा । रामजी के द्रोही को कौन रक्षा कर सकता है । माता मौत हो जाती है । पिता यमराज के समान हो जाते हैं । हे गरुड़जी ! अमृत विष हो जाता है ।

व्याख्या : शरण में रखना तो दूर की बात है । किसी ने यह भी नहीं कहा कि बहुत थके हो । दम भर विश्राम कर लो । क्योंकि उसके पीछे ही पीछे रामजी का बाण भी साथ ही जाता था । राम के द्रोही की रक्षा करने में कोई समर्थ नहीं । यथा : जो खल भयेसि राम कर द्रोही । ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ।

यहाँ भगवान् के उत्कर्ष का प्रसङ्ग है। अतः उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी बोल उठे : सुनु हरिजाना। जब माता पिता की यह गति है तो सम्पूर्ण जगत् के विरोधी हो जाने में कौन सन्देह है। पिता के प्रत्याख्यान के अन्तर्गत ही माता का भी प्रत्याख्यान आ जाता है। उस समय इन्द्राणी भी वही थी। जब बाण पीछा कर रहा हो उस समय लौटाना मृत्यु के मुख में फँकना ही है। इसलिए कहा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। मृत्यु और शमन : यम एक ही वस्तु है पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग मात्र का भेद है। रक्षा और नाश की शक्ति किसी वस्तु में नहीं है। प्रभु के अनुग्रह निग्रह में है। अनुग्रह हो तो सुमेरु भी रेणु हो जाय और निग्रह हो तो माँ बाप भी मृत्यु और यम हो जायें। इसी प्रकार प्राणद शक्ति और मारक शक्ति अमृत विष में नहीं है। सरकारी अनुग्रह हो तो विष अमृत हो जाता है। नहीं तो अमृत विष हो जाता है। सुरलोक में अमृत का होना प्रसिद्ध है। सो पिता माता ने अमृत से सिद्धन नहीं किया। रामविरोधी के लिए उसे भी विष ही समझा।

मित्र करै सत रिपु कै करनी। ता कहँ विबुधनदी वैतरनी ॥

सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुवीर विमुख सुनु भ्राता ॥४॥

अर्थ : मित्र सौ शत्रु की करणी करता है। उसके लिए गङ्गाजी वैतरणी हो जाती है। हे भाई ! जो राम विमुख हो तो सम्पूर्ण संसार उसके लिए अग्नि से भी गरम हो जाता है।

व्याख्या : राम के विमुख होते ही जमीन आसमान पलट जाता है। मित्र सौ शत्रु की करणी कर बैठता है। अपने समझ में वह भला करता है। पर उससे बड़ी हानि हो जाती है। यहाँ जयन्त की काया पलट विद्या ने उसके सौ शत्रु के समान हानि की। न उसे कायापलट विद्या आती और न वह काक होकर भगवती पर प्रहार करता। शङ्कर भगवान् के जटा में सकल कलुष विध्वंसिनी गङ्गाजी सदा रहती हैं। परन्तु जयन्त के पाप का हरण न कर सकी। उसे वैतरणीरूप दिखायी पड़ी। वहाँ से भी वह भागा।

सम्पूर्ण जगत् उसे अग्नि से अधिक दाहक हो गया। कही वह बैठ नहीं पाता : राम विमुख थल नरक न लहही। प्रभु के सम्मुख होने से अग्नि भी शीतल हो जाती है। यथा : गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरड़ सुमेरु रेणु सम ताही। रामकृपा करि चितवा जाही। भाव यह कि जीवन मरण, साध्यासाध्य, लाभ हानि तथा शीतोष्ण की शक्तियाँ सरकार के विमुख सम्मुख होने पर अवलम्बित हैं। स्वतन्त्ररूपेण किसी वस्तु में नहीं है। प्रभु के विमुख होने से जयन्त के लिए सब कुछ उलटा हो गया।

नारद देखा विकल जयन्ता। लागि दया कोमल चित संता ॥

पठवा तुरत राम पहि ताही। कहेसि पुकार प्रनत हित पाही ॥५॥

अर्थ : नारदजी ने जयन्त को विकल देखा । सन्त का चित्त कोमल होता है । सो दया आगयी । तुरन्त उसे रामजी के पास भेजा । उसने पुकारकर कहा कि हे प्रणत के हित करनेवाले ! रक्षा कीजिये ।

व्याख्या : नारदजी ने जयन्त को देखा । पर वह इतना विकल था कि उसने नारदजी को नहीं देखा । सन्तो में यही विशेषता है कि ये राम विमुख पर भी दया करते हैं । इसीलिए कहा गया है : विधि हरिहर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी । जयन्त : कहने का भाव यह कि इन्द्र और इन्द्राणी से लालित पालित इसे मालूम भी नहीं था कि विकलता किसे कहते हैं । दूसरा भाव यह कि इस समय अपने असली रूप में हैं । काक रूप में नहीं हैं । सन्त हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह पर कहै न जाना । निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता । जिस पर पिता ने दया न की, पितामह ने न की, अवठर-दानी शङ्कर ने न की । उस पर सन्त की दया हो गयी और वह दया अमोघ है ।

सन्त लोग ऐसी युक्ति बतलाते हैं कि तुरन्त कार्यसिद्धि हो । नारदजी बोले कि शरण के लिए क्यों व्यर्थ अन्य स्थानों में टक्कर मारता है । तू स्वयं रामजी के शरण में चला जा । मन्त्र और विधि बतला दी । मन्त्र प्रणत हित पाही । विधि : कहेसि पुकारि । पुकारकर कहने का भाव यह कि मद, मोह, कपट को अवसर न मिले । मद मोह कपट छलवाले पुकारकर शरण नहीं जा सकते ।

आतुर सभय गहेसि पद जाई । त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मै मतिमंद जान नहि पाई ॥६॥

अर्थ : आतुर और सभय होकर उसने चरण पकड़ लिये और कहा हे दयाल । हे रघुराई ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । आप के बेतौल बल और प्रभुता को मैं मतिमन्द जान न सका ।

व्याख्या : अति विकल था । इसलिए उसे आतुर कहा । विकलता का कारण भय था । इसलिए सभय कहा अथवा शरण ग्रहण के लिए आतुर था । शरण आने में तीन बातों की आवश्यकता है १. भयभीत होना २ शरण ताककर आना ३ मद मोह कपट छलादि का त्याग । यथा : जौ नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही । तजि मद मोह कपट छल नाना । करौ सद्य तेहि साधु समाना । तीनों बातें जयन्त में दिखलाया । सभय : शब्द से भयभीत होना कहा । आतुर शब्द से शरण ताकना कहा । पाहि पाहि की पुकार से : मद मोह कपट छल त्याग कहा । अथवा सभय से : मनसा । गहेसि पद जाई से : कर्मणा और त्राहि त्राहि दयाल रघुराई : वाचा शरण ग्रहण कहा ।

सरकार के सीक धनुष सायक में इतना सामर्थ्य है कि ब्रह्म रुद्र भी उससे रक्षा नहीं कर सकते । इससे अतुलित बल कहा और : काहू बैठन कहा न ओही । इससे अतुलित प्रभुताई कहा । अब परीक्षा हो चुकी । देख लिया । सब देवताओं ने

समझा मैं न समझ सका । अतः मैं मतिमन्द हूँ । सीताजी को पुष्प से शृङ्गारित करते देखकर विलासी समझ लिया था ।

निज कृत कर्म जनित फल पाएउ । अब प्रभु पाहि सरन तकि आएउ ॥

सुनि कृपाल अति आरत वानी । एक नयन करि तजा भवानी ॥७॥

अर्थ : अपने किये हुए कर्म का फल पा चुका । हे प्रभो ! अब रक्षा कीजिये । मैं शरण ताककर आया हूँ । हे भवानी ! कृपालु रामजी ने अत्यन्त आर्तवाणी सुनकर उसकी एक आँख फोड़कर छोड़ दिया ।

व्याख्या : जयन्त कहता है : राम विमुख थल नरक न लहही । यह बात ठीक है । संसार में मुझे कहीं त्राण नहीं है । यही मेरे किये हुए कर्म का फल है । जब फल पा चुका तब शरण के उपदेश गुरु मिल गये । मैं अनन्य शरण हूँ । अनन्यता द्योतित करने के लिए कवि ने शरण का ताकना कहा । यथा : सब ताकेसि रघुनायक सरना । आवै समय सरन तकि मोही । भाव यह कि आप ही रक्षा करें तो होय । नहीं तो मैं मरा ।

सासति करि पुनि करहि पसाऊ । नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ । कृपाल हैं । उसका वध नहीं चाहता । इसलिए बाण ने उसे मारा नहीं केवल उसके पीछे लगा हुआ उसे डराता गया । अब आर्तवाणी सुना । इसलिए काना करके छोड़ दिया । ब्रह्मास्त्र अमोघ है । अप्रतिक्रिय है । अतः वह खाली जा नहीं सकता । उसकी मर्यादा भी रखनी है । एक नेत्र के नष्ट होने से भी काम नहीं रुकता । अतः उस अस्त्र को एक नेत्र पर ही गिराया । सरकार एक बाण सन्धान कर लेते हैं तो फिर नहीं लौटाते । यहाँ तो बाण चल गया था । अतः बाण की मर्यादा रक्षा के लिए जयन्त को एक नेत्र देना पड़ा । अथवा अपना अपराध क्षमा कर दिया । पर भक्त का अपराध अक्षम्य है । अतः एक नयन करके ही प्राण छोड़ दिया । प्रभु नेत्र की भाँति जानकीजी तथा लक्ष्मणजी की रक्षा करते हैं । यथा : जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे । पलक बिलोचन गोलक जैसे । अतः जानकीजी पर प्रहार करनेवाले के नेत्र पर प्रहार न्याय था ।

दो, कीन्ह मोह बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित । ॥

प्रभु छाडेउ करि छोह, को कृपाल रघुवीर सम ॥२॥

अर्थ : उसने मोहवश द्रोह किया था । उसका तो वध ही दण्ड था । पर प्रभु ने छोह करके छोड़ दिया । रघुवीर के समान कृपाल कौन है ?

व्याख्या : रामजी का बल जानने के लिए सीताजी पर चोट करना अन्याय की पराकाष्ठा है । द्रोह का कोई कारण नहीं था । मोहवश द्रोह करनेवाले का दण्ड ही वध है । शरण आने से छोह किया प्राण छोड़ दिया । ऐसे द्रोही पर कृपा करना रघुवीर का ही काम है । अतः गोस्वामीजी आक्षेपायं प्रश्न करते हैं : को कृपाल रघुवीर सम ? अर्थात् कोई नहीं ।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किए श्रुति सुधा समाना ॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहि मोहि जाना ॥१॥

२६. प्रभु अत्रि भेंट प्रसंग

अर्थ : रघुपति ने चित्रकूट में बसकर श्रवणामृत चरित्र किये । फिर रामजी ने यह अनुमान किया कि सब लोग मुझे जान गये । अब : भोड़ होगी ।

व्याख्या : वाल्मीकिजी ने कहा था : चित्रकूट गिरि करहु निवासू । जहं तुम्हार सब भाँति सुपासू । उसी का साफल्य दिखलाते हैं । सब भाँति सुपास दिखलाने के लिए शृङ्गार रस का वर्णन किया । केवल पुष्प शृङ्गार ही नहीं नाना प्रकार के चरित्र किये । जिस भाँति राधानाथ का विहार स्थल वृन्दावन है उसी भाँति सीतानाथ का विहार स्थल प्रमोदवन प्रसिद्ध है । चरित्र में शृङ्गार रस के योग से माधुर्यातिशय हो गया । इसलिए : श्रुति सुधा समाना या अति सुधा समाना कहते हैं । अथवा अलौकिक रति ही वेदों का सार है । इसलिए : श्रुतिसुधा समाना कहा ।

सरकार ने निपादराज को यमुनातीर से हो विदा कर दिया, जिसमें सबको निवासस्थल का पता न चले । सरकार अवध निवासियों के प्रेम को जानते हैं । यथा : जेहि राखैं रहु घर रखवारी । सो जानै जनु गरदन मारी । सब रामजी का दर्शन चाहते हैं । घर की रखवारी के लिए रहना नहीं चाहते । अब तो भरतजी समाज के साथ निवासस्थल देख गये । अब तो अयोध्या भर को सरकार के निवास स्थान का पता चल गया । अयोध्या से बराबर आना जाना लगा रहेगा । भोड़ बनी ही रहेगी । विशेष रूप से घर से उदासीन रहने का वरदान महाराज से माँगा गया है । यथा : तापस वेप विशेष उदासी । चौदह वरिस राम बनवासी । अतः श्रीरामजी ने निवास-स्थल बदल देने का निश्चय किया ।

सकल मुनिन्ह सन विदा कराई । सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गएऊ । सुनत महा मुनि हरपित भएऊ ॥२॥

अर्थ : सब मुनियों से विदा लेकर सीता सहित दोनों भाई चले । जब प्रभु अत्रिजी के आश्रम पर पहुँचे तो सुनते ही महामुनिजी प्रसन्न हो उठे ।

व्याख्या : वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर तो चित्रकूट आये थे । अब चलने के समय सब मुनियों से विदा लेकर चलते हैं । राजधर्म दिखला रहे हैं कि राजा सब कार्य ब्राह्मणों की आज्ञा से करें । शासनशक्ति सदा ज्ञानशक्ति के सामने अब नतमस्तक हो । यहाँ तो सब मुनियों की तपस्या सफल करने आये थे । यथा : चलहु सफल श्रम सबकर करहु । अतः सबसे विदा लेना प्राप्त है । एहि विधि सीय सहित दोउ भाई । बसहि विपिन सुरमुनि सुखदाई । अतः अब चलने के समय कहते हैं : सीता सहित चले द्वौ भाई । यहाँ : सुरपति सुत करणीवाला प्रसङ्ग समाप्त हुआ । अब : प्रभु अरु अत्रि भेंट प्रसङ्ग चला ।

चित्रकूटवासी मुनियो मे अत्रिजी प्रधान हैं । यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसही । अथवा : मुनि नायक जहँ आयसु देही । राखहु तीरथ जल थल तेही । अतः सब मुनियोसे विदा ले लेने पर भी इनसे विदा लेना आवश्यक था । अतः उनके आश्रम पर गये । मुनिजी ने शिष्यो द्वारा प्रभु के आगमन का समाचार सुना । बड़े हर्षित हुए : सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगल मूल अमंगल दमनू ।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए । देखि रामु आतुर चलि आए ॥
करत दडवत मुनि उर लाए । प्रेम वारि द्वौ जन अन्हवाए ॥३॥

अर्थ—पुलकित शरीर होकर अत्रिजी उठकर दौड़ पड़े । यह देखकर रामजी आतुरता के साथ चले आये । दण्डवत् करते ही मुनिजी ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रु से दोनों को स्नान कराया ।

व्याख्या अत्रिजी हर्षित हुए । इसलिए सात्त्विक भाव हुआ । रोमाञ्च हो गया । आश्रम मण्डल में सरकार का पादार्पण हुआ । आगे से आकर लेना चाहिए । इस शिष्टाचार में अन्तर न पड़ने पावे । इसलिए उठि धाए कहा । मुनिजी आतुर हैं । दौड़े चले आते हैं । इसलिए रामजी भी आतुरता से चले आये । भगवती साथ में हैं इसलिए दौड़े नहीं । पर मानसिक अवस्था समान ही है । ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम् । यह नियम है । इस भाँति स्वागत कहा ।

अत्रिजी को अतिप्रम है । इसलिए भलीभाँति दण्डवत् भी नहीं करने दिया । उठाकर हृदय से लगा लिया । सरकार मर्यादा पालन करते हैं । मुनिजी भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकते । पर आनन्दाश्रु की झरी लग गयी । आशीर्वाद तक न दे सके । मानो आनन्दाश्रु से ही स्नान करा रहे हैं । यहाँ षोडशोपचार पूजा होगी । यथा आसन स्वागत पाद्य अर्घ्यमाचमनीयकम् । मधुपर्काचमन स्नान वस्त्र चाभरणानि च । सुगन्ध सुमनो धूप दीप नैवेद्यवन्दनम् ।

देखि राम छवि नयन जुडाने । सादर निज आश्रम तब आने ॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए । दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥४॥

अर्थ . श्रीरामजी की छवि देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये । तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम में ले आये । सुन्दर वचनों को कहकर पूजा की और मूल फल का नैवेद्य लगाया जो प्रभु को बहुत अच्छे लगे ।

व्याख्या . घनश्याम राम के दर्शन से आँखें शीतल हुई । मुनिजी दौड़कर आश्रम के बाहर ही सरकार से मिले थे । अतः आदर के साथ लिवा ले गये । रामायण में सभी स्थलों पर जिस भाग्यवान् को दोनों भाइयों का दर्शन हुआ उसने पहिले तो दोनों भाइयों को देखकर आनन्द पाया । पर पीछे से आँखें प्रभु में ही बँध गयी । यथा . पहिले : दीन्ह असीस देखि भल जोटा । पर पीछे से : रामहि चित्तइ रहे भरि लोचन । रूप अपार भार मद मोचन । इत्यादि ।

शेष पूजा, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय मधुपर्क, आचमन, वस्त्र, आभरण,

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप से तथा मेरा बड़ा भाग्य है, मैं कृतकृत्य हुआ इत्यादि वचन कहकर किया। अथवा सुहाये वचन वेद वाक्यों से पूजन किया। अन्त में मूल फल का नैवेद्य लगाया। भक्ति से अर्पण किये गये। अतः मनभायें लिखते हैं।
यथा • पत्र पुष्प फल तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन । गो

दो प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि ।

मुनिवर परम प्रवीण, जोरि पानि अस्तुति करत ॥३॥

अर्थ प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देख करके परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

व्याख्या जब से सरकार आसन पर बैठे हैं तब से मुनि पूजाम लगे हैं। पूजा करते हुए भी शोभा देखते जा रहे हैं। परन्तु कृत्य में लगे रहने से आँख भर देख न सके। अतः आसन पर बैठी हुई पूजित मूर्ति की शोभा आँख भरकर पूजन के बाद देखा। मुनिजी परम प्रवीण हैं। पूजा के बाद स्तुति भी होनी चाहिए। अतः हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं। अथवा या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी। इसलिए ऐसी स्तुति करते हैं जिससे दोनों लोक सवे। क्योंकि मुनिवर परम प्रवीण हैं। यह गुणग्राम स्तुति नवाँ अश्लेषा नक्षत्र है। इसकी फल स्तुति प्रियपालक परलोक लोक के है।

नमामि भक्तवत्सल । कृपालु सील कोमल ॥

भजामि ते पदाम्बुज । अकामिना स्वधामद ॥१॥

अर्थ हे भक्तवत्सल। हे कृपालु, हे कोमल स्वभाववाले। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषों को अपना परम धाम देनेवाले आपके चरणों को मैं भजता हूँ।

व्याख्या विश्ववास भगवान् भक्त पर कृपा करके प्रकट हुए हैं। इसलिए भक्तवत्सल कृपालु कहा। यथा भक्तवत्सल प्रभु कृपा निधाना। विश्ववास प्रगटे भगवाना। केवल प्रकट ही नहीं होते। भक्त पर बड़ा छोह करते हैं। जेहि जन पर ममता अति छोह। जेहि करुणा करि कीन्ह न कोह। गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिव रघुराजू। कभी भक्त पर क्रोध नहीं करते। उसकी बिगड़ी सुधारा करते हैं। अतः कोमल सील कहते हैं। यथा अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। एक सूल माहि बिसर न काळ। गुरु कर कोमल सील सुभाळ। इससे भजनीय भगवान् का स्वभाव कहा।

अब सामर्थ्य कहते हैं सरकार के चरण कमल कामना रहित जनो को स्वधाम देते हैं। यथा तन तजि तात जाहु मम धामा। देखै बाह तुम पूरन कामा। ऐसे चरण कमलों को मैं भजता हूँ।

निकाम स्याम सुंदर । भवानुनाथ मदर ॥

प्रफुल्ल कज लोचन । मदादि दोष मोचन ॥२॥

अर्थ आप अत्यन्त श्याम सुन्दर ससाररूपी समुद्र के मन्यन के लिए मन्दराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रवाल और मद आदि दोषों को नष्ट करनेवाले हैं ।

व्याख्या स्याम शरीर सुभाय सुहावन । सोभा कोटि मनोज लजावन । अत सरकार के श्याम शरीर को अति सुन्दर कहा । शरीर की सुन्दरता बन्ध का कारण होती है । उसी सुन्दरता में बँधा हुआ ससार दुख पाता है । पर यह सुन्दरता भवसागर को अभिभूत करनेवाली है । अत उसे मन्दर रूप कहते हैं ।

प्रफुल्ल कज की उपमा देकर नेत्रों की सुन्दरता कहा । मदादि दोष मोचन कहकर उसका प्रभाव कहा । उसी नेत्र में कृपावलोकनि बसती है । क्रोध मनोज मोह मद माया । छूटे सकल राम की दाया । इसीलिए श्रीनारदजी ने विनय किया मामवलोकय पकज लोचन ।

प्रलव बाहु विक्रम । प्रभोऽप्रमेय वैभव ॥

निपग चाप सायक । धर त्रिलोक नायक ॥३॥

अर्थ हे प्रभो । आप की लम्बी भुजा का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय है । आप तरकस और धनुष धारण करनेवाल । तीनों लोको के स्वामी हैं ।

व्याख्या कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ प्रभु । अत प्रभु सम्बोधन दिया । आजानुभुज हैं । अत प्रलम्ब बाहु कहा । उसके बल की सीमा नहीं । वही पृथ्वी का भार हरण करने में समर्थ है । यथा भुजबल विपुल भार महि खडित । अथवा सुमिरत श्री रघुवीर की बाहें । होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लांघत कोउ उत्तरत थाहें । सीतल सुखद छाँह जेहिकर की मेटत पापताप माया । निसि वासर तेहिकर सरोज की चाहत तुलसीदास छाया । अप्रमेय वैभव यथा जो नहि देखा नहि सुना जो मनहू न समाय । सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि विधि जाय । जो कुछ भुसुण्डिजी ने देखा वह प्रभु का वैभव नहीं था ।

सरकार जो धनुष बाण धारण किये रहते हैं । जो अखण्ड दण्डायमान काल तथा खण्ड काल के प्रतीक हैं । निपङ्ग खण्ड कालो का कोप है । तथा लव निमेष परमान जुग वर्ष कल्पसर चड । भजसि न मन तेहि रामकहँ काल जासु कोदड । अत त्रिलोक के नायक हैं । यहाँ तक नित्य दिव्य मूर्ति का वर्णन है ।

दिनेस वस मडन । महेस चाप खडन ॥

मुनीद्र सत रजन । सुरारि वृद भजन ॥४॥

अर्थ आप सूर्यकुल के भूषण हैं । शिवजी के धनुष के तोड़नेवाल हैं । मुनीश और सन्तो को सुख देनेवाल और देवताओं के शत्रु समूह के नाश करनेवाल हैं ।

व्याख्या : दिनेशवश मण्डन कहकर सूर्यवश में अवतार कहा । महेशचाप खण्डन कहकर सीता स्वयम्बर कहा । इस भाँति बालकाण्ड की कथा सूत्र रूप में कहा । जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसी का विस्तार है ।

सरकार मुनिगण के मिलन में सब प्रकार से अपना हित मानते हैं । वनवास स्वीकार के समय श्रीमुख से कहते हैं • मुनिगण मिलन विषेष वन सर्वाहि भाँति हित मोर । और वन में जाकर मुनियों के श्रम को सफल करते हैं । यथा अग्नि आदि मुनिवर बहु बसही । करहि जोग जप तप तन कसही । चलहु सफल श्रम सबकर करहु । राम देहु गौरव गिरि बरहु । मुनियों का अस्थि समूह देखकर पृथ्वी को निश्चिन्त हीन करने की प्रतिज्ञा करते हैं । यथा निश्चिन्त निकर सकल मुनि खाए । मुनि रघुबीर नयन जल छाए । निश्चिन्त हीन करहुँ महि भुज उठाई पन कीन्ह । सकल मुनिन्ह के आश्रमन्ह जाइ जाइ सुख दीन्ह । तब से निश्चिन्त हीन महि करने का उद्योग प्रारम्भ हुआ । अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार भारी मुनि द्रोही । मुनि ने पञ्चवटी में निवास का मन्त्र दिया । वही सूर्पणखा की नाक कटी और राक्षसों से वैर बँधा । इसीलिए : मुनीन्द्र सत्तरजन कह रहे हैं ।

उसी कारण से खरदूषण से युद्ध हुआ । सीताजी हरी गयी । उन्हें खोजते समय सुग्रीव मितार्ई हुई । लङ्कापर चढाई हुई और निश्चिन्त वश का विनाश हुआ । इसलिए • सुरारि वृद्ध भजन कहा एव अयोध्याकाण्ड, अरण्य, सुन्दर, किष्किन्धा और लङ्का की कथा सूत्र रूप से कही ।

मनोज वैरि वन्दित । अजादि देव सेवित ॥

विशुद्ध बोध विग्रह । समस्त दूषणापह ॥५॥

अर्थ : आप कामारि शिवजी द्वारा वन्दित तथा ब्रह्मादि देव सेवित हैं । आप की मूर्ति विशुद्ध बोधमय है और आप सब दोषों के नष्ट करनेवाले ।

व्याख्या : राक्षसों के वध के बाद लङ्का में ही शिवजी आये । ब्रह्मादि देवगण आये और प्रभु की स्तुति की । अतः कामारि वन्दित तथा ब्रह्मादि देवों से सेवित होना कह रहे हैं : कोसलेन्द्र पदकज्जमञ्जुली कोमलावजमहेश वन्दितौ । अथवा : मन जात किरात निपात किये । मृगलोग कुभोग सरे न हिये । हतिनाथ अनाथन्ह पाहि हरे । बिपया वन पाँवर भूलि परे । अर्थात् सरकार की सेवा से कामजय होता है और देवों की सेवा से देवत्व प्राप्ति होती है । यह सूचित किया ।

लीलाविग्रह भी पाञ्चभौतिक नहीं है । यथा . चिदानन्द मय देह तुम्हारी । विगत विकार जान अधिकारी । माया का परदा कुछ काल के लिए कुछ हट जाता है और विशुद्ध बोधमय विग्रह प्रकट हो जाता है । यही प्रभु का अवतार है । यथा : भये प्रगट कृपाला । उस लीला विग्रह के सम्मुख होते ही सब दूषण नष्ट हो जाते हैं । यथा सम्मुख होइ जीव मोहि जबही । जन्म कोटि अघ नासहि तबही । इससे शिव ब्रह्मादि से सेवित और वन्दित होने का कारण भी कहा ।

नमामि इन्दिरापति । सुखाकर सता गति ॥

भजे सशक्ति सानुज । शचीपति प्रियानुज ॥६॥

अर्थ मैं लक्ष्मीपति को नमस्कार करता हूँ । जो सुखो की खानि तथा सत्य पुरुषो की गति हैं । मैं शचीपति के छोटे भाई को शक्ति और अनुज के साथ भजता हूँ ।

व्याख्या इन्दिरापति कहकर रामजी का अयोध्या में राज्याभिषेक कहा । यथा राम वाम दिसि सोहति रमारूप गुन खानि । देखि मातु सब हरखी जनम सुफल निज जानि । सुखाकर से रामराज्य की सुख सम्पदा कहा । यथा रामराज्य कर सुख सपदा । बरनि न सकहि फनीस सारदा । सता गतिम् कहवर सन्तो का दर्शन के लिए आगमन कहा । यथा नारदादि सनकादि मुनीसा । दरसन लागि कोसलाधीसा । दिन प्रति सकल अयोध्या आवहि । देखि नगर विराग बिसरावहि ।

सीताजी शक्ति हैं । सरकार शक्तिमान् हैं । शक्ति और शक्तिमान् में भेद नहीं है । सानुज से भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नरूपी अशो का ग्रहण है । सरकार अशो हैं । यथा असन्ह सहित देह धरि ताता शचीपति के अनुज तो बहुत से देवता हैं । पर प्रिय अनुज तो उपेन्द्र वामनरूप से सरकार ही हैं । जिन्होंने बलि को छल कर त्रिलोकी इन्द्र को दी । यहाँ भी माया मानुष रूप धारण करके रावण से त्रिलोकी को छीनकर इन्द्र को ही लौटाने का फेर में हैं । अतः वामनावतार का उल्लेख करते हैं । सरकार गुणातीत अरु भोग पुरन्दर हैं । अतः शचीपति प्रियानुज कहते हैं ।

त्वदग्निमूल ये नरा । भजति हीन मत्सरा ॥

पतति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि सकुले ॥७॥

अर्थ जो मनुष्य मत्सर रहित होकर आपके पैर के तलवे का भजन करते हैं वे वितर्करूपी तरङ्गों से परे भवसागर में नहीं पड़ते ।

व्याख्या यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम् । सरकार के चरण ही भवसागर के लिए नौकारूप हैं । नौका का आश्रय ग्रहण करनेवाला पार चला जाता है और जल से उसका स्पर्श नहीं होता । इसी भाँति सरकार के चरणतल के भजन करनेवाले का सस्पर्श ससार में रखते हुए भी ससार से लेप नहीं रहता । वे ससार में गिरते नहीं । शतं यही है कि उनमें मत्सरता न हो । मत्सर मान मद चोर हैं । ये भक्तिमणि को चुरा ले जाते हैं । अतः शुद्ध हृदय से भजन होना चाहिए । सागर में नित्य नयी तरङ्गें उठा करती हैं । कभी वह क्षीणकल्लोल नहीं होता । उसी भाँति भवसागर में तर्क वितर्क की लहरें उठा करती हैं । इन्हीं के थपेड़ों से तिरने में असमर्थ होकर प्राणी डूब जाता है । यथा खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई । भयउँ मोहबस तुम्हरिहि नाई ।

तिरनेवाली भी दो प्रकार के होते हैं । एक ऐसे हैं जो भक्ति ही चाहते हैं

मुक्ति नहीं चाहते। यथा : राउर बदि भलभव दुख दाहू। प्रभु विनु बादि परम पद लाहू। ऐसे भक्त भी वितकं वीचि सङ्कुल भवसागर में नहीं पड़ते। सरकार के चरणों का शरण ग्रहण किये हुए जहाज पर सैर करते हुए फिरते हैं और दूसरों को भी कृतार्थ करते हैं और एक ऐसे हैं जो भजन से मुक्ति चाहते हैं। भवसागर से पार चले जाते हैं और फिर उन्हें जहाज की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे दोनों प्रकार के भक्तों को संसार सागर बाधा नहीं कर सकता। यहाँ तक भक्ति कहा।

विविक्तवासिनः सदा । भजन्ति मुक्तये मुदा ॥

निरस्य इन्द्रियादिकं । प्रयान्ति ते गतिं स्वकं ॥८॥

अर्थ : एकान्तवासी सदा प्रसन्नतापूर्वक मुक्ति के लिए इन्द्रियो का निग्रह करके भजन करते हैं। वे अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : इनमें से मुक्ति चाहनेवाले : मुमुक्षु जनसंवाध वर्जित स्थान में रहकर आनन्द से भजन करते हैं। देहेन्द्रियादिको को अपने से पृथक् मानते हुए अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्वात्मगति अर्थात् कैवल्य को प्राप्त होते हैं। यथा : राम भजत सोई मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आवइ वरिआई। पहिले नमामि भक्त वत्सलं : कहकर भजनीय का स्वभाव वहा। अकामिनां स्वधामद : कहकर भजनीय का सामर्थ्य कहा। निकाम श्यामसुन्दरं : कहकर स्वरूप कहा। दिनेश वशमंडनं आदि कहकर चरित्र कहा। त्वदघ्नमूल ये नराः आदि कहकर भक्ति और मुक्ति के लिए भजन करने का उपदेश देते हैं।

तमेकमद्भुतं प्रभुं । निरीहमीश्वर विभुं ॥

जगद्गुरुं च शाश्वतं । तुरीयमेव केवलं ॥९॥

अर्थ : 'उसी' एक, अद्भुत प्रभु, इच्छारहित, ईश्वर, व्यापक, जगद्गुरु, नित्य, तुरीय और केवल को।

व्याख्या : आप निर्गुण रूप में जगत् से विलक्षण हैं। अतः अद्भुत हैं तथा सगुण रूप से भी अद्भुत हैं। यथा : जो नहीं देखा नहीं सुना जो भजहूँ न सभाय। सो अब अद्भुत देखेउ वरनि कवन विधि जाय। तथा प्रभु होने पर भी निरीह हैं और ईश्वर होकर विभु हैं। अतः सभी प्रकार से अद्भुत हैं। आश्चर्यवत् पश्यति काश्चिदेनमाश्चर्यवद्ब्रूति तथैव चान्यः। आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।

स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। इस योगसूत्र का ठीक उल्टा है : जगद्गुरु च शाश्वतं। वह अनन्तकाल से सबका गुरु है। ब्रह्मदेव को भी जिसने वेद दिया। आज भी गुरुमुख से वही उपदेश करता है। नहीं तो एक मनुष्य दूसरे का गुरु नहीं हो सकता। मनुष्य विनाशी है। ईश्वर अविनाशी हैं। वे ही अनादि गुरु हैं। वे ही जिसके मुख द्वारा उपदेश करते हैं उसी को संसार गुरु मानता है।

सो अनादि गुरु आप ही है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था से परे होने से आप तुरीय कहे जाते हैं। तीनों अवस्था की भी अपेक्षा न करके आप केवल तुरीय अर्थात् तुरीयातीत हैं।

भजामि भाववल्लभं । कुयोगिना सुदुर्लभं ॥

स्वभक्त कल्प पादप । समं सुसेव्यमन्वहं ॥१०॥

अर्थ : जो भाव प्रिय, कुयोगियो के लिए अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष सम और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं। ऐसे आपको : मैं निरन्तर भजता हूँ।

व्याख्या : ऐसे तुरीय का भजन जाग्रदावस्था में कैसे सम्भव है। इस पर कहते हैं कि भाव आपको प्यारा है। जिस भाव से जो भजता है। उसके लिए वैसे ही हो जाते हैं। यथा . जाकी माया बस बिरचि सिद्ध नाचत पार न पायो। करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो इत्यादि। जो भगवद्भक्ति हीन योग है उसी को कुयोग कहते हैं। यथा : योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि रामप्रेम परधानू। कुयोगियो के लिए आप इसलिए दुर्लभ हैं कि वे मोह वृक्ष उखाड़ नहीं सकते। यथा पुरुष कुयोगी सुनु उरगारी। मोह बिटप नहि सकैं उपारी।

भक्तयोगी के लिए आप कल्पवृक्ष हैं। यथा . देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ। जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समन सब सोच। माँगे अभिमत पाइ जग राव रक भल पोच। आप वैषम्यरहित हैं। यथा : यद्यपि सम नहि राग न रोषू। आप सदा सुसेव्य हैं। यथा बलि पूजा चाहत नही चाहत एक प्रीति।

अनूप रूप भूपति । नतोहमुर्विजा पति ॥

प्रसीद मे नमामि ते । पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥११॥

अर्थ : हे अनूप रूप पृथ्वीपति। हे घरणीसुता नाथ। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइये। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरणों की भक्ति दीजिये।

व्याख्या : आप सगुण रूप भी हैं और निर्गुण रूप भी हैं। अथवा आप में अनुपम सौन्दर्य है। इसलिए अनूप रूप हैं। आप पृथ्वीपति भी हैं और पृथ्वी की कन्या सीता के भी पति हैं। पति शब्द पा रक्षणे धातु से बना है। सो रक्षा करनेवाले को पति कहते हैं और सप्तपदी के बाद वर को पति सज्ञा होती है। यहाँ पति शब्द दोनों अर्थ में आया है। घरणी की आप रक्षा करनेवाले हैं और घरणी सुता के आप स्वामी हैं।

जो एक बार प्रणाम करता है उसे आप अपना लेते हैं। मैंने तो तीन बार प्रणाम किया है। यथा : १. नमामि भक्तवत्सलं २. नमामि इन्दिरापतिं और

३. प्रसीद मे नमामि ते । अतः भक्ति मांगते हैं । यह स्तुति : भक्तवत्सलं से प्रारम्भ होकर : भक्ति देहि मे से समाप्त होती है । इसका आरम्भ और पर्यवसान दोनों भक्ति में है । आदि अन्त के मिलने से चक्राकार आकृति हो जाती है । अतः इसका वर्णन अश्लेषा नक्षत्र की भाँति चक्राकार है और भजन ही इसमें तारे की भाँति पाँच स्थानों में चमकता है । यथा : १ भजामि ते पदाम्बुजं २. भजे सशक्ति सानुजं ३. भजति हीनमत्सराः ४ भजंति मुक्तये मुदा ५. भजामि भाववल्लभं ।

पठन्ति ये स्तवं इदं । नरादरेण ते पदं ॥

व्रजन्ति नात्र संशयं । त्वदीय भक्तिसंयुताः ॥१२॥

अर्थ : जो इस स्तुति को आदर से पढ़ते हैं वे आपकी भक्ति संयुक्त होकर आपके पद को प्राप्त होते हैं ।

व्याख्या : फलश्रुति कहते हैं : प्रिय पालक परलोक लोक के । २८ गुणग्रामों की अट्ठाईस फलश्रुतियाँ बालकाण्ड के आरम्भ में ही कही गयी हैं । यह नवी गुणग्राम है । गुणग्राम को ही स्तुति कहते हैं । भक्तिरूपी पूर्णिमा में ये नक्षत्रों की भाँति सुशोभित हैं । नवी नक्षत्र अश्लेषा है । उसका आकार चक्र सा है और उसमें पाँच तारे चमकते हैं । ये बातें ऊपर दिखला दी गयी हैं । फलश्रुतियाँ भी ठीक इसी क्रम से हैं । यथा : जल मंगल गुणग्राम राम के । दानि सकल घन धर्म धाम के । इत्यादि । यहाँ : ते पद व्रजन्ति से परलोक का पालक कहा और त्वदीय भक्तिसंयुता से इस लोक का पालक कहा । यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये । जिमि जन राम भगति के पाये ।

दो. विनती करि मुनि नाइ सिर, कह कर जोरि बहोरि ।

चरण सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि ॥४॥

अर्थ : विनती करके मुनिजी ने सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर बोले कि चरण कमल को हे नाथ ! कभी मेरी बुद्धि परित्याग न करे ।

व्याख्या : जोरि पाणि अस्तुति करत : से उपक्रम और विनती करि मुनि सिर : से उपसंहार है । पहिले हाथ जोड़कर स्तुति की थी । अब हाथ जोड़कर वरदान मांगते हैं कि आप सबके हृदय के प्रेरक हैं । मेरी मति को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि इन चरण कमलों को कभी न छोड़े । इस समय तो मेरी बुद्धि इन चरणों में लगी है । क्योंकि साक्षात् दर्शन हो रहा है । पर आपके चले जाने पर समय पाकर कही मेरी बुद्धि बहिर्मुख न हो जाय । क्योंकि चरणों के छोड़ने पर फिर कही ठिकाना नहीं है । यथा : श्रीरघुवीर चरण चितन तजि नाहि न ठौर कहूँ । मुनिजी योग जप और तप से शरीर को कस रहे थे । यथा : करहि जोग जप तप तन कसही । आज उस परिश्रम के फल की प्राप्ति का अवसर आया है । अतः मुनिजी बुद्धि की प्रेरणा का वरदान माँगकर गायत्री जप के लक्ष्य की ही सिद्धि चाह रहे हैं । गायत्री की उपासना में बुद्धि की प्रेरणा ही माँगी जाती है ।

सरकार जिससे बड़ा का नाता मान लेते हैं उसके वरदान मांगने पर एवमस्तु नहीं कहते । अभीष्ट प्रदान कर देते हैं । तत्पश्चात् मुनिजी के कहने पर सीताजी भगवती अनसूया के पास गयी ।

अनसूया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील विनीता ॥

रिपिपतिनी मन सुख अधिकाई । आसिप देइ निकट बैठाई ॥१॥

अर्थ : फिर सुशील और विनीत सीताजी अनसूया के चरणों को पादुकर उनसे मिली । ऋषिपत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ । उन्होंने आशीर्वाद देकर निकट बिठलाया ।

व्याख्या : न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यगुणानपि । न हसेत् परदोषादच सानसूया प्रकीर्त्यते । जो गुणों के गुण में दोष नहीं लगाता और दूसरे के गुणों की स्तुति करता है दूसरे के दोषों का उपहास नहीं करता उसे अनसूया कहते हैं । अत्रिजी की पत्नी का जैसा नाम था वैसा ही गुण था । ये पतिव्रताओं की शिरोमणि थी । इनके राम अत्रिजी ही थे । दूसरे राम को ये नहीं जानती थी । अतः दर्शन के लिए नहीं आयी । ऋषिपत्नी के पास जगदम्बा सीताजी गयी । बड़ी विनीत हैं । इसलिए जाकर चरण ग्रहण किया । सुशील हैं : इसलिए मिली । स्त्रियों के लिए क्षणवत् प्रणाम की विधि नहीं । प्रणाम करके परिष्वङ्ग देने का ही सदाचार है । यथा : करि प्रणाम भेटी सब सासू ।

अनसूयाजी का परिचय देते हुए कवि कहते हैं कि ऋषिजी की पत्नी हैं । आह्लादिनी शक्ति भगवती सीताजी के परिष्वङ्ग से उन्हें बड़ा सुख प्राप्त हुआ । सीताजी ने चरण ग्रहण किया । इसलिए आशीर्वाद दिया । सौभाग्यवती भव । पुत्रवती भव । यह आशीर्वाद स्त्री समाज में आज भी प्रचलित है । सीताजी ने दूर बैठना चाहा तो आदर से उन्हें निकट बिठलाया । मनसा : सुख अधिकाई । वचसा : आसिप देइ और कर्मणा : निकट बैठाई ।

दिव्य वसन भूपन पहिराए । जे नित नूतन अमल सुहाए ॥

कह' रिपिवधू सरस मृदु बानी । नारि धर्म कछु ब्याज बखानी ॥२॥

अर्थ : दिव्य कपड़े और गहने पहिनाये । जो सदा नये स्वच्छ और सुन्दर बने रहते थे । फिर ऋषिपत्नी कुछ स्त्रीधर्म के व्याज से मधुर और कोमल वाणी से बखानकर कहने लगी ।

व्याख्या : भगवती अनसूया चन्द्र की माता हैं । चन्द्र से ही क्षत्रियों का प्रधान वंश चला है । सूर्यवंश और चन्द्रवंश में कन्या का लेन देन है । इसलिए अनसूयाजी कुलवृद्धा हैं । अतः उनका प्रीतिदान स्वीकार करना पड़ा । सम्भवतः इसी भय से सीताजी फिर किसी ऋषिपत्नी से नहीं मिली । अनसूयाजी तापस वेप में जानकीजी को नहीं देख सकी । अतः दिव्य वसन भूषण पहिनाया । जिसमें वनवास की अवधि भर काम दे । दिव्य वसन भूषण का प्रभाव कहते हैं कि जो कभी पुराना मैला तथा

विकृत न हो । ऋषिजी ने सरकार का पूजन किया । ऋषिपत्नी जानकी जी का पूजन करती हैं । स्त्रियों का पूजन वस्त्रालङ्कार से ही होता है ।

ऋषिजी ने पूजनोत्तर श्रीरामचन्द्र से सोहाए वचन कहे थे । अब ऋषिपत्नी पूजनोपरान्त सरस मृदुवाणी बोली । नारीधर्म के व्याज से सीताजी की स्तुति की तथा ससार को उपदेश दिया । यथा : कहेउँ कथा ससार हित । पातिव्रत्य पुरःसर ही भगवती का वनवास हुआ था । अतः पातिव्रत्य धर्म वर्णन से सरसता कहा । अर्थतः सरस और शब्दतः मधुर ।

मातु पिता भ्राता हितकारी । मित प्रद सब सुनु राजकुमारी ॥

अमित दानि भर्ता वैदेही । अधम सो नारि जो सेवन तेही ॥३॥

अर्थ : हे राजकुमारी । सुनो : माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं । परन्तु वे सब एक सीमा तक ही देनेवाले हैं । परन्तु हे जानकी ! पति तो असीम देनेवाला है । वह स्त्री अधम है । जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती ।

व्याख्या : हितकारियों में माता प्रथम है । पिता उसके बाद है । भाई का तीसरा नम्बर है । ये सब देनेवाले हैं । पर इनके देने की सीमा है । राजकुमारी सम्बोधन का भाव यह है कि महाराज जनक ने इतना दिया फिर भी दायज की सीमा थी । सर्वस्व न दे सके । यही संसार की रीति है । माता पिता देते हैं और कह देते हैं कि बेटी ! इतना सब तुम्हारा है । इसलिए मितदानी हैं ।

भर्ता यह नहीं कहता । उसका जो कुछ है सब पर स्त्री का अधिकार है । यथा : प्रिया प्रान सुत सर्वस मोरे । परिजन प्रजा सकल वस तोरे । यह बात भर्ता ही कह सकता है । मित ददाति च पिता मितं भ्राता मित सुत । अमितस्य च दातार भर्तारं कानुसेवयेत् । अतः भर्ता की सेवा न करनेवाली स्त्री अधम है । तुमने तो पति सेवा के लिए राज्य छोड़ा । तुम उत्तम हो ।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहि चारी ॥

वृद्ध । रोगवस जड़ धनहीना । अंध वधिर क्रोधी अति दीना ॥४॥

अर्थ : धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारों की परीक्षा आपत्ति के समय होती है । बूढ़ा, रोगी, भूख, दरिद्र, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन ।

व्याख्या : सम्पत्तिकाल में धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री ये चारों अनुकूल रहते हैं । विपत्तिकाल ही इनकी कसौटी है । अर्थात् तुम्हारी भाँति परीक्षा में कोई उत्तीर्ण नहीं हुआ । यथा : तापस बेप जनक सिय देखी । भयउ प्रेमु परितोपु विसेपी । पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ । सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ । जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी । गबनु कीन्ह बिधि अंड करोरी । आपत्तिकाल कहकर ऐसा उदाहरण देती हैं जिनसे सुख मिल ही नहीं सकता ।

ये आठ दुःखद होने से अपमान के पात्र हो जाते हैं । १. वृद्ध जो पाँचवी अवस्था अपक्षय को प्राप्त है । २. रोगवश अर्थात् असाध्य रोग से गृहीत कुष्ठी आदि

हैं। ३ बुद्धिविहीन ४ धनहीन ५ चक्षुरिन्द्रियहीन ६ और बहिरा ७ क्रोधी स्वभाव तथा ८ अति दीना स्त्री की प्रतिष्ठा तथा सुख पति से ही है। उसमें यदि ऐसे दोष हो फिर भी पति अपमान की वस्तु नहीं है।

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥

एक धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥५॥

अर्थ : ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुर में अनेक प्रकार के दुःख पाती है। मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणों में प्रेम करना। स्त्री के लिए बस एक ही धर्म है एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

व्याख्या पति का अपमान नरक में गिरानेवाला है। चाहे पति उपर्युक्त दोषों से युक्त ही क्यों न हो। उपर्युक्त दोषियों में पापी को नहीं गिनाया। पापी जबतक प्रायश्चित्त न कर ले तब तक त्याज्य है। पति के अपमान से यमपुर प्राप्ति और नरक में घोर दण्ड होता है। जो अपमान के पात्र नहीं हैं उनके अपमान से नरक होने में कहना ही क्या है। जिस प्रकार लोकोत्तर सुख प्राप्ति के लिए स्वर्ग है उसी प्रकार लोकोत्तर दुःख के लिए नरक है।

अनेक धर्म है। असख्यात व्रत है। बहुत से नियम हैं। परन्तु स्त्री के लिए कोई भी नहीं है। उसका पति से पृथक् नियम व्रतादि में अधिकार नहीं है। पतिपद प्रेम होने से ही उसे सम्पूर्ण धर्म, व्रत और नियम का फल मिल जाता है। स्त्री यदि कोई व्रत या नियम का पालन करना चाहे तो पति की आज्ञा से उसके कल्याण के लिए कर सकती है। प्रेम रहते अनादर नहीं होता। अतः अनादर करते ही स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं। किसी प्रकार से प्रेम में व्यभिचार न होने पावे। अथवा काम से प्रेम धर्म, वचन से प्रेमव्रत, और मन से प्रेम यही स्त्रियों के लिए नियम है।

जग पतिव्रता चार विधि अहो। वेद पुरान सत सब कहही ॥

उत्तम के अस बस मन माँही। सपनेहु आन पुरुष जग नाँही ॥६॥

अर्थ : ससार में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद पुराण और सब सन्त ऐसा ही कहते हैं। उत्तम के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि सपने में भी जगत् में दूसरा पुरुष नहीं है।

व्याख्या पतिव्रता के चार प्रकार के होने में सबका ऐकमत्य है। अर्थात् यह शिष्टानुगृहीत सिद्धान्त है। स्त्री पुरुष में भोक्तृ भोग्य दृष्टि स्वभाविकी है। स्वभाविकी प्रवृत्ति के निरोध में ही शास्त्र की उपयोगिता है। वह निरोध स्त्रियों में चार प्रकार से सम्भव है। स्वभाविकी प्रवृत्ति का सर्वात्मना निरोध हठात् नहीं हो सकता। अतः उस दृष्टि को सब पर से हटाकर एक में केन्द्रित करना शास्त्रीया प्रवृत्ति है। अतः स्त्री का अपनी भोक्तृ दृष्टि को पाणिगृहीता के ऊपर ही केन्द्रित करना पतिव्रत्य है। उसी का चार प्रकार कहा गया है १ भोक्तृभोग्य दृष्टि कही

न होकर केवल पति मे ही होना । २ भोक्तृभोग्य दृष्टि को सब ओर से खींचकर केवल पति मे केन्द्रित करना । ३ भोक्तृभोग्य दृष्टि केन्द्रित नहीं हो सकी । पर धर्मादि के विचार से इन्द्रियदमन करना । ४ दूसरो के भय आदि से धर्म का निभ जाना ।

इनमे प्रथम श्रेणी की स्त्रियाँ उत्तम हैं जो पुरुषरूप से अपने पति को ही जानती हैं । दूसरे के पुस्त्व की भावना ही नहीं है । यद्यपि स्वप्न मे अपना वश नहीं है । पर बिना वासना के स्वप्न भी नहीं होता । अतः उन्हे स्वप्न मे भी पर पुरुष मे पुस्त्व की भावना नहीं होती ।

मध्यम परपति देखै कैसे । आता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहई । सो निरुष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥७॥

अर्थ मध्यम पराये पति को ऐसे देखती है जैसे वह अपना भाई पिता या पुत्र हो । जो धर्म का विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती हैं वह निरुष्ट स्त्री है । ऐसा वेद का मत है ।

व्याख्या वह स्त्री मध्यम श्रेणी की है जिसे दूसरो मे भी पुस्त्व की भावना है पर उन्हे भोग्यदृष्टि से नहीं देखती । समानवयस्क पर भाई की दृष्टि, वयोवृद्ध पर पिता की दृष्टि, अल्पवयस्क पर पुत्र की दृष्टि रखती है । यहाँ तक मानसिक अपवित्रता को स्थान नहीं है ।

परन्तु जिस स्त्री को अन्य पुरुष के प्रति भोग्यदृष्टि तो हुई पर वह धर्म का विचार करके कुल की मर्यादा पर ध्यान करके व्यभिचार से बच जाती है । उसकी शारीरिक शुद्धता अक्षुण्ण है । मानसिक अशुद्धि भी अधिक नहीं हुई । अतः वह पतिव्रताओं मे निरुष्ट है ।

बिनु अवसर भय ते रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥८॥

अर्थ जो अवसर न मिलने से या भय से बच जाती है उसे ससार मे अधम पतिव्रता समझना । पति को छगकर जो परपति से रति करती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक मे पड़ती है ।

व्याख्या । जिसे कोई विचार नहीं है । केवल भय से या अवसर न मिलने से पतिव्रता बनी हुई है वह भी शारीरिक शुद्धि के कारण से पतिव्रता ही है । पर उनमे अधम है । क्योंकि उसकी रक्षा मे उसका विचार करना नहीं है । दूसरो का भय कारण है । अतः पतिव्रत्य की रक्षा के लिए स्त्रियो पर रोक लगाये गये हैं । जिसमे उनका परलोक और यह लोक बना रहे । स्वार्थान्धता इसमे कारण नहीं है । स्थान नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नर । तेन नारद नारीणा सतीत्वमुपजायते । स्थान नहीं है । फुरसत नहीं कोई प्रार्थना करनेवाला नहीं है । तब जाकर हे नारद स्त्रियो मे सतीत्व उत्पन्न होता है । पतिव्रत्य उत्पन्न होने पर भी कुमारावस्था मे पिता, यौवन मे पति और वृद्धावस्था मे पुत्र रक्षा करे । स्त्री मे स्वतन्त्रता

की योग्यता प्रकृति के नियम से नहीं है। स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहन देनेवाले ही उनके धर्मनाश के कारण हैं। वे भला चाहते हुए भी अज्ञानवश उनका महा अकल्याण करते हैं।

यहाँ तक स्वकीया के विषय में कहा। अब परकीया के विषय में कहते हैं। जो पतिव्रता का आडम्बर बनाये हुए अपने पति को धोखा देकर दूसरे से प्रेम करती है उसने यहाँ तो प्रतिष्ठा बना रखी है पर परलोक में धोखा नहीं चलता। वहाँ उसे सौ कल्प तक घोर नरक भोगना पड़ेगा। एक सहस्र चतुर्युगों का एक कल्प होता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समझ तेहि मम को खोटी ॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छाँडि छल गहई ॥९॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

अर्थ : क्षण भर के सुख के लिए जो सौ करोड़ जन्म के दुख को नहीं समझती उसके ऐसी खोटी कौन है। जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत्य धर्म ग्रहण करती है वह बिना परिश्रम के परमगति को प्राप्त होती है। जो पति के प्रतिकूल है वह जहाँ जाकर जन्म लेती है वही युवावस्था के प्राप्त होने पर विधवा हो जाती है।

व्याख्या : विषयसुख क्षणभङ्गुर है। इसके लिए उसने अपना सौ कोटि जन्म बिगाड़ा। अल्प के लिए बड़ी भारी हानि को कुछ न गिना। इसलिए उसे अत्यन्त खोटी बतलाते हैं। खोटे की परिभाषा ही यही है। जो थोड़े से लाभ के लिए अपना धर्म छोड़े। विषयेन्द्रियसयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुख राजस स्मृतम्। विषय और इन्द्रिय के संयोग से जो पहिले अमृत सा जान पड़े और परिणाम में विष के समान हो उसे राजस सुख कहते हैं। पहिले तो रतिसुख ही राजस है। सो भी धर्मविरुद्ध होने से घोर तामस हो गया। तामस का फल ही अधोगति है। उसे असंख्य जन्म तक श्व-सूकरादि योनियों में दुख भोगना पड़ता है।

पुरुषगण यज्ञ में दान से तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायों से क्रमशः प्राजापत्य आदि लोको को प्राप्त होते हैं। किन्तु स्त्रियाँ तन मन वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोको को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषों को अत्यन्त परिश्रम से मिलते हैं। इसलिए स्त्रियाँ धन्य हैं।

ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ सतीत्व भङ्ग नहीं हुआ पर पति से विरोध हो गया। उस प्रतिकूलाचरण का दण्ड कहते हैं कि ऐसी स्त्री का जहाँ जन्म होता है वहाँ भी पतिसुख उससे छोन लिया जाता है। वह तरुणावस्था में विधवा हो जाती है। तरुणावस्था में विधवा होना परमेश्वरीय दण्ड है। उसके भोग लेने में ही कल्याण है। इसीलिए शास्त्रों में विधवा विवाह का विधान नहीं है।

सो सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।

जसु गावत श्रुति चारि अजहुं तुलसिका हरिहि प्रिय ॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहि ।

तोहि प्रान प्रिय राम कहेउ कथा ससार हित ॥५॥

अर्थ : स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र होती है । उन्हे शुभ गति पतिसेवा से होती है । आज भी तुलसी हरि को प्रिय हैं और चारो वेद उनके यश का गान करते हैं ।

व्याख्या : स्त्री के शरीर की बनावट ही ऐसी है कि वे शुद्ध नहीं रह सकती । वे महीने में तीन दिन क्रम से चाण्डाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी की भाँति अशुद्ध रहती हैं । पुरुष के शुक्र को नौ मास गर्भ के रूप में धारण करती हैं । इसलिए सहज अपावनी कहा । फिर भी पति से इनकी शुभ गति होती है । अन्य उपाय इनकी सद्गति का है नहीं । पति के पाणिग्रहण से इनके शरीर का पति के शरीर से अभेद हो जाता है । वे उसकी अर्धाङ्गिनी हो जाती हैं । अतः उपर्युक्त दोष पति सेवा करनेवाली को नहीं लगता । इसलिए हिन्दुओं में लड़के भले ही बिना ब्याहे रह जायें पर लड़की बिना ब्याही नहीं रहने पाती । इतना ही नहीं कि वे दोष से विनिर्मुक्त हो जाती हैं । उनकी शुभ गति होती है । उसके यश को चारो वेद गाते हैं । अर्थात् उसकी शाश्वती गति होती है । क्योंकि पतिव्रता स्त्री भगवान् को प्रिय होती है । यथा : परम सती असुराधिप नारी । तेहि बल ताहि न जितहि पुरारी । छल करि टारथो तासु अत प्रभु सुर कारज कीन्ह । जब तेहि जान्यो मम सब साप कोष करि दीन्ह । तासु श्राप प्रभु कीन्ह प्रमाना । आज भी वही असुराधिप नारी तुलसी रूप से भगवान् के गले की हार बनी रहती है । यथा - रामहि प्रिय पावन तुलसी सी ।

सीता नाम स्मरण से पातिव्रत्य का निर्वाह होता है । अतः पहिले की भाँति - सुनु राजकुमारी न कहकर नाम लेकर - सुनु सीता कहती हैं । तुम्हारा तो नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करेंगी । तुम्हारे लिए क्या कहना है । तुम पतिप्राणा हो । गौरी का नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्यरूपी खड्गधारा पर चढती हैं और तुम्हारा नाम लेकर उनका निर्वाह होता है । गुणवान से कहने से सम्वाद का ससार में प्रसार हो जाता है और उससे ससार का हित हो जाता है । इसलिए तुम से कहा । तुम्हें उपदेश देने के लिए नहीं ।

सुनि जानकी परम सुख पावा । सादर तासु चरन सिरु नावा ॥

तव मुनि सन कह कृपानिधाना । आयसु होइ जाउँ वन आना ॥१॥

अर्थ - सुनकर जानकीजी को परम सुख हुआ । आदर के साथ उनके चरणों में सिर नवाया । तब मुनिजी से कृपानिधान रामजी ने कहा कि आज्ञा हो तो दूसरे वन में जाऊँ ।

व्याख्या : जिस धर्म पर परम प्रेम था उसीका निरूपण सरम मृदुवाणी द्वारा सुनने से बड़ा भारी सुख हुआ । अथवा परम सुख पाया कहकर शिष्य की कृतकृत्यता दिखलाया । उपदेश की समाप्ति पर प्रणाम करना चाहिए । यथा : तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । अथवा विदा होने के लिए प्रणाम करती हैं ।

जब देखा कि सम्वाद समाप्त हो गया जानकीजी प्रणाम कर चुकी तब सरकार ने विदाई के लिए आज्ञा मांगी । ऋषि की आज्ञा लेकर ही नया काम करते हैं । वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर ही चित्रकूट में बसे थे । अत्रिजी की आज्ञा लेकर तब दूसरे वन में जायेंगे । कृपानिधान हैं । अत्रि आदि का श्रम सफल कर चुके । अब अन्य ऋषियों के श्रम को सफल करने के लिए जाना चाहते हैं ।

संतत मो पर कृपा करेहू । सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥

धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी । सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी ॥२॥

अर्थ : सदा मुझपर कृपा करते रहियेगा । मुझे सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा । धर्मधुरन्धर प्रभु की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेम पूर्वक बोले ।

व्याख्या : प्रभु अपना कुशल ऋषियों की दया पर निर्भर मानते हैं । इसलिए सदा कृपा बनाये रखने के लिए प्रार्थना करते हैं । यथा : हमारे कुशल तुम्हारिहि दाया । मुनिजी सेवक सेव्य भाव के उपासक हैं और प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं । अतः ये भी सेवक सेव्य भाव रखते हैं । अतः कह रहे हैं कि सेवक जानकर प्रेम बनाये रखियेगा । यथा : सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ असोच बनै प्रभु पोसे । ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म की रक्षा होती है । सो ब्राह्मणत्व का इतना बड़ा आदर है कि प्रभु अपने को अत्रि के ब्राह्मण होने के नाते सेवक कह रहे हैं । अतः धर्मधुरन्धर कहा । मुनिजी ज्ञानी हैं । पर भक्ति को नहीं छोड़ते । अतः विनीत वाणी सुनकर भक्ति के सहित बोले । अत्मारामाश्च मुनयः निग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहेतुकी भक्तिमित्यं-भूतगुणो हरिः । भागवते ।

जासु कृपा अज शिव सनकादी । चहत सकल परमारथ बादी ॥

ते तुम्ह राम अकाम पिआरे । दीन बंधु मृदु बचन उचारे ॥३॥

अर्थ : जिसकी कृपा ब्रह्म शिव सनकादिक सभी परमार्थवादी चाहते हैं । आप वे ही अकाम प्रिय दीनबन्धु राम हैं । मृदु वचन बोल रहे हैं ।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं । शिवजी साक्षात् दक्षिणा मूर्ति हैं । यथा : तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये । सनकादिक निवृत्ति मार्ग के उपदेष्टा हैं । ये सभी परमार्थवादी हैं । ये लोग आपकी कृपा चाहते हैं । क्योंकि आप स्वयं परमार्थ रूप हैं । यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।

जिन्हे और वस्तुएँ प्यारी हैं, उन्हें आप प्यारे नहीं हो सकते । अतः आप अकाम प्यारे हैं परन्तु दीनबन्धु हैं और मैं अकाम न होने पर भी दीन हूँ । इसलिए दया करके ऐसा मृदु वचन कह रहे हैं । यह आपका अप्रतिम शील है ।

अब जानी मैं श्री चतुराई । भजी तुमहि सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहि कोई । ता कर शील कस न अस होई ॥४॥

अर्थ : अब मैंने लक्ष्मीजी की चतुराई समझी । जिन्होंने सब देवताओं को छोड़कर आपको ही भजा । जिसके न तो कोई समान है । न बढ़कर है । उसका शील ऐसा क्यों न हो ?

व्याख्या : आपका शील देखकर मुझे लक्ष्मीजी की चतुरता का पता चला कि उन्होंने सीधे सीधे शील को देखा । ऐसा शील किसी में न पाया । अतः सबको छोड़कर आपका ही भजन किया । त्रैलोक्य की प्रभुता शीलवान् का ही भजन करती हैं : महाभारत में शीलनिरूपणाध्याय द्रष्टव्य है ।

शील ही उत्कर्ष का कारण है । तुम्हारे समान कोई नहीं है तो बढ़कर कोई कैसे हो सकता है । अतः तुम्हीं अपने एक तुच्छ सेवक को इतनी बढ़ाई देने में समर्थ हो । नत्वत्समस्त्वभ्यधिकं कुतोऽन्यः । गीतायाम् । अतः आप में ही ऐसे शील का होना सम्भव है ।

केहि बिधि कहौ जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा । लोचन जल वह पुलक सरीरा ॥५॥

अर्थ . हे स्वामी । मैं किस प्रकार कहूँ कि चले जाइये । हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं । आप ही बताइये ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे । उनके नेत्रों से जल बह चला और शरीर पुलकित हो उठा ।

व्याख्या : आयसु होइ जाउँ वन आना : के उत्तर में मुनिजी कहते हैं : तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम ही अंतरजामी । विनय । मेरा मन आपको छोड़ने को नहीं चाहता और आप स्वामी होकर आज्ञा मांग रहे हैं । अतः नहीं भी नहीं कर सकते । अब आप ही बताइये कि मैं आपको जाने के लिए कैसे कहूँ ?

यद्यपि ज्ञानी मुनि धैर्यवाले हैं । फिर भी प्रेम के वश हो गये । आने पर भी : प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये । और जाते समय भी : लोचन जल वह पुलक सरीरा । ऐसी दशा हो गयी ।

छं. तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।

मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ।

जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई ।

रघुवीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई ॥

अर्थ : मुनिजी अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हैं । शरीर में पुलक है । मुख कमल में आँखें लगी हुई हैं । विचारते हैं कि मैंने क्या जप तप किये थे कि मन ज्ञान और इन्द्रियो से परे प्रभु के दर्शन पाये । जप योग और धर्म समूह से मनुष्य को अनुपम

भक्ति की प्राप्ति होती है। रघुवर के पुनीत चरित को रात दिन तुलसी दास गान करता है।

व्याख्या : ज्ञानी मुनि जब अत्यन्त प्रेम में मग्न हो जाते हैं तो वह दशा कहते नहीं बनती। यथा : निर्भर प्रेम मग्न मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानो। उसी दशा का यहाँ यथासाध्य वर्णन है। मुनिजी के शरीर में पुलकावलि छापी हुई है। एकटक होकर मुख की शोभा देख रहे हैं। अत्यन्त सुख का अनुभव हो रहा है। अतः कहते हैं कि जो जप तप मने किये वह क्या था? इस सुख के आगे कुछ न था। जप योग और धर्म का बहुत अनुष्ठान करने से तब अनुपम भक्ति की प्राप्ति होती है। जप वचसा, योग मनसा और धर्म कर्मणा अनुष्ठित होता है। मनसा वाचा कर्मणा साधन करने से भक्ति मिलती है। मुझसे तो कुछ न बन पड़ा।

दासों में तुलसी बड़ा निकम्मा है। यथा : साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास। उससे जप योग धर्म समूह कुछ नहीं बन पड़ता और दृढ भक्ति चाहता है। इसलिए रात दिन रघुवीर का यशगान किया करता है। रावनारि जस पावन गावहि सुनहि जे लोग। राम भगति दृढ पावहि बिनु बिराग जप जोग।

दो. कलिमल समन दमन मन, राम सुजस सुखमूल।

सादर सुनहि जे तिन्ह पर, रामु रहहि अनुकूल ॥

अर्थ : कलियुग के मल का नाश करनेवाला मन का दमन करनेवाला रामजी का सुयश सुख का मूल है। आदर के साथ श्रवण करनेवाले पर रामजी अनुकूल हो जाते हैं।

व्याख्या : मन के दमन से ही सुख होता है। कलिमल से दूषित मन का निरोध होता नहीं। अतः अयोध्याकाण्डान्तर्गत रामचरित को : कलि मल समन दमन मन कहा। कलि का अर्थ और अवगुण ही कलि मल है। दूसरी कोई बात न सोचे। एकाग्र होकर कथा श्रवण करे। यही सादर श्रवण है। यथा : एहि विधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ। कथा कहने की अपेक्षा श्रवण का माहात्म्य अधिक बतला रहे हैं। भरत चरित सुनने से भी सीय रामपद प्रेम की प्राप्ति होती है और राम चरित्र सुनने से श्रीरामजी की अनुकूलता होती है। यथा : ताकहँ प्रभु कछु अगम नहि जापर तुम अनुकूल। प्रभु प्रताप बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल।

अयोध्याकाण्ड में : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि वासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यहाँ तक रामयश है। इसके बाद सुमन्त का लौटना तथा चक्रवर्तीजी का देहान्त कहकर भरत चरित्र आरम्भ कर दिया और भरत चरित्र की समाप्ति करते हुए काण्ड की समाप्ति कर दी। इति न देकर कथन की अपूर्णता दिखलाया। पर वस्तुतः अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा की समाप्ति के साथ है। अतः अयोध्याकाण्ड की सन्धि यहाँ तक आयी है। वाल्मीकि

तथा अध्यात्म मे भी अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा समाप्त होने पर ही माना है ।

सो. कठिन काल मल कोस, धर्मु न ग्यान न जोग जप ।

परिहरि सकल भरोस, रामहि भजहि ते चतुर नर ॥६॥

अर्थ : यह कठिन काल कलिमल का निधान है । इसमें ज्ञान योग जप सभी असम्भव हैं । इसलिए सब भरोसा छोड़कर जो राम को भजते हैं वे ही मनुष्य चतुर है ।

व्याख्या : अध अवगुण की खानि होने से कलियुग को मलकोप तथा कठिन कहा । यथा : सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी । अतः धर्म न ज्ञान न योग जप यह सब कुछ नहीं हो सकता । ये सब निर्विकार चित्त से ही साध्य हैं । अतः इनका भरोसा नहीं । अनुष्ठान का निषेध नहीं है । पर भरोसा इनका नहीं है । भरोसा भजन का है । देशकाल का विचार करके कार्य करनेवाला चतुर है । अतः चतुरता इसी में है कि रामजी का भजन करे ।

२७. विराधवध प्रसङ्ग

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा । चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥

आगे रामु अनुज पुनि पाछे । मुनिवर वेप वने अति काछे ॥१॥

अर्थ मुनिजी के चरणों में सिर नवाकर देवता मनुष्य और मुनियों के स्वामी बन को चले । रामजी आगे हैं । छोटे भाई पीछे हैं । श्रेष्ठ मुनि का वेप बनाये अत्यन्त . कसे कसाये सुशोभित हैं ।

व्याख्या : यद्यपि मुनिजी ने प्रेमवश स्पष्ट आज्ञा नहीं दी । फिर भी . केहि विधि वहाँ जाहु बन स्वामी । कहने से आज्ञा हो ही गयी । अतः प्रणाम करके चले । अर्थात् इस बन से दूसरे बन में चले । प्राकृत सीमा के अनुसार बनो का भी विभाग होता है । उनके नाम भी होते हैं । सुर नर मुनि की रक्षा के लिए अधिक सङ्कट सहन करेंगे । इसलिए सुर नर मुनि ईसा : कहा । अथवा यद्यपि सुर नर मुनि ईश हैं तथापि मर्यादा पालन के निमित्त मुनि चरण कमल को प्रणाम करके चले ।

चित्रकूट जाने के समय का वर्णन है : आगे राम लखनु बने पाछें । तापस वेप विराजत काछें । यहाँ लखन के स्थान में अनुज शब्द का प्रयोग हुआ । परन्तु बात वही है । उसी वेप और उसी क्रम से चले । अतः पुनि कहा । लखन प्यार से पुकारने का नाम था । सो उसका प्रयोग अयोध्याकाण्ड तक हुआ । अब अवध से दूर जा रहे हैं और ऐश्वर्यप्रधान लीला आरम्भ हो रही है । अतः लछिमन सीता आदि नामों का प्रयोग होगा । यहाँ भी लखन न बहवर अनुज शब्द का प्रयोग किया । यहाँ से घोर वन आरम्भ हुआ । विषट परिस्थिति के सामना की भी सम्भावना है । अतः सत्र प्रकार से तैयार होकर चल रहे हैं ।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी । ब्रह्म जीव विच माया जैसी ॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा । पति पहिचानि देहिं वर बाटा ॥२॥

अर्थ : दोनों के बीच में श्री जानकी कैसी शोभित हैं । जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो । नदी पर्वत और दुर्गम घाटियाँ स्वामी को पहिचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं ।

व्याख्या : श्री शब्द के प्रयोग से ही दिखलाया कि इस समय भगवती सीता तापस वेष में नहीं हैं । दिव्य वसन भूपन पहिरे हुए हैं । जो ऋषिवधू भगवती अनसूया ने पहिना दिया था ।

ब्रह्म का अनुसरण माया करती है और जीव माया का अनुसरण करता है । यथा : माया वस्य जीव अभिमानी । ईस वस्य माया गुनखानी । ब्रह्म माया को नहीं देखता माया ब्रह्म को देखा करती है । यथा : सोइ प्रभु भूबिलास खग राजा । नाच नटी इव सहित समाजा । अथवा ब्रह्म जीव में भेद नहीं है । माया बीच में आकर भेद बनाये हुए हैं । यथा : मुधा भेद जद्यपि कृत माया । इसलिए रामजी की उपमा ब्रह्म से सीताजी की माया से और लक्ष्मणजी की जीव से दिया ।

अग्निजी के आश्रम से विराधवन पहुँचने में सरिता सर गिरि अवघट घाट सभी मिलते हैं । उनके अभिमानी देवता प्रभु को पहिचानकर सुन्दर मार्ग देते हैं । यथा : बनदेवी बन देव उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा । ब्रह्म माया और जीव की भाँति शोभा है । अतः पहिचानने में कठिनता नहीं है ।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया । करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥
मिला असुर विराध मग जाता । आवत ही रघुवीर निपाता ॥३॥

अर्थ : जहाँ जहाँ रघुराज देव जाते हैं वहाँ वहाँ आकाश से मेघ छाया करते जाते हैं । रास्ते में जाते हुए विराध राक्षस मिला । सामने आते ही श्रीरघुवीर ने उसे मार गिराया ।

व्याख्या : यहाँ देव शब्द के प्रयोग से ऐश्वर्य द्योतन किया । यहाँ अधिदेव चरित्र का प्राधान्य है । जहाँ प्रभु जाते हैं वही मेघ छत्र की भाँति छाया करते हैं । आकाश मण्डल में घिरे नहीं हैं । द्यावा पृथ्वी सब सेवा में तत्पर हैं ।

असुर विराध कहने से आसुरी सम्पत्ति द्योतन किया । दम्भोदर्योऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च । अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थं सम्पदमासुरीम् । इससे विराध में सब दुर्गुण दिखाये । ये सब लोग विश्राम ले रहे थे और विराध रास्ते से जा रहा था । आवत ही रघुवीर निपाता : विराध का आततायी होना दिखलाया : आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । रघुवीर निपाता पद से विराध का पराक्रमी होना द्योतित किया ।

तुरतहि रुचिर रूप तेहि आवा । देखि दुखी निज धाम पठावा ॥
पुनि आए जहं मुनि सरभंगा । सुदर अनुज जानकी संगी ॥४॥

२८. शरभंग देह त्याग प्रसंग

अर्थ : उसने तुरन्त ही सुन्दर रूप प्राप्त किया । दुखी देखकर उसे अपने धाम में भेज दिया । फिर वे सुन्दर भाई और जानकी के साथ शरभङ्ग मुनिजी के पास आये ।

व्याख्या : प्रभु के वाणो के प्रहार से विराध के अङ्ग प्रत्यङ्ग जर्जर हो गये । वर प्रसाद से उसके प्राण नहीं निकलते थे । अतः गड्ढा खोदकर उसी में उसे तोप दिया । यथा : खनि गतं गोपित विराधा और उसे दुखी देखकर अपने धाम में भेज दिया । धाम जाने योग्य सुन्दर रूप उसे मिल गया जिसे धारणकर वह राम धाम गया ।

वहाँ से दो कोस पर शरभग मुनि का आश्रम था । उनकी तीनो मूर्ति की उपासना थी । अतः कहते हैं - सुंदर अनुज जानकी संगी । वरदान में भी मुनिजी ने तीनो मूर्तियों को अपने हृदय में वास माँगेंगे । यथा सीता अनुज सहित प्रभु नील जलद तनु स्याम । भम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम ।

दो. देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग ।

सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभग ॥७॥

अर्थ : श्रीरामजी के मुख कमल को देखकर श्रेष्ठ मुनिजी की आँखें भौरा होकर आदर के साथ पान कर रही हैं । शरभग का जन्म धन्य है ।

व्याख्या : मुनिजी की आँखें भृङ्ग होकर रूप मकरन्द का पान कर रही हैं । यथा : पियत नयन पुट रूप पियूषा । मन तो चोरी चल गया । इसलिए उसका उल्लेख नहीं करते । यथा : निजपन राख्यो जन मन चोरा । इसीलिए प्रणाम आशीर्वाद नहीं कहते । शरभङ्गजी का जन्म अति धन्य कहा । क्योंकि खूब ठगे गये । यहाँ तो ठगे जाने का ही माहात्म्य है । सरकार के दर्शन पर भी जिसका मन चोरी न जाय सावधान रहे उसे श्री गोस्वामिपाद धिक्कार देते हैं । यथा : ठगिसी रही जे न ठगे धिक ते । कविता । एक बात और है । चोर से प्रणाम आशीर्वाद का शिष्टाचार नहीं है । रूप सुधा का पान करनेवाला धन्य और अति पान करनेवाला अति धन्य हैं । सो शरभङ्गजी अतिधन्यो में हैं । देखा तो तीनो व्यक्तियों को पर ध्यान तो राममुख पंकज मकरन्द वा ही कर रहे हैं ।

कह मुनि सुनु रघुवीर कृपाला । संकर मानस राजमराला ॥

जात रहेउं विरचि के धामा । सुनेउं श्रवन वन ऐहहि रामा ॥१॥

अर्थ : मुनि ने कहा कि हे रघुवीर । हे शङ्कर के मानस के राजहंस । सुनो । मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था । कान से सुन पाया कि वन में रामजी आवेंगे ।

व्याख्या अभी विराघ वध किये चले आ रहे हैं। इसलिए रघुवीर कहा। यथा : आवत ही रघुवीर निपाता। कृपा करके दर्शन दिया। इसलिए कृपाल कह रहे हैं। अपने मानस में बसाना है। इसलिए सकर मानस राज मराल कहते हैं। राज मराल से सौन्दर्य तथा गाम्भीर्य का आधिक्य द्योतन किया। मुनिजी ने प्रभु को बोलने न दिया। आप ही बोलते चले गये। बड़ी जल्दी है। प्रभु सडे हैं।

इन्द्र भगवान् लेने आये थे ब्रह्मलोक ले जाने के लिए। पर प्रभु के दर्शन के सामने ब्रह्मलोक क्या है ? इसलिए नहीं गये। चलने की तैयारी कर चुके थे। प्रभु के आने का समाचार पाकर रके। अत पूजा सत्कार कुछ न कर सके। काक्षामृत्यु हैं : जब चाहे तब मरें। इनके लिए मरना कुछ नहीं है। केवल आने जाने की बात है।

चितवत पथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि' जुडानी छाती ॥

नाथ सकल साधन में हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना ॥२॥

अर्थ . दिन रात बराबर आपकी राह देख रहा था। अब सरकार को देखकर छाती ठण्डी हुई। हे नाथ ! मैं सब साधनो से हीन हूँ। मुझे दीन सेवक जानकर आपने कृपा की।

व्याख्या घोर वन में यही एक मार्ग है। कहीं आप रात को इधर से निकल न जायें इसलिए रात दिन बराबर रास्ता देखता रहा। सोया नहीं। देखे बिना रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाय। सो अब जलन गयी। छाती ठण्डी हुई।

अपने को सकल साधन से हीन मानना कापण्य है। भक्त के लिए यह भाव आवश्यक है। प्रभु का दर्शन क्रियासाध्य नहीं कृपासाध्य है। सरकार को दीन प्रिय हैं। अत दीन सेवक जानकर आपने दर्शन दिया।

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा ॥

तब लागि रहहु दीन हित लागी। जब लागि मिलौ तुम्हहि तनु त्यागी ॥३॥

अर्थ हे देव ! यह मेरे ऊपर कुछ भी एहसान नहीं है। आप जन के मन के चोर हैं। अपने प्रण की रक्षा आपने की है। जब से शरीर त्यागकर आपसे मिल जाता हूँ तब तक दीन के हित के लिए यही ठहरे रहिये।

व्याख्या . तस्कराणा पतये नम। चोर तो धन चुराते हैं। आप भक्तों का मन चुराते हैं। मेरा मन चुरा लिया। मैं दीन हो रहा हूँ। क्षण भर आपके बिना नहीं रह सकता। कहीं मन लेकर चले न जाना। इसलिए तब तक ठहरिये। अब आपसे मिलने में स्थूल शरीर का ही व्यवधान है। उसे छोड़कर आपसे मिलना चाहता हूँ। सदा आपके पास बना रहूँ अर्थात् सामीप्य मुक्ति चाहते हैं।

जोगु जग्य जप तप जत कीन्हा । प्रभु कहूँ देइ भगति वर लीन्हा ॥
येहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा । बँठे हृदय छाड़ि सब संगी ॥४॥

अर्थ : योग यज्ञ जप और तप जो कुछ मुनिजी ने किया था वह सब प्रभु को समर्पण करके भक्ति वर ले लिया । इस प्रकार से चिता बनाकर शरभङ्ग मुनि सब आसक्तियों को छोड़कर उस पर बैठ गये ।

व्याख्या : सभी शुभ कर्मों को रामजी को अर्पण कर दिया । यथा : यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् । यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् । और उसके बदले में भक्ति वरदान माँग लिया । मुनिजी बड़े चतुर हैं । इस भाँति अध्रुव को देकर ध्रुवपद को प्राप्त किया । क्योंकि : तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराजानानिपुनाई । नाना कर्म धर्म व्रत दाना । सजम जम जप तप भख नाना । भूतदय द्विज गुरु सेवकाई । विद्या विनय विवेक बड़ाई । जहाँ लगि साधन वेद बखानी सबका फल हरि भगति भवानी ।

एहि विधि : कहने का भाव यह है कि सब कर्मों को ब्रह्मार्पण करके भक्ति वर ले करके और इहलोक परलोक की सब वासना छोड़ करके योगाग्नि से शरीर त्याग करेंगे । अतः स्वयं चिता रचकर उस पर बैठे ।

दो. सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम ।

मम हिय बसहु निरंतर, सगुन रूप श्रीराम ॥८॥

अर्थ : नीले बादल के समान श्याम शरीरवाले श्रीरामजी सगुण रूप से हैं प्रभु ! सीता और लक्ष्मण के सहित निरन्तर मेरे हृदय में वास कीजिये ।

व्याख्या : सीता अनुज सहित अपने हृदय में बसाते हैं । अपने हृदय को प्रभु के निवास के लिए भवन बना रहे हैं । अतः भवनाकार यह गुणग्राम : स्तुति दसवीं भधा नक्षत्र है । इसमें पाँच तारे चमकते हैं । पाँच कार्य हुए हैं । वे ही पाँच तारे हैं : १. कहने से सुना : वन ऐहें रामा २. प्रभु को देखकर छाती शीतल हुई ३. शरीर छोड़कर प्रभु से मिलना चाहा ४. भक्ति वर लिया ५. सीता अनुज समेत प्रभु को हृदय में बसाकर देह त्याग किया । इसकी फल स्तुति है : सचिव भूपति विचार के ।

इसी नील जलद तनु श्याम ने मन चुराया था । सो चोर को स्त्री भाई सहित हृदय में बन्द कर लिया । कभी बाहर न जाने देंगे । अतः निरन्तर कहते हैं । यद्यपि निर्गुण सगुण रूप में अन्तर नहीं । पर चोरी सगुण रूप ने की है । अतः वे ही कैद भी रहें । भाव यह कि प्रभु निर्गुण रूप से तो सबके हृदय में बसते हैं पर इससे दुःख तो नहीं दूर होता । यथा : अस प्रभु हृदय अछुत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुःखारी । दुःख दूर तो सगुण रूप के बसने से होता है । इसलिए सगुण रूप से बसाते हैं । सीता लक्ष्मण के साथ ही प्रभु का मुख्य त्रिकोण रूप बनता है । अतः दोनों के साथ हृदय में बसाने का वरदान माँगा ।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहि भेद भगति बर लयऊ ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर शरभङ्गजी ने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और रामजी की कृपा से वैकुण्ठ चले गये । पहिले भेदभक्ति का वर मांग रक्खा था । इसलिए मुनिजी भगवान् मे लीन नहीं हुए ।

व्याख्या : योगाग्नि से शरीर त्यागने की क्रिया समान ही थी । इसलिए सतीजी और शरभङ्गजी के देहत्याग प्रकरण में दोनों स्थान में एक ही पद का प्रयोग किया । अस कहि जोग अगिनि तन जारा । तब लगि रहों दीन हित लागी । जब लगि तुमहि मिली तनु त्यागी : कहकर सरकार को खड़ा कराये हुए हैं । अतः वही जल्दी है । एवमस्तु सुनने की भी प्रतीक्षा नहीं की । कृपा का बड़ा भरोसा है । कहा भी है : सुनु रघुवीर कृपाला । कीन्ही कृपा जानि जन दीना । अतः रामकृपा वैकुण्ठ सरकार का रूप ही है । उसकी लोक में गणना नहीं है । यथा : कहु मतिमद लोक वैकुठा ।

योगाग्नि से शरीर छोड़नेवाले को हरिपद लीन होना चाहिए । यथा : तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ तहि फिरे । परन्तु मुनिजी लीन नहीं हुए । इसका कारण देते हैं कि अभेद भक्ति से जीव लीन होता है । भेदभक्ति से नहीं । यथा ताते उमा मोक्ष नहि पायो । दसरथ भेदभक्ति मन लायो । सती के लीन न होने में भी ऐसा ही कारण हुआ । यथा सती भरत हरिसन वर मांगा । जन्म जन्म सिव पद अनुरागा ।

रिपि निकाय मुनिवर गति देखी । सुखी भए निज हृदय विसेखी ॥
अस्तुति करहि सकल मुनि वृंदा । जयति प्रणत हित करुना कंदा ॥२॥

अर्थ : ऋषि समूह मुनिश्रेष्ठ की श्रेष्ठ गति देखकर अपने मन में विशेष सुखी हुए । सब मुनि लोग स्तुति कर रहे हैं कि प्रणाम करनेवाले हितकारी करुणा के मेघ की जय हो ।

व्याख्या : ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं । उन लोगो ने मुनिवर का वैकुण्ठ पधारना देखा तो अपने मन में बड़े हर्षित हुए । यह ऋषियो की मुदिता है कि पुण्यवान् की उत्तम गति से उन्हें प्रसन्नता हुई ईर्ष्या नहीं हुई । विराध वध का समाचार पाने से । शरभङ्ग के आश्रम आते आते ऋषियो की भीड़ इकट्ठी हो गयी । उन्हें प्रभु से अपना कष्ट निवेदन करना है । प्रभु को देखकर सुखी हुए । मुनिवर की गति देखकर विशेष सुखी हुए । अतः प्रणत हित और करुणाकन्द की जय ऐसा कहकर स्तुति करते हैं । प्रणतहित कहकर अपनी शरणागति दिखलायी और करुणाकन्द कहकर सभी ऋषियो पर करुणादृष्टि की वृष्टि की आशा दिखलायी ।

पुनि रघुनाथ चले वन आगे । मुनिवर वृंद विपुल संग लागें ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया । पूंछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥३॥

अर्थ : फिर रघुनाथजी आगे वन में चले । श्रेष्ठ मुनि लोगो का बड़ा समूह साथ लग गया । हड्डियो का ढेर देखकर रघुनाथजी को बड़ी दया आयी । मुनियो से पूछा ।

व्याख्या : रघुनाथ हैं । अनाथ मुनियो को सनाथ करने आये है । पहिले कह चुके हैं कि चले बर्नाहि सुर नर मुनि ईसा । शरभङ्ग के आश्रम पर ठहर गये थे । अतः आगे चलना कहते हैं । अपने अपने यहां ले जाने के लिए मुनि लोगो ने साथ पकड़ लिया । अस्थि समूह देखने से प्राणियो के असामयिक मृत्यु का अनुमान हुआ । इससे बड़ी दया हुई । इतने नर कङ्काल के एकत्र होने का कोई विशेष कारण होना चाहिए : इससे पूछा । मुनियो के मुख से अत्याचारियो के अत्याचार का वर्णन सुनना चाहते हैं । राजधर्म का आश्रयण करके उनका दण्ड विधान करना है ।

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी । सबदरसी तुम्ह अंतरजामी ॥

निसिचर निकर सकल मुनि खाए । सुनि रघुवीर नयन जल छाए ॥४॥

अर्थ : जानते हुए भी आप कैसे पूछते हैं । हे स्वामी । आप तो सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं । राक्षसो के समूह ने सब मुनियो को खा डाला है । सुनकर श्रीरघुवीर की आँख डबडबा आयी ।

व्याख्या : आप सर्वज्ञ हैं । सब कुछ जानते हैं, अन्तर्यामी हैं । आप से कुछ छिपा नहीं है । अतः यह घटना भी आपको अविदित नहीं है । फिर क्यों पूछते हैं ? भाव यह कि पापियो के पाप कहने में भी दोष है पर आप स्वामी हैं । आपको आज्ञा अपेल है । अतः निवेदन करते हैं । राक्षस लोग इकट्ठे होकर सब मुनियो का यहां भोजन किया है । राक्षसो के आहार ही मनुष्य हैं कि पुनः ब्राह्मणो का खाना तो उन्हें अति प्रिय है । यथा : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी । मुनि लोग गर्भगत बालक की भाँति प्रतिरोध करने में असमर्थ थे । अतः उनका भोज इसी स्थान पर राक्षसो द्वारा हुआ ।

सरकार केवल युद्धवीर दानवीर ही नहीं हैं दयावीर भी हैं । इसलिये रघुवीर शब्द का प्रयोग किया । उपर्युक्त बातें सुनते ही करुणाकर की आँखों में जल आगया । अपराधियो के अपराध का पर्याप्त प्रमाण मिल गया । अतः दण्ड विधान के लिए प्रतिज्ञा हो रही है ।

दो. निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह ।

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥५॥

अर्थ : भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को विना शत्रु की कर दूँगा । फिर सब मुनियो के आश्रमो में जा जाकर उन्हें सुख दिये ।

व्याख्या : मुनियो ने कहा : निसिचर निकर मुनि खाए । सरकार प्रतिज्ञा करते हैं : निसिचर हीन करउँ महि । मुनि मुनि आँखों को

देने के लिए भुज उठाइ प्रन कीन्ह । अपना दृढ निश्चय सूचित करने के लिए भुजा उठाकर प्रण करने का नियम है । यथा भुजा उठाइ कहीं प्रन रोपी । प्रन बिदेह-कर कहहि हम भुजा उठाइ बिसाल । बहुत से ऋषि इस अभिलाषा से साथ थे कि सरकार को अपने अपने आश्रम में ले चलें । अतः सरकार सबके आश्रमों में गये और सुख दीन्ह कहने का भाव यह कि सबके आश्रमों में ठहरे । किसी के आश्रम पर पन्द्रह दिन, किसी के यहाँ एक महीना, किसी के आश्रम पर डेढ़ महीना, किसी के आश्रम पर तीन महीना, कहीं छ महीना, कहीं सालभर । इस भाँति वनवास की अवधि का दस साल व्यतीत किया । राक्षस लोग विराघ वध से सशङ्क हो गये थे । अतः एक भी हाथ न लगे । उन सबों ने उधर का रास्ता छोड़ दिया । इसके बाद सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसङ्ग आरम्भ करते हैं ।

२९ सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसंग

मुनि अगस्ति कर शिष्य सुजाना । नाम सुतीक्ष्ण रति भगवाना ॥
मन क्रम वचन राम पद सेवक । सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥१॥

अर्थ मुनि अगस्त्य के एक सुजान शिष्य थे । उनका नाम सुतीक्ष्ण था । उनकी भगवान् में भक्ति थी । मन कर्म और वचन से रामजी के चरणों के सेवक थे । उन्हें सपने में भी दूसरे देवता का भरोसा न था ।

व्याख्या अगस्त्य मुनि के बहुत शिष्य थे । कोई कर्मठ थे, कोई योगी थे, कोई ज्ञानी थे, उनमें सुतीक्ष्णजी बड़े सुजान थे । क्योंकि उनकी रति भगवान् में थी । यथा राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभा बड़ आदर तासू । मुनि अगस्त्य कर शिष्य कहने का भाव यह कि महा प्रभावशाली ऋषि के शिष्य थे । उनकी भक्ति प्रसिद्ध है । अगस्त्यसहिता रामभक्ति का प्रधान ग्रन्थ है । उनका शिष्य कहकर उनमें भी रामोपासना सूचित किया ।

मनक्रम वचन छाडि चतुराई । भजत कृपा करिहहि रघुराई । सो ये मन वचन कर्म से रामजी के चरणों के सेवक थे । अतः सरकारी कृपा के पात्र थे । सेवकाई में भी अनन्यता कहते हैं कि नित्य नैमित्तिक कर्म के निर्वाह करने में जिन जिन देवताओं के पूजन स्तवन या व्रत का विधान है । सो सब करते थे । पर भरोसा किसी का स्वप्न में भी नहीं करते थे । उन्हें केवल रामजी का भरोसा था ।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ॥
है बिधि दीनबधु रघुराया । मो से सठ पर करिहहि दाया ॥२॥

अर्थ कानों से प्रभु का आगमन सुन पाया । मनोरथ करते हुए आतुरता से दौड़ पड़े । क्या यह सम्भव है कि दीनबन्धु रघुराज मुझ से शठ पर दया करेंगे ?

व्याख्या चलते फिरते किसी भाँति वह बात कान में पड़ गयी कि सरकार इधर आ रहे हैं । इस बात को पक्की करने के लिए अवसर कहाँ ? आतुर हो दौड़

पड़े। प्रेमपात्र के आगमन को सुनते ही प्रेमी के मनोरथों का अन्त नहीं रह जाता।
यथा : करत मनोरथ बहु मन माही। एक विधि करत मनोरथ जात न लागी
पार। आतुर धावा : से पहिली दशा अभिलाष कहा। : १ :

है विधि : कहकर ब्रह्मदेव का आश्चर्य के साथ स्मरण करते हैं। विधि का
कार्य तो विधि से होता है। मेरे ऊपर दया करने की कौन विधि है ? मैं शठ हूँ।
शठ सेवक तो स्वामी के लिए शूल समान होता है। क्या प्रभु की दीनबन्धुता
इतनी है कि मेरे ऐसे भारी शठ पर भी उनकी अनुकम्पा होगी ? यह दूसरी दशा
चिन्ता है। : २ :

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहि निज सेवक की नाई ॥
मोरे जियँ भरोस दढ़ नाही। भगति विरति न ग्यान मन माही ॥३॥

अर्थ : क्या छोटे भाई के सहित स्वामी रामजी मुझसे निज सेवक की भाँति
मिलेंगे। मेरे मन में तो दढ़ भरोसा नहीं होगा। क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य
या ज्ञान नहीं है।

व्याख्या : ऊपर की अर्घाली में कहा है कि क्या मुझसे शठ पर दया करेंगे।
अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं। वह कौन सी दया है जो सुतीक्ष्णजी चाह रहे
हैं ? सो वह दया सरकार का परिष्वङ्ग देना है और वह दया परिष्वङ्ग ऐसा हो
जो निज दास को सरकार देते हैं। क्योंकि परिष्वङ्ग तो पिता, माता, पुत्र, संखा
आदि को भी दिया जाता है। पर उसे मुनिजी नहीं चाहते। क्योंकि सरकार को
सबसे अधिक प्रिय निज दास हैं। स्वयं भरतजी ने प्रभु द्वारा निज दास की भाँति
स्मरण किये जाने की अभिलाषा प्रकट की। यथा : निज दास ज्यों रघुवंस भूपन
कबहुँ मन सुमिरन करयो। मुनिजी उसी भाव से मिलना चाह रहे हैं और उससे भी
भाई सहित मिलने में पूरा सत्कार है। भगवत् भागवत दोनों के मिलने का सुख है।
यथा : अनुज सहित मिलि ढिग वेठारी। अब प्रश्न यह रहा कि निज दास किसे कहते
हैं ? इस बात को स्वयं प्रभु ने स्पष्ट किया है : तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज
दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। जिसे प्रभु को छोड़कर दूसरे की आशा
नहीं वही निज दास है। परिष्वङ्ग मिलने को कहते हैं। सरकार ने स्वयं कहा है
कि परिष्वङ्ग से अधिक मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है। उसी अत्यन्त सुख
का स्मरण करके मुनिजी विह्वल हैं। यह तीसरी अवस्था स्मरण है। : ३ : रामजी
गोसाईं हैं। सब के मालिक हैं। दयालु हैं। ये शठ सेवक की प्रीति रुचि रखनेवाले हैं।
अतः मुझसे अनुज के साथ निज सेवक की भाँति मिलना उनके लिए असम्भव तो
नहीं है। यह चौथी अवस्था सरकार का गुण कथन है। : ४ :

मुनिजी कहते हैं कि फिर भी मेरे मन में दढ़ भरोसा नहीं हो रहा है। क्योंकि
मेरे में साधन का बड़ा घाटा है। भक्ति पथ पर मैं आरुढ़ नहीं हूँ : श्रुति सम्मत हरि
भगति पथ सजुत विरति विवेक। हरिभक्ति में भक्ति वैराग्य और विवेक तीनों चाहिए।

मुझमे तीनो मे से एक भी नहीं है । अतः उनकी दीनबन्धुता का भरोसा है । अपनी ओर दृष्टि करने से तो दृढता नहीं होती । यह पाँचवी दशा उद्वेग है । : ५ :

नहि सतसग जोग जप जागा । नहि दृढ चरन कमल अनुरागा ॥
एक वानि करुनानिधान की । सो प्रिय जाके गति न आन की ॥४॥

अर्थ : इधर तो सत्सङ्ग योग जप यज्ञ कुछ भी नहीं और न चरण कमल में दृढ अनुराग है । हाँ करुणा निधान का ऐसा स्वभाव है कि उनको वही प्रिय है । जिसे दूसरे का भरोसा न हो ।

व्याख्या श्रुति सम्मत हरि भगति पथ वैधी भक्ति है । इसके अतिरिक्त पाँच साधन और भी है । १ सत्सङ्ग यथा सतसगति मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला । २ योग यथा : करहि जोग जोगी जेहि लागी । ३ जप यथा : द्वादस अच्छर मन्त्र पुनि जपहि सहित अनुराग । ४ यज्ञ यथा श्रेता विविध यज्ञ नर करही । प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरही । ५ दृढ चरन कमल अनुराग यथा पद कमल परागा रस अनुरागा । मम मनमधुप करइ पाना । अर्थात् रागानुगा भक्ति । यहाँ पाँच में एक भी नहीं । यह छठी दशा प्रलाप है । ६ प्रिय को विद्यमान मानकर निरर्थक वचन रचना है ।

तब उनके कारुणिक स्वभाव का भरोसा है । मुझे अन्य गति नहीं है और उन्हें अनन्यगतिक प्रिय हैं । यथा है तुलसी के एक गुण अवगुण विधि कह लोग । भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग ।

होइहै सुफल आजु मम लोचन । देखि बदन पकज भव मोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥५॥

अर्थ : भव मोचन मुख कमल के दर्शन से आज मेरी आँखें सुफल होंगी । मुनि ज्ञानी पूर्ण प्रेम में निमग्न हो गये । हे भवानी ! वह दशा कही नहीं जा सकती ।

व्याख्या : अतः यह निश्चय किया कि दर्शन मिलेगा । लोचन का साफल्य सरकार के दर्शन से होता है । यथा करहु सुफल सब के नयन सुन्दर बदन देखाइ । आँखें तो अगणित जन्म से मिलती चली आयी है सफल कभी न हुई । सफल हुई होती तो जन्म ही क्यों होता । इसलिए बदन पकज का भव मोचन विशेषण दिया ।

सुतीक्ष्णजी ज्ञानी मुनि हैं । योगवासिष्ठ के प्रधान श्रोता हैं । तथापि निर्भर प्रेम में मग्न हैं । यह रामजी के प्रेम की महिमा है । यथा मोह मगन मति नहि विदेह की । महिमा सिय रघुबर सनेह की । आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था, अप्युरु-क्रमे । कुर्वन्त्यहेतुर्की भक्तिमित्थंभूतगुणो हरि । ज्ञानघाट के वक्ता जवाब देते हैं कि वह दशा कही नहीं जा सकती । जिसकी यह दशा है वह स्वयं उस दशा को नहीं समझ रहा है । यह सातवी दशा उन्माद है । ७ .

न अरु विदिसि पथ नहिं सूझा । को मैं चलेउ कहाँ नहिं वूझा ॥

हुँक फिरि पाछे पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥६॥

अर्थ : उन्हे दिशा विदिशा और रास्ता कुछ भी सूझ नहीं रहा है । मैं कौन हूँ जा रहा हूँ । इसका भी चेत नहीं है । कभी धूमकर पीछे चले जाते हैं । कभी का गान करके नाचने लगते हैं ।

व्याख्या : पहिले करत मनोरथ आतुर धावा । अब मनोरथ करते करते निर्भर मे विभोर होने से रास्ता सूझना बन्द हो गया । उन्हे यह पता नहीं कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन किधर है । नैऋत्य, वायव्य, अग्नि और ईशान कोण कौन इधर उधर देखते हैं । कुछ मालूम नहीं होता । दशा बढ़ती ही गयी अपने को भूल गये । कहाँ चले थे यह भी मालूम नहीं । पन्थ का न सूझना आठवी दशा धि है । : ८

जब कहाँ जाते है . यही भूल गये तब लौट पडे, फिर लौटना भूलकर गान करके नाचने लगे : होइहि सुलभ आजु मम लोचन । इस आशा पर इतना मन्द बढा हुआ है : आगे जाते जाते रुक गये । लौटे तो फिर गति रुक गयी । यह जडता का सञ्चार नवी दशा है । . ९ :

अविरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई ॥

तसै प्रेम देखि रघुवीरा । प्रगटे हृदय हरन भव भीरा ॥७॥

अर्थ : मुनि ने प्रगाढ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली । सरकार वृक्ष की आड में छिपे देख रहे हैं । मुनि का अत्यन्त प्रेम देखकर भव भय के हरण करनेवाले रामजी य में प्रकट हो गये ।

व्याख्या : जडता का सञ्चार कहकर अविरल भक्ति की प्राप्ति कहते हैं । इतने तक सरकार पेड के आड में खडे देख रहे थे । भक्तों के पागलपन की दशा सरकार को प्रिय है । छिपे इसलिए हैं कि प्रकट होने से विप्रलम्भावस्था ही समाप्त जायगी ।

असह्य प्रेमवेग अर्थात् दशम दशा . मरण की प्राप्ति होते देखकर हृदय में प्रकट । दशा ऐसी थी कि पत्ता खटकने से काम बिगडता । इसलिए तरु ओट से सामने जाने का प्रयत्न नहीं किया । हृदय में प्रकट हो गये । अतिशय प्रेम से ही प्रभु प्रकट होते हैं और उसी से भव भय का नाश होता है ।

ने मग माँझ अचल होइ वैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥

रघुनाथ निकट चलि आए । देखि दसा निज जन मन भाए ॥८॥

अर्थ : मुनिजी बीच रास्ते में अचल होकर बैठ गये । उनका शरीर कटहल के फल रोमाञ्चित हो गया । तब रामजी उनके पास चले आये और अपने भक्त की दशा देखकर अपना भक्त उन्हे बहुत प्यारा लगा ।

व्याख्या : मुनिजी को प्रेम समाधि लग गयी । नही तो बीच रास्ते में कोई अचल होकर नही बैठता । ये रास्ते में ही अचल हुए । क्योंकि रास्ते में ही इन्हे हरि की प्राप्ति हुई । आनन्द से अद्भुत पुलक हो गया । कटहल के काँटे घने पुलक के ऐसे होते हैं । मुनिजी के शरीर में कोई स्थान ऐसा न रह गया जहाँ उत्तम पुलक न हो ।

जब रामजी ने देख लिया कि मुनिजी अत्यन्त आनन्द से पुलकित हैं । तब निकट गये । प्रभु का स्वभाव है कि निज जन को अपना लेते हैं । सुतीक्ष्णजी का मनोरथ भी था कि रामजी उन्हें निज जन जाकर मिलें । यथा : निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभु सुभाउ वपि कुल मन भावा ।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा । जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा । हृदयं चतुर्भुज रूप देखावा ॥९॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने अनेक भाँति से जगाया । पर मुनिजी नहीं जागे । क्योंकि उन्हें सरकार के ध्यान का सुख मिल रहा था । तब रामजी ने राजा के रूप को अन्तर्धान कर दिया और उनके हृदय में चतुर्भुज रूप दिखलाया ।

व्याख्या : सोने से मूर्च्छा से तथा समाधि से व्युत्थान दशा में होश में आने को जागना कहते हैं । अतः श्रीरामजी ने समाधि अवस्था से उन्हें जाग्रत अवस्था में लाने की अनेक चेष्टा की । जो जो उपाय समाधि से उतारने के हैं सो सब काम में लाये । पर उनकी समाधि भङ्ग न हुई । तात्पर्य यह कि प्रेमाधिक्य से आप से आप समाधि लग जाती है और ऐसी लगती है कि उससे उतारना कठिन हो जाता है । क्योंकि समाधि जनित आनन्द को साधक छोड़ना नहीं चाहता । सरकार ने देखा कि इस तरह ये न जागेंगे ।

ये माधुर्य के उपासक थे । ऐश्वर्य रूप के नहीं थे । भूप रूप माधुर्य का रूप है और चतुर्भुज रूप ऐश्वर्य का है । यद्यपि दोनों रूप सरकार के ही हैं । द्विचत्वारि षडष्टासा दश द्वादश षोडश । अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युता । पूर्व तापनीये । दो, चार, छ, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह हाथ तक भगवान् रामभद्र के शङ्ख आदि से युक्त माने गये हैं । पर भूप रूपवाली माधुर्य मूर्ति द्विभुज है । मुनिजी उसी के उपासक थे । प्रभु ने उस मूर्ति को अन्तर्धान कर लिया और उसके स्थान पर चतुर्भुज मूर्ति शङ्खचक्रादि से युक्त प्रकट कर दिया ।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे । विकल हीन मनि फनिवर जैसे ॥
आगे देखि राम तनु स्यामा । सीता अनुज सहित सुख धामा ॥१०॥

अर्थ : मुनिजी तब किस भाँति आकुल होकर उठे । जैसे मणि ले लेने से श्रेष्ठ सपं व्याकुल होकर उठता है । आगे देखा कि श्यामसुन्दर सुखधाम राम सीता और अनुज के सहित विराजमान हैं ।

व्याख्या : मुनिजी ने भूप रूप की शोभा को हृदय में धारण कर रक्खा था । यथा : निरखि राम सोभा उर घरहू । निज मनि फनि मूरति मनि करहू । अपने मन को फणि सर्प और प्रभु की मूर्ति को मणि बना रक्खा था । माधुर्योपासको के लिए भूप रूप ही अति सुन्दर है । विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी । बिकट वेप मुख पच पुरारी । अपर देउ अस कोउ न आही । एहि छवि सखी पटतरिअ जाही । सो उस रूप के अन्तर्धान होते ही चतुर्भुज रूप का कुछ भी ख्याल न करते हुए मुनिजी मणिहीन भुजङ्ग की भाँति विकल होकर उठे । यथा : सूखहि अघर जरहि सब अगू । मनहु दीन मति हीन भुअगू ।

त्रेता में विष्णु भगवान् का पीतरङ्ग रहता है । यहाँ तनु स्यामा पाठ होने से यह अर्थापत्ति होती है कि चतुर्भुज मूर्ति जो प्रकट हुई थी उसका स्याम तन भी नहीं था । जिसने सर्प का मणि लिया • उस पर सर्प का बड़ा क्रोध होता है । समाधि भङ्ग करनेवाले पर समाधिस्थ का भयानक क्रोध होता है । यथा : भयउ ईस मन छोभ बिसेखी । नयन उधारि सकल दिसि देखी । सौरभ पल्लव मदन विलोका । भयउ कोप कपेउ त्रैलोका । तब सिव तीसर नैन उधारा । चितवत काम भयउ जरि छारा । अतः मुनिजी ने आँख खोलकर देखना चाहा कि किसने उनकी समाधि भङ्ग की । तो आगे अपने परम प्रिय सुखधाम राम की मूर्ति पाते हैं । मनोरथ से भी अधिक की प्राप्ति होती है, अनुज तो साथ में ही हैं । जगदम्बा जानकीजी भी साथ में हैं ।

परेउ लकुट इव चरनन लागी । प्रेम मगन मुनिवर वडभागी ॥

भुज विसाल गहि लिए उठाई । परम प्रीति राखे उर लाई ॥११॥

अर्थ : बड़े भाग्यवान् मुनियो में श्रेष्ठ प्रेम में मग्न होकर छड़ों की भाँति गिरकर चरणों में लगे । सरकार ने विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेम से उन्हें हृदय में लगाये रहे ।

व्याख्या : प्रेम मगन कहने से देह दशा की विस्मृति कहा । चरणों में छड़ों के गिरने की भाँति गिरे । इस भाँति गिरने से चोट लगेगी । इस बात का ध्यान न रहा । बड़ा भाग्यवान् वही है जिसे सरकार के चरणों की प्राप्ति हो • श्री गोस्वामीजी लकुट और दण्ड में कुछ भेद करते हैं । लकुट पतला होता है । दण्ड मोटा होता है । मुनिजी दुर्बल हैं । अतः इनकी उपमा लकुट से देते हैं । भरतजी भी प्रभु के विरह से दुर्बल हो गये थे । उनके लिए भी कवि लिखते हैं • भूतल परेउ लकुट की नाई । मनुजी आकाशवाणी सुनकर हृष्ट पुष्ट हो गये थे । यथा • हृष्ट पुष्ट तनु भयउ सोहाये । मानहु अबहि भवन ते आये । अतः उनकी उपमा दण्ड से देते हैं । यथा : हरष विवस तन दसा भुलानी । परेउ दण्ड इव गहि पद पानो । ऐसे को हो यही प्रेम मगन शब्द से कहा ।

प्रभु की भुजाएँ विशाल हैं । दूर से ही उठा लेती हैं । मुनिजी का मनोरथ पूर्ण हो रहा है । राम गोसाईं निज सेवक की भाँति मिल रहे हैं । मुनिजी लकुट

व्याख्या : मुनिजी को प्रेम समाधि लग गयी । नही तो बीच रास्ते में कोई अचल होकर नही बैठता । ये रास्ते में ही अचल हुए । क्योंकि रास्ते में ही इन्हें हरि की प्राप्ति हुई । आनन्द से अद्भुत पुलक हो गया । कटहल के कांटे घने पुलक के ऐसे होते हैं । मुनिजी के शरीर में कोई स्थान ऐसा न रह गया जहाँ उत्तम पुलक न हो ।

जब रामजी ने देख लिया कि मुनिजी अत्यन्त आनन्द से पुलकित हैं । तब निकट गये । प्रभु का स्वभाव है कि निज जन को अपना लेते हैं । सुतीक्ष्णजी का मनोरथ भी था कि रामजी उन्हें निज जन जाकर मिलें । यथा : निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभु सुभाउ कपि कुल मन भावा ।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा । जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥

भूप रूप तब राम दुरावा । हृदयं चतुर्भुज रूप देखावा ॥९॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने अनेक भाँति से जगाया । पर मुनिजी नहीं जागे । क्योंकि उन्हें सरकार के ध्यान का सुख मिल रहा था । तब रामजी ने राजा के रूप को अन्तर्धान कर दिया और उनके हृदय में चतुर्भुज रूप दिखलाया ।

व्याख्या : सोने से मूर्च्छा से तथा समाधि से व्युत्थान दशा में होश में आने को जागना कहते हैं । अतः श्रीरामजी ने समाधि अवस्था से उन्हें जाग्रत अवस्था में लाने की अनेक चेष्टा की । जो जो उपाय समाधि से उतारने के हैं सो सब काम में लाये । पर उनकी समाधि भङ्ग न हुई । तात्पर्य यह कि प्रेमाधिव्य से आप से आप समाधि लग जाती है और ऐसी लगती है कि उससे उतारना कठिन हो जाता है । क्योंकि समाधि जनित आनन्द को साधक छोड़ना नहीं चाहता । सरकार ने देखा कि इस तरह ये न जागेंगे ।

ये माधुर्य के उपासक थे । ऐश्वर्य रूप के नहीं थे । भूप रूप माधुर्य का रूप है और चतुर्भुज रूप ऐश्वर्य का है । यद्यपि दोनों रूप सरकार के ही हैं । द्विचत्वारि पडष्टासा दश द्वादश षोडश । अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युताः । पूर्वं तापनीये । दो, चार, छ, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह हाथ तक भगवान् रामभद्र के शङ्ख आदि से युक्त माने गये हैं । पर भूप रूपवाली माधुर्य मूर्ति द्विभुज है । मुनिजी उसी के उपासक थे । प्रभु ने उस मूर्ति को अन्तर्धान कर लिया और उसके स्थान पर चतुर्भुज मूर्ति शङ्खचक्रादि से युक्त प्रकट कर दिया ।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे । विकल हीन मनि फनिवर जैसे ॥

आगे देखि राम तनु स्यामा । सीता अनुज सहित सुख धामा ॥१०॥

अर्थ : मुनिजी तब किस भाँति आवुल होकर उठे । जैसे मणि ले लेने से श्रेष्ठ सपं व्याकुल होकर उठता है । आगे देखा कि श्यामसुन्दर सुखधाम राम सीता और अनुज के सहित विराजमान हैं ।

की भाँति चरणों में पड़े हैं। उठना नहीं चाहते। छड़ी आपसे नहीं उठती : उठाने से उठती है। अतः प्रभु ने अपने हाथों से इन्हे उठा लिया। अपना दास उन्हे सबसे अधिक प्रिय है। इसलिए परम प्रेम से हृदय में लगाये हुए हैं। विरह सन्तप्त हृदय को शान्ति दे रहे हैं।

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला । कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥

राम बदन बिलोकि मुनि ठाढा । मानहु चित्र माँझ लिखि काढा ॥१२॥

अर्थ : मुनिजी से मिलते हुए कृपाल ऐसे शोभित हुए जैसे घतूर के पेड़ से तमाल : आवनूस पेड़ मिल रहा हो। मुनिजी खड़े हुए श्रीरामजी का मुख देख रहे हैं। मानो चित्र में लिखकर बनाये गये हो।

व्याख्या : प्रेमाधिक्य से भक्त भगवन्त दोनों में जाड्य है। इसलिए पेड़ों से उपमा दी। मुनिजी को इस समय भी पुलक है। अतः उनकी उपमा घतूर के वृक्ष से दिया। घतूर का फल भी कटहल के फल सा कटकित होता है। प्रभु की उपमा तमाल वृक्ष से दिया। तमाल वृक्ष श्याम होता है। उसके पत्ते भी श्याम होते हैं। अतः प्रभु से उपमित किया।

मिलने के बाद मुनिजी खड़े हुए मुह देख रहे हैं। कुछ कहने सुनने की सामर्थ्य नहीं है। न होश है। जैसे चित्र में लिये हुए मुनि जैसे लिखे जाते हैं वैसे ही बने रहते हैं। यदि आँख खुली है तो खुली ही रहती है। पलक गिरती ही नहीं। सिवा दर्शन के किसी अन्य भाव का हृदय में स्थान नहीं है।

दो. तव मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहि बार ।

निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा विविध प्रकार ॥१०॥

अर्थ : तब मुनिजी धैर्य धारण करके और बार बार चरणों को पकड़कर प्रभु को अपने आश्रम में ले आये और अनेक प्रकार से पूजा।

व्याख्या : दुःख में जो उद्विग्न न हो, सुख की जिसे इच्छा न हो, राग द्वेष भय जिसका निकल गया हो, उसे मुनि कहते हैं। इस समय उनका धैर्य छूटा हुआ है। सो हृदय में धैर्य धारण किया। प्रेम से बार बार चरण ग्रहण करते हैं। अथवा अपने आश्रम में लिवा चलने के लिए बार बार सङ्कोच में डाल रहे हैं। यथा - बार बार गहि चरण सकोची। यहाँ सरकार की ओर से प्रणाम दण्डवत् कुछ नहीं हो रहा है। क्योंकि ऐश्वर्य खुल गया है। रास्ते में पूजा नहीं हो सकती। अतः आश्रम में लिवा लाये। षोडशोपचार राजोपचारादि पूजनो में से जो जो सम्भव था सब किया। इसलिए विविध प्रकार कहा।

कह मुनि प्रभु सुनु विनती मोरी । अस्तुति करौ कवन विधि तोरी ॥

महिमा अमित मोरि मति थोरी । रवि सनमुख खद्योत अँजोरी ॥१॥

अर्थ : मुनि ने कहा हे प्रभु ! मेरी विनती सुनो । तुम्हारी स्तुति किस विधि से करूँ । महिमा अपार है और मेरी बुद्धि थोड़ी है । जैसे सूर्य के सामने जुगनू का प्रकाश ।

व्याख्या : पूजा के बाद स्तुति होनी चाहिए । सो पूजा तो शास्त्रानुसार कर डाला । उसके लिए विधि नहीं पूछा । पर स्तुति करने में तो शास्त्र भी असमर्थ है । यथा : महिमा निगम नेति कहि गई । अतः स्तुति की विधि नहीं सूझती । सो सरकार से ही विनय करते हैं कि आप ही विधि बतलाइये । यदि नहीं बतलाते तो स्तुति करने में विगड़ जाय तो मेरा दोष नहीं ।

विधि न समझने का कारण बतलाते हैं कि आपकी महिमा का पारावार नहीं और महिमा कथन की ही स्तुति कहते हैं । तिस पर मेरी बुद्धि बहुत थोड़ी है । जब प्रभु की महिमा की ओर देखती है तब काम नहीं करती । वैसे ससार में तो खूब काम करती है । तथा निसि तम घन खद्योत विराजा । पर सूर्य का सामना पड़ते ही खद्योत का प्रकाश सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाता है । कुछ भी काम नहीं कर सकता । पता भी नहीं चलता कि खद्योत भी ससार में वही है । ऐसी ही मेरी बुद्धि की गति हो रही है । जो लोग प्रवीण हैं उनकी बुद्धि भी दीपादिवत् निस्तेज हो जाती है । पर अपने अस्तित्व का प्रकाश करती है । यथा : मुनिवर परम प्रवीण जोरि पानि अस्तुति करत । यहाँ तो मेरी जुगनू की दशा है । रात में भी जुगनू चमकते चमकते रह जाता है । एकरस प्रकाश नहीं कर पाता । दिन में क्या प्रकाश करेगा ।

स्याम तामरस दाम शरीर । जटा मुकुट परिधान मुनि चीर ॥

पानि चाप सर कटि तूनीर । नौमि निरन्तर श्रीरघुवीर ॥२॥

अर्थ : नीलकमल की माला के समान शरीरवाले । जटा का मुकुट और मुनिवस्त्र धारण करनेवाले हाथों में धनुष बाण लिये हुए । तथा कमर में तरकस कसे हुए श्रीरघुवीर को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ।

व्याख्या : स्याम तामरस दाम शरीर : से सुन्दरता कहा । यथा : स्यामसरोज दाम सम सुन्दर । जटा मुकुट परिधान मुनिचीर : से धर्म परायणता कही । यथा : पितु आयमु भूपन वसन तात तजे रघुवीर । हृदय न हरष बिपाद कछु पहिरे बलकल चीर । अथवा ऐसा सौन्दर्य है कि जटा मुकुट मालूम होता है और बलकल परिधान मालूम होता है । यथा : पीताम्बर सुंदर । पानि चाप सर कटि तूनीर से द्विभुज मूर्ति कहा । तथा भक्तों की सब प्रकार से रक्षा दिखलाया । यथा तब लगी हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मत्सर मद माना । जब लगी उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि भाथा । प्रभु की ऐसी श्री है कि लोभ मोहादि सामने ठहर नहीं सकते । सरकार को सशस्त्र देखते ही भाग जाते हैं । इसलिए श्रीरघुवीर कहा । अथवा श्रीरूपिणी सीताजी साथ हैं इसलिए श्रीरघुवीर कहा । यथा : उभय बीच श्री सोहड़ कैसी । ब्रह्म जीव विच माया जैसी प्रभु का । स्वभाव है कि एक बार प्रणाम

करनेवाले को अपना कर लेते हैं। इसलिए तदीय होने के लिए निरन्तर प्रणाम करते हैं। यह पहला नमस्कार है। यह स्तुति वीररस से भी है। इसलिए इसे विचाररूपी भूप का सुभट फल श्रुति प्रकरण में कहा है। अथवा असाध्य जानकर भी उत्साह के साथ स्तुति करते चले जाते हैं। अतः इसकी स्तुति विचार भूपति की सुभटरूपा है।

मोह विपिन घन दहन कृशानुः । संत सरोरुह कानन भानुः ॥
निसिचर करि बरूथ मृगराजः । त्रातु सदा नो भव खग वाज ॥३॥

अर्थ : हे मोहरूपी घन बन के जलाने के लिए अग्निरूप, हे सन्तरूपी कमल बन के सूर्य, हे राक्षस रूपी हाथी के झुण्ड के लिए सिंह, हे संसाररूपी चिड़िया के लिए धाजरूप ! हमारी रक्षा कीजिए।

व्याख्या : अति दुःखद होने से मोह को विपिन कहा। यथा : डरपहिं धार गहत सुधि आये। घन कहने का भाव यह कि इसमें पड़ने से मनुष्य मार्गभ्रष्ट हो जाता है। और फिर उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता है। मोह विपिन में भी सरकार अव्यक्त रूप से भरे पड़े हैं। पर उसमें अति सघर्ष होने से। यथा : करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्रधेनु सुर धरनी। प्रभु अग्नि की भांति व्यक्त हो जाते हैं। मोह विपिन का नाश कर देते हैं। इससे अवतार का कारण कहा। अब कार्य कहते हैं। प्रभु के उदय से सूर्योदय की भांति सन्तरूपी कमल का बन विकसित हो उठता है। इस भांति साधु परित्राण कहकर दुष्टों का विनाश कहते हैं। प्रभु को प्रतिज्ञा करके बन में रहते इतने दिन बीते। पर एक भी राक्षस हाथ न चढ़ा। जिस भांति सिंह का गन्ध न सहकर हाथी जंगल छोड़ देते हैं। उसी भांति प्रभु का गन्ध, सहने में राक्षस असमर्थ हो जाते हैं। अब प्रभु का मोक्षदातृत्व गुण कहते हैं। आवागमन भव है। उसे खग कहा है। खग का आकाश में और पृथ्वी में आना जाना लगा रहता है। वाज उसको भक्षण कर जाता है। प्रभु भी भव भय को भक्षण करके मुक्ति देते हैं। त्रासु कहकर अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की। स्वरूप को नमस्कार करके मनमें बसाते हैं और गुणों से अपनी रक्षा चाहते हैं।

अरुन नयन राजीव सुवेसं । सीता नयन चकोर निसेसं ॥
हर हृदि मानस बाल मरालं । नौमि राम उर बाहु विसालं ॥४॥

अर्थ : जो लाल कमल से लाल नेत्र वाले और सुन्दर वेष वाले हैं। जो सीताजी के नेत्र चकोर के चन्द्रमा है और जो शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के लिए जो हंस हैं ऐसे विशाल वक्षस्थल और भुजावाले रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : नयन की अरुणिमा चक्रवर्ती होने का चिन्ह है। कमल से नेत्रों की उपमा कृपा कटाक्ष के लिए दी जाती है। यथा : मामवलोक्य पंकज लोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। पहिले रूप का वर्णन किया था। फिर गुण वर्णन करने

लगे । अब फिर रूप वर्णन करते हैं । यथा : बल्कल वसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनिवेष कीन्ह रति कामा । इस भाँति सुवेष हैं । अब सुन्दरता की पराकाष्ठा कहते हैं कि सीताजी ऐसी सुन्दरी के नेत्ररूपी चकोर के लिए चन्द्रमा है । यथा : जाइ समीप राम छवि देखी । रही जनु कुँअरि चित्र अवरेखीं ।

बूढ़े मुनि ने संकर मानस राज मराल कहकर वर्णन किया था । ये मुनि शिष्य हैं । इसलिए बाल मराल कह रहे हैं । सीता जी साक्षात् देखती हैं । इसलिए चन्द्र चकोर की उपमा दी । शिवजी ध्यान से देखते हैं इसलिए उनके हृदयरूपी मानसरोवर का हंस बतलाया । उर बाहु विसाल कहकर विक्रम सूचित करते हैं । श्री रघुबीर कहकर रघुकुल में जन्म दिखलाया । सीता नयन चकोर कहकर विवाह कहा । यह दूसरा नमस्कार है ।

संशय सर्प ग्रसन उरगादः । समन सुकर्कस तर्क विपादः ॥

भव भंजन रंजन सुर यूथः । त्रातु सदा नो कृपा वरूथः ॥५॥

अर्थ : जो संशयरूपी सर्प के ग्रसन के लिए गरुड़ हैं । अत्यन्त कर्कश तर्क जनित विपाद के नाश करनेवाले हैं । आवागमन को मिटानेवाले और देवताओं के समूह को आनन्द देने वाले हैं । ऐसे कृपा के समूह रामजी सदा हमारी रक्षा करें ।

व्याख्या : संशय को सर्प कहते हैं । क्योंकि संशयग्रस्त के हृदय में दुःखद कुनक को लहरें उठती हैं । यथा : संशय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता । दुखद लहरि कुतक बहु घाता । सो संशय सर्प ही आपका भक्ष्य है । इसलिए गरुड़ से उपमा दी । सर्प का ग्रास तो हुआ । पर जिसका उसने दंशन किया है उसकी रक्षा कैसे होगी ? अतः कहते हैं कि आप दुःखद तर्क विपाद के भी शमन करनेवाले हैं । विष के उतरने के कारण भी गरुड़ ही होते हैं । गरुड़ी विद्या से विष उतरता है । एवं ज्ञान स्वरूप कहा : यथा : ज्ञान उदय जिमि संशय जाहीं । इस स्तुति में भव का उल्लेख तीन बार आया है । १. जानियों के लिए संसार की पारमार्थिक स्थिति है ही नहीं । केवल व्यावहारिकी स्थिति है । इसलिए उनके लिए वह खग है । कभी काम खग से ही पड़ जाता है । उसके लिए प्रभु बाज हैं । उसे निर्मूल कर देते हैं । तब सजात वाद सामने आ जाता है । २. कर्मों के लिए संसार वास्तविक है । इसलिए उसका भङ्ग कर देते हैं तब देवी प्रकृतिवालों को सुखानुभव होता है । अतः भव भंजन रंजन सुर यूथः कहा । ३. भक्तों के लिए सेतु हो जाते हैं । उनका आश्रयण करके भक्त भव सरिता के आरपार आया जाया करते हैं । उन्हें भव सरिता बाधक नहीं है ।

निर्गुन सगुन विषम सम रूपं । ग्यान गिरा गोऽतीतमनूपं ॥

अमलमखिल - मनवद्यमपारं । नौमि राम भंजन महि भारं ॥६॥

अर्थ : जो निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप हैं । जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं । जो अनूप, निर्मल सम्पूर्ण, दोष रहित, अनन्त और पृथ्वी का भार उतारनेवाले हैं । ऐसे रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

व्याख्या : निर्गुण सगुण कहकर मिश्र ब्रह्म कहा । विषम समरूप कहकर जगन्मय कहा । ग्यान गिरा गोतीत से साक्षात् ब्रह्म कहा । तीनों होने से अनूप कहा । यथा : अनूप रूप भूपति । अवतार रूप में तीनों का समावेश है । यथा : ब्रह्माड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहे । सो मम उर वासी यह उपहासी सुनत घोर मति धिर न रहे । अमल से शुद्ध, अविरल से पूर्ण, अनवद्य से निर्विकार, अपार से व्यापक अथवा अपरिच्छिन्न कहा । भजन महिभार से पूर्णवितारद्वारण करके रावणादि का बध कहा । यथा : अतिसय देखि घमं कै ग्लानी । परम सभित घरा अकुलानी । गिरि सर सिंधु भार नहि मोही । जस मोहि गरुड एक पर द्रोही । ऐसे रामजी को नमस्कार करते हैं । यह तीसरा नमस्कार है ।

भक्त कल्पपादप आरामः । तर्जन क्रोध लोभ मद कामः ॥
अति नागर भव सागर सेतुः । त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः ॥७॥

अर्थ : जो भक्त के लिए कल्पवृक्ष के वाग हैं । क्रोध, लोभ, मद और काम को डाँटनेवाले हैं । अत्यन्त चतुर और ससार समुद्र के सेतु हैं । ऐसे सूर्यकुल के ध्वजारूप श्रीरामजी हमारी रक्षा करें ।

व्याख्या : रूप कहकर फिर गुण कहते हैं । कल्पवृक्ष तो सबके लिए समान है । किसी के सन्मुख या विमुख नहीं है । उसके निकट जाने और पहिचानने की आवश्यकता है । माँगने से वह चाही हुई वस्तु दे देता है । परन्तु भक्त को तो किसी वस्तु की कामना नहीं है । यथा : नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये । वह तो उन्हीं प्रभु को ही चाहता है । इसलिए उसके लिए प्रभु कल्पवृक्ष के वाग हो जाते हैं । उन्हीं में भक्त विहार करते हैं । उसी वाग की सुन्दरता देखने में मग्न रहते हैं । उन्हें काम, क्रोधादिक शत्रुओं का भी भय नहीं रहता । क्योंकि प्रभु उन्हें भगा देते हैं । अतः तर्जन क्रोध लोभ मद काम कह रहे हैं । इन्हें शत्रु इसलिए कहा कि ये ही जीव को नरक में ले जाते हैं । यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।

नागर चतुर को कहते हैं । यहाँ प्रभु को अति नागर कहते हैं । प्रभु भक्त के लोक परलोक दोनों को सँभालते हैं । भवसागर के सेतु हैं । इनका आश्रयण करने से अनायासेन भवसागर पार किया जा सकता है । यथा : अति अपार जे सरित वर जो नृप सेतु कराहि । चढि पिपोलकउ परम लघु विनु श्रम पारहि जाहि । सर्वात्मना साधनहीन चीटी जिस भाँति सेतु का आश्रयण करके अनायासेन पार चली जाती है उसी भाँति सभी साधनो से हीन भक्त भी केवल प्रभु का आश्रय करके अनायासेन भवसागर पार हो जाते हैं । उन्हें भवसागर के मध्य उत्ताल तरङ्ग तथा मकर उरग बाधा नहीं कर सकते । दिनकर कुलसेतु कहकर रामावतार कहा । मुनिजी उन्हीं से सदा अपनी रक्षा चाहते हैं । दूसरे से नहीं । यथा : अनै तो रघुवर ते वनै या बिगरे भरपूर । तुलसी वनै जो और तेहि बनिवे मह धूर ।

अतुलित भुज प्रताप बल धामः । कलि मल विपुल विभंजन नामः ॥

धर्म बर्म नर्मद गुण ग्रामः । संतत संतनोतु मम रामः ॥८॥

अर्थ : जिसके भुज प्रताप की तौल नहीं । जो बल के धाम है । जिसका नाम कलि के विशाल मल का नाश करनेवाला है । जो धर्म के कवच हैं । जिनका गुणग्राम सुख देनेवाला है । ऐसे राम सदा मेरा कल्याण करें ।

व्याख्या : संक्षेप में नाम रूप लीला और धाम चारों कह रहे हैं । अतुलित-भुजप्रतापबलधामः से रूप कहा : कलिमलविपुलविभजननामः से नाम कहा । धर्मवर्मनर्मदगुणग्राम से लीला कहा : और संतत संतनोतु मम रामः से धाम के लिए प्रार्थना करते हैं ।

प्रभु बल के धाम हैं । उन्हीं के बल से सम्पूर्ण सृष्टि चल रही है । यथा सुनु रावन ब्रह्माड निकाया । पाइ जासु बल विरचति भाया । जाके बल विरचि हार ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा । जा बल सीस धरत सहसानन । अडकोस समेत गिरि कानन । इत्यादि । उनके भुजा के प्रताप की भी तुलना नहीं है । यथा ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका । फिरा अमित व्याकुल भय सोका । काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सके राम कर द्रोही । अन्त में वही जयंत कहता है अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं भक्तिमद जान महि पाई । नाम की प्रभुता ऐसी है कि इस कराल कलिकाल में लोक परलोक उसी द्वारा सिद्ध होता है । नहीं तो सब धर्मों को कलिमल ग्रसे हुए हैं । किसी से काम नहीं चलता । यथा नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत समन सकल भव जाला । प्रभु के गुणग्राम से धर्म की रक्षा होती है और सुख मिलता है । यथा : राम की सुमिरिखो सब विधि ही को राज रे । रामको विसारिखो निषेध सिरताज रे । तथा : एहि विधि कहत राम गुणग्रामा । पावा अनिर्वाच्य विश्रामा ।

तीन प्रकारसे भजन कहा गया है । तस्यैवाह ममैवासी स एवाहमिति त्रिधा । मैं उनका हूँ । वे मेरे हैं और वही मैं हूँ । ये ही तीन प्रकार हैं । सेवक आरम्भ में समझता है कि मैं उनका हूँ । जब सम्बन्ध प्रागल्भ्य होता है तब समझता है कि वे मेरे हैं और जब उस प्रागल्भ्य की अति वृद्धि होती है तब समझने लगता है कि उनमें और मुझमें भेद नहीं है । यहाँ पर मुनिजी सम्बन्ध प्रागल्भ्य से मम रामः कह रहे हैं और उन्हीं से सदा अपना कल्याण चाहते हैं । यथा . मोर दास कहाइ नर आसा । करे तो कहहु कहाँ विस्वासा ।

जदपि विरज व्यापक अविनासी । सब के हृदय निरंतर वासी ॥

तदपि अनुज श्री सहित खरारी । वसतु मनसि मम कानन चारी ॥९॥

अर्थ : यद्यपि आप निर्मल व्यापक और अविनाशी हैं । सबके हृदय में निरन्तर वास करते हैं । फिर भी छोटे भाई और लक्ष्मी के सहित हे खरारि । हे काननचारी । मेरे मन में बसो ।

व्याख्या विरज से प्रकृति पार कहा। व्यापक से अपरिच्छिन्न कहा। अविनासी से नित्य कहा। अर्थात् निर्गुण रूप से सरकार सबके हृदय में निवास करते हैं। फिर भी ससार के सब जीव दीन और दुःखी हो रहे हैं। अतः निर्गुण रूप से काम नहीं चलता। इसलिए मुनिजी सगुण रूप से हृदय में बसाना चाहते हैं और सगुण रूप में भी उस रूप से जिस रूप में उस समय लीला कर रहे हैं। क्योंकि लीला विग्रह से ही काननचारी होकर मुनिगण को सुलभ हो रहे हैं। खरारि होकर उन्हें अभय दे रहे हैं। अनुज लक्ष्मण तथा श्री सीता शक्ति साथ में हैं। अतः उनके साथ ही हृदय में बसाना चाहते हैं जिसमें सानन्द निवास हो। यथा राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जमि वासव बस अमरपुर सची जयत समेत। भाव यह कि दण्डक वन की भाँति अपने मनको पवित्र करने की प्रार्थना करते हैं।

जे जानहि ते जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर अतरजामी ॥

जो कोसल पति राजिव नयना। करौ मो रामु हृदय मम अयना ॥१०॥

अर्थ हे स्वामी। जो आपको सगुण निर्गुण और उर अन्तर्यामी भी जानते हैं वे जाना कर। मेरे हृदय को तो जो राजीवनयन कोसलपति राम हैं वे ही घर बनावें।

व्याख्या रामजी सगुण निर्गुण तथा अन्तर्यामी रूप हैं। ऐसा शास्त्र कहता है। और शास्त्रज्ञ लोग इस बात को जानते हैं। सो उनका जानना उन्हीं के लिए कल्याणदायक हो। मैं तो ऐश्वर्य उपासक नहीं। मेरे लिए तो माधुर्य ही सब कुछ है। अतः मैं सगुण निर्गुण या अन्तर्यामी रूप नहीं चाहता। मैं तो राजीवलोचन कोसलपति रामको हृदय में बसाना चाहता हूँ। सो रामजी अवतारों होकर कोसलपति हुए हैं। वे मेरे मन में घर करें। पहिले काननचारी रूप से बसने की प्रार्थना की थी। फिर सोचा कि यह रूप तो कुछ ही दिनों के लिए है। इसके बाद जाकर अयोध्या के राजा हो जायेंगे। अतः कोसलपति होकर भी हृदय में निवास करें।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

मुनि मुनि वचनु राम मन भाए। बहुरि हरपि मुनिवर उर लाए ॥११॥

अर्थ ऐसा भूलकर अभिमान न छोड़े कि मैं सेवक हूँ और श्री रघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनिजी का वचन सुनकर श्रीरामजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने फिर हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या • सरकार को अभिमान प्रिय नहीं है। अतः भक्त को अभिमान होने देना प्रभु नहीं चाहते। यथा • जन अभिमान न राखहि कारु। पर सेवक सेव्यभाव-वाला अभिमान तो भक्ति का प्राण है। इतना ही ज्ञानी और भक्त में अन्तर है। ज्ञानी भी ब्रह्ममय जगत् को देखता है। भक्त भी ब्रह्ममय देखता है। पर ज्ञानी में कोई अभिमान नहीं रहता। अपने अस्तित्व को भी ब्रह्म में लय कर देता है। भक्त

सेवक रूप से अपना अस्तित्व अलग बनाये रहता है । यथा : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।

यह गुणग्राम पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है । इसमें दो तारे चमक रहे हैं । एक रूप और दूसरा गुण । नौमि के साथ द्वितीयान्त विभक्तिवाले रूप के विशेषण हैं और श्रातु के साथ प्रथमान्त विभक्तिवाले गुणबोधक शब्द हैं । इन्हीं दोनों ताराओं की चमक सम्पूर्ण स्तुति में है । दूसरी बात यह है कि इस तारा का रूप मध्य सा है । मध्य की स्थिरता नहीं । जहाँ आवश्यक हो उठाकर रख दिया । इसी भाँति इस स्तुति में स्थिरता नहीं है । कहीं बसहु मनसि मन काननचारी : कहीं काननचारी को बसाते हैं तो कहीं कोसलपति को बसाना चाहते हैं । वही मम हिय गगन इन्दु इव यनहु : कहते हैं । सिद्धान्त तो यह है कि सगुन उपासक परहित निरत नीति हृद नेम । ते नर प्राण समान मम जिन्हके द्विजपद प्रेम । अतः सगुणोपासना ही ध्येय जानकर मुनिजी के वचन सरकार को प्यारे लगे । प्राण समान प्रिय होने से फिर हृदय से लगाया ।

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही । जो वर माँगहु देउं सो तोही ॥

मुनि कह मैं वर कबहुँ न जाँचा । समुझि न परइ झूठ का साँचा ॥१२॥

अर्थ : हे मुनि । मुझे परम प्रसन्न जानो । जो वर माँगो वही तुम्हे दूँ । मुनि ने कहा कि मैंने कभी वर नहीं माँगा । क्योंकि यह रूढ़ि का साँचा समझ में नहीं आता । अथवा क्या झूठ है क्या सत्य है : यह समझ में नहीं आता ।

व्याख्या : प्रभु की प्रसन्नता अमोघ है और मुनिपर परम प्रसन्न है । अतः कहते हैं कि मुझे परम प्रसन्न जानकर माँगो अर्थात् माँगने में कसर न करो । यह शब्दा मन में न करो कि अमुक वस्तु न मिलेगी । जो तुम्हे अच्छा लगेगा वही तुमको दूँगा । सरकार महादानी हैं । याचक को प्रोत्साहन देते हैं कि थोड़ा न माँगना । यथा : बोले कृपा निधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि । माँगहुँ वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि ।

मुनिजी ने कहा कि वरदान तो मैंने कभी माँगा नहीं । क्योंकि यह ससार रूढ़ि का साँचा है । बस ऐसा ही न जाने कब से चढ़ा आता है । अच्छे बुरे का पता नहीं चलता । सम्भव है कि जिसे मैं अमृत समझता हूँ वह विष हो । यदि झूठ का साँचा पाठ माना जाय तो यह अर्थ करना होगा कि मुझे झूठ और सच का परिज्ञान नहीं । झूठ और सच की पहिचान बिना ब्रह्मज्ञान के होती नहीं । यथा : झूठेहु सत्य जाहि विनु जाने । जिमि भुजग त्रिनु रजु पहिचाने । और मुझे ब्रह्मज्ञान नहीं है । इससे मुझे पहिचान नहीं है । सम्भव है कि कोई मिथ्या वस्तु माँग लें । इसीलिए मैंने कभी वरदान नहीं माँगा । सदा से फलानुसन्धान रहित कर्म करते आये ।

तुम्हहि नीक लागै रघुराई । सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥

अविरल भगति विरति विग्याना । होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥१३॥

अर्थ : हे रघुनाथजी ! जो तुम्हे अच्छा लगे । हे दासों के सुख देनेवाले ! वही मुझे दो । तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और सभी गुण और ज्ञान के निधान हो जाओ ।

व्याख्या : प्रभु माँगने के लिए कहते हैं । अतः अवश्य माँगूँगा । सो हे रघुनाथजी ! आप सर्वज्ञ हैं । आप दासों के सुख देनेवाले हैं और मैं आपका दास हूँ । आप निर्णय कर सकते हैं कि कौन वस्तु मेरे लिए सुखकारक होगी । आप मुझे सुखी करना चाहते हैं : इसलिए जो वर माँगूँ देहु सो तोही कह रहे हूँ । पर मेरी चाह तो यही है जो आपको अच्छी लगे । जो आप न चाहे वह मैं भी नहीं चाहता । सो अपने पसन्द के अनुसार ही मुझे दो ।

प्रभु ने मुनीजी की बात को 'युक्तियुक्त' समझकर स्वयं उनके हितकर पदार्थों का निर्णय किया । अथवा अपने पसन्द के अनुसार बोले कि पाँच बातें हमें पसन्द है : १ अविरल भक्ति २ वैराग्य ३ विज्ञान ४ सकल गुण निधानता तथा ५. ज्ञान निधानता । अतः पाँचों तुम्हे दिया ।

प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥१४॥

अर्थ प्रभुने जो दिया वह वर तो मैंने पा लिया । अब जो मुझे अच्छा लगा सो दीजिये ।

व्याख्या : सरकार के देते ही पाँचों बातें मुनीजी को प्राप्त हो गयी । वे स्वयं अनुभव कर रहे हैं कि अविरल भक्ति विज्ञानादि पाँचों गुण उनमें प्रवेश कर गये । अतः कहते हैं कि सरकार ने जो जो दिया सो सब मुझे मिल गया । अब सब बातें मेरी समझ में आने लगी । फिर भी देखते हैं कि जिस बात की मुझे चाह थी वह परम कल्याणकारी है और उसे सरकार ने नहीं दिया । अतः कहते हैं कि अब मुझे जो अच्छा लगा है उसे दीजिये ।

दो. अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप धन धर राम ।

मम हिय गगन इदु इव, बसहु सदा येह काम ॥११॥

अर्थ : हे प्रभो ! हे रामजी ! कामना यह है कि छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी के सहित मेरे हृदय रूपी आकाश में चन्द्रमा की भाँति निवास कीजिये ।

व्याख्या : परन्तु चाहने में दो बात हो गयी थी । वसतु हृदय मम कानन चारी और जो कोसलपति राजिव नयना । करहु सो राम हृदय मम अयना । अतः इस बार और भी सँभालकर माँगते हैं । रामजी का निवास वन में तो बहुत थोड़े दिनों के लिए है और कोसलपुरी में तो बहुत दिनों तक रहेगा पर सदा तो नहीं रहेगा और चन्द्रमा का निवास आकाश में रहता है । अतः मुनीजी चन्द्रमा की भाँति सरकार को अपने हृदय गगन में सदा के लिए बसाना चाहते हैं । सूर्य की भाँति अकेले नहीं । जैसे चन्द्रमा बुध और रोहिणी के साथ बसते हैं उसी भाँति सरकार भी छोटे भाई लक्ष्मण तथा सीताजी के सहित बसैं । कभी सरकार का

विछोह न हो। इस भाँति मुनिजी ने सदा के लिए तीनों मूर्तियों को हृदय में बसा लिया।

एवमस्तु करि रमानिवासा । हरखि चले कुंभज रिपि पासा ॥
बहुत दिवस गुरु दरसन पाएँ । भए मोहि एहि आश्रम आएँ ॥१॥

अर्थ : एवमस्तु ऐसा वरदान देकर रमानिवास रामजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। गुरुजी का दर्शन पाये और इस आश्रम में आये मुझे बहुत दिन हुए।

व्याख्या : सरकार परम प्रसन्न हैं। अतः स्वयं भी वर दिया और मुनिजी के माँगे हुए वर के लिए ऐसा ही हो वहाँ और एक रूप से उनके हृदय में निवास किया। दूसरे रूप से चले। अगस्त्यजी वसिष्ठजी के भाई हैं। अतः उनके दर्शन के लिए हर्षित होकर चले।

अगस्त्यजी से रावण वध के लिए मन्त्र लेंगे। शरणागत मुनियों के आस का हरण करके उन्हें सुख देंगे। इसलिए रमानिवास कह रहे हैं। यथा . दे भक्ति रमानिवास आणहरण सरन सुखदायक।

गुरुजी के आश्रम में जाने का प्रभु का विचार जानकर सुतीक्ष्णजी ने कहा कि गुरुजी के आश्रम को छोड़कर यहाँ मुझे बहुत दिन हुए और जब से यहाँ आये तब से गुरुजी का दर्शन नहीं किया : इतने सन्निकट होने पर भी गुरुजी का दर्शन न करना शास्त्रविरुद्ध है और उसकी अभिलाषा भी है। फिर भी न जाने का कारण था। बिना सरकार की सङ्ग लिये गुरुजी के पास जा नहीं सकते थे।

अब प्रभु संग जाहु गुरु पाँही । तुम्ह कहूँ नाथ निहोरा नाँही ॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई । लिए सग विहँसे द्वौ भाई ॥२॥

अर्थ : अब प्रभु के साथ गुरुजी के पास चलूँ। हे नाथ ! यह निहोरा आप पर नहीं है। कृपानिधि मुनिजी की चतुराई देखकर उन्हें साथ ले लिया और दोनों भाई विहँसे।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि अब आपके सङ्ग गुरुजी के पास चलूँगा। आपको पहुँचाने नहीं जा रहा हूँ। इसलिए आप पर निहोरा नहीं है। अपने मत्तलब से जा रहा हूँ।

प्रभु कृपानिधि हैं। नयी कृपा करते ही जाते हैं। यथा बिगरी बनावे कृपानिधि की कृपा नई। मुनिजी की चतुराई देखा कि साथ में चलकर मुझे गुरुजी की दक्षिणा रूप में देना चाहते हैं। गुरुजी के पास बिना मेरे साथ न जाने का अर्थ क्या है ? अतः मुनिजी की चतुराई पर दोनों भाई खूब हँसे और साथ ले लिया।

३०. प्रभु अगस्त्यसत्संग

पंथ कहत निज भगति अनूपा । मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा ॥
तुरत सुतीछन गुरु पहाँ गयऊ । करि दडवत कहत अस भयऊ ॥३॥

अर्थ : रास्ते में अपनी अनूप भक्ति का वर्णन करते हुए सुरभूप रामजी मुनिजी के आश्रम पर पहुँच गये। सुतीक्ष्णजी तुरन्त गुरुजी के पास गये और दण्डवत् धरके ऐसा कहने लगे।

व्याख्या : बातचीत करते करते रास्ता कट जाता है। अतः रास्ता चलते बातचीत होती जाती है। यथा : वरनत पथ विविध इतिहासा। विस्वनाथ पहुँचे केलासा। मुनिजी को भक्ति प्रिय है और सरकार को भी वही प्रिय है। इसलिए अनूप भक्ति जो सुख की मूल है उसका वर्णन करते चले। यथा : भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलहइ जो सत होहि अनुकूला। सुरभूप हैं। प्रजा के हित के लिए पहुँचे।

सुतीक्ष्णजी गुरुजी के पास त्वरित गति से आगे बढ़ गये और जाकर दण्डवत् किया। गुरुजी साक्षात् हुए कि गुरु दक्षिणा में रामजी को मिलाने के लिए कहकर गया था। इतने दिनों के बाद आया है। देखें क्या कहता है?

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा ॥

राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही ॥४॥

अर्थ हे नाथ। कोसलाधीश के कुमार जगत् के आधार रामजी छोटे भाई तथा जानकीजी के समेत मिलने आये हैं। हे देव। जिनका आप दिन रात जप करते हैं।

व्याख्या : कोसलाधीश कुमारा कहकर दाशरथि राम अर्थात् अवतार होना द्योतित किया। यथा ते दसरथ कौमल्या रूपा। कोसलपुरी प्रकट नरभूपा। तिनके गृह अवतरिहौ जाई। जगत् आधार से ब्रह्म कहा। यथा एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। आये मिलन से गुरु दक्षिणा की उपस्थिति वही। गुरुजी राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर के उपासक हैं। अतः केवल रामजी के आने की बात सुनकर मनोरथ को पूर्ण न मानते हुए उतने प्रसन्न हुए जितना होना चाहिए था।

सुतीक्ष्णजी की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। तुरन्त समझ गये। अतः कहते हैं : अनुज समेत बैदेही : आये हुए हैं। रात दिन जिसे आपजपा करते हैं : कहकर अभिलाषा की पूर्ति की ओर सङ्केत करते हैं।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि विलोकि लोचन जल छाए ॥

मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिपि अति प्रीति लिये उर लाई ॥५॥

अर्थ : यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरन्त उठकर दौड़े। भगवान् को देखते ही उनकी आँखों में जल भर आया। दोनों भाई मुनिजी के चरणों में गिरे। ऋषिजी ने अत्यन्त प्रेम से हृदय में लगा लिया।

व्याख्या : सुनते ही अगस्त्यजी अति उत्कण्ठा से उठकर दौड़ पड़े। आगे जाकर लेना चाहिए। कही चले न आवें और इस सत्कार से मैं वञ्चित रह जाऊँ

अथवा आश्रम द्वार पर ही कही खड़े न हों। प्रभु को देखा तो सात्त्विक भाव हुआ। आँखों में आनन्दाश्रु छा गया। दृष्टि थोड़ी हो गयी। गुरुजी के सम्बन्ध से दोनों भाइयों ने दण्डवत् किया। अगस्त्यजी बड़े ऊँचे दर्जे के ऋषि हैं। इनके यहाँ साक्षात् शङ्कर भगवान् सत्सङ्ग के लिए आते हैं। सनकादिक आते हैं। यथा : एक बार भेता जुग माहीं। संभु गये कुंभज रिषि पाही। तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनि विज्ञानी। दण्डवत् करते देखकर ऋषिजी ने अत्यन्त प्रीति से हृदय में लगा लिया। अपने सन्तप्त हृदय को शीतल किया।

सादर कुसल पूँछि मुनि ग्यानी। आसन वर बैठारे आनी ॥

पुनि कर बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहि दूजा ॥६॥

अर्थ : ज्ञानी मुनि ने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उन्हें लाकर आसन पर बिठलाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके बोले कि मेरे समान दूसरा कोई भाग्यवान् नहीं है।

व्याख्या : मुनि ज्ञानी कहकर उनकी भक्ति को अहैतुकी कहा। यथा : आत्मारामाश्च मुनयो निर्गन्था अप्युरक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्यम्भूतगुणो हरिः। आदर से विनय पूछना मत्कार का प्रथम अङ्ग है। तत्पश्चात् आश्रम में ले गये। आसन दिया। सरकार को उनके सामने आसन पर बैठाने में सङ्कोच है। अतः मुनिजी ने आग्रहपूर्वक बिठाया। भगवती गायत्रीरूपा ब्राह्मणों की उपास्य देवता हैं। अतः उसके उपासना के विरुद्ध पड़ने की आशङ्का से प्रणाम नहीं करती। केवल बड़ों की आज्ञा से वसिष्ठजी को प्रणाम करती हैं। यथा : सास ससुर गुरु सेवा करेहू।

पञ्चोपचार, षोडशोपचार, सहस्रोपचार पूजा की जाती है। यहाँ कोई नियम नहीं। जितने प्रकार की पूजाएँ बन पड़ीं सभी की गयी। तत्पश्चात् अपने भाग्य की प्रशंसा की। साक्षात् प्रभु के आगमन से बढ़कर और भाग्य क्या होगा। अथवा सरकार की प्राप्ति से भाग्यवान् तो और लोग भी हुए। पर गुरुदक्षिणा में सरकार को मुनिजी ने ही पाया। इसलिए मो सम भाग्यवंत नहि दूजा कह रहे हैं।

जहँ लगि रहे अपर मुनि वृंदा। हरखे सब विलोकि सुख कंदा ॥७॥

अर्थ : जितने मुनि थे वे सब सुख के बादल रामजी को देखकर हर्षित हुए।

व्याख्या : अपर मुनिवृन्द श्रीगम मन्त्र की व्याख्या सुन रहे थे। जिस समय प्रभु आये उस समय अगस्त्यजी श्रीराम मन्त्र की व्याख्या कर रहे थे। व्याख्या समाप्त होते न होते श्रीरामजी की प्राप्ति हो गयी। आनन्द को चर्पा हो गयी। यथा : भूसुर ससि नव वृंद बलाहक हैं। अतः मुनि लोग नव शस्य की भाँति आनन्द कन्द की प्राप्ति से हर्षित हो उठे।

दो. मुनि समूह सह बैठे, सनमुख सब की ओर।

सरद इंदु तन चितवत, मानहु निकर त्वकोर ॥१२॥

अर्थ : मुनि समूह के बीच में रामजी सबके सम्मुख बैठे । जैसे चकोर का समूह शरत्चन्द्र की ओर टकटकी लगाये देख रहा हो ।

व्याख्या : मुनिमण्डली के मध्य में बैठे हैं । और किसी की ओर पीठ नहीं है । सब अपने सामने ही देख रहे हैं । मुनिलोग बड़े प्रेमी हैं । बड़े आनन्द से दर्शन कर रहे हैं । इसलिए चकोर निकर से उपमा दी । रामजी बड़े सुन्दर हैं । इसलिए उन्हें शरत्चन्द्र से उपमित किया । चकोरो को चन्द्रमा का दर्शन बड़ा प्रिय है । किं पुनः शरत्चन्द्र के दर्शन से तो वे अघाते ही नहीं । ऐसी ही मुनियों की दशा हुई । चन्द्रमा का पृष्ठ भाग किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता । क्योंकि चन्द्रमा अपनी घुरी पर नहीं घूमते । सरकार का इच्छामय रूप है । अतः सङ्कल्पानुसार दर्शन हो रहा है ।

तब रघुवीर कहा मुनि पाँही । तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाँही ॥

तुम्ह जानहु जेहि कारन आयेउँ । ताते तात न कहि समझाएउँ ॥१॥

अर्थ : तब रघुवीर ने मुनिजी से कहा हे प्रभो । आपसे कोई छिपाव नहीं है । मैं जिस कारण से आया हूँ आप जानते हैं । इससे हे तात । मैंने समझाकर नहीं कहा ।

व्याख्या : जब पूजनोपरान्त मुनिजी कृतकृत्य होकर बैठे तब कहा । रघुवीर हे : अपनी प्रतिज्ञा निसिचर हीन करी महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह : पूरी किया चाहते हैं । अगस्त्यजी को सरकार प्रभु कहते हैं । स्वामी सेवक का नाता जोड़े बैठे हैं । स्वामी से छिपाव नहीं करना चाहिए । यथा : स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी । अतः कहते हैं कि आप से कोई छिपाव नहीं है । भावार्थ यह कि औरों से छिपाव है । यथा : गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु ।

दूसरी बात यह कि जो भेद जानता हो उससे क्या दुराव है । लोग तो यही जानते हैं कि कैकेयी के वरदान के कारण पिता ने वन दिया । इसीलिए आये हैं । पर मुख्य कारण आप जानते हैं । तुलसी जो गृह रहों मातु हित को सुरधेनु विप्र भय टारै । गी । वाल्मीकिजी से थोड़ा दुराव किया था । सो उन्होंने सारा भेद ही खोल दिया । यथा : श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी । जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की । जो सहस सीस अहीस महिघर लखन सचराचर धनी । सुरकाज धरि नरराज तन चले दलन खल निसिचर अनी । अतः कहते हैं कि आप जानते हैं विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है ।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारीं मुनिद्रोही ॥

मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी । पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो । अब मुझे ऐसा मन्त्र दीजिये जिस प्रकार से मुनिद्रोही को मैं मारूँ । प्रभु की वाणी सुनकर मुनिजी मुसकुराये : बोले कि मुझसे नाथ । क्या समझकर पूछ रहे हैं ।

व्याख्या : भाव यह कि प्रतिज्ञा तो कर दिया कि निसिचर हीन करौ महि पर तब से एक निसिचर भी हाथ न लगा। विराध वध से सब सावधान हो गये हैं। सामना बचा जाते हैं। अब ऐसा मन्त्र चाहिए कि जिसमें निसिचर सामने आवें और उन्हें मार सकें। यहाँ मन्त्र शब्द का अर्थ सम्मति है। यथा : मय न यह लछिमन मन भावा।

रामजी मुनिजी को प्रभु कहते हैं। और मुनिजी रामजी को प्रभु कहते हैं। परस्पर एक दूसरे में स्वामी सेवक भाव मान रहे हैं। मुनिजी मुसकुराये कि सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होकर कैसी अल्पज्ञ तथा अल्प सामर्थ्य की सी वाणी बोल रहे हैं। अतः कहते हैं कि मुझे क्या समझकर पूछा। नियम यह है कि अपने अधिक जानकार से बात पूछी जाती है। क्या मैं आपके पूछने योग्य हूँ जो आप पूछ रहे हैं। प्रभु के स्थान पूछने पर वाल्मीकिजीने भी ऐसा ही उत्तर दिया था कि जहँ न होउ तहँ देउ कहि तुम्हहि बतावों ठाउँ। भरद्वाजजी से रास्ता पूछा तो उन्होंने कहा : सुगम सकल मग तुम कहँ अहही। ऐसा ही उत्तर अगस्त्यजी दे रहे हैं। तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी। जानौ महिमा कछुक तुम्हारी ॥ ऊमरि तरु विसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥३॥

अर्थ : हे पाप नाशक। तुम्हारे ही भजन के प्रभाव से तुम्हारी कुछ महिमा मैं जानता हूँ। तुम्हारी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है। जिसमें ब्रह्माण्डों के अनेक समूह फलरूप से लगे हुए हैं।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि मेरी जानकारी इतनी ही है कि आपकी महिमा का प्रादेशमात्र जानता हूँ। इतना ज्ञान भी आपके भजन से ही हुआ। यथा : जाना चहहि गूढ गति जेऊ। नाम जौह जपि जानहि तेऊ। यही तो मेरी जानकारी है। उसे भी सुन लीजिये।

मुनिजी ने प्रभु की माया की उपमा गूलर के वृक्ष से दिया। इससे अच्छी उपमा दूसरी मिलनी दुर्लभ है। अब साधारण धर्म कहते हैं। गूलर के वृक्ष में तमाम फलों के गुच्छे लगते हैं। उसी भाँति मायावृक्ष में ब्रह्माण्ड निकाय लगे हुए हैं। यथा : रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मांड।

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहि न जानहि आना ॥ ते फल भच्छक कठिन कराला। तब भय डरत सदा सोउ काला ॥४॥

अर्थ : ये चराचर जीव उन फलों के जन्तु के समान हैं। जो उनके भीतर बसते हैं। और दूसरा कुछ भी नहीं जानते। उन फलों का खानेवाला काल है। वह कठिन कराल है। पर आपके डर से वह भक्त सदा डरा करता है।

व्याख्या : जिस भाँति गूलर के फल के भीतर जन्तु बसते हैं उसी भाँति ब्रह्माण्ड के भीतर चराचर जीव बसते हैं। न उन जन्तुओं को गूलर के फल के बाहर का कोई वृत्तान्त ज्ञात है और न चराचर जीवों को अपने ब्रह्माण्ड के बाहर का

कुछ पता है। मुनिजी कहते हैं कि मैंने आपके भजन के प्रभाव से इतना ही जान पाया है कि यही ब्रह्माण्ड सब कुछ नहीं है। ऐसे ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मायावृक्ष में गूलर के फल के गुच्छों की भाँति गुथे हुए हैं।

वह मायावृक्ष मानो काल के लिए ही लगा हुआ है। गूलर के फल की भाँति ही काल भी एक ब्रह्माण्ड का एक ही ग्रास करता है। लोग गूलर के फल को फोड़कर उसमें के जीवों को पहिले उड़ा देते हैं। तब उसे खाते हैं। पर काल ब्रह्माण्डों को जीवों के सहित खा जाते हैं। इसलिए कठिन कराल है। इस भाँति सब ब्रह्माण्डों को खाया करता है। गूलर वृक्ष की ही भाँति मायावृक्ष में नये नये ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ करते हैं। और काल उनका कलेवा किया करता है। वह ऐसा कराल है कि उसका पेट भरता नहीं। केवल कलेवा से किसी का काम नहीं चलता। यथा सुर नर असुर नाग मुनि देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा और प्रभु तो काल व्याल के भी भक्षक साक्षात् गरुड रूप हैं। अपने अन्ततक से सभी डरते हैं। अतः वह काल भी आपके भय से भयभीत रहता है। भाव यह है कि उस काल का भी अन्त है। देशत कालत वस्तुतः अपरिच्छिन्न केवल आप हैं। आप ही कालत्रयातीत हैं।

ते तुम्ह सकल लोकपति साँई। पूछेहु मोहि मनुज की नाई ॥

यह वर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥५॥

अर्थ वे ही आप सब लोगों के स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्य की भाँति पूछ रहे हैं। हे कृपानिकेत। मैं तो यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदय में सीताजी तथा छोटे भाई के सहित सदा निवास कीजिये।

व्याख्या जैसी बात आपने पूछा ऐसी बातें तो मनुष्य पूछा करते हैं। आप तो मनुष्य नहीं हैं। आप तो काल के भी काल अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं। आप स्वामी हैं। आपके ऐसा कहने से अस्मदादिक को मोह हो सकता है। यथा प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा। अतः मोह के भय से तुरन्त मुनिजी ने वरदान माँगा। अनुज श्री सहित बसने से फिर मोह का भय न होगा। अतः मेरे हृदय में सीता और अनुज सहित बसिये। यथा तब लगि हृदय बसत खलना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। घरे चाप सायक कटि माथा। तथा भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू गुरु शिष्य की समान रुचि है। सुतीक्ष्णजी ने भी हृदय में बसाने के लिए वरदान माँगा था।

अविरल भगति विरति सतसगा। चरन सरोरुह प्रीति अभगा ॥

जद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता। अनुभव गम्य भजहि जेहि सता ॥६॥

अर्थ और प्रगाढ़ भक्ति वैराग्य सत्संग तथा चरण कमलों में अटूट प्रेम

मांगता हैं। यद्यपि जिस अखण्ड और अनन्त ब्रह्म को सन्त भजते हैं वे अही जाने जाते हैं।

व्याख्या : अन्तराय रहित भक्ति को अविरल भक्ति कहते हैं। यह सब का फल है। यथा : सबकर फल हरि भगति भवानी। वैराग्य सब धर्मों का फल यथा : तेहिकर फल पुनि विषय विरागा। सत्सङ्ग फल सिद्धि है। यथा : सतर मुद भगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। इस भाँति मुनिजी ने फल हो मांगा। फिर भी अटूट प्रेम के लिए प्रार्थना करते हैं। प्रेम का प्रवाह धारावत् अविच्छिन्न होना चाहिए। बीच में भङ्ग न हो। भजन तो वैरभाव से होता है। यथा : वैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर : पर मुनिजी को वैसा भ पसन्द नहीं। क्योंकि उससे जाड़े में गङ्गास्नान की भाँति इस लोक में आनन्द न मिलता। अतः प्रेम भाव से 'भजन चाहते हैं। गरमी में गङ्गास्नान की भाँति भाव से भजन करने में इस लोक और परलोक दोनों में सुख है अथवा अविरल भक्ति तो निर्गुण रूप की भी होती है। अतः चरण सरोरुह प्रीति अभङ्गा से बा स्पष्ट कर दिया कि सगुण रूप की भक्ति मुनिजी चाहते हैं।

मुनिजी ने दोषापनयन के लिए सरकार का हृदय में निवास मांगा। अगुणाधान के लिए अविरल भक्ति आदि मांग रहे हैं।

अब सगुण भक्ति माँगने का कारण कहते हैं। यद्यपि निर्गुण रूप से प्रभु ब्रह्म है। अत्यन्त बृहत् अर्थात् व्यापक है। वस्तुतः अपरिच्छिन्न है। अखण्ड होने से देशतः अपरिच्छिन्न है। अनन्त होने से कालतः अपरिच्छिन्न है। अनुभवगम्य है अर्थात् स्वसंवेद्य है। परम अधिकारी सन्त लोग उनका भजन करते हैं। यथा : मोहि परम अधिकारी जानी। लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा : और यही परमार्थ रूप है।

अस तव रूप बखानी जानी। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौ ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। ताते मोहि पूंछेहु रघुराई ॥७॥

अर्थ : ऐसे रूप का मैं वर्णन करता हूँ और जानता हूँ। फिर भी लौट लौटकर सगुण ब्रह्म से ही रति मानता हूँ। आप सदा से ही दासों को बड़ाई देते आये हैं। इसीलिए हे रघुनाथजी। आपने मुझसे पूछा है।

व्याख्या : सरकार के इस परमार्थ रूप का मैं वर्णन भी किया करता हूँ। ऐसा कहने पर भी मुनिजी कहते हैं कि रूप को मैं जानता हूँ। भाव यह कि वर्णन तो परोक्ष ज्ञानवाले भी किया करते हैं। पर उन्हें अनुभव नहीं है और वह रूप अनुभवगम्य है। मुनिजी का कहना है कि मुझे अनुभव भी है। अर्थात् अपरोक्ष ज्ञान भी है। फिर भी उस अनुभव से बारबार हटकर सगुण रूप में प्रीति करता हूँ। यथा : मुनि गुन गान समाधि विसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी : अतः समाधि छोड़कर सगुण ब्रह्म में प्रीति करता हूँ। क्योंकि प्रभु में गुण ही ऐसे हैं।

यह स्तुति उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमें दो तारे चमकते हैं सगुण और निर्गुण। आकार शय्या का सा है। जिस भाँति दिनभर घूम फिरकर मनुष्य शय्या में ही विश्राम पाता है इसी भाँति निराधार निर्गुण में घूम घामकर शय्या की भाँति सगुण में ही रति होती है। यथा अस तव रूप बसानौ जानी। फिर फिर सगुण ब्रह्म रति मानौ इस स्तुति की फलश्रुति में ग्रन्थकार ने कुम्भज शब्द रखकर स्पष्ट कर दिया कि यह अगस्त्यजी की स्तुति है। उन्हीं की भाँति अपार लोभसमुद्र को सोख जाती है। यथा कुम्भज लोभ उर्ध्व अपार के। जिसे यह भावना हो गयी कि इस ब्रह्माण्ड में हम गूलर फल के कीट की भाँति रहते हैं : कुछ जानते नहीं उसमें लोभ की भावना रह नहीं सकती।

मुनिजी के वरदान माँगने पर सरकार ने एवमस्तु नहीं कहा। क्योंकि उन्हें बड़ा मान लिया है पर दे दिया। मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि वरदान मिल गया। अब जो मन्त्र पूछा गया था उसके विषय में कहते हैं कि मैं दास हूँ। प्रभु की प्रीति दास पर अधिक है। अतः उन्हें बड़ाई देते हैं। नहीं तो आपके लिए अज्ञेय क्या है? प्रभु के पूछने पर हठात् गुरु की भाँति उपदेश करने बैठना घृष्टता है और कुछ न कहना आज्ञा भङ्ग है। अतः भूमिकापूर्वक उत्तर देते हैं।

३१ दण्डक वन की पावनता

हे प्रभु परम मनोहर ठाँऊ। पावन पञ्चवटी तेहि नाँऊ ॥
दण्डक वन पुनीत प्रभु करहु। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहु ॥८॥

अर्थ हे प्रभो! एक परम मनोहर स्थान है। पवित्र पञ्चवटी उसका नाम है। हे प्रभो! आप दण्डक वन को पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि के उग्र शाप को दूर कीजिये।

व्याख्या अब अपनी सम्मति कहते हैं कि दण्डक वन में एक स्थान है जिसे पञ्चवटी कहते हैं। वह परम मनोहर है। अश्वत्थो बिल्ववृक्षश्चवटो धात्री अशोकम्। वटीपञ्चकमित्युक्तं स्थापयेत् पञ्चदिक्षु च। वहाँ पाँच दिशाओं में पञ्चवट स्थापित हैं। पीपल, बेल, बट, आँवला और अशोक। उसका नाम पवित्र है। वह स्थान तो भृगुमुनि के शाप से अपवित्र हो चुका है वह दण्डक राजा का राज्य था। उसने मुनिपुत्री के साथ बलात्कार किया। इस पर मुनिजी ने दारुण शाप दिया। वह राज्य नष्ट होकर वन हो गया। वहाँ राक्षस रहते हैं। मुनि नहीं रह सकते। उसको शाप विनिर्मुक्त करने में आप ही समर्थ हैं। अर्थात् वहाँ आपको राक्षस मिलेंगे। वह स्थान बड़ा रमणीय है। आपके जाने से शाप के कारण जो अपवित्रता आगयी है राक्षसों का निवासस्थल हो गया है वह अपवित्रता दूर हो जायगी।

बास करहु तहाँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥

चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहि पञ्चवटी नियराई ॥९॥

अर्थ : हे रघुकुल के राजा ! आप वही वास कीजिये और सब मुनियों पर दया कीजिये । मुनिजी की आज्ञा पाकर रामजी वहाँ से तुरन्त ही चल दिये और पञ्चवटी के सन्निकट पहुँच गये ।

व्याख्या : आपके निवास योग्य वह स्थल है । वही आप निवास कीजिये । आप रघुकुल के राजा हैं । आपको दुष्टों को दण्ड देने का अधिकार और सामर्थ्य है । मुनिजी महात्मा हैं । राक्षसों का वध करना न कहकर मुनियों : पर दया करने को कहते हैं । मुनियों पर दया करके ही प्रभु प्रतिज्ञा कर चुके हैं : निसिचर होत करों महि । उस प्रतिज्ञा की पूर्ति वही निवास करने से होगी । दुष्टों का निग्रह ही सज्जनों पर अनुग्रह करना है । यही बड़ी भारी अहिंसा है और दुष्टों पर अनुग्रह ही बड़ी भारी हिंसा है । इस अहिंसा के सिद्धान्त के स्थापना के लिए ही अवतार होता है । यथा : परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।

आज्ञा पाने से ही आज्ञा माँगना अर्थतः सिद्ध है । प्रतिज्ञा पूर्ति की उत्कट इच्छा है । अतः तुरन्त चल दिये । इसलिए केवल रामजी का ही चलना लिखते हैं । क्योंकि केवल उन्हो ने प्रतिज्ञा की थी । वहाँ से पञ्चवटी दो योजन पर थी । अतः उसी दिन उसके निकट पहुँच गये ।

३२. गीध मैत्री प्रसङ्ग

दो. गीधराज से भेंट भइ, बहु विधि प्रीति बढाइ ।

गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छाइ ॥१३.७॥.

३३. पञ्चवटी निवास मुनिवास भजन प्रसङ्ग

अर्थ : वहाँ गीधराज से भेंट हुई । उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु गोदावरी नदी के निकट पत्ते की कुटी बनाकर रहने लगे ।

व्याख्या : गीधराज का नाम जटायु था । वे वहाँ रहते थे । उनसे भेंट हुई । बड़े पुराने परिचित निकले । महाराज दशरथ की उनकी मैत्री थी । इस भेंट से वह प्रीति और बढ़ी । उन्होंने कहा कि जिस समय आप दोनों भाई आखेट के लिए जायेंगे उस समय मैं जानकीजी की रक्षा करूँगा । एक सहायक मिलने के नाते से भी प्रीति बढ़ी । इसलिए कवि लिखते हैं : बहु विधि प्रीति बढाइ । प्रभु समय हैं : गोदावरी नाम की पुण्य नदी के निकट पणकुटी बनाकर ठहर गये । नही तो वहाँ राक्षसों का इतना भय था कि देवता लोग कुटी बनाने नहीं आये । जैसा कि चित्रकूट में किया था या प्रवर्पण गिरि पर करेंगे । यथा : प्रथमहि देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ । राम कृपा निधि कछु दिन वास करहिगे आइ ।

जब ते राम कीन्ह तहँ वासा । सुखी भये मुनि वीती वासा ॥

गिरि वन नदी ताल छवि छाए । दिन दिन प्रति अति होहि सुहाए ॥१॥

अर्थ : जब से रामजी ने वहाँ निवास किया मुनि लोग सुखी हो गये । उनका डर जाता रहा । पहाड़ वन नदी ताल सब शोभा से छा गये । नित्य प्रति वे अधिक सुहावने होने लगे ।

व्याख्या : अगस्त्यजी ने कहा था । वास करहु तहँ रघुकुल राया । कीजिअ सकल मुनिन्ह पर दाया । उसी का साफल्य दिखला रहे हैं । दया यह हुई कि वे अभय हो गये । सूर्पणखा रावण से कहेगी कि जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन । अभय भये विचरत मुनि कानन । दण्डकारण्य के बाहर रहनेवाले भी श्रस्त रहते थे । अब तो सभी मुनि निर्भय आनन्द से वन में घूमने लगे ।

अब मुनिजी के दूसरे वचन का साफल्य दिखलाते हैं । दूसरा वचन यह था कि दंडक वन पुनीत प्रभु करहु । सो दण्डक वन पुनीत हो गया । परम मनोहर होने पर भी भयप्रद था । इससे उसकी मनोहरता दबी हुई थी । अब भय के हट जाने से निर्दोष हो गया । अतः कहते हैं कि शोभा छा गयी । इतना ही नहीं प्रभु के निवास के माहात्म्य से शोभा नित्य बढ़ने लगी । गिरि, वन, नदी और ताल ये ही प्राकृत दृश्य हैं । दण्डक वन में ये सब थे । इनकी शोभा नित्य नवीन मालूम होने लगी ।

खग मृग वृद अनदित रहही । मधुप मधुर गुजत छवि लहही ॥
सो वन वरनि न सक अहिराजा । जहाँ प्रकट रघुवीर विराजा ॥२॥

अर्थ पशु पक्षी सब आनन्दित होकर रहने लगे और मधुर गुजार करते भौरे शोभा पा रहे थे । जहाँ प्रत्यक्ष रघुवीर विराजमान है उस वन का स्वयं शेषजी वर्णन नहीं कर सकते ।

व्याख्या . प्रभु के निवास से चित्रकूट की भाँति यहाँ भी सब जीवों ने सहज वैर छोड़ दिया और उस वन में एक दूसरे से प्रेम करने लगे । यथा : सहज वैर सब जीवन्ह त्यागा । गिरिपर सकल करहि अनुरागा । अतः कहते हैं : खग मृग वृद अनदित रहही । वन के पेड़ मृदा फूलने फलने लगे । यथा . फूलहि फलहि सदा तरु कानन । फल फूलों की सरसता कहते हैं कि भौरे गूँज रहे थे । फल फूलों की शोभा भौरो के गूँजने से हो जाती है । अतः छवि लहही कह रहे हैं । वन में भी छवि है और वनवासी जीवों में भी छवि है ।

सभी वर्णन करनेवालों में शेषजी को बड़ा सुभोता है । फणमण्डल से मण्डित हाने से सब ओर एक साथ देखते हैं और वर्णन करने का साधन भी अत्यन्त अधिक है । सहस्रमुख हैं और एक एक मुख में दो दो जिह्वाएँ हैं । सब ओर से सबका वर्णन अनेक भाँति से एक साथ कर सकते हैं । पर यहाँ तो प्रभु के आने से क्षण क्षण नित्य नवीन शोभा बढ़ रही है । वर्णन करते ही करते शोभा आगे बढ़ जाती है । तब कैसे वर्णन कर सकें ? इससे दण्डक वन का केवल दोषापनयन नहीं बहा । गुणाधान भी कहा ।

३४. लक्ष्मणोपदेश प्रसंग

एक बार प्रभु सुख आसीना । लछिमन वचन कहे छलहीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साँई । मैं पूछौ निज प्रभु की नाँई ॥३॥

अर्थ : एक बार प्रभु सुख से बैठे थे । उस समय लक्ष्मणजी ने छलहीन वचन कहे । हे सुर नर मुनि तथा चराचर के स्वामी । मैं अपने स्वामी की भाँति पूछता हूँ ।

व्याख्या : एकवार : भाव यह कि देश पहिले कह चुके है । सो बन वरनि न सक अहिराजा । जहाँ प्रकट रघुवीर विराजा । अर्थात् दण्डक वन का यह वृत्तान्त है । समय के लिए कह रहे हैं कि दिन निश्चित नहीं । पर अगस्त्यजी से मिलकर पञ्चवटी में ठहरने के बाद और सूर्यपणखा के आगमन के पहिले ही किसी दिन ।

प्रभु कर्तुंमकर्तुंमन्यथा कर्तुं समर्थ. प्रभुः अर्थात् समर्थ हैं । दण्डक वन का उग्र शाप हरण करके उसे पवित्र करके विराजमान हैं । यथा . अगस्त्य वचन : दण्डक वन पुनीत प्रभु करहू । उग्र थाप मुनिवर कर हरहूँ ।

सुख आसीना : भाव यह कि नित्य क्रिया करके सावकाश बैठे हैं । एकान्त है । जनकनन्दनी भी वहाँ पर नहीं है । ऐसा हो समय प्रश्न के लिए उपयुक्त है । सुखासन से बैठे हैं । योगशास्त्र का भी यही अनुशासन है कि स्थिरसुखमासनम् ।

लछिमन : बचपन से ही प्रभु के चरणों में प्रेम करनेवाले है । यथा : वारेहि ते निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी । अर्थात् भक्त भी और सखा भी ।

छलहीन वचन कहे : यहाँ अहङ्कार का अनुवेध ही छल है । अन्याय युक्त प्रश्न करनेवाले का उत्तर देना निषिद्ध है । यथा : नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः । यहाँ छलहीन शब्द से सच्ची जिज्ञासा दिखलायी । सुनी चहूँ प्रभु मुख के बानी । जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी । ६

सुरनर मुनि सचराचर साँई . भाव यह कि आप सर्वेश्वर हैं । सबके गुरु हैं । स सर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात् । जगद्गुरु च शाश्वत । तुरीयमेव केवल । इत्यादि ।

मैं पूछौ . भाव यह कि मैं तो आपका निज दास हूँ । यथा : गुरु पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू । जहँ लगि जगत् सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजगाई । मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबधु उर अतरजामी ।

निज प्रभु की नाँई : भाव यह कि जीव और ईश्वर में अनेक सम्बन्ध है । यथा : मोहि तोहि नातो अनेक मानिये जो भावे । सो मुझे तो आप की ही गति है । दूसरे की आशा नहीं । अतः निज प्रभु की नाँई पूछता हूँ । यथा . पुनि मोहि तिन्हते प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ।

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौ चरन रज सेवा ॥
कहहु ग्यान विराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥४॥

अर्थ : हे देव ! मुझे वही समझाकर कहो । जिससे सब त्याग करके चरणरज की सेवा करूँ । मुझे ज्ञान विराग और माया बतलाओ और वह भक्ति बतलाओ जिससे दया करते हो ।

व्याख्या देवा श्रीरामजी इष्टदेव हैं । इसलिए देव सम्बोधन दिया । जिसकी सेवा करनी है उसीसे सेवा की विधि जान लेने से भ्रम को स्थान नहीं रह जाता । सो सेव्य होने से उनका देव शब्द से सम्बोधन किया गया ।

सोइ मोहि समुझाइ कहो यद्यपि छद्मा प्रश्नों के लिए समझाकर कहने के लिए प्रार्थना है । तथापि सोइ शब्द के प्रयोग से अन्तिम प्रश्न पर अधिक जोर मालूम पड़ता है । क्योंकि सिद्धान्त तो थोड़े शब्दोंमें ही कहा जा सकता है । परन्तु साधन के बिना विस्तारपूर्वक कहे काम नहीं चलता । यह प्रश्न साधन विषयक है ।

सब तजि भाव यह कि आप सुर नर मुनि सचराचर साईं है । आपका सभी भजन करते हैं । रागी पुरुष को श्री चरणों में अति अनुराग नहीं हो सकता । वह तो विरागी को ही हो सकता है । यथा जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगत मोह मुनि वृदा । दूसरा भाव यह है कि बिना सब कुछ तजे रात दिन भजन नहीं हो सकता । यथा अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौ दिनराती ।

चरन रज सेवा करौं लक्ष्मणजी का बड़ा प्रेम श्री चरणों में है । यथा चापत चरन लपन उर लाये । समय सप्रेम परम सचुपाये । वह प्रेम पिपासा बढ़ती ही जाती है । अतः चरण रज सेवा को ही लक्ष्मणजी पूछते हैं । यहाँ पर चरण रज सेवा कहकर अपना आर्ताधिकारी होना सूचित किया ।

ग्यान दूसरा प्रश्न ज्ञान विषयक है । क्योंकि कहाँ सत् मुनि वेद पुराणा । नहि कुछ दुर्लभ ग्यान समाना । तथा ग्यान मोच्छ प्रद वेद बखाना । विषय सम्बन्धी ज्ञान तो सभी को है । पर जानने योग्य ज्ञान कौन सा है ?

विराग तीसरा प्रश्न विराग विषयक है । क्योंकि यही विवेक राजा का मन्त्री है । यथा सचिव विराग विवेक नरेसू । इसके बिना सन्यासी भी उपहास योग्य समझा जाता है । यथा सब नृप भये जोग उपहासो । जैसे विन विराग सन्यासी । वह विराग क्या है ?

अरु माया यद्यपि माया में ही ससार पड़ा हुआ है । तथापि उसके जानने की आवश्यकता है । क्योंकि इसके चरित्र को कोई लख नहीं पाता । और इसी के वश में पड़ा हुआ ससार नाच रहा है । यथा जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा । यह माया बिना रामजी की कृपा के नहीं छूटती । लक्ष्मणजी इसका भी परिचय जानना चाहते हैं । यह चौथा प्रश्न है ।

कहहु सो भगति : भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से है। एक तो भावव्युत्पत्ति है। यथा : भजनं अन्तःकरणस्य भगवदाकारता भक्तिः। भजन अर्थात् अन्तःकरण की भगवदाकारता भक्ति है और दूसरे में करणव्युत्पत्ति होती है। यथा : भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरण क्रियते अनया। जिससे सेवन अर्थात् भगवदाकार अन्तःकरण किया जाता है उसे भक्ति कहते हैं। पहिली को फलरूपा और दूसरी को साधनरूपा भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्यशतसूत्री तथा नारद-भक्तिसूत्र में परम प्रेम को भक्ति माना है। यथा सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे। शा सू.। सा वस्मै परमप्रेमरूपा। परन्तु यह सात्त्विकी परिभाषा है। इसके अन्तर्गत राजस और तामस भक्त नहीं आ सकते। भक्तिरसायन में दी हुई परिभाषा में सभी प्रकार के भक्तों का समावेश है। यथा - द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकता गता। सर्वेशे या मनोवृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते। भगवत् गुणश्रवण से जिसका चित्त द्रवीभूत होता है उसकी चित्तवृत्ति यदि परमेश्वर में धारावाहिकता को प्राप्त हो तो उसे भक्ति कहते हैं।

कहहु जेहि दाया भजत कृपा करिहैं रघुराई। सो रघुराई सात्त्विकी भक्ति होने पर तो कृपा वरते ही हैं। राजसी और तामसी भक्ति होने पर भी करते हैं। यथा : उमा राम मृदु चित करुणाकर। वैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिअ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।

दो. ईश्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ।

जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ ॥१४.८॥

अर्थ : प्रभो ! ईश्वर और जीव में क्या भेद है। यह सब समझाकर कहिए। जिसमें आपके चरणों में प्रेम होकर शोक मोह तथा भ्रम दूर हो।

व्याख्या : ईश्वर जीव भेद - भाव यह कि ईश्वर भी चेतन है और जीव भी चेतन है। दोनों कर्म करते हैं। दोनों माया से सम्बद्ध हैं। दोनों अनादि हैं। फिर दोनों में अन्तर क्या ?

प्रभु : भाव यह कि पहिले ही कह आये हैं कि मैं पूछूँ निज प्रभु की नाईं। अतः इस लछिमन उपदेश प्रकरण भर में सरकार के लिए प्रायेण प्रभु शब्द का ही प्रयोग है। यथा : एक बार प्रभु सुख आसीना। मैं पूछूँ निज प्रभु की नाईं। ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। तथा लछिमन प्रभु चरनहि सिरनावा।

सकल कहहु समुझाइ : भाव यह कि छोड़ो प्रश्न समझाकर कहिए। यहाँ इन प्रश्नों का उत्तर केवल व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ अथवा परिभाषा मात्र से हो सकता है। अतः प्रार्थना की जा रही है कि समझाकर कहिए। समझाने से ही भ्रान्ति दूर होती है।

जाते होइ चरन रति : अपना लक्ष्य भी कहे देते हैं कि मेरा लक्ष्य भक्ति है : मुक्ति नहीं। जिसका लक्ष्य मुक्ति है उसके समझाने का मार्ग दूसरा है। जैसा कि

उत्तरकाण्ड के ज्ञान दीपक प्रसङ्ग में विस्तृत रूप से कहा गया है और भक्ति के समझाने का दूसरा ही मार्ग है। जो इस प्रकरण में कहा जायगा।

सोक मोह भ्रम जाई : इष्टवियोग जन्य दुःख से शोक होता है। मोह अज्ञान को कहते हैं। भ्रम अन्यथा ज्ञान कहते हैं। इसके बिना हटे भक्ति नहीं होती। यथा : होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा। इससे यह भी दिखला दिया कि ये ही प्रश्न सब प्रश्नों के मूल हैं। इनका अभ्रान्त उत्तर यदि मन में बैठ जाय तो शोक माह भय निवृत्तिपूर्वक भक्ति प्राप्ति का अधिकार होता है।

थोरेह मँह सब कहहुँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चितु लाई ॥
मै अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्है जीव निकाया ॥१॥

अर्थ : हे तात। मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहता हूँ। तुम बुद्धि मन और चित्त लगाकर सुनो। मैं मेरा तैं और तेरा यही माया है। जिसने जीव समूह को बश कर रक्खा है।

व्याख्या : थोरेह मँह सब कहहुँ बुझाई : यह वक्ता का पाण्डित्य है कि सब कुछ समझाकर कहे और विस्तार न होने पावे। कितना काम तो उत्तर के क्रम से निकाल दिया। यहाँ देखेंगे कि प्रश्न के क्रम से उत्तर का क्रम भिन्न है। मोहि समझाइ कहौं सोइ देवा। सब तजि करीं चरन रज सेवा : ऐसा प्रश्न किया। पर सरकार ने इस प्रश्न का उत्तर पहिले न देकर चौथे प्रश्न का उत्तर : मै अरु मोर तोर तैं माया कहकर देते हैं। क्योंकि भूमौ पतित पादना भूमिरेव पर बलम् जो जमीन पर गिरा है वह उसी को टेककर उठेगा। सब लोग माया ही में पड़े हैं। अतः पहिले माया को ही समझना उचित समझा। उसके समझ लेने पर शेष का समझना कष्टसाध्य नहीं रह जाता। तात : यह प्यार का शब्द है। बड़े छोटे सबके लिये आता है। यथा : तात तात बिनु बात हमारी। तात सुनावहु मोहि निदानू। इत्यादि।

सुनहु मन मति चितु लाई : सकल्पविकल्पात्मक मन है। निश्चयात्मिका बुद्धि होती है। चित्त धारण करता है। परन्तु अन्तःकरण चार हैं : मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार। सो तीन को लगाकर सुनने को कहते हैं। अहङ्कार का निषेध उसका नाम न लेकर करते हैं। अहङ्कार से जिज्ञासा की पात्रता नहीं रह जाती। और एकाग्रता के लिए मन बुद्धि चित्त को लगा देने की अनिवार्य आवश्यकता है।

मैं अरु मोर : बोलने वाला अपने को मैं कहता है। इसी को व्याकरण में उत्तम पुरुष कहते हैं। यहाँ मैं शब्द का प्रयोग मुख्य अर्थ में हुआ। अर्थात् चिदाभास और कूटस्थ का एकीभाव। अविद्या में पड़े हुए चेतन के प्रतिविम्ब को चिदाभास कहते हैं। और उसके अधिष्ठानभूत चिदश को कूटस्थ कहते हैं। कूटस्थ और चिदाभास का विवेक न करके दोनों को एक मान लेना ही यहाँ एकीभाव है। इसी अर्थ में मैं शब्द का प्रयोग सर्व साधारण किया करते हैं।

मै शब्द के पष्ठी का रूप मोर है । इसके द्वारा गृहादि से अपने सम्बन्ध का बोध होता है । यही मै अरु मोर सब अनर्थों की 'जड' है । पहिले मै अहभाव का स्फुरण होता है । उसके फुरते ही जगत् दृश्य सपने की भाँति सामने खड़ा हो जाता है । मै अरु मोर को ही मोह निशा कहा है । इसी रात में सोता हुआ मनुष्य ससार रूपी स्वप्न देख रहा है । यथा . मै तैं मोर मृदता त्यागू । महामोह निसि सोवत जागू ।

तोर तैं : मै का प्रतिद्वन्द्वी तैं है सो कोई यह न समझ ले कि तैं और तोर माया की सोमा के बाहर है । अतः इसका अलग उल्लेख किया गया । बोलनेवाला जिससे बोलता है उसे तैं तुम आप कहता है । इसे व्याकरण में मध्यम पुरुष कहा है । मै के स्फुरण के बाद तैं का स्फुरण होता है । इसलिए मै अरु मोर के बाद तैं अरु तोर का उल्लेख किया । मोर की भाँति तोर भी तैं के पष्ठी का रूप है । और सम्बन्ध स्थापन करता है ।

माया : भाव यह कि मै अरु मोर तोर तैं माया है । निस्तत्त्व है । कार्य तो इसका दिखलाई पड़ता है । अधिष्ठान से इसकी पृथक् सत्ता कुछ भी नहीं है । जिस भाँति सीप में रजत तीन काल में नहीं है । पर प्रत्यक्ष भासता है । यह भासना निस्तत्त्व है । पर यह मिटाये नहीं मिटता । इसी भाँति माया की स्थिति है । वह तीन काल में नहीं है । पर ससार भ्रम किमी के हटाये नहीं हटता । यथा : जासु सत्य ताते जड माया । भास सत्य इव मोह सहाया ।

रजत सीप महुँ भास जिमि यथा भानु कर वारि ।

जदपि मृपा तिहुकाल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य दैत दुख अहई ॥

जेहि बस कीन्है : भाव यह कि जिसे माया ने वश कर रक्खा है । इससे

माया का कार्य कहते हैं । माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं । यथा : माया तु प्रकृति विन्ध्यात् मायिनं तु महेश्वरम् । इसी से सम्पूर्ण जगत् की रचना होती है और इसी ने सबको वश कर रक्खा है । यथा : जीव चराचर बस के राखे । सो माया प्रभु सो भय भाखे ।

जीव निकाया : भाव यह कि कूटस्थ चिदाभास और लिङ्ग शरीर के समूह को जीव कहते हैं । ये जीव असंख्य हैं । ये सब माया के वश हैं । जिस भाँति जल में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब जल के वश में होता है जल के ऊपर उठने से वह ऊपर उठता है । जल के नीचे गिरने से वह नीचे गिरता है । जल के चञ्चल होने से वह चञ्चल होता है । इसी भाँति जीव माया के वश रहता है । माया जैसा कराती है

१. अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मति ।

ममारतसम्भूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम् ॥ वि पु ६.७.११

अनात्मा में आत्मबुद्धि मैं और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना : मोर ये ही दोनों

ससार ब्रह्म की उत्पत्ति के बीज हैं ।

वैसा करता है । यथा ईश्वर अस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।
सो मायावस भयउ गोसाईं । बँध्यौ कीर मरवट की नाईं ।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥२॥

अर्थ इन्द्रिय विषय और मन की जहाँ तक दौड है इन सबको हे भाई ।
माया जानना । उसके दोनो भेदो को सुनो एक अपर विद्या और दूसरी अविद्या ।

व्याख्या गो गोचर गो अर्थात् इन्द्रियाँ । इन्द्रियाँ दश हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रिय
और पाँच कर्मेन्द्रिय । गोचर अर्थात् पाँच विषय शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध ।

जहँ लगि मन जाई मनकी दौड बहुत दूर तक होती है । यह मन स्थूलतम
पदार्थों में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड तक जाता है और सूक्ष्मतम पदार्थ में महत् तत्त्व
तथा प्रकृति तक पहुँचता है । सो सब माया जानेहु अर्थात् परा प्रकृति अपरा प्रकृति
ये दोनो ही माया हैं । जो हो न सके उसे कर दिखलानेवाली माया है । इसलिए
अघटितघटनापटीयसी कहते हैं ।

भाई भाई सम्बोधन से अपना प्रेम द्योतित किया । जिस भाँति सदा से
शिक्षा देते आये हैं । उसी भाँति इस बार भी शिक्षा दे रहे हैं । यथा

राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहि नीती ॥

वेद पुरान सुनहि मन लाई । आपु कहहि अनुजहि समुझाई ॥

तेहि कर भेद ऊपर कहा जा चुका है कि माया और प्रकृति पर्यायवाची
शब्द हैं । मैं अरु मोर तोर तैं माया कहकर परा प्रकृति का वर्णन किया जो कि
जीवभूत होकर जगत् को धारण किये हुए है और गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानेहु भाई । कहकर अपरा प्रकृति का वर्णन किया । अब दूसरे प्रकार
से उसके भेद कहेंगे ।

सुनहु तुम सोऊ यद्यपि भेद विषयक प्रश्न नहीं है । तथापि विषय को स्पष्ट
करने के लिए उसके भेद का भी वर्णन करेंगे । उसके सुनने के लिए कह रहे हैं ।

विद्या अपर अविद्या दोऊ उस माया के दो भेद हैं । एक अपर विद्या दूसरी
अविद्या । यथा प्रभु सेवकहि न व्याप अविद्या । प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या ।
अङ्गो सहित वेदत्रयी अपरा विद्या है । तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद
शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त ज्योतिषमिति । मुण्डक । अपरा विद्या कहने से ही
पता चलता है कि कोई पराविद्या भी उसकी चचा आगे की जायगी । यहाँ
अपरा विद्या तथा अविद्या का वर्णन किया जा रहा है जा माया की सीमा के
भीतर है ।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा वस जीव परा भवकूपा ॥

एक रचइ जग गुन वस जाके । प्रभु प्ररित नहि निज बल ताके ॥३॥

अर्थ एक दुष्ट अत्यन्त दुःखरूप है । जिसके वश में आकर जीव ससार कूप

मे पड़ा हुआ है और एक जिसके वश मे गुण : सत्त्व रसस् और तमस् हैं प्रभु से प्रेरित होकर संसार को रचते हैं । उसे अपना बल नहीं है ।

व्याख्या : एक दुष्ट : यहाँ एक एक बहकर क्रम नहीं देते । क्योंकि क्रम इष्ट नहीं है । पहले अविद्या का ही वर्णन करना है । उसे दुष्ट इसलिए कहा कि वह दोषयुक्त है । शुद्धसत्त्वप्रधाना नहीं है । जो दुष्ट होता है दोषयुक्त होता है । उससे दूसरे को पीड़ा पहुँचती है । अतः कहते हैं :

अतिसय दुःख रूपा : यह दुष्ट अविद्या अविशुद्धि के तारतम्य से अनेक प्रकार की होती है । यही स्थूल और सूक्ष्म शरीर की वारणभूता : प्रकृति की अवस्था विशेष वारण कहलाती है । पञ्च महाभूतों से निर्मित इस अस्थि मांसमय देह को स्थूल शरीर कहते हैं । इसी के भीतर इसका अनुकरण करती हुई अपञ्चीकृत महाभूत तथा उसके कार्य पञ्च प्राण दश इन्द्रिय मन और बुद्धि की बनी हुई सूक्ष्म देह है । इन दोनों सूक्ष्म और स्थूल शरीरों से अविद्या द्वारा ही जीव बद्ध होता है । यथा :

ईश्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो माया बस भयउ गोसाईं । बँध्यो कीर मरकट को नाई ॥
जड़ चेतनहि ग्रथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब ते जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रंथि न होइ सुपारी ॥
जिय जव तें हरि तें बिलगान्यो । तब तें देह गेह निज जान्यो ॥
माया बस स्वरूप विमरायो । तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो ॥

पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सपनेहु नहि मिल्यो ।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहु जोनि जन्म जरा विपति मतिमन्द हरि जान्यो नहीं ।
श्रीराम विनु विश्राम भूढ विचारु लखु पायो कही ॥

विनय. १३६.

जेहि बस जीव परा भवकूपा : अविद्या द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर का अध्यास भ्रम ही बन्धन है । इसी बन्धन के कारण जीव भवकूप मे पड़ा हुआ दुःख पा रहा है । द्वैत ही भवकूप है । जगत् ईश्वर का कार्य : रचित है और जीव का भोग्य है । माया वृत्त्यात्मक ईश्वर का सङ्कल्प जगत् की उत्पत्ति का कारण है और मनो-वृत्त्यात्मक जीव का सङ्कल्प भोग का साधन है । जैसे ईश्वर ने स्त्री बना दी । अब उसी को कोई भार्या, कोई बहू, कोई ननद, कोई देवरानी और कोई माता मानता है । वह मांसमयी स्त्री तो एक ही है । परन्तु मनोमयी के अनेक भेद हो गये । जीव का बन्धन करनेवाली यह मनोमयी : स्त्री है । ईश्वर की बनायी हुई मांसमयी बन्धन करनेवाली नहीं है । इस भाँति द्वैत दो प्रकार का है । एक ईश्वरवृत्त और दूसरा जीववृत्त । ईश्वरवृत्त द्वैत बन्धन का कारण नहीं है । सो जीववृत्त द्वैत को भवकूप कह रहे हैं । कूप रसज्जिग, बटते हैं कि यह तमोमय दुःख रूप है और इससे

बाहर केवल अपने पुरुषार्थ द्वारा निरालना भी कठिन है। करुणानिधान भगवान् या उनके कृपापात्र गुरु ही करावलम्बन देकर बाहर निकाल सकते हैं। विनय में गोस्वामीजी ने द्वैत को भवकूप कहा है। यथा

द्वैतरूप भवकूप परी नहि अस कछु जतन विचारो ।

उसी अविद्या को मोहशक्ति कहा गया है। माया में निर्माण शक्ति की भाँति एक मोहशक्ति भी है। वही जीव को मोहित करती है। मोह से अतीशता को प्राप्त होकर भवकूप में पड़ा जीव सोचता है

मैं जन्म्यो मोहि मातु पिता तिय तनय धाम धन ।
ये मेरे हैं शत्रु मित्र विद्या बल परिजन ॥
यो ही यह विद्वान् चित्त फुरना से धलित ।
दखत बहु विधि स्वप्न अविद्या ते अति निद्रित ॥१॥
तथा बोलत हैं विषवल्लि बोज दुख को जो प्रेम के नाम से ।
होते हैं अँखुए भरे अनल के सो नेह के धाम से ॥
शोकारण्य बढा विशाल इनसे सौ लाख शाखा धरे ।
देहो को दहता तुषानल यथा निर्धूम ज्वाला भरे ॥२॥

प्रबोधचन्द्रोदय

एक रचइ जग वह भगवती अपरा विद्या ससार की रचना करती है। यहाँ रचना उपलक्षण है। इसीके साथ पालन और उपसहार भी समझ लेना चाहिए। यह अपरा विद्या भगवान् की पुरातनी परा नाम्नी शक्ति है।

सर्वशक्ति परा विष्णोऽङ्ग्यजु सामसज्जिता ।
सैषा त्रयो तपत्यहो जगत्तच्च हिनस्ति या ॥७॥
सैषा विष्णु स्थित स्थित्या जगत् पालनोद्यत ।
ऋग्यजु सामभूतोऽन्त सवितुर्द्विज तिष्ठति ॥३॥
मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हि सा परा ।
त्रयीमयी विष्णुशक्तिरवस्थान करोति वै ॥९॥
ऋच स्तुवन्ति पूर्वाह्ण मध्याह्नेऽथ यजूपि वै ।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्ण क्षये रविम् ॥१०॥
अङ्गमेषा त्रयो विष्णोऽङ्ग्यजु सामसज्जिता ।
विष्णुशक्तिरवस्थान सदादित्ये करोति सा ॥११॥
न केवल रवे शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी ।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत् त्रयीमयम् ॥१२॥
सर्गादौ ऋद्धमयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मय ।
रुद्र साममयोऽन्ताय तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनि ॥१३॥
एव सा सात्त्विकी शक्तिर्वैष्णवी या त्रयीमयी ।
आत्मसप्तगणस्थ त भास्वन्तमघितिष्ठति ॥१४॥

तथा चाधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभि ।

तमः समस्तजगता नाशं नयति चाखिलम् ॥१५॥

अंश २ अ० ११ • विष्णुपुराण

इसी को ऋक्, यजु, साम कहते हैं । यही त्रयी सूर्य को ताप प्रदान करती है । संसार के पाप को नाश करती है । स्थिति के समय यही विष्णु होकर जगत् का पालन करती है । यही ऋक्, यजु, साम रूप से सूर्य के भीतर ठहरी हुई है । प्रत्येक मास में जो पृथक् पृथक् सूर्य बहे गये हैं उनमें यह वेद त्रयी रूपिणी पराशक्ति निवास करती है । पूर्वाह्न से ऋक्, मध्याह्न से यजु और सायंकाल बृहद्‌रथन्तरादि साम श्रुतियाँ सूर्य की स्तुति करती हैं । यह ऋक्, यजु, सामरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णु का ही अङ्ग है । ये सदा आदित्य में रहती हैं । यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्य की ही नहीं है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनों त्रयीमय हैं । सर्ग के आदि में ब्रह्मदेव ऋक्मय होते हैं । पालन के समय विष्णु यजुर्मय होते हैं । और अन्त में रुद्र भामय होते हैं । इसीलिए उसकी ध्वनि अपवित्र कही गयी है । इस प्रकार यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति अपने सातों गणों में स्थित सूर्य में अवस्थित रहती है । उसमें अधिष्ठित सूर्यदेव अपनी प्रखर रश्मियों से प्रज्वलित होकर संसार के सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट करते हैं । इस भाँति त्रयीमयी अपरा विद्या ही संसार की रचनेवाली है । यथा :

एतना मन आवत खगराया । रघुपति प्रेरित व्यापो माया ॥ अपरा विद्या
सो माया न दुखद मोहि काही । आन जोव इव सस्तृत नाही ॥
उदर माझ सुमु अडजराया । देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया ॥
अति विचित्र तहें लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गोरीसा । अगणित उडगन रवि रजनीसा ॥
अगणित लोकपाल जमकाला । अगणित भूधर भूमि विसाला ॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर । चारि प्रकार जीव सचराचर ॥

दो जो नहि देखा नहि सुना जो मनहूँ न समाइ ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन बिधि जाइ ॥
एक एक ब्रह्माड महूँ रहौं बरप सत एक ।
एहि विधि देखत फिरौं मैं अड कटाह अनेक ॥

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता । भिन्न विष्णु सिव मनु दिसिनाता ॥
नर गन्धर्व भूत वेताला । किन्नर निसिचर पसु खग व्याला ॥
देव दनुज गन नाना जाती । सकल जीव तहें आनहि भाँती ॥
महिसरि सागर सर गिरि नाला । सब प्रपच तहें आनहि आना ॥
अमृत मोहि ब्रह्माड अनेका । बीते मनहूँ कल्प सत एका ॥ इत्यादि ।

गुन वस जाकें : इस अपरा विद्या के वश में गुण है । विशुद्ध सत्त्व प्रधाना

होने से उसमे जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पडता है वह पूर्ण होता है। उसी को सर्वज्ञ ईश्वर कहते हैं। उन्ही की यह परा शक्ति सत्त्व रज और तम को वश मे रखती है। ब्रह्मा विष्णु रुद्रमयी होने से यह सत्त्व रज तम की अधिष्ठात्री देवी है। अतः इसके वश मे गुण है। उसके जिस रूप से हम परिचित हैं वह उसकी वाङ्मयी मूर्ति है।

प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें भगवान् कहते हैं कि वेद नामवाली पुरातनी परा^१ शक्ति मेरी है। यह सर्ग के आदि मे ऋक् यजु साम रूप से प्रवृत्त होती है। अर्थात् उसको प्रवृत्त करनेवाला, उसके प्रभु भगवान् हैं। उनकी प्रेरणा बिना वह कुछ नही कर सकती। अतः कहते हैं नहिं निज बल ताकें। शक्तिमान् से पृथक् शक्ति की कोई सत्ता नही होती। अतः कहा गया कि उसको अपना स्वतन्त्ररूपेण बल नही है। यथा

सुनु रावन ब्रह्माड निकाया। पाइ जासु बल विरचति माया ॥

लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया ॥

जासु सत्यता ते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥

अपरा विद्या और अविद्या दोनो माया के भेद हैं। अतः दोनो के लिए माया शब्द व्यवहृत है। प्रसङ्ग से पहिचानना चाहिए। चौथे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

ज्ञान मान जहँ एकौ नांही। देख ब्रह्म समान सब मांही ॥

कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी ॥४॥

अर्थ जहाँ एक भी मान नही है। ब्रह्म को सब मे समान देखता है। वही ज्ञान है। हे तात उसे परम वैराग्यवान् कहा गया है। जो तृण के समान सिद्धि तीनों गुणों का त्यागी हो।

ज्ञान पराविद्या^२ जिससे अक्षर ब्रह्म जाना जाता है। इसी को ब्रह्मविद्या कहते हैं। चारो^३ महावाक्यों द्वारा ब्रह्मका उपदेश होता है। उसमे से छान्दोग्य श्रुतिगत वाक्य का उपदेश लोमश महर्षि ने भुसुण्डि को ब्राह्मण जन्म मे किया था। यथा

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ॥

अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखड अनूपा ॥

मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुख रासी ॥

सो तैं तोहि तोहि नहिं भेदा। वारि बीचि इव गावहि वेदा ॥

१ भगवैषा परा शक्तिर्वेदसज्ञा पुरातनी। ऋग्यजु सामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते ॥

कूर्मपुराणे।

२ परा यथा तदक्षरमधिगम्यते।

३ चारो वेदों से चार महावाक्य लिये गये हैं १ ऋग्वेदान्तर्गत ऐतरेय आरण्यक से

२ यजुर्वेदान्तर्गत बृहदारण्यक से ३ सामवेदान्तर्गत छान्दोग्य से और ४ अथर्व वेद से।

इसी को ज्ञान कहा है । क्योंकि आगे चलकर गरुड़जी भुमुण्डिजी से पूछते हैं कि कहहि संत मुनि वेद पुराना । नहि कछु दुर्लभ ज्ञान समाना । सोइ मुनि तुम्ह स कहैउ गोसाईं । नहि आदरेहु भगति की नाईं । शेष तीन वाक्य भी इसी भाँति ब्रह्म जीव के ऐक्य का प्रतिपादन करते हैं । यहाँ भगवान् लक्ष्मणजी को ऐतरेय आरण्यव गत महावाक्य प्रज्ञान के तात्पर्य का उपदेश कर रहे हैं ।

मान जहँ एकौ नाही : मीयते अनेन इति मानम् । जिससे नापा जाता है उसे मान कहते हैं । वह मान लघु, गुरु, महत्, अणु, उत्तम, मध्यम, अधम आदि भेद से अनेक प्रकारके होते हैं । ब्रह्मा, इन्द्रादि देव उत्तम हैं । मनुष्य मध्यम हैं । अश्व गजादि अधम हैं । एवं विद्या विनयसम्पन्न ब्राह्मण तथा गौ पूज्य, हाथी मध्यम, कुत्त श्वान आदि निकृष्ट हैं । ये बातें मान से मिद्ध हैं । यह मान देहादिको से ही सम्भव है पर जो चेतन ब्रह्म सबमे व्याप्त है उसका कोई मान नहीं है ।

देख ब्रह्म समान सब माही : चक्षु इन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरण वृत्ति से उपहित चैतन्य से ही पुरुष दर्शन योग्य रूपादि को देखता है । श्रोत्र द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपाधिवाले चैतन्य से सुनता है । घ्राण द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपहित चैतन्य से सूँघता है । वागिन्द्रियावच्छिन्न चैतन्य से बोलता है । रसेन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपहित चैतन्य से चखता है । वहीं प्रज्ञान चैतन्य ब्रह्म है और वह सबमे समान है । इन्द्रियादि की विकलता य सकलता से दर्शनादि में तारतम्य हो सकता है । परन्तु चैतन्य सबमें समान ही है ऐसी समान दृष्टि रखना ही ज्ञान है । यथा :

विषय करन सुर जीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ॥

सबकर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवध पति सोई ॥

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू ।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि ।

बन्दौ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥

उमा जे राम चरन रत विगत काम मद क्रोध ।

निज प्रभुमय-देखहि जगत का सन करहि विरोध ॥

देस काल दिसि विदिसहु माही । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही ॥

अग जगमय सब रहित विरागी । प्रेय ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥

: यह दूसरे प्रश्न का उत्तर हुआ

तात्त : प्यार का शब्द है । यहाँ छोटे भाई के लिए आया है । भाव यह कि तुमने वैराग्य के विषय में प्रश्न किया है । सो वैराग्य तुम्हें स्वभाव से ही प्राप्त है वनगमन के समय में मैंने स्वयं देख लिया है । यथा :

राम बिलोकि बन्धु कर जोरे । देह गेह सब सन तृन तोरे ॥

मातु चरन सिर नाइ चले तुरत सक्ति हृदय ।

वागुर विषम तोराइ मनहु भाग मृग भाग बस ॥

अतः तुमसे वैराग्य का वर्णन करना केवल कथा को विस्तार देना है । अतः जो वैराग्य से भी साध्य परम वैराग्य है । उसका वर्णन मैं तुमसे करूँगा ।

सो परम विरागी कहिअ . भाव यह कि विषय दो प्रकार का है : एक दृष्ट और दूसरा आनुश्रविक । जो इस लोक में देखा सुना जाता है वह दृष्ट कहलाता है जैसे शब्द रूपादि । अनुश्रव वेद को कहते हैं । सो जिसका पता वेद से लगता है उसे आनुश्रविक कहते हैं । जैसे स्वर्गादि । सो दोनों प्रकार के विषयों के परिणाम विरसत्त्व के देखने से जिनको इनका लोभ नहीं रह गया वे इन विषयों के वश्य नहीं होते । विषय ही उनके वश में रहते हैं । उनके वैराग्य की वशीकार सज्ञा है । यथा . यहि तन कर फल बिषय न भाई । सरगहु स्वल्प अन्त दुखदाई । इन विषयविषयक वैराग्यवालों को परम विरागी नहीं कहते । परम विरागी का लक्षण है .

तून सम सिद्धि तीन गुन त्यागी . जिसने अणिमादिक अष्ट सिद्धि तथा सत्त्व, रज और तम का त्याग किया हो वह परम विरागी है । पहला वैराग्य अर्थात् ऊपर कहा हुआ वैराग्य विषयविषयक था । पर परम वैराग्य तो गुण विषयक होता है । गुण विषयक वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है । ऐसे वैराग्यवान् को परम विरागी कहना चाहिए । यथा :

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन .

रजवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तन्ते ॥ गीता २.५९

बिधि हरिहर तप देखि अपारा । सनु समीप आये बहु वारा ॥

माँगहु वर बहु भाँति लोभाए । परम धीर नहिं चलहि चलाए ॥

यहाँ रजोगुण के अधिष्ठाता विधि सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हरि और तमोगुण के अधिष्ठाता हर अपने गुण सम्बन्धी सब प्रकार के सुख तथा सिद्धियों का लोभ दिखा रहे हैं । पर परम वैराग्यवान् स्वायम्भू मनु को उन गुणों तथा सिद्धियों की इच्छा नहीं हुई । यह तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ ।

दो माया ईस न आपु कहूँ, जान कहिअ सो जीव ।

बध मोच्छ प्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीव ॥९.१५॥

अर्थ जो माया, ईश्वर और अपने को न जाने उसे जीव कहा जाता है और जो बन्ध मोक्ष का देनेवाला, सबके परे, माया का प्रेरक है वह शिव है ।

व्याख्या माया ईस न आपु कहूँ जान . भाव यह कि माया का ज्ञान . ईश्वर का ज्ञान तथा अपने आत्मा का ज्ञान ऐसा परस्पर सापेक्ष है कि एक के ज्ञान के लिए शेष दो का ज्ञान अनिवार्य है । क्योंकि ब्रह्म और जीव में भेद करनेवाली केवल माया है ।

यथा . ब्रह्म जीव बिच माया जैसी । तथा . मुघा भेद जद्यपि कृत माया । विनु हरि जाइ न कोटि उपाया । उस माया की स्थिति बड़ी ही विचित्र है । न वह सत् है न असत् है न सदसत् है । न भिन्न है न अभिन्न है न भिन्नाभिन्न है । न

निरवयव है न सावयव है । वह ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से हटाई जा सकती है । यथा :
कोऊ वह सत्य झूठ कर कोऊ जुगल प्रचल करि मानै । तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम
सो आपन पहिचानै । वह माया जिसकी सत्यता से भासती है उस मायी ईश्वर का
बिना निरूपण किये माया का निरूपण कैसे होगा ? अथवा जिस ^१जीव पर उसका
अधिकार है उसका बिना निरूपण किये ही माया कैसे जानी जायेगी ? इसी भाँति
जिसका अंश ^२जीव है उसी अंशी का बिना निरूपण किये अथवा जिस ^३माया ने
उस अखण्ड ईश्वर का अंश कल्पित किया है उसका बिना निरूपण किये जीव का
निरूपण कैसे होगा ? एव जिसके कारण ईश्वर मायी है और जिसके अंश होने से
वह अंशी है उस माया और जीव के निरूपण बिना ईश्वर का निरूपण कैसे होगा ?
और बिना निरूपण किये ज्ञान कैसे होगा ? अतः जिसे एक का सम्यक् ज्ञान नहीं
है उसे तीनों का सम्यक् ज्ञान सही है । इसीलिए कहा . माया ईस न आपु कहै
जान । जिसे माया, ईश्वर व अपना ज्ञान नहीं है ।

कहिअ सो जीव . ऐसे अज्ञानी अथवा अल्पज्ञ को जीव कहते हैं । अर्थात्
अज्ञान और अस्पष्टता ही उसे जीव बनाये हुए है । अज्ञान का हटाना और स्वरूप
का ज्ञान एक ही वस्तु है । ज्ञान होते तो वह जीव नहीं रह जाता । वह ब्रह्मपद
को ^४प्राप्त हो जाता है । यथा .

सोइ जानै जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुमहि होइ जाई ॥

बन्ध मोच्छप्रद . मिथ्या ज्ञानकृत जो वर्तृत्वाभिमान है उसे बन्ध कहते हैं
और तत्त्वज्ञान से जो अज्ञान और उसके कार्य का अभाव होता है उसी को मोक्ष
कहते हैं । सो बन्धप्रद ईश्वर है वही कर्मफल दाता है । जीव भी अनादि है और
उसके कर्म भी अनादि हैं । ये दोनों बीजाङ्कुर न्याय से सिद्ध हैं । सदा से ही अङ्कुर
का कारण बीज और बीज का कारण अङ्कुर होता चला आया है । इसी भाँति

१. माया वस मति मद अमागी । हृदय जवनिका बहु बिधि लागी ॥

२ ईश्वर अंश जीव अधिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी ॥

३ बाधा काटा जिनने उस आदि पुरुष को ।

पुराण ने बाटा शाश्वत जगदीश्वर को ॥

उन ब्रह्ममिदो का विद्या द्वारा विधि से ।

हो मरण पुरादित ब्रह्मैकत्व हो फिर से ॥ प्र. च. ।

४ प्राप्त नहीं बाधित नहीं नहीं उदित नहि अस्त ।

ब्रम विकास वा लय नहीं नहीं असत नहि सत् ॥

नही असत नहि सत् लोकत्रय बाधित होता ।

मेरा सहज प्रवास उदित भासित जब होता ॥

वरनै मिथ विचारि प्रबोधोदय मैं प्राक्तन ।

होगा मुले कमी जीव पदवी अब प्राप्त न ॥ प्र. च. ।

जन्म का कारण पूर्वजित कर्म और उसका भी कारण पूर्वजन्म यह क्रम अनादि काल से चला आता है और ईश्वर भी अनादि काल से तत्तत् कर्मों का फल देता चला आता है। इसी से उसे बन्धप्रद कहते हैं। यथा जेहि बाध्यो सुर असुर नाग मुनि प्रवल कर्म की डोरी। वही ईश्वर मोक्षप्रद भी है। उसी की कृपा से जीव मिथ्या ज्ञानकृत कर्तृत्वादि अभिमान से छूटता है। यथा 'तुलसीदास यह मोह सुखला छुटिहै तुम्हरे छोरे। दैवी होपा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते। भगवान् कहते हैं यह मेरी दैवी गुणमयी माया पार पाने योग्य नहीं है। जो मेरी शरण में आते हैं वे ही इस माया को हर सकते हैं।

सर्वपर वही ईश्वर सबके परे हैं। सबका उपादान होने से प्रकृति सबका कारण है। परन्तु ईश्वर उससे भी परे है। यथा

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी ॥

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा ॥

सोइ प्रभु भ्रूविलास खगराजा। नाच नटी इव सहित सहाजा ॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। विधि हरि सभु नचावनि हारे ॥

माया प्रक सीव प्रश्न है कि ईश्वर जीवहि मेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। सो उसका उत्तर देते हुए जीव का लक्षण कहकर शिव अर्थात् ईश्वर का लक्षण कहते हैं। तद्भव रूप से शकार का 'सकार और ह्रस्व का 'दीर्घ' विकल्प करके होता है। इस भाँति शिव का प्राकृत रूप सीव है। शिव नाम ईश्वर का है। विष्णुसहस्रनाम में भी शिव शम्भु शङ्करादि नाम आये हैं। शिव और राम में अन्तर्भाव माना गया है। यथा सेवक स्वामि सखा सियजी के। हित निरुपधि सब विधि तुलसी के। तथा पूजि पार्थिव नाएउ माथा। लिंग थापि बिधित करि पूजा। शिव समान प्रिय मोहि न दूजा। कहकर शिवजी को रामजी का आत्मा^१ ही

१ यद्यपि स २४३ प्राकृतप्रकाशे। सवत्र शकार पकार का सकार होता है।

२ ईव सिंहजिह्वयोश्च ॥१७॥ चकारोऽनुक्तसमुच्चयात् ।

सिंह सीहो जिह्वा जोहा यहाँ इकार का ईकार हुआ।

३ रुद्रस्य परमा विष्णुविष्णोश्च परमा शिव ।

एक एव द्विधा भूतो लोके चरति नित्यश ॥

न विना शकर विष्णुन विना केशव गिव ।

तस्मादेकत्वमायातो रुद्रोपेन्द्रो तु तौ पुरा ॥ हरिवंश

अथ रुद्र के बड़ विष्णु हैं और विष्णु के बड़ रुद्र हैं। एक ही दो भाग होकर लोक में विचरते हैं। बिना शकर के विष्णु नहीं और बिना केशव के गिव नहीं। इसलिए पहले ही रुद्र और विष्णु एकत्व को प्राप्त हुए।

ये त्वेन विष्णुमभ्यक्त मा च देव महेश्वरम् । एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भव ॥

तस्मादनादिनिधन विष्णुमात्मानमभ्ययम् । मामिव सप्रपश्यध्व पूजयध्व तथैव च ॥

कूर्म पुराण ईश्वर गीता ।

स्वीकार किया है। क्योंकि सबके प्रिय आत्मा ही होता है। अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यत । तात्पर्यं यह कि जीव शिव से वास्तविक भेद नहीं है। सच्चिदानन्द रूप से जीव और शिव में अभेद है। पर माया ने कल्पित भेद कर रखा है। व्यवहार काल में वह भेद सत्य भी है। शिव बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर और मायाप्रेरक है एक हैं। जीव बद्ध हैं, अभिमानी हैं, माया के वश में हैं और अनेक हैं। यथा : माया वश परिच्छिन्न जड जीव कि ईश समान ।

ग्यान अखंड एक सीतावर । माया वस्य जीव सचराचर ॥
जो सबके रह ज्ञान एक रस । ईश्वर जीवहि भेद कहहु वस ॥
माया वस्य जीव अभिमानी । ईस वस्य माया गुन खानी ॥
परवस जीव स्ववस भगवता । जीव अनेक एक श्रीकृता ॥
मुधा भेद यद्यपि कृत माया । विनु हरि जाइन कोटि उपाया ॥

दो रामचन्द्र के भजन विनु जो वह पद निर्वान ।
ज्ञानवत अपि मो नर पसु विनु पूछ विपान ॥

यह छठे प्रश्नका उत्तर हुआ ।

'धर्म ते विरति जोग ते ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद वेद वखाना ॥
जा तें वेगि द्रवउँ मे भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥१॥

अर्थ : धर्म से वैराग्य, वैराग्य से याग और योग से ज्ञान होता है और वेद

अर्थ : जो इन अव्यक्त विष्णु और मुक्त देव महेश्वर को एक भाव से देखेगा उसका फिर जन्म नहीं होगा। इसलिए अनादिनिधन विष्णु अवश्य आत्मा को मेरे ऐसा देखो और उसी भाँति पूजा करो ।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शकरम् ।
येऽर्चयन्ति हरिं मत्तया तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम् ॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम् ।
ये ह्यद्र नामिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम् ॥

रुद्रहृदय उपनिषद्.

अर्थ : जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं वे शकर को नमस्कार करते हैं। जो हरि को मक्ति पूर्वक पूजा करते हैं वे वृषध्वज को पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष से द्वेष करते हैं वे जनार्दन से द्वेष करते हैं। जो रुद्र को नहीं जानते वे केशव को भी नहीं जानते। इत्यादि प्रमाणों से सास्त्र भरे पडे हैं ।

१. यहाँ कारणमाला अलङ्कार है ।

बखान करता है कि ज्ञान मोक्ष देनेवाला है । जिससे मैं शीघ्र द्रवीभूत होता हूँ । वह तो^१ सब प्रकार के भक्तों को सुख देनेवाली मेरी भक्ति है ।

धर्म तें बिरति • जो जगत् को स्थिति का कारण है . धारणाद्धर्ममित्याहुधर्मों धारयति प्रजा । तथा प्राणियो को उत्पत्ति और मोक्ष का हेतु है यतोऽभ्युदय नि श्रेयससिद्धि स धर्म । एव कल्याण का भी ब्राह्मणादि वर्णाश्रमावलम्बियो से जिसका अनुष्ठान किया जाता है चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म । उसे धर्म कहते हैं ।

वेद ने दो प्रकार के धर्म बतलाये हैं एक प्रवृत्तिलक्षण और दूसरा निवृत्तिलक्षण । ज्ञान वैराग्य जिसका लक्षण है उसे निवृत्तिलक्षण धर्म कहते हैं । वह साक्षात् कल्याण का हेतु है । वर्ण और आश्रम को लक्ष्य करके जो सासारिक उत्पत्ति के लिए कहा गया है वह प्रवृत्तिलक्षण धर्म है । वह यद्यपि स्वर्गादि के साधन का हेतु है । फिर भी ईश्वरार्पण बुद्धि से फलकामना रहित होकर किये जाने पर अन्त-करण शुद्धि का कारण होता है । शुद्धान्त करण पुरुष के लिए ज्ञाननिष्ठा को योग्यता प्राप्ति द्वारा ज्ञानोत्पत्ति का कारण होने से वह मोक्ष का हेतु भी होता है । इसी को कर्मयोग भी कहते हैं ।

गुरु सुर सत पितर महि देवा । करै सदा नृप सब के सेवा ॥
भूप धरम जे वेद बखाने । सकल करै सादर सुख माने ॥
दिन प्रति देइ विविध विधि दाना । सुनै शास्त्र वर वेद पुराना ॥
नाना वापी कूप तडागा । सुमन वाटिका सुदर बागा ॥
विप्र भवन सुर भवन सुहाए । सब तीरथन्ह विचित्र बनाए ॥

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग ।

बार सहस्र सहस्र नृप किये सहित अनुराग ॥

हृदय न कछु फल अनुसधाना । भूप विवेकी परम सुजाना ॥

करै जे धरम करम मन वानी । वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥

इस प्रकार धर्माचरण से वैराग्य होता है । उसकी उत्पत्ति जिस विधि से होती है उसका विशद वर्णन शतपथ चौपाई ग्रन्थ में मिलेगा । उसका संक्षेप इतना ही है कि शास्त्र विधि के अनुसार फल की काक्षा न रखते हुए कर्तव्य बुद्धि से आनन्द

१. १. नाम जीह जपि जागहि जोगी । बिरति बिरचि प्रपच वियोगी ॥

ब्रह्म सुखहि अनुभवहि अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

२. जाना चहहि गूढ गति जेऊ । नाम जीह जपि जानहि तेऊ ॥

३. साधक नाम जपहि लय लाये । होहि सिद्ध अनिमादिक पाये ॥

४. जपहि नाम जन आरत भारी । मिटाहि कुसकट होहि सुखारी ॥

राम भगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥

५. सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।

नाम सुप्रेम पियूप हृद तिनहुँ किये मन मीन ॥

पूर्वक जप, तप, व्रत, यम, नियमादि वेदविहित शुभ धर्मों का आचरण श्रद्धापूर्वक करे और वे भावोपहत^१ न होने पावे। तब परम धर्म अहिंसा का उदय होता है। उसे वशीकृत निर्मल मन द्वारा विश्वास से दृढ़ करें। उस अहिंसा का योग, विषय-वासना त्याग, क्षमा, तोष और धृति से भी हो। जब ऐसी स्थिति हो जाय तब मुदिता तथा इन्द्रिय दमन पूर्वक सत्योक्ति वेद के अनुसार विचार करे तब निर्मल विराग का उदय होता है। यथा

सात्विक श्रद्धा धेनु सोहाई। जो हरि कृपा हृदयबस आई ॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे श्रुति वह सुभ धरम अचारा ॥
तेइ तून हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ शिशु पाइ पेन्हाई ॥
नो इति वृत्ति पाय विस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धरम मय पय दुहि भाई। अवटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमा जुडावै। धृति सम जावन देइ जमावै ॥
मुदिता मथै विचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुवानी ॥
तब मथि काढि लेइ नवनीता। विमल विराग सुभग सुपुनीता ॥

योग ते जाना - वैराग्य से सत् लक्ष्य पर चित्त के स्थिर करने के अभ्यास से चित्तवृत्ति का निरोध होता है उसी को योग कहते हैं। योगी का कर्म अशुक्ला कृष्ण होता है। तब ममता मल के दूर होने से वही वैराग्य में परिणत होता है। वह वैराग्य ज्ञान ही है। यही तत्पद का शोधन है। तत्पश्चात् सवमे ब्रह्मदृष्टि दृढ़ करे तब जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं में से क्रमशः वैषयिक ज्ञान उसके सस्कार और अज्ञान को दूर करे। तब तुरीय अवस्था की प्राप्ति होती है। इसे त्व पद का शोधन कहते हैं। सो त्व पद के लक्ष्यार्थ को तत्पद के लक्ष्यार्थ में लीन करके सानन्द समाधि में स्थित हो। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दो होते हैं। फल पेड़ में होता है। फल शब्द का वाच्यार्थ पेड़ में होनेवाली वस्तु विशेष है। परन्तु कर्मफल कहने से फल शब्द का वह अर्थ नहीं लिया जायगा। इसमें लक्ष्यार्थ लिया जायगा। यहाँ फल का लक्ष्यार्थ है कर्म का परिणाम - नतीजा। इसी भाँति त्व पद का वाच्यार्थ जीव और लक्ष्यार्थ कूटस्थः तुरीय है। एव तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर और लक्ष्यार्थ शुद्ध चेतन ब्रह्म है। यही अपरोक्ष ज्ञान है। यथा :

१ तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः। स्वाभाविको ज्ञानविधिर्न कल्कः।

प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कः। सर्वाणि भावोपहतानि कल्काः ॥

अर्थ - तप करना पाप नहीं है। न वेद पढ़ना पाप है। स्वाभाविक ज्ञान की दिशि भी पाप नहीं है। हठ करके धन छीन लेना भी पाप नहीं है। परन्तु भावोपहत होकर जो कुछ भी सब पाप हो जाते हैं। भाव यह कि दम्भ के लिए तप करना। दूसरे को जीतने के लिए वेद पढ़ना। दुरी नियत से देखना सुनना और धन के मालिक के भले के लिए जो कुछ भी स्वार्थ के लिए धन छीन लेना पाप है। क्योंकि ऐसा करने में भाव विगड़ता है।

दो. जोग अग्नि करि प्रगट तव कर्म सुभासुभ लाइ ।
 बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता भल जहि जाइ ॥
 तब विज्ञान निरूपिणी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
 चित्त दिया भरि धरे दृढ ममता दियटि बगाइ ॥
 तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि वपास ते काढि ।
 तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करे सुगाढि ॥
 एहि विधि रेंसे दीप तेजरासि विज्ञानमय ।
 जातहि जासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब ॥

ज्ञान मोक्ष प्रद : भाव यह है कि तब अखण्ड : सोहमस्मि वृत्ति का उदय होता है । उससे आत्मानुभव सुख होता है । भेद भ्रम जाता रहता है । मोहादि दूर होते हैं । तब चिद् जड़ ग्रन्थि खुल जाती है और जीव का मोक्ष हो जाता है । यही ज्ञानयोग है । यथा :

सोहमस्मि इति वृत्ति अखडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
 आत्म अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भवमूल भेद भ्रम नासा ॥
 प्रबल अविद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटे अपारा ॥
 तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा । उर गूह वैठि ग्रथि निरु आरा ॥
 छोरन ग्रथि पाव जाँ सोई । तो यह जीव वृत्तारथ होई ॥
 जाँ निबिघ्न पथ निर्वहई । सो कैवल्य परम पद लहई ॥
 अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । सत पुरान निगम आगम वद ॥

वेद बखाना . वेद ने स्वयं ज्ञान का बखान किया है । यथा . ऋते ज्ञानाप्त मुक्तिः । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय । ज्ञानादेव हि कैवल्यम् । बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती । उसे जानने से ही मृत्यु का अतिक्रमण किया जा सकता है । मुक्ति का दूसरा मार्ग नहीं है । ज्ञान से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है । इत्यादि । भाव यह कि मोक्ष का साक्षात् कारण ज्ञान है । यही संक्षेप में अद्वैतवाद है । अन्य मोक्षप्रद साधन ज्ञान द्वारा ही मोक्ष देते हैं । काशी मोक्ष देती है । क्योंकि ज्ञानखानि है । भक्ति मुक्ति देती है । क्योंकि ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं । यथा :

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर ।
 जहँ बस मभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥

सो स्वतंत्र अवलम्ब न आना । तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥

भाई : यहाँ भाई सम्बोधन का भाव यह है कि तुम हमारे स्वभाव से परिचित हो । यहाँ मैं अपना स्वभाव कहता हूँ । अथवा भाई होने से तुम्हारा मेरे में भाव स्वाभाविक है और प्रेम का ही मार्ग सुलभ और सुखद है । उसी का मैं निरूपण करूँगा । यथा : सुलभ सुखद मारग यह भाई । भक्ति मोर पुरान श्रुति गाई । अतः भाई सम्बोधन दिया । मैं से सगुण ब्रह्म अभिप्रेत है । क्योंकि एकरस निर्विकार निर्गुण ब्रह्म में द्रवता सम्भव नहीं । और यहाँ उसी का प्रसङ्ग है । सगुण ब्रह्म के

अवतारों में भी रामावतार प्रसक्त है। क्योंकि उसको विशेषता कही गयी है। अध्यात्म रामायण कहता है - अवतारा ह्यसंख्येया हरे. सत्त्वनिधेद्विजा.। तेषा सहस्रसदृशो रामो नाम जनैः श्रुतः। अर्थात् सत्त्वनिधि हरि के बहुत से अवतार हैं। उनमें से जगद् विख्यात रामावतार सहस्रो के समान हैं और विनय में ग्रन्थकार भी कहते हैं कि : एकइ दानि सिरोमनि सांचो। हरिहु और अवतार आपने राखी वेद बढ़ाई। लै चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मितार्ई।

जाते वेगि द्रवजै : भाव यह कि अन्य साधनों से भी मैं द्रवीभूत होता हूँ। परन्तु शीघ्र नहीं। क्योंकि उसमें साधक को अपने बल का भरोसा रहता है। उन्हें भगवान् ने प्रौढ तनय माना है। परन्तु अमानी दास को शिशु बालक सम माना है। जिसे अपना भरोसा कुछ नहीं। सर्वात्मना माँ का भरोसा है। यथा : मोरे प्रौढ तनय सम जानी। बालक सिसु सम दास अमानी। जानहि मोर बल निज बल ताही। दोउ कहँ काम क्रोध रिपु आही। भगवान् भी वीतचिन्त्य रहते हैं कि यह प्रौढ तनय है। यह काम क्रोधादि शत्रु का सामना कर लेगा। परन्तु अमानी दास की रखवारी करते हैं। यथा - गहि सिसु बच्छ अनल अहि घाई। तहँ राखै जननी अरगाई। अतः मानना पड़ेगा कि भगवान् के शीघ्र द्रवीभूत होने के भी कारण हैं। दूसरी बात यह है कि निर्गुण की उपासना में अधिक क्लेश है। देहाभिमानीयो की गति अव्यक्त में बड़ी कठिनता से होती है। सर्व कर्मों का सन्यास करके गुरु के पास जाना और वहाँ वेदान्त वाक्यों का विचार करना और उन विचारों से अनेक प्रकार के भ्रमों को दूर करने में महान् प्रयास करना पड़ता है। सगुणोपासना में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उसे ईश्वर की कृपासे स्वयं तत्त्वज्ञान का उदय होता है और ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भोगकर कैवल्य प्राप्त करता है। गीता में भगवान् ने कहा है कि हे पार्थ ! जो सब कर्मों को मुझे अपेक्ष करके मुझमें लग जाते हैं और अनन्य योग से मेरा ध्यान करते हुए उपासना करते हैं। ऐसे मुझ में चित्त लगानेवालों को मैं शीघ्र ही ससार सागर से पार कर देता हूँ। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कभी वह करुणावरुणालय भक्तों पर द्रवीभूत होकर पूति दुग्न्धियुक्त ससार में भी अवतीर्ण होता है। कभी राजा चन्द्रियो पर करुणा करके कारागार के निरीक्षण के लिए वहाँ पदार्पण करता है। यदि कभी ईश्वर अवतीर्ण ही न हो तो उसके होने का प्रमाण ही क्या है ? उस अवतीर्ण रूप के मजन की बड़ी महत्ता है। क्योंकि वह अवतार उस विश्व रूप भगवान् की द्रवीभूत मूर्ति है। उसे कृपा करते देर नहीं लगती।

सो मम भगति : भक्ति प्रेम को कहते हैं। वही प्रेम यदि छोटी पर हो तो वात्सल्य कहलाता है। बराबर पर हो तो मैत्री सौहार्द या सख्य कहलाता है। बड़ों के प्रति हो तो भक्ति कहलाता है। वही प्रेम यदि ससारी पुरुषों पर हो तो बन्ध का धारण होता है और वही यदि ईश्वर के चरणों में हो तो भवबन्ध से मुक्ति देता है। यथा :

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥

सबके ममता ताग बढोरी। मम पद मनहि बाध बरि डोरी ॥

समदरसी इच्छा कछु नाही । हरख सोक भय नहिं मन माहो ॥

अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय वसै धन जैसे ॥

इसी भक्ति से भगवान् शीघ्र ही द्रवीभूत होते हैं । द्रवीभूत होने का प्रारम्भ जीव के ईश्वर प्रति अनुकूल होते ही हो जाता है । यथा : सम्मुख होइ जीव मोहि जवही । जनम कोटि अब नासहि तबही । बिना करुणानिधान के प्रति अनुकूल हुए तो सब साधन ही निष्फल हैं । यथा जोग कुजोग ज्ञान अज्ञान । जहँ नहिं राम प्रेम परधान । निरुपास्ति ज्ञान भी टिकाऊ नहीं होता । क्योंकि भक्ति ही योग और ज्ञान के भी विघ्नो को दूर करनेवाली है । यथा : अत प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्त-राधाभावश्च । यो १ पाद २९ सूत्र । अर्थात् भक्ति से प्रत्यक् चेतना का ज्ञान होता है और विघ्नो का नाश भी होता है । भक्ति के साथ होने से करुणानिधान की करुणा बनी रहती है और उसी से सिद्धि होती है । परन्तु उसमें देर लगती है । क्योंकि भक्ति के साथ अन्य साधनो का मिश्रण रहता है । शुद्ध भक्ति होने से भगवान् की पूर्ण करुणा में देर नहीं लगती । यथा :

रामहि केवल प्रेम पियारा । जानि लेहु जो जाननि हारा ॥

रोझत राम सनेह निसोते । को जग गद मलिन मति मोते ॥

जो पै हरि जन के गुन गहते ।

तो सुरपति कुरुराज वालि सौ, कत हठि बेर बिसहते ॥

जो जप जाग जोग व्रत बजित, केवल प्रेम न चहते ॥

तो कत सुर मुनि वर विहाइ, ब्रज गोप गेह बसि रहते ॥

भगत सुखदाई भाव यह कि दुःखदाई पदार्थों को हटाकर ही भक्ति भगवती का पादार्पण होता है । जननी जनक वधु सुत दारा । आदि नश्वर पदार्थों में ममता रहना ही दुःखदाई है । सो भक्ति करने में इनसे मनोवृत्ति को हटाकर तब भगवान् के चरणों में लगायी जाती है । जब तक इनमें प्रेम है तब तक भक्ति कहाँ ? और जब अविनाशी भगवान् के चरणों में मन लगा तब सुख ही सुख है । स्वयं भगवती भास्वती भक्ति में ही ऐसी सामर्थ्य है कि भक्त के सन्निकट विपत्ति को फटकने नहीं देती । यथा : वचन काय मन मम गति जाही । सपनेहुँ बूझिअ विपत्ति कि ताही । यदि भक्ति में श्रुति है तभी विपत्ति का आगमन होता है । भुसुण्डि ने कहा : देखेउं करि सब करम गोसाईं । सुखी न भयेउं अबहि कि नाईं । भक्ति के सामने दूसरे की कोन कहे स्वयं माया का बल नहीं चलता । क्योंकि भक्ति भगवान् की प्यारी है । यथा :

पुनि रघुवीरहि भगति पियारी । माया खलु नतंकी विचारी ॥

भगतिहि सानुकूल रघुराया । ताते तेहि डरपति अति माया ॥

भुसुण्डिजी कहते हैं कि भक्ति छोड़कर सुख पाने का दूसरा उपाय नहीं है ।

यथा

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाही । रघुपति भगति बिना सुख नाही ॥

कमठ पीठ जामहि बरु बारा । बध्या सुत बरु काहुहि मारा ॥

फूलहि नभ बरु बहु विधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । बरु जामहि सस सीस विषाना ॥
अन्धकार बरु रविहि नसावै । राम विमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई । विमुख राम सुख पाव न कोई ॥

इसी से चिद्रूप जीव और अचिद्रूप जगत् दोनों का शरीर माननेवाला विशिष्टाद्वैतवाद, जीव जगत् के सूक्ष्मतत्त्व को ईश्वर में वर्तमान माननेवाला द्वैताद्वैतवाद, जीव ब्रह्म का सार्वकालिक भेद माननेवाला द्वैतवाद तथा जीव को अग्नि के स्फुलिङ्ग के समान अश माननेवाला शुद्धाद्वैतवाद सभी ने एक मुख से भक्ति को ही साधन माना है । अद्वैतवाद के परमाचार्य शङ्कर भगवान् . सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाह न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो हि न तारङ्गः कहते हैं । अर्थात् भेद चले जाने पर भी हे नाथ ! मैं तुम्हारा हूँ । मेरे तुम नहीं हो । समुद्र का तरङ्ग होता है तरङ्ग का समुद्र नहीं होता ।

सो सुतन्त्र अवलंब न आना । तेहि अधीन ज्ञान विज्ञाना ॥
भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो सत होहि अनुकूला ॥२॥

अर्थ : वह : भक्ति स्वतन्त्र है । उसे : दूसरे का अवलम्बन नहीं है । ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं । हे ! तात अनुपम सुख मूल भक्ति यदि सन्त अनुकूल हो तो मिलती है ।

व्याख्या : सो सुतन्त्र : जो परमुखापेक्षी न हो वही स्वतन्त्र है । कर्म और ज्ञान स्वतन्त्र नहीं है । यज्ञ यागादि कर्म में अधिकार, द्रव्य, विधान, सामर्थ्य, देश, काल आदि का बड़ा बखेड़ा है । उसकी सिद्धि इनके अधीन है । फिर भी यदि उसमें भक्ति का पुट न रहा तो उससे ससार ही दृढ होता चला जाता है । इसीलिए श्रीगोस्वामीजी कहते हैं :

सो सब करम धरम जरि जाऊ । जहँ न रामपद पवज भाऊ ॥
करतउ सुकृत न पाप सिराही । रक्त बीज इव बाढत जाही ॥

ज्ञान भी स्वतन्त्र नहीं है । ऊपर कह आये हैं कि ज्ञानदोष के प्रज्ज्वलित करने में तत् पद के और त्वं पद शोधन में तथा एकीकरण में कितने साधनों की अनिवार्य आवश्यकता है । सब कुछ होने पर भी आत्मानुभव प्रकाश में तथा चित् जडग्रन्थि के छोड़ने में अचिन्त्य बाधाएँ आ पड़ती हैं । यथा :

छोरत ग्रथि जानि सगराया । विघन अनेक करै तब माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरे बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिग्गवाहि आई ॥
कल बल छल करि जाहि समीपा । अचल बात बुझावहि दीपा ॥
जौ तेहि बुद्धि विघ्न नहि बाधो । तो वहोरि सुर करहि उपाधो ॥
इन्द्रो द्वार क्षरोम्वा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवन देखहि विषय वयारी । ते हठि देहि बणाट उधारी ॥

जब सो प्रभजन उर गृह जाई । तबहि दीप विज्ञान बुझाई ॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रवासा । बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा ॥
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि विधि दीप को बार बहोरी ॥

दो तब फिर जीव विविध विधि, पावइ ससृति क्लेश ।

हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस ॥

यदि ज्ञान सिद्ध हो तो भी भक्ति का आदर वहाँ भी अनिवार्य है । नहीं तो निरुपास्ति ज्ञान से साधक का पतन होता है । यथा • जो ज्ञान मान विमत्त तब भव हरनि भगति न आदरी । ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ।

अवलम्ब न आना भक्ति के स्वातन्त्र्य का कारण कहते हैं कि उसे दूसरे का अवलम्बन नहीं है । वह कर्म • यज्ञादि और ज्ञान की मुखापेक्षी नहीं है । यह बात नहीं है कि बिना यज्ञ किये भक्ति होती ही नहीं । यहाँ पर ग्रन्थकार कहते हैं •

कौन धौ सोमयाजी अजामिल अधम । कौन गजराज धौ वाजपेयी । अर्थात् ये आर्त्त भक्त बिना यज्ञयागादि के ही कल्याण भाजन हुए और यह बात भी नहीं कि बिना ज्ञान के भक्ति न हो । किरातो को कौन बडा ज्ञान था । यथा : किरात बचन प्रभु प्रति

कीन्ह बास भल ठाउ बिचारी । इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥

हम सब भाँति करब सेवकाई । करि केहरि अहि बाध बराई ॥

बन बेहड गिरि कदर खोहा । सब हमार प्रभु पग पग जाहा ॥

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउव । सर निझँर जल ठाँउ देखाउव ॥

हम सेवक परिवार समेता । नाथ न सकुचव आयसु देखा ॥

दो बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना अयन ।

बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक वयन ॥

इसलिए भक्ति को स्वतन्त्र कहा है । भक्ति विशेष से चाहे हुए भगवान् भक्त के अभिमुख होते हैं और इच्छामात्र से उसके अभीष्ट प्रदान पूर्वक उस पर अनुग्रह करते हैं । ईश्वर की इच्छामात्र से उस भक्तयोगी को शीघ्र से शीघ्र समाधि की प्राप्ति होती है और समाधि का फल भी होता है । भगवत्स्मरण से भक्त को रोगादि विघ्न भी नहीं होते और स्वरूप^१ दर्शन भी उसे होता है । अतः भक्ति की उपमा चिन्तामणि से दिया । जिस भाँति चिन्तामणि का प्रकाश स्वाभाविक है । दीप के प्रकाश की भाँति आगन्तुक नहीं है । उसी भाँति भक्ति से स्वात्मानुभव प्रकाश स्वाभाविक है ।

१. प्रणिधानाद् भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिधानमात्रेण ।

तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतम समाधिफल च भवति ।

जिस भाँति चिन्तामणि से सब सुखो का लाभ होता है उसी भाँति भक्ति से भी सर्वाभीष्ट की सिद्धि होती है । अतः भक्ति स्वतः सब कुछ करने में समर्थ है । यथा :

राम भगति चिन्तामनि सुन्दर । बसइ गरुड जाके उर अंतर ॥
परम प्रकाश रूप दिन राती । नहि कछु चहिय दिया घृत वाती ॥
मोह दरिद्र निवट नहि आवा । लोभ वात नहि ताहि बुझावा ॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई । हारहि सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निवट नहि जाही । वसै भगति जाके उर माही ॥
गरल सुधा सम अरि हित होई । तेहि मनि विन सुख पाव न कोई ॥
व्यापहि मानम रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥
राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लव लेस न सपनेहुँ ताके ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माही । जे मनि लागि सुजतन कराही ॥

तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना : ऊपर दिखला चुके हैं कि ज्ञान विराग की स्थिति बिना भक्ति के नहीं होती । श्रीमद् भागवत माहात्म्य में ज्ञान विराग के अधीन होने का बड़ा सुन्दर उपाख्यान है । वृन्दावन में एक युवती सुन्दरी रुदन करती थी और दो वृद्ध पुरुष मृत्यु शय्या पर पड़े ऊर्ध्वश्वास ले रहे थे । नारदजी के पूछने पर मालूम हुआ कि वृद्ध युवती भक्ति है और दोनों चेतना रहित पुरुष ज्ञान विराग उसके पुत्र हैं । वृन्दावन में आने से भक्ति तो वृद्धा से तरुणी हो गयी । पर उसके पुत्रों का कोई उपकार नहीं हुआ । अन्त में नारद भगवान् के उद्योग से भागवत की कथा हुई और उससे ज्ञान विराग भी स्वस्थ हो गये । तात्पर्यार्थि यही है कि भक्ति से ही ज्ञान वैराग्य उत्पन्न होते हैं तथा उसकी कृपा से स्वास्थ्य लाभ करते हैं । जिसे भक्ति होती है उसे ज्ञान विराग स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं । यथा :

सब सुख खानि भगति तै माँगी । नहि जग कोउ तोहि सम बडभागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहि लहही । जे जप जोग अनल तट दहही ॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई । मागेहु भगति मोहि अति भाई ॥
सुनु विहंग प्रसाद अब मोरे । सब सुभ गुन बसिहहि उर तोरे ॥
भगति ज्ञान विज्ञान विरागा । जोग चरित्र रहस्य विभागा ॥
जानव तै सबही कर भेदा । मम प्रसाद नहि साधन खेदा ॥

तात : प्रश्न हुआ था ' कहहु सो भगति कहहु जेहि दाया । आदेश हो रहा है । जाते बेगि द्रवी मैं भाई । यहाँ भी प्रश्न से उत्तर में विशेषता है । अतः प्यार के शब्द : तात से सम्बोधन करते हैं । ऊपर भी ऐसा ही हो चुका है । पूछा था सकल कहहु समुझाई । उत्तर हुआ : थोरेहि मह सत्र कहउँ बुझाई । सुनहु तात । प्रश्न विराग के विषय में हुआ । उत्तर मिला : सुनहु तात सो परम विरागी । अतः निष्कर्ष यही निकला कि जहाँ प्रश्न से उत्तर में कुछ विशेष बात प्यार के कारण कहनी है वहाँ तात शब्द से सम्बोधन करते हैं ।

भगति अनुपम सुख मूला : भक्ति के तीन विभाग है : १. साधन २. भाव

और ३ प्रेम । जो करने से हो और जिससे उसके कारण नित्य सिद्ध भाव का हृदय में आविर्भाव हो उसे साधन भक्ति कहते हैं । द्रवीभूत चित्तवृत्ति में जब राम रङ्ग चढ़ जाता है तो उसे भाव भक्ति कहते हैं । जब श्रीराम चरण में क्षण क्षण अविच्छिन्न आसक्ति बढ़ती चले । गुणों की कामना न रहे । ऐसे परमानन्द शान्तिमय अनुभव रूप निरोध को प्रेमा भक्ति कहते हैं । १ साधन भक्ति यथा . भगति के कहीं बखानी । २ भाव भक्ति यथा भये काल बस जब पितु माता । मैं बन गयउँ भजन जन चाता । ३ प्रेमा भक्ति यथा : अविरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई । जो भगति सदा बनी रहे । जिसमें कभी व्यवधान पड़े ही नहीं । जिसमें अन्तराय का होना सम्भव ही नहीं वही अनुपम है । कर्म तो ऐसा हो नहीं सकता । क्योंकि उसका स्वरूप ही त्याग ग्रहणात्मक है । ज्ञान भी जीव में एक रस नहीं रह सकता । यथा जो सबके रह ज्ञान एक रस । ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस । परन्तु भक्ति ऐसी है जिसमें अन्तराय सम्भव नहीं । उसी को अविरल, अनपायिनी, सिद्धा, अनन्या आदि अनेक नामों से कहते हैं । उस पर माया का भी बल नहीं चलता । अतः वह अनूप है । सुखमूल है । यथा

राम भगति निरूपम निरपाधी । बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥

तेहि विलोकि माया सकुचाई । करि न सके कछु निज प्रभुताई ॥

अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी । जाचहि भगति सकलसुख सानी ॥

मिलइ भाव यह कि कृपासाध्य है क्रियासाध्य नहीं । अपने पुरुषार्थ से उसे कोई नहीं प्राप्त कर सकता । वह भगवान् के अनुग्रह से ही मिलती है । यथा अविरल भगति बिसुद्ध तब श्रुति पुराण जो गाव । जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव । भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिन्धु सुखधाम । सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ।

जो सन्त होहि अनुकूला भाव यह कि प्रभु प्रसाद से ही वह मिलती है । चाहे साक्षात् प्रभु द्वारा मिले । चाहे उनके अपर रूप सन्तों द्वारा मिले । विसुद्ध सन्त का समागम भी बिना प्रभु की कृपा सम्भव नहीं है । यथा :

सन्त बिसुद्ध मिलहि परि तेही । चितवहि राम कृपा करि जेही ॥

जिसके अङ्ग अङ्ग के प्रति वेदा ने लोको की कल्पना की है । उस प्रभु का दर्शन दुर्लभ है । स्वयं भगवान् कहते हैं

सुदुर्दशमिद रूप दृष्टवानसि यन्मम ।

देवा अप्यस्य रूपस्य नित्य दर्शनवाङ्क्षिण ॥

नाह वेदेन तपसा न दानेन न चेज्यया ।

शक्य एवविधो द्रष्टु दृष्टवानसि मा यथा ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन ।

ज्ञातु द्रष्टु च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परतप ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! तुमने मेरे जिस सुदुर्दर्श रूप का दर्शन किया है उसके दर्शन के लिए देवता भी सदा लालायित रहते हैं। वेद से, तप से, दान से या यज्ञ से कोई मेरा दर्शन इस भाँति नहीं पा सकता जिस भाँति तुमने पाया है। केवल अनन्य भक्ति से ही भक्त इस प्रकार से जान सकता है देख सकता है और मेरे में प्रवेश कर सकता है। सो विद्वत् रूप भगवान् समुद्र हैं। सबकी इन तक गति नहीं। यह पुरुषार्थ मेघरूपी सन्तो में ही है कि भगवान् की ही मङ्गलमयी मधुर मनोहर मूर्ति भक्ति को लाकर मिला दे। आनन्दकन्द भगवान् चन्दन के वृक्ष हैं। पर सर्पादि विघ्नबाहुल्य से कोई चन्दन वृक्ष तक जा नहीं सकता। पर यह सामर्थ्य सन्तरूपी मरुत् में ही है कि उसकी आनन्दमयी विभूति भक्ति को लाकर पुरुषार्थहीन प्राणी से मिला दे। इसलिए कहते हैं मिले जो सन्त होहि अनुकूल। यथा

मोरे मन प्रभु अस निस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥
रामसिन्धु धन सज्जन धीरा । चन्दन तरु हरि सत समीरा ॥
सब कर फल हरि भगति सोहाई । सो विनु सत न काहू पाई ॥
अस विचारि जोइ कर सतसगा । राम भगति तेहि मुलम बिहगा ॥

यह पाँचवें प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। अब प्रथम प्रश्न का उत्तर कहते हैं।

भक्तियोग साधना

भगति के साधन कहहुँ बखानी । सुगम पथ मोहि पावहि प्रानी ॥
प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥३॥

अर्थ भक्ति के साधनो को बखान करके कहता हूँ। इस सुगम पन्थसे मुझे प्राणी प्राप्त होते हैं। पहिल ही विप्र के चरणों में अति प्रीति हो और वैदिक रीति से अपने अपने कर्म में निरत लगे हो। ७२० वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।

व्याख्या भगति के साधन अविरल भक्ति का प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब जो पहले प्रश्न किया था मोहि समुझाउ वही मो देवा। सब तजि करौ चरन रज सेवा। उसका आरम्भ होता है। भाव यह कि जिस साधन से सुख सम्पत्ति परिवार और बढाई आदि का परित्याग करके सेववाई में जीव प्रवृत्त होता है उसका वर्णन किया जा रहा है। वे ही भक्ति का साधन हैं। ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान मनुष्य में स्वाभाविक है। वह छोटे छोटे बच्चा में भी पाया जाता है। निरीश्वरवाद अस्वाभाविक है। बड़ी कठिनता से गल उतरना है। फिर भी ईश्वर नहीं है ऐसा अभ्रान्त ज्ञान तो किसी को होता ही नहीं। उसके बिना जाने भी ईश्वर के अस्तित्व की धारणा छिपी छिपायी वही न वही उसके हृदय में पड़ी ही रहती है। तब ईश्वर की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना उसके लिए स्वाभाविक है। फिर भी मनुष्य जो ईश्वर की भक्ति नहीं करता उसका कारण यह है कि सुख सम्पत्ति परिवार

बड़ाई इत्यादि उसके बाधक हैं । इन बाधको को दूर करने से हृदय में स्वतः भक्ति का सञ्चार हो उठता है । यथा :

सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहीं सेवकाई ॥

ये सब राम भगति के बाधक । कहहि सत तव पद अवराधक ॥

अब प्रभु कृपा कहहु एहि भाँति । सब तजि भजनु करउँ दिन राती ॥

कहहु बखानी . भाव यह कि समझाकर कहता हूँ । क्योंकि प्रार्थना ही ऐसी है . मोहि समुझाई कहौ सोइ देवा । साधन के वर्णन में कुछ विस्तार करना ही पड़ता है । साधन अनेक होते हैं और उनके पूर्वपर का क्रम होता है । उनमें उलट फेर होने से सिद्धि में कठिनाई होती है और ठीक क्रम से चलने में सुगमता होती है और सिद्धि भी शीघ्र होती है । दूसरी बात यह कि ज्ञानपन्थ की भाँति यह अकथ कहानी नहीं है । जो न समझते ही बने न बखानते ही बने । यथा : सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत वनै न जात बखानी ।

सुगम पंथ : जिस मार्ग से चलने में विघ्नबाधा न हो । आयास न हो । वही सुगम पंथ है । इस पंथ पर चलनेवाली की रखवारी स्वयं भगवान् करते हैं । अतः उसे विघ्नबाधा दवा नहीं सकती और उसमें योग जप तप व्रत उपवासादि कष्टकर अनुष्ठान नहीं है । आप से आप समाधि सिद्ध होती है । भक्ति योग के पथिक को भगवान् के सहारे से पार का प्राप्त करना कठिन नहीं होता है । यथा :

ज्ञान पथ कृपान के धारा । परत खगेस होइ नहि वारा ॥

कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक ।

होई घुनाच्छर न्याय ज्यौ पुनि प्रत्यूह अनेक ॥

सोम कि चापि सकै कोउ तामू । बड़ रखवार रमापति जासू ॥

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥

सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधो । सहज बिमल मन लागि समाधो ॥

मोहि पावहि प्राप्ती एक व्यापक अविनाशी अविकारी सच्चिदानन्दधन ब्रह्म सबके हृदय में विद्यमान है पर उसकी प्राप्ति तो नहीं होती । यदि प्राप्ति होती तो जीव दीन दुखारी नहीं होते । काष्ठ में अग्नि तो अव्यक्तरूप से व्याप्त है पर मन से काष्ठ और अग्नि को पृथक् करने से अग्नि की प्राप्ति नहीं होती । उसकी प्राप्ति तब होगी जब यत्न से उस अव्यक्त अग्नि को व्यक्तरूप में लाया जाय । इसी भाँति अव्यक्त ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है । स्वयं हृदय में विराजमान है पर प्राप्ति उसकी नहीं होती । जब भक्ति द्वारा उसे व्यक्तरूप . सगुणरूप में लाया जाय तब उसकी प्राप्ति होती है । हीरे में मूल्य है पर हीरे से स्वयं तो कोई काम नहीं चलता । जब यत्न किया जाय और उसके कुव्यक्त मूल्य को व्यक्तरूप में लाया तब उससे काम चल सकता है । यथा .

सहे सुरन्ह बहुकाल बिपादा । नरहरि किये प्रगट प्रह्लादू ॥

एक दारुगत देखिय एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥

नाम निरूपन नाम जतन तैं । सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तैं ॥

प्रथमहि • भाव यह कि भक्ति पथ पर पैर रखनेवाल को पहिले साधन भक्ति को अङ्गीकार करना पडता है। प्रथमहि कहकर यह दिखलाया कि यहाँ जो कुछ कहा जायगा उसमें क्रम है। दूसरा तीसरा कहकर स्पष्ट न गिनाने पर भी क्रम समझ लेना चाहिए।

विप्र चरन अति प्रीति विप्र वेदपाठी ब्राह्मण को कहते हैं। ब्राह्मण में यदि ब्राह्मणोचित गुण न हो तो भी उसका कर्मठ होना अनिवार्य है। वेद विहीन ब्राह्मण शोच्य हो जाता है। अतः गोस्वामीजी ने विप्र शब्द का अधिक प्रयोग किया है। ब्राह्मण शब्द का अति विरल प्रयोग है। सो पहला साधन यह है कि विप्र के चरण में अति प्रीति हो। क्योंकि द्विज सेवकाई हरि तोषण व्रत है। विप्र के पूजित होने से भगवान् तुष्ट होते हैं। इसीलिए ये महिदेव कहलाते हैं।

अति प्रीति कहने का भाव यह कि उनसे शापित ताडित तथा अपमानित होने पर भी क्रोध न करे। उनकी पूजा ही करे। क्योंकि शील गुणहीन ब्राह्मण के भी पूजन का विधान है। गुण ज्ञान प्रबोध शूद्र के पूजन का विधान नहीं है। पूर्व जन्म के कर्मों से ही जाति आयु और भोग की प्राप्ति होती है। जो रमणीयाचरण है उनको रमणीय योनि की प्राप्ति होती है वे ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य होते हैं और जो कपूयाचरण है उनको कपूय योनि की प्राप्ति होती है वे चाण्डाल योनि या कुत्तों की योनि को प्राप्त होते हैं। अतः शील गुण रहित विप्र की पूजा वस्तुतः उसके पूर्व जन्म के रमणीयाचरण की पूजा है। जिसके विपाक से उसे ब्राह्मण शरीर मिला है और गुण ज्ञान प्रबोध शूद्र की अपूज्यता उसके पूर्व जन्म के कपूयाचरण का परिचायक रूप है। इस जन्म का रमणीयाचरण अभी परिपक्व नहीं हुआ है। आगामी जन्म में उसके आयु और जाति व भोग का कारण होगा। यथा

सुनु गन्धर्व कहीं मैं तोही। मोहि न सोहाय ब्रह्मकुल द्रोही ॥

दो मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।

मोहि समेत विरचि सिव बस ताके सब देव ॥

सापत ताडित परुष कहता। विप्र पूज्य अस गावहि सता ॥

पूजिअ विप्र शील गुण हीना। शूद्र न गुनगन ग्यान प्रबोना ॥

अतः जिस भाँति अश्वत्थ तुलसी आदि स्वयं अपने कल्याण सम्पादन में असमर्थ हैं। पर उनके पूजकों का कल्याण होता है। उसी भाँति शील गुण हीन विप्र अपना कल्याण करने में असमर्थ हैं। पर उनके पूजकों का कल्याण होता है।

निज निज कर्म निरस्त अपने वर्ण और अपने आश्रम के कर्म में लगा रहे। भाव यह कि शोक मोहादि दोषों से जिनका चित्त घिरा हुआ है ऐसे सभी प्राणियों से स्वधर्म का त्याग और निषिद्ध धर्म का सेवन स्वाभाविक हो जाता है तथा च सर्वप्राणिना शोकमोहादि दोषाविष्टचेतसा स्वभावत एव स्वधर्मपरित्याग प्रतिषिद्ध

सेवा च स्यात् । शा० भा० जैसे अर्जुन पहले स्वय ही क्षात्रधर्म रूप युद्ध में प्रवृत्त हुआ था । तब भी शोक मोह द्वारा विवेक ज्ञान के दब जाने से उस युद्ध से उपरत हुआ और दूसरो का धर्म भिक्षाचरण में प्रवृत्त होने लगा । अतः ब्राह्मण में जो अन्य जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है या हीन जाति में जो उच्च जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है । इसी भाँति सन्यस्त में जो गृहस्थ धर्म की प्रवृत्ति तथा गृहस्थ में सन्यास धर्म की प्रवृत्ति है । उसका कारण शोक मोहादि से विवेक विज्ञान का दब जाना ही है । दूसरी बात यह है कि जिनका सम्बन्ध ब्राह्मणों से टूट जाता है । उनसे वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह किसी भाँति सम्भव नहीं । मनु भगवान् ने स्पष्ट लिखा है कि यही के क्षत्रिय जो बाहर जाकर बसे । वे ब्राह्मणों से असम्बद्ध होने के कारण वर्णाश्रम धर्म से पतित होकर यवन, म्लेच्छ, पुलकस, किरातादि अवस्था को प्राप्त हो गये हैं । स्वधर्मत्याग से मनुष्य पतित हो जाता है । यथा

विप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ वृषली स्वामी ॥
सूद्र करहि जप तप व्रत नाना । बैठि वरासन कहहि पुराना ॥
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी । भजहि नारि नर पर पुरुष अभागो ॥
सौभागिनी बिभूषन हीना । विधवन्ह के सिंगार नवीना ॥
तपसी धनवत दरिद्र गृही । कलि कौतुक तात न जात कही ॥

इत्यादि ।

श्रुति रीति भाव यह कि वेद की रीति से जिसका जो कर्म है वही करे । दूसरा न करे । अदृष्टार्थ का ज्ञान वेद तथा तत्त्वचरणाश्रित शास्त्रों से ही हो सकता है । ईश्वर स्वर्ग या धर्म को किसी ने देखा नहीं । इनका ज्ञान अन्य किसी प्रमाणों से नहीं हो सकता । अचिन्त्या खलु ये भावा न तास्तर्केण योजयेत् । जो भाव अचिन्त्य हैं उन सब में तर्क को स्थान नहीं देना चाहिए । अतः धर्म कैसे पालन करना चाहिए इसे श्रुति ही बतला सकती है । लाखों मनुष्यों के एक स्वर के चिल्लाने से भी न कोई वस्तु पुण्य हो सकती है न पाप हो सकती है । करोड़ों आदमियों के एक साथ आवाज उठाने पर भी न शीशा हीरा हो सकता है और न हीरा शीशा हो सकता । इसका विवेक तो पारखी जोहरी ही कर सकता है । अतः कल्पित आचार न करे । जो कर्म एक के लिए धर्म है वही दूसरे के लिए अधर्म हो जाता है । इसलिए कार्याकार्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है । शास्त्र विधान को जानकर ही कर्म करना चाहिए । तस्मान्छास्त्र प्रमाण ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ । ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्त कर्म कर्तुमिहार्हसि । गीता १६ २४ । य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परा गतिम् । गीता १६ २३ । जो शास्त्र विधि को छोड़कर अपने मन का करते हैं उन्हें न तो सिद्धि मिलती है न सुख मिलता है । न उनको परा गति की प्राप्ति हाती है । श्रुतिरीति कर्म करने की यह है कि शास्त्रविहित कर्म को सग रहित होकर बिना रागद्वेष के फल की इच्छा न रखते हुए करे । तात्पर्यार्थ यह कि अपनी स्वाभाविकी प्रवृत्ति

को शास्त्रीया बनावे और उसे ऐसा दृढ बनावे कि उसके त्याग में उतनी ही कठिनता मालूम पड़े जितनी कि पहिले स्वाभाविकी प्रवृत्ति के त्याग में मालूम पड़ी थी । यथा :

सिखि दधीच हरिचंद नरेसा । सहे धरमहित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव वलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि संकट नाना ॥
में सोइ धर्म सुलभ करि पावा । तजें तिहूं पुर अपजस छावा ॥
संभावित कहें अपजस ताहू । मरन कोटि सम दाहन दाहू ॥

एहि कर फल पुनि विषय विरागा । तव मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवणादिक नव भक्ति दढ़ाही । मम लीला रति अति मन माहीं ॥४॥

अर्थ : इसका फल फिर विषय विराग है । तब मेरे धर्म में अनुराग उत्पन्न होता है । तब श्रवणादिक नव भक्तियाँ दढ़ होती हैं और मन मे मेरी लीला की अत्यन्त प्रीति होती है ।

एहि कर फल पुनि : भाव यह कि कार्यकारण शृंखला चल रही है । विप्रचरण प्रीति का फल श्रुतिरोति से स्वधर्माचरण । अब उसका फल कहते हैं । इसलिए पुनि शब्द का प्रयोग किया है ।

विषय विरागा : अर्थात् वशीकार संज्ञा वैराग्य प्राप्त होता है । जिसका वर्णन पहले किया है जा चुका है । भाव यह कि शास्त्रीया प्रवृत्ति दृढ होने से ही वस्तु विचार का उदय होता है । तब विषय के दोष परिणाम विरसत्वादि दिखायी पढ़ने लगते हैं । बिना दोष दर्शन के वैराग्य नहीं होता ।

तुरत विरत होके रोक के इन्द्रियों को
स्मरण मनन से भी नारि के जी हटाऊँ ।
सुरत विरसता को देह वीभत्सता को
प्रति दिन जिय सोचूँ काम यों नसाऊँ ॥

कमलदल से सूक्ष्म चर्म विरचि यदि मढ़ता नहीं ।
मांस के इस पिंड को त्वक् खोल में धरता नहीं ॥
गृद्ध काक शृगाल लोह मांस के भक्षक सदा ।
टूटते इस देह पर मिलते कहाँ रक्षक तदा ॥
कभी नहीं उपकार करेंगे किया नहीं करते ।
पुत्र किसी के भी क्या तेरे सुखद नहीं होते ॥
उनका विरह ममभेदी दुख है नाहक उनके ।
लिये बहुत सा मेहनत करना कष्ट बहुत सह के ॥
ब्रह्मा इन्द्र मुनीस सागर मही मन्वादि दीर्घायु हैं ।
वे भी लाख करोड़ होकर मरे ये जीव अल्पायु हैं ॥

वो है मोह अहो प्रकाश करता जो शोक का लोक में ।
बुदबुद से तनके लिये मिलन है जो पाँच का पाँच में ॥

प्रबोध चन्द्रोदय

वैराग्योदय की आवश्यकता दोनों मार्गों में अनिवार्य है । धर्म से विरति ज्ञानयोग प्रकरण में कहा गया है और यहाँ भी वही बात कही जा रही है । पर इसके बाद की प्रक्रिया में भेद है । ज्ञानमार्गी वैराग्योदय के बाद योग द्वारा 'तत् त्व पद शोधन करके सोहमस्मि वृत्ति से आत्मानुभव करते हुए चिज्जड ग्रन्थि को सुलझाकर मोक्ष लाभ करते हैं । पर सगुणोपासक यह रास्ता नहीं पकड़ते । वे मोक्ष नहीं चाहते । उन्हें सिद्धा भक्ति चाहिए । यथा

सगुण उपासक मोक्ष न लेही । तिन कहें राम भगति निज देही ॥

साधन सिद्धि राम पद नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥

तब मम धर्म श्री रामजी कहते हैं कि मेरा धर्म उनके धर्मों का पता उनके गुण श्रवण से ही लग सकता है । अतः उनके गुणगणों का श्रवण ही भगवद्धर्म है । यथा भगवद्धर्मश्च भगवद्गुणश्रवणं न तु धर्मबुद्ध्या तदनुष्ठानपर्यन्तं विवक्षितम् । भक्तिरसायने । अर्थ भगवद्धर्म भगवद्गुण श्रवण है । यहाँ धर्म बुद्धि से उसके अनुष्ठान तक की विवक्षा नहीं है । यथा तस्मात् केनाप्युपायेन मन कृष्णे निवेशयेत् । यहाँ केनाप्युपायेन का तात्पर्य यही है कि चाहे धर्मबुद्धि से अनुष्ठान करके चाहे न करके अर्थात् भगवद् गुण श्रवण से मन को भगवच्चरणों में लगावे । अतः कहते हैं

उपज अनुरागा भाव यह कि जब तक वैराग्य का उदय नहीं हुआ था तब तक तो विषय में अनुराग था । मन सदा विषय के धर्मों में ही आसक्त रहता था और जब विषय से विराग हुआ तो स्वभाव से ही भगवान् की ओर जायगा । उनके करुणा भक्तवत्सलतादि गुणों पर अनुरक्त होगा यहाँ से भाव भक्ति का प्रारम्भ हुआ । यथा

समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढाउ ।

मन मेरे मानै सिख मेरी । जी निज भगति चहै हरि केरी ॥

उर आनहि प्रभुकृत हित जेते । सेवहि ते जे अपन पौ चेतै ॥

दियो सुकुल जनम सरीर सुदर हेतु जो फल चारि की ।

जो पाइ पडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को ॥

यह भरत खड समीप सुरसरि थल भलो सगति भली ॥

तेरी कुमति कायर कलपवल्ली बहत विषफल फली ॥

इत्यादि ।

श्रवणादिक नव भक्ति १ श्रवणम् २ कीर्तन विष्णो ३ स्मरणम् ४ पाद सेवनम् ५ अर्चन ६ वन्दन ७ दास्य ८ सख्यम् ९ आत्मनिवदनम् । ये ही श्रवणादिक नव भक्ति हैं ।

१. श्रवण : १. नाम २. चरित्र ३. गुणादि के सुनने को श्रवण कहते हैं ।

१. नाम श्रवण यथा : वेगि विलम्ब न कीजिये लीजिये उपदेस ।

महाँ मत्र जपिये सोई जेहि जपत महेस ॥

२. चरित्र श्रवण यथा : लागी सुनै श्रवन मन लाई ।

आदिहि ते सब कथा सुनाई ॥

आसा बसत व्यसन येह तिन्हही ।

रघुपति चरित होइ तह सुनही ॥

३. गुण कीर्तन, यथा : सुनत फिरी हरिगुन अनुवादा ।

अव्याहत गति समु प्रसादा ॥

२. कीर्तन : १. नाम २. लीला और ३. गुणादि के गान को कीर्तन कहते हैं ।

१. नाम कीर्तन यथा : राम नाम महिमा सुर कहहीं ।

सुनि सुनि अवध लोग सुख लहही ॥

२. लीला कीर्तन यथा : वर तर कह हरि कथा प्रसगा ।

आवैहि सुनहि अनेक बिहंगा ॥

३. स्मरण : जिस किसी भाँति मन द्वारा सम्बन्ध को स्मरण कहते हैं । यह इतना बड़ा प्रबल साधन है कि इसके प्रभाव से भगवद्विरोधियों का भी उद्धार हो जाता है । यथा : उमा राम मृदु चित करुणाकर । बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर । देहि परम गति अस जिय जानो । अस कृपालु को कहहु भवानी । तथा तुलसी अपने राम को रोझि भजै चह खोज । खेत परे ते जामिहैं उलटी सीधो बीज । स्मरण यथा :

सुमिरत हरिहि साप गति बाधो । सहज विमल मन लागि समाधो ॥

सुमिरत रामहि तजहि जन तून सम विषय बिलासु ।

राम प्रिया जग जननि सिय कछु न आचरज तासु ॥

सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखेउ रामू ॥ इत्यादि ।

४. पाद सेवन : चरणों की पूजा सेवा । कुछ भक्त ऐसे हैं जो केवल चरणों का ही ध्यान पूजन करते हैं । कोई ऐसे हैं जो चरण चिह्नों का ही ध्यान पूजन किया करते हैं । यथा :

कर नित करहि राम पद पूजा । राम भरोस हृदय नहि दूजा ॥

आगे परा गीघ पति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

५. अर्चन : शुद्धि न्यासादि पूर्वाङ्ग निर्वाह पूर्वक उपचारों द्वारा मन्त्रों से पूजन को अर्चन कहते हैं । यथा :

तब मुनि हृदय घोर धरि, गहि पद वारहि वार ।

निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा विविध प्रकार ॥

६. वंदन : दण्डवत् प्रणाम यथा : सवृत् प्रणाम किये अपनाए ।

मगल मूल प्रणाम जामु जग मूल अमगल को सने । विनय,

पुनि मन वचन करम रघुनायक । चरन कमल वदी सत्र लायक ॥

मो ते होइ न प्रति उपकारा । वदी तव पद दारवारा ॥

७ दास्य मैं ईश्वर का विष्णु हूँ ऐसे अभिमान को दास्य कहते हैं । यथा
अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति भोरे ॥
मोर दास कहाइ नर आसा । करै तो वहुँ वहाँ विस्वामा ॥

८ सख्य सख्य के दो भेद हैं विश्वास और २ मित्रवृत्ति ।

१ विश्वास यथा है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि वहै लोग ।
भला भरोसी रावरो राम रीझिवे जोग ॥

२ मित्रवृत्ति तुलसी कहीहैं साँची रेख बार बार खाँची ।
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहीं ॥ विनय

९ आत्म निवेदन आत्मा शब्द का दो अर्थ पण्डिता ने माना है । एक तो अहन्तास्पद
देही और दूसरा ममतास्पद देह ।

देही यथा अब मैं जन्म सभ हित हारा । को गुन दोष न करै विचारा ॥
देह यथा । हृदय घाड मेरे पीर रघुवीरे ।

पाइ सजोवन जागि कहत यों प्रेम पुलकि विसराय सरीरे ॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरे ॥
सोभा सुख छति लाभ भूप कहँ केवल काति मोल हीरे ॥
तुलसी सुनि सौमित्रि वचन सब धरि न सकत धीरी धीरे ॥
उपमा राम लखन की प्रीति की क्यौं दीजै खीरें नीरें ॥

दृढाही भाव यह है कि श्रवणादिक नव भक्तियों का कर्तव्य रूप से शास्त्रों
में वर्णन है । अतः इनको गिनती साधन भक्ति में है । साधक इनका आचरण
स्वधर्मानुष्ठान समझकर करता आ रहा था । परन्तु अनुराग के बिना ये दृढमूलक
नहीं हो पाती थी । अब प्रभु के धर्मों में अनुराग उत्पन्न हो जाने से दृढमूलक
हो गयी ।

मम लीला रति लीला का अर्थ चरित्र है । भगवान् आप्तकाम हैं । अतः
किसी प्रयोजन का उद्देश्य रखकर उनकी प्रवृत्ति नहीं होती । उनका चरित्र उनकी
लीला है । परन्तु उनके चरित्र का कथन और श्रवण का उपयोग नवधा भक्ति के
कीर्तन और श्रवण प्रकरण में कहा जा चुका है । अतः यहाँ पर लीला से उनके
चरित्र के अनुकरण से तात्पर्य है । यथा खेलौ तहाँ बालकन्ह मीला । करौ सकल
रघुनायक लीला । श्रीमद्भागवत में भी प्रमाधिक्य से गोपियों द्वारा भगवान् के
चरित्र के अनुकरण का वर्णन है । यथा लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिका ।
अतः यहाँ मम लीला का अर्थ हुआ रामलीला ।

लीला और नाटक बहुत अशोभ समान होने पर भी एक वस्तु नहीं है ।
इन दोनों में उतना ही भेद है जितना कि बाजार में रखी हुई मूर्ति और स्थापित
मूर्ति में भेद होता है । लीला उपासना की दृष्टि से की जाती है । उसमें मुकुट पूजा

होती है। ब्राह्मण के बच्चों का श्रीराम लक्ष्मण के रूप में वरण होता है। और जब तक उनके सिर पर मुकुट रहता है तब तक उनकी पूजा प्रतिष्ठा भगवद्विग्रह के समान ही होती है। आज भी श्रीगोस्वामीजी के मन्दिर भदौनी काशी में प्रतिवर्ष रामलीला होती है। इससे पता चलता है कि ग्रन्थकार का लीला के प्रति कितना अनुराग था। लीला से उपासकों को असाधारण लाभ होता है। भक्तिरस के आविर्भाव के लिए तथा रस के अकुरित होने के लिए श्रीरामलीला वर्पाकृत्य है। आलम्बन उद्दीपनादि सभी सामग्री रामलीला से सुलभ हो जाती हैं।

अति मन माही . भक्तों की रामलीला में बड़ी प्रीति रहती है। बड़ा उत्साह रहता है। जिस मधुर मूर्ति की झाँकी श्रीरामलीला में हो जाती है उसका दृढमूलक छाप हृदय में बैठ जाता है। परम्परा के अनुसार श्रीरामलीला चर्प में एक बार आश्विन मास में होती है। परन्तु उसकी प्रीति मन में बराबर बनी रहती है और उन दिनों के लिए चित्त सदा लालायित रहता है जब कि लीला प्रारम्भ होती है। सुना जाता है कि ग्रन्थकार को श्रीअवध में रामलीला के व्याज से ही भगवद्दर्शन हुआ था। परतन्त्रता के दिनों में स्वातन्त्र्य की भावना की बड़ी भारी रक्षा श्रीरामलीला से हुई और आज भी धार्मिक भावों का प्रभाव जैसा जनता पर पड़ता है वैसा अन्य उपायों से सम्भव नहीं। हताश हृदयों में आशा लता को प्राण प्रदान तो रामलीला ही करती है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन कम वचन भजन दृढ नेमा ॥
गुरु पितु मातु वंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा ॥५॥

अर्थ : संत चरन पंकज से अत्यन्त प्रीति होती है। मनसा वाचा कर्मणा मेरा भजन दृढ नियम से : होता है। गुरु पिता वन्धु पति और देवता सब कुछ मुझी को दृढ सेवावाला जानता है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा : जब लीला द्वारा साधक प्रत्यक्ष देखता है कि सन्तों के परित्राण के लिए ही प्रभु अवतार धारण करते हैं। सन्तों के मिलने की इच्छा के सामने उन्हें राज्य तिलक फीका मालूम पड़ता है : वनवास श्रेयस्कर बोध होता है। जब लीला में प्रभु को सन्तचरणों में अवनत होते देखते हैं तब सन्तचरण पङ्क्ति से अति प्रेम न होना आश्चर्य है। जब श्रीमुख से सन्तों की स्तुति सुनते हैं तब उनके प्रति साधक का अत्यन्त अनुराग बढ़ता है। यथा :

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहँ । जिन्ह ते मैं उनके बस रहँ ॥
पद विकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ॥
अमितबोध अनीह मित भोगी । सत्य सार कवि कोविद जोगी ॥
सावधान मानद मद हीना । धीर धर्म गति परम प्रवीना ॥

दो गुनागार संसार दुख रहित विगत सदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह वहुँ देह न गेह ॥ इत्यादि ।

मुनि सुनु साधुन के गुन जे ते । कहि न सवैं सारदश्रुति ते ते ॥

छ कहि सक न सारद सेप नारद सुनत पद पवज गहे ।

अस दीनबन्धु वृपाल अपने भगत गुन निज मुख बहे ॥

परन्तु ऐसे सन्त महात्मा की पहिचान अत्यन्त कठिन है । बिना सन्तो के ससार चल नहीं सकता । वे सत्रको सत्र देशों में सुलभ हैं । परन्तु विषयी जीव को उनकी पहिचान नहीं । अतः उनकी प्राप्ति नहीं होती । उनकी प्राप्ति के लिए पुण्यपूज चाहिए । भगवान् की वृषा चाहिए । यथा

पुन्य पुज बिनु मिलहि न सता । सत सगति समृति कर अता ॥

पुन्य एक जग मह नहि दूजा । मन क्रम वचन विप्र पद पूजा ॥

सत विसुद्ध मिलहि परि तेही । चितवहि राम वृषा वरि जेही ॥

भगवान् भाववश्य हैं । इसलिए भाव भक्ति करनेवाले पर हरिवृषा होती है । उन्हें सन्त मिलते हैं और उनसे उनको भक्ति चिन्तामणि की प्राप्ति होती है । यथा

भाववस्य भगवान् सुख निधान करुणा अयन ।

तजि ईर्ष्या मदमान भजिय सदा सीता खन ॥

मोरे मन प्रभु अस विस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥

राम सिधु धन सज्जन धीरा । चदन तरु हरि सत समीरा ॥

सबकर फल हरि भगति सुहाई । सो बिनु सत न काहू पाई ॥

अस विचारि जोइ कर सतसगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहगा ॥

मन क्रम वचन भजन दृढ नेमा भाव यह कि पहले उसे श्रवणादिक नव भक्ति दृढ हुई थी । अब सन्तो के प्रसाद से मनसा वाचा कर्मणा दृढ नियम के साथ भजन प्रारम्भ हुआ । राम भगति के बाधको की आर से वृत्ति फिर गयी । यथा :

जरउ सो सपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ ॥

सनमुख होत जो रामपद कर इन कोटि सहाय ॥

मन क्रम वचन रामपद सेवक । सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥

अब साधक महात्मा पद को प्राप्त हुआ । जो मन में हो वही वाणी में हो । वही कर्म से हा । यह लक्षण महात्मा का है और मन में दूसरी बात हो वाणी से कोई दूसरी बात कहे और कर्म उन दोनों से पृथक् ही कुछ करे यह दुरात्माका लक्षण है । मनस्येक वचस्येक कर्मण्येव महात्मनाम् । मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । वाणी से भजन करना और मन दूसरी ओर रहे अथवा कर्म से भजन करना वाणी से कुछ दूसरी बातें करते रहना तथा मन से अन्य विषयो का ध्यान करते रहना यथार्थ भजन नहीं है । मन में भी भगवान् हो वाणी से भी उनकी स्तुति हो कर्म से उनकी परिचर्या होती रहे तब उस भजन का मन वच कर्म से भजन कहेंगे ।

दूसरी बात यह है भोजन की भाँति भजन भी हित है । अतः इसे नित्य नियम के साथ प्रीतिपूर्वक करना चाहिए । अन्यथा भजन का ठीक प्रभाव नहीं पड़ता । यथा

भोजन करिय तृपति हित लागी । जिमि मो असन पचव जठरागी ॥

असि हरि भगति सुगम सुखदाई । को अस मूढ न जाहि सोहाई ॥

गुरु पितु मातु : जिनके लिए स्वयं श्रुति भगवती कहती हैं मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । माता पिता आचार्य ये तानो ही देव हैं । ये ही तीनों अग्नियाँ हैं । इन्हीं की सेवा से लोक परलोक बनता है । इनकी आज्ञापालन में यदि बुरे रास्ते पर चलना पड़े तो भी अकल्याण नहीं होता । यथा •

गुरु पितु मातु स्वामि सित पाले । चलेहुँ कुमग पग परहि न खाले ॥

बन्धु पति देवा : बन्धु जो आड़े समय में काम आते हैं । यथा •

होहि कुठाय सुबधु सहायें । ओढ़िअहि हाथ असनिहुँ के धाये ॥

पति का अर्थ स्वामी है । जिसका सब भाँति छल छोड़कर सेवा का विधान है । यथा : भानु पीठि सेइअ उर आगी । स्वामिहि सर्व भाव छुट त्यागी । देवता इष्ट फल देनेवाले हैं । यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुक्ते स्तेन एव सः । गीतायाम् ३ १२.

यहाँ पर छ. को गिनाया है । और भी जितने प्रेम के पात्र हैं उन सबको भी समझ लेना ।

सब मो कह जानै . भाव यह कि सबकी ओर से ममता हटाकर श्रीरामजी से प्रीति करे । श्रीरामजी को ही माता पिता गुरु बन्धु स्वामी और देवता माने । अर्थात् माहात्म्य-ज्ञान युक्त मुहूर्त और सबसे अधिक स्नेह हो । यथा •

राम मातु पितु बन्धु सुजन गुरु पूजा परम हित ।

साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित्त ॥

देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति ।

जाति पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि मति ॥

परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम ते सकल फल ।

कह तुलसीदास अब जब कबहुँ एक राम त मोर भल ॥

दृढ सेवा : अर्थात् जिस साधक की सेवा दृढ़ हो गयी है । भाव यह कि जिसके लिए ऊपर लिख आये हैं : मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा । दृढ सेवावाला भक्त सब नाता : सम्बन्ध जोड़ने में समर्थ हो सकता है ।

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन वह नीरा ॥

काम आदि मद दम्भ न जाके । तात निरन्तर वस मै ताके ॥६॥

अर्थ : मेरे गुणों का गान करते हुए जिसके शरीर में रोमाञ्च हो जाय । गला भर उठे । आँसों से अश्रु की धारा बहे और काम आदि मद दम्भ जिसे न हो । हे तात ! मैं उसके वश में रहता हूँ ।

मम गुन गावत • भाव यह कि तब उस भक्ति की श्रीहरि में अविच्छिन्न मनोगति हो जाती है । उन्हीं का गुण बराबर गान रिया करता है । उन्हीं की

मूर्ति का ध्यान किया करता है। दूसरी कोई बात उसे अच्छी नहीं लगती और श्रीहरि को भी भक्तों का गान परम प्रिय है। उन्हीं का वचन है नाह वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न हि। मद्भुक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद। मैं न तो वैकुण्ठ में बसता हूँ और न योगियों के हृदय में बसता हूँ। हे नारद! जहाँ मेरा भक्त गान करते हैं मैं वहीं रहता हूँ। इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि वह गान स्वरताल युक्त मीठा हो। यह अभिप्राय होता तो कहते गायका यत्र गायन्ति। पर ऐसा नहीं कहते। अतः भक्ता का गान उन्हें प्रिय है। चाहे वह संगीत दृष्टि से कैसा ही हो।

पुलक शरीरा गद्गद गिरा नयन बह नीरा शरीर म रोमाञ्च होना गला भर आना आँखों से आँसू की धारा चलना। ये सब प्रेम में डूबाडूब होने के लक्षण हैं। यहाँ पर भक्तों के गानप्रिय होने का कारण कहते हैं। भक्त प्रेम में डूबाडूब है। वह प्रेम में मग्न होकर गान करता है। उसे लय स्वर ताल का पता नहीं। श्रीहरि ऐसे ही गान पर रीझ जाते हैं। भीतर के प्रेम के बाहरी लक्षण—पुलक शरीर गद्गद और नयन नीर हैं। यथा

कछु ह्वै न आई गयो जन्म जाय ।

अति दुलभ तनु पाइ वपट तजि । भजे न राम मन वचन काय ॥

रामविमुख सुख लह्या न सपनेहुँ निसिवासर तयो तिहुँ ताय ॥

सेये नहि सीतापति सेवक साधु सुमति भली भगति भाय ॥

सुने न पुलकि तन कहे न मुदत मन किये जे चरित रघुवस राय ॥

काम आदि मद दम्भ न जाके काम क्रोध माह लोभ मद दम्भ आदि दुरभिसन्धि हैं। जो किसी कामना से गान करता हो वह भ्रष्ट हो अर्थार्थी भक्त हो पर प्रमा भक्ति उसे नहीं है। जो मदसे गान करता हो कि मैं संगीत शास्त्र का आचार्य हूँ अथवा मुझसे गानेवाला दुलभ है उसे भी भगवद् गुणगान का कुछ फल तो होता ही है। पर प्रमभक्तिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। अथवा जो लोभ से गान करता है कि गान करने से मुझे कुछ मिलगा या जो दम्भ से गान करता है कि लोग मुझे भक्त कहेंगे उनका गान वैसा नहीं चाहे वह कितना ही लय सुर तानसे ठीक हो जो भगवान् को रिझा सके। अतः गान सभी अभिसन्धियों से रहित होना चाहिए। यथा प्रम भगति जल विनु रघुराई। अभिअन्तर मल क्यहुँ कि जाई।

तात प्रश्न है मोहि समुझाई कह सोइ देवा। सब तजि करौ चरन रज सेवा। और उत्तर हो रहा है तात निरतर बस मैं ताक। यहाँ भी उत्तर प्रश्न से कही अधिक विशेषता रखता है। इसलिए फिर तात सम्बोधन देते हैं।

निरतर बस मैं ताके श्रीमद्भागवत में दुर्वासा से स्वयं भगवान् ने कहा है कि हे ब्राह्मण! मैं भक्त के पराधीन हूँ। एक प्रकार से अस्वतन्त्र हूँ। अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। सो भगवान् ही भक्त के पराधीन रहते हैं। यथा

मनोगतिरविच्छिन्ना हरौ प्रेमपरिप्लुता । अभिसन्धिविनिर्मुक्ता भक्तिविष्णु-
वशंकरी । पञ्चरात्रे,

श्रीहरि मे अविच्छिन्न और अभिसन्धि रहित प्रेमपरिप्लुता मनोगति का
होना ऐसी भक्ति है जो हरि को वश मे रखती है ।

दो. वचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहि निहकाम ।

तिन्हके हृदय कमल महँ, करौ सदा विश्राम ॥१६.१०॥

अर्थ : जिन्हे मनसा वाचा कर्मणा मेरी ही गति है और निष्काम भजन
करते हैं उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ ।

व्याख्या : वचन कर्म मन मोरि गति : जिन्हे मनसा वाचा कर्मणा श्रीराम
की ही गति है दूसरा चारा नहीं वे ही जागते सोते भगवान् की शरण मे
रहते हैं । दूसरे से बोलना भी पडा तो सत्य प्रिय और विचारकर हित की बात
बोलते हैं । उन्ही को दुःख सुख प्रशंसा और गारी समान होती है । वे सबके
हितकारी और सबके प्रिय होते हैं । यथा :

सबके प्रिय सबके हितकारी । दुःख सुख सरिस प्रसमा गारी ॥

कहाँहि सत्य प्रिय वचन विचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥

तुम्हँहि छाड़ि गति दूसर नाही । राम बसहु तिन्हके मन माही ॥

भजन करहि निहकाम : वे ही भक्त निष्काम भजन कर सकते हैं जिन्हे
न तो परमार्थ की कामना है न गूढ़ गति जानना चाहते हैं । न उन्हें अणिमादिक
सिद्धि चाहिए और न किसी सङ्कट से विनिर्मुक्ति चाहते हैं । यथा :

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।

नाम सुप्रेम पियूष हृद तिनहु किये मन मीन ॥

तिनके हृदय कमल महँ : भाव यह कि उन्ही के हृदय की शोभा है । इससे
कमल को उपमा दी है । भ्रमर को भी उस कमल को छोड़ : दूसरि गति नहीं । वही
हृदय ऐसा है जहाँ भगवान् सगुण रूप से रहते हैं । निर्गुण रूप से तो उनका निवास
सभी हृदयो मे है । यथा :

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ॥

अस प्रभु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

करहुँ सदा विश्राम : जिनके हृदय में कुछ और कामनाएँ हैं उनके हृदय
मे सगुण रूप से प्रकट होने पर भी श्री हरि विश्राम नहीं कर पाते । उसकी रुचि
रखने के लिए सतत चञ्चल रहना पडता है । यथा . राम सदा सेवक रुचि राखी ।
वेद पुरान साधु सुर साखी । पर प्रेमाभक्तिवाले निष्काम भजन करते हैं । अतः
भगवान् को विश्राम उन्ही के हृदयमे मिलता है । उस प्रेमाभक्ति के भी चौदह
भेद श्रीवाल्मीकिजी ने कथन किया है । यथा :

- १ जिन्हके श्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारे सुभग सरि नाना ॥
 भरहि निगतर होहि न पूरे । तिनके हिय तुम्ह कहें गृह रूरे ॥
 २ लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहि दास जलधर अभिलाखे ॥
 निदरहि सरित सिंधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहि सुखारी ॥
 तिन्हके हृदय सदन सुखदायक । बसहु बधु सिय सह रघुनायक ॥
 ३ जसु तुम्हार मानस विमल हैंसिनि जीहा जासु ।
 मुक्ताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हिअ तासु ॥
 ४ प्रभु प्रसाद सुख सुभग सुवासा । सादर जासु लहइ नित नासा ॥
 तुम्हहि निवेदित भोजन करही । प्रभु प्रसाद पट भूपन धरही ॥
 सीस नवहि सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि विनय विसेपी ॥
 कर नित करहि राम पद पूजा । राम भरोस हृदय नहि दूजा ॥
 चरन राम तीरथ चलि जाही । राम बसहु तिन्हके मन माही ॥
 ५ मन्त्रराजु नित जपहि तुम्हारा । पूजहि तुम्हहि सहित परिवारा ॥
 तरपन होम करहि बिधि नाना । बिप्र जेवाइ देहि बहु दाना ॥
 तुम्ह ते अधिक गुरुहि जिय जानी । सकल भाव सेवहि मन मानी ॥

दो सबु करि मांगहि एक फलु रामचरन रति होउ ।

तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनदन दोउ ॥

- ६ काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
 जिन्हके कपट दभ नहि माया । तिन्हके हृदय बसहु रघुराया ॥
 ७ सबके प्रिय सबके हितकारी । दुख सुख सरिस प्रससा गारी ॥
 कहहि सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
 तुम्हहि छाडि गति दूसरि नाही । राम बसहु तिन्हके मन माही ॥
 ८ जननी सम जानहि पर नारी । धन पराव बिष ते बिष भारी ॥
 जे हरषति पर सपति देखी । दुखित होहि पर विपति बिसेपी ॥
 जिन्हहि राम तुम प्रान पिपारे । तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे ॥
 ९ स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम नात ।
 मन मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥
 १० अवगुन तजि सबके गुन गहही । बिप्र धेनु हित सकट सहही ॥
 नाति निपुन जिन्ह कह जग लोका । घर तुम्हार तिन्हकर मनु नीका ॥
 ११ गुन तुम्हार समुझहि निज दोषा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
 राम भगत प्रिय लागहि जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
 १२ जाति पाति धन धाम बडाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
 सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई । तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥
 १३ सरगु नरक अपवरगु समाना । जहँ तहँ दख धरे धनु बाना ॥
 करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि के उर डेरा ॥

१४ जाहि न चाहिअ कवहुँ कछु, तुम सन सहज सनेह ।
वसहु निरतर तासु मन, सो राउर निज गेह ॥

भगति जोग मुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिर नावा ॥

अर्थ : भक्तियोग सुनकर लछिमन को बड़ा सुख मिला । उन्होंने प्रभु चरणों में नमस्कार किया ।

व्याख्या : भक्तियोग भक्ति के साधन बहुबु बखानी से लेकर तिन्ह के हृदय कमल महँ करवँ सदा तक भक्तियोग है । भक्तियोग सब योगों में उत्तम है । स्वयं भगवान् ने कहा है योगिनामपि सर्वेषा मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मत । सभी योगियों में जो मुझमें मन लगाकर श्रद्धा पूर्वक मेरा भजन करता है वह सबसे बड़ा योगी है ।

मुनि अति सुख पावा भाव यह कि कर्मयोग और ज्ञानयोग सुनकर सुख मिला । पर भक्तियोग सुनकर अति सुख मिला । प्रभु मुख की वाणी सुनने से सकल भ्रम की हानि होती है । अतः भक्तियोग के अभ्रान्त ज्ञान से परम सुख की प्राप्ति हुई ।

लछिमन प्रभु चरनन्हि सिर नावा इसमें शिष्य की कृतकृत्यता कहा । मैं पूछों निज प्रभु की नाईं से उपक्रम करके प्रभु चरनन्हि सिर नावा से उपसहार करते हैं ।

एहि विधि गये कछुक दिन बीती । कहत विराग ग्यानगुन नीती ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वैराग्य ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये ।

व्याख्या : इस भाँति कहते सुनते कुछ दिन बीत गये । भाव यह कि अवधि का समय बहुत बीत गया । अब थोड़ा ही शेष है । उसमें भी कुछ दिन क्या कहते सुनते बीता । ये क्याएँ वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति विषयक थी । नीति में धर्मार्थ काम का सामञ्जस्य विधान होता है । सरकार का स्वभाव है कि भाइयों को शिक्षा दिया करते हैं । यथा राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहि नीती ।

३५ सूर्पणखा विरूप करण प्रसङ्ग

सूपनखा रावन के बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी ॥

पचवटी सो गइ एक वारा । देखि विकल भइ जुगल कुमार ॥२॥

अर्थ : सूर्पणखा नाम की रावण की बहन थी । जो नागिन जैसी भयानक और दुष्ट हृदय थी । वह एक बार पञ्चवटी गयी । दोनों कुमारों को देखकर विकल हो गयी ।

व्याख्या : सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूप प्रकरण आरम्भ हुआ । जैसे रावण

जगत् के रूलानेवाले थे वैसे ही उन्हें वहन विधाता ने दी थी । रावण के नाम से परिचय देकर उसका वैधव्य भी सूचित किया । जैसा रावण दुष्ट हृदय और सर्प की भाँति दारुण था । यथा जस पावन रावन नाग महा । उसी भाँति उसकी वहन भी साँपिन थी । रावण की बहिनी कहकर उसका प्रताप भी कहा । किसकी सामर्थ्य जो उसके प्रतिकूल आचरण करे । अहि से अहिनी अधिक दारुण होती है । रावण को दस सिर थे उसे दस नख सूप के से थे ।

वह कुलटा थी । घूमा करती थी । एक बार पञ्चवटी पहुँच गयी । मुनिजी के मन्त्र के साफल्य का समय आ पहुँचा । मुनिजी ने कहा था है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पचवटी तेहि नाऊँ । बास करहु तहँ रघुकुल राया । कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया । तदनुसार सरकार पञ्चवटी में बसे । वहाँ सूर्यणखा पहुँची । पादचिह्न की शोभा पर मोहित होकर अन्वेष्टण करती हुई राम लक्ष्मण के पास तक पहुँच गयी । दोनों भाई यद्यपि मुनिवेष में हैं पर हैं राजकुमार । वह कुलटा दोनों भाइयों पर मोहित हो गयी । अति कामासक्त होने से विकल हो गयी । उसने दोनों कुमारों को देखा । दोनों कुमारों ने उसे नहीं देखा ।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥

होइ बिकल सक मनहि न रोकी । जिमि रविमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥३॥

अर्थ हे गरुडजो ! स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही क्यों न हो विकल हो जाती है । मन को रोक नहीं सकती । जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य को देखकर द्रवीभूत हो जाता है ।

व्याख्या समान वयस्को में भ्राता, ज्येष्ठो में पिता और कनिष्ठो में पुत्र को भी देखकर विकल हो जाती हैं । उन्हें सम्बन्ध का भी विचार नहीं रह जाता । इनकी मनोहरता पर राक्षसी नारी आसक्त हो जाती हैं । यह नियम पतिव्रताओं पर लागू नहीं है । यथा 'उत्तम के अस बस मन माही । सपनेहु आन पुरुष जग नाही । इत्यादि ।

ऐसी राक्षसी नारियों को सम्बन्ध या वय का भी विचार नहीं होता । वे रूपमात्र देखती हैं । अग्निस्त्राव ही सूर्यकान्तमणि का द्रवीभूत होना है । उसी भाँति उनके मन में कामाग्नि प्रकट हो जाती है । स्त्री जाति सुलभ मान से अपने को रोकना भी चाहती हैं पर रोक नहीं सकती । सुवेष पुरुष दृष्ट्वा भ्रातर यदि वा सुतम् । योनि विलद्यति नारीणा सत्यं सत्य हि नारद । इसी बात को बड़ी पण्डिताई से गोस्वामीजी कह गये ।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहि जाई । बोली वचन बहुत मुसुकाई ॥

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा विचारी ॥४॥

अर्थ सुन्दर रूप धारण करके प्रभु के पास जाकर बहुत मुसकुराकर वचन

बोली । न तुम्हारे सा पुरुष है न मेरे समान स्त्री है । यह सयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है ।

व्याख्या सूर्पणखा महाविषट् रूप स्थूलोदरी करालाख्या थी । उसने माया से अपना सुन्दर रूप बनाया । जानती थी कि स्वाभाविक रूप से काम बिगड़ जायगा । ऐसा रूप बनाऊँ कि य भुज पर मोहित हो जायँ करहि उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप धरहि करि माया । सूर्पणखा मोहित तो दोनों भाइयो पर हुई थी । किन्तु प्रभु जानकर रामजी के पास गयी । स्वयं दूती बनकर आयी । शृङ्गार का प्रस्ताव स्वयं उसे ही करना है । अतः माया फैलाती हुई मुसकुराकर बोली । भाव यह कि स्मितपूर्वाभिभाषिणीवाली मुसकुराहट नहीं थी ।

उसका कहना यह था कि तुम और मैं दोनों अप्रतिम सुन्दर हैं । सीता भुज सी सुन्दरी नहीं है । यह तुम्हारे जोड़ की नहीं है । तुम्हारा इसका सयोग देवत् हो गया । तुम्हारा और मेरा सयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है । जेहि त्रिरंजि रंजि सीय सँवारी । तहि स्यामल वर रचेउ विचारी । ऐसा जनकपुर में स्त्रियो ने कहा था । वही भाव लिये सूर्पणखा अपने को कह रही है ।

मम अनुरूप पुरुष जग माही । देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाही ॥
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥५॥

अर्थ मेरे जोड़ का पुरुष ससार में नहीं है । मैंने तोना लोक खोजकर देख लिया । इसलिए अबतक कुमारी ही रह गयी । तुम्हें देखकर कुछ मन आकर्षित हुआ ।

व्याख्या अनुरूप वर मिलने की इच्छा कन्या के लिए स्वाभाविक है । सूर्पणखा कहती है कि मेरे अनुरूप तो वर ही ससार में नहीं है । मैं तीनों लोक में खोजकर देख चुकी । इससे स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि यह तीनों लोक में अपने लिए पुरुष खोजती फिरती है । इसका भाइ रण मदमत्त होकर तीनों लोक में फिरता है । उसे प्रतिभट नहीं मिलता रन मदमत्त फिरै जग घावा । प्रतिभट खोजत वतहुँ न पावा । और यह कामोन्मत्त होकर तीनों लोका में पुरुष खोजती फिरती है । पर कोई अनुरूप नहीं मिलता । जनकपुर की स्त्रियाँ परदे में रहनेवाली थी । अतः वे विचारी कहती हैं साभा अस कहूँ सुनियत नाही । वे देखना नहीं कहती । यह देखना कहती है । अतः इसका कुलटा होना ध्वनित है ।

सूर्पणखा पूरा युवती है । विवाह के काल का अतिक्रमण किये हुए है । ऐसी अवस्था में रामजी को उसके परपूर्वा होने का सन्देह न उठे । इसलिए इतने वर्ष तक कुमारी रहने का कारण बतलाती है कि किसी को देखकर मन ही नहीं माना । विवाह कैसे करे । अतः आज तक कुमारी ही हूँ । इस भाँति अपना स्वातन्त्र्य भी द्योतन किया । फिर भी स्त्री गुण सुलभ मान को कुछ बचाए हुए है । कहती है कि तुम्हें देखकर कुछ मन माना । पूरी तरह नहीं । अपने मन में यह न समझना कि मैं बड़ा सुन्दर हूँ । मैं तुमसे अधिक सुन्दरी हूँ । परन्तु जब कही मन नहीं मानता

तो जहाँ थोड़ा भी मानता है उसी में सन्तोष करना चाहिए। भाव यह कि लङ्का में स्त्री पुरुष के संयोग में मन मानना ही कारण है। किसी धर्म बन्धन या समाज बन्धन की आवश्यकता नहीं होती।

सीताहि चितइ कही प्रभु बाता । अहै कुँआर मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी । प्रभु विलोकि बोले मृदु बानी ॥६॥

अर्थ : सीताजी की ओर देखकर प्रभु ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुँआर है। लक्ष्मणजी के पास गयी। उन्होंने शत्रु की बहन जानकर प्रभु को देखकर कोमल वाणी में कहा।

व्याख्या : सीताजी की ओर देखने का भाव यह कि मेरे तो स्त्री है। मेरा भाई कुमार है। यहाँ पर शङ्का होती कि लक्ष्मणजी का विवाह हो चुका था। उन्हें कुमार कहने से तो मिथ्या भाषण हो जायगा। उत्तर यह है गो ब्रह्मर्षिसायां वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे स्त्रीषु नर्मविवादेषु नानृतं स्याद् जुगुप्सितम्। यहाँ स्पष्ट नर्मविवाद है। सूर्पणखा अपने को कुमारी बतला रही है। प्रभु ने नर्मविवाद में भी मिथ्या को स्थान न मिले इसलिए लक्ष्मण को कुमार कह रहे हैं। राजा के बेटे कुमार कहलाते हैं। चाहे विवाह हुआ हो चाहे न हुआ हो। यथा . देखि बिकल भई जुगल कुमारा। यहाँ रामजी को भी कुमार ही राजपुत्र होने से कहा गया। यहाँ सरकार का लक्ष्मणजी को कुमार कहना परिहास में भी सत्य की रक्षा का अद्भुत उदाहरण है। सीताजी की ओर देखकर सूर्पणखा को उत्तर देने के अनेक कारण हैं। पहिले तो यह कि उसने कहा था : यह संयोग विधि रचा बिचारी। उसके उत्तर में सीताजी की ओर देखते हैं कि संयोग जो होना था हो गया। मैं सस्त्रीक हूँ। दूसरा भाव यह कि रघुवशी के मन और दृष्टि को पराई स्त्री नहीं पाती। सूर्पणखा विद्युज्जिह्व की विधवा है। अतः इसकी ओर दृष्टि न देकर बातचीत के समय सीताजी की ओर देखते हैं। तीसरे यह कि दूसरी ओर देखकर बात करना अनादर सूचक है। चौथे यह कि इधर देखो : रुचिर रूप धारण करने पर भी ऐसी न बन सकी। मन माना कछु तुमहि निहारी : का उत्तर देते हुए कहते हैं : अहै कुमार मोर लघु भ्राता। वह भी मेरे सा ही है। उसे देखकर तुम्हारा मन मान जायगा : तुम अहिनी हो। यथा : दुष्ट हृदय दारुण जिमि अहिनी और वह तो साक्षात् अहीश है। यथा . जो सहससोस अहीस महि घर लखन सचराचर धनी।

सूर्पणखा राक्षसी थी परिहास नहीं समझ सकी। वह तो दोनों मूर्तियों पर आसक्त थी। नहीं बड़े छोटे ही सही। अतः वह लक्ष्मणजी के पास तुरन्त पहुँची और सब बात कहा। लक्ष्मणजी की दृष्टि को उसकी माया आवृत न कर सकी। उन्होंने जान लिया कि यह शत्रु : रावण की बहन है। यह लक्ष्मणजी का ऐश्वर्य है कि सूर्पणखा को देखकर उसे रावण की बहन उसके वेष बदलने पर भी पहिचान लिया। परन्तु अभी तो सीताहरण हुआ नहीं। रावण शत्रु कैसे हो गया? इसका उत्तर यह है कि रावण अधर्म में निरत था और भूतद्रोही था। इसलिए वह परम

शत्रु था । यथा : यस्त्वधर्मेण निरतः सर्वलोकविरोधकृत् । त रिपुं परमं विद्यात्
शास्त्राणामेव निर्णयः । नारद पुराणे । सरकार का रुख देखने के लिए उनकी ओर
देखते हैं । रुख देखकर समझ गये कि परिहास चलने देना चाहते हैं । अतः उससे
कोमल वाणी बोले ।

सुन्दरि सुनु मे उनकर दासा । पराधीन नहि तोर सुपासा ॥

प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा । जो कछु करहि उनहि सव छाजा ॥७॥

अर्थ : हे सुन्दरी ! सुनो मैं तो उनका दास हूँ । पराधीन हूँ । यहाँ तेरा
सुभीता नहीं । वे प्रभु हैं । समर्थ हैं । कोसलपुर के राजा हैं । वे जो कुछ करें सभी
शोभा देता है ।

व्याख्या : पहिले ही सुन्दरि सम्बोधन करते हैं । भाव यह कि तुम सुन्दरी
हो प्रत्याख्यान योग्य नहीं हो । पर कहूँ क्या, मैं तो उसका दास हूँ : जिनके पास
से तुम लौटो आती हो । तुम सुन्दरी हो । रानी होने लायक हो । दासी बनना क्यों
चाहती हो । भोग विलास के लिए स्वतन्त्र पुरुष चाहिए । मैं पराधीन हूँ और :
पराधीन सपनेहुँ सुख नाही । जिसे सपने मे भी सुख नहीं वह तुम्हे सुख कहाँ
से देगा ।

रामजी की ओर देखकर ही बोल रहे हैं । ये भी पराई स्त्री की ओर दृष्टिपात
नहीं करना चाहते । कहते हैं कि मैं दास हूँ और वे मेरे प्रभु हैं । एक रानी होने से
क्या हुआ ? वे समर्थ हैं । चाहे सौ रानी ब्याहे । इनके पिता को तीन पटरानी और
सात सौ रानियाँ थी, तुम दूसरी पटरानी होकर रहोगी । अतः उन्हें सात सौ ब्याह भी
फव्वता है । दास एक स्त्री को संभाल नहीं सकता । इसलिए बिना स्त्री का हूँ ।

सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धनु सुभ गति बिभिचारी ॥

लोभी जसु चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ए प्राणी ॥८॥

अर्थ : सेवक सुख चाहे, भिखारी मान चाहे, व्यसनी धन चाहे, व्यभिचारी
शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे, संशयी चार चाहे । ये प्राणी आकाश का दोहन
करके दूध चाहते हैं ।

व्याख्या : सब धर्मों से सेवक धर्म कठोर है । अतः सेवक को अपने सुख
की आशा ही न करना चाहिए । इसी भाँति भिखारी मान की आशा ही न करे ।
जिसे कुछ भी मान होगा वह भोख कैसे माँगेगा ? लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यों
जहाँ तहाँ सिरपद त्रान वज्र : ऐसा पुरुष मान की आशा कैसे करेगा । व्यसन में
धन का दुष्प्रयोग होता है । व्यसनी धन खोनेवाला है । अतः उसे धनी होने की
आशा छोड़ देनी चाहिए । परतियगामी को निश्चय नरक होता है । यथा : सुभ
गति पाव कि परतियगामी । उसे शुभगति की आशा करनी व्यर्थ है । लोभी का
प्रात काल कोई नाम नहीं लेता । उसका यश कैसा होगा । यह तो उदार के
हिस्से की चीज है । उसके लिए लोभी की आशा झूठी है । संशयी को दोनों लोक

मे से किसी मे सुख नही । नाय लोकोस्ति न परो न सुख सशयात्मन । गी ।
अर्थात् चारो फल मे किसी की प्राप्ति नही हो सकती । यहाँ गुमान शब्द का
अर्थ संशय है । यथा तुलसी जु पे गुमान को होतो वछू उपायु । तो कि जानकिहि
जानि जियँ परिहरते रघुराउ । अत संशयी वो चारो फल की आशा निराशा
ही है । चार से चार फल अभिप्रेत है । जैसे सोरह से सोलह शृङ्गार का ग्रहण
होता है । यथा नव सप्त साजे सुदरी सब मत्त करिवर गामिनी ।

अथवा गुमानी शब्द का अर्थ अभिमानी और चार शब्द का अर्थ दूत
किया जाय । भाव यह कि दूत चाहे कि मेरा अभिमान अधुण रहे यह भी
असम्भव है । जब कि हनुमान्जी ऐसे दूत को कहना पडा मोहि न कछु बाधे बड़
लाजा । कीन्ह चहुँ निज प्रभु कर काजा । निर्गलितार्थ यह है कि इन छवो की
आशाएँ झूठी हैं ।

पुनि फिर राम निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहि बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो वरई । जो तू न तोरि लाज परिहरई ॥९॥

अर्थ वह लौटकर फिर रामजी के पास आयी । प्रभु ने फिर उसे लक्ष्मणजी
के पास भेज दिया । लक्ष्मणजी ने कहा कि वही वरेगा जिसने लज्जा को तूण के
समान तोड़कर फेंक दिया हो ।

व्याख्या सूर्यपणखा लक्ष्मणजी के पास से फिरी कि ठीक है । दास से सुख
न मिलेगा । मेरा रानी होना ही ठीक है । भाई लङ्केश्वर है मैं कोसलेश्वरी बनूँगी ।
ऐसा सोचकर सरकार के पास गयी । तब उन्होंने समझाया कि रानी को सापत्न्य
दुख सहना ही पडता है । लक्ष्मण वैसा दास नहीं है । वह मेरा छोटा भाई है ।
वही कर्ता धर्ता है । वह कुमार रहे मैं दो दो व्याह कर लूँ । यह नहीं हो सकता ।
सूर्यपणखा ने समझा कि ठीक है । इनसे तो व्याह तो हो जाय । स्वयं मुझको ही
क्या घाटा है । मैं इन्हे लकर लङ्का चली जाऊँगी ।

यह सब साँचकर वह लक्ष्मणजी के पास आयी कि क्या हुआ मुझे दासी
रहना स्वीकार है । तब लक्ष्मणजी ने कहा तू बेहया है । जो बेहया हो वह तुझसे
व्याह करे । इस प्रकार तू कामातुर हो गयी है कि हम दोनो भाइयो म से किसी
पर तेरी स्थिरता नही । बड़े को चाहकर छोटे को चाह और छोटे को चाहकर
बड़े को चाहते तुझे लाज न आयी । मुझे तो अब तुझे उनके पास भेजने म भी
लज्जा आती है । इस भाँति कोरा जवाब लछिमनजी की ओर से मिल गया ।

तब खिसिआनि राम पहि गई । रूपु भयकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥१०॥

अर्थ तब खिसियाई हुई रामजी के पास गयी । और अपना भयङ्कर रूप
प्रकट किया । सीताजी को डरी हुई देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारे
से कहा ।

व्याख्या : कोरा जवाब पाकर खिसियाई कि रामजी ने जो इनके पास मेजा इसका अभिप्राय यह था कि मैं वेह्या प्रमाणित हो जाऊँ । रामजी ने मेरी दुर्गति की । दोनों में से कोई मुझे व्याहना नहीं चाहता । ये मजाक कर रहे हैं । आगे कहेगी भी : तासु अनुज काट्यो श्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करी परिहासा । अतः साम से काम न चलेगा । तब भयङ्कर रूप धारण करके सीताजी को खाने दौड़ी की यह मेरे मार्ग में कंटक है ।

सीताजी को समझ देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारा कर दिया । ऋग् यजु साम अथर्व कहकर उँगली से आकाश को काटा । भाव यह कि श्रुति और नाक काट दो । ऋगादि श्रुति है और श्रुति कान को कहते हैं । आकाश का नाम नाक है और प्राकृत में नासिका को नाक कहते हैं । यथा : वेदनाम कहि अंगुरिन्ह खडि अकास । पाठयो सूपनखाहि लखन के पास ।

दो. लछिमन अति लाघव सो, नाक कान विनु कीन्ह ।

ताके कर रावन कहूँ, मनौ चुनौती दीन्हि ॥१७.११॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसे बिना नाक कान की कर दिया । मानो उसके हाथ से रावण को चुनौती दे दी ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने ऐसी फुर्ती की कि वह जान न पायी कि कब लक्ष्मणजी आये और कब शस्त्र चलाया । वह नाक पर हाथ न रख सकी : यथा : अति लाघव उठाइ धनु लीन्ह । दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ । लेत उठावत खैचत गाढे । काहु न लखा देख सब ठाढे । यह सूर्पणखा का नाक काटना मानो रावण को चुनौती दी गयी कि तुम्हारे वहन का नाक कान मैंने काटा जो करना हो सो करो ।

यह कर्म लक्ष्मणजी का इन्द्र से भी अशक्य था । किसकी सामर्थ्य जो रावण के जोते सूर्पणखा की नाक काटे । नाक कान काटना कवि ने नहीं कहा । क्योंकि काटते किसी ने देखा नहीं एकाएक बिना नाक कान की हो गयी । इससे अनुमान हुआ कि नाक कान काटा गया । रावण की वहन है । इसलिए रावण को चुनौती लक्ष्मणजी ने दी ।

३६. खरदूषण वध प्रसंग

नाक कान विनु भइ विकरारा । जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥

खरदूषण पहि गइ बिलपाता । धिग धिग तव पौरुष बल आता ॥१॥

अर्थ : बिना नाक कान के विकराल हो गयी । मानो पर्वत से गेरु की धारा वह रही हो । विलाप करती हुई खरदूषण के पास गयी, बोली भाई ! तेरे पौरुष और बल को धिक्कार है ।

व्याख्या नाक ही मुख की शोभा है । सो नाक कान दोनों कट गये । भयङ्कर रूप तो उसका था ही । यथा - रूप भयकर प्रगटत भई । अब बिना नाक कान के विकराल हो गयी । पर्वताकार उसका शरीर नाक कान कटने से तीन धाराएँ रक्त की बहने लगी । ऐसा मालूम होने लगा कि मानो अञ्जन पर्वत पर से गेरु की तीन धाराएँ गिर रही हो ।

अब सूर्पणखा को प्रतिहिंसा वृत्ति उत्पन्न हुई । रोती चिल्लाती खरदूषण के पास गयी । खर इसका सगा भाई था । रावण के तुल्य बलवान् था और सन्निकट था । उसके पास पहुँचकर उसे धिक्कारने लगी कि तू जीता बैठा है और मेरी नाक कट गयी । तेरे बल और पौरुष को धिक्कार है । तेरे बल और पौरुष का जिसे भय होता वह मेरी नाक कैसे काटता ? वहन है । उसे अपने भाई के बल पौरुष का बड़ा भरोसा था ।

तेहि पूँछा सब कहेसि बुझाई । जातुधान सुनि सेन बनाई ॥
घाए निसिचर निकर वरूथा । जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥२॥

अर्थ उसने पूछा तो सब समझाकर बतलाया । सुनकर उस राक्षस ने सेना तैयार की । राक्षसों के झुण्डों की सेना दौड़ी जैसे पक्षवान् कज्जलगिरि के समूह दौड़ते हो ।

व्याख्या . खरदूषण ने पूछा कि किमने नाक काटी, क्यों काटी ? उसने समझा दिया कि अवध के राजा के लड़के हैं । मृगया के लिए वन में आये हैं । मुझे सुना कि रावण की बहन है तो मुझसे परिहास करने लगे । मेरे नाराज होने पर उसके छोटे भाई ने नाक कान काट ली । यथा .

राजा है अँवध को अँवधि बल विक्रम को
नाम राम श्याम सरसीरुह वरन हैं ।
सग सुकुमारि नारि तीर गोदावरी के
करँत विहार मुनिगन को सँरन है ॥
ताको लघुभाँय हाँय पाँय के सजाँय मेरो
रूप हरि लीन्ह्यो काँटि नासिकाँ श्रवन हैं ।
पिशित खियाँव ताँको शोणित पियाँव नातो
आँज दर्दमाँर मेरो निहिचित मरँन है ॥

खरदूषण ने सोचा कि राजा का लड़का है तो सहाय भी होगा । दुर्बल का इतना सामर्थ्य और साहस कहाँ कि इसकी नाक कान काट सके । अतः सेना साथ में रहनी चाहिए । अतः उसने सेना तैयार की । यूथपों को बुलाकर क्रमबद्ध होकर चलने का आदेश देना तथा योग्य सेनापति के अधीन कर देना यही सेना तैयार करना है ।

खरदूषण की आज्ञा की देर थी । राक्षसों का झुण्ड दौड़ चला । बड़ा उत्साह है युद्ध करने का, साथ ही स्वामी के बहन की नाक कटने पर अमर्ष भी है । राजा

का लडका मुलायम आहार है । इसलिए झुण्ड के झुण्ड दौड़ पड़े कि पहिले हमही . जाकर मार डालें । राक्षस सब विशाल थे और काले थे । इसलिए कज्जलगिरियूथ से उपमा दी और वे सबके सब दौड़ पड़े । इसलिए सपक्ष कह रहे हैं । पक्षहीन होने पर तो पर्वत अचल हो गये । ये सबके सब आसन्न मृत्यु है । इसलिए कवि : सहित प्राण कज्जलगिरि नहीं कह रहे हैं ।

नाना वाहन नानाकारा । नानायुध धर घोर अपारा ॥

सूर्पणखा आगे करि लीनी । असुभ रूप श्रुति नासा हीनी ॥३॥

अर्थ : नाना प्रकार के वाहन थे । नाना प्रकार का आकार था । नाना प्रकार के अपार घोर हथियार थे । उन्होंने अशुभ रूप नककटी कनकटी सूर्पणखा को आगे कर लिया ।

व्याख्या : सेना में नियम है कि आकार आयुध और वाहन एक सा होता है । पर राक्षसी सेना में यह नियम नहीं । उनके वाहन भी नाना प्रकार के, उनके आकार भी नाना प्रकार के, उनके हथियार भी अनेक प्रकार के हैं । वे हथियार ऐसे घोर हैं कि प्रतिद्वन्द्वी को उनका पार पाना कठिन है । भाव यह कि खरद्वेषण की सेना बड़ी विकट थी जो देवताओं को युद्ध में जीत चुकी थी ।

सर्वो ने सूर्पणखा को आगे कर लिया कि तू चलकर बतला कि शत्रु कहाँ है ? अथवा अब तू आगे आगे चल । देखें कोई क्या कर लेता है । इससे उनकी बुद्धि का नाश कहा । जब यात्रा के समय अमङ्गल रूप को आगे कर लिया तब उनके मङ्गल की कौन आशा है ।

असगुन अमित होहि भयकारी । गनहि न मृत्यु विवस सब शारी ॥

गर्जहि तर्जहि गगन उड़ाही । देखि कटकु भट अति हरपाही ॥४॥

अर्थ : अगणित भयङ्कर अपशकुन होने लगे । वे सबके सब मृत्यु के विवश हैं । इसलिए गिनते नहीं । वे गर्जते हैं । ललकारते हैं । आकाश में उड़ते हैं । सेना को देखकर वीर लोग बड़े प्रसन्न हो रहे हैं ।

व्याख्या : प्रकृति अपनी परिस्थिति द्वारा भविष्य का ज्ञापन कराती है । विचारशील पुरुष उससे लाभ उठाते हैं । यहाँ युद्ध यात्रा के समय असह्य भय सूचक अपशकुन हो रहे हैं । यथा - भट गिरहि रथते वाजि गज चिक्करहि भाजहि साथ ते । गोमायु गोध कराल खर ख्वान बोलहि अति धने । जनु काल दूत उलूक बोलहि चचन परम भयावने । परन्तु जिनका भविष्य चुरा रहता है वे इन अपशकुनों से सचेत नहीं होते । यथा : भयउ कालवस काहु न माना । कहेसि वजावहु जुद्ध निसाना । इसी भाँति ये सब काल के वश थे । अतः अपशकुन की परवाह न की । बल्कि गर्जते और ललकारते चले हैं । राक्षस होने से आकाश में उड़ने की शक्ति है । सेना ऐसी बनी हुई कि देखकर सुभटों को बड़ा हर्ष है । क्योंकि उनकी समझ में जीत निश्चित है ।

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई । धरि मारहु तिय लेहु छुडार्ई ॥
धूरि पूरि नभ मडल रहा । राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥५॥

अर्थ : कोई कहता है कि जीते जी दोनो भाइयो को पकड़ लो । पकड़ कर मारो और स्त्री छीन लो । आकाश में धूलि भर उठी । तब रामजी ने छोटे भाई को बुलाकर कहा ।

व्याख्या : मन में बड़ा हर्ष है । इसलिए मनोरथ भी बड़ा चढ़ा है । एक कहता है कि जीते जी पकड़ लो । वे हम लोगो से क्या लड़ेंगे ? वीर का जीते जी बन्दी हो जाना बड़े अपमान की बात है । दो ही भाई तो हैं । दो चार बार करें तो उसे सह लेना उनके चोट से हम मर तो जायेंगे नहीं पर पकड़ लो जीते जी । जिसमें स्त्री हरण का दुख वे अपनी आंखों देख लें । तब अपनी चाही हुई विधि से उनका वध करना । सूर्पणखा के नाक कान कटने का बदला तो तभी चुकेगा ।

सेना के चलने से धूलि उड़ती है । जिसके देखने से सेना के आने की सूचना मिल जाती है । यथा नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गये । यहाँ तो आकाश मण्डल धूरि से भर गया । सरकार ने देखा । बात समझ गये । यहाँ पहिला काम सीताजी का हटाना है । सीताजी की रक्षा में चित्त बँटा रहने से भली भाँति युद्ध न हो सकेगा । तब रामजी ने बुलाकर अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा । सीताजी से नहीं कहा । छोटा भाई कहने का भाव यह कि सरकार की भाँति वे भी युद्ध में समर्थ हैं । यथा अनुज निसाचर कटक सहारा ।

लै जानकिहि जाहु गिरि कदर । आवा निसिचर कटकु भयकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित श्री सर धनु पानी ॥६॥
देखि राम रिपुदल चलि आवा । बिहँसि कठिन कोदड चढावा ॥७॥

अर्थ : जानकी को लेकर पर्वत की कन्दरा में चले जाओ । राक्षसों की भयङ्कर सेना आ पहुँची । सावधान रहना ऐसी सरकार की वाणी सुनकर हाथ में धनुष बाण लेकर श्री : सीता के सहित चले ।

रामजी ने देखा कि शत्रु की सेना आगयी । हँसे और कठिन धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया ।

व्याख्या : सीताजी तो राक्षसी को देखकर डर गयी थी । सेना देखने पर इनकी क्या गति होगी । अथवा नाक कान काटने का बदला स्त्री हरण है । सो मुख्य चोट जानकी पर तथा तुम पर होगा । तुमने नाक काटा है । सो जानकी को लेकर तुम पहाड़ की गुफा में चले जाओ । वे न देख पावें कि तुम कहाँ हो । राक्षसी सेना के आने में विलम्ब नहीं है और वहाँ भी सावधान रहना । कन्दरा में जानकी रहे । द्वार पर तुम रहना । यदि राक्षस वहाँ तक पहुँच जायें तो उनका वध करना । लक्ष्मणजी की इच्छा जाने की नहीं । स्वयं युद्ध करना चाहते हैं । परन्तु प्रभु की वाणी को हटा न

अर्थ वगमेल आगये । पकड़ो पकड़ो कहते सुभट दौड़े । जैसे अकेला देखकर उदयकालीन सूर्य को दानव घेर लेते हैं ।

व्याख्या इतने अन्दाज से प्रभु ने युद्ध की तैयारी की कि इधर तैयारी समाप्त हुई और उधर शत्रु की सेना पहुँच गयी । घुड़सवारों का दस्ता जो बाग मिलाकर सेना के आगे चलता है अर्थात् अग्रगामिनि सेना आगयी । प्रभु को अकेला देखकर जीते ही पकड़ लेने के लिए पकड़ो पकड़ो ऐसी अवाज देते दौड़े और प्रभु को घेर लिया । कवि कहते हैं कि उस समय ऐसी शोभा हुई जैसे प्रातः काल दस सहस्र मन्देह नाम के दैत्य उदयकालीन सूर्य को घेर लेते हैं । पौराणिकी कथा है कि नित्य उदयकाल में दस सहस्र दैत्य सूर्यनारायण से युद्ध करने के लिए उन्हें घेर लेते हैं और मारे जाते हैं । ब्रह्मदेव के वरदान से फिर वे जी उठते हैं और नित्य सूर्यनारायण द्वारा मारे जाते हैं । सूर्यनारायण का कुछ कर नहीं पाते । बालरवि के साथ प्रभा भी नहीं चन्द्र भी नहीं रहते । इसलिए अकेला कहते हैं । यहाँ भी सरकार के साथ सीताजी भी नहीं और लक्ष्मणजी भी नहीं । अतः अकेले थे । पास जाने का साहस नहीं । मुख से पकड़ो पकड़ो कहते हैं । इसलिए चारों ओर से घेर लिया ।

प्रभु विलोकि सर सकहि न डारी । थकित भई रजनीचर धारी ॥

सचिव बोलि बोले खर दूषण । यह कोउ नृपबालक नर भूपण ॥१॥

अर्थ प्रभु को देखकर हाथ से बाण नहीं छूटता । राक्षसी सेना थकित रह गयी । तब मन्त्री को बुलाकर खरदूषण बोल कि यह कोई राजा का लड़का मनुष्यो का भूषण है ।

व्याख्या राक्षसा न दूर से घेरा डाल रखे हैं । सरकार तक शस्त्र की पहुँच नहीं है । बाण पहुँच सकता है । पर उसे चलाने का सामर्थ्य किसी को नहीं । प्रभु के देखने से साहस छूट गया । यह प्रभु की प्रभुता है । सबके सब स्थगित हो गये । यथा जिन वीथिन्ह विहरहि सब भाई । थकित होहि सब लोग लोगार्ह । लोग लोगार्ह थकित होते ही थे । आज रजनीचर धारी थकित हो गयी ।

खरदूषण ने देखा कि क्या मामला है । सेना रुक क्यों गयी ? सरकार को देखते ही बात समझ गया । मन्त्री को बुलवाया । ऐसे तेजस्वी के सामने जाकर सन्देश कहना भी सामान्य दूत का काम नहीं है । अतः मन्त्री को दूत बनाकर भेजना चाहता है । खर और दूषण का साथ बोलना कहकर दोनों का एकप्राण होना कहा । नृपबालक कहकर अल्पजल और अपरिपक्व बुद्धि होना द्योतित करता है । पर कहता है कि इन्हें देखने से आँखों को सुख मिल रहा है । अतः ये नरभूषण हैं । यथा नरभूषण लोचन सुखदाई । खरदूषण ने समझ लिया कि अपराध सूर्यपणखा का है । राजपुत्र हैं । व्यभिचारिणी समझकर दण्ड दिया है ।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखी नहि असि सुदरताई ॥२॥

अर्थ : नाग, असुर, सुर, नर और जितने मुनि हैं उनमें से कितनों को मैंने देखा है। जीता है और मार डाला है। पर हे भाइयो ! सुनते जाओ। मैंने ऐसी सुन्दरता नहीं देखी।

व्याख्या : जब सूर्पणखा तीनों लोक देख चुकी है तो खरदूषण के तीनों लोक को देख डालने में आश्चर्य ही क्या है ? अतः व्यवहार योग्य पाँच प्रकार की सृष्टि उसकी देखी हुई है। नाग असुर से पाताल लोक कहा। सुर से स्वर्गलोक कहा और नर और मुनि से मर्त्यलोक कहा। उनमें से जो बलवान् थे उन्हें जीता या मारा। पर हाथ कहीं रुका नहीं।

यहाँ हाथ रुक रहा है। अलौकिक सुन्दरता देखकर स्तब्ध है। अतः सबको सुनाकर कहता है कि जब से होश सँभाला ऐसी सुन्दरता नहीं देखी। उसके कहने का भाव यह कि तुम लोग भी सुन्दरता देखकर ही स्तब्ध हो प्रभुता से नहीं।

यद्यपि भगिनी कीन्हि कुरुपा । वध लायक नहि पुरुष अनूपा ॥

देहु तुरत निज नारि दुराई । जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ॥३॥

अर्थ : यद्यपि वहन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनूप पुरुष है। वध के योग्य नहीं हैं। अपनी छियाई हुई स्त्री दे दें और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाएँ।

व्याख्या : इन्होंने अपराध बड़ा भारी किया। हमारे वहन का नाक कान काटकर कुरूप बना दिया। इस कुरूप करण का दण्ड तो वध ही है। सूर्पणखा मनुष्य के लिए तो बड़ी भयावनी थी। पर राक्षसों की दृष्टि में वहाँ भी सौन्दर्य था। रावण ने जब स्वर्ग पर धावा किया था उसी समय लङ्का से सूर्पणखा का हरण हुआ था। अतः खरदूषण कहते हैं कि इतना अपराध करने पर भी इनका वध उचित नहीं है। ससार से शोभा उठ जावेगी। इन्हें दूसरा दण्ड देना चाहिए। यह अकेले ही दिखाई पड़ते हैं। स्त्री और भाई नहीं दिखाई पड़ते। अतः सिद्ध है कि इन्होंने उस स्त्री को छिपा दिया है। सो उस छिपाई हुई स्त्री को दे दें। यही दण्ड है। मैं दोनों भाइयों का प्राण नहीं मारूँगा।

मोर कहा तुम ताहि सुनावहु । तासु वचन सुनि आतुर आवहु ॥

दूतन्ह कहा राम सन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥४॥

अर्थ : मेरा यह कहना तुम लोग उसे जा सुनाओ और उसका वचन सुनकर शीघ्र लौट आओ। दूतों ने जाकर रामजी से कहा। सुनते ही रामजी ने मुसकुरा कर कहा।

व्याख्या : खरदूषण अङ्गुल्या निर्देश करके कहता है कि मेरा कहना तुम उसे जाकर सुना दो। यहाँ से कही हुई बात वह नहीं सुन सकता और तुरन्त आकर उसका उत्तर मुझसे कहो। खरदूषण के मन में सन्देह है कि रामजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने अपने भाई के साथ स्त्री को हटा दिया है और अकेले निर्भीक

युद्ध के लिए खड़े हैं। आतुर आवहु • कहने का भाव यह है कि जवाब सवाल न करना। जितनी कृपा मैं कर रहा हूँ वही बहुत है। सचिवगण ही दूत हैं। उन्होंने जाकर रामजी से कह डाला। दूसरे को इतना कहने का साहस न पड़ता। सरकार स्मितपूर्वाभिभाषी है। अतः स्वभावतः मुसकुराकर बोले अथवा उसकी चतुरता पर मुसकुराये कि बिना युद्ध किये ही जीत चाहता है। अथवा इस बात पर मुसकुराये कि इसने मुझे इतना नरम चारा समझ रक्खा है कि मैं स्त्री देकर सन्धि कर लूँगा। अथवा अपने दौर्बल्य को कृपा रूप दे रहा है अथवा उसकी कामुकता पर मुसकुराये कि इसे यदि सुन्दरी स्त्री मिल जाय तो बहन का नाक कान काटना कुछ नहीं।

हम छत्री मृगया बन करही। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरही ॥

रिपु बलवत देखि नहि डरही। एक बार कालहु सन लरही ॥५॥

अर्थ रामजी ने कहा हम क्षत्रिय है। वन में आखेट करते फिरते हैं। तुम्हारे ऐसे दुष्ट पशुओं को तो खोजते फिरते हैं। बलवान् शत्रु को देखकर डरते नहीं। एक बार तो काल से भी लड़ जाते हैं।

व्याख्या प्रभु कहते हैं कि ऐसी बात तो किसी राक्षस से कहनी थी। जो स्त्री प्रतिष्ठा से अनभिज्ञ हो। हम क्षत्रिय है। क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढ। जो क्षत से रक्षा करे वह क्षत्रिय है। नगर की रक्षा करके वन में आखेट करते हैं। खल मृग हिंसक जन्तु व्याघ्रादि को खोजते फिरते हैं। यदि कोई मिले तो कोसों उसके पीछे दौड़ते चले जाते हैं। तुम लोग भी पशु हो। आहार निद्रा भय मैथुन में ही आसक्त हो। धर्म से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। यथा . आहारनिद्राभयमैथुनश्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नैराणाम्। धर्मो हि तेषामधिक्को विशेष धर्मेण हीना पशुभिः समाना और पशुओं में भा दुष्ट पशु हो ऐसे पशु को तो हम लोग खोजते फिरते हैं। सो तुम लोग इतने हमें मिल गये हो। हम कैसे छोड़ सकते हैं ?

यदि कहो कि व्याघ्रादि मेरे सामने क्या है। हम बड़े बलवान् हैं। तो हम लोग भी डरनेवाले नहीं। क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलकु तेहि पामर आना। जौ रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहि सुखेन काल किन होऊ। काल से बली तो कोई नहीं। मैं उससे भी लड़ने को प्रस्तुत हूँ।

यद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक ॥

जौ न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मै हतौ न काहू ॥६॥

अर्थ यद्यपि मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ। मुनियों का पालन करनेवाला और खलो के हृदय में चुभनेवाला बालक हूँ। यदि बल न होता घर लौट जाओ। लड़ाई में पीठ दिखानेवाले किसी को मैं नहीं मारता।

व्याख्या नरभूषण का उत्तर देते हुए प्रभु कहते हैं कि साधारणतः मनुष्य राक्षसों के भक्ष्य हैं। पर मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ इससे

अपना अवतार होना भी ध्वनित किया । परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् । अथवा मारीच सुबाहु वध को ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं । यथा ये कौंसिक मख के रखवारे । जिन रन अजिर निसाचर मारे । अथवा अपनी प्रतिज्ञा को जनाया । जो अस्थि समूह देखकर किया था । निसिचर होन करउँ महि ।

ये कोउ नृप बालक का उत्तर देते हुए कहते हैं मुनि पालक खल सालक बालक । भाव यह कि खल वध का कारण मुनिपालन है । बिना खल वध के मुनि-पालन नहीं होता । साधुता से खल के स्वभाव के परिवर्तन की आशा मूर्खता है । अतः खलो का वध ही सच्ची अहिंसा है ।

प्रभु कहते हैं कि युद्ध करने के लिए चढ़ आये । तब युद्ध न करने में दो ही पक्ष हैं । या तो हम दुर्बल और कादर हो या तुम दुर्बल और कादर हो । सो मैं तो काल से लड़ने को तैयार हूँ । रह गया दूसरा पक्ष कि तुम निर्वल और कादर हो तो मेरा धीर व्रत है । पीठ दिखानेवाले पर शस्त्र प्रहार नहीं करता । घर लौट जाओ । मैं पीछा करके मारनेवाला नहीं हूँ ।

रन चढि करिअ कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ॥

दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ । सुनि खरदूषन उर अति दहेऊ ॥७॥

अर्थ लड़ाई पर चढ़ आकर अब कपट चतुराई करते हो । शत्रु पर दया करना तो भारी कादर का लक्षण है । दूतो ने जाकर तुरन्त सब कह सुनाया । सुनकर खरदूषन का कलेजा अत्यन्त जल उठा ।

व्याख्या . वध लायक नहीं पुरुष अनूपा का उत्तर । बिना लड़े ही जीत चाहते हो । सेना की दुरवस्था देखकर भीतर से भयभीत हो । बाहर से दया का रूपक दिखाते हो । केवल धमकी देकर स्त्री लेना चाहते हो । बात ऐसी करते हो कि लड़ाई न पड़े कपट चतुर नहीं होइ जनाई । मैं तुम्हारा शत्रु मैंने तुम्हारे बहन का नाक कान काटा । मेरे पर दया कैसी ? वस्तुतः तुम कादर हो । केवल बातें बनाते हो ।

जाने के समय जो वेग दूतो में था लौटने के समय वह न रह गया । पारा उतर गया । अतः जाना कहते हैं । आतुर आवहु आज्ञा थी । अतः जाइ तुरत सब कहेऊ । सुनकर सबका कलेजा जल उठा । खरदूषण के हृदय में तो अधिक दाह हुआ । इस पुरश्न से जो छन्द रूपी कमल निकला है । वह निम्नोक्त है ।

छ उर दहेऊ कहेऊ कि धरेहु धाए विकट भट रजनीचरा ।

सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिध परसु धरा ॥

प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा ।

भए बधिर व्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा ॥

अर्थ बलेजा जल उठा । बोले कि पकड़ लो । विकट भट राक्षस दौड़ पड़े । सब धनुष, बाण, भाला, बरछी, विशूल, तलवार, बेवैडा और गेंडासा लिये हुए थे ।

शर शक्ति तोमर शूल वृषाण परिघ और परशु की चोट सामने जाकर करते हैं। जिसे देखकर हाथ से बाण नहीं चलते थे मरण ठान लेने पर उन्हीं के सामने जाकर प्रहार कर रहे हैं। उनको भागते देखकर प्रभु ने बाण चलाना बन्द कर दिया था। प्रतिज्ञा भी है समरविमुख मैं हूँ न काहूँ। अब उनके सामने जय जाकर प्रहार करने लगे प्रभु ने प्रहार सहा।

पहिले भी कुपित थे। तब दूर से अस्त्र शस्त्र की वर्षा करते थे। अब परम कुपित हैं। अतः सन्मुख जाकर चोट करते हैं। प्रभु ने तब फिर धनुष पर बाण चढाया। दूसरी लड़ाई प्रारम्भ हुई। इस लड़ाई में लोहमय बाण नाराच छूटे। बिकट पिशाच कटने लगे। पिशितमाचमतीति पिशाच। मांस खानेवाले को पिशाच कहते हैं। ये ही सब मुनियो को खाये थे।

उर सीस भुज कर चरन। जहं तहं लगे महि परन ॥

चिक्करत लागत वान। धर परत कुधर समान ॥५॥

भट कटत तन सत खड। पुनि उठत करि पाखड ॥

नभ उडत बहु भुज मुड। विनु मौलि धावत रुड ॥६॥

खग कक काक सृगाल। कटकटहि कठिन कराल ॥७॥

अर्थ छाती, सिर, हाथ, भुजा और पैर जहाँ तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही चिगाडते हैं। घड पहाड की भाँति गिर रहे हैं। वीर लोग सौ सौ टुकड़े कटकर गिर रहे हैं और फिर माया करके उठते हैं। आकाश में बहुत सी भुजाएँ और सिर उड रहे हैं। बिना सिर के रुण्ड दौड रहे हैं। चील्ह, कौए, आदि पक्षी और गीदड भयङ्कर कटकट शब्द कर रहे हैं।

व्याख्या नाराच के चाट से पाँच पाँच खण्ड होकर कट रहे हैं। यह कोई विशेष विद्या वनेती की है। क्योंकि अन्यत्र भी नाराच चलने पर इसी भाँति कटना लिखा है। यथा जहं तहं चल बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिशाचा। कटहि चरन सिर उर भुज दडा। बहु तक बीर होहि सत खडा। जिन्हे देखो वे पाँच खण्ड होकर गिरते हैं।

बाणों का वेग और बढ़ा तो सात खण्ड या सौ खण्ड होकर गिरने लगे। जब पाँच खण्ड होकर गिरना कहा था वहाँ घड का पहाड की भाँति गिरना कहा। अब तो सौ खण्ड होकर गिर रहे हैं। अतः घडो का पहाड की भाँति गिरना नहीं लिखते। सौ खण्ड होने पर भी माया से सब खण्ड एकत्रित हो जाते हैं और वे सब उठ खडे होते हैं। यह नये प्रकार की माया है। ऐसी माया लङ्का के युद्ध में भी नहीं देखी गयी। तब प्रभु ने युद्ध की शैली बदली। भुज मुण्डों को काट काटकर आकाश में फेंकने लगे। जिसमें जुटने न पावें। तब बिना सिर के रुण्ड दौडने लगे।

अब रणभूमि मांस रुधिरमय हो गयी। हिसक जन्तु प्रकट हुए काक बक लै

भुजा उडाही । एकते छीनि एक लै खाँही । एक कहहि ऐसेउ सौंघाई । सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई । जवुक निकर कटकट कटहि । खाहि अघाहि हुआहि दुपट्टहि । जब रणभूमि मास रुधिरमय हो गयी तब हिसक जीव प्रकट हुए । बीभत्स रस का प्रादुर्भाव हुआ । शृगाल को कवि ने कठिन कराल कहा है । क्योंकि मरते हुए का मास नोचकर खाते हैं । एक दूसरे पर कटकटाते हैं कि यह तो मेरा आहार है तू कैसे यहाँ आगया ।

कटकटहि जवुक भूत प्रेत पिशाच खप्पर सचही ।
बेताल वीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नचही ॥
रघुवीर बान प्रचंड खडहि भटन्ह के उर भुज सिरा ।
जहँ तहँ परहि उठि लरहि धरुधरु धरुकरहि भयकर गिरा ॥१॥

अर्थ गीदड कटकटाते हैं । भूत प्रेत और पिशाच खप्पर में रक्त जमा करते हैं । वीर बेताल खोपड़ियों पर ताल देते हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं । रघुवीर के प्रचण्ड बाण योद्धाओं की छाती भुजा और सिरोको काट रहे हैं । वे जहाँ तहाँ गिरते हैं फिर उठकर लड़ते हैं और भयङ्कर शब्दों से पकड़ो पकड़ो कहते हैं ।

व्याख्या प्रेत लोक के घोर जीव भी आ डँटे । पेटभर खाया पीया । अब दूसरे दिनके लिए खप्पर भरकर रख रहे हैं । निश्चिन्त होने के बाद आनन्द का जलसा आरम्भ हुआ । बेताल वीर नट कपाल को बजाकर ताल दे रहे हैं और योगिनी नृत्य कर रही हैं । ये योगिनी भी एक प्रकार की प्रेत ही हैं । रुधिर पान से सब मत्त हो रहे हैं । योद्धा लोग जहाँ उठे कि तीन टुकड़े हुए । फिर भी वे माया से उठ खड़े होते हैं और लड़ने लगते हैं । सबके सब रण मद में मत्त हैं । मालिक ने पकड़ने की आज्ञा दी थी । अतः पकड़ो, पकड़ो, पकड़ो यही शब्द भयङ्कर ध्वनि से उच्चारण कर रहे हैं ।

अतावरी गहि उडत गीध पिशाच कर गहि धावही ।
सग्राम पुर बासी मनहु बहु बाल गुडी उडावही ॥
मारे पछारे उर विदारे विपुल भट कहँरत परे ।
अवलोकि निज दल विकल भट त्रिसिरादि खरदूपन फिरे ॥२॥

अर्थ अँतड़ियों को लेकर गीध उड़े जाते हैं । उन्हें पिशाच हाथ से पकड़े हुए दौड़ते हैं । मानो सग्रामरूपी पुर के रहनेवाले बहुत से बालक पतङ्ग उड़ा रहे हों । मारे गये । पृथ्वी पर गिराये गये बहुत से योद्धा बराहते हुए पड़ गये । अपनी सेना को विकल देखकर त्रिसिरा आदि खरदूपण लौटे ।

व्याख्या अति स्वभावतः लम्बी होनी है । फिर शैतान की अति तो बहुत लम्बी मुनी जाती है । सो उन्हें लेकर गीध उड़ चल । उनसे दूसरे गिरो को पिशाचों ने पकड़ लिया और दौड़ने लगे तो ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ मानो सग्राम भूमि ही

एक पुर है । वहाँ के रहनेवाले लडके पतङ्ग उड़ाते हो । सेना के कुछ लोग मारे गये । कुछ पछाड़ खाकर गिरे और बहुत से पड़े पड़े कराह रहे थे । खरदूषण त्रिशिरा ने देखा कि सेना समाप्त हो चली । तो स्वयं सरकार की ओर लौट पड़े । पहिले सैनिकों को प्रेरणा करके सरकार से लड़ने के लिए भेजते थे । यथा भये क्रद्ध तोनिउ भाई । जा भागि रन ते जाइ । तेहि बधव हम निज पान ।

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि वारही ।

करि कोप श्रीरघुवीर पर अगिनिति निसाचर डारही ॥

प्रभु निमिष महँ रिपु मर निवारि पचारि डारे सायका ।

दस दस बिसिख उर माँझ मारे सकल निसिचर नायका ॥३॥

अर्थ अगणित निशाचर श्रीरघुवीर के ऊपर बाण, धरछी, तोमर, फरसा, त्रिशूल और तलवार एक साथ ही फेंकने लगे । प्रभु ने क्षणभर में शत्रुओं के बाणों को दूर करके, ललकारकर बाण छोड़े । प्रत्येक राक्षसों के नायक के हृदय में दस दस बाण मार ।

व्याख्या तीसरी लड़ाई प्रारम्भ हुई । खरदूषण त्रिशिरादि वीर योद्धा भी अकेले सरकार से युद्ध करने का साहस नहीं करते । क्रोध से भरे हुए दूर से हथियार फेंक रहे हैं । हथियारों को वर्षा हो गयी । प्रभु वीरव्रत हैं । उनकी अस्त्र शस्त्र वर्षा का सहन करते हुए अपने बाणों से उसका निवारण किया और प्रत्येक सेनापति के हृदय में दस दस बाण मारे बहुतों के साथ युद्ध करते समयकी कोई प्रक्रिया है जिससे दस दस बाण प्रतिभटों के हृदय में लगते हैं । यथा दसदस सर सत्र मारेसि परे भूमि कपि वीर ।

छ महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी ।

सुर डरत चौदह सहस प्रेत विलोकि एक अवध घनी ॥

सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करचो ।

देखाहि परसपर राम करि सग्राम रिपुदल लरि 'मरचो ॥४॥

अर्थ पृथ्वी पर गिरते हैं और उठकर योद्धा फिर लड़ते हैं मरते नहीं । और घनी माया कर रहे हैं । देवता लोग चौदह सहस्र प्रेतों में अकेले श्री रामजी को देखकर डर रहे हैं । देवता और मुनियों को डरा हुआ देखकर मायानाथ ने बड़ा खेल किया कि एक दूसरे को राम देखते हुए सग्राम करके शत्रु की सेना लड़ मरी ।

१ यह सग्राम मृगशिरा नक्षत्र है प्रथम मृगशीरस को जलपात । गोजर बीछी साँप छट्ठदर वीर बहूटो चरत । पहिले कह आये हैं वर्षा घोर निसाचररारी । सो वर्षा के दसो नक्षत्र बरसोंगे । यह सग्राम पहिले नक्षत्र की वर्षा है । सुरकुल सालि सुमगलकारी है । यथा हरपित बरखाहि सुमन सुर, बाजहि गगन निसान ।

व्याख्या : ये वीर अमर मालूम पड़े । क्योंकि कटकर टुकड़े टुकड़े होकर तो पृथ्वी पर गिरते थे । परन्तु फिर उठ जाते थे । मरते न थे और अत्यन्त दुरुह माया करते थे । कवि उन्हें प्रेत कहते हैं । क्योंकि ये मर मरकर जीते हैं । देवताओं ने देखा कि ये चौदह हजार प्रेत हैं और अवधेश रामजी अकेले हैं । अतः डरने लगे कि देखें क्या होता है । सरकार ने देखा कि देवता और मुनि डर रहे हैं तो उनकी माया के जवाब में एक खेल कर दिया कि वे सब एक दूसरे को राम देखने लगे और आपस में ही कटकर मर गये ।

दो. राम राम कहि तनु तजहि, पावहि पद निर्वान ।

करि उपाय रिपु मारे, छन महै कृपानिधान ॥२०॥

अर्थ : राम राम कहकर शरीर छोड़ते हैं । निर्वाण पद को प्राप्त हो रहे हैं । इस भाँति उपाय करके कृपानिधान ने क्षण भर में शत्रुओं का सहार कर दिया ।

व्याख्या : एक दूसरे को शत्रु सेना के सैनिक राम देखने लगे । जो मारता है वह कहता है कि राम को मारा । जो मारा जाता है वह कहता है कि राम ने मारा । इस भाँति अन्तकाल में सबके मुख से राम नाम का उच्चारण हो रहा है । अतः सबको निर्वाण पद की प्राप्ति हो रही है । यथा : अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमा गतिम् । जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमौ मुकुत होत सुति गावा ।

सरकार कृपानिधान है । ऐसा उपाय किया कि अनायासेन सब राक्षसों का मोक्ष हो गया ।

दो. हरपित वरपहि सुमन सुर, वाजहि गगन निसान ।

अस्तुति करि करि सब चले, सोभित विविध विमान ॥१४.२०॥

अर्थ : प्रसन्न होकर देवता लोग फूल बरसाने लगे । आकाश में डड्डा बजने लगा । स्तुति करके सब देव आकाश में विमानों पर शोभायमान होकर चले ।

व्याख्या : देवता लोग डर गये थे सो हर्षित होकर फूल बरसाने लगे । राक्षसों से इतने भयभीत थे कि यहाँ पर तृणशाला भी बनाने नहीं आये थे । सो आकाश में डड्डा बजा रहे हैं । युद्ध देखने आये थे सो किमी ने नहीं जाना । अब जाते समय प्रत्यक्ष हो गये । आकाश में विमान पर शोभित हुए ।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते । सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥

तब लछिमन सीतहि ले आए । प्रभु पद परत हरपि उर लाए ॥१॥

अर्थ : जब रघुनाथजी युद्ध में शत्रु को जीत गये तब सुर नर मुनि सबका भय बीत गया । तब लक्ष्मण सीताजी को ले आये । पैर पड़ते हुए प्रभु ने हर्षित हो लक्ष्मणजी को हृदय से लगा लिया ।

व्याख्या : जब से सरकार पद्मवती में उड़े हैं मुनि लोगों का आस तो तैमो

दूर हो गया था। यथा जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती सा। अब जब शत्रुओं को रण में जीत लिया तब सुर नर मुनि सबका भय नाश हो गया।

आकाश में निशान बजा। देवताओं ने स्तुति की। जब लक्ष्मणजी ने सुनार युद्ध का कोलाहल शान्त हो गया तब समझ लिया कि जीत हो गयी। तब ताजी को लेकर लक्ष्मणजी आये। प्रभु के चरणों में नमस्कार किया। सरकार ने जय की खुशी में हर्षित होकर हृदय से लगाया। माधुर्य लीला है। रण सङ्कट से निर्मुक्त होकर भाई से मिल रहे हैं। चुनौती तो सरकार ने लक्ष्मण के हाथ से लाया। परन्तु युद्ध की धार को अपने ऊपर लिया।

ता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता ॥

चवटी वसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक ॥२॥

अर्थ : सीताजी श्याम मृदुगात को देख रही हैं। उन्हें परम प्रेम है। उनकी आँखें नहीं अघाती। पञ्चवटी में बसकर श्री रघुनायक सुर मुनि सुखदायक चरित रते हैं।

व्याख्या : आँखें दर्शन की प्यासी हैं। निज पानि मनि महुँ देखिअत मूरति रूप निधान की। चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भयबस जानकी। ही जानकी समर सङ्कट से विनिर्मुक्त देखकर श्याम मृदु गात को परम प्रेम से देख रही हैं और जी चाह रहा है कि देखा ही करें।

चित्रकूट का चरित सुर नर मुनि भावन था। यथा : करत जे बन सुर नर मुनि भावन। पर पञ्चवटी का चरित सुरमुनि सुखदायक है। वहाँ नर का निवास नहीं। अतः उनका नाम नहीं लिखा। राक्षस मुनियों को खा गये तो कोलकिरात को कैसे छोड़ते ?

३७. दशानन समाचार प्रसंग

धुआँ देखि खरदूषण केरा। जाइ सुपनखा रावन प्रेरा ॥

तोलि वचन क्रोध करि भारी। देस कोस के सुरति विसारी ॥३॥

अर्थ : खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा ने जाकर रावण को प्रेरणा देया। भारी क्रोध करके बोली कि देश और कोश की सुध विसराकर।

व्याख्या धुआँ अर्थात् शव या लाश। पहिले गिरकर उठ जाते थे। मरत न करत माया अति घनी। पर इस बार नहीं उठे। अतः सूर्पणखा ने जान लिया कि मर गये। तब जाकर रावण को प्रेरणा किया। ताके कर रावन कहँ मनी चुनौती दीन्ह। सो रावण तक चुनौती पहुँच गयी। पहिले खरदूषण को प्रेरा था : कुल में कुलटा उत्पन्न होने से कुल का नाश हो जाता है। दूसरा कोई रावण के प्रेरने में समर्थ नहीं था।

सूर्पणखा का खरदूषण पर क्रोध था । पर रावण पर भारी क्रोध था । इसी के कारण विधवा हुई । विधवा होने के कारण नाक कान कटा । बहन है इसलिए भारी क्रोध कर सकती है । नहीं तो : कर जोरे सुर दिसिप विनीता । राजा के लिए देश काल प्रधान है । सूर्पणखा रावण से कहती है कि तुझे दोनों की खबर नहीं । खरदूषण के मरने की खबर देने में आ रही हूँ । तुझे नहीं मालूम की देश में इस समय क्या हो रहा है । अब जनस्थान के कोष का भी कोई रक्षक नहीं रह गया ।

करसि पान सोवसि दिनु राती । सुधि नहि तव सिर पर आराती ॥
राजनीति बिनु धन बिनु धर्म । हरिहि समर्पे बिनु सत्कर्म ॥४॥
विद्या बिनु विवेक उपजाएँ । श्रम फल पढ़ें किये अरु पाएँ ॥
संग तेँ जती कुमन्त्र ते राजा । मान ते ग्यान पान ते लाजा ॥५॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहि वेगि नीति अस सुनी ॥६॥

अर्थ : तू शराब पीता है और दिन रात सोता है । तेरे सिर पर शत्रु है और तुझे खबर नहीं है । १. नीति के बिना राज पाने से २ और बिना धर्म के धन पाने से ३. भगवान् के समर्पण बिना सत् कर्म करने से ४. बिना विवेक उपजाये विद्या पढ़ने से केवल श्रम ही फल है । संग हो जाने से सन्यासी । १. कुमन्त्र से राजा २. मान से ज्ञान ३. और पान से लाज ४. बिना ईमानदारी के प्रीति ५ और मद से गुणी ६ शीघ्र ही नष्ट होते हैं । ऐसी नीति सुनी गयी है ।

व्याख्या : सूर्पणखा अपना दोष छिपाने के लिए सब दोष रावण के सिर मढ़ रही है कि तेरी असावधानी से तेरे शत्रु इतने बढ़ गये हैं कि आज उन्होंने मेरी नाक काट ली । तू देश कोष की सुरति बिसारकर मद्यपान करता है और रात दिन पड़ा रहता है । सर्वशोक हरा सुरा में मस्त रहता है । तुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है । तेरा शत्रु अयोध्या से चलकर जनस्थान पहुँच गया । अब यहाँ आना चाहता है । तुझे वह नहीं छोड़ेगा ।

तू नीति शास्त्र को अवहेलना करता है । मैंने जो नीति सुनी है उसे सुनाती हूँ । चार का श्रम ही फल होता है । छः का शीघ्र ही नाश होता है और छः को छोटा नहीं गिनना चाहिए ।

१. बिना नीति के राज्य प्राप्ति में जो श्रम होता है वही^२ फल है । क्योंकि राज्य तो रहेगा नहीं । यथा - राज कि रहै नीति बिनु जाने । २. बिना धर्म के अर्थ के उपार्जन में जो श्रम हुआ वही फल है । क्योंकि वह अर्थ अनर्थ है । टिकाऊ नहीं

१. यहाँ दीपकालङ्कार है ।

२ सत्कर्म यज्ञ बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये । आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पकौशलम् । कर्म वही है जिससे बन्ध न हो । विद्या वही है जिससे मोक्ष हो । दूसरे कर्म श्रम के लिए हैं और दूसरी विद्या शिल्प कौशलमात्र है ।

हो सकता । ३. बिना हरि के समर्पण किये सत्कर्म के अनुष्ठान में जो श्रम हुआ वही फल है । क्योंकि वह बन्ध का कारण है । ४. और बिना विवेक उत्पन्न हुए विद्योपार्जन में जो श्रम हुआ वही फल है । क्योंकि विद्या का फल ही विवेक है । मैं तो देखती हूँ कि तुम्हारे राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या के उपाजन का फल श्रम ही हुआ ।

१ सङ्ग से यती का शीघ्र ही पतन होता है । यथा : सब नृप भये जोग उपहासी । जैसे बिनु विराग संन्यासी ।

२ कुमन्त्र से राजा का शीघ्र ही पतन होता है । यथा : सचिव वैद गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस । राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिही नास ।

३ मान से ज्ञान का नाश होता है । क्योंकि : ज्ञान मान जहँ एको नाही । देख ब्रह्म समान सब माही ।

४ पान से तुरन्त लज्जा का नाश होता है । शराबी नङ्गे होकर नाचते बहुधा देखे गये हैं ।

५ बिना ईमानदारी के प्रीति का तुरन्त नाश होता है । यथा : बिलग होत रस जाय कपट खटाई परत ही ।

६ मद से गुणों का नाश होता है । यथा : अवगुन मूल सूलप्रद नाना । सकल सोक दायक अभिमाना ।

मैं देखती हूँ कि कुमन्त्र, मान, पान और मद से तेरे राज्य ज्ञान लज्जा और गुणों का नाश हो चला ।

दो रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गतिअ न छोट करि ।

अस कहि विविध बिलाप, करि लागी रोदनु करन ॥२१॥

अर्थ : शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, मालिक और सर्प को छोटा करके नहीं गिनना चाहिए । ऐसा कहकर अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगे ।

व्याख्या : ये छ. गूढ़ वीर्य हैं । इनका तुरन्त उपाय करना चाहिए । ये कथमपि उपेक्षणीय नहीं हैं । मैं देखती हूँ कि तुम अति प्रबल शत्रु की उपेक्षा कर रहे हो ।

ऐसा कहकर, छाती पीटकर, सिर कूटकर, जमीन पर पछाड़ खाकर रोने लगी । धैर्य धारण करके इतना नीति का उपदेश उसने इसलिए दिया जिसमें रावण समझे कि सूर्पणखा बड़ी विचारशीला है । इसने अनीति नहीं किया होगा । सब दाष राजपुत्रों का ही है ।

दो. सभा माँझ परि व्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ ।

तोहि जिअत दसकंधर, मोरि कि असि गति होइ ॥२१.१५॥

अर्थ : सभा के बीच में व्याकुल होकर गिर पड़ी और बहुत प्रकार से रोकर कहा कि दशकंधर ! तेरे जीते ही जीते मेरी क्या ऐसी दशा होनी थी ।

व्याख्या : बात और बड़ी अब सभा में गिर गयी और बहुत प्रकार से रोकर कहा कि तुम मर गये होते और मेरी नाक कटती तो मुझे सन्तोष होता । जिसको एक सिर होता है उसके जीते उसकी वहिन की नाक कोई काट नहीं सकता । पर तुझे दस सिर हैं । मुझे तैने विधवा किया । मुझे तो अब तेरी ही गति है ।

सुनत सभासद उठे अकुलाई । समुझाई गहि बांह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज वाता । केइ तव नासा कान निपाता ॥१॥

अर्थ : सुनते ही सभासद व्याकुल होकर उठे । उसे समझाया और बाहु पकड़कर उठाया । रावण ने कहा कि अपनी बात कह कि तेरा नाक कान किसने काटा ?

व्याख्या : रावण अपने स्थान से न हिला । पिछली बात से सबने पहिचाना । नहीं तो पहिले पहिचान भी नहीं सके थे । आकुल होकर सभासद उठे कि राजा की वहन की नाक किसने काटी और उसे समझाने लगे :

सूपनखे धीरज धरहि अनहोनी यह बात ।
किन कीन्ह्यो कैसे भयो यह दारुण उत्पात ॥
मिटिहि इद्र पद ब्रह्मपद रहिहि न नेक निसानि ।
दियो चुनौती कौन जग लकपतिहि लघु मानि ॥

इतना समझाने पर भी नहीं उठी । तब उसको भुजा पकड़कर उठाया ।

तब रावण बोले कि अपना हाल कह । मैं क्या करता हूँ उससे तुझे क्या प्रयोजन ? यह बतला कि तेरी नाक और कान किसने काटा ?

अवध नृपति दशरथ के जाए । पुरुष' सिंह वन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहि उन्ह के करनी । रहित निसाचर करिहहि धरनी ॥२॥

अर्थ : अयोध्या के राजा दशरथ के बेटे जो कि पुरुषों में सिंह है वन में अहेर खेलने आये हैं । उनकी करणी मुझे समझ पड़ी कि वे पृथ्वी को निशिचर हीन करेंगे ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने सूर्यणखा से कहा था : प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा और सरकार के मुख से सुन चुकी है : हम क्षत्रिय मृगया वन करही । अयोध्या के राजा दशरथ की ख्याति संसार में थी । यथा : जीति को सक संग्राम दशरथ के रन बाँकुरे । अतः उसने परिचय तदनुसार ही दिया और कहा कि उनकी करणी देखकर मुझे निश्चय हो गया कि वे पृथ्वी का निशिचरहीन किया चाहते हैं और कर डालेंगे । उन्होंने कहा था : हम क्षत्रिय मृगया वन करही । तुमसे खल मृग खोजत फिरही । वही कर दिखाया । करि उपाय रिपु मारे छन महें वृषानिधान । एक ने चौदह सहस्र का सहार किया और उनका कोई कुछ न कर सका ।

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन । अभय भये विचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुन नाना ॥३॥

अर्थ हे दशानन । जिनके भुजबल को पाकर मुनि लोग निर्भय होकर वन में विचरते हैं । देखने में तो बालक हैं । पर काल के समान हैं । बड़े भारी धनुर्धर हैं और उनमें नाना प्रकार के गुण हैं ।

व्याख्या तुम्हारा शासन उस देश से उठ गया । अब वहाँ उनका शासन चल रहा है । जो मुनि लोग निशाचरो के डर से छिपे फिरते थे वे अब आनन्द से वन में विचरते हैं । किसी का सामर्थ्य नहीं कि उनसे बोल सके । यथा जब ते राम कीन्ह तहँ वासा । सुखी भये मुनि बीती त्रासा ।

वे देखने में ही अल्पवयस्क हैं । राक्षसों के सहार करने में साक्षात् काल ही हैं । बड़े भारी धनुर्धर हैं । उनकी वाण विद्या के आगे किसी का किया कुछ नहीं होता । इसके अतिरिक्त भी अनेक गुण हैं । न जाने कौन विद्या कर दी कि सारी सेना आपस में ही कट मरी ।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता । खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के सग नारि एक स्यामा ॥४॥

अर्थ उन दोनों भाइयों के बल प्रताप का कोई तौल नहीं है । वे देवता और मुनि के सुख देनेवाले हैं और खलों के नाश में लगे रहते हैं ।

व्याख्या बल ऐसा है कि उनके धनुष का टङ्कार कोई सह नहीं सकता । यथा प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा । और प्रताप ऐसा है कि उनकी ओर देखा नहीं जाता । यथा प्रभु बिलोकि सर सकहि न डारी । दोनों भाई एक से एक हैं मुनि पालक खल शालक बालक इस भगवदुक्ति का अनुवाद करती हुई कहती हैं खल बध रत सुर मुनि सुखदाता । छवि पर आसेक ह । अतः सोभा धाम कहती हैं । राक्षस लोग उन्हें राम कहते थे । यथा राम राम कहि तनु तजहि । अतः कहती हैं राम अस नामा राक्षसों को नाम मालूम था । बहुत दिनों से नाम सुनते थे । सीताजी पर बड़ी डाह है । इसलिए परिचय देती है । तिनके सग नारि एक स्यामा । श्यामा भवति श्यामाङ्गी श्यामा षोडशवापिकी । अप्रसूता भवेत् श्यामा श्यामा मधुरभाषिणी । अप्रसूता और मधुरभाषिणी होने से श्यामा कहा । जानती हैं कि रावण को उसके नाक कान कटने की उतनी परवाह नहीं होगी । सुन्दरी स्त्री के लिए वह सब कुछ कर सकता है ।

रूप रासि विधि नारि सँवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे स्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहि परिहासा ॥५॥

अर्थ विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़

रति भी उस पर निछावर हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक कान काट डाले। मैं तेरो बहिन हूँ। यह सुनकर वे मुझसे हँसी करने लगे।

व्याख्या : रावण को कामुक जानकर सीताजी के रूप की प्रशंसा करती है। राम शोभाधाम नारि रूप राशि। राम के अग अग पर वारिये कोटि कोटि शत काम। नारि के लिए कहती हैं - रति सतकोटि तासु बलिहारी। उसे ब्रह्माजी ने अपने हाथ से सँवारकर बनाया है। तुम्हारे महल में ऐसी स्त्री एक भी नहीं है।

उसी राम के छोटे भाई ने नाक कान काटा। जब सुना कि मैं तुम्हारी बहिन हूँ तब मुझसे परिहास करने लगे। बड़ा कहने लगा कि छोटे से ब्याह कर लो। छोटा कहने लगा कि बड़े से ब्याह करो स्वयं ब्याह करने गयी थी इस बात को छिपा रक्खा। जब मैं चिढ़ी तो नाक काट लिया।

खर दूषण सुनि लगे पुकारा। छन महँ सकल कटक उन्ह मारा ॥

खर दूषण तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता ॥६॥

अर्थ : मेरी पुकार सुनकर खरदूषण सहायता करने आये। पर उन्होंने क्षण भर में सारी सेना को मार डाला। खरदूषण और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अग जल उठे।

व्याख्या : अन्याय सुनकर ही कमजोर की ओर से गोहार इकट्ठा होता है। सो खरदूषण हमारी पुकार सुनकर सब सेना लेकर दण्ड देने गये। सो करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। देखते देखते उन्होंने सबका सहार कर दिया। सकल कटक में खरदूषण त्रिशिरा भी आगये। नाक कान काटने से जलन न हुई। खर दूषण का मरना सुनकर जल भुन उठा। क्रोध से जलन होती है। पहिले अपना ही शरीर जलता है। शत्रु की हानि जब होगी तब होगी।

दो. सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।

गयउ भवन अति सोच बस, नीद परै नहि राति ॥२२.१६॥

अर्थ : उसने सूपनखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया। किन्तु वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महल में गया। उसे रात भर नीद नहीं पड़ी।

व्याख्या : समझाया कि हमारी ओर तो पूरा इन्तजाम था। १४००० सुभट के साथ खरदूषण तेरी रक्षा के लिए थे। जब उनको पता न लगा तो मुझे कैसे लग जाता? अब तो उन्हें दण्ड देना मेरा काम ठहरा। खरदूषण में केवल एक बल शारीरिक था। मुझे भुजबल, तपबल, अस्त्रबल, सेनावल, दुर्गबल, सब बल हैं। राम में क्या है?

बढ़ी भयानकता अधिक कटे नाक अरु कान।

अब केवल तब दरस ते मुनिगन तजिहँ प्रान ॥

देव यज्ञ गन्धर्व नर मुनिमैह नाक प्रधान ।
 भीमरूप निशिचरन मे कौन नाक की मान ॥
 तदपि देह वैरिहि तुरत उत्कट फल परिपाक ।
 करौ हवाले कालके जिन काटघौ-सब नाक ॥
 कौन बली या जगत् मे जो मोको समुहाय ।
 लोकपाल निज लोक ते मेरे भय भगि जाय ॥
 क्षण महँ एकाणव करौ कहा नान की बात ।
 देव दनुज को को कहै कालहु मोहि डरात ॥
 मैं तेरे रिपु को अभी डारत मूल बहाय ।
 जाहु सुखेन सुपेनपहँ करिहँ अवसि सहाय ॥

ऐसा कहकर दरबार बरखास्त कर दिया । अति सोच से रात नीद न आयी ।
 सो किमि सोअ सोच अधिकाई ।

सुर नर असुर नाग खग माँही । मोरे अनुचर कहँ कोउ नाँही ॥
 खर दूषण मोहि सम बलवंता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ॥१॥

अर्थ : विचार करने लगा । देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई
 ऐसा नहीं जो मेरे सेवक की भी बराबरी का हो । खर दूषण तो मेरे ही समान बलवान्
 थे । उन्हें भगवान् के सिवा और कौन मार सकता है ।

व्याख्या : रावण सोचता है : कुमुख अकम्पन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय ।
 एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय । ये सब हमारे अनुचर हैं । इन्हीं का
 कोई प्रतिभट नहीं है । जग में सुर नर असुर नाग खग हैं । ये ही पाँच पराक्रमी
 हैं । वे मेरे ही अनुचर के बराबर नहीं हैं ।

जीव में सामर्थ्य नहीं कि मेरे समान बलवान् को मार सके । ब्रह्मा सब जाना
 मन अनुमाना मोर कछू न बसाई । जीव मात्र के जय के लिए मेरे अनुचर यथेष्ट हैं ।
 मेरे अनुचर भी ईश्वर के ही मारे मर सकते हैं ।

सुर रंजन भंजन महि भारा । जौ भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
 'तउ मैं जाइ वयर हठि करऊँ । प्रभु सर प्राण तजे भव तरऊँ ॥२॥

अर्थ : देवताओं को आनन्द देनेवाले और पृथ्वी का भार हरण करनेवाले
 भगवान् ने यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु
 के वाण से प्राण छोड़कर भवसागर तर जाऊँगा ।

व्याख्या : महा पण्डित है । जानता है कि मुझसे देवताओं को कष्ट है । हम
 लोगों के कारण पृथ्वी का भार बढ़ गया है । ऐसे ही अवसरो पर अवतार होता है ।
 गुप्त अवतार भी होते हैं । यथा : वामनावतार, ईश्वर होकर यदि चाहे कि पता न

लगे तो कैसे लग सकता है । और जीवों में भी ऐसे बलवान कभी कभी हो जाते हैं कि राक्षसों को मार लेते हैं । यथा : तेहि के सत सुत अरु दस भाई । खल अति अजय देव दुःखदाई । प्रथमहि भूप समर सब मारे । विप्र संत सुर देखि दुखारे । अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अवतार हुआ है । यदि ईश्वर हैं तो वैर नहीं करेंगे । सूर्यपुत्रा कथित निरपराधता उसके मन में नहीं आयी । मैं हठपूर्वक वैर करूँगा । क्योंकि निर्वाणदायक क्रोध जाकर भगति अवसर्हि बस करी । रावण अपनी गति के लिए व्यग्र है । इतना ही रावण विभीषण में भेद है । विभीषण में निश्चयात्मिका बुद्धि है रावण में नहीं है । विभीषण भजन कर सकता है । रावण नहीं कर सकता । प्रभु शर से तीनों शरीरें नष्ट हो जाती हैं । यह प्रभु शर की विशेषता है ।

होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा ॥

जौ नररूप भूप सुत कोऊ । हरिहुँ नारि जीति रन दोऊ ॥३॥

अर्थ : इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं । अतएव मन वचन और मंत्र से यही दृढ़ निश्चय है । यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर स्त्री को हर लूँगा ।

व्याख्या : भजन करना ही सुगति का शास्त्रानुमोदित उपाय है । सो मुझसे होगा नहीं । वैर भली भाँति कर सकूँगा : मैं कौन सा काम भलीभाँति कर सकूँगा । इस बात को सोच निकालना साधारण पण्डिताई नहीं है । खूब विचार के बाद यही मन्त्र दृढ़ किया कि किसी की सलाह न मानूँगा । वैर करूँगा और यदि जिस पर मुझे अवतार का सन्देह है वह मनुष्य निकला तो जीतकर स्त्री हरण करूँगा : यद्यपि जीति पूर्वकालिक क्रिया है । इससे अर्थ निकला कि पहिले जीतकर पोछे स्त्री हरण करूँगा । पर इस पर कोई निश्चय नहीं है । निश्चय वैर करने में और स्त्री हरण करने में है ।

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ । बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥

रामजी की युक्ति

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई । सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥४॥

अर्थ : रावण रथ पर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला जहाँ समुद्र के तट पर मारीच रहता था । शिवजी कहते हैं कि : हे पार्वती ! यहाँ श्रीरामचन्द्रजी ने जैसी युक्ति रची वह सुन्दर कथा सुनो ।

व्याख्या : षट्कर्णों भिद्यते मन्त्रः । ऐसा नीतिशास्त्र का आदेश है । अतः अकेला चला । सारथि को भी साथ न लिया । बस मारीच सिंधु तट जहवाँ : से पता चलता है कि और भी विचार उसने किया । जो उसकी क्रिया से लक्षित होता है । लिखा नहीं गया । माया से वचने के लिए साधुओं को भी युक्ति करनी चाहिए । व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवम् भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः । वे मूढ़ हार जाते

है जो मायावी से माया नहीं करते सम्बोधन से शिवजी उमा को सावधान करते हैं।

दो लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कद ।

जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख वृद्ध ॥२३१७॥

अर्थ लक्ष्मणजी जब कन्दमूल फल लेने के लिए वन में गये तब कृपा और सुख के समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजी से बोले।

व्याख्या इधर प्रभु ने सोचा कि अब सूर्यपुत्र रावण के पास जावेगी। खर दूषण के व्यवहार से पता चल गया कि चोट सीताजी पर होगी। रावण सम्मुख संग्राम का साहस न करेगा। सीताहरण करेगा। रावण ने भी सबसे बात छिपायी। प्रभु भी लछिमन तक से बात छिपाते हैं। लक्ष्मण के जान लेने पर विलापादि न बन सकेगा। माया को प्रेरणा करना है इससे हँसे। रत्न की चोरी के लिए चोर चला। इधर रत्न बदल शीशा इमीटेशन उस स्थान पर रखवा जा रहा है। चोर को धोखा देना चाहते हैं। इसलिए हँसकर वाले। भगवती पर कृपा है। उन्हें दुःख में नहीं डालना चाहते। इससे कृपा सुखवृद्ध कहा।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला । मै कह्यु करबि ललित नरलीला ॥

तुम्ह पावक महँ करहु निवासा । जौ लगि करौ निसाचर नासा ॥१॥

अर्थ हे प्रिये ! हे सुन्दर पातिव्रत धर्मपालन करनेवाली सुशीले ! सुनो ! मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा। इसलिए जबतक मैं राक्षसों का नाश करूँ तबतक तुम अग्नि में निवास करो।

व्याख्या सरकार करुणानिधान हैं। सुजान हैं। भगवती के शील स्नेह को जानते हैं। यथा करुणानिधान सुजान शील स्नेह जानत रावरो। करुणानिधान हैं। अतः इस झमेले में उनको डालना नहीं चाहते। झमेला बड़ा है। लै जानकिहि जाहु गिरि कदर से काम न चरगा। कुछ दिन तक अलग रखना है और भगवती के स्नेह को जानते हैं। अतः कहते हैं सुनहु प्रिया। गुणग्राहक सुजान हैं। अतः व्रत रुचिर कहते हैं। भगवती के शीलको जानते हैं। अतः सुशीला कहते हैं।

शुद्ध माधुर्य की लीला ललित नरलीला है। अभी तक ऐश्वर्य मिश्रित लीला किया है। और शुद्ध माधुर्य में तुम्हें अत्यन्त कष्ट होगा। अधिक दिनों का विछोह होगा। हरण होगा राक्षसों की अश्लील बातें सुननी पड़ेंगी। अतः ऐसे समय में तुम्हारा साथ रहना ठीक नहीं है।

पावक मेरी ही विभूति है। वसूना पावकश्चास्मि तथा अग्निदेवानामवमो विष्णु। अतः उसमें निवास से सर्वथा मेरा वियोग न होगा और बिना पावक में निवास किये प्रतिबिम्ब की उत्पत्ति न होगी। पावक सन्निधान विद्या से बायस्कोप में प्रतिबिम्ब का खेल देखा जाता है। निसिचर नाश के समय तक तुम्हारे प्रतिबिम्ब से काम लिया जायगा। शपथ लेने के समय तुम अग्नि से प्रकट होना।

जबहि राम सबु कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ॥

निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता । तैसेइ सील रूप सुविनीता ॥२॥

अर्थ • श्रीरामजी ने ज्या हो सब समझाकर कहा । त्यो ही श्रीसीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में धरकर अग्नि में समा गयी । सीताजी ने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी । जो उनके जैसे ही शील स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी ।

व्याख्या रामजी ने कहा रावण चल पडा तुम्हारे हरण के लिए । यदि छल में कृतकार्य न होगा तो बल से हरण चाहेगा एवं रावण वध हो जायगा । परन्तु निश्चिन्त रहने महि न हो सकेगी । अतः निश्चिन्त रहने महि करने के लिए यह आवश्यक है कि तुम्हारा हरण हो । कम से कम रावण यह समझे कि मैंने सीता हरण कर लिया । प्रभु पद हृदय में धारण करती हैं आधार के लिए । अग्नि में लय हो गयी । क्योंकि अग्नि से ही प्रकट होना है ।

सब समझाकर कहा । अतः अपना प्रतिबिम्ब छोड़ती गयी । देवयोनि में यह सामर्थ्य है । अथवा योग से भी अनेक शरीर प्रकट किया जा सकता है । बिम्ब और प्रतिबिम्ब के रूप में तो भेद नहीं होता । यहाँ तो शील और विनय में भी भेद नहीं था ।

लछिमनहूँ येह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भागवाना ॥

३८ दशकन्धर मारीच बतकही प्रसङ्ग

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वार्थ रत नीचा ॥३॥

अर्थ भगवान् ने जो कुछ लीला रची इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नहीं जाना । स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया ।

व्याख्या यह मर्म प्रभु और भगवती के ही बीच में रहा । सादृश्य ऐसा था कि लक्ष्मणजी भी नहीं समझ सके कि भगवती बदल गयी । नारद शाप नारि बिरह तुम होव दु खारी । का अभिनय लछिमन के जान जाने से नहीं हो सकता था । लछिमन बन्द मूल लेकर लौटे । देखा कि पहिले की तरह दोनों सरकार बैठे हैं । जबतक रावण मारीच के पास न पहुँचा तबतक यहाँ से सीताजी हटा दी गयी । लछिमनजी के लौट आने के बाद रावण मारीच के पास पहुँचा । तबतक अपने ही रूप में रहा । अतः दशमुख कहते हैं । अथवा दसो सिर झुकाया । उसके एक प्रणाम में दस प्रणाम हैं । नीच का जब स्वार्थ आ पड़ता है तब ऐसे ही प्रणाम करते हैं । यथा करि विनती पद गहि दस सीसा । बोला वचन सुनहु जगदीसा ।

नवनि नीच के अति दुखदाई । जिमि अकुम धनु उरग विलाई ॥

भय दायक खल के प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥४॥

अर्थ : नीच का झुकना अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे अकुश धनुष साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी ! दुष्ट की मीठी वाणी भय देनेवाली होती है। जैसे बिना ऋतु के फूल।

व्याख्या : नीच का मिलना दुःखदायी है। यथा मिलत एक दारुण दुःख देही। और नवनि : अति दुःखदायी है चाहे दूसरे की प्रेरणा से नमन करे। यथा अकुश धनु। चाहे स्वेच्छा से नमन करे। यथा उगर बिलाई। भाव यह कि यह प्रणाम मारीच के प्राण लेने के लिए है। यह नीच है। उसका कहना न मानेगा केवल स्वार्थ से प्रणाम मात्र करता है। यथा वान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहि मानेहि नीचा।

खल प्रिय वाणी नहीं कहते बचन बज्र जेहि सदा पियारा। वे यदि प्रिय वाणी बोलें तो सावधान होना चाहिए। यह प्रिय वाणी प्राण घातक है। कुसुम बड़ा सुहावना होता है। वह कुसुम वसन्त में ही फूलता है। यदि अन्य ऋतु में फूले तो अनिष्ट सूचक है। रावण ने मधुर वाणी से अभिवादन किया। आगे दिखाया जायगा कि उसने अकुश धनु उरग और बिलाई की भाँति आचरण भी किया।

दो करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।

कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयेहु तात ॥२४१८॥

अर्थ तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदर पूर्वक बात पूछी हे तात ! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अत्यन्त अकेले क्यों आये हैं ?

व्याख्या राजा का आगमन है। अतः पहिले पूजा की। तब बड़े आदर से बात पूछी। सब बातें मधुर भी बोलते हैं। उलटी हैं। मन से अति व्यग्र हैं और अत्यन्त अकेले भी हैं। यथा अति अकेल बन विपुल कलेसू। राजा का दो चार के साथ रहना भी एकान्त ही समझा जाता है। किसी के साथ न रहना अति अकेल है। मनसा वाचा कर्मणा व्यग्रता दिखलायी। दशरथजी ने विश्वामित्र की पूजा करके तब आने का कारण पूछा। भुसुण्डिजी ने भी गरुडजी से ऐसा ही किया। यही सदाचार है।

दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे ॥

होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि विधि हरि आनौ नृपनारी ॥१॥

अर्थ भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही : और फिर कहा तुम छल करनेवाला कपट मृग बनो। जिस उपाय से मैं उस राजवधू को हर लाऊँ।

व्याख्या दशमुख कहने का भाव यह कि दसो दिशा में देखता जाता है कि हमें कोई देखता तो नहीं। चोरी खुलने का डर है। रावण ने किसी से सत्र कथा

नही कही । सूर्पणखा का नासिका छेदन केवल मारीच से कहा । सो भी भव भजन पद विमुख अभागो ने अभिमान के सहित कहा । यथा सूर्पणखा का घोखे में नाक कान काटा । खर दूषण ऐसे मूर्ख थे लडने गये राम से सो आपस में ही लडकर मर गये । अब अकुश देता है । होहु कपट मृग तुम छलकारी । धनु की भाँति लक्ष्य स्थिर करता है जेहि विधि हरि आनी नृपनारी ।

उपाय में परिवर्तन कर रहा है । बलप्रयोग के साथ स्त्रीहरण का सकल्प छोड़ दिया । स्त्रीहरण करके हठपूर्वक वैर करना यही निश्चय हो गया । कहने लगा कि तुम मायावी हो । कपट मृग बनो । मृग बनकर छल करो । अकुश का काम कर रहा है महा मत्त गजराज कहँ वसकर अकुश खर्व । अब धनुष का लक्ष्य वेध काम करना है जेहि विधि हरि आनी नृपनारी । वहिन के नाक कान काटने का यही उत्तर है । अर्थात् वह विधि भी तुम्ही को ठीक करना पड़ेगा जिसमें लछिमन भी वहाँ से हट जायें । व्यग्रता के उत्तर में सकल कथा कही ।

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा । ते नररूप चराचर ईसा ॥

तासो तात वयर नहि कीजै । मारे मरिअ जिआएँ जीजै ॥२॥

अर्थ तब मारीच ने कहा हे दशशीश । सुनिये । वे मनुष्यरूप में चराचर के ईश्वर हैं । हे तात । उनसे वैर न कीजिये । उन्हीं के मारने से मारना और उनके जिलाने से जीना होता है ।

व्याख्या तेहि पुनि बोलने का मुहावरा है । यथा मैं पुनि निज गुरु सन सुनो । विशेष बात कहने के अर्थ में पुनि का प्रयोग है । सकल कथा तेहि आगे कही सहित अभिमान का उत्तर मारीच देता है कि अभिमान जीव से चलता है ईश्वर से नहीं । तुमने चराचर से वैर किया । यथा तुम सुर असुर चराचर जीते । पर चराचर के स्वामी से वैर न करो ।

मारे मरिअ जिआएँ जीजै उन्हे मारने जिलाने दोनों का अधिकार है सुबाहु को मारना चाहा मार डाला । मुझे भी मार डालते । मैं तो उन्हीं का जिलाया जीता हूँ । जेहि विधि हरि आनउ नृपनारी का उत्तर यही है कि नारी का हरण करना और अपने काल को बुलाना एक ही बात है ।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा । विनु फर सर रघुपति मोहि मारा ॥

सत योजन आएउँ छन माँही । तिन्ह सन वयर किए भल नाँही ॥३॥

अर्थ यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये थे । उस समय श्री रघुनाथजी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था । जिससे मैं क्षण भर में सौ योजन पर आ गिरा । उनसे वैर करने में भलाई नहीं है ।

व्याख्या होहु कपट मृग तुम छलकारी का उत्तर देता है कि मैं उनका बाण नहीं सह सकता । तब तो कोमल अवस्था थी । अब तो प्रौढ़ हुए होगे । मैं विघ्न करने गया था । वे रक्षा करने गये थे । फर सहित मारते ता मैं भी मर

जाता । उस वार छोड़ दिया । इस वार मार ही डालेंगे हम लोगो से लड़ने बिना सेना के गये थे ।

बिनु फर बाण राम तेहि मारा । सत योजन गा सागर पारा । भयानक बाण का वेग है । हम शत योजन फेंकना क्या साधारण बल की बात है । छलकारी मृग क्या बनेंगे ? वहाँ कोई विधि बैठने की नहीं । एक बाण में मामला तय है । ऐसे प्रबल पुरुषार्थी के साथ वैर न करो । यद्यपि तुम्हारा भला वैर करने ही से हुआ है । लका वैर से मिली । पुष्पक वैर से मिला । यहाँ तो मृत्यु ही मिलनी है ।

भइ मम कीट भृग की नाई । जहँ तहँ मै देखऊँ दोउ भाई ॥

जौ नर तात तदपि अति सूरा । तिन्हहि विरोधि न आइहि पूरा ॥४॥

अर्थ मेरी दशा तो भृगी कीड़े की सी हो गयी है । जहाँ तहाँ श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखने लगा और है तात । यदि वे मनुष्य हैं तो भो बड़े शूरवीर हैं । उनसे विरोध करने में पूरा न पड़ेगा ।

व्याख्या भृग से छोटा कीट चारा ओर भृग ही भृग देखता है । उसी भाँति मेरी बुद्धि में विकार आगया । अत्यन्त भीत हो गया था । बाण लगने के पहिले दोनों भाइयों को देखा था । वे ही दोनों सब जगह दिखाई पड़ने लगे । मेरा सामर्थ्य उनके बाण के सामने जाने का नहीं है ।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन कहता है मैं तो नर नहीं मानता । यदि नर भी मान लो तो अतिशय हैं । सबके विरोध से पूरा पडा । भुजबल बिस्व वस्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्त्र । परन्तु इनसे पूरा न पड़ेगा ।

दो जेहि ताडका सुबाहु हति, खडेउ हर कोदड ।

खर दूषण तिसिरा वधेउ, मनुज कि अस वरिवड ॥२५१९॥

अर्थ जिसने ताडका और सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुष तोड़ दिया और खर दूषण और त्रिशिरा का वध कर डाला । ऐसा प्रचण्ड बली कहीं मनुष्य हो सकता है ।

व्याख्या ये चारा अमानुष कर्म थे । ताडका वध से मुनि ने चीन्हा । यथा तत्र मुनि निज नाथहि जिय चीन्हो । सुबाहु वध से देव मुनि ने चीन्हा । यथा अस्तुति करहि देव मुनि वृंदा । धनुष भग से तुलसी ने चीन्हा । यथा कोदड भजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारही । खर दूषण वध से सूपनखा ने चीन्हा । यथा खल वध रत सुर मुनि सुखदाता । अत कहता है मनुज कि अस वरिवड । इस तर्क में आप भी जान जाइये । वचपन से ही इनके सब अमानुष कर्म हैं ।

मारग जात भयानक भारी । बेहि विधि तात ताडका मारी ॥

घार निमाचर विक्कट भट समर गनहि नहि बाहु ।

मारेउ सहित महाय विमि खल मारीच सुग्राहु ॥

कमठ पीठ पविकूट कठोरा । नृप समाज मैंह सिव घनु तोरा ॥
सकल अमानुष कर्म तुम्हारे ।

जाहु भवन कुल कुसल विचारी । सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी ॥
गुरु जिमि मूढ करसि मम वोधा । कहु जग मोहि समान को योधा ॥१॥

अर्थ अत अपने कुल की कुशल विचारकर आप लौट जाइये । यह सुनकर रावण जल उठा और उमने बहुत सी गालियाँ दी । और कहा अरे मुख । तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है ? बता तो ससार में मेरे समान योद्धा कौन है ?

व्याख्या मारीच ने कहा जो रास्ता तुम पकड़ना चाहते हो उससे तो कुल का नाश हो जायगा राम रोष पावक अति घोरा । होइहि सलभ सकल कुल तोरा । जो अपराध भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई । भाव यह कि मैं तो जाऊँगा ही नहीं । तुम भी यह उद्योग छोड़ दो । पर रावण मन्त्र दृढ़ किये हुए हैं । इसके विरोध में सुनना नहीं चाहता । जबतक सिद्धान्त निश्चय की कोटि में नहीं पहुँचता तब तक विरोधी तर्क सुनने की प्रवृत्ति होती है । अत विगडा आज्ञा भङ्ग भी करता है और मुझे भी बेवकूफ भी बनाता है । सर्प की भाँति रावण पलट गया । अभी प्रणाम किया है । अभी गाली देने लगा । क्षुद्र लोगो की यही दशा है । स्वार्थ सधते न देखकर जल उठा । मार डालता पर काम लेना है । इससे गाली ही दिया । उल्लू गधा आदि मूर्खता द्योतक शब्दों का प्रयोग किया गोस्वामीजी प्रेम की गाली भी नहीं कहते । यह तो द्वेष मूलक थी । सर्पों की भाँति विष वमन करता है ।

तू मूढ है । सरल बात नहीं समझता । वह मनुजों में बरिबड होगा । पर नर बानर केहि लखे माही । नर मेरा क्या कर सकता है । तुझे सौ योजन फेंक दिया तो इससे क्या हुआ ? कौन सी बड़ी बात किया ? गुरु बोध कराने का अधिकारी है । मैं महापण्डित और तू महा मूर्ख । तू मुझे बोध देने चला । तुझे यह अधिकार कहाँ से हुआ जो ज्ञान देने चला है ।

तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहि विरोधे नहि कल्याणा ॥
शस्त्री मर्मो प्रभु सठ धनी । वैद वदि कवि भानस गुनी ॥२॥

अर्थ तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्रधारी, भेद जानने वाला, समर्थ स्वामी, हठी, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया इन नौ व्यक्तियों से वैर करने में कुशल नहीं होता ।

व्याख्या अनुमान द्वारा सामान्य से विशेष में अवतरण होता है । नौ के विरोध से कल्याण नहीं होता । यह भी तब में से हैं । अत इसमें भी विरोध नहीं करना चाहिए । हृदय में अनुमान करता है । अपने कल्याण का निर्णय मन में ही करना चाहिए ।

शस्त्री से विरोध नहीं करना चाहिए। उसका विश्वास नहीं कब चोट कर बैठे। नदीना च नखीना च शृगीणा शस्त्रपाणिनाम्। विश्वासो नैव कर्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च। शस्त्र न हो तो भी मर्मी से विरोध न करे। मर्म पर आघात करेगा। यथा नाभो कुण्ड पियूष वस याके। नाथ जियत रावण बल ताके शस्त्री, मर्मी न होने पर भी प्रभु का विरोध नहीं करना। यथा प्रभुअहि गनिअ न छोट करि। कुछ भी न हो यदि शठ हो जिद्दी हो तो भी बचना चाहिए। वह सब सङ्कट सहकर भी अपकार करेगा। धनी से भी वैर नहीं करना चाहिए। अर्थस्य पुरुषो दास नार्था दासो हि कस्यचित्। उसे बहुत सहायक मिलेंगे। वैद्य प्राणघनानि च। वैद्य तो प्राण के धन है। इनसे वैर कभी नहीं करना चाहिए। बदी जहाँ तहाँ अपकीर्ति फैलाते हैं। कविपद के लालित्य से लोग उस पद को स्मरण कर लते हैं और उसको अपकीर्ति अमर हो जाती है। रसोइया के हाथ तो सदा प्राण रहता है। अतः इनसे वैर करने में कट्याण नहीं होता।

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना ॥

उत्तर देत मोहि बधव अभागे। कस न मरो रघुपति सर लागे ॥३॥

अर्थ जब मारीच ने दोना प्रकार से अपना मरण देखा। तब उसने श्रीरघुनाथजी की शरण ताकी। सोचा कि उत्तर देते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्रीरघुनाथजी के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ।

व्याख्या रामादपि च मर्तव्य मर्तव्य रावणादपि। उभयोर्मर्दि मर्तव्य वर रामो न रावण। जब राम से भी मरना है और रावण से भी मरना है तो राम के हाथ से मरना ठीक है रावण के हाथ से नहीं। भगवान् का कथन है जो नर होय चराचर द्रोही। आवै समय सरण तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौ सद्य तेहि साधु समाना। सो यह कपट छल न छोड सका। अतः साधु समान नहीं बनाया। पर साधु की गति दे दी। कपट छल सहित शरण जाने से वह दण्ड होता है।

प्रश्न था कहु जग मोहि समान को जोधा। उत्तर तो यही है कि तब चोरी से स्त्री हरण क्यों करते हो? जाओ छीन लाओ। पर यह उत्तर सुनते ही यह अभागा मुझ मार डालेगा। अब यह अभागा है। अपने कुल भर का सहारा अपनी आँखों देखेगा। मेरा मरण देखना इसके लिए क्या है। तो अभागे के हाथ क्यों मरूँ? यह भवभजन पद विमुख है रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहै सही। सो सही परम गति क्यों न लें।

अस जिय जानि दसानन सगा। चला राम पद प्रेमु अभगा ॥

मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहौ परम सनेही ॥४॥

अर्थ हृदय में वह ऐसा समझकर रावण के साथ चला। श्रीरामजी के चरणों में उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मन में इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं

अपने परम स्नेही श्रीरामजी को देखूंगा; किन्तु उसने यह हृषं रावण को नहीं जनाया ।

व्याख्या : गाली खाकर भी चुप देखकर रावण ने समझ लिया कि ठीक हो गया । अब विलाई का कार्य करता है । विलाई जिम भाँति चूहे को दाव ले जाती है उस भाँति ले चला । दशानन के सङ्ग जा रहा है । किसी ओर से भागकर निकल नहीं सकता । फिर भी रामपद प्रेम अभग है । जाता है रावण के साथ प्रेम राम में है । जिसके साथ जाता है उसका काम करेगा । राक्षस भी अपना वर्ग नहीं छोड़ता । मनुष्य छोड़ देता है । रामके हाथसे मरने की अभिलाषा है । क्योंकि प्रेमी के हाथसे मरने में भी आनन्द है ।

प्राणभय से दर्शन नहीं करते थे । अब तो दर्शन करेंगे । अद्भुत प्रेमी हैं । उसे बड़ा हृषं है । पर उस हृषं को दबाये हैं । कही रावण न जान जाय नहीं तो मुझ पर अविश्वास करके अभी मार देगा । वह जानता है कि प्रभु परम स्नेही हैं । सबको मारा मुझे छोड़ दिया ।

छं. निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौ ।

श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौ ॥

निर्वान दायक क्रोध जा कर भगति अवसहि बस करी ।

निज पानि सर संधानि सो मोहि वधिहि सुखसागर हरी ॥

अर्थ : अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सकल करके सुख पाऊँगा । जानकीजी सहित और छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कृपानिधान श्रीरामजी के चरणों में मन लगाऊँगा । जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है और जिनकी भक्ति उन स्वतन्त्र भगवान् को भी वश में करनेवाली है । अहा ! वे ही आनन्द के समुद्र श्रीहरि अपने हाथों से बाण सन्धान कर मेरा वध करेंगे ।

व्याख्या : प्रियतम नहीं परम प्रीतम : स तु प्राणस्य प्राणाः । होइहै सुफल आनु मम लोचन । देखि वदन पकज भवमोचन । उन्हें आँखभर देखूँगा । श्री सहित नहीं देखा था । अनुज समेत तो देखा था । कृपा निकेत हैं । ऐसी कृपा सुनी देखी नहीं गयी कि उनका क्रोध भी कृपा ही है । क्रोध करें तो निर्वाण दें । भगवान् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं । पर भक्ति से वश हो जाते हैं । रीझे बस होहि खोझे देत निज धाम रे । खर दूषण सरकार के हाथ से नहीं मरे फिर भी निर्वाण पाया । सुखसागर के हाथ मरने में भी सुख है । मेरा भाग्य देखो कि मारने के लिए मुझे लक्ष्य बनावेंगे । जिसे मुनि लोग लक्ष्य बनाते हैं । प्रणवो धनु. शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्व्यं शरवत् तन्मयो भवेत् । प्रणव धनु है । आत्मा शर है और ब्रह्म लक्ष्य है । सो बाण की भाँति तन्मय होकर सावधानी से लक्ष्यवेध करना चाहिए ।

दो. मम पाछें धर धावत, धरे सरासन वान ।

फिरि फिरि प्रभुहि विलोकिहौ, धन्य न मो सम आन ॥२०.२६॥

अर्थ : धनुष बाण धारण किये मेरे पीछे पीछे पकड़ने के लिए पृथ्वी पर दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर फिरकर देखूँगा । मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है ।

व्याख्या : शरासन बाणधारी मूर्ति ध्येय है । यथा : वन खेलत राम फिरें मृगया तुलसी छवि सो वरनै किमि कै । जानकीजी का भी यह ध्यान था • जेहि विधि कपट कुरग सग धाइ चले श्रीराम । वह छवि अपूर्व है मुनि जेहि ध्यान न पावहि नेति नेति कह वेद । मृग घूम घूमकर शिकारी को देखता है । बड़े बड़े प्रेमी और क्या करते हैं ? देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरै बहारि बहोरि । ऐसा भाग्य किसी का हुआ नहीं कि जिसके पीछे पीछे रामजी दौड़ते फिरें ।

तेहि वन निकट दसानन गएऊ । तब मारीच कपट मृग भाएऊ ॥

अति विचित्र कछु बरनि न जाई । कनक देह मनि रचित बनाई ॥१॥

अर्थ : जब रावण उस वन के निकट पहुँचा तब मारीच कपट मृग बन गया । वह अत्यन्त ही विचित्र था । कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता । सोने का शरीर मणियों की पच्चीकारी करके बनाया था ।

व्याख्या • आश्रम निकट नहीं गया । वन निकट गया । आश्रम से निकलकर वन जाना पड़ता था । यथा • लछिमन गये बनहि जब लेन मूल फल वन्द । कारण यह कि दशानन है कोई भी पहिचान सकता है । वन का पता सूर्यपंखा से लग चुका है । वन के निकट तक दोनों अपने रूप में गये । वहाँ पहुँचने पर मारीच कपट मृग हुआ । होहु कपट मृग तुम छलकारी • का साफल्य । खरदूषण की ओर से पीछे माया हुई । रावण ने माया से ही कार्य प्रारम्भ किया ।

बनने की तारीफ तो इसमें है कि भेद लखाई न पड़े । परन्तु माया से बनी हुई वस्तु प्राकृत से सुन्दर होती है । यहाँ प्राकृत मृग भगवती का चित्त आकर्षण न कर सकेगा । वन में मृग फिरा ही करते हैं । अतः अवर्णनीय रूप अति विचित्र धारण किया । मृग पीले होते हैं । अतः कनकदेह बनाया । दाँत श्वेत, खुर सींग कृष्ण, जिह्वा लाल । अतः हीरा नीलमणि माणिक्य के बनाये । जड में चेतन की भाँति लचकने की शक्ति है । अतः अति विचित्र कहा । माया वराह भी अति विचित्र था : नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराह ।

३९. माया सीताहरण प्रसंग

सीता परम रुचिर मृग देखा । अंग अंग सुमनोहर वेपा ॥

सुनहु देव रघुवीर कृपाला । येहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥२॥

अर्थ : सीताजी ने उस परम सुन्दर हिरन को देखा । जिसके अंग अंग की छटा अत्यन्त मनोहर थी । वे बोली हे देव । हे कृपालु रघुवीर । सुनिये । इस मृग की छाल बहुत सुन्दर है ।

व्याख्या सूपणखा रुचिर रूप धरि प्रभु पहुँ आई । पर काम न चला दोनों भाइयो ने प्रत्याख्यान किया । अतः परम रुचिर मृग बना । सीताजी परम रुचिर मृग देखकर ही मोहित हो सकती हैं । सीताजी ने मृग रूप देखा । पर दोनों भाइयो ने मारीच रूप देखा । दोनों भाई कथा कहने सुनने में लगे हैं । अतः पहिले न देखा । यथा बैठे हैं राम लखन अरु सीता । पंचवटी वर पर्णकुटी तर कहें कछु कथा पुनीता । एक एक अंग सुष्ठु मनोहर है । जहाँ जाय मन तहँइ लुभाई ।

दिवि क्रीडाविजिगीषा के अर्थ में आता है । उसी का देव शब्द बनता है । सरकार कौतुकी हैं । शिकारी है । अतः देव शब्द सम्बोधन दिया । अथवा देव हैं राजा हैं । राजा रत्नभुक् होते हैं । यह मृग रत्न है । उनके पास रहने योग्य है । रघुवीर के लिए इसके वध में क्या रक्खा है । मुझ पर कृपा कीजिये । इसे जीता पकड़ लीजिये तो पायि पालिवे योग मजु मृग मारेउ मंजुल छाला । गी०

सत्यसध प्रभु वध करि येही । आनहु चर्म कहति बँदेही ॥

तब रघुपति जानत सब कारन । उठे हरपि सुर काज सँवारन ॥३॥

अर्थ जानकीजी ने कहा हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो । इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिये । तब श्री रघुनाथजी मारीच के कपट मृग बनने का सब कारण जानते हुए देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे ।

व्याख्या आप सत्यसन्ध है । आप का निशाना खाली नहीं जा सकता है और समर्थ हैं । मृग पर अत्यन्त मोहित हैं । अतः उपर्युक्त विशेषण देती हैं । यदि जीता न पकड़ा जाय तो इसे मारकर चमड़ा ल आइये । शोभा तो इसके चर्म में ही है । यदि आप प्रतिज्ञा कर लें तो अवश्य लावेंगे ।

सब कारण जानते हैं । रावण का भेजा मारीच आगया । इसीलिए इसका वध नहीं किया था । समुद्र पार फेंक दिया था । इसी के द्वारा सब कार्य देवताओं का सुधरेगा । उठे हरपि जिस कार्य के लिए चौदह वर्ष वनवास स्वीकार किया वह उपस्थित हो गया । प्रतिज्ञा पूरी होने का लक्षण देखकर उठे हरपि । क्योंकि सुर काज सँवारना है ।

मृग बिलोकि कटि पारकर बाँधा । करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥

प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई । फिरत विपिन निसिचर बहु भाई ॥४॥

अर्थ हिरन को देखकर श्रीरामजी ने कमर में फेंटा बाँधा और राथ में घनुप लकर उस पर सुन्दर बाण चढ़ाया । फिर प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा । हे भाई ! वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं ।

व्याख्या पकड़ने के लिए दौड़ना है । अतः कमर बसा । परम रुचिर मृग है । इसलिए शर भी रुचिर है । छिपाकर सन्धान करते हैं । इसलिए धनतल कहा । दृष्टि बराबर मृग पर ही रही । कहीं निकल न जाय । तुमसे खल मृग रोज़न पिन्ही । पूरी तैयारी करके सीताजी की रखवारी का बन्दोबस्त करते हैं । गिनया की सदा

रक्षा करनी चाहिए। उन्होंने सरकार से कहा। अतः स्वयं उठे। लक्ष्मणजी को न कहा। सीय लखन जेहि विधि सुख लहही। सोइ रघुबीर कहहि सोई करही।

समझाया कि हम लोग निशाचरो से बद्धवैर हो चुके। मृग ऐसा होता नहीं। मेरे जाने पर सीताजी पर चोट न हो। हम दोनों भाइयों से डरते हैं। सामना न करेंगे। चोट सीता पर है और राक्षसों को भी दूर दूर से आते जाते देखता हूँ। सम्भव है कि एक आवे अथवा बहुत से आ जावें। नासिका छेदन का उत्तर स्त्री हरण है। मारीच आगया कोई माया हुआ चाहती है।

सीता केरि करहु रखवारी। बुधि विवेक बल समय विचारी ॥

प्रभुहि विलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी ॥५॥

अर्थ : तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीताजी की रखवारी करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढाकर उसके पीछे दौड़े।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि सीताजी की रक्षा तुम्हे सुपुर्द करता हूँ। स्त्री रक्षा में चार बात की आवश्यकता होती है। केवल १ बल से ही रक्षा नहीं होती? शत्रु छल से भी काम लेते हैं। अतः उसके समझने के लिए २ बुद्धि चाहिए। स्त्रियाँ अविवेकी होती हैं। अतः ३ विवेक से काम लेना चाहिए। जैसा ४ समय देखे वैसा काम करे। समय के प्रतिकूल कार्य निष्फल होता है।

वैद्यो वैर निशिचरन्ह ते भयो विपुल सहार।

छलही उनको परम बल जानत सब ससार ॥१॥

साहस सनमुख समर को अब ये करिहहि नाहि।

सोचहि सीता हरन ही को उपाय मन माहि ॥२॥

दूर दूर ते देखियत निशिचर परें लखाय।

पै हम दोऊ बधु ढिग सकैं न ये नियराय ॥३॥

होय न प्राकृत हिरन यह मायामय मारीच।

पै कर्तव्य प्रधान भम जातै छीजे नीच ॥४॥

पाइ कुअवसर रचि सकत ये प्रपच बहु भांति।

ताते तात सजग रहेउ मायावी यह जाति ॥५॥

मारीच के मन में तो यह बात है : निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहीं। फिर भी साथ में आने की लाज है। अतः वहाँ से हटाने के लिए भाग चला। रामजी धनुष चढाये हुए ही दौड़े। पीछा किया। भक्त का मनोरथ पूर्ण हो रहा है : भम पाछे घर धावत धरे सरासन बान। फिरि फिरि प्रभुहि विलोकिहीं, धन्य न मो सम आन।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछे सोइ धावा ॥

कबहुं निकट पुनि दूरि पराई। कबहुं प्रगटे कबहुं छपाई ॥६॥

अर्थ : वेद जिनके विषय में नेति नेति कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते । वे ही श्रीरामजी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं । वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है । कभी प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है ।

व्याख्या : सरकार का अद्भुत माधुर्य है । वेद वाणी से न पा सके । नेति नेति जेहि वेद निरुपा । योगी शिव ध्यान में न पा सके : जो हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नही अधाय । ये लोग जिसके पाने के लिए पीछे दौड़ते हैं । आज वह मायामृग के पीछे दौड़ा । यह सरकार की नरलीला है । उमा करत रघुपति नर लीला ।

मारीच मृग दूर ले जाने का प्रयत्न कर रहा है । यदि बहुत दूर चला जाय तो शिकारी हताश होकर फिर जाय । इसलिए निकट भी आ जाता है । निकट ही बना रहे तो पकड़ा जाय । इसलिए दूर भागता है । अलक्षित रहे तो फिर शिकारी निराश हो लौट जाय । इसलिए प्रकट हो जाता है और लक्षित रहे तो मारा जाय । इसलिए छिप भी जाता है ।

प्रगटत दुरत करत छल भूरी । येहि विधि प्रभुहि गयेउ लै दूरी ॥
तब तकि राम कठिन सर मारा । धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥७॥

अर्थ : इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरा छल कपट करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया । तब श्रीरामचन्द्रजी ने ताककर कठोर बाण मारा । जिसके लगते ही वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

व्याख्या : अपनी जान भी बेचाता है और शिकारी का साहस भी नहीं छूटने देता । अतः प्रगटत दुरत चला जा रहा है । छल भी खूब करता है । यथा : तुरत कीन्ह नृप सर संधाना । यहि मिलि गयेउ बिलोकत बाना । यह दूर ले जाने की विधि है । पञ्चवटी से वस्तर : रियासत ले गया । वही मृगवध हुआ है । अब वहाँ के वन में मृग होते ही नहीं ।

इससे मालूम होता है कि रामजी ने हल्के बाण मारे । जिसमें घायल हो जाय । मरे नहीं और मैं पकड़ लूँ । इसी से रुचिर शर साधा था । इस भाँति सरकार दूर चले आये । रावण को पूरा मौका देते हैं । जब देख लिया कि काफी दूर आ गये तब ताककर जिसमें निशाना न चूके और कठिन शर जो प्राण ले ले मारा । राक्षस माया करता है । सरकार उसकी माया को मानते जाते हैं और वह माया उलटी पड़ती जाती है । जानकी हरण दानो को डट है । घोर पुकार : जिसमें शब्द पञ्चवटी तक पहुँचे ।

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा । पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा ॥
प्राण तजत प्रगटेसि निज देहा । सुमिरिसि राम समेत सनेहा ॥८॥

अर्थ : उसने पहिले लक्ष्मणजी का नाम लेकर पीछे मन में श्रीरामजी का

स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्रीरामजी का स्मरण किया।

व्याख्या होहु कपट मृग तुम छलकारी कहा है सो छलकारी का साफल्य कहते हैं। लक्ष्मण को पुकारता है। पीछे से राम का स्मरण मुक्ति के लिए करता है। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ भुक्त होइ स्तुति गावा उसने रावण का काम कर दिया।

प्राण त्याग के समय कपट छोड़ा। देह जो मृग रूप में छिपा था प्रकट कर दिया। सादर सुमिरन जे नर करही। भव बारिधि गोपद इव तरही। स्नेह के साथ स्मरण ही सादर सुमिरन है।

अतर प्रेमु तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना ॥९॥

अर्थ सर्वज्ञ श्रीरामजी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

व्याख्या जगत् म ऐसे प्रेम की पहिचान नहीं है। विरोधी क्रियाओं के बीच में अन्त प्रेम सरकार ने पहिचान लिया। सुजान है। उसे मुनिदुर्लभ गति दी। रीक्षत राम सनेह निसोते। निर्वाण मुनिदुर्लभ है। पर प्रभु ज्ञानशिरोमणि हैं। ऐसी दुर्लभ गति भी उस राक्षस का दे दी। तत्र ताकेसि रघुनायक सरना का साफल्य। सरकार ने भी ताककर बाण मारा कि मोक्ष हो जाय।

दो विपुल सुमन सुर बर्षहि, गावहि प्रभु गुन गाथ।

निज पर दीन्ह असुर कहँ, दीनबन्धु रघुनाथ ॥२७२१॥

अर्थ देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ गा रहे हैं कि श्री रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को अपना परम पद दे दिया।

व्याख्या खर दूषण वध म हर्षित बर्षहि सुमन सुर बाजहि गगन निसान। यहाँ निसान नहीं बजाते। रावण सुन लेगा। हर्षित भी नहीं हैं। सीता हरण हो रहा है पर उनके कल्याण की सिद्धि प्रारम्भ हो गयी। अतः विपुल सुमन बरसा रहे हैं कि ऐसे दीनबन्धु हैं कि इसे अपना पद दिया। यह पक्का असुर था। प्रभु को पहिचानने पर भी इसने पराकाष्ठा की खलता की। मिलत एक दारुण दुख देही। असुर भी दीन हो जाय तो उसे निज पद देते हैं। सुमिरेसि राम समेत सनेहा। उसकी दीनता है।

खल वधि तुरत फिरे रघुवीरा। सोह चाप पर कटि तूनीरा ॥

आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभिता ॥१॥

अर्थ दुष्ट मारीच का मारकर श्री रघुवीर तुरन्त लोट पड़े। हाथ में धनुष

और कमर में तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीता ने दुःख भरी वाणी सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजी से कहने लगी।

व्याख्या : यद्यपि मुनि दुर्लभ गति मिली पर था वह खल : परहित धृत जिनके मन माखी। जिमि कुठार चंदन आचरनी। प्रभु ने उसका प्राण छोड़ दिया था। सो उनके साथ इसने ऐसा घात किया। तुरत फिरे। उसके पुकारने पर चिन्ता हुई कि यह शब्द सीता सुनी होगी तो उसका क्या हाल हुआ होगा। इसने छल किया है। लक्ष्मण को सीताजी के पास से हटाने के लिए सीता हरण का उद्योग राक्षसों की ओर से हो रहा है। रघुवीर हैं। एक राक्षस को मारा। औरों का सामना करने के लिए त्वरा है। सीताजी ने जिन शब्दों से सम्बोधन किया है उनका साफल्य कवि ने दिखलाया। देव शब्द का साफल्य लिख चुके हैं। रघुवीर शब्द का साफल्य यहाँ हुआ। निज पद दोन्ह असुर कहें : से दयाल शब्द सफल हुआ। तब तक राम कठिन सर मारा : से सत्यसन्ध शब्द का सफल हुआ। बिपुल सुमन सुर वर्षहि गावहि प्रभु गुण गाथा : से प्रभु शब्द सफल हुआ। खल वध से ही चाप तूणीर की शोभा है। यथा : तुम से खल मृग खोजत फिरही। काम न होने से हाथ में तीर नहीं है।

सुनी तो लछिमन ने भी पर बुद्धि से काम लिया। समझ गये कि मारीच की चाल है। पर सीताजी सुनकर परम सभित हो गयी। तन पसेव कदली जिमि कांपी। पति भाव प्रधान है। ऐश्वर्य पर ध्यान नहीं है। जानती हैं कि लछिमन ने भी सुना। सुनकर उन्हें कोई तरद्दुत नहीं हुआ। फिर भी कहती हैं : सुनहु तात कोउ तुमहि पुकारत प्राणनाथ की नाई। कह्यो लखन हत्यो हिरन कोपि सिय हठि पठयो वरियाई। गीतावली.

जाहु वेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहंसि कहा सुनु माता ॥
भृकुटि विलास सृष्टि लय होई। सपनेहु संकट परे किं सोई ॥२॥

अर्थ : तुम शीघ्र जाओ। तुम्हारे बड़े भाई सङ्कट में हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा : हे माता ! सुनो : जिनके भाँ के इशारे मात्र से सारी सृष्टि और प्रलय हुआ करता है वे रामजी क्या कभी स्वप्न में भी सङ्कट में पड़ सकते हैं ?

व्याख्या : सङ्कट है देर करने से प्राणान्त होगा। भ्राता कहने से भाव यह : होहि कुठार्य सुबंधु सहाय्ये। लक्ष्मणजी ने हँस दिया। इतने दिन साथ रही। महिमा न जान पायी। जब से सुमित्राजी ने कहा है : तात तुम्हार मातु वैदेही। तब से माँ कहते हैं : यह लक्ष्मणजी का विवेक है।

सृष्टि के भीतर ही सब जीव हैं। उन्हीं से सङ्कट की सम्भावना है। सो सृष्टि और लय उनके भृकुटि विलास से होता है। इतनी बड़ी उनकी महिमा है। उन्हें सङ्कट की सम्भावना स्वप्न में भी नहीं। क्योंकि जाग्रत् के संस्कार से ही स्वप्न होता है। सकल सुरासुर जुरहि जुझारा। रामहि समर न जीतन हारा। अतः लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह राक्षस के मरणकाल का चिम्घाड़ है।

मरम वचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
वन दिसि देव सौपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ॥३॥

अर्थ इस पर सीताजी जब मर्म वचन कहने लगी तब भगवान् की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का मन भी चञ्चल हो उठा । वे श्री सीताजी को वन और दिशाभा आदि के देवताओं को सौपकर वहाँ चले जहाँ रावणरूपी चन्द्रमा के लिए राहुरूपी श्रीरामचन्द्रजी थे ।

व्याख्या हँसने से खराब अर्थ लगा । तब मर्मघात करनेवाला अनुपयुक्त वचन कहा । इस बात को कवि ने अनुपयुक्त पद प्रयोग से दिखलाया सीता बोला अनुपयुक्त प्रयोग सा मालूम पड़ता है । पर अशुद्ध नहीं है । बोल धातु रूप है । उसे भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त किया । ऐसा ही करते हैं । यथा कह सीता सुनु जती गोसाईं । कह सीता धरि धीरज गाढा । यहाँ केवल धातु रूप भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अकार को दीर्घ तुकबन्दी के लिए किया । यथा मन अस रहन कहिहि मोहि रामा । अत बोल का प्रयोग अशुद्ध नहीं है ।

लक्ष्मण का मन मर्म वचन सुनने पर भी न डोलता । पर हरि की प्रेरणा के आगे कुछ नहीं चलता हरि इच्छा भावी बलवाना ।

यह लक्ष्मण का समय विचार है कि वनदेव, वनदेवी, दिशिदेव तथा जितने जीवजन्तु हैं सबको सौपा । अर्थात् भगवान् विश्व रूप को सौपा । राहु से चन्द्र प्रभाहीन हो जाते हैं । इसी भाँति रामजी से रावण भी प्रभाहीन हो गया है । यथा राक्षसान् मर्त्यरूपेण राहुमनसिज यथा । प्रभाहीनास्तथा कृत्वा राज्यार्हाणा महीभृताम् ।

सून बीच दसकधर देखा । आवा निकट जती के वेपा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराही । निसि न नीद दिन अन्न न खाँही ॥४॥

अर्थ • रावण शून्य के बीच देखकर सन्यासी के वेष में श्री सीताजी के समीप आया । जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नीद नहीं आती और दिन में भर पेट अन्न नहीं खाते ।

व्याख्या • वहाँ कोई नहीं था और चारों ओर रेखा खिंची हुई थी । यथा रामानुज लघु रेख खँचाई । सो नहि असि नाधेहु मनुसाई । तब यती के वेष से निकट आया जिसमें विश्वास हो । अर्घ पाद्य भिक्षा देने के लिए शून्य से बाहर आजायें । त्रिदण्डी का रूप धारण किया जिसमें शिखा यज्ञोपवीत रह सके । यती से स्त्री हरण की आशङ्का ही नहीं होती ।

जिसके डर से देवताओं को रात के समय नहीं लगती । यथा सो किमि सोध सोच अधिकाई । सोच से धुधा भी मारी जाती है । गले अन्न नहीं उतरता । देवताओं का अन्न अमृत है । सो श्रौत कर्म से बनता है । श्रौतकर्म दिन को ही होता है । अत दिन को अन्न न खाना कहा ।

सो दससीस स्वान की नाई । इत उत चितइ चला भडिहाई ॥
इमि कुपथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥५॥

अर्थ : वही दस सिरवाला रावण कुत्ते की तरह इधर उधर ताकता हुआ भडिहाई चोरी के लिए चला । हे गरुडजी ! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता ।

व्याख्या रावण ऐसा पराक्रमी था और परमेश्वर की देन में भी उसे नव सिर अधिक मिले थे । सो यती का वेष धारण करके चला । यती को स्त्री की इच्छा होना ही कुत्ताप्रन है । ऐसे को वान्ताशी कुत्ता कहते हैं । कहीं मालिक मकान देख न ले । लक्ष्मण या राम आ न जायें । इस भय से रावण इधर उधर देखते जैसे भडिहाई के लिए कुत्ते चलते हैं वैसे चले । खुले घर में कुछ खाने की चीज पा जाने की लालच से दिहात में कुत्ता भडिहाई के लिए चलते हैं । उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं घर का मालिक न आजाय । नहीं तो बिना मारे नहीं छोड़ेगा ।

स्वान कहकर तेज नाश कहा । इत उत चितइ चला से बल का नाश कहा । भडिहाई से बुद्धि का नाश कहा ।

नाना विधि कहि कथा सुहाई । राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाई । बोलेहु वचन दुष्ट की नाई ॥६॥

अर्थ रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सुनायी सीताजी को राजनीति भय और प्रेम दिखलाया । सीताजी ने कहा हे यति गोसाईं ! तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे ।

व्याख्या सन्यासी को उपदेश का अधिकार इन्द्र और अहिल्या की कथा कहा । राजा का रत्नभुक् होना कहा । भगवती को स्त्री रत्न कहा । राजा के अपमान करनेवाले को घोर दण्ड होता है । तुम महल में रहने योग्य हो । मैं बहुत दिन से प्रीति करता हूँ ।

सीताजी की ओर से सभ्यता की परावाष्टा है । यती को साक्षात् दुष्ट नहीं कहती । दुष्ट की नाई कहती हैं । वेष के अनुकूल वचन नहीं हैं । मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कमण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।

तब रावन निज रूप देखावा । भई सभय जब नामु सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढा । आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढा ॥७॥

अर्थ जब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयी । उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा अरे दुष्ट ! खडा तो रह । प्रभु आगये ।

व्याख्या मैं यती नहीं हूँ इस बात के कहने के बदल अपना स्वरूप दिखलाया । अतः उसके नाम से भय होता था । यथा कीर्धी स्रवण सुनेसि नहि

मोही । नाम सुनकर सीताजी डरी कि इससे तो वैर बँधा हुआ है । इसके बहिन को नाक काटी गयी है । यह वैर चुकाने आया है । अतः समीत हुई ।

ऐसी समीत हुई कि बहुत बड़ा धीरज धारण करके बोलने में समर्थ हुई । सीताजी ने पहिला प्रयत्न उसके भगाने का किया कि प्रभु का आना सुनकर भाग जायगा । अपना स्वरूप धारण करने पर खल कहती हैं । जानती हैं कि दोनों सरकारों के न रहने पर इसे आने का साहस हुआ है ।

जिमि हरिवधुहि छुद्र सस चाहा । भएसि कालवस निसिचर नाहा ॥

सुनत वचन दससीस रिसाना । मन महुँ चरन वदि सुख माना ॥८॥

अर्थ जैसे सिंह की स्त्री को क्षुद्र खरगोश चाहे वैसे ही अरे राक्षसराज । तू काल के वश हुआ है । यह वचन सुनकर रावण लज्जित हो गया । पर मन में उसने सीताजी के चरणों की वन्दना करके सुख माना ।

व्याख्या को प्रभु सग मोहि चितवन हारा । सिंह वधुहि जिमि ससक सियारा । मैं स्वयं तेरा सहार करने में समर्थ हूँ । शश को सिंह वधू की चाह होना ही उसके बालवश होने का चिह्न है । नहीं तो सिंहवधू की कामना कैसे करेगा ।

उसने अपना स्वरूप दिखाया । नाम सुनाया वश में लाने के लिए । यदि जानता कि इस भाँति फटकारा जायगा तो नाम न कहता । नाम सुनकर भी उसे शश कह रही है । अपने को सिंहवधू कहती हैं । इस तेजस्विता पर लज्जित हो गया ।

भगवती का उपासक है एहि के हृदय वस जानकी, जानकी उर मम वास है । भगवती के ध्यान से ही अजेय है । काटत सिर होइहि बिकल छूट जाइहि तब ध्यान । तब रावणहि हृदय महुँ मरिहिहि राम सुजान । जगदम्बा के उचित क्रोध पर मन में सुख हुआ ।

दो क्रोधवत तब रावन, लीन्हिसि रथ बैठाइ ।

चला गगनपथ आतुर, भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥२८२२॥

अर्थ फिर क्रोध में आकर रावण ने सीताजी को रथ में बिठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला । किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था ।

व्याख्या माया से रथ उपस्थित हो गया । उस पर केश पकड़कर सीताजी को बिठा लिया और गगन पथ से चला जहाँ मनुष्य की गति नहीं । भय से हाथ पैर भारी हो गये कि कहीं राम लक्ष्मण आ न जायँ । रथ हाँकते नहीं बनता । पर रावण का रूप देखते ही वनदेवी वनदेव तथा भूत मात्र भयभीत हो गये । अतः वे भी रक्षा नहीं कर सके ।

हा जगदेक बीर रघुराया । केहि अपराध बिसारेहु दाया ॥

आरति हरन सरन सुखदायक । हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥१॥

अर्थ : हा जगत् के अद्वितीय वीर श्रीरघुनाथजी । आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी । हे दुःखो के हरनेवाले । हे शरणागत को सुख देनेवाले । हा रघुकुलरूपी कमल के सूर्य ।

व्याख्या : जोर से चिल्लाती हैं कि सरकार तक शब्द पहुँचे । जगदेक वीर यथा : तुला पिनाक साहु नृप परिजन भट बटोरि सबके बल जोखे । परसुराम से वीर सिरोमनि क्षनमें भये खेत के से धोखे । रघुराया सिव अज पूज्य चरन रघुराई । रघुकुल की प्रतिष्ठा की रक्षा इन्ही से है । विरह का प्रलाप है । प्रभु को पता भी नहीं । फिर भी मानो जानकर दया विसरा दिया । ऐसा उपालम्भ करती हैं । भर्ता को आज्ञा दी है यह अपराध अवश्य है सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही । आनहु चर्म कहति वैदेही । पर यह ऐसा अपराध नहीं जिससे दया विस्मरण हो जाय । आप को तो दया विस्मरण होती ही नहीं ।

आरति हरण से अपना आर्त्त होना बहा । जपहि नाम जन आरत भारी । मिटहि कुसकट होहि सुखारो । शरण सुखदायक से अपना शरण होना कहा । स्त्री को पति ही शरण है । आप शरण सुखदायक हैं मैं दुःखी हूँ । आप दिननायक हैं : मैं रघुकुल की ही कमलिनी हूँ ।

हा लछिमन तुम्हार नहि दोसा । सो फलु पायेउँ कीन्हेउँ रोसा ॥
विविध विलाप करति वैदेही । भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥२॥

अर्थ : हा लक्ष्मण तुम्हारा दोष नहीं है । मैंने क्रोध किया उसका फल पाया । हा । प्रभु की कृपा तो बहुत है । परन्तु स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं । एव श्रीजानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं ।

व्याख्या : अब देवर को स्मरण करती हैं । लक्ष्मण के हटाने का मैं ही कारण हुई । मैं लक्ष्मण का दोष समझती थी । सो उनका दोष नहीं था । दोष हमारा था जो निर्दोष पर क्रोध किया । उसका फल पाया । प्रभु का वियोग हुआ । लक्ष्मण ऐसे देवर क्या रोष योग्य हैं ।

कवि ससार की गति दिखलाते हैं कि वैदेही विविध विलाप करती है और कहती हैं कि प्रभु समर्थ हैं । कृपा भी बहुत है । स्नेह भी है । इसके हाथ से छूटने का सभी योग है । पर दूर हैं । मेरे शब्द उन तक नहीं पहुँचते ।

विपत्ति मोर को प्रभुहि सुनावा । पुरोडास चह रासभ खावा ॥
सीता के विलाप सुनि भारी । भए चराचर जीव दुखारी ॥३॥

अर्थ : प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे । पुरोडास को गदहा खाना चाहता है । सीताजी का भारी विलाप सुनकर जड़ चेतन सभी जीव दुःखी हो गये ।

व्याख्या : कोई ऐसा नहीं जो मेरी विपत्ति प्रभु को सुनावे । किसी ने हरण करते नहीं देखा । न ले जाते कोई देख रहा है । फिर हमारी विपत्ति उन्हें कौन सुनावेगा ? जल में डूब जाने या हिंसक जन्तु के खा जाने का भ्रम हो सकता है :

पुरोडाश चावल की टिकिया यज्ञाग्नि में पकायी जाती है। उसे यज्ञ के बाहर के लोग नहीं प्राप्त कर सकते। दूर्वाकन्दनिकन्दन का उससे कौन सम्बन्ध।

विलाप में इतनी करुणा थी कि स्थावर जङ्गम जीव दुःखी हो गये। द्रवहि वचन सुनि कुलिस कठोरा। भाव यह कि वनदेव वनदेवी लोकपाल सब दुःखी है। पर किसी को सामर्थ्य नहीं कि हिल सके।

गीधराज सुनि आरत वानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छ वस कपिला गाई ॥४॥

अर्थ गीधराज जटायु ने सीताजी की दुःख भरी वाणी सुनकर पहिचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी हैं। नीच राक्षस इनको लिये जा रहा है जैसे कपिला गाय म्लच्छ के पाले पड़ गयी हो।

व्याख्या पर गीधराज ऐसे नहीं है। अतः इनका सुनना पृथक् लिखते हैं। आर्त्त के गीधराज सहायक हैं। तिस पर 'हाँ' जगदेक वीर रघुराया से समझ लिया कि ये रघुकुल तिलक की स्त्री हैं और मेरी रघुकुल से मैत्री है।

अधम निशाचर चोरी से लिये जा रहा है। कपिला गाय बड़ी सीधी होती है। म्लच्छ गोभक्षक होते हैं। उनसे गाय का छुड़ाना सबका परम धर्म है। ऐसे प्रयत्न में प्राण की आहुति देना ही प्राप्त है। खर दूषण भी निशाचर थे। पर अधम नहीं थे। लड़कर सीताजी को लिया चाहते थे। यह अधम है।

सीते पुत्रि करसि जनि नासा। करिहौ जातुधान कर नासा ॥
धावा क्रोधवत खग कैसे। छूटै पवि पर्वत कहूँ जैसे ॥५॥

अर्थ हे सीते पुत्रि! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। वह पक्षी क्रोध में भरकर कैसे दौड़ा जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो।

व्याख्या महाराज दशरथ का मित्र होने से वृद्ध होने से पुत्रि कहता है। अभय देता है। मैं मौजूद हूँ। मैं यातुधान का नाश करूँगा। सीताजी को ढाँढस बंधाया और रावण को सचेत किया।

नीचे से ऊपर जा रहा है। वेग ऐसा है कि मालूम हाता है कि ऊपर से नीचे टूट रहा है। वज्र से ही पर्वत व पक्ष कटे हैं। पर्वत पर प्रहार करनेवाला वज्र ही है। सो गोवराज वज्र की भाँति रावणरूपी पर्वत आ रहे हैं।

रे रे दुष्ट ठाढ किन होई। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
आवत देखि कृतात समाना। फिरि दसकधर कर अनुमाना ॥६॥

अर्थ . रे रे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं हाता? निडर हाकर चल दिया। मुझे तूने नहीं जाना। उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन में अनुमान करने लगा।

॥ व्याख्या : रावण निकला चला ही जा रहा है । अतः खड़ा होने के लिए ललकारा । मेरी पहिले ही ललकार : करिही जातुधान कर नासा । पर ही खड़ा हो जाना चाहता था । अतः कारण पूछते हैं । तू राम लक्ष्मण के दूर होने से निर्भय जा रहा है । यह तुझे नहीं मालूम कि मैं पहरे पर हूँ । अपना पुरुषार्थ घोषित किया ।

रावण ने मुड़कर देखा कि काल को भाँति क्रुद्ध चला आ रहा है । रावण लौट पड़ा कि इसके वेग के सामने रथ का वेग कुछ नहीं है । अनुमान करता है कि यह है कौन ? बड़ा भारी है । इतना बड़ा कौन हो सकता है ?

की मैनाक कि खगपति होई । मम बल जान सहित पति सोई ॥

जाना जरठ जटायू एहा । मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥७॥

अर्थ : यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़ है । पर वह तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है । रावण ने उसे पहिचान लिया कि यह तो बूढ़ा जटायू है । यह मेरे हाथरूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा ।

व्याख्या : पर्वत है पर उड़ रहा है तो यह मैनाक है और कोई पर्वत तो उड़ नहीं सकते । निकट आने पर चोच आदि दिखायी पड़े तब कहता है कि गरुड़ है पर अनुमान से तो यही सिद्ध है कि गरुड़ नहीं हो सकता । क्योंकि विष्णु और गरुड़ दोनों मेरे बल को जानते हैं : साहिव महेस सदा संकत रमेस मोहि ।

जब और निकट आया तो उसके मुँह से निकल पड़ा कि यह तो बूढ़ा जटायू है । इनकी जवानी सत्ययुग में थी । यथा : हम दोउ बंधु प्रथम तरुनाई । अंता ब्रह्म मनुज तन धरिहि । बूढ़ा कहने का भाव कि अब इसमें बल नहीं है । वृद्धावस्था से दुखी होकर शरीर छोड़ने के लिए मेरे पास चला आ रहा है । मेरे कररूपी तीर्थ में शरीर विसर्जन करेगा ।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा । कह सुनु रावण मोर सिखावा ॥

तजि जानकिहि कुशल गृह जाहू । नाहि तो अस होइहि बहुबाहू ॥८॥

अर्थ : यह सुनकर गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला : रावण ! मेरा सिखावन सुन । जानकीजी को छोड़कर कुशल पूर्वक अपने घर चला जा । नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले ! ऐसा होगा कि :

व्याख्या : क्रुद्ध तो पहिले ही थे । पर इसका उत्तर ऐसा था कि गीधराज क्रोधातुर हो गये । पर बृद्ध कहा था इससे शिक्षा देने के लिए ठहर गये और कहा कि मेरी सीख सुन । भाव यह कि तू किसी की सीख नहीं सुनता । यदि पुलस्त्य और विश्रवा की सीख सुनता तो ऐसे कर्म में हाथ ही न लगाता । मैं परलोक की शिक्षा नहीं देता हूँ । इस लोक की ही शिक्षा देता हूँ : दोनों दोनों को पहिचान गये ।

पहिले मैं ही तुम्हें कुशल से घर न जाने दूँगा । पर तुझे बहुत बाँह है । कदाचित् मेरे हाथ से बँचा भी तो : ।

राम रोष पावक अति घोरा । होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥

उतरु न देत दसानन जोधा । तवहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥९॥

अर्थ : श्रीरामजी के क्रोधरूपो अत्यन्त भयानक अग्नि में तेरा सारा वश फनगा होकर भस्म हो जायगा । योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता । तब गीध क्रोध करके दौड़ा ।

व्याख्या : जो घर कुशल सहित पहुँचे तो कुल सहित नाश होगा । रामजी का रोष घोर पावक है । पावक तुम्हारे कुल को भस्म कर देगा : यद्यपि लघुता राम कहें तोहि बधे बड दोष । तदपि कठिन दसकठ सुनु क्षत्रि जाति कर रोष । राम रोष अति घोर पावक है । किसी को भी न छोड़ेगा । जानकी के छोड़ देने से बच जाओगे ।

उत्तर कोई है नहीं । प्रत्युत्तर में राम लक्ष्मण के आजाने का भय भी है । रावण योद्धा है । लड़ने को तैयार हो गया । गोधराज ने समझ लिया कि यह न मानेगा तब क्रोध से दौड़े ।

धरि कच विरथ कीन्ह महि गिरा । सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥

चोचन्ह मारि विदारेसि देही । दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥१०॥

अर्थ : उसने रावण को बाल : शिखा पकड़कर उसे रथ के नीचे गिरा दिया । रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा । गीध सीताजी को अपने घोसले में बिठाकर फिर लौटा और चोचो से मार मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला । इससे उसे एक घड़ी के लिए मूर्च्छा हो गयी ।

व्याख्या : पहिला काम विरथ करना है । अतः केश पकड़कर पृथ्वी पर नीचे फेंक दिया । चोच से सिवाय केश पकड़कर फेंकने के और क्या उपाय था । जब से रावण अपने को सँभाले तब तक अपने घोसले में सीताजी को रखकर जहाँ रावण था वहाँ गीधराज आये । युद्ध के बीच में सीताजी के रहने से युद्ध न हो सकेगा । रावण के केश पकड़नेवाले गीधराज मन्दोदरी के केश पकड़नेवाले हनुमानजी ।

चोच के प्रहार भयानक हैं । किसी अस्त्र से नहीं रुकते । गीधराज पर चोट करता है तो पङ्ख पर रोकते हैं । गीधराज ने रावण के वज्र जैसे शरीर को विदार डाला । दूसरा वीर मर जाता । पर वह प्रसाद से न मरा । एक दण्ड मूर्च्छित हो गया । गीधराज खड़े हैं । मूर्च्छित वीर पर चोट नहीं करते हैं ।

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना । काटेसि परम कराल कृपाना ॥

काटेसि पख परा खग धरनी । सुमिरि रामु करि अद्भुत करनी ॥११॥

अर्थ : तब खिसियाये हुए रावण ने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक तलवार निकाली और उससे जटायु के पख काट डाले । जटायु अद्भुत करणी वरके और श्रीरामजी को स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़े ।

व्याख्या : बल न चलने पर खिसिभाया । जिसको वृद्ध समझकर अनादर किया उसी के हाथ से मूर्च्छा हुई । अतः खिसियाया । कराल अस्त्रों से काम न चला तब परम कराल कृपाण निकाला । यह शङ्करदत्त चन्द्रहास कृपाण है । इसके चोट से कोई बचता नहीं । पख से ही शस्त्र रोकते हैं सो पख ही काटा ।

आकाश में युद्ध होता था । पंख कटने से जटायुजी पृथ्वी पर गिरे । यथा : पंख बिनु खग अति दीना । गिरते समय राम का स्मरण किया मृत्यु समझकर । अद्भुत करणी : ऐसी दुर्दशा रावण की कोई कर न सका था । मुये मरत मरिहैं सकल घरी पहर के बीच । लही न काहू आजुलों गीघराज की मोच ।

सीतहि जान चढ़ाई बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ॥

करति बिलाप जाति नभ सीता । व्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥१२॥

अर्थ : सीताजी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला । उसे भय कम न था । सीताजी आकाश में विलाप करती हुई जा रही है । मानो व्याध के वश में पड़ी हुई कोई भयभीत हिरनी हो ।

व्याख्या : पहिले : क्रोधवन्त तब रावण लीन्हेसि रथ बैठाई । अब : सीतहि जान चढ़ाई बहोरी । चला । पहिले : चलेउ गगन पथ आतुर । अब : चला उताइल । पहिले : भय रथ हाँकि न जाय । अब : त्रास न थोरी । अभी तो गीघ मिला न जाने अब कौन मिले ।

सीताजी का फिर विलाप आरम्भ हुआ । अब आकाश में विलाप हो रहा है । कपिला गौ म्लेच्छ वश होने पर विलाप मात्र करती हैं और मृगी वन्यजन्तु हैं छटपटाती हैं । पर मृगी को छुड़ाने कौन आवे : अब कोई छुड़ाने न आवेगा । जिस दृष्टि से जटायु ने देखा उस दृष्टि से दूसरा कोई देख न सका । इसलिए मृगी की उपमा दी ।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरि नामु दीन्ह पट डारी ॥

एहि विधि सीतहि सो ले गएऊ । बन असोक महु राखत भएऊ ॥१३॥

अर्थ : पर्वत पर बैठे हुए बन्दरों को देखकर सीताजी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया । इस प्रकार वह सीताजी को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रक्खा ।

व्याख्या : गिरि ऋष्यमूक पर मन्त्रियों के सहित सुग्रीव विचार कर रहे थे । सीताजी को बड़ी चिन्ता है कि गीघराज भी मारे गये । अब फिर वही प्रश्न उठा : विपत मोर को प्रभुहि सुनावा । अतः आभूषण बांधकर सुग्रीव की ओर फेंका और राम राम हा राम ऐसा पुकारा । भाव यह कि मैं राम की हूँ । राम को पट देना । हा राम ! अर्थात् इच्छा के प्रतिकूल यह लिये जाता है । रावण ने व्यग्रता में इस बात का ध्यान न किया ।

एहि विधि अर्थान् बलपूर्वक वह सीताजी को ले गया : रावण का महा अन्याय प्रमाणित हो गया । स्त्री हरण करनेवाला आततायी है । उसके वध में विचार नहीं । अशोक वन अति सुरक्षित था । विभीषण के बिना बताये जिसका पता हनुमानजी को न चला । वहाँ ले जाकर उसने सीताजी को रक्खा ।

दो. हारि परा खल बहु विधि, भय अरु प्रीति देखाइ ।

तब असोक पादप तर, राखिसि जतनु कराइ ॥

जेहि विधि कपट कुरग संग, धाइ चले श्रीराम ।

सो छवि सीता राखि उर, रटति रहति हरि नाम ॥२९.२३॥

अर्थ सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया तब उन्हे यत्न करके अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया । जिस प्रकार कपट भृग के साथ श्रीरामजी दौड़ चले थे उसी छवि को हृदय में रखकर वे हरिनाम रटती रहती हैं ।

व्याख्या दान और भेद के लिए कोई स्थान नहीं था । अतः भय और प्रीति से काम लिया । खल है । खल को पर अकाज में अधिक पुरुषार्थ हो जाता है । यथा - पर अकाज भट सहसबाहु से । पर यहाँ हारना पडा । पहिले अशोक वन के प्रासाद में रखना चाहा । पर भगवती वहाँ न रहेगी । वनवास मिला है । अतः अशोक वृक्ष के तले रक्खा और वहाँ भी पहरे में ।

प्रेम ते पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित दै चले ले चित चोरे ।

श्याम शरीर पसेउ लसै हुलसै तुलसी छवि सो मन मोरे ॥

लोचन लोल चलै भृकुटी कल काम कमाननि सो तृण तोरे ।

राजत राम कुरग के सग निपग कसे धनु से सर जोरे ॥

यह विधि कपट कुरग के सग धाय चलने की है । उसी छवि ने चित्त चुराया है । अतः उसी छवि को हृदय में रखकर नाम रटती हैं ।

४०. रघुवीर विरह वर्णन प्रसङ्ग

रघुपति अनुजहि आवत देखी । बाहिज चिता कीन्ह विसेखी ॥

जनकसुता परिहरिउ अकेली । आयहु तात बचन मम पेली ॥१॥

अर्थ . इधर श्रीरघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आते देखकर बाह्य रूप में बहुत चिन्ता की और कहा हे भाई ! तुमने जानकीजी को अकेली छोड़ दिया और मेरा वचन टालकर यहाँ चले आये ।

व्याख्या : अनुज को आते देखकर बाहर से विशेष चिन्ता की मुद्रा नाटक के पात्र की भाँति रामजी ने धारण की । पर हृदय से निश्चिन्त थे । व्यग्र होने के कारण अनुज ने सरकार को न देखा । चिन्तावाली बात भी बोले । बाह्य तभी लिखा जाता है जब अन्तर से भेद हो ।

जनक सुता से भाव यह कि जिसके लिए इतना बड़ा समारोह हुआ था : देव दनुज धरि मनुज सरोरा । विपुल वीर आये रन धीरा । ऐसे स्त्री रत्न को अकेले क्यों छोड़ा ? अथवा यदि कोई अनिष्ट हुआ तो जनकजी को क्या जवाब दें ? भोरेहु भरत न पेलिहहि मनसहुँ राम रजाइ । सो तुमने मेरी आज्ञा कैसे हटायी ।

निसिचर निकर फिरहि वन माही । मम मन सीता आस्रम नाही ॥

गहि पद कमल अनुज कर जोरी । कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥२॥

अर्थ : राक्षसों के झुण्ड वन में फिरते रहते हैं । मेरे मन में ऐसा आता है कि सीता आश्रम में नहीं हैं । छोटे भाई लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के चरण कमलों को पकड़कर हाथ जोड़कर कहा : हे नाथ । मेरा कुछ भी दोष नहीं है ।

व्याख्या : मैंने तुम्हें समझा दिया था । फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई । सीता केरि करेहु रखवारी । मारीच ने तुम्हारा नाम लेकर इसीलिए पुकारा कि तुम चले आओ और इसीलिए मैंने भी कहा था । बुद्धि बिबेक बल समय विचारी । सो तुमने बड़ी गलती की । अवश्य सीता को या तो राक्षस खा गये या हरण कर ले गये ।

लक्ष्मणजी ने चरण पकड़ा अपराध क्षमापन के लिए । हाथ जोड़ा प्रार्थना करने के लिए । इसमें मेरा थोड़ा भी अपराध नहीं । सब अपराध सीताजी का है ऐसा ध्वनि से लक्षित कराते हैं । मुख से अपराध नहीं कहते । न वह भर्म वचन कहते हैं जो सीताजी बोल बैठी थी ।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ । गोदावरि तट आस्रम जहवाँ ॥

आस्रम देखि जानकी हीना । भए विकल जस प्राकृत दीना ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वहाँ गये जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था । आश्रम की जानकीजी से रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दुःखी हो गये ।

व्याख्या : भाई का उत्तर पाते ही बात समझ लिया फिर उनसे इस विषय में कुछ न कहा । लक्ष्मणजी भी साथ लौट पड़े । सीताजी होती तो आये लिखते । गोदावरी निकट प्रभु रहे पर्णगृह छाड़ : आश्रम तो मन्दाकिनी के निकट भी था । अत आश्रम के साथ गोदावरी शब्द दिया ।

पहिले ही कहा था . मम मन सीता आस्रम नाही वही बात हुई । जिस इन्द्रिय से जिस वस्तु का भाव ग्रहण होता है उसी से उसने अभाव का भी ग्रहण हाता है । ससारिक पुरुष जैसे दीन और विकल होते हैं वैसे विकल हुए . मुनि अति विकल मोह मति नाठी । मनि गिरि गई छूटि जनु गाठी ।

हा गुन खानि जानकी सीता । रूप सील व्रत नेम पुनीता ॥

लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ॥४॥

अर्थ : हा गुणों की खानि जानकी । हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते ! लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार से समझाया । तब श्री रामजी लताओं और वृक्षों की पत्तियों से पूछते हुए चले ।

व्याख्या : जिस भाँति भगवती ने विलाप किया . हा जगदेक वीर रघुराया । उसी भाँति सरकार भी विलाप करते हैं । उन्होंने जगदेक वीर कहा । ये गुण खानि कहते हैं । उन्होंने रघुराया कहा । ये जानकी सीता कहते हैं । उन्होंने : आरति हरन सरन सुख दायक कहा । ये : रूप शील व्रत नेम पुनीता कहते हैं । अनुज दियो भरोसो तौ लौ है सोच खरोसो । सिय समाचार प्रभु जो लो न लहे ।

लक्ष्मणजी ने समझाया कि सरकार को विलाप शोभा नहीं देता । उनका पता लगाना चाहिए :

नाथ रोकि मन सोक बस होहु न परम सुजान ।
कलुपित मति अति करत नहि तुमसे ज्ञान निधान ॥
लखि वियोग दुख तजहु प्रभु प्रेमपात्र को नेह ।
गीलीहू बाती जरत जब लगि भरो सनेह ॥
तात तजिय यह कृपिण मति आनि हिये उत्साह ।
अर्थी जन को अर्थ बिनु होइ न सके निवाह ॥
नहि दुलभ कछु तिनहि जग जिनहि सदा उत्साह ।
नहि कोउ बल उत्साह सम गोपद होय अयाह ॥
होत दुखी नहि कर्म मे उत्साही जन कोय ।
निश्चय सीता को मिलन उत्साहहि स होय ॥
तुम कहँ कैसी दीनता तुम त्रिभुवन आधार ।
भूलि रहे निज रूप को कीजिय तनिक सँभार ॥
कहँ सीता कहि नाथ जब पूछेउ अति बिलखाय ।
सहसा उठि मृगगन दयो दच्छिन दिसा दिखाय ॥
याते दच्छिन दिसि चलिय सीता हेरन हेतु ।
चिन्ता कार्य बिनासिनी त्यागहु रघुकुल केतु ॥

सो उनकी बात मान गये तो लता तरु से पूछते चले । उन्मादावस्था कह रहे हैं । जो सुन सकता है वह देख भी सकता है । सीता के विलाप सुनि भारी । भये चराचर जीव दुखारी । यथा . तस्मात् शृण्वन्ति पादपाः । तथा : तस्मात् पश्यन्ति पादपाः । वहाँ लता वृक्ष थे ।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी । तुम देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥५॥
कुंद कली दाडिम दामिनी । कमल मरद ससि अहि भामिनी ॥
वरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥६॥

अर्थ - हे पक्षियो ! हे मृगगण ! हे भौरे की पक्तियो ! तुमने कही मृगनयनी सीता को देखा है ? खञ्जन, तोता, कबूतर, हिरण, मछली, भौरों का समूह, प्रवीण कोल, कुन्दकली, अनार, पिजली, कमल, शरद का चन्द्रमा और नागिनी, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, गज और सिंह ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं ।

व्याख्या : वहाँ खग मृग और मधुकर थे । खग मृग बृद्ध अनर्द्ध रहती । मुखर मधुप गुजत छवि लहती । सो न खग कूजते हैं । न मधुकर गूँजते हैं । न मृग कलोल करते हैं । अतः समझा कि ये लोग कुछ जानते हैं । अतः उन्हीं से पूछते हैं । नाम न जानते हो तो रूप बतलाते हैं मृगनयनी । सरकार मृगलोचनी कहते ही थे । मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए ।

इस वर्णन में कोई क्रम नहीं है । प्रेमोन्माद के कथन में क्रम निबह भी नहीं सकता । गोस्वामीजी ने सरकार का नखशिख स्थान स्थान पर वर्णन किया है । भगवती के नखशिख के वर्णन का अधिकार नहीं है । पुत्र को माँ के नखशिख वर्णन का अधिकार स्वभावतः नहीं है । अतः वर्णन नहीं किया । यहाँ स्वयं सरकार विरहावस्था में नखशिख वर्णन कर रहे हैं । उसे भी कवि ने कितना सँभालकर लिखा । उपमेय का नाम तक नहीं आने दिया केवल उपमान कह रहे हैं । अठारह उपमाओं में सब कहा । नेत्र की उपमा खञ्जन से, मृग मीन से, नासिका की शुक से, कण्ठ की कपोत से, केश की मधुप निकर, सर्पिणी और वरुण पाश से, स्वर की कोकिला से, दाँत की कुन्दकली और दाडिम से, वर्ण की दामिनी से, कर पद की कमल से, मुख की शरद शशि से, गति की हंस और गज से और कटि की केहरि से उपमा दी जाती है ।

इन अठारह की निन्दा होती रही कि ये उपमान सीताजी के सामने कुछ नहीं हैं । ये जूठी की भाँति सीताजी के अङ्गों के सामने घृणास्पद समझी जाती रही । यथा - सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहि पटतरिय विदेह कुमारी । अब प्रशंसा हो रही है कि इनके सामने उपमेय कोई है ही नहीं ।

श्रीफल कनक कदलि हरपाही । नेकु न संक सकुच मन माही ॥
सुनु जानकी तोहि विनु आजू । हरपे सकल पाइ जनु राजू ॥७॥

अर्थ - बेल और कनक कदलो . एक प्रकार का केला । हर्षित हो रहे हैं । इनके मन में जरा भी शङ्का तौर सङ्कोच नहीं है । हे जानकी ! सुनो । तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानो राज पा गये हों ।

व्याख्या : कुच की उपमा श्रीफल से और कनक केदली की उपमा जघा से दी जाती है । ये अङ्ग आवृत रहते हैं । जो अङ्ग आवृत रहते हैं उनके उपमान को निरावरण देखकर कहते हैं कि इन्हें लज्जा नहीं है । अतः अनावृत है और शङ्का भी नहीं है कि कदाचित् जानकीजी आजायें तो फिर ये फीके पड़ जायेंगे । अथवा इस बात की भी शङ्का नहीं है कि कोई हरण कर लेगा ।

आज तक तेरे रहने से ये नहीं हरखे । आज इतने हर्षित हैं मानो इन्हे राज मिल गया है । राज्य में आभिमानिक सुख बड़ा भारी है । राज्य तुल्य भोग आमात्यादिक धनियो का भी होता है । पर उन्हें आभिमानिक सुख नहीं होता । आभिमानिक सुख ही साधारण धर्म है जिससे राज की उपमा दो । क्षत्रियो^१ को तो राज्य प्राप्ति से अधिक प्रिय और कुछ नहीं होता । अतः रामजी उनके हर्ष की उपमा राज्य प्राप्ति के हर्ष से देते हैं ।

किमि सहि जात अनख तोहि पाही । प्रिया वेगि प्रगटसि कस नाही ॥

एहि विधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहुं महा बिरही अति कामी ॥८॥

अर्थ तुमसे यह स्पर्द्धा कैसे सही जाती है ? हे प्रिये ! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती ? इस प्रकार स्वामी श्रीरामजी सीताजी को खोजते हुए ऐसा विलाप करते हैं जैसे कोई महा विरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो ।

व्याख्या इनकी ऐंठ तू कैसे सह रही है । इनकी ऐंठ को प्रकट होकर क्यों नहीं मिटा देती । यहाँ प्रभु भी जानकी को प्रत्यक्ष कल्पना करके प्रलाप कर रहे हैं । मुझसे तो इनकी ऐंठ नहीं देखी जाती । क्योंकि तुझसे स्पर्द्धा रखते हैं । तुझसे कैसे सहा जा रहा है । तू शीघ्र ही प्रकट होकर इनकी ऐंठ मिटा क्यों नहीं देती ।

रावण के ल जाने की विधि कहकर अब सरकार के खोजने और विलाप करने की विधि कहते हैं । खोजने की विधि पूछत चल लता तरु पाँती । विलाप की विधि किसी उपमान को देखकर उपमेय स्मरण हो उठता है । भाव यह कि विधि ऐसी पकड़ रखी है जो अति विरही और अति कामी पकड़ते हैं ।

पूरन काम रामु सुखरासी । मनुज चरित कर अज अविनासी ॥

४१ गोधक्रिया प्रसङ्ग

आगे परा गोधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥९॥

अर्थ पूर्णकाम, आनन्द की राशि अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्यों के से चरित्र कर रहे हैं । आगे जाने पर उन्होंने गोधपति जटायु को पड़ा देखा ।

व्याख्या परन्तु सरकार पूर्णकाम है । अतः उन्हें कामना नहीं । यथा कहेहु तात अस मोर प्रणामा । सब प्रकार प्रभु प्रण कामा । और सुखराशि हैं । उनका विलाप करना विडम्बना है । मनुज चरित कर रहे हैं । यथा एक बार अतिसै सब चरित किये रघुवीर । जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा । वधु समेत घरे मुनि वेखा । जासु चरित अवलोकि भवानी । सती सरीर रहिहु बीरानी । नहीं तो न उनका जन्म होता है और न उनमें विकार आता है । उमा के समझाने के लिए माधुर्य के साथ ही ऐश्वर्य कहा ।

इस भाँति जहाँ जटायुजी पड़े थे वहाँ पहुँच गये । गीधपति को सामने पड़ा हुआ देखा । गीधपति ने नहीं देखा । आसन्नमृत्यु हैं । आँख बन्द है । मानसिक क्रिया मात्र थोड़ी सी हो रही है । सरकार के चरण के चिह्न ध्वज कुलिश अकुश कज का ध्यान कर रहे हैं । गीध की दृष्टि तीव्र होती है । इन्होंने सूक्ष्म रेखाओं को भी देखा था । उन रेखाओं पर मोहित थे । रेखाओं के ध्यान के पृथक् पृथक् माहात्म्य है । यथा : अकुश मन गज वशकारी है । वज्र पाप पहाड़ का नाश करता है । ध्वजा के ध्यान से परलोक जय होता है । कज भवमोचन है । इससे ताप नष्ट होता है । इत्यादि ।

दो. कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुवीर ।

निरखि राम छवि धाम मुख, विगत भई सब पीर ॥३०.२४॥

अर्थ : कृपा सागर श्रीरघुवीर ने अपने कर कमल से उसके सिर का स्पर्श किया । श्रीरामजी का शोभाधाम मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही ।

व्याख्या • कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहुत नाथ सीस मेरे । जेहि कर अभय किये जन आरत वारक विवस नाम टेरे । अभी तक गीध के घायल होने का कारण नहीं मालूम । फिर भी दुखी देखकर अस्पृश्य गीध के सिर पर हाथ रखता । क्योंकि कृपासिन्धु है । रघुवीर हैं । अतः दयावीर भी है । सिर पर हाथ रखते ही आँख खुल गयी । तब मुख छवि देखा । देखते ही पीड़ा मिटी । क्योंकि वदन पजक भव मोचन हैं । सब पीर, कालकर्म गुण सुभाव उसके सीस तपत ।

तब कह गीध वचन धरि धीरा । सुनसु राम भजन भव भीरा ॥

नाथ दसानन एह गति कीन्ही । तेंहि खल जनक सुता हरि लीन्ही ॥१॥

अर्थ : तब धीरज धरकर गीधराज ने यह वचन कहा : हे जन्म मृत्यु के भय का नाश करनेवाले श्रीरामजी । सुनिये । हे नाथ । रावण ने मेरी यह दशा की है । उसी दुष्ट ने जानकीजी को हर ली है ।

व्याख्या : सरकार की मुख छवि देखकर पीर मिटने पर धीर धारण किया । शरीर क्षत विक्षत होने से बोल नहीं सकते थे । उनको भवभीर दर्शन से मिट गयी । इसलिए भजन भवभीरा कहते हैं । राम नाम का भी उच्चारण हुआ । प्रभु कुछ पूछते नहीं हैं । पर इन्हे कहने की जल्दी है कि कही सीता की सुधि बिना दिये ही मेरे प्राण न निकल जायें ।

दसानन ने यह गति की । भाव यह है कि उसे दशमुख हैं । यही उसकी पहिचान है : दस सिर ताहि बीस भुजदंड । रावन नाम वीर वरिवडा । रावण का हाल कहते हैं कि वह खल है । उसने जनकसुता का हरण किया । जनक ऋषियों के मान्य हैं और यह ऋषिपुत्र होकर जनकसुता का हरण करता है । अर्थापत्ति से जटायुजी का जीतेजी जानकी को न जाने देना सिद्ध हुआ । गीधराज ने एहसान न

जताया । भगवती को चिन्ता थी : बिपति मोर को प्रभुहि सुनावा । सो गोधराज ने सुना दिया ।

लै दन्छिन दिसि गएउ गोसाईं । विलपति अति कुररी की नाई ॥

दरम लागि प्रभु राखेउं प्राणा । चलन चाहत अब कृपानिधाना ॥२॥

अर्थ . हे गोसाईं ! वह उन्हे लेकर दक्षिण दिशा को गया है । सीताजी कुररी की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थी । हे प्रभो ! मैंने आपके दर्शन के लिए ही प्राण रोक रखे थे । हे कृपानिधान ! अब ये चलना चाहते हैं ।

व्याख्या . अब खोजने का मार्ग बतलाते हैं । दक्षिण दिशा ले गया । आकाश मार्ग में विलाप करती जाती थी । इससे कुररी की उपमा दी । कुररी कौश्व पक्षी को कहते हैं । यह जोड़ा के बिछोह में अत्यन्त विलाप करती है । पृथ्वी पर गिरने पर भी जाने की दिशा देख रक्खा था । किसी वस्तु में अत्यन्त ममता रहने से जल्दी प्राण निकलता नहीं । मुझे दर्शन की अत्यन्त इच्छा थी । जिसमें सीताजी का समाचार दे सकूँ । क्षत विक्षत होने पर जीने के लिए प्राण रखने की इच्छा आवश्यक है । अथवा गोधराज की मृत्यु और मोक्ष दो वस्तु नहीं हैं । किसी वासना के रहने से मोक्ष नहीं होता । इसलिए गोधराज की मृत्यु नहीं हुई । अब कहते हैं कि वासना पूरी हो गयी । अतः अब चलना चाहता हूँ । इससे पहिले मैंने चलना नहीं चाहा : काक्षा मृत्यु की सिद्धि प्राप्त हो गयी । सरकार का हाथ सिर पर है इसलिए कृपानिधान कहा ।

राम कहा तनु राखहु ताता । मुख मुसुकाइ कही तेंहि बाता ॥

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमौ मुक्त होइ स्तुति गावा ॥३॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने कहा . हे तात ! शरीर को बनाये रखिये । तब उसने मुसकुराते मुँह से यह बात कही . मरते समय जिसका नाम मुख में आ जाने से महान् पापी भी मुक्त हो जाता है । ऐसा वेद गाते हैं ।

व्याख्या : रामजी ने कहा हे तात ! आप शरीर रखें । यथा :

मेरे जान तात कछू दिन जी जै ।

देखिअ आप सुअन सेवा सुख मोहि पितु को सुख दीजै ।

दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ मँगि लीजै ॥

हरिहर सुजस सुनाइ दरस दै लोग वृत्तारथ कीजै ॥

सुनकर गोधराज मुसकुराये कि भला ! मैं ऐसा अवसर चूक सकता हूँ ।

यथा : जन्म जन्म मुनि जतन कराही । अत राम कहि आवत नाही । मम लोचन गोचर सोइ आवा । वहरि कि प्रभु अस वनहि बनावा । और बोले यथा—

देखि वदन मुनि वचन अमिय तन राम नयन जल भीजै ।

बोल्थो विहँसि विहँग रघुवर बलि कहौ सुभाव पती जै ॥

मेरे मरिवे सम न चारि फल होहि तौ क्यो न कही जै ।

तुलसी प्रभु दियो उत्तर मोन ही परी मानौ प्रेम सही जै ॥

सो मम लोचन गोचर आगे । राखौ देह नाथ केहि खाँगे ॥
जल भरि नयन कहहि रघुराई । तात करम निज तें गति पाई ॥४॥

अर्थ : वही आप मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं । हे नाथ ! अब मैं किस कमी की पूर्ति के लिए देह को रखूँ ? नेत्रों में जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे : हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से दुर्लभ गति पायी ।

व्याख्या : गोघराज ने कहा : मरती समय तुम्हारे नाम स्मरण का महा माहात्म्य है । महा पापी भी तर जाता है । पर उस समय तुम्हारे स्मरण की सम्भावना ही नहीं है : प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते । मेरा ऐसा सौभाग्य है कि ऐसे समय में तुम स्वयं मेरे आँखों के सामने हो । अब किस घाटा की पूर्ति के लिए शरीर रखूँ ।

रघुराई हैं बड़े कृतज्ञ । शरीर छोड़ने का निश्चय सुनकर आँख में आँसू आगया । कहने लगे : तुम जो दुर्लभ गति प्राप्ति कर रहे हो वह तुम्हारे कर्म का फल है ।

परहित बस जिन्ह के मन माही । तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाही ॥
तनु तजि तात जाहु मम घामा । देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥५॥

अर्थ : जिनके मन में दूसरे का हित बसता है उनके लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाओ । मैं आपको क्या दूँ । आप तो पूर्णकाम हैं ।

व्याख्या : स्वार्थ तो सबके मन में बसता है । पर जिस महापुरुष के मन में परहित बसे उसके अन्त समय में मेरा जाना दुर्लभ नहीं है । क्योंकि : परहित सरिस धर्म नहि भाई । तुमने परहित के लिए प्राण दिया है । सद्गति तुम्हारे हिस्से की चीज है । गोघराज : राखौ देह नाथ केहि खाँगे कह चुके हैं । अतः प्रभु भी उन्हें पूर्णकाम कह रहे हैं । पूर्णकाम को कोई कुछ दे नहीं सकता । पूर्णकाम के लिए ही राम धाम है । जहाँ से फिर लौटना नहीं पड़ता ।

दो. 'सीताहरण तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ ।

जो मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ ॥३१.२५॥

अर्थ : हे तात ! सीताहरण की बात आप जाकर पिताजी से न कहियेगा । यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ जाकर स्वयं ही कहेगा ।

व्याख्या : सीताहरण सुनकर पिताजी परलोक में भी दुःखी होंगे । हरण प्राप्ति दोनों साथ ही सुनें तो दुःख न होगा । धर्मत्माओं के सङ्कल्प मात्र से परलोक में माता पिता पुत्र सुहृद् उपस्थित हो जाते हैं । सो तुम ऐसे लोक की जा रहे हो

जहाँ स्मरण मात्र से मित्र उपस्थित होंगे । महाराज दशरथ उपस्थित हो जायेंगे और महाराज के स्मरण से आप उपस्थित होंगे । सो यह चर्चा न करना । जटायुजी ने कहा था होइहि सलभ सकल कुल तोरा । उसी को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि शीघ्र ही रावण कुल सहित वहाँ उपस्थित होगा । वह राग द्वेष शून्य देश है । रावणादि भी प्रेम से मिलेंगे । वही सब कथा कहेंगे । मेरो सुनियो तात सँदेसो । सीय हरन जनि कहेउ पिता सन होइहैं अधिव अँदसो । रावरे पुन्य प्रताप अनल मह अल्प दिननि रिपु दहिहै । कुल समेत सुरसभा दसानन समाचार सत्र वहिहैं ।

गोध देह तजि धरि हरि रूपा । भूपन बहु पट पीत अनूपा ॥

श्याम गात विसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥१॥

अर्थ जटायु ने गोध का देह त्यागकर हरि का रूप धारण किया और बहुत से दिव्य आभूषण और अनूप पीताम्बर पहना । श्याम शरीर है । विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रों में जल भरकर वह स्तुति कर रहे हैं ।

व्याख्या प्रभु ने कहा तनु तजि तात जाहु मम धामा । उसी का साफल्य दिखला रहे हैं कि जटायु की गोधवाली शरीर छूट गयी और हरिधाम में जाने योग्य शरीर की प्राप्ति हुई । वह देह स्वयं हरि के अनुरूप थी । मुकुट अङ्गदादि भूषणों से सुशोभित थी और दिव्य पिताम्बर धारण किये थी । उसका श्याम वर्ण था । विशाल चार भुजाएँ थी हरिलोक निवासियों का रूप भूषण वसनादि हरि के सदृश होता है । भोग और ऐश्वर्य भी वैसा ही होता है । केवल कौस्तुभ मणि विप्रचरण चिह्न नहीं रहता और न उत्पत्ति प्रलय का सामर्थ्य होता है ।

दिव्य शरीर प्राप्ति के अनन्तर जटायुजी आँखों में आँसू भरकर स्तुति करने लगे ।

छ जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।

दससीस बाहु प्रचंड खडन चंड सर मडन मही ॥

पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचन ।

नित नौमि राम कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचन ॥

अर्थ हे रामजी ! आपकी जय हो । आपका रूप अनुपम है । आप निर्गुण हैं । सगुण हैं और सत्य ही गुणा के प्रेरक हैं । दस सिरवाले रावण के प्रचण्ड भुजाओं को खण्ड खण्ड करने के लिए प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वी को सुशोभित करनेवाले, सजल मेघ के समान श्याम शरीरवाले कमल के समान मुख और कमल के समान नेत्रवाले, विशाल भुजाओंवाले और भवभय से छुड़ानेवाले कृपालु श्रीरामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ।

व्याख्या जटायुजी कहते हैं कि आपका राम रूप अनूप है । क्योंकि वह सगुण भी है । निर्गुण भी है और वस्तुतस्तु गुण का प्रेरक है । अर्थात् आपके सगुण होने

पर भी निर्गुण रूप अक्षुण्ण ज्यो का त्यो बना हुआ है । निर्गुण होते हुए भी गुणों पर आपका सच्चा आधिपत्य है । आपकी प्रेरणा से घोर तामसी देह छूटकर मुझे यह शुद्ध सात्त्विकी शरीर प्राप्त हुआ है । मैं भविष्य को वर्तमान की भाँति देख रहा हूँ । ये आपके चण्ड बाण दशशोश के प्रचण्ड बाहु के खण्डन करनेवाले हैं और पृथ्वी को रोग विनिर्मुक्त करके शाभा प्रदान करनेवाले हैं । यथा दससीस विनासन बीस भुजा कृत दूर महामहि भूरि रुजा । आपका सजल जलद नील वर्ण, कमल सा मुख और कमल से ही बड़े बड़े नेत्र और विशाल भुजाएँ ससार के भय को दूर करनेवाली है । यथा स्याम सरूप सुभाय सुहावन । सोभा कोटि मनोज लजावन । निरखि बदन पकज भवमोचन । मामवलोक्य पकज लोचन कृपा विलोकनि सोच विमोचन तथा सुमिरत श्री रघुवीर की वाहे । होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहे । आपसे पृथ्वी की शोभा हो रही है ।

लोचन और भुज सबके सब भवमोचन हैं ।

पाथोद गात भवमोचन	यथा श्यामल गात प्रणत भयमोचन ।
सरोज मुख भवमोचन	यथा देखि बदन पकज भवमोचन ।
राजीव लोचन भवमोचन	यथा राजीव विलोचन भवभय मोचन ।
बाहु विसाल भवभय मोचन	यथा सुमिरत श्रीरघुवीर की वाहें ।
	होत सुगम भव उदधि अगम अति
	कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें ॥

अतः हे कृपाल राम ! मैं आपका नित्य नमस्कार करता हूँ ।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचर ।
 गोविन्द गोपर द्वद्वहर विग्यानघन धरनीधर ॥
 जे राम मत्र जपत सत अनत जन मन रजन ।
 नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गजन ॥

अर्थ आप अपरिमित बलवाले हैं । अनादि, अजन्मा, अव्यक्त, एक अगोचर गोविन्द वेद वाक्यों द्वारा जानने योग्य । इन्द्रियो से अतीत, जन्म मरण, सुख दुःख, हर्ष, शोकादि द्वन्द्वों को हरनेवाला विज्ञान की घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं तथा जो सत राम मत्र को जपते हैं उन अनन्त सेवकों के मन का आनन्द देनेवाले हैं । उन निष्काम प्रिय तथा काम आदि दुष्टों के दलन करनेवाले श्रीराम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ।

व्याख्या बलमप्रमेय . स सर्वशक्तिमान् होना कहा । अनादि कहकर पुराण पुरुष होना जनाया । अज कहकर माया से मानुष रूप धारण करना बतलाया । अव्यक्त कहकर मन बुद्धि से परे होना द्योतित किया । एक से एकमवाद्वितीयम्, नेह नानास्ति किञ्चन रूप को लक्षित किया । अगोचर कहकर इन्द्रिया से परे होना कहा ।

यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्वो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । गोविन्द कहकर औपनिषद पुरुष होना बतलाया । यथा तमौपनिषद पुरुष पृच्छामि । गोपर से विज्ञाता होना कहा । यथा विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात् । द्वन्द्वहर से विपत्ति नाशक । विग्नान धन से ब्रह्मरूप और धरनीधर से सर्वाधिष्ठान कहा ।

इस भाँति प्रभु के स्वरूप का वर्णन करके मन्त्रराज की महिमा कहते हैं कि अनन्त असंख्य सन्तो ने इसी का जप किया है करेंगे और करते हैं और आनन्द को प्राप्त होते हैं । यथा वरन विलोचन जनजिअ जोऊ ।

जटायुजी कहते हैं कि मैं ऐसे राम की नित्य वन्दना करता हूँ । जिसे अकाम प्रिय हैं और जो अकाम को प्रिय है । क्योंकि कामादि खल दल के नाश करनेवाले वे ही हैं । यथा तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मत्सर मद माना । जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि भाथा ।

जेहि श्रुति निरजन ब्रह्म व्यापक विरज अज कहि गावही ।

करि ध्यान ग्यान विराग योग अनेक मुनि जेहि पावही ॥

सो प्रगट करुणाकद सोभा वृद्ध अग जग मोहई ।

मम हृदय पकज भृग अग अनग बहु छवि सोहई ॥

अर्थ जिनको श्रुतियाँ माया से परे ब्रह्म व्यापक निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं । मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं । वे ही करुणाकन्द शाभा के समूह स्वयं प्रकट होकर जड चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं । वे ही मेरे हृदयकमल के भ्रमर रूप हैं और उनके अग अग में बहुत से कामदेवा की छवि शोभा पा रही है ।

व्याख्या श्रुति कहती है कि रामजी निरञ्जन हैं । अति सूक्ष्म होने से आकाश की भाँति निर्लेप हैं । ब्रह्म है । सबसे बड़े हैं । व्यापक हैं । देश काल दोनों में व्याप्त हैं । यथा देस काल दिसि विदिसहु माँही । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाँही । विरज से अर्थात् प्रकृति के पार हैं । अतः अज हैं । किसी भाँति परिच्छिन्न होने योग्य नहीं हैं । ध्यान, ज्ञान, विराग से अर्थात् काण्डत्रय की सहायता से योग द्वारा मुनि जिसे प्राप्त करते हैं । यथा ज्ञान कर्म च भक्तिश्च नान्योपायोऽस्ति भूतल । दूसरा उपाय कोई नहीं है । अब सुयोग कहते हैं कि वही नयन विषय हो रहे हैं । कारण यह है कि करुणाकन्द हैं । इस समय करुणा की वर्षा हो रही है । रामावतार ही करुणावतार है । इससे और भी सुभीता है । भयानक रूप से प्रकट होते तो लोग घबराते । यहाँ तो सुन्दरता से ससार को मोहित कर रहे हैं । जटायुजी कहते हैं कि कहाँ तक करुणा कही जाय । मेरे हृदय कमल के भृङ्ग हो रहे हैं । अङ्ग अङ्ग पर अनेक कामोकी शोभा हो रही है ।

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम शीतल सदा ।
पश्यन्ति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा ॥
सो राम रमा निवास सतत दास बस त्रिभुवन धनी ।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

अर्थ : जो अगम और सुगम हैं । निर्मल स्वभाव हैं । विषम और सम हैं तथा सदा शीतल हैं । मन और इन्द्रियो को सदा वश से करते हुए योगीजन बहुत साधन करने पर जिन्हे देख पाते हैं । वे तोनो लोको के स्वामी रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासों के वश में रहते हैं । वे ही मेरे हृदय में निवास करें । जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटानेवाली है ।

व्याख्या : जो अगम हैं और सुगम भी हैं । यथा मुनि जेहि ध्यान न पावहि नेति नेति कह वेद । सो अज प्रेम भगति बस कोसल्या के गोद । जिसका स्वभाव निर्मल है । यथा • रामहि मातु वचन सब भाये । जिमि मुरसरि गत सलिल सोहाये । जो सम भी हैं । विषम भी हैं । यथा • जद्यपि सम नहि राग न रोष । गहइ न पाप पुण्य गुन दोष । तदपि करइ सम विषम बिहारा । भक्त अभक्त हृदय अनुसार । सदा शीतल हैं । यथा : सिसुपल ते पितु मातु वधु गुरु सेवक सचिव सखाउ । कहत राम विधु वदन रिसौ हे सपनेहु लख्यौ न काउ । वह मासचक्षु से नही देखे जा सकते । उनके लिए योग दृष्टि तथा शास्त्र दृष्टि चाहिए । यथा • तदीक्षणस्य स्वाध्यायचक्षुर्मोगस्तथा परम् । न मासचक्षुषा द्रष्टु ब्रह्मभूतः स शक्यते । वि पु और योग दृष्ट के लिए चित्तवृत्ति का निराध सदा चाहिए । दास पर वशता कहते हैं ।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । भगति हेतु लीला तनु गहई ॥
जग पावन कीरति विस्तरिहहि । गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहि ॥

अतः जटायुजी उन्हें हृदय में बसने के लिए प्रार्थना करते हैं । पांच विषय का ही इसमें वर्णन है । १ सगुण रूप २ निर्गुण रूप ३ मन्त्र ४ अवतार ५ और भक्त परतन्त्रता । ये ही हस्तनक्षत्र के पांच तारे हैं । इसको फल श्रुति है : काम कोह कलिमन करि गन के । केहरि सावक जन मन बन के ।

दो. अविरल भगति मांगि बर, गीध गएउ हरिधाम ।

तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम ॥३२.२६॥

अर्थ : अखण्ड भक्ति का वर मांगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरि के परम धाम को चले गये । श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी दाह कर्म आदि सारी क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से की ।

व्याख्या : अविरल भक्ति स्तुति के बाद मांगी । बड़े का नाता मान रक्खा है । इसलिए एवमस्तु नहीं कहा । सरकार ने : जाहु मम धामा कहा था । सो हरि

धाम गये । सरकार ने स्वयं पिता की भावना से यथोचित क्रिया की । पक्षियों में मांस वितरण किया । तृप्यन्तु पक्षिण सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट् । धाम देने के बाद क्रिया की आवश्यकता न थी । परन्तु गीधराज के शरीर की प्रतिष्ठा के लिए सरकार ने अपने हाथ से क्रिया की ।

कोमल चित अति दीनदयाला । कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥

गीध अधम खग आमिष भोगी । गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥१॥

अर्थ श्री रघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले दीनदयालु और बिना ही वारण कृपालु हैं । गीध पक्षियों में भी अधम पक्षी और मांसाहारी था । उसको भी वह दुर्लभ गति दी । जिसे योगीजन मांगते रहते हैं ।

व्याख्या प्रायेण प्रभु लोग पर वेदना नहीं जानते कठोर चित्त होते हैं । पर अति कोमल रघुवीर सुभाऊ । यद्यपि अखिल लोक कर राऊ । परन्तु श्रीरामजी अति कोमल चित्त हैं । अपना धाम देने पर भी सन्तोष नहीं । अपने हाथ से क्रिया करने लगे । दीनदयाल से सङ्कटहारी कहा । यथा दीनदयाल विरद सभारी । हरहु नाथ मम सकट भारी । बिनु हेतु सनेही हैं । इसी भाँति बिनु हेतु कृपाल हैं । कोमल चित्त हैं । अतः अविरल भक्ति दिया । दीनदयाल है । अतः निज धाम दिया । निष्कारण कृपालु हैं । इसलिए अपने हाथ क्रिया किया । आप ही गुण देते हैं और आप ही उस गुण पर मुग्ध होते हैं ।

भक्ति स्पृहारहित को दी जाती है । गीध को नहीं । हरि धाम पवित्र मुनियों के लिए है अधम खग के लिए नहीं । प्रभु के करकज्ज की छाया दयालु लोगों के लिए है हिंसक के लिए नहीं । गीध शकुनाधम सब भाँति अपावन होते हैं । उनके जीवन का मूल्य क्या है ? अधम खग तो बहुत हैं । पर मुर्दा खानेवाला गीध ही है । योगी का सार्वभौम अहिंसा महाव्रत है । सो गीध को ऐसी गति दी जिसके लिए योगी लोग तरसते हैं ।

सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहि विषय अनुरागी ॥

४२ कबन्धवध तथा शबरी गति प्रसङ्ग

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई । चले विलोकत बन बहुताई ॥२॥

अर्थ हे पार्वती । सुनो । वे लोग अभागे हैं जो भगवान् को छोड़कर विषयो से अनुराग करते हैं । फिर दोनों भाई सीताजी को खोजते हुए आगे चले । वे बन की सघनता देखते जाते हैं ।

व्याख्या नर तन पाइ विषय मन देही । पलटि सुधा ते सठ विष लेही । हरि रूप सुधा है और विषय विष है । गीध से इतना ही हुआ कि हरिपद में अनुरक्त हो गया । अतः वह महा भाग्यवान् हो गया । गीध भाग्यवान् हुआ । रावण अभागी हुआ । पहले खग, मृग तथा मधुकर श्रेणी से सीता का पता पूछते थे । अब पता

लग गया । अतः अब उनसे नहीं पूछते हैं पर खोजते हैं । यह नहीं मालूम कि रावण ने कहाँ रास्ता छोड़ा है । वन बहुत बड़ा है । इतना बड़ा वन अब तक नहीं मिला । अतः उसकी बहुतायत देखते हुए चले जाते हैं ।

सकुल लता विटप घन कानन । बहु खग मृग तर्हं गज पचानन ॥

आवत पथ कवध निपाता । तेहि सब कही साप कै वाता ॥३॥

अर्थ वह सघन वन लताओं और वृक्षों से भरा है । उसमें बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं । श्रीरामजी ने रास्ते में आते हुए कवन्ध राक्षस को मारा । उसने शाप की सब बातें कही ।

व्याख्या वन की घनता कहते हैं कि विटप से भरा हुआ था और उनमें लताएँ लिपटी हुई थी । फलदार वन है । खग मृग बहुत हैं । बड़ा घोर वन है । इसलिए गज पचानन भी हैं । मनुष्य का उल्लेख नहीं है । इससे ज्ञात होता है कि घोर निर्जन वन था । कवन्ध के भय से कोई आता जाता न था ।

प्रभु जिधर जाते थे उधर वह आता था । इससे उसका मार्ग में बाधक होना कहा । मरने के बाद वह अपने पूर्व रूप में हो गया । शाप मिलने के कारण वह राक्षस हो गया था । मारे जाने को उसने उपकार माना । कृतज्ञता के प्रकाश के लिए उसने शाप का सब वृत्तान्त प्रभु से निवेदन किया कि मैं पूर्वजन्म में बड़ा सुन्दर था । पर ऐसा ही भयानक रूप धारण करके मुनियों को डराता फिरता था ।

दुर्वासा मोहि दीन्ही सापा । प्रभु पद पेलि मिटा सो पापा ॥

सुनु गधर्व कहउ मै तोही । मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥४॥

अर्थ उसने कहा कि इसी पर दुर्वासाजी ने मुझे शाप दे दिया । अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया । श्रीरामजी ने कहा हे गन्धर्व ! मुनियों में तुम्हें कहता हूँ । ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला मुझे नहीं सुहाता ।

व्याख्या दुर्वासा का शाप था । मिटनेवाला नहीं । वह देवासुर संग्राम में लड़ा । इन्द्र का वज्र लगा । फिर भी शाप न मिटा । पाप के कटने के लिए ही मुनि लोग कृपा करके शाप देते हैं । सो पाप प्रभु के दर्शन से कटा । सम्मुख होइ जीव मोहि जबही । जन्म कोटि अध नासहि तबहीं ।

प्रभु ने गन्धर्व कहकर उसको सम्बोधन किया इससे पता चलता है कि पूर्वजन्म में वह गन्धर्व था । और वहाँ कि मुझे ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला अच्छा नहीं लगता । ब्राह्मण^१ और गाय एक कुल की दो शाखा है । एक म मन्त्र और दूसरे में हवि प्रतिष्ठित है । अर्थात् ये ही दोनों यज्ञ के मुख्य साधन हैं और यज्ञ से ही दोनों लोको का कल्याण होता है । गो ब्राह्मणकुल का द्रोह करना तो देवलोक

१ ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेव द्विधा कृतम् । एवञ्च मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति । मनु

से चलते हुए व्यापार के वन्द करने की चेष्टा है। यह यज्ञपुरुष को प्रिय हो नहीं सकती। जिस भाँति गो के दुग्धादि से ही यज्ञ सम्पन्न होते हैं। बकरी के दूध से सम्पन्न नहीं हो सकते। उसी भाँति ब्राह्मण मुखोच्चरित मन्त्रों से ही यज्ञ सुसम्पन्न होते हैं। अब्राह्मण के मुखोच्चरित मन्त्र से नहीं होते। इसीलिए हिन्दू जाति और उसके शास्त्रों में गोकुल और ब्राह्मणकुल का बड़ा मान है। यथा

दो मन कम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव ।

मोहि समेत बिरचि सिव, वस ताके सब देव ॥३३.२७॥

अर्थ मन कम और वचन से कपट छोड़कर जो ब्राह्मणों की सेवा करता है। मुझ समेत ब्रह्मा शिव आदि सब देवता उसके वश में हो जाते हैं।

व्याख्या ब्राह्मणों का वेद में प्रधान अधिकार है। अतः वे पृथ्वी के देवता हैं। आज भी जिसको शास्त्र का ज्ञान है उसे साक्षात् या परम्परया ब्राह्मणों से ही हुआ है। अतः उनकी सेवा कपट छोड़कर करनी चाहिए। बाहर से नम्र रहे और भीतर से नम्र नहीं यही कपट सहित सेवा है बाहिज नम्र देखि मोहि साई। विप्र पढ़ाव पुत्र की नाई। सब देवों के वशीकरण का द्विज सेवा ही उपाय है। यथा किं तस्य दुर्लभतरमिह लाके परत्र च। यस्य विप्रा प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः । भाग०

शापित ताडित परुष कहता। विप्र पूज्य अस गावहि सता ॥

पूजिय विप्र सील गुन होना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना ॥१॥

अर्थ शाप देता हुआ मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य हैं। ऐसा सन्त कहते हैं। शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है और गुणगणों से युक्त और ज्ञान में निपुण भी सूद्र पूजनीय नहीं है।

व्याख्या गुणत तो सभी पूज्य होता है। गुण की पूजा स्वाभाविक है। पर ब्राह्मण जन्मत भी पूज्य हैं। यदि उनमें गुण भी ब्राह्मण के हो। वेदपाठी भी हो तो शापित मन से, ताडित कर्म से और परुष कहता वाणी से होने पर भी वे पूज्य हैं। शापित ताडित परुषवक्ता पूज्य योग्य नहीं है। पर विप्र हैं। उनके पूर्वजन्म के कुछ कर्म ऐसे हैं कि जिससे वे पूजा माने जाते हैं यथा तुलसी पीपल आदि। तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशोहयत् ते रमणीया योनिमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनि वा क्षत्रिययोनि वा वैश्ययोनि वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशोहयत् कपूया योनिमापद्येरन् श्वयोनि वा सूकरयोनि वा चाण्डाल्यानि वा। भगवान् वासुदेव कहते हैं विप्र कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामका। घ्नन्त बहु शपन्त वा नमस्कुस्त नित्यशः । भा० । मेरे भक्त अपराधी ब्राह्मण का भी द्रोह न करें। मारते हुए शाप देते हुए ब्राह्मण को भी नमस्कार ही करें। बड़े पाप अपकीरति हारे। मारतहूँ पा परिय तुम्हारे। शाप सीस धरि हरखि हिय प्रभु बहु विनती कीन्ह। भृगुपति वकीहि कुठार उठाये। मन मुसुकाहि राम सिर नाये। इत्यादि।

ब्राह्मण कम से कम गायत्री मात्र जाने, आचरण और गुण से हीन हो फिर भी पूजा उसकी होगी । जहाँ शास्त्रों में ब्राह्मण पूजन विधान है वहाँ ब्राह्मणोचित गुणवाला शूद्र पूजित नहीं होगा । हीनगुणवाला ब्राह्मण ही पूजित होता है । यथा : तुलसी पूजन विधान में तुलसी के स्थान पर अनार अगूर का पूजन नहीं हो सकता ।

कहि निज धर्म ताहि समुझावा । निज पद प्रीति देखि मन भावा ॥

रघुपति चरन कमल सिरु नाई । गयउ गगन आपनि गति पाई ॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने अपना धर्म कहकर उसे समझाया । अपने चरणों में प्रेम देखकर वह उनके मन को अच्छा लगा । तदनन्तर श्रीरघुनाथजी के चरण कमलों में सिर नवाकर वह अपनी गति गन्धर्व का स्वरूप पाकर आकाश में चला गया ।

व्याख्या : प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं । ब्राह्मणों पर प्रीति करना अपना धर्म मानते हैं । यथा

प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना । मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ॥

जेते धर्म सवाम सबै को फल कटु जानो ।

धन द्वारा सुत गेह विनश्वर दुखमय मानो ॥

स्वर्गहु विनशन शील चारि दिन को सुखदाई ।

श्री गुरु चरण सरोज शरण में भूरि भलाई ॥

गुरु गोविन्द को निष्कपट सेवा विजयानन्द करो ।

विरति ज्ञान संयुत मुभग भगति पथ नित अनुसरो ॥

सतसगति नित करो शौच तप मोन निवाहो ।

ब्रह्मचर्य व्रत धरो अहिंसा समता चाहो ॥

जड चेतन को आत्मरूप ईश्वर करि देखो ।

गहो सदा सतोष सत रहनो जिय लेखो ॥

प्रभु सबमें सब प्रभुहि में जानि अहता को तजो ।

ये तेरह हैं भागवत सद्गुण विजयानन्द भजो ॥

अतः द्विज सेवा को हरितापण व्रत कहा गया है । इससे भगवान् तुष्ट होते हैं । इस बात को उसे समझाया । जिसमें फिर उससे ऐसी चूक न हो । अपने चरणों में प्रेम देखकर उसे परम कल्याणकर उपदेश दिया । तब वह कृतकृत्य होकर प्रभु चरणों पर नत हुआ तथा गन्धर्व लोच को गया । स्वयं भक्ति का उपदेश दे चुके हैं । उसे अन्यस्पृहा न होने से और कुछ न दिया । अतः गगन जाना कहा । चरण में सिर देने से ही ऊर्ध्व गति होती है । यथा अतिशय बड़ भागो चरणनन्दि लागी जुगल नयन जल धार वही . गई पतिलोक अतन्द भरी । अधोगति हा गयी थी । सो ऊर्ध्व गति की बाधा दूर हो गयी ।

ताहि देख गति राम उदारा । सवरी के आस्रम पगु धारा ॥

सवरी देखि राम गृह आए । मुनि के वचन समुझि जिय भाए ॥३॥

अर्थ उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजी के आश्रम पधारे । शबरीजी ने रामजी को घर में आये देखा । तब मुनि : मतङ्गजी के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया ।

व्याख्या कबन्ध के उद्धार में उदार कह रहे हैं । यथा . ऐसी को उदार जग माही । विनु सेवा जो द्वै दीन पर राम सरिस कोउ नाही । कबन्ध ने क्या सेवा की । उदार हैं . गति देने से तृप्ति नहीं । घर जा जाकर गति देते हैं तथा . सुगम अगम बरदायक होने से उदार हैं । अथवा ऐसे उदार हैं कि शबरी के आश्रम चले । सकल मुनिन्ह के आश्रम जाइ जाइ सुख दीन्ह । सो शबरी कौन मुनि थी ? प्रभु के चरण पडने से उसकी कुटिया भी आश्रम हो गयी ।

शबरी ने देखते ही पहिचान लिया कि ये ही राम हैं । शबरी उसे गृह ही समझती है । आश्रम का ख्याल उसे मन से भी नहीं है । राम किसी के गृह नहीं जाते । विभीषण ने कहा अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै । सरकार नहीं गये । ग्रामवास उचित नहीं है । पर शबरी का गृह सरकार के विचार में आश्रम ही है । मुनि के जिय भाये वचन, समझकर उसने पहिचाना । मुनिजी ने जो ध्यान बताया था सो आँखों के सामने देखा ।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला । जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । शबरी परी चरन लपटाई ॥४॥

अर्थ . कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजावाले सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर बनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरी लिपट पड़ी ।

व्याख्या मुनिजी ने उसकी योग्यतानुकूल सामान्य ध्यान बतलाया था कि बड़ी बड़ी कमल की सी आँखें हैं । लम्बी लम्बी भुजाएँ हैं । दो गहना भी बतला दिया था । जटा का ही मुकुट और पैर तक लटकती हुई माला रहती है । यह भी उदारता है कि उसके ध्यानानुरूप वेप से उसके सामने आये । नहीं तो यहाँ नवमाला कहाँ से आगयी ?

दोनों भाई का एक रूप और वेप है । वर्ण में केवल भेद है । शबरी चरणों में लिपट गयी । स्त्री है । उसे चरण में लिपटने का ही अधिकार है ।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥

सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥५॥

अर्थ : वह प्रेम में मग्न हो गयी । मुख से वचन न निकला । बार बार चरण कमलों में सिर नवा रहा है । फिर उसने जल लेकर आदर पूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनों पर बिठाया ।

व्याख्या : प्रेम मगन : मनसा । मुख वचन न आवा : वाचा । सिर नावा . कमण्डा । मुख से बोलना चाहती है । पर कहते नहीं बनता । तब बार बार प्रणाम करती है ।

श्रीचरणों को केवट ने पसारा था। अब शवरी पखार रही है। शवरी बड़े इन्तजाम में थी। जब से मुनिजी कह गये तभी से नित्य नये आसन बनाती। सुन्दर सुन्दर कन्द मूल फल लाती। कौन जाने कब राम आवेंगे। शवरी के पूजन में न विधि है न मंत्र है। केवल भक्ति है। तीन उपचार से पूजन करती है। पाद्य आसन और नैवेद्य से।

दो. कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहूँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारवार वखानि ॥३४.२८॥

अर्थ : उसने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द मूल और फल लाकर श्रीरामजी को दिये। प्रभु ने बारवार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया।

व्याख्या : लाकर दिया कहने का भाव यह कि कहीं इकट्ठा करके रखे थे वहाँ से लाकर दिया। जब से गुरुजी कहकर चले गये कि तेरे पास रामजी आवेंगे : पर कब आवेंगे यह नहीं कहा। तब से नित्य शवरी पूजोपचार इकट्ठा करती थी। न जाने किस समय आ जावेंगे। इसलिए फलों को खाकर उनके मिठास की परीक्षा कर लेती थी। जो मीठे जँचते थे उन्हें तोड़कर नैवेद्य लगाने के लिए रख लेती थी। आज भी लोग सट्टी में जाकर आम को चख लेते हैं। पसन्द आने पर खरीदते हैं। उसी भाँति जहाँ अति सरस कन्द मूल फल रखे थे वहाँ से लाकर रामजी को दिये। अति कृतज्ञ परम सुजान प्रभु ने उनका बार बार वखान करके भोजन किया। यहाँ यह न समझना चाहिए कि लक्ष्मणजी ने नहीं खाया। रामजी का खाना कहने में ही लक्ष्मणजी का भोजन करना आगया। आगे चले बहुरि रघुराई का अर्थ यह नहीं है कि लक्ष्मणजी नहीं चले।

पानि जोरि आगे भइ ठाढी। प्रभुहि विलोकि प्रीति अति बाढी ॥
केहि विधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मैं जडमति भारी ॥१॥

अर्थ : फिर वह हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयी। प्रभु को देखकर उसका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। कहा : मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ। मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ।

व्याख्या : पहिले कन्द मूल फल परोसती थी। जब सरकार खा चुके तब हाथ जोड़कर आगे खड़ी हुई स्तुति के लिए : भाव यह कि मेरी इतनी ही पूजा थी। मैं किसी योग्य नहीं। पूजा में व्यग्र होने से एकाग्र होकर दर्शन नहीं कर सकी थी। प्रीति तो बढ़ी हुई थी ही। दर्शन से और प्रीति बढ़ी।

बोली कि मैं स्तुति की विधि नहीं जानती। तिस पर तुम्हारी स्तुति : स्तुति-ब्रह्मादीनामपि तदवसनास्त्वपि गिर। अधम जाति हूँ। कोई स्तोत्र भी कण्ठ नहीं है कि उससे स्तुति करूँ। भारी जडमति हूँ। अपने मन से कुछ कल्पना भी नहीं कर सकती।

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह मँह मैं अतिमन्द अघारी ॥

कह रघुपति सुनु भामिनि वाता । मानउँ एक भगति कर नाता ॥२॥

अर्थ अधमाधमो मे भी स्त्री अधम हैं । उनमे भी हे पाप नाशन । मैं अतिमन्द हूँ । श्रीरघुनाथजी ने कहा कि हे भामिनि । मेरी बात सुन । मैं तो केवल एक भक्ति का ही नाता मानता हूँ ।

व्याख्या पहिले अधम से जाति हीन कहा । दूसरे अधम शब्द से अध जन्म महि कहा । तीसरा अधम शब्द नारी होने के नाते कहा । नारी होने से दोष में उत्कर्ष आ जाता है । यथा काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि । तिय बिसेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि । ऐसी स्त्री भी यदि बुद्धिमती हो तो भी कुछ स्तुति कर ही सकती है । शबरी कहती है कि मैं ऐसी स्त्रियो मे भी भारी जडमति हूँ । स्तुति करना जानती भी नहीं । प्रभु के साक्षात्कार होने पर स्तुति करना चाहिए । अब मे क्या करूँ । जिससे आप प्रसन्न हो । यथा स्तोतुम जानामि देवेश किं करामि प्रसीद मे । अ रा

रघुपति है सुनि सनमानहि सर्वाहि सुबानी । भगति भनिति मति गति पहिचानी । यह प्राकृत महि पाल सुभाऊ । जान सिरोमणि कौसल राऊ । रीझत राम सनेह निसोते । को जग मद मलिन मति मोते । अत कहते हैं मेरी बात सुन । मैं एक ही नाता सम्बन्ध मानता हूँ । भक्त मेरे नातेदार सम्बन्धी है । तू अधम क्यों कहती है । तू तो मेरी नातेदार है कवन्ध के प्रकरण मे जाति की बड़ाई किया । क्योंकि वह गुण को बड़ा माननेवाला था । दोनों के सामञ्जस्य के लिए यहाँ गुण की प्रशंसा करते हैं । क्योंकि यह जाति को बड़ा मानती है ।

जाति पाति कुल धर्म बडाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥

भगति हीन नर सोहै कैसा । विनु जल बारिद देग्विअ जैसा ॥३॥

अर्थ जाति, पाति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता । इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है जैसे जलहीन बादल दिखायी पडता है ।

व्याख्या • दस गुण कहे जिससे मनुष्य की शोभा होती है । गुण की वृद्धि के साथ साथ शोभा का उत्कर्ष होता है । जाति मे होना ही शोभा की बात है । फिर यदि पाति मे बैठने पावे तो शोभा और भी बढे । उससे भी यदि कुलीन हा तो क्या बात है । इसी भाँति दसो के होने से बड़ी भारी शोभा होती है ।

भक्तिहीन होने से ये दसो शोभाएँ व्यर्थ हैं । जैसे बिना जल का बादल । वह राम सुयश का वर्ण कर नहीं सकता । देखने मे तो वह स्वच्छ है, श्वेत है, पर उसमे मनुष्यता नहीं है । अत शोभा की कमी पड गयी बसन हीन नहि सोह सुरारी । सत्र भूषण भूषित धर नारी ।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाँही । सावधान सुनु धरु मन माँही ॥

प्रथम भगति सतन्ह कर सगा । दूसरि रति मम कथा प्रसगा ॥४॥

अर्थ मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ । तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर । पहिली भक्ति है सन्तो का सत्सङ्ग । दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसङ्ग में प्रेम ।

व्याख्या तुझसे कहता हूँ दूसरे किसी से नहीं कहा । भागवत धर्म गन्धर्व से कहा । नवधा भक्ति जिससे सम्यन्ध नाता स्थापित होता है उसे तुझसे कहता हूँ । यह चाण्डाल तक के लिए है । सुनने में अनवधानता होने से बात मन में ठीक आवेगी नहीं । अतः सावधान होकर मन में धारण कर । बिना मन में धारण किये निश्चय न हो सकेगा कि कौन सी भक्ति कितनी मुझमें है और किसकी कमी है । सरकार को उसका सङ्कोच छुड़ाना है । सेवक सकुच सोच उर अपने । और उसे नगरवासियों को भाँति उपदेश देकर कृतकृत्य करना है । इसलिए नाता के स्पष्ट करने के व्याज से उसे नवधा भक्ति का उपदेश करते हैं ।

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम् । अर्चन वन्दन दास्य सत्यमात्म-निवेदनम् । यही नवधा भक्ति प्रसिद्ध है और भगवान् ने भी इसी नवधा भक्ति का उपदेश लक्ष्मणजी को दिया । यथा श्रवणादिक नवभक्ति दृढाही । मम लीला रति अति मन माँही । परन्तु शवरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया वह तो स्पष्ट ही श्रवणादिक नवभक्ति से पृथक् है । इस पार्थक्य का कारण जाना चाहिए ।

लक्ष्मणजी को सरकार ने भक्तियोग का उपदेश दिया । यथा भक्तियोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा । जिसमें साधनभक्ति भावभक्ति तथा प्रेमा भक्ति तीनों का समावेश है । उसमें कोई बात छूटी नहीं है । यथा थोरेहि महँ सब कहीं बुझाई । सुनहु तात माँति मन चितलाई । और यह भी मानना पड़ेगा कि दोनों उपदेशों का हृदय एक है । फिर भी प्रकार में इतना बड़ा अन्तर क्यों ? यह प्रश्न बिना उठे नहीं रह सकता ।

दोनों प्रकरणों को निविष्ट चित्त से मनन करने से यह बात मन में आती है कि भक्तियोग का लक्ष्य भगवान् को अपना प्रेमपात्र बनाना है । भक्त को कोई कामना न होनी चाहिए । यहाँ तक कि प्रेमपात्र की प्रसन्नता की भी अपेक्षा न रहे । यथा जानहु राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिव द्रोही । सीता-राम चरन रति मोरे । अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे । तथा वचन कम मन मोरि गति भजन करे निष्काम । तिन्हवे हृदय कमल मह करौ सदा विस्राम अर्थात् भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने में है ।

परन्तु शवरी को जिस नवधाभक्ति का उपदेश दिया है उसका पर्यवसान स्वयं भगवान् के प्रेमपात्र बनने में है । यथा नवमहुँ एकउ जिन्हके होई । नारि पुरुष सचराचर कोई । सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सबल प्रकार भगति दृढ तोरें ।

शबरी अपने को भक्तियोग का अधिकारी नहीं मानती । यहाँ तक कि उसे स्तुति करने में भी सङ्कोच है । कहती है केहि विधि अस्तुति करौ तुम्हारी । अधम जाति मैं जडमति भारी । अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह मैंहु मैं अतिमद अधारी । इस पर भगवान् उसे भक्ति के नव लक्षण बताते हैं । जिससे भक्त भगवान् का प्रेमपात्र बन जाता है । एव शबरी को आश्वासन देते हैं कि तू अपनेको अधम न जान । तुझमें नवो प्रकार की भक्ति है । इससे तू मुझ अतिशय प्रिय है । इसका प्रमाण यह जोगि वृद्ध दुर्लभ गति जोई । तो कहें आज सुलभ भइ सोई ।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने में है और शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया उसका पर्यवसान भगवान् का प्रेमपात्र बनने में है । अतः दोनों में पार्थक्य निष्कारण नहीं है । अतः दोनों का पृथक् पृथक् उपदेश हुआ ।

सरकार का उपदेश भगवद्गीता के उपदेश की भाँति किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही नहीं है । पार्थो वत्स सुधीर्भोक्ता दुग्ध गीतामृत महत् । अजुन तो केवल बछड़े थे । गीतामृत के भोक्ता तो पण्डित लोग हैं । इसी भाँति इन उपदेशों से लाभ उठानेवाले भक्त लोग हैं । लक्ष्मणजी तथा शबरी तो निमित्त मात्र हुए । शबरी में नवधा भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान थी । फिर भी ससार के कल्याणार्थ उसे उपदेश दिया गया । जिस भाँति भगवती अनसूया ने सीताजी को पातिव्रत का उपदेश दिया । यथा

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहि ।

तोहि प्रानप्रिय राम वहेउँ कथा ससार हित ॥

एक भक्ति से कल्याण होता है । केवल सत्संग से ही सध जाता है । यथा अस विचारि जो कर सतसगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहगा । सतसगति मुद भगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला । दूसरी भक्ति रामकथा में रति । यथा

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।

सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेष बड लाहु ॥

महा मोह महिखेस विसाला । रामकथा कालिका कराला ॥

रामकथा सुदर कर तारी । ससय बिहग उडावन हारी ॥

दो गुरु पद पकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।

चौथी भगति मन गुन गन, करै कपट तजि गान ॥३५२९॥

अर्थ तीसरी अमान भक्ति है गुरु के चरण कमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करे ।

व्याख्या गुरु के चरण की सेवावाली भक्ति मानरहित होनी चाहिए । स्वयं प्रभु उसे अपनाये हुए हैं । धनुष भङ्ग के लिए सीय स्वयम्बर में सत्र राजा लोग

इष्ट देवता को प्रणाम करके चले । पर प्रभु ने तो गुरु चरणों को प्रणाम किया । यथा : गुरुहि प्रणाम मनहि मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा । श्री चक्रवर्तीजी : राजा दशरथ कहते हैं : मोहि सम येहु अनुभयेउ न दूजे । सब पायेउ रज पायन पूजे । मानरहित यथा : गुरूपद पदुम पलोत्त प्राते ।

चौथी भक्ति हरि गुणगान है । भगवान् कहते हैं कि न मैं वैकुण्ठ में वसता हूँ और न योगियों के हृदय में वसता हूँ । मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं वही मैं वसता हूँ । नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न हि । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।

परन्तु समय : शतं यह है कि कपट छोड़कर मान करें । दूसरों के दिखाने के लिए या अपनी प्रसिद्धि के लिए नहीं । सभी पुण्य भावोपहत हो जाने पर पाप हो जाते हैं । यथा : सर्वाणि भावोपहतानि कल्कः ।

मंत्र जाप मम दृढ विस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील विरति बहु कर्मा । निरत निरंतर सज्जन धर्मा ॥१॥

अर्थ : मेरे मन्त्र का जप और मुझमें दृढ विश्वास : यह पाँचवीं भक्ति है जो वेदों में प्रसिद्ध है । छठी भक्ति है इन्द्रियों को निग्रह : शील : बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सन्त पुरुषों के आचरण में लगे रहना ।

व्याख्या : मननात् त्रायत इति मन्त्रः । कौनिष्ठ सिद्धि कि विनु विस्वासा । मन्त्र जप में तो विश्वास का अधिक उपयोग है । भविष्यतीति मनः कृत्वा सतत-मव्यथैः । जब वाणी मन में प्रतिष्ठित हो और मन वाणी में प्रतिष्ठित हो तभी यथार्थ रूप से जप होता है । भगवती श्रुति कहती है : वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितामविरावोमे एधि और श्रुति भगवती ने ही राममन्त्र में प्राणीमात्र का अधिकार बतलाया है । यथा : मन्त्रेषु तेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम् । इसीलिए कहते हैं : पंचम भजन सो बेद प्रकासा । दम से इन्द्रिय जय और शील से आचार का ग्रहण किया : बहुशाखा ह्यनन्तारम्ब बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् । काम्य कर्म से विरत हो नित्य नैमित्तिक से नहीं । सज्जनधर्म परोपकारादि हैं जिनका सविस्तर वर्णन : प्रभु नारद सम्वाद प्रकरण में है । उनमें सदा लगा रहे । यह छठी भक्ति हुई ।

सातवें सम मोहि मय जग देखा । मो तें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवें जथालाभ संतोषा । सपनेहुं नहि देखइ पर दोषा ॥२॥

अर्थ : सातवीं भक्ति है : जगत् भर को समभाव से मुझमें ओत प्रोत देखना और सन्तों को मुझसे भी अधिक करके मानना । आठवीं भक्ति है : जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना ।

व्याख्या : सातवीं भक्ति है : निज प्रभुमय देखहि जगत् कासन करहि विरोध ।

परन्तु सन्तो को भगवान् से भी अधिक माने । क्योंकि भगवत्प्राप्ति उन्हीं के द्वारा होती है । यथा : रामसिंधु घन सज्जन धीरा । चदन तरु हरि सत समीरा ।

आठवीं भक्ति है • यथा लाभ सन्तोष । सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ । यो द सन्तोष से ऐसा सुख मिलता है जिससे बढ़कर कोई सुख नहीं है । यथा : कोउ बिस्राम कि पाव तात सहज सन्तोष बिनु । बिनु सन्ताप न काम नसाही । काम अच्छत सुख सपनेहु नाही । राम भजन बिनु मिटहि कि कामा ।

और दूसरे का दोष तो सपने में भी न देखे । दूसरे के दोष देखने का स्वभाव हो जाने से बिना जाने वे दोष अपने हृदय में डेरा करने लगते हैं । इसीलिए परदोष निरीक्षण खल का लक्षण कहा गया है ।

नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हिय हरष न दीना ॥

नव महुँ एकउ जिन्ह के होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥३॥

अर्थ • नवी भक्ति है सरलता और सबके साथ कपट रहित व्यवहार करना : हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और विषाद का न होना । इन नवों में से जिनके एक भी होता है वह स्त्री पुरुष जड चेतन कोई भी हो ।

व्याख्या सरलता महात्मा का लक्षण है । मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम् । शत्रु में भी छलहीन साधु ही हो सकता है । हिंस्र स्वपापेन विहिंसित खलु साधु समत्वेन भयाद्विमुच्यते । मम भरोस हिय यथा मोर दास कहाइ नर आसा । करे तो कहहु कहाँ बिस्वासा । तथा आपन जानि न त्यागिहहि मोहि रघुबीर भरोस । हर्ष और दीनता के लिए फिर कोई कारण नहीं रह जाता ।

ये नवो भक्ति स्वतन्त्र हैं । इसीलिए कहते हैं कि इन नवों में से एक^१ के भी होने से वह भक्त मुझे प्रिय होता है । इस नवधा भक्ति में एक का भी होना दुर्लभ है । नारी होने से अपने को अनधिकारी क्यों समझती है । पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोई । सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ।

आनिन्द्योऽन्यधिक्रियते पारम्पर्या सामान्यवत् । शा० भ० सू० । भक्ति में निन्द्य योनि सामान्य रूप से सबको अधिकार है ।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ तोरें ॥

जोगि वृन्द दुर्लभ गति जोई । तो कहुँ आज सुलभ भइ सोई ॥४॥

अर्थ • हे भामिनि ! मुझे अत्यन्त वही प्रिय है । फिर तुझमें तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ है । अतएव जा गति योगियों को भी दुर्लभ है वही आज तेरे लिए सुलभ हो गयी ।

१ ईश्वर तुष्टेरे कोपि वली । शा० भ० सू० । एक का भी विशेष रूप से अनुष्ठान करने पर वही परमेश्वर को सन्तुष्ट करके बलवान् हो जाता है ।

व्याख्या : नर नारि होने से मेरे वर्ताव में भेद नहीं। रीझत राम सनेह निसोते। सकल प्रकार भक्ति दृढ होने से भामिनि कहा। तेजोमयी मूर्ति शबरी हो गयी।

योगि वृन्द दुर्लभ गति कैवल्य पद है अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। ससार को अति दुर्लभ तेरे लिए सुलभ हो गयी। आज का भाव यह कि काल पाकर नहीं बाज हो तू मुक्त होगी।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा ॥

जनकसुता कइ सुधि भामिनि। जानहि कहु करिवरगामिनि ॥५॥

अर्थ : मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि। हे गजगामिनि। अब यदि तू जानकीजी की कुछ खबर जानती हो तो कह।

व्याख्या : सहज स्वरूप की प्राप्ति ही कैवल्य पद है। यह मेरे दर्शन का फल है। ईश्वर दृष्टि से दर्शन किया। मेरे साक्षात्कार बिना मुक्ति नहीं होती। मेरा दर्शन : साक्षात्कार परम अनूप है। मेरा स्वरूप ही बना देता है।

भामिनि से उपक्रम करके - कह रघुपति सुनु भामिनि वाता। भामिनि में अभ्यास : सोइ अतिसय प्रिय भामिनि भोरे। तथा भामिनि से उपसहार करते हैं। यथा : जनकसुता कर सुधि भामिनि। उसके गति को भी प्रशंसा करते हैं। यथा : जानहि कहु करिवरगामिनि। भाव यह है कि जिस भाँति प्रेम की मिठास शबरी के फलों में थी उसी भाँति प्रेम का सौन्दर्य उसके शरीर में था। जिसने उसके फल को प्रशंसा की वही महाप्रभु उसके सौन्दर्य की भी प्रशंसा कर रहे हैं एव सय प्रकार से उसका आदर कर रहे हैं। उसकी ग्लानि का सम्मार्जन कर रहे हैं। खोई हुई वस्तु को सबसे पूछना चाहिए। सीता हरण के बाद पहिली मनुष्य शबरी ही मिली। अतः उससे सीताजी की सुधि पूछते हैं। उसे वृत्तजता प्रकाश का भी समय नहीं दे रहे हैं।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहं होइहि सुग्रीव मितारि ॥

सो सब कहिहि देव रघुवीरा। जानत हैं पूछहु मति धीरा ॥६॥

अर्थ : शबरी ने कहा : हे रघुनाथजी। आप पंपा नामक सरोवर को जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव। हे रघुवीर। वह सब हाल बतावेगा। हे धीरवृद्धि। आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं।

व्याख्या : शबरी ने सीताजी को स्वयं नहीं देखा। सुग्रीव ने देखा है। योगबल से जानती है। अतः सुग्रीव का पता बतला रही है। अथवा गुरु मुख से पूरा रामायण सुन चुकी है। यथा : यह सब जागर्लिक कहि राखा। गुरुजी ने तो कहा था कि सुग्रीव सब बतलावेंगे। हमें बतलाने को तो नहीं कहा था।

देव से कौतुक प्रियता अथवा सवज्ञता और रघुवीर से सामर्थ्य कहा । तुमसे क्या छिपी है । यह आपका कौतुक है कि जानते हुए भी पूछते हैं । मतिधीर हैं राजनीति राखत सुर आता । अतः रघुवीर कहा ।

वार बार प्रभु पद सिर नाई । प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥७॥

अर्थ वार बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर प्रेमसहित उसने सब कथा सुनायी ।

व्याख्या उपक्रम म पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा कहा था । अब उपसहार में भी कहते वार बार प्रभु पद सिर नाई । जोगि बंद दुलभ मति जोई । तो कहें आज सुलभ भई सोई । कहने के बाद प्रभु ने शबरी को पुनः कृतज्ञता प्रकाश करने का समय नहीं दिया । जनकसुता का हाल पूछने लगे । अतः उत्तर देकर तब प्रणाम करती हैं । जिसे संक्षेप में कहा था उसे विस्तार में कहने लगी ।

छ कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पकज धरे ।

तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहाँ नहिं फिरे ॥

नर विविध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू ।

विस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू ॥

अर्थ सब कथा कहकर भगवान् के मुख दर्शन कर हृदय में उनके चरण कमलों को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह को त्यागकर वह उस दुर्लभ हरिपद में लीन हो गयी जहाँ से लौटना नहीं होता । तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकार के कर्म अधर्म और बहुत से मत ये सब शोकप्रद हैं । हे मनुष्यो ! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजी के चरणों में प्रेम करो ।

व्याख्या सब कथा वही कैसे गुरुजी के पास आयी ? कैसे गुरुजी की कृपा हुई ? कैसे गुरुजी ने सब कथा सीताहरण रावण बंध की कही थी । बदन पकज भव मोचन का निरीक्षण किया पर उपासक चरणों की थी । इसकी कथा में चरण का ही बार बार उल्लेख होता है । अतः चरणों को ही हृदय में रक्खा ।

योगाग्नि से शरीर छोड़ा । उमा तथा शरभङ्ग ने भी योगाग्नि से शरीर छोड़ा । पर वे हरिपद लीन नहीं हुए । क्योंकि वर दूसरे प्रकार का माँग चुके थे । इसने कोई वर नहीं माँगा । अतः हरिपद लीन हुई । उस पद से लौटना नहीं होता । न स पुनरावर्तते ।

अतः गोस्वामीजी नरजाति को शिक्षा देते हैं । बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽन्यवसायिनाम् । अतः काम्य धर्म के अनेक प्रकार हैं । बहुमत लखि श्रुति शास्त्र पुराणन्धि जहाँ तहाँ झगरो सो । इन्हे छोड़ो सबकर मत खग नायक एहा । करिय राम पद पकज नेहा । अतः इन्हीं में अनुराग कर ।

दो. जाति हीन अथ जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि ।

महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि विसारि ॥३६.३०॥

अर्थ : जो नीच जाति की और पापी की जन्मभूमि थी । ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया । अरे महा दुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है ।

व्याख्या : जिसका जन्म कर्म दोनों बिगड़ा हुआ । तिस पर स्त्री पाप योनि उसको मुक्त किया भजन पर रीझ के । यह मन महा मन्द है । जयन्त के मन सा है । सुख रूप को भूलकर सुख चाहता है । ऐसे प्रभुहि विसार • वलि पूजा चाहत नहीं चाहते एकै प्रीति । ऐसा प्रभु क्या भूलने योग्य है ।

४३. सरोवरतीरगमन प्रसंग

चले राम त्यागा वन सोऊ । अतुलित बल नर केहरि दोऊ ॥

विरही इव प्रभु करत विपादा । कहत कथा अनेक संवादा ॥१॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने उस वन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले । दोनों भाई अतुलित बलवान् और मनुष्यों में सिंह के समान हैं । प्रभु विरही की तरह विपाद करते हुए अनेक कथाएँ और संवाद कहते हैं ।

व्याख्या : बहुरि विरह वरनत रघुबीरा । जेहि विधि गये सरोवर तीरा । सो विरह वर्णन प्रसङ्ग कहते हैं । पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई । चले बिलोकत वन बहुताई । इसी वन में शबरी का आश्रम था । अब उस वन को भी पीछे छोड़ दिया । एक वन को छोड़ दूसरे में निर्भीक घुसे चले जा रहे हैं । अतः अतुलित बल कहा । रावण के वध का तो तौल रहा । वन में निर्भीक घुसने से नर केहरि कहा । दो सिंह साथ नहीं रहते यहाँ दोनों साथ हैं ।

एहि विधि खोजत विलपत स्वामी । मनहु महा विरही अति कामी : की अवस्था तो नहीं है । फिर भी विरही इव विपाद कर रहे हैं । कबहुँ योग वियोग न जाके । योग हुआ हो तो वियोग भी हो । अतः विरही इव विपाद करते हैं । नर गति भगत कृपालु देखाई । क्या भी विरह को संवाद भी विरह का । जो दूसरे में हुई उसको क्या : संवाद जो आपस में हुआ ।

लछिमन देखु विपिन कइ सोभा । देखत केहि कर मन नहि छोभा ॥

नारि सहित सब खग मृग वृंदा । मानहुँ मोरि करत हहि निंदा ॥२॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! जरा वन की शोभा तो देखो । इसे देखकर किसका मन दुःख न होगा ? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्री सहित हैं । मानो ये मेरी निन्दा कर रहे हैं ।

व्याख्या • अब कथा आरम्भ हुई। पिछला वन बड़ा था। यह सुहावना है। उद्दीपन उपस्थित हुआ। लक्ष्मण को दिखलाते हैं। कहेहू ते कछु दुख घटि होई : अत कहते हैं। आलम्बन की प्राप्ति में भी लछिमन से ही कहा था। यथा : जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन सोभा।

इस उद्दीपन के समय सबको आलम्बन है। मैं निरालम्ब हूँ। खग मृग तक नारी सहित हैं और मैं नारी रहित हूँ। कोई खग मृग ऐसे नहीं जिन्हे जोड़ा न हो। जो कोई बिना जोड़ा के होता तो मैं अपनी निन्दा न मानता। खग मृग सा भी सुख मुझे प्राप्त नहीं है। वे निन्दा नहीं करते पर मुझे वैसी ही लज्जा हो रही है। जैसी निन्दा सुनने से होती है ग्लानि सञ्चारी है। मानो कहते हैं कि इन्होंने नारी को साथ नहीं रक्खा। बड़ा बुरा किया। खग मृग मुझसे बुद्धिमान हैं।

हमहि देखि मृग निकर पराही। मृगी कहहि तुम्ह कहँ भय नाही ॥
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए। कचन मृग खोजन ए आए ॥३॥

अर्थ हमे देखकर जब हिरनो के झुण्ड भागने लगते हैं तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनो से पैदा हुए हो। अत तुम आनन्द करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आये हैं।

व्याख्या • मनुष्य को देखकर ही मृगादि वन्यजन्तु भाग जाते हैं ? कि पुन. धनुर्धारी को देखकर मृग जाति में भी स्त्री अवध्य हैं। अतः भय मृग को ही रहता है। सो मृग भाग खड़े होते हैं कि ये मृग के खोज म आये हैं • मुझे मारेगे। मनुष्य की आहट पाकर भागते हैं। पर प्रभु की शोभा दम्बकर खड़े हो जाते हैं। इस पर प्रभु उत्प्रेक्षा करते हैं कि वे मृगी के कहने से भागते भागते रुक गये। मृग जाये : कहकर आर्यपुत्र की भाँति पति को सम्बोधन करती है और कहती हैं कि ये मृग के बच्चे को नहीं मारते। ये तो कञ्चनमृग को खोजने आये हैं। असम्भव हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।

सग' लाइ करिनी करि लेही। मानहुँ मोहि सिखावन देही ॥
शास्त्र सुचितित • पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित वस नहि लेखिय ॥४॥

अर्थ : हाथी हथिनियो को साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं। भली भाँति चिन्तन किये हुए शास्त्र को भी बार बार देखते रहना चाहिए। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजा को वश में नहीं समझना चाहिए।

व्याख्या : हथिनी छूट जाती हैं। पर हाथी बड़ा ख्याल रखते हैं। उसे सङ्ग ले लेते हैं। मुझे सिखाने के लिए नहीं। पर मुझे मालूम होता है कि मुझे सिखावन देते हैं। इन्हे इतनी बुद्धि हुई मुझे न हुई। यद्यपि जानकी ने मुझे कहा था कि जाओ : सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति वेदेही। पर मुझे मानना नहीं था।

मुझे उसका साथ छोड़ना नहीं चाहिए था । मृग तुच्छ जीव हैं । मेरे मन्दबुद्धि तथा लोभ की निन्दा करने लगे । ये गजराज हैं । बड़े हैं । ये निन्दा नहीं करते । सिखावन देते हैं : शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयमाराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः ।

राखिय नारि जदपि उर माही । जुवती सास्त्र नृपति बस नाही ॥

देखहु तात वसंत मुहावा । प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ॥५॥

अर्थ : और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रक्खा जाय । परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहते । हे तात ! इस सुन्दर वसन्त को तो देखो । प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है ।

व्याख्या : अङ्के स्थितापि युवती परिरक्षणीया । शास्त्रे नृपे च युवती च कुतो वशित्वम् । उर माही राखिय : आलिङ्गित भी रहे । अतः अङ्के स्थिता और राखिय उर माही में भेद नहीं है । भेद इतना ही है कि कुतो वशित्वं कहने के समय में गोस्वामीजी ने युवती पद पहिले दिया । अर्थात् वश में न आनेवालों में युवती की प्रथम गणना है ।

विपिन की शोभा कहते कहते मृग दिखायी पड़े तो उसका हाल कहने लगे । तब से हाथी दिखायी पड़ा उससे अपना सम्वाद कहने लगे । अब फिर वन वर्णन प्रारम्भ किया । विपिन की शोभा का कारण कहते हैं । वसन्त मुहावा । प्रिया के सहित होने से यह उत्सव मनाने का समय था । उनके शृङ्गार के लिए फूलों के गहने बनाते । सो प्रिया के न होने से यह भयदायक हो गया । जे हित रहे करइ तेइ पीरा । मेरे लिए जमाना पलट गया ।

दो. विरह विकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल ।

सहित विपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह वगमेल ॥३७.३१॥

अर्थ : मुझे विरह से व्याकुल बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेव ने वन भौरो और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर घावा बोल दिया ।

व्याख्या : काम से मेरी अनबन बहुत दिनों से चली आती है । एकवार पुष्पवाटिका में मदन ने डङ्का दिया था । मानहु मदन दुदुभी दीन्ही । मनसा विस्व विजय कहूँ कीन्ही । पर उस समय उसका किया कुछ न हो सका । विश्व विजय मेरे हाथ लगी । यथा : विस्व विजय जसु जानकि पाई । तब से जानकी का विरह कभी हुआ नहीं । अतः उसका घात बैठा नहीं । इस समय मैं विरह विकल बलहीन हूँ : जब से सीताहरण हुआ है तब से राक्षस अदृश्य रूप से रामजी के पहरे पर हूँ । बराबर रावण को खबर दिया करते हूँ । उन्हीं से खबर पाकर रावण ने अगद से कहा : तब प्रभु नारि विरह बलहीना । और उसके समझ में मैं अकेला हूँ । अतः मदन ने वगमेल किया है । विपिन मधुकर खग उसकी सेना हैं । वसन्त मित्र है ।

दो. देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात ।

डेरा कीन्हेउ मनहुं तब, कटकु हटकि मन जात ॥३७॥

अर्थ : परन्तु जब उसका दूत यह देखा गया कि मैं भाई के साथ हूँ तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना को रोककर डेरा डाल दिया है ।

व्याख्या . त्रिविधि व्यापारि वसीठी आयी । वन में से दूत बाहर निकलकर आया सन्देश लेकर । पर दूत नहीं मालूम पड़ता । यह भेदिया है यथा : रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने । ब्रह्मचारी भाई साथ में है । वह सहायक है . समझा बुझा लेता है । यह समाचार पाकर फौज को मानो आगे बढ़ने से रोक दिया । तुमसे लक्ष्मण ! काम भय खाता है । डेरा दे दिया । समझ बूझकर धावा करेगा । कहाँ वगमेल किया था, कहाँ डेरा डार दिया यह सोचकर कि जब अकेला पावेंगे तब चोट करेंगे ।

बिटप बिसाल लता अरुझानी । विविध बितान दिये जनु तानी ॥

कदलि ताल बर ध्वजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥१॥

अर्थ विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं कि मानो नाना प्रकार के तम्बू तान दिये गये हैं । केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा पताका के समान हैं । इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता जिसका मन धीर है ।

व्याख्या . डेरा दिया है, इससे पहिले डेरा का ही वर्णन प्रारम्भ किया । एक वृक्ष की लता दूसरे पर जा रही हैं । इस भाँति लाखों तम्बू तने हुए हैं । लताएँ अनेक रंग की और अनेक प्रकार के फूलवाली होती हैं । इसलिए विविध बितान कहा । लता के फैलने का भी क्रम एक सा नहीं । परिमाण भी एक सा नहीं ।

चतुष्कोण झण्डे को ध्वजा त्रिकोण को पताका कहते हैं । फौज में जहाँ तहाँ ध्वजा पताका फहराते हैं । ध्वजा छोटा पताका बड़ा होता है । कदली ध्वजा और ताल पताका हैं । ध्वजा पताका देखकर मनुष्य का साहस छूट जाता है कि शत्रु आया । ध्वजा पताका देखकर किला छोड़कर भागने का दृष्टान्त इतिहासों में मिला है ।

विविध भाँति फूले तरु नाना । जनु वानत बने बहु वाना ॥

कहुँ कहुँ सुदर बिटप सुहाए । जनु भट विलग विलग होइ छाए ॥२॥

अर्थ : अनेकों वृक्ष नाना प्रकार के फूले हुए हैं । मानो अलग अलग बर्दी धारण किये हुए बहुत से तीरन्दाज हों । कहीं कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं । मानो योद्धा लोग अलग अलग होकर ठहरे हों ।

व्याख्या : वसन्त में वृक्ष फूल उठते हैं । एक पेड़ में एकही रंग के फूल होते हैं । वृक्ष नीचे से ऊपर तक फूल से लदे हैं मानो अनेक वीर अनेक प्रकार की बर्दी पहिने हैं । वानैत = सिपाही । धनुर्वेद सभी प्रकार के शास्त्रों की शिक्षा देता

है। अतः शस्त्रकुशल सिपाही को वानैत कहते हैं। डेरा पड गया है। इसलिए पलटन में क्रम नहीं है विलग विलग है।

सुन्दर पेड बहुत नहीं होते। कुछ कुछ दूर पर होते हैं। इसी भाँति सभी सिपाही भट नहीं होते। वे अपने अपने समाज के साथ अलग अलग ठहरे हुए हैं। अतः उनकी उपमा सुन्दर वृक्ष से दी गयी है।

कूजत पिक मानहुँ गज माते। डेक महोख ऊँट बिसराते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी ॥३॥

अर्थ : कोयलें कूज रही हैं। मानो मतवाले हाथी चिग्घाड रहे हैं। डेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुन्दर ताजी घोड़े हैं।

व्याख्या : मत्त गज गर्जते हैं और पिक कूजते हैं गर्जहि गज घंटा धुनि घोरा। विरही को पिक का कूजना हाथी के गर्जन सा डरावना प्रतीत होता है। पञ्चम निपाद प्रतीत होता है। आम के वीर पर बैठी कोकिल मालूम होती है कि गजराज के पाँव में सोने का लगर पडा है। डेक की टाँग लम्बी होती है। महोख चौड़े होते हैं। गज का वर्णन करके बार बारदारी के जानवर ऊँट और खच्चर का वर्णन करते हैं।

मोर चकोर कीर की चाल अच्छी होती है। इससे इन्हे वरबाजी कहा और कबूतर और हंस की बड़ी भारी गति है। इसलिए इन्हे ताजी कहा। कबूतर और घोड़ों के रंग की भी बड़ी बारीकी है। कबूतरबाजों को खूब रंगों का पहिचान होता है।

तीतर लावक पदचर यूथा। वरनि न जाइ मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन वरना ॥४॥

अर्थ : तीतर और बटेर पैदल सिपाही के झुण्ड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलाएँ रथ और जल के झरने के नगाडे हैं। पपीहे भाट हैं जो गुण समूह का वर्णन करते हैं।

व्याख्या : तीतर लावा ऊँचे नहीं उड़ते। प्रायेण पैर से ही बड़ी तेजी से चलते हैं। इससे इन्हे पैदल कहा। काम की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। लौकिक सेना का तो वर्णन सम्भव है। वन में जितने पशु पक्षी हैं सब काम की सेना हैं : बन उपवन बाटिका तडागा। जहाँ तहाँ जनु उमगत अनुरागा।

जब रथ से घोड़े खोल दिये जाते हैं तो रथ गिरि सिला की भाँति स्थिर दिखायी पड़ते हैं। झरना का शब्द हुआ करता है मानो दुंदुभी बज रही है। नौवत झर रही है। चातक भाट की भाँति वाम का गुण गा रहे हैं। पीय पीय बहकर उसे जगत् का प्रिय बतला रहे हैं। वाम की जीत से ही संसार चल रहा है।

मधुकर मुखर भेरि सहनाई । त्रिविध वयार बसीठी आई ॥
चतुरगिनी सेन संग लीन्हे । विचरत सबहि चुनौती दीन्हे ॥५॥

अर्थ भौरो की गुञ्जार भेरी और सहनाई है । शीतल मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूत बनकर आयी है । इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानो सब को चुनौती देता हुआ विचर रहा है ।

व्याख्या गुजत अलि लै चल मकरदा । ये मधुर मुखर होते हैं । अतः इन्हे सहनाई और नगाडा कहा । सहनाई राजा के पास बजती है । जो हवा का शोका आया सो शीतल मन्द सुगन्धित था । इसलिए इसे बसीठी कहा । सुलह की बात लेकर आया हमारे शरण आ जाओ प्राण छोड़ देंगे । हम लोगो ने रावण को चुनौती दिया । यह जगत् को चुनौती देता घूमता है । जहाँ जहाँ बसन्त आया है वहाँ वहाँ यही हाल है । अथवा बसन्त की सेना संसार में व्याप्त हो गयी है । अतः सबको एक साथ चुनौती दे रहा है ।

लछिमन देखत काम अनीका । रहहि धीर तिन्ह कै जग लीका ॥
एहि के एक परम बल नारी । तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी ॥६॥

अर्थ हे लक्ष्मण ! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं जगत् में उन्हीं की धीरो में प्रतिष्ठा होती है । इस कामदेव को एक स्त्री का बड़ा भारी बल है । क्योंकि सामारिक भोगों में स्त्री शरीर ही सर्वोत्कृष्ट भोग है । उससे जो बच जाय वही श्रेष्ठ योद्धा है ।

व्याख्या पहिले देखने को कहा लछिमन देखु बिपिन कर सोभा । देखत केहि कर मन नहि छोभा । देखहु तात बसन्त सुहावा । इत्यादि । इस भाँति कामियों को दीनता दिखायी । अब धीरो के मन में विरति को दृढ करते हैं । कहते हैं कि जिसे क्षोभ न हुआ संसार में उसी का लोक है रेख खँचाइ कहीं बल भाखी । वही बड़ा धीर है ।

लोभ के इच्छा दम्भ बल काम के केवल नारि । नारि में चित्त न हो तो काम अकिञ्चित्कर है । अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि । ताते कीन्ह निवारन मुनि में यह जिय जानि ।

दो तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।

मुनि विग्यान धाम मन, करहि निमिष महँ छोभ ॥३८॥

अर्थ हे तात ! काम क्रोध और लोभ ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं । ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनो को पलभर में क्षुब्ध कर देते हैं ।

व्याख्या बिना कारण वैर करते हैं । इसलिए खल कहा । इन्हीं से प्रयुक्त होकर मनुष्य पापाचरण करते हैं । इसलिए प्रबल खल कहा । त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन । काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रय त्यजेत् । काम एष

क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् । खलु
बिनु कारण पर अपकारी । मुनि मन छोभ करहि छन मांही । ये आत्मा के नाश
करनेवाले काम क्रोध और लोभ नरक के द्वार है । ये बड़े खानेवाले पापी हैं । इन
वैरियो को जाने रहो । ये निष्कारण अपकार करते हैं । मुनि के मन में पलक
मारते क्षोभ करते हैं ।

दो. लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नारि ।

क्रोध के परुष वचन बल, मुनिवर कहहि विचारि ॥३८.३२॥

अर्थ : लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है । काम को केवल स्त्री का
बल है और क्रोध को कठोर वचनो का बल है । श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा
कहते हैं ।

व्याख्या : इनका मर्म कहते हैं । इच्छा और दम्भ को स्थान न देने से लोभ
मारा पड़ता है । स्त्री की कामना न रहने से काम मारा पड़ता है । परुष वचन के
त्याग तथा सहन से क्रोध का जय होता है । मुनियों के ऊपर चोट करता है । अतः
मुनियों ने उसका उपाय सोच निकाला है ।

गुणातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अंतरजामी ॥

कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह के मन विरति द्ढाई ॥१॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं : हे पार्वती । श्रीरामचन्द्रजी तीनों गुणों से परे
चराचर जगत् के स्वामी और सबके अन्तर के यमन करनेवाले हैं । ऊपर की
वार्ते कहकर : उन्होंने कामी लोगों की बेवसी दिखलायी और विवेकी पुरुषों के
मन में वैराग्य को दृढ़ किया ।

व्याख्या : विषाद तमोगुण का कार्य है । सरकार गुणातीत है । अतः उनसे
विषाद का सम्पर्क नहीं । चराचरात्मक जगत् उनका स्व है । जगत् से निर्लेप रहने
पर भी वे उसके स्वामी हैं । चेतन जीव के भी प्रेरक हैं । वे विषाद से प्रेरित नहीं
हो सकते । यही उमा को मोह हुआ था । अतः ज्ञान घाट के वक्ता यहाँ सरकार
के स्वरूप का निरूपण करते हैं । अतः उमा सम्बोधन दिया ।

यह उनकी लीला है । फिर भी कुछ प्रयोजन होना चाहिए । अतः कहते हैं
लोक शिक्षा के लिए : चाटत चाम सँवारत चामहि चाम बिना मन दोन : अवतार
भी हो यदि स्त्री संग्रह करे तो उसे भी विलाप करना पड़ता है । दीनता का
प्रदर्शन पण्डितों के हृदय में वैराग्य सदीपनार्थ किया : उमा राम गुन गूढ
का साफल्य ।

क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहि सकल राम की दया ॥

सो नर इंद्रजाल नहि भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥२॥

अर्थ : क्रोध, काम, लोभ, मद और माया ये सभी श्रीरामजी के दया से

छूट जाते हैं। वह नट भगवान् जिस पर प्रसन्न होता है वह मनुष्य इन्द्रजाल :
माया : में नहीं भूलता ।

व्याख्या : सकल बिघ्न व्यापहि नहि तेही । राम सुकृपा बिलोकहि जेही ।
तुम्हारी कृपा तुम्हहि रघुनन्दन । जानहि भगत भगत उर चंदन । अतः सरकार
की कृपा से माया ही छूट जाती है । कामनादि तो उसके अधीन हैं ।

छूटने की प्रक्रिया कहते हैं । माया इन्द्रजाल है । सरकार नट हैं । यह संसार
उसी नट का फैलाया हुआ इन्द्रजाल है । नट कृत बिरुट कपट खगराया । नट
सेवकहि न व्यापे माया । शेष जगत् उसी में भूला फिरता है । नट तो इन्द्रजाल
पसारनेवाला है । उसका कृपापात्र इन्द्रजाल में नहीं भूलता वह कैसे भूलेगा ।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥३॥

अर्थ हे उमा । मैं तुम्हे अपना अनुभव कहता हूँ : हरि का भजन ही सत्य
है । यह सारा जगत् तो स्वप्न की भाँति असत् है । फिर प्रभु श्रीरामजी पम्पा नामक
सुन्दर और गहरे सरोवर के तीर पर गये ।

व्याख्या . कोई ऐसा कृपापात्र है भी जो इस इन्द्रजाल में न भूला हो । तो
शिवजी पहिले अपने को ही उदाहरण रूप में देते हैं । अतः अपना अनुभव कहते
हैं । मुझे जगत् सपना सा मिथ्या प्रतीत होता है । व्यावहारिक सत्य स्वीकार नहीं
है : दिखायी मुझे भी पड़ता है । पर मुझे उसके सत्यता का भान नहीं होता । सब
प्रातिभासिक है । मुझे हरि भजन सत्य मालूम होता है । हरि भजन से ही संसार
के मिथ्यात्व का निश्चय होता है । हरि भजन मात्र से सत् की प्रतीति होती है ।

पंपा सरहि जाहु रघुराई । सो सरकार वहाँ पहुँचे । गम्भीर सरोवर है और
सुन्दर है । उत्तर में मानस सरोवर है और दक्षिण में पम्पा है । दोनों सुभग गम्भीर
हैं । देखने में सुन्दर अवगाहन में गम्भीर । गहराई आँख से दिखायी पड़ती है ।

संत हृदय जस निर्मल वारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पियहि विविध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥४॥

अर्थ . उसका जल मन्तो के हृदय जैसा निर्मल है । मन को हरनेवाले सुन्दर
चार घाट बँधे हुए हैं । भाँति भाँति के पशु जहाँ तहाँ जल पी रहे हैं । मानो उदार
दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी हो ।

व्याख्या . गहराई दिखायी पड़ने के लिए निर्मल जल चाहिए । अतः कहते हैं
सन्त हृदय की भाँति निर्मल है । सन्त लोग गम्भीर होते हैं । परन्तु ऐसे निर्मल हृदय
के होते हैं कि कोई बात छिपाते नहीं । उनके हृदय की बात स्पष्ट मालूम हो जाती
है । मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम् । ऐसा निर्मल है कि तल में पड़ी हुई
वस्तु दिखायी पड़ती है । उस जगल में भी घाट बँधा हुआ है । राजा की सावधानी
द्योतित होती है ।

बड़ा भारी सरोवर है। बहुत दूर तक फैला हुआ है। अतः विविध मृग चित्त बाधा जल पी रहे हैं। सरोवर की उपमा उदार गृह से दिया। मृगों की उपमा याचकों से दिया। सबकी व्यास मिट रही है। मनोरथ पूर्ण हो रहा है। वस्ती सन्निकट नहीं है।

दो. पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइअ मर्म ।

मायाछन्न न देखिए, जैसे निर्गुण ब्रह्म ॥३९. क॥

अर्थ : घनी पुरइनों के आड में जल का जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे माया के ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं देखता।

व्याख्या : देखने में पुरइन पुरइन दिखायी पड़ती है। पत्तो ने जल को ढँक रखा है। कहाँ जल है इस बात का पता नहीं चलता और जल है सभी जगह। इसी भाँति निर्गुण ब्रह्म का पता नहीं चलता माया ही दिखायी पड़ती है जब कि निर्गुण ब्रह्म सर्वत्र है। इससे माया का अपने अधिष्ठान का ही आवरण करना दिखलाया। माया की तुच्छता भी दिखलायी। परिसीमित होना भी दिखलाया।

दो. सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहि ।

जया धर्मशीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहि ॥३९. ३३॥

अर्थ : उस सरोवर के अत्यन्त अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एक समान सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषों के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं।

व्याख्या : धर्म वारि है। धर्मशील मछली है। अगाध धर्म होने से दुःख आ ही नहीं सकता : सुखी मीन जहाँ नीर अगाधा। एक रस यथा : तुलसी पछिन के पिये घटे न सरवर नीर। धर्म किये धन ना घटे जो सहाय रघुवीर। अति अगाध जल न हो तो एक रस सुख नहीं रहता। वर्णस्त्रिम निज निज धरम निरस्त वेद पथ लोग। चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोर न रोग। धर्मशीलन की उपमा मछलियों से दिया और धर्म की उपमा अगाध जल से दिया। धर्मों रक्षति रक्षित। गोस्वामीजी प्रवृत्ति वर्णन में भी उपदेशात्मक उपमाएँ देते हैं। यथा वर्षा शरद वर्णन में दिया।

दिकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर मुखर गुजत बहु भृंगा ॥

बोलत जल कुक्कुट कल हंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रससा ॥१॥

अर्थ : उसमें रगविरगे कमल बिछे हुए हैं। बहुत से भौरे मधुर स्वर से गुझार कर रहे हैं। जल के मुँगे और राजहंस बोल रहे हैं मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों।

व्याख्या : फूले कमल सोह सर पैगा। निर्गुण ब्रह्म सगुन भए जैसा। जल की निर्गुण, पुरइन की माया, गुण की कमल कहा। गुणों में नाना रङ्ग है। मुनि मन मधुर रहत जिन्ह छाये। माया से ऊपर माया में ही ब्रह्म सगुण रूप से व्यक्त होने है।

जलपक्षी सिंग उठा उठाकर बोलते हैं : मानो प्रभु को प्रशंसा करते हैं । ये मृगों की भाँति निन्दा नहीं करते । ये निर्गुण ब्रह्म में विचरण करनेवाले हैं । इनकी वाणी सुन्दर है । पर सगुण ब्रह्म की प्रशंसा करते हैं । सगुण ब्रह्म दर्शनीय हैं ।

चक्रवाक बक खग समुदाई । देखत बनइ बरनि नहि जाई ॥
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥२॥

अर्थ : चक्रवाक बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है । उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । सुन्दर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है मानो रास्ते में जाते हुए पथिक को बुलाये लेती हो ।

व्याख्या : सरोवर जलपक्षियों से भरा है । अनेक रङ्ग के पक्षी चक्रवा बगुला आदि से बड़ी शोभा हो रही हैं । देखते ही बनता है कहते नहीं बनता । कहा भी है वयासि तद् व्याकरण विचित्रम् ।

चहचहाहट सुनकर पथिक का जो चाह जाय कि वहाँ चलकर विश्राम कर लें । विश्राम करने की इच्छा नहीं है । इसलिए जात पथिक कहा । वे पक्षी देखने में भी सुन्दर और उनको गिरा भी मनोहर है ।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहुँ दिसि कानन विटप सुहाए ॥
चंपक वकुल कदव तमाला । पाटल पनस पनास रसाला ॥३॥

अर्थ : उस झील के समीप मुनियों ने आश्रम बना रखे हैं । उसके चारों ओर वन के सुन्दर वृक्ष हैं । चम्पा मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि ।

व्याख्या : महातीर्थ है । अतः उसके सन्निकट मुनि लोग बसे हैं । धर्म कार्य में जल का बराबर काम पड़ता है । अतः तीर में ही कुटिया छा रखी है । पेड़ और झाड़ियों के बीच में कुटियाँ हैं ।

अब वृक्ष और झाड़ियों का नाम गिनाते हैं । ये सब वृक्ष मुनियों के काम के हैं । आठ में से चार फल फूलवाले हैं । शेष फूलवाले या पत्तेवाले हैं ।

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । चचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मद सुगंध सुभाऊ । सतत बहइ मनोहर बाऊ ॥४॥

अर्थ : बहुत प्रकार के वृक्ष नये नये पत्तों और पुष्पों से युक्त हैं जिन पर भौंरों के समूह गुञ्जार कर रहे हैं । स्वभाव से ही सीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मन को हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है ।

व्याख्या : नये पल्लव और कुसुम से वृक्ष की शोभा और चचरीक पटली से पुष्प पल्लव की शोभा है । मारे आनन्द के गान कर रहे हैं । क्योंकि पत्र पुष्प में रसनाहुल्य है । जितना गिनाया है सो उपलक्षण मात्र है । अनेक प्रकार के वृक्ष हैं ।

पुण्य तीर्थ का माहात्म्य दिखलाते हैं। जे सर सरित राम अवगाहहि। तिनहि देवसर सरित सराहहि। जिस सम्पत्ति से परोपकार नहीं वह सुसम्पत्ति भी नहीं है। क्योंकि उसकी प्रथम गति नहीं है। यथा सो धन धन्य प्रथम गति जावी।

जेहि तरुतर प्रभु वैठहि जाई। करहि कल्पतरु तासु बडाई। यहाँ वर शब्द श्लिष्ट है। वट के पेड़ तल बैठे। यथा तेहि गिरि पर वट विपट विसाला। अविरल छाँह सुखद सब काला। रघुराई है। ऐसे स्थान पर बैठते हैं जहाँ दरवार लग सके। अनुज सहित बैठे। अनुज ही सहाय है। यथा देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।

४४ प्रभु नारद सवाद

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए ॥

बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला ॥२॥

अर्थ फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने अपने धाम को चल गये। कृपालु रामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजी से रसीली कथाएँ कह रहे हैं।

व्याख्या सुरन्ह बिलोकि दसा रघुवर की। वरपि सुमन कह गति घर घर की। तथा निसिचर निकर सकल मुनि खाये। देवता और मुनि दोनों ने फिर याद किया था। सो देवमुनि के लिए सरकार ने राक्षसों से वैर किया। अतः उन लोगो ने स्तुति की और चले गये। ईश्वर बुद्धि से आये। अतः सरकार ने प्रणाम नहीं किया।

सदा भाई से कहा करते हैं। सूपनखा के आने पर कथा छूटी है। एहि विधि गये कछुक दिन बीती। कहत विराग ग्यान गुन नीति। फिर विरह का नाट्य होने लगा। नारदजी के शाप को अङ्गीकार करके तब तक अभिनय किया जब तक कि नारदजी को असह्य न हो जाय। नारद को सोच होते ही शाप का साफल्य हो गया। अब परम प्रसन्न बैठे हैं।

विरहवत भगवतहि देखी। नारद मन भा सोच विसेखी ॥

मोर स्राप करि अगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा ॥३॥

अर्थ भगवान् का विरह युक्त देखकर नारदजी के मन में विशेष रूप से साच हुआ कि मेरे ही शाप को स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकार के दुखों का भार सह रहे हैं।

व्याख्या कबहुँ योग बियोग न जाके। उसको विरहवत देखकर नारदजी को विशेष सोच हुआ। अर्थात् सोच तो सबको हुआ। नारद को अपनी करतूत रामझकर अधिक सोच हुआ। मुझ पर इतनी कृपा की कि मेरे कहने पर भी मेरी यात नही हटायी। इन्हे कर्म शुभाशुभ बाधा नहीं कर सकता। फिर भी मेरे शाप

को अङ्गीकार किया। अब करिहैं कीस सहाय तुम्हारी। इसे सत्य करने के लिए सुग्रीव की शरण जा रहे हैं। भूमि सयन बल्कल वसन असन कन्द फल मूल चल ही रहा है।

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई ॥

येह विचार नारद कर चीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥४॥

अर्थ ऐसे भक्तवत्सल प्रभु को जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचारकर नारदजी हाथ में वीणा लिये हुए वहाँ गये जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे।

व्याख्या प्रभु के अवतार तो अनेक हुए पर जैसी भक्तवत्सलता रामावतार में दिखा रहे हैं ऐसी तो कभी देखी नहीं गयी। अपने क्षुद्र भक्त के शाप को सत्य करने के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं। इस भक्तवत्सलता का तो कीर्तिस्तम्भ स्थापित करना चाहिए और वह कीर्तिस्तम्भ अचल तभी होगा जब रामनाम मत्स्य कूर्म वाराहादि नामों से अधिक महत्त्ववाला हो। इस समय मुझ पर सरकार की बड़ी भारी दया का उद्रेक है। इस समय जाकर वरदान के रूप में यही बात माँगने से बहुत सम्भव है कि मिल जाय। क्योंकि यही ऐसे वरदान माँगने का अवसर है। फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। अतः नारदजी ने परम वात्सल्यमयी भगवान् की मूर्ति के दर्शन करने का निश्चय किया।

वीणापाणि हैं। गाते बजाते चल। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई। कथा हो रही है।

गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥

करत दण्डवत लिये उठाई। राखे बहुति बार उर लाई ॥५॥

अर्थ वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान बखानकर रामचरित्र का गान करते हुए चले आ रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने नारदजी को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रक्खा।

व्याख्या वीणा से कर्मणा। गावत रामचरित वाचा। प्रेम सहित मनसा। ऐसी मृदु वाणी कि वीणा का साथ दे सके।

दण्डवत् कर नहीं पाये और प्रभु ने उठा लिया। अपराधी अपने को मानकर दण्डवत् प्रणाम करते हैं। बहुत बार उर लाई। आश्वासन के लिए सोच मिटाने के लिए। तुम मुझे बड़े प्रिय हो। तुम्हारे शाप के अनुसार वृत्तने मैं मुझे सुख है। देखो मैं परम प्रसन्न हूँ। ये सब भाव बहुत देर तक हृदय लगान से व्योक्त हुए।

स्वागत पूछि निकट बैठारे। लल्लिमन सादर चरन पखारे ॥६॥

अर्थ फिर कुशल पूछकर पास बिठा लिया। लक्ष्मणजी ने आदर के साथ उनके चरण धोये।

व्याख्या स्वागत कर निकट आसन दिया । ईश्वर भाव लेकर आये हैं । इसलिए स्वयं पैर नहीं धोया । लक्ष्मणजी ने आदर से धोया । शास्त्र मर्यादा का पालन हो रहा है । पेड़ के नीचे बैठे हैं । फिर भी तृणभूमि, उदक और सूनृत से नारदजी का आतिथ्य हो रहा है । यथा : तृणानि भूमिरुदक वाक् चतुर्थी तु सूनृता । एतान्यपि सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन । मनु ।

दो नाना विधि विनती करि, प्रभु प्रसन्न जियँ जानि ।

नारद बोले वचन तब, जोरि सरोरुह पानि ॥४१.३५॥

अर्थ • बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमल सदृश हाथों को जोड़कर वचन बोले ।

व्याख्या अपराध क्षमापन के लिए पहिले नाना विधि से विनती की । जब देख लिया कि प्रभु की मेरे ऊपर प्रसन्नता है । तब हाथ जोड़कर बोले : मनोरथ पूर्ति के लिए विनय करने का उपयुक्त समय वही है जब दाता को अपने ऊपर प्रसन्नता हो ।

सुनहु उदार सहज रघुनायक । सुदर अगम सुगम वर दायक ॥

देहु एक वर मागउँ स्वामी । जद्यपि जानत अंतरजामी ॥१॥

अर्थ हे स्वभाव से उदार श्रीरघुनाथजी । सुनिये । आप सुन्दर अगम और सुगम वर के देनेवाले हैं । हे स्वामी । मैं एक वर माँगता हूँ वह मुझे दीजिये । यद्यपि आप अन्तर्यामी होने के नाते सब जानते ही हैं ।

व्याख्या • सहज उदार होने का कारण देते हैं रघुनायक रघुकुल ही सहज उदार हैं । मगन लहड़ न जिनके नाही । सरकार तो उस कुल के नायक हैं । सहज उदार से ही मनोवाञ्छित की प्राप्ति होती है । यथा : माँगहु वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि । माँगनेवाले से चूक हो तो सरकार सँभाल लेते हैं । अवढर दानी नहीं हैं । यथा . वुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । वैद न देइ सुनहु मुनि जोगी । उदारता बड़ी है पर सुन्दरता पर भी ध्यान रहता है । अगम वर को भी सुगम की भाँति दे देते हैं एक लालसा बड़ि उर माही । सुगम अगम कहि जात सो नाही । तुमहि देत अति सुगम गोसाई । अगम लागि मोहि निज कृपनाई ।

स्वामी को छोड़कर किससे माँगे । स्वामी ही समर्थ है । जो माँगेंगे वह उनका स्व है । उदार से अनेक वर माँगा जा सकता है । पर मैं एक ही वर माँगता हूँ जिससे अवश्य मिले । सो आप जानते हैं । क्योंकि आप ही माँगने के लिए प्रेरणा कर रहे हैं : को जिय की रघुवर बिन वृक्षा । पर वर में शब्द प्रमाण है । इसलिए माँगता हूँ ।

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ । जन सन कबहु कि करउँ दुराऊ ॥

कवन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी । जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मागी ॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो । क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगी है जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ?

व्याख्या : जो वस्तु जिसे प्रिय होती है । उसे वह छिपाकर रखता है कि दूसरा ले न ले । परन्तु उसी वस्तु को उसे अपने प्रेम पात्र के देने में हर्ष होता है । भगवान् नारदजी से कहते हैं कि तुम मेरे स्वभाव को जानते हो कि मुझे भक्त के समान कोई प्रिय नहीं है । यथा मोरे हित हरि सम नहि कोऊ । मैंने अपनी स्वतन्त्रता भक्त को दे रखी है । उनके परतन्त्र रहता हूँ । अह भक्तपराधीन ह्यस्व-तन्त्र इव द्विज । मुझे ऐसी कौन वस्तु प्रिय लगी जिसे तुम नहीं माँग सकते । अतः माँगने में सङ्कोच क्यों करते हो ? यही पर : तब विवाह में चाह्यौ कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा : इस शङ्का का बीज पड़ गया । नारदजी को याद आगया कि वह वस्तु विश्व मोहिनी थी । जिसे माँगने पर भी मुझे न देवर स्वयं ले लिया । यथा : दुलहिन लै गये लच्छि निवासा । नृप समाज सब भयउ निरासा ।

जन कहुं कछु अदेय नहि मोरें । अस विस्वास तजहु जनि भोरें ॥

तब नारद बोले हरपाई । अस वर मागउं करउं छिठाई ॥३॥

अर्थ : मुझे भक्त के लिए कुछ भी अदेय नहीं है । ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो । तब नारद जी हर्षित होकर बोले . मैं ऐसा वर माँगता हूँ यह धृष्टता करता हूँ ।

व्याख्या : यह न समझो कि मैं कह दूँगा : अदेयस्तु वरो ह्येप । अतः सङ्कोच छोड़कर माँगो : सकुच बिहाय माँगु नृप मोही । मोरे नहि अदेय कछु तोही । विश्वास छोड़ने में अकल्याण है । भक्तिपथ से पतन हो जाता है । नारद का माँगने में साहस न पड़ते देखकर प्रोत्साहन के लिए पहिले ही देने के लिए वचनबद्ध हो रहे हैं । बड़ी इच्छा है कि नारद माँगें ।

नारदजी प्रसन्न हो गये कि मनोवाञ्छा सिद्ध हुई । इनकी अवस्था ठीक स्वायम्भू मनु सो है । वर माँगने में आगा पीछा हो रहा है । बात छिठाई की है । सरकार के नामों के महत्त्व में उलट फेर करने का जीव को कौन सा अधिकार है । ऐसा वर माँगना अनधिकार चेष्टा है ।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥

राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ लग गन वधिका ॥४॥

अर्थ : यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद करते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं । तो भी हे नाथ ! राम नाम और पापस्पी पशियों के समूह के लिए वधिका होने में सब नामों से बढ़कर हो ।

व्याख्या : छिठाई को स्पष्ट करते हैं । राम अनन्त अनन्त गुणानी । जन्म कर्म अनन्त नामानी । उन नामों में छोटा बड़ा कोई नहीं । एक से एक अधिक है ।

इसमे वेद प्रमाण है। उसमे कुछ बोलना वेद मे हाथ लगाना है। वेद सरकार की वाणी है।

जिस अवतार मे इतनी भक्तवत्सलता है कि मेरी बात : शाप : झूठी न हो इसलिए सरकार इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। उस अवतार का नाम सब नामो से अधिक हो। वेद मे हस्तक्षेप न हो। इसलिए कहते हैं कि अध खग वधिकत्व मे अधिक हो। वधिक बड़े बड़े उपाय से चिड़िया फँसाता है। यह नाम अधखग को निर्मूल कर दे।

दो राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।

अपर नाम उडगन विमल, बसहुं भगत उर व्योम ॥४२॥

अर्थ आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है। उसमे राम नाम यही पूर्णचन्द्र होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तो के हृदयरूपी निर्मल आकाश मे निवास करें।

व्याख्या भक्ति मे लेशाविद्या स्वीकार है। इसी से राका रजनी कहा। उसमे पूर्णचन्द्र राम नाम हो। चन्द्र की भाँति मायान्धकार का नाशक हो। पर अकेले चन्द्र की भी शोभा नहीं और नाम भी तारो की भाँति साथ रहे। शोभा बढ़ावें। पर महावीर्य राम नाम ही मे हो। भक्तो के दहराकाश मे सदा चाँदनी बनी रहे।

दो एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिधु रघुनाथ।

तव नारद मन हरप अति, प्रभु पद नायउ माँथ ॥४२ ३६॥

अर्थ कृपासागर श्रीरघुनाथजी ने मुनि से ऐसा ही हो कहा। तब नारदजी ने मन मे अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणो मे मस्तक नवाया।

व्याख्या कृपासिन्धु हैं। करुणानिधि हैं। नारद पर कृपा होती ही जाती है। रघुनाथ है। अत दे दिया। एवमस्तु कहा। कृतकृत्य होकर नारदजी प्रणाम करते हैं। मनोरथ की पूर्ति से अति हर्ष है।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥

राम जबहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले हे रामजी। हे रघुनाथजी। सुनिये। जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था।

व्याख्या नारदजी ने देखा कि वर देने पर भी प्रसन्नता मे कुछ भी अन्तर न पडा। अत निश्चय किया कि इस समय अति प्रसन्न हैं। जो जो काम लेना हो उसे लेने का यही समय है। जो कुछ प्रष्टव्य है उसके पूछ लेने का भी यही समय है। अत नारदजी मृदु वाणी बोले।

जब काम मुझे मोहित न कर सका । आपकी माया से मैं मोहित हुआ । आप रघुराया हो । अभिमान नहीं रहने देता । यथा : श्रौपति निज माया तब प्रेरो । सुनहु कठिन करनी तेहि केरो ।

तब विवाह मैं चाहैं कीन्हा । प्रभु केहि कारन करे न दीन्हा ॥

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥२॥

अर्थ : तब मैं विवाह करना चाहता था । हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया । प्रभु बोले : हे मुनि ! सुनो । मैं तुम्हें उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा : भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं ।

व्याख्या : मैंने कोई अनुचित बात ही चाही । विवाह करना धर्माविरुद्ध काम है । इसकी प्रशंसा शास्त्रों में है । यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ । सो उसमें आप ही बाधक हुए । स्वयं व्याह कर लिया । विश्वमोहिनी को स्वयं लेने के अतिरिक्त और कौन कारण हो सकता है । जिससे आपने मुझे व्याह न करने दिया और आप कहते हैं : जन कहूँ कछु अदेय नहि मोरे । ये दोनों बातें तो असमझस हैं ।

सरकार ने उत्तर दिया कि कार्य भार बढ़ जाने के भय से मैं हतोत्साह नहीं हूँ । अतः उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो लोग सबका भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं : जिन्हे दूसरे किसी का भी भरोसा हो उन लोगों के लिए नहीं कहता । जिन्हे केवल मेरा भरोसा है उनके लिए कहता हूँ ।

करउँ सदा तिन्ह के रखवारी । जिमि बालकहि राख महतारी ॥

गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखे जननी अरुगई ॥३॥

अर्थ : मैं सदा उनकी वैसे ही रखवारी करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है । छोटा बच्चा जब आग और साँप को पकड़ने दौड़ता है तो वहाँ माता उसे : अपने हाथों अलग करके बचा लेती है ।

व्याख्या : दूसरे को भी भरोसा रखनेवालों की सदा रखवारी नहीं करता । सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ असोच वन प्रभु पोसे । उन्हें किसी का आसरा नहीं होता । इसलिए मैं भी उन्हें दूसरों पर नहीं छोड़ता । जैसे माँ बच्चे को रखवारी करती है । उसकी सब चेष्टाओं पर ध्यान रखती है ।

शिशु बच्छ अर्थात् छोटा : नादान बच्चा । यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुवर तात । प्यार बच्चा : अगारा सूत्र चमकता है और सर्प बड़ा सुन्दर है । यह देखकर पकड़ने के लिए दौड़ता है । यहाँ विषय अनल है काम सर्प है । यथा : मनकरि विषय अनल बन जरई । काम भुजग डसत जब जाही । उस समय माँ लडके को इच्छाभिघात का ख्याल नहीं करती । बलपूर्वक हटा लेती है ।

इसमे वेद प्रमाण है। उसमे कुछ बोलना वेद मे हाथ लगाना है। वेद सरकार की वाणी है।

जिस अवतार मे इतनी भक्तवत्सलता है कि मेरी बात : शाप : झूठी न हो इसलिए सरकार इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। उस अवतार का नाम सब नामो से अधिक हो। वेद मे हस्तक्षेप न हो। इसलिए कहते हैं कि अध खग अधिकत्व मे अधिक हो। अधिक बड़े बड़े उपाय से चिड़िया फंसाता है। यह नाम अधखग को निमूल कर दे।

दो राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।

अपर नाम उडगन विमल, वसहुँ भगत उर व्योम ॥४२॥

अर्थ आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है। उसमे राम नाम यही पूर्णचन्द्र होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तों के हृदयरूपी निमल आकाश मे निवास करें।

व्याख्या भक्ति मे लेशाविद्या स्वीकार है। इसी से राका रजनी कहा। उसमे पूर्णचन्द्र राम नाम हो। चन्द्र की भाँति मायान्धकार का नाशक हो। पर अकेले चन्द्र की भी शोभा नहीं और नाम भी तारों की भाँति साथ रहे। शोभा बढ़ावें। पर महावीर्य राम नाम ही मे हो। भक्तों के दहराकाश मे सदा चाँदनी बनी रहे।

दो एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।

तब नारद मन हरष अति, प्रभु पद नायउ माँथ ॥४२.३६॥

अर्थ कृपासागर श्रीरघुनाथजी ने मुनि से ऐसा ही हो कहा। तब नारदजी ने मन मे अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणों मे मस्तक नवाया।

व्याख्या कृपासिंधु हैं। करुणानिधि हैं। नारद पर कृपा होती ही जाती है। रघुनाथ हैं। अत दे दिया। एवमस्तु कहा। कृतकृत्य होकर नारदजी प्रणाम करते हैं। मनोरथ की पूर्ति से अति हर्ष है।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥

राम जवहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले हे रामजी। हे रघुनाथजी। सुनिये। जब आपने अपनी माया को प्ररित करके मुझे मोहित किया था।

व्याख्या नारदजी ने देखा कि वर देने पर भी प्रसन्नता मे कुछ भी अन्तर न पडा। अत निश्चय किया कि इस समय अति प्रसन्न हैं। जो जो काम लेना हो उसे लेने का यही समय है। जो कुछ प्रष्टव्य है उसके पूछ लेने का भी यही समय है। अत नारदजी मृदु वाणी बोले।

जब काम मुझे मोहित न कर सका । आपकी माया से मैं मोहित हुआ । आप रघुराया हो । अभिमान नहीं रहने देता । यथा : श्रीपति निज माया तब प्रेरी । सुनहु कठिन करनी तेहि केरी ।

तब विवाह मैं चाहैं कीन्हा । प्रभु केहि कारन करं न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥२॥

अर्थ : तब मैं विवाह करना चाहता था । हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया । प्रभु बोले : हे मुनि ! सुनो । मैं तुम्हें उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा : भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं ।

व्याख्या : मैंने कोई अनुचित बात ही चाही । विवाह करना धर्माविरुद्ध काम है । इसको प्रशंसा शास्त्रों में है । यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ । सो उसमें आप ही बाधक हुए । स्वयं व्याह कर लिया । विश्वमोहिनी को स्वयं लेने के अतिरिक्त और कौन कारण हो सकता है । जिससे आपने मुझे व्याह न करने दिया और आप कहते हैं : जन कहूँ कछु अदेय नहिं मोरे । ये दोनों बातें तो असमझस हैं ।

सरकार ने उत्तर दिया कि कार्य भार बढ़ जाने के भय से मैं हतोत्साह नहीं हूँ । अतः उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो लोग सबका भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं : जिन्हें दूसरे किसी का भी भरोसा हो उन लोगों के लिए नहीं कहता । जिन्हे केवल मेरा भरोसा है उनके लिए कहता हूँ ।

करउँ सदा तिन्ह के रखवारी । जिमि वालकहि राख महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखै जननी अरुगई ॥३॥

अर्थ : मैं सदा उनकी वैसे ही रखवारी करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है । छोटा बच्चा जब आग और साँप को पकड़ने दौड़ता है तो वहाँ माता उसे : अपने हाथों अलग करके बचा लेती है ।

व्याख्या : दूसरे की भी भरोसा रखनेवालों की सदा रखवारी नहीं करता । सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ असोच वनै प्रभु पोसे । उन्हें किसी का आसरा नहीं होता । इसलिए मैं भी उन्हें दूसरों पर नहीं छोड़ता । जैसे माँ बच्चे की रखवारी करती है । उसको सब चेष्टाओं पर ध्यान रखती है ।

शिशु बच्छ अर्थान् छोटा : नादान बच्चा । यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुवर तात । प्यार बच्चा : अगारा खूब चमकता है और सर्प बड़ा सुन्दर है । यह देखकर पकड़ने के लिए दौड़ता है । यहाँ विषय अनल है काम सर्प है । यथा : मनकरि विषय अनल बन जरई । काम भुजंग इसत जब जाही । उस समय माँ लड़के की इच्छाभिधात का ख्याल नहीं करती । बलपूर्वक हटा लेती है ।

प्रौढ भए तेहि सुत पर माता । प्रीति करै नहि पाछिलि वाता ॥

मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥४॥

अर्थ किन्तु जब वह सयाना हो जाता है तब उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है । परन्तु पिछली बात नहीं रहती । ज्ञानी मेरे सयाने पुत्र के समान हैं और अपने सामर्थ्य का मान न करनेवाले सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है ।

व्याख्या • वही वच्चा जब कुछ बड़ा हो जाता है फिर भी माँ प्रीति करती है । पर प्रत्येक चेष्टा पर ध्यान नहीं रखती । माँ जानती है कि इसे इतना ज्ञान है कि भले बुरे को पहिचान सकता है । इसी भाँति ज्ञान के कारण ईश्वर की ओर से देखरेख कम हो जाती है कि ज्ञान है सँभाल लेगा ।

ज्ञानी प्रौढ तनय है । अमानी दास बालक शिशु है । यहाँ वच्छ शिशु का अर्थ खुल गया इसका अर्थ बालक शिशु है ।

जनहि मोरे बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥

येह विचारि पडित मोहि भजही । पाएहुँ ज्ञान भगति नहि तजही ॥५॥

अर्थ मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे ज्ञानी को अपना बल होता है । पर काम क्रोधरूपी शत्रु तो दोनों के लिए हैं । ऐसा विचारकर बुद्धिमान् लोग मुझे ही भजते हैं । व ज्ञान प्राप्ति होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते ।

व्याख्या भेद का कारण कहते हैं । भक्त को मेरा भरोसा और ज्ञानी को अपना भरोसा रहता है । यथा तामैश्वर्यपरा काश्यप परत्वात् । आत्मैकपरा बादरायण । ईश्वर का आश्रय करना यह काश्यप का मत है । आत्मा का आश्रय करना बादरायण का मत है । मेरी ओर से भेद नहीं है । भेद ज्ञानी की ओर से है । उसने मेरा भरोसा छोड़ा । अपना भरोसा किया । काम क्रोध तो ज्ञानी और भक्त दोनों के शत्रु हैं ।

पण्डित अपना भरोसा नहीं रखते । यही उनकी पण्डिताई है । जिसमे हर समय मुझे उन पर ध्यान रखना पड़े । ज्ञानी होकर भी भक्ति करते हैं । ज्ञानी होकर यदि मुझे न भजा तो उसे यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ । वाक्य ज्ञान कुशल मात्र हैं ।

दो काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि ।

तिन्ह मह अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि ॥४३.३७॥

अर्थ काम, क्रोध, लोभ, और मद आदि अज्ञान की प्रबल सेना है । इसम माया की साक्षात् मूर्ति स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है ।

व्याख्या ये सब मोह की फौज हैं । ये सब दारुण दुःखद हैं । उनमे स्त्री तो मायारूपिणी ही है । यह अति दारुण दुःखद है । काम क्र धादि तो इसके सेवक है ।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥

तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहि दाहा ॥

ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविद गुन आगार ।

केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्ह न येहि संसार ॥

यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमित को बरनै पारा ॥

सिख चतुरानन जाहि डराही । अपर जीव केहि लेखे मांही ॥

मायारूपी नारी का भाव यह कि वस्तु विचार से कुछ नहीं ठहरती । अब नारी का मायामयत्व बतलाते हैं ।

सुनु मुनि कह पुराण स्मृति संता । मोह विपिन कहूँ नारि वसंता ॥

जप तप नेम जलाशय शारी । होइ ग्रीष्म सोखइ सब नारी ॥१॥

अर्थ : हे मुनि ! सुनो । पुराण वेद और सन्त कहते हैं कि मोहरूपी वन को विकसित करने के लिए स्त्री वसन्त ऋतु के समान है । जप तप नियमरूपी सम्पूर्ण जलाशयों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है ।

व्याख्या : पुराण, श्रुति के कहने पर भी सन्तों के कहने की अपेक्षा रहती है कि अमुक धर्म शिष्टानुगृहीत है कि नहीं । मोह विपिन है । महा कष्टकर इसमें जो भूला सो बाहर नहीं निकल सकता । डरपहि धीर गहन सुधि आये । नारि वसन्त है । मोह विपिन पल्लवित्त पुष्पित हो उठता है । मोह विपिन यों ही दुःखद है । फिर जहाँ स्त्री आयी तब फिर क्या कहना है । अब बाल बच्चे होंगे । माया बढ़ती ही जावेगी ।

१. जप २. तप ३. नियम से ही कार्य की क्षमता होती है । १. जपात् सिद्धि प्रजायते । २. तप बल रचै प्रपन्न विधाता । तप आधार सब सृष्टि भवानी । ३. नियम : नेम प्रेमु शंकर कर देखा । अविचल हृदयें भगति कै रेखा । प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला । सो ये तीनों जलाश्रय की भाँति उपयोगी है । जलाश्रय तीन सर कूप बापी हैं । यथा : वन वाम उपवन वाटिका सर कूप बापी सोहही । ग्रीष्म में चाहे कोई सर बापी कूप बिना सूखे रह जाय । पर नारी तो सब जप तप नियम सोख ही लेती है : मुनि अति बिकल मोह मति नाठी । जप तप कछु न होइ तेहि काला : वन को बढ़ाती है जल को सुखाती है ।

काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरपप्रद वरपा एका ॥

दुर्वासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥२॥

अर्थ : काम क्रोध मद और डाह आदि मेढक हैं । इनको वर्षाऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एक मात्र स्त्री है । बुरी वासनाएँ कुमुदों के समूह हैं । उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद् ऋतु है ।

व्याख्या : सर सूखने से भेकों को नष्ट हो जाना चाहिए । सो उनके लिए वर्षा हो जाती है । मरे भी जी उठते हैं । ये काम क्रोध मत्सर भेक हैं । ये व्यर्थ

टरटराया करते हैं। कभी राम नहीं कहते। जीभ सो दादुर जीभ समाना। एका का अर्थ बेजोड़ है।

कुमुद रात को फूलते हैं। शरदऋतु में इनकी बढ़ोत्तरी होती है। दुर्वासना रात को बढ़ती है। चोरी जारी रात में ही होती है। इन्हे शरद ऋतु होकर बढ़ाती है। भाव यह कि पङ्कजतुरपा होकर कालचक्र रूपिणी है। एक साथ अनेक ऋतु का कार्य कर रही है। और सब भाँति हानिकारक है।

धर्म सकल सरसीरुह वृंदा। होइ हिम तिन्हहि वहै सुख मंदा ॥

पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥३॥

अर्थ समस्त धर्म कमलो के झुण्ड हैं। यह मन्द : विषयजन्य सुख देनेवाली स्त्री हिम ऋतु होकर उन्हे जला डालती है। फिर मानसरूपी जवास का समूह स्त्रीरूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा भरा हो जाता है।

व्याख्या - धर्म कमल है। हिमऋतु सब कमलो का नाश करती है। एक कमल भी नहीं बचता। स्त्री सुख देकर धर्म का नाश करती है और वह सुख भी मन्द सुख है। आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगा। नारदजी के चरण पंकज का भाव ही हरण कर लिया। कहने लगे स्वास्थ्य साधक कुटिल तुम सदा कपट व्यवहार। सरकार के विमुख हो गये। और - सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

जवास में काँटा ही काँटा होता है। ममता भी जवास की भाँति कण्टकाकीर्ण है। कलेजे में चुभती है। शिशिर ऋतु में इसकी वृद्धि होती है। वर्षा में नाश होता है। सो काम क्रोधरूपी भेक के लिए वर्षा होने पर भी यह ममता जवास के लिए शिशिर हो जाती है। चार को सुख और दा को दुःख देती है।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निविड रजनी अंधियारी ॥

बुधि बलु सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहि प्रवीना ॥४॥

अर्थ पापरूपी उल्लूको के समूह के लिए यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य ये सब मछलियों को फँसने के लिए स्त्री वशी के समान है। चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

व्याख्या मोह निसा सब सोवनिहारा। सो यह अमावस की रात्रि है। इसमें किसी का प्रचार नहीं। केवल पाप उलूक का प्रचार इसमें होता है। पुण्य पक्षी तो इसमें अन्धे रहते हैं। स्त्री पाने पर न भीतर का ज्ञान रहता है न बाहर का।

जप तप नियम जलाश्रय के बुद्धि बल शील सत्य में सब मीन है। इन्हीं से इनका जीवन है। स्त्री वशी है। उसमें - परम प्रेम मृदु चारो। परम प्रेम चारा है। चारा के लाभ से बुद्धि बल शील सत्य सब मारे पड़ते हैं। इनके कारण मनुष्य

दुर्वृद्धि निबल दुःशील और झूठा हो जाता है। जो जो गुण तुम्हारे में है सो सब हरण हो जाता। दुर्गुण आकर डेरा लगाते हैं।

दो अवगुण मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।

ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जियँ जानि ॥४४३८॥

अर्थ युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीडा देनेवाली और सब दुखों की खान है। इसलिए हे मुनि। मैंने जो मैं ऐसा जानकर तुमको विवाह करने से रोका था।

व्याख्या संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना। सो उस अभिमान को तोड़ने का उपाय किया था। यदि व्याह हो जाता तो प्रमदा सग्रह से अवगुण मूल नाना शूलप्रद वस्तु तो बनी ही रहती। तुम अनर्थ से न बच सकते। अतः मैंने व्याह से रोक 'दया'। प्रमदा कहने का भाव यह कि इन्हे मद बना हो रहती है। यह उपदेश यति तथा ब्रह्मचारी के लिए है। यहाँ पर अच्छी बुरी स्त्री का प्रश्न नहीं है। ब्रह्मचारी स्त्री मात्र से विरत हो। न पश्येत् लिखितामपि। चित्र की स्त्री न देखे। गृहस्थ के लिए तो कह ही आये हैं नारि सहित सब खग मृग वृदा। मानहु मोरि करतहहि निन्दा।

मुनि रघुपति के वचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥

कहहु कवन प्रभु के असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी के सुन्दर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र भर आये। वे सोचने लगे कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीति है कि जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रेम हो।

व्याख्या अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। तत्र प्रश्न किया। उत्तर देने पर कहते हैं मुनि रघुपति के वचन सुहाए। ऐसे भाये कि सात्त्विक भाव हो गया यह समझकर कि मैंने क्या समझा था और सरकार का क्या भाव था।

ऐसा भालिक कौन होगा कि गालो सुनकर भी कल्याण हो करे। यथा मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु सदा वषट व्यवहार। सेवक पर ऐसी ममता यथा साप सोस घरि हरखि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। ऐसी प्रीति यथा निज माया के प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह।

सेवाधर्म कठिन जग जाना। सो स्वामी धर्म को कठिन करके दिखला दिया।

जे न भजहि अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रक नर मद अभागी ॥

पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम विग्यान विसारद ॥२॥

अर्थ जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते वे ज्ञान के कङ्काल दुर्वृद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदर सहित बोल हे विज्ञान विगारद श्रीरामजी। सुनिये।

व्याख्या : यहाँ : प्रभु रक्षा करेंगे ऐसे विश्वास का न होना ही भ्रम है । जिसे भजनीय में ही भ्रम है उसे ज्ञान कहाँ हुआ ? वह मोहवश है । अतः मन्द है । न वह शिशु वच्छ ही हो सका । न प्रौढ तनय ही हो सका । अतः अभागी है ।

नारदजी का गद्गद कण्ठ है । इससे मृदु वचन न कह सके सादर बोले । मुनि हैं । मनन शील हैं । मन में ठीक किया कि सरकार ने सन्तों को बड़ा ऊँचा पद दिया । स्वयं कहते हैं और अपने वचन के प्रमाण में : सुनु मुनि कह पुराण स्मृति संता । कहते हैं । सो सन्त को कैसे पहिचाने । अतः इन्हीसे लक्षण पूछना चाहिए । ये विज्ञान विशारद हैं ।

संतन्ह के लच्छन रघुवीरा । कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्ह ते में उन्ह के वस रहऊँ ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर ! हे भवभय का नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपाकर सन्तों के लक्षण कहिये । श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! सुनो । मैं सन्तों के गुणों को कहता हूँ जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ ।

व्याख्या : सरकार भवभय भंजन और भीर भञ्जन है । भीर : आपत्ति को कहते हैं । असाधारण धर्म की लक्षण कहते हैं । आप रघुवीर हैं । दया करके कहिये ।

दूसरी बात प्रारम्भ होती है । अतः सुनु कहते हैं । सन्तों के गुण ही उनके लक्षण हैं । वे असन्त में नहीं पाये जाते हैं । उनकी बातें मेरे लिए प्रमाण है । क्योंकि मैं स्वयं उनके वश में रहता हूँ : भगति अवसहि वस करी ।

षट विकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमितबोध अनीह मितभोगी । सत्यसार कवि कोविद जोगी ॥४॥

अर्थ : वे सन्त, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः दोषों को जीते हुए, पाप रहित, कामना रहित, स्थिर बुद्धि, सर्व त्यागी, बाहर भीतर से पवित्र, सुख के घाम, असौम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान् और योगी होते हैं ।

व्याख्या : पहिला लक्षण षट् विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर उनके वश में हैं । वे इनके वश नहीं हैं । अनघ हैं सञ्चित पाप भी नष्ट हो गये हैं और क्रियमाण से लेप नहीं है । अकाम हैं वासना रहित हैं । अचल हैं । अपने धर्म से चलायमान नहीं होते । यथा : षट् विश्वास अचल निज धर्मा । अविञ्चन है । किसी वस्तु में उन्हे ममत्व बुद्धि नहीं है । बाहर भीतर से शुद्ध होते हैं । फलतः सुखधाम हैं ।

उनका ज्ञान परिच्छिन्न नहीं है । यथैकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्वं मृण्मय विज्ञातं भवति । जैसे एक मिट्टी के पिण्ड के ज्ञान लेने से उसके सभी विकार घटशरावादि जाने जाते हैं । उसी भाँति एक ब्रह्म के ज्ञान होने से कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता । इसलिए उन्हे अमित बोध कहा । अब उन्हे इच्छा नहीं होती । ऐसे ज्ञानी विधि निषेध से परे होते हैं । फिर भी मितभोगी होते हैं । भिक्षा, कौपीन, कंथा, पादुका में

ही उनका भोग सोमित रहता है। सत्यसार : व्यवहार सच्चा है। सच्चा लेना, सच्चा देना, सच्चा भोजन, सत्य चबेना। मितभोगी और सत्यसार होने से कवि - निकालज्ञ हो जाते हैं। उन्हें वेदार्थ का भान होने लगता है। आपसे आप निरुद्ध होकर मन भगवच्चरण में लग जाता है। कुयोगी भी नहीं है। मोह विटप के उखाड़ने में समर्थ हैं : इससे ज्ञान कहा।

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रवीणा ॥५॥

अर्थ : सावधान, दूसरो को मान देनेवाले, अभिमान रहित, धैर्यवान्, धर्म की गति में अत्यन्त निपुण होते हैं।

व्याख्या : सावधान का अर्थ है प्रमादरहित। प्रमादो वै मृत्यु। इन्हें दूसरे को मान देने में प्रमाद नहीं होता। जो मान देता है वह स्वयं भी मान चाहता है। वे मदहीन रहते हैं। मान नहीं चाहते। धीर हैं - ते धीर अछत विकार हेतु जे रहत मनसिज बस किये। धर्मगति बहूत सूक्ष्म होती है। गहना कर्मणो गति। सो उनकी गति में परम प्रवीण हैं। कर्म विकर्म अकर्म तीनों की सूक्ष्मता को समझते हैं इसमें कर्म कहा।

दो गुणागार ससार दुख, रहित विगत सदेह।

तजि मम चरण सरोज प्रिय, तिन्ह कहैं देह न गेह ॥६४५३९॥

अर्थ - गुणों के घर ससार के दुखों से रहित और सन्देहों से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है न घर ही।

व्याख्या - पण्डिते च गुणा सर्वे। खल अघ अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा। गुण के आस्पद वे ही हैं। ससृत सन्निपात दारुण दुख से रहित हैं। कभी कभी विद्या व्याप जाती है। अत विद्या के दुख का निषेध नहीं किया : हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापे तेहि विद्या। उन्हें सन्देह होता ही नहीं। मेरा चरण ही प्रिय है देह गेह प्रिय नहीं। मेरे चरण के सम्बन्ध से देह गेह में प्रेम है। यदि बाधक हो तो उसे त्याग देवें। इससे भक्ति कहा।

निज गुन स्रवण सुनत सकुचाही। पर गुन सुनत अधिक हरपाही।

सम सीतल नहि त्यागहि नीति। सरल सुभाउ सवहि सन प्रीती ॥७१॥

अर्थ - कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं। दूसरों के गुण सुनने में विशेष हर्षित होते हैं। सम और सीतल हैं। न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं।

व्याख्या - निरभिमान हैं। ससार अपने गुण को सुनकर फूल उठता है पर उन्हें सङ्कोच होता है। गुणों के टीक महत्त्व को जानते हैं। उनके मन मुताबिक वे गुण अपने में नहीं पाते। ऐसा उदार हृदय है कि पर गुण से हर्ष होता है। ससार

परगुण सहन नहीं कर सकता । वे गुणों पर आसक्त हैं । गुणों की बढ़ोत्तरी परम इष्ट है ।

वे सम हैं यथा : निज प्रभु मय देखहि जगत । शीतल हैं यथा : जहाँ सान्ति सत गुरु की दर्ई । तहाँ क्रोध की जरि जरि गई । नीति नहीं छोड़ते : नीति विरोध सोहाइ न मोही । सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान । अतः स्वभाव से सरल होते हैं । सब पर प्रीति करते हैं : आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति । अर्थात् भक्त में भगवान् के सब गुण आ जाते हैं ।

जप तप व्रत दम संजम नेमा । गुरु गोविंद विप्र पद प्रेमा ॥

श्रद्धा क्षमा मैत्री दया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥८.२॥

अर्थ वे जप, तप, व्रत, दम, सयम और नियम में रत रहते हैं । और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं । उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है ।

व्याख्या : उन्हें जप • मन्त्र का अभ्यास । तप चान्द्रायणादि । व्रत . एकादशी आदि । दम इन्द्रिय निग्रह । सयम धारणा ध्यान समाधि । नेम : कार्यानुष्ठान में दृढ़ता । उसमें भङ्ग न हो । गुरु : ज्ञानदाता । गोविन्द गोरक्षक भगवान् और विप्र इन पर स्वाभाविक प्रीति होती है ।

श्रद्धा जननीव पाति योगिनम् • माँ की भाँति योगी की रक्षा करती है । श्रद्धा बिन धर्म नहीं होई । क्षमा क्रोध का जीतनेवाली है । सामर्थ्य रहते अपराधी को दण्ड न देना क्षमा है । सुखी लोगों में मित्रता का भाव रखना । उनसे वैर न करना । दुखी पर दया । पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न होना • मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणा सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणा भावनातश्चित्तप्रसादनम् । ये सब गुण उनमें होते हैं ।

विरति विवेक विनय विद्याना । बोध जथारथ वेद पुराणा ॥

दम्भ मान मद करहि न काऊ । भूलि न देहि कुमारग पाऊ ॥९.३॥

अर्थ तथा उन्हें वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है । वे दम्भ, अभिमान, मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते ।

व्याख्या विवेक राजा है । विराग उसका मन्त्री है । यथा • सचिव विराग विवेक नरेसू । विनय विद्या का फल है । ज्ञानी होने पर भी विनय रहे । अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं । उन्हें वेद पुराण का यथार्थ बोध होता है । श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहाते हैं । वेद पुराण के जाननेवाले बहुत हैं । पर यथार्थ बोध सबको नहीं है । सन्तों में ये सब गुण होते हैं ।

अब जो सन्त नहीं करते उसे कहते हैं । १ दम्भ • करों जो कछु धरौ सचि पचि सुकृत सिला बटोरि । पैठि उर वरवम दयानिधि दम्भ लेत अजोरि । २ मान यथा :

सकल सोक दायक अभिमाना । ३. मद यथा : श्रीमद वक्रन कीन्ह केहि । ४. कुमार्ग मे पैर रखना । ये चार बात सन्त कभी नहीं करते ।

गावहि सुनहि मदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत लीला ॥

मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकहि सारद श्रुति तेते ॥१०.४॥

अर्थ : सदा मेरी लीला को गाते सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरो के हित में लगे रहते हैं । हे मुनि ! सन्तो के जितने गुण हैं उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते ।

व्याख्या : मेरी लीला गावे भी सुने भी : श्रोता मिले तो गावे वक्ता मिले तो सुने । निष्कारण परोपकार कहते हैं । यथा : पर उपकार वचन मन काया । सत सहज सुभाव खगराया । प्रकरण का उपसहार करते हुए अन्त में दो प्रधान गुण कहा । यहाँ तक असाधारण गुण कहा : जिनसे मैं उनके बस रहूँ । वैसे तो अगणित गुण हैं ।

शारदा स्वर्गलोक की वक्ता, श्रुति मर्त्यलोक की वक्ता । वे भी सन्तो के सब गुण नहीं कह सकते । भाव यह कि अकथनीय हैं । वैखरी में उनका वर्णन नहीं हो सकता : सत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहै न जाना । निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता ।

छं. कहि सक न सारद सेप नारद सुनत पद पंकज गहे ।

अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥

सिर नाइ वारहि वार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।

ते धन्य तुलसीदास आस विहाइ जे हरि रंग रंग ॥

अर्थ : शेष और शारदा भी नहीं कह सकते : यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड़ लिये । दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तों के गुण कहे । भगवान् के चरणों में बार बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरि के रंग में रंग गये हैं ।

व्याख्या : पूर्व अर्धाली में शेष को कहने के लिए स्थान नहीं था । अतः छन्द में कहते हैं । शिष्य की कृतकृत्यता । अपने सेवक का गुण कोई अपने मुख से नहीं कहता । सरकार की इतनी अनुकम्पा है कि अपने मुख से सेवक के गुण कहे । अर्थात् भागवत धर्म का वर्णन किया । नारदजी ने इसीलिए पूछा था कि जो गुण अपने में न हो उसके लिए मैं प्रयत्न करूँ । सो देखा कि मेरे गुणों को अपने मुख से कह रहे हैं । अतः बार बार चरणों में सिर नवाया ।

परगुण सहन नहीं कर सकता । वे गुणों पर आसक्त हैं । गुणों की बढ़ोत्तरी परम इष्ट है ।

वे सम हैं यथा : निज प्रभु मय देखहि जगत । शीतल हैं यथा : जहाँ सान्ति सत गुरु की दर्ई । तहाँ क्रोध की जरि जरि गई । नीति नहीं छोड़ते : नीति विरोध सोहाइ न मोही । सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान । अतः स्वभाव से सरल होते हैं । सब पर प्रीति करते हैं : आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति । अर्थात् भक्त में भगवान् के सब गुण आ जाते हैं ।

जप तप व्रत दम संजम नेमा । गुरु गोविंद विप्र पद प्रेमा ॥

श्रद्धा क्षमा मैत्री दया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥८.२॥

अर्थ वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में रत रहते हैं । और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं । उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणों में निष्पट प्रेम होता है ।

व्याख्या : उन्हें जप मन्त्र का अभ्यास । तप चान्द्रायणादि । व्रत - एकादशी आदि । दम इन्द्रिय निग्रह । संयम धारणा ध्यान समाधि । नेम : कार्यानुष्ठान में हृदयता । उसमें भङ्ग न हो । गुरु : ज्ञानदाता । गोविन्द . गोरक्षक भगवान् और विप्र इन पर स्वाभाविक प्रीति होती है ।

श्रद्धा जननीव पाति योगिनम् . माँ की भाँति योगी की रक्षा करती है । श्रद्धा बिन धर्म नहीं होई । क्षमा . क्रोध का जीतनेवाली है । सामर्थ्य रहते अपराधी को दण्ड न देना क्षमा है । सुखी लोगों में मित्रता का भाव रखना । उनसे वैर न करना । दुखी पर दया । पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न होना मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणा सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणा भावनातश्चित्तप्रसादनम् । ये सब गुण उनमें होते हैं ।

विरति विवेक विनय विज्ञाना । बोध जथारथ वेद पुराणा ॥

दम्भ मान मद करहि न काऊ । भूलि न देहि कुमारग पाऊ ॥९.३॥

अर्थ तथा उन्हें वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है । वे दम्भ, अभिमान, मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते ।

व्याख्या विवेक राजा है । विराग उसका मन्त्री है । यथा सचिव विराग विवेक नरेसू । विनय विद्या का फल है । ज्ञानी होने पर भी विनय रहे । अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं । उन्हें वेद पुराण का यथार्थ बोध होता है । श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहाते हैं । वेद पुराण के जाननेवाले बहुत हैं । पर यथार्थ बोध सबको नहीं । सन्तों में ये सब गुण होते हैं ।

अब जो सन्त नहीं करते उसे कहते हैं । १ दम्भ करों जो बहुत धरों सचि पचि कृत सिला बटोरि । पैठि उर बरबस दयानिधि दम्भ लेत अजोरि । २ मान यथा :

सकल सोक दायक अभिमाना । ३. मद यथा : श्रीमद वक्रन कीन्ह केहि । ४. कुमार्ग मे पैर रखना । ये चार बात सन्त कभी नहीं करते ।

गावहि सुनहि सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत लीला ॥

मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकहि सारद श्रुति तेते ॥१०.४॥

अर्थ : सदा मेरी लीला को गाते सुनते है और बिना ही कारण दूसरो के हित में लगे रहते है । हे मुनि ! सन्तो के जितने गुण है उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते ।

व्याख्या : मेरी लीला गावे भी सुने भी • श्रोता मिले तो गावे वक्ता मिले तो सुने । निष्कारण परोपकार कहते हैं । यथा • पर उपकार वचन मन काया । सत सहज सुभाव खगराया । प्रकरण का उपसहार करते हुए अन्त में दो प्रधान गुण कहा । यहाँ तक असाधारण गुण कहा : जिनते मैं उनके बस रहूँ । वैसे तो अगणित गुण हैं ।

शारदा स्वर्गलोक की वक्ता, श्रुति मर्त्यलोक की वक्ता । वे भी सन्तो के सब गुण नहीं कह सकते । भाव यह कि अकथनीय हैं । वैखरी में उनका वर्णन नहीं हो सकता : सत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहै न जाना । निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता ।

छं. कहि सक न सारद शेष नारद सुनत पद पंकज गहे ।

अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥

सिर नाइ बारहि बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।

ते धन्य तुलसीदास आस विहाइ जे हरि रंग रंग ॥

अर्थ : शेष और शारदा भी नहीं कह सकते : यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड़ लिये । दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तों के गुण कहे । भगवान् के चरणों में बार बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य है जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरि के रंग में रंग गये है ।

व्याख्या : पूर्व अर्धाली में शेष को कहने के लिए स्थान नहीं था । अतः छन्द में कहते हैं । शिष्य की कृतकृत्यता । अपने सेवक का गुण कोई अपने मुख से नहीं कहता । सरकार की इतनी अनुकम्पा है कि अपने मुख से सेवक के गुण कहे । अर्थात् भागवत धर्म का वर्णन किया । नारदजी ने इसीलिए पूछा था कि जो गुण अपने में न हो उसके लिए मैं प्रयत्न करूँ । सो देखा कि मेरे गुणों को अपने मुख से कह रहे हैं । अतः बार बार चरणों में सिर नवाया ।

आशा छोडकर हरि के रंग में रँग जाने में ही सब गुण हैं ।

सोइ सरवग्य गुनी सोइ ज्ञाता । सोइ महि मडित पडित दाता ॥
धर्मपरायण सोइ कुलजाता । रामचरण जाकर मन राता ॥
विधि हरिहर कवि कोविद वानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सतसगति दुर्लभ ससारा । निमिष दड भरि एको वारा ॥

दो रावनारि जसु पावन, गावहि सुनहि जे लोग ।

राम भगति दृढ पावहि, बिनु विराग जप जोग ॥४६ क॥

अर्थ जो लोग रावण के शत्रु अथवा जिसका शत्रु रावण है ऐसे श्रीरामजी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे वे वैराग्य जप और योग के बिना ही श्रीरामजी की दृढ भक्ति पावेंगे ।

व्याख्या रावण का यश मन्द । रावनारि का पावन । इस काण्ड में रावण से वैर हो गया । इसलिए रावनारि कहते हैं । भक्ति के साधन हैं विराग जप और योग । यथा जप योग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई । सो कथा गान और श्रवण से मिल जाती है । यह इस काण्ड का माहात्म्य है ।

दो दीप सिखा सम जुवति तनु, मन जनि होसि पतग ।

भजहि राम तजि कामु मदु, करहि सदा सतसग ॥४६ ख ४०॥

अर्थ युवती स्त्रियो का शरीर दीपक की लौ के समान है । हे मन ! तू उसका प्रतिगा न बन । काम और मद को छोडकर श्री रामचन्द्रजी का भजन कर और सदा सतसग कर ।

व्याख्या दीपशिखा को मनोहर देखकर मन पतग होकर कूदता है और भस्म हो जाता है । यौवनावस्था में ही मनोहर है । जहाँ यौवनावस्था गयी तहाँ मनोहरता भी चली जाती है । अपने मन को शिक्षा देते हैं । सरकार ने नारदजी को स्त्री संग्रह नहीं करने दिया । अतः तू भी संग्रह न कर ।

काम मद भजन पथ के बाधक हैं । इन्हें छोडकर भजन कर और सदा सतसग कर । यथा तुलसी पट नव छिद्र को सतसगति सर बोर । बाहर रहै न प्रेम जल कीजै जतन करोर । उमा रामगुण गूढ पण्डित मुनि पावहि विरति का साफल्य दिखलाया ।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुपविध्वसने विमलवैराग्यसपादनो
नाम तृतीय सोपान समाप्त

यह काण्ड श्रीरामचरित मानस में आरण्यक का काम देता है ।

